विषय-सूची

HL

VISVAMITRA

1941

G.K.V.
HARDWAR

विषय

विषय



जीवनके दो चित्र

पैसा अंक—



सम्पादक—
शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी०ए०, बी०एल०

जनवरी, १९४१ वर्ष ९ संख्या १०० पौष, १९९७

'आकुल अन्तर' से

कितनी बार दिवस बीता है,
कितनी बार निशा बीती है,
कितनी बार ज्योति हारी है,
कितनी बार ज्योति जीती है !
मेरा जीवन सबका साखी।

कितनी बार सृष्टि जागी है,
कितनी बार प्रलय सोया है,
कितनी बार हंसा है जीवन,
कितनी बार बिलख रोया है !
मेरा जीवन सबका साखी।

कितनी बार विश्व घट मधुसे,
पूरित होकर तिक्त हुआ है,
कितनी बार भरा भावोंसे,
कविका मानस रिक्त हुआ है !
मेरा जीवन सबका साखी।

कितनी बार विश्व कटुताका
हुआ मधुरतामें परिवर्तन
कितनी बार मौनकी गोदी
में सोया है कविका गायन !
मेरा जीवन सबका साखी।

—बच्चन।

संसार के धन कुबेरों की कहानी

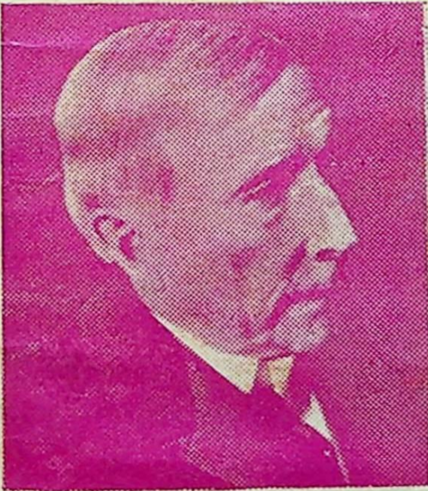
श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र एम० ए० बी० एल०

वर्तमान युगको अर्थप्रधान युग कहा गया है; और वस्तुतः यह है भी ऐसा ही। मानव-जीवनके समस्त क्षेत्रोंमें अर्थकी ही प्रधानता देखी जाती है और अर्थ ही आजकी सभ्यता एवं संस्कृतिका प्रधान साधन एवं मापदण्ड हो रहा है। यही कारण है कि वर्तमान शताब्दीमें एक ओर जहां हम प्रबल धनतृष्णा देख रहे हैं, वहां दूसरी ओर इस धनतृष्णा एवं अर्थपैशाचिकताके विरुद्ध प्रबल आन्दोलन, एक ओर शासन-शोषण एवं व्यवसाय-बुद्धिकी बदौलत लख-पती-करोड़पती बननेकी प्रवृत्ति और दूसरी ओर साम्यवाद एवं यथोचित धन-वितरण द्वारा पृथिवीके धन-वैभव एवं ऐश्वर्यपर सब लोगोंका समान अधिकार स्थापित करने और उसे सबके लिए उपभोग्य बनानेकी प्रबल चेष्टा। किन्तु इन सारी क्रिया-प्रतिक्रिया एवं घात-प्रतिघातके होते हुए भी वर्तमान शताब्दीमें धनकुबेरोंका अभाव नहीं है। संसार-के प्रत्येक देशमें इस प्रकारके कुछ लोग मिलेंगे, जिन्होंने सच-मुच इतना अर्थ-सञ्चय किया है कि जिसकी कल्पना भी हम मुश्किलसे कर सकते हैं। और इससे भी बढ़कर आश्चर्यकी बात तो यह है कि इनमें अधिकांश साधारण अवस्थासे ही इतने बड़े ऐश्वर्यशाली धन-कुबेर बने हैं। एक दिन ये भी साधारण मनुष्योंकी तरह ही कल-कारखानों, होटलों, आफिसों या दूकानोंमें काम करते थे। किन्तु अपनी प्रतिभा, बुद्धिबल एवं असाधारण गुणोंकी बदौलत इतना अधिक अर्थोपार्जन करनेमें समर्थ हुए हैं कि आज इनकी गणना धन-कुबेरोंमें की जाती है। इनमें कुछ ऐसे भी हैं, जो जितना ही अधिक अर्थ-सञ्चय करते हैं, उतना ही मुक्तहस्त होकर दान भी करते हैं।

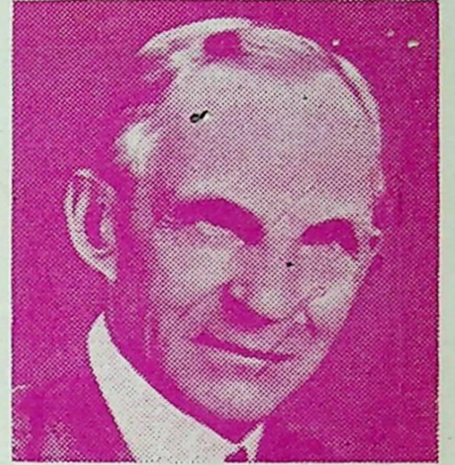
धनकुबेरके रूपमें इस समय जो लोग विख्यात हैं, उनमें प्रायः सबके सब पत्रके व्यवसायी हैं। व्यवसाय-वाणिज्य द्वारा ही ये विपुल धनराशि सञ्चित करनेमें समर्थ हुए हैं। पहले जिन लोगोंने धनकुबेरके रूपमें प्रसिद्धि प्राप्त की थी, उनमें अनेक अपने जीवनमें जमीन, कोयला, तम्बाकू, कपास, जहाज, कल-कारखाना, बैङ्किङ्ग और व्यवसाय-वाणिज्य द्वारा करोड़पती बने थे और इस समयके करोड़पतियोंमें अनेकने अपने जीवनमें समाचार-पत्र, मोटरगाड़ी, सोनेकी खान, रेयन, वैज्ञानिक आविष्कार और उनके व्यवसाय द्वारा धनकुबेरकी ख्याति प्राप्त की है। किन्तु इसके साथ ही यह सोचकर कम विस्मय नहीं होता कि जिस जगत्में राकफेलर, फोर्ड, मार्गन, एलरमैन, इयूल, कोट्स, लार्ड रदरमियर, एनडू मिलन, सेसून और हैदरा-बादके निजाम-जैसे धन-कुबेर हों, वहां इतने लोग दीन-दरिद्र बनकर जीवन धारण क्यों कर रहे हैं। कहते हैं कि अकेले ग्रेट ब्रिटेनमें ही ५६०० करोड़पती हैं। इनके अलावा अमे-रिका तथा संसारके अन्यान्य देशोंके धनकुबेरोंकी संख्या भी कम नहीं है।

अच्छा तो करोड़पती (Millionaire) कहते किसे हैं? साधारणतः जिनका मूलधन १० लाख पौण्ड होता है और उस मूलधनसे जो आय-कर देनेके उपयुक्त वार्षिक ५० हजार पौण्ड आय प्राप्त करते हैं, उन्हें ही करोड़पती कहा जाता है। यद्यपि इस हिसाबके अनुसार संसारमें करोड़-पतियोंकी संख्या कम नहीं होगी, तथापि प्रकृत धनकुबेरोंकी संख्या बहुत ज्यादा नहीं हो सकती। कारण, आजकल ऐसे

लोग भी हैं, जो लाखों रुपया उपार्जन करते हैं और आय-करके रूपमें मोटी रकम भी दिया करते हैं, फिर भी वास्तवमें वे धन-कुबेर नहीं माने जाते। जैसे जिमि ह्वाइटको लीजिये। ये लाखों रुपये पैदा किया करते थे; किन्तु यदि कभी इन्हें अपना सारा देना चुकाना पड़ता, तो इनके पास पांच लाख पौण्ड भी बचता कि नहीं, इसमें सन्देह ही है। और सम्भवतः इसी कारणसे इन्होंने आत्महत्या भी कर ली। इसके बाद जब इनकी सम्पत्तिका अन्दाजा लिया गया, तो पता चला कि सिर्फ इनकम टैक्सकी बाबत ही इनके जिम्मे १० लाख पौण्डसे अधिक पावना था। साल-ब-साल वे इनकम टैक्सके पावनेको अदा न करके किसी तरह टालते आ रहे थे और हरएक साल यह सोचा करते थे कि आगामी वर्षमें कोई ऐसी आकस्मिक घटना घटित होगी, जिससे वे सारे देनसे मुक्त हो जायंगे। किन्तु जीवनमें यह सुयोग उन्हें फिर कभी प्राप्त नहीं हुआ और इधर कर्जका बोझ बढ़ता ही गया। और भी कई लखपतियोंके सम्बन्धमें यही बात कही जा सकती है। लार्ड मेलचेटके सम्बन्धमें बहुत-से बैङ्करोंकी भी यह धारणा थी कि वे किसी भी समय अपने पाससे ६० लाख पौण्ड तक बाहर कर सकते हैं; किन्तु इनकी मृत्युके बाद देखा गया कि इनके पास ९ लाख पौण्डसे अधिक नहीं था। इसका कारण यह था कि जिस प्रकार ये उपार्जन किया करते थे, उसी प्रकार पानीकी तरह बहाया भी करते थे। शहर और देहातोंमें इनके बहुत-से प्रासादोपम प्रमोद-भवन थे और रहन-सहनका ढङ्ग भी बहुत खर्चीला था। मौली जोयल दक्षिण अफ्रीका - स्थित किम्बर्लीकी हीरेकी खानमें पहले सिगरेट बेचा करता था। बादमें अपने बुद्धिबलसे यह उस खानका मालिक बन गया और करोड़ों रुपये पैदा किये। किन्तु मरनेके बाद यह सिर्फ १० लाख पौण्ड छोड़ गया था।



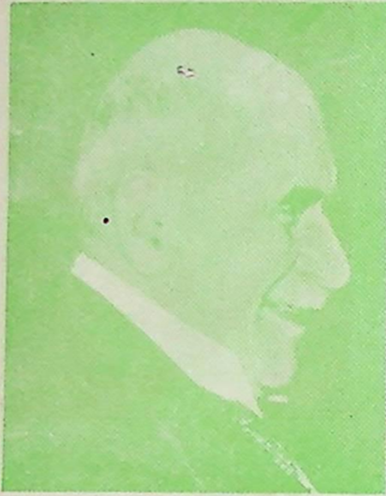
ज्ञान डी० राकफेलर : अपने व्यावसायिक कौशलसे करोड़ों रुपये कमानेवाला अमेरिकन धन-कुबेर। सारे संसारमें आपके दानसे चलनेवाली संस्थाओंकी संख्या सैकड़ोंमें है।



हेनरी फोर्ड : मोटर व्यवसायका विश्व-प्रसिद्ध धन-कुबेर।

वर्तमान समयमें ब्रिटेनमें एक सौसे अधिक प्रकृत धनकुबेर नहीं होंगे। इनमें प्रायः २०-२५ ऐसे हैं, जिन्होंने उत्तराधिकारके रूपमें विशाल सम्पत्ति प्राप्त की है। बाकी अपनी प्रतिभा, व्यवसाय-बुद्धि एवं अध्यवसायकी बदौलत धनकुबेर बने हैं। लार्ड डर्बी इसी श्रेणीके एक धनवान हैं। घुड़दौड़में पैसे कमाकर ये विश्व-विख्यात धनी हुए हैं। लन्दन, पेरिस तथा और भी कितने ही स्थानोंमें इनके बड़े-बड़े वास भवन हैं। ड्यूक आव वेस्टमिनिस्टर भी साधारण धनी नहीं हैं। बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओंमें दास-दासियोंसे परिवेष्टित रहकर ये जीवन-यापन करते हैं। दो सुन्दरी 'डचेस' को वृत्ति देकर अन्तिम वयसमें इन्होंने एक और रूपसी तरुणीको 'डचेस' बनाया है। ड्यूक आव सदरलैण्ड भी एक विलासी धनी व्यक्ति हैं। लार्ड हावार्ड डी० वालडेन अत्यन्त सङ्गीतप्रिय हैं और सङ्गीतके लिए बहुत रुपया खर्च किया करते हैं। लार्ड ऐस्टर एक विलक्षण धनी हैं। घुड़दौड़में ये प्रायः बाजी जीता करते हैं। अपने मित्रोंको वेशकीमती शराब पिलाया करते हैं और स्वयं बार्ली खाकर रहा करते हैं। लार्ड रदरमियर, जिनकी मृत्यु अभी हालमें हुई है, इंगलैण्डके धन-कुबेरोंमें गिने जाते थे। अपने बड़े भाईसे इन्हें प्रचुर सम्पत्ति मिली थी। कई प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओंके मालिक थे। ये कट्टर साम्राज्यवादी थे और भारतके विरुद्ध अपने ''डेलीमेल'' पत्रमें जोरदार लेख लिखा करते थे।

अब कुछ ऐसे धनकुबेरोंकी चर्चा की जायगी, जिन्होंने उत्तराधिकारके रूपमें नहीं, बल्कि अपनी प्रतिभा एवं व्यव-



जे० पी० मार्गन : अमेरिकाका अनोखा सेठ। कितने ही देश इसके कर्जदार हैं।

साय-बुद्धिसे विपुल धन-सञ्चय किया है। सर जान एलरमैन इस प्रकारके ही एक धनकुबेर थे। ब्रिटेनके ये सबसे बड़े धनी समझे जाते थे। इन्होंने ४२०,०००,००० रुपये जमा किये थे। इन्होंने चेम्बरलेन कोषमें २१०,०००,००० रुपये दान किये थे। इस दानका उद्देश्य था बेकारों, दीन-दुखियोंकी सहायता और शराबके मूल्यमें ह्रास। जहाजके व्यवसायमें ये धनी हुए थे। आरम्भमें ये लिवरपुलके एक आफिसमें सामान्य किरानी थे। इसके बाद अमेरिका चले गये और वहांके प्रसिद्ध धनकुबेर मार्गनके साथ जहाजका व्यवसाय करके करोड़पती बन गये। ये पक्के हिसाबी समझे जाते थे। रुपया कमानेका इनका एक कौशल यह था कि व्यवसाय-बाजारमें जो लोग सङ्कटमें पड़कर अपना शेयर या माल बिक्री करनेके लिए उत्सुक होते थे, उनके साथ ये बड़े ही धीर और दुरुस्त ढङ्गसे बातचीत चलाकर कम दाममें उनके शेयर या माल खरीद लिया करते थे। इसके बाद धैर्यपूर्वक तब तक प्रतीक्षा किया करते थे, जब तक कि बाजार-दर खूब चढ़ न जाय। बाजार-दरके खूब चढ़ जानेपर अधिक दाममें वही माल बेचकर प्रचुर लाभ करते थे। ये केवल उपार्जन करके ही सन्तुष्ट नहीं होते, बल्कि कितने अङ्कोंपर कितने शून्य बढ़े—इस ओर भी इनकी खरतर दृष्टि रहती थी। पैसेके सिवा इन्हें जीवनमें न कोई शौक था, न व्यसन। मुद्राकी झङ्कार ही इनके लिए एकमात्र सङ्गीत थी।

सर विलियम मोरिसका जन्म एक साधारण घरानेमें हुआ। इनके पिता मोटर ड्राइवर थे। हेनरी फोर्डके समान इनकी जीवन-कहानी भी बड़ी विचित्र है। केवल ९ पौण्ड-की पूंजीपर इन्होंने बाइसिकिलका व्यवसाय शुरू किया। बादमें मोरिस मोटरकारके निर्माता और व्यवसायीके रूपमें धनकुबेर बन गये। इनका जीवन बड़ा ही सीधा-सादा था। एक क्लबमें एक कमरा किरायेपर लेकर अपनी पत्नीके साथ रहा करते थे। मनोरञ्जनके लिए गाल्फ खेला करते थे। लार्ड इञ्चकेप, रैङ्क, ऐबी बेली आदि भी इसी श्रेणीके धनवान समझे जायंगे। इनकी जीवनीकी आलोचना करनेसे पता चलता है कि इनके ऐश्वर्य-लाभके साधारणतः तीन तरीके थे। पहला यह कि बड़े-बड़े शहरोंमें वहांकी आबादी घनी होनेके कब्ल वहांकी जमीनको खरीदकर रख लेना। दूसरा, किसी नये व्यवसायका आरम्भ करना, जिससे सारे संसारमें उस व्यवसायपर एकाधिपत्य हो जाय। तीसरा, किसी उन्नतिशील व्यवसायमें बुद्धिपूर्वक मूलधन लगाकर और दुःसमयमें कम दाममें माल खरीदकर सुसमयमें चढ़ती दरमें उस मालको बेचना।

ब्रिटेनके अन्यान्य करोड़पतियोंमें न्यूफील्ड और नार्थक्लिफ प्रमुख हैं। गत महायुद्ध-कालमें अनेक करोड़पतियोंको विपुल ऐश्वर्य लाभ करनेका सुयोग मिला था। एलरमैन और हाउस्टन इस रूपमें ही धनी हुए थे। महायुद्ध-कालमें एक और व्यक्ति भारतवर्षमें व्यवसाय करके करोड़पती बने थे। इनका नाम है सर डेविड इयूल। १९१४-१८ के बीच इन्होंने अपनी सम्पत्तिको दुगुना कर लिया था। इन्होंने बैङ्किङ्ग और पाटके व्यवसायमें २ करोड़ पौण्ड उपार्जन किया था। इन्हें "पाटका राजा" (Jute-king) कहा जाता था। इसमें सन्देह नहीं कि यदि महासमरके पूर्व इनकी मृत्यु होती, तो ये एक साधारण धनी समझे



इवार क्रायगर : जगत्-प्रसिद्ध स्वेडिश व्यापारी, जो स्त्रियोंके फेरमें पड़कर अतुलित धन फूंक देनेके कारण अन्तको आत्महत्या करके संसारके बड़े-बड़े अन्तर्राष्ट्रीय बैङ्करोंको भी ले डूबा।

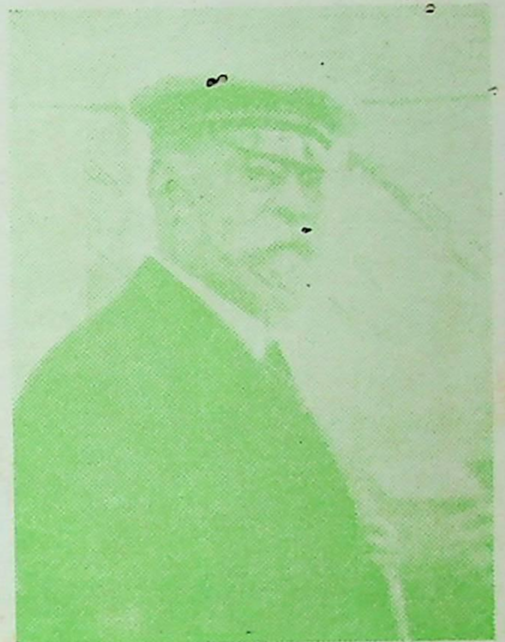
जाते । मृत्युके बाद Deash-duty को लेकर इनके सम्बन्धमें एक प्रबल आन्दोलनकी सृष्टि हो गयी थी ।

हमारे देशमें हैदराबादके निजाम और आगा खांकी गणना भी धनकुबेरोंमें की जाती है । हैदराबादके निजामको तो Richest man of the world अर्थात् संसारका सर्वश्रेष्ठ धनी तक कहा जाता है । निजामकी दैनिक आय २००००) रु० है । गोलकुण्डाकी सोनेकी खान इस आयका मूल है । इसके अलावा इनके पास जो स्वर्ण-स्तम्भ, हीरा, मोती, पन्ना तथा और बेशकीमती जवाहरात हैं, उनका मूल्य तो आंका ही नहीं जा सकता । निजामकी जो अपनी निजी जमींदारी है, उससे उन्हें सालमें एक करोड़ रुपयेकी आमदनी होती है । इसके सिवा सरकारी खजानेसे निजी खर्चके लिए उन्हें सालाना ५० लाख रुपये मिलते हैं । निजामके पुत्र आजम शाह जब भ्रमणके लिए यूरोप गये थे, तो अपने साथ १२०,००० रुपयेका एक सिगरेट-बाक्स तथा और बहुत-सी मूल्यवान वस्तुयें ले गये थे । आगा खां एक धर्म-सम्प्रदायके आचार्यके रूपमें प्रतिवर्ष मोटी रकम बतौर 'भेंट' के पाया करते हैं । आपकी शिष्य-मण्डली विस्तृत है और उसमें बहुत-से धनी व्यवसायी हैं । इसके सिवा घुड़दौड़की बाजीमें भी आपने बहुत कुछ धनार्जन किया है ।

धनकुबेरोंका सबसे बड़ा देश है अमेरिका । इतने धनकुबेर शायद ही और किसी देशमें हों । जान डी० राकफेलरका नाम किसने नहीं सुना है ? संसार के ये एक विख्यात धनकुबेर हैं । जीवनके प्रारम्भमें ये एक दूकानमें काम करते थे । बादमें अपनी बुद्धि और परिश्रमके बलपर विश्वविश्रुत धनकुबेर बने हैं । २७ वर्षकी अवस्थामें ही ये प्रभूत धनसञ्चय करनेमें समर्थ हुए थे । अकेले तेल-व्यवसायमें ही १८२,००० रुपयेकी पूंजी लगाकर धीरे-धीरे इस व्यवसायसे करोड़ों रुपये पैदा किये । एक बार स्वयं इन्होंने कहा था कि ये कभी अपने सञ्चित धन २८०, ०००, ००० रुपयेसे सन्तुष्ट नहीं हुए । १९२९ ई०में इनके सञ्चित धनका परिमाण ९८००,०००, ००० रुपये तक पहुंच गया था । १९३४ में इन्होंने ७० दान-कोषोंमें ८४०,०००-००० रु० और जेनरल एडूकेशन बोर्डको २६४,०००,००० रु० तथा डाक्टरी गवेषणा-कार्यके लिए १९६, ८००,००० रु० दान किये थे । इस समय आपकी सम्पत्तिका मूल्य ७०००,०००,००० रु० कूता जाता है । किन्तु राकफेलर अपना समय किस प्रकार व्यतीत करते हैं ? बड़े राकफेलर गाल्फ खेलते हैं और छोटे राकफेलर (अर्थात् राकफेलरके पुत्र) बेला बजाते हैं ।

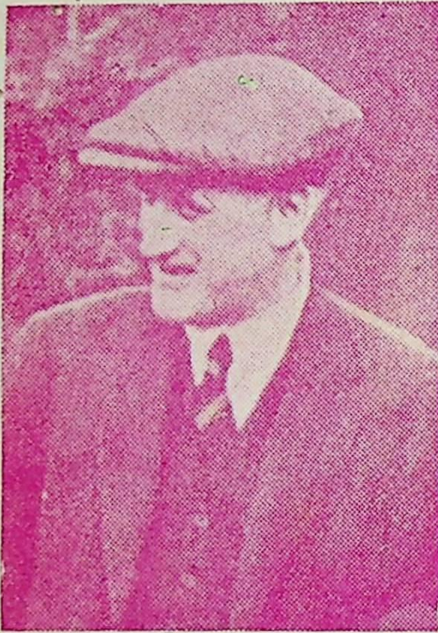


सैमुएल इन्सल : शिकागोका करोड़पति, जिसे जीवनमें बड़े-बड़े उलटफेर देखने पड़े ।



साली जोल : दक्षिण अफ्रीकामें किम्बरलेकी हीरेकी खानोंमें काम करनेवाले व्यक्तियोंके हाथ सिगार बेचकर अपना जीवन आरम्भ किया और अपने कौशलसे अन्तमें प्रतिष्ठित करोड़पति बन बैठा ।

राकफेलरके ऐश्वर्यकी एक विशेषता यह है कि इनके धनमें किसी दिन ह्रास नहीं हो सकता । जिन व्यवसायोंमें आपका धन लगा हुआ है, वे सब व्यवसाय ऐसे हैं कि जब तक अमेरिका तथा मानव-जगत्‌की अर्थनीतिका सम्पूर्ण अन्त नहीं हो जायगा, तब तक इन व्यवसायोंकी क्रमशः वृद्धि ही होती रहेगी । ३० सालोंके अन्दर तेल-व्यवसायसे इन्होंने ४ करोड़ पौण्ड पैदा किया है । इनका मूलधन बाजार-दरकी घटा-बढ़ीके अनुसार ३० करोड़से लेकर ४० करोड़ पौण्डके बीच घटता-बढ़ता रहता



जिमी ह्वाइट : जिसने बिना एक कौड़ीकी पूंजीके अपना व्यापार आरम्भ किया था और बीचमें कुछ समयके लिए 'कागजी करोड़पति' बन बैठा था, और अन्तमें फिर उसी स्थितिमें आ गया।

है। सम्भवतः आगामी ४० सालोंके अन्दर राकफेलरकी सम्पत्तिका मूल्य १०० करोड़ पौण्ड तक पहुंच जायगा।

अमेरिकाके दूसरे विश्व-विख्यात धनकुबेर हैं हेनरी फोर्ड। फोर्ट-मोटर-व्यवसाय द्वारा इन्होंने भी अरबों रुपये पैदा किये हैं। एक साधारण कृषक - परिवारमें इनका जन्म हुआ था। १९ वर्षकी अवस्थामें एक कल-कांटेकी दूकानमें भर्ती हुए। वहीं घड़ी मरम्मत करनेका काम करते हुए घड़ीके विभिन्न कल-पुर्जोंकी जानकारी इन्होंने प्राप्त की, जो आगे चलकर मोटरगाड़ीके कल-पुर्जोंके निर्माणमें कम लाभदायक साबित नहीं हुई। जिस कामको इन्होंने अपने हाथमें लिया, उसका साङ्गोपाङ्ग ज्ञान प्राप्त करनेमें कोई कसर नहीं रखी। हेनरी फोर्ड 'भाग्य' जैसी किसी वस्तुपर विश्वास नहीं करते। आपके मतसे जिसे हम दुर्भाग्य कहते हैं, उसे भी यदि विचारपूर्वक ग्रहण किया जाय, तो वह सुविधामें परिणत हो सकता है। इनका बहुत कुछ समय फोर्ड कम्पनीका कारबार देखनेमें व्यतीत होता है। आपका जीवन एक दार्शनिककी तरह है। संसारके एक श्रेष्ठ धनकुबेर होनेपर भी अर्थके प्रति आपकी विशेष आसक्ति नहीं देखी जाती। यन्त्र-युगके एक विशेष प्रवर्तक होनेपर भी आप एक पक्के ईश्वरवादी एवं धर्म-विश्वासी हैं।

कुछ ही वर्ष पहले तक अमेरिकाके धनकुबेरोंमें मार्गन सबसे बड़े समझे जाते थे। वे अकेले संसारके ३९ वृहत बैङ्कों और बीमा कम्पनियोंके मालिक थे। उनकी तहबीलमें ८४,०००,०००,००० रुपये तक जमा रहते थे। इसके अलावा १६ बैङ्कों और २६ कम्पनियोंकी परिचालना करते थे, जिनमें इनका निजका धन था ४७,३६०,०००,००० रुपया। अपने बैङ्कसे इन्हें १४००,०००,००० रुपये मिलते थे। मार्गन रुपयेकी बात न सोचकर केवल आमदनीकी बात सोचा करते थे। किन्तु इनके व्यवसायके सम्बन्धमें कुछ गोलमालका सन्देह किया गया था, जिससे इनके विरुद्ध एक जांच-कमीशन बैठाया गया था।

'ड्यू पिण्ट क्लैन' संसारके एक श्रेष्ठ धनकुबेर हैं। इनको महापद्मकी उपाधि दी गयी है। राकफेलर, फोर्ड और मार्गनकी अपेक्षा ड्यू पिण्ट क्लैनका ऐश्वर्य कम नहीं है। मार्गनके साथ मोटर-व्यवसाय करके १९३६ में इन्होंने ६६६,४००,००० रुपये मुनाफा किया था। एनड्रू मिलन भी संसारके एक अन्यतम श्रेष्ठ धनकुबेर समझे जाते हैं। इस समय आप संसारमें आलमुनियम व्यवसायके सम्राट् माने जाते हैं। ये अकेले ३९ बैङ्कोंके मालिक हैं और ४०



पिअर डू पोण्ट : शस्त्रास्त्र बनानेवाला यह व्यक्ति संसार-प्रसिद्ध है। सारी दुनियाके लोग इस व्यक्ति ही नहीं, डू पोण्ट परिवारमें दिलचस्पी लेते हैं।



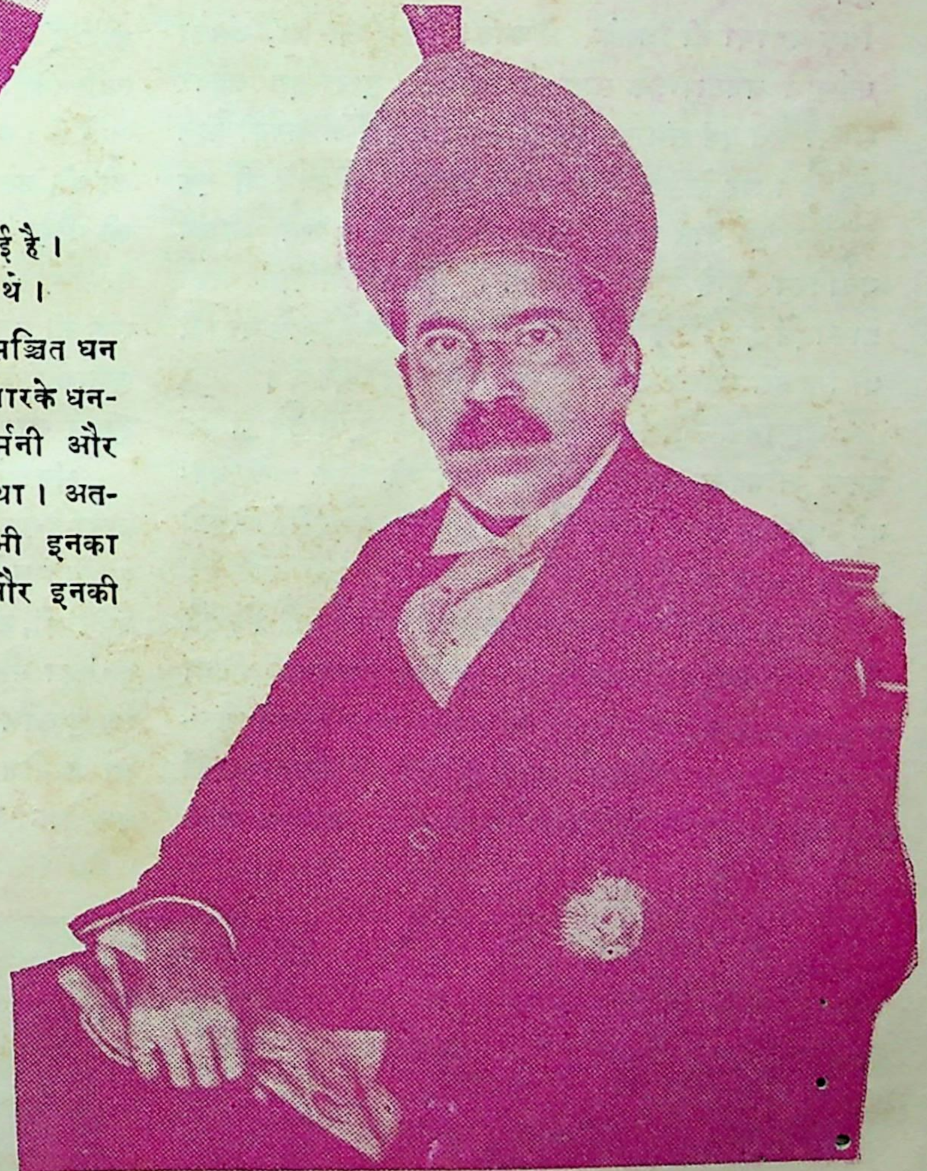
लार्ड राद्र मेयर : जिनकी हालमें ही मृत्यु हुई है। आप इंगलैण्डके अनेक पत्रोंके स्वत्वाधिकारी थे।

कम्पनियोंके कारबारको चला रहे हैं। इनका सञ्चित धन ११९००,०००,००० रुपये तक पहुंच गया है। संसारके धन-कुबेरोंमें लार्ड राथ चाइल्डकी भी गणना है। जर्मनी और आस्ट्रियामें इनका बहुत-सा मूलधन लगा हुआ था। अतएव इन्हें विशेष क्षतिग्रस्त होना पड़ा। फिर भी इनका ऐश्वर्य कम नहीं है। इन्हें कलासे विशेष प्रेम है और इनकी मित्रमण्डली भी कलाप्रेमी है।

तार-व्यवसायके 'राजा' क्लारेन्स मैकी सङ्गीतके बड़े प्रेमी हैं। ये अनेक वाद्य-यन्त्रों द्वारा मनोविनोद करते हुए समय व्यतीत करते हैं। इनके अनेक अरचेस्ट्रा भी हैं। रेलके सामान बेचकर करोड़पती बननेवाले विलियम उडिन जिपसी नृत्य-कलामें पारङ्गत समझे जाते हैं। जे० पी० मार्गनको एक साथ ही बहुत चीजोंका शौक था। आप शिकार खेलने जाते, बागबानीमें दिलचस्पी लेते, प्रमोद-नौकापर विहार करने जाते, गाल्फ खेलते, गिर्जा, बाइबल और शेक्सपियरके सम्बन्धमें चर्चा करते और ईसाई धर्मकी प्राचीन पुस्तकोंको लेकर महामान्य पोपके साथ पत्र-व्यवहार तक करते।

तेल-व्यवसायके 'राजा' जोहार्ट फलित विज्ञानको लेकर माथापच्ची करते रहते हैं। अब तक इनके डेढ़ सौसे अधिक आविष्कार पण्यके रूपमें बाजारमें चल रहे हैं। न्यूयार्कके नाना यन्त्रोंसे सज्जित एक ऊंचे मकानमें ये रहते हैं और एक ऐसी शय्यापर शयन करते हैं, जो एक बटनके दबाते ही फौरन् उन्मुक्त सूर्यालोकमें जा पड़ती है।

सर बेसिल गेहरफ एक प्रसिद्ध अस्त्र-व्यवसायी थे। युद्धके भीषण मारणास्त्र तैयार करके बिक्री करना इनका प्रधान



निजाम हैदराबाद : आप संसारके सबसे बड़े धनकुबेर समझे जाते हैं।

व्यवसाय था । इस व्यवसायमें ही ये करोड़पती बन गये थे और ग्रीक होनेपर भी इन्होंने इंगलैण्डकी सर्वोच्च उपाधि प्राप्त की थी । आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयने इन्हें सर्वोच्च सम्मानसे विभूषित किया था । इनका एकमात्र गुण था शस्त्रास्त्रोंकी दलालीमें अद्भुत क्षमता । सभी देशोंके युद्ध-व्यवसायोंमें इनका हाथ रहता था । यहां तक कि राष्ट्र-राष्ट्रके बीच विवाद एवं कलहकी सृष्टि करके भी अपने रोजगारको चलानेमें इन्हें जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती थी । महायुद्धके बाद इनकी प्रभाव-प्रतिपत्ति बहुत बढ़ गयी थी और विभिन्न देशों द्वारा उच्च सम्मानोंसे विभूषित होकर ये मृत्युको प्राप्त हुए थे । नर-संहारकी प्रणालीको अधिक उन्नत एवं सांघातिक बनाना ही जिसके जीवनका महत् व्रत था, उसका वर्तमान धनतान्त्रिक समाजमें धनिकों द्वारा इस प्रकार सम्मानित एवं समादृत किया जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । सर वेसिल गेहरफ जैसे व्यक्तिके जीवनमें भी एक चमत्कारपूर्ण बात पायी जाती थी । अपने हाथसे भोजन बनानेका इन्हें बेहद शौक था । एक बार पेरिसके अपने प्रासादमें इन्होंने केलेकी तरकारी इतने अच्छे ढङ्गसे बनायी थी कि उसे खाकर कर्नल वेपिङ्गटन मुग्ध हो गये थे ।

जापानके मित्सूगण सारे राष्ट्रके एक चतुर्थांशसे अधिक धनपर अधिकार जमाये बैठे हैं । जापानके प्रायः सभी बड़े-बड़े व्यवसाय इनके हाथमें हैं और वहांकी राजनीतिपर भी इनका प्रभाव काफी है ।

कोडक केमराके आविष्कारक जार्ज इस्टमैनकी गिनती भी करोड़पतियोंमें की जाती थी । इन्होंने विवाह नहीं किया था । साज-सामानसे सुसज्जित इनके वास-भवनमें सुख-साधनका अभाव नहीं था । दास-दासियोंकी भी कमी नहीं थी । अर्थ द्वारा क्रीत-प्रेमिकाओंका प्रेम भी उपलब्ध था । किन्तु यह सब होते हुए भी एक वस्तुकी कमी थी । वह वस्तु थी प्रेमकी सजीव मूर्ति, स्नेहका मूर्त स्वरूप, नारी-हृदयकी स्निग्ध श्यामल छाया, रमणीका मन्दस्मित मधुर हास्य और सन्तानवत्सला जननीका प्रेममय, सुधामय, करुणामय एवं स्वर्गमय आकर्षण । इन्होंने आत्महत्या द्वारा अपने जीवनका अन्त कर डाला ।

संसारमें कुछ ऐसे पतित धनकुबेर भी हो गये हैं, जो अपनी प्रतिभा, परिश्रम एवं अध्यवसायसे नहीं, बल्कि जुआचोरी, बेईमानी और दगाबाजीसे प्रभूत अर्थ-सञ्चय करनेमें समर्थ हुए थे । क्लारेन्स हार्टर इसी श्रेणीके एक करोड़पती थे, जिनके विराट् कारबारके नष्ट हो जानेपर हजारों छोटे-छोटे पूंजीपतियोंका सर्वनाश हो गया । आइवार क्रूगर स्वीडनके निवासी थे और दियासलाईके 'राजा' समझे जाते थे । व्यवसायमें इन्होंने जो जुआचोरी और बेईमानी की थी, उसका जब भण्डाफोड़ हुआ और इनकी गिरफ्तारीकी नौबत आ गयी, तो इन्होंने उससे बचनेके लिए आत्महत्या द्वारा अपने जीवनका अन्त कर डाला । सैमुएल इनसल भी जहाजके व्यवसायमें करोड़पती बन गये थे । किन्तु जुआचोरीके अभियोगमें ये गिरफ्तार कर लिये गये और इनपर मामला चलाया गया ।

संसारके वाणिज्य-व्यवसाय एवं अर्थनीतिकी वर्तमान धारा देखकर ऐसा मालूम पड़ता है कि भविष्यमें करोड़पती बननेका सुयोग बहुत कम प्राप्त होगा और जो करोड़पती बनेंगे भी, उन्हें एक बारमें ही लाख-लाख रुपयेपर हाथ साफ करनेका मौका नहीं मिलेगा । वे उत्पादन करेंगे अधिक; किन्तु लाभ सामान्य ही होगा । धनोत्पादन एवं वितरणका आयोजन अन्य रूपमें होगा और समाजमें आज-जैसा धन-वैषम्य नहीं रह जायगा ।



अपनी चीज

श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

B.C. PONNAPPA.

इञ्चार्ज थाना ठाकुर मलखान सिंह अपने थानेके प्राङ्गणमें मेज-कुर्सी लगाये बैठे थे। मेजपर कुछ कागजात धरे हुए थे, जिनपर वह हस्ताक्षर कर रहे थे। उनके सामने थानेके दीवानजी खड़े हुए थे। एक कागजपर वह हस्ताक्षर करने लगे, तो दीवानजी बोल उठे—"हुजूर, इस शख्सकी निगरानी कट जाय तो अच्छा है।"

ठाकुर साहब सिर उठाकर बोले—"क्यों ?"

"यह मुझसे कह रहा था कि इञ्चार्ज साहब मेरी निगरानी कटवा दें, तो—।" दीवानजीने शेष वाक्य आंखोंसे कह दिया।

"अच्छा, यह बात है ! क्या देगा ?"

"हुजूरका हुक्म हो, तो बातचीत करूं।"

"हां ! हां ! अगर पांच सौ रुपये दे, तो कटवा देंगे। यह तो मालदार आदमी है।"

"जी हुजूर ! पांच सौ तो दे निकलेगा।"

"पांच सौ दे सकता है, तो हजारसे शुरू करो।"

"हजार तो नहीं देगा।"

"मेरा मतलब है, हजारसे बात उठाओ—मुमकिन है, छः सौ दे जाय, सात सौ दे जाय।"

"हां, यह मुमकिन हो सकता है।"

"तो बस, फिर आज ही बुलाकर बात कर लो। हमें इस वक्त रुपयेकी जरूरत भी है।"

दीवानजी, कागजोंपर हस्ताक्षर हो जानेपर, उन्हें समेटकर दफ्तरमें पहुंचे और एक कान्स्टेबलसे बोले—"जरा बरकत अलीको बुलाना।"

बरकत अलीके आनेपर दीवानजी उससे बोले—"अरे म्यां, जरा तुफैलको बुला लाओ। कहना, दीवानजीने याद किया है।"

"बहुत अच्छा !" कहकर बरकत अली चला गया।

तुफैल एक गुण्डा था। जुआ खेलाना, चोरी करवाना, भले आदमियोंको डरा-धमकाकर उनसे रुपया वसूल करना इत्यादि-इत्यादि इसका पेशा था। ठाकुर मलखान सिंहके पूर्वाधिकारी इञ्चार्जने तुफैलपर निगरानी लगवायी थी। उन्होंने तुफैलको रंगे हाथों पकड़नेकी बहुत चेष्टा की; परन्तु तुफैल इतना चालाक था और कान्स्टेबलोंको उसने इतना मिला रखा था कि जब कभी इञ्चार्ज साहब किसी मुखबिरके कहनेपर दौड़ लेकर जाते, तो तुफैलको पहले ही सूचना मिल जाती थी और इञ्चार्ज साहबको असफलमनोरथ होकर लौटना पड़ता था। अन्तमें खीजकर उन्होंने उसपर निगरानी लगवा दी—इससे अधिक वह तुफैलका कुछ न कर सके।

निगरानीके कारण तुफैलको बड़ी असुविधा होती थी। यद्यपि छोटे कर्मचारियोंको वह अब भी मिलाये हुए था, परन्तु फिर भी असुविधा होती थी। निगरानीके कारण उसकी स्वाधीनता परिमित हो गयी थी।

आध घण्टेमें तुफैल आ गया। दीवानजी उसे एकान्तमें ले जाकर बोले—"आज मैंने इञ्चार्ज साहबसे तुम्हारी बाबत जिक्र उठाया था। बड़ी मुश्किलसे राजी हुए हैं—लेकिन एक हजार रुपया मांगते हैं।"

"एक हजार ! इतना अन्धेर ?" तुफैलने कहा।

"क्यों, अन्धेर क्यों ? निगरानी कटवाना मजाक तो है नहीं।"

"यह ठीक है, लेकिन फिर भी एक हजार बहुत हैं।"

"न कहो ! कामको देखते हुए एक हजार कुछ भी नहीं हैं।"

"लेकिन एक हजार मैं लाऊंगा कहांसे ?"

"ऐसी कहोगे ?" दीवानजीने मुस्कराकर कहा।

"अजी दीवानजी, जबसे यह कमबख्त निगरानी लगी है, सारा काम चौपट हो गया। आजकल पैसे-पैसेके लिए तबाह हो रहा हूं।"

"तब तो तुम्हें निगरानी कटवानेके लिए एक हजार खर्च कर देने चाहिए।"

"एक हजार नहीं दे सकूंगा। जहां आपने इतनी इनायत की है, वहां इतना और कीजिये कि पांच सौमें मामला तय करा दीजिये।"

"पांच सौमें तो पांच जनम भी तय न होगा।"

"तो कितनेमें होगा ?"

"एक हजार—।"

"एक हजारकी तो बात ही मत कीजिये।"

"बड़े जिद्दी हो।"

"जिद्की बात नहीं दीवानजी, समाईकी बात है। इस वक्त एक हजार मेरे पास हैं ही नहीं, दूंगा कहांसे।"

"अच्छा, आठ सौ दे सकोगे ?"

"न आठ सौ! रुपये छः सौ दे दूंगा, बस! इससे ज्यादा नहीं दे सकूंगा।"

"अच्छा, हमें क्या दोगे ?"

"आप भी मिठाई खाने-भरको ले लीजियेगा।"

"यह गलत बात है। सौ रुपये हमें देना।"

"ऊंहुंक! पचीस रुपये दे दूंगा।"

"न जाने कैसे आदमी हो। एक हजारके सात सौ रह गये—अब भी बहुत हैं ?"

अन्तमें साढ़े छः सौ पर मामला तय हो गया। छः सौ इञ्चार्ज साहबके लिए और पचास दीवानजीके लिए।

दीवानजीने खुशी-खुशी जाकर इञ्चार्ज साहबसे कहा—"हुजूर, बड़ी मुश्किलसे छः सौ पर राजी किया है।"

"शाबाश! उससे कहो कि रुपया लाकर हाजिर करे, तो हम काररवाई शुरु करें।"

"वह पूछता था कि कितने दिनोंमें कट जायगी।"

"कमसे कम एक महीना तो लगेगा ही, मुमकिन है, ज्यादा लग जाय। मुआयनेके वक्त कट सकेगी।"

"हां और क्या।"

"लेकिन उसकी निगरानी उसी दिनसे बन्द हो जायगी, जिस दिन वह रुपया दाखिल कर देगा। बादको कटती रहेगी। इससे ज्यादा उसे और क्या चाहिए।"

दीवानजीने लौटकर तुफैलसे रुपया लानेके लिए कहा। तुफैल बोला—"कोई धोखा तो न होगा दीवानजी। अगर रुपया लेकर काम न किया, तो याद रखियेगा—मैं जानपर खेल जाऊंगा।"

"क्या बात करते हो म्यां ? ऐसा कभी हो सकता है। हम लोग ऐसा करने लगें, तो फिर हमारा एतबार ही उठ जाय। एतबारपर ही तो हमें रुपया मिलता है।"

"अच्छा, तो कल रुपया लाऊंगा।"

"अच्छी बात है।"

"निगरानी बन्द तो कल ही से हो जायगी ?"

"बेशक! कलसे आरामसे पैर फैलाकर सोना, तुम्हें कोई न जगायगा।"

"और कहीं बाहर जाना चाहूं, तो यहां आकर लिखवाना तो न पड़ेगा ?"

"बिलकुल नहीं। लेकिन एक बातका ध्यान रखना—जब तक निगरानी कट न जाय, तब तक कुछ गड़बड़ न करना। अगर तुम कहीं बाहर पकड़े गये, तो उस वक्त हम लोग अपने ऊपर जिम्मेदारी नहीं लेंगे। उस वक्त सारा इलजाम तुम्हारे ही सिरपर लदेगा।"

"हां! इतना तो मैं भी समझता हूं।"

"तो बस जाओ, मौज करो। लेकिन यार तुमने हमारा हक आधा कर दिया।"

"आगे चलकर समझ लूंगा—आप घबराते क्यों हैं। मैं तो आपका खादिम हूं—जरा मुझे कुछ पैदा कर लेने दीजिये। खुदाकी कसम, आजकल हाथ बहुत तङ्ग है, वरना आपको तो मैं सौके सवा सौ देता।"

"अच्छा तो कल किस वक्त आओगे ?"

"इसी वक्त आऊं ? या जिस वक्त आप कहें।"

"इसी वक्त आ जाना।"

"बहुत अच्छा!"

(२)

ठाकुर मलखान सिंह उन लोगोंमें हैं, जिनका इष्टदेव पैसा है। पैसेके लिए वह सब कुछ करनेको तैयार रहते हैं। झूठे मुकदमे बनाना, सच्चे मामलोंको छोड़ देना, भले

आदमियोंको फंसानेका प्रयत्न करना और बदमाशोंको अभय कर देना इत्यादि उनका नित्यकर्म हो गया है। जबसे ठाकुर साहब आये हैं, तबसे उनके हल्केमें जुआ-चोरी बढ़ गयी है। भले आदमी प्रत्येक समय भयभीत रहते हैं।

ठाकुर साहबका परिवार भी छोटा है। पत्नी, एक पुत्र-वयस अठारह, एक कन्या वयस बारह साल। एक वेश्या भी नौकर है, जिसे वह सवा सौ रुपये मासिक देते हैं। पचास रुपये महीनेकी शराब पी डालते हैं। इस प्रकार उनका वेतन तो कुल इन दो मदोंमें ही चला जाता है। इनके अतिरिक्त गृहस्थीका खर्च, फुटकर खर्च, दस हजारका जान बीमा है उसकी किस्तें—कुछ जमा भी करते हैं—ये सबकाम रिश्वत-की आमदनीसे चलते हैं। गृहस्थीका बहुत-सा सामान तो मुफ्त ही आ जाता है। फलवाला लगभग एक रुपये रोजके फल दे जाता है—शाक-भाजीवाला भी नित्य शाक-भाजी पहुंचाता रहता है। गोश्त भी मुफ्त ही आता है। अपने हल्केके दूकानदारोंसे जो चीजें खरीदते हैं, उनके दाम भी कभी देते हैं, कभी नहीं देते। मांगने और तकाजा करनेका साहस किसीको होता नहीं। ठाकुर साहबकी इच्छापर निर्भर रहता है। यदि दूकामदारके प्रारब्धने जोर मारा, तो दाम मिल गये, नहीं तो रकम बट्टे खाते लिखी गयी। इस प्रकार ठाकुर साहब दोनों हाथोंसे लूटते रहते हैं।

शामका समय था। ठाकुर साहब मेज-कुर्सी लगाये बैठे हुक्केका आनन्द ले रहे थे। इसी समय दारोगा मुहम्मद इस्माईल दो कान्स्टेबलोंके साथ थानेमें प्रविष्ट हुए। कान्स्टेबल एक आदमीको बांधे हुए थे। यह व्यक्ति २४,२५ वर्षका युवक था। खूब गठे शरीरका, गोरा रङ्ग, नाक-नक्शा दुरुस्त, देखनेमें सुन्दर जवान था।

कान्स्टेबल उसे लेकर हवालातकी ओर चले गये। इस्माइल मियां आकर ठाकुर साहबके सामने खड़े हो गये। ठाकुर साहबने पूछा—"किसे लाये ?"

"लाला बुलाकीदासके घरमें चोरी करने घुसा था।"

"दिनदहाड़े ?"

"जी हां। दोपहरका सन्नाटा पाकर घुस पड़ा।"

"लाला बुलाकीदास तो वही हैं—कपड़ेवाले।"

"जी हां! लखपती असामी हैं।" यह कहते हुए नायबने रहस्यपूर्ण दृष्टिसे ठाकुर साहबकी ओर देखा।

"हूं!" कहकर ठाकुर साहबने हुक्केके दो-तीन कश जल्दी-जल्दी खींचे।

"घरपर कोई मौजूद था ?"

"जी हां! उनकी बीबी पड़ी सो रही थी। एक जवान लड़की है, वह भी अपनी मांके पास सो रही थी। दो नौकर घरपर रहते हैं, एक खाना खाने गया था, दूसरा ड्योढ़ीमें पड़ा सो रहा था। सदर दरवाजा ओढ़का हुआ था, भीतरसे बन्द नहीं था।"

"गिरफ्तार किसने किया ?"

"घरमें उनकी बीबीको कुछ आहट मिली, वह उठीं। उन्होंने नौकरको पुकारा। यह कमबख्त भागा। जीनेसे उतरकर ज्यों ही ड्योढ़ीमें पहुंचा, नौकर जाग गया था, उसने धर लिया।"

"नौकर तगड़ा होगा, ऐसे-वैसेके काबूमें तो यह आ नहीं सकता।"

"जी हां, तगड़ा है। दूसरी बात यह हुई कि यह जीना उतरते वक्त फिसलकर गिर पड़ा—बस उसी वक्त नौकरने चाप लिया। शोर-गुल हुआ, तो आस-पासके आदमी भी दौड़ पड़े। चौकी तो पास ही है, वहां खबर दी गयी। मैं वहां ड्यूटीपर था, मैंने जाकर गिरफ्तार किया। पीटा बहुत गया।"

"अच्छा! लाला बुलाकीदासका कोई आदमी आया है।"

"अभी तो नहीं! चौकीपर आया था। मैंने कह दिया है कि लाला साहबको थानेपर भेजो—शायद आते हों।"

"आने दो! आप अभी कुछ न कहियेगा।"

"बिला हुजूरकी इजाजत कैसे कहूंगा।"

"लेकिन यहां बड़ी देरको लाये ?"

"बात यह है कि बयान-वयान लेनेमें देर लग गयी। करीब तीसरे पहरका वाकया है।"

"अच्छा! जाओ!"

इस्माईल साहब सलाम करके बिदा हुए। आध घण्टे बाद लाला बुलाकीदास अपनी कारपर थाने पहुंचे। ठाकुर साहबने लाला साहबको बड़ी खातिरसे लिया। झट उठकर खड़े हो गये। अपने पास बिठाया। अर्दलीको पान लानेके लिए कहा।

लाला साहब बैठते ही बोले—"अब तो बड़ा अन्धेर होने लगा ठाकुर साहब, दिन-दहाड़े लोग घुसने लगे। आपके राजमें ऐसा तो न होना चाहिए।"

"कहां तक इन्तजाम करें लाला साहब। बदमाश मानते हैं? जहां जरा मौका देखा, घुस पड़े—इन लोगोंका काम ही यहीं है।"

"वह तो कहिये बड़ी खैर हो गयी। घरमें जाग पड़ीं नहीं तो हाथ मार देता।"

"लेकिन वह तो कुछ और ही कहता है।"

"क्या कहता है?"

"क्या बताऊं—कुछ कहते नहीं बनता।"

लाला साहब घबराकर बोले—"ऐसी क्या बात है?"

"खैर, कहनी तो पड़ेगी ही। आपके यहां कोई जवान लड़की है?"

लाला साहबके चेहरेका रङ्ग उड़ गया, बोले—"जी हां, मेरी लड़की है।"

"क्या उम्र है?"

"है कोई अठारह बरसकी।"

"शादी हो गयी है?"

"नहीं, अभी तो नहीं हुई। क्यों? कहिये, क्या बात है।"

"वह कहता है कि उस लड़कीसे उसकी आशनाई है और वह जब कभी मौका पाता था, उसके पास जाता था। चोरीकी नीयतसे वह नहीं गया था।"

लाला साहब बौखला गये। लटपटाती जीभसे कड़क-कर बोले—"झख मारता है बादमाश कहींका। यह बात बिलकुल झूठ है।"

"जरा धीरे बोलिये लालाजी, बिगड़नेसे काम नहीं चलेगा। यह इज्जत-आबरूका मामला है। आपने उसे देखा है।"

"नहीं, मैंने तो नहीं देखा।"

"तो पहले जरा उसे देख लीजिये।"

"मैं सालेको देखकर क्या करूंगा।"

"नहीं देख लीजिये! अरे म्यां, कोई है!"

एक कान्स्टेबल दौड़कर आया।

"जरा लाला साहबको वह आदमी दिखा दो, जिसका चालान आया है—दूरसे दिखाना। जाइये देख लीजिये।"

लाला साहब गये और पांच मिनटमें लौट आये। ठाकुर साहबने पूछा—"देख लिया?"

"हां, देख लिया। मगर इससे आपका मतलब क्या है?"

"मेरा मतलब सिर्फ यह है कि जिस वक्त वह अदालतमें यह बयान देगा कि लालाजीकी लड़कीसे मेरी आशनाई थी, तो अदालत उसकी शक्लो सूरत देखकर क्या सोचेगी? खैर, अदालतको जाने दीजिये, और लोग जो उसे देखेंगे और उसका बयान सुनेंगे, वे क्या खयाल करेंगे?"

लाला साहब अवाक् रह गये। कुछ क्षण पश्चात् माथे-का पसीना पोंछते हुए बोले—"अगर उसने ऐसा बयान दिया, तो ठाकुर साहब मेरी नाक कट। जायगी अभी लड़कीका ब्याह भी नहीं हुआ—ब्याह होना कठिन पड़ जायगा। अब मेरी इज्जत आपके हाथ है।" यह कहते-कहते लाला साहबकी आंखोंमें आंसू छलछला आये।

"लेकिन लाला साहब, हम उसकी जबान तो बन्द कर नहीं सकते।"

लालाजी हाथ जोड़कर बोले—"आप सब कुछ कर सकते हैं। आप मेरी आबरू बचाइये—जन्म-भर आपका एहसान मानूंगा। और जो सेवा मेरे लायक हो, उसके लिए भी तैयार हूं।"

"बड़ी कठिन बात है—कुछ समझमें नहीं आता। खैर, आपकी खातिरसे कोशिश तो करनी ही पड़ेगी।"

"अगर वह कुछ ले, तो मैं देनेको तैयार हूं और आप चाहे उसे छोड़ भी दीजिये।"

"खैर, छोड़ना तो ठीक न होगा। बदमाशोंको छोड़ देने-के मैं खिलाफ हूं—इससे उनकी हिम्मत बढ़ती है।"

"खैर, यह आप जानिये। मैं केवल इतना चाहता हूं कि वह आशनाई वाली बात न कहे—बस।"

"देखिये कोशिश करूंगा—वादा तो मैं कर नहीं सकता।"

"आप कोशिश करेंगे, तो काम हो जायगा। यह मुझे विश्वास है।"

"अगर रातका वाकया होता, तब तो बहुत गुञ्जायश हो जाती। मगर दिनका मामला है। दिनमें कोई चोरी

करने क्यों जायगा ? कोई बड़ा बेवकूफ ही दिनमें चोरी करने घुसेगा।"

"तो क्या आप भी उसके बयानको सच समझते हैं ?" लालाजीने पूछा।

"नहीं, मैं तो सच नहीं समझता, मगर जो सुनेगा, वह तो ऐसा ही सोचेगा।"

"सुनेगा तब न !"

"हां-आं यह तो हई है। अच्छा मैं पूरी कोशिश करूंगा।"

लाला साहब बोले—"तो मैं आपके भरोसे हूं।"

"हां, रुपयेमें बारह आने तो भरोसे रहिये ही, फिर भगवान मालिक है।"

"मैं तो सोलहो आने भरोसा करके जा रहा हूं।"

"अच्छा, पान तो खाइये। आपने पान तो खाये ही नहीं।"

लाला साहबने पान उठा लिये और बोले—"तो जाता हूं।"

"हां ! हां ! जाइये। मैं रातमें आपको खबर दूंगा। रातमें तो आप दूकानपर आठ-नौ बजे तक मिलेंगे।"

"दस बजे तक मिलूंगा, उसके बाद घरपर !"

"अच्छी बात है।"

लाला साहब गये। इधर ठाकुर साहबने मुस्कराकर हुक्केका कश खींचा। "अरे ! यह तो खत्म हो गया। अरे भई, जरा हुक्का भर लाना।"

× × ×

एक घण्टे पश्चात् लाला साहबके मुनीमजी ठाकुर साहबके पास आये। ठाकुर साहबने पूछा—

"कहिये मुनीमजी, कैसे ?"

"लालाजीने भेजा था।" मुनीमजी बोले।

"कहो !"

मुनीमजीने एक बण्डल निकालकर रख दिया। ठाकुर साहब बोले—"यह क्या है ?"

"एक हजारके नोट हैं।"

"अरे ! लाला साहबने यह तकलीफ क्यों की।"

मुनीमजी दांत निकालकर बोले—"तकलीफकी कोई बात नहीं। लालाजीने कहा है कि ठाकुर साहब इसे कबूल करें।"

"कितने नोट हैं।"

"दस-दसके सौ नोट हैं।"

"कहीं दस्तखत-वस्तखत कराकर तो नहीं लाये हो ?" —ठाकुर साहबने मुस्कराकर कहा।

"अजी सरकार, आप भी क्या बातें करते हैं। हम लोग ऐसी दगाबाजीका काम नहीं करते। और फिर आपने कुछ मांगे थोड़े ही हैं—यह तो लालाजीने अपनी इच्छासे भेजे हैं। दस्तखत तो वहां कराये जाते हैं, जहां जोर-जुलुमसे लिये जाते हैं। यह तो हंसी-खुशीका सौदा है।"

"लालाजीसे कह देना कि उसको भी कुछ देने पड़ेंगे, तब वह मानेगा।"

"सो तो लालाजीने पहले ही कहा है कि और जो हुकुम हो, हाजिर किया जाय।"

"बस अधिक नहीं—पांच सौ और दे जाना।"

"बहुत अच्छा।"

थोड़ी ही देर बाद पांच सौ और आ गये। इस प्रकार ठाकुर साहबने जरा-सा चुटकुला छोड़कर बातकी बातमें डेढ़ हजार वसूल कर लिये। ठाकुर साहबने दो सौ रुपये तो कान्स्टेबलों और अपने दारोगाओंको बांट दिये, शेष तेरह सौ स्वयं डकार गये।

और जिस अभागेकी बदौलत यह रकम हाथ लगी, उसे इसका कुछ भी पता नहीं। उसका मुकदमा निश्चित समयपर पेश हुआ। उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और उसे छः महीनेकी सजा हुई। लाला बुलाकीदास बड़े प्रसन्न हुए कि ठाकुर साहबने उनकी इज्जत बचा ली। मुकदमा समाप्त हो जानेपर लाला साहबने दो सौका कपड़ा भी ठाकुर साहबकी भेंट किया।

(२)

ठाकुर साहब जब कभी शराबकी तरङ्गमें होते, तो अपने अन्तरङ्ग मित्रोंसे कहा करते कि—"मैं हवामेंसे पैसा निकालता हूं।" इसमें सन्देह नहीं कि ठाकुर साहब हवामेंसे पैसा निकालते थे; परन्तु फिर भी वह सुखी न थे। उनका घरेलू जीवन निराशापूर्ण था। उनकी पत्नी उनसे इसलिए रुष्ट और दुखी रहती थी कि वह वेश्या रखे हुए थे, और शराब पीते थे। जब तक ठाकुर साहब बाहर रहते थे, तब तक तो बड़े प्रसन्नचित्त रहते; परन्तु घरके अन्दर आते ही

उनकी प्रसन्नता लुप्त हो जाती थी। पत्नीका उदासीन व्यवहार, उसकी चढ़ी हुई भृकुटी और उसका स्नेहहीन वार्तालाप उनके उल्लास और उमङ्गपर तुषारपात कर देता था। वह जब कभी नोटोंके बण्डल लाकर पत्नीको देते और बड़े गर्व तथा हर्षके साथ कहते—"देखो, हम तुम्हारे लिए कितना रुपया कमाते हैं।" उस समय उनकी पत्नी उत्तर देती—"न जाने किस गरीबकी गर्दन काटकर यह रुपया लाये होगे। यह रुपया अपनी उस सगीको दो जाकर, वही इसे लेकर प्रसन्न होगी; मुझे तुम्हारा रुपया नहीं चाहिए।" पत्नीका यह उत्तर सुनकर ठाकुर साहब हैरान रह जाते। उनकी समझमें न आता कि कोई व्यक्ति रुपयेका भी तिरस्कार कर सकता है। उस समय पैसेको ही सब कुछ समझनेवाले ठाकुर साहब यह सोचने लगते—"इसके दिमागमें कुछ फितूर है।" ठाकुर साहब अपना रुपया बैङ्कमें जमा नहीं करते थे, क्योंकि इससे भण्डा फूटनेका भय था। पत्नीकी उदासीनताके कारण घरमें भी नहीं रखते थे—साथ ही यह भी खयाल था कि सौ दोस्त सौ दुश्मन; यदि कभी किसीने अफ़सरोंसे शिकायत कर दी और उन्होंने घरकी तलाशी ली, तो इतना रुपया निकलनेपर मामला गम्भीर हो जायगा। चोरके पैर कितने। दोषी अन्तःकरण आवश्यकतासे अधिक सतर्क रहता है। और बहुधा यह अनावश्यक सतर्कता ही उसके लिए घातक सिद्ध होती है। ठाकुर साहबके लिए रुपया कमाना जितना सरल था, उतना उसे रखना सरल नहीं था। वह हवासे रुपया निकाल सकते थे, पर इतनी बड़ी पृथ्वीपर उसे रखनेके लिए उन्हें ठौर न मिलता था। इस समय उनके पास सब मिलाकर सत्तर हजार रुपयेकी सम्पत्ति थी। दस हजारका पत्नीके पास जेवर था, दस हजारकी जमीन खरीद ली थी और पचास हजारके लगभग नक्द थे। अभी उनके रिटायर होनेमें पांच बरस बाकी थे। इन पांच बरसोंमें वह पूरे एक लाख कर लेना चाहते थे। परन्तु सबसे बड़ा प्रश्न जो उनके सामने था, वह यह था कि वह अपना नक्द रुपया रखें कहां। विश्वास उन्हें किसीका था नहीं। यद्यपि उनके एक बड़े भाई थे, जो ठेकेदारीका काम करते थे। यदि चाहते, तो उनके पास रख सकते थे; परन्तु उन्हें भाईका विश्वास नहीं था। यदि भाई साहब बेईमानी कर गये यदि उन्होंने बेईमानी न भी की और वह उनके (ठाकुर साहबके) रिटायर होनेके पहले ही चल बसे, उस दशामें यदि भाभी साहबा और भतीजेकी नीयत बिगड़ गयी, इत्यादि बातें सोचकर वह भाई साहबके पास भी रुपया जमा करनेका साहस नहीं कर सकते थे। इस प्रकार जितनी युक्तियां वह सोचते थे, उन सबकी खोपड़ी पर "यदि" सवार रहता था और यह कमबख्त 'यदि' ही सब मामला बिगाड़े हुए था। फिलहाल वह अपने सोनेके कमरेमें पलंगके सिरहानेवाली अलमारीमें अपने नोटोंका पुलिन्दा रखे हुए थे; परन्तु इससे उन्हें सदा बेचैनी-सी रहती थी, क्योंकि घरमें रुपया रखना वह खतरनाक समझते थे। भूमिमें भी नहीं गाड़ सकते थे, क्योंकि उन्हें थानेके क्वार्टरमें ही रहना पड़ता था और थानेके क्वार्टरकी भूमि पक्की होनेके कारण उसे खोद नहीं सकते थे। खोदनेसे सन्देह होगा। इस प्रकार रुपयेके पीछे ठाकुर साहबके प्राण सङ्कटमें थे। पैसा कमानेमें जितना उन्हें सुख मिलता था, खुशी होती थी, उसको रखनेमें उन्हें उतना ही भय तथा कष्ट था।

एक दिन आप अपनी वेश्या कमलाबाईके मकानपर मौजूद थे। शराबका दौर चल रहा था। सहसा कमलाबाई बोली—"वह तुफ़ैल, जिसकी तुमने निगरानी कटवायी है, बड़ा ऊधम मचाता है। एक दिन शराबके नशेमें यहां आ गया। अम्मांने उससे चले जानेको कहा, तो टर्राने लगा। अम्मां बोलीं—"जरा जबान संभालकर बात करो, यह इञ्चार्ज साहबकी जगह है।" इसपर मुआ तुम्हें गाली देकर बोला—"वह साला क्या कर सकता है, उसको तो मैं जब चाहूं, खरीद सकता हूं।" मुझे सुनकर ऐसी शरम लगी कि क्या कहूं। बड़ी मुश्किलसे दफ़ान हुआ। तुमने उसकी निगरानी कटवाकर अच्छा नहीं किया।"

ठाकुर साहब बोले—"अच्छा! उस सालेके इतने दिमाग हो गये। अबकी सालेको दो-चार बरसके लिए भिजवा दूं, तो अक्ल दुरुस्त हो जाय।"

"जरूर भिजवाओ। उसे तो जैसे किसीका डर ही नहीं है। मेरा तो कलेजा कांपता है—न जाने कब आ जाय। यहांवाले तो उससे थरथर कांपते हैं। वह आ जाता है, तो कोई चूं तक नहीं करता।"

"तुम घबराओ नहीं, उसका इन्तजाम हो जायगा।"

"वह तो यह भी कहता था कि इञ्चार्ज साहब मेरे नौकर हैं, मैं उन्हें दो सौ रुपये महीना देता हूं।"

शराबके नशेमें होते हुए भी ठाकुर साहबका मुख-मण्डल कुछ क्षणके लिए धुआं हो गया। झेंप मिटानेके लिए बोले—"उन्हीं दो सौ रुपयोंकी बदौलत बचा अभी तक बचे हुए हैं, वरना अभी तक न जाने कबके लद जाते।"

कमला मुंह बनाकर बोली—"ऐसा रुपया किस कामका। तभी तो मुएके इतने हौसले बढ़े हुए हैं।"

"अब सारे हौसले ठण्डे पड़ जायंगे।"

दूसरे दिन ठाकुर साहबने अपने हल्केकी एक चोरीके मामलेमें पकड़े गये दो आदमियोंको एकान्तमें बुलवाकर कहा—"देखो, तुम लोग अगर बचना चाहते हो, तो तुफैलका नाम लो कि वह तुम्हारा सरगना है और चोरीका माल वही लेता है।"

उनमेंसे एक घबराकर बोला—"अरे साहब! हम तुफैलसे दुश्मनी नहीं बांध सकते। हम खामखाह उसे क्यों फंसावें।"

"अरे कमबख्तो! तुम लोगोंकी सजा कम हो जायगी, मैं कोशिश तो यह करूंगा कि तुम लोग छूट जाओ; लेकिन अगर छूटे नहीं, तो हल्की सजा मिलेगी।"

"हुजूर, यह काम हमसे नहीं होगा। और कोई होता, तो हम कह देते; लेकिन तुफैल बड़ा बेढब आदमी है।"

इञ्चार्ज साहब कड़ककर बोले—"तुमको कहना पड़ेगा।"

"अब सरकार यह तो सरासर जबरदस्ती है।"

"हां जबरदस्ती ही समझो। बोलो, कहोगे?"

"तुफैलका नाम हम कभी न लेंगे सरकार!"

"अच्छी बात है।"

ठाकुर साहबने अपने नायबको बुलाकर कुछ क्षण तक उससे प्राइवेट बातें कीं। नायब साहबने उन दोनोंको अलग ले जाकर खूब पिटवाया। जब पीटते-पीटते दोनों बेहोश कर दिये गये—उसके बाद होश आनेपर उन्हें पुनः इञ्चार्ज साहबके सामने पेश किया। ठाकुर साहबने पूछा—"अब कहोगे?"

दोनोंमें बोलनेका दम नहीं था, केवल सिर हिलाकर दोनोंने स्वीकार किया।

उन दोनोंके बयानपर तुफैलके नाम वारण्ट जारी हुआ और वह गिरफ्तार कर लिया गया। तुफैल हवालातमें बन्द बैठा कह रहा था—"मेरे साथ यह दगाबाजी! जरा छूट पाऊं, तो बताऊंगा।" एक सप्ताह पश्चात् तुफैल जमानतपर छोड़ दिया गया। ठाकुर साहबने बहुत प्रयत्न किया कि जमानत स्वीकार न हो; परन्तु वकीलोंने जमानत करवा ही ली।

× × ×

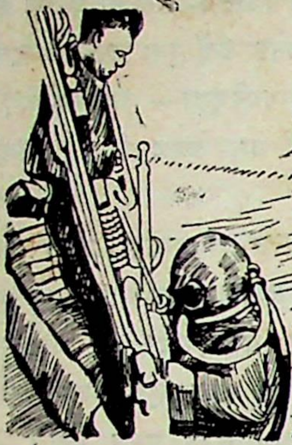
एक दिन शामको इञ्चार्ज साहब कचहरीसे लौट रहे थे। रास्तेमें एक स्थान ऐसा पड़ा, जहां सन्नाटा था—केवल चार-छः आदमी आ-जा रहे थे। सहसा एक दरख्तकी आड़से निकलकर तुफैल बीच रास्तेमें आ गया। ठाकुर साहब उसे देखकर बोले—"क्या है?"

तुफैलने कोई उत्तर न दिया—जेबसे पिस्तौल निकालकर धांय! धांय! दो फायर किये। ठाकुर साहब लड़खड़ाकर बाइसिकिल समेत गिरे। तुफैलने उनकी बाइसिकिल ली और उसपर सवार होकर आनन-फानन निकल गया। तीन आदमी उधरसे जा रहे थे, उन्होंने दौड़कर ठाकुर साहबको उठाया।

अस्पताल पहुंचते-पहुंचते ठाकुर साहबकी मृत्यु हो गयी।

इस प्रकार पैसेके उपासकने पैसेके चरणोंमें अपने प्राणोंकी भेंट चढ़ा दी।





सुन्दरियों के हारों के ये चमकदार मोती

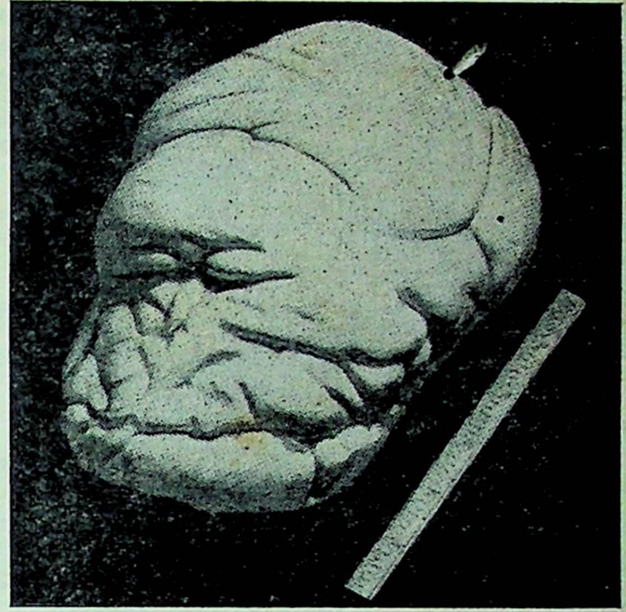
मोतीकी गिनती सर्वश्रेष्ठ पांच रत्नोंमें की गयी है। अत्यन्त प्राचीन कालमें भी भारतवासियोंको मोती, उसके मूल्य और उसके गुणोंका पता था। मोतीकी भस्मके अलावा उसके संयोगकी कितनी ही गुणकारी औषधियां तैयार होती हैं। ह्वेनच्वांगके वर्णनके अनुसार महाराज हर्षके समयमें (सन् ६०६ ईस्वीसे ६४८ ईस्वी तक) सोने और चांदीके सिक्कोंके अलावा कौड़ियों और छोटे-छोटे मोतियोंको भी सिक्कोंकी तरह काममें लाते थे। प्राचीन कालमें मोतियोंका दान देनेके रिवाजका उल्लेख कितने ही ग्रन्थोंमें मिलता है। कोई ऐसा आनन्दका अवसर नहीं होता था, जब कवि मोतियोंको बांटने और दान देनेकी कल्पना न कर सकता हो। भारतवासी स्त्रियां और पुरुष, मोतियोंके आभूषण तो पहनते ही थे, विशेष समारोहके अवसरोंपर अपने घरोंके द्वारोंको भी मोतियोंकी बन्दनवारसे सजाते थे। चन्द बरदाईके साथ भेष छिपाकर गये हुए महाराज पृथिवीराजने कन्नौजमें जयचन्दके बागमें एक तालाबके किनारे बैठे-बैठे मछलियोंको अपने गलेके हारके मोतियोंको चुगा दिया था। आज भी कितनी ही रियासतोंमें जब कोई नरेश विशेष अवसरोंपर हाथीपर निकलता है, तब मोतियोंकी झालरवाली झूल देखनेमें आती है, उससे सवारीके हाथीको सजाया जाता है। मोतियोंने कविकी कल्पनाको भी खूब आकर्षित किया है। दांतोंके सौन्दर्यकी पराकाष्ठा कवियोंको मोतियोंकी लड़ीमें प्रतीत हुई है। सन्त कबीरने "प्रभुजी हम मोती तुम धागा" लिखकर जो सम्बन्ध स्थापित किया है, वह वेदान्तका एक श्रेष्ठ तत्त्व है और रहीम खानखानाने तो मानव-जीवनको मोतीकी तुलनामें लाकर और साथ ही 'रहिमन पानी राखिये' लिखकर लोगोंके सामने एक सुन्दर तथ्य रखा है। इस देशमें खम्भातकी खाड़ी और मनारकी खाड़ीमें मोती पाये जाते हैं। मोतीके प्रति हमारा अनुराग इतना अधिक है कि उसपर कितने ही माता-पिता अपने बच्चोंका नाम ही रख लेते हैं। हमारे इस स्वाभाविक आकर्षणसे कितने ही देश लाभ उठा रहे हैं—नकली मोती भेजकर चांदी बटोर रहे हैं। इस देशके व्यापारमें असली और नकली मोतियोंके व्यापारका भी बहुत बड़ा भाग है।

मोती छोटे-बड़े सब तरहके होते हैं। छोटा मोती राई या सरसोंके बराबर या उससे भी छोटा खसखसके दानेके बराबर हो सकता है और बड़ा मोती मटर और चनेके दानेके बराबर और अक्सर इससे भी बड़ा, कभी-कभी लड़कोंके खेलनेकी गोलियोंके बराबर और किसी-किसी सूरतमें इससे भी बड़ा होता है। मोतीका आकार साधारणतः गोल होता है; परन्तु सभी मोती बिलकुल सुडौल नहीं होते। किसी मालामें यदि मोती बिलकुल सुडौल हों, तो उसका मूल्य अन्य विशेषताओंके अतिरिक्त केवल इसी बातके कारण कई गुना हो जायगा। मोतियोंके रङ्गमें भी बहुत भिन्नता पायी जाती है। साधारण श्वेत रङ्गसे लगाकर कुछ मटमैला, गुलाबी और पीला तक सभी रङ्ग होते हैं। किसी-किसीकी झांई कुछ काली-सी होती है। सफेद, गुलाबी या पीली झांईवाले मोती श्रेष्ठ माने जाते हैं; परन्तु उनकी कीमत बहुत कुछ पानीकी होती है। समान आकार-प्रकारके दो मोतियोंके पानीमें यदि अन्तर हो और साथ ही रङ्गकी झलकमें भी,

तो उनकी कीमतमें भी बहुत अन्तर होगा। मोतीका मूल्य उसके पानी, रङ्ग, आकार और सुडौलपनपर निर्भर है।

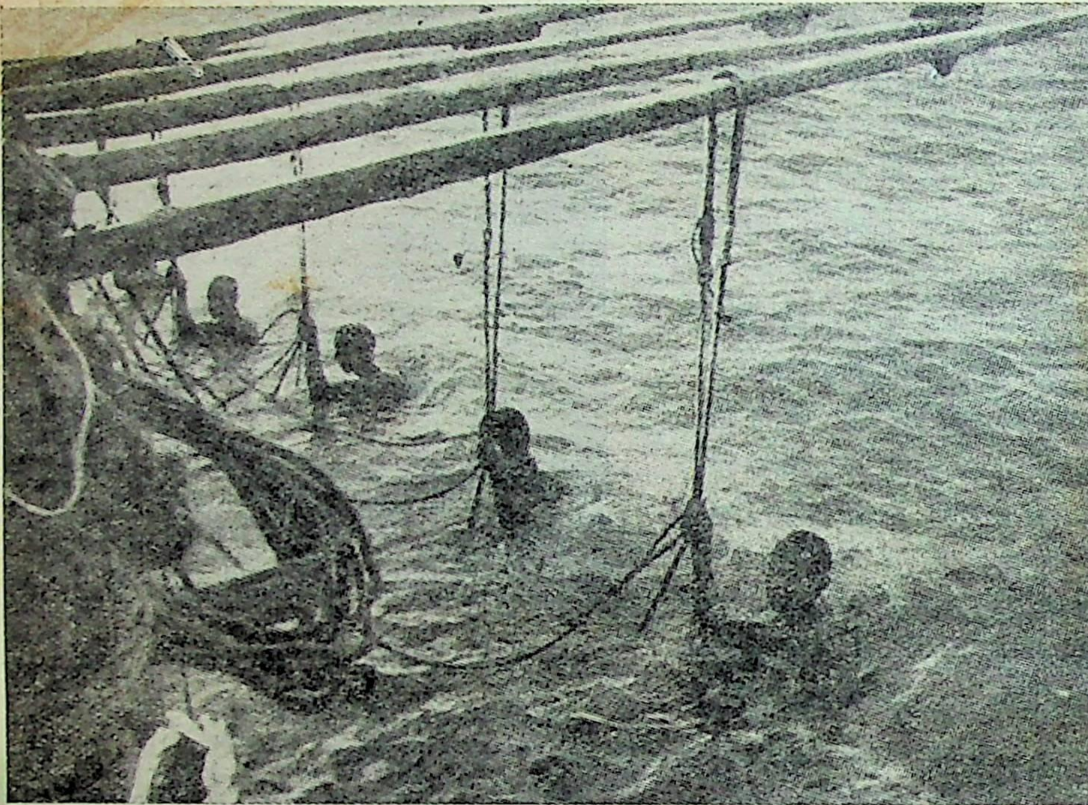
क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि संसारमें बड़ेसे बड़ा मोती कितना बड़ा होगा और उसका वजन कितना होगा?

कोई माने या न माने, परन्तु आज जो संसारका सबसे बड़ा मोती माना जाता है, वह ९ इञ्च लम्बा है और ५॥ इञ्च चौड़ा। उसकी ऊंचाई ६ इञ्च और वजन लगभग १४ पौण्ड है। देखनेमें यह कुछ ऊबड़-खाबड़-सा मनुष्यके सिरसे बहुत कुछ मिलता है। इसका रङ्ग और आकार कुछ ऐसा है कि जौहरियोंके वह किसी कामका नहीं है; परन्तु यदि यह बिलकुल सुडौल होता, तो इसका मूल्य ३० लाख डालर, आजकी दरसे लगभग एक करोड़ रुपये होता। यह मोती आजकल अमेरिकामें है।



संसारका सबसे बड़ा मोती लम्बाई ९ इञ्च, चौड़ाई ५॥ इञ्च ऊंचाई ६ इञ्च और वजन लगभग १४ पौण्ड।

इस अद्भुत मोतीका इतिहास बड़ा ही मनोरञ्जक है। १९३४ की घटना है। प्रशान्त महासागरवर्ती फिलीपाइन द्वीप-समूहके मनिला स्थानसे विलवर्न डोवेल कोब नामक व्यक्ति रवाना हुआ। कोबको नयी-नयी खोज करने और नारियलकी गिरीके गोलोंका व्यापार करनेका बड़ा शौक था। जिस नावमें वे रवाना हुए, वह भी उन्हींकी बनायी हुई थी। कई सौ मील जानेके बाद वोली गे नामक स्थानके पास उन्होंने इस मोतीकी चर्चा सुनी। उन्हें पता चला कि फिलीपाइन द्वीपके पश्चिममें सुलू समुद्रके पश्चिमी भागमें पालावान नामक एक ३०० मील लम्बा पतला-सा टापू है। उसमें अभी तक जङ्गली जातियां रहती हैं, जिनके हथियारोंमें तीर-कमान मुख्य हैं। इनके तीर विषके बुझे होते हैं। जङ्गलोंमें काले सर्पोंकी भरमार है। मलय डाकुओंका जोर है। आस-पासके टापुओंसे जो अन्य लोग नावोंपर निकलते हैं, उन्हें मलय जातिके समुद्री लुटेरे लूट लिया करते हैं। पालावान टापूमें एक वनस्पति उगती है, जो अन्यत्र नहीं पायी जाती। इसके रसमें विष होता है और इसीमें बुझाकर तीरोंको जहरीला बना लिया जाता है। मलय जातिके निवासी यह विष प्राप्त करनेके लिए दूर-दूरसे पालावान टापूमें पहुंचते हैं। कोबको बतलाया गया कि कई साल पहलेकी बात है, बोर्नियोमें रहनेवाले 'डायक' जातिके ५-६ गोताखोर एक दिन मछलियां पकड़ रहे थे। संयोगवश उनमेंसे एकने ऐसा गोता लगाया कि फिर ऊपर नहीं आया। बड़ी चिन्ता हुई। गोताखोरोंमें बड़ा भय फैल गया। वैसा इधर पहले कभी न हुआ था। यह पता लगानेका प्रयत्न होनेपर कि आखिर वह गोताखोर कहां गया, उसे क्या हुआ, बहुत कोशिश करनेके बाद मालूम हुआ कि जिस समय गोताखोर छिछले समुद्रकी तहमें मछलियां पकड़ रहा था, ढाई सौ पौण्डसे भी अधिक वजनकी एक सीपने अभागे गोताखोरके पैरको दबा लिया और वहीं जम गयी—मानो गोताखोरका पैर किसीने फौलादी शिकञ्जेमें कस दिया हो। बहुत कोशिश करनेपर भी वह सीपके नीचेसे अपना पैर नहीं निकाल सका और मर गया। गोताखोरको बाहर निकालनेके लिए सीपको उठाना आवश्यक था। जब यह हुआ और सीपको धरातलपर लाया गया, तो उसमेंसे यह विशालाकार मोती निकला। इसका आकार और वजन पहले ही बतलाया जा चुका है। इस मोतीके एक ओर कितनी ही रेखायें हैं। इस ओर वह कुछ ऊंचा-नीचा भी है। डायक जातिके लोग मुसलमान हैं, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि वह मोती अल्लाहके चेहरेका प्रतीक है। पालावान टापूके इस क्षेत्रमें पङ्गलिमा पीसी सब जातियोंके सरदार थे, अतः यह मोती भी उन्हींके पास पहुंच गया।



गोता लगानेके लिये तैयार।

मोतीसे पहले जिस वेरेस फोर्ड होम नामक मोतीको संसारका सबसे बड़ा मोती होनेका गौरव प्राप्त था, उसका वजन १८०० ग्राम है, जो लगभग ६। पौण्डके बराबर होता है। संसारमें बहुमूल्य मोतियोंके जो आभूषण आज दिन हैं, उनका कोई भी मोती कोबके उस विशाल १४ पौण्डके मोतीका ७० वां भाग भी नहीं है और इस तरहके किसी भी मोतीका मूल्य ४५ हजार डालर अर्थात् लगभग १ लाख ५० हजार रुपयेसे ज्यादा नहीं है। कोबके विशाल मोतीके सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंके मनमें कितने ही प्रश्न उठते हैं। यह मोती इतना बड़ा कैसे हो गया? आखिर इसे बननेमें कितना समय लगा होगा।

पहले प्रश्नके उत्तरमें प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० हिलारियो ए० एक्सेजने यह मत प्रकट किया है कि मालूम होता है, कभी समुद्रकी लहरोंके जोरसे कोई प्रवाल-कीट अपने स्थानसे छूट गया और यह भीमकाय सीपके भीतर पड़कर अन्तमें विशाल आकारका मोती बन गया। मोती भी तो सीपमें बालूका कोई कण पहुंच जानेसे ही बनता है। सीपके भीतर जब कोई बालू-कण पहुंच जाता है, तब वह उसे गड़ता है। सीप इस बालू-कणपर एक प्रकारका चमकीला पदार्थ, जिसे सीपमें भीतरकी ओर देखा जा सकता है, चढ़ाती रहती है और यही कालान्तरमें मोती हो जाता है। कोबके विशाल मोतीका निर्माण भी इसी तरह हुआ—प्रवाल-कीटपर सीपने अपना वह चमकीला पदार्थ चढ़ाना आरम्भ

इस यात्राके तीन साल बाद कोबने दूसरी बार पालावान टापू तक यात्रा की। बोलीगे स्थानमें उन्होंने सुना कि पङ्गलिमा पीसीका लड़का बीमार है, मलेरियाका शिकार हो रहा है। उसकी जिन्दगी बचानेके लिए उसे कुनैन दी गयी थी; परन्तु कुछ नहीं हुआ। कोबके पास मलेरियाकी अचूक दवा आट ब्राइन थी। उन्होंने बूढ़े पङ्गलिमाको अपनी सेवायें अर्पित कीं और उसने भी लड़केकी चिकित्सा करनेके लिए कोबको पूरी स्वतन्त्रता दे दी। कोबकी औषधिने लड़केपर जादू जैसा असर किया और वह कुछ दिनोंमें चङ्गा हो गया। पङ्गलिमा पीसीको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई और जब कोब वहांसे रवाना होने लगा, उसने विदाईके रूपमें वह विशाल मोती दे दिया। पङ्गलिमाने कहा कि उसने लड़केके आराम हो जानेपर वह मोती देनेका अपने मनमें सङ्कल्प कर लिया था।

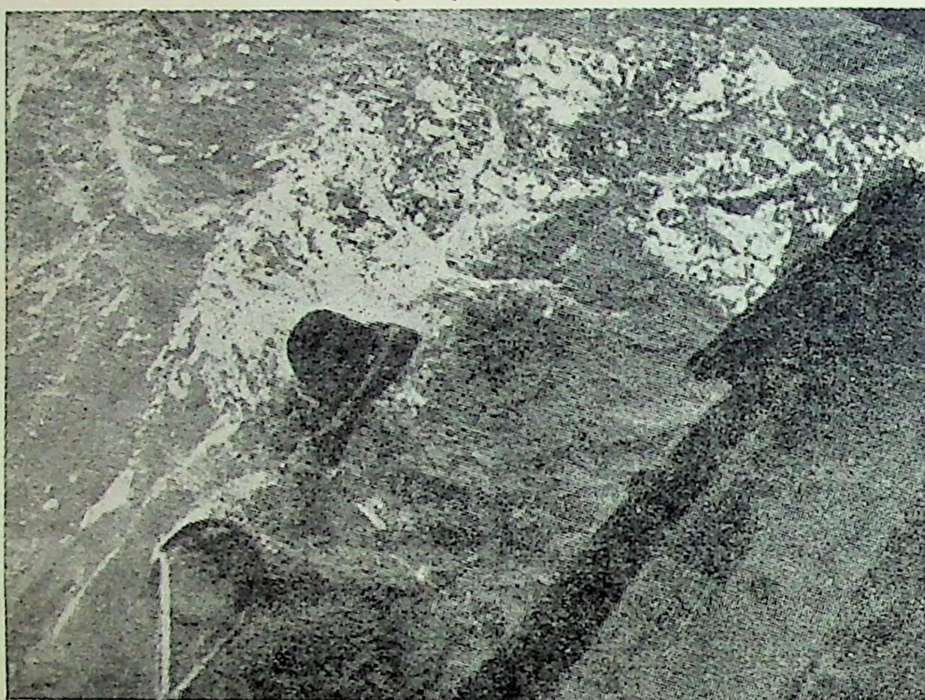
पालावानसे यह मोती १९३७ के अन्तमें कोबके साथ पहले मनिला और बादमें वहांसे अमेरिका गया। उसके आकार और वजनसे वैज्ञानिकोंको बड़ा आश्चर्य हो रहा है। इस

कर दिया और कालान्तरमें वह भी मोती बन गया। सीपका आकार यद्यपि बहुत बड़ा था, तथापि मोती इतना बड़ा था कि सीपके दोनों ढकने ठीक तरहसे बन्द नहीं हो पाते थे। इतना बड़ा मोती बननेमें कितना समय लगा होगा, इस प्रश्नका उत्तर निश्चित रूपसे कुछ नहीं दिया जा सकता, फिर भी एक विशेषज्ञका अनुमान है कि इसमें लगभग ६०० वर्ष लग गये होंगे।



सङ्केत पाकर गोताखोरोंको खींचा जा रहा है।

यहां तक एक अद्वितीय मोतीके सम्बन्धमें हुआ। अन्य मोतियोंको जिस तरह समुद्र-गर्भमेंसे निकालते हैं, उसका विवरण भी कम मनोरञ्जक नहीं है। मोती साधारणतः छिछली खाड़ियोंमें पाये जाते हैं। स्वदेशके पश्चिममें खम्भातकी और दक्षिणमें मनारकी खाड़ी अपने मोतियोंके लिए विख्यात है। परन्तु इधर कई सालसे मोतियोंका निकालना बन्द है; क्योंकि पहले कई वर्ष तक लगातार मोती निकाले जानेसे भरी हुई सीपोंका तोड़ा पड़ गया, इसीलिए यह ठीक समझा गया कि कुछ वर्षों तक मोतियोंका निकालना ही स्थगित रखा जाय। मोतियोंका निकालना तो बन्द है; परन्तु विदेशोंसे मोतियोंका आना जारी है और १९३८-३९ में मोती और अन्य रत्न मिलाकर १ करोड़ १९ लाख रुपयेके आये थे। इससे पूर्व वर्षमें इस आयातका मूल्य १ करोड़ २४ लाख रुपये था। जो हो, इधर जब मोतियोंका निकालना बन्द है, मोतियोंकी खेतीका प्रयोग किया जा रहा है। मोतियोंकी खेतीके नामसे लोगोंको आश्चर्य होना स्वाभाविक है। 'खेतो' से यह नहीं समझना चाहिए कि इस विज्ञान-युगमें मोती भी पेड़ोंमें लगने लगे हैं और वैसा कोई पेड़ लगाकर यह देखा जा रहा है कि मोती फलते हैं या नहीं। बात असलमें यह है कि सीप और शङ्ख, दोनोंका भीतरी भाग देखिये, उसमें कुछ अपने ढङ्गकी चमक होती है। १९३८-३९ में इस देशमें ३६३९६० शङ्ख निकाले गये, जिनसे सरकारको ८७३५० रुपयेकी आय हुई। सरकारकी आय-की दृष्टिसे शङ्ख और मोती दोनों ही अच्छे साधन हैं और इन दोनोंके सम्बन्धमें क्रुशादाई टापूमें प्रयोग हो रहे हैं। प्रश्न यह है कि शङ्खकी वृद्धि किस हिसाबसे होती है, मृत्युके सम्बन्धमें साधारण नियम क्या है और उनके स्थानान्तरमें चले जानेके लिए प्रकृतिका कौन-सा नियम काम करता है। इन सब बातोंके विषयमें कोई नियम स्थिर करनेके लिए १९३१ से अब तक ३२१६ शङ्खों-को पहले पकड़ा और बादमें निशान लगाकर समुद्रमें छोड़ा जा चुका है। मोतियोंके सम्बन्धमें प्रश्न यह है कि क्या उनकी खेती हो सकती है? क्या उन्हें भी सीप पालकर प्राप्त किया जा सकता है? जापानमें सीप पालकर नकली मोती प्राप्त करनेके प्रयोग सफलतापूर्वक किये गये हैं। इस देशमें १९३३ से क्रुशादाई टापूमें मोतियों सम्बन्धी इन सम्भावनाओंके विषयमें प्रयोग हो रहा है। यहां सीपोंको अलग एक स्थानमें रखा गया है। पहले इस स्थानमें कई सौ सीपों तक ही प्रयोग सीमित था; परन्तु १९३८-३९ में सीपोंका एक विशाल भण्डार मालूम हो



फिर समुद्रकी सतहपर—जिस टोकरीमें सीपोंको भर लाते हैं, उसे भी देखिये।

गया और प्रयोगका स्थान बढ़ाकर एक क्षेत्रके रूपमें बदल दिया गया है। इस क्षेत्रमें ६ साल तककी सीपें हैं और यह आशा की जाती है कि जापानकी तरह इस देशमें भी बनावटी मोती प्राप्त करनेके लिए सीपोंका उपयोग किया जा सकेगा।

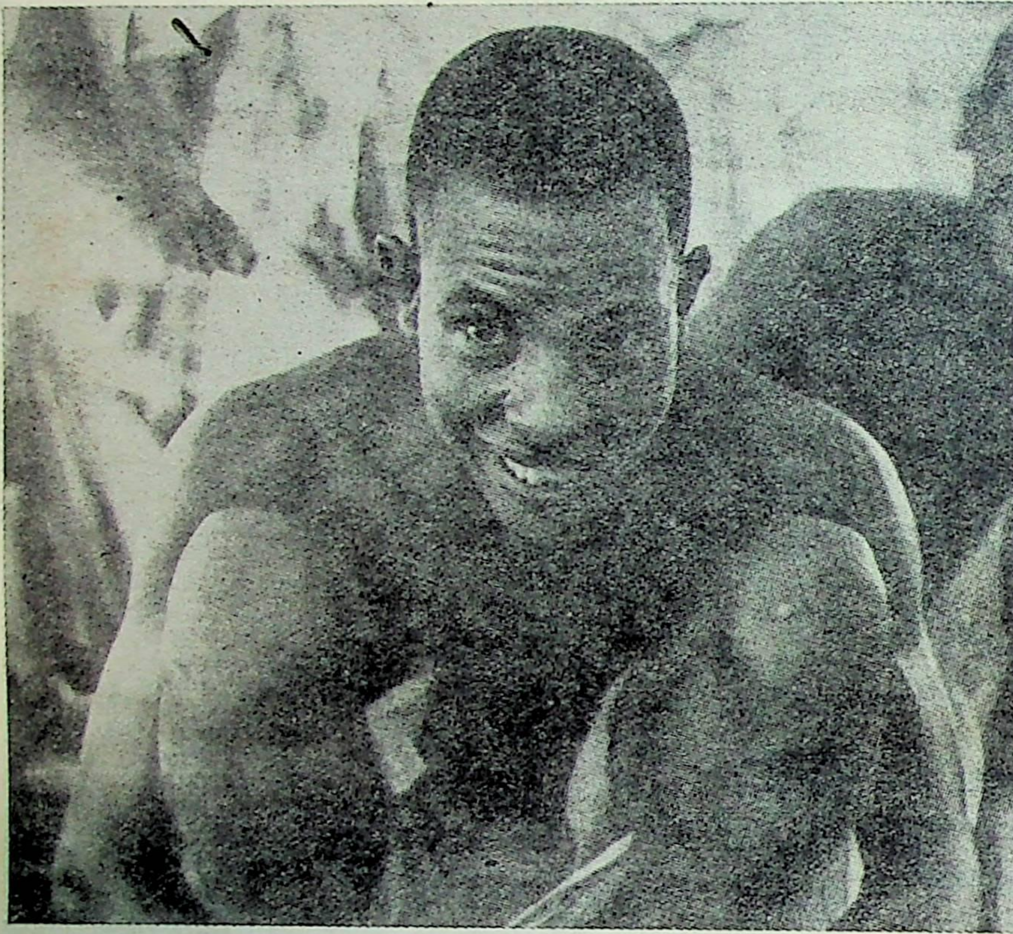
संसारके जिन अन्य हिस्सोंमें मोती पाये जाते हैं, उनमें हमारे समीप हैं फारिसकी खाड़ी और लाल सागर। फारिसकी खाड़ीमें मोतियोंके लिए सबसे अधिक प्रसिद्ध स्थान बहरीनका टापू है। यह टापू बहुत ही छोटा है और इसके आस-पास लगभग चार मील तक समुद्र इतना छिछला है कि जहाज और स्टीमरकी तो बात ही क्या है, नावें भी नहीं चल सकतीं। फलतः इस छिछले समुद्रमें चार मील तक माल ले जाने और ले आनेका काम खच्चरों-से लिया जाता है। इस टापूमें साधारणतः सालमें ६५-७० लाख रुपयेके मोती निकाले जाते हैं। मोती निकालनेका तरीका भी बड़ा ही मनोरञ्जक है। गर्मीके मौसममें लगभग ३ महीने तक मोती निकाले जाते हैं और इस मौसममें फारिसकी खाड़ीमें अरबके समुद्र-तटपर खासी चहल-पहल रहती है। हजारों आदमी मोती निकालनेके काममें लग जाते हैं। ये समुद्रमें गोता लगाकर लगभग २० गज नीचे जाते हैं और अपने साथ जो टोकरी ले जाते हैं, उसमें सीपोंको जमा करते हैं। जल्दीमें वे जितनी सीपें टोकरीमें जमा कर सकते हैं, करते हैं और बादमें तुरन्त ही उस रस्सीको झटका दे देते हैं, जिसके सहारे वे नीचे आये थे और जिसे वे हमेशा ही अपने एक साथसे पकड़े रहते हैं। रस्सीसे झटकेका सङ्केत पाते ही नौकाके ऊपरका आदमी बड़ी तेजीसे गोताखोरको ऊपर खींच लेता है, क्योंकि वह जानता है कि उसकी शीघ्रतापर गोताखोरका जीवन निर्भर है। ऊपर आकर गोताखोर सांस लेता है और फिर गोता लगा लेता है। इस तरह वह आध घण्टेमें १० बार गोता लगाता है और इसके बाद आध घण्टे तक उसकी छुट्टी रहती है। इस छुट्टीके समयमें दूसरे गोताखोर उसी तरह गोता लगाते हैं। आध घण्टे तक विश्राम करनेके बाद फिर पहली पालीके गोताखोरोंका नम्बर आध घण्टेके लिए आता है और इस आध घण्टे तक दूसरी पालीवाले गोताखोर विश्राम करते हैं। इसी तरह आधे-आधे घण्टे काम करनेवाली दो पालियोंसे प्रतिदिन १६ घण्टे काम होता है और इन १६ घण्टोंमें प्रत्येक गोताखोरको १६० बार गोता लगाकर समुद्रमें नीचे जाना पड़ता है। किसी एक पालीके गोताखोर जब अपना काम करते रहते हैं, उनके गोतोंकी गिनती रखनेके लिए एक अजीब तरीका काममें लाया जाता है। नावमें दाहिने-बायें मोटे-मोटे कई डांड बंधे होते हैं। इन डांडोंमें बंधी हुई जिस रस्सीके सहारे गोताखोर नीचे उतरते हैं या जिसे पकड़ कर वे ऊपर आते हैं, उसीके पास एक डोरीमें पिरोये हुए सींगके दस गोल टुकड़े रहते हैं। कोई गोताखोर जब नीचेसे ऊपर आता है, एक टुकड़ेको बायीं ओर

खसका दिया जाता है। गोताखोरोंके १६ घण्टे काम करनेमें प्रकृति भी कुछ सहायता करती है। गर्मीमें वैसे भी दिन लम्बे होते हैं और सूर्य निकलनेसे पहले काम आरम्भ हो जानेसे सन्ध्या होते-होते दिन-भरका काम पूरा करते कोई कठिनाई नहीं होती। फिर भी १६ घण्टे तो १६ घण्टे ही हैं और दिन-भर काम करनेसे गोताखोर इतने थक जाते हैं कि खाना खानेके बाद वे गहरी नींदमें मुर्देकी तरह पड़ जाते हैं। खाना वे एक ही समय खाते हैं और वह भी शामको काम पूरा कर लेनेके बाद। खाली पेट रहनेसे समुद्रके पानीका दबाव आसानीसे बर्दाश्त किया जा सकता है।

नाव जैसी छोटी-बड़ी होती है, उसके अनुसार उसपर १२-१४ गोताखोरोंसे लगाकर ५०-६० गोताखोर तक रहते हैं। जितने गोताखोर होते हैं, उतने ही रस्सी खींचनेवाले भी रहते हैं। इनके अलावा इन सबका सरदार भी होता है। सरदार प्रायः नावका मालिक होता है और उसके आरामके लिए दो-एक अन्य नौकर-चाकर भी रहते हैं। गोताखोरों और रस्सी खींचनेवालोंको कोई तनखाह नहीं दी जाती। तीन महीनेके मौसममें वे जितने रुपयोंके मोती निकालते हैं, उनमें सबका हिस्सा निश्चित रहता है। अगर किसी नावपर ५० गोताखोर और ५० रस्सी खींचनेवाले काम करते हों और वे कामके तीन महीनोंमें १५ हजार रुपये पैदा करें, तो इनमेंसे ३००० रुपये नावके मालिकको मिलेंगे और ७०००) गोताखोरोंको तथा ५०००) रस्सी खींचनेवालोंको—अगर किसी तरहका धोखा न दिया जाय। बंटवारा होनेपर प्रत्येक गोताखोरके हिस्सेमें १४०) और प्रत्येक रस्सी खींचनेवालेके हिस्सेमें १००) आयेंगे। इससे समुद्रके भीतरसे मोती जैसा रत्न निकालनेवाले श्रमजीवियोंकी आर्थिक स्थितिका अनुमान लगाया जा सकता है। उन्हें तीन महीने काम करनेके बाद बाकी समयमें बेकार रहना पड़ता है और इन तीन महीनोंकी कमाईपर ही उन्हें बाकी दिनोंमें खाने-पीनेके लिए निर्भर रहना पड़ता है। आमदनीके बंटवारेका यह हिसाब सैकड़ों वर्षसे चला आ रहा है। वेतन-प्रणाली नहीं होनेके कारण उनमें कम और ज्यादाका कोई प्रश्न ही नहीं उठता और आर्थिक अवस्था शोचनीय रहनेपर भी वे सन्तोषके साथ रहते हैं—इस आशामें जीते रहते हैं कि अगले मौसममें हो सकता है, कुछ अच्छे मोती हाथ लगें और कुछ ज्यादा रकम हाथ आये। साधारणतः १०० सीपोंका पेट चीरनेके बाद एक अच्छा मोती निकलता है और कभी-कभी तो, जब बिलकुल बच्चे पकड़में आ जाते हैं, एक भी मोती नहीं निकलता और दिनका दिन बरबाद चला जाता है।



सीपोंको अलग कर मोती निकाले जा रहे हैं।



अच्छा मोती हाथ लग जानेके बाद।

है कि सीपोंके उस ढेरमें कोई बहुमूल्य मोती नहीं होगा। सीपोंके दोनों ढक्कन अलग कर मोती निकालनेवाले अपना काम बड़ी मुस्तैदीसे करते हैं। यह काम रोज सवेरे किया जाता है। इस कामके लिए यही समय शुभ माना जाता है। मोती निकाल लेनेके बाद सीपोंको यों ही नावमें डाल दिया जाता है, उनकी परवा कोई नहीं करता।

लोहेके एक सांचेमें पैर डालकर, जिससे वह जल्दीसे जल्दी २० गज नीचे पहुंच जाय, समुद्रमें किसी गोताखोरके गोता लगानेकी कल्पना कीजिये

फारिसकी खाड़ीमें लगभग ८००० गोताखोर काम करते हैं। सूर्य निकलनेसे बहुत पहले ही चहल-पहल आरम्भ हो जाती है। गोताखोर, रस्सी खींचनेवाले और नावोंके मालिक सभी मुसलमान हैं। अपना काम आरम्भ करनेसे पहले ये लोग नमाज पढ़ते हैं। उसके बाद पहली पालीके गोताखोर अपना कार्य आरम्भ कर देते हैं। उन्हें कोई देखने नहीं जाता। वे जब समुद्रमें गोता लगाते और रस्सी खींचनेवाले उनका सङ्केत पानेकी प्रतीक्षा करते हैं, उसी समय नावके अगले भागमें पहले दिन निकाली हुई सीपें ज़मा की जाती हैं। दूसरी पालीके रस्सी खींचनेवाले तीन-चार आदमी तेज चाकू हाथमें लेकर इन सीपोंके एक ओर बैठते हैं। नावका मालिक और अन्य लोग, जिनका काम आध घण्टा पीछे आरम्भ होगा, बड़ी उत्सुकतासे देखते हैं कि सीपोंमेंसे कोई मोती कैसा निकलता है। उत्सुकता होनी स्वाभाविक ही है, क्योंकि कौन कह सकता

और यह भी सोचिये कि वहां वह किस तरह समुद्री शेरके रूपमें मृत्युका सामना करनेके लिए तैयार होकर जाता है और प्रत्येक बार गोता लगानेके समय यह आशङ्का रहती है कि वह लौटकर ऊपर आये कि न आये। दिनमें जिस समय गोताखोर भीतर समुद्रमें गोता लगाते रहते हैं, उनकी मातायें और स्त्रियां चिन्तासे समुद्रके किनारे खड़ी रहती हैं और अनन्त जलराशिकी ओर आंखें फाड़-फाड़कर देखा करती हैं। समुद्री शेरके अलावा कई तरहकी मछलियां भी होती हैं, जिनमेंसे कुछ तो विषैली होती हैं और कुछके किनारे तलवारकी धारकी तरह तेज होते हैं। गोताखोर इनसे रक्षा करनेके लिए कोई अस्त्र लेकर नहीं जाता। वह प्रायः नङ्गा ही, केवल एक लुङ्गी पहनकर, गोता लगाता है। यदि वह कोई कपड़ा पहनता भी है, तो बहुत ही साधारण सूतका। अलबत्ता, नाकमें वह सींगका एक खोल पहनता है, जो

डोरेके सहारे बंधा रहता है। इन डोरोंके सिरे पीछेकी ओर रहते हैं। गोताखोरोंमें आपत्ति-निवारणके लिए गण्डा और तावीजका भी चलन है। अवकाशके समयमें वे सब एकत्र होकर खूब नाचते-गाते और मनोविनोद करते हैं। उनके गानोंमें प्रेम-कथा होती है।

गोताखोर पुश्तैनी होते हैं। उनकी आर्थिक अवस्था प्रायः शोचनीय रहती है। अक्सर उन्हें नावके मालिक से कर्ज लेकर काम चलाना पड़ता है। इस कर्जकी ब्याज-दर ५०-६० प्रतिशत तक होती है। नावके मालिक हमेशा ही गोताखोरोंको कर्ज देनेके लिए तैयार रहते हैं; क्योंकि कर्ज देनेका परिणाम यह होता है कि मोती निकालनेके मौसममें गोताखोर उसीकी नावपर काम करे और अपनी कमाईमेंसे कर्ज पटाये। असलमें यह कर्ज पटनेकी कभी नौबत नहीं आती। कर्ज पटानेके बाद गोताखोरके पास या तो कुछ रहता ही नहीं, अथवा वह इतना नहीं होता कि साल-के बाकी ९ महीनोंमें काम चलता रह सके। इसीलिए इधर कर्ज पटा नहीं कि उधर नये कर्जका बोझ सिरपर चढ़ जाता है। कोई गोताखोर अगर कर्ज न भी लेना चाहे, तो नावके मालिक उसे ले लेनेके लिए प्रोत्साहन देते हैं, उसका विवाह न हुआ हो, तो उसे विवाह कर लेनेके लिए रुपया देते हैं। कर्जकी रकम चुकाये जानेके लिए नावके मालिक उतनी इच्छा नहीं प्रकट करते, जितनी इस बातके लिए कि कर्जदार गोताखोर उन्हींके यहां काम करे। इसमें उनका दुहरा लाभ होता है। स्वयं तो वह जीवन-भर मालिकके यहां अपनी कमाई कर्ज पटानेके नामपर डालता ही रहता है, यही काम करनेके लिए उसके लड़के भी पैदा होने लगते हैं और बड़े हो जानेपर अपने बापका स्थान लेकर ये भी जीवन-भर कर्ज पटाते रहते हैं। इसी शोचनीय अवस्थामें गोता-खोरोंका जीवन यों ही बीत जाता है।

यहां गोताखोरोंकी जिस कर्जदारीका उल्लेख किया गया है, उसके सम्बन्धमें इधर बहरीनमें कुछ सुधार हुआ है। वहांके शेखने यह कानून बना दिया है कि गोताखोरका कर्ज उसकी सन्तानको नहीं देना पड़ेगा और ब्याज भी १२ प्रतिशतसे ज्यादा नहीं दिया जायगा। यह कानून बन जानेपर भी गोताखोरोंको अपनी कमाईका पूरा लाभ नहीं मिलने पाता, क्योंकि अक्सर नावके मालिक मोतियोंका दाम बाजारसे कम आंकते हैं और हिसाब-किताब जोड़नेमें भी कुछ न कुछ हड़प ही लेते हैं।

गोताखोरोंमें कई व्यक्ति अपनी कमाईसे लखपती और करोड़पती भी हो गये हैं। ऐसा ही एक व्यक्ति है हिलाल-अल मुतेरी। मुतेरी उस जातिका नाम है, जिसमें हिलाल-ने जन्म लिया है। अमेरिकाके प्रसिद्ध धनकुबेर किसी समय अखबार बेचा करते थे और बहू छोकरा हिलाल पशुओंका चारा बेचा करता था। कुवाइट कस्बेमें सड़कों और नालियोंमेंसे छुहारे और खजूरकी गुठलियां चुन-चुन कर वह एकत्र करता और काट-काटकर उनका चारा तैयार करता था। इसी स्थितिमें कुछ समय बितानेके बाद उसने गोता लगाना सीख लिया और १९ वर्षकी उम्रमें एक नावपर काम कर लिया। उन दिनों मोतीका धन्धा अच्छा चलता था, एक नावके मालिकने उसे और कितने ही अन्य युवकोंको एक-एक हजार रुपये पेशगी दे दिये। अन्य युवक गोताखोरोंने अपनी रकम यों ही उड़ा दी; परन्तु हिलालने एक चिथड़ेमें लपेटकर उसे अपनी झोंपड़ीमें गाड़ दिया और छुहारोंकी गुठलियोंकी कमाईसे गुजर करता रहा। तीन वर्ष पीछे वह एक छोटी-सी नावका मालिक स्वयं हो गया और इसके १० वर्ष बाद तो उसके पास इतना पैसा हो गया कि कितने ही नाववालोंको रुपया देने लगा। कुछ समय बाद वह फारिसकी खाड़ीके मोतियोंका प्रसिद्ध व्यापारी हो गया और उसने कुवाइट, बहरीन और बम्बईमें अपने कारबारके फर्म खोले। बादमें हिलालने ब्याज खाने-का काम छोड़ दिया और अपना रुपया छुहारेकी खेती करने और मकान खरीदनेमें लगाया। उधर रिवाज है कि जब कोई बहरीनके शेखसे मिलने जाता है, तब बहुमूल्य चीजें भेंट करता है। एक बार ऐसा ही अवसर आनेपर हिलालने बड़े ही आदरके साथ एक मछली भेंट की थी। हिलालको जब गुस्सा आता है, वह कांपने लगता है और कभी-कभी वह कहता है—"मैं अपने फिरकेवालोंको देता हूं। क्या कोई मुतेरी भूखा रहता है? दूसरे लोगोंसे मुझे मतलब ही क्या है?"

—गोविन्द शास्त्री एम० ए०

———

भारत की साम्पत्तिक अवस्था एक ऐतिहासिक विवेचन






B. C. Ponnappa

श्री बाबूराम मिश्र

चौबीस-पच्चीस वर्ष पहलेकी घटना है। उस समय तक इन पंक्तियोंके लेखकने संसारको आंख खोलकर नहीं देखा था। वह पहला ही अवसर था, जब कुछ किसानोंके पास लगानका तकाजा करनेके लिए जाना पड़ा था। उस दिन जिन किसानोंके पास मैं गया, उनमें एक था महाराम। यदि भूल नहीं हो रही हो, तो उसका नाम महाराम ही था। उम्र यही ३०-३२ वर्ष, रङ्ग सांवला, माथा ऊंचा, कद मंझोला और शरीर छरहरा। आज जमींदार और किसानके पारस्परिक सम्बन्धमें प्रायः सर्वत्र ही खींचतान और कटुताकी जो एक काली रेखा दिखलाई पड़ती है, वह निश्चय ही उस समय इतनी स्पष्ट नहीं थी। महारामको ज्यों ही मालूम हुआ, वह बाहर आ गया और मुझे चारपाईपर बैठाकर खुद जमीनपर बैठा। उसे ज्वर चढ़ा हुआ था। आवाज कांप रही थी और एकमात्र लंगोटी लगाये हुए जिस तरह वह बैठा हुआ था, पचकी हुई छाती और निकले हुए पेटके बीच उसकी पसलियां बहुत ही आसानीसे गिनी जा सकती थीं। लगानका तकाजा भूलकर मैं उससे पूछने लगा—"क्या हो गया है, क्या ज्वर आता है ?"

"आज १९-२० दिनसे यही हाल है। मर रहा हूं।"—उसने कराहते हुए कहा।

उसके प्रति मेरे हृदयमें सहानुभूति हो आयी। मैंने पूछा—"दवाई क्या लेते हो ?"

महारामने उत्तर दिया—"रामका नाम— दवाई क्या करता हूं !"

उसकी इस बातसे मुझे बड़ा धक्का लगा। मैंने कुछ चिन्ताके साथ पूछा—"खाते-पीते क्या हो ?"

उसकी आवाज कुछ भारी हो गयी, मानो कोई दबा रहा हो। दीनता उसकी आंखोंसे ही टपक रही थी। सामने खेतोंकी ओर निगाह फेंकते हुए उसने कहा—"खानेको क्या है ! मका कुछ पीछे बोयी गयी थी। उसमें अभी तक दाना नहीं भरा है। कचरियां और फूटें हो गयी हैं, जिन्हें खाकर काम चलाता हूं।"

ज्वरमें कचरी या फूट खाना हानिकर है, यह मुझे मालूम था। इसीलिए महारामने जब यह बतलाया कि उसे कचरियों और फूटोंपर ही दिन बिताने पड़ रहे हैं, मुझे कुछ भय-सा मालूम हुआ। मैंने व्यग्र होकर पूछा—"और कुछ खानेके लिए नहीं है ?"

निराशासे जमीनकी ओर देखते हुए उसने कहा—"और कुछ क्या है।" अपनी बातके सिलसिलेमें मेरी ओर कारुणिक दृष्टिसे देखकर उसने कहना आरम्भ किया—"बैसाखमें दाना-दाना बेचकर लगान दिया था। फिर भी, कुछ रुपये रह ही गये। जिससे लेकर खाया था, उसका भी बाकी रह गया था। उसीसे कुछ और लिया और आमोंके सहारे सावन तक काम चलाया। इधर एक महीनेसे योंही चल रहा है। खेतमें मकई है। उसीपर उम्मेद है। यह रुपया भी उसके कटनेपर ही हो सकेगा। अभी तो कुछ भी नहीं है।"

मैं चुपचाप लौट आया ! रास्ते-भर महारामकी धंसी हुई आंखें, पचकी हुई छाती और निकला हुआ पेट मेरी आंखोंके सामनेसे दूर नहीं हुआ। १०-१५ दिन पीछे एक दिन उस गांवमें फिर जाना पड़ा। महाराम इससे ३-४ दिन पहले ही मर चुका था।

उस दिन मेरे हृदयपर जो चोट लगी थी, उसकी रेखायें आज कुछ अधिक स्पष्ट हो गयी हैं और यह प्रत्यक्ष हो रहा है कि महाराम कोई अपवाद नहीं है। देशमें आज कई

करोड़ महाराम हैं, जो कड़ाकेके जाड़े, झुलसानेवाली लपटों और मूसलधार वर्षामें घरसे बाहर रहकर अपने परिश्रमसे असीम सम्पत्ति पैदा करते हैं, परन्तु वे इस परिश्रमकी अपनी कमाईको भोग नहीं पाते। उनके परिश्रमका पैसा किसीकी तिजोरी और किसीकी थैलीमें चला जाता है, और वे सालमें ३६० दिन गेहूं और जौ पैदा करके भी कभी भूखे और कभी अधपेट रहकर जीवन बिताते हैं, मनों रुई पैदा करनेपर भी वे लंगोटी लगानेके लिए विवश होते हैं, गायों और भैंसोंको वे रखते हैं, दूध और घी भी होता है, परन्तु दूध और घी नहीं खा सकते और बीमार पड़ जानेपर औषधि और पथ्यके अभावमें असमय ही चल बसते हैं।

यह स्थिति आज हमारे भाग्यका लेख बनी हुई है और शारीरिक बल और नैतिक गुणोंके साथ ही देशवासियोंके आयुष्यका भी बुरी तरह शोषण कर रही है। देशवासियों-का आयुमान दिन-दिन कम होता जा रहा है। १९२१ में जहां वह २४·७५ वर्ष था, वहां १९३१ में वह २३.०२ वर्ष रह गया। ७० वर्ष और इससे अधिक आयुके आदमी १९२१ में जहां प्रतिशत ३.४ थे, वहां १९३१ में प्रतिशत २.४ रह गये। हमेशा ही यह अवस्था नहीं थी। हम भी सुखसे १०० वर्ष तक जीवित रहनेकी कल्पना करते थे और जीवित रहते थे।

सम्पत्ति-शास्त्र और सभ्यताके विकासका घनिष्ठ सम्बन्ध है और किसी समाज या जातिका सम्पत्ति-शास्त्र जितना उन्नत, जितना सुव्यवस्थित होता है, उतनी ही उन्नत और सुव्यवस्थित उसकी समृद्धि और सभ्यता होती है। यह एक सत्य है, जो अत्यन्त प्राचीन कालसे लगाकर वर्तमान काल तककी सभी सभ्य, असभ्य और अर्धसभ्य जातियोंपर घटित होता है और उनकी सभ्यताके विकासको आर्थिक व्यवस्थाके प्रकाशमें अध्ययन किया जा सकता है। आर्य जाति इसका अपवाद नहीं है। संसारकी सभ्यतम प्राचीन जातियोंमें आर्योंका स्थान सबसे पहले इसीलिए है कि उनका सम्पत्ति-शास्त्र उस समय भी, इतिहाससे पूर्वकालमें भी, संसारकी सब जातियोंके सम्पत्ति-शास्त्रसे अधिक उन्नत था। संसारकी अन्य जातियां जब जङ्गलोंमें विचरती थीं, आर्य जन वेदोंकी ऋचाओंका निर्माण कर रहे थे। आज यही ऋचायें उस कालकी भारतीय संस्कृति, समाज और साम्पत्तिक व्यवस्थापर प्रकाश डालती हैं।

प्रसिद्ध ऐतिहासिक रमेशचन्द्र दत्तने वैदिक काल ईसासे पूर्व २००० वर्षसे लगाकर १००० वर्ष तक माना है और इससे इधरके कालको ऐतिहासिक काव्य काल। वैदिक कालकी स्थितिपर जिन ग्रन्थोंसे प्रकाश पड़ता है, वे हैं वेद, परन्तु ऐतिहासिक काव्य-कालके ग्रन्थोंमें उपनिषद् और ब्राह्मण आते हैं।

वैदिक कालमें आर्योंका मुख्य कार्य था खेती। परन्तु खेती मुख्य कार्य होते हुए भी वैदिक कालके आर्यजन थे बड़े उद्योगी और पराक्रमी। यों तो वे घर, गांव और नगर बनाकर रहते थे, परन्तु नये-नये चरागाहोंको खोजनेके लिए ही नहीं, उपनिवेशोंको बसानेके लिए भी दूर-दूर चले जाते थे। ऐतिहासिकोंके मतानुसार उस समय "उद्यम प्रारम्भिक दशामें थे, लेकिन शिल्प-कलाका प्रारम्भ हो गया था। आर्य लोग सड़कें बनाते थे और साथ ही जल मार्गसे आने-जाने और व्यापार करनेके लिए नावें भी। आर्य लोग सूत कातना, कपड़े बुनना और कपड़ोंको तह लगाकर रखना जानते थे। ये कपड़े सूती होते थे और ऊनी भी। आर्य लोगोंको कपड़े रंगना आता था।" इससे यह स्पष्ट है कि आर्योंको उस कालमें बढ़ईका काम खूब आता था; क्योंकि जिन कामोंका ऊपर उल्लेख किया गया है और वे जो रथ, गाड़ियां और पहिये आदि बनाते थे, वे बढ़ई और लोहार-का काम जाने बिना बनाये नहीं जा सकते थे। आर्योंको युद्ध भी करना ही पड़ता था और इस युद्धमें वे लकड़ी, धातु और पत्थरके हथियारोंको, खासकर धनुष-बाण, तलवार और भालेको काममें लाते थे। रमेशचन्द्र दत्तने अपने इति-हासमें लिखा है कि वैदिक कालमें आर्य लोग सभ्यताकी इतनी ऊंची स्थितिमें पहुंच गये थे कि जिसमें स्त्री और पुरुष-में बिना विवेकके सम्बन्ध नहीं हो सकता था। उस समय जातिकी जगह कुटुम्ब होता था। सभी हितकर बातोंको समाजमें कानूनकी तरह माना जाता था।

व्यापार और उद्योग-धन्धोंमें लक्ष्मीका निवास होनेकी उक्ति प्रचलित है और आर्यजन जब व्यापार और उद्योग-धन्धे करते थे, तब उनका समृद्धिशाली होना भी स्वाभा-विक ही है। जो उन्नत सामाजिक स्थिति वैदिक कालमें पायी जाती है, उसमें केवल बदलौअलसे काम नहीं चल

सकता था, यह सम्भव नहीं था कि यदि आर्यजन मूल्य-वान धातुओं और सिक्कोंका उपयोग न जानते और काम चला लेते। सोने और चांदीका उपयोग आर्यजन जानते थे। आज भी सोनेको हम हिरण्य और चांदीको रजत कहते हैं। ये इन दोनों धातुओंके नाम हैं, जो उनके रङ्गपर रखे गये हैं। यह भी पता चलता है कि आर्योंको उस कालमें एक तीसरी धातु अयसका भी पता था। अयस लोहेको कहते हैं, यह सब जानते हैं। सोने-चांदी और लोहेका किसी भी समाजकी सभ्यता और समृद्धिके साथ जो सम्बन्ध है, उसपर कुछ लिखकर व्यर्थ ही विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

उधार देने और व्याज लेनेकी स्थितिमें वैदिक समाज पहुंच चुका था, इस मतकी पुष्टि रमेशचन्द्र दत्तने की है और साथ ही एक ऋचाका उल्लेख किया है, जो सौदेके सम्बन्धमें एक विश्वव्यापी नियमका वर्णन करती है। इस ऋचामें कहा गया है—"कोई मनुष्य बहुत-सी चीज थोड़े दामपर बेच डालता है और तब वह खरीदनेवालेके यहां जाकर बिक्रीको अस्वीकार करता और अधिक दाम मांगने लगता है, परन्तु एक बार जो दाम तय हो गया, उससे अधिक वह यह कहकर नहीं ले सकता कि मैंने थोड़े दाममें बहुत-सी चीज दी है। दाम चाहे कम हो या ज्यादा, बेचनेके समय जो तय हो गया, वही ठीक है।"

वैदिक ऋचाओंसे यह भी सिद्ध है कि तत्कालीन समाजमें सिक्केका चलन था और यह सिक्का भी सोनेका होता था और वस्तुओंके क्रय-विक्रयमें इस सोनेके सिक्के-का उपयोग किया जाता था। सोनेका सिक्का वैदिक समाजकी समृद्धिका परिचायक है, विशेषतः जब उसे साधा-रण लेन-देन और क्रय-विक्रयके लिए आपसमें ही काम-में लाया जाता हो। उस समय समाजमें सोनेका जितना चलन पाया जाता है, उससे यह साबित है कि वैदिक कालमें भारतीय आर्योंके पास सोना और चांदी प्रचुर मात्रामें थी और वे सोनेके सिक्के तो बनाते ही थे, आभूषण भी पहनते थे। सोनेके व्यवहारकी सीमा यहीं तक नहीं थी, आर्योंके घोड़ोंका साज भी सुनहली होता था। ऋषियोंको सोनेके सौ सिक्के दिये जानेके कई उदाहरण मिलते हैं और इसमें सन्देह नहीं है कि इन सिक्कोंका मूल्य भी निश्चित होता था। यह नहीं कहा जा सकता कि उन सिक्कोंका आकार-प्रकार कैसा होता था। हो सकता है कि ये सिक्के एक निश्चित मूल्यके सोनेके टुकड़े ही रहते हों। सिक्केके अर्थमें जिस शब्दका प्रयोग बहुधा पढ़नेमें आता है, वह निष्क है। इस सिक्केका व्यवहार जब आर्य किसान करते थे, तब उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होनेमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है।

ऐतिहासिक काव्य-काल और उसके बाद पौराणिक कालमें आर्य जनताकी समृद्धिकी कोई सीमा नहीं थी। छान्दोग्य उपनिषद्के अनुसार "धनवालोंका धन सोना, चांदी, रत्न, गाड़ी, घोड़ा, गाय, खच्चर, घर, उपजाऊ खेत और हाथी, सब होते थे।" यज्ञोंमें सोनेका दान श्रेष्ठ माना जाता था। इस कालमें सोने-चांदी और लोहेका ही नहीं, अन्य धातुओंका भी ज्ञान आर्योंको हो गया था। छान्दोग्य उपनिषद्में एक स्थानपर कहा गया है—"जिस तरह कोई सोनेको सुहागेसे जोड़ता है, चांदीको सोनेसे, टीनको चांदीसे, जस्तेको टीनसे, लोहेको जस्तेसे और काठको लोहे-से अथवा चमड़ेसे।" एतरेय ब्राह्मणके अनुसार अत्रिके पुत्रने जिन हाथियोंको दानमें दिया था, वे गलेमें आभूषण पहने हुए थे और बृहदारण्यक उपनिषद्के वर्णनके अनुसार राजा जनकने यज्ञमें जिन १० हजार गायोंको दानमें दिया था, उनके सींग सोनेसे मढ़े हुए थे।

यह सब विवरण वेद-कालीन आर्य भारतकी समृद्धिका परिचायक है। इस विवेचनके लिए यदि बौद्ध-कालसे इधर मुसलमानोंके आने तकके समयको मध्यकाल मान लिया जाय, तो यह अनुचित न होगा। इस मध्यकालमें देशकी साम्पत्तिक अवस्था और व्यवस्था कैसी थी, इसके विशद वर्णन मिलते हैं और उन व्यक्तियोंके लिखे हुए मिलते हैं, जो उस समय इस देशकी कीर्तिसे आकर्षित होकर आये थे। बुद्धने जिन सिद्धान्तोंको स्थिर किया है, उन्हें देखनेसे प्रतीत होता है कि समाजमें बड़ी विषमता फैली हुई थी और इस विषमतामें तत्कालीन समृद्धिका भी बड़ा भाग था। उस समय जीवनकी सरलता लुप्त हो चुकी थी और समृद्धि सद्गुणोंका गला घोट रही थी। बौद्ध धर्मका प्रसार होनेके साथ ही यह अवस्था दूर होने लगी और विषमता-का स्थान समता ग्रहण करने लगी। बौद्ध धर्मका प्रसार

जब हो ही रहा था, ईसासे लगभग ३०० वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्यके यहां पाटलिपुत्रमें राजदूत बनकर मेगास्थनीज आया। उसने तत्कालीन भारतकी समृद्धिका विस्तारके साथ वर्णन किया है। वह लिखता है—"जीवन-निर्वाहके प्रभूत साधन होनेके कारण भारतनिवासियोंका डीलडौल असाधारण और चेहरा रोबीला होता है। वे कला-कुशल भी हैं। इसकी उनसे आशा भी की जाती है, क्योंकि वे शुद्ध वायुमें सांस लेते और अत्यन्त शुद्ध जलको पीते हैं। वे करीब-करीब हमेशा ही सालमें दो फसलें काटते हैं और अगर एक फसल न हो, तो भी उन्हें दूसरी फसल होनेका तो पूरा ही निश्चय रहता है। यह माना जाता है कि हिन्दुस्तानमें अकाल कभी नहीं पड़ा और पौष्टिक खाद्य मिलनेमें कभी कठिनाई नहीं हुई। फिर, यहां ऐसी व्यवस्था है, जो अकाल नहीं पड़ने देती। अन्य लोग जब लड़ते हैं, पृथिवीको उत्सन्न कर देते हैं; तब हिन्दुस्तानियोंमें यह देखा जाता है कि पास युद्ध होनेपर भी किसान बेखटके अपना काम किया करते हैं। हिन्दुस्तानी न तो आग लगाते हैं और न पेड़ोंको काट गिराते हैं। सभी हिन्दुस्तानी स्वतन्त्र हैं। उनमेंसे कोई भी दास नहीं है। वे विदेशियोंको भी अपना दास नहीं बनाते, स्वदेशवासियोंका तो कहना ही क्या। चोरी बहुत कम, शायद ही कभी होती है। लेन-देनके सम्बन्धमें मुकदमेबाजी नहीं होती और न मुहर या गवाह-की जरूरत पड़ती है। वे परस्पर विश्वास करते हैं। न तो वे उधार देते हैं और न यह जानते हैं कि कर्ज लेना कैसा होता है। यद्यपि उनके रहन-सहनमें सरलता है, तथापि वे वस्त्रों-आभूषणों और बढ़िया-बढ़िया चीजोंसे प्रेम करते हैं। उनके वस्त्रोंमें सुनहरी जरीका काम किया हुआ रहता है और मूल्यवान रत्न भी रहते हैं। बारीक-से-बारीक सूती वस्त्रोंको वे पहनते हैं। उनके पीछे, नौकर छत्र लगाकर चलते हैं; क्योंकि उन्हें सुन्दरताका बड़ा खयाल रहता है।" मेगास्थनीजने तत्कालीन राज्य-व्यवस्थाका भी बड़ा सुन्दर वर्णन किया है; परन्तु विस्तार-भयसे उसे यहां नहीं दिया जा सकता।

गुप्त-कालको ऐतिहासिकोंने स्वर्ण-युग (३०८ ईस्वीसे ४९० ईस्वी तक) माना है। यह युग वास्तवमें स्वर्ण-युग था भी। लोग ईमानदार, समृद्ध और सुखी थे और इतिहास-कारोंका मत है कि देशमें इस काल-जैसा सुशासन पहले कभी नहीं हुआ था। "कोई किसी प्राणीको नहीं मारता था।" देशमें दातव्य औषधालय थे और ज्ञान-विज्ञान और कलाकी उन्नति हो रही थी। इसके बाद सातवीं शताब्दीके आरम्भमें हर्षका समय आता है, जिसकी समृद्धिके वर्णनसे साधारण साहित्य और इतिहासके पृष्ठ रंगे हुए हैं। इस कालमें जन-साधारणपर कर-भार बहुत हलका था, जमीनकी उपजका छठा भाग देना पड़ता था और इससे जो आय होती थी, उसे भी लोकहितकर राजकीय व्यवस्थाओंमें खर्च कर दिया जाता था। शासनके अन्तिम वर्षोंमें एक बार हर्षने प्रयागमें ७५ दिन तक मेला किया था, जिसमें लगभग ५ लाख जन-समूह एकत्र हुआ था। इसमें सम्राट् हर्षने अपनी अतुल सम्पत्ति लुटा दी थी। आज जब संसारके प्रायः सभी देशोंकी सरकारें कर्जके भारसे पिस रही हैं, हर्षने इस मेलेमें १० हजार बौद्ध भिक्षुओंको ७५ दिन तक प्रतिदिन सौ-सौ स्वर्णमुद्रा, एक-एक मोती और एक-एक शाल दिया था। उस कालमें सोने-चांदीके सिक्कोंके अलावा छोटे-छोटे मोती भी सिक्कों-की तरह काममें आते थे। ह्वेन च्वांगके मतानुसार "समुद्र-मार्गसे जो माल आता है, उसके क्रय-विक्रयकी रीति वस्तु-विनिमय है।" ह्वेन च्वांगके वर्णनसे यह प्रकट है कि उस कालमें देश बड़ा समृद्धिशाली था और जनता खूब सुखी थी। सर्व-साधारणके भोजनमें दूध, घी, चीनी और रोटी होती थी। भूमिदान देनेकी प्रथा भी थी। कभी किसी-से बेगार नहीं ली जाती थी। तत्कालीन ग्रन्थोंमें जो वर्णन मिलते हैं, उनमें मकानोंमें रेशमी पर्दोंकी सजावट, गचपर चन्दनके अर्कका छिड़काव और कस्तूरी एवं केवड़ेका व्यव-हार होनेकी बात पायी जाती है। इसी तरह बाजारमें मोती-मूंगों और रत्नोंका क्रय-विक्रय, दीवालोंपर चित्रकारी, सार्व जनिक उत्सवालय, ललित कलाओंके लिए अनुराग—ये सब बातें देखनेमें आती हैं और इनसे उस कालकी असीम समृद्धिका पता चलता है। यह समृद्धि हर्षके बाद भी बहुत समय तक रही है। दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दीके वर्णनोंमें शरीरपर केशर मिला हुआ उबटन मलने, फव्वारों-के नीचे बैठकर नहाने, रत्नजटित रेशमी कपड़े पहनने और गलेमें मोतियोंके हार और कानोंमें बालियां पहननेका

उल्लेख हुआ है। राजशेखरकी कर्पूर-मञ्जरीमें जहां झूला झूलनेका प्रसङ्ग आया है, गहनोंकी झङ्कार और कपड़ोंकी सरसराहट तकका वर्णन हुआ है।

मुसलमानोंके जो हमले इस देशपर मुहम्मद गोरीसे पहले हुए, उनमें महमूद गजनवीके हमलोंका विशेष स्थान है और ये इस देशकी सम्पत्तिसे आकर्षित होकर, उसे अधिकसे अधिक बटोर ले जानेकी इच्छासे हुए थे और इसमें उसे सफलता भी हुई थी; परन्तु इस तरह जो धन वह ले गया, वह इस देशकी अतुल सम्पत्तिका शतांश भी नहीं था और जहां तक साम्पत्तिक अवस्थाका सम्बन्ध है, देशकी व्यापक स्थितिपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। बादमें जब मुसलमानोंने इस देशको जीता, तब वे यहीं रहने लगे और हिन्दुस्तानके बाहरके जिन भागोंसे आये थे, उन्हें इस देशका प्रान्त मानकर शासन-कार्य चलाने लगे। इसीलिए सम्पत्तिका शोषण नहीं हुआ—यह दूसरी बात है कि शासन-प्रबन्ध-सम्बन्धी असुविधाओंके कारण जब कलाकौशल और ज्ञान-विज्ञानको प्रोत्साहन नहीं मिला, तब इस दृष्टिसे देशकी अवस्था वैसी नहीं रही, जैसी ग्यारहवीं या बारहवीं शताब्दीमें या इससे पहले थी। फिर भी देशकी तत्कालीन कारीगरी और समृद्धिके सम्बन्धमें कितने ही यूरोपियन लेखकोंने लिखा है। १७५७ में क्लाइवने मुरशिदाबादके सम्बन्धमें लिखा था—"यह नगर लन्दनकी तरह बड़ा आबाद और मालामाल है। लन्दन और मुरशिदाबादमें अगर कोई अन्तर है, तो यही कि मुरशिदाबादमें सर्वसाधारण व्यक्तियोंके पास जितना अतुल धन है, उतना लन्दनमें सर्वसाधारणके पास नहीं है।" इससे पहले सत्रहवीं शताब्दीमें बर्नियरने लिखा था—"हिन्दुस्तान अथाह कूप है, जिसमें संसारका बहुत-सा सोना और चांदी पहुंचता रहता है और अनेक स्रोतोंसे पहुंचता रहता है; परन्तु यहांसे उसके बाहर निकलनेका कोई मार्ग नहीं है।" इसी तरह कासिमबाजारके सम्बन्धमें ट्रेवरनियरने लिखा है—"बङ्गालके इस एक गांवसे सालमें ६२ हजार गांठ रेशम बाहर भेजा जाता है। इन गांठोंका वजन ११ लाख सेर होता है। रेशम और स्वर्ण-निर्मित दरियां और सोने-चांदीके कामकी साटिन और बढ़िया कारीगरीकी बहुमूल्य बस्तुयें इस देशके व्यापारकी मुख्य चीजें हैं।" ढाकाकी मलमल तो मशहूर है ही। वह इतनी बारीक होती थी कि कभी-कभी उसका मूल्य सोनेके बराबर आंका जाता था। देशकी इस कारीगरीमें स्त्रियां और पुरुष सबका हिस्सा होता था। यह उल्लेख मिलता है कि १८०७ तक केवल शाहाबादमें ही १५९५०० स्त्रियां सूत कातनेका काम करती थीं और १२॥ लाख रुपयेका सूत तैयार करती थीं। डा० बुचाननके मतानुसार "दीनाजपुरमें रुईसे सूत तैयार करना मुख्य कार्य है। इसमें भद्र परिवारकी महिलाओंके अवकाशका सारा समय और किसान देवियोंका अधिक समय लग जाता है।" इस देशकी कारीगरीकी यह अवस्था केवल सूत या रेशम तक ही सीमित नहीं थी। रानाडेने लिखा है—"लोहेका उद्योग-धन्धा जिस अवस्थामें था, उससे न केवल अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति होती थी, लौह-निर्मित वस्तुयें भी दूसरे देशोंको भेजनेमें देश समर्थ था। निर्माण-कार्यके लिए जो लोहा तैयार किया जाता था, उसकी सारे संसारमें ख्याति थी। १५०० वर्ष पुराना दिल्लीका लौह स्तम्भ उस कालकी कारीगरीका एक आश्चर्य है। आसाममें भारीसे भारी तोपें बनायी जाती थीं और दमिश्कमें जिस फौलादसे पानीदार फल बनाये जाते थे, उसका फौलाद हिन्दुस्तानके गोलकुण्डा स्थानसे ही वहां जाता था।" अठारहवीं शताब्दीमें यूरोपके व्यापारके लिए मुख्य स्थान था सूरत, जिसकी जनसंख्या उस समय ४ लाखसे ८ लाख तक होनेका अनुमान है। सूती और रेशमी कपड़ों एवं लोहेकी अनेक उपयोगी वस्तुओंकी तरह जहाज बनानेका व्यवसाय भी हिन्दुस्तानका बहुत पुराना व्यवसाय है। ऐतिहासिकोंका मत है कि दारा और सिकन्दर दोनोंने ही ईस्वी सन्‌से पहले हिन्दुस्तानमें सैकड़ों जहाजोंको बनवाया था। यहां जो जहाज बनते थे, वे अफ्रीका और मेक्सिको तक जाते थे। रमेशचन्द्र दत्तने 'इण्डिया इन दि विक्टोरियन एज' में बतलाया है कि "१७९५-९६ में कलकत्तेमें ४१०५ टनके ६ जहाज बनाये गये थे और ९ अन्य बड़े जहाज बने हुए तैयार थे। १७९७-९८ में कितने ही जहाजोंको पानीमें उतारा गया था।" मि० डिग्बीके शब्दोंमें १०० वर्ष पहले तक यहां उद्योग बड़ी अच्छी अवस्थामें था और ऐसे जहाज बनते थे, जो ब्रिटिश जहाजोंके साथ थेम्स नदीमें पहुंचते थे। देशके कला-कौशल, कारीगरी और उद्योग-धन्धोंकी जब यह अवस्था थी, तब क्या आश्चर्य है, यदि संसार-

के कोने-कोनेसे सोना सहस्र धार बनकर यहां आया। सवा सौ वर्ष पहले इतिहासकार डा० राबर्टसनने १८१७ में लिखा था—"जीवन-निर्वाह या भोगविलासके लिए आवश्यक वस्तुओंके निमित्त इस देशके निवासी अन्य देशोंपर जितने कम निर्भर हैं, उतने किसी अन्य देशके निवासी नहीं। अनुकूल जलवायु, उपजाऊ भूमि और नये-नये आविष्कार करनेकी शक्तिके कारण हिन्दुस्तानी जो चाहते हैं, वही उन्हें मिल जाता है। हिन्दुस्तानियोंके साथ व्यापार हमेशासे होता रहा है और हिन्दुस्तानियोंको अपनी चीजोंके बदलेमें—चाहे ये चीजें अपनी कारीगरीसे तैयार की गयी हों और चाहे प्रकृतिने ही उन्हें दिया हो—सोना-चांदी हमेशा ही मिलता रहा है।" आज अपने देशकी यह अवस्था नहीं है। आज तो हम कच्चे मालके रूपमें सम्भावित सोना-चांदी बाहर भेजते और विदेशी वस्तुओंसे स्वदेशको पाटकर गरीबीको अपना रहे हैं और हमारे बच्चे देशकी प्राचीन कारीगरी और उसकी समृद्धि भुलाकर यह रट रहे हैं कि हिन्दुस्तान कृषि-प्रधान देश है। मानो संसारके अन्य देशोंके लिए कच्चा माल पैदा करते रहनेके लिए ही ईश्वरने हमें पैदा किया है। हम इसे भाग्यकी बिडम्बना कहें या कुछ और!

साम्पत्तिक दृष्टिसे आज देशवासियोंकी अवस्था बहुत ही शोचनीय है, देशकी इस गरीबीका इतिहास हमारे देशके कला-कौशल और कारीगरीके विनाशका इतिहास है, और उसके मूलमें जहां एक ओर यूरोपमें ज्ञान और विज्ञानकी उन्नति है, वहां दूसरी ओर वह राजनीतिक परिस्थिति भी है, जिसमें होकर गत २५० वर्षोंमें इस देशको गुजरना पड़ा है और साथ ही है उद्योग-धन्धों, व्यापार और अर्थ-सम्बन्धी वह नीति भी, जिससे आज काम लिया जाता है। गरीबीके इन सब कारणोंकी व्याख्या करना इस लेखका विषय नहीं है और न उसकी आवश्यकता ही है। देशकी ६७ सैकड़े जनताकी जो स्थिति है, उसका एक धुंधला चित्र आरम्भमें दिया गया है। गैर-सरकारी अनुमानोंकी बात अलग रखकर अगर सेण्ट्रल बेङ्किङ्ग इनक्वायरी कमेटीकी जांचको ही सही माना जाय, तो ब्रिटिश भारतमें प्रत्येक किसानकी औसत आमदनी ४२) सालानासे अधिक नहीं है और इसपर भी टैक्सका भार है औसतसे ४।॥) ९ (१९३६-३७)। बहुत अंशोंमें खेती मुनाफेका काम नहीं रह गया है। किसान किसी लाभके लिए नहीं, किसी तरह केवल जीवित रहनेके लिए खेती करता है। पांच व्यक्तियोंके किसान-परिवारके लिए जमीनका औसत कुल ६ एकड़ आता है और यह जमीन इतनी नहीं है कि पांच व्यक्तियोंके परिवारका काम चल सके—फलतः किसानोंको जो भी जमीन मिल सकती है, उसीपर निर्भर रहना पड़ता है और भयङ्कर गरीबीमें दिन बिताने पड़ते हैं। फिर, हमेशा ही फसल अच्छी होनेकी भी तो कोई गारण्टी नहीं है। जितनी जमीन जोती-बोयी जाती है, उसके प्रतिशत १६ के लिए ही आवपाशीकी व्यवस्था है और बाकी जमीनकी फसल वर्षापर निर्भर करती है। इसीलिए यह देखा जाता है कि औसतसे पांच वर्षोंमें एक वर्ष खराब होता है और एक अच्छा, बाकी ३ वर्ष साधारण होते हैं। सेण्ट्रल बेङ्किङ्ग जांच कमेटीके मतानुसार देशकी देहाती जनतापर—साधारणतः किसानोंपर ९ अरब रुपयेका कर्ज है और यह कर्ज पिछली एक शताब्दीमें—खासकर गत ५० वर्षमें लगातार बढ़ता गया है। ६७ सैकड़े जनताकी इस आर्थिक स्थितिके साथ जब यह बात सामने आती है कि सारे देशमें ९२ सैकड़े जनता निरक्षर है, तब पता चलता है कि कैसे दुर्भाग्यसे पाला पड़ा है।

देशकी दो तिहाई जनताकी जो यह आर्थिक अवस्था है, उसमें और अन्य जनोंकी आर्थिक अवस्थामें ज्यादा अन्तर नहीं है। खेती करने योग्य जमीन समस्त भारतमें ४३ करोड़ ५० लाख एकड़ है, जिसमेंसे लगभग २९ करोड़ ८० लाख एकड़ जमीनमें हर साल खेती होती है। इसमेंसे २६ करोड़ ७० लाख एकड़में गेहूं, जौ, चना, अरहर आदि अनाज होता है जिसपर ३५ करोड़ देशवासी निर्वाह करते हैं। जितनी जमीनमें खेती होती है, उसका हिसाब अगर फैलाया जाय, तो औसतसे प्रति व्यक्ति पीछे एक एकड़ भी नहीं आता। इस जमीनकी उपजसे ३५ करोड़ देशवासियोंका पेट नहीं भर सकता, यह स्पष्ट है, विशेषतः जब अन्न और तिलहनका विदेशोंके लिए निर्यात भी होता हो।× फिर, खेतीकी जमीन और उपजका औसत कम होनेसे भी काम

× मि० कीटिङ्गने रूरल इकोनोमी इन दि डेक्कन पुस्तकमें बतलाया है कि एक साधारण किसान-परिवारके लिए ४०-५० एकड़ जमीन, अगर वह एक चक हो और उसमें एक अच्छा कुआ और रहनेका मकान हो, यथेष्ट होगी। युक्त-

चल सकता है, देशवासी सुखी हो सकते हैं, यदि उद्योग-धन्धोंकी अवस्था अच्छी हो। उद्योग-धन्धोंमें १० सैकड़े देशवासी लगे हुए हैं और ये हैं भी बिलकुल प्रारम्भिक अवस्थामें। सूती मिलोंका ही धन्धा लीजिये। देशमें ३८९ मिले हैं, जिनमें लगभग १ करोड़ तकुए और २ लाख करघे हैं। १९३६-३७, १९३७-३८ और १९३८-३९ का हिसाब जोड़कर वार्षिक औसत निकालनेसे पता चलता है कि जो १ अरब १७ करोड़ २० लाख गज सूत और ३ अरब ९७ करोड़ ५० लाख गज कपड़ा इस देशमें तैयार हुआ, उसके अलावा लगभग २ करोड़ ९० लाख गज सूत और ७० करोड़ ९० लाख गज कपड़ा विदेशोंसे आया। इतना सूत और कपड़ा बाहरसे मंगानेकी आवश्यकता पड़नेपर भी देशमें जो रुई पैदा होती है, वह बाहर जा रही है। अनुमान है कि १९३८-३९ में ५५ लाख गांठ रुई हुई, जिसमेंसे २७ लाख ३ हजार गांठ बाहर चली गयी। इस रुईका और अगर जरूरत होती, बाहरसे आयी हुई रुईका अगर इसी देशमें उपयोग होता, उससे सूत और कपड़ा बनता और बाहरसे सूत और कपड़ा मंगानेकी जरूरत न पड़ती, तो वही रुई सोना बन जाती। परन्तु हम अपनी रुई बाहर भेजते और अभी तक सूत एवं कपड़ा मंगाते हैं, और इस तरह कङ्गालीको निमन्त्रण देते हैं। कागजके उद्योग-धन्धेका भी यही हाल है। १९३८-३९ में देशमें ५९१९८ टन कागज तैयार हुआ और सब मिलाकर १५३६३३ टन बाहरसे आया, जिसमें ४७३८४ टन अखबारी रद्दी भी है। इस देशमें कागज बनानेका सामान प्रचुर मात्रामें है और निर्यात-व्यापारके लिए बहुत गुञ्जाइश है। १९३८-३९ में १। करोड़ रुपयेका काचका माल विदेशोंसे इस देशमें आया। इस उद्योगके विस्तारके लिए भी बहुत गुञ्जाइश है—यद्यपि पहलेकी अपेक्षा इस धन्धेकी बड़ी उन्नति हुई है। ९ करोड़ १२ लाख २५ हजार रुपयेका चमड़ा देशसे बाहर चला गया। क्या इससे जूते नहीं बनाये जा सकते थे, जिससे १९ लाख ४९ हजार रुपयेके जूते मंगानेकी जरूरत न पड़ती। चीनीके व्यवसायके लिए देशमें बेहिसाब गुञ्जाइश है। १९२९-३० में जहां २७ मिलें थी, वहां १९३९-४० में १४३ मिलें हो गयीं परन्तु इस व्यवसायको, नियन्त्रित

प्रान्तके लिए स्टेनली गिब्न्सने भी एक किसान-परिवारके लिये ३० एकड़ जमीनको पर्याप्त ठहराया है।

किया जा रहा है, जिससे इसका विस्तार न हो सके; क्योंकि एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौतेके द्वारा देशकी निर्यात-व्यापार सम्बन्धी स्वतन्त्रता छिन गयी है। १९३८-३९ में १ करोड़ २६ लाख ६५ हजार रुपयेकी लाखका निर्यात हुआ और ८८ लाख ९८ हजार ८५३ रुपयेका रङ्ग, वारनिश विदेशोंसे मंगाया गया। लोहेके व्यवसायकी अवस्था और भी शोचनीय है। प्रकृतिने इस देशको लोहा खूब दिया है। १९३८ में २७४३६७५ टन कच्चा लोहा निकला और ५२५२५४ टन बाहर भेज दिया गया। जिस मैंगानीजके संयोगसे लोहेको फौलाद बनाते हैं, वह भी १९३८ में ९६७९२९ टन निकाला गया; परन्तु इसमेंसे ४५६००० टन बाहर चला गया—और यह कच्चा लोहा बाहर भेजकर कई करोड़का लोहेका माल इस देशमें विदेशोंसे मंगाया गया। देशके इन सब साधनोंका उपयोग यदि इसी देशमें अनेक प्रकारके उद्योग-धन्धोंमें किया जाता, तो हमें अपना सोना बाहर भेजनेकी आवश्यकता नहीं होती, आज जो करोड़ों देशवासी बेकार और गली-गलीके भिखारी हो रहे हैं, उन्हें क्यों वसुन्धराका भार बनकर अपना जीवन व्यर्थ खोना पड़ता, क्यों हमारी माताओं और बहनोंको कपड़ोंकी कमीसे इस शीतमें ठिठुरना पड़ता।

देशकी कई अरब रुपयेकी कर्जदारी और भारत-सरकारकी बजट-प्रणालीकी चर्चा जानबूझकर नहीं की जा रही है, यह कर्जदारी और बजट-प्रणाली देशकी गरीबीको सींच रही है और सामने बड़ा कठिन समय प्रतीत हो रहा है। इस स्थितिके पार जाने, बीते हुए जमानेको फिर लौटानेका उपाय एक ही प्रतीत होता है—देशकी अर्थ, वाणिज्य-व्यवसाय और उद्योग-धन्धों सम्बन्धी नीति देशवासियोंके हाथमें हो और वे अपने देशके लिए जो भी हितकर समझें, उसे कर सकें। वर्तमान विधानमें क्या देशवासियोंको यह अधिकार है? इस प्रश्नका उत्तर सङ्घशासन-व्यवस्थाकी उस सूचीसे मिल सकता है, जिसमें गवर्नर जनरलके विशेष उत्तरदायित्वके विषयोंको गिनाया गया है और जिसमें एक विषय यह भी बतलाया गया है—"ऐसे कार्यको रोकना, जिससे ब्रिटेन या बर्मासे हिन्दुस्तानमें आनेवाले मालके साथ विभेद किया जाय।" विशेष उत्तरदायित्वके इस विषयका महत्त्व तब मालूम होता है, जब यह पता चलता है कि देशके आयात-व्यापारमें लगभग ३० प्रतिशत हिस्सा इंगलैण्डका है।

———

वे तीनों

श्रीमती होमवती देवी

बैलोंके गलेमें पड़ी हुई घण्टियोंकी टन-टन आवाज सुनकर रम्मू खिड़कीसे जा चिपका, देखा : सड़कपर पांव धरनेको भी जगह नहीं। बैलगाड़ियोंकी हिच-हिच और भैंसा-ठेलोंकी चरर-मररसे लेकर धूल उड़ाती हुई लारियां तथा हुङ्कारती हुई कारें तक उसकी आंखोंके सामनेसे चल-चित्रोंके समान निकली जा रही थीं। पर वह ? अस्तित्व-विहीन-सा हरएकको आंखें फाड़-फाड़कर पत्थरकी मूर्ति बना चुपचाप देख रहा था। जैसे यह सब उसकी समझ और सामर्थ्यसे परेका एक रहस्यपूर्ण वातावरण है। इतने सब लोग कहीं चले जा रहे हैं; किन्तु कहां और क्यों ? यह सब जानना-समझना उसके लिए दूभर हो उठा, वह तो अजायबघरमें नये आये हुए जानवरके समान सींखचोंको थामे बेबसीकी हालतमें कौतूहलसे देख रहा है, बस।

उसने देखा—आनन्दू भी टमटमपर अपनी मां और फूफा तथा छोटी मुन्नीके साथ जा रहा है, मन हुआ उसे जोरसे आवाज देकर पूछे..., पर...अभी तो वह दूर है, सुनेगा कैसे ? धीरे-धीरे टमटम खिसकती-खिसकती निकट आ रही थी, टमटमके पीछे कुछ गधे चले आ रहे थे—जिनपर हुक्के-चिलमके अलावा लकड़ी, कण्डे और फटे-पुराने सौर निहालियोंके साथ स्त्री और बच्चे भी लदे थे। गाड़ियोंकी लम्बी लारकी उलझनमें पड़ी हुई आनन्दकी टमटम ठीक रामबिहारीकी खिड़कीके सामने आकर ठिटक गयी। रम्मूको चुपचाप खिड़कीमें बैठा देखकर आनन्दका कलेजा हाथ-भर ऊंचा हो उठा। सिरपर रखी हुई तिपतरेके कामकी टोपीको भले प्रकार जमाकर आनन्दने अपना मुंह कुछ और अधिक बाहरकी ओर निकालकर कहा—"चलता नहीं बे ! देख, हम तो गङ्गाजी नहाने जा रहे हैं, जा तू भी अपनी अम्मांसे पूछ आ—हमारे साथ चले चलना...। परसों लौट आयेंगे।"

रामूने देखा—नित्य उसके साथ खेलनेवाला नन्दू आज उससे भिन्न-सा क्यों दीख रहा है ? अस्वीकृतिमें सिर हिलाकर वह खिड़कीसे उतर पड़ा, सोचा—"नन्दू भी कितना पागल है—रामबिहारी क्या अपनी अम्मांके बिना कहीं जा सकता है भला ?" वह अभी अम्मांसे जाकर कहेगा कि···"गङ्गाजी तुम भी चलो।"

दालानमें बैठी चम्पा मिट्टीकी अंगीठीपर टीनके डिब्बेमें मोम पिघला रही थी, शायद बिवाइयोंमें भरनेके लिए। और गृहस्वामी पिछले मासके आय व्ययका व्योरा निकालनेमें व्यस्त थे।

रम्मू मांके गलेसे लिपटकर बोला—"अम्मां ! वह देखो, कितने आदमी जा रहे हैं, नन्दू भी तो गङ्गा नहाने गया है अम्मां ! मुझसे कह रहा था—तू भी चल, मैंने मना कर दिया—मैं तो अपनी अम्मांके साथ जाऊंगा। उठो अम्मां ! तुम भी चलो।" पर चम्पाने जैसे सुना अनसुना करके कहा—"अच्छा, जा चल ! सब सुन लिया, मां इधर बैठ, मैं गरम पानी ले आऊं, देख तो हाथ-पैर कितने गन्दे हो रहे हैं ?" बालक अधीर हो उठा—क्षण-भरमें उसकी आंखोंके सामने मेलेका दृश्य घूम गया—पल-पलमें ऊपर-नीचे आता-जाता हिंडोला, बराबर चक्कर काटनेवाली चर्खियां और दूरबीनमें ढबर-ढबर करके दीखनेवाली बारह मनकी धोबन और सोलह मनका लड़का, इसके अलावा कलकत्ता, बम्बईकी सैर भी वह दो मास पहले नुमाइशमें कर ही चुका था। बोला—"बस रहने दो, तुम्हें तो अम्मां ! यही लगा रहता है—पानी ले आऊं, हाथ-पैर गन्दे हैं..., हम तो नहीं, हम तो बस गङ्गाजी जरूर जायेंगे, चाहे देख लेना...।" कहता हुआ बालक घरमें भाग गया। पहले उसने डोरियेका कुर्ता उठाया, फिर लाल धारीकी कमीज, किन्तु समझमें न आया कि इन दोनोंमें कौन अधिक सुन्दर लगेगा। दौड़ा-दौड़ा मांके पास आया, बोला—"अच्छा, बताओ ! इनमें कौन-सा उजला और अच्छा है ? हां—ठहरो, मेरा वह काला कोट कहां है ?" कहता हुआ वह फिर घरमें भाग गया। इस बार ढूंढ़-ढूंढ़कर एक-एक कपड़ा निकाल-निकालकर खाटपर डालने लगा। टोपी, कोट, रुईकी मिरजईसे लेकर, कानोंसे बांधनेवाला सूती मफलर तक वह न जाने कहांसे खोजकर निकाल लाया !

चम्पा जैसे मन ही मन घुटी जा रही थी। और बाबू राधाचरणके प्राण इस चिन्तामें सूखे जा रहे थे कि आगामी मासका भरत कैसे पूरा किया जायेगा? मोदीका हिसाब इस मास बेबाक कर देनेका वादा वह भूले न थे। बजाजसे और एक महीनेकी मुहलत मांग लेंगे, यदि वह मान गया तो। साइकिलका लाइसेन्स भी तो आखिर लेना ही पड़ेगा। इन सबके अलावा घरका खर्च तो है ही। ऊपरसे ज्वरके समान जाड़ा भी चढ़ा आ रहा है। यह सुबहसे शाम तक सिड़सिड़ करती फिरती है..., ऐसे कब तक देखा जायेगा? उधर आफिसर लोग समझते हैं कि ३०) रु० में उन्होंने मुझे जन्म-भरके लिए खरीद लिया है। लेकिन यहां न तन ढंकनेका सुभीता है और न भले प्रकार पेट ही पलता है। सस्तेसे सस्ता अनाज वह खरीदकर लाते हैं, घीके स्थानपर अब 'कोटोजम' से ही काम चल जाता है। दाल-भाजीका कोई क्रम नहीं, जो समयपर बन जाय, ठीक है। फिर भी अशान्ति, घोर अशान्तिमें जीवनके दिन काटते-काटते जैसे वह थक गये। किन्तु लोग समझते हैं कि न जाने कितना धन जोड़ रखा है? आखिर मुन्सिफीमें क्लर्क हैं—तभी तो लाला कबूल सिंहको ही देखो! गङ्गा-स्नानके लिए कितना सिर खा रहे थे—"जोड़-जोड़कर मर जाओगे बस, चलो न? चार दिन मनबहलाव ही रहेगा।" किन्तु उन्हें यह पता नहीं कि यहां मरनेके बाद भी शवको गङ्गाघाट तक पहुंचानेका सुभीता नहीं दीखता।

इसी प्रकारकी विचार-धारामें वह इतने डूब गये कि हिसाबकी कापी भी घुटनोंपर खुलीकी खुली ही पड़ी रही। रम्मूने कापीको एक ओर फेंककर कहा—"बाबूजी! देखो तो, मेरे मोजे कितने फट गये हैं? क्या ऐसे मोजे पहनकर भी मेलेमें कोई जाता होगा? मैं तो नहीं जानता जी! मुझे नये मोजे लाकर दीजिये अभी।" फिर मांसे हठ करने लगा—"उठतीं क्यों नहीं? देर हो जायेगी, नन्दू तो पता नहीं, कितनी दूर निकल जायेगा? फिर हम उसे कैसे पकड़ पायेंगे?"

युवतीका रोम-रोम सिलग उठा—"सात वर्ष पूरे होने आये—अभागा अब भी दुधमुंहा बना हुआ है, कुछ भी नहीं समझता। सन्तान भी भाग्यसे ही भली उठती है।" झल्लाकर बोली—"दूर हो यहांसे, घरमें नहीं हैं दाने, अम्मां चली भुनाने। गङ्गाजीपर क्या हाथ झाड़कर धूल फांकेगा? मेले-तमाशेमें तब जाना होता है, जब चार पैसे हाथमें हों। ले जा..., वह रस्सीपर कुर्ता जांगिया सूख रहा है—उतार ला।"

बालक हाथमें फटे हुए मोजे थामे—सहमकर रह गया। पिताने उसे गोदीमें खींचकर बैठा लिया। कहा—"थोड़े पैसे जोड़ लें बेटा! तब गङ्गाजी चलेंगे।" फिर गृहिणीको समझानेकी चेष्टा करने लगे—"बच्चेका दिल ही कितना-सा होता है? इस प्रकार उसका जी न तोड़ो, इसने ऐसे अभागे माता-पिताके घरमें जन्म लिया है—जो छोटीसे छोटी जरूरत भी पूरी नहीं कर पाते। इस बेबसीका भी कोई ठिकाना है, सब चार पैसोंका खेल है बस...।" कहकर उन्होंने रम्मूके हाथसे फटे हुए मोजे ले लिये।

रामबिहारी जल्दीसे भागा-भागा गया और कागजका वह डिब्बा उठा लाया, जिसको उसने अपनी गुल्लक बना रखा था। एक-एक करके गिननेपर उसमेंसे पूरे नौ पैसे और एक अधेला निकला, जिन्हें न जाने वह कबसे जोड़ रहा था! सब पैसे मुट्ठीमें बांधकर वह पिताके पास आ बैठा। चुपकेसे पैसे अपने बाबूजीके हाथपर धरकर बोला—"मुट्ठी बांध लो, अम्मांको मत दिखाना बाबूजी! हम तुम दोनों गङ्गाजी चलेंगे बस, इन्हें नहीं ले जायेंगे..., पर...पर अच्छा...अच्छा हां, इन्हें भी ले चलेंगे, है न बाबूजी?"

बच्चेकी बातें सुनकर दम्पतिकी आंखें भर आयीं। चम्पाने पतिकी ओर देखा और राधाचरणने चम्पाकी ओर, और रामू? वह हक्का-बक्का-सा कभी मांकी ओर और कभी पिताकी ओर देख-देखकर जैसे कुछ समझनेका यत्न कर रहा था। राधाचरणने उसे छातीसे लगा लिया, कहा—"शामको बाजार चलेंगे, नये मोजे लेने...।" और साथ ही उनके सूखे कपोलोंपर दो बड़े-बड़े आंसू ढलक पड़े।

बाहर अब भी वैसा ही कोलाहल था—यात्री लोग 'गङ्गा माईकी जय' के नारोंसे वायुमण्डलको अशान्त करते हुए निकले जा रहे थे। और इधर, वे तीनों अधीर हो उठे—उनके हृदयका बांध टूट चुका था।

जवाहरात के चोरों का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन

सोलह जुलाई १९१३ की घटना है, लन्दनके प्रसिद्ध जौहरी मेक्समेयर उस दिन जैसा मौसम था, उसकी दृष्टिसे कुछ पहले ही अपने दफ्तरमें पहुंच गये। उनका कारबार हीरा, मोती और इसी तरहके अन्य बहुमूल्य रत्नों और अलङ्कारोंका था। वे इन रत्नोंका केवल व्यापार ही नहीं करते थे, उन्हें बहुमूल्य ऐतिहासिक रत्न और अलङ्कार रखनेका शौक भी था। उनके यहां इनका अच्छा संग्रह था और लन्दनके अरबपतियोंमें उनकी गिनती होती थी।

नौ महीने पहले अक्टूबर १९१२ में उन्होंने पुर्तगालके राजपरिवारसे एक बहुमूल्य अलङ्कार खरीदा और इसके लिए उन्होंने खुशी-खुशी दे दिये १ लाख २३ हजार पौण्ड। यह एक माला थी, जिसके मोतियोंकी आब, पीले गुलाबके फूलों जैसा सुन्दर रङ्ग और इनसे भी बढ़कर उतार-चढ़ाव और गोलाई, सब देखते ही बनता था। दोनों ओरके जोड़ेके मोतियोंका आकार बिलकुल बराबर और सुडौल कुछ ऐसा था, मानो वे सांचेके ढले हुए हों। मालामें कुल ६१ मोती थे और उसके ऊपरी सिरेपर पकड़में हीरे जड़े हुए थे। १ लाख २३ हजार पौण्डमें यह सौदा इतना कसा हुआ था कि उसमें कोई ज्यादा मुनाफा नहीं था। इंगलैण्डमें जब उसके मूल्यका अनुमान लगाया गया, लायड्सने १ लाख ३५ हजार पौण्डसे अधिक मूल्य नहीं आंका और अधिकसे अधिक इतनी ही रकमका बीमा स्वीकार किया; परन्तु लायड्सका अनुमान चाहे जो कुछ रहा हो, मेक्समेयरका ख्याल था कि असलमें माला बहुत ही मूल्यवान है। अगर उसे बेचना ही हो, तो १॥ लाख पौण्डसे एक भी कौड़ी कम लेनेका इरादा नहीं था। डेढ़ लाख पौण्डसे कममें वे उसे निकालना नहीं चाहते थे।

"हो सकता है, कोई खरीदार ही न मिले"—मेक्समेयरने सोचा। मनमें यह बात आते ही जौहरीके चेहरेपर मन्द मुस्कानकी एक झलक आयी और चली गयी। माला बिके या न बिके, उसमें जौहरीको कोई खास दिलचस्पी नहीं थी, उससे उसका बनता-बिगड़ता ही क्या था? किसी मनुष्यके धनी होनेका अर्थ ही क्या है, यदि वह अपनी प्रिय वस्तुको न पा सके या पाकर भी उसे न रख सके। मेक्समेयरको मोतियोंसे कुछ स्वाभाविक प्रेम था। फिर यह माला तो संसारके श्रेष्ठ अलङ्कारोंमें थी और १ लाख २३ हजार पौण्ड देकर भी मेक्समेयरने अपनेको भाग्यवान समझा था। वे इस मालाको जब हथेलीपर रखकर देखते, उन्हें अपूर्व आनन्द मिलता था। उसे रखनेमें उन्हें एक तरहका गौरव अनुभव होता था। इसीलिए जब उनके मनमें यह बात आयी कि हो सकता है, सोलोमन्सको कोई खरीदार ही न मिला हो, तब उन्हें कुछ भी विस्मय न होकर शान्ति ही मिली।

लगभग एक महीने पहले एक दिन पेरिससे रेलोंके प्रसिद्ध दलाल सोलोमन्सका एक तार मेक्समेयरको मिला। इसमें उन्होंने लिखा था—"मोतियोंकी मालाका एक खरीदार है, इच्छा हो तो उसे भेजिये।" यह तार पाकर मेक्समेयरने मालाको सोलोमन्सके पास पेरिस भेज दिया था।

सोलोमन्स जिस किसीके साथ उसका सौदा पटाना चाहते थे, उसके साथ सौदा पटानेमें उन्हें सफलता नहीं हुई और अब इन मोतियोंको डाकसे लन्दन लौटाया जा रहा था।

हीरा, मोती और अन्य बहुमूल्य अलङ्कारोंको जब एक जगहसे दूसरी जगह भेजनेकी आवश्यकता होती है, जौहरी लोग डाकखानेकी व्यवस्थासे लाभ उठाकर उन्हें पारसलों द्वारा भेजा करते हैं। इसमें जो खतरा रहता है वह तो है ही; परन्तु बीमा कम्पनियां भी इस तरीकेको इसलिए ज्यादा पसन्द करती हैं कि वैसे किसी कामके लिए अगर किसी खास आदमीको भेजा जाय, तो यों ही उसका ढिंढोरा पिट जाता है और चोरों एवं उठाईगीरोंको सहज ही पता चल जाता है कि कौन, क्या, कहां लिये जा रहा है। सशस्त्र पहरेमें अगर किसीको भेजा जाय, तो भी उस ओर ध्यान आकर्षित हुए बिना नहीं रहता। इस सम्बन्धमें दूसरोंका ध्यान आकर्षित होना ही हानिकर है। इसे बचानेके लिए डाकके साधारण पारसलों द्वारा रत्न और अलङ्कार भेजना ज्यादा अच्छा समझा जाता है। इससे न तो किसीका ध्यान खिंचता है और न रोजके साधारण कार्योंसे भिन्न कोई अन्य व्यवस्था करनेकी जरूरत पड़ती है। यह भी देखा जाता है कि कितने ही जौहरी अपनी दूकानकी तिजोरीको सर्वथा निरापद न समझकर कितनी ही मूल्यवान चीजोंको लपेटकर अपने साथ घर ले जाया करते हैं। हो सकता है कि उनमेंसे कुछ उन चीजोंको रातके समय अपने पास ही कहीं रखकर सोते हों, क्योंकि इससे उन्हें यह तसल्ली तो रहती ही है कि सवेरे कमसे कम सारा माल उन्हें मिल जायगा।

मेक्समेयरका दफ्तर ८८ हेटन गार्डनमें था। उन्होंने अपने दफ्तरकी सीढ़ियोंपर पहुंचकर द्वार खोलनेके लिए जब अपना हाथ बढ़ाया, उनके मनमें कुछ इसी तरहकी विचार-धारा प्रवाहित हो रही थी। पहुंचते ही क्लर्क विलियम स्मिथने स्वाभाविक प्रसन्नताके साथ उनका अभिवादन किया और दफ्तरमें कुर्सीपर बैठते ही वे अपने काममें लग गये। मेजपर कितनी ही चिट्ठियां पहलेसे ही रखी हुई थीं। मेक्समेयरने उनमेंसे पेरिसकी मुहरवाली एक चिट्ठीको उत्सुकताके साथ उठा लिया। यह चिट्ठी सोलोमन्सकी थी। इसमें उन्होंने लिखा था—"आज ही अलग एक अन्य पारसलसे पुर्तगालवाले मोतियोंको भेज रहा हूं।"

सन्तोषकी मुद्राके साथ सिर हिलाते हुए मेक्समेयरने स्मिथकी ओर देखा। वह पहलेसे ही तिजोरी खोलनेमें लगा हुआ था। एक क्षण बाद स्मिथने एक छोटा-सा पारसल मेक्समेयरके हाथमें देते हुए कहा—"यह आज सवेरे ही पहली डाकसे आया है। दरवान मि० स्वाटेलने अपने दस्तखत देकर इसे ले लिया और स्वयं तिजोरीमें रख दिया था।"

मेक्समेयरके चेहरेपर उत्सुकता नृत्य कर रही थी। उन्होंने स्मिथके हाथसे पारसल लिया। वह मुहरोंसे भरा हुआ था। स्मिथसे कैंची लेकर उन्होंने पारसलके ऊपरका कपड़ा बीचसे काट दिया और कैंचीकी नोकसे काठके बक्सका ढक्कन उखाड़कर उसमेंसे चमड़ेका एक बटुआ निकाला। इतने दिनों पीछे पुनः मोतियोंका हार देखनेकी आशासे उनका चेहरा खिल उठा; परन्तु उनकी यह प्रसन्नता एक ही क्षणमें हवा हो गयी। बटुएका बटन खोलनेपर जब उन्होंने देखा कि उसमें मोतियोंकी माला नहीं है, वे स्तम्भित हो गये, अवाक् रह गये, मानो करेण्ट मार गया हो।

× × ×

जौहरी मेक्समेयरने घबड़ाकर एक बार फिर बटुएको देखा। मेजपर जो काठका बक्स और पैकिङ्गका कागज और कपड़ा पड़ा हुआ था, उसे भी टटोला; परन्तु मोतियोंकी मालाका कहीं पता नहीं था। जौहरीकी आंखोंके आगे अंधेरा-सा होता जा रहा था।

क्लर्क स्मिथने जो बटुएकी ओर देखा, तो उसे बड़ा अचम्भा हुआ। एक ही क्षण पहले जो कुछ हुआ था, उससे इसके बदनमें काटो तो खून नहीं रह गया था। उसे बड़ी व्यथा हो रही थी और आवाज कुछ दब-सी गयी थी। अपने मालिक जौहरीके कन्धेपर झुककर उसने धीरेसे कहा—"चीनी, चीनीके दाने!"

जौहरी मेक्समेयरने अपनी आंखें मलते हुए चमड़ेके बटुएपर एक बार फिर दृष्टि डाली। जहां मोतियोंको होना चाहिए था, वहां उन्होंने भी देखा, चीनीके दाने पड़े हुए थे।

मेक्समेयरने झुंझलाहटके साथ टेलीफोन उठाया और चेनल पार पेरिससे बातचीत करनेके लिए सोलोमन्सका

नम्बर दिया। लाइन मिलनेकी प्रतीक्षामें उनका एक-एक क्षण युगकी तरह बीत रहा था। घण्टी बजते ही उन्होंने कहा—"सोलोमन्स, सोलोमन्स, क्या पागल हो गये? चीनी—मोती—पुर्तगालवाली माला कहां है?"

सोलोमन्स बड़ी कठिनाईसे यह समझा सके कि माला-को डाक पारसलसे भेज दिया गया है और उस समय तक उसे लन्दन पहुंच जाना चाहिए।

जौहरीने पूछा—"पैकिङ्ग कैसा था?"

"काठका बक्स नीले कपड़े और कागजमें सिला हुआ।" —सोलोमन्सने उत्तर दिया—"बतलाइये तो, आखिर क्या हुआ?"

मेक्समेयरने मनोव्यथाके साथ मोतियोंकी माला न मिलनेकी बात कह सुनायी। इसपर सोलोमन्सने जौहरीको पहले ही स्टीमरसे लन्दन पहुंचनेका आश्वासन दिया। इधर जौहरीने टेलीफोन उठाकर लायड्सको सूचित करते हुए कहा—"महाशय, भय है कि आपने अभी-अभी एक करारी रकम खोदी।" यह सूचना पाते ही लायड्सने तत्काल क्षतिका पता लगाने और स्वार्थोंपर दृष्टि रखनेके लिए प्राइस एण्ड गिब्स नामक फर्मको यह काम सौंपा। इस फर्मके एक साझीदार फ्राङ्क ब्यूसाण्ट प्राइसने सब काम छोड़कर इस मामलेको हाथमें लिया और १०॥ बजते-बजते खुफिया पुलिसके सार्जेण्ट जार्ज कारनिशके साथ इन्स्पेक्टर अल्फ्रेड वार्ड और सुपरिण्टेण्डेण्ट अल्फ्रेड लीचको लेकर वे ८८ हेटेन गार्डनमें पहुंच गये। जौहरी मेक्समेयर तो पहलेसे ही उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

जांच-पड़ताल शुरू होते ही इन्स्पेक्टर वार्डने प्रश्न किया—"यह किसे मालूम था कि यह चीज पेरिससे लन्दन-को आनेवाली है। यह किसे पता था कि माला सोलो-मन्सके पास हैं और वे उसे आजकी डाकसे लौटा रहे हैं।"

जौहरीने दुःखके साथ कहा—"दुनिया जानती थी। मैंने बड़ी मूर्खता की, परन्तु मैं क्या करता, मुझे बेहद खुशी हो रही थी, मोतियोंके लौटनेकी खुशीसे मैं फूल रहा था। मैंने अपने मित्रों, परिचित व्यक्तियों और हर किसीसे कहा कि माला लौट रही है।"

इन्स्पेक्टरकी भौंहोंमें बल पड़ गये। उसने पूछा—"सोलोमन्स! आप इस फर्मको अच्छी तरह जानते तो हैं? यह हो सकता है कि मोतियोंको पारसलमें रखा ही न गया हो।"

× × ×

जौहरी मेक्समेयरकी आंखें चमक उठीं। उन्होंने कहा—"मैं आपका मतलब समझता हूं। पिछले ३० वर्षसे मैं हीरों और मोतियोंका व्यापार कर रहा हूं, परन्तु मुझे कभी कोई क्षति नहीं हुई। इस सम्बन्धमें मेरा जो नाम है, उसकी ओर कोई अंगुली नहीं उठा सकता।"

मि० प्राइसने बीचमें ही टोककर कहा—"इन्स्पेक्टर वार्ड यह कुछ आपके सम्बन्धमें नहीं कह रहे थे।"

जौहरीने उत्तर दिया—"मैं जानता हूं—और यह भी जानता हूं कि यदि कहीं थोड़ा भी सन्देह हो या सन्देह होनेकी गुञ्जायश हो, तो उसे दबाना पुलिसके अधिकारीका कर्तव्य है। मैं इन्स्पेक्टर वार्डकी निन्दा नहीं कर रहा हूं। उनसे तो मैं यही आशा करता हूं कि वे सोलोमन्ससे, मेरे व्यापारसे जिसका थोड़ा भी सम्बन्ध हो, उससे और यहां तक कि स्वयं मुझसे भी पूछ-ताछ करें। परन्तु मैं जो कुछ कहना चाहता हूं, वह यह है कि मैं अपनी सारी प्रतिष्ठाको सोलोमन्सकी खातिर जोखिममें डालता हूं। यही बात मेरे लन्दनके कर्मचारियों—स्मिथ और स्वाटेलके विषयमें भी है। इनके साथ हमारा अटूट सम्बन्ध है। ये तीनों मेरे भाईकी तरह आत्मीय हैं।"

पुलिस अफसरके प्रश्न करनेपर दरबान स्वाटेलने उसकी जो कुछ जानकारी थी, सब साफ-साफ कह दिया। उसने कहा—"मैं रात-भर यहीं ड्यूटीपर था। ८॥ बजे सवेरे पोस्टमैन नेविली पहुंचा। मैंने उसे 'गुड मार्निङ्ग' किया। कितनी ही चिट्ठियां थीं और पेरिसका यह रजिस्टर्ड पारसल भी। मुझे पता था कि मि० मेयर इसकी बड़ी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैंने हस्ताक्षर कर यह पारसल ले लिया और फिर उसे तत्काल तिजोरीमें रख दिया। इसके बाद मैं ९ बजे मि० स्मिथके आने तक वहीं बैठा रहा।"

मि० स्मिथने प्रश्न करनेपर कहा—"मैं जबसे आया हूं, इस कमरेसे बाहर नहीं गया। ९॥ बजे मि० मेक्समेयरके आने तक मैंने तिजोरीको भी नहीं खोला। उनके आ जाने-पर मैंने यह पारसल उन्हें दिया और उन्हें उसे खोलते देखा।"

× × ×







सिरेपर असली चोर जिम लाकेट, बीचमें गिरोहका एक प्रभावशाली व्यक्ति सिलवरमेन, नीचे चोरीकी मालाको बेचनेकी कोशिश करनेवाला दलाल गुटवर्थ।

स्वाटेल और स्मिथके बयानोंका पुलिस अफसरोंपर अच्छा असर पड़ा। इन बयानोंसे सन्तुष्ट होकर उन्होंने बटुआ, पैकिङ्ग बक्स और कागज आदिकी ओर ध्यान दिया। सार्जेण्ट कारनिशने चीनीके दानोंकी ओर देखते हुए कहा कि "यह यहांकी नहीं है। इन दानोंमें कुछ-कुछ गुलाबी झलक है, जिससे यह जाहिर होता है कि ये गन्नेकी नहीं, बीटकी चीनीके हैं। यहां तो हम लोग गन्नेकी चीनीका व्यवहार करते हैं। फ्रान्समें बीटकी चीनीका ज्यादा चलन है।"

"बदलेमें कुछ रखनेकी जरूरत ही क्या थी?"—मि० मेयरने जिज्ञासापूर्वक प्रश्न किया—"चोरोंने पारसलको ही क्यों नहीं उड़ा दिया। चोरी डाकखानेसे हुई हो, तो भी मोती निकाल लेनेसे जो जगह खाली हुई, उसे भरनेकी कोशिश क्यों की गयी?"

"वजन पूरा करनेके लिए।"—सुपरिण्टेण्डेण्ट लीचने बतलाया—"चीनीके दानोंका वजन लगभग १००० ग्रेन तो होगा ही। मालाका वजन कितना था?"

"हीरोंवाली पकड़ समेत १२५९ ग्रेन।"—मि० मेक्स-मेयरने तत्काल उत्तर दिया।

"ठीक, इसका अर्थ यह है कि चीनीके दाने इसीलिए रखे गये कि डाक विभागके अधिकारी वजनके अन्तर और पारसलकी गड़बड़ीको न ताड़ सकें। प्रत्येक डाक पारसल जिस डाकखानेमें लगाया जाता है, उसमें तोला जाता है, जिससे वाजिब महसूल लिया जा सके। इसके बाद उसे तब तोला जाता है, जब फ्रान्सीसी पोस्ट आफिसके अधिकारी ब्रिटिश पोस्ट आफिसके अधिकारियोंको पारसल संभलाने लगते हैं।"—लीचने अपनी बातचीतके सिलसिलेमें कहा।

इन्स्पेक्टर वार्डने बीचमें टोका और कहा—"इससे तो कारनिशकी बातका ही समर्थन होता है; क्योंकि चोरोंको पारसलकी गड़बड़ी पकड़े जानेका भय रहा होगा, इसलिए चोरी फ्रान्समें दूसरी बार पारसल तोले जानेसे पहले हुई होगी।"

इधर जब तक ये बातें हो रही थीं, मि० प्राइस पारसल-के पैकिङ्ग और मुहरोंकी जांच कर रहे थे। उन्होंने कहा—"यह पैकिङ्ग देखिये। पारसलके एक ओर चपड़ेकी ४ और दूसरी ओर ९ मुहरें हैं। ये मुहरें मेक्समेयरके नामकी हैं, जिसके प्रथम दो अक्षर M.M. ले लिये गये। पारसलके दोनों ओरकी इन मुहरोंकी संख्या जो अन्तर है, उससे मोशिये सोलोमन्सके विषयमें मैं जो कुछ जानता हूं, वह विपरीत है। एक ओर चार मुहरें बिलकुल ठीक हैं, परन्तु

दूसरी ओर नौ मुहरें जरूरतसे ज्यादा हैं। जिधर नौ मुहरें लगी हुई हैं, उधर चपड़ा बहुत ज्यादा लगाया गया है। मेरा ख्याल है कि चार मुहरें असली हैं और दूसरी तरफवाली नौ मुहरें नकली हैं।"

"क्या आप जानते हैं कि मोशिये सोलोमन्स मुहर लगानेके लिए चपड़ा किस तरह गरम करते हैं।"—प्राइसने मि० मेयरसे प्रश्न किया।

मि० मेयरने उत्तर दिया—"जहां तक मेरी जानकारी है, वैसे ही, जैसे मैं करता हूं—दियासलाईकी लौके पास ले जाकर और यों उसे टपकाकर।"

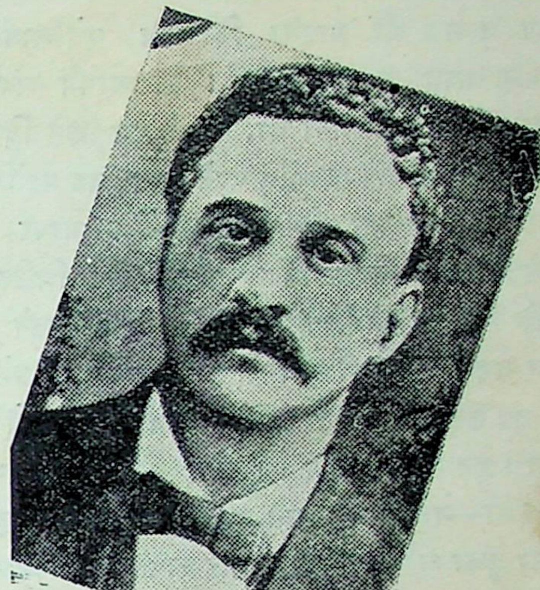
प्राइसने जोशके साथ कहा—"ओहो! यही बात है। चार मुहरोंको देखिये। इनमें धुएंके निशान मौजूद हैं; परन्तु जो नौ मुहरें हैं, वे साफ और चमकीली हैं। मुझे मालूम है कि चपड़ेको फ्रान्सके डाकखानेमें किसी बर्तनमें गलाते हैं और मुहर लगाते समय उसमेंसे लेकर व्यवहार करते हैं।"

सार्जेण्ट कारनिशने अन्य लोगोंकी ओर देखते हुए कहा—"तब यह हो सकता है कि चोरी फ्रान्समें हुई हो, परन्तु हमें इसे बिलकुल सच नहीं मान लेना चाहिए। यह भी सम्भव है कि हम लोगोंको गुमराह करने, धोखेमें डालनेके लिए किसी चालाक चोरने इस चीनी और चपड़ेका व्यवहार किया हो।"

उसी रातको मोशिये सोलोमन्स भी पेरिससे आ गये। पुलिसके अधिकारियोंके पूछनेपर उन्होंने कहा कि "माला-को स्वयं मैंने अपनी स्त्रीके सामने बक्समें रखा और पारसल तैयार किया था। मैं उसे पेरिसके २२ नम्बरके डाकखानेमें ले गया और लगभग ४ बजकर १० मिनटपर लगा दिया।"

पुलिस अधिकारियोंने मो० सोलोमन्ससे कितने ही प्रश्न किये और सबका सन्तोषजनक उत्तर पाया। इसका परिणाम यह हुआ कि इस बातचीतका सिलसिला पूरा होते न होते उनके प्रति पुलिस अधिकारियोंका सन्देह बिलकुल ही दूर हो गया। पारसलके ऊपरका कागज दिखलाये जानेपर उन्होंने कहा—"मैंने इस तरहकी मुहरें नहीं लगायी थीं। पारसलके प्रत्येक ओर मैंने तो केवल चार-चार मुहरें लगायी थीं।"

× × ×





ऊपर षड्यन्त्र करनेवाले चोरोंका गुरू ग्रिजर्ड, नीचे डिटेक्टिव कारनिश।

अगले दिन मि० प्राइस और डिटेक्टिव लीचके साथ मोशिये सोलोमन्स पेरिस लौट गये और मोतियोंकी माला चोरी जानेकी रिपोर्ट फ्रान्सकी पुलिस और डाकखानेके जिम्मेवार अधिकारियोंको दे दी गयी। ये सब बड़ी तत्परता-से पता लगाने लगे। डिटेक्टिव लीचने केलचास और डेवि-

स्कोप नामक दो प्राइवेट डिटेक्टिव एजेन्सियोंका भी सहयोग प्राप्त कर लिया था। डाकखानेमें सबसे पहले पारसल किसे दिया गया था, उसने इसे किसे दिया और कितने कर्मचारियोंके हाथोंमें पड़नेके बाद वह पहले पेरिसके सेण्ट्रल पोस्ट आफिस और बादमें केलेमें स्टीमरपर पहुंचा। वहांसे फ्रान्सीसी डाकखानेके कर्मचारियोंने ब्रिटिश डाकखानेके किस कर्मचारीको उसे दिया और कितने हाथोंमें पड़कर वह लन्दनमें डाकखानेके ईस्ट सेण्ट्रल आफिसमें पहुंचा, और तब कहीं जाकर डब्लू० ई० नेविलीको बांटनेके लिए मिला। इन सब बातोंकी छानबीन होनेपर कई बातोंका पता चला—पारसल पेरिससे रातके ९॥ बजे १९ जुलाईको रवाना हुआ और कैलेमें स्टीमरपर रातके १॥ बजे पहुंचा। वहांसे जो स्टीमर उसे डोवर ले गया, उसपर पहुंचकर ब्रिटिश डाकखानेके कर्मचारी सिमसनने पारसल संभाला। डोवरसे ट्रेन द्वारा वह चेरिङ्ग क्रास स्टेशन गया और ईस्ट सेण्ट्रल आफिस डाकखानेमें १६ जुलाईको सवेरे ६ बजकर २० मिनटपर पहुंचा और लगभग ७ बजे उसे लेकर पोस्टमैन नेविली डाक बांटने चला गया।

डिटेक्टिव लीच जब पेरिससे रवाना हुए, बर्लिन, वियेना और एम्सटरडम होकर लन्दन पहुंचे। इन स्थानोंमें वे जौहरी बाजारोंमें गये और सबको सावधान कर दिया। लायड्सने कई भाषाओंमें एक इश्तिहार छपाकर कितने ही देशोंमें बंटवाया, इसमें १०००० पौण्ड या ५० हजार डालर या २॥ लाख फ्राङ्क उस व्यक्तिको देनेकी घोषणा की गयी थी, जिसकी बातोंके आधारपर चोरको सजा हो सके और मोती भी मिल सकें।

मोती इतने सुन्दर और सुडौल थे कि अगर उन्हें मालामेंसे निकालकर भी अलग-अलग बेचनेकी कोशिश की जाती, तो यूरोपके किसी बाजारमें उनका निकलना कठिन ही था; किन्तु अगर स्वेज नहर पार कर वे ऐसे केन्द्रोंमें पहुंच जाते, जो चोरीके रत्नोंको हजम कर जानेके लिए मशहूर हैं, तो फिर उनका पता चलना असम्भव ही समझिये।

इधर डाकखाने और पुलिसके जिम्मेदार अफसर अपनी जांच-पड़तालमें लगे हुए थे और उधर केलवास और डेविस्कोपकी डिटेक्टिव एजेन्सी भी अपना काम कर रही थी। लन्दनमें सार्जेण्ट कारनिश और इन्स्पेक्टर वार्डने सार्जेण्ट गुडविली और सार्जेण्ट कूपरको अपने साथ लिया और यह मानकर जांच-पड़ताल आरम्भ की कि मानो मालाकी चोरी इंगलैण्डमें ही की गयी हो। उन्होंने सबसे पहले यह प्रबन्ध किया कि बाजारमें माला या उसके मोती बिकने न पायें। रत्नोंकी चोरी करने या उन्हें चुराकर बाहर भेजनेके लिए जो लोग मशहूर हैं, उनके पीछे जासूस लगा दिये गये। जिन व्यक्तियोंपर सन्देह होता, चुङ्गीपर उनके सामानकी अच्छी तरह तलाशी होने लगी। जिन स्थानोंके विषयमें यह सन्देह हुआ कि मालाका कुछ पता चल सकता है, उनकी भी तलाशी हुई। और इस बातकी पूरी व्यवस्था कर दी गयी कि अगर माला इंगलैण्डमें हो, तो यहांसे निकलकर न जाने पाये।

पोस्टमैन डब्लू० ई० नेविलीने प्रश्न करनेपर डाकखानेसे ७। बजे चलने और लगभग ८॥ बजे ८८ हेटन गार्डन पहुंचनेकी बात कही। जिस समय वह अपने उस दिनके गश्तका विवरण बतला रहा था, सार्जेण्ट कारनिशने पूछा कि "मेयरवाला रजिस्टर्ड पारसल क्या रास्तेमें तुम्हारे थैलेसे बाहर नहीं निकाला गया ?" पोस्टमैनने तुरन्त ही जवाब दिया कि "मि० मेयरके दरवानको देनेसे पहले नहीं।"

अधिकारियोंको पोस्टमैनपर सन्देह नहीं रहा। उन्होंने उसमें केवल एक ही दोष पाया कि शराबकी ओर उसका कुछ झुकाव था। गत १६ सालकी नौकरीमें उसे कई बार ज्यादा शराब पी जानेके कारण चेतावनी दी गयी थी; परन्तु यह नहीं पता चला कि १६ जुलाईको भी उसने ज्यादा शराब पी रखी थी। उसके साथियोंमें भी कोई बदमाश नहीं था और उसके रहन-सहनसे भी कभी कोई बड़ी रकम घूसमें खा जानेका पता नहीं चलता था।

इस जांच-पड़तालके कई दिन बाद जब ब्रिटेन और फ्रान्सके पुलिस अधिकारी मिले, फ्रान्सीसी अफसरने कहा—"हमारी जांचसे तो यही जाहिर होता है कि पारसल जब तक फ्रान्समें डाकखानेके अधिकारियोंके पास था, तब तक उसके साथ कोई गड़बड़ी नहीं हुई।"

"यही परिणाम तो हम लोगोंकी जांचका भी है।" इन्स्पेक्टर वार्डने उत्तर दिया।

इसपर फ्रान्सीसी पुलिसके अधिकारी मो० निकलासीने मुस्कराते हुए कहा—"तब इसका एक ही नतीजा

निकाला जा सकता है कि मोती चोरी नहीं गये हैं या शायद वे थे ही नहीं।"

× × ×

एक-एककर कई सप्ताह बीत गये। मोतियोंकी माला पहले कभी भले ही रही हो; परन्तु यह मालूम होने लगा कि मानो वह कभी थी ही नहीं। न तो चोरोंका पता चल सका और न इस बातका कि आखिर चोरोंने किस हिकमतसे उसे उड़ाया था। फिर भी खुफिया पुलिसके कर्मचारी इस चोरीका सूराग लगानेका प्रयत्न कर ही रहे थे। पुलिसने सोलोमन्स और उनकी पत्नीसे पूछताछ की। बहुत समय तक दिन-रात स्वाटेल और स्मिथके ही नहीं, स्वयं जौहरी मेक्समेयरके पीछे भी जासूस लगे रहे; लेकिन पता तो चला ही नहीं। एक दिन अचानक यों ही फ्रान्सीसी पुलिसके हाथ एक चिट्ठी लग गयी। चिट्ठीमें लिखा था—"मोती आपको मोनालिसाके गलेमें मिलेंगे।" यह सङ्केत एक मशहूर चित्रकी ओर था, जिसे कई साल पहले कला-शालासे चुरा लिया गया था।

मोशिये निकलासीने जब यह चिट्ठी देखी, वे आफिसमें अपनी कुर्सीपर कुछ तनकर बैठ गये। उनकी आंखें चमकने लगीं और किञ्चित् आवेशमें आकर उन्होंने अपने आप ही कहा—इस तरहकी कोई बात एक और मिली नहीं कि चोर पकड़ा जायगा।

इसी समय टेलीफोनकी घण्टी बजी। न्यूली स्टेशनसे एक पुलिस कर्मचारीने कहा—"मोती मिल गये। एक छात्र टहल रहा था, अचानक उसकी निगाह एक तरफ गयी। उसने वहां देखा, तो मोती थे। छात्र मोतियोंको उठाकर यहां लेता आया। ये अब मेरे पास हैं।"

मोशिये निकलासीको विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने चकित होकर टेलीफोनपर कहा—"निश्चय ? मालामें कितने मोती हैं। उनका रङ्ग कैसा है।"

पुलिस कर्मचारी लेफ्टिनेण्टने एक-एककर सारे मोतियोंको बड़ी शीघ्रतासे गिना और टेलीफोन कानसे लगाकर कहा—"६१। इनका रङ्ग पीला है।"

मोशिये निकलासीने टेलीफोन रखते हुए कहा—"ठीक, छात्रको वहांसे जाने न दीजिये। मैं अभी आ रहा हूं।"

पुलिस अफसरने मोशिये सोलोमन्सको रास्तेसे ही अपने साथ लिया और दोनों ही न्यूली स्टेशन जा पहुंचे। मोशिये निकलासीने जब मोतियोंको हाथमें लिया, उनका हृदय उछलने लगा। मोशिये सोलोमन्सने मालाको अच्छी तरह देखनेके लिए अपनी आंखमें जौहरियोंवाला काच लगाया और देखते ही उनका चेहरा उतर गया। पुलिस अफसर भी मोशिये सोलोमन्सके चेहरेको देखकर कुछ समझ न सका। मोशिये सोलोमन्सने मालाको जमीनपर फेंकते हुए कुछ झुंझलाहटके साथ कहा—"नकली!"



बहुमूल्य मोतियोंकी मालाके मालिक मेक्समेयर।

"नकली ?"

"बिलकुल नकली; किन्तु यों देखनेमें यह बिलकुल असली-जैसी मालूम होती है। वही रङ्ग और वही आकार-प्रकार।"

"यह क्या पुलिसको चकमा देनेके लिए—यह दुःसाहस कौन करेगा ?"

रात होते-होते पुलिसके जासूसोंने नकली मोतियोंका भेद मालूम कर लिया। इसमें पुलिसको चकमा देनेकी कोई बात नहीं थी। पेरिसकी एक नर्तकीने अखबारोंमें मोतियोंकी चोरीका विवरण पढ़ा और अपनी ओर लोगोंका ध्यान ज्यादा आकर्षित करनेके लिए यह चाहा कि वैसे ही मोतियोंकी एक माला उसके गलेमें भी हो। इस इच्छाकी पूर्तिके लिए उसने नकली मोती बनानेवाले कारखानेके साथ लिखा-पढ़ी की और असली मोतियोंका सारा विवरण लिख भेजा। उसी नर्तकीने असली मोतियोंसे मिलते-जुलते ये नकली मोती बनवाये थे।

× × ×

उसी दिनकी घटना है। लन्दनमें मि० प्राइसको एक पत्र मिला। इसमें पत्र-लेखकने लिखा था—"मैं खुदाईका काम करता हूं। कई सप्ताह हुए, मुझसे एक ठप्पा बनानेके लिए कहा गया था। मुझे सन्देह नहीं है कि उसे मोतियोंकी

चोरी करनेके लिए ही बनवाया गया था। मैं अपना नाम नहीं बतलाना चाहता; परन्तु कृपया कलके 'ईवनिङ्ग न्यूज'में "व्यक्तिगत" स्तम्भमें विज्ञापनके तौरपर यह छपाइये कि इस विषयमें मुझे क्या करना चाहिए। आपका—नक्काश।"

अगले दिन १५ अगस्तको प्राइस एण्ड गिब्सकी ओरसे 'ईवनिङ्ग न्यूज'में व्यक्तिगत स्तम्भमें यह विज्ञापन प्रकाशित हुआ—

"क्या नक्काश महोदय पूरा पता बतायेंगे या गुप्त भेंटके लिए कोई समय निश्चित करेंगे।—पी० एण्ड जी०।"

उसी रातको नक्काशने साहससे काम लिया और मि० प्राइस और गिब्सके दफ्तरमें चला गया। वहां पहलेसे ही उसकी प्रतीक्षा की जा रही थी। नक्काशका नाम पीटर गार्डन था और उसकी दूकान हेटन गार्डनके पास ही थी। गार्डनने बतलाया कि किस तरह उसका लगभग ६ हफ्ते पहले एक दिन जलपान गृहमें एक आदमीसे परिचय हुआ और फिर किस तरह उसने चपड़ेकी एक मुहरपरसे "एम० एम०" का ठप्पा बना देनेके लिए कहा। गार्डनने यह भी बतलाया कि पहलेसे किसी तरहका कोई इरादा मालूम न होनेके कारण मैंने उस व्यक्तिको एम० एम० का ठप्पा बना दिया। नकली बताकर पत्रोंमें जिन मुहरोंको छापा गया है, वे उस ठप्पेकी हैं, जिसे मैंने बनाया था।

गार्डन यह नहीं बता सका कि ठप्पा बनवानेवाला व्यक्ति कौन था और कहां रहता है। परन्तु उसने हुलियाका पूरा ब्योरा दे दिया और उस जलपान-गृहके आसपास लगे रहनेका भी वचन दिया, जिससे अगर वह उधरसे निकल पड़े, तो पकड़ लिया जाय।

यही हुआ—सार्जेण्ट प्राइस मोटर ड्राइवरके भेषमें गार्डनके साथ उसी जलपान-गृहमें गया, जहां ठप्पा बनवानेवालेसे भेट हुई थी। उस दिन जलपान-गृह बन्द होनेके समय तक दोनों वहीं रहे। दूसरे दिन भी वे बड़े सवेरे ही वहां पहुंच गये। तीसरे पहर एक नाटा आदमी वहां आया। उसके आते ही गार्डनने सार्जेण्ट प्राइसको आंखका इशारा किया और वह स्वयं वहांसे चल दिया। यह नाटा आदमी जब तक जलपान-गृहमें रहा, सार्जेण्ट प्राइस भी वहां रहे और जब यह वहांसे चल दिया, वे कुछ अन्तरसे उसके पीछे हो लिये। बहुत रात बीते, उन्होंने इस नाटे आदमीका पूरा पता लगा लिया। उसका नाम साइमन सिल्वरमेन था। सिल्वरमेन भी प्रसिद्ध जौहरी था और उसकी दूकान भी १०१ हेटन स्ट्रीटमें ही थी। सार्जेण्ट प्राइसने सिल्वरमेनको गिरफ्तार नहीं किया, क्योंकि वैसा होनेसे भय था कि कहीं माला हाथसे निकल न जाय। फिर यह भी तो सम्भव है कि सिल्वरमेन समूचे पहियेमें केवल एक दांत हो।

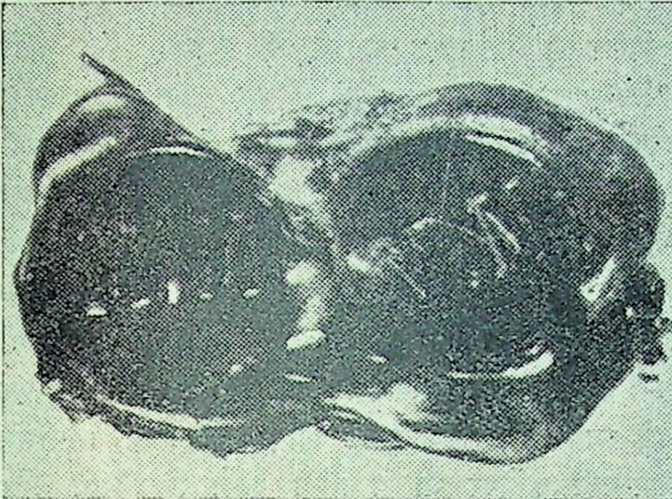
× × ×

"पत्र मिला। जितनी जल्दी हो सके, आपको लन्दनके लिए रवाना हो जाना चाहिए। तार द्वारा सूचित कीजिये कि आप कब आ रहे हैं। मैं स्टेशनपर ही आपको मिल जाऊंगा। इसके बाद सब ठीक हो जायगा। डेढ़ अपने साथ लेते आइये। मेरा अभिप्राय तो आप समझते ही हैं।

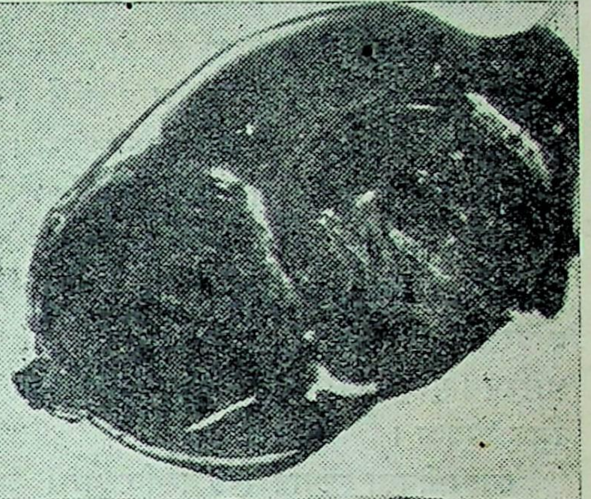
"अगर आप अकेले आये, तो मैं अत्यन्त प्रसन्न होऊंगा और अगर वह व्यक्ति उसे आपको न देना चाहता हो, तो वह भी आपके साथ आ सकता है। इतना तो आपको जानना ही चाहिए कि वह आदमी ठीक है। आपको अवश्य ही अपना काम भी जानना ही चाहिए। मैंने जो बतलाया है, उसे अपने साथ लाइये।"

पेरिसमें यह चिट्ठी पानेके तीन दिन बाद १५ अगस्तकी रातको १०॥ बजे क्वाड्रासीन और ब्राण्डसाटेर लन्दनमें चेरिङ्ग-क्रास स्टेशनपर पहुंच गये। ये दोनों फ्रान्सीसी नौजवान पेरिसमें जौहरीकी दूकान करते थे। दूकान साधारण थी। उनके मनमें कारबारको बढ़ानेकी बड़ी अभिलाषा थी; परन्तु कारबार बढ़ानेके लिए उनके पास पूंजी नहीं थी। एक दिन वे इस चिन्तामें थे ही कि उन्होंने मोतियोंकी माला चोरी जानेके सिलसिलेमें २॥ लाख फ्राङ्कके पुरस्कारकी बात पढ़ी। उन्होंने सोचा, क्या ही अच्छा हो कि यह पुरस्कार हाथ लग जाय। इस विचारसे ही उन्हें इतनी खुशी हुई कि कई दिन यों ही खो दिये। किन्तु केवल विचारसे ही क्या होना था? आखिर क्वाड्रासीनने ब्राण्डसाटेरको उसमें व्यर्थ समय न खोनेकी सलाह देते हुए कहा कि हम लोगोंको अपना काम देखना चाहिए।

क्वाड्रासीनकी इस शिक्षाके साथ ब्राण्डसाटेर अगले दिन छोटी-मोटी खरीदके लिए पेरिससे बेल्जियमकी राजधानी एण्टवर्प चला गया। वहां दिन-भर सौदेकी तलाशमें



डबल 'एम'वाली असली मुहर।



नकली मुहर, जिसे चोरोंने बनाया था।

फिरने और कई चीजोंको अच्छे मुनाफेकी गुञ्जायश देख पटा लेनेके बाद ब्राण्डसाटेरने एक होटलमें छककर भोजन किया। यहां उसके पासवाली एक अन्य मेजपर दो व्यक्ति बैठे हुए थे, जो देखनेसे ही खासे धूर्त मालूम होते थे। ब्राण्डसाटेरका ध्यान उनकी ओर अचानक आकर्षित हो गया। वे दोनों धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे और अक्सर कानके पास झुककर भी। उनके भावोंसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वे कोई रहस्यपूर्ण चर्चा कर रहे हों। ध्यान आकर्षित हो जानेपर ब्राण्डसाटेरने उधर कान लगा लिया। आरम्भमें मालूम हुआ, मानो वे कोई व्यापार सम्बन्धी बातचीत कर रहे हैं। कोई सौदा पटाया जा रहा है। इसी बातचीतके सिलसिलेमें ब्राण्डसाटेरने सुना—"मौका बड़ा अच्छा है। लाख वर्षमें भी ऐसी माला छूने तकको न मिलेगी।"

ब्राण्डसाटेरको सौदेकी इस बातचीतमें कुछ ज्यादा मजा आ गया। उसका हृदय उछलने लगा। जब वे दोनों खाते रहे, वह भी कुछ खाता-पीता रहा और जब वे दोनों वहांसे चले, वह भी थोड़े अन्तरसे उनके पीछे हो लिया। बहुत दूर जानेपर उनमेंसे एक बिदा हुआ और एक ओर मुड़ गया और दूसरा आगे बढ़ा। कुछ समय बाद ब्राण्डसाटेरने अवसर पाकर साहस किया और एकान्तमें उसके पास जाकर कहा—"महाशय, होटलमें मैं आपके पासवाली मेजपर ही बैठा हुआ था। मैंने आपकी बातचीतको कुछ-कुछ सुना है। आप मुझे क्षमा करें; परन्तु……।"

वह आदमी पहले चौकन्ना हुआ और बादमें उसने पीठ दिखाकर चले जानेकी कोशिश की; परन्तु ब्राण्डसाटेरने उसे रोकते हुए कहा—"यद्यपि आप अपने साथीको रजामन्द नहीं कर सके, तथापि शायद आप मुझे तैयार कर सकें।"

उस आदमीने आंख गड़ाकर ब्राण्डसाटेरको एक बार देखा। ब्राण्डसाटेरने झूठ बोलते हुए कहा—"मैं कई धनी खरीदारोंको जानता हूं। कभी-कभी तो वे जब किसी चीजपर मुग्ध हो जाते हैं, यह पूछते ही नहीं कि वह कहांसे आयी है, किसकी है।"

उस आदमीने मुस्कराकर कहा—"मेरे होटलवाले कमरेमें चलिये। हम दोनों एकान्तमें बातचीत करें।"

ब्राण्डसाटेरका तीर निशानेपर लगा। उसने जिस आदमीसे बातचीत की थी, उसका नाम लीसिर गुटवर्थ था। यह जौहरी बाजारका दलाल था और मेक्समेयरवाली मालाको बेचनेकी कोशिश कर रहा था—अन्तर्राष्ट्रीय चोरोंके दलके एजेण्टका काम कर रहा था। बातचीतके सिलसिलेमें गुटवर्थने कहा—"आपके खरीदार कितना लगायेंगे। मुझे ६० हजार पौण्डसे कममें मोती देनेका अधिकार नहीं है।"

"६० हजार पौण्ड अर्थात् १९ लाख फ्राङ्क! बहुत ज्यादा है!" ब्राण्डसाटेरने चकित होकर कहा।

"इससे २॥ गुने ज्यादा मूल्यवाली चीजके लिए नहीं!" —सिर हिलाते हुए गुटवर्थने अपनी बातका समर्थन किया।

उसने कहा—"इसमें आपके और मेरे बहस करनेकी बात ही क्या है ? आज पेरिस जाकर ही तो अपने खरीदारोंके सामने प्रस्ताव रखेंगे। हम लोग आज कोई निर्णय नहीं करें। मोती इंगलेण्डमें हैं, बेल्जियममें नहीं। यह मेरा लन्दनका पता है। आप पहले पत्र लिखेंगे कि मैं लिखूंगा?"

ब्राण्डसाटेर अपने जिस कामसे बेल्जियम आया था, उसे भूल ही गया। पहली ट्रेनसे ही पेरिस जाकर उसने काड्रासीनसे कहा—हमें पुलिसको सूचित कर देना चाहिए। पुलिस उसे पकड़ लेगी और हम लोगोंको पुरस्कार मिल जायगा।

काड्रासीनका स्वभाव कुछ गम्भीर था। उसने सहज ही कहा—इसमें धोखा भी तो हो सकता है ? ऐसा न हो कि बादमें पुलिस हमपर हंसे। फिर पुलिसको खबर दे देनेसे चोरोंको सतर्क हो जानेका अवसर भी मिल सकता है। पहले तो हमारा यही प्रयत्न होना चाहिए कि हमपर चोरोंका पूरा विश्वास हो जाय।

कुछ दिनों तक तो यही खयाल हुआ कि काड्रासीनका खयाल ठीक है और ब्राण्डसाटेरको मूर्ख बना दिया गया। अधीर होकर ब्राण्डसाटेरने बताये हुए पतेपर लन्दनके लिए पत्र छोड़ा। इसमें ब्राण्डसाटेरने लिखा था कि खरीदार तैयार हैं।

अगले दिन ब्राण्डसाटेरको लन्दनका एक तार मिला, जिसपर गुटवर्थके हस्ताक्षर थे और जिसमें यह सूचित किया गया था कि चिट्ठी आ रही है। यह चिट्ठी वही थी, जिसका उल्लेख आरम्भमें हुआ है और जिसे पाकर काड्रासीन और ब्राण्डसाटेर १९ अगस्तको पेरिससे चलकर रातके १०॥ बजे लन्दन पहुंचे थे।

× × ×

लन्दनमें चेरिङ्ग क्रास स्टेशनसे बाहर निकलते ही ब्राण्डसाटेर और काड्रासीनको गुटवर्थ मिल गया। ब्राण्डसाटेरने काड्रासीनको खरीदार नहीं, इस सौदेकी बातचीतमें अपना साझीदार और मोतियोंका पारखी बतलाया। वे तीनों अभी चले ही थे कि एक अन्य व्यक्ति भी उनसे आ मिला। इसे देखते ही गुटवर्थने कहा—"ये हैं साइमन सिल्वरमेन। ये न होते, तो यह सौदा होना सम्भव न होता।"

१०१ हेटन गार्डनमें साइमन सिल्वरमेनका जौहरीका व्यवसाय था और उनके फर्मकी भी ख्याति थी। चारों व्यक्ति स्टेशनपर एक टैक्सीमें बैठे और ड्राइवर गुटवर्थके सङ्केतसे उसे लन्दनकी सड़कोंपर कभी दाहिने और कभी बायें मोड़ते हुए ले चला। टैक्सी घने कुहरेको चीरती हुई मजेके साथ जा रही थी और उसमें बैठे हुए चारों आदमी आपसमें कुछ बातचीत कर रहे थे। गुटवर्थ और साइमन सिल्वरमेनको क्या पता था कि दोनों फ्रान्सीसी युवकोंकी सारी हैसियत भी मालाका पासङ्ग नहीं है। चोरोंके एक दलके साथ १९ लाख फ्राङ्कका सौदा होना था। पासमें रकम नहीं होनेपर भी वे सौदा करने निकले थे और टैक्सीपर बड़ी तेजीसे जा रहे थे। बातचीत करते-करते ब्राण्डसाटेर और काड्रासीनके मनमें एक खयाल आते ही भयका सञ्चार हो गया। उन्होंने सोचा कि ये लोग क्या यह न जानते होंगे कि हम लोगोंके पास १९ लाख फ्राङ्क हैं। इस रकमके लिए अगर ये हत्या ही करना चाहें, तो निरर्थक होते हुए भी उन्हें कौन रोक सकेगा।

काड्रासीनने सिल्वरमेनके कानमें धीरेसे कहा—हमारे खरीदारने इसी समय हमें रकम नहीं दे दी है। उन्हें सन्देह है कि वास्तवमें आप लोगोंके पास मेक्समेयरवाली माला है भी कि नहीं। एक भी कौड़ी देनेसे पहले उन्होंने मुझे इसलिए भेजा है कि मालाको देखकर उसकी जांच कर ली जाय। इसके अलावा उनका यह खयाल भी है कि १९ लाख फ्राङ्क उसके लिए बहुत ज्यादा हैं। वे १० लाख फ्राङ्कसे ज्यादा नहीं देना चाहते।

बहुत देर बाद मोटर एक पुराने मकानके सामने रुकी। मकानमें कुछ अन्धकार-सा था। गुटवर्थ दोनों फ्रान्सीसियोंको मकानके दरवाजे तक छोड़ आया। सिल्वरमेन उस समय तक मोड़पर ही खड़ा था। काड्रासीनने देखा कि काला टोप लगाये हुए एक आदमी आया और उससे कुछ बातें करने लगा। दोनों फ्रान्सीसी बिना रुके ऊपर चले गये। कमरा बहुत ही साधारण था। उसमें प्रकाश भी धुंधला-सा था। दोनों अभी बैठने भी नहीं पाये थे कि पीछेकी ओरका द्वार खुला और कमरेमें एक अजनबी आदमीने प्रवेश किया। उसके चेहरे-मोहरे और पहनावेसे काड्रासीन और ब्राण्डसाटेरने ताड़ लिया कि हो न हो, यही बदमाशोंका सरदार

है। जो ग्रिजर्ड और जिम लोकेटका नाम तो सिल्वरमेनने बातचीतके दौरानमें पहले ही बतला दिया था। आगन्तुक व्यक्तिके केमी ग्रिजर्ड होनेमें फ्रान्सीसियोंको सन्देह नहीं रहा। लोकेट और ग्रिजर्ड, दोनों ही नामी थे। लोकेट तो इसलिए कि जवाहरात चोरी जानेके कितने ही काण्डोंमें उसे गिरफ्तार किया गया था और सजा भी हुई थी और ग्रिजर्ड इस तरहके काण्डोंमें कितनी ही बार जेल जाते-जाते बच गया था। यूरोपके कितने ही बड़े-बड़े चोर-सङ्घोंमें ग्रिजर्डका ही दिमाग काम किया करता था। ये दोनों नाम क्वाड्रासीन और ब्राण्डसाटेरके लिए नये नहीं थे।

सौदेकी बातचीतमें ज्यादा समय नहीं लगा। ग्रिजर्डने १० लाख फ्राङ्ककी बात स्वीकार कर ली, अगले दिन फिर मिलनेकी बात तय हुई और यह भी निश्चय हुआ कि उसी मुलाकातके समय उन्हें कुछ मोती दिखलाये जायंगे। बिदा होते-होते ग्रिजर्डने कहा—"आप आश्चर्य करते होंगे कि मैं आपके साथ यह सौदा क्यों पटा रहा हूं। बात यह है कि मैंने आप लोगोंके विषयमें अच्छी तरह जांच कर ली है। मुझे मालूम है कि एण्टवर्पमें ब्राण्डसाटेरकी गुटवर्थसे मुलाकात होनेके बाद आप लोगोंने पुलिसको खबर देनेकी कोशिश नहीं की है और अगर आयन्दा आपने कोशिश की..."

ग्रिजर्डने अपनी जेबमें हाथ डाला। उसमें कोई नुकीली चीज पड़ी थी। शब्दोंकी अपेक्षा उसका शायद कुछ ज्यादा असर होता हो।

× × ×

अगले दिन गुटवर्थ, सिल्वरमेन और दोनों फ्रान्सीसी, सब निश्चित समयपर हेटेन गार्डनमें एक जलपान-गृहमें एकत्र हुए। कुछ समय बाद उन्होंने ग्रिजर्डको दरवाजेके सामनेसे निकलता हुआ देखा। इसपर चारों वहांसे उठे और एक टैक्सीमें बैठकर पहले पिकेडिली और बादमें होलबर्न स्ट्रीटमें एक जलपानगृहमें पहुंचे। वहां ग्रिजर्ड पहलेसे ही उन लोगोंकी प्रतीक्षा कर रहा था। ये लोग एक मेजपर



इस चोरीका सूराग लगानेवाला युवक ब्राण्डसाटेर (हाथमें ओवर कोट लिये हुए) और सुपरिण्टेण्डेण्ट लीच।

बैठे ही थे कि काला टोप लगाये हुए एक अन्य व्यक्ति आया और इन लोगोंके पास बैठ गया।

ग्रिजर्डने एक सिगरेट अपने होठोंमें दबाते हुए कहा—"मुझे दियासलाई चाहिए।"

काले टोपवाले व्यक्तिने जेबमें हाथ डाला और दियासलाईका बक्स मेजपर डाल दिया। ग्रिजर्डने बक्स हाथमें लेते हुए कहा—"धन्यवाद, लाकेट।"

ग्रिजर्डने यह बक्स क्वाड्रासीनको दे दिया और उसने जब इसे खोला, दङ्ग रह गया। उसके सामने मेक्समेयर-वाली मालाके तीन मोती थे। मोतियोंके रङ्ग, आकार-प्रकार, सुडौलपन और आबसे यह विश्वास होते देर न लगी कि यही असली मालाके मोती हैं। क्वाड्रासीनने एक क्षण तक मोतियोंको देखते रहनेके बाद कहा—"हमारा ग्राहक सन्तुष्ट हो जायगा।"

वहीं क्वाड्रासीन और ब्राण्डसाटेरके उसी ट्रेनसे पेरिस चले जाने और रकमके साथ यथाशीघ्र लौटनेका निश्चय हुआ। क्वाड्रासीनने यह भी कहा कि हो सकता

है, ग्राहक भी मेरे साथ आये। इसके लिए एक सप्ताह बाद २३ अगस्तका दिन निश्चित हुआ और स्थान वह फर्स्ट एवेन्यू होटल, जहां दोनों फ्रान्सीसी ठहरे हुए थे। ग्रिजर्डने सिर हिलाकर इन सब बातोंको स्वीकार किया।

रातको फ्रान्सीसियोंने होटल छोड़ दिया और डोवरकी गाड़ीमें बैठकर रवाना हुए। उन्होंने चेनल पार जानेके लिए स्टीमरका टिकट भी ले लिया। इतना ही नहीं, वे स्टीमरमें अपने कपड़े लाकर डट भी गये। इसके बाद उन्होंने देखा कि कहीं कोई उनका पीछा तो नहीं कर रहा है। उन्हें जब यह निश्चय हो गया कि कहीं कोई नहीं है, तब वे दोनों स्टीमर छूटनेसे पहले ही उतर आये और अपना नाम बदलकर ग्रेट ईस्टर्न होटलमें जा ठहरे। वहांसे उन्होंने मि० प्राइसको टेलीफोनपर सूचित किया और आध घण्टे पीछे जब वे वहां पहुंच गये, सारा विवरण सुनाया। ब्राण्डसाटेरने कहा—"यह सब हम लोगोंने अकेले ही किया है। अब आप मुझे १५ लाख फ्राङ्कोंके साथ कोई ऐसा आदमी दीजिये, जो खरीदार बन सके।"

× × ×

डबल एम० वाले ठप्पेके सिलसिलेमें नकाशने पुलिसको जो सूराग दिया था, उसके आधारपर १७ अगस्तको सवेरे साइमन सिल्वरमेनकी दूकानमें तलाशी हुई और वहांसे पुलिसने केवल ठप्पा ही नहीं, पारसलकी नकली मुहरोंके चपड़ेसे मिलता हुआ चपड़ा, चपड़ा गलानेका बर्तन और शराबकी आधी बोतल भी बरामद की। इस बोतलपर अंगुलियोंके जो निशान थे, वे पोस्टमैन डब्लू० ई० नेविलीकी अंगुलियोंके निकले। सवेरे यह सब कार्यवाही कर चुकनेके बाद जब डिटेक्टिव कारनिश ग्रेट ईस्टर्न होटलमें गये, ब्राण्डसाटेर और क्वाड्रासीनके प्रयत्नोंका विवरण जानकर उन्हें कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। उन्होंने अपनी सवेरेकी कार्यवाहीका विवरण जब बतलाया, मि० प्राइसने चकित होकर पूछा कि "क्या इसमें पोस्टमैनका भी कुछ हाथ है।"

"जान-बूझकर नहीं। आपको याद होगा कि नेविलीका झुकाव मद्यपानकी ओर है। इस बातका पता सम्भवतः सिल्वरमेनने लगा लिया। इसके बाद चोरी होनेसे छः महीने पहले उसने हेटन गार्डनके ६० नम्बरसे बदलकर अपनी दूकान १०१ नम्बरमें पहुंचा दी। इसका फल यह हुआ कि पोस्टमैनके रास्तेमें मेक्समेयरकी दूकानसे पहले सिल्वरमेनकी दूकान पड़ने लगी। सिल्वरमेन यों तो ९॥-१० बजे अपनी दूकानपर आता था; परन्तु जूनमें उसने ८ बजे ही पहुंचना आरम्भ कर दिया, जिससे पहली डाक बंटनेके समय वह पोस्टमैनसे मिल सके और उसके साथ घनिष्टता बढ़ा सके। मेरा खयाल है कि इसी समयके लगभग सिल्वरमेन पोस्टमैनको शराब पिलाने और दूकानमें अपने प्राइवेट दफ्तरमें ले जाने लगा। इस तरहके अवसरोंपर पोस्टमैन सम्भवतः अपने थैलेको कुछ समयके लिए वहां छोड़ देता होगा। ऐसे ही अवसरोंपर गुटवर्थ और लोकेटको पोस्टमैनके थैलेको देखनेका अवसर मिल जाता होगा। गुटवर्थ और लोकेटने इसी अवसरका उपयोग कर मेक्समेयरके नाम डबल एम० की नकली मुहर बनवानेके लिए असली मुहरपरसे छाप ली होगी और उसपरसे ठप्पा तैयार कराया होगा। और उसके बाद १६ जुलाईको पारसल चुराकर माला निकालने और नकली मुहरें लगाकर उसे यथास्थान रख देनेकी कार्यवाही हुई।" —यह सब विवरण डिटेक्टिव कारनिशने बतलाया।

मि० प्राइसने, जो अभी तक चुपचाप यह विवरण सुन रहे थे, विस्मयपूर्वक कहा—"बड़ी चालाकीसे काम लिया!"

"और चतुराईसे भी।"—करनिशने बतलाया। उन्होंने कहा कि "यह सब अकेले सिल्वरमेनके बसका नहीं है। इस षड्यन्त्रकी सारी बातोंमें ग्रिजर्डका दिमाग था। बीट शुगरके दाने रखने और किसी तरहका धुआं किये हुए बिना ही चपड़ेको गलानेमें उन लोगोंका उद्देश्य पुलिसको यह चकमा देना था कि चोरी फ्रान्समें हुई है।"

चोरीका पता चल जानेके बाद चोरोंको गिरफ्तार करने और साथ ही माल बरामद करनेका प्रश्न उपस्थित हुआ। इन्स्पेक्टर वार्डने इसके लिए योजना तैयार की। इसके अनुसार मि० मेयरने पेरिसके अपने एक मित्र—वहांके जौहरी बाजारके एक अच्छे व्यापारी मि० मेक्स ब्लोच स्पेनियरको इस नाटकमें मालाके खरीदारका पार्ट खेलनेके लिए तैयार किया। क्वाड्रासीनने अपनी स्त्रीके पास पेरिसमें पत्र भेजा और एक तारका मजमून लिख भेजा, जिसे लन्दनमें गुटवर्थके पास भेज देनेकी हिदायत की गयी थी। तारका मजमून यह था—

"जो समय, तारीख और स्थान तय हो गया है, उसी-

पर हमारा खरीदार इस समय कुछ खरीदेगा।—क्वा० और ब्रा०"

× × ×

२३ सितम्बर—फर्स्ट एवेन्यू होटल, ११७ नम्बरका कमरा और दिनके दो बजेका समय—मि० स्पेनियरको बैठे हुए कुछ ही समय बीता होगा कि सिल्वरमेन वहां सबसे पहले पहुंचा। कई मिनट बाद सिल्वरमेन वहांसे चला गया और कुछ समय बाद जब लौटा, उसके साथ ग्रिजर्ड भी था। मि० स्पेनियरको सामने देखकर ग्रिजर्ड सचमुच चकित हो गया। उसने कहा—"मि० स्पेनियर! क्यों! मैंने कभी न सोचा था कि इसके लिए आप यहां होंगे। पहले मालूम होता, तो आपके साथ अब तक कई बार सौदा होता—इन सौदोंमें हम दोनों ही अच्छे रहते।"

ग्रिजर्डने खिड़कीके पास जाकर इशारा किया और एक मिनटमें जिम लाकेट वहां पहुंच गया। उसके पास छः मोती थे। जांचने और तौलनेके बाद मि० स्पेनियरने उन्हें एक लाख फ्राङ्कमें खरीद लिया। ९-६ मोती फिर खरीदनेके लिए क्वाड्रासीनने ग्रिजर्डसे समय मांगा और समूची माला लानेके लिए अनुरोध किया, जिससे उसमेंसे मोती पसन्द किये जा सकें। क्वाड्रासीनकी यह बात खतम भी न होने पायी थी कि पूर्व निश्चित योजनाके अनुसार मि० स्पेनियरने बीचमें ही टोककर कहा—यह ठीक नहीं है। अगली बार आजके आठवें दिन ९ लाख फ्राङ्क लाकर पूरी माला ही क्यों न खरीद ली जाय। इस बीच पेरिससे रकम आ जायगी।

८ दिन बाद तारीख १ सितम्बरको दोपहरसे पहले १०॥ बजे भूगर्भमें चलनेवाली रेलवेके बिनेशा म्यूजियम स्टेशनके ऊपर जमीनपर लिफ्टके पास ब्राण्डसाटेर और क्वाड्रासीन खड़े ही थे कि गुटवर्थ आ गया। कुछ समय बाद सिल्वरमेन और ग्रिजर्ड भी पहुंच गये। ग्रिजर्डने आते ही पूछा—"मि० स्पेनियर कहां हैं?"

क्वाड्रासीनने उत्तर दिया—"नीचे रेलवे प्लेटफार्मपर टिकट खरीदने गये हैं। आपने ही तो किसी एकान्त होटलमें चलनेके लिए कहा था। मि० स्पेनियरने सोचा कि पहलेसे टिकट ले लेनेसे बादमें समयकी बचत हो जायगी।"

ग्रिजर्डने सिर हिलाकर उसपर अपनी रजामन्दी जाहिर की। अभी ये लोग खड़े हुए प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि जिम लाकेट भी आ मिला। उसके आते ही ग्रिजर्डने कहा—"ठीक, अब चलना चाहिए।"

सब लोग एक साथ लिफ्टमें बैठकर नीचे गये, परन्तु जब लिफ्ट नीचे पहुंची, मि० स्पेनियरका कहीं पता भी नहीं था और उनके स्थानपर कितने ही अन्य व्यक्ति थे। पुलिस वहां पहलेसे ही छिपी हुई थी, गुटवर्थ, सिल्वरमेन और जिमलाकेट सबके सब दङ्ग रह गये और बहुत ही आसानीसे पकड़ लिये गये। किन्तु मोती हाथ नहीं आये। अलबत्ता, उन लोगोंकी जेबें उस रकमसे भरी हुई थीं, जिसे तीन मोतियोंका मूल्य चुकानेके लिए ८ दिन पहले दिया गया था।

मि० प्राइसने निराश होकर कहा—"मोती हाथ न आये, तो फिर क्या? इन लोगोंको सजा भी न होगी।"

मि० कारनिशने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—"सजा तो हुए बिना रह नहीं सकती। ये सब नोट चिह्नित हैं।"

× × ×

मोतियोंका पता लगानेके लिए पुलिसने जमीन और आसमानके कुलाबे एक कर दिये। मुल्जिमोंके प्रत्येक रिश्तेदार, मित्र और अन्य व्यक्तियोंको, जिसका किसी तरहका भी सम्बन्ध पाया गया, बुलाकर पुलिसने अच्छी तरह छान-बीन की। ये लोग जहां-जहां आते-जाते थे, वहां भी छान-बीन की गयी; परन्तु किसी तरह भी पता नहीं चला। डिटेक्टिव कारनिशने सोचा—"मोती किसी विश्वासीके पास हैं। अच्छा, डरा-धमकाकर किसी-न-किसी तरह मैं उन्हें निकालकर ही रहूँगा।"

यही हुआ। १६ सितम्बर १९१३ की बात है—इस्लिङ्गटनके आगस्टस हार्न सेण्टपाल्स रोड होकर अपने कामपर जा रहे थे। उन्होंने नालीमें बादामी कागजका एक पारसल देखा। उसमें अपनी छड़ी छेदकर उन्होंने जो उठाया, तो उसमेंसे दियासलाईका एक बक्स निकल पड़ा। हार्नने यह बक्स उठा लिया और खोला। उसमें गुलाबी रङ्गकी कितनी ही छोटी-छोटी गोलियां थीं। गोलियां समझकर उन्होंने दियासलाईका बक्स अपनी जेबमें रख लिया। बीचकी छुट्टीके समयमें उन्होंने वे गोलियां अपने साथी मजदूरको दिखलायीं। साथीने देखा कि 'गोलियों' में छेद हैं। उसने अनुमान किया कि हो न हो, ये किसी मालाके दाने हैं।

यह सोचकर उसने हार्नको किसी थानेमें जानेकी सलाह दी।

हार्नने अपने नजदीकके एक थानेमें जाकर जब मोतियोंको दिखलाया, मुहर्रिर अपनी कुर्सीसे उछल पड़ा और मोती लेकर बड़ी व्यग्रताके साथ गिनने लगा—"एक, दो, तीन...पचपन, छप्पन, सत्तावन—होटलमें खरीदे हुए तीन—एक कहां है ?"

हार्नने दरवाजेके बाहर आधी दूरीपर रुकते हुए कहा--"एक दाना खो गया। दियासलाईमें ये इतने कसे हुए थे कि ज्यों ही मैंने उसे खोला, एक दाना नालीमें गिर पड़ा और बह गया।"

"ठहरो।" मुहर्रिरने चिल्लाकर कहा और उसे पकड़कर मोतियोंके बक्सके साथ पुलिसके बड़े आफिसमें भेज दिया। वहां जांच होनेपर पता चला कि ये मेक्सयमेरकी मालाके मोती थे। पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्टने कहा—वाह रे ईश्वर ! कहां ये मोती और कहां वह नाली !

× × ×

ग्रिजर्ड, लोकेट, सिल्वरमेन और गुटवर्थपर अदालतमें कई महीने तक मामला चला, जिसके अन्तमें १७ नवम्बर १९१३ को ग्रिजर्ड और लोकेटको सात-सात सालकी और सिल्वरमेनको पांच सालकी कड़ी सजा हुई। गुटवर्थको केवल १॥ सालकी सजा इसलिए दी गयी कि वह अन्य अभियुक्तोंके हाथका कठपुतला बना था। दस हजार पौण्डका पुरस्कार ब्राण्डप्राटेर और क्वाड्रासीनने बांट लिया। नक्काश और नालीमें मोतियोंवाला दियासलाईका बक्स पानेवाले मजदूरने जो सहायता पहुंचायी थी, उसके लिए उन्हें भी पुरस्कृत किया गया। ग्रिजर्ड जेलसे बाहर आनेके बाद मर गया। लोकेट रास्तेपर आ गया और गुटवर्थ एवं सिल्वरमेनको तुरन्त ही निर्वासित कर दिया गया, क्योंकि वे दोनों आस्ट्रेलियन थे।

पोस्टमैन नेविलीपर यद्यपि मामला नहीं चलाया गया, तथापि उसे सरकारी कामके समयमें मद्यपान करनेके अपराधमें नौकरीसे अलग कर दिया गया।

पैसा और समाज-रचना

श्री रामस्वरूप व्यास

हमारे दैनिक जीवनमें या समाजके विभिन्न अङ्गोंमें हमें पैसेकी दुरूपी मूर्तिसे काम पड़ता है। समाजमें पैसेका उपयोग दो प्रकारका होता है, जिसमेंसे एकसे तो हम भले प्रकार परिचित होते हैं, परन्तु दूसरे रूप या उपयोगको हम भूल-सा जाते हैं; क्योंकि यह रूप अप्रत्यक्ष होता है। एक रूप या उपयोग तो पैसेका तब होता है, जब हम उसके द्वारा कोई वस्तु या सेवा मोल लेते हैं और अधिकतर हम इसी रूपसे बहुत ज्यादा परिचित होते हैं। परन्तु पैसेका एक और भी रूप होता है, जो पहलेकी अपेक्षा कुछ अधिक ही महत्त्व रखता है। दैनिक जीवनमें सर्वसाधारणका इससे कुछ अधिक काम नहीं पड़ता, इसलिए इसका ध्यान नहीं रहता। यह धनका वह एकत्रित स्वरूप है, जिसे पूंजीके नामसे पुकारा जाता है। इसका उपयोग सीधी तरह मनुष्यकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए नहीं किया जाता—जिस प्रकार मोल लेनेमें होता है—वरन् इसका उपयोग उस प्रकारके कामोंके लिए होता है, जिनका सम्बन्ध वस्तुओंके उत्पादनसे होता है। और इसी प्रकारके उपयोगसे पूंजीके कुछ और उपयोग भी निकले हैं। उनमें मुख्य उपयोग धनका सत्ताके रूपमें करना है।

पैसेकी उत्पत्ति व विकासका थोड़ा-सा अवलोकन करना यहां असङ्गत न होगा। मनुष्य-समाजकी प्रारम्भिक दशामें पैसे जैसी कोई वस्तु न थी। उस समय एक वस्तुका दूसरी वस्तुके साथ विनिमय किया जाता था और उसका कुछ अनुपात होता था। सबसे प्रथम कुछ अधिक उपयोगकी वस्तुओंने या श्रृङ्गारके उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंने पैसेका काम किया। पहली श्रेणीमें नमक और दूसरी श्रेणीमें कौड़ियां वगैरह थीं। धातुओंके चलनी सिक्के तो मनुष्यकी सभ्यताके विकासमें बादमें आये। शुरूमें प्रायः सभी धातुओंके सिक्के होते थे, लोहे तकके। सोने-चांदीका व्यापक उपयोग तो बादमें हुआ। पहले-पहल इनकी मांग

भी सम्भवतः शृङ्गारके लिए ही हुई होगी, और बादमें ही इन्हें मुद्राका रूप मिला। सोने-चांदीमें स्वयं कोई ऐसा गुण नहीं है कि ये मूल्यवान हों और सिक्केकी दृष्टिसे तो आज इनका हमारी राजस्विक व्यवस्थामें पहलेकी अपेक्षा बहुत कम मूल्य रह गया है। आज तो कागजके छपे हुए नोट भी सोने-चांदीके समान मूल्यवान होते हैं। सोनेके उपयोगके सम्बन्धमें कुछ बातें कही जाती हैं, जिनके कारण यह मूल्यवान माना जाने लगा था। इसकी मोहक चमक इसका एक कारण थी। यह जल्दी घिसता भी नहीं। इसके साथ ही इसकी मात्रा भी अधिक न पायी जाती थी। इसलिए अर्थशास्त्रके नियमोंके अनुसार इसकी उत्पत्ति कम और मांग ज्यादा होनेके कारण यह मूल्यवान माना जाने लगा। आज यदि संसारमें सोनेकी कोई भारी खान निकल आये और यह बहुतायतसे मिलने लगे, तो इसका मूल्य गिर जायगा। दुर्लभ होनेके कारण ही इसका अधिक मूल्य है।

मुद्राके सम्बन्धमें एक और बात भी ध्यान देने योग्य है, वह यह कि सोने, चांदी या चलनी नोटोंका कोई अपना मूल्य नहीं होता। इनका मूल्य इस कारण होता है कि इनके पीछे समाज या सरकारकी स्वीकृति या 'गुडविल' होता है। समाज या सत्ता इन्हें स्वीकार करेगी, इसीपर चलनी नोटों या सिक्कोंका दारमदार होता है। ज्यों ही कोई समाज-व्यवस्था या सत्ता अस्त-व्यस्त होने लगती है, उसके सिक्कोंके मूल्यमें भी गड़बड़ होने लगती है।

इतनी पैसे-सम्बन्धी मूल बातें जानकर हम पैसेके मुद्राके रूपको न लेकर, इसके दूसरे रूपकी ही ओर ध्यान देंगे। वह इसका पूंजीका स्वरूप है। यहां हमें पूंजीवाद या साम्यवादका विवेचन नहीं करना है, वरन् यह देखना है कि पूंजीका समाज-व्यवस्थापर कैसा प्रभाव पड़ता है। सबसे पहले हमें यह देखना है कि यह पूंजी कहांसे आती है और क्या इसका रूप होता है। अर्थ-शास्त्रके बहुत-से पण्डित यह मानते हैं कि पूंजी 'बचत'का एक एकत्रित रूप है। इसकी मिसाल इस तरहसे दी जा सकती है—एक घसियारेने चार आनेकी घास बेची। दो आनेकी उसने अपनी जरूरतकी चीजें—आटा, गुड़, तैल, कपड़ा वगैरह—ले लीं। बाकी दो आनेका उसने खुरपा खरीद लिया। यह दो आने जो उसकी बचत थी, यही उसकी पूंजी थी, जो उसने अपने कारबारमें लगायी। समाजके सङ्गठनकी प्रारम्भिक दशामें पूंजी इसी प्रकारकी होती थी; परन्तु आज तो सामाजिक व्यवस्था विषम हो गयी है और इसमें इस प्रकारकी पूंजीका बहुत महत्त्व नहीं रहा, चाहे अन्तमें सारी पूंजी 'बचत' का ही एक रूप हो। आजकल तो पूंजी एकत्र करनेका काम बड़े बैङ्कों या 'फाइनेन्स कारपोरेशनों' द्वारा होता है और इनकी बागडोर आधुनिक संसारके धनिकोंके एक बुद्धिजीवी वर्गके हाथमें होती है। इस वर्गके हाथमें आज संसारकी लगभग सारी पूंजीकी व्यवस्था है और इनकी सत्ता किसी बड़े राजा-महाराजा या किसी प्रथम श्रेणीके राज्यसे कम नहीं। इसी वर्गमें राकफेलर, फोर्ड, राथ्सचाइल्ड इत्यादि आ जाते हैं। ये पैसेके साधारण उपयोगकी प्रतिमूर्ति नहीं, वरन् पैसेकी सत्ताके उपयोगकी मूर्ति हैं और आज संसारकी बड़ीसे बड़ी सरकार इनके हाथोंमें नाचती है। संसारमें पैसेका यह रूप ही सार्वभौम सत्ता है।

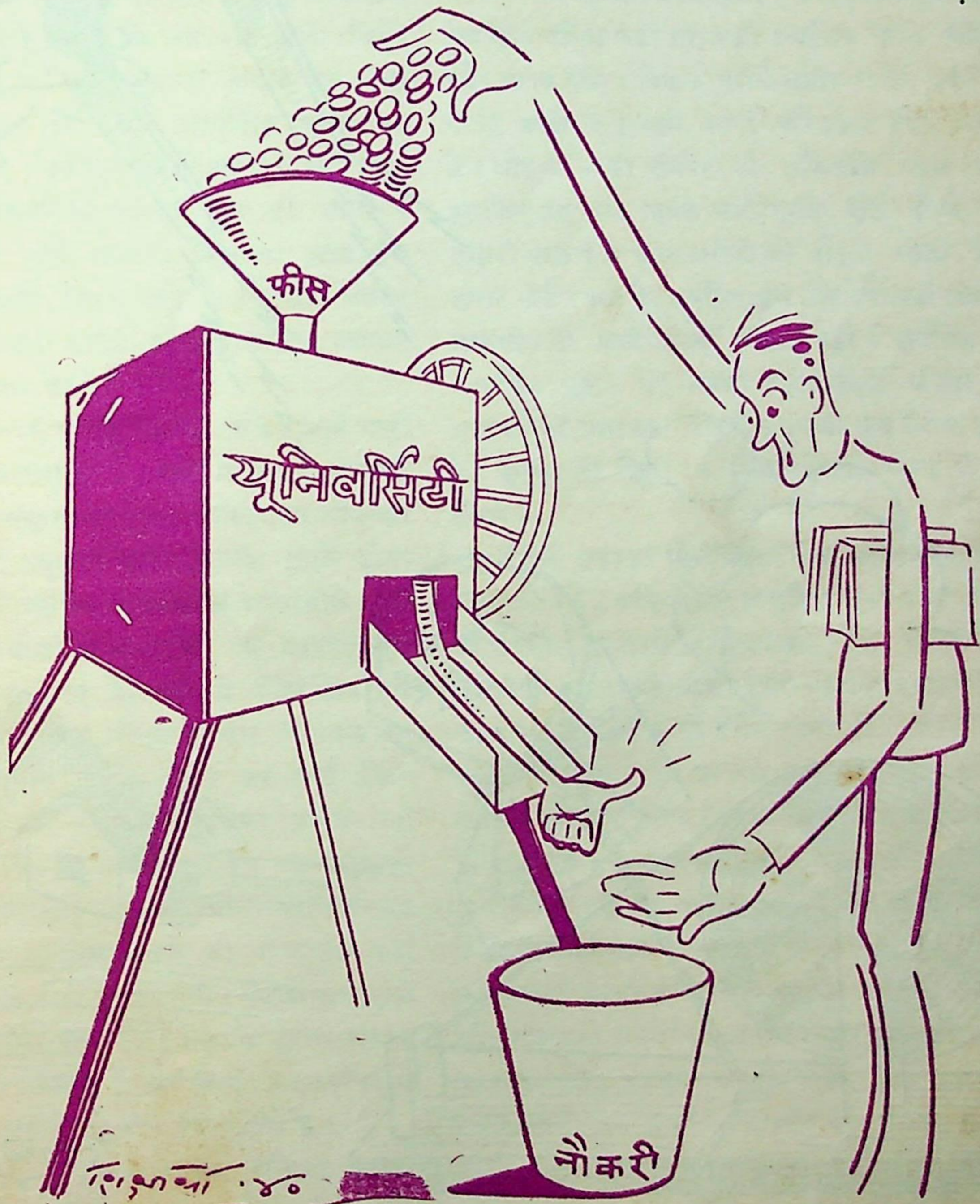
साधारण व्यक्तिको, जो पैसेका उपयोग केवल अपनी आवश्यक इच्छाओंकी पूर्तिके लिए करता है, पैसेके इस रूपका कुछ ख्याल भी न आ सकेगा; क्योंकि वह उसके अनुभवके क्षेत्रके बाहरकी वस्तु है। परन्तु जीवनकी सामान्य आवश्यकतायें पूरी होनेके बाद मनुष्यकी जो इच्छा होती है, वह यह कि दूसरों द्वारा उसका आदर-मान हो। इस सम्मानके प्राप्त करनेके कुछ साधन हैं। असाधारण विद्वत्ता या असाधारण अच्छाई मनुष्यको यह मान प्राप्त करा सकती है; परन्तु यह बहुत नगण्य लोगोंमें होती है। प्राचीन कालमें शूरता-वीरता इस प्रकारका सम्मान प्राप्त करा सकती थी। आजकल इस प्रकारका सम्मान प्राप्त करा सकनेका मुख्य साधन है धन। यहां धन एक प्रकार की सत्ताका प्रतीक है। धनके द्वारा केवल वस्तुयें ही नहीं खरीदी जा सकतीं, वरन् दूसरोंसे अपनी इच्छा द्वारा काम भी कराया जा सकता है। धनके, पैसेके इस स्वरूपने आज हमारी समाज-व्यवस्थापर एकछत्र विजय प्राप्त करके हमारे समाजको धनका क्रीतदास बना दिया है। आज समाजमें रङ्कसे लेकर धनिक तक धनके दास हैं। रङ्क तो है ही, परन्तु धनिक भी है; क्योंकि धन इस प्रकारकी मानसिक स्थिति पैदा कर देता है, जिसमें मनुष्य धनका उपयोग नहीं करता, वरन् स्वयं धन द्वारा हांका

आता है। सत्ताके विषयमें कहा गया है कि ज्यों-ज्यों सत्ताका पोषण होता है, त्यों-त्यों सत्ताकी आकांक्षा बढ़ती जाती है। और इसका कोई अन्त नहीं आता। अन्त तभी आता है, जब मदमें आये हुए मेंढकके समान वह फूलकर फट जाती है।

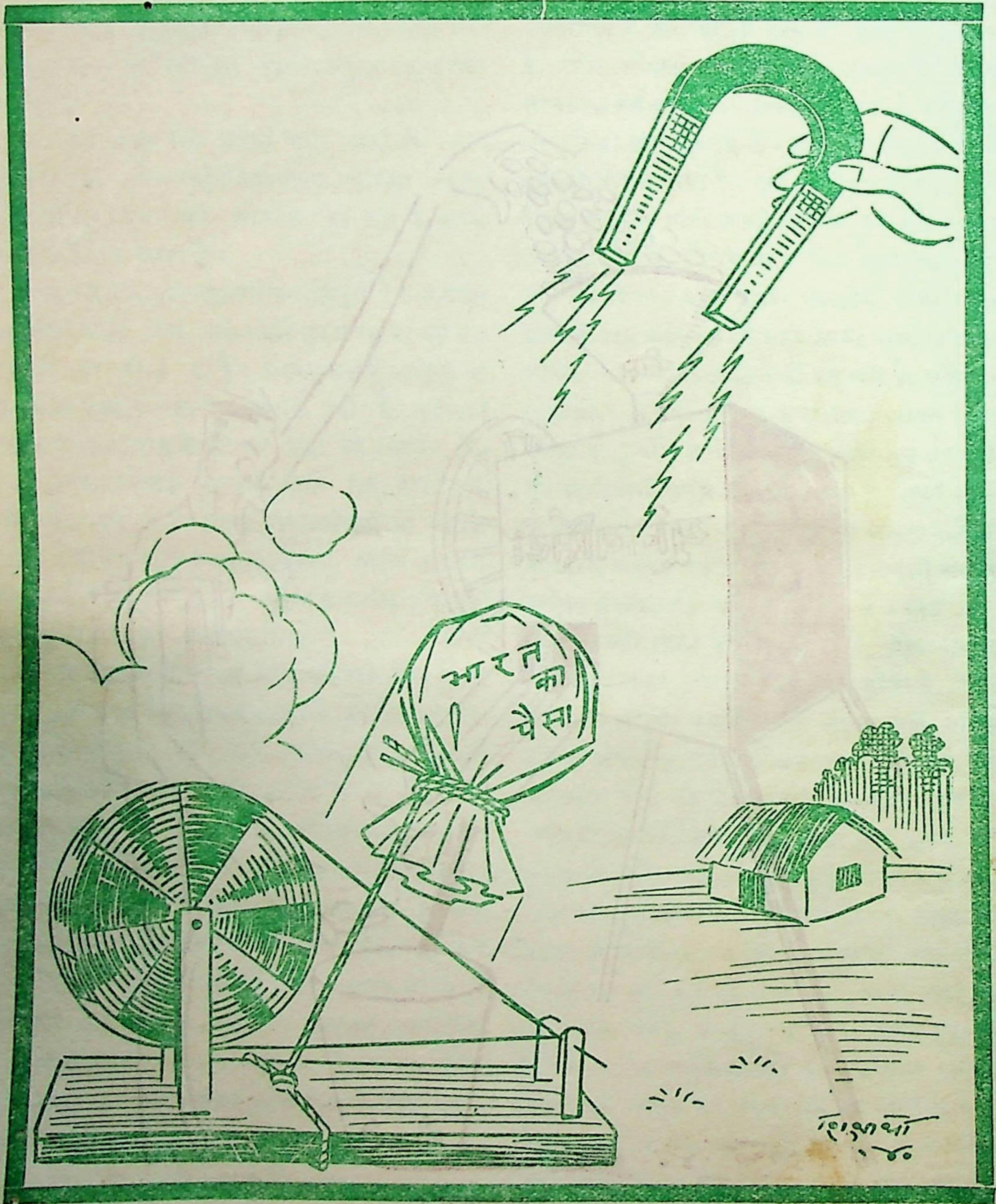
आज हमें सत्ताके इसी स्वरूप तथा समाजके ऊपर होनेवाली इसकी क्रिया-प्रतिक्रियाओंका अध्ययन करना है तथा शक्तिके जिस रूपकी उपासना हो रही है, उसमें क्या दोष है, यह देखना है।

आज सारे संसारकी व्यवस्था धनाभिमुख है। समाज-व्यवस्थाका आदि, अन्त, धर्म, नीति सब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें धन या पैसेमें ही है। आज संसारमें मनुष्य या मनुष्योचित दूसरे गुणोंका कुछ स्थान नहीं है; मनुष्यका केवल उतना ही स्थान है, जो धन द्वारा उसे मिलता है। बिना धनके मनुष्यके अच्छेसे अच्छे गुण बाहर नहीं आते, और धनके कारण नीचसे नीच व्यक्तिकी भी समाजमें पूजा होती है। आज समाजमें धनका प्रभुत्व आवश्यकतासे अधिक बढ़ गया है और जीवनके प्रत्येक विभागमें इसके घृणित रूप हमें देखनेको मिलते हैं। धन, जिसका आविष्कार मनुष्यके लाभ, सुख तथा सुविधाके लिए किया गया था, आज एक ऐसा दैत्य बन गया है, जो केवल मनुष्यको अपनी इच्छापर ही नहीं नचाता, वरन् मनुष्यकी नीच प्रवृत्तियोंको उत्तेजन देकर, उसके अपने द्वारा ही उसका अपना संहार करा रहा है। आधुनिक नर-संहार पैसेका एक खेल है। यह दैत्य मनुष्य द्वारा परिचालित न होकर मनुष्यको ही अपनी इच्छानुसार घसीटता है। यह ऐसा 'फ्रेङ्केन्सटीन' है, जिसने अपने जनकके नाशका ही बीड़ा उठाया है, और निकट भविष्यमें ऐसी आशा नहीं है कि मनुष्य इस दानवपर काबू पा सकेगा। इसके लिए तो मनुष्यको अपनी पहचान—मनुष्यताकी पहचान करनी पड़ेगी, और आज उसमें इतनी शक्ति दिखाई नहीं देती। उसकी अन्तर्दृष्टि नष्टप्राय हो चुकी है।

हम प्रायः यह मानते आये हैं कि पश्चिमके लोग हमारी अपेक्षा अधिक भौतिकवादी हैं और हम उनसे कहीं अधिक आध्यात्मिक हैं। लेखक इस प्रकारकी धारणाके लिए कोई भारी कारण नहीं देखता। हो सकता है कि देश-कालके कारण थोड़ा अन्तर भले ही हो; परन्तु आज तो हम भी धनके उतने ही क्रीतदास हैं, जितने पश्चिमके लोग। धनने हमारी सामाजिक व्यवस्थापर भी वैसा ही कुत्सित प्रभाव डाला है, जैसा पश्चिमपर। अन्तर हो सकता है केवल परिमाणका। वर्ण-व्यवस्था नष्ट-सी हो चुकी है और ब्राह्मणत्वकी महिमा हम भूल चुके हैं। आज तो हम सभी वैश्य या शूद्रोंकी श्रेणीके योग्य हैं। कुछ लोगोंका विचार होगा कि शायद महात्मा गांधी अपनी प्रेरणासे एक ऐसे नये समाजकी रचना कर रहे हैं, जिसमें धनके लिए उतना मान और स्थान नहीं हो, जितना प्रायः दूसरी जगहोंमें पाया जाता है। प्रचारके लिए चाहे कुछ भी कहा जाय; परन्तु वास्तवमें तो गांधीजी भी धनके प्रभावसे नहीं बच सके हैं; चाहे साधारण लोगोंको दूरसे उनका सादा व त्यागमय जीवन बड़ा भला लगता हो। और उनके अनुयायियोंमेंसे एक-आधको छोड़कर बाकी सभी धनके उतने ही गुलाम हैं, जितने दूसरी जगह पाये जाते हैं। उनका जीवन दूसरोंकी अपेक्षा अधिक सादा और कम खर्चवाला होता है; परन्तु वह धनकी सत्ताके रूपके कुत्सित प्रभावसे तो नहीं बच पाये हैं। वह भी धनकी सत्ताका उसी प्रकार उपभोग करते हैं, जिस प्रकार दूसरे लोग। उस समय उनकी भी वही दृष्टि होती है, जो किसी धनिक या बैङ्कके डायरेक्टरकी; मनुष्यताकी दृष्टिको वह भूल-सा जाते हैं। गांधीजीके आसपासके लोगोंमें धनका व धनिकोंका वैसा ही मान होता है, जैसा दूसरी जगह; उन्हें प्रथम स्थान मिलता है, उनके दोष क्षम्य होते हैं। इतना ही नहीं, कुछ संस्थाओंका, जिन्हें गांधीजीने जन्म दिया है, सञ्चालन भी प्रायः उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार व्यापारी संस्थाओंका। जनतासे भले ही सेवाके नामसे सहायता प्राप्त की जाती हो; परन्तु यहां सेवाका वह महत्त्व नहीं है, जो होना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि समाज जिन अर्थोंमें रुपयेका ठीक उपयोग समझता है, वैसा नहीं होता या किसी एक या थोड़े-से व्यक्तियोंके लिए उसका उपयोग होता है। परन्तु समाजकी साधारण मनोवृत्तिको पीछे छोड़ उनमें यह हिम्मत और दृष्टि नहीं आयी कि वह इसका उपयोग केवल मनुष्यताकी दृष्टिसे करें। यहां रुपयेका उपयोग चाहे किसीके व्यक्तिगत लाभके लिए भले ही न होता हो; परन्तु उस सत्ताका, जो रुपये



देना-पावना !



खद्दरका वजन

चुम्बक-विरोधी अस्त्र

द्वारा मनुष्योंको प्राप्त होती है, मनचाहा उपयोग तो होता ही है। इसका यह अर्थ नहीं कि गांधीजी या उनके अनुयायी सच्चे नहीं हैं। शायद कुछ लोग ऐसे भले ही निकल आयें; परन्तु सबपर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता और गांधीजीपर तो जरा भी नहीं। परन्तु आजकलके धनतन्त्रकी नींव इतनी गहरी है कि वह भी इसके विषैले प्रभावसे मुक्त नहीं हैं। धनकी व्यवस्था केवल एक बाह्य व्यवस्था नहीं है। यह तो हमारे मानसिक व्यापारका गहन अङ्ग बन गयी है। इसलिए इसकी बहुत-सी बातें बिना शङ्का किये, बिना विचारे ही स्वीकार कर ली जाती हैं और उसमें दोष भी नहीं लगता। मनुष्यता आज इस धनकी व्यवस्थासे इतनी पिछड़ गयी है कि हमें उसका विचार भी नहीं आता, हमारे सारे मानसिक व्यापार धनके अङ्कोंको ही लेकर चलते हैं।

धनकी इस व्यवस्था, खासकर इसकी शक्तिके रूपमें भारी परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है। धन मनुष्यका उपयोगी साधन है, न कि शोषणका शस्त्र; परन्तु आज तो धन शोषणका मुख्य शस्त्र हो रहा है। इसका कार्य अप्रत्यक्ष रूपमें होता है, इसलिए इसके अमानुषिक रूपको हम आसानीसे नहीं पहचान सकते। किसीकी हत्या करनेमें, रक्त बहानेमें एक प्रकारका ऐसा प्रभाव पड़ता है, जो हमें रोमाञ्चित कर देता है; परन्तु धीरे-धीरे बिना भोजन या कम भोजनके या जीवनकी दूसरी आवश्यकताओंके बिना जब कोई तिल-तिल करके मरता है, तब हमारे ऊपर वैसा प्रभाव नहीं पड़ता। स्वतन्त्र वातावरण न मिलनेके कारण जब मनुष्यकी मानसिक या आध्यात्मिक मृत्यु हो जाती है, तब वह हत्यासे कहीं अधिक भयानक होनेपर भी रोमाञ्चक नहीं होती, और हमें उतनी भारी नहीं लगती। पैसेकी सत्ता इसी छिपे रूपसे भयङ्कर संहार कर रही है। इसके कारण अच्छेसे अच्छे व्यक्ति भी नीच हो जाते हैं और धनका मद कभी-कभी तो मनुष्यको पशुकी श्रेणीसे भी नीचे गिरा देता है।

इस सम्बन्धमें नये मापदण्ड लाने तथा कुत्सित वातावरणमें परिवर्तन करनेकी बड़ी भारी आवश्यकता है। सबसे प्रथम जो बात ध्यान देनेकी है, वह यह कि किसी भी व्यक्तिको केवल इसलिए मान न मिलना चाहिए कि वह धनिक है। यदि मनुष्यकी दृष्टिसे उसमें गुण हो, तभी वह मानका पात्र हो सकता है। धनिकका मान करके हम मनुष्यताकी तौहीन करते हैं तथा सत्ताका मान करते हैं। इस प्रकार मान प्राप्त करनेके लिए, मनुष्यताको भूलकर सब धनिक होनेकी दौड़में उचित-अनुचित सब प्रकारके साधनोंको काममें लाकर आगे बढ़नेका प्रयत्न करते हैं। यह भी निश्चित ही है कि सब कोई धनिक नहीं हो सकते। धनिक होंगे थोड़े लोग और गरीब होंगे अधिक। गरीब-अमीर व्यक्ति बदल जायंगे; परन्तु उनके अनुपातमें भारी परिवर्तन नहीं आनेवाला है। और गरीबीकी नींवपर ही धनिकोंके महल बने हैं। इसलिए जब हम धनके मायामृगके पीछे दौड़ते हैं, तब हमारी परछाईंके साथ गरीबी भी दौड़ती रहती है। वह हमारे पीछे रहती है, इसलिए हम उसे देख नहीं सकते, और मायामृग तो कभी हाथ आता नहीं। इसलिए पैसेकी अत्यधिक पूजा, या धनको मनुष्यताकी अपेक्षा अधिक महत्त्व देना समाजका कोढ़ है। इसकी छूत फैलती ही जाती है। इसका तो किसी न किसी प्रकार अन्त लाना ही होगा।

पैसेकी सत्ताका किस प्रकार अन्त लाया जाय, यह बात विचारणीय है। यदि पैसेकी अत्यधिक पूजा छोड़ दी जाय, तो उसकी महत्ता आधी रह जायगी। फिर भी लोगोंको भूखे मारकर—या इसकी धमकी देकर—अपनी इच्छाके अनुसार काम करानेकी शक्ति तो पैसेमें रहेगी ही। परन्तु धीरे-धीरे इसका भी अन्त लाया जा सकेगा। जहां आज पैसेवालोंकी सत्ताको कायम रखनेके लिए लाखों मनुष्योंका संहार होता है, वहां उसे नष्ट करनेके लिए भी बलिदान करना पड़े, दुःख सहना पड़े, तो यह करना चाहिए। आज मनुष्यता पैसेके बन्धनमें पड़ी छटपटा रही है। किसी न किसी प्रकार उसे स्वतन्त्र करना ही होगा—भारी बलिदान करके भी, और मनुष्यको धनका क्रीतदास न बनाकर उसका स्वामी बनाना होगा। यह करनेके लिए उसी धार्मिक हठ, सात्विक वीरता, सहन-शक्ति और बलिदानकी आवश्यकता होगी, जो मनुष्यको आत्मोन्नतिकी ओर प्रेरित करती है, भौतिक सुखोंकी ओर नहीं। मनुष्यताको उसके अपने ही आविष्कृत किये हुए बन्धनसे छुटकारा दिलाकर संसारको मानवके लिए उपयुक्त बनाना ही होगा।

तांबेके वे टुकड़े

श्री रामसरन शर्मा

देहली पहले न देखी थी। नये शहरमें आकर घूमनेका शौक होता ही है। इसीलिए कपड़े पहनकर मैं भी चल निकला।

जिधर मुंह उठे, उधर ही को।

उस सैरमें क्या देखा—कुतुबकी लाट, लाल किला, लाट साहबका महल, चांदनो चौक? हां, सब कुछ, और इन सबके पीछे छिपा वह गोल-गोल—पैसा।

आप भी सुनियेगा?

घरसे निकलते ही देखा, पड़ोसके एक साहब बिगड़ रहे हैं। उनके सामने एक जरा-सा बालक, जिसे स्कूलमें होना चाहिए था, हाथमें झल्ली लिये खड़ा है।

"दूर ही कौन है?... सब्जीमण्डीसे यहां तकके दो पैसे कम हैं?"

झल्लीमें तरकारी भरी थी।

सब्जीमण्डीसे...कमसे कम दो मील तो होगी ही!

और उस दो मील उस बोझको ढोनेकी मजदूरी थी—दो पैसे!

अगर मुझसे कहा जाता कि उस झल्लीको दो मील ले चलो, तो शायद मैं न ले जा सकता था।

पर, मुझे तो न ले जानी थी। मैं आगे बढ़ गया।

उस अथाह जन-राशिके बीच बढ़ा चला जा रहा था। एकदम एकाकी, मानो निर्जन घने वनमें।

न जाने बड़े शहरमें मुझे ऐसी भावना क्यों होती है? मैं उसमें खोया-सा, एक बहते क्षुद्र तिनके समान प्रतीत करता हूं...बड़े-बड़े भीमकाय मकान मानो मुझपर टूट पड़ेंगे...ट्राम मानो मुझे चूर-चूर कर देनेको दौड़ी आ रही है।

सभी भागे चले जा रहे थे। कहां जाना है सबको? किसकी खोज है?

सामने ही मेरीना होटल था। चकाचक प्रकाश, बैण्ड, हरे-हरे लान।

बाहर फुटपाथपर दफ्तरसे लौटकर आते बाबू चले जा रहे थे। एक प्रकार बोझसे लदे-से, झुके कन्धे, थका-सा मुख।

दिन-भर, कलम घिसाई करनेपर, तीस दिन बाद, कहीं पेटमें रोटी डालने योग्य पैसे मिल पाते हैं।

यही तो है हमारी आज कलकी सभ्यता। लाट साहबके ऊंचे, विशालकाय दैत्यके समान दफ्तरमें दबे-से, काममें लगे, यह चींटियोंके सदृश मानव!

वहीं उस भीड़भाड़में कुछ भिखमङ्गे भी थे। फटे कपड़े, जर्जरित तन, लूले-लंगड़े..."दाताका भला हो" की सदा लगानेवाले।

जी ऊब गया। न जाने कैसा-सा लगने लगा।

लौटकर...तांगेवालेको पैसे देकर फिर पुरानी दिल्ली चला आया।

शाम हो गयी थी। बाजारमें अनगिनत बिजलियां जल रही थीं।

चहल-पहल...शोर, भीड़।

उस भीड़में देखा, एक कपड़ोंसे ढकी-ढकायी नारी मूर्तिको।

मैली-सी।

पास आकर उसने कहाः—

"बाबूजी, कुछ दीजियेगा। भगवान् भला करेंगे।"

मैं आगे बढ़ गया।

सहसा ही उसने घूंघट उलट दिया।

न जाने कैसी-कैसी भावनायें आंखोंमें भरकर उसने कहा, "बाबूजी...!"

मैंने अकचकाकर देखा—वह युवती थी, पीली, रोगिणी-सी।

ओह! और उस मुखपर एक बनी-बनायी मुस्कराहट... भद्दी-सी...उसने जड़ ली थी।

मैं कांप उठा।

जल्दीसे पैसा उसके हाथपर रखकर चल दिया। मुड़कर देख भी न सका कि वह क्या कह या कर रही थी।

अब क्या करूं ? कहां जाऊं ? यह भीषण शहर न जाने कहां तक फैला था ?

मेरी भौचक्की-सी आंखोंने, या मेरे नये होनेने ही शायद एक मनुष्यको, जो आस-पास ही मंडरा रहा था, मुझसे बोलनेका साहस दिया ।

"मैंने कहा बाबूजी..." उसने कहा ।

मैंने उधर ध्यान दिया ।

मैले कपड़े पहने, वह दुबला-पतला मनुष्य, एक अजीब प्रकारसे मुझे देख रहा था ।

"कहीं चलियेगा ?" उसने पूछा ।

"कहां ?" मैंने आश्चर्यसे पूछा ।

वह हंस पड़ा—वही सड़ी-सी हंसी ।

"मैंने कहा, कहीं भी, सैरको ।"

सैरको ! कहां ?

उसके कुछ कहते-कहते मैंने सोचा, चलो भी, हर्ज ही क्या है । कहीं न कहीं तो चलना ही है । इसके साथ जानेमें ही क्या हर्ज है ।

मैं चल दिया ।

न जाने कहां-कहांकी गलियोंको पारकर घूमते-घामते हम चले जा रहे थे ।

एक गलीमें...

अब क्या कहूं ? मैंने वहां देखा, एक स्त्री चिल्लाकर कुछ कह रही थी ।

पैसे कम मिले थे । वह कुछ आदमियोंकी भीड़—उन शुष्क, मानव-कङ्कालोंकी—उसे देख रही थी ।

ओह ! मेरा जी मतलाने लगा ।

मुड़कर मैं चल दिया, भागकर ।

सीधा, न जाने कैसे, सड़कपर दम लिया ।

सामने ट्राम थी ।

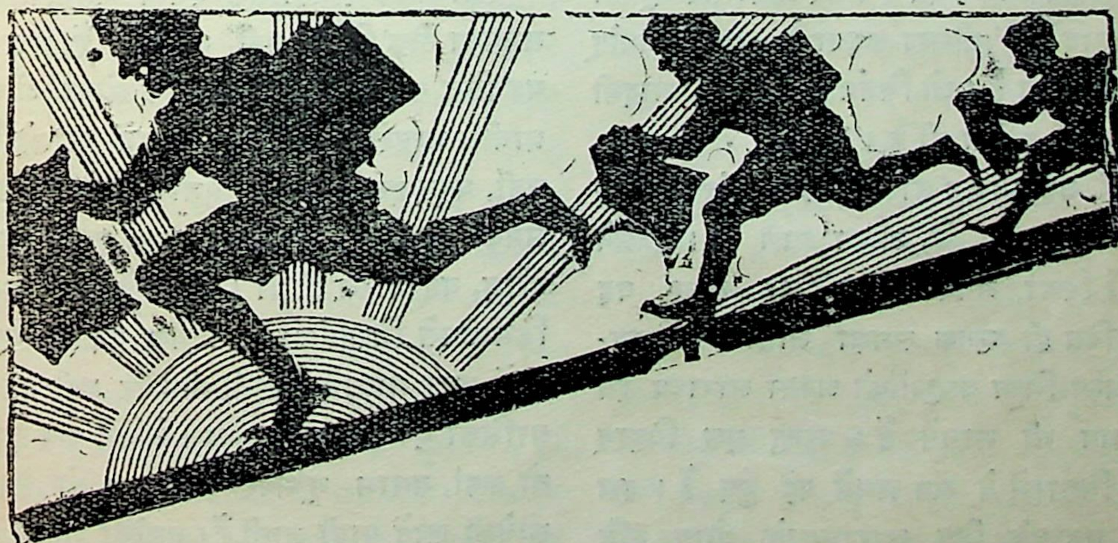
उसमें बैठकर कुछ जानमें जान आयी ।

अघाकर सांस ली—कि कण्डक्टर सामने आ पहुंचा ।

उसे दिये—वही पैसे...

और, और...ट्राम दौड़ने लगी ।

—



मानवोंका आराध्य देव—सोना

श्रीमती गङ्गादेवी वर्मा

'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति' की कहावत बहुत प्राचीन है। काञ्चनकी प्राप्तिके लिए मनुष्यने कल्पनातीत साहस दिखाया है। यहां तक कि वह अपनी मनुष्यताको छोड़कर कभी-कभी घोर पाशविक ही नहीं, पैशाचिक आचरण करनेमें भी संकुचित नहीं हुआ। पिता, माता, भाई, स्त्री, पुत्र, पति एवं पत्नी तक इसी काञ्चनके फेरमें पड़कर परस्पर विश्वासघात कर चुके हैं, और कहते हैं, ऐसे उदाहरणोंसे प्रत्येक देशका इतिहास भरा पड़ा है। यही नहीं, अच्छे-अच्छे दिग्गज पण्डितोंने भी समय-समयपर इसकी महिमा गायी है। भौतिकवादके उन्मादसे उन्मत्त यूरोपमें तो इसकी उपासनाने आत्मिक उन्नतिको बिलकुल ही दबा दिया है। इंगलैण्डके सुप्रसिद्ध धातुशोधक महामति अग्रीकोलाने अपनी पुस्तकमें कई यूनानी विद्वानोंकी उपासनायें उद्धृत की हैं। उनमेंसे एक कहता है—"ऐ प्लूटस, तेरे सिवा इस संसारमें और कौन सबसे सुन्दर देवता है? जब तक मेरे ऊपर तेरा अनुग्रह है, तब तक चाहे मैं कितना ही दुष्ट होऊं, सज्जन ही माना जाऊंगा।" दूसरा कहता है—"ऐ प्लूटस, तू ही सबके लिए देव है। तेरे सिवा सब मूर्खता है, वृथा वितण्डावाद है।" तीसरा कहता है—"धन अर्थात् सुवर्ण ही आदमी बनाता है। जो निर्धन है, वह न तो आदमी है और न उसकी कोई प्रतिष्ठा ही है।"

कहां तक कहें, यह काञ्चन ही भौतिक जगत्के मानवोंका एकमात्र आराध्य देव है, उनका प्राण है। जिसने इसका संग्रह नहीं किया अथवा जो नहीं कर सका, वह इस संसारमें जीवित ही मृतक समझा जाता है। भिन्न-भिन्न लोगोंने भिन्न-भिन्न वस्तुओंको अपना आराध्य देव माना है और अब भी मानते हैं। परन्तु एक विद्वान् कहता है—"मेरे विचारमें वे सब भ्रममें पड़े हुए हैं। इस चराचर जगत्में मनुष्यके लिए आराधनाके योग्य यदि कोई देवता है, तो केवल सोना और चांदी ही। जो कोई अपने घरमें इनकी स्थापना कर लेता है, वह सब कुछ कर सकता है। संसारके सभी पदार्थ उसके चरण चूमते रहते हैं। न्याय, सत्य, धर्म आदि सब हाथ बांधे उसकी सेवा करते रहते हैं।"

इसी सुवर्णकी चकाचौंध भारतवर्षमें सिकन्दर, महमूद गजनवी, नादिरशाह, अहमदशाह दुर्रानी, तैमूर, पोर्चगीज, फरासीसी आदिके पदार्पणका कारण हुई है। इसी सुवर्णकी नित्य धधकती हुई तृष्णाने अमेरिका और अफ्रीकाके असंख्य मूक अधिवासियोंका इस संसारसे नामोनिशान मिटवाया है। इसी सुवर्णका लोभ भारतको अभी तक पैरों-तले दबाये हुए है।

इस सुवर्णका इतिहास बहुत प्राचीन है। मनु आदिकी स्मृतियोंमें भी सोने और चांदीका उल्लेख आया है। भारतवर्षमें हजारों वर्ष पहले सोनेकी खानोंके अस्तित्वका पता चलता है। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्लिनीने अपने इतिहासमें लिखा है कि डारडेनिया-निवासी ऐसे देशमें निवास करते हैं, जो भारतवर्षमें सबसे अधिक सोनेकी खानोंवाला है। नारायणोंके देशमें, जो केलीटेपिया पहाड़के पश्चिममें है, चांदी और सोनेकी खाने हैं, जिनको भारतवासी खोदते हैं।

आधुनिक ऐतिहासिक यद्यपि प्लीनीके इस वृत्तान्तके समयका ठीक निर्णय नहीं कर सके हैं, तथापि ये उदाहरण यह सिद्ध करनेके लिए यथेष्ट हैं कि सोना और चांदी अति प्राचीन कालसे मनुष्यके व्यवहारमें आ रहे हैं। इतना ही नहीं, वरन् इस बातके भी प्रमाण मिले हैं कि उस प्राचीन समयमें सोनेकी उत्पत्तिका मुख्य स्थान, हमारा आजका दरिद्र, यह भारत ही था। दक्षिण देश, उड़ीसा, बरार एवं हिमालयसे निकलनेवाली प्रत्येक नदीकी रेणुकामें सोनेकी रेणुयें प्रचुर मात्रामें मिलती थीं और यही उस समय सोनेकी प्राप्तिका एकमात्र साधन था। लेकिन अब इसकी नदियोंमें तो कहां, तमाम भूमिपर भी केवल दो-तीन स्थानोंमें ही सोनेकी खानें पायी जाती हैं। बर्माका शुमार भी अब इसीके अन्दर है।

भारतवर्षके अतिरिक्त थ्रेस, स्पेन और स्मर्नामें भी सोनेकी खानें पाये जानेका कई जगह उल्लेख मिलता है।

प्राचीन फिनिशियोंका इतिहास इन्हीं स्थानोंको सुवर्णरहित करनेके प्रयासोंसे भरा हुआ है। प्रत्येक जातिने अपने उत्थानके समय समस्त संसारके प्रकट सुवर्ण-रौप्य स्थानोंपर अपना आधिपत्य जमानेकी चेष्टा की थी।

मध्य युगके इतिहाससे पता चलता है कि पुर्तगालमें संवत् १२०९ विक्रमीय तक अरबके लोग टागसी नदीसे सोना निकालते थे। इसी वर्ष पुर्तगालवासियोंने अरब-निवासियोंको परास्त कर देशसे निकाल दिया और तबसे १६०७ विक्रमीय तक इस नदीसे उन्हें लगभग ९७ लाख रुपयेका सोना प्राप्त हुआ। स्पेनकी गाडल किवर, डोरा आदि नदियोंमें, राइन नदीमें और हंगरी देशमें भी यद्यपि थोड़ा-थोड़ा सोना मिलता था; परन्तु वह भारतवर्ष एवं जापानकी, उस समयकी, सोनेकी पैदावारके सामने कुछ भी नहीं था। इन पाश्चात्य लोगोंको भारत और जापानके इस सुवर्ण-प्राचुर्यका परिचय वहांसे जानेवाले तिजारती जहाजोंसे बराबर मिलता रहता था। अतएव एक विद्वान्का मत है कि कोलम्बस जापानकी सोनेकी खानों और भारतीय द्वीपपुञ्जोंके मसालोंकी प्राप्तिके सरल मार्गकी खोजमें ही निकला था। परन्तु बिना ढूंढ़े ही उसके परिश्रमके फलस्वरूप अमेरिका देशका आविष्कार हो गया। अमेरिकाका यह आविष्कार उस समय किसीको इतना आश्चर्यजनक नहीं प्रतीत हुआ और उस समय स्वप्नमें भी कोई यह अनुमान नहीं करता था कि भविष्यमें, इस नवाविष्कृत दुनियाके सम्बन्धको दृढ़ करनेके लिए, आजकलके ५० हजार टनके भारी जहाज भी इस दुनियामें बनाये जा सकेंगे। परन्तु धीरे-धीरे इस दुनियाका प्रेम सबको फंसाता ही गया। यह प्रेमजाल इस दुनिया अथवा यहांके निवासियोंसे सम्बन्ध नहीं रखता था। जैसे-जैसे इस दुनियामें सोने-चांदीकी खानोंका पता लगता गया, वैसे ही वैसे इधर लोग आकर्षित होते गये। सच बात तो यह है कि इस आविष्कारने इन दोनों, पीत और श्वेत धातुओंके जीवनमें युगान्तर ही उपस्थित कर दिया। सोने और चांदीके प्रलोभनमें पाश्चात्य लोग इस नवाविष्कृत दुनियाकी ओर पूर्णरूपसे आकृष्ट तो हुए; परन्तु उनके उस समयके कृत्य इतने घोर पाशविक थे कि उसकी याद आज भी हृदयको रोमाञ्चित कर देती है। वे कृत्य इन जातियोंके इतिहासमें सदैव कलङ्कके रूपमें अमर रहेंगे।

कोलम्बसने अमेरिकाकी जिस भूमिपर सबसे पहले अपना पैर रखा था, वह प्रान्त 'हिस्पेनिओला' नामसे प्रसिद्ध है। पैर रखते ही वहांके निवासियोंके सोने-चांदीके गहनोंकी चमकसे उसकी आंखें चौंधिया गयीं और वह ठीक उलूककी भांति उस चमकते हुए सूर्यको अपने लम्बे पर फैलाकर ढक देनेके लिए व्याकुल हो उठा। भोलेभाले वहांके आदिम निवासी कोलम्बसके साथियोंकी क्रूर दृष्टिसे बेतहाशा भय-विह्वल हो गये। ऐबा प्रान्तके एक स्थानमें तो यहां तक नौबत पहुंच गयी कि वहांके राजाने इनके आगमनकी अशान्तिसे घबड़ाकर अपनी समस्त प्रजाको एकत्र कर, यह उपदेश दिया कि गौराङ्ग प्रभु जिस देवकी उपासना करते हैं, उसीको प्रसन्न करनेके लिए सब अत्याचार भी करते हैं। उनका वह देव कौन-सा है, यह बतानेके लिए उसने चद्दरसे ढकी और सोनेसे लबालब भरी हुई एक टोकरी खोलकर सब लोगोंको दिखाया और कहा, यही उन सबका आराध्य देव है। इसीके लिए वे जीते और मरते हैं। इसी देवताकी खोजमें वे हमारे प्रान्तमें भी आ निकले हैं। अतः इस देवको प्रसन्न करनेके लिए हमें आज नाच-रङ्गसे इसकी खूब भक्तिके साथ पूजा करनी चाहिए, जिसमें यह अपने पुजारियोंसे हमारी भक्ति और पूजाका वृत्तान्त कहे और हमें न सतानेकी सिफारिश करे। इतना सुनते ही सब नाचने-कूदने लगे। जब वे सब नाच-कूदकर थक गये, तब उक्त राजाने कहा कि ईसाइयोंका यह देव यदि हमारे पास रहा, तो हमारी भी खैर न होगी। अतएव इसे पत्थर बांधकर नदीमें डुबा देना ही अच्छा है, जिससे यह इतने गहरेमें डूब जाय कि इसकी खोजमें हम फिर न सताये जायं। यों कहनेके बाद उसने सब सोनेके गहने नदीमें फेंक दिये।

इस हिस्पेनिओला प्रान्तसे स्पेन और पुर्तगालके निवासियोंको यद्यपि १७०९ विक्रममें लगभग १९ लाख रुपयेका ही सोना प्राप्त हुआ; परन्तु हजारों स्पेन-निवासी मरे और अमेरिका-निवासियोंके खूनकी तो नदियां ही बह गयीं। कहा जाता है कि इस अवधिमें लगभग २२ लाख आदिम अमेरिकनोंकी आहुति दे दी गयी। जैसे-जैसे अमेरिकाके अन्य प्रान्त आविष्कृत होते गये, वैसे-वैसे उनकी सोने और चांदीकी खानोंपर अधिकार जमानेके लिए लाखों अमेरिका-निवासियोंकी जानें ली गयीं। इस तरह इन

अविश्वासकी कहानियोंसे ही हमारा सोने और चांदीका इतिहास बना हुआ है। पनामा प्रान्तके हत्याकाण्डका हाल स्वयं एक पादरीने, जो हत्या करनेवालोंके साथ था, आंखोंसे देखकर लिखा है। उक्त पादरी साहब हत्याओंकी भीषणतासे इतने डर गये थे कि पापको प्रकट किये बिना उनसे नहीं रहा गया। उनका कथन है—"एस्पीनोला नामक एक स्पेनिश योद्धाने ८० हजार स्वर्ण पीसो* के लिए उक्त प्रान्तमें ४० हजार अमेरिका-निवासियोंकी हत्या की, अर्थात् प्रत्येक कत्ल किये गये मनुष्यसे उसे केवल दो 'पीसो' प्राप्त हुए।"

"बेशकीमती धातुओंका इतिहास" लिखनेवाले विद्वान् लेखक डेलमरने लिखा है—"जब स्पेनिशोंका एक दल सरदार पिज्ञारोके सेनापतित्वमें अमेरिकाके टापूसे होकर गुजरा, तो वहांपर उसने एक मन्दिरको लूटा, मूर्ति तोड़ डाली और जो कुछ सोना या चांदी मिली, सब ले लिया। फिर वे आगे टुम्बेज शहरमें गये। वहां उनकी बड़ी खातिर की गयी। परन्तु सामने ही सात कोटवाले सङ्गीन गढ़को देखकर वे सहम गये, उसे लूटनेकी एकदम हिम्मत न कर सके और वहां अपने अनुकूल सुभीतेके समयके लिए प्रतीक्षा करते हुए शक्ति बढ़ाते रहे। दैव-संयोगसे इसी अर्सेमें वहांका राजा मर गया। उसके लड़कोंमें झगड़ा उठ खड़ा हुआ। पिज्ञारोने एकका पक्ष लेकर तुरन्त पेरू प्रान्तपर चढ़ाई कर दी। जिसका पक्ष लिया था, उससे राजकुअंरको मिलनेकी सूचना दी। बेचारा राजकुअंर ५००० निःशस्त्र सिपाहियोंके साथ मिलने गया। इन सिपाहियोंके सोने-चांदीसे लदे हुए जिरह-बख्तर देखकर पिज्ञारो उनको लूटनेका मोह रोक न सका। उसने उनको लूट ही तो लिया। राजकुअंरको भी गिरफ्तार कर लिया। राजकुअंरने यह जानकर कि इन लोगों-का आराध्य देव स्वर्ण है, उस तहखानेको, जिसमें वह कैद किया गया था, अपनी ऊंचाई बराबर सोनेसे भरकर अपनेको छुड़ाया। कहते हैं, उस सोनेकी कीमत ५। करोड़ रुपयेके लगभग थी।" स्पेन-निवासियोंके आक्रमण-के समय पेरूकी जनसंख्या १।। करोड़के लगभग थी; पर अब घटते-घटते केवल १० लाख ही रह गयी है। क्या भारत-पर नादिरशाह, महमूद शाह आदिके हमले इससे भी भयङ्कर थे?

सोनेकी पैदाइशमें मेक्सिको, पनामा और पेरूके पश्चात् ब्रेजिल प्रान्तका नम्बर आया। यहां सोनेके प्रथम आविष्कार-के बाद लगभग १८५ वर्षों तक उसे प्राप्त करनेका कोई निरन्तर सतर्क उद्योग नहीं किया गया। परन्तु जब यहांसे बदमाशोंके सिरताज लोग भी जहाजके जहाज सोना भर-कर ले जाने और अपनी मातृभूमि पुर्तगालमें पुनर्निवास करने लगे, तो सरकारने भी करवट बदली। तभीसे उक्त लूटके मालका पांचवां भाग, बतौर राजकर, उन लोगोंसे वसूल किया जाने लगा। इतना ही नहीं, केली-रचित मुद्रा-व्यवस्था-सम्बन्धी पुस्तकमें, इस सम्बन्धमें, इस प्रकार लिखा है—"नदियोंमें पायी जानेवाली स्वर्ण-रेणुपर यद्यपि सभीका अधिकार था; परन्तु उसे प्राप्त करते ही प्रत्येक मनुष्य सरकारी शोध-गृहोंमें, जो हरएक प्रान्तमें सरकारकी ओरसे स्थापित थे, उसको शुद्ध करवानेके लिए कानूनन् बाध्य था। यहांपर राजकरका पञ्चमांश रखकर बाकी रेणुका शुद्ध की जाती और उसका पाटला बना दिया जाता था। इस पाटलेकी तोल, टञ्च और नम्बर आदि सब छापकर बतौर प्रमाण-पत्रके मालिकको दे दिया जाता था। उस समय इस पाटलेकी कीमत १५०० रीस प्रति $\frac{1}{1}\frac{1}{2}$ अंश शुद्ध आक्टेवकी मानी जाती थी। यह पाटला फिर रियो-डीज नेरियो शहरकी सरकारी टकसालमें सिक्के ढालनेके लिए भेजा जाता था।"

अमेरिकाके आविष्कारने जिस प्रकार संवत् १५५० विक्रमाब्दमें स्वर्णकी पैदावारमें युगान्तर उपस्थित कर दिया था, ठीक उसी प्रकार १९०५ वि० की घटनाओंने भी हल-चल मचा दी। उस समय तक स्वर्णकी वार्षिक आय लगभग १५ करोड़ रुपयेकी कूती जाती थी। इस वर्ष अमे-रिकाके केलीफोर्निया प्रान्त और आस्ट्रेलियामें सोनेकी अक्षय खानें निकल आयीं। अमेरिकाकी इन खानोंका परिचय इस समय कोई नया नहीं मिला था। कोर्टीज योद्धाने, जो संवत् १५७५ वि० में स्पेनसे काफिला लेकर अमेरिका आया था, इन खानोंका वर्णन किया था। ये खानें उस समय तक न जाने किस कारणसे छिपी पड़ी थीं। जिस कोर्टीजने अन्यत्र चांदीकी खानोंपर

* १ पीसो लगभग ४७½ पेनी—३) के बराबर होता है।

कब्जा जमानेके लिए अत्याचारोंकी हद कर दी थी, उसीने इन खानोंको जानकर भी अपने अधिकारमें लानेको चेष्टा नहीं की, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। इन खानोंमें इतना माल निकला कि तीस ही वर्षमें इनकी सोनेकी कुल आमदनी लगभग ३३ करोड़ तक पहुंच गयी। तबसे ये खानें सुवर्ण-संसारमें एक प्रधान उपजाऊ खानें रही हैं।

इसके यद्यपि कई प्रमाण हैं कि आस्ट्रेलियाकी नदियोंमें सोना रेणु-रूपमें प्राचीन कालसे ही मिलता चला आता था; परन्तु वहांके आदिम निवासियोंने लगकर उसे निकालनेकी कोई चेष्टा नहीं की। संवत् १८९७ वि० के लगभग काउण्ट स्ट्रेलेकीने इन नदियोंमें सोना होनेकी सूचना सरकारको दी। परन्तु वह उस समय चुप कर दिया गया। इसका कारण यह था: कि वहांपर उपनिवेश बसाया जा रहा था और उसके लिए लगभग ४५००० आस्ट्रेलियन गिरफ्तार किये जा चुके थे। इस समाचारसे उन कैदियोंमें अशान्ति फैलनेकी पूरी आशङ्का थी। संवत् १९०८ वि० में श्री हारग्रीवसने सिडनी शहरके १०० मील पश्चिम बसे हुए एक गांवके पास ही धूप जमायी और उसे धोकर सोना प्राप्त किया। वहां तभीसे यह बात प्रसिद्ध हो गयी। उसी वर्ष विक्टोरिया प्रान्तमें भी सोना निकला। यह फरवरीकी बात है। यह खबर कुछ ही महीनोंमें इतनी प्रसिद्ध हो गयी कि इस सालके अक्टूबर तक लगभग ७००० मजदूर सोनेकी तलाशमें लगा दिये गये। सालके अन्त तक लगभग १६००० मजदूरोंने मिलकर १॥ करोड़ रुपयेका सोना वहां निकाला। दूसरे ही साल इन मजदूरोंकी संख्या १॥ लाख हो गयी और पैदावार ३० करोड़ रुपयेके लगभग पहुंच गयी। इतनी पैदावार फिर कभी इन खानोंमें नहीं हुई।

रूसकी सोनेकी खानें लगभग १८३१ विक्रमीयसे ज्ञात थीं। परन्तु बहुत अर्से तक उनकी देखरेख और कब्जा सरकार ही के हाथमें रहा। नतीजा यह हुआ कि खानें लगभग १८४९ वि० तक कुछ विशेष उन्नति नहीं कर सकीं। इस वर्ष सरकारकी ओरसे व्यापारियोंको उन्हें खोदनेके लिए प्रोत्साहित किया गया, और तभीसे उनकी पैदावार बढ़ने लगी। सच पूछिये तो रूस और ट्रान्सवाल ही ऐसे देश हैं, जहां सोनेकी खानें खोदनेका एक स्वतन्त्र व्यवसाय है। अन्यत्र तो अन्य धातुओंके लिए खानें खोदी जाती हैं और उनमें सोना भी मिल जाता है। रूसके मुख-प्रदेश और पश्चिमी तथा पूर्वी साइबेरिया प्रान्तमें सोनेकी खानें हैं।

अफ्रीकाकी सोनेकी खानोंका इतिहास भी बड़ा रोचक है। यहांकी बोअर जातिके लोगोंने सबसे पहले सोनेकी खानोंका पता लगाया था।

× × ×

संसारकी आज तककी सोनेकी उत्पत्तिका अन्दाज लगाना एकदम असम्भव है; क्योंकि प्राचीन लेखकोंने इस विषयकी ओर जैसा चाहिए, वैसा ध्यान नहीं दिया। इतना ही नहीं, उस समय देशोंके पारस्परिक सम्बन्ध भी इतने कम और विच्छिन्न थे कि इस प्रकारका पता रहना ही असम्भव था। इसी प्रकार यह बतलाना भी एक प्रकारसे असम्भव ही है कि किन-किन देशोंमें सोना आज तक मिल रहा है। जो सुवर्णाभूषण प्राचीन खण्डहरों या भग्नावशेषोंमें दबे हुए मिलते हैं, उन्हींके आधारपर उन देशोंमें सोनेकी उत्पत्तिका अनुमान कर लेना भारी भूल है; क्योंकि अति प्राचीन कालमें भी सुवर्ण आजकलकी भांति अपना घर छोड़कर दूरस्थ देशोंमें जाता था। चाहे जो हो, हमारा यह अनुमान करना किसी प्रकार अनुचित नहीं है कि संसारके प्रत्येक युद्धने, सोनेको पैदावारपर सदैव अपना प्रभाव डाला है। कारण, युद्धके समान अशान्तिके समयमें, जब प्रत्येक मनुष्यको अपनी जान और मालका भय बना रहता है, देशकी सम्पत्ति-स्वरूप ऐसी खानोंकी खुदाई जारी रखना कठिन ही नहीं, असम्भव था और अब भी है। इतना ही नहीं, वरन् सैनिकोंकी कमी पूरी करनेके लिए ऐसे अवसरपर खानोंसे मजदूर तक हटा लिये जाते हैं। हां, पिछले ४०० वर्षोंमें सोनेकी कितनी पैदावार हुई है, इसका अनुमान लगानेके लिए कई मध्यकालीन लेखकोंके ग्रन्थोंमें अङ्क प्राप्त होते हैं। वे अङ्क यद्यपि कई कारणोंसे पूर्णतया विश्वास-योग्य नहीं हैं, तथापि स्थूल रूपसे एक अन्दाज लगानेमें हमारी सहायता अवश्य करते हैं। विक्रमकी २० वीं शताब्दीके प्रारम्भसे इन अङ्कोंको रखनेके यथोचित प्रयत्न किये गये हैं और तबसे हमें सोनेकी आमदनीका ठीक-ठीक हिसाब मिल जाता है। इन अङ्कोंको

एकत्र करने और क्रमबद्ध रखनेका सबसे अधिक श्रेय संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाको है। वहां प्रति वर्ष टकसालकी ओरसे इन मूल्यवान धातुओंके अङ्क प्रकाशित किये जाते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि इस अमूल्य धातुके सन्धानमें मनुष्यने घोर सङ्घर्ष किया है, लेकिन भूगर्भमें इतने गहरे दबे हुए चांदी-सोने जैसे गुरुतर पदार्थोंको प्राप्त करना मनुष्य-की शक्तिके लिए एक प्रकारसे असम्भव ही होता, यदि स्वयं उस प्रकृतिने, जिसने इन सब पदार्थोंको जन्म दिया है, इन्हें ऊपर निकाल फेंकनेका भार अपने ऊपर न लिया होता। प्रकृतिने इस विषयमें मनुष्यकी असाधारण सहायता की और कर रही है। उसकी इस सहायताके शस्त्र भूकम्प, ज्वालामुखी आदि घटनायें हैं, जो क्षण-मात्रमें जलके स्थानपर थल और थलके स्थानपर जल, पहाड़के स्थानपर गर्त और गर्तके स्थानपर पहाड़ कर देती है। भूगर्भ-विशारदोंके मतसे हमारा हिमालयमें पर्वत भी इसी प्रकारकी एक घटनाका प्रत्यक्ष प्रमाण है। ऐसी ही किसी दैवी घटनाने हमारी इस मूल्यवान धातुको भूमिके केन्द्रस्थ दबे स्थानसे निकालकर सतहपर फेंक दिया होगा, और भूगर्भ-शास्त्रके मतसे यही अब इनकी खानोंके पाये जानेका इतिहास है।

बन्दी विहङ्गम

उड़ रहा था नील-नभमें मैं कभी स्वच्छन्द होकर !
भर रहा था तरु-निकुञ्जोंमें कलित कल-रव मनोहर !
सरस सद्यः स्फुट कलीसे हो रहा था प्रेम-विनिमय !
कर रहा था मुक्त विचरण मैं मधुर मलयज पवनपर !

उषा देती थी मुझे नित जागरण-सन्देश सुन्दर !
था जगा जाता मुझे प्रातःसमीरण गुदगुदा कर !
पङ्ख-द्वय तब खोल उड़ता था किसी अज्ञात दिशिको !
सुनहरी सन्ध्या-किरणपर लौटता था मुग्ध-अन्तर !

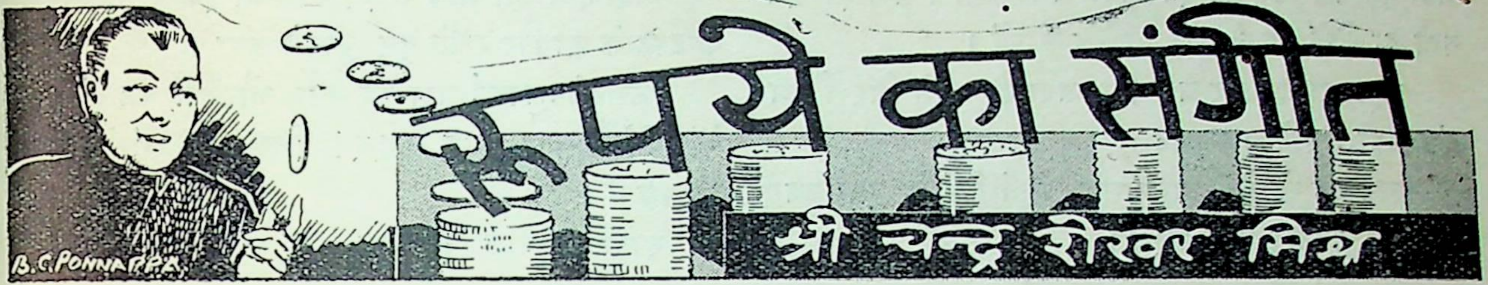
और, तब आकर निलय विश्राम पाता था निमिष-भर !
पुनः गाता स्निग्ध-स्वरसे सान्ध्य-वन्दन-गीत मृदुतर !
मूंद दृग निश्चिन्त निद्रा-लीन होता था निशामें—
शून्य पलकोंमें सरस सुकुमार स्वप्नोंको सजाकर !

आज बन्दी विहगको फिर उन दिनोंकी याद आती !
चित्र-छाया-सी मधुर स्मृतियां नयन-पटपर बनातीं !
खुल रहे सुख-दुख भरे वे रुचिर जीवन पृष्ठ बीते !
और, मानस - अभ्रपर अवसादकी कालिमा छाती !

याद है वह दिन न देखा था कठिन जब लौह-पिञ्जर !
था सदा रहता सुकोमल रागसे जब कण्ठ सस्वर !
व्योमपर, भूपर, प्रकृतिकी गोदमें उन्मुक्त था मैं !
निभृत वनमें, नीप-तरुपर था बसा लघु नीड़ सुखकर !

नीलिमा नभकी बुलाती; आज कैसे उड़ चलूं मैं ?
क्षितिजका आह्वान; कैसे मुक्तिका वरदान लूं मैं ?
हरित वन, द्रुम-राजि क्षण-क्षण दूरसे सङ्केत करते।
लौह-पिञ्जर तोड़ कैसे मुक्त दिशिको उड़ चलूं मैं ?

—जितेन्द्रकुमार।



रुपये चांदीके टुकड़े ।

गोल-गोल, सुन्दर-सुन्दर ।

मशीनसे निकलते हुए तप्त लाल-लाल, और उनकी खन्-खन्, खनन्-खनन् ध्वनि, टकसालकी अभेद्य दीवारोंसे टक्करें मारकर हालमें गूंज रही थी। चमचमाती रुपयोंकी ढेरियां, उन्हें बटोरते हुए मजदूरोंके कठोर काले-काले हाथ, बच्चोंके सुकुमार कोमल हाथ और औरतोंके सुहाग-भरे हाथ।

रुपये गा रहे थे; रुपये हंस रहे थे ।

उन मजदूरोंकी आंखें सिक्कोंकी चमकती ज्योतिपर अटकी-सी, भूखी-सी गड़ी थीं, जिन्हें मजदूरीमें चन्द टुकड़े महीनेमें मिल जाते हैं और एक जून रोटीके वैसे ही टुकड़े—वे हजारों जोड़े आश्चर्य-भरी आंखें, मौन भाषामें पूछ रहीं---'बोलो-बोलो, तुम कहां जाते हो, हमारे हाथोंसे निकलकर हंसते-गाते इठलाते-से ? हम निर्माणकर्ता—'

लेकिन वे चांदीके टुकड़े गूंज रहे थे, खन्-खन्-खनन्-खनन् एक ही स्वरमें—

× × ×

बैङ्कके काउण्टरपर...

रुपये नाच रहे थे...खन्-खन्, खजाञ्चीके हाथोंमें उसकी अंगुलियोंकी टकोरोंपर उछल रहे थे, ठन्-ठन्, ठनन्-ठनन्...

अमीरोंकी जेबोंमें, सुन्दरियोंके बटुओंमें और चपरासियोंके कन्धोंपर रुपये चल रहे थे, तेजीसे सरपट, मोटरों और तांगोंपर, साइकिलों और रिक्शाओंपर रुपये दौड़ रहे थे, बैङ्कसे निकलकर ।

खजाञ्चीकी आंखें चमक रही थीं ।

काउण्टरपर आ लगा, सुन्दर एक गोरा हाथ, पतली-पतली नाजुक-सी अंगुलियोंमें दबा हुआ नीला चैक—खजाञ्चीने रुपये निकाले और गिन दिये सुन्दरीकी हथेलीपर। सतृष्ण युवतीकी ओर निहारा, आंखें चार हुईं। युवती मुस्करा दी। खजाञ्ची भी आंखोंमें मुस्कराया...रुपयेमें प्रेम है क्या ? प्रेमका देवता--उसी समय खन्-खन्की ध्वनिके साथ जा छिपा रमणीके मनीबेगमें हंसता रुपया—प्रेमका देवता !

दूसरा हाथ काउण्टरपर आ लगा मिल-मालिक अमीरका—कलाईपर सोनेकी घड़ी, अंगुलीमें हीरेकी नगदार अंगूठी। खजाञ्चीने हाथपर रुपये गिन दिये, परिचित-सा भाव भर आंखोंमें। हीरेवाली अंगूठीकी ठोकर लगी, रुपया ठन्न-सी आवाज कर उछला और अंगूठीके हीरेपर क्रोधित हो दे मारा सिर अपना, जैसे रुपया लाञ्छन भर कह रहा था—'तू मेरी खरीदी है !'

सेठने लापरवाहीसे रुपयोंको भर लिया थैलीमें, वजनका अनुभव कर गर्व-रेखा खिंच-सी गयी सेठके चेहरेपर, रुपया चीख उठा—'बदमाश ? शोषक ??'

खजाञ्चीने घूरा, आंखें फिर चार हुईं। बिनय-भरा नमस्कार निकल पड़ा सेठजीकी वाणीसे। खजाञ्ची फिर उसी तरह मुस्कराया...

रुपयेकी प्रभुता...?

एक हाथ फिर आ लगा काउण्टरपर, चपरासीका सांवला-सा, ठिठुरा-सा बूढ़ा हाथ।

नाक-भौं सिकोड़कर खजाञ्चीने देखा चपरासीको---'तनख्वाह चाहता है ?' आंखोंसे पूछा।

लेकिन उसकी आंखें लगी थीं खजाञ्चीके आस-पास बिखरी हुई रुपयोंकी ढेरियोंपर, प्यासी-सी—

खजाञ्चीने दस रुपये फेंक दिये भीख-से...आंखोंमें उपेक्षा भर। बुड्ढेकी अंगुलियोंपर रुपये फिर बज उठे, 'ठन्-ठन्-ठनन्।' काला-सा एक रुपया फेरते हुए चपरासी बोल उठा, 'यह बदल दीजिये ।,

"नहीं अच्छा है...अन्धा है, दिखता नहीं, अभीसे आंखें बुढ़ा गयीं।" खजाञ्ची तमक उठा। चपरासी पी

गया बुढ़ापेके व्यङ्गको, दब गया बिल्ली-सा। कमाईके दस रुपये जा छिपे उसकी फटी पगड़ीके छोरमें।

बुड्ढा सलाम कर चल पड़ा, खजाञ्ची गर्वसे सिर हिला हंस पड़ा...रुपयेका शासन...?

रुपये बज रहे थे---काउण्टरपर, तिजोरियोंमें, इधर-उधर बिखरे-से, ठन्-ठन् ठनन्-ठन् न्।

× × ×

बाजारमें...

बड़ी-बड़ी दूकानोंमें, बरस रहे थे। रुपये—गोल-गोल, चांदीके चमकदार टुकड़े दौड़ रहे थे, इधरसे उधर टकरा रहे थे---अमीर-गरीब, भिखमङ्गों और मजदूरोंसे।

वह लंगड़ा भिखारी लकड़ीके सहारे खड़ा चिल्ला रहा था---'एक पैसा, एक पैसा, बाबूजी एक पैसा।'

टीनके खाली-से कटोरेमें एक अधेला बजा रहा था—'टन्-टन्।' वह अधेला भी भिखारीकी आवाजकी तालपर—

'बाबूजी एक पैसा ?'

'लंगड़ा हूं, बाबूजी एक पैसा ??'

'भूखा हूं, एक पैसा ??' नाच रहा था टीनके कटोरेमें।

लेकिन पैसा चला जा रहा था, लोगोंकी जेबों और मनीबेगोंमें, रमणियोंके बटुओंमें, भिखारीकी आवाजपर व्यङ्ग-सा कसता हुआ।

'बाबूजी एक पैसा!'...भिखारीने अधेला बजाते हुए एक अधेड़ पगड़ीधारी सेठके मार्गमें हाथ बढ़ाकर कहा।

'पागल ! बेवकूफ ?? देखता नहीं—पैसा-पैसा, क्यों कान खाता है ?' पैसा बोल रहा था—

भिखारी कुछ आगे बढ़ा, बस स्टेण्ड तक। अपटूडेट हेटधारी बाबूके सामने कटोरेमें अधेला बजाता हुआ बोल उठा---'बाबूजी एक पैसा।'

'पैसा नहीं है, दूर हट ?'—युवकने कुछ कदम दूर हट मुंह फेरकर कहा।

'होगा बाबूजी, तुम्हारा भला हो।'

'नहीं है, कह दिया ! नहीं है !'...बस आयी, युवक लपककर चढ़ गया बसपर, बैठ गया सीटपर। भिखारीने फिर वही हाथका कटोरा खिड़कीकी ओर बढ़ाया—'अजी बाबूजी, तुम्हारा भला हो, एक पैसा।'

'नहीं है बाबा, जान छोड़!'—जेबसे इकन्नी निकालकर कण्डक्टरके हाथपर रखते हुए युवकने कहा।

भिखारी आश्चर्य-भरा रह गया, और रुपये बज उठे बाबूके मनीबेगमें--'खन्-खन्, खनन् !' भिखारीकी आंखोंने चोरी-सी पकड़ी।

रुपया झूठ बोल रहा था—

× × ×

और उसी सड़कपर—

रिक्शा कुली ढाई मनके सेठजीको अपने कन्धोंपर लादे, फटी-सी बनियाइन पहने, कमरमें धोतीका एक टुकड़ा लपेटे, सरपट रुका। फिसलकर गिर पड़ा। घुटनोंमें चोट लगी। सेठजी लड़खड़ाये। उतरते हुए चिल्ला उठे--'नालायक! बेवकूफ !'

फिर चोट लगी देखकर, आंखोंमें दयाकी महानता भर फेंक दीं कुलीकी हथेलीपर दो अन्नियां, इकन्नियां आपसमें टकराकर बज उठीं--'खन्-खन्।'

'चोट ज्यादा तो नहीं लगी ?' फूटे घुटनेकी ओर देखकर, और दया झलकाकर इकन्नी और गिरी कुलीकी हथेलीपर—

'नहीं।'—कुलीकी आंखें चमकीं इकन्नियां देखकर, सारा दुख दबाकर बोल उठा। लेकिन पीठ फेरते ही घावको सहलाकर रिक्शा कुली चीख उठा।

'अब कैसे मजदूरी करूंगा, आह !'...कुलीके मुखसे सांसके साथ शब्द फूट निकले, इकन्नियां हथेलीपर—वह रो पड़ा, रुपयोंके आंसू...

लेकिन फिर धोतीसे पट्टीका टुकड़ा फाड़, घुटनेपर बांध, रिक्शाके हत्थे पकड़ उठ बैठा।

'पैसे तो चाहिए ही।'--तीन आने अण्टीमें बांधकर, फिर दौड़ पड़ा बाजार, सड़कपर चमचमाती धूप और जलती दोपहरीमें।

हर बार वह सवारी उतारकर अण्टीके पैसोंकी वृद्धि देखता और फिर दुगुने उत्साहसे दौड़ पड़ता। घुटनेकी पट्टी खूनके साथ जमकर चिपक गयी थी, बीच-बीचमें उसे भी सहला लेता। वह दौड़ रहा था, गलियों और कूचोंमें; बाजारोंमें लम्बी-चौड़ी सड़कोंपर। अण्टीमें सिक्के बज रहे थे, उसकी शक्तिका पूंजीभूत रूप ? मानो खन्-खन्, खनन्।

आखिरी सवारी उतारकर रिक्शेवालेने पन्द्रह आने

अण्टीसे निकालकर प्राप्त किया चमकदार रुपया। उसकी आंखें भी चमक उठीं। पहले हथेलीपर, फिर जमीनपर, और अन्तमें पत्थरपर बजाया, रुपया हर बार बोल उठा 'ठन्-ठन्न्-ठन्' और उसीके साथ मानो रिक्शा कुलीका हृदय भी उल्लसित होकर झङ्कार उठा। चल पड़ा गैरेजकी ओर। जैसे ही रिक्शा रखकर बाहर निकला, तख्तपर बैठे ठेकेदारने कहा—'ला चार दिनका किराया।''

''आज तो नहीं, दिवाली बाद।''—मजदूरने जान छुड़ाकर एक पग आगे बढ़ते हुए कहा।

'दिवालीके बादके बच्चे?' ठेकेदारकी तेज आंखें जा पड़ीं, उठी अण्टीपर। लपककर छीन लिया कुलीका रुपया। फिर उसे हाथपर बजाते हुए बोल उठा—'रुपया कमाया है, फिर किराया नहीं देना चाहता; बदमाश!'

रुपया काठकी सन्दूकचीपर गिरा ठन्से और फिर चला गया धीमी-सी आवाज कर ठेकेदारकी पेटीमें। कुलीके प्यासे, थके-से नेत्र ताकते-भर रह गये। रुपयेकी आवाजमें व्यङ्गका-सा अनुभव हुआ। कुलीकी आंखें भर आयीं—

'रुपया? हाय रुपया??' उसकी हर सांस मानो चीख रही थी।

रुपयेका प्रलाप......

रुपया ठिलठिला रहा था!

× × ×

और उस दीवालीकी सन्ध्यामें, बिजलीकी बत्तियों और दीपोंके झिलमिल प्रकाशमें रुपया उमड़ा पड़ रहा था हर ओर, शहरके कोने-कोनेमें।

उस सेठने अपनी तिजोरियां खोल दीं। हजारों चांदीके टुकड़े ढेरियोंमें लक्ष्मीके सामने बिखेर दिये...रुपया हीरों और जवाहिरातोंके साथ दमक रहा था। सेठ लक्ष्मीकी पूजा कर रहा था। चांदीके उन चमकते हुए टुकड़ोंकी अर्चना कर हाथ जोड़ रहा था। और रुपये उस प्रखर प्रकाशमें मुस्करा रहे थे---शायद पागलपनपर, पूंजीकी लालसापर......

दीवालीकी सजावटमें, बिजलीकी जगमगाहटमें, आतिशबाजीकी चमक-दमकमें, गलियों, सड़कों और बाजारोंमें चारों ओर रुपया अट्टहास कर रहा था—अपने स्वरमें झङ्कार कर रहा था। सभीके कानोंमें उसका स्वर गूंज रहा था।

रुपया अपनी सङ्गीतमय झङ्कारसे गूंज रहा था उस शराबकी दूकान और जमे हुए जुआरियोंके अड्डेमें—

बन्द कालरका सफेद जीनका कोट पहने, वह पारसी, अपनी काली शरारत-भरी आंखें मटका-मटकाकर, फट-फट एकके बाद एक बोतलें खोल रहा था। शराबकी गैस-भरी बोतलोंके कार्क उस सकरी दूकानकी छत और दीवालोंसे टकराकर कमरेमें इधर-उधर बिखर रहे थे। और ठीक उसी तरह रुपया उसके काउण्टरपर चला आ रहा था—खिलखिलाता, ठनठनाता। उसके साथ ही साथ पारसी भी मुस्करा रहा था।

'जानी वाकर', 'ह्वाइट हार्स' आदि शराबके नामोंकी आवाजें आ रही थीं शराबियोंके बदबूदार मुखोंसे। उनकी जेबका रुपया उछलकर निकल भागनेको बेचैन था। और वह बरसातकी बूंदोंकी तरह टपक रहा था—पारसीके काउण्टरपर...

ठिलठिलाकर हंस रहा था लोगोंको अपनी पागल बना देनेकी शक्तिपर।

दूकानके दूसरे कोनेमें उस बड़ी मेजके चारों ओर जमा पन्द्रह-बीस आदमियोंमें रुपया घूम रहा था। हां, घूम रहा था, पूरी तेजीसे—ताशके पत्तोंके सहारे। रुपये टेबुलपर बरसते और तीन-चार मिनट बाद एक जोड़ा हाथ उस ढेरीको बटोरता दिखाई देता। उसके साथी हर्षसे चीख उठते, जब वह उन्हें बटोरता। रुपये फिर जेबोंसे निकलकर फर्शपर गिरते, और फिर किसी तीसरेके हाथ जाती हुई वह रुपयोंकी चमचमाती ढेरी! उस समय प्रसन्न और उदासीन भावोंकी चेहरोंपर अजीब-सी धूप-छांह! रुपयेकी हार-जीतके साथ चेहरे रङ्ग बदल रहे थे। और रुपये इस हाथसे उस हाथमें भाग रहे थे, अपनी सङ्गीतमय झङ्कार लिये—'ठन् ठन्-ठन्न्।'

× × ×

'मैं तुमपर जान कुर्बान कर सकता हूं, रश्के!'

रेशमी और चुस्त शेरवानियोंमें लदे-फदे अमीरोंके ऐयाश बेटे! काली शेरवानी पहने हुए उस युवकने नर्तकीकी आंखोंमें आंखें पिरोते हुए कहा।

'और मैं...?' दूसरेने आवाज कसी। पहलेने आंखें तरेरकर दूसरेकी ओर देखा। रश्के नर्तकीकी आंखें झुक गयीं। उसके गोरे गालोंपर क्षण-भरके लिए सुर्खी दौड़ गयी।

और तभी अदापर, प्रेमकी कीमतमें अमीरके बेटेकी जेबसे निकल पड़ा मनीबेग। उसे हाथमें लेकर उसने हिलाया—रुपये अट्टहास कर उठे, नर्तकीके बिजलीकी बत्तियोंके प्रकाशमें जगमगाते लास्यपूर्ण कोठेपर—

और उसी अट्टहासके साथ नर्तकीने नीची दृष्टि किये मुक्त हास बिखेर दिया। मस्तीकी लहर-सी झूम गयी कोठेपर, एक साथ दर्जनों सिर हिल उठे। साथ ही साथ अनेकों मनीबेगोंमें रुपये खनखना उठे। प्रेमका मूल्य चुकानेके लिए...बेचैन रुपये!

तभी युवतीके कण्ठसे वाद्योंकी ध्वनि और घुंघरुओंकी झङ्कारके गीतका स्वर फूट पड़ा—

'सांवलिया मन भाया रे...'

और स्वरके साथ सब 'वाह-वा' कर झूम उठे। रुपये अचकनों और मनीबेगोंमें तड़प उठे खनखनाहटकी ध्वनिके साथ। किसीके हाथमें दो, तो किसीके हाथमें दसका नोट, और वह अमीर युवक दो उंगलियोंपर नचा रहा था सौ रुपयेका नोट।

नर्तकीने और भी मस्तीके साथ गाया, और आंखोंमें एक कटाक्ष भर सौ रुपयेका नोट जाकेटकी जेबके हवाले किया। रुपया नर्तकीके वक्ष-स्पर्शकी मादकतामें बह गया!

एकके बाद एक रुपये ठनकते-इठलाते, नर्तकीकी जाकेटकी जेबमें समाते जा रहे थे। वे उसकी जेबमें नाच रहे थे। घुंघरुओंकी थापके साथ वे अपनी सङ्गीतमय झङ्कार लिये गा उठते!

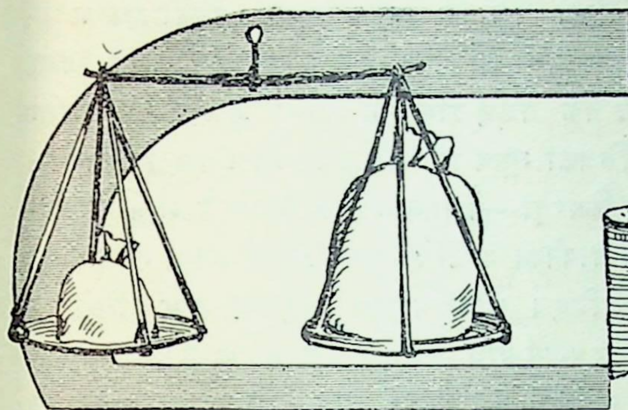
नर्तकीकी जेब ज्यों-ज्यों भारी हो रही थी, त्यों-त्यों वह और भी गतिशील हो नाच रही थी। उसकी प्रत्येक गतिपर रुपये बरस रहे थे ठन-ठन कर—सब बेहोश-मदहोश झूम रहे थे। कोठेकी दीवालें फटी जा रही थीं। रुपये यौवनकी मादकतामें डूबे-से गा रहे थे—रुपये हंस रहे थे—अपनी सङ्गीतमय झङ्कार लिये।

नर्तकीके यौवनकी मादकताका स्पर्श कर, शराबियोंके हाथका खिलौना बन, जुआड़ियोंके बदलते रङ्गोंको देखकर, अमीरोंके पागलपनपर, कुलीकी कटुतापर व्यङ्ग कस, बैङ्कके खजाञ्चीके गर्वपर, अथवा अपने निर्माणकर्ता मजदूरोंके आश्चर्यपर, रुपये नाच रहे थे! रुपये अट्टहास कर रहे थे! अपनी सत्ता, अपने गौरव, अपने साम्राज्यपर।

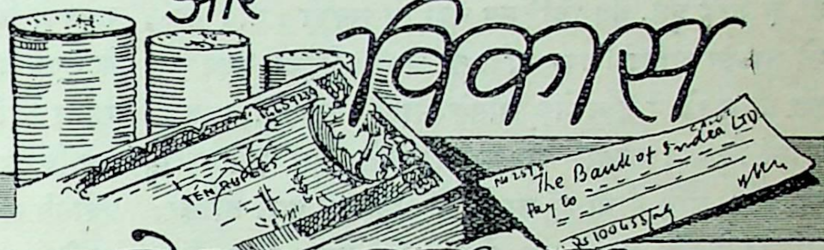
चांदीके गोल-गोल चमकदार टुकड़े टकरा रहे थे, इधर-से-उधर, बाजारों-गलियोंमें—सड़कोंपर, मोटर, तांगों और रिक्शाओंमें रुपये दौड़ रहे थे। बैङ्कके काउण्टरपर, रमणियोंके बटुओंमें, गरीबोंकी अण्टियोंमें, अमीरोंकी तिजोरियोंमें रुपयोंका सङ्गीत गूंज रहा था।

——





पैसे की उत्पत्ति और विकास



प्रो० प्रेमचन्द मलहोत्रा एम० ए०

पैसेसे हमारा अभिप्राय है मुद्रा तथा चलन (करेन्सी)। सिक्के (टकसाली), कागजी मुद्रा (Paper Currency) और अन्य विनिमयके माध्यमको हम पैसेकी परिभाषामें रखते हैं। अतः पैसा यहां द्रव्य (Money) का पर्याय-वाची है।

द्रव्य क्या है ? इसका उत्तर देते हुए एक अर्थशास्त्रीने लिखा है कि द्रव्य वह है, जो कुछ वह करता है (Money is what Money does)। पैसा उसके रखनेवालेको चीजें तथा सेवायें खरीदनेकी शक्ति देता है तथा पैसा वह वस्तु है, जो लोगोंके हर प्रकारके पारस्परिक लेन-देनके भुगतानके काममें आता है। किन्तु हम सदा पैसेको ही सर्वस्व समझते हैं। यह हमारी भूल है। हम वस्तुओं और सेवाओंका उपभोग करते हैं, न कि पैसेका। पैसेको हम खा नहीं सकते। यदि हम किसी रेतीले मैदानमें पर्यटन कर रहे हों और हमें पीनेके लिए वहां पानी न मिले, तो अपनी जेबमेंसे पैसा निकालकर अपनी प्यास बुझा नहीं सकते। पैसा रेतीले मैदानमें पानी खरीदनेकी शक्ति रखता है, पर पैसा पानीकी जगह पिया नहीं जा सकता। जैसे यदि हम देहली जाना चाहें, तो हमारे पास देहलीका टिकट होना चाहिए; किन्तु देहलीका टिकट और देहली एक समान नहीं हैं। टिकट हमें देहली पहुंचानेका साधन है।

पैसा अपना काम किसी और वस्तुमें परिवर्तन होते हुए करता है। जब हम पैसेको खरचते हैं, तो उसे किसी वस्तुमें परिवर्तन करते हैं। पैसेसे हम दवा खरीद लें या डाक्टरसे इलाज करवा लें। जब हम पैसेको व्यवसायमें लगाते हैं, तो हम व्यवसायकी जायदाद और उसके मुनाफेके भागी बन जाते हैं। यदि हम पैसेको सञ्चित करें, तो हम निश्चिन्त हो जाते हैं कि आड़े समयपर हम पैसेसे जो चाहें, मोल ले सकते हैं।

पैसेसे पहले विनिमय वस्तुओंके लेन-देन द्वारा होता था। इस विनिमयकी विधिको परिवृत्ति तथा बारटर (Barter) कहते हैं। यदि मैं गेहूंके बदलेमें जुलाहेसे कपड़ा ले लूं, तो यह विनिमय बारटर कहलावेगा।

परिवृत्ति द्वारा लेन-देन तब तक काम चला सकता था, जब तक कि जीवन बहुत सीधा था, आवश्यकतायें न्यूनतम-न्यून थीं, उत्पादन मण्डीके लिए नहीं; किन्तु निजके तथा छोटी-सी बस्तीके उपभोगके लिए था। जैसे मानव-समाज-का आर्थिक विकास होता गया, वैसे उत्पादन-क्रिया उन्नति करती गयी। आवश्यकतायें बढ़ती गयीं। रहन-सहनका दरजा बढ़ने लगा। मण्डियोंकी उत्पत्ति हुई। शिल्पकारी तथा मशीन-युगमें व्यवसाय देश-व्यापी तथा विश्व-व्यापी हो गया। उत्पादन विशिष्टीकरण (Specialization) के अधारपर आवश्यक हो गया। इन परिस्थितियोंमें परिवृत्ति द्वारा विनिमय आर्थिक उन्नतिको असम्भव बना देता।

पैसेकी उत्पत्तिका कारण परिवृत्ति द्वारा विनिमयकी त्रुटियां हैं। ये त्रुटियां क्या हैं ? एक किसानको एक जोड़ा जूता चाहिए। वह अपने गांवके मोचीके पास अपनी भेड़ लेकर जाता है। किन्तु मोचीको भेड़की आवश्यकता नहीं है।

यदि वह भेड़ स्वीकार भी कर ले, तो आगे प्रश्न यह होगा कि एक भेड़ कितने जोड़े जूतोंके बराबर है। यदि यह बात भी तय हो जावे कि एक भेड़के बदलेमें कितने जोड़े जूते मिलेंगे, तो एक नयी अड़चन खड़ी हो सकती है। किसानको केवल एक जोड़ा जूता चाहिए, और यदि एक भेड़की कीमत हो दो जोड़े जूते, तब विनिमय नहीं हो सकता। यदि भेड़को काटकर आधा किया जावे, तो आधी भेड़का मूल्य तो कुछ भी न रहेगा तथा भेड़ मांसके भाव ही बिकेगी। इस दशामें किसान कहेगा—अच्छा भाई मोची, क्या तुम्हें आलू चाहिए। यदि मोची हां कर दे, तो किसान घरसे लौटकर आलूकी बोरीके बदलेमें एक जोड़ा जूता खरीद सकता है। और जब विनिमय इतना सरल न हो और आवश्यकतायें भी अधिक और भिन्न-भिन्न प्रकारकी हों, तो इस प्रकारके विनिमयसे काम नहीं चल सकता।

परिवृत्ति द्वारा विनिमयकी अपेक्षा पैसे द्वारा विनिमयकी आवश्यकता तो अब हमने अनुभव कर ली। अब पैसा किस प्रकारका होना चाहिए? कोई भी वस्तु पैसेका काम दे सकती है, यदि लोग उसे माध्यमका साधन स्वीकार कर लें। प्रारम्भमें केवल वह वस्तु माध्यमका साधन बन सकती थी, जो साधारण जनताके काममें आनेवाली हो! व्यवस्थित समाजमें तो शासककी आज्ञा द्वारा कागजकी मुद्रा भी चलनका काम करनेकी शक्ति रखती है। प्राथमिक तथा असभ्य समाजमें पशु, सीपी, अनाज, खाल, चावल, चाय, अफीम, चाकू, फावड़ा इत्यादि सभी पैसेके रूपमें प्रयोग किये जाते रहे हैं। किन्तु विनिमयके अनुभव द्वारा यह ज्ञात हुआ कि पैसा उस वस्तुका ठीक बन सकता है, जिसमें निम्नलिखित गुण हों:—साधारण स्वीकृति योग्य; टिकाऊपन (यह गुण सब्जी, दूध इत्यादि वस्तुओंमें नहीं पाया जाता) सजातीयता (Homogeneity)—सब पैसे एक समान रूप, आकारमें होने चाहिए, जिससे उनका पहचानना सुगम हो तथा सब पैसोंका मूल्य एक समान हो; विभाज्यता—इस गुणके होनेसे हम द्रव्यसे थोड़ीसे थोड़ी कीमत और बड़ीसे बड़ी कीमतकी वस्तु खरीद सकते हैं—जैसी हमें आवश्यकता हो। विभाजित होनेमें द्रव्यका मूल्य घटना नहीं चाहिए। हीरेके कटनेसे उसका मूल्य कम हो जाता है; किन्तु सोने-चांदीके कटनेसे उनके टुकड़ोंका मूल्य नहीं घटता; ढोने योग्य (Transportability) यदि लकड़ी तथा लोहेका पैसा बनाया जाय, तो उनका एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना न केवल कष्टदायक होगा; किन्तु उसपर ढोनेके लिए दाम भी लगेंगे और इससे पैसेका अपना निजका मूल्य तथा विनिमय-मूल्य कम हो जायगा; मूल्यकी स्थिरता—पैसा माध्यमका साधन है, अन्य वस्तुओंके मूल्य नापनेकी डण्डी है, अतः इसका अपना मूल्य स्थिर रहना चाहिए। बहुमूल्यवाली धातुओंमें ऊपर लिखे हुए गुण विशेष रूपमें पायी जाती हैं, इस कारण वे द्रव्य बनानेके प्रयोगमें लाये गये हैं। सस्ती धातु—जैसे लोहा, तांबा भी द्रव्यके साधन बने रहे हैं। शुरू-शुरूमें धातुको तोलकर विनिमयका काम चलता रहा; किन्तु धातुओंको ढालकर सिक्कोंका बनाया जाना विनिमयके क्षेत्रमें एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।

सर जार्ज मेकडोनल्डके अध्ययनसे तो यह प्रतीत होता है कि सिक्के बनानेके आविष्कारका श्रेय यूनानियोंको है। ईसा-पूर्व ७०० सन्‌में सिक्के ढाले गये थे। किन्तु चीनके प्राचीन इतिहाससे सिद्ध होता है कि ईसा-पूर्व १०९१ सन्‌में 'चौ' के द्वितीय नरेश चांगने पहले-पहल सिक्का चलाया था। चीनके प्राथमिक सिक्कोंका आकार फावड़े और चाकुओं-जैसा था; क्योंकि सिक्केके आविष्कारसे पहले फावड़े और चाकू द्रव्यका काम करते थे। शुरू-शुरूमें साहूकार अपने नामके सिक्के चलाने लगे; किन्तु बादमें सिक्का बनाना राजाओंका विशेष अधिकार हो गया। समयके अवकाश तथा यन्त्रोंके आविष्कारसे ढलाईका कार्य दिन-प्रतिदिन उन्नति करता गया। किन्तु जब तक सिक्कोंके किनारे नरम रहे, तब तक उनका कोना घिसाकर धातु बेचना बड़ा सुगम था। किन्तु जबसे सिक्कोंके किनारेपर धारी बनानी शुरू हो गयी है, तबसे यह चौर्य-कर्म असम्भव हो गया है।

पैसेके विनिमय-माध्यम होनेसे हमारे आर्थिक समाजको अनेक लाभ प्राप्त हुए हैं। हम एकाग्रचित्तसे उत्पादन-क्रियामें अपना प्रयत्न और समय लगा सकते हैं। उत्पत्ति बड़े पैमानेपर हो रही है, मण्डियोंमें उपभोगकी वस्तुयें ठसाठस आ रही हैं और मानव-समाजके उपभोगके लिए आज अनेक वस्तुयें बहुत कम मूल्यपर हमें मिल रही हैं।

इन सब उपकारोंके लिए हम पैसे (द्रव्य) के अनुगृहीत हैं। यदि पैसा विनिमय-माध्यम न होता, तो आधुनिक यन्त्र, उद्योग, यातायातके साधन हमें प्राप्त नहीं हो सकते थे। हम अनेक आर्थिक सुखोंसे वञ्चित रहते।

पैसा-विनिमय (money exchange) द्वारा उपभोक्ता प्रत्येक पैसेसे अधिकतम तृप्ति प्राप्त कर सकता है। वह प्रत्येक वस्तु ठीक समयपर ठीक मात्रामें खरीद सकता है। यदि उसे एक छटांक घी खरीदना हो और उसे विवश होकर (क्योंकि उसका विनिमयका माध्यम अधिक मूल्यका है) एक सेर घी खरीदना पड़े अथवा बिना घीके ही रहना पड़े, तो उसे पैसेके विनिमय-माध्यम न होनेसे कितनी हानि होगी ?

आजकल अधिकतर व्यवसाय उधारपर ही चलता है; क्योंकि बड़ी मात्राकी उत्पत्तिके लिए अधिक मात्रामें पूंजी चाहिए, जो एक व्यक्तिके पाससे मिलनी कठिन है। इसलिए पैसा उधारकी आधार-शिला है।

जिस पैसेने आर्थिक समाजकी इतनी सेवायें की हैं, उसमें कुछ दोष होने भी स्वाभाविक हैं।

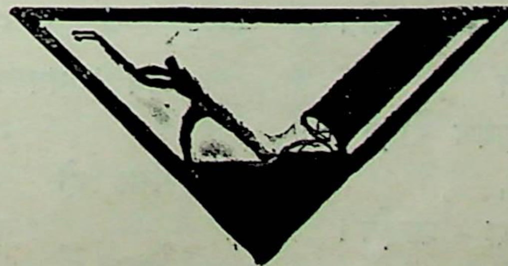
यन्त्र द्वारा उत्पत्ति, विशाल मण्डी, ये सब पैसेने ही सम्भव बनाये हैं; किन्तु यन्त्र-युगमें श्रमजीवी मशीनोंमें काम करके मशीन-जैसे निर्जीव तथा आत्मा-रहित बन जाते हैं। गन्दे घरोंमें उनका निवास-स्थान होता है। दिन-भर काम करना पड़ता है और शिल्पकारसे वे केवल मजदूर बन जाते हैं। पर क्या यह सब दोषारोपण पैसेपर किया जा सकता है? मशीन और पैसा तो हमारे दास हैं। यह हमारी गलती है, यदि हम मशीन तथा पैसेको अपना मालिक बना लें। यन्त्र द्वारा उत्पत्तिसे श्रमजीवियोंको अवकाश अधिक मिलने लगा है, उनकी खरीदनेकी शक्ति बढ़ गयी है और वे अब वे वस्तुयें अपने उपभोगमें ला सकते हैं, जो पहले केवल इने-गिने धनाढ्य पुरुषोंके भागमें मिलती थीं।

पैसेने दलालों और व्यापारियोंका प्रभाव बढ़ा दिया है। किन्तु उनकी सेवायें वर्तमान आर्थिक व्यवस्थामें आवश्यक हैं। असंख्य उपभोक्ताओं और उत्पादकोंको जोड़नेवाली कड़ी दलाल तथा व्यापारी हैं। असंख्य उपभोक्ताओंकी आवश्यकताओंसे उत्पादकोंको परिचित करानेवाला व्यापारी है। मालके बेचनेके सम्बन्धमें जोखिम उठानेवाला व्यापारी है। चीजोंकी मांगके पहले उत्पादन आरम्भ किया जाता है। यदि मांगमें परिवर्तन हो जावे, तो उसका नुकसान व्यापारी ही उठाता है। यदि यह जोखिम कोई उठानेवाला न हो, तो उत्पादन छोटी मात्रामें ही हो सकता है। उत्पादन-व्यय अवश्य बढ़ जावे और वस्तुओं महंगी हो जावें। इससे उपभोक्ताओंको अनिश्चित रूपमें हानि है।

पैसा तथा पैसेकी व्यवस्था व्यापार-चक्र (Trade Cycle) के लिए उत्तरदायी ठहरायी जाती है। कभी व्यापारकी तेजी है, तो कभी मन्दी। इसमें कोई संशय नहीं कि यदि उत्पादन थोड़ी मात्रामें हो, तो व्यापार-चक्रकी घटना उपस्थित न हो; क्योंकि थोड़ी मात्राका व्यापार तो लेन-देनके आधारपर ही चल सकता है। किन्तु क्या यह समाजके लिए अधिक मात्रावाले उत्पादनकी अपेक्षा श्रेयस्कर होगा? कदाचित् नहीं। फिर व्यापारका घटना-बढ़ना अनेक कारणोंसे हो सकता है, जैसे खराब फसलें, युद्ध, भूकम्प, महामारी, बाढ़ इत्यादि। यदि व्यापार पैसेके माध्यमसे न हो, तब भी व्यापार-चक्रकी घटना हो सकती है।

द्रव्य-विनिमय तथा द्रव्यको समस्त आर्थिक व्यवस्थाके दोषोंके लिए अपराधी ठहराना और उसके परित्यागका निर्णय करना ऐसा है, जैसे कि कोई किसान पेड़की डालसे चिड़ियां उड़ानेके लिए डालको काट दे।

———

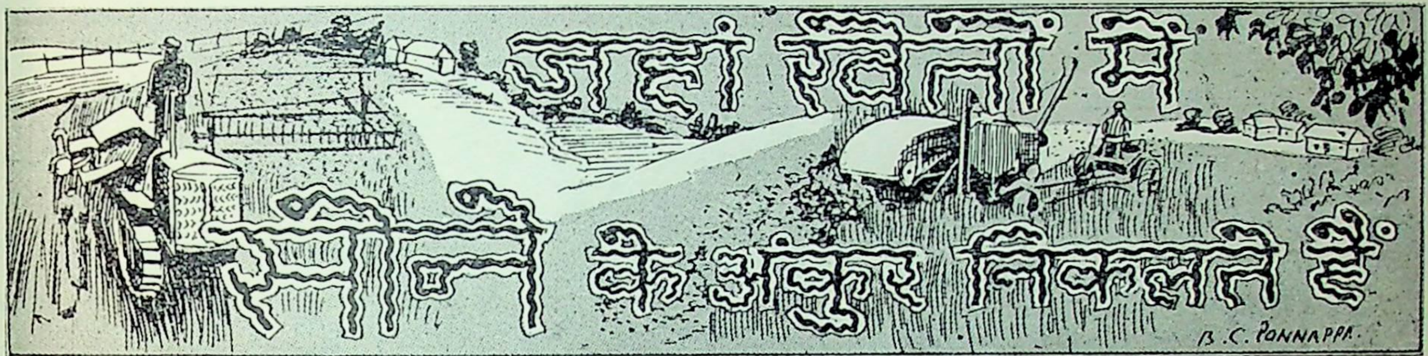


पैसा

वह आधी रात माघकी थी,
अंधियालेमें ही जाग रही।
सन-सन शर-से आलिङ्गन देती,
वायु वेगसे भाग रही।
कालिमा नहायी रात शिशर,
अलकोंसे शीत टपकता था।
निस्तब्ध मौन प्रान्तर-चितवन—
से सिहर रोम प्रति उठता था।
ऊंचे - ऊंचे प्रासादोंमें,
विद्युत् - आभा बिछली पड़ती।
मखमल - कोमल - शय्यापर,
पैसेकी सत्ता मचली पड़ती।
वरदान लिये मधु, पैसेका
विकसित शोभित मोहित जीवन
वह पैसेसे ही निर्मित, मद-
से उमड़ा था मानवका मन।
पैसेसे ही महलोंमें था
सांस्कृतिक सुसभ्य मनुज पोषित।
पैसेके बलपर वहां हुआ
था मानव मानवपर शासित।
हां उन्हीं राज - प्रासादोंके
नीचे प्रस्तरका मार्ग बड़ा।
था कोलतार छातीमें भर,
वैभवके चरणों - तले पड़ा।
उसकी बांहों-सी फुट-पाथों
में सिमटी एक गृहस्थी थी।
चिथड़ोंमें लिपटी, कङ्कालों-
की नारकीय वह बस्ती थी।
बेबस शिशुओंका नग्न क्षुधित
था गूंज रहा दारुण रोदन।
जाता था कंप - कंप दूर-दूर,
माताओंका करुणा - क्रन्दन।

पैसे - हित घृणित मानवोंकी
दुख दैन्य क्षुधार्त्त पुकारें थीं।
पैसे बिन मानव-प्रेतोंकी,
असहाय, असभ्य कतारें थीं।
पैसेका कटु अभिशाप लिये,
वे जीवन्मृत मानव-जीवन।
भीषण अभावमें पैसेके
वे उत्पीड़नकी कृति जीवन!
पैसे बिन उनके पेटोंमें,
धधकी थी मरघटकी ज्वाला।
पैसेकी ही उज्ज्वलता बिन,
उनका तन-मन सब कुछ काला।
मैं चली जा रही थी स्टेशन,
यह दृश्य देखकर उस दिन मन।
हो क्षुब्ध उठा, फिर छेद उठी—
अन्तसको रौरवकी कहरन!
रंगरलियोंका प्रवाह ऊपर
ऐश्वर्य-सिन्धु उमड़ा अथाह।
नीचे कर्दमकी गलित राह-
में उठती रोमाञ्चक कराह।
मैं सोच उठी मर्माहत हो,
यह सब पैसेपर ही निर्भर।
दानव-मानव जीता जीवन,
पशु-मानव मरता घुटघुटकर।
पैसेसे ही मानव - शोणित-
का टीका मस्तकपर देकर।
उतरा है मानव दानव बन,
रण-मत्त निमन्त्रण दे-देकर।
अब मानवका पैसा ही, सम,
मानवमें पूर्ण विभाजित हो।
पैसा हो मानवका जगमें,
दानवता युग परिवर्त्तित हो!

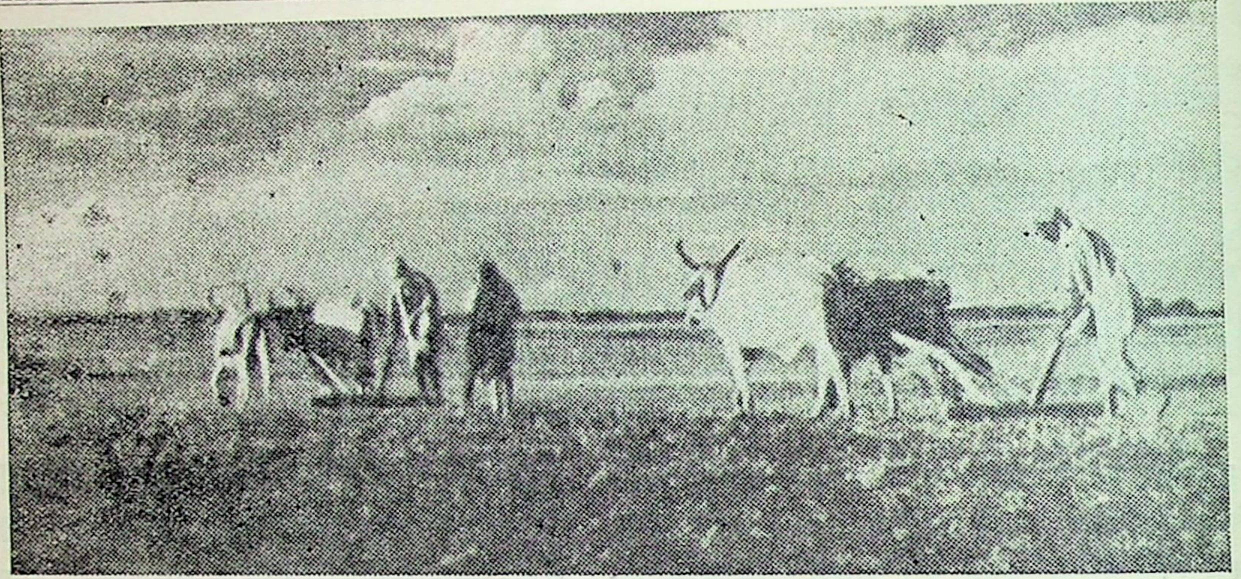
—सुमित्राकुमारी सिनहा।



हल-बैल, कुदाल-फावड़ा और खुरपी-हंसियाकी सहायतासे किसान सच्चे अर्थमें धन उत्पन्न करते हैं, पृथिवीका वसुन्धरा नाम सार्थक बनाते हैं। पृथिवी सच्चे अर्थमें वसुन्धरा है, उसके गर्भमें असीम सम्पत्ति विद्यमान है, उसकी मिट्टी अतुल वैभवके परमाणुओंसे परिपूर्ण है। खनिकोंको देखिये और सैकड़ों फीटकी गहराईसे वे जो कोयला, तांबा, लोहा, सोना, अबरक और गन्धक आदि निकालते हैं, उसके चमत्कारकी कल्पना कीजिये, मिट्टीमें बिनौले या गेहूंके दानोंको बोकर किसान जो लहलहाती हुई सुन्दर हरी-भरी फसल तैयार करते हैं, उसपर दृष्टि डालिये और फिर उस आश्चर्यपर विचार कीजिये, जिसे रुई और गेहूंने संसारमें उपस्थित कर दिया है—आप यह अनुभव किये बिना नहीं रह सकते कि मानव-समाज और सभ्यताकी सम्पूर्ण श्रीका आधार किसान और मजदूर हैं! कोई देश इसका अपवाद नहीं है। अलबत्ता, जलवायु और अन्य प्राकृतिक बातोंके कारण इनके स्वरूपमें अन्तर हो सकता है, परिस्थितियोंके कारण इनकी अवस्था भिन्न हो सकती है।

जैसे-जैसे मानव-समाज और सभ्यताकी उन्नति होती गयी है, सम्पत्तिके इन दो आधारभूत महान् साधनोंकी परिस्थितिमें भी महान् परिवर्तन घटित हुआ है। यह तो कोई पुरातत्त्वशास्त्री ही बतला सकता है कि भू-गर्भसे खनिज पदार्थोंको निकालनेके लिए समाज और सभ्यताके प्राथमिक युगमें किस तरहके औजारोंसे काम लिया जाता था और खेती-बारीमें जिन चीजोंसे सहायता ली जाती थी, वे कैसी होती थीं। इन सब बातोंकी खोज करना इस लेखका विषय भी नहीं है। इस समय जो बात हम सब प्रत्यक्ष देखते हैं, वह यह है कि स्वदेशके किसान जिन औजारोंसे आजसे १००-१५० वर्ष पहले काम लेते थे, वही उनमेंसे अधिकांशके हाथोंमें आज भी दिखलाई पड़ते हैं और इस दृष्टिसे आज संसार बहुत आगे बढ़ गया है और छलांगें भरता हुआ बड़ी तेजीसे आगे बढ़ता जा रहा है।

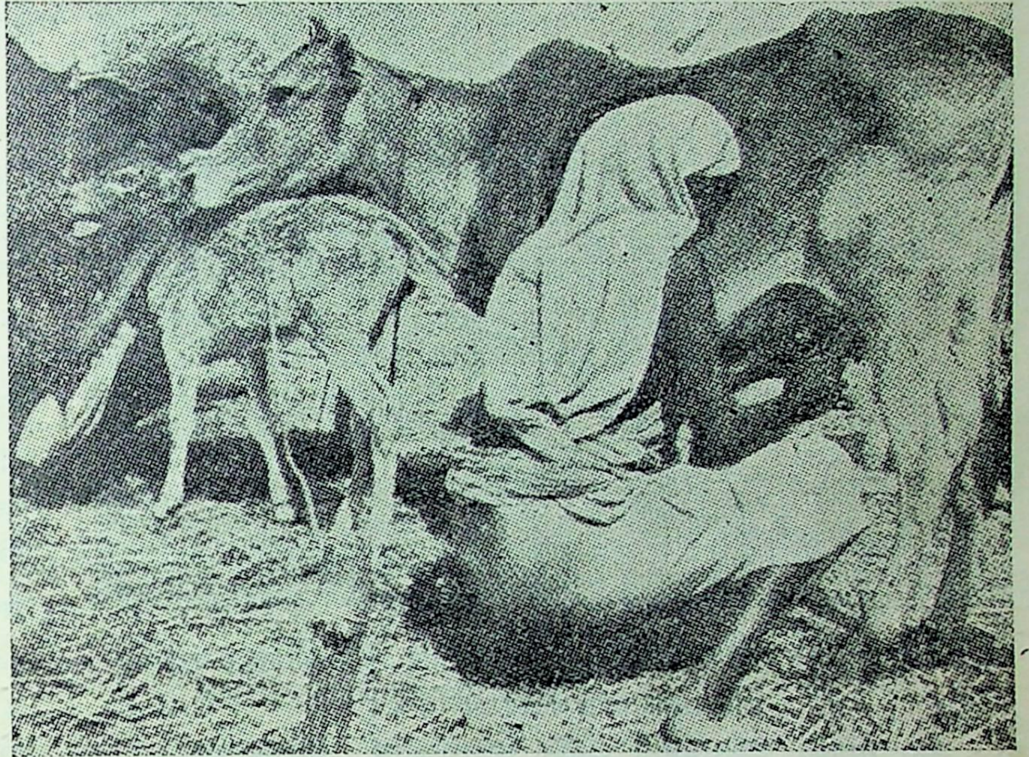
हमारे सामने आज खेती सम्बन्धी कितनी ही समस्यायें हैं—नयी सुधरी हुई शैलीके हलोंका देशमें उतना काफी प्रचार क्यों नहीं होता, अपने हलको ही सुधार कर किसानोंकी परिस्थितिके उपयुक्त क्या नहीं बनाया जा सकता, किसानोंकी जो परिस्थिति आधुनिक साधनोंसे काम लेनेमें बाधक हो रही है, उसका अन्त कैसे किया जा सकता है, किसानों और खेतीकी वर्तमान अवस्थाका देशकी राजनीतिक और आर्थिक स्थितिसे जो घनिष्ट सम्बन्ध है, उसमें किस तरहकी सम्भावनायें हैं, ये प्रश्न हैं जो आज हममेंसे बहुतोंको परेशान कर रहे हैं और इसलिए परेशान कर रहे हैं कि इन्हें हल करनेकी कुञ्जी हमारे हाथमें नहीं है, हम स्वाधीन नहीं हैं। वर्तमान परिस्थितिमें कोई पञ्चवर्षीय या सप्तवर्षीय योजना बनाकर आगे बढ़ना हमारे लिए सम्भव नहीं है और कृषिकी उन्नतिके सम्बन्धमें आज जो भी कार्य हो रहा है, वह संसारकी इस विषयकी प्रगति और कल्पनाओंकी दृष्टिसे नगण्य है, कुछ भी नहीं है। देशके अधिकांश भागोंमें आज खेती बिलकुल आकाशी वृत्ति है—किसान उसके लिए १६ आना वर्षापर निर्भर हैं, उनमें शिक्षाका प्रसार इतना कम है कि खेतीकी अवस्थाको सुधारनेके लिए, उसे उन्नत बनानेके लिए जो थोड़ा-बहुत प्रयत्न हो रहा है, उसका किसानोंको, ९९ सैकड़ा किसानोंको पता नहीं चलता और यदि पता भी चले, तो वे उससे पूरा लाभ नहीं उठा सकते। खेत बो दिया और उसके बाद



स्वदेशमें आज भी वही पुराने ढङ्गका हल काममें आ रहा है।

काफी अर्से तक पानी नहीं बरसा या बहुत ज्यादा पानी बरस गया या फसल खेतमें उग आनेके बाद ही बहुत ज्यादा पानी बरस गया या सूखा पड़ गया और हर हालतमें बीज या फसल मारी गयी। किसान सोचता है कि वह सब मेरे ही भाग्य-दोषसे हुआ! खेतमें साल-भर परिश्रम करनेके बाद यदि थोड़ा, मन-डेढ़ मन बीघा अनाज पैदा होता है, तो भी किसान उसके कारणोंकी ओर—परिस्थितिसे मजबूर होनेके कारण—आंख उठाकर नहीं देखता और सोचता है कि मेरी तकदीरमें इतना ही था। खलिहान उठनेके समय जमींदार और साहूकार लगान और कर्जको, जितना उनके किये हो सकता हो, वसूल करनेके लिए दाना-दाना ले जायं तो ले जायं और अपने परिश्रमकी कमाईका फल अपने लिए रहते न देखकर किसानका जी कितना ही घुटता रहे; परन्तु अभी तक वह इसे दुर्भाग्य या सौभाग्यसे अपने ही भाग्यका खेल समझ रहा है। यही बात किसानों और कृषि-सम्बन्धी दूसरी कितनी ही बातोंके विषयमें है। गन्ना, गेहूं और कुछ अन्य चीजोंकी पैदावार बढ़ाने और इनकी जातियां सुधारनेके प्रयत्न भी हुए हैं; परन्तु ये प्रयत्न अभी तक प्रयोग-कोटिमें हैं और उन्हें भी अभी तक व्यावहारिक रूप देनेके लिए वह प्रयत्न नहीं हुआ है, जो होना चाहिए। कोई आश्चर्य नहीं है, यदि दुर्भाग्य इस देशकी कृषिके पिण्ड पड़ा रहे और इस देशके किसान गरीबीकी यन्त्रणाओंको भोगते हुए अज्ञानतावश उसे अपने भाग्यका खेल मानते रहें। निश्चय ही जब खेतीको 'उत्तम' बतलाया गया था, तब इस देशकी कृषि और किसानोंकी अवस्था आजकल-जैसी नहीं थी।

संसारके अन्य देशोंकी अवस्था इससे बिलकुल भिन्न है। वहां किसान खेतीमें जो परिश्रम करता है, उसका वह पूरा लाभ उठाता है और संसारकी प्रगति एवं कृषि-सम्बन्धी सुधारोंकी पूरी जानकारी रखता है। रूसमें बहुत बड़े पैमाने-पर सामूहिक खेतीका प्रयोग किया गया और इसमें उसे सफलता हुई। भौतिक और वनस्पति विज्ञानने तो वह चमत्कार दिखलाया है कि सहसा विश्वास ही नहीं होता। कृत्रिम उष्णता पहुंचाकर बिजलीकी सहायतासे वह युग उपस्थित कर दिया गया है कि किसी भी चीजकी फसलके लिए प्रकृतिपर निर्भर रहनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं रह गयी है। वैज्ञानिक उपकरणोंकी सहायतासे जब चाहे तब पानी बरसाया जा सकता है—यही नहीं, अमेरिकामें बिना मिट्टीके भी खेती होनेके सफल प्रयोग हुए हैं। यह तो सभी जानते हैं कि पौदे हवा और जमीनसे अपनी खुराक लेते और बढ़कर फूलते-फलते हैं। विज्ञानने इस खुराकका विश्लेषण कर लिया है और यह भी पता लगा लिया है कि वह किस चीजसे कितनी मात्रामें मिल सकती है। काचके बड़े-बड़े टबों-में पानी भरकर और उसकी ऊपरी सतहके पास जाली लगा-



किसानोंकी गरीबीकी सजीव प्रतिमा है यह गाय—ऋद्धि-सिद्धिकी जननी होते हुए भी आज वह सूखकर कांटा हो रही है।

कर पौदोंको इस तरह रखते हैं कि उनकी जड़ें पानीमें डूबी रहें और तारकी जालीपर वृक्ष ऊपर हवामें उठे रहें। पानीमें पौदोंकी खुराकके रासायनिक द्रव्य मिला दिये जाते हैं और पौदे अपनी जड़ोंसे यह खुराक पानीमेंसे लेकर बढ़ते रहते हैं। हालके प्रयोगोंमें बिना मिट्टीकी इस खेतीमें एक अन्य आश्चर्य घटित हुआ है। २२ वर्ग गजके एक पात्रमें आलू और गेहूं साथ लगाये गये थे। इसमें जितने आलू और गेहूं पैदा हुए, उनका औसत प्रति एकड़ १४९६ बुशल आलुओं और २२४.२ बुशल गेहुओंका पड़ा। इस तरहके प्रयोगोंसे यह स्थिर किया गया है कि कितनी ही फसलोंको बिना मिट्टीवाले खेतोंमें एक साथ बोया जा सकता है और अच्छी फसल हो सकती है। अनाजके पौदोंमें बालियां लम्बी निकलें, दाना ज्यादा मोटा पड़े और इस तरह अनाज और भूसा, दोनोंकी पैदावार ज्यादा हो; अनाज, शाक और फलोंमें पोषकतत्त्व यथेष्ट मात्रामें रहे, फलोंमें कुछ विचित्रता और कुछ विशेषता पैदा की जाय और फूलोंके आकार और रङ्गको भी बदल दिया जाय—ये सब और इसी तरहकी अन्य बातें इस विज्ञान-युगमें सम्भावना नहीं रह गयी हैं, प्रत्यक्ष हो रही हैं और जो यह सब हो रहा है, वही इसकी सीमा नहीं है, आज भी कितनी ही नयी-नयी सम्भावनायें हमारे सामने आ रही हैं।

आज खेतोंमें जो अनाज उगाया जाता है, वह सब—प्रायः सब मनुष्योंके पेट भरनेके काममें आ जाता है। उसका बहुत थोड़ा भाग उद्योग-धन्धोंमें लगता है। वैज्ञानिक इससे सन्तुष्ट नहीं हैं और वे अमेरिकामें इस प्रयत्नमें हैं कि कृषिकी यह अवस्था ही बदल जाय और वहां जो पैदावार हो, उसका अधिक भाग फैक्टरियोंके काम आये। वह समय आ सकता है, जब खाद्य वस्तुओंका अधिक भाग उद्योग-धन्धोंमें खप जाय।

आपकी मोटरका स्टीयरिङ्ग ह्वील, हो सकता है, खेतमें उगाया जाता। इसी तरह हो सकता है, आपका फाउण्टेन-पेन भी खेतमें रोपा जाता और पूरा उग जानेपर उसे फसलकी तरह काटा जाता। आपके रेडियोका बक्स भी हो सकता है कि किसी बीजसे तैयार किया जाता। ये और इसी तरहकी हजारों उपयोगी चीजें, जो उद्योग-धन्धों द्वारा तैयार की जाती हैं, आज भी उस सामग्रीसे बनती हैं, जिसे वनस्पतियोंसे प्राप्त किया जाता है।

सम्भव है कि आप जिस कमरेमें बैठे हुए हैं, उसकी दीवालोंका सूत्रपात गन्नेके रूपमें किसी खेतमें हो, तो लोग जिस सिगरेटका व्यवहार करते हैं, उसका कागज सम्भवतः सन और घास-फूसका बना हुआ हो और उसकी तम्बाकू, अनाजसे प्रस्तुत किसी चीजसे बनायी गयी हो।

आज जिस तरह अनाजका अनेक कामोंमें उपयोग हो



जिस गोबरकी खाद खेतोंमें जाकर सोना हो सकती है, ईंधनकी तरह जलानेके लिए उसके कण्डे बनाये जा रहे हैं।

जिनसे कितनी ही अन्य उपयोगी चीजें बनायी जा सकती हैं।

यूरोपमें जिस तरह लकड़ीसे नकली रेशम तैयार किया जाता है, उसी तरह मक्खन निकले हुए दूधसे प्रस्तुत केसीन नामक पदार्थसे कपड़ा भी तैयार किया जाने लगा है। एक अन्य पदार्थ है लिगनिन। इसे लकड़ीसे तैयार किया जाता है और धातुकी चीजोंको ढकनेके लिए इसका व्यवहार होता है। खेतीसे उत्पन्न कितनी ही चीजोंसे, जो यों ही बरबाद हो जाती हैं, पावर स्प्रिट तैयार की जा रही है और यह हो सकता है कि इसमें अनाजकी फसलका बहुत-सा भाग खपने लगे।

सोयाबीनसे तो हम सब परिचित ही हैं, जिसे भोजनकी दृष्टिसे बहुत ही उपयोगी पाया गया है। इससे एक प्रकार-

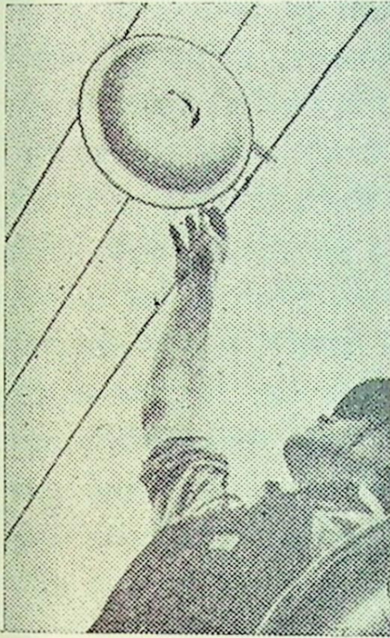
रहा है, उसी तरहकी सम्भावनायें खेतीसे उत्पन्न अन्य पदार्थोंके लिए भी वैज्ञानिक कर रहे हैं। आज जब अनाजकी मांड़ीका उपयोग मिलोंमें कपड़ेमें लगाने, कागज बनाने और धोबीके यहां कपड़े साफ करनेके लिए हो रहा है, अनाजका शरबत नकली रेशम तैयार करने, चमड़ा कमाने और तम्बाकू बनानेके काममें लाया जा रहा है और अनाजसे जब स्याही, चिपकानेका लुआब साइनबोर्ड जोड़नेका सरेस और विस्फोटक पदार्थ तैयार किये जा रहे हैं, तब जो अनाज सीधे रूपमें हम व्यवहार करते हैं, वह तो उसका गौण उपयोग ही मालूम होता है।

खमीर, रंगनेकी सामग्री, कागज, बिलसरीन, वाल बोर्ड, सुतली, तरह-तरहके पाउडर और कितनी ही दूसरी चीजोंमेंसे कुछ तो अनाजसे तैयार की जाती हैं और बाकी कुछको वैज्ञानिकोंकी दृष्टिमें तैयार किया जा सकता है। एक वैज्ञानिक संस्थाने तो यहां तक दावा किया है कि ऐसी किसी चीजका नाम मिलना असम्भव होगा, जिसे बनानेमें अनाज द्वारा प्रस्तुत पदार्थका उपयोग न होता हो। अनाजके प्रत्येक बुशलसे कमसे कम ५॥ पौण्ड पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं,

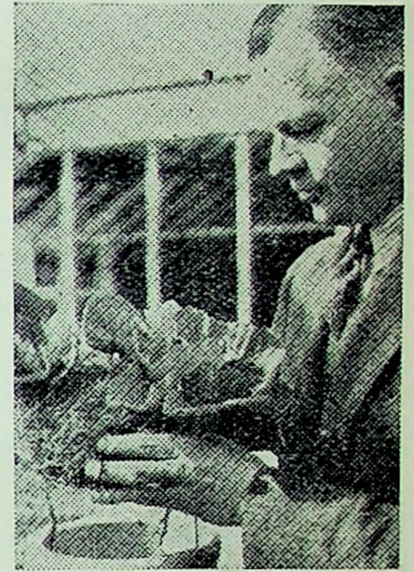


कृषि—विज्ञानकी कसौटीपर।

का श्वेत पदार्थ तैयार किया जा सकता है। इसका उपयोग मिश्री



पालेसे पेड़ोंकी रक्षा करनेके लिए लाल लेम्प।

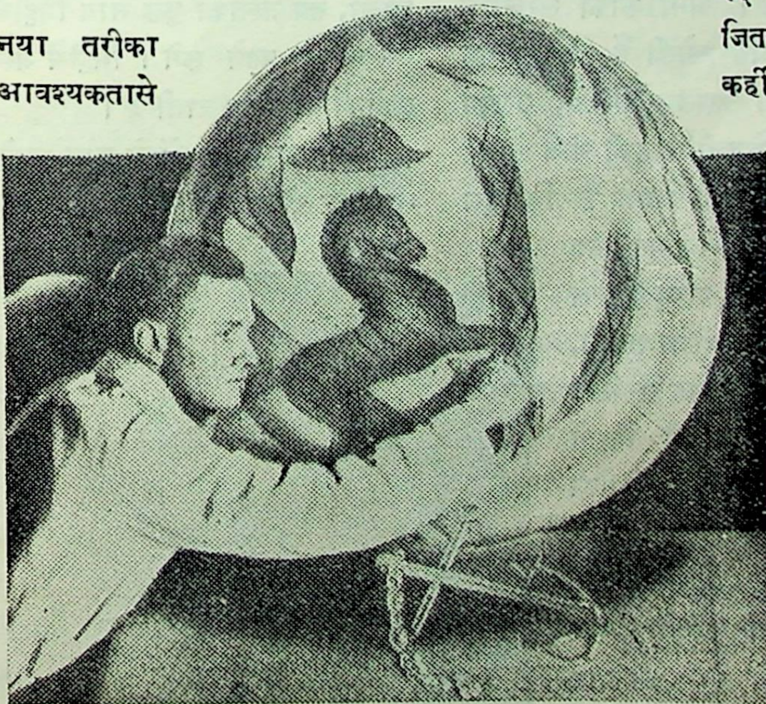


यह जांच की जा रही है कि इस गोभीको किस तरहके पौष्टिक पदार्थकी जरूरत है।

और मिठाइयां बनानेमें किया जाता है। आजकल इसकी बड़ी मांग है। सोयाबीनके आटेमें पहले पेट्रोलियम मिलाते हैं, इससे उसका चिकना और चिपचिप अंश दूर हो जाता है। इसके बाद उसमें हाइड्रो क्लोरिक एसिड मिलाते हैं, जिससे उसके स्वादकी खराबी जाती रहे। इतना करनेके बाद जो आटा रह जाता है, वह अण्डेकी सफेदीकी जगह काममें लाया जा सकता है।

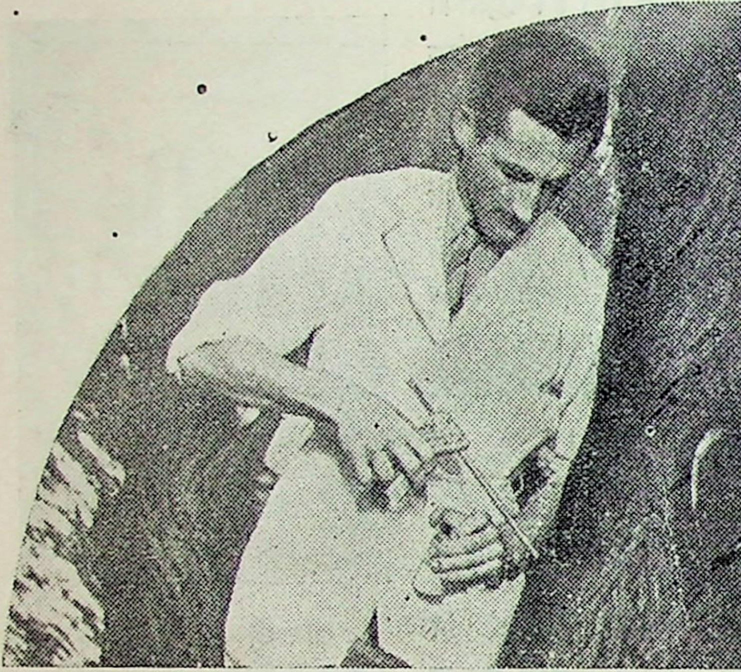
वैज्ञानिकोंने एक नया तरीका निकाला है, जिससे आवश्यकतासे अधिक होनेपर काफीसे प्याले और मेजें बनायी जा सकेंगी और काफीके तैलसे कान्ति और केश बढ़ानेवाली कितनी ही चीजोंका निर्माण हो सकेगा। अंगूरके तेलका उपयोग कई तरहके साबुन बनानेके लिए किया जाता है और साथ ही उसे मशीनोंके पुर्जोंको तेल देनेके लिए काममें लाते हैं। नारङ्गीसे एक पदार्थ तैयार कर औषधियां बनायी जा रही हैं। पशुओंकी चर्बीसे ग्लाइसिकोल नामक एक पदार्थ बनाया जाता है, जिसे डिनामाइट बनानेके काममें तो लाते ही हैं, किसी द्रवको बर्फके रूपमें जमनेसे रोकनेवाला पदार्थ भी तैयार करते हैं।

खेतीकी पैदावारकी खपत होनेके लिए यद्यपि नये-नये तरीके शीघ्रतासे निकाले जा रहे हैं, तथापि यह तो कहना ही पड़ेगा कि वैज्ञानिक अभी तक किसानोंको पछाड़ नहीं सके हैं। वहां किसानोंको आवश्यकतासे अधिक पैदावारकी शिकायत कई सालसे है और उद्योग-धन्धोंमें जितना माल खप सकता है, उससे कहीं ज्यादा किसानोंने पैदा किया है। खेतीकी पैदावारको उद्योग-धन्धोंमें खपानेका जो भी नया उपाय मालूम हो जाता है, उससे जहां इधर अतिरिक्त उत्पादनकी समस्या हल करनेमें सहायता मिलती है, वहां उधर पौदोंको पुष्ट बनाने और बीमारियों एवं कीड़ों-मकोड़ोंसे उनकी रक्षा करनेके लिए जो आविष्कार हुए हैं, उनसे फसल भी, प्रतीत होता है, बढ़ती ही जाती है।



शाक-सब्जीसे तैयार किये हुए सेलूलोजका एक डिजाइन।

किसानोंकी आर्थिक अवस्था अधिक अच्छी हो सकती है, यदि वे इस स्पर्धामें



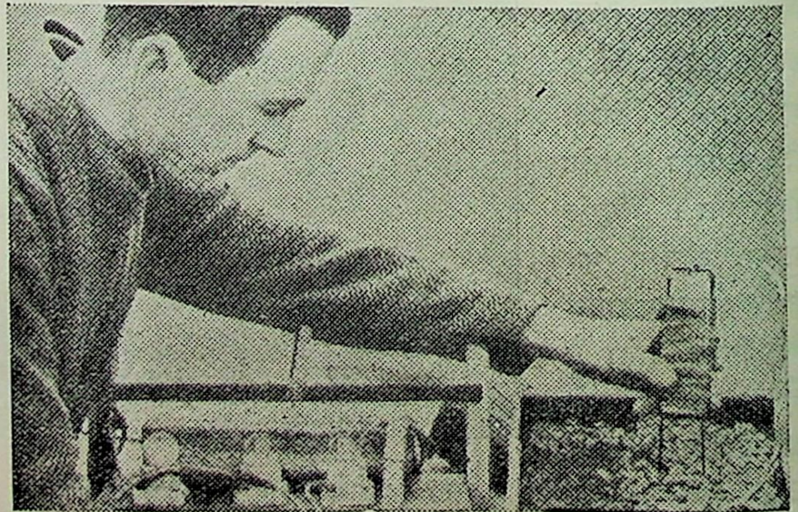
आवश्यक पोषक तत्त्व पहुंचानेके लिए पेड़में इञ्जेक्शन दिया जा रहा है।

वैज्ञानिकोंसे हार जायं और वैज्ञानिकोंको ऐसे आविष्कार करनेमें सफलता मिले, जिनकी बदौलत खेतीकी अतिरिक्त उपज उद्योग-धन्धोंमें खप सके। अमेरिकाकी सरकारने इसी उद्देश्यसे चार प्रयोगशालायें खोली हैं, जिनमें यह शोध किया जायगा कि खेतोंमें जो फसल होती है, उसका उपयोग भोजनके अलावा और कितनी तरहकी चीजें तैयार करनेके लिए हो सकता है। आशा की जाती है कि इस शोधके फलसे कितनी ही ऐसी नयी चीजोंका पता चलेगा, जो खेतीमें तो पैदा होती हैं, परन्तु जिनसे कपड़ा तैयार हो सकेगा, इमारतें बनायी जा सकेंगी, तार आदिके ऊपर लपेटनेका, जिससे वह सुरक्षित रहे, इन्सुलेशन द्रव्य बन सकेगा और ऐसे कितने ही द्रव्य तैयार हो सकेंगे, जिनसे कितनी ही वस्तुओंका निर्माण किया जा सकेगा।

जिस समय विज्ञान इस प्रयत्नमें है कि खेतीकी उपज भोजनसे भिन्न अन्य वस्तुयें तैयार करनेके काममें आ सके, यह पता भी चल रहा है कि भोजनकी दृष्टिसे किस वस्तुका कितना मूल्य है। एक खेतके ताजे शाक खानेसे किसी व्यक्तिका स्वास्थ्य अच्छा रहे और उन्नति करे—और वही शाक अगर एक अन्य खेतका हो तो नहीं—यह भी सम्भव है, क्योंकि दूसरे खेतकी मिट्टीमें हो सकता है, वैसे पोषक परमाणु न हों। मिट्टीमें विभिन्न परिमाणमें पोषक द्रव्य रहते हैं।

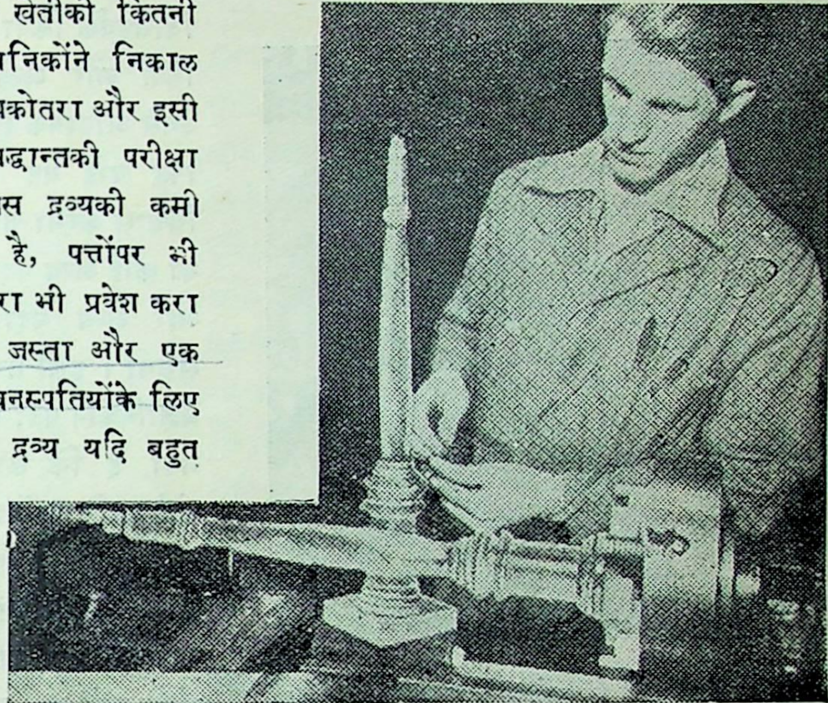
अमेरिकाकी ही एक घटना है। एक व्यक्तिने बाग लगाया था। कुछ समय बाद उसके पेड़ोंकी वृद्धि रुक गयी। उसने सोचा कि एक तरकीबसे वह वातावरणसे ईथरकी रहस्यपूर्ण तरङ्गोंको अलग कर सकता है। अपने विश्वासके अनुसार उसने पेड़ोंके चारों ओर तारका घेरा डाला। कुछ ही दिनोंमें सबको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसके पेड़ बढ़ने लगे और बड़ी शीघ्रतासे बढ़ने लगे। उस व्यक्तिने यह सोचा कि शायद उसने ईथरकी तरङ्गोंको रोकनेका वैज्ञानिक उपाय निकाल लिया; परन्तु वैज्ञानिकोंकी दृष्टिमें पेड़ोंके पुनः उगने लगनेका कारण कुछ दूसरा ही है। वृक्षोंके चारों ओर जो मिट्टी थी, उसमें जस्ता नहीं था। किसानने अपने पेड़ोंके चारों ओर जब तारका घेरा खड़ा किया, तब जस्तेका कुछ भाग मिट्टीमें मिल गया और पेड़ उसे पाकर बढ़ने लगे। मिट्टीमें जस्तेका अभाव हो जानेसे वृक्षोंकी बाढ़ रुक जाती है।

जिस मिट्टीमें वृक्षोंको उगानेवाले परमाणु नहीं हैं अथवा लगातार खेती किये जानेसे जिसके पोषक परमाणु समाप्त



मिट्टीकी परीक्षा।

हो चुके हैं, उसमें खनिज द्रव्य मिलाकर खेतीकी कितनी ही समस्याओंको हल करनेका उपाय वैज्ञानिकोंने निकाल लिया है। तम्बाकू और सन्तरा, नीबू, चकोतरा और इसी जातिके लगभग ३० फलोंके वृक्षोंपर सिद्धान्तकी परीक्षा अच्छी तरह कर ली गयी है। मिट्टीमें जिस द्रव्यकी कमी है, उसे जमीनपर फैला दिया जाता है, पत्तोंपर भी उसे छिड़क देते हैं और छालमें सुईके द्वारा भी प्रवेश करा देते हैं। लोहा, मेंगानीज, पोटाशियम, जस्ता और एक अन्य पदार्थ बोरोन—ये सब वृक्षों और वनस्पतियोंके लिए अत्यन्त आवश्यक द्रव्य हैं। इनमेंसे कोई द्रव्य यदि बहुत ज्यादा हो जाय, तो यह भी उतना ही हानिकर है, जितनी उसकी कमी या अभाव। उदाहरणके लिए बोरोन पदार्थ यदि ज्यादा परिमाणमें मिट्टीमें रहे, तो उससे हानि पहुंचेगी; परन्तु कम परिमाणमें उसके रहनेसे वृक्षकी बाढ़ अच्छी होती है। मिट्टीमें बहुत ज्यादा खनिज द्रव्य खादके रूपमें मिलानेका परिणाम कभी-कभी बहुत बुरा देखनेमें आता है। कुछ स्थानोंमें वैसी जमीनमें उगा हुआ चारा खाने वाले पशुओंको विषका असर होते देखा गया है—विशेषतः जब मिट्टीमें सेलेनियम नामक पदार्थ विशेष मात्रामें हो।

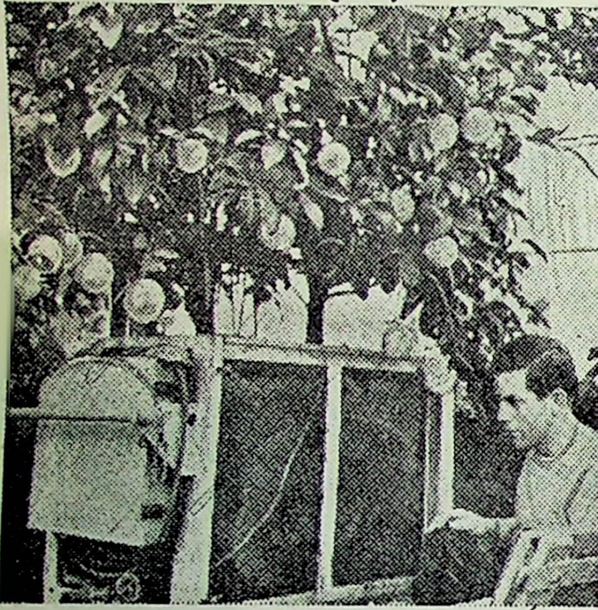


शाक-सब्जीसे प्रस्तुत द्रव्यसे बनायी हुई दीवट।



शाक-सब्जीसे प्रस्तुत द्रव्यसे निर्मित कुछ अन्य चीजें।

वृक्षों और पौदोंके लिए क्या चीज पोषक है और क्या नहीं, इस बातका पता वैज्ञानिकोंको जल सम्बन्धी प्रयोगोंसे चला है। ३-४ वर्षसे इस तरहके प्रयोग बहुत किये जा रहे हैं—वैसे २५ वर्षसे इस तरहके शोधका सिलसिला लगातार जारी है। २० वर्ष पहले खनिज द्रव्य मिलाकर पानीमें नारङ्गियों और अखरोटोंको उगाया गया है और उनपर फल भी आये हैं। वैज्ञानिकोंने यह पता लगा लिया है कि मनुष्यको जिन पौष्टिक द्रव्योंकी आवश्यकता है, वे यदि काफी तादादमें किसी खेतमें न हों, तो उस खेतमें उगी हुई चीजोंमें भी मनुष्य-जीवनके लिए आवश्यक ये चीजें नहीं हो सकतीं। हम जो शाक-सब्जी और फल खाते हैं, उनसे हमें लोहा, चूना जातीय पदार्थ, फास्फोरस, आयोडाइन, तांबा, जस्त और मेंगानीज मिलता है और इनसे हमारा शरीर पुष्ट होता है। ये द्रव्य जब किसी खेतकी शाक-सब्जियोंमें नहीं रहते या कम होते हैं, तब हमारे शरीरकी क्षति होती है। खनिज पदार्थोंसे भरपूर शाक-सब्जी खानेसे बच्चोंका वजन निश्चित रूपसे बढ़ता है। निश्चित रूपसे

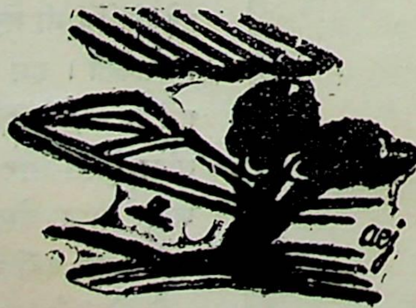


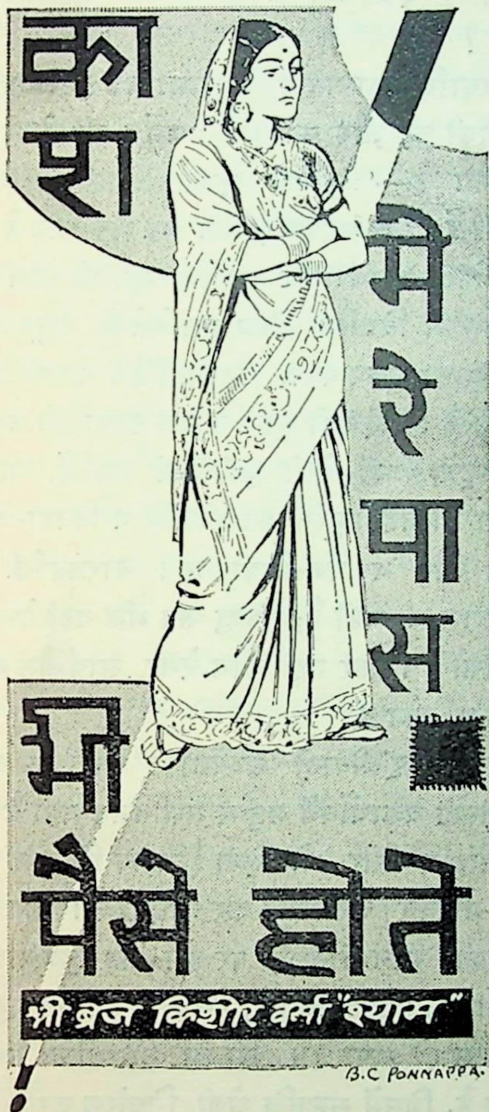
काचके टेङ्कमें खनिज द्रव्य मिलानेके बाद नारङ्गीके पेड़की जड़ोंपर उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है, यह देखा जा रहा है।

वैज्ञानिकोंका यह मत है कि मनुष्य जिन शाकों और फलों-का व्यवहार करता है, उनके तैयार होनेमें विज्ञानके सिद्धान्तोंका पालन किया जाय और मनुष्यके लिए आव-श्यक खनिज द्रव्योंको यथेष्ट मात्रामें उनमें पहुंचाया जाय, तो उस तरहके शाकों और फलोंको खाकर मनुष्य सम्भवतः अधिक लम्बे, अधिक मजबूत और अधिक बुद्धिमान होने लगेंगे। इसी तरह सूखा चारा चबानेवाले पशुओंका पालन विधिपूर्वक किया जाय, उन्हें विटामिनसे परिपूर्ण वनस्प-तियों और अन्य चीजोंको खिलाया जाय, तो निश्चय ही उनसे आवश्यक विटामिन यथेष्ट मात्रामें मिल सकेगा—फिर चाहे यह दूधमें हो या किसी अन्य वस्तुमें। यह विश्वास करना चाहिए कि पोषक द्रव्योंसे परिपूर्ण जो दूध या कोई अन्य पदार्थ होगा, उसे बाजारमें साधारण दूध और अन्य पदार्थोंकी अपेक्षा कुछ महंगा भी बेचा जा सकेगा। इसी तरहकी खेती सम्बन्धी एक अन्य बातका भी वैज्ञानिकोंने पता लगाया है। अनुभवसे यह साबित हो गया है कि लाल लैम्पोंकी रोशनी पड़नेसे पौदोंको पालेसे कोई हानि नहीं होती। लाल रोशनीसे पौदोंको तो गरमी पहुंचती है, परन्तु वायु-मण्डलको नहीं। इस प्रयोगकी सफलताकी बदौलत कितनी ही बे-मौसमी चीजोंको उगाया जा सकता है, उन शाकों और फलोंको उगाया जा सकता है, जो शीतकालमें नहीं होते।

संसारकी इस प्रगतिकी दृष्टिसे आज स्वदेश कहां है? व्यावसायिक दृष्टिसे जिस खेतीको उत्तम बतलाया गया है, आज उसकी स्थिति स्वदेशमें संसारकी इस प्रगतिकी दृष्टिसे क्या है। संसारके अन्य देशोंमें वसुन्धरा किसानोंके लिए सचमुच सोनेके अंकुर उगाती है; परन्तु इस देशमें किसान दुर्भाग्यवश पैसे-पैसेके लिए दुःखी हो रहे हैं। इसे क्या कहा जाय—भाग्यका दोष, विधिकी विडम्बना या वह स्थिति, जिसने देशवासियोंको अपाहिज बना दिया है।

———





"वेश्या-वृत्तिको सभ्यतासे ही सञ्जीवनी शक्ति मिली है। सभ्यताकी उत्पत्तिसे पहले उसे जीवन धारण करनेके साधन ही प्राप्त नहीं थे।"—आइवन ब्लाक

वेश्या-वृत्ति—अपनी अस्मत, लाज-लिहाज, सौन्दर्य और धर्मको बेचकर पेट पालना,—वास्तवमें मानव-सभ्यताकी सबसे बड़ी कालिमा है ! इससे बढ़कर नारकीय व्यवसाय और क्या हो सकता है ? लेकिन रूपके हाटमें जीवनका व्यवसाय करनेवाली इन अभागिनी स्त्रियोंने, जिन्हें गर्वित समाज पतितके नामसे सम्बोधित करता आ रहा है, पुरुषकी वासना-वेदीपर कैसा घोरतम बलिदान दिया है, इसपर कभी किसीने विचार भी नहीं किया। हमारा तो ख्याल है कि पुरुषकी बर्बरता, रक्त-लोलुपतापर बलि होनेवाले युद्ध-वीरोंके चाहे स्मारक बनाये जायें, पुरुषकी अधिकार-भावनाको अक्षुण्ण रखनेके लिए धधकती चितापर क्षणभरमें जलकर खाक हो जानेवाली नारियोंके नाम चाहे इतिहासके पृष्ठोंमें सुरक्षित रह सकें; परन्तु पुरुषकी अनन्त काल तक धधकनेवाली वासनाग्निमें हंसते-हंसते अपने जीवनको तिल-तिल जलानेवाली इन रमणियोंको स्वेच्छासे क्षणभर रोनेका भी अधिकारी नहीं समझा गया। चाहे कभी किसी स्वर्ण-युगमें बुद्धसे अम्बपालीको करुणाकी भीख मिल गयी हो, चाहे कभी ईसासे किसी पतिताने अक्षय सहानुभूति मांग ली हो; परन्तु साधारणतः समाजसे ऐसी स्त्रियोंको असीम घृणा और घोर तिरस्कार ही प्राप्त हुआ !

यह सत्य है कि युगोंसे हमारी विनोद-सभायें तथा विवाहादि पवित्र उत्सव इनके बिना शोभाहीन समझे जाते रहे। प्राचीन कालमें तो देवताओंकी अर्चनामें भी नर्तकियोंकी आवश्यकता पड़ जाती थी। परन्तु इन सब आडम्बरोंकी उपस्थितिमें भी उस जातिको समाजसे कोई सहानुभूति नहीं मिल सकी। क्रीतदासी न होनेपर भी उसकी दासता इतनी परिपूर्ण रही कि वह अपने जीवनका गर्हिततम व्यवसाय करनेके लिए विवश थी। उसे अपने घरके द्वार समाजके कुत्सितसे कुत्सित व्यक्तिके लिए भी खुले रखने पड़े और भागनेका प्रयत्न करनेपर समाजने उसके लिए सभी मार्ग बन्द कर दिये। वह पत्नीत्वसे तो निर्वासित थी ही, जीविकाके अन्य साधनोंको अपनानेकी स्वतन्त्रता भी न पा सकी। कभी कोई ऐसा इतिहासकार न हुआ, जो इन मूक प्राणियोंकी दुःखभरी जीवनगाथा लिखता, जो इनके अंधेरे हृदयमें इच्छाओंके उत्पन्न और नष्ट होनेकी करुण कहानी सुनता, जो इनके लोम-लोमको जकड़ लेनेवाली शृङ्खलाकी कड़ियां ढालनेवालोंके नाम गिनाता और जो इनके मधुर जीवन-पात्रमें तिक्त विष मिलानेवालेका पता देता। क्या ये उन स्त्रियोंकी सजातीय नहीं, जिनकी दुग्धधारासे मानव-जाति पल रही है ? क्या ये उन्हींकी बहनें नहीं हैं, जिन्होंने पुरुषको पतिका पद देकर अवकुण्ठित भावसे परमेश्वरके आसनपर आसीन कर दिया ? और क्या यह उन्हींकी पुत्रियां नहीं हैं, जिनके प्रेम, त्याग और साधनाने झोंपड़ों-

में स्वर्ग और मिट्टीके पुतलोंमें अमरता उतार ली है ? क्या इनमें आत्म-सम्मान नहीं होता ? क्या वे मानवात्मा नहीं हैं ? क्या वे रबरकी चलती-फिरती मूर्तियां हैं कि जिनकी-इच्छा हो वही, जिस तरह चाहे उसी तरह, उनके साथ व्यवहार करे ? क्या इनके पास वह धड़कता हुआ दिल नहीं है, जो स्नेहका आदान-प्रदान चाहता हो ?

अगर ये प्रश्न मैं उन सभ्योंसे पूछूं जो इस वेश्या-प्रथाको समाज तथा राष्ट्रके लिए घातक समझते हैं, तो उनका उत्तर नकारात्मक होगा । वे समझते हैं—इन वेश्याओंके न तो दिल होता है, न उनमें आत्म-सम्मान । वे सर्वथा भ्रष्ट, बेशर्म और अधम होती हैं । भोले-भाले रईसों-को अपने बनावटी प्रेम-जालमें फंसाकर उनके एक-एक पैसेको चूस लेना और उन्हें दर-दरका भिखारी बना देना—यही उनका काम है । इस तरह कहनेको तो अनेक विशेषणोंसे लोग उन्हें बदनाम करते हैं; परन्तु क्या कभी इस विषयपर सोचनेका प्रयत्न किया है ? क्या यह जाननेकी कोशिश की है कि वे इस निर्लज्ज पेशेको क्यों करती हैं । आखिर वे भी तो मानवात्माही हैं । उनके भी तो हमीं लोगों-के समान शरीर और सोचनेकी शक्ति है । वे भी कला इत्यादिमें उतनी ही प्रवीण हो सकती हैं और होती हैं, जितना कि एक कुलीन मनुष्य हो सकता है । फिर क्यों वे इस वीभत्स पेशेको, गर्हित व्यवसायको, जीवनके आदिसे अन्त तक, उमड़ते हुए आंसुओंको अञ्जनमें छिपाकर, सूखे हुए अधरोंको मुसकराहटसे सजाकर और प्राणोंके क्रन्दनको कण्ठ ही में रूंधकर, अख्तियार करती हैं । क्या मानव-स्वभाव इतना पतित हो गया कि बिना किसी मजबूरीके, वह ऐसे जघन्य कार्य करनेको तैयार हो जायगा ? मैं इसमें विश्वास नहीं करता । मनुष्य तो क्या, सृष्टिके प्रत्येक जन्तु-में स्वभाव ही से स्वतन्त्रता और आत्म-सम्मान रहता है । प्रकृतिने बिना किसी पक्षपातके इन दोनों महंगे वरदानों-को प्राणी-मात्रमें बिखेर दिया है । यह मनुष्य-स्वभावका एक खास अङ्ग है । कोई भी किसीका अनुचित दबाव, बर-दाश्त करनेको तैयार नहीं होता, जब तक किसी प्रकारकी असह्य लाचारी नहीं हो । वेश्याओंकी भी ठीक यही दशा है, अन्यथा कौन ऐसी होगी, जो योग्य रमणी न बनकर बाजार-में बैठना पसन्द करेगी, जहां उसे महंगे सतीत्व तथा आचार-का बलिदान करना होता है । फिर वह कौन-सा दबाव है, जिसके द्वारा इस पाप-व्यवसायकी ओर झुकनेकी प्रेरणा मिलती है ?

सुधारवादियोंका मत है कि सामाजिक कुरीतियां ही इन व्यभिचारोंकी जड़ और कारण हैं । जर्मन तत्त्ववेत्ता शोपेन-हारने लिखा है—"वेश्यायें एकपत्नीव्रतकी वेदीपर बलि-दान-स्वरूप हैं ।" सुधारवादियोंका यह मत सत्य है अवश्य; किन्तु आंशिक । इसमें सन्देह नहीं कि बहुत-सी बहनें समाज-के अत्याचारोंसे विचलित होकर इस पेशेको कबूल कर लेती हैं; परन्तु इसका मुख्य करण यह नहीं है । इसकी जड़ कहीं दूसरी जगह है । यदि यही मुख्य कारण होता, तो उस जाति अथवा राष्ट्रमें, जहां ऐसी कुरीतियां नहीं हैं, यह जघन्य पेशा होता ही नहीं । यूरोपियन लोगोंमें न विधवा-विवाहपर रुकावट है और न प्रेम-विवाहपर । भारतवर्षकी तरह वे रोटीके गुलाम भी नहीं हैं; किन्तु तब भी वहां वेश्याओंकी संख्या काफी है । फिर वह कौन ऐसा सार्वभौम कारण है इस वेश्या-वृत्तिका ?

वेश्या-वृत्ति पूंजीवादी सभ्यताका एक खास अङ्ग है । इस सभ्यताकी चकाचौंधमें मनुष्य मशीन बन गया है । इसके विपने समाजके भीतर जो दिव्य ईश्वरीय विरासत थी, उसे गदा मार-मारकर चकनाचूर कर दिया है । हम उसकी सुविधाओंका गान गाते हैं; पर हम यह भूल जाते हैं कि हमारा जो कुछ परम तत्त्व था, हममें जो जीवित मनुष्य था, वह निष्प्राण हो गया है । समाज उस भीषण अवस्थामें पहुंच गया है, जिसमें सम्पत्ति श्रेणी निर्धारण करती है । धन सद्गुणका एकमात्र सहारा रह गया है । और इसी कारण बहुतोंको विवश होकर ऐसे जघन्य कार्य करने पड़ते हैं, जिनसे वे समाजमें नीच और निर्लज्ज समझे जाते हैं । थोड़ी देरके लिए चोर और डाकुओंकी मिसाल ले लीजिये । एक आपके घर जाकर रुपये चुरा लाता है, दूसरा पिस्तौल दिखाकर रुपये छीन लेता है । आखिर वे ऐसा क्यों करते हैं ? यदि उनके पास अच्छी तरह खाने-पीनेका सामान हो, पहननेको पर्याप्त कपड़े हों, अपने परिवारका पालन करनेके लिए, बच्चोंको उचित शिक्षा देनेके लिए यथोचित धन हो, तो वे अंधेरी रातोंमें, दूसरेके मकानमें घुसनेके खतरेका क्यों सामना करेंगे । संसारमें आनन्दपूर्वक रहनेकी यदि उन्हें

उचित सुविधायें मिल जायं, तो वे इस तरहकी जोखिम कभी भी न उठावें। ठीक यही हाल वेश्याओंका भी है। उन्हें यदि सम्मानपूर्वक जीवन-यापन करनेका मौका मिलता, रुपये-पैसेकी कमी न रहती, तो इस प्रकारका कलुषित जीवन व्यतीत करनेको वे हर्गिज राजी न होतीं। अतः यह कहना कि समाजमें ये पापी—वेश्या, चोर, डाकू,—बुरे हैं, और बड़े-बड़े सेठ-साहूकार—जो जनतासे चूसे हुए धनका एक छोटा-सा हिस्सा दान करके दानवीर कहलाते हैं—नेक, धर्मात्मा और भले हैं, सर्वथा अनुचित ही नहीं; बल्कि मक्कारी है। सच तो यह है कि हममें न कोई बुरा है और न भला। सभी अपनी परिस्थितिके अनुसार अच्छेसे अच्छा काम करना चाहते हैं और करते हैं। मैं इन 'पापियों' को उसी प्रकार निर्दोष बतलाऊंगा, जिस प्रकार बड़े रोजगारी, वकील, डाक्टर अपने पेशेमें दोषी नहीं समझे जाते। रुपयेके लोभमें पड़कर कोई भी वैसे ही अपनी आत्माका हनन करता है, जैसे एक वेश्या। अपने बड़े-बड़े कारखानों और कम्पनियोंके रहते एक अमीर जनताको उसी प्रकार लूटता है, जिस प्रकार चोर या डाकू, जो गरीबीसे तङ्ग आकर यह पेशा अख्तियार कर लेते हैं। किन्तु फिर भी एक पापी समझा जाता है और एक धर्मात्मा। यह केवल इसलिए कि अमीरोंको रुपये लूटनेके अच्छे ढङ्ग मालूम हैं। उनके पास कल हैं, कारखाने हैं, बेशुमार रुपये हैं और कानूनका शस्त्र भी है, जिसके सहारे लूटका कार्य बड़ी आसानीसे करते हैं। ऐसी अवस्थामें गरीबोंके लिए रोटियोंका क्या प्रबन्ध हो सकता है ?

प्राण और शरीर इकट्ठा रखनेके लिए ही उन्हें अपनी आत्माको नीचे झुकाना पड़ता है। अपनी बेइज्जती सहकर भी उन्हें हंसना पड़ता है। कोई कितना ही बेहया, बदसूरत और दुष्ट प्रकृतिका क्यों न हो, उसके साथ भी उन्हें प्रेमालाप करना होगा; क्योंकि यही उनका पेशा है—रोटी-दालका साधन है।

कुछ व्यक्तियोंका कहना है कि ये स्त्रियां अपनी जीविकाके लिए स्वेच्छासे इस व्यवसायको स्वीकार करती हैं और किसी भी दशामें इस स्थितिमें परिवर्तन नहीं चाहतीं। यह कल्पना यदि सत्य है, तो इससे स्त्री ही नहीं, वरन् सारी मानव जातिके पतनका प्रमाण मिलता है और यदि असत्य है, तो मनुष्य इससे अधिक अपना अपमान नहीं कर सकता। सम्भव है, सौमें एक स्त्री ऐसी मिल जाये, जो मनमें ऐसे व्यवसायको अपमानका कारण न समझती हो। परन्तु उसके जीवनका इतिहास कोई दूसरी ही कहानी सुनायेगा। परिस्थितियोंने उसके हृदयको इतना आहत किया होगा, समाजकी निष्ठुरताने उसकी इच्छाओंको इतना कुचला होगा, मनुष्यने उसे इतना छला होगा कि वह आत्मगौरवको आडम्बर और स्नेह तथा त्यागको स्वप्न समझने लगी होगी। स्त्रीके हृदयसे जब स्नेहका बहिष्कार हो जाता है, उसकी कोमलतम भावनायें जब कुचल दी जाती हैं, तब वह भी कोई और ही प्राणी बन जाती है। उसमें फिर गरिमामय स्त्रीत्वकी प्राणप्रतिष्ठा करनेके लिए मनुष्य ही की अजस्र सहानुभूति तथा स्निग्धतम स्नेह चाहिए। परन्तु हमारे समाजका निर्माण ही इस प्रकार हुआ है, उसकी व्यवस्था ही इस प्रकार हुई है कि वह स्त्रीसे न किसी भूलकी आशा रखता है और न उन भूलोंकी क्षमामें विश्वास करता है। पहलेसे ही वह स्त्रीको पूर्णतम मनुष्य मान लेता है और जहां कहीं भी अपने इस विश्वासमें सन्देहका लेश-मात्र भी देख पाता है, वहां स्त्रीको मनुष्य कहलानेका भी अधिकार देना स्वीकार नहीं करता। एक ओर यह और दूसरी ओर हम यह कहते हुए भी लज्जित नहीं होते कि ये स्वेच्छासे ऐसा घृणित व्यवसाय करने आती हैं। वाह रे समाज !

× × ×

वेश्या-वृत्तिके प्रतिकारकी समस्या आधुनिक अथवा एकदेशीय नहीं है, वरन् सभी देशों और सभी कालोंमें यह विचार-शील व्यक्तियोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती रही है। इस सम्बन्धमें कोई भी जाति निर्दोष होनेका दावा नहीं कर सकती। सन् १९२३ई०में राष्ट्र-सङ्घ ने इस प्रश्नकी जांचके लिए एक कमीशन नियुक्त किया था— जिसने २८ देशों और ११२ नगरोंमें भ्रमण करके रिपोर्ट दी कि यह व्याधि सर्वत्र वर्तमान है और सभी राष्ट्र इसे रोकनेकी चेष्टा कर रहे हैं। लेकिन अब तक लोग इसके लिए मुख्यतया कानूनकी ही शरण लेते रहे हैं, जिसके द्वारा इसका जड़मूलसे उच्छेद होना असम्भव है। कानूनसे केवल इतना हो सकेगा कि वेश्यायें खुले आम

बाजारमें न बैठ सकेंगी और यह रोजगार गुप्त रूपसे चलने लगेगा। और तो और, पूंजीवादी व्यवस्थामें ऐसे कानून बनाना असम्भव-सा है, क्योंकि शासन-सूत्र बड़े-बड़े धनियोंके हाथमें रहता है और उनके लिए वेश्यायें विलासकी सामग्रियां हैं। और यह भी मान लें कि कानून बनानेमें पूंजीवाद बाधक नहीं भी होगा, तो हम पूछते हैं कि जुआ, ठगी, चोरी, डकैती, नरहत्या इत्यादिके लिए जो सदासे कठोरतम कानून बने हुए हैं, क्या उनके द्वारा ये अब संसारसे उठ गये हैं? यदि नहीं, तो फिर वेश्या-वृत्तिके सम्बन्धमें ही यह आशा कैसे की जाय कि कानूनके भयसे लोग उसके द्वारा धन कमानेका लोभ त्याग देंगे। इसके विपरीत इस प्रकारके कृत्रिम प्रतिबन्धोंका फल तो प्रायः यह देखनेमें आता है कि पाप-व्यवसायमें निरत व्यक्ति अपना कार्य और भी गुप्त तथा साथ ही भीषण रूपसे करने लगते हैं। अमेरिकामें जब कानून बनाकर शराबकी विक्रीको बलपूर्वक रोका गया, तो वहां शराबका गुप्त व्यवसाय करनेवालोंका ऐसा शक्तिशाली और सङ्गठित दल उत्पन्न हो गया कि पुलिस तो क्या, सरकारकी समस्त शक्ति भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकती थी और वह आधुनिकसे आधुनिक उपायोंका अवलम्बन करके व्यवसाय द्वारा प्रति वर्ष करोड़ों रुपये पैदा करता था।

इस कलङ्कको मिटा देनेके कार्यमें उपदेशकगण भी वैसे ही निकम्मे हैं, जैसे कानून। उपदेशकोंसे कुछ भी नहीं हो सकता। वे सबको धर्मात्मा, ईमानदार और सज्जन बननेका उपदेश देते हैं और कहते हैं कि धर्मात्मा मनुष्य ही सुखसे जीवन व्यतीत करता है। किन्तु प्रत्येक मनुष्य जानता है कि आजके युगमें प्रायः दगाबाज और झूठे ही मौज कर रहे हैं। सज्जन और धर्मात्माओंकी सारी उम्र सख्तियोंसे लदी रहती है और इन सबका कारण है सामाजिक व्यवस्था। आज मानवता दुःख, दम्भ और द्वेषके अन्धकारमें गुमराह हो गयी है। जीवनके प्रति हमारा दृष्टिकोण स्वार्थकी भावनाओंसे भर गया है। हमारा अटल विश्वास है और विश्वास ठीक भी है कि आज यदि संसारकी सारी वेश्यायें मार डाली जायें और सामाजिक सङ्गठन ज्योंका त्यों रहे, तो कुछ दिनोंमें आपसे आप वेश्याओंकी उत्पत्ति हो जायगी। क्योंकि अमीरोंकी लूटसे गरीबोंकी दशा घोर कङ्गालीमें डूबती जा रही है और कङ्गालीकी चोटसे त्राण पानेके लिए आदमी कुछ भी कर सकता है।

अतः इस पापाचारको रोकनेकी सिर्फ एक ही दवा है और वह है पूंजीवादका नाश और स्वतन्त्रता तथा समानताकी नींवपर समाजकी नवीन रचना। वेश्या-वृत्ति समाजकी बीमारी नहीं है, यह किसी भयङ्कर बीमारीका लक्षण है। लक्षणोंकी दवा नहीं की जाती, दवा मर्जकी ही की जाती है। यदि किसी मनुष्यका खून गन्दा हो गया है, तो उसके शरीरमें तरह-तरहके फोड़े उठेंगे, सिर-दर्द रहेगा, इत्यादि। उन फोड़ोंपर आप लाख मरहम लगायें, वे आराम न होंगे; क्योंकि वे तो केवल खून गन्दा हो जानेके लक्षण हैं। ठीक यही हालत यहां भी है। आप पूंजीवादी व्यवस्था मिटा दीजिये, पापी रोजगार आपसे आप मिट जायंगे। अमेरिकाके एक प्रसिद्ध विद्वान्ने एक बार अपने भाषणमें कहा था:—

"मैं दावेके साथ कहता हूं कि मुझे संसारकी किसी जेलसे पांच सौ नीचसे नीच अपराधी तथा किसी शहरकी गन्दी गलियोंसे निर्लज्जसे निर्लज्ज पांच सौ वेश्यायें चुनकर दे दो और एक ऐसा स्थान दे दो, जहां उन लोगोंके रहने तथा खेती-बारीकी काफी सुविधा हो। कुछ समयके पश्चात् आप देखेंगे कि ये भ्रष्ट समझे जानेवाले लोग उसी तरहके सभ्य और सज्जन बन जायेंगे, जैसे संसारके साधारण मनुष्य होते हैं।"

बिलकुल ठीक। यदि हमें मानव-समाजके इस कलङ्कको धोना है, तो सर्वसाधारणके जीवन-निर्वाहके लिए समान अवकाश देना होगा, अमीरों और गरीबोंका भेद मिटाना होगा तथा हर प्रकारके विशेषाधिकारोंको धूलमें मिला देना होगा, जिससे साम्यवादका आविर्भाव हो। और जब तक यह नहीं होगा, तब तक इस ओर कोई भी प्रयत्न सफल नहीं होगा, यह ध्रुव निश्चित है।

———

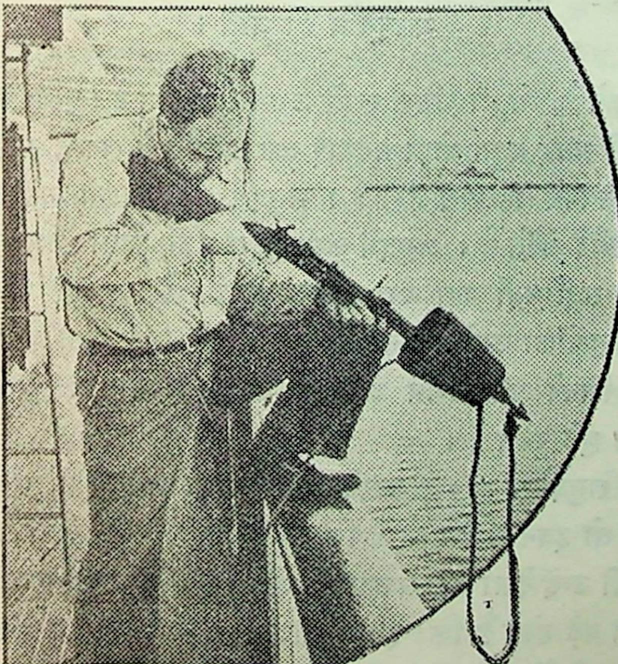


डा० ए० पी अग्निहोत्री, पी-एच० डी०

समस्त भू-मण्डलमें तिहाईसे कम स्थल है और दो तिहाईसे ज्यादा जल है। इस जलमें बहुत भाग तो सागरों और महासागरोंका है, जिसे रत्नाकर कहते हैं और जिसके देवताका नाम वरुण है। इसीको दूसरे शब्दोंमें यह भी कह सकते हैं कि रत्नाकर समुद्र वास्तवमें वरुणका भण्डार है। पहले समयमें मनुष्यको इस अक्षय भण्डारकी कुछ ही चीजोंका पता था। मूंगा, मोतीसे लगाकर सीप, लवण, शङ्ख और कौड़ियों तक—थोड़ी ही चीजोंको वे समुद्रसे निकालते और उनका व्यवहार एवं व्यापार करते थे। इस युगमें विज्ञानने मनुष्यको अपूर्व क्षमता प्रदान की है और आज अवस्था बिलकुल ही बदल गयी है। आज तो वह अपने नेत्रोंसे समुद्र-गर्भकी कितनी ही बहुमूल्य चीजोंको देख सकता है और समुद्रकी लहरोंमें उसे लक्ष्मीका दिव्य सङ्गीत सुन पड़ता है।

अनुमान है कि एक घन मील समुद्र-जलमें जो दूसरे कितने ही पदार्थ पाये जाते हैं, उनके अलावा उससेसे ६ करोड़ डालर मूल्यका आयोडाइन और २॥ लाख टन ब्रोमाइन भी प्राप्त किया जा सकता है। समुद्र-जलमें सोना और रेडियम जैसी बहुमूल्य चीजोंका अंश तो रहता ही है, दूसरे प्रायः सभी तरहके खनिज पदार्थ भी उसमें होते हैं। फिर भी ये खनिज पदार्थ वरुणकी असीम सम्पत्तिका एक अंश-मात्र हैं।

समुद्रोंके विशेषज्ञ डा० क्लाड ई०जोबेलने लिखा है— "संसारमें मछलियोंके क्षेत्रोंसे ही मनुष्यको प्रति वर्ष ३० अरब डालरसे अधिककी आय होती है और इस व्यवसायसे



इस बन्दूककी सहायतासे सामुद्रिक द्रव्योंके नमूने प्राप्त किये जाते हैं।

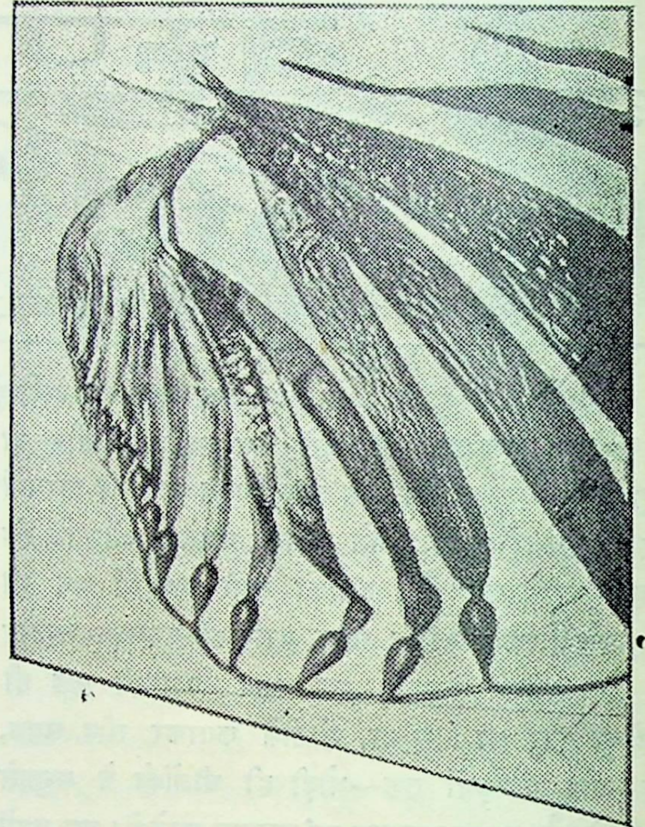


यह मीटर बतलाता है कि समुद्रकी धाराका प्रवाह किधरको है और मछलियां कहां हैं।

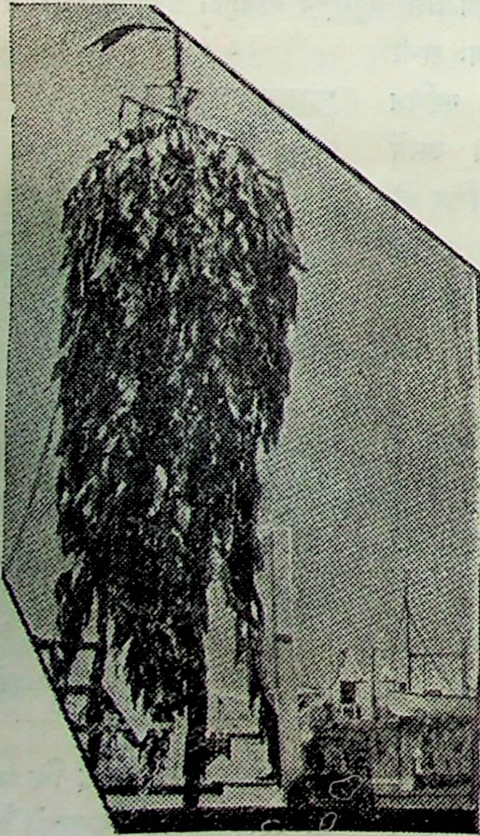
न्यूनाधिक दो करोड़ मनुष्योंका पेट पल रहा है। समुद्रमें जो सम्पत्ति है, उसे प्राप्त करनेके लिए पूरी तरह कोशिश की जाय, तो उससे अभी कई करोड़ आदमियोंको काम मिल सकता है। वैज्ञानिक इस बातको दृष्टिमें रखकर विचार कर रहे हैं कि समुद्र-जलसे निकाले हुए पदार्थोंको किस तरह काममें लाया जा सकता है और इन पदार्थोंको किस तरह किफायतके साथ निकाला जा सकता है।"

मनुष्य आज भी समुद्र-जलसे प्रस्तुत कितनी ही चीजोंको काममें ला रहा है। प्रतिवर्ष समुद्रसे करोड़ों टन नमक और लाखों टन ब्रोमाइन निकाला जाता है। नमकका उपयोग तो हम सब जानते ही हैं, ब्रोमाइनका उपयोग मोटरके तेलोंमें मिलाकर करते हैं। आयोडाइन और पोटाश नामक पदार्थोंको सीधे ही समुद्र-जलसे न निकालकर केल्प नामक समुद्री वृक्षसे प्राप्त किया जाता है; क्योंकि इस वृक्षकी पत्तियोंमें ये दोनों पदार्थ प्रचुर मात्रामें रहते हैं।

समुद्रकी महान् धनराशि उसके खनिज द्रव्योंमें नहीं, उसके जलके नीचे जमीनके तैल-क्षेत्रोंमें नहीं, उस उत्पादन-



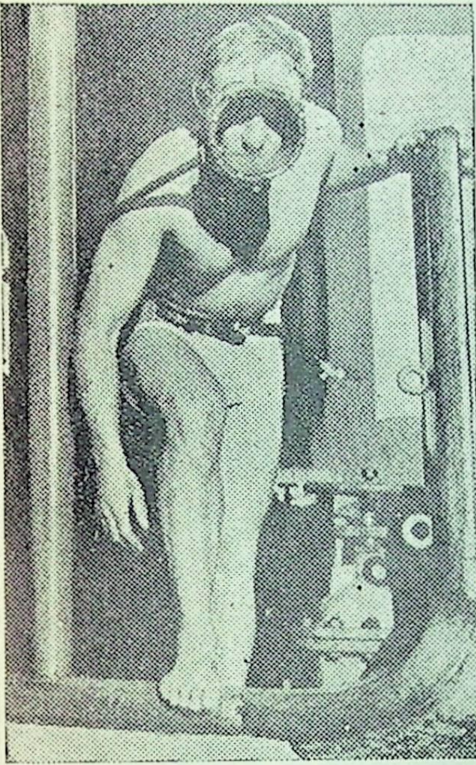
केल्प वृक्षकी पत्तियां—ये अपने बल्ब-जैसे हिस्सेके सहारे एक दूसरेसे तब तक जुड़ी रहती हैं जब तक काफी मजबूत न हो जायं।



केल्प वृक्षकी शाखा।

शक्तिमें है, जो प्राकृतिक रूपसे उसमें विद्यमान है। पृथिवीकी ऊपरी सतह बहुत थोड़ी गहराई तक उपजाऊ है; परन्तु समुद्रके विषयमें यह बात नहीं है। समुद्रमें ८०० फीटकी गहराई तक पौदे उगते हैं। समुद्रमें कभी सूखा नहीं पड़ता और न कभी सर्दी-गर्मी कम या अधिक होती है। समुद्री पौदों और वृक्षोंको उगने, बढ़ने और पुष्ट होनेके लिए जिन द्रव्योंकी जितने परिमाणमें आवश्यकता है, वे पानीमें अच्छी तरह घुले रहते हैं।

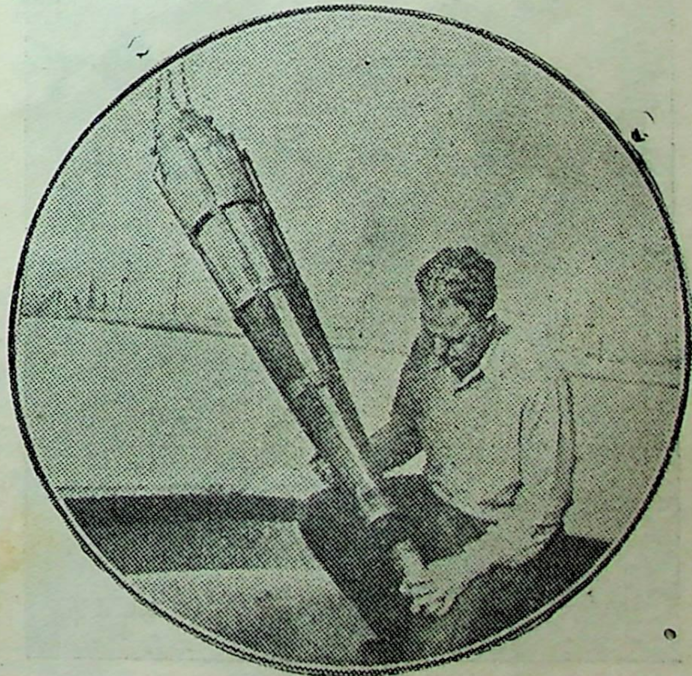
समुद्रमें ८००० प्रकारके पौदे पाये जाते हैं। इनमेंसे कुछ तो इतने छोटे होते हैं कि अणुवीक्षण यन्त्रकी सहायतासे ही उन्हें देखा जा सकता है और कुछ केल्पकी तरहके इतने बड़े होते हैं कि ३०० फीटकी लम्बाई तक उठते ही चले जाते हैं। बिलकुल ही नन्हें पौदे मछलियोंकी खुराक बन जाते हैं और हवाई टापूमें तो मनुष्यके खानेमें भी लगभग ७० प्रकारके समुद्री पौदे काम आते हैं।



गोताखोर—इसकी पीठपर हवाकी बोतलें रहती हैं।

समुद्रसे केल्प वृक्षका निकालना भी एक बड़ा उद्योग है, जिससे ९० करोड़ डालरके पदार्थ तैयार किये जाते हैं। खनिज द्रव्य निकालनेके बाद जो भाग रह जाता है, उसे कागज बनानेकी लुगदी और इन्सुलेशनके रूपमें व्यवहार करते हैं। यूरोप और जापानमें उसे खादकी जगह भी काममें लाते हैं। अमेरिकाकी एक कम्पनी केलिफोर्नियाके समुद्र-तटसे दूर प्रतिवर्ष १ लाख टन केल्प समुद्र-गर्भसे निकालती है। इसके लिए पहले एक बड़ी मशीनसे काम लेकर समुद्र-गर्भमें केल्प वृक्षको काट दिया जाता है और बादमें समुद्रकी सतहपरसे उसकी शाखाओंको एकत्र कर लेते हैं। इसकी सूखी पत्तियोंमें भी बिटामिन और खनिज द्रव्य इतनी तादादमें रहते हैं कि पशुओंके लिए वे बड़े ही पौष्टिक खाद्यका काम देती हैं। केल्पसे प्रस्तुत कितने ही द्रव्योंको रोटियों, बच्चोंके खानेकी चीजों और स्वादिष्ट भोज्य पदार्थोंमें मिलाते हैं। केल्पके अलावा कई अन्य पौदे भी समुद्रमें पाये जाते हैं, जिनसे औषधियां तैयार की जाती हैं।

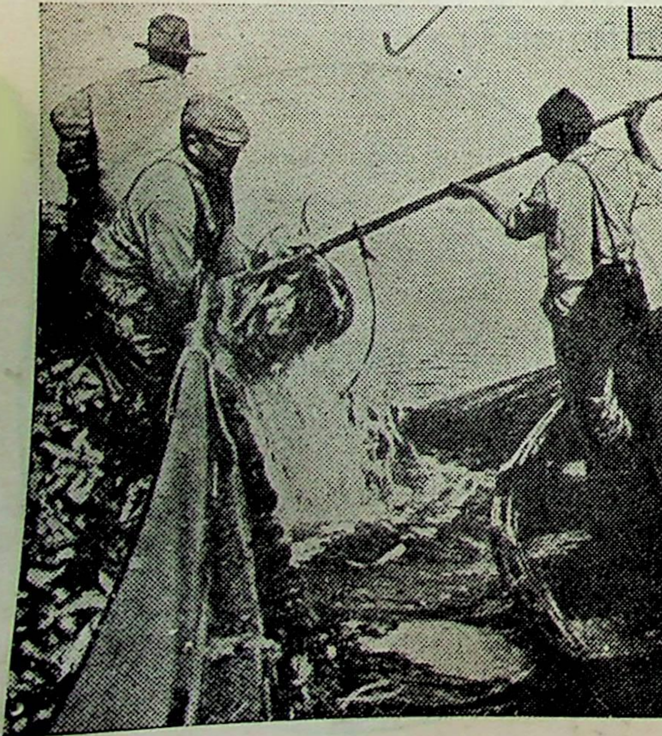
कीटाणुओंको अगर छोड़ दिया जाय, तो मनुष्यको जितने प्राणियोंका पता है, उनमेंसे ८० सैकड़े प्राणी समुद्रमें रहते हैं। इनमें लगभग १५००० जातियां तो मछलियोंकी हैं और लगभग ४० हजार जातियां मोलस्क नामक प्राणीकी हैं और लगभग इतनी ही जातियां कस्ट्रासिया नामक प्राणीकी समझिये। मछलियां पकड़नेके व्यवसायसे मनुष्य-समाजको भक्ष्य, पशु-खाद्य, स्पञ्ज, चमड़ा, खाद, उद्योग-धन्धों और औषधियोंमें काम आनेवाले तेल, मोती, कोरल और ह्वेल मछलीसे प्राप्त और प्रस्तुत विविध द्रव्य, सब मिलते हैं। कितने देशोंके खाद्यमें मछलीका मुख्य स्थान है और युद्धकालमें तो खास तौरसे मछलीकी खपत बढ़ जाती है। गत महासमरमें भी यही हुआ था। मछलीके लिवरका तेल औषधिमें काम आता है। शार्क नामक दरियाई शेरका तेल साबुन और रङ्ग बनानेमें काम देता है और उसके लिवरका तेल भी औषधिकी तरह व्यवहार किया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि पहले जहां दरियाई शेरसे मछुओंको घृणा थी, वहां वे अब उसकी खोजमें रहते हैं। भूमध्यसागरमें सरडानियाके पास खास तौरसे पायी जानेवाली एक जातिकी मछलीका तेल रङ्ग, साबुन, फर्शपर लगानेका कपड़ा और दूसरी कितनी ही चीजें बनानेके काममें आता है। तेल बनानेके बाद बचे हुए हिस्से पशुओंके खाद्यका काम देते हैं और खेतोंमें खादकी तरह भी व्यवहार किये जाते हैं।



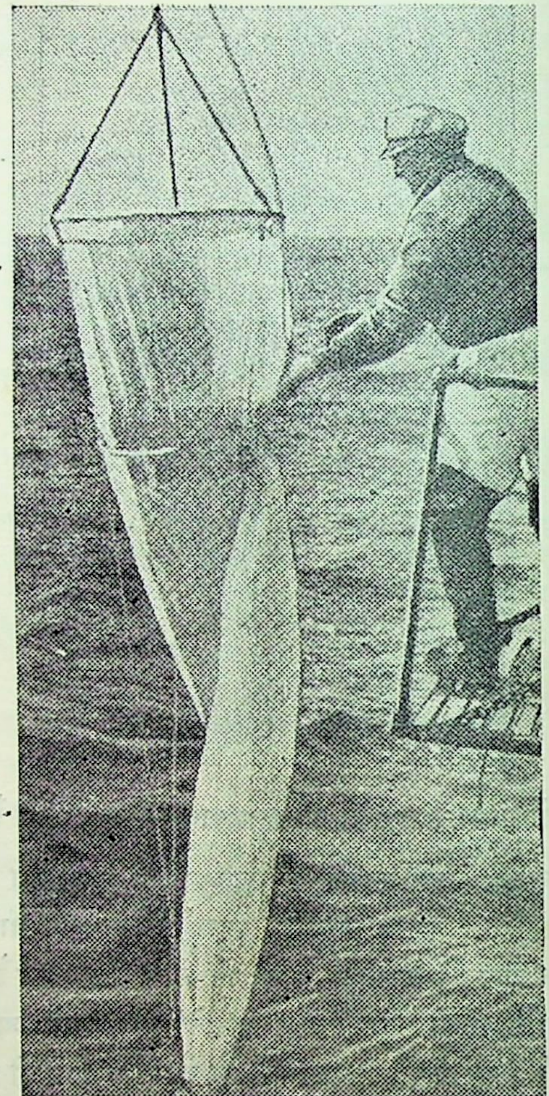
मछलियोंको पकड़नेका जाल।

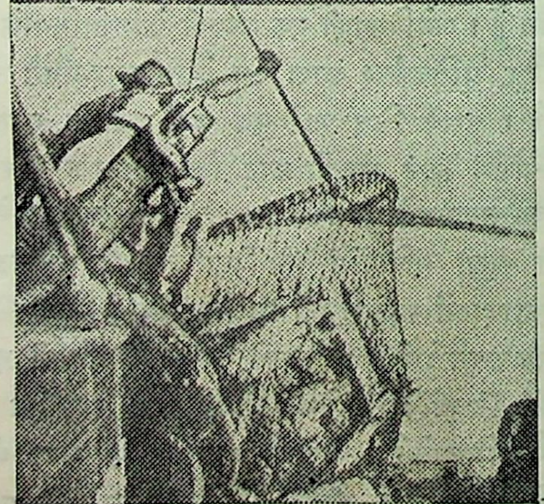
अपने इस तरहके व्यवसायोंमें ये व्यवसायी आधुनिक आविष्कारोंसे भी पूरा लाभ उठाते हैं। अपनी नावोंपर वे कम ताकतका ध्वनि-प्रेषक रेडियो रखते हैं, जिससे समुद्रमें रहनेके समयमें अन्य नाववालों या किनारेके लोगोंसे बातचीत की जा सके। किसी नावका मछुआ सरदार जब यह देखता है कि समुद्रके किसी हिस्सेमें बहुत मछलियां हैं, तब वह रेडियोसे अन्य मछुओंको इसकी सूचना दे देता है। इधर मछुओंने मछलियोंका पता लगानेके लिए एक नये वैज्ञानिक यन्त्रसे काम लेना आरम्भ किया है। इस यन्त्रसे वे समुद्रके पानीमें बिजलीकी तरङ्गें छोड़ते हैं। ये तरङ्गें जब मछलियोंसे जाकर टकराती हैं, तब नावपर उनका बिम्ब पड़ता है और वहां मछलियोंके होनेका पता चल जाता है।

जमीनकी खेतीकी तरह क्या समुद्रको भी कमाया जा सकता है—यह एक विचार है, जिसे सामने रखकर अमेरिकामें शोधका काम हो रहा है। वहांके औद्योगिकक्षेत्रोंको यह अभीष्ट नहीं है कि जिन मछलियोंसे उनका व्यवसाय चल रहा है, वे सब समाप्त हो जायं। मछलियां किस तरह अपना स्थान छोड़कर ५-५ सौ मीलकी दूरी तक अन्यत्र चली जाती हैं—इस विषयमें भी शोध किया जा रहा है। बहुत अधिक संख्या-



मछलियों समेत जालको नावमें रख रहे हैं।





ऊपर—मछलियां पकड़नेका जाल।
नीचे—सैकड़ों मछलियां जालमें आ गयीं।

में प्रति वर्ष पकड़े जानेसे यह भय भी है कि किसी जातिकी मछलियां कहीं चुक ही न जायें। इन्हीं सब कारणोंसे आशा यह की जाती है कि यदि उचित प्रतिबन्ध लगाकर ये धन्धे चलाये जायं, तो न केवल आवश्यक परिमाणमें वे मिलती रहें, यह भी निश्चित है कि कभी उनके समाप्त होनेकी नौबत ही नहीं आये। इस तरहके प्रतिबन्धोंकी परीक्षा हो चुकी है। प्रिविलोफ टापूमें कील नामक एक समुद्री जन्तुको फर प्राप्त करनेके लिए इतनी अधिक संख्यामें मारा जाने लगा कि इस शताब्दीके आरम्भमें उसके लुप्त हो जानेका ही भय हो गया। उस समय जो प्रतिबन्ध लगाये गये, उनका फल यह हुआ कि फर लगातार मिलता जा रहा है।

समुद्रको कमानेका विचार कुछ बिलकुल नया नहीं है। छिछले समुद्रों और खाड़ियोंमें आज भी मोतीवाली सीपों, केकड़ों और झींगोंके लिए वही किया जाता है।

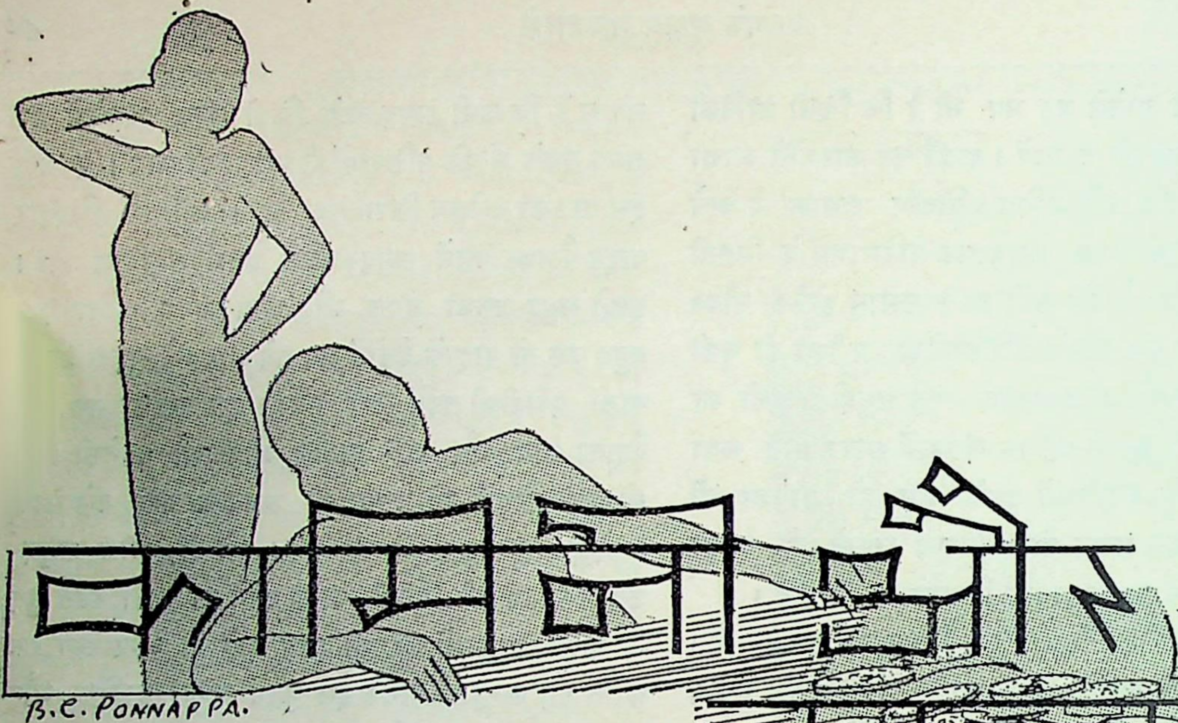
समुद्रसे बिजली पैदा करनेकी ओर मुद्दतसे इञ्जीनियरों-का ध्यान आकर्षित हो रहा है। न्यू इंगलैण्डके समुद्र-तटके पास कितने ही छोटे-मोटे कारखाने समुद्रके पानीकी सहायतासे ही उत्पन्न की हुई बिजलीका उपयोग करते हैं। परन्तु अभी तक यह सागरीय विद्युत् अन्यान्य यन्त्रोंकी सहायतासे उत्पन्न और एकत्र की हुई बिजलीसे स्पर्धा नहीं कर सकती। प्रश्न कमसे कम लागतसे सुविधापूर्वक विजली उत्पन्न करनेका है।

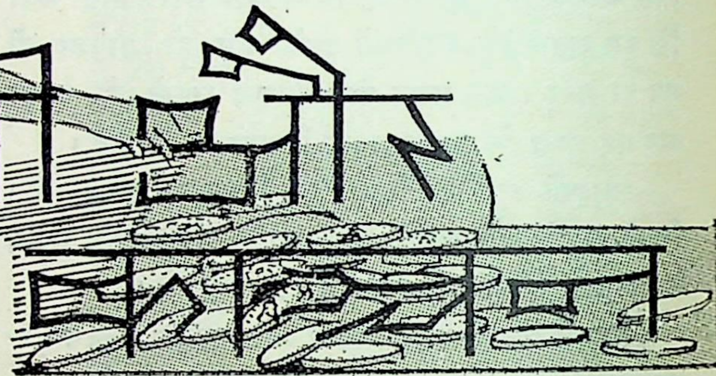
क्या समुद्रका पानी मनुष्योंके पीनेके काममें आ सकता है? क्या उससे आबपाशी हो सकती है? इन प्रश्नोंकी ओर भी काफी ध्यान दिया गया है और यह हो सकता है कि कभी समुद्र-तटके किसी खुश्क इलाकेमें इस समय तकके शोधके परिणामोंकी परीक्षा की जाय। एक बार इस तरहका परीक्षण किया गया था। जमीनमें छिद्रदार पाइप बैठाकर उसमें समुद्रका जल प्रवाहित किया गया। इससे समुद्र-जलका नमक और अन्य अनेक खनिज-द्रव्य बहुत कुछ तो पाइपके छेदोंमें जम गये और अपेक्षाकृत अच्छा पानी पृथिवीकी तहमें समा गया। इस तरहका तल यदि बैठाया जाय और खारे पानीसे आबपाशी करनेकी कोई योजना हाथमें ली जाय, तो समय-समयपर उसे साफ करनेकी आवश्यकता हो सकती है। जो हो, आज समुद्र-जलकी सहायतासे बिजली उत्पन्न करने या खारी रहते हुए भी उससे आबपाशी करनेकी बात भले ही अव्यावहारिक प्रतीत हो; परन्तु विज्ञानके इस युगमें अव्यावहारिक और असम्भव कुछ भी नहीं है।

वैज्ञानिकोंने अनुमान लगाया है कि समुद्री ३० करोड़ घन मील जल-राशिका पृथिवीपर रहनेवाले प्रत्येक प्राणीके जीवनपर प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव पड़ता है। फिर भी हम यह देखते हैं कि वैज्ञानिकोंको अपनी ही पृथिवीके समुद्रोंकी पूरी जानकारी नहीं है; परन्तु यदि प्रश्न किया जाय, तो वे अनन्त आकाशके तारोंके विषयमें सम्भवतः कहीं अधिक बातें बतला सकते हैं। यह कैसे आश्चर्य और खेदका विषय है! निश्चय ही ज्यों-ज्यों जानकारी बढ़ेगी, सभ्य जन-समाज वरुणके अक्षय भण्डारसे अधिकसे अधिक धनराशि बटोरनेके लिए अग्रसर होगा।

———







भारतीय राष्ट्र आज जीनेकी कला ढूंढ़नेमें बेहद उतावला है। वह जानता है कि सर्वतोमुखी क्रान्तिके पूर्ण होनेपर वह कला सहज ही हाथ लग जायगी। अतः वह क्रान्तिकी ओर आकृष्ट है। लेकिन उसकी गतिविधि क्रान्तिमुखीन है, क्या ? शायद नहीं। वह तो सुधारोंके साथ संलग्न है। दयानन्द जब आये और सुधारोंका शङ्ख फूंका, वह युग उसके उपयुक्त था। आज साठ वर्ष बादके समयकी लहरको उन्हीं प्राचीन अस्त्रोंसे कैसे समेटा जायगा ? इस युगका प्रखरतम विचार राष्ट्र-विचार है। सामाजिक रचना, धार्मिक अर्चना, सभी राष्ट्रीय रूपमें विचारणीय होती जा रही हैं। इस अभागे देशकी कई समस्यायें हैं। कई नयी-नयी समस्यायें और जुड़ती जा रही हैं। मनुष्य और मशीनका यह पारस्परिक घर्षण एक ऐसी विद्युत्‌को जन्म देता चल रहा है कि जिसमें मानव-स्वास्थ्यका नाश और अमानवीय प्रवृत्तियोंका प्रसार सहज होना है। वर्तमान समाजमें बारीकीसे प्रवेश कीजिये और यह सत्य स्पष्ट दीखेगा। समूचे अधःपातकी जड़ आर्थिक विषमतामें गहरे भिद गयी है। अर्थ बुरी चीज नहीं, स्वार्थ भी बुरी चीज नहीं; लेकिन आज तो धनके प्रमाद (money madness)का बोलबाला हो रहा है। प्रमाद नाम बुरी चीज है। तिसपर यह धनका प्रमाद ? इसने मनुष्यको बहुत नीचे ला दिया है।

प्रजनार्थं महाभागा
पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु
न विशेषोऽस्ति कश्चन॥

मनुस्मृति अ० १, श्लोक २६

स्त्रियां प्रजोत्पत्तिके लिए हैं, महाभाग्यशालिनी हैं, पूजाके योग्य हैं, घरोंकी दीप्ति हैं, घरोंमें स्त्री और श्री (शोभा) में कोई अन्तर नहीं है।

ऐसी शक्तिकी आदि-स्रोत कल्याणी, दुर्गे नारीपर इस काञ्चनके पागलनका पञ्जा कितना बीभत्स हो उठा है ? विश्व-भरमें चीत्कार मचा है। मशीनका मानव बड़े गर्वसे कह रहा है—"नारी बच्चे पैदा करनेकी मशीन है।" आत्मज्ञानसे शून्य वैज्ञानिक चिल्ला रहा है—"नारीमें दिव्य तत्त्व होता ही नहीं।" मशीनके मानवका हृदय और भौतिक वैज्ञानिकका मस्तिष्क विचारके लिए सम्मुख रखकर वस्तुस्थितिका दर्शन करें, तो नारी-जीवनका वह करुण अध्याय आंखोंके आगे घूम जाता है, जिसे न केवल अमानवीय, वरन्

श्री प्रभागचन्द्र शर्मा

नारकीय कह देनेपर भी सन्तोष नहीं होता। भारतीय संस्कृति, आर्य-धर्म और हमारा मानवतावाद देव-दानवके सम्मिश्रित व्यक्तिमें देवत्वके विकासके लिए कामिनी और काञ्चन दोनोंको त्याज्य मानता है। यदि काञ्चनपर कामिनी-का आधिपत्य आ गया होता, तब भी इतनी निराशाका कारण न था। किन्तु धन-प्रमादका यह बावला चित्र तो न जाने किस सुदूर नाशका सङ्केत कर रहा है। आज पैसेके लिए गृह-लक्ष्मी बेची जा रही है। यह प्रश्न हमारे ही देशकी चिन्ताका कारण हो, सो बात नहीं; अन्तर्राष्ट्र भी इस समस्यापर बेचैन हो उठे हैं। नवीन विश्व-रचनाके समस्त स्वप्नशील कर्मठ यह अनुभव कर रहे हैं कि संस्कृति, सुख और मङ्गलकी मूर्ति नारीका निर्मम दलन बिना रोके, भावी-के स्वप्न सार्थक कैसे होंगे? यह स्त्री-व्यापार, सभ्यताके उत्तरोत्तर विकासके साथ पूरी एक शताब्दीसे फैलता जा रहा है। सन् १८७५ में, 'फर्स्ट इण्टर नेशनल फेडरेशन फार दि अबालिशन आफ स्टेट रेगूलेशन आफ ह्वाइस' बना था। इंगलैण्डके जोसेफीन बटलर और प्रखर पत्रकार मि० स्टीडके प्रति विश्व कृतज्ञ है कि उन्होंने बड़ी कंटीली घड़ियों-में इस पुण्यकार्यकी ध्वजा निर्भयतापूर्वक फहरायी। यूरोप-में वेश्याओंको वेश्या बनी रहनेके लिए कानून था। सर-कारी प्रश्रय, प्रोत्साहन था। जोसेफीन बटलरने उसे कई देशोंमें रद्द करवा दिया। किन्तु ये अन्तर्राष्ट्रीय सभायें भी खराबीकी जड़में जाकर उसे छिन्न-भिन्न न कर सकीं। जोरदार भाषण और भड़कीली भाषामें वक्तव्य निकले कि बस, जैसे सारा काम हो गया! लेनिनने स्वयं अपने 'प्रवदा' अखबारमें सन् १९१३ की एक ऐसी ही सभाका वर्णन लिखा है:—"कुछ दिन पूर्व 'स्त्रियों और बच्चोंके व्या-पार' के खिलाफ 'पञ्चम अन्तर्राष्ट्रीय कान्फरेन्सका जोरदार अधिवेशन लन्दनमें हुआ था। रानियां, राजकुमारियां, पादरी धर्माचार्य, यहूदी और पुलिस अफसर सभी वहां उपस्थित हुए। क्या शानदार दावतें हुईं और अफसरोंका कैसा आला स्वा-गत हुआ! वेश्यावृत्तिकी नाशकता और घृणास्पदताके कितने जोशीले भाषण हुए!! लेकिन कोई पूछे कि इन श्रीमन्त प्रतिनि-धियोंने उस बुराईको मिटानेके लिए क्या-क्या प्रयत्न किये, तो जबाब मिलेगा, मुख्यतः दो—धर्म और पुलिसका नियन्त्रण। कनाडाकी एक महिला 'पतित स्त्रियोंपर धर्म और पुलिसकी निगरानी'के पक्षमें खूब शानदार बोली। लेकिन जब ऊंचे वेतनकी सम्भावनाका प्रश्न उठाया गया, तो उसने अपना मत प्रकट किया कि स्त्री मजदूर ऊंची तनखाहके सर्वथा अयोग्य हैं। और जब एक आस्ट्रियन प्रतिनिधि गार्टनर वेश्या-वृत्तिके सामाजिक कारण, मजदूर परिवारकी अभागी परिस्थितियों और छोटे बच्चोंके श्रम-शोषण और असह्य परिस्थितियोंपर लच्छेदार भाषामें बोलने खड़े हुए, तो विरोधी व्यङ्ग और तालियोंकी गड़गड़ाहटने उन्हें चुप बैठाल दिया! १९२१ में लीग कान्फरेन्सकी फिर बैठक हुई और उसने बच्चों और तरुण लोगोंके रक्षणके लिए स्थायी एडवाइजरी कमीशनका निर्माण किया। १९३३ की पांचवीं एसेम्बलीने फ्रेञ्च गवर्नमेण्ट द्वारा निर्मित उस घोषणाकी शर्तोंपर विचार किया, जिसके द्वारा अनैतिक कार्योंके लिए स्त्री-व्यापार दण्डनीय घोषित किया गया था। गहरे विचार-विनिमयके बाद उस घोषणामें थोड़ा सुधार हुआ और उसे मान्यता दे दी गयी। उसका पहला हिस्सा इस प्रकार है:—"कोई भी व्यक्ति दूसरेकी वासना-तृप्तिके लिए उसकी सलाहसे भी किसी पूरी उम्रकी स्त्री अथवा लड़कीको प्राप्त कर उसे विदेश ले जाता पाया जायगा, तो वह दण्डका भागी होगा। यह दलील बेमानी होगी कि इसी तरहके कार्य अन्य कई देशोंमें कितने हो चुके हैं।" इसी प्रकार इस बुराईको सर्वतोमुखी रूपमें घेर लेनेकी काफी कड़ी व्यवस्था हुई। यह घोषणा प्रायः लीगके सभी सदस्य राष्ट्रोंने स्वीकार कर ली। दो कमीशन भी पूर्व, यूरोपियन देशों, और अमेरिकामें ऐसे स्त्री-व्यापारकी खोजके लिए नियुक्त किये गये। ये कमीशन सम्बन्धित देशोंमें लायसेन्स-प्राप्त चकलाघरोंको सर्वथा नष्ट करके बुराईको रोकनेमें काफी समर्थ हुए। किन्तु व्यापक रूपमें लीगका कार्य एम० अलवर्ट लाण्ड्सके शब्दों-में, इससे अधिक कुछ नहीं रहा—"लीग दुनियापर सद्गुण-का साम्राज्य स्थापित करना चाहती है, जिसे वह मकान-के भीतर गन्दगी कायम रखकर बाहरसे सफाई कर देने-मात्रसे सम्भव मानती है।"

तब प्रश्न उठता है कि इस गम्भीर समस्याको कैसे सुलझाया जाय? नारी किसी भी देशकी संस्कृतिका प्रतीक है। वहांकी सभ्यताका विकास समझनेके लिए अन्य परिस्थि-तियोंके सिवा नारीका समाज-जीवन और शासनमें क्या

स्थान है, यह देखना जरूरी है। बर्बर दिनोंकी बात छोड़िये। जबसे औद्योगिक सभ्यताके जालमें अर्थ-व्यवस्था घिरी है कि पुरुष क्या, नारीका भी व्यक्ति-जीवन सम्पूर्ण चुक गया। जिस दिन स्त्री स्वावलम्बिनी थी, वह अबला न थी, उसका यह नृशंस व्यापार चलानेकी पुरुष-समाजको हिम्मत नहीं होती थी। जो अर्थ-व्यवस्था स्त्री-पुरुषके बीच ईमानदार औसतसे विभाजित थी, वह केवल पुरुषके हाथ गयी। इससे आर्थिक बेलेन्स ही नहीं बिगड़ा; नारी-जीवनके लिए अप्रत्यक्षमें न जाने कितने तूफान लानेकी सामर्थ्य इस अव्यवस्थाको प्राप्त हुई। अब नारीको निरीह होना ही था। स्त्रीकी अपनी कमाई रही नहीं। वह परमुखापेक्षी हुई। उसने पुरुषके प्रसन्न मुखकी ओर कातर दृष्टिसे देखा। पुरुषकी हंसीमें नारीको प्रश्रय दीखा; नारीके अश्रुमें पुरुषने अपने स्वामीत्वका अहंभाव फैलता अनुभव किया। स्त्री दासी बनी; पुरुष स्वामी। पाना पुरुषको बहुत प्रिय है। खोना वह नहीं चाहता। अर्थ उसने पाया कि नारी आपसे आप उससे बिंधी लिपटी खिंच आयी। अब उसने अपने स्वार्थका प्रतिदान चाहा। सम्पत्तिसे सम्पन्न पुरुष, अपनी वासनोन्मादिनी देहमें अंगड़ाई भरकर प्रमादी हुआ कि नारीकी मोहकतामें तरह-तरहकी वृद्धिकी वाञ्छाका भाव उसमें आया। नारी-भोगके अमानवीय निर्लज्ज तौर-तरीकोंका मूल इस विकृत भावके इर्द-गिर्द है। इसी प्रकार इस आर्थिक दुर्व्यवस्थाकी प्रतिक्रिया समूचे मानव-समाजमें हुई। जन-जनमें गरीबी, बेचारगी, बेकारी आनी थी। समाज-जीवनके पीड़ित और जर्जर होनेके साथ सामाजिक रीति-रस्म, रूढ़ि, संस्कार और धार्मिक नियन्त्रणमें भी भूचाल आया। चीन, जापान ही क्या, हमारे देशमें भी लड़कियां, अपना दहेज बापके द्वारा चुकानेकी असमर्थता देख, इसीलिए शरीर बेचकर धन प्राप्त करती हैं और तब वे अपना विवाह कर सकनेमें समर्थ हैं! यह नहीं भुलाया जा सकता कि अभी तक यूरोपीय देशोंमें स्त्री अपने पतिकी खरीदी हुई सम्पत्ति समझी जाती थी। आजकी बिलकुल आधुनिक सोसायटीमें यह मान्यता महत्त्व ले रही है कि "हम नारीसे यौन-सुख पाते हैं, तो उसकी कीमतकी खातिर उसे सब सुख, रक्षण और जीवन-पर्यन्त उसका निर्वाह भी तो करते हैं!" वैज्ञानिक, तर्कसङ्गत चिन्तनके इस निचले स्तरपर आकर हम नारीके सतीत्वकी मांगका अधिकारपूर्ण ढिंढोरा पीट रहे हैं। वाल्टेयरका यह व्यङ्ग हम अन्ध-बुद्धि लोगोंकी कुछ कम भर्त्सना नहीं है, कि "नारीके सतीत्व-विचारका विकास मनुष्यका सबसे महान् अनुसन्धान है!" यह एक क्षण नहीं भुलाया जा सकता कि अनाचारकी जड़ भूखमें है। अगर भूखका प्रश्न हल हो जाय, तो 'यह के बोले मां तुमी अबले' का हमारा मौखिक गर्व निस्सन्देह बहुत अंशोंमें सार्थक हो जाय! निश्चय ही वेश्या-वृत्ति और स्त्री-व्यापार उस दिन ८० फीसदी कम हो जायगा। उस दिन दुश्चरित्रता 'इच्छा' की रह जायगी। 'लाचारी'के अधःपातका तब लोप हो चुकेगा। 'लीग आव नेशन्स' ने विभिन्न देशोंमें समय-समयपर इस सम्बन्धकी जांच करायी है। फिनलैण्डकी रिपोर्ट है कि बलात्कारकी शिकार स्त्रियोंमें ५० फीसदीसे अधिक देहातसे आयी हुई गरीब, निरक्षर स्त्रियां थीं, जो अस्पताल तक इलाजके लिए पहुंच सकीं। मद्रास रीजनल कान्फरेन्सके प्रोसीजरकी सूचना है कि वेश्या-वृत्ति अधिकतर जीवन-यापनके अन्य साधनोंके अभावमें यहां स्त्रियोंने अपनायी है। सोवियट प्रजातन्त्रके 'राइट्स आव दि वर्किङ्ग एण्ड एक्स्प्लाइटेड पीपुल' की घोषणानुसार स्त्रीको काम नहीं है और कोई उसके जीवन-संरक्षणका जवाबदार नहीं रहता, इसलिए वेश्या-वृत्ति अपनायी गयी। जर्मनीमें हालकी जांच द्वारा पता लगा कि स्त्रियां प्रायः पुरुष-विशेषके आकर्षणमें फँसी और पुरुषने लोभके वश अथवा जरूरतसे तङ्ग आकर उस स्त्रीको इस गर्तमें ढकेल दिया। राजकुमारी रडजीविलने इस करुण कथाका मार्मिक चित्र खींचा है:—"सैकड़ों लड़कियां और स्त्रियां—जिनमें अधिकांश बहुत कमउम्र होती हैं—वेश्या-वृत्तिके लिए एक देशसे दूसरे देश नित्य पहुंचायी जा रही हैं। इन अभागी स्त्रियोंमें आप ऐसी भी अबलायें देखेंगे, जो वेश्या-वृत्तिसे ऊबकर दूसरे देशोंमें अपनी हालत सुधारनेकी भावनासे गयीं; किन्तु वहां उन्हें और अधिक लाचार, बेबस हो जाना पड़ा। ऐसे आदमियोंकी दया और शोषणकी शरण जाना उनका भाग्य हो गया, जिनकी भाषा, बोलचाल, रीति-रिवाज तकसे वे मूक-पशु परिचित भी न थीं। ऐसी भी कमसिन लड़कियां देखी गयीं, जो प्रथम उत्तेजना या स्फुरणके आवेश-

में पुरुषोंके साथ हो गयीं। वे उन्हें मोह-जालमें फांसकर विदेशोंमें चले गये। वहां अपने सुख, अपने आरामको कायम रखनेके लिए खुद रहकर अपनी एक दिनकी प्रेमिका, दूसरे दिनकी पत्नीको तीसरे दिन अपने हाथों वेश्या बनानेका नीच कार्य किया।"

यह दशा नारी-जातिकी आज है विश्वमें। बड़े-बड़े शहरोंमें व्यापारिक सभ्यताका लौह-चक्र बिना मानवताका खयाल किये घूम रहा है, अनवरत।

यह नग्न सत्य है कि शासन इस बुराईको इच्छा रखनेपर काफी हद तक दूर कर सकते हैं; किन्तु धर्मकी शक्तिके तो यह सर्वथा बाहर है। क्योंकि प्रत्येक धर्मका इस मामलेमें अजीब रवैया रहा है। सेल साहबने कुरानका जो अनुवाद किया है, उसके चौथे अध्यायके प्रारम्भमें लिखा हुआ है कि "तुम एक, दो, तीन, चार, बस और नहीं—स्त्रियोंको ब्याह सकते हो अपने आनन्दके लिए।" और हमारे शास्त्र—

'द्वारं किमेकं नरकस्य नारी'

वाली भित्तिपर खड़े हैं या फिर—

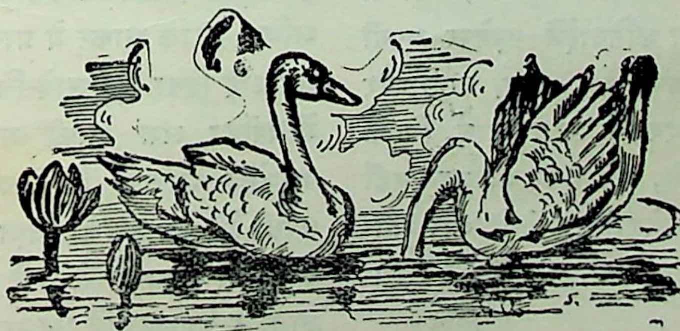
सुप्तां वा य प्रमत्तां वा यो हृत्वाय विवाहयेत्
कन्यकां सोऽत्र पैशाचां विवाहः परिकीर्तितः

—वृहस्पति

सोती हुई या मतवाली कन्याको हरण करके जो विवाह किया जाता है, वह पैशाच विवाह कहा जाता है। यों तो शास्त्रोंमें आठ प्रकारके विवाह बताये गये हैं; किन्तु तात्पर्य यह कि इस प्रकारका विवाह भी शास्त्र-सम्मत अवश्य रहा है। मैं जानता हूं, दूसरी ओर नारीकी आराधनामें शास्त्र बहुत ऊंचे उठ गये हैं; किन्तु यह अमान्य नहीं हो सकता कि शास्त्र जीवनसे बहुत दूरपर खड़े हैं। उनमें अवैज्ञानिकता है। वेद और उपनिषद् निस्सन्देह विश्वकी महान् वैज्ञानिक ज्ञान-धरोहर हैं।

असल बात यह है कि धर्मकी कट्टरता और अधर्मके अत्याचारने नारियोंका स्थान कितना गिरा दिया है, इसका उदाहरण यूरोपका समूचा मध्ययुग है ही। यह एक मान्य सिद्धान्त है कि जिन जातियोंको बाहर जगत्में सङ्घर्ष नहीं करना पड़ता, वे ही घरमें औरतोंपर जोर-जबर्दस्ती और जुल्म अधिक करती हैं। मनोवैज्ञानिक शोध यह है कि हमारी मानसिक अस्वस्थतामें Sex hate का भाव वर्षोंसे पनपता आया है। नारीपर जुल्म और नारीके लिए समानताकी मांग ये दोनों उसीकी प्रतिक्रिया हैं। इन दोनों प्रकारके अस्वास्थ्यसे बचना होगा। नारीके उत्पीड़न, शोषण, सबके अन्त करनेकी समस्याका यहीं उत्तर है।

———

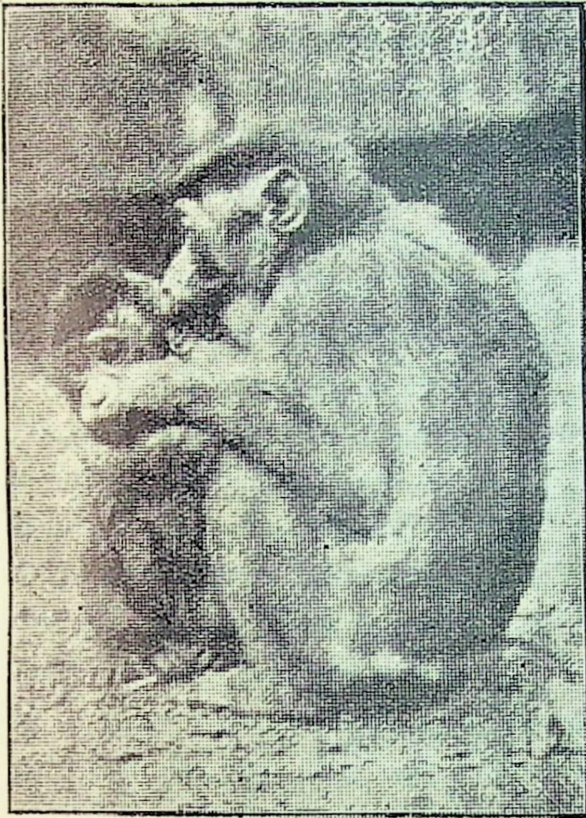




श्री विश्वनाथ सेठी, एम० एस-सी०

यों तो मनुष्य-समाजमें भी ऐसे सैलानियोंकी संख्या कम नहीं है जो सवेरे खाकर शामकी चिन्ता नहीं करना चाहते; परन्तु साधारणतः मनुष्योंमें जमा करनेकी प्रवृत्ति देखनेमें आती है। मनुष्य स्वभावसे कुछ आगेके विषयमें सोचता और उसके लिए अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्रबन्ध करता है; परन्तु इस विषयमें मनुष्यकी सफलता बहुत कुछ उसकी स्थितिपर निर्भर है। यह देखा जाता है कि एक व्यक्ति कोशिश करनेपर भी कुछ जमा नहीं कर पाता और दूसरा कोई खास प्रयत्न नहीं करनेपर भी काफी रकम जमा कर लेता है। जो हो, मनुष्यमें जमा करनेकी जो प्रवृत्ति स्वभावतः पायी जाती है, वह पशुओंमें नहीं होती। पशु-और पक्षी भी—कलकी फिक्र करते हुए नहीं देखे जाते। किसी अच्छे चरागाहमें पहुंच जानेपर कोई बैल या घोड़ा कुछ चारा कलके लिए अलग छोड़कर नहीं चरता, उससे जितना चरा जा सकता है, उसी दिन चर लेता है। गायों, भैंसों और दूसरे पशुओंके सम्बन्धमें भी यही बात है; परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि कितने ही पशु और पक्षी इसके अपवाद हैं और वे केवल अपना पेट ही नहीं भरते, जमा भी करते हैं और अभाव होनेपर या कठिनाईमें पड़नेपर अपनी उस सञ्चित राशिका उपयोग करते हैं। हवा, पानी और प्रकाशके बाद सबसे पहले आवश्यक हैं खाद्य पदार्थ, जिनके बिना मनुष्य हो या पशु या पक्षी, किसीका भी काम नहीं चल सकता। बर्फीले स्थानोंमें रहनेवाले स्कीमो और रेगिस्तानकी कितनी ही फिरन्तू जातियां, सभी तो खाद्य-पदार्थोंका संग्रह किया करती हैं।

प्रत्येक प्राणी एक चलता-फिरता एञ्जिन है, जो तेलसे चलता है। मनुष्य, पशु और पक्षी आदि प्राणियोंमें यह तेल चर्बीके रूपमें विद्यमान रहता है। चर्बी अनेक रूपोंमें एकत्र रहती है। जो मनुष्य प्रायः उपवास करता रहता है, उसे देखकर अक्सर यह बात मनमें आती है कि जब यह कुछ खाता नहीं है, तब आखिर उसका शरीर चलता कैसे है? परन्तु इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। शरीर-यन्त्रको सञ्चालित रखनेकी चिन्ता प्रकृति स्वयं करती है और हम जो कुछ खाते-पीते हैं, उससे चर्बीका अंश हमारे शरीरमें जमा होता रहता है। यह सञ्चित तैल उस समय काम देता है, जब मनुष्य कुछ नहीं खाता या विपरीत परिस्थितिवश रूखा-सूखा खाकर अपना काम चलाता है। मानव-शरीरमें मांस-पेशियोंमें चर्बीका भाग मिला रहता है और उदरके ऊपर भी उसके कई पर्त होते हैं। इस सञ्चित तैल-राशिसे मनुष्य-शरीर मुद्दत तक चल सकता है। जिन प्रदेशोंमें शीत अधिक पड़ता है, उनमें कितने ही प्राणी जाड़ेके दिनोंमें बिना कुछ खाये-पिये चुपचाप पड़े रहकर प्रायः सोते रहते हैं। जाड़ा समाप्त हो जानेपर ये जीवधारी अपनी निद्रा त्याग कर उठते और घूमते-फिरते हैं। जाड़ेको सोकर बिता देनेवाले ये प्राणी गर्मीके मौसममें इतनी अधिक खुराक खाते हैं कि उसे देखकर चकित ही रह जाना पड़े। इस तरह अधिक खुराक खाकर ये प्राणी आगामी शीत-कालके लिए, जब उन्हें बिना कुछ खाये-पिये रहना पड़ता है, अपने शरीर-में चर्बीका अंश काफी मात्रामें एकत्र कर लेते हैं। कुछ पशुओंके शरीरमें किसी खास अङ्गमें प्रकृति चर्बी एकत्र करती है। ऊंट इसका बड़ा अच्छा उदाहरण है। उसके कोहानमें खास तौरसे चर्बी एकत्र होती है; परन्तु देखा यह जाता है कि पशुओंमें अक्सर पूंछ और शरीरके उससे सटे हुए भागमें चर्बी ज्यादा तादादमें रहती है। इसके उदाहरण रेगिस्तानके जरबिली नामक प्राणीसे लगाकर अरजोनाकी विषैली छिपकलियों तक, सर्वत्र पाये जाते हैं। जब इन



बन्दरोंमें चीजोंको चुरा लेनेकी आदत पायी जाती है। इस काममें उन्हें अपने जबड़ोंकी बगलवाली दोनों थैलियोंसे पूरी सहायता मिलती है।

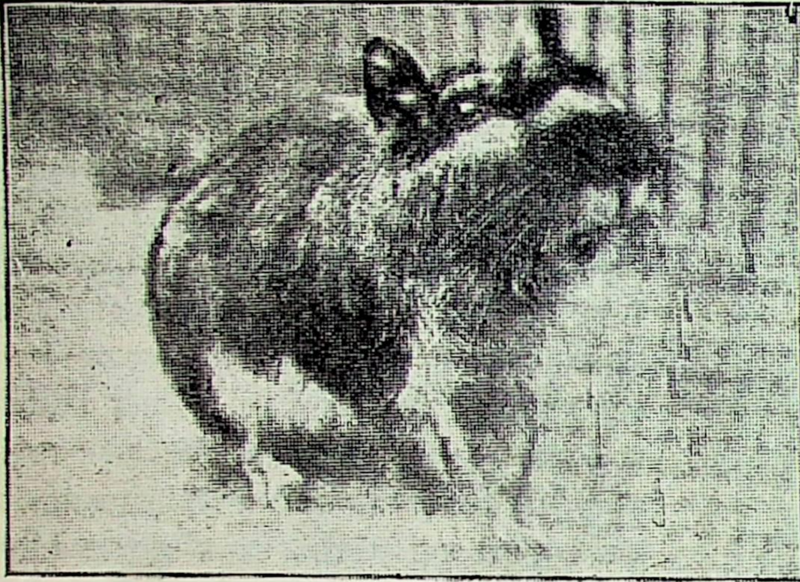
प्राणियोंको खाने-पीनेका सुभीता होता है, पूंछ बड़ी मोटी पड़ जाती है—यहांतक कि कभी-कभी उसके मुटापेके कारण इन प्राणियोंको चलना या सरकना भी मुश्किल हो जाता है। इसके विपरीत जब कठिनाईका समय होता है और जब इन जीवोंको साधारण खुराक नहीं मिलती, इनकी पूंछ पतली पड़ जाती है।

अफ्रीकाके उत्तरी भागमें भेड़ोंकी एक जाति होती है, जिसके शरीरके पिछले भागमें पूंछके पास खास तौरसे चर्बी पायी जाती है। अफ्रीकाकी इस भेड़को हम लोगोंमेंसे शायद ही किसीने देखा हो; परन्तु दुम्बा मेढ़ाको तो हममेंसे बहुतोंने देखा होगा। इसकी दुम (पूंछ) बेहिसाब मोटी होती है। प्रकृतिकी यह कुछ विचित्रता ही है कि दुम्बेकी पूंछमें जमा होते-होते इतनी ज्यादा चर्बी जमा हो जाती है कि उसके लिए चलना-फिरना दूभर हो जाता है। इस स्थितिमें अक्सर कपड़ेकी थैलियोंमें रखकर उसे उठाये रखते हैं और कभी-कभी तो यह पूंछ इतनी भारी हो जाती है कि उसे एक छोटी-सी गाड़ीपर ही रखनेकी आवश्यकता हो जाती है इस गाड़ीमें मेढ़ा स्वयं जुता रहता है और मेढ़ेके चलनेपर यह गाड़ी भी उसके पीछे-पीछे चलती है।

बन्दर स्वभावतः ऐसी जगह रहना पसन्द करता है, जहां उसे खाने-पीनेका कष्ट न हो और किफायत किसे कहते हैं, यह वह जानता ही नहीं। यह उसके स्वभावमें है कि कुछ खाना और जो खानेसे बच रहे, उसे नष्ट कर देना। इसके अलावा एक और बात भी है, जो उसके स्वभावमें पायी जाती है। यह है कुछ न कुछ चुरानेकी प्रवृत्ति। बन्दरोंकी दुनियामें जिसकी लाठी उसकी भैंसवाली कहावतका राज है और साथ ही अचानक हमला कर प्रतिद्वन्द्वीको चकित कर देनेका। इसका परिणाम यह होता है कि बन्दरोंको जब कोई ऐसी जगह मालूम हो जाती है जहां खाने-पीनेकी चीजें आरामसे मिल सकती हों, तब वे उन चीजोंकी भरसक सुरक्षा करते हैं। इसी प्रवृत्तिके कारण उनके जबड़ोंकी बगलमें दोनों ओर दो थैलियां बन गयी हैं। बन्दरको कहीं अवसर मिलता है, तो वह खूब खाता है; परन्तु ऐसे अव-



यह कसाई चिड़िया है। इसे भविष्यकी पूरी चिन्ता होती है।



खरहेकी जातिका यह जीव दक्षिण अमेरिकाके पम्पा क्षेत्रमें होता है। इसकी मांद तो खासा संग्रहालय ही होती है।

सरोंपर बन्दर स्वभावतः सतर्क रहता है और खानेके साथ ही वह अपने गलेकी थैलियां भी भर लेता है। ये थैलियां वह किसी एकान्त स्थानमें जाकर खाली कर देता है और जब तबीयत होती है, मौजके साथ इन चीजोंको खाता है।

अमेरिकामें गिलहरीकी जातिका एक जीव होता है। इसके गालोंके पीछे बाकायदा थैलियां हैं। इन थैलियोंमें वह खानेकी चीजोंको बाकायदा जमा करता है और बादमें अपने भण्डारमें रख देता है। जाड़ेमें जब उसे खानेकी चीजें नहीं मिल सकतीं, तब वह अपनी इसी खत्तीसे काम चलाता है।

जो जीवधारी अपने बच्चोंको दूध पिलाते हैं, उनमें अक्सर खाद्य-सामग्री एकत्र करनेकी प्रवृत्ति पायी जाती है। चूहोंसे लगाकर ऊदबिलाव तक सभी प्राणी विविध वस्तुओंका संग्रह करते हुए देखे जाते हैं और कभी-कभी तो ऐसी वस्तुओंका भी, जिनका वास्तवमें उनके लिए कोई उपयोग नहीं होता। सिक्के, मोती आदि एकत्र करनेके लिए चूहे बदनाम हैं। चूहे कागजों और रस्सियोंको भी खींच ले जाते हैं—यद्यपि ये चीजें खानेके काममें नहीं आतीं।

दक्षिण अमेरिकाके पम्पाक्षेत्रमें खरहेकी जातिका एक प्राणी होता है, जो अपनी मांदमें तरह-तरहकी इतनी चीजें जमा करता है कि खासा संग्रहालय ही बन जाता है। यह प्राणी अपनी इस आदतके लिए इतना मशहूर है कि पशु चरानेवालोंकी जब कोई चीज खो जाती है, तब वे यह खोजते हैं कि पास ही किसी खरगोशका संग्रहालय कहां है! अक्सर यह खोज व्यर्थ नहीं जाती।

मांस-भक्षी प्राणियोंमें एक भेड़िया ऐसा है, जो अपनी मांदमें तरह-तरहकी चीजें एकत्र करता है—अक्सर उस स्थानमें रखता है, जहां वह सोया करता है। चिड़ियाखानोंमें भेड़ियोंके सोनेके बक्सोंमें दर्शकों द्वारा फेंके हुए कागजके टुकड़े, ट्राम या बसके टिकट और इसी तरहकी दूसरी चीजें पायी जाती हैं।

गिलहरियां भी अपना गोदाम जमीनके गर्भमें बनाती हैं और उसीमें खानेकी चीजोंको सञ्चित करती हैं। उन्हें कठफलोंसे विशेष प्रेम होता है और उन्हें वे वृक्षोंकी शाखाओंकी किसी नोकमें कहीं अटकाकर रखती हैं। हेम्सटर नामक जीव पानी बरसते रहनेपर अपनी खुराककी खोजमें बाहर नहीं निकल सकता, इसलिए वह अपने भण्डारमें गेहूं, जौ और राईको पहले ही जमा कर लेता है। एक बार इस जीवधारीके एक भण्डारको खोदनेपर १२८ पौण्ड अनाज निकाला गया था।

मधुमक्खियों और चींटियोंमें स्वभावसे ही संग्रह करनेकी बात पायी जाती है। बसन्तमें जब फूल बहुत होते हैं और शहद एकत्र करनेमें कोई कठिनाई नहीं होती, मधुमक्खी रात-दिन परिश्रम किया करती है। यही बात चींटियोंके सम्बन्धमें भी है। ये जाड़ा, गर्मी और बरसात, किसी भी मौसमकी परवा किये बिना जब जो कुछ भी मिल सकता है, अपने भण्डारमें ले जाती हैं।

कितने ही पशुओंके स्वाभावके विपरीत चिड़ियोंमें साधारणतः संग्रह करनेकी प्रवृत्ति नहीं पायी जाती। फिर भी, कुछ चिड़ियां ऐसी हैं, जो संग्रह करती हैं। एक चिड़िया होती है जिसे उसके स्वभावके कारण कसाई ही कहना चाहिए। यह अलबत्ता भविष्यकी चिन्ता करती है और जिन कीड़ोंको यह खाती है, उन्हें अपने घोंसलेके आस-पास कांटोंमें छेद कर जमा रखती है। यह उसकी कुछ विचित्र आदत है, जो अन्य चिड़ियोंमें नहीं पायी जाती।

जिसे हमने कसाई कहा है, उस श्राइक नामक पक्षीके खाद्य संग्रहमें छोटे-मोटे कीड़ों-मकोड़ोंसे लगाकर चूहे, छोटी-छोटी चिड़ियां और मेंढक तक पाये जाते हैं।

निम्न कोटिके रीढ़वाले प्राणियोंमें खानेके सम्बन्धमें भविष्यकी चिन्ता नहीं पायी जाती, क्योंकि उन्हें प्रकृतिने यह शक्ति प्रदान की है कि बहुत समय तक खाये-पिये बिना भी रह सकें। इसीलिए उन्हें संग्रह करनेकी कोई जरूरत ही नहीं रह जाती। फिर भी कितने ही कीड़ोंमें जमा करनेकी प्रवृत्ति इतनी अधिक देखनेमें आती है कि वे अन्य कीटाणुओंके लिए "खाद्य पदार्थ मिनिस्टर" बन जाते हैं। पत्ते कुतरनेवाली चींटियां यह काम खास तौरसे करती हैं। भावी सन्तानको, जब वह प्राथमिक स्थितिमें होती है, सहारा देनेके लिए वे हरे-हरे पत्ते ले जाकर रखती हैं। भूमध्यरेखावर्ती क्षेत्रोंमें एक जातिकी चींटियां पायी जाती हैं, जो अपने खास तरीकेके बने हुए पेटमें काफी मात्रामें शहद रख लेती हैं और जब कोई दूसरी मजदूर-श्रेणीकी थकी-मांदी चींटी उसके पास पहुंचती है और उसके सामने अपनी आवश्यकता रखती है, तब ये शहद रखनेवाली चींटियां अपने संग्रहमेंसे कुछ भाग निकालकर उसके मुंहमें डाल देती हैं।

बारियर रीफ क्षेत्रमें लगभग १ गज लम्बा 'क्लाम' नामक जीव होता है, जो छोटे-छोटे पौदोंपर जीवन-निर्वाह करता है। ये पौदे सालमें हमेशा ही नहीं मिलते और यों भी कभी-कभी उनके मिलनेमें कठिनाई हो सकती है। इस स्थितिका सामना करनेके लिए क्लाम अपने उदरमें पहलेसे ही काफी खाद्य रख छोड़ता है और कठिनाईके अवसरोंपर आरामसे रह सकता है।

महात्मा गांधीकी अर्थनीति

श्री कामेश्वर शर्मा

वैज्ञानिक आविष्कारोंके बाहुल्यने आज सारी मानव-जातिको समेटकर एक छोटे-से आंगनमें ला खड़ा किया है। मोटर, रेल, जहाज, वायुयान, तार, टेलीफोन, रेडियो तथा बेतारने पवत, समुद्र और खाईको न केवल पाट दिया है, बल्कि उन्होंने इन्हें अत्यन्त निकट भी कर दिया है। आज एक-एक घण्टेके बाद उसे संसारकी ताजी-से ताजी खबरें मिलती रहती हैं। तीन सौ वर्ष पहले कलकत्तासे काशी जानेमें जितना श्रम और समय लगता था, करीब उतने ही में अब संसार-भरकी सैर की जा सकती है। आज पृथ्वीके एक छोरसे दूसरे छोर तक—तमाम संसारके रहनेवाले प्राणी एक दूसरेके प्रति निकट दिखाई देते हैं। आस्ट्रेलिया-में गेहूं पैदा होता है, जापानमें वह पिसता है, और उसके बिस्कुट हिन्दुस्तानके लोग खाते हैं। काश्मीरमें लोमड़ियोंके शिकार होते हैं, इंगलैण्डमें उनकी खाल साफ की जाती है, और अमेरिकन महिलाओंके कोट उनसे शोभा पाते हैं। ब्रिटेनके प्रधान मन्त्री अपने स्थानसे बोलते हैं, और जर्मनी तथा इटलीके तानाशाह उसे घर बैठे श्रवण करते हैं।

मनुष्यने पिछले दिनों समय और दूरीको जीतनेका जो यह सफल प्रयत्न किया है, उसका एक नतीजा यह भी निकला है कि मनुष्यकी इच्छा एवं क्रियाशीलता—दोनों ही पहलेकी अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ गयी हैं। और उसकी इस बढ़ती हुई प्रगतिको देखकर ही जार्ज बर्नार्ड शाको यह कल्पना सूझी है :—

"कोई स्त्री या पुरुष सामान्य ढङ्गसे पैदा न होकर यदि अण्डेमें पलता रहे, और लगभग २० वर्ष बाद अण्डा फोड़कर बाहर निकले, तो वह इस कार्य-व्यस्त जगहको देखकर चकित हो जायगा। इन दौड़ती हुई रेलों, मोटरों तथा जहाजोंको देखकर वह पूछेगा—"ये इतने लोग किधर भागे जा रहे हैं?" सैकड़ों मनुष्योंको कठोर मजदूरी करते और दस-बीसको मौज उड़ाते देखकर वह प्रश्न करेगा—"ये लोग इतनी मिहनत क्यों कर रहे हैं, और ये बेचारे बेकार क्यों पड़े हैं?" संसारकी इस बड़ी हलचलको देख-कर वह कहेगा—"यह सब क्या तमाशा है?"

लेकिन हम लोगोंको ये सवाल तङ्ग क्यों नहीं करते? इसीलिए, क्योंकि अपने जन्म ही से हमने दुनियाको इसी रूपमें

देखा है, और खुद भी हम इसका एक अङ्ग बन गये हैं। पर हम तनिक सोचें तो सही कि हम जिस समाजमें पल रहे हैं, जिस वातावरणमें श्वास-प्रश्वास ले-दे रहे हैं, वह किस ओरको बढ़ा जा रहा है ? संसारमें जो आज इतनी लड़ाइयां, इतनी छीना-झपटी, इतने परस्वापहरण हो रहे हैं, वे सब क्यों और किसलिए ?

साम्राज्यवाद

उपर्युक्त प्रश्नोंके सही उत्तरके लिए हमें मौजूदा भौतिक उन्नतिके दो अनायास परिणाम—प्रथम साम्राज्यवाद एवं दूसरे पूंजीवादका विश्लेषण करना चाहिए। साम्राज्यवादमें समृद्धिशाली राष्ट्र अशक्त, अशिक्षित एवं असङ्गठित राष्ट्रोंमें व्यापारके बहाने घुसते हैं, और धीरे-धीरे आर्थिक सत्ताके साथ-साथ वे वहां राजनीतिक सत्ता भी स्थापित कर लेते हैं। व्यापारका ही सहारा लेकर अंगरेज, फरासीसी आदि भारत, मिश्र, चीन आदि देशोंमें पहुंचे और उनके मालिक बन गये। साम्राज्यवाद तभी सम्भव है, जब एक देश वस्तुओंका निर्माण बहुत बड़े पैमानेपर कर सके; और माल पहुंचानेके साधनों (रेल, जहाज आदि) की इतनी तरक्की हो गयी हो कि उत्पादक देश नयी मण्डीमें भाड़ा दे चुकनेपर भी रिआयती दरमें अपना माल बेच सके। यह इस भौतिक सभ्यता—वैज्ञानिक उन्नतिका आवश्यक परिणाम है। इसी भौतिक सभ्यताके फलस्वरूप संसारके शक्तिशाली राष्ट्र—इंगलैण्ड, जर्मनी, जापान, इटली आदि संसारको आज आत्मसात् कर लेना चाहते हैं। ऐसी स्थिति डारविनके अनुयायियोंके लिए, जो योग्यतमके उद्वर्तन (Survival of the fittest) के सिद्धान्तके समर्थक हैं, चाहे स्वाभाविक तथा लाभदायक प्रतीत हो; पर हमारे लिए—जो अधिकसे अधिक व्यक्तियोंकी समृद्धि चाहते हैं, अत्यन्त भयावह तथा दोषपूर्ण है। ये वर्तमान वैज्ञानिक साधन हमारे भीतरके उच्च गुणोंको निकाल फेंकते हैं एवं बाहरी भोगवृत्तिके प्रलोभनमें मनको प्रवृत्त करते हैं। मौजूदा आविष्कार निर्बल राष्ट्रोंकी रक्षा नहीं करता, प्रत्युत उनको हड़पनेके उद्योगमें तनाशाहोंको अग्रसर करता है।

पूंजीवाद

अब पूंजीवादको लीजिये। पूंजी है क्या चीज ? समाजवादियों—जिनके आचार्य कार्ल मार्क्स हैं—की दृष्टिमें यह पूंजी डाकेजनीका परिणाम है। मालिक मजदूरोंकी मजदूरीमें जब उनकी उत्पादक शक्तिकी पूरी कीमत नहीं देता, तब पूंजीका उद्भव होता है। उदाहरणके बतौर मान लीजिये कि एक कारखानेमें एक लाख रुपयेका माल तैयार हुआ। इस एक लाखमेंसे ३५ हजार रुपये मजदूरोंको मजदूरीमें दिये गये, ३० हजार रुपये कलोंके किराये आदिमें खर्च हुए और शेष ३५ हजारका माल कारखानेवालोंने स्वयं अपने ऐशो आरामके लिए ले लिया।

क्यों ? तो कहा जायगा कि मशीनका मालिक वह है, इसलिए ३५ हजार रुपये अपने घरमें रख लेनेका उसे अधिकार है। इसपर सवाल यह उठता है कि क्या किसी चीजका केवल मालिक हो जानेसे उस चीजकी कीमत बढ़ जाती है ? मशीनको चलाने और बनानेवाले तो मजदूर हैं। उन्होंने ही कच्चे लोहेको मशीनका रूप देकर लोहेका मूल्य बढ़ाया है। उन्होंने ही मशीन चलाकर मशीनमें जान डाली है। मशीन-मालिकका मशीनपर केवल अधिकार होनेसे, मशीन अथवा मशीनकी सहायतासे उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंका कौन-सा मूल्य बढ़ गया है ? यदि मशीनका मालिक न होता, तो क्या मशीन, मजदूर, कच्चा माल और कारखानेका व्यवस्थापक—सब मिलकर कारखाना नहीं चला सकते थे ? क्या इस तरह कारखानेसे कुछ कम माल निकाला जाता ? बाज-बाज कारखानोंके मालिक नाबालिग होते हैं। काम-काजकी जानकारी उन्हें नहीं रहती। थोड़ी देरके लिए मान लीजिये कि उनका कारखानेसे कोई सम्बन्ध न रहे, तो क्या कारखानेसे मुहैया होनेवाले मालमें किसी तरहकी खराबी आ जायगी ? जो मालिक अपने कारखानोंका स्वयं प्रबन्ध करते हैं, उनको प्रबन्ध करनेके लिए मैनेजरका वेतन मिल सकता है। परन्तु वेतन और वस्तु है, मुनाफा और।

मुनाफा लेनेवाले वे लोग होते हैं, जो केवल मशीनोंपर अपना अधिकार होनेके कारण मुनाफा पाते हैं। यदि कारखाने केवल मशीन, कच्चा माल और श्रमिकों (कार-

खानेका मैनेजर भी श्रमजीवी मजदूरोंमें ही आ जाता है) के सहकारसे चलाये जायें, तो ऊपरके उदाहरणमें जो ३९ हजार रुपये कारखानेके मालिकको ही मिलते हैं, वे श्रमिकोंमें बंट जाया करें।

मैं समझता हूं, पाठकोंको अब यह मान लेनेमें कोई कठिनाई, कुछ भी हिचकिचाहट नहीं होगी कि जिसे हम अब तक मुनाफा समझते आ रहे हैं, वह श्रमजीवियोंकी वाजिब कमाईमेंसे बचाया हुआ पैसा है। इसी पैसेकी बदौलत करीब १५० बड़े धनिकोंके हाथमें इंगलैण्डकी समूची राज-सत्ता है। जैसा वे चाहते हैं, वैसा ही पार्लमेण्टको करना पड़ता है। अपने स्वार्थके लिए वे कभी अपने देशको किसी दूसरे देशसे भिड़ा देते हैं, जिनमें बेचारे गरीबोंकी जानें जाती हैं, तो कभी छोटे-छोटे देशोंपर अपना वाणिज्य बढ़ानेके लिए चढ़ाइयां करते हैं। अमेरिकाकी सरकारी रिपोर्टसे मालूम हुआ है कि अमेरिकन राष्ट्रकी ६० फी सदी सम्पत्ति दो फी सदी व्यक्तियोंके हाथमें है, ३५ फी सदी ८ फी सदीके हाथमें है और शेष ५ फी सदी ९० फी सदीके हाथोंमें है। ऐसी अवस्थामें राष्ट्रकी सारी शक्ति यदि २ फी सदी या अधिकसे अधिक ३५ फी सदी सम्पत्ति रखनेवाले ८ फी सदी मनुष्य भी मिला दिये जायं, तो दस फी सदी मनुष्योंके हाथोंमें आ जाती है। प्रजासत्तात्मक राज्य तो केवल नामके लिए रह जाता है। ये राष्ट्रकी बागडोर अपने हाथोंमें रखनेवाले थोड़े-से पूंजीपति जिधर इशारा करते हैं, देशको उधर ही मुड़ना पड़ता है। सम्पत्ति उत्पन्न करनेवाले श्रमजीवियोंको तो रोटीके लाले पड़े रहते हैं। वे यदि सप्ताह-भर भी बीमार हो जायं, तो फिर भूखों मरनेके सिवा और कोई चारा नहीं।

मैं यहां जमीन्दारों और किसानोंके सवालको उठाना नहीं चाहता। क्योंकि हिन्दुस्तानकी यह सबसे बड़ी समस्या है, अतः इसकी चर्चाके लिए एक खास लेख ही चाहिए। परन्तु इस वैज्ञानिक घमासानमें जो दशा आज श्रमिकोंकी है, उससे कहीं गयी-बीती अवस्था किसानोंकी है। कारखानोंमें सम्पत्ति पैदा करनेके साधन मशीनें होती हैं, तो अन्न पैदा करनेका साधन जमीन है। जिस प्रकार कारखानोंके मालिक बिना हाथ-पैर हिलाये मजदूरोंकी बचत ले लेते हैं, ठीक उसी प्रकार जमीन्दार जमीनपर केवल अधिकार-भर प्राप्त कर लेनेसे किसानोंकी उत्पन्न की हुई सम्पत्तिका एक बहुत बड़ा अंश अपने पास रख लेते हैं।

युद्धकी विभीषिका

और चूंकि यह पृथ्वी बहुत बड़ी होनेपर भी गरीबोंके दुर्भाग्यसे पूंजीपतियोंकी भोग-लालसाको पूरी करनेमें बहुत छोटी है, इसलिए सङ्घर्षका श्रीगणेश होता है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रके व्यापारको नुकसान पहुंचाये बिना आगे बढ़ ही नहीं सकता। इसीलिए प्रत्येक राष्ट्र जल, थल और नभकी शक्ति बढ़ाये रखनेके लिए नित्य लाखों-करोड़ों रुपये पानीकी तरह व्यय करता है। और नाशके ये साधन आज उनके पास इतने अधिक उपलब्ध हो गये हैं कि यह शङ्का की जाती है कि यदि शीघ्र ही युद्ध-रत राष्ट्रोंमें कोई सन्धि न हुई, तो सारी मानव-सभ्यता ही बरबाद हो जायगी। इसमें तो शककी कोई गुञ्जाइश ही नहीं कि थोड़े समयके अन्दर ही संसारसे अनगिनत जन और धन लुप्त हो चुके हैं।

एक ओर तो प्रतिक्षण छिड़ जानेवाले इस विश्वव्यापी महासमरका भय नङ्गी तलवारकी तरह सभी राष्ट्रोंके सिरपर लटकता रहता है, दूसरी ओर प्रति वर्ष बढ़नेवाले फौजी खर्चका भार राष्ट्रोंकी जनताके लिए असह्य-सा होता जा रहा है। इस बोझका भार पड़ता भी सबसे अधिक उसी वर्गपर है—जो इसे सहन करनेमें सबसे अधिक असमर्थ है।

समाजवाद

इसी अन्याययुक्त परिस्थितिसे उत्पन्न, श्रमजीवियोंकी दरिद्रताको मिटानेके लिए संसारमें समाजवाद (Socialism) का आविर्भाव हुआ है। समाजवाद यह नहीं चाहता कि देशके जो अल्प-संख्यक जमीन्दार, महाजन, व्यवसायी आदि समस्त देशकी सम्पत्तिके मालिक बने बैठे हैं, वे उसकी बदौलत लाखों-करोड़ों मनुष्योंकी कमाईको अनन्त-काल तक शोषण करते रहें। वह जनताकी दरिद्रताका प्रधान कारण यह समझता है कि धनोत्पादनके साधन भूमि, खान, जङ्गल, मशीन आदिपर जनताका अधिकार नहीं है। अपने परिश्रमको कौड़ीके दामपर बेचनेके सिवा उसके पास और कुछ नहीं है। इसीलिए समाजवाद चाहता है कि देशके धन-सम्पद्के जो साधन हैं, उनपर सम्पूर्ण

राष्ट्रका अधिकार हो, और जनता द्वारा चुनी गयी कोई सरकार इसकी परिचालना करे। मूलधन भी सरकार ही लगावे और इससे जो आय हो, वह जनसाधारणकी शिक्षा, स्वास्थ्य आदिकी उन्नति तथा बेकार, रोगी, अपाहिज आदिकी सहायतामें खर्च हो। समाजवाद देशमें सुव्यवस्थित सरकारकी स्थापना चाहता है—ऐसी सरकारकी, जो देशकी समस्त धन-सम्पत्ति—भूमि, खान, जङ्गल तथा सम्पत्तिके अन्यान्य साधन—को अपने हाथमें लेकर उसकी लोकहितार्थ परिचालना करे, जिससे देशका धन कुछ लोगोंके हाथोंमें केन्द्रित न होकर समग्र देशवासियोंमें वितरण होता रहे और उससे उनका सर्वाङ्गीण कल्याण-साधन हो। सामाजवादका यही आदर्श है। अपने इसी आदर्शको चरितार्थ करके समाजवाद सामाजिक व्यवस्थाका गठन करना चाहता है, जिससे देशकी दरिद्रता और बेकारीकी समस्याका समाधान हो और समाजके प्रत्येक मनुष्यको अपनी नैसर्गिक योग्यताओंको विकसित करनेका पूर्ण सुयोग प्राप्त हो।

इसकी असफलता

गत महासमरके उत्तर-कालमें जब सारे राष्ट्रोंके बल बहुत क्षीण हो चुके थे, और जनताकी तकलीफें सीमोल्लङ्घन कर चुकी थीं, तब रूसमें एक बहुत बड़ी क्रान्ति हुई और लेनिनके अधिनायकत्वमें प्रोलेतेरियन (साधारण वर्ग) का शासन स्थापित हुआ। तबसे आज तक एक बहुत लम्बा समय बीत चुका है। पर रूसमें भी वह स्वर्ण-युग नहीं पहुंच सका, जिसकी कल्पना की गयी थी। आन्तरिक कलहों तथा विरोध-भावनाओंका अभाव वहां भी नहीं है। इस समय स्टालिनके नेतृत्वमें रूस मार्क्स और लेनिनके सिद्धान्तोंका वर्जन करके धनतान्त्रिक राष्ट्रोंकी नीतिका अनुसरण कर रहा है। समाजवादके असली रूप एवं आदर्शसे रूस आज च्युत होकर धन-तन्त्रके गठनमें प्रयत्नशील है। लेनिनने रूसी साम्यवादकी स्थापनासे समग्र विश्वके श्रमजीवियोंकी सङ्गठित क्रान्तिका जो स्वप्न अपने अनुयायियोंके सामने रखा था, उस स्वप्नके प्रति स्टालिन तथा उसके सहकारियोंने आज विश्वासघात किया है। सत्य कहनेवालोंके लिए तानाशाही शासन-प्रणालीकी तरह ही उन लोगोंने भी नजरबन्दीके कैम्पों और फांसीके तख्तोंको रिजर्व रख छोड़ा है। ऐसा बहुतोंका मत है।

गांधीजीका आगमन

इसी सङ्कटापन्न स्थितिमें गांधीजी मधुर—पर बहुत ही स्पष्ट एवं निश्चित शब्दोंमें अंगुलि-निर्देश करते हुए विश्वमञ्चपर अवतरित हुए। उन्होंने कहा—"मनुष्यकी प्रबल-से-प्रबल किसी एक प्रवृत्तिको ही यदि पूर्णांशमें सत्य मानकर तुम मानव-समाजका निर्माण करना चाहोगे, तो तुम्हारे समूचे प्रयत्न निष्फल होंगे। व्यक्ति स्वाधीनता चाहता है। पर अवाञ्छित छूट—मुक्ति इस वैयक्तिक स्वाधीनता, लाभ, पिपासाको अगर दे दी जायगी, तो कुछ इने-गिने व्यक्तियोंकी आजादी और लाभके सिवा दूसरा कुछ भी शेष नहीं रहेगा। जिस सिद्धान्तकी तुम रक्षा करना चाहते हो, उसका अधिक-से-अधिक ह्रास भी उसी सिद्धान्तकी रक्षा द्वारा होगा—अगर दूसरी सचाईकी हस्तीको कबूल करनेसे तुम इनकार करोगे। आजका पूंजीवादी पद्धतिसे शासित संसार इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।"

एक नयी विचार-प्रणाली

पर दूसरी ओर जैसा कि समाजवादियोंके मतानुसार हम करना चाहते हैं, उससे एक अस्वाभाविक प्रणालीकी ही स्थापना क्या नहीं होगी? क्योंकि मनुष्य सिर्फ शारीरिक क्षुधाओंकी परितृप्ति ही नहीं चाहता। इसके आगे वह और भी अनेक चीजें चाहता है। अगर इतिहासपर उसके जीविकोत्पादक साधनोंकी जबरदस्त छाप पड़ी है, तो दूसरी ओर और अनेक घटनाओंने उसे बनाया और बिगाड़ा है। एक या कुछ व्यक्तियोंकी महत्त्वाकांक्षा अथवा कुछ जातियोंके अन्ध-विश्वास, कोई एक छोटी-सी आकस्मिक घटना, पारस्परिक द्वेष या इसी तरहकी बहुत-सी अन्य बातोंने इतिहासको बिला किसी तरतीब, क्रम या नियमके निश्चित किया है। और मात्र जीवन-यापनके तरीकोंसे ही इतिहासकी गति नियमित होती है—ऐसा मानना एक अन्ध-विश्वासके तरीकेसे सही हो सकता है, वास्तविक ऐतिहासिक सत्य नहीं।

इसीलिए अगर किसी विशुद्ध, सुन्दर और सुखमय

समाजकी स्थापना हमें करनी है, तो हमें मानवको ही पहले पूर्णतया समझ लेना होगा। मात्र मानवको ही नहीं, मनुष्य जिस सृष्टिमें रहता है, उसे भी समझना होगा। इस सृष्टिका रहस्य क्या है ? इन्सानका उससे क्या सम्बन्ध है ? इन्सान और हैवानमें क्या फर्क है ? इन्सानकी इन्सानियत किस खास चीजमें है; इसके अलावा इन्सानकी क्या ख्वाहिश है ? उनका पूरा होना किस दर्जे तक लाजिमी है ? और किस दर्जे तक उन ख्वाहिशोंमें खुद विरोध होनेपर काबू रखना जरूरी है ? मनुष्यमें ऐसी कौन-सी प्रवृत्तियां हैं, जो समाजको पुष्ट करनेवाली हैं और जिनकी परवरिश करना समाज-रचनाका मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। वे कौन-सी असामाजिक प्रवृत्तियां हैं, जिन्हें अधिक-से-अधिक बसमें रखना होगा। संक्षेपमें हमें जीवनके विज्ञान और कलाका निर्माण करना होगा और अपने सामाजिक व्यवहारोंको उनके अनुसार ही नियमित बनाना होगा। मनुष्यका जीवन, विज्ञान या कला स्वयं सृष्टि-विज्ञानके अनुकूल ही होने चाहिए। अगर प्राकृतिक नियमोंके विरुद्ध कल्पित नियमोंको सच मानकर हम अपने समाज-शास्त्रका निर्माण करेंगे, तो निश्चय ही हमें सफलता नहीं मिलेगी।

मानव-जीवन स्वयं जितने विभागों या कक्षाओंमें विभक्त हो जाता है, उतने ही विभागों या शाखाओंमें हमें समाज-शास्त्रको भी विभक्त करना होगा—अगर हम चाहते हैं कि प्रत्येक विभाग या शाखाका अध्ययन हम पूरे तौरपर कर सकें। इस तरह नीति-शास्त्र, राजनीति-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, इतिहास, शिक्षा, वैद्यक, मनोविज्ञान, कला, साहित्य आदि बहुत-से शास्त्र मानव-प्रक्रियाओंके बन सकते हैं। पर इन शास्त्रोंमें कोई भी शास्त्र समाज-शास्त्रके मूल-सिद्धान्तोंके विरुद्धका नियम स्वीकार नहीं कर सकेगा। दूसरे शब्दोंमें ये शास्त्र अपने-अपने क्षेत्रमें समाज-शास्त्रके मूल-सिद्धान्तों और नियमोंके अनुकूल उपसिद्धान्त या उपनियम बनानेमें ही खोज और कार्य कर सकते हैं।

इस दृष्टिसे अगर हम उदाहरणके लिए अर्थ-शास्त्रकी ही परीक्षा करें, तो हमें आधुनिक अर्थ-शास्त्रके बहुत-से सिद्धान्तोंको छोड़ देना होगा, और उनके स्थानपर ऐसे सिद्धान्त स्थिर करने होंगे—जो समाज-शास्त्रके नियमोंके खिलाफ न पड़ते हों; प्रत्युत उनके अनुकूल हों। जैसे शराब और मादक द्रव्योंकी बिक्रीसे व्यक्तियों तथा राष्ट्रोंको एक अच्छी-खासी आय हो सकती है। पर मद्यपानका प्रभाव जो व्यक्ति और समाजपर पड़ता है, इसकी उपेक्षा कोई भी राष्ट्र नहीं कर सकता। आर्थिक दृष्टिसे व्यक्तियों और समाजके लिए बूढ़े, बीमार, लंगड़े और लूलोंको खत्म कर देना लाभप्रद हो सकता है। पर साधारणतः ऐसा प्रस्ताव कोई भी व्यक्ति या राजनीतिज्ञ कभी पेश नहीं कर सकता।

गांधीजी इसी सिद्धान्तके अनुसार अपना विचार व्यक्त करते हैं। अर्थ-शास्त्रको वे मानव-जीवनका एक भाग-मात्र मानते हैं। सम्पूर्ण जीवनको सुन्दर, सुखद और शान्त बनानेमें जो वस्तु बाधक होती है, उसे वे आर्थिक दृष्टिसे लाभ-दायक होनेपर भी ग्रहण नहीं करते। इसके विपरीत वे ऐसी अनेक बातोंको कबूल कर लेते हैं, जो आर्थिक दृष्टिसे नुकसानदेह हैं। उदाहरणार्थ उनकी खादी, ग्रामोद्योग-धन्धे आदि प्रगतियोंपर दृष्टिपात किया जा सकता है।

यन्त्र या मानव ?

यन्त्रों (मशीनों) के गांधीजी उसूलन् खिलाफ नहीं हैं। पर वे मानते हैं कि यन्त्र मनुष्यके लिए है, न कि मनुष्य यन्त्रके लिए। मशीनों (यन्त्रों) द्वारा अगर मनुष्यका जीवन अधिक सुखमय और सुन्दर बनाया जा सकता हो, तो बनाया जाय। पर मिलों द्वारा मुट्ठी-भर व्यक्तियोंके भोगैश्वर्यके लिए यदि लाखों मजदूरोंकी जिन्दगी नारकीय बनायी जाती है, अथवा करोड़ोंको बेकार बनाया जाता है, तो गांधीजी मिलों या यन्त्रोंके पक्षमें अपना विचार नहीं देंगे। बल्कि जिन यन्त्रोंके बिना हमारा काम नहीं चल सकता है, उन्हें रखा जाये। पर उनका प्रबन्ध राष्ट्रके अपने हाथोंमें हो। दो-चार व्यक्ति उन्हें अपने स्वार्थ-साधनका जरिया बनायें, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार मिल-मजदूरोंको जो पशु-तुल्य जीवन बिताना पड़ता है, जो इतना कठोर श्रम करना होता है, जिस धूलि, गन्दगी और अस्वाभाविक स्थितिमें उन्हें अपने जीवनका बेगार ढोना पड़ता है, उसे गांधीजी कभी भी पसन्द नहीं करते। उनके शरीरके रोम-

रोम इसके विरोधमें खड़े हो जाते हैं। इस स्थितिको वे समाजके लिए किसी भी दृष्टिसे लाभदायक नहीं समझ पाते। इसके विपरीत गांवोंके उन्मुक्त वायु-मण्डलमें, सूर्यके प्रकाश और तारोंकी छायामें जो मर्यादित परिश्रम इन्सानको करना पड़ता है, उसे वह जीवनके लिए कहीं अधिक उपयोगी, सुखकर और सुहावना समझते हैं। इसीलिए उनका अधिक-से-अधिक यत्न यही रहता है कि ग्रामीण जीवन थोड़ा कम कष्टकर और कुछ विशेष सुखमय बन सके।

खादी और ग्रामोद्योगकी योजनाओंके पीछे गांधीजीकी यही भावना काम करती है। पर इससे कहीं अधिक एक दूसरी प्रबल भावना भी है। वह है—ग्रामीण जनताकी व्यापक भूख और उसका अखण्ड नङ्गापन।

हमारी हालत

भारतकी ९० प्रतिशत जनता भारतके ७ लाख गांवोंमें रहती है। हिन्दुस्तानके २३०० शहरोंमें तो सिर्फ १० प्रतिशत लोग निवास करते हैं। गांवोंमें १०० पीछे ७० आदमी केवल खेती द्वारा अपना पालन करते हैं। लेकिन खेती न तो इनका पूरा पेट ही भर पाती है और न साल-भर तक उन्हें काममें लगाकर ही रख सकती है। सरकारी रिपोर्टों द्वारा भी हमें यही बात मालूम पड़ती है कि औसत किसान सालके छः महीने बिलकुल बेकारीमें व्यतीत करता है।

फिर हमारी औसत आमदनी ६, ७ पैसे रोजाना है, जब कि दूसरे देशोंमें १॥), २), ३) तक रोजाना निश्चित आमदनी है। हमारी इसी आमदनीमें अमीरोंकी हजारों रुपये महीनेकी आय भी शामिल है। केवल गरीबोंकी आमदनी अगर आंकी जाय, तो वह और भी कम पड़ेगी। और इस छोटी-सी आयसे उन्हें अपनी रोटी, अपना कपड़ा ही नहीं लेना होता है—विवाह, जन्म, मृत्यु, बीमारी—इन सबका भी प्रबन्ध करना होता है। शिक्षा आदिकी चर्चा तो उठती भी कहां है, जब करोड़ोंको पेट-भर भोजन भी नसीब न हो।

फलस्वरूप हमारी औसत जिन्दगी घटकर २९ सालसे भी कम हो गयी है, जब कि दूसरे देशोंकी ३९, ४० और ६० साल है। बीमारीसे लड़नेकी हमारी शक्ति भी क्षीण हो गयी है। हमारे पास बीमारियोंके प्रतिकार करनेके कोई साधन भी नहीं। इसीलिए सबसे अधिक मृत्यु-संख्या भी हमारी ही है।

तो गांधीजीके सामने अपने देशका यह नग्न चित्र उपस्थित होता है। भारत-देशसे वे भारतके विपन्न ग्रामवासियोंका अर्थ लेते हैं। और इन विपन्न ग्रामवासियोंको—भूखों-नङ्गोंको किस तरह रोटी दी जाये, इन्हें किस तरह वस्त्र मिले, ये प्रश्न गांधीजीको बेचैन बनाते हैं। बहुत विचार और मनन करनेके बाद गांधीजी इसी निर्णयपर पहुंचे कि इस ९० प्रतिशत जन-संख्याकी मुक्ति खुद उसी वर्गके हाथोंमें है।

आजका भारतीय जन-समूह सालमें कम-से-कम छः माह खाली रहता है। पर उस बेकारीकी अवधिमें भी वह खाना-पीना नहीं छोड़ पाता। अर्थात् वह वर्ग खर्च तो करता है, पर पैदा कुछ नहीं करता। और आमदनीसे अधिक खर्च करके लखपतियोंको भी एक दिन दिवालिया होना पड़ता है। किन्तु जो पहले ही कङ्गाल बन चुके हैं, उनके लिए मृत्युके अलावा और क्या शेष रह सकता है? ऐसी अवस्थामें उन्हें उपयोगी कार्य मिलने चाहिए, ताकि वे अपनी तथा दूसरोंकी जरूरतकी वस्तुयें बना सकें एवं अपनी आय बढ़ा सकें।

ये ९० प्रतिशत भारतके लोग अपने खेत छोड़कर भी कहीं नहीं जा सकते। इसलिए स्वभावतः उन्हें ऐसे ही पेशे देने होंगे, जिन्हें वे आसानीसे अपने घरपर कर सकें। और ऐसे कार्य चर्खा, खादी आदि हस्त-उद्योगोंके सिवा दूसरे क्या हो सकते हैं? यन्त्रों या बड़ी मशीनों द्वारा हम घर-घरमें काम और रोटी नहीं पहुंचा सकते।

स्वराज्य प्राप्त करनेके बाद भी हम कहां तक मशीनोंकी अनगिनत बुराइयोंको हटा सकेंगे—यह एक प्रश्न है। लेकिन स्वराज्य-प्राप्तिके अनिश्चित अरसे तक इन करोड़ों भाई-बहनोंको भूखों मरते नहीं छोड़ा जा सकता। पचासों वर्ष पूर्वसे ये लोग इस गलत आर्थिक सिद्धान्तपर आचरण करते आये हैं कि आयसे अधिक व्यय करना चाहिए। जो देश पहले सबसे ज्यादा अमीर था, वह आज इसी भ्रमित आर्थिक सिद्धान्तकी बदौलत सबसे अधिक गरीब हो गया है।

कुछ लोग मिलोंके साथ गृह-उद्योगोंकी प्रतियोगिताका सवाल उठाकर इसका विरोध करते हैं। पर वे वस्तुतः

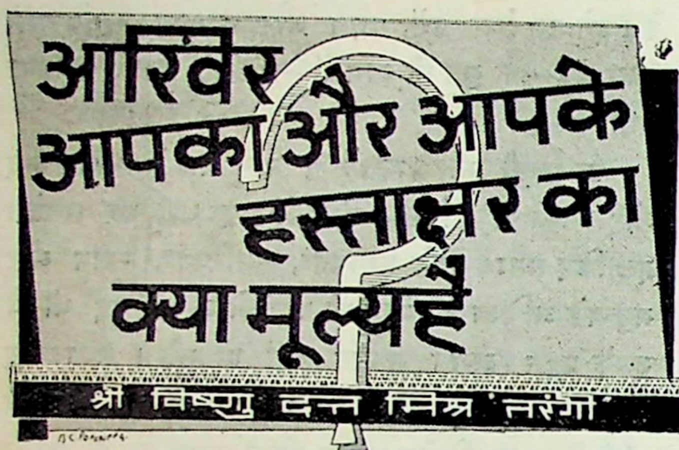
गांधीजीका विचार नहीं समझते, ऐसा मानना चाहिए। क्योंकि उनके सिद्धान्तानुसार मनुष्योपयोगी रोजमर्राकी चीजोंके लिए किसी बाजारकी जरूरत ही नहीं। विशेषतः तो वे लोग अपने ही लिए सामान तैयार करेंगे। खाली वक्तमें जो वस्तु बनेगी, वह संसारकी सस्ती-से-सस्ती साम-ग्रियोंसे भी कहीं विशेष सस्ती होगी।

आजादी हासिल कर लेनेके बाद हमारी नीतिमें कुछ उलट-फेर—कुछ परिवर्तन हो सकता है। बहुत-सी सम्भव सुविधायें लोगोंको दी जा सकेंगी। खेती और वाणिज्य-विस्तारमें काफी सुधार किया जा सकेगा। पर किसी भी हालतमें गांधीजी यह नहीं चाहेंगे कि इन्सानको कोई भी काम न करना पड़े और उसके जीवनकी सभी जरूरतें बिना किसी मिहनतके हल हो जायं, और प्रायः उसका अधिक समय खेल-कूद, आराम या जैसा कि कभी-कभी कहा जाता है—साहित्य, काव्य, सङ्गीत आदि ललित कलाओं-के लिए बच जाय। यह सम्भव भी है या नहीं; पर यहां प्रश्न तो दूसरा है। गांधीजी शारीरिक श्रमको मनुष्यके लिए जरूरी बतलाते हैं और उसके चरित्र, स्वास्थ्य, जीवन-शक्ति आदिके लिए इसे आवश्यक समझते हैं।

ये प्रश्न आज वास्तवमें तात्कालिक उपयोगिताके नहीं हैं। और यह बहस बहुत कुछ बेमानी हो जाती है। न तो यही सम्भव है कि ऐसा हो ही सकेगा और न गांधीजी ही ललित कलाओं, आराम और खाली समयके बिलकुल विरोधी हैं। फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस प्रश्नपर सही विचार तभी किया जा सकता है, जब मानव-जीवनके सही आदर्श एवं ध्येयको हम समझ लें। सच तो यह है कि मानव-जीवनका क्या आदर्श है, यह बात हमारे सभी प्रश्नों और उनके हलोंपर अपना असर रखती है। पर इस प्रश्नका हल तो बिना इस उद्देश्यको समझे हुए करना बौनेके चांद पकड़नेके समान है।

और यही मौलिक अन्तर है गांधीजीके अर्थ-शास्त्र, उनकी राजनीति और समाज-शास्त्र तथा समाजवादियोंके अर्थशास्त्र, राजनीति और समाज-शास्त्रमें। गांधीजीके समग्र जीवन, उनके समग्र विचार, उनकी सारी योजनाओंके पीछे एक नैतिक सिद्धान्त या नैतिक सत्यका विश्वास काम करता है। इसे हम ईश्वर कहें, ज्ञान और भावमय प्रकृति कहें, सत्ता कहें—जो कुछ भी नाम दें—गांधीजी इसपर झगड़ना नहीं चाहते।

पर किसी भी हालतमें वे कम्यूनिज्मके भौतिकवाद और उसकी परिवर्तनशील नीतिको कबूल नहीं कर सकते। इसीलिए समाजवादके समानता, समधिकार, न्याय और मनुष्यके अधिकारकी बहुत-सी बातोंको मानते हुए भी वे उसके प्रकृत स्वरूपसे सहमत नहीं हो सके। समाजवाद हिंसाको, वर्ग-सङ्घर्षको आधार मानकर चलता है; और गांधीजी इसका विरोध अपना जीवन त्याग कर भी करना चाहेंगे। इसके सिवा समाजकी सेवा, उसके हितोंमें अपने हितोंको समा देनेको वे सबसे बड़ा त्याग मानते हुए भी व्यक्तिकी अपनी आजादी, उसकी अपनी क्रियात्मक प्रेरणा, स्वतन्त्र सूझ और कल्पनाको कायम रखना चाहते हैं। सभी कुछ एक केन्द्रसे निश्चय किया जाय और व्यक्ति सिर्फ मशीन-का एक पुर्जा बन जाय, जैसा कि आज समाजवादी-प्रणाली द्वारा हुआ है—यह गांधीजीको मान्य नहीं है। क्योंकि समाज अपने आदमियोंके व्यक्तित्वको नष्ट करके अपना गुरुत्व बनाये नहीं रख सकता—और न उन्हें विकसित ही कर सकता है। इसलिए व्यक्तिका जीवन स्वयं सुन्दर, पवित्र हो—यह आवश्यक है। व्यक्तित्वको मारकर नहीं, उसे विकसित करके, ऊंचा करके समाजको भी सुन्दर-सुखद बनाया जा सकता है। दूसरे शब्दोंमें गांधीजीके मतानुसार मनुष्य ही सब कुछ है और भौतिक सुख-साधन महज गौण है। अगर संसार अपने सामाजिक जीवनका प्रारम्भ इनके बताये अनुसार करेगा, तो उसकी सारी झञ्झटें, तकलीफें और कशमकश अपने आप दूर हो जायंगी। सामाजिक स्थायित्व भी हमें उन्हींके मार्गसे प्राप्त हो सकता है। क्योंकि जब तक समाजमें कुछ थोड़े लोग भी आर्थिक दुःस्थितिमें रहेंगे, तब तक उनमें विद्रोहकी भावना जगती ही रहेगी। गांधीजी भी विद्रोह चाहते हैं; किन्तु उसके परिणाममें राज्य-सञ्चालकोंका परिवर्तन नहीं, बल्कि मनुष्योंका हृदय-परिवर्तन चाहते हैं।



संसारमें हर एक मूल्यके अनुसार चल रहा है, और मनुष्य-जीवन कुछ ऐसा बन गया है कि आज अच्छाई और बुराई सभीका मापदण्ड सिक्कोंमें समझा जाने लगा है। लेकिन हममेंसे कितने जानते हैं कि कीमत या मूल्य, चीजोंकी अधिकता या कमी अथवा दुर्लभ होनेपर अवलम्बित है, और इस कारण कोई ठीक-ठीक अनुमान करना बुद्धिवादके साथ जबर्दस्त धोखादेही है। क्या उदयशङ्कर इसलिए महान् हैं कि उनको कवीन्द्र रवीन्द्रसे अधिक पैसा कमानेका मौका मिला है अथवा लार्ड लिनलिथगो इसलिए अधिक योग्य व्यक्ति हैं कि उनकी आमदनी महात्मा गांधीसे ज्यादा है?

सचमुच बीसवीं सदीका यह सबसे महान्, लेकिन खेदजनक पहलू है कि हमारे आसपास कीमतोंका ऐसा जाल बिछा है कि उसके पीछे व्यक्तित्वका कोई किस्सा नहीं रह जाता। आज संसारमें जब रुपया ही मां बाप है, तब सब लोग वेतन या आयके मापदण्डपर ही बंधे हैं। सारे संसारमें केवल कांग्रेस ही ऐसी संस्था या शासन-प्रणाली है, जिसने कि प्रकट कर दिया है कि किसी व्यक्तिकी कीमत उसकी आमदनी या तनख्वाहसे आंकना अपनी बुद्धिका अपमान है। उदाहरणके लिए चूंकि सर सिकन्दर हयात खां छः हजार रुपये महीने पाते हैं, इसलिए वे क्या पं० गोविन्द वल्लभ पन्त या श्री०राजगोपालाचार्यसे अधिक काबिल हो गये?

सर्वत्र यही किस्सा है। डाक्टर जान्सनने जिन्दगीमें जितना पैसा कमाया होगा, उतना मुक्केबाज जान्सनने एक ही सालमें कमा लिया था। संसारके एक पञ्चमांशपर राज्य करनेवाले ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीको छः हजार पौण्ड सालाना मिलते हैं, लेकिन प्रसिद्ध अभिनेत्री मेरी दो हजार पौण्ड प्रति सप्ताह पाती है और उसका विचार है कि उसकी तनख्वाह कम है। प्रसिद्ध हंसोड़ अभिनेता जार्ज रोबीको ६०० पौण्ड प्रति सप्ताह मिलते हैं और इस अङ्क-गणनासे तो यही मालूम होता है कि हंसोड़ अभिनेता ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीसे हजार गुना अच्छा है।

वेतनोंका किस्सा आगे छानकर देख लीजिये। सत्ताइस वर्षकी आयुमें चार्ली चैपलिनको १,३४००० पौण्डका वार्षिक ठेका मिला था। यह वेतन आजके प्रेसीडेण्ट रूजवेल्टके वेतनसे नौ गुना है, जो बारह करोड़ व्यक्तियोंपर शासन करनेके लिए पाते हैं। ब्रिटिश ब्राडकास्टिङ्ग कार्पोरेशनके प्रधान डाइरेक्टरको ७००० पौण्ड वार्षिक मिलता है, जो ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीके वेतनसे अधिक है। भारतमें भी रिजर्व बैङ्कके गवर्नरको ६ हजार मासिक वेतन मिलता है, जो स्वनामधन्य शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय जिन्दगीमें कभी किसी महीनेमें कमा नहीं सके। यही हाल कलमके धनी सम्पादकोंका भी है। 'स्टेट्समैन' के सम्पादकको करीब ६ हजार रुपया मासिक तनख्वाह मिलती आ रही है, लेकिन इसका तात्पर्य यह तो नहीं कि श्री बाबूराव विष्णु पराडकर सम्पादक 'आज' कम तनख्वाह पानेके कारण उनसे गिरे हुए हैं या हीन हैं।

प्रसिद्ध जासूसी कहानीकार एडगर वैलेसने बड़ी रकम कमायी, लेकिन प्रसिद्ध कवि मिल्टनका ख्याल कीजिये जिन्हें अपनी पुस्तक 'पैराडाइज लास्ट' की कुल लिखाई केवल नकद पांच पौण्ड मिली थी। उदाहरणके लिए लोगोंके वेतन और आयके अनुसार कीमत लगाते जाइये। मुक्ति फौजकी सञ्चालिका कमाण्डर इवान्‌थको कुल पांच सौ पौण्ड सालाना मिलते हैं, जब कि चार्ली चैपलिनको १,३४००० पौण्ड सालाना। चार्ली चैपलिनके हास्यके क्या कहने, लेकिन क्या मुक्ति फौजकी सञ्चालिकासे उनकी मनुष्य जातिकी सेवा २६८ गुनी है। मुन्शी प्रेमचन्दजीने अधिकसे अधिक चार पांच सौ रुपया अच्छे समयमें पैदा कर पाया, लेकिन सुलोचना : इम्पीरियलकी अभिनेत्री : चार हजार रुपये महीने कमाती आ रही थीं। इसका क्या यह अर्थ है कि



लाभ-लता



'बिना पूंछके जानवर'की नकेल !

काननवालाकी मनुष्य जातिके लिए सेवायें मुंशी प्रेमचन्द-जीसे कमसे कम छःगुनी अधिक महत्त्वकी हैं। डा० अल-बर्ट आइन्स्टीनकी मुश्किलसे दो तीन हजार पौण्डकी वार्षिक आय है, लेकिन प्रसिद्ध जाकी, पेशेवर घुडसवार गोर्डन रिचार्ड्स ८००० पौण्ड सालाना कमा लेता है।

सम्पादकजी, अब आप ही यह अङ्कगणित सुलझाइये कि वेतनके हिसाबसे……

:१: सर सिकन्दर हयात खां छःगुने काबिल हैं, या पं० गोविन्द वल्लभ पन्त ?

:२: चार्ली चैपलिन क्या मुक्ति फौजकी सञ्चालिकासे संसारका २३८ गुना अधिक हित कर रहे हैं ?

:३: काननवालाकी सेवायें ज्यादा हैं, या मुन्शी प्रेमचन्दकी ?

:४: ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ज्यादा योग्य हैं, या मेरी पिकफोर्ड ?

हरएक बुद्धिवादी व्यक्ति इस निर्णयपर पहुंचेगा कि वेतन या आयसे योग्यताको आंकनेकी प्रणाली दूषित ही नहीं, एकदम गलत है। क्या आपको पता नहीं कि क्लोरो-फार्मके आविष्कारकपर मुकदमा चला था। उसे सजा हो गयी थी, जिसके आविष्कारके सहारे आज बड़े-बड़े आप-रेशन कर हजारों व्यक्तियोंको मौतके मुंहसे निकाल लिया जाता है। क्या यह जगतप्रसिद्ध नहीं है कि ईसाको सत्य कहनेपर फांसीपर लटका दिया गया था और क्या यह आश्चर्य नहीं कि हवाई जहाज बनानेवाले राइट बन्धु पागलोंमें गिने जाते थे।

इससे एकमात्र परिणाम यह दिखलाई देता है कि आजके जमानेमें योग्यताका मूल्य बड़ा ही असम्बद्ध है। संसारमें अलभ्य वस्तुओंका मूल्य हमेशा ही अधिक रहा है, क्योंकि चार्ली चैपलिनको दुनिया उनके उस फनमें अकेले होनेका ही मूल्य दे रही है और कुछ नहीं। कांग्रेसने इस कारण वेतनकी जो नीति अनुसरण की है, वह केवल राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे ही नहीं, वरन् व्यावहारिक दृष्टिकोणसे भी उपयुक्त है।

हस्ताक्षरोंका मूल्य

अब हस्ताक्षरोंके मूल्यपर आ जाइये। ऊपर तो रही व्यक्तित्वोंके मूल्यकी बात; लेकिन दुनियामें कुछ व्यक्तित्व ऐसे हैं, जिनके हस्ताक्षरोंका भी मूल्य होता है। आजकल हस्ताक्षर करानेकी जनतामें एक नवीन अभिरुचि पैदा हुई है। इस श्रेणीके लोग भारतवर्षमें भी हैं। महात्मा गांधी हस्ताक्षर करनेके बहाने दस-बीस रुपयेका चन्दा ही हरिजन सङ्घके लिए इकट्ठा कर लेते हैं। महात्मा गांधीके हस्ता-क्षरोंकी कीमत कभी-कभी बड़ी भी मिल जाती है। पिछली बार उन्हें हरिजन दौरेमें एक व्यक्तिने उनके फोटोपर उनके ही हस्ताक्षर करानेके लिए सौ रुपये दे दिये थे। हस्ताक्षरों-का आजकी दुनियामें बहुत बड़ा मूल्य है। किसी धनी या प्रतिष्ठित आदमीकी जरा-सी चिट्ठी लेकर चन्दा मांग लीजिये, रुपया उधार मांग लीजिये, या मेहमानी कर लीजिये। जिस व्यक्तिकी जैसी प्रतिष्ठा होती है, उसके हस्ताक्षरों-का मूल्य भी उतना ही होता है। लेकिन कभी-कभी इसके विपरीत भी हो जाता है। जिसका एक बार दस रुपयेका चैक अस्वीकृत हो गया, उसके हस्ताक्षरोंका मूल्य दस रुपया भी नहीं रह जाता, चाहे उसकी दस सौ रुपयेकी इमारत ही क्यों न खड़ी हो।

हस्ताक्षरोंका महत्त्व आजकल तो एक अच्छा रोज-गार-सा होता जा रहा है। लेकिन उनका मूल्य हमेशा गिरता-चढ़ता रहता है।

मि० बाल्डविन, मोशिये ब्लूम : फ्रेंच प्रधान मन्त्री : या अमेरिकाके प्रेसीडेण्ट मिस्टर रूजवेल्टके हस्ताक्षरका कुछ मूल्य है? इनके हस्ताक्षर एक-एक आनेमें मिल सकते हैं।

हस्ताक्षर संग्रह करनेवालोंके दृष्टिकोणसे हस्ताक्षर जिन कागजातपर हों, वे स्थायी महत्त्व और रोचकतासे परिपूर्ण होने चाहिए। उदाहरणके लिए नेपोलियन बोना-पार्टके प्रेमपत्रोंकी कीमत एक लाख रुपयेसे भी अधिक है। अगर कहीं आज कालिदास या शेक्सपियरकी हस्तलिखित प्रति मिल जाय, तो उसका मूल्य करोड़ों रुपये हो सकता है। इसलिए एक तो वह यह उत्सुकता शान्त करता है कि वे किस तरह लिखते थे, और आज विज्ञानका इतना विस्तार हो चुका है कि हस्ताक्षरोंसे चरित्र तकका पता लग जाता है। अभी कुछ दिन पहले 'इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इण्डिया' में एक लेखमाला छपी थी, जिसमें यह बताया गया था कि अंगरेजीके अक्षर 'I' को लोग जिस तरीकेसे

लिखते हैं, उससे पता चल जाता है कि लेखकका चरित्र और स्वभाव कैसा है।

जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है, शेक्सपियरके हाथों-की लिखी कोई प्रति मिल जाय, तो उसका क्या मूल्य हो? इसका अनुमान इसीसे लग जाता है कि उनके नाटककी तीसरी नकलकी प्रतिकी कीमत करीब ६३ हजार रुपया है। हिन्दुस्तानमें रामायणके सम्बन्धमें इस तरहकी खोज हुई है और नागरी प्रचारिणी सभा बनारसने थोड़ी-सी पुस्तकें खरीदी हैं। अन्यथा यहांकी जनता तो कुछ शौक नहीं रखती। विदेशोंमें पुराने चित्र तथा पाण्डुलिपियोंको कलाके खजानेमें रखा जाता है, और उनकी कीमत करोड़ों रुपयेकी होती है। पिछले वर्षकी बात है। जब चीनकी कुछ पाण्डुलिपियां और चित्र नुमाइशमें भेजे गये थे, तो उनके लाने और ले जानेके लिए जङ्गी जहाजोंका प्रबन्ध किया गया था। हस्ताक्षरोंके मूल्यके लिए कई शर्तें हैं। यदि वह बहुत पुराना है और किसी महान् व्यक्तिसे सम्बन्ध रखता है, तो उसका मूल्य लाखोंसे ऊपर होगा। लेकिन यदि वह बहुत पुराना नहीं, वरन् किसी बड़े व्यक्तित्वपर प्रकाश डालता है, तो वह भी कीमती हो सकता है, और अगर वह ताजा है और जनताकी दिलचस्पीका कारण हो, तो भी उसकी कीमतका क्या पूछना। उदाहरणके लिए यदि मिसेज सिम्पशन अपने प्रेमपत्रोंको बेचना चाहें, तो निश्चय ही उन्हें करीब दस लाख रुपये आसानीसे मिल सकते हैं। महारानी विक्टोरियाके जमानेमें लिवरपूलके मेयरने महारानीको एक पत्र लिखा था कि वे एक खास जिलेमें न जायें, क्योंकि कुछ लोग उन्हें उड़ानेकी फिक्रमें हैं। जिस पत्रमें इस बातका उल्लेख किया गया था, आज उसका मूल्य बहुत अधिक है।

जनताकी अभिरुचि विचित्र है। मामूली लेखकोंके व्यापार-सम्बन्धी पत्र भी आज विदेशोंमें पचास-साठ रुपयेमें बिक जाते हैं। हां, सिनेमा-अभिनेत्रियोंके हस्ताक्षर रखनेका शौक लोगोंमें चाहे कितना ही बढ़ा-चढ़ा क्यों न हो, लेकिन उनका व्यापारिक मूल्य कुछ नहीं है। पिछले दिनों 'जवानीकी हवा' नामक फिल्मके उद्घाटनके अवसरपर श्रीमती देविकारानी लखनऊ पधारी थीं। हर टिकटके साथ देविकारानीका एक चित्र मिलता था, जिसपर वे हस्ताक्षर कर देती थीं। सिनेमामें भीड़ इतनी हुई कि टिकट मिलना मुश्किल हो गया। सच तो यह है कि जनता हस्ताक्षर प्राप्त करनेकी सनकमें खेलकी उत्तमता या हीनताके निर्णयको भूल बैठी। उसने टिकट हस्ताक्षर प्राप्त करनेके लिए खरीदे थे, और लोगोंने उन टिकटोंका वास्तविकतासे चौगुना तक मूल्य दे डाला। ऐसा है हस्ताक्षरोंका जादू।

उपर्युक्त उद्धरणोंसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है कि किसी भी व्यक्तिका मूल्य उसकी आमदनी अथवा धनकोषपर नहीं, वरन् उसकी मानव-जातिके लिए अधिकसे अधिक उपयोगितापर निर्भर है। हस्ताक्षरोंके उदाहरण भी इसीके प्रमाण हैं। एक व्यक्ति जिसकी आय नाम-मात्रकी हो, उसके हस्ताक्षरोंका मूल्य एक करोड़पति व्यक्तिके मूल्यसे कहीं अधिक हो सकता है। शैलेके हस्ताक्षरोंका मूल्य छः सौ रुपयासे ऊपर हो सकता है। लेकिन यदि देखा जाय, तो उनकी आमदनी कोई मूल्य नहीं रखती थी।

जो लोग समझते थे कि मनुष्यकी जन्मजात प्रतिस्पर्द्धात्मक बुद्धिके कारण कोई उन्नति नहीं होगी, उनकी धारणा ऐतिहासिक असत्य सिद्ध हुई है, और अब यह सिद्ध हो चुका है कि व्यक्तिकी योग्यताका मूल्य रुपये-पैसोंकी आमदनी न होकर वह सम्मान है, जो राष्ट्र उसे प्रदान करता है। इसलिए आजके संसारमें रुपयेसे व्यक्तिका मूल्य आंकना अपमान ही है, और इसलिए इस भ्रममें रहना गलत है कि आपकी आमदनी ही आपकी योग्यताका वस्तुतः प्रतीक है।



तीखा व्यङ्ग

श्री 'पहाड़ी'

छोटी-छोटी फूसकी झोंपड़ियां हैं। एकमें एक ग्वाला अपनी नयी दुलहिनके साथ रहता है। दूसरीमें लकड़ियों-का टाल है। वहां एक बुढ़िया बैठी लकड़ियां बेचा करती है। तीसरीमें एक चमार रहता है। वह अधेड़ है और चुपचाप काम कर, जो कुछ भी कमाता है, उसे नशे-पानीमें खर्च कर देता है। फिर कुछ झोंपड़ियोंके ऊपर छप्पर नहीं हैं। और आखिरी जर्जर झोंपड़ीमें रधिया अपने पतिके साथ रहती है।

उन झोंपड़ियोंकी बस्तीकी एक अजीब दुनिया है। ग्वालेके सामनेवाले आंगनमें एक नींबूका पेड़ है, उसीके पास कुछ खूंटे गड़े हैं, उनमें गायें बंधी रहती हैं। और एक अमरूदका पेड़ भी है, उसके नीचे बछियां खेलती रहती हैं। अक्सर ग्वालिन वहां अपनी काली चुनरीमें बरतन मांजने भी बैठती है। कभी-कभी पतिके बाहर चले जानेपर 'चाट' या 'नान खताईवाले'का खोञ्चा भी वहां लगा रहता है। वह जितनी ही सांवली है, उतनी ही पक्के रङ्गकी तरह चाट खानेमें प्रवीण है।

टालवाली बुढ़ियाके कुछ भी काम नहीं है। दिन-भर खांव-खांव लगाये रहती है या फिर गालियां देगी। उसका काम भगवान् और दुनियाको कोसनेके अलावा कुछ नहीं है। उसका एकमात्र लड़का शीतलामाताने छीन लिया था। एक लड़की थी, वह भी हैजेमें मर गयी। जमाई साथमें है; पर उसका काम जुआ खेलना, शराब पीना—आज इतनी ही वह अपनी दिनचर्या बनाये है। ग्वालिनकी झिड़कियां खाकर, अब उसने उससे अश्लील मजाक करना या 'जानी जोबन पे मत इतराया करो' गाना फिलहाल छोड़ दिया है।

चमार जीवनके प्रति उदासीन रहता है। सुबह उठकर कामपर चला जावेगा, कहीं गलीके नुक्कड़पर बैठकर वहीं वह चप्पलें, जूते सियेगा, सोल लगावेगा। वह कभी मुस्कराता नहीं है। उसका अपना जीवन अपनेमें ही सीमित है। अपनी गरीबीके कारण वह आज तक अपने समाजके बीच तक गृहस्थ नहीं बन सका। इस आर्थिक दासताकी वजहसे वह अपने लोगोंके बीच सिर नहीं उठा सकता है। पिछले साल जाड़ोंमें उसे एक उम्मेदकी सब्जी दीख पड़ी थी। उसके पास ही एक अमरूद बेचनेवालेकी जवान छोकरी बैठा करती थी। उसने उसके जीवनमें एक हरियाली फैला दी थी। उसे उसके प्रति सहानुभूति हो गयी थी। किन्तु आकांक्षाका वह जाला एकाएक टूट गया। वह छोकरी अपने किसी यारके साथ भाग गयी। आज भी उसकी याद वह करता है। उसके आगे जब लोग उस लड़कीके चरित्रकी व्याख्या करते हैं, तो वह मन ही मन बहुत झुंझलाता है। वह नारीका मूल्य उसके शारीरिक आकर्षण और भूख-निवारण तक ही सीमित नहीं रखता। चरित्रकी साधारण कमजोरियोंसे अलग, वह उसके दिलकी सहानुभूतिकी कीमतपर विश्वास करता है। यदि वह लड़की लौट आवे, तो वह एक भरी-पूरी सहानुभूतिके साथ उसे अपने साथ रख लेगा।

और वह रधिया? उसका अस्तित्व उस समाजमें भी नहीं है। उसका पति पहले एक खोञ्चेवालेके साथ नौकर रहा, फिर वह बेकार हो गया। कुछ दिन बाद उसे एक फेरीवाले बजाजके साथ कपड़ेकी गठरी सिरपर लादे-लादे मुहल्ले-मुहल्ले घूमना पड़ा। रोजाना दो-तीन आनेसे अधिक मजदूरी उसे कभी नहीं मिली। जब रधिया इस घरमें आयी, तो चुप बैठी नहीं रही। उसने भी पतिकी सहायता शुरू कर दी। वह घास छीलनेमें प्रवीण थी। चुपचाप अपने कामसे रोजाना दो-चार पैसे कमाकर ले आती थी। रधियाके जीवनकी उमङ्गोंमें कभी वसन्त नहीं आया। वह मुर्झा गयी। कभी-कभी अनायास उसकी निगाह ग्वालिनपर पड़ती। उसका ऐश्वर्य, ईर्षा फैला देता। वह गुण्डी-मुण्डी बनी जब रातको अपने पतिके पास सोती, तो एक विद्रोह उठता। अगले दिन वह खूब मेहनत करती, किन्तु घास ढाई आनेसे अधिक न बिकती। वह मुरझाये मुंह घर लौट आती। इतना वह भली भांति समझ चुकी थी कि यह तुलना वह व्यर्थ करती है। भाग्य और भगवान्ने उसे और उसके पतिको

यही जगह दुनियामें रहनेको दी है। किसी खास उम्मेदपर उनको जीना नहीं है।

फिर भी रधियाकी पैनी दृष्टि उस ग्वालिनकी बातें भांपा करती थी। वह देखती थी कि उनकी गृहस्थीमें शिकवा—शिकायत चलती है। उनके जीवनमें रङ्गीनी है। वहां कुतूहल भी है। अक्सर ग्वालिन अपने पतिसे लड़ पड़ती थी। उनका खूब झगड़ा होता था। वह आटा गूंधते-गूंधते, धौंसके साथ चिल्ला-चिल्लाकर कहती थी—"वह नहीं गूंधेगी आटा। नहीं बनावेगी रोटी। नहीं खिलायेगी खाना। वह कुछ काम नहीं करेगी। तड़के अपने बापके पास चली जावेगी। उसे कुछ नहीं चाहिए। उसे किसी बातकी कमी नहीं है। वह इस घरमें एक मिनट नहीं टिकेगी। वह जरूर-जरूर चली जावेगी। देखूं कौन उसे रोक सकता है। यह धमकी नहीं है………।"

पति चुपचाप सारी बातें सुनता। रोटियां भी बनतीं। पतिको खिलायी भी जातीं। फिर भी धमकी बात-बातपर दी जाती कि "वह चली जावेगी। वे फिर चाहे कितनी ही खुशामदें करेंगे, वह लौटकर कदापि नहीं आवेगी। वह इस गृहस्थीसे अब बाज आ गयी है। यहां उसका रहना नहीं हो सकता है।" रधिया सब कुछ देखा-सुना करती। उसके दिलकी भावुकता, भावनामें तबदील हो जाती। उसकी उम्मेद और उत्साह एक बेकलीमें बदल जाता। वह अपने पतिके साथ यह व्यवहार नहीं बरत सकती है। उन दोनोंके बीच गृहस्थीमें पति-पत्नीका कोरा रिश्ता है। दोनों दो समानान्तर रेखाओंकी तरह जीवनमें चल रहे हैं, जहां कि कोई भी मार्फत नहीं है। आर्थिक गरीबीकी दासताने दोनों-को निर्जीव बना दिया है। उनका आनेवाला दिन भी एक अंधियारा भविष्य है। जहां क्या होगा, इसपर वे अधिक विचार नहीं करते। वह नामुमकिन लगता, जिसपर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

किन्तु वह ग्वालिन अगली सुबह चुपचाप छिपा पकड़े खड़ी मिलती और उसका पति गाय दुहता रहता, जैसे कि उस युवतीकी वे सारी बातें, जीवनमें नहीं टिकतीं। पति-पत्नी फिर स्वस्थ लगते। वह पतिसे बातें करती-करती बीच-बीचमें टुक मुस्करा उठती। उस मुस्कानमें मोह लेनेकी शक्ति होती और पिछली रातका झगड़ा कहीं भी बचा नहीं मिलता था। उन दोनोंके दिलोंमें वे जरा-जरा-सी बातें टिक नहीं सकती थीं। रधिया फिर अपने जीवनको उस गृहस्थीकी कसौटीपर तोलती। वह भी पतिसे झगड़ती है। वह झगड़ा रोज नहीं होता। कभी महीनोंमें हो जाता है। जब होता है, तो महीनों तक चलता भी है। वह उन दिनों बहुत निराश रहती है। और वह सब क्यों होता है, इसका सबब भी वह जानती है। वह पैसोंपर होता है। उस पैसेसे उनकी गुजर नहीं होती। दोनोंके मनमें असन्तोष है। उस असन्तोषकी जड़ पैसेका गलत बटवारा है। वह शौक नहीं कर सकती है, जब कि पति उसके पैसोंपर भी अधिकार जमा लेता है, वह उसपर कभी-कभी तो बहुत ज्यादती करता है। वह आखिर कितना सहे। यह तो उसके प्रति अत्याचार लगता। वह अपने मनमें इस बातकी गांठ बनाकर खरी-खोटी सुना देती थी। पति भी झल्ला उठता था। दोनों एक-दूसरेको भली भांति पहचानकर भी आपसमें नहीं बोलते। उन दिनों रधिया अनमनी रहती, सब चुपचाप सह लेती। बातका तुफैल बनाना उसे जंचता नहीं था। कभी-कभी वह अपनेपर झुंझलाती-फिर भी रहती थी चुपचाप। अपना काम मन लगाकर करती। फिर भी शहरू जीवनकी व्यवस्थामें मन मारकर कितना वह रहे। बात-बातमें खर्चा। वह चन्द तांबेके सिक्कोंपर आखिर कैसे सारी गृहस्थी चलावे। वह उसके वशकी बात नहीं। कितना मोटा-सोटा खावे-पहने। कुछ तो हद होती है।

इसपर भी पति धमकी देता कि वह यदि शादी न करता, तो वह भी उस चमारकी तरह रहता। आगे-पीछे किसीकी फिक्र उसे नहीं होती। चैनसे दिन कटते। जब कमाता तो खूब खर्च करता, पैसा न मिलनेपर फाकेमस्तीमें भी एक सुख ढूंढ़ लेता। आज तो वह बन्धनमें है, कहीं जा नहीं सकता। उलटे सिरपर चार लोगोंका कर्जा है। शहरमें रोजगार मन्दा है, दूसरे शहरोंका यही हाल थोड़े ही होगा। लेकिन वह मजबूर है, उसके हाथमें कुछ भी नहीं। इस शादीने तो उसे हर तरह बारहबाट कर दिया है। रधिया सब सुनती है—सुनती है, जवाब नहीं देती। चाहे, वह भी कह दे कि वह भी अपना मूल्य जानती है। उसके नारीत्वकी भी कीमत है। उसका सौन्दर्य भी आकर्षण-

की वस्तु है। और उस बुढ़ियाका जंवाई रोज उसे लोभ देता है। उसे आश्वासन दिलाता है कि यदि वह अपने पतिको छोड़कर उसके घरमें बैठ जावे, तो न मेहनत-मजदूरी करनी पड़ेगी, न इतनी तकलीफें सहनी होंगी। फिर कृत्रिम बाहरी जीवनकी टीमटाम उसे नापसन्द है। अपने पतिपर उसका सारा मोह सीमित है। वह किसी भी तरह औरोंके व्यवहारमें पिघल नहीं सकती है। अपनी उदासीनताको संवारनेमें, वह विपरीत नहीं चल सकती। वह पतिको खूब प्यार करती है। उनके जीवनमें कहीं कोई खास रुकावट नहीं है। वह दोनों ठीक-ठीक सब कुछ कर लेवेंगे।

इस तरह आदमियत साधारण दर्जेके लोगोंके बीच भी चालू है। वहां भी सब सामाजिक बुराइयां हैं, वहां भी पैसा मनुष्यको ढक लेता है, वहां भी अवसर आदमीके आगे बार-बार खड़ा हो जाता है। दुनियाके प्रति दिवस-की चर्यामें यह पैसा इन्सानको निम्नताकी श्रेणीमें भी ले आता है। कभी-कभी आदमी थककर ठहर जाता है—और वह पैसा जीवन-प्रतीक बना खड़ा-खड़ा मुस्कराता मिलेगा। यदि भाग्य और पैसेका निवारण हो जाय, तो उचित स्थान और इन्सानके व्यक्तित्वका सवाल हल होते देर नहीं लगेगी। इस जीर्ण समाजके घाव आदिकालसे दुखते चले आये हैं और आगे भी उसका उपकार आसान नहीं। आखिर किसने इन्सानोंके बीच गहरी-गहरी खाइयां खोद-कर, उनको आर्थिक दासता स्वीकार करनेको मजबूर किया है। इसी वजह जीवनमें प्रति दिवस कठोरता आ गयी है। और उस गलत निर्माणका सारा भार कुछ दरजेवालोंको सौंप दिया गया है। यह सर्वदा श्राप-सा उनपर लागू रहता है।

वह रधिया दुनियाको आंखें फाड़-फाड़कर देखती है। देखती है उस ग्वालिनको। उस ग्वालिनका रोजाना जीवन उसके दिलमें रोमांसकी भावना भर देता है। वह उनका सुख-सपना देख, उस अपने अभागे भाग्यको कोसती भी है। किसी पिछले एक दिन बिसाती आया था। ग्वालिनने सुन्दर-सुन्दर चीजें खरीदी थीं। तरह-तरहकी चीजें थीं वे। उसने बाल बांधनेका नये डिजाइनका फुन्दा लिया था, अपनी चुनरीके लिए चकमक गोट लिया था। रधिया मन मार-कर सब कुछ देखती ही रह गयी थी। वह क्या करती। उसके पास पैसा नहीं था। दुनियाकी सब खरीदारी पैसेपर चलती है। वह भी उस पैसेका पूरा-पूरा मूल्य जानती थी। वह पैसा न होना, उसे बहुत दुःख देता। लेकिन उसे लाखकी चूड़ियां पसन्द थीं। वह अपना शौक पूरा करना चाहती थी। वह मनमें सोचने लगी कि उम्रमें अभी वह उस अहीरिनसे तीन-चार वर्ष छोटी है, फिर कड़ी मेहनत-मजदूरी करनेसे कई साल बड़ी लगती है। अभी तो उसकी उम्र शौकसे खाने-पहननेकी थी। फिर—। वह चुपचाप उठी और टालवाली बुढ़ियाके जमाई-के पास पहुंची। चार आने कर्जा निकाला। उसके अश्लील मजाकको सुन बिदकी नहीं, चुपचाप उसे पी गयी। आज वह भी 'वस्तुवादी' बन गयी थी। जरूरतके आगे झुक गयी थी। उसके हृदयमें चोट लगी, पर वह तिलमिला नहीं सकी। उस चवन्नीकी उसने चूड़ियां खरीदीं, पहनीं और उनको पहनकर उसे अपने जीवनमें पहली बार खुशी हुई। अपने जीवनकी उदासीमें जैसे कि उन चूड़ियोंकी चमकाहटकी रोशनीसे वह कुछ ढूंढ़ रही थी। अपने जीवनमें तैरते हुए उस मैलको, जो उसे दुःखी बना पीड़ा पहुंचाता था, वह अलग हटा देनेकी फिक्रमें थी। वह अपने जीवनका रुख बदल देना चाहती थी। उसके मनमें एक नयी उमङ्ग और उत्साह था, जिसे वह खुद न समझ सकी। एक अज्ञात थिरकन दिलमें उदय होकर, उथल-पुथल मचाने लगी। कभी-कभी अनायास वे चूड़ियां पैना डङ्क मारतीं, फिर भी अब वह सुलझ गयी। जीवनके प्रति उन्मुख न हो, पैसेका उपहास उड़ाना उसने स्वीकार कर लिया। वह फिर भी कुछ देरके बाद उन चूड़ियोंको पहन खुश नहीं रह सकी। वह बुढ़ियाका जमाई उस चवन्नीके बलपर अब उससे अश्लील मजाक कर सकता है। वह सुननेको तैयार जैसे कि हो गयी हो। आज तक वह उसकी ओर आंख उठाकर नहीं देखता था, अब वह छोकरा उसे तृष्णाकी भूखी और खाली आंखोंसे ऐसे घूर रहा था कि जैसे रधियाने अपनेको स्वयं ही उसे सौंप दिया है। तो भी रधियाको सब मन्जूर था। होनहार और उस भाग्यके साथ वह अधिक झगड़ना नहीं चाहती थी, जिसपर उसकी आर्थिक गरीबी निर्भर थी। न उसे भविष्यका कोई जाल बुनना पसन्द था।

उस सन्ध्याको रधिया अपनी झोंपड़ीमें अनमनी-सी अकेली बैठी थी। न जाने मन क्यों परेशान था। कुछ वह अपनेमें भी नहीं थी। अब वह अस्वस्थ लगी। वह न जाने क्यों फूट-फूटकर रोना चाहती थी। तभी उस सुनसानमें उसने एक आहट सुनी। मुड़कर देखा, वही छोकरा खड़ा था। उसने एक पूड़ा निकाला और मिठाई आगे रख दी। रधिया असमञ्जसमें पड़ गयी। वह चुपचाप बाहर खिसक गया था। रधियाके मनमें कोई एक तीखी हंसी हंसा। उसमें कुटिलता भरी थी। रधिया अधिक देर तक असावधान नहीं रही। वह सब कुछ जानकर उठी। उसने वह मिठाईका पूड़ा उठाया। झोंपड़ीके पिछवाड़े पहुंची, वहां नालीमें फेंक दिया। फिर भी मनकी अकुलाहट नहीं हटी। एक छी-छी-छी सारे जीवनमें फैल गयी थी। वह खुद उपाय न निकाल सकी। रात-भर उसे नींद नहीं आयी। अगले दिन उसे हल्का ज्वर भी हो आया। तीन-चार रोज वह बीमार भी पड़ी रही। उसकी बीमारीमें उस छोकरेने उसकी खूब टहल की। वह उसे बहुत नजदीकसे देखकर, पहचान गयी कि वह भी उसके नारीत्वकी गरीबीके प्रति सहानुभूति रखता है। यह पैसा ही जीवनका ऊपरी हाथ है। यह भगवान् और भाग्य दोनोंको बांधकर पकड़ रखनेकी क्षमता रखता है।

लेकिन अच्छे होते ही उसे मालूम हुआ कि उसकी शारीरिक मेहनतसे अधिक, उसके शरीरकी कीमत है। लेकिन पुरातनसे चली, चरित्रके प्रति फैली धारणायें उसके आगे हर तरह रुकावट डालती थीं। जैसे चरित्र पैसेसे ऊपर हो और अपने शरीरसे पैसा कमाकर भाग्यको धोखा देना नारीका अधिकार नहीं। यह दलील बार-बार आगे आती। स्वाभाविक जो हिचक थी, उससे वह सावधान रहने लगी। कभी-कभी वह क्षण-भरके लिए चिन्तित हो जाती। एक दिन उसका दिल पिघलकर इतना भावुक बन गया कि उसने सब चूड़ियां तोड़-फोड़ डालीं। तब जाकर उसे चैन मिला। वह चवन्नी उस तरह मांगनी अनधिकार बात लगी। उसने सोचकर तय किया कि वह जल्दी ही, उसके पैसे लौटाल देगी। वह खुद कमाकर दुनियामें सिर ऊंचा करके चलेगी। यही उसे करना भी है। उस दिन उसके दिलमें नयी-नयी उमङ्गें भरी रहीं। सांझ होनेको थी कि अहीरिनने पूछा—गुड़ियाके मेलेमें वह नहीं चलेगी। वह क्या कहती। मेलेमें जाना आसान काम नहीं था। उसके लिए भी पैसा चाहिए। वह अपनी पड़ोसिनके आगे अपनी गरीबीका प्रदर्शन करना नहीं चाहती थी। लेकिन क्या करे। बोली ही कि वह चलेगी। अहीरिनको चलना ही नहीं था, वहां बहुत सारी चीजें भी खरीदनी थीं। वह बार-बार उन चीजोंको दुहराती थी। एक-एक चीजका नाम खट-खट-खट करके उसके हृदयपर चोट करता था। रधिया अपनेपर और अपनी गरीबीकी हालतपर मन ही मन झुंझलायी। अहीरिन चली गयी। रधिया कर्तव्यकी तरह उठी और उसके आगे वह अश्लील साहूकार याद आया—बुढ़ियाका छोकरा। इशारेसे उसने उसे अपने पास बुलाकर अठन्नीकी मांग पेश की और उसने एक भले पड़ोसीकी तरह एक रुपया देकर कहा कि उसके पास खर्चा नहीं है। रधियाने वादा किया कि वह मेलेसे वापस आकर बाकी पैसे लौटाल देगी। वह रधिया उस छोकरेके मुंहपर एक घृणित उपहास पा चौंकी; किन्तु वह भावना दबाकर, बाहर निकली और अहीरिनके पास पहुंच गयी। उसे अहीरिनके भाग्यपर फिर ईर्षा हो आयी। वह गरीब है, इसीलिए दुनिया उसको अपना सकती है। उसकी नारीत्वकी कीमत आंकी जा सकती है। फिर भी दबे मन वह मेले पहुंची। वहांके वातावरणमें उसे शान्ति नहीं मिली। एक अजीब विद्रोह हृदयमें उठ चुका था। वहां आग सुलग रही थी। वह और भी तेज जलने लगी। मेलेमें चारों ओर हंसी, खुशी फैली थी। अहीरिन चीजोंका मोलतोल कर रही थी। और चीजें खरीद-खरीदकर रधियाको सौंपती जाती। रधियाकी हैसियत वहां भी एक साधारण नौकरानीसे बड़ी नहीं थी। रधिया सारी पीड़ा दबा गयी। वह चुपचाप चीजोंको सावधानीसे संवारती रही। और वे लोग मेलेसे लौट आये।

रधियाने रातको खाना नहीं बनाया। बड़ी देर तक वह फूट-फूटकर रोती रही। बहुत रोयी—रोयी—रोयी। अपने आप ही रोती रही। अपनी निम्नताको पीकर खुद रोती रही। वह अपना दुःख किसीपर भी व्यक्त करना नहीं चाहती थी। उसके आगे कुछ जीवन-तस्वीरें मैली-मैली फैल गयीं। वह अवाक् उनको देखती रही—देखती—देखती—

वह तांगेवालोंका अड्डा। जहां वह घास बेचती है। कितनी गन्दी जगह है वह। फिर भी वह वहां जाती है।

जाती है। उसका सौदा वहीं बिकता है। उसीकी तरह और औरतें भी वहां जाती हैं। वह चारखानेका तहबन्द बांधे हुए तांगेवाला, उससे अश्लील मजाक तो करता ही है, उसे तांगेमें घुमानेका वादा भी करता है। उसे समझाता है कि नारीको अपनेको अधिक खींचकर नहीं रखना चाहिए। नारी तो स्वाभाविक उदार होती है। कब फिर यह जालिम जवानी चली जाय, इसे तो कोई भी नहीं जानता है। वह इस तरह बबड़ाती क्यों है। ठीक उसे अभी पुरुषका सही-सही अनुभव नहीं है न। ओ' पुरुष तो बहुत दयालु होता है। उसका अनुभव कच्चा नहीं होता। और यह सब चरित्र तो एक ढोंग है। चरित्रपर विश्वास रखनेवाली औरतोंको इस तरह बाहर खुले-खुले नहीं निकलना चाहिए। इसमें लाजका सवाल नहीं उठता। यह तो खुदाकी सृष्टि है, यहां पाप-पुण्य कुछ नहीं। सब ढकोसला है।

रधिया यह दलील तो सुनती-सुनती थक गयी है। फिर भी घास बेचना उसका पेशा है। ज्यादासे ज्यादा दामोंमें वह अपनी गठरी बेचना चाहती है। और इसके लिए लोग उसे फुसलानेको कुछ अधिक दाम भी दे देते हैं। वह तांगेवाला उसकी घास अधिक खरीदता है। कभी-कभी पुचकार और प्यारके चार शब्द भी बोलता है। या फिर एक वीभत्स हंसी हंसता है। उसे देख रधिया बहुत डरती है। लाचार है। उसको इन लोगोंके हाथ ही तो घास बेचनी है। यही उसका पेशा है। अपने पेशेमें उसपर पड़नेवाली साधारण रुकावटोंके लिए, वह उसे छोड़ नहीं सकती। अपना रोज-गार उसे निभाना ही है। उस बस्तीमें जाते उसे घृणा होती है। अब वह उसे पचानेकी आदी हो गयी है।

वह बड़ी सुबह वहां घास बेचने जाती है। देखती है तांगे-वालोंका हाल। कोई चायवालेसे चाय पीता है। कोई पाव-रोटीका टुकड़ा दांतोंके तले दबाये रहता है। एक घोड़ेको मलता मिलेगा, तो दूसरा तांगे कसनेकी तैयारीमें होगा। इसपर भी वह एक युवती घासवालीको भांपा करती है। वह सांवली है, उनके मजाकोंपर टुक मुस्कराती है। यदि कोई चायका कुल्हड़ दे देता है, तो वह बिना किसी आना-कानीके पी लेती है। या फिर दूसरा बीड़ी देगा और वह सुलगाकर धुंआ उगालने लगेगी। इन सब बातोंमें उसे लाज नहीं लगती है। वह यह भी सुन चुकी है कि पहले वह उस तहबन्दवाले तांगेवालेकी प्रेयसी थी। अब उसने इसे छोड़ दिया है व और तांगेवाले अब उसे पटानेकी फिक्रमें हैं कि वह किसीकी सही, एककी प्रेमिका तो रहे। आखिर बिना प्रेमीके उसे खाली तो रहना नहीं है?

वह दुनियाको आंखें फाड़-फाड़कर क्या नहीं देखती है? देखा है उसने सब कुछ। दुनियाका रङ्ग-ढङ्ग वह पह-चानती है। तांगेवालोंके पाससे घर लौटते रास्तेमें पत्थरके कोयलोंकी ढेरीके पास ठेकेदार बैठा रहता है। वह रोज रधियाको ताना मारता है और रुपया दिखलाया करता है। एक दिन रधिया कुछ सुबह घास बेचकर लौट रही थी, तो उसने देखा था कि उस ठेकेदारकी कोठरीसे एक अधेड़ औरत बाहर निकली। वह अलसायी और थकी लगती थी। इतना वह समझ गयी कि वह रातको जरूर वहीं रही है। वह उसे खूब पहचानती थी। वह उसके ही मुहल्लेकी औरत थी, जो बात-बातमें झगड़ा बढ़ाकर गाली-गलौज शुरू कर देती है। वह यह भी दुनिया-भरसे कहती फिरती है कि वह सती-साध्वी है। वह और औरतोंके बुरे चरित्रकी व्याख्या भी करती है। उसकी दृष्टिमें और सब औरतें चरित्रहीन हैं।

रधिया इस तमाशेपर कुछ संकुचित होकर भी, उसपर कोई राय देनेको तैयार नहीं हुई। सोचा था उसने, गलती उस औरतकी भी नहीं है। वह भी मजबूर होगी। अन्यथा क्यों कोई इस तरह मारा-मारा डोले। उस औरतके लिए उसने दिलमें श्रद्धा बटोर ली। वह यह अच्छी तरह समझ गयी कि पुरुष हर तरह नारीपर अधिकार जमाना चाहता है। उसे नारीका शरीर चाहिए। वह उसे खरीदता है, मोल-तोल करता है। सब पुरुष उसकी दृष्टिमें उसी श्रेणीमें आ गये थे। वह हरएकको उसी एक निगाहसे देखती।

× × ×

रधियाको फिर भी नींद नहीं आयी। पति मेलेसे लौटकर अभी तक नहीं आया था। उसने अपनेपर बहुत विचार किया। क्यों वह पैसा इस तरह उधार लिया करती है। किस तरह वह रुपया चुकावेगी। क्या उसका यह व्यवहार ठीक है। और वह जो बिना हिचक उसे कर्जा दे देता है, क्या चाहता है उससे? वह क्या एक दिन उसकी मांग

पूरी करेगी। क्या यही उसने फैसला कर लिया है। गरीब नारीका चरित्र भी कुछ नहीं होता है। हरएक उसे पानेकी कोशिश करता है। नहीं तो वही क्या......

वह जानती है कि सामने जो बड़ा मकान है, उसमें एक रईस रहते हैं। उनके लड़के हैं। उनकी बहुएं हैं, बेटियां हैं, नाती-पोते हैं। फिर भी वे अपने चश्मेकी आड़से तिरछी निगाह फेंक रधियाको रिझानेकी कोशिश करते हैं। उनके सिरके सब बाल सफेद हैं। चेहरेपर बुढ़ापेके कारण झुर्रियां पड़ गयी हैं। फिर भी कई बार रधियाके आगे बुरा प्रस्ताव रख चुके हैं। वे कहते हैं—"वह झोंपड़ीमें रहने लायक नहीं है। उसकी जगह तो महलोंमें होनी चाहिए थी। रधिया चाहे तो बातकी बातमें राजरानी बन सकती है। वे हर तरहसे रधियाकी सहायता करेंगे, यदि रधिया उनका अनुरोध मान ले।" लेकिन रधिया देखती है, उस परिवारमें पूरा वैभव है। गृहस्वामिनी सुघड़ स्त्री है। और वहां—। वह अन्दाज नहीं लगा पाती कि दुनिया बावली हो गयी है या वह? नहीं तो सब उससे यही क्यों चाहते हैं। यदि सबकी बातें झूठी हैं, तो वही क्या और कहांकी सच्ची है।

लेकिन रधियाका स्वामी मेलेसे लौट आया। रधिया संभल गयी। उसकी भावुकता मिट गयी। पति और पास आया। रधिया चौंकी। आज पति शराब पीकर क्यों आये हैं। यह दारू पीनी कबसे शुरू की गयी। वह अब क्या करे। पतिसे उसे यह उम्मीद नहीं थी। वह यह न सह सकी, चुपचाप बाहर खिसक गयी। बाहर घना अंधियारा था। वहीं उसने किसीकी धीमी आवाज सुनी। देखा फिर कि कोई औरत टालवाली बुढ़ियाकी झोंपड़ीके पास खड़ी है। फिर देखा उसने कि वह और टालवालीका जंमाई, दोनों ग्वालिनकी झोंपड़ीमें चले गये। वह सन्न रह गयी। यह क्या खेल है। उसकी उम्मेदोंपर भारी धक्का लगा। वह इस कच्ची चोटसे तिलमिलाकर आगे बढ़ी। गली पार की। सड़कपर पहुंची। कुत्ते भूंक रहे थे। एक पानवालेकी दूकानके अलावा और सब दूकानें बन्द थीं। वह भी अपनी चीजें संवारकर दूकान बन्द करनेकी फिक्रमें था।

वह आगे-आगे बढ़ी। सोचा, वह भी पाप करेगी। उसे भी पैसा चाहिए। उसे समाजकी खास परवाह नहीं है। गरीबोंका अस्तित्व समाजमें नहीं है। दुनियामें चलनेके लिए पैसा चाहिए। धीरे-धीरे वह तांगेवालोंकी बस्तीमें पहुंची। मालूम हुआ कि वह तहबन्दवाला तांगेवाला अभी लौटकर नहीं आया है। कुछ देर उसने उसका इन्तजार किया, फिर भी वह लौटकर नहीं आया था। वह ऊब गयी। अधिक न रुककर कोयलेके ठेकेदारका दरवाजा खटखटाया। वह भी नहीं खुला। बड़ी देर तक खटखटाया। कोई भी प्रति-उत्तर नहीं मिला। कुछ संभलकर देखा उसने—ठीक उसपर ताला पड़ा हुआ था। उसे बड़ी निराशा हुई। वह घर लौटकर किसी भी तरह नहीं जाना चाहती थी। वह अपने पतिके पास नहीं जावेगी। तभी याद आया कि उसे राजरानी बनना है। बस वह राजरानी बनेगी। वह दौड़ने लगी। दौड़ी-दौड़ी उस बड़ी हवेलीके पास पहुंची। उसने देखा कि वहां एक कमरेमें रोशनी है। हकबकाकर उसने खिड़कीसे देखा, वही बूढ़ा पलंगपर लेटा कुछ पढ़ रहा था। भारी उम्मेद उसे हो आयी। उसने दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खुला। रधिया तपाकसे बोली—"मैं राजरानी बनने आयी हूं। जो कहोगे, मानूंगी।"

लेकिन बुड्ढा चुप रहा।

फिर रधिया बोली—"बोलो-बोलो—चुप क्यों हो। तुमने ही मुझे राजरानी बनानेको कहा था।"

अब बुड्ढा हंस पड़ा। बोला फिर—"तू बड़ी देरमें आयी रधिया। अब मैं तेरा क्या करूं। तेरे बच्चा होनेवाला है। तेरी कुछ भी कीमत नहीं है। वह देख......।"

रधियाने देखा कि दूसरे पलंगपर एक युवती सोयी हुई थी। वह फिर बोला—"मुझे औरतोंकी कमी नहीं है। नकद पैसेसे अच्छेसे अच्छा सौदा मिल जाता है।"

रधियाकी आंखोंके आगे अंधेरा छा गया। वह बाहर निकली। अपनी झोंपड़ीके भीतर पहुंची, और वहीं बैठकर अपने पेटपर जोर-जोरसे मुक्के मारते, रोते-रोते कहने लगी—"मुझे बच्चा नहीं चाहिए—मुझे बच्चा नहीं चाहिए।" और कुछ देर बाद बेहोश हो गयी।

प्रजातन्त्र बनाम पैसा

B. C. PONAPA.

श्री कस्तूर मल बाँठिया बी. काम.

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें प्रजातन्त्रकी बड़ी महिमा है। परन्तु प्रजातन्त्री माने जानेवाले राष्ट्रोंमें प्रचलित प्रजातन्त्रमें और सैद्धान्तिक प्रजातन्त्रमें बड़ा ही अन्तर दीख पड़ रहा है। यह अन्तर कोई आज ही नहीं पैदा हो गया है। हां, गत महायुद्धके बादसे इसकी ओर जनसाधारणका ध्यान विशेष आकर्षित हुआ है। इसका मुख्य श्रेय सेल्फ-डिटरमिनेशन यानी आत्म-निर्णयके सिद्धान्तको है, जिसकी ओर संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके स्वर्गीय प्रेसिडेण्ट श्री वुडरो विल्सनने सभ्य जगत्‌का ध्यान आकर्षित किया था। और जब परतन्त्र राष्ट्रोंने इस सिद्धान्तको अपने लिए मानकर उसकी मांग पेश की, तब यह जाहिर हो गया कि हाथीके दांत दिखानेके दूसरे और खानेके दूसरे हैं।

इंगलैण्ड देशकी पार्लमेण्ट यानी 'हाउस आफ कामन्स' प्रजातन्त्रवादकी जननी सर्वत्र मुक्तकण्ठसे स्वीकार की जाती है। यह किसी कदर सच भी है; क्योंकि इसने ही प्रजाके अधिकारोंकी रक्षा करनेका सबसे पहले प्रयत्न किया था, और उसमें वह सफल भी हुई है। यूनानी प्रजातन्त्रके नष्ट-भ्रष्ट हो जानेके बाद सभ्य संसारमें स्वेच्छाचारी शासकोंका दौरदौरा हो गया था। इस स्वेच्छाचारका विरोध इंगलैण्डकी प्रजाने प्रबल रूपसे कर ई० सन् १२१९ में राजा जानसे पहले-पहल कुछ ऐसी बातें स्वीकार करवा लीं, जो 'मेग्ना कार्टा'के नामसे प्रसिद्ध हैं। इससे प्रजाको किसी तरहके अधिकार तो नहीं मिल गये; परन्तु इतना जरूर हुआ कि राजाकी स्वेच्छाचारितापर अंकुश लग गया। इन अंकुशोंमेंसे एक प्रभावशाली अंकुश वह था, जिसके अनुसार २४ उमरावोंकी एक स्थायी कमेटी इसलिए नियत की गयी थी कि वह यह चौकसी रखे कि राजा जान 'मेग्ना कार्टा' में किये गये इकरारोंको यथावत् पालन कर रहा है या नहीं। यही कमेटी या कौन्सिल आगे चलकर पार्लमेण्टमें रूपान्तरित हो गयी, जब कि पीछेके राजाओंने 'मैग्ना कार्टा' की शर्तोंको तोड़नेकी चेष्टा की। और यह भी इसलिए सम्भव हुआ कि लन्दन शहरके उमरावों और नागरिकोंने मिलकर राजा जानकी स्वेच्छाचारिताका विरोध कर सफलता पा ली थी।

पार्लमेण्ट जबसे स्थापित हुई है, तभीसे वह प्रजाके अधिकारोंकी हामी ही नहीं, पर जबरदस्त रक्षक रही है और शनैः शनैः उन्हें बढ़ाती भी रही है। वय-प्राप्त प्रत्येक स्त्री-पुरुषके लिए मताधिकार इसीके द्वारा प्राप्त हुआ है। इसकी सदस्यता प्राप्त कर सकनेके लिए जायदादके मालिक होनेकी कैद भी इसीके द्वारा हटायी जा सकी है। आज

सबको अपने मत-प्रदर्शनकी जो भी स्वतन्त्रता प्राप्त है, वह भी इसीके प्रयासका फल है। धनी और गरीब, अधिक पढ़े और कमपढ़, मालिक और मजदूर, ऊंच और नीच आदिके समानाधिकार स्वीकृत कराना भी इसीका काम है। ज्यूरी द्वारा न्याय, पूर्ण तहकीकातसे जुर्म साबित होनेपर ही अपराधीको सजा, पहले प्रतिनिधित्व और पीछे कर, आदि अधिकार जनसाधारणको इसने ही दिलाये हैं। कागजपर यह सब अवश्य हो गया है; परन्तु व्यवहारमें इनपर पूरा-पूरा अमल न होनेसे आजकी जनताका इंगलैण्ड-घोषित प्रजातन्त्रवादसे विश्वास ही उठ गया है। अब उसका प्रजातन्त्रवाद साम्राज्यवादमें बदल गया है, इसीलिए उसकी प्रजातन्त्रवादकी पुकारका आज जैसा चाहिए वैसा असर देखनेमें नहीं आता। पर ऐसा क्यों हो रहा है? आइये हम आज इसपर कुछ विचार करें।

प्रजातन्त्रवादकी जननी 'हाउस आफ कामन्स' के कुल ६०० सदस्य हैं। ये सब मतदारोंद्वारा चुने जाते हैं। इन सदस्योंमेंसे अभी लगभग ४०० सदस्य तो उस दलके हैं, जो अपनेको कञ्जरवेटिव यानी अनुदार कहते हैं। शेष सदस्योंमेंसे कुछ उदार दलके, कुछ मजदूर दलके और कुछ और-और दलोंके हैं। जबसे इंगलैण्डमें राजनीतिक दलोंका सङ्गठन शुरू हुआ है, तभीसे वहां बहुमतवाला दल शासन-सभा या कैबिनेट बनाता है और राजाके नामसे देशका शासन जब तक पार्लमेण्टका फिरसे चुनाव न हो, उस दलकी नीतिसे वह शासन-सभा करती रहती है। राष्ट्रीय सङ्कटके समय, जैसा कि इस समय उपस्थित है, सब दल मिलकर शासन-सभा बना लेते हैं, अन्यथा सदैव बहुमतवाला दल शासन-सभा यानी कैबिनेट बनाकर अपने बहुमतके बलपर विपक्षी दलकी उपेक्षा करते हुए अपनी नीतिके अनुसार देशका शासन करता रहता है। दलकी नीति जो होती है, वही उसके सदस्योंकी एवं उनके मतदाताओं व चुननेवालोंकी मानी जाती है।

सर रेजीनाल्ड बैंक्सने अपनी पुस्तक 'दी कञ्जरवेटिव आउटलुक' में एक स्थलपर कहा है कि सिर्फ इन्हीं चन्द वर्षोंसे इंगलैण्डने प्रजातन्त्रवादी राज्य होनेका बहाना करना शुरू किया है, वरना १८ वीं शताब्दीके ही नहीं, अपितु १९ वीं शताब्दीके शुरू-शुरूके भी पार्लमेण्टके बड़े-बड़े सदस्य तो ऐसे सिद्धान्तको हिकारतके साथ बराबर ही इनकार करते रहे हैं। कहा जाता है कि सन् १८१८ ई० में 'हाउस आफ कामन्स' के ६०० सदस्योंमेंसे ५० तो बड़े-बड़े बैङ्कोंके कर्ता-धर्ता और बड़े-बड़े व्यापारी और कारखानेदार थे। बाकीके ५५० सदस्योंमेंसे अधिकांश जमींदार या उनके गुर्गे थे, जिनमेंसे कुछ खानोंके मालिक भी थे। इससे साफ जाहिर है कि इंगलैण्डमें तब सच्चा प्रजासत्तात्मक राज्य नहीं, अपितु जमींदारों और धनिकोंका ही राज्य था, और यही लोग गुट बनाकर प्रजाके नामसे राज्य-शासन करते थे। आज इस २० वीं शताब्दीमें भी स्थिति वैसी ही है, यद्यपि प्रजाकी सत्ता पहलेकी अपेक्षा कहीं ज्यादा कही और मानी भी जा सकती है।

इसका भी कारण है, और वह यह कि जबसे शासन-तन्त्रमें पार्टी यानी दलका सिद्धान्त प्रचलित हुआ है, तबसे पार्लमेण्टमें कैसे सदस्य जायें, इसकी पसन्दगी उनके चुनावके पहले ही पार्टी द्वारा कर ली जाती है, यानी प्रत्येक पार्टी यह निर्णय कर घोषित कर देती है कि उसकी ओरसे कौन-कौन व्यक्ति उम्मेदवार किये गये हैं, जिनके लिए पार्टीके सदस्योंको वोट देना चाहिए। सर्वसाधारण मतदारोंका इन उम्मेदवारोंकी पसन्दगीमें कोई हाथ नहीं रहता। पार्टी या उसकी कार्यकर्तृ समिति उन्हीं लोगोंको उम्मेदवार खड़ा करती है, जो उसके प्रभावशाली गुटोंके पोषक और समर्थक होते हैं। अर्ल विण्टरटनने अपने संस्मरणोंमें अपने 'हाउस आफ कामन्स' का पहले-पहल सदस्य चुने जानेका जिक्र करते हुए लिखा है:—

"अक्टूबर १९०४ ई० के शुरूमें मैं आक्सफर्ड विश्वविद्यालयमें तीसरे वर्षकी पढ़ाई पढ़नेको गया, जहां मेरी कितनों ही से मित्रता हो गयी और मुझे घोड़ेपर चढ़े-चढ़े सर्दियोंमें विसेस्टर, हेथ्रोप और दक्षिणी आक्सफर्डशायरके शिकारी कुत्तोंको लेकर शिकारके लिए जानेमें बड़ी ही मौज रही। गर्मीमें मैं पोर्ट मैडोमें पोलो खेलता। दुर्भाग्यवश विश्वविद्यालयमें मेरे प्रथमके दो वर्ष मेरी बौद्धिक उन्नतिमें वीरान रहे थे, जिसका सारा दोष मेरा ही था। अक्टूबरके शुरूमें होरशम ताल्लुकेके अनुदारदलके सदस्य मि० हेवुड जानस्टन मर गये, और बुधवार ता० १९ अक्टूबरको स्थानीय अनुदार दलकी समितिकी सदस्य-पसन्दगी उप-समितिने मेरा नाम भावी

सदस्यके लिए पेश कर दिया, जो समितिमें भी स्वीकृत हो गया। लार्ड लेकनफील्डकी गहरी मददसे इस तरह मैं सिर्फ २१ वर्ष और ६ महीनेकी उम्रमें ही एक अत्यन्त महत्त्वके तालुकेसे अनुदार दलके टिकटपर पार्लमेण्टका सदस्य चुन लिया गया।"

इससे स्पष्ट है कि हाउस आफ कामन्सके सदस्योंकी पसन्दगी या चुनाव उनकी योग्यतापर नहीं, अपितु उनके धनी होनेकी वजहसे होता है। वे प्रजाके प्रतिनिधि नहीं, वरन् धनी या अधिकारी-वर्गके प्रतिनिधि होनेकी वजहसे सहज ही पसन्द किये और फिर चुन लिये जाते हैं। क्या यही प्रजातन्त्रवाद है? इसी अनुदार दलकी सदस्या कुमारी वीरा चर्चिलने सन् १९३८ ई० में 'डेली टेलीग्राफ' समाचार-पत्रमें लिखा थाः—

"बात कुछ भी हो; पर यह निर्विवाद सत्य है कि सिर्फ वे ही लोग, जिनकी बहुत बड़ी खानगी आय है, अनुदार दलकी ओरसे पार्लमेण्टमें जानेकी कुछ आशा कर सकते हैं। ......धन और राजनीतिक योग्यता—ये साथ-साथ कैसे चल सकते हैं? इस विश्वासको कि अनुदार मत बुढ़ौती और धनवान होनेका ही पर्यायवाची है, प्रोत्साहन देना बड़े दुःखकी बात है।"

यह बात अक्षरशः सत्य है, इसका एक अकाट्य प्रमाण मि० आयन हारवेने सन् १९३९ ई० के जनवरी ४ तारीखके दैनिक 'ईवनिंग स्टेण्डर्ड' में दिया था, जब कि वे डोन वैली तालुकेसे अनुदार दलकी ओरसे पार्लमेण्टकी सदस्यताके लिए खड़े हुए थे। उन्होंने उम्मेदवारोंको तीन श्रेणियोंमें इस प्रकार विभाजित किया थाः—

(१) वे, जो निर्वाचनका सारा खर्च—जो ४०० से १००० पौण्ड तक होता है—भुगतें और साथ ही स्थानीय अनुदार दल-समितिको सालाना ५०० से १००० पौण्डका चन्दा भी दें। ऐसे उम्मेदवारोंको समितिकी ओरसे सदस्य स्वीकार कर लिये जानेका निःसन्देह ही अत्युत्तम अवसर है; पर ऐसे उम्मेदवार वे ही हो सकते हैं, जिनकी सालाना आय १०,००० पौण्डसे अधिक होती है।

(२) वे, जो निर्वाचनका आधा खर्च भुगतें और स्थानीय अनुदार दल समितिको सालाना २५० से ४०० पौण्डका चन्दा दें। ऐसे लोग भी उम्मेदवार माने जा सकते हैं; परन्तु निश्चयतासे नहीं कहा जा सकता।

(३) वे, जो निर्वाचनका कुछ भी खर्च न दे सकें, परन्तु समितिको सालाना १०० पौण्ड या उससे भी कम रकम चन्देके रूपमें देते हैं। ऐसे लोगोंके सदस्य माने जानेकी बहुत ही कम सम्भावना रहती है।

प्रजातन्त्रकी कसौटी पैसा है और वही उसे चला भी रहा है, इसके उपर्युक्त स्पष्ट प्रमाण हैं। फिर भी यह कहा जा सकता है कि ये अपवाद थे। इसलिए हमें चुनेहुए सदस्यों-की धन-सम्पत्तिका भी विचार कर लेना यहां ठीक होगा। सन् १९३१ से १९३८ तकके सात वर्षोंमें पार्लमेण्टके लगभग ४३ अनुदार दलके सदस्य मरे थे, जिनमेंसे ३३ सदस्योंकी सम्पत्तिके अङ्कोंका पता लगाया गया, तो यह जाना गयाः—

उनमेंसे २ सदस्योंने तो १० लाख पौण्ड यनी डेढ़ करोड़ रुपयोंसे अधिककी सम्पत्ति छोड़ी।

१२	सदस्योंने	तो	१ लाखसे १० लाख पौण्डके	बीचमें।
७	"	"	४० हजारसे १ लाख पौण्डके	"
७	"	"	२० हजारसे ४० हजार "	"
९	"	"	१० हजारसे २० हजार "	"

उपर्युक्त अङ्कोंसे यह स्पष्ट ही जाना जा सकता है कि अनुदार दलके ३३ पार्लमेण्टके सदस्योंमेंसे १४ की सम्पत्ति एक लाख पौण्ड यानी १५ लाख रुपयोंसे अधिककी थी। यानी ४२ प्रतिशत सदस्योंकी। इतनी बड़ी सम्पत्ति इंगलैण्ड-जैसे धनाढ्य देशमें भी समस्त जनताके अनुपातसे हजारमें केवल एक ही की मिलती है।

जब हम इन सदस्योंके व्यवसायों आदिका अनु-सन्धान करते हैं, तो हमें पता चलता है कि सरकारके पृष्ठ-पोषक ४१५ सदस्योंमेंसे १८१ यानी लगभग ४४ प्रतिशत सदस्य कम्पनियोंके डाइरेक्टर हैं। * सन् १९३८ की "डाइ-

* सर चार्ल्स बेरी (लिबरल-नेशनल दलके सदस्य साउदेम्पटन क्षेत्रसे पार्लमेण्टमें आये हैं।)

नीचे लिखी कम्पनियोंमें डाइरेक्टर हैं और जो उनके सामने लिखी कम्पनियोंकी या तो मालिक ही हैं या बहुत बड़ी हिस्सेदार होनेके कारण उनका प्रबन्ध करती हैं।

१. लन्दन एण्ड नार्थ ईस्टर्न रेलवे, जिसकी पूंजी २९,७४,२७,८०४ पौण्ड है। यह नीचे लिखी कम्पनियोंकी

रेक्टरोंकी डिरेक्टरी" से यह पता चलता है कि उस सालमें कुरु ३३,००० लोग भिन्न-भिन्न कम्पनियोंके डाइरेक्टर नियुक्त थे, यानी २,९०,००,००० मतदाताओंमेंसे प्रति हजारमेंसे एक डाइरेक्टर था। ऐसी स्थितिमें क्या "हाउस आफ कामन्स" के एक ही दलके सदस्योंमेंसे ४४ प्रतिशतका डाइरेक्टर पद भोगना इस बातका अकाटय प्रमाण नहीं है कि वहां व्यवहारमें आज भी जमींदारों और धनिकोंका ही राज्य है। डाइरेक्टर सदस्योंकी संख्या सबसे कम हो गयी

या तो मालिक है अथवा उनके प्रबन्धमें काफी हाथ रखती है—

(१) ईस्ट मिडलेण्ड मोटर सरविस (२) ईस्टर्न काउण्टीज आम्नी बस कम्पनी (३) लिङ्कनशायर रोड कार कम्पनी (४) नार्थ वेस्टर्न रोड कार कम्पनी (५) ट्रेन्टमोटर ट्रेक्शन कम्पनी (६) पेस्ट यार्कशायर रोड कार कम्पनी (७) यार्कशायर ट्रेक्शन कम्पनी	एल० एम० एस० रेलवे और टिलिङ्ग और ब्रिटिश आटो मोबिल ट्रेक्शन कं० की शराकतमें
(८) हेबल मोटर सरविसेज (९) यार्कशायर बुलन डिस्ट्रिक्ट ट्रान्सपोर्ट	एल० एम० एस० रेलवे और ब्रिटिश इलेक्ट्रिक ट्रेक्शन कं० के साझेमें
(१०) ईस्ट यार्कशायर मोटर सरविसेज। (११) यूनाइटेड आटो मोबिल सरविसेज।	टिलिङ्ग और ब्रिटिश आटो मोबिल ट्रेक्शन कम्पनीके साझेमें
(१२) नार्दन जनरल ट्रान्स्पोर्ट कम्पनी।	ब्रिटिश इलेक्ट्रिक ट्रेक्शनके साझेमें
(१३) ईस्टर्न नेशनल आटो मोबिल कम्पनी।	एल० एम० एस० रेलवे और नेशनल आम्नी बस एण्ड ट्रान्स्पोर्ट कम्पनी के साथ।
(१४) कार्टर पेटर्सन एण्ड कम्पनी (१५) हेंजवार फेंकारटेज कम्पनी	दूसरी प्रधान रेलवेजके साझेमें।
(१६) विलसन्स और नार्थ ईस्टर्न रेलवे शिपिङ्ग कम्पनी।	एलरमेन विलसन लाइनके साझेमें।

२. हम्बर ग्रेविङ्ग डाक एण्ड इञ्जीनियरिङ्ग कम्पनी।

३. केबल एण्ड वायरलेस (होल्डिङ्ग) पूंजी २,३६,४९,-६९४ पौण्ड।
   (१) मारकोनीज वायरलेस ट्रेलिग्राफ (इसके डाइरेक्टर भी हैं।)
   (२) ईस्टर्न एक्स्टेन्शन, आस्ट्रेलिया एण्ड चायना टेलिग्राफ।
   (३) ईस्टर्न टेलिग्राफ।
   (४) वेस्टर्न टेलिग्राफ
   (५) केबल्स इन्वेस्टमेण्ट ट्रस्ट।
   (६) इलेक्ट्रा हाउस

४. केबल एण्ड वायरलेस कम्पनी, पूंजी ३,००,००,००० पौण्डकी।
   (१) वेस्ट इण्डिया एण्ड पनामा टेलीग्राफ कम्पनी
   (२) डाइरेक्ट वेस्ट इण्डिया केबल कम्पनी।

५. गालाहर टुबेको। पूंजी २२,९३,६०० पौण्ड।
   (१) गालाहर (डब्लिन)
   (२) इण्टरनेशनल टुबेको कम्पनी।
   (३) पीटर जेक्सन टुबेको मैन्युफेक्चरर्स।
   (४) नेशनल टुबेको कम्पनी।
   (५) ई० राबिन्सन एण्ड सन्स।

६. डण्डी पर्थ एण्ड लन्दन शिपिङ्ग कम्पनी। पूंजी २,८०,००० पौण्ड।

७. एबर्डीन न्यूकासल एण्ड हल स्टीम कम्पनी (यह नं ६ की पेटा कम्पनी है।)

८. चार्ल्स बेरी एण्ड सन्स।

९. मेटल केडर्स।

१०. क्राउन फ्लावर मिल्स पूंजी २,२०,००० पौण्ड।

११. क्रेगी यार्ड वेनार हाउस कम्पनी।

१२. युनाइटेड बाल्टिक कारपोरेशन पूंजी २० लाख पौण्ड

१३. मेलेडोर एस्टेट (नं० १४ की पेटा कम्पनी है।)

१४. लवरिङ्ग चायना क्लेज, पूंजी ४,२५,००० पौण्ड (नं० १३ की मालिक है।)

१५. मरकेण्टाइल बैङ्क आफ इण्डिया, पूंजी १८,००,००० पौ०।

कही जा सकती है, जबसे कि पार्लमेण्टमें यह नियम पास हो गया था कि कैबिनेटका कोई सदस्य जब तक वह कैबिनेटमें रहे, किसी कम्पनीका डाइरेक्टर नहीं हो सकेगा। जबसे यह नियम पास किया गया था, तबसे वह सचाईसे पालन भी किया जा रहा है; परन्तु इससे मिनिस्टरोंका देशके बड़े-बड़े व्यापारों, व्यवसायों आदिसे किसी तरह भी सम्पूर्ण सम्बन्ध समाप्त नहीं हो जाता। इसके सिवाय यह नियम सिर्फ पब्लिक लिमिटेड कम्पनीकी डाइरेक्टरीके लिए ही है। प्राइवेट लिमिटेड कम्पनीके डाइरेक्टर तो मिनिस्टर लोग बखूबी रह सकते हैं और रहते भी हैं। इस नियमसे किसी कम्पनीमें उनके लिए हिस्सोंको रखनेकी कोई मनाई नहीं की गयी है, और न यही कि वे मिनिस्टरी छोड़नेपर भी डाइरेक्टरी फिरसे स्वीकार न करें। सच बात तो यह है कि ऐसे मिनिस्टर लोग मिनिस्टरीका इस्तीफा देते ही फिरसे अपनी पुरानी कम्पनियोंके वैसे ही डाइरेक्टर बन जाते हैं।

पार्लमेण्टके धनाढ्य सदस्य कम्पनियोंके बहुत बड़े शेयर-होल्डर भी होते हैं, जैसे स्वर्गीय मि० नेवाइल चेम्बरलेन इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीजकी पेटा कम्पनीके, जो अस्त्र-शस्त्र बनाती है, सन् १९२९ से २३,२५० हिस्सोंके मालिक थे। ऐसे मालिक और भी कितने ही सदस्य हैं, और इसलिए उनका भी बड़े-बड़े व्यवसायों, उद्योगों आदिसे उतना ही, यदि अधिक नहीं माना जाये तो, स्वार्थ है, जितना कि डाइरेक्टर सदस्योंका है।

ये १८१ डाइरेक्टर सदस्य कोई ७७५ कम्पनियोंमें डाइरेक्टर हैं। पाठकोंकी दिलचस्पीके लिए यहां वह तालिका ही× उक्त डिरेक्टरीसे उद्धृत कर देते हैं, जिसमें लिखा है कितने

× हाउस आफ कामन्समें सरकार-पक्षके सदस्योंमें कम्पनियोंके डाइरेक्टर।

१६. सेण्ट्रल आरजण्टाइन रेलवे पूंजी ४,३६,९४,४६८ पौण्ड।
१७. फिनिक्स अस्यूरेन्स।
(१) लन्दन गारण्टी एण्ड एक्सीडेण्ट कम्पनी।
(२) नारदर्न मेरेटाइम इन्शुरेंस कम्पनी।
(३) टैरिफ री इन्शुरेंस।
(४) यूनियन मेराइन एण्ड जनरल इन्शुरेंस कम्पनी।
(५) एकेडिया फायर इन्शुरेंस कं० (नोवा-स्कोटिया)
(६) कोलम्बिया इन्शुरेन्स कम्पनी (न्यूजरसी)
(७) इम्पीरियर अश्युरेन्स कम्पनी (न्यूयार्क)
(८) नार्थ एम्पायर फायर इन्शुरेंस कम्पनी (आण्टेरियो)
(९) फिनिक्स इण्डेम्निटी कम्पनी (न्यूयार्क)
(१०) सदर्न यूनियन इन्शुरेन्स कम्पनी आफ आस्ट्रेलिया।
(११) यूनाइटेड फायर मेन्स इन्शुरेन्स कम्पनी (पेन्सिलवेनिया)
१८. साण्टा रोजा मिलिङ्ग कम्पनी पूंजी ५,००,००० पौण्ड।
(१) सीआ मोलीनए सां क्रिस्टोबल।
(२) सोसाइडाड मोलीनए डी ओसोरनो (चिली)

नाम व्यवसाय	सदस्योंकी संख्या	डाइरेक्टरीकी संख्या
बैङ्क	१६	१८
बीमा कम्पनी	४३	४९
फाइनेन्स कम्पनी और इन्वेस्टमेण्ट ट्रस्ट	२७	४२
रेलवे और एयरवे	१८	३१
जहाज कम्पनियां	९	१९
रोड ट्रान्सपोर्ट और नहर कम्पनियां	५	१०
शिपिङ्ग और फारवर्डिङ्ग कम्पनियां	११	२०
केबल्स टेलिग्राफ और वायरलेस कम्पनी	१	१५
आइरन, स्टील, कोल और इञ्जिनियरिङ्ग कम्पनियां, जिनमें अस्त्र-शस्त्र व हवाई जहाजकी कम्पनी भी शामिल है।	५९	१०९
ब्रयूइङ्ग यानी शराब बनानेवाली कम्पनी	११	२०
फुडस्टाफ (खाद्य पदार्थ बनानेवाली)	६	१३
टुबेको कम्पनियां	२	२
पेटेण्ट दवाइयां	३	२३
कपड़ेकी मिलें और तैयार कपड़े बनानेवाली	१९	३७
छापेखाने और कागजकी मिलें	८	१७
अन्य तरहके माल तैयार करनेवाली	२६	४०
होटल और रेस्टोरां कम्पनी	१०	१९
खुदरा स्टोर	१२	१८
समाचार-पत्र और प्रकाशक कम्पनी	१७	२४
सिनेमा-थियेटर और कुत्तोंकी घुड़दौड़ आदिकी	१३	१५

सदस्य कौन-कौन-से व्यवसायोंके डाइरेक्टर हैं। डाइरेक्टर और शेयर होल्डर सदस्योंके अलावा भी कितने ही ऐसे सदस्य और भी हैं, जो कि बहैसियत उद्योगी परिवारमें जन्म लेने अथवा उससे किसी तरह सम्बन्धित हो जानेके कारण उद्योगों और व्यवसायोंमें उतनी ही दिलचस्पी लेनेवाले हैं, जितनी कि डाइरेक्टर और हिस्सेदार सदस्य।

देशकी आर्थिक अवस्थाके स्तम्भ बैङ्क, इन्श्यरेन्स और जहाजी कम्पनियां हैं। इंगलैण्डका सारा बैङ्किङ्ग व्यवसाय सिर्फ पांच बैङ्कोंके तत्त्वावधानमें है, यह हम सब जानते हैं। और ये इतने ताकतवर माने जाते हैं कि एक बार बैङ्कों और सरकारके बीचमें मतभेद उपस्थित होनेपर लन्दनके सुप्रसिद्ध पत्र 'फिनेन्शियल टाइम्स' ने किसी मिनिस्टरसे प्रश्न करनेके रूपमें यह जाहिर किया था कि "क्या यह मिनिस्टर या उसके साथी यह महसूस करते हैं कि पांचों बड़े बैङ्कोंके शिरोमणि आधे दर्जन मनुष्य सरकारकी सारी आर्थिक इमारतको सिर्फ ट्रेजरी बिलोंको फिरसे स्वीकार न कर अस्त-व्यस्त कर सकते हैं?"

दरहकीकत यह बात सच भी है, क्योंकि हालांकि इन पांच बड़े बैङ्कोंकी पूंजी सिर्फ २०,५०,००,००० पौण्ड ही है, परन्तु उनमें लोगोंकी चालू, स्थायी आदि अनेक तरहकी जमा कोई २,०१,००,००,००० पौण्डसे अधिक है। बैङ्कोंकी इस सत्तासे देशकी आर्थिक इमारतको सुरक्षित रखनेकी गरजसे फ्रान्सने सन् १९२८ ई० में कानून पास कर फ्रान्सीसी पार्लमेण्टके सदस्योंको बैङ्कों और नाना कम्पनियोंकी डाइरेक्टरी नये सिरेसे स्वीकार करनेकी मनाई कर दी थी। यह कानून ३ के विरुद्ध ५७५ वोटोंसे पास हुआ था। इंगलैण्डमें ऐसा कानून आज भी नहीं है। पार्लमेण्टके सदस्य बैङ्कोंके डाइरेक्टर और बैङ्कोंके डाइरेक्टर पार्लमेण्डके सदस्य बराबर होते रहते हैं।

यही बात बीमा कम्पनियोंकी है। इन कम्पनियोंके पास भी उधार देनेके लिए अपार सम्पत्ति है। सरकारकी ओरसे सन् १९३२ ई० में यह कहा गया था कि सरकार इन कम्पनियोंकी कोई ३५,००,००,००० पौण्डकी तब कर्जदार थी। जिस तरह सन् १९३१ के बादसे नेशनल सरकारने अब तक कोई १५ बैङ्क-डाइरेक्टरोंको लार्ड-पदवीसे विभूषित किया है, उसी तरहसे लगभग ३५ बीमा कम्पनियोंके डाइरेक्टरोंको भी इस पदवीसे विभूषित किया गया है। एक बात यह भी ध्यानमें रखनेकी है कि बैङ्कों और बीमा कम्पनियोंके डाइरेक्टर अक्सर एक ही होते हैं। यही क्यों, पांचों बड़े बैङ्कोंके और बीमा कम्पनियोंके डाइरेक्टरोंमेंसे ही अधिकांश देशके बड़े-बड़े उद्योग-धन्धोंके भी सर्वेसर्वा हैं। यह बात साथमें दी हुई तालिकासे स्पष्ट होगी। ÷

बैङ्क और बीमा कम्पनियोंका देशके महत्त्वपूर्ण उद्योगोंसे निकट सम्बन्ध है, यह ऊपर बताया जा चुका है। इन्हीं उद्योग-धन्धोंमें देशके अधिकांश मजूर लोग काम करते हैं। ये ही मनुष्य देशकी उद्योग-नीति निर्धारित करते हैं और उस नीतिको फेडरेशन आफ ब्रिटिश इण्डस्ट्रीजकी संरक्षकतामें ये काममें लाते हैं। इसके सारे ही उद्योग-धन्धेवाले सदस्य हैं। यह फेडरेशन हर तरहके सामाजिक और आर्थिक

बिजलीके कारखाने	७	४५
गैस और पानीकी	१०	१२
हाउसिङ्ग और बिल्डिङ्ग मटीरियलकी	१४	२९
(रीअल) जायदादकी कम्पनियां	२०	५२
तेलकी कम्पनियां	७	९
सोनेकी खानोंकी	१३	२५
दूसरी खानोंकी	१२	१७
रबरकी कम्पनियां	३	१९
चाय और काफीके बागान वगैरह	७	९
दीगर मुत्फर्रिक	१९	२१
	४२८	७७९.

÷ नाम सदस्यका	निर्वाचन क्षेत्र	किस बैङ्क और बीमा कम्पनीमें डाइरेक्टर हैं	और दूसरे उद्योग
सर एलन एण्डरसन	लन्दन सिटीसे	बैङ्क आफ इंगलैंण्ड	जहाज कम्पनी एल. एम० एस० रेल कं०
आन० जे० जे० एस्टर	डोवर	हम्ब्रोज बैङ्क और फिनिक्स बीमा कम्पनी	जी० डब्ल्यू० रेलवे व टाइम्स पत्र।
जार्ज बालफोर	हेम्पस्टेड	कामर्शल बैङ्क आफ स्काटलैण्ड	२४ बिजली कम्पनी

विधानोंमें बड़ी दिलचस्पी लेती है और अपने सदस्योंके अधिकारोंकी सयत्न रक्षा करती है। सन् १९१६ ई० से ही, जब कि यह कायम हुई थी, आज तक बराबर प्रत्यक्ष करोंकी वृद्धिका विरोध करती रही है। यही नहीं, सरकारने भी उस विरोधको मानकर अपनी कर-नीतिको तदनुसार परिवर्तित कर दिया है। फेडरेशन आफ ब्रिटिश इण्डस्ट्रीज-की तरह और भी कितनी ही व्यापारी एवं उद्योगी संस्थायें हैं, जो अपने सदस्योंके सामाजिक व आर्थिकस्वत्वोंकी भरसक रक्षा करती हैं। इन सबकी कार्यकारिणी समितियोंमें या उनसे सम्बद्ध समितियोंके सदस्योंमें कोई न कोई सरकारी दलका पार्लमेण्टका सदस्य होता ही है। + इन सब बातोंसे यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि सरकार-

सर सी० सी० बेरी	साउदम्पटन	मरकण्टाइल बैङ्क आफ इण्डिया, फिनिक्स बीमा	एल० एन० ई० रेलवे, केबल व वायरलेस तार कं० शिपिङ्ग
लार्ड बर्घले	पीटर ब्रो०	नेशनल प्राविंशियल बैङ्क (पांच बड़े बैङ्कोंमेंसे एक) लन्दन और लेंकेशायर बीमा कम्पनी (लन्दन बोर्ड)	एल० एन० ई० रेलवे।
लेफ्टेनेण्ट कर्नल आर० एस० क्लार्क	ई० ग्रिनस्टेड	नार्थ आफ इंगलैण्ड प्रोटेक्टिङ्ग और इण्डोमेन टी एसोसियेशन	स्टीफन्सन, क्लार्क एण्ड, एसोसियेटेड कम्पनियां
आन० आर० डी० डेनमेन	लीड्स (मध्य)	मेराइन एण्ड जनरल म्यूच्युअल लाइफ अस्यूरेन्स कं०	रबर कम्पनी
डब्लू० एल० एवरार्ड	म्येलटन	अलायन्स अस्यूरेन्स	शराब कम्पनी
मेजर सर राल्युग्लिन	एबिङ्गडन	ग्रिफिथ टेट (इन्सुरेन्स) लिमिटेड	एल० एम० एस० रेलवे, ब्रिटिश मैच कारपोरेशन
सर पी० हैनान	मोजले	आडियल बेनीफिट सोसाइटी	बी० एस० ए० कम्पनी, ईवनिङ्ग स्टेण्डर्ड पत्र
ले० कर्नल आन० जी० के० एम० मेसन	क्रायडन (नार्थ)	मिडलेण्ड बैङ्क (पांच बड़ोंमेंसे एक) गार्जियन अस्यूरेंस	ब्रूइङ्ग कम्पनी
सर क्यू० ओ, नील	एण्ट्रिप	कलोनिअल म्युच्यूअल लाइफ इन्सुरेन्स	सोनेकी खानोंकी कम्पनी
ओरबर्ट पीक	लीड्स (नार्थ)	रायल एक्सचेञ्ज अश्यूरेन्स ।(स्थानीय बोर्ड)	कोयला कम्पनी
ई० ए० रेडफर्ड	रूशोम	ईगल स्टार इन्सुरेन्स (स्थानीय बोर्ड)	सीमेण्ट, टेक्सटाइल और इञ्जीनियरिङ्ग
सर ई० रेम्सडन	ब्रेडफर्ड (नार्थ)	वही	बी० एस० ए० कं०
ब्रिगेडियर जनरल स्वीअर्स	कारलाइल	कामर्शल यूनियन अश्यूरेन्स (स्थानीय बोर्ड)	सीमेण्ट, ब्रिटिश बाटाशू कम्पनी

\+ व्यापारी व औद्योगिक समितियां

फेडरेशन आफ ब्रिटिश इण्डस्ट्रीजके वाइस प्रेसीडेण्ट हैं सर पैट्रिक हैनान (अनुदार दलके मोजले क्षेत्रसे पार्लमेण्ट सदस्य)

नेशनल यूनियन आफ मैन्युफेक्चरर्स	प्रेसीडेण्टः—सर पेट्रिक हैनान
नेशनल चेम्बर आफ ट्रेड	वाइस प्रेसीडेण्ट सर जार्ज मिचेसन, सेण्ट पैन क्रास (लन्दन) की ओरसे अनुदार दलके सदस्य।

पक्षके लोगोंमें इस समय अधिकांश जायदादवाले और मजदूरोंका उपयोग करनेवाले ही हैं। व्यक्ति-विशेष भले ही सार्वजनिक कामोंमें अपने-आपको तटस्थ रख लें, परन्तु अधिकांशके लिए तो इस तटस्थताको रखना असम्भव ही है। अपने व्यापार अथवा उद्योगके लाभमें हस्तक्षेप हो, यही नहीं, परन्तु वे यह भी बरदाश्त नहीं कर सकते कि सरकार उनकी लाभवृद्धिमें सहायता न देकर तटस्थ ही रह जाये। जब अनुदार दलके पार्लमेण्टके सदस्योंमें इतनी काफी तादादमें उद्योग और व्यवसाय-प्रवृत्त सदस्य हैं, तो सरकारके दृष्टिकोण और कर्तव्य-नीतिपर उसका प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। ऐसा प्रभाव पड़ता ही है, इसका एक ज्वलन्त उदाहरण सन् १९२९ में पास हुआ 'डी रेटिंग' कानून है।

इस कानूनके अनुसार औद्योगिक कारखानदारोंको स्थानीय करोंका तीन चतुर्थांश माफ कर दिया गया था। इस रिआयतके फलस्वरूप १९३०-३७ के सात वर्षोंमें कारखानदारोंको १७,००,००,००० पौण्डकी बचत हो गयी। यह कानून श्री नेवाइल चेम्बरलेनकी मेहनतका फल था। 'अपने दावेमें आप ही न्यायाधीश' की नीतिका यह एक और उदाहरण था। क्योंकि इसे पास करनेवाले सदस्योंमेंसे अधिकांश ऐसे उद्योगोंके हिस्सेदार थे। इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीजके चेयरमैन लार्ड म्येलच्येटने इस कम्पनीकी १९२९ की सालाना जनरल मीटिङ्गमें स्पष्ट स्वीकार किया था कि इस कानूनसे उनकी कम्पनीको सालाना २ लाख पौण्डकी बचत हो गयी।

स्थानिक स्वराज्य संस्थाओंको इस कानूनसे हुई लगभग २ करोड़ पौण्डकी घटीकी पूर्ति अधिकांशतः जनतापर परोक्ष कर लगाकर सरकारने की, जिसका भार लाभ मिलनेवाले मालदारोंकी अपेक्षा गरीब जनतापर अधिक पड़ता है। क्योंकि १९२९-३० में सरकारको इनकम टैक्स और सर टैक्सकी आय २९,४०,००,००० पौण्ड थी, वह सन् १९३५-३६

एसोसियेशन आफ ब्रिटिश चेम्बर्स आफ कामर्स	भूतपूर्व प्रेसीडेण्टः—सर एलन एण्डर्सन (सिटी आफ लन्दनकी ओरसे अनुदार दलके सदस्य) डेप्युटी प्रेसीडेण्ट—सर चार्ल्स गिबसन (पुडसी और ओटले, पार्कशायरकी ओरसे अनुदार दलके सदस्य) भूतपूर्व मानद वाइस प्रेसीडेण्ट लेफ्टेनेण्ट कर्नल दी राइट आनरेबल जान कालबिल (कमेडलोशियन नार्थकी ओरसे अनुदार सदस्य और स्काटलैण्डके केबिनेटमें सचिव) मानद मंत्री और एक्जेक्यूटिव कौन्सिलके सदस्य श्री० जे० एस० डांड (ओल्डम क्षेत्रसे नेशनल लिबरल दलके सदस्य)
फेडरेशन आफ चेम्बर्स आफ कामर्स आफ दी ब्रिटिश एम्पायर	एक्जेक्यूटिव काउन्सिलके सदस्य सर चार्ल्स गिबसन १९३० की बाइलेटरल कान्फरेन्सके चेयरमैन—सर पैट्रिक हैनान
इण्टर नेशनल चैम्बर आफ कामर्स	मानद प्रेसीडेण्ट—सर एलन एण्डर्सन, ब्रिटिश कमेटीके सदस्य—सर चार्ल्स गिबसन
ब्रिटिश ज्यूनियर चेम्बर्स आफ कामर्स	सेण्ट्रल कमेटीके भू० पूर्व सभापति श्री० जे० एस० डाड
सेण्ट्रल चेम्बर आफ एग्रीकलचर (कृषि)	भूतपूर्व चेयरमैन-कर्लवदी राइटआनरेबुल सर जार्ज कोरथोप बार्ट (राइ ससेक्स क्षेत्रसे अनुदार दलके सदस्य, भूतपूर्व प्रेसीडेण्ट—सर पैट्रिक हैनान भूतपूर्व चेयरमैन लेफ्टेनेण्ट कर्नल ए० पी० हीनेज (लौथबिकशायरके अनुदार सदस्य)
सेण्ट्रल लैण्ड ओनर्स एसोसियेशन	भूतपूर्व प्रेसीडेण्ट—सर जार्ज कोरथोप
प्रापर्टी ओनर्स प्रोटेक्शन एसोसियेशन	सन् १९३१ से प्रेसीडेण्ट सर राबर्ट गोवर (गिलिङ्घम क्षेत्रसे अनुदार दलके सदस्य)

में घटकर २८,९०,००,००० पौण्ड ही रह गयी। पक्षान्तरमें उसी समयमें आयात-करसे आय १२,००,००,००० पौण्डसे बढ़कर १९,६०,००,००० पौण्ड हो गयी थी। यह नीति सदा सरकारकी रही है।

अनुदार दलकी सरकार सदैव ही शस्त्रीकरणकी हामी रही है। परन्तु शस्त्रीकरण नीतिका लाभ शस्त्र बनानेवाले कारखानोंको होता है, जिनके मालिक अधिकतर सरकारके पोषक पार्लमेण्टके सदस्य ही होते हैं। सरकारकी नीतिका लाभ उसके पोषक सदस्योंका ही लाभ न हो, इसलिए तीसरे जार्जके राजत्वकालमें एक ऐसा कानून बना दिया गया था, जिसमें कि सरकारके ठेकेदारका पार्लमेण्टका सदस्य होना अपराध करार दे दिया गया। कानून अब तक भी है। परन्तु अब तो लिमिटेड कम्पनियोंका जमाना है, जो कानूनी रूहसे अपना निजी व्यक्तित्व रखती हैं। और वे पार्लमेण्टकी सदस्य नहीं होती हैं। उनके डाइरेक्टर अथवा शेयर-होल्डरोंका सदस्य होना उन्हींका सदस्य होना कानूनी तौरपर ग्राह्य नहीं है। और इसीलिए ऐसे डाइरेक्टर रौर शेयर-होल्डरोंका सदस्य होना उक्त कानूनके अनुसार अपराध नहीं कहा जा सकता।

स्वर्गीय श्री फिलिप स्नोडेन (मजदूर दलके सदस्य) ने सन् १९१४ में पार्लमेण्टमें तकरीर करते हुए कहा था कि "विपक्षी दलकी ओर यदि पत्थर फेंका जाये, तो शायद ही उसकी चोट किसी ऐसे सदस्यके लगेगी, जो कि शस्त्र-अस्त्रके कारखानोंमेंसे किसीका शेयर-होल्डर न हो।" आज २६ वर्षके बाद भी उस स्थितिमें किसी तरहका अन्तर नहीं पड़ा है। सर जान एण्डरसन, श्री एमेरी, सर यूजेन रेम्सडन, सर पेट्रिक हैनान आदि अनेक सदस्य सीधे शस्त्र-अस्त्र बनानेवाले कारखानोंके या तो शेयर-होल्डर हैं या ऐसे कारखानोंके, जो शस्त्र-अस्त्र बनानेवाले कारखानोंको इस तरहका माल सेवा करते हैं। ऐसी दशामें निरस्त्रीकरण, जो अमन और शान्तिके लिए आवश्यक है, कैसे सफल हो सकता है।

पार्लमेण्टके सदस्योंमें अधिकांश ऐसे ही सदस्य हैं, जिनका साम्राज्यमें कहीं न कहीं बहुत बड़ा स्वार्थ है, जिनका विवेचन कर इस लेखका कलेवर बढ़ाना, अनुचित होगा। इसी तरह इसके सदस्योंमें अनेक उमराव या उमरावी खानदानके हैं, जिनसे जनसाधारणके स्वत्वोंकी रक्षाकी आशा नहीं की जा सकती। क्योंकि दोनोंके परस्पर विरोधी स्वार्थ हैं। यदि सरकारके पृष्ट-पोषक सदस्योंकी सम्बन्ध-परम्पराकी एक तालिका तैयार की जाये, तो स्पष्ट विदित होगा कि लगभग ५९ सदस्य ऐसे हैं, जो किसी न किसी सम्बन्धसे उमरावोंसे सम्बद्ध हैं। कोई लड़का है, तो कोई भतीजा। कोई जमाई है, तो कोई साला, आदि। यदि इन सम्बन्धोंकी दो-तीन पुश्तों तक तपास की जाये, तो शायद इस तरहके सम्बद्ध हाउस आफ कामन्सके सदस्योंकी संख्या १०० से भी अधिक हो जाये। पार्लमेण्टमें ही नहीं, परन्तु केबिनेटमें भी अक्सर वे ही सदस्य चुने जाते हैं, जो परस्पर एक न एक सम्बन्धसे सम्बद्ध हैं। इस तरह यह एक पारिवारिक लोगोंका समूह-मात्र हो जाता है, जो संसारकी दृष्टिमें प्रजातन्त्रके नामसे अपने आपका परिचय कराता है। सत्य ही यह प्रजातन्त्र नहीं कहला सकता।

प्रजातन्त्रकी सबसे अधिक रक्षा सुसङ्गठित और धनी लोगोंसे की जाये, यह मनीषियोंने चेता-चेताकर कहा है। परन्तु आज इंगलैण्डमें ही नहीं, वरन् अमेरिका और जापान आदि उन सारे ही देशोंमें, जो प्रजातन्त्री होनेका दम भरते हैं, सुसङ्गठित धनीवर्गके हाथों इसका गला घोंटा जा रहा है। यही प्रजातन्त्रका पैसेके विरुद्ध बड़ा दावा है। देखना यह है कि अन्तमें यह दावा खारिज होता है या प्रजातन्त्रको डिग्री मिलती है।



पैसाहीन भारतीय महिला

श्री अलखमुरारी हजेला, एम० ए०

गांधीजीके शब्दोंमें 'अनन्त प्रेमकी अवतार' को बन्धनोंमें बांध आज उसकी गतिको हम रोक रहे हैं। पहले उसे हमने प्यार किया था। आज गृहलक्ष्मी निरी भिखारिन बननेको आयी है, हंस-हंसकर हम उसका चीर फटते देख रहे हैं।

अपनी प्रेमिकाके दर्दसे मैं पीड़ित नहीं हो उठता; नहीं तो समाजपर दो पीड़ाओंका भार हो जायगा। 'प्रेम और सत्य धर्म है,' तो ऐ मानव! प्रेमिकाकी पीड़ा मिटानेको सत्यकी सेवा ग्रहण कर! जिन नारियोंका पैसा छिन गया है, उन्हें वह फिरसे ला दे। और बन्धनोंके सङ्ग आर्थिक बन्धन खोल उन्हें स्वतन्त्रताका आभूषण पहना दे। तब उनकी उस मुद्रामें तेरा नितान्त प्रेम पला करेगा!

विदुषी लीला सूदके उस प्रश्नका उत्तर मैं दूंगा, जिसे नवम्बरके 'विश्वमित्र' द्वारा पुरुषके आगे रखकर उन्होंने पुरुष समाजका बहुत उपकार किया है। उसे बता दिया कि वह विमार्ग होता न चला जाय। आजका पुरुष लिलियन रसेल (अब तक इस फिल्मके देखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ) की तरह स्त्रीको मनोरञ्जनकी छाया-रूप नहीं मानेगा। वह उसे मनोरञ्जनकी वस्तु नहीं मानता। नहीं, उसे वस्तु ही नहीं जानता। वह तो उसकी सङ्गिनी है। जितना वह है, उतनी ही वह है। यदि आधा-आधा मिलकर एक होता है, तो वे दोनों ही आधे-आधे हैं। इस नातेपर वह समाज चलायेगा। किन्तु आजके समाजमें कलके मनुष्य अधिक होते हैं। आजके मनुष्यका बहुमत कल होगा, उसीकी सदैव वह तैयारी किया करता है।

जो स्त्रीकी स्वतन्त्रता ही नहीं मानते, हम उन्हें यहां उसका महत्त्व बताने नहीं बैठे हैं। किन्तु उन्हें, जो अर्ध-विश्वाससे उसका साथ देते हैं, जो स्त्रीकी स्वतन्त्रताकी हिमायतका दम इसीलिए भरते हैं कि शायद यह 'फेशनमें है,' जो पुरुषके सङ्ग कभी बाहर टहल आनेको ही स्त्रीकी पूरी स्वतन्त्रता मान लेते हैं, यह समझा देना है कि इस तरह वे बार-बार अपनेको धोखा दे रहे हैं। क्या वे परतन्त्र नारीको देवी कह सकेंगे? स्त्री परिवारकी शिक्षक होती है। क्या उसीके सहारे वे स्वतन्त्र समाज उत्पन्न कर सकेंगे? वे समझते हैं, जब तक मुंह खोलकर स्त्री बाहर निकल लेती है, यही तो स्वतन्त्रता है। किन्तु क्या वे अनुभव नहीं करते, घरके बाहर वह ढकी-ढकी-सी चलती है? आजका समाज निरे आर्थिक हितोंकी सामग्री है। आर्थिक पैमानेपर वह बसा है। धर्म, नैतिक विज्ञान इत्यादिका भी अंश है; किन्तु उसका चलन तो आर्थिक साधनोंके ही आधारपर है। जिस स्त्रीकी सेवाओंका आर्थिक मूल्य शून्य-समान हो, समाजमें उसका क्या आदर होगा? और उसके पास कौन-से साधन हैं, जिनसे वह उसका मूल्य बढ़ा ले? और फिर ऐसे समाजकी सभ्यता ही क्या होगी; क्योंकि नारीकी स्थिति तो, जिसे पुरुषकी मां, रचयिता और खामोश नेत्री (His mother, maker and Silent Leader—M. Gandhi) होनेका गौरव प्राप्त है, समाजकी सभ्यताका पैमाना है!

स्वतन्त्र स्त्री पूर्णतः स्वाधीन होगी, ऐसा विचार पुरुषके मनमें क्यों नहीं ठहरता? स्वतन्त्रताके मानी हैं कि उसे अपनी इच्छाओंके अनुसार रहनेका अवसर प्राप्त हो, किन्हीं मजबूरियोंसे वह बंधी न हो। और जब वह समाजका आधा अङ्ग है, तो जिन सामाजिक कर्तव्योंको वह पालन करे, उनके निर्णय करनेमें नियमित रूपसे उसका भी आधा अधिकार हो। मजबूरी जानकर वह इन कर्तव्योंका पालन नहीं करेगी। स्वाधीनताके बदले, सामाजिक अधिकारोंके बदले समाजके पुरस्कार-रूप वह इन कर्तव्योंको सर आंखोंपर ले लेगी।

निश्चय ही उसे पूर्णतः उन्नति करनेकी स्वाधीनता मिलनी चाहिए। परन्तु मनुष्यके सारे हित आज बाजारमें तौले जाते हैं। बिना पैसेके वह कोई भी हित खरीद नहीं सकता (मेरा आशय बेजा साधनोंसे नहीं है), अतः सांसारिक उन्नतिके लिए पैसेकी टेक आवश्यक है। मैं पूंजीपति होनेका समर्थन नहीं करता। किन्तु केवल यह कि पैसा कमाने और खर्च करने (इनके रूप

सारे समाजकी रायसे नियमित किये जा सकते हैं) का स्त्रीका भी मौलिक अधिकार होना चाहिए। सारी स्वाधीनताका मूल आधार आज आर्थिक स्वतन्त्रता है। जिसे पैसा कमाने या खर्च करने (उत्पत्ति और उपभोग जब एक-दूसरेके बिना नहीं चलते, तो कमाना और खर्च करना भी सङ्ग ही सङ्ग चलेंगे) का अधिकार नहीं है, वह समाजके किस कार्यमें भाग ले सकेगा? शीघ्र ही उसकी कार्यशक्तिका अन्त हो जायगा। इन अधिकारोंसे वञ्चित स्त्री-समाज भी पंगु होता चला जाता है। उन्नतिकी ओर वह नहीं बढ़ सकता। जब तक नारी भोजन और वस्त्रके लिए पुरुषोंकी मुहताज है, कदापि वह पुरुषोंके समान अधिकार नहीं पा सकती। उसका जीवन इस तरह दूसरोंकी दयापर ही अवलम्बित है। और दयनीय जीव अभागा है, वह सर्वदा परतन्त्र है। मानव-समाजमें अपना विशिष्ट स्थान बनानेके लिए स्त्रीको साधन जुटाने होंगे। आज खेती-वाड़ी, व्यापार, उद्योग-धन्धे सभी पुरुषोंके हाथमें हैं। उनके सहारे वे समाजकी सारी सेवाओंमें केवल अपनी सेवाओंको ही मूल्य देते हैं। घरपर स्त्री चाहे जितनी सेवायें करे, वाल-संगोपन और बाल-शिक्षाका पूर्ण महत्त्व चाहे उसीका हो, चाहे वह जीवन-भर पति और परिवार और इस तरह समाजकी सेवामें विलीन हो गयी हो; उसकी सेवाओंका आर्थिक मूल्य नहींके बराबर दिया जाता है। कुछ पतियोंके मुखसे लेखकने सुना है (दुःखनीय सत्यको छिपा जाना भी पाप होगा), स्त्रीके भरण-पोषणकी भावना रखनेके लिए केवल मोटे अनाज, मोटी धोतीका बन्दोबस्त कर देना चाहिए। इन सारे विचारोंके विरुद्ध तेज आवाज उठाकर हमें इन्हें दफ़ना देना होगा। पुरुषोंकी सेवाओंसे स्त्रियोंकी सेवायें हल्की नहीं हैं, इसका गुरुत्व समाजके हृदयपर अङ्कित करना होगा। प्रत्येक सेवाका एक आर्थिक मूल्य है, वह बिना मूल्यकी नहीं हो सकती—चाहे अमूल्य हो। इस विचारको जब सारे बालक-बालिकाओंमें एक-सा कण्ठाग्र करा दें, तभी तो हमारे यहांकी लड़कियां भी लड़कोंकी तरह अपना भविष्य सोच सकेंगी। वे जान सकेंगी कि उनका भविष्य भी उन्नतिसे विहीन नहीं है।

आज बहुत-से पुरुष शङ्कासे पूछ रहे हैं, जहां स्त्रीको सामाजिक और राजनीतिक अधिकार मिले हैं, वहां उसने उनका कितना उपयोग किया है। उनके द्वारा वह कितनी उन्नतिकी ओर बढ़ी है? उसने उन अधिकारोंका सम्भव उपयोग नहीं किया, यह माननेको मैं तैयार नहीं हूं, क्योंकि इतिहास इसका समर्थन नहीं करता। जब-जब उसे अवसर मिले हैं, उसने योग्यतासे उच्च स्थान ग्रहण किये हैं। निरे उदाहरणोंकी गाथा सुनानेका यहां अवकाश नहीं है। गये-बीते स्वदेशका ही एक उदाहरण ले लीजिये। श्रीमती विजय-लक्ष्मी पण्डितकी सन् १९३१ की वह भविष्यवाणी आज भी लोगोंको याद है कि सामाजिक सुविधायें मिलनेपर 'भारतीय महिला एक बहुत ऊंचे पदको शोभित करेगी।'* उन सुविधाओंसे आज तक भारतीय महिला-समाज वञ्चित ही रहा है, किन्तु फिर भी छोटी-मोटी सुविधाओंको ही सङ्ग लेकर उन्होंने संयुक्त प्रान्तका मन्त्री-पद शोभित किया। योग्यतासे उसे ग्रहण कर अपनी भविष्यवाणी सिद्ध कर दी। ऐसे उदाहरण अब तक अपवाद-स्वरूप इसलिए दीखते हैं कि सुविधायें केवल नहींके बराबर हैं। बहुत-से पाश्चात्य देशोंमें वे नारियां, जिन्हें हम समझते हैं कि सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार पाकर स्वाधीन हो गयीं, अब भी आर्थिक रूपसे पुरुषोंके पराधीन हैं। इधर समानाधिकार देकर उधर आर्थिक साधनोंका निषेध कर देते हैं, तो वे विफल क्यों न होंगी? उन अधिकारोंके उपयोगके साधन तो वे जुटा ही नहीं पातीं। प्रचार, जन-शिक्षा, सभा-समितियां हर साधनका एक आर्थिक मूल्य है, जिसके सहारे पुरुषने अब तक उन्हें परतन्त्र रखा है। इस आर्थिक अस्त्रसे पुरुषने उनकी पीठमें छुरा मारा है। जब तक उन्हें समान आर्थिक अधिकार भी नहीं मिल जाते, वे उन्नति करनेकी पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर सकतीं। कदाचित् तर्कके लिए यह मान भी लिया जाय कि किन्हीं जगहोंपर वे प्राप्त किये हुए अधिकारोंका सफल उपयोग नहीं कर सकीं या उपयोग नहीं करतीं, तो यह कोई न्याय नहीं कि उनसे वे अधिकार छीन लिये जायें या उनके और ठीक अधिकार उन्हें न दिये जायें। प्रत्येक मनुष्यको कलाकार होनेका अधिकार है, किन्तु यदि वह कलाकार नहीं होता, तो उससे उसका अधिकार छीन लेना तो न्याय नहीं है। यदि प्रत्येक

---

* 'सहेली' विशेषाङ्क नवम्बर, सन् १९३१, पृष्ठ २१६

स्त्रीको तलाक देनेका अधिकार हो, तो समाज उसे इसपर तो बाध्य नहीं करेगा कि वह आवश्यक रूपसे अपने पतिको तलाक दे। फिर पुरुषोंका समाज अपनी सङ्गिनीको आर्थिक स्वाधीनता देते हुए क्यों सकुचाता है? क्या स्त्री वह सुन्दर फल नहीं है, जिसे सींचनेके लिए पुरुष पैसेकी छोटी-सी मर्यादाका बलिदान कर सके?

भारतीय स्त्रीका कार्य बच्चे पालना और पतिकी सेवा करना ही समझा जाता है। कुछ कापुरुष तो यह भी कहनेको तैयार हैं कि घरकी टहल और बालकोंका जनन ही उसका कार्य है। गृहलक्ष्मीको वे सरलतासे दासी और कल बना सकते हैं। यह सब क्यों? घरकी रानीको केवल दासी समझनेका कारण क्या है? यही, कि स्त्री-समाजके कार्य-क्षेत्रका निर्णायक पुरुष बना हुआ है और उसने इसे बहुत ही सीमित कर दिया है। स्वयं आदर्शसे भटका हुआ वह स्त्रीको मनमाने आदर्शका पाठ पढ़ा रहा है। पत्नीव्रतका तो अक्सर जन्मसे पूर्व ही अन्त हो गया था, परन्तु वह पतिव्रत धर्मके लक्षणोंका नित्य निर्माण करता रहा है।

यहांकी स्त्रीको प्रारम्भिक शिक्षा (स्कूलमें जानेका अवसर कहां मिलता है, रस्मोंकी सत्ता ही उसकी शिक्षक है) परतन्त्र बनानेके भावसे ही दी जाती है। पन्द्रह वर्ष तककी बच्चियोंमें १८.९ प्रतिशत तो अपना भला-बुरा सोच सकनेसे पहले ही उसे पतिके चरणोंमें अर्पण कर विवाहिता या विधवा हो चुकती हैं। सन् १९३१ में (भारतवर्ष और बर्मा मिलाकर) ऐसी बच्चियोंकी संख्या १२,५९३,२९९ थी। पतिसे अलग भारतीय महिला किसी भी सेवाका निर्माण नहीं कर सकती। अपने यहांका पतिव्रत धर्म (मैं वास्तविकता देख रहा हूं, कागजोंपर कुछ भी लिखा हो या पहले वह कुछ भी रहा हो) आज यही है कि उसे निभानेके लिए पहले समाजमें स्त्रीके व्यक्तिगत रूपका अन्त हो जाये, फिर वह पतिके नखोंपर नाचनेवाली कठपुतली बन जाये। इस सम्बन्धका आधार आज अधिकाधिक प्रेमसे एक दूसरेमें मिल न जाना नहीं है, क्योंकि इसमें समानाधिकारका भाव निहित है; परन्तु पत्नीका चरण-सेविकाके रूपमें पतिमें मिल जाना। विवाहके अतिरिक्त वह किसी भी रूपमें सेवाकी नहीं सोच सकती। समाज उसकी और किसी भी सेवाको अपनानेको तैयार नहीं है। यदि उसे जीना है, तो रोटी और पैसेके लिए पतिसे भिक्षा मांगती रहे। अविवाहिता रहे या किसी स्वतन्त्र सेवासे पैसा कमा ले, ऐसा वह नहीं सोच सकती। भारतीय समाजमें स्त्रीका विवाह आवश्यक हो जाता है। जहां पाश्चात्य देशोंमें विवाह योग्य महिलायें काफी संख्यामें अविवाहिता रहती हैं (बेल्जियममें लगभग एक तिहाई महिलायें ऐसी हैं, फ्रान्समें २० लाख ऐसी हैं) और स्वतन्त्र सेवाओंकी रचना करके अपनी जीविका चलाती हैं, वहां भारतमें तीस वर्षसे ऊपरकी १,००० महिलाओंमें १४ से अधिक अविवाहिता नहीं रहतीं, जिनमेंसे अधिकतर तो ईसाई, यहूदी और पारसी इत्यादि मतकी हैं, जिनका पश्चिमी सभ्यतासे काफी सम्पर्क हुआ है। सन् १९३१ में (बर्मा निकालकर) भारतमें कुल स्त्रियोंमें ३४.९ प्रतिशत अविवाहिता थीं, जिनमेंसे लगभग ३२.९ प्रतिशत तो पन्द्रह वर्ष तककी बच्चियां थीं। यहां १९ अविवाहिताओंमें केवल १ ऐसी है, जो पन्द्रह वर्षसे ऊपर हो। तात्पर्य यह, इससे पहले कि भारतीय महिला अपनी आर्थिक आवश्यकताओंको सोच सके, उनकी पूर्तिके साधन विचार सके, उसकी आर्थिक स्थिति ही मिटा दी जाती है। वह उसे पतिकी दयापर ही आश्रित कर सकती है।

प्रधानतः धन्धोंमें लगी हुई भारतीय महिलाओंकी संख्या कुल २७,८५९,२२९ है, यानी कुल स्त्रियोंकी केवल १६ प्रतिशत। प्रधानतः धन्धोंमें लगे हुए पुरुषोंकी यह एक चौथाई हैं। नीचेके आंकड़ोंमें इनकी संख्या धन्धोंके अनुसार दी जाती है। उन स्त्रियों और बच्चियोंकी संख्या भी लिखी है, जो स्वयं तो मजदूरी नहीं पातीं; परन्तु परिवारके लोगोंके साथ काम करके परिवारकी रोजी बढ़ा देती हैं।

	प्रधानतः धन्धोंमें लगी हुई महिलायें	प्रतिशत	सहायक श्रमी	प्रतिशत
अ० कच्चे मालकी उपज	१८,६२९,३२२	६६.९	१०,३१०,९३२	४९.२
१. मवेशी और वनस्पतिका शोषण	१८,५५२,८९६	६६.६	१०,३००,९४१	४९.११९

२. खानोंका शोषण	७६,४२६	.३	९,९९१ .	·०४८
ब० भौतिक वस्तुओंकी तैयारी और देय	५,१६१,७८९	१८·५	१,७६२,८२६	८·४
३. उद्योग	३,२६३,७८८	११·७	१,२९०,६३८	६.२
४. सवारी	१७१,१८४	·६	७१,०२४	·३
५. व्यापार	१,७२६,८१७	६·२	४०१,१६४	१·९
स० राज्य प्रबन्ध और उदार कलायें	२९९,८०८	१·१	६३,६३७	·३
६. राज्य-बल	३,७६२	·०१	३,२९९	·०१५
७. राज्य प्रबन्ध	२५,७३४	·०९	६,८०९	·०३२
८. व्यवसाय और उदार कलायें	२७०,३१२	१·००	५३,५६९	·२५५
द० मिश्रित	३,७६७,७१५	१३·५	८,८३३,४९३	४२.१
९. प्रधानतः अपनी आयपर रहनेवाली	३९,३१८	.१	७,७२७	·०३७
१०. गृह सम्बन्धी नौकरी	८८६,९९१	३·२	७,९१६,७९९	३७·७
११· अपूर्णतः बताये हुए धन्धे	२,४०७,५२७	८·६	७७१,८७७	३·७
१२. अ नुत्पादक (भिखारिन, बेहेतू और वेश्यायें)	४३३,८७९	१.६	१३७,०९०	·७
कुल	२७,८९९,२२९*	१००	२०,९७०,४८६	१००

कुछ थोड़े-से धन्धे, कारखाने इत्यादिकी जांच करनेसे हमें ऊपर बतायी हुई धन्धोंमें लगी स्त्रियोंकी घरेलू दशाका ज्ञान हो जायगा। गांवके लिए चाहे यह इतना सच न हो, किन्तु नगरोंके लिए यह सच है कि युवतियां बहुधा ऐसे कोई धन्धे नहीं करतीं। प्रौढ़ा अवस्थाकी महिलायें इनमें अधिक हैं। यदि कम आयुकी महिलायें घरके बाहर किसी धन्धेमें लगी दीखती हैं, तो ऐसा उनके जीवनमें किसी विशेष निराशाके आ जानेके कारण है। ऐसी महिलाओंमें अक्सर तो विधवायें हैं, अक्सर वे हैं, जिनके पति व्यभिचारमें डूबे हैं या जिनका पतित पुरुषने सपत्नियोंके आदरसे निरादर कर दिया है। कुछ ऐसी भी हैं, जिन्होंने परिवारकी दरिद्रता मिटानेका सुकार्य साधा है, किन्तु ऐसी स्त्रियोंकी वास्तविक संख्या बहुत कम है। यह कहना ठीक होगा कि समाजका ढङ्ग ऐसा ही रहा है कि अभी तक अधिकतर निराश्रित महिलायें ही घरके बाहर धन्धोंमें अपनी सेवाओंका मूल्य जांचने आयी हैं। उन स्त्रियोंकी संख्या, जो धन्धोंमें केवल इसलिए लगी हैं कि अपनी सेवाओंसे देशका धन बढ़ाना धर्म समझती हैं, अब बढ़ती जाती है; किन्तु अब तक बहुत थोड़ी है। देशका धन बढ़ानेके लिए (यदि कुछ सिद्धान्तोंका ध्यान रखा जाय तो) परिवारका धन बढ़ानेका आयोजन काफी प्रेरक है। मेरा आशय यह नहीं है कि नवविवाहिताओंके घर उजड़ जायें, सुलोचनायें मिलके धुएंसे रंग जायें, कोमलाङ्गिनी युवतियां कठोर धन्धोंमें उलझ जायें या नवमातायें घरके मन्दिरोंकी शोभा बिगाड़ बाहरके धन्धोंपर बलिदान हो जायें; किन्तु केवल यह कि महिला समाज धन्धोंमें अपनी सेवाओंका मूल्य आंकने लगे। यदि उन्हें किसी धन्धेमें लग जानेका सुभीता है, तो वे पहले निर्धन या निराश्रित हो जानेकी प्रतीक्षा न करें। अब तक तो लाचारी

* जीविका कमानेवाली ५९९ महिलाओंके धन्धे नहीं लिखे गये।

आ जानेपर ही महिलाओंने धन्धोंको अपनाया है। धन होते हुए परिवारका धन बढ़ाने अथवा उसका रहन-सहन बढ़ा लेनेके विचारसे उसने बहुत कम धन्धोंका आश्रय लिया है। इससे तो उसे दोहरी-तेहरी हानि है। निर्धन निराश्रितके रूपमें धन्धोंकी शरण जानेसे उसे वेतन कम मिलता है; क्योंकि पहलेके सुभीतेका अन्त हो गया। दरिद्रता आज भी पाप बनी है। निर्धन निराश्रितकी सेवाका समाजमें कोई मूल्य नहीं है। उसे बेगार समझा जाता है। दूसरे लाचारीमें कमाये हुए धनसे वह परिवारका रहन-सहन नहीं बढ़ा सकती। शायद कभी-कभी कितने ही यत्नोंके बाद वह उसे नीचे गिरनेसे रोक ले। कमसे कम आवश्यकताओं-को पूर्ति भी दूभर हो जाती है। उसके बालकोंकी उन्नतिका सुभीता आदिसे ही मिट जाता है। और तीसरे जब वह सेवाओंके लिए निर्धन होकर धन्धोंमें घुसती है, तो अपनी सहकारिणियोंके सङ्गठनमें कोई योगदान नहीं दे सकती। उनके किसी कार्यको सुलभ नहीं बना सकती। और जब भी स्त्रीकी स्थिति ऐसी है, तो सङ्गठन ही असम्भव हो जाता है।

स्त्रीकी आर्थिक स्थिति नगरोंमें देहातोंसे बुरी है। देहातोंसे कहीं अधिक वह नगरोंमें पैसेके लिए पुरुषकी परतन्त्र है। सामाजिक विचार ही इसके लिए भी अपराधी हैं। नगरोंमें देहातोंसे कहीं अधिक परदा है। सामाजिक कुरीतियां बढ़ती जाती हैं। एक-दूसरेका विश्वास नहीं है। आपसी सहयोगसे नागरिक समाज वञ्चित है। इसमें एक बनावट आ गयी है, झूठी मर्यादाका ज्ञान घुसा है। बहुत-से नगरनिवासी इसे बुरा मानते हैं कि उनकी स्त्रियां घरके बाहर समाजको अपनी सेवायें दें। उन्हें स्त्रीके पैसे कमानेसे चिढ़ है, चाहे वह अच्छीसे अच्छी सेवाओंकी उपज द्वारा हो। पुरुषके मनमें जो चोर घुसा है, विद्याका जो दुरु-पयोग करते हैं, उन नागरिकोंके मनमें और बढ़ता जाता है कि स्त्रीकी आर्थिक स्थिति कहीं बढ़ न जाये। कहीं वह पुरुषकी समानाधिरिणी न बन जाये। इन्हीं कारणोंका फल है कि जहां और देशोंमें उदार कलाओंमें निरी महिलायें लगी हुई हैं, भारतमें व्यवसाय और उदार कलाओंमें लगी हुई स्त्रियोंकी संख्या ३ लाखसे भी कम है। इतने बड़े देशके लिए यह संख्या नहींके बराबर है। प्रतिशतमें इसे बताना तो संख्याकी हंसी उड़ाना है। उदाहरणार्थ वकालत ही ले लीजिये। बम्बईमें तो पानीके छींटोंकी भांति गिनी-चुनी महिलायें इस धन्धेमें लगी मिल जायंगी; किन्तु और शहरोंमें अक्सर एकाध भी नहीं दीखतीं। फ्रेञ्च बार (French Bar) में पुरुषोंकी एक तिहाई महिलायें हैं, कुछ महिलाओंने कानूनकी अच्छी पुस्तकें भी लिखी हैं। भारतका शिक्षा-विभाग, यहां तक कि प्रारम्भिक शिक्षा-विभाग भी पुरुषोंसे ही भरा पड़ा है। दफ्तरोंमें क्लर्क, टायपिस्ट इत्यादि तक (बड़े नगरोंमें गिनी-चुनी स्त्री टायपिस्ट छोड़कर) पुरुष ही दीख पड़ते हैं। स्त्रीको जीविका कमानेका अवसर ही नहीं दिया जाता। झूठी मर्यादामें पली, फिर भले घरानेकी लड़कियां इसे कोई नीच कार्य समझने लगती हैं। अभी कल तक फिल्म कम्पनियोंके मालिकोंकी शिकायत थी कि अभिनेत्री बननेके लिए भले घरानेकी स्त्रियोंका सहयोग उन्हें नहीं मिलता। श्रीमती एनाक्षी भवनानी लिखती हैं—"क्योंकि अच्छे घरानेकी उन भारतीय लड़कियोंमें, जिन्होंने कुछ वर्ष पहले प्रथम बार पर-म्परागत प्रथाको तोड़ा और चित्रपटपर अभिनय किया, मैं भी एक हूं, यद्यपि आदिमें यह बहुत कुछ हंसीके ही भावसे हुआ था, अपने निजी अनुभवसे मैं कह सकती हूं कि यह अन्धविश्वास अब बहुत कुछ जाता रहा है।" भले घरानेकी कुछ स्त्रियां आज आगे बढ़ी हैं; किन्तु फिर भी बहुतोंमें, जो आगे चलना चाहती हैं, साहसकी कमीसे सङ्कोच बाकी है।

पुरुष जानता है, स्त्रीका स्वभाव अति भावुक है। इसका उसने बेजा लाभ उठाया है। शब्दोंसे जब तब उसका श्रृङ्गार करके, उसे फुसलाकर, वह उसके अधिकार छीनता जाता है। पति और पत्नीके नातेको शासक और शासितमें बद-लता जाता है। बाहर वह हर्षित घर, पवित्र विवाह और प्रसन्न माताओंके आदर्शका नाम ले लेकर समाजको धोखा देता है और घरपर एकसे अधिक पत्नियां लाकर रोज ऐसे पवित्र सङ्गठनोंको तोड़ता जाता है। हां, जब पत्नी दासी हो गयी, तो दासियोंकी संख्या बढ़ानेका उसे अधिकार है। दासी-स्वरूप जीविका देकर, खरीदी हुई सामग्री बनाकर क्या वह अपनी पत्नीसे व्यभिचार नहीं कर रहा है? फोरल-के वे शब्द, जो किसी भी देशको पातालकी ओर ले जा

सकते हैं, उसके लिए सत्य ही बैठेंगे कि "विवाह वेश्या-वृत्ति-का एक अधिक फैशनेबिल रूप है, यानी एक लिङ्ग-भेदकी वस्तुको पैसेके विचारसे प्राप्त करना या दे देना।"

आज भारतीय स्त्री अपने पतिके साथ भोजन नहीं कर सकती। पतिके सङ्ग खानेमें, सारा खाना स्त्रीका ही तो जूठा हो जाता है, पतिके मुंहमें सब जूठन चली जायगी। इतना ही नहीं, वह उस समय भी, चाहे कितनी सुविधा हो, भोजन नहीं कर सकती। चरण-सेविका जो है! वह तो केवल चरणामृतकी अधिकारिणी है! पतिकी जूठनसे सना हुआ कौर खानेसे उसे स्वर्ग मिलेगा। आज यदि कोई पति उससे खानेके लिए पूछ भी ले, तो उसे यही उत्तर कण्ठाग्र हैं। ऐसे ही न जाने कितने अन्धविश्वासी विचार उसके मनमें घर किये हुए हैं। इन सबका मुख्य कारण यह है कि उसे या तो अपनी सेवाओंके मूल्यका पता ही नहीं या वह उसे मांगती ही नहीं। जब दिन-भर बाहर काम करके पति घरको आता है—तो, स्त्रीकी साधुशीलता! वह पतिकी दिन-भरकी कड़ी सेवाओंकी कल्पना करने लगती है। जब पति धन लेकर आता है, तो यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि पत्नी उसे पतिकी ही सारी सेवाओंका मूल्य समझती है। वह यह भूल जाती है कि यह उनकी दोनोंकी सेवाओंका मूल्य है। यदि वह परिवारको न संभालती, तो पतिकी आय कभी भी इतनी न होती। यहींसे दोनोंके नातोंमें अन्तर आ जाता है। धीरे-धीरे वह स्वाभाविक रूपसे अपनेको पतिपर निर्भर पाती है। हाय, इसी सबने उसे आत्म-लघुताका शिकार बना रखा है। लड़कीके पैदा होनेपर, उन वीर क्षत्रियोंकी तो जाने दीजिये जिनपर नन्हीं बालिकाओंके न जाने कितने रक्तका कलङ्क चढ़ा है, मां तक प्रसन्न नहीं होती।

मुस्लिम कानूनमें तो स्त्रीको सम्पत्तिमें कुछ अधिकार है; किन्तु हिन्दू कानूनमें उसे ऐसे कोई भी अधिकार नहीं मिले हैं। १४ अप्रैल १९३७ के देशमुख एक्टसे सम्पत्तिके अधिकार-में विधवाओंकी अवस्थाका कुछ सुधार हुआ, किन्तु अब भी बहुत कुछ अवशेष है। बहुत सारी विधवायें तो अभी इस कानूनसे परिचित ही नहीं हैं और इससे पहले कि उन्हें ऐसे कानूनसे परिचय मिले, सङ्गठित परिवारके और लोग बहुधा छलसे उसकी सम्पत्ति हड़प लेते हैं। और साधारण स्त्रीको तो सम्पत्तिमें कोई अधिकार मिले ही नहीं हैं। उनके इने-गिने अधिकारों—जैसे पतिसे दुर्व्यवहारमें गुजर-बसरकी मांग इत्यादि—की ही रक्षा नहीं हो पाती। इनकी रक्षामें मुकदमे इत्यादिके लिए धनकी लागत चाहिए और आर्थिक साधनोंसे विहीन स्त्री-समाजके पास धन नहीं है, जो इनकी रक्षा कर सके।

'नारियोंकी यह दुरवस्था केवल नारी-समाजके लिए ही घातक नहीं है, बल्कि सारे समाजपर इसकी प्रतिक्रिया हुए बिना नहीं रह सकती।' नारीकी परतन्त्रता सन्तानमें स्वाधीनताकी महक फैलनेसे पहले ही उसे उड़ा ले जाती है। स्वतन्त्र रूपसे सेवायें करनेका महत्त्व वह अपनी सन्तान-को नहीं बता सकती। स्वयं दासी होकर वह अपनी सन्तान-को स्वतन्त्रताका जीवित पाठ नहीं पढ़ा सकती। जिस अन्ध-विश्वास और आत्म-लघुताका वह शिकार बन चुकी है, उसीमें उसकी सन्तान पलती है। इन बुराइयोंका एक चक्कर-सा बनता जाता है। स्त्रीकी आर्थिक परतन्त्रता समाजकी उन्नतिपर घातक सिद्ध होती है और समाजकी अवनति स्त्री-की उन्नतिपर अधिकाधिक तीक्ष्ण चोट करती है। आज दिन स्त्री-समाज जो निर्धन है, उसके कारण स्कूल जानेवाली आयुकी १,३०,००,००० लड़कियोंकी पढ़ाईका कोई प्रबन्ध नहीं है। दो लाख माताओंका प्रतिवर्ष बच्चोंके जननमें ही देहान्त हो जाता है और समाज आंख मींचकर ऐसे कड़ुवे सत्यको पी जाता है। इतना ही नहीं, न जाने कितनी नारियोंका दाम्पत्य जीवन इस आर्थिक परतन्त्रताके कारण कलहसे भरा पड़ा है। प्रतिदिन काफी संख्यामें स्त्रियां गुण्डों और अत्याचारियोंके हाथ पड़ती हैं। पतिके दुर्व्यवहारसे या विधवा हो जानेपर परिवारमें शरण न मिलनेसे (अक्सर ऐसा होता है) उनके पास जीविका चलानेका कोई सहारा नहीं रहता। परिणाम-स्वरूप वे प्रतिदिन बहकायी जाती हैं। लगभग ११ ×हिन्दू स्त्रियां और लड़कियां रोज भगायी जा रही हैं। ये पतिता बनकर पुरुषोंके अत्याचारकी सजीव मूर्ति बन जाती हैं। विशेषकर उस समाजमें, जहां एक बार गलती-से, भुलावेसे या धनके लोभसे यदि कोई स्त्री पतित हो जाये, तो उसे साहस, आश्वासन और आश्रय देनेसे इनकार कर दिया जाता है। फलस्वरूप इनमेंसे बहुत-सी आत्मघात कर लेती हैं, बहुत-सी दूसरे धर्म ग्रहण कर लेती हैं और न जाने

× श्रीयुत जयकरने अपने एक वक्तव्यमें बताया था।

कितने बच्चोंको अपने पिताका नाम नहीं बताया जाता या छलकते नेत्रोंसे मातायें उन्हें सर्वदाके लिए अपनेसे दूर कर देती हैं। न जाने कितनी स्त्रियां, शरीर तो साधारणतः सभी को प्यारा है, भिखारिन, वेश्या या उनकी सहायक बनकर जीविका चलाती हैं; निस्सहाय होकर ऐसा व्रत लेनेवाली स्त्रियोंकी संख्या सन् १९३१ में ९,७०,९६९ से कम नहीं थी। ये ६ लाख स्त्रियां समाजकी छातीपर पुरुषोंका अभिशाप बनकर जीती हैं।

हर क्षेत्रमें पुरुषोंके समान अधिकार पानेके लिए भारतीय महिलाको पहले आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनी होगी। वह जितना पैसेको छोड़ती जाती है, पुरुष उसे उतना ही अपनाता जाता है। उसीके सहारे वह उसके बन्धन और जकड़ता जाता है। अभी बहुत-से धन्धे ऐसे अनखोजे पड़े हैं, जिनमें भारतीय महिला सुगमतासे अच्छी आय कमा सकती है। और देशोंमें महिलायें रोज नये धन्धोंमें प्रवेश करती जाती हैं। रूसमें इस समय इञ्जीनियर, डाक्टर, अध्यापक, क्लार्क इत्यादिके रूपमें काम करके ७८,५७,१०० स्त्रियां अपनी जीविका स्वयं कमा रही हैं। ब्रिटेनमें मेट्रोपोलिटन पुलिसके स्त्री विभागकी सुपरिण्टेण्डेण्ट कुमारी पीट्रने स्त्री पुलिस नम्बर १ होकर काफी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। १२० इलाकोंमें फैली हुई स्त्री-दलकी पुलिस बहुत सफलतासे कार्य कर रही है। सन् १९३९ में ब्रिटेनमें कुछ धन्धोंमें लगी हुई स्त्रियोंकी लगभग संख्या नीचे दी जाती है।

धन्धे	स्त्रियां
बीमा किये हुए उद्योग-धन्धे	४०,२२,९००
खेती	४७,०००
सूती उद्योग-धन्धे	६,८०,०००
इञ्जीनियरिङ्ग	९२,०००
मोटर, साइकिल, हवाई जहाजके कारखाने	३,३०,०००
नर्सें	१,००,०००

सन् १९३९ से प्रतिदिन यह संख्या बढ़ती गयी है। इसके अतिरिक्त युद्धके प्रारम्भिक दिनोंमें हवाई विभागमें २,००० स्त्रियां काम करती थीं। सेनामें इस समय लगभग १५,००० स्त्रियां स्वयंसेविकाका काम कर रही हैं। और २५,००० स्त्रियां खाना पकाने, भण्डार-गृहकी देख-भाल करने, मोटर चलाने, भोजन बनाने तथा सैनिक अड्डोंपर विभिन्न भागोंमें काम करनेमें लगी हैं, जिनमें लगभग ११,५०० क्लर्क, ६०० रसोई बनानेवाली, ६०० अर्दली और १८०० ड्राइवर हैं।

मैं स्त्रीको पुरुषकी तरह कठोर नहीं बना देना चाहता। स्त्रीका दूसरा नाम सौन्दर्य है। रणक्षेत्रमें उसे भेजकर सौन्दर्य मिटा देनेका साहस मुझे नहीं है। घरकी रक्षा पुरुष कर लेगा; परन्तु घर संवारना तो स्त्रीका ही कार्य है। जहां पुरुषबलकी आवश्यकता हो, उसे पुरुषका हाथ मिल जायगा; किन्तु शेष तो उसका कार्य है। फिर क्यों भारतीय महिला राज्य-प्रबन्ध इत्यादिमें हाथ नहीं बटाती। उसके अनुसार निरे धन्धे उसके बिना सूने क्यों पड़े हैं? कारखानोंमें भारी मशीनोंसे जुटकर काम करती हुई स्त्रियोंको देखकर किसीका जी प्रसन्न नहीं होता। परन्तु व्यापार, शिक्षा-विभाग, दफ्तरोंके कार्य, चित्रपटपर अभिनय, डाक्टरी, वकालत, चित्रकारी, शिल्पकारी और राजनीति-सञ्चालन कितने ही ऐसे धन्धे हैं, जिन्हें वह सफलतासे साध सकती है और जिनके द्वारा अपनी आय अच्छी तरह बढ़ा सकती है।

पुरुषसे आर्थिक स्वतन्त्रता लेनेके लिए यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक महिला पहले अपना घर छोड़कर बाहर धन्धोंमें ही जुट जाय। बहुत सारे शिल्पकारी धन्धे तो वह घरपर रहकर ही चला सकती है। और बहुत-से धन्धोंमें थोड़ा-सा ही समय देकर वह सुभीतेके अनुसार अपनी आय बढ़ा सकती है। अक्सर उसे, यदि सुविधा न हो, तो घरके बाहर धन्धोंके लिए जानेकी भी आवश्यकता नहीं है। उसे केवल अपनी सेवाओंका मूल्य आंक लेना है। चाहे मांगे नहीं, किन्तु पुरुषके मनमें यह बिठा देना है कि बच्चोंका पालन-पोषण, घरकी देख-रेख इन सबका एक आर्थिक मूल्य है। पुरुषकी सारी सेवाओंसे ये किसी तरह कम नहीं हैं। यदि वह इन सेवाओंका भार न लेती और पूर्णतः घरके बाहर धन्धोंमें लग जाती, तो औरोंकी भांति वह भी एक सुन्दर जीविका कमा सकती थी। यदि पुरुषोंको यों विश्वास न हो, तो उसकी शेष बहनोंको, जिन्हें सुभीता है, अपनी आय स्वयं कमाते हुए देख लें। जितना ही शीघ्र यह सम्भव हो जायगा, स्त्रीके आर्थिक अधिकार स्थापित हो जायेंगे। सारे परिवारकी आय एक जगह इकट्ठी की जा सकती है; किन्तु उसके खर्च करनेमें स्त्रीका कोई अधिकार न हो या



अन्न और अन्नदाता।



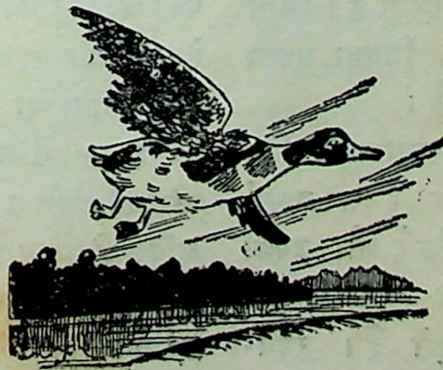
पूंजीवादकी जड़से निकली हुई दो डालें।

जो कुछ वह खर्च करे, पुरुषकी दयासे खर्च करे, यह तब सम्भव न रहेगा।

एक सङ्ग सारे समाजका तुरन्त सहयोग मिलना तो कठिन है; किन्तु व्यक्तिगत पुरुष और परिवार, जो स्त्रीकी उन्नति देखना चाहते हैं, उसमें योगदान दे सकते हैं। उनकी सबसे बड़ी चेष्टा यह होनी चाहिए कि पुरुषोंकी तरह स्त्रीके पास भी कुछ सम्पत्ति हो जाय। सबसे सहज, तुरन्त उपाय यही होगा कि विवाहके समय वधूका प्रत्येक हितचिन्तक जो कुछ भी उसे भेंट कर सके, सम्भवतः नकदीके रूपमें भेंट करे और वह सारी नकदी इकट्ठी करके वधूकी निजी सम्पत्ति मानकर उसीके नामसे बैङ्कमें जमा करा दी जाय। उसे एकदम खर्च कर देनेका अधिकार वधूको न दिया जाय। कुछ ऐसी शर्तें लगा दी जायें कि विवाहसे कुछ वर्ष बीत जानेके बाद ही या किसी दुर्घटनापर किन्हीं नियमोंके अनुसार वह उसे खर्च कर सकेगी। उसके होते हुए और किसीको उस सम्पत्तिके खर्च करनेका अधिकार न होगा। और उसकी मृत्युपर उस सम्पत्तिमें प्रथम अधिकार उसकी सन्तानका होगा। पति सन्तानके बाद ही अधिकारी हो सकेगा। इसके अतिरिक्त माता-पिताको अपनी आयका एक अंश प्रति वर्ष पुत्रीके नाम जमा कर देना चाहिए, जो वधूके लिए बताये हुए ऊपरी नियमोंकी भांति पुत्रीकी निजी सम्पत्ति मानी जायगी। यदि चाहे तो सारा परिवार स्त्रीके इस कोषको बढ़ानेमें सहायता दे सकता है।

यदि इन साधनोंकी पूर्ति हो सकी, तो प्रायः कुछ दिनोंमें भारतीय महिलाके पास थोड़ा-सा धन हो जायगा। इसके द्वारा वह आगे अपनी आय बढ़ा सकेगी। नये अधिकारोंकी मांगको सुलभ बना सकेगी और प्राप्त किये हुए अधिकारोंकी सफल रक्षा कर सकेगी। आज़ अधिकारोंकी महिमा बहुत बढ़ती जाती है; व्यक्तिगत अधिकार, सामाजिक अधिकार, देशकी नागरिकताके अधिकार और अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार—सभीकी रक्षाका सवाल है। ज़ो इन अधिकारोंकी रक्षा न कर सकेगा, उसे इन अधिकारोंसे विहीन होना पड़ेगा। और प्रत्येक अधिकारकी रक्षाके लिए सुसङ्गठित होनेकी आवश्यकता है, जिसे बनानेके लिए, बनाये रखनेके लिए निरे साधनोंका सहारा ढूंढ़ना पड़ता है। हर साधनके उपार्जनमें पैसेका महत्त्व है। आज स्त्रीके पास पैसा नहीं है, इसलिए वह कोई साधन नहीं जुटा पाती, यहां तक कि स्त्री-शिक्षा, विधवा-आश्रम और स्त्री-समाजकी नीतिका सञ्चालक भी पुरुष बना हुआ है।

पुरुषने तो आदिसे ही वीरताका व्रत लिया है। ईवकी इच्छासे प्रेरित हो आदमने बागका फूल तोड़ लिया था। आज क्या वह भूल गया है कि स्त्रीके अधिकारोंकी रक्षा उसका धर्म है। उसके बीचमें स्वयं रोड़े बन जाना तो निन्दनीय ही है। यह कहना कि भारतीय महिला अब तक अपनी परतन्त्रतामें सन्तुष्ट है, कोई मानी नहीं रखता। इसमें एक दुष्ट भाव निहित है, जब कि पुरुष स्त्रीसे इतना प्रेम पानेको उत्सुक है कि वह अपनी सत्ता ही मिटा दे, स्वयं वह उसके प्रेमकी वेदीपर पैसेकी भी बलि चढ़ानेको तैयार नहीं है। यदि समाजको अपनी उन्नतिका ध्यान है, तो उसे मानना होगा कि यदि हम स्त्रीको भविष्यमें उत्तरदायित्व देना चाहते हैं तो उसे उन्हें, संभालनेके लिए हमें स्वतन्त्र भी कर देना होगा।



शस्त्रास्त्रोंके पांच व्यवसायियोंकी कहानी

श्री रविशङ्कर शास्त्री

संसारमें दूसरा महासमर चल रहा है और सभी राष्ट्रोंमें शस्त्रास्त्रोंकी तैयारियोंकी होड़ लगी है। यूरोप, एशिया और अफ्रीका तीन महाद्वीपोंमें युद्ध चल रहा है और कितने ही राष्ट्र इसमें संलग्न हैं। जो राष्ट्र प्रत्यक्ष रूपसे युद्धमें नहीं हैं, वे भी अपनेको अत्यधिक रूपमें तैयार रख रहे हैं; क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां जैसी होती चल रही हैं, उनमें किसी भी देशका सदा तटस्थ: बना रहना असम्भव दिखाई पड़ रहा है। कब उन्हें भी युद्धके क्षेत्रमें उतरना पड़ेगा, कोई कह नहीं सकता। लड़नेवाले विभिन्न पक्ष तटस्थ देशोंको अपने साथ लेना चाहते हैं और इसके लिए राष्ट्रोंमें कूटनीतिक युद्ध चल रहा है।

परन्तु इन युद्धोंके पीछे कौन-सी शक्तियां काम कर रही हैं? अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिके विवादोंमें जिन लोगोंके नाम कभी नहीं आते और राष्ट्रोंकी वैदेशिक नीतिसे जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध कभी नहीं दिखाई पड़ता, ऐसे वे लोग हैं, जो वास्तवमें युद्धके भाग्य-विधाता हैं। पर्देके पीछे रहकर ये लोग वैदेशिक नीतिके न केवल दांव-पेंच देखते, बल्कि उसका सञ्चालन भी करते हैं।

ये हैं विभिन्न देशोंके शस्त्रास्त्रोंके कारखानोंके मालिक। कुछ दिन पहले इनके सम्बन्धमें अनेक रहस्यपूर्ण बातें कही जाती थीं। कुछ लोगोंका ख्याल है कि इन लोगोंके हाथमें राष्ट्रोंकी वैदेशिक नीति है—और अगर यह सच न भी हो, तो इतना तो स्पष्ट है कि ऐसे लोगोंके हाथमें देशका भविष्य होता है। ये लोग सबसे महत्त्वपूर्ण व्यवसायके सर्वेसर्वा हैं—देशकी रक्षाकी जिम्मेदारी इनपर है। किसी भी सरकारके पीछे ये ही शक्तियां हैं, जिनका महत्त्व युद्धकालमें शान्तिकी अपेक्षा कहीं अधिक है।

विकर्स-आमस्ट्रांङ्ग कम्पनी इंगलैण्डके शस्त्रास्त्रोंके लिए जिम्मेदार है। उसके मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर हैं सर चार्ल्स क्रेवेन। सर चार्ल्सका व्यक्तित्व आकर्षक है और उनकी पोशाकसे यह नहीं जाहिर होता कि वे व्यापारी हैं। देखनेमें वे एक बैरिस्टर-से मालूम पड़ते हैं। रहन-सहन सादी, जिसे देखकर आप नहीं कह सकते कि यह मनुष्य इस युद्धमें ब्रिटेनका इतना महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। सवेरे ही आप इस मनुष्यको लन्दनके ब्राडवे-स्थित विकर्स हाउसमें बैठा देखेंगे। सामने ही मेजकी किसी दराजको खोलकर वह छोटे-छोटे कई नक्शे निकालेगा और हरएकपर उसकी आंखें इस प्रकार गड़ जायंगी, जैसे कोई गहरी गुत्थी सुलझानी हो और वास्तवमें है भी ऐसा ही। ये नक्शे शस्त्रास्त्रोंकी नयी डिजाइनोंके होंगे। नक्शोंमें आधी इञ्चमें जैसी डिजाइनें खींची गयी हैं कि उनका मूल्य पांच लाख पौण्ड समझिये; और फिर ऐसी डिजाइनें दूसरी दराजोंमें बन्द हैं, जिनका मूल्य लाखों पौण्ड है। इस प्रकारकी डिजाइनोंके लिए ही विदेशी जासूस ऐसे दफ्तरोंके आसपास चक्कर लगाते रहते हैं। ऐसे भेद प्राप्त करनेके लिए उन्हें लाखों रुपये पुरस्कारमें मिलते हैं और कहीं अगर पकड़े गये, तो जानसे हाथ धोना पड़ता है।

सर चार्ल्सने बहुत ही साधारण स्थितिसे उठकर यह महत्त्वका पद प्राप्त किया है। लेकिन इससे किसीको ईर्ष्या नहीं होती। उन्होंने इंगलैण्डके उद्योग-धन्धेको पुनर्गठित किया है और इंगलैण्डको शक्तिशाली बनानेमें उनका जबर्दस्त हाथ है।

१८९८ की बात है, चार्ल्स नौ-सेना विभागमें भर्ती हुए। सदैव सतर्क और परिश्रमशील वे रहते ही थे। फिर भी पांच विषयोंमें नौ-सेनाकी एक परीक्षामें उन्होंने सबसे अधिक नम्बर प्राप्त कर लोगोंको चकित कर दिया। उस समय आपकी अवस्था सिर्फ २२ सालकी थी, जब आपको पनडुब्बी विभागका कप्तान बनाया गया। लेकिन इतना तेजस्वी और प्रवीण व्यक्ति और भी महत्त्वपूर्ण कार्योंके लिए बनाया गया था।

१९१२ में वे विकर्स-आमस्ट्रांगमें दाखिल हुए। और शीघ्र ही उसके डाइरेक्टरों और श्रमिकोंमें समान रूपसे इतने अधिक लोकप्रिय हो गये कि १९३१ में वे उस कम्पनीके मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर हो गये। उस समय उनकी अवस्था ४७ वर्षकी थी।

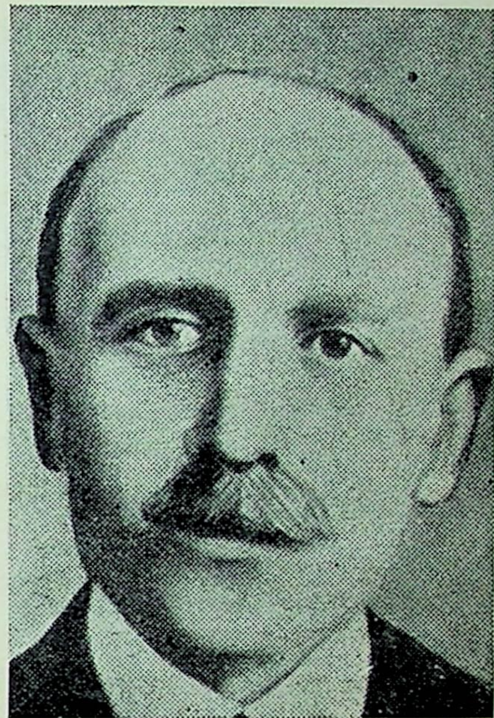
१९३४ में सर चार्ल्सको शस्त्रास्त्र सम्बन्धी जांचमें गवाहीके लिए बुलाया गया। उपन्यासकार सर फिलिप गिब्सने उनसे पूछा, "क्या आपका ख्याल है कि आपकी बनायी हुई वस्तुयें चाकलेट बाक्स अथवा मिठाईकी टोकरियोंसे अधिक खतरनाक नहीं हैं ?

"नहीं, अथवा उपन्यासोंसे अधिक खतरनाक।" सर चार्ल्सने उत्तर दिया।

सर चार्ल्स अपनी वाक्-पटुताके लिए प्रसिद्ध हैं और विरोधीकी बोलती बन्द कर देते हैं; परन्तु वे बोलते कम हैं। दिन-रात काममें लगे रहना ही उन्हें प्यारा है। पर इतना परिश्रम करते हुए भी उनका हृदय यन्त्रवत् नहीं हो गया है। अपने कर्मचारियों और श्रमिकोंसे अच्छा व्यवहार करते हैं। सर्वत्र उनकी सहृदयता दिखाई पड़ती है। उन्होंने एक बार कहा था—"व्यापारमें अगर हम सुख और प्रसन्नता नहीं प्रदान कर सके, तो हमें व्यापार करना छोड़ देना चाहिए।" किसीने हड़तालोंकी चर्चा उनसे की, तो बोले—"अगर हड़ताल हो जाय, तो समझ लीजिये कि या तो मैनेजिङ्ग-डाइरेक्टर अथवा ट्रेडयूनियनका नेता निकाल बाहर करने लायक है।"



सर चार्ल्स क्रेवेन : २०,०००,००० पौण्डकी विकर्स-आम्स्ट्राङ्ग कम्पनीके कर्ता-धर्ता।



"शान्ति"को "दो युद्धोंके बीचकी धोखाधड़ीका समय" बतानेवाले यूने श्नेदर।

जैसा कि हमने कहा है, सर चार्ल्स कठोर परिश्रम करते हैं। जब सभी घरोंके चिराग गुल हो जाते हैं, तब भी आसानीसे कोई देख सकता है कि सर चार्ल्स मेजके सामने बैठे दिन-भरके कामका निरीक्षण करनेके बाद अगले दिनके कार्यक्रमको लेकर व्यस्त हैं। पिछले दिनों तो उनके चार ड्राइवर थे, जो समय-समयपर ड्यूटीपर रहते थे। क्योंकि रात-दिन उन्हें कामके सिलसिलेमें आना-जाना पड़ता था।

आजकल प्रायः प्रचलन-सा हो गया है कि भारी-भरकम सेठ लोग अपने टेलीफोनका नम्बर छिपाते हैं, जिससे लोग उन्हें तङ्ग न करें। परन्तु सर चार्ल्सके सम्बन्धमें यह बात नहीं है। उनका ख्याल है कि किसी भी व्यक्तिके पास नष्ट करनेके लिए समय नहीं है। अतः जो लोग आयेंगे, वे हमारे कामसे भले ही न आयें, पर उनका काम भी काम ही है, अतः उनके कामकी बात भी सुननी जरूरी है। उनके देहातवाले घरपर भी मिलना आसान है। यह मनुष्य है, जो कितनी ही कम्पनियोंका काम देखता हुआ अकेले विकर्सके ७७ हजार श्रमिकोंका भाग्य-विधाता है।



शस्त्रास्त्रोंके उद्योग-धन्धोंका राजा डू पोण्ट। संसारमें सबसे अधिक रकमके लिए इसने जीवनका बीमा कर लिया है।

अगर आप सर चार्ल्स क्रेवेनका नाम जानते हैं, तो फ्रा क्रुपका नाम आपसे छिपा नहीं होगा क्योंकि शस्त्रास्त्रके व्यवसायमें क्रुपका नाम संसार-भरमें विदित है। फ्रा क्रुपको प्रचारसे घृणा है। जिस महत्त्वपूर्ण व्यवसायसे उनका सम्बन्ध है, उसके कारण लोग उनके बारेमें अनभिज्ञ कैसे रह सकते थ।

फ्रा क्रुप देखनेमें शान्त और सुन्दर हैं और चार्ल्स क्रेवेनके समान उनका भी विश्वास शान्तिमें है। "मैं अपने देशके लिए बीस युद्धोंमें विजय प्राप्त करनेकी अपेक्षा एक शान्ति प्राप्त करना कहीं अधिक श्रेयस्कर समझती हूं।" यह फ्रा क्रुपने एक बार कहा था।

प्रायः सौ साल पहलेकी बात है कि एक तरुण जर्मनने इसेनमें एक कारखाना खोला और काम करनेके घण्टोंकी परवाह न करके उसने एक अद्भुत पदार्थ तैयार किया—ढला हुआ इस्पात। उस समय तक संसारको इस चीजमें कोई खास दिलचस्पी न थी, अतः उस जर्मन युवक क्रुपके लिए उसका बेचना असम्भव था।

१८४५ तक क्रुपके कारखानेमें सिर्फ १२२ आदमी काम करते थे। उस समय कारखानेका खर्च चलाना ही असम्भव हो गया था, पर १८४७ में कम्पनीने कुछ नये ढङ्गके इस्पातके शस्त्रास्त्र निकाले और उससे उसका छोटा-सा कारखाना संसार-प्रसिद्ध हो गया। आज क्रुपके कारखानेमें करोड़ोंकी सम्पत्ति है और उसकी मालकिन फ्रा क्रुपकी देख-रेखमें उसका सञ्चालन हो रहा है।

बारूदखानेकी कमाईपर रहना फ्रा क्रुपके लिए बहुत आनन्ददायक नहीं है। इसने उसके जीवनके समस्त रोमान्सका अन्त कर दिया है। फ्रा क्रुप जिस पुरुषको प्यार करती थी, कैसर नहीं चहता था कि उससे उसका विवाह हो, अतः उसने उसे एक बहानेसे बाहर भेज दिया और गुस्टव वान बोलेन अण्ड हाल्बाक नामक एक व्यक्तिसे उसकी शादी करा दी। फ्रालिन क्रुपकी शादी स्वयं कैसरने उपस्थित होकर करायी। इस विवाहमें उसकी दिलचस्पी इसलिए थी कि हाल्बाकके रहते हुए कैसरकी शस्त्रास्त्र सम्बन्धी अपनी योजनाओंको कार्यान्वित करनेमें सहूलियत होती।

और तबसे क्रुपका रोजगार चल रहा है। उसकी ही बनायी हुई तोप बार्थाने विगत महायुद्धमें पेरिसपर गोला-बारी की थी, और विशेषज्ञोंका कहना था कि बार्थाको युद्धमें विजय प्राप्त होगी, पर सन्धि हो गयी। सन्धि होते ही क्रुपकी हालत खराब हो गयी। लेकिन आज क्रुपकी भट्टियां पुनः प्रज्वलित हो गयी हैं और उसकी चिनगारियोंका धुआं कभी बुझा नहीं दिखाई पड़ता।

अमेरिकाके शस्त्रास्त्र-व्यवसायके कर्ता-धर्ता हैं डू पोण्ट बन्धु। संसारके इने-गिने धनिकोंमें उनकी गणना है। डू पोण्ट परिवारकी ख्याति समस्त संसारमें है। जिस समय १८०१ में इस परिवारके पहले महत्त्वाकांक्षी युवकने डिल्मावेरमें अपना कारखाना खोला था, उस समय उसे या किसीको भी इसकी कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि ११८,०००,००० पौण्डके व्यापारकी नींव वह डालने चल रहा था।

डू पोण्ट परिवारकी सभी बातें अनोखी हैं। सारा परिवार सङ्गीतसे प्रेम करता और उसके राजमहल-से भवनमें प्रायः सङ्गीत-वाद्यका प्रदर्शन होता ही रहता है। पीयर डू पोण्ट सालमें ६० लाख पौण्ड कमाते हैं और संसारमें सबसे

अधिक रकम १,४००,००० पौण्डके लिए उनके जीवनका बीमा हुआ है। डू पोण्टकी तीक्ष्ण आंखोंसे चातुरी झलकती है और यद्यपि उनका शस्त्रास्त्रका कारखाना दुनियामें अनोखा है, फिर भी वे शान्तिकी बात करते हैं। युद्धकी तैयारियोंको वे शान्तिका साधन मानते हैं।

डू पोण्टके ही परिवारके एक दूसरे व्यक्ति लेमनाट हैं। युद्ध-कालीन परिस्थितिका नियन्त्रण करना इस व्यक्तिने खूब सीखा है। विगत महायुद्धमें इन्होंने अपने स्टाकपर ४५८ प्रतिशत लाभ उठाया था।

डू पोण्ट परिवारके सम्बन्धमें कितनी ही मनोरञ्जक कहानियां कही जाती हैं। परिवार काफी बड़ा है और अपार धन-सम्पत्ति उनके पास है; इसलिए वे लोग तरह-तरहके प्रयोग करते रहते हैं। कुछ साल पहले सिनेटर कोलमैन डू पोण्टने एक अनोखा प्रयोग किया था, जिसके कारण वैज्ञानिकोंमें बड़ी सनसनी-सी फैल गयी थी। उन्होंने मनुष्यके प्राकृतिक स्वरकी जगह कृत्रिम स्वर निकालनेका प्रयोग किया था।

फ्रान्समें डू पोण्ट जैसा कोई परिवार नहीं है। पर यूने



फ्रा क्रुप : "अपने देशके लिए मैं बीस युद्धोंकी अपेक्षा एक शान्तिकी विजयमें सहायिका होना पसन्द करूंगी।"



बैरन वान स्कोदा : जिसकी फैक्टरियां आज नात्सी कुचक्रियोंके चंगुलमें हैं।

श्नेदर वहांके शस्त्रास्त्रके कारखानोंका सेठ है। श्नेदरकी अवस्था सत्तर सालके ऊपर है। पर आज भी उसमें पचीस सालके युवककी-सी काम करनेकी शक्ति है। श्नेदरका शान्तिमें विश्वास नहीं मालूम होता। वह युद्धमें विश्वास करता है और इसीलिए उसने शान्तिकी परिभाषा करते हुए कहा था : "दो युद्धोंके बीचवाला धोखाधड़ीका समय ही शान्तिके नामसे पुकारा जाता है।"

शान्तिके विरुद्ध इस प्रकारकी भावना रखनेवाला श्नेदर अर्थ-पिशाच नहीं है। सबकी कमाई हड़पकर पैसा बटोरना ही उसका उद्देश्य नहीं है, बल्कि अपने कारखानेमें काम करनेवाले श्रमिकोंके लिए उसने बहुत-सी सुविधायें दे रखी हैं। उनके लिए खेल-कूद और विश्रामके साधन एकत्र कर दिये हैं और उनके बच्चोंके लिए पढ़ने-लिखनेकी सारी व्यवस्थायें की हैं। छोटे-छोटे बच्चोंके लिए अस्पताल हैं और अस्पतालमें अपने विषयके अच्छे-अच्छे विशेषज्ञोंको रखा गया है।

और यही दशा जेकोस्लोवेकियाकी थी—जर्मन अधिकारमें आनेके पहले। रिटर एमिल वान स्कोदा पिल्सेनके

स्कोदा वर्क सके अधिष्ठाता थे। स्कोदाकी विशेषता थी कि उन्हें कभी किसीने आवेशमें आते नहीं देखा। किसी समस्याके सुलझानेमें भले ही ६ महीने लग जायें, पर उन्होंने कभी धीरज नहीं खोया। घरमें, आफिसमें, कारखानेमें सदा उन्होंने एक ही भाव दिखाया। एक ही शान्त मुद्रा उनकी सर्वत्र देखी गयी।

स्कोदाने जिस समय काम शुरू किया था, उस समय उसके कारखानेमें सिर्फ ३० आदमी थे और आज प्रायः ३५ हजार श्रमिक काम करते हैं। स्कोदाने जेकोस्लोवेकियाको एक प्रबल राष्ट्र बनानेमें बहुत अधिक शक्ति लगायी थी और उसके प्रयत्नोंके कारण ही जेकोस्लोवेकिया शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर यूरोपका एक महान् स्वावलम्बी राष्ट्र हो गया था। जर्मनीने जेकोस्लोवेकियापर आक्रमण करनेके लिए धमकियां देनी शुरू की थीं, तो स्कोदाके बलपर ही। लोगोंने सोचा था कि जेकोस्लोवेकिया झुकेगा नहीं, पर वह अभागा देश अन्तर्राष्ट्रीय प्रवञ्चनाओंका शिकार हुआ।

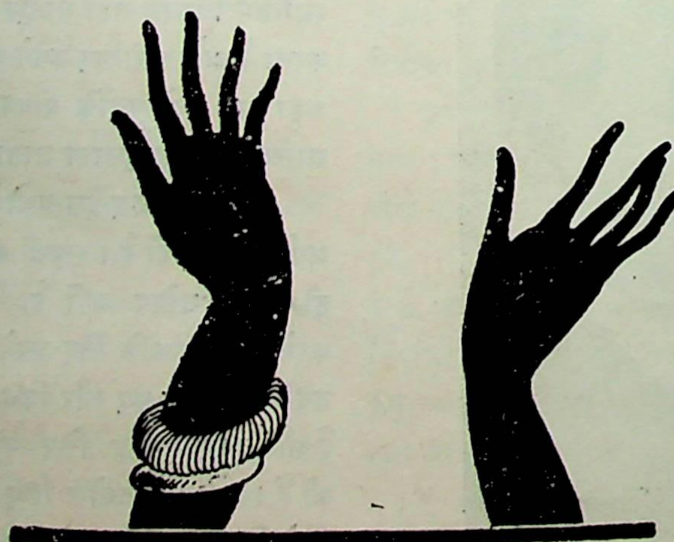
आज स्कोदाके कारखानेको लेकर तरह-तरहकी रहस्यमयी बातें बतायी जाती हैं। जर्मनोंने उसपर अधिकार कर लिया है और कहा नहीं जा सकता कि वहांकी वास्तविक स्थिति क्या है।

इस प्रकार संसारके ये पांच प्राणी वर्तमान महायुद्धके पीछे हैं। देशोंकी राजनीति और उनकी वैदेशिक नीति चाहे जो हो, पर इन लोगोंने तोपों, मशीनगनों और तरह-तरहके शस्त्रास्त्रोंसे देशको पाटना शुरू किया है। दिन-रात उनके भट्टे धधकते रहते और दिन-रात उनकी चिमनियां धुआं फेंकती रहती हैं। एक ओर भीषण संहार-लीला चल रही है और दूसरी ओर उससे भी अधिक तेजीसे शस्त्रास्त्र ढल रहे हैं।

और यह प्रगति है यूरोप, एशिया और अमेरिकाकी। इस समय शस्त्रास्त्रोंके कारखाने सबसे अधिक डिविडेण्ट अपने भागीदारोंको दे रहे हैं और इन भागीदारोंमें कितने ही राजनीतिज्ञ और शान्तिके उपासक लोग हैं, जो एक ओर विश्व-शान्तिकी समस्याओंमें उलझे नींद हराम कर रहे हैं और दूसरी ओर विश्व-अशान्तिके फलस्वरूप शस्त्रास्त्रोंके कारखानोंके लाभपर हाथ साफ कर रहे हैं।

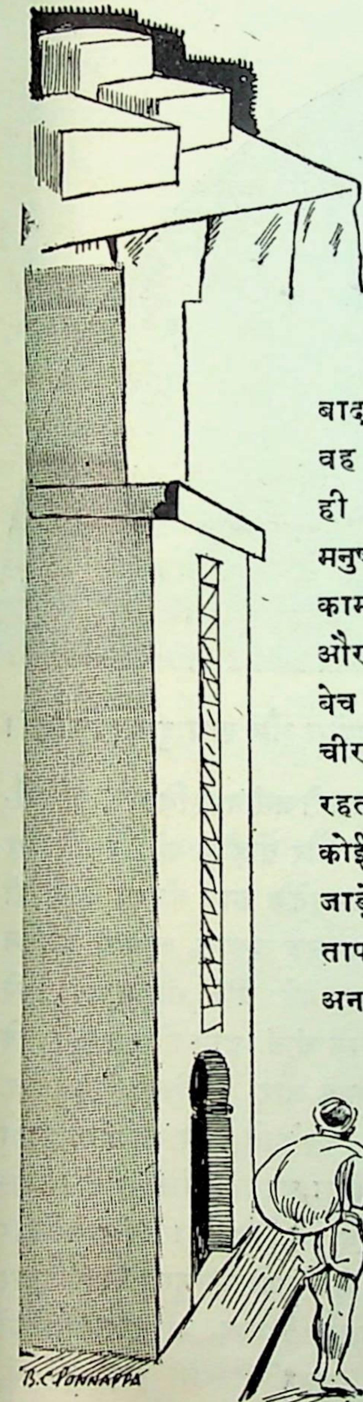
बर्नार्ड शाने इसीलिए इन्हें मौतका सौदागर कहा है।

———



कूड़े करकट से करोड़ों

श्री यतीन्द्र बी० एस-सी०

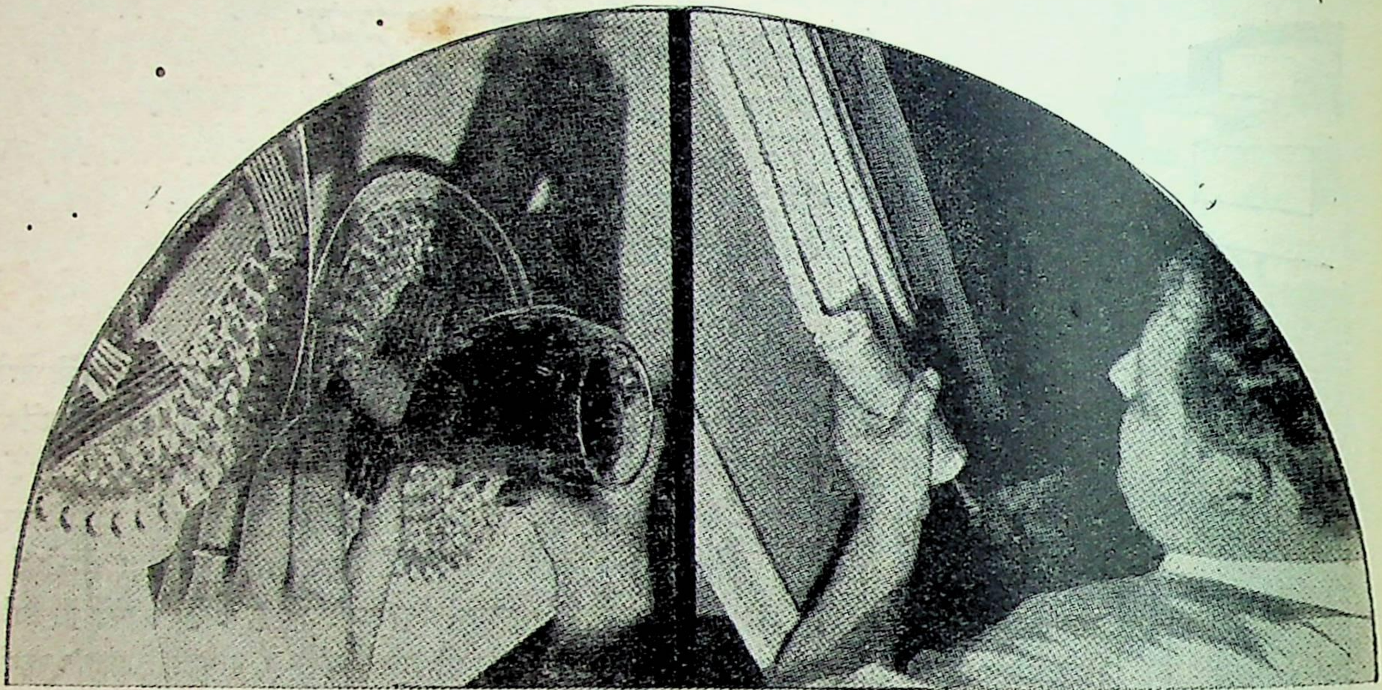




दूधसे मक्खन निकालनेके बाद जो हिस्सा रह जाता है, वह इस देशमें तो मिट्टीके मोल ही जाता है। यों भी वह मनुष्यों और पशुओंके पीनेके काम आ सकता है, आता है और अक्सर दही बनाकर उसे बेच दिया जाता है। लकड़ी चीरनेके बाद जो बुरादा पड़ा रहता है, उसे अन्य ऋतुओंमें तो कोई छूता भी नहीं, अलबत्ता जाड़ेके दिनोंमें उसे सुलगाकर तापनेके काममें लाते हैं। अनाजका छिलका पशुओंको चारेमें मिलाकर खिलाते हैं या फिर वह मिट्टीमें मिलाकर लगानेके काममें आ जाता है। आलूका उपयोग इस देशमें शाक-सब्जीके सिवाय अन्य कुछ नहीं। दूध फट जानेसे पानी जैसा जो पदार्थ बन जाता है, वह तो किसी काम नहीं आता। रन्दा करनेसे लकड़ीका जो हिस्सा खुरच जाता है, वह तो जला ही दिया जाता है, उसका और कोई उपाय नहीं। मूंगफलियोंके छिलके भी जला दिये जाते हैं। सूखे बेरोंकी गुठलियों और कितने ही वृक्षोंके फलोंका भी कोई उपयोग नहीं होता और व्यर्थ ही बरबाद होते हैं। परन्तु हम जहां इन चीजोंकी कोई कीमत नहीं जानते, वहां अमेरिकामें इसी कूड़े और करकटसे करोड़ों पैदा हो रहे हैं। यहां तो जो अन्न पैदा करनेवाले हैं, उन्हें खानेके ही लाले रहते हैं, हमेशा ही अच्छी फसल न होनेकी शिकायत रहती है; परन्तु अमेरिकामें नागरिकोंकी आवश्यकतासे अधिक फसल होती है और इस फसलसे बाजारोंको पाटकर वहांके किसान अपने पैरोंमें अपने ही हाथसे कुल्हाड़ी नहीं मारते और न फसलको खेतमें ही खड़े-खड़े नष्ट हो जाने देते हैं, बल्कि वे खेतीकी अतिरिक्त उपजको औद्योगिक केन्द्रोंके हाथ बेचकर सोना कमा लेते हैं। ये औद्योगिक केन्द्र खेती-से उत्पन्न इन चीजोंसे कितनी ही ऐसी चीजें तैयार करते हैं, जिनकी यों कल्पना भी नहीं की जा सकती है—और आगे शोध करनेका काम भी चल ही रहा है।

आज अमेरिकामें यह सम्भव है कि कोई चाहे तो तिनकेका मकान बनाये, घासके कपड़ोंका व्यवहार करे और अनाजकी नरईका कागज काममें लाये; परन्तु जिन द्रव्योंका नाम लिया गया है, उनसे ये चीजें तैयार करनेमें लागत बहुत ज्यादा पड़ जाती है। यह लागत कम आये और इन द्रव्योंसे तैयार की हुई ये चीजें इतनी सस्ती पड़ें कि बाजार-में चल सकें—यह एक समस्या है, जिसे हल करनेमें किसान, बाग-बगीचोंके मालिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक और सरकार, सब लगे हुए हैं।

यह हो सकता है कि अब अंगूर महिलाओंके वस्त्रोंमें दिखलाई पड़ें—धब्बेके रूपमें नहीं, रङ्गके रूपमें। अंगूरके बीजोंके तेलकी परीक्षा की जा चुकी है और यह पाया गया है



मक्खन निकले हुए दूध और आलू द्वारा प्रस्तुत मैदेसे सुस्वादु खाद्य वस्तुयें तैयार करनेका प्रयोग और सुस्वादु खाद्य-वस्तुयें।

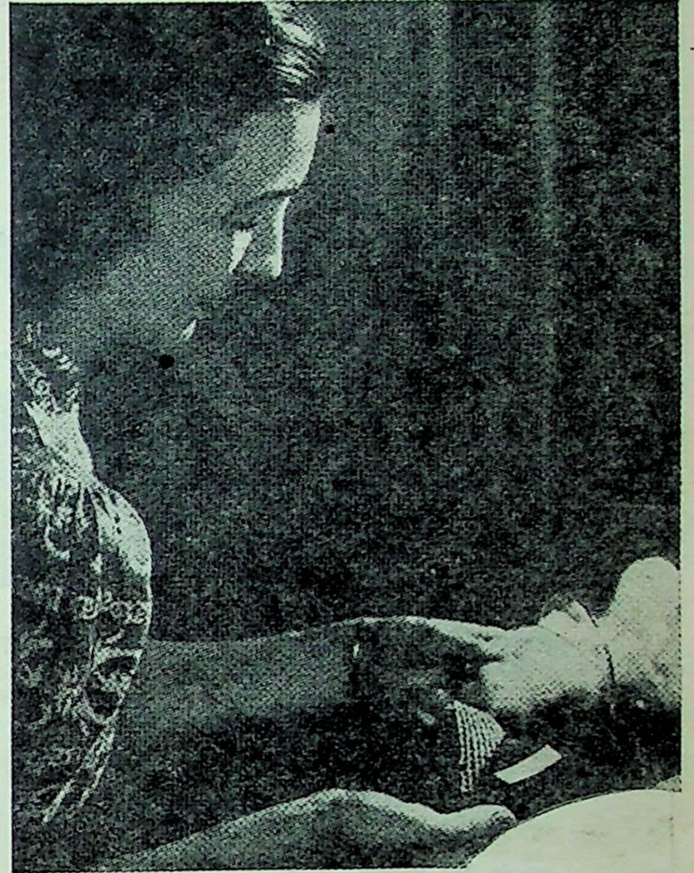
कि उसके संयोगसे किसी कपड़ेपर चढ़ाया हुआ रङ्ग बिलकुल पक्का हो जाता है और कभी उड़ता नहीं। शाक-सब्जीमें भी उसका व्यवहार करते हैं। बेरोंकी गुठलियोंके तेलको भी इसी तरह काममें लाया जा सकता है। अंगूर, किशमिश और मुनक्केके बीजोंका तेल रङ्ग और वारनिश बनानेमें काम देता है।

कुछ अन्य द्रव्योंको देखिये—आलुओंसे एक तरहका ऐसा चूर्ण और तरल पदार्थ तैयार किया गया है, जिसके मिल जानेसे पानी नहीं जमता। ओहियोमें बीट शुगरके कारखानोंमें जो फालतू चीजें बच रहती हैं, उनसे आज ग्लूटमिक एसिड बनाया जा रहा है। अमरूदोंको बिलकुल लुगदीकी तरह पीसकर और उसे मक्खन निकाले हुए दूधमें मिलाकर कुल ~) सेरकी लागतसे अमरूदी दूध तैयार किया और बेचा जा रहा है। यह एक नया खाद्य है, जिसे बहुत लोग पसन्द करते हैं। इसमें थोड़ी सुगन्धि डाल देनेपर तो यह बहुत ही स्वादिष्ट बन जाता है। बच्चोंको पेटकी गड़बड़ीमें जो चीजें व्यवहार करनेके लिए देते हैं, उनके सारे तत्त्व इस अमरूदी दूधमें भी होते हैं।

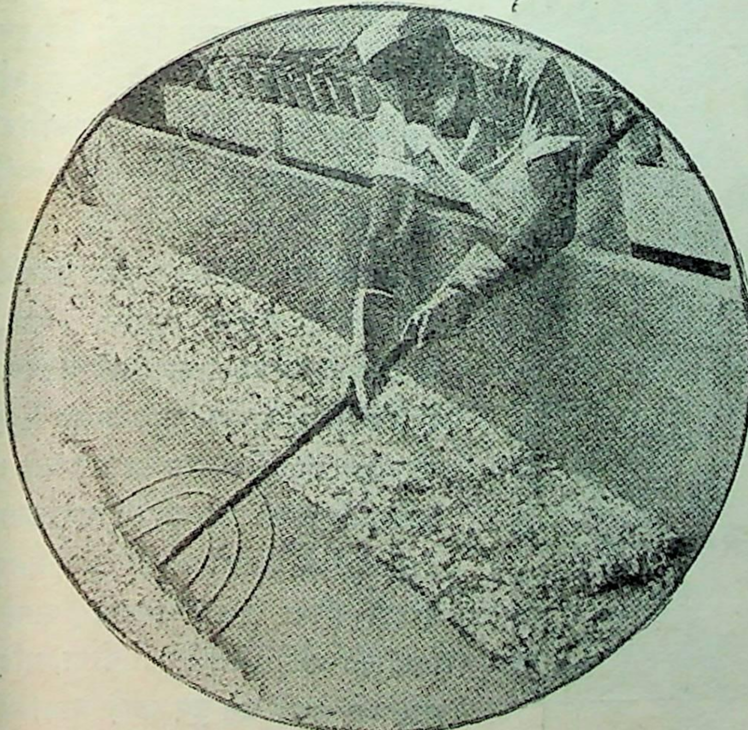
अनाजकी भूसीका उपयोग कई तरह किया जाता है, कहीं कोई चीज भरनेसे पहले उसे जमीनपर बिछाने, कुर्सियोंके गद्दे, कपड़े, टोप, पायदान और घोड़ोंके पट्टे बनाने और जानवरोंको चारेकी जगह खिलानेके काम तो वह आती ही हैं, उससे चटाइयां, कागज, आयल क्लाथ, कम्बल, पालिश करनेके पहिये और अन्य कई चीजें भी तैयार किये जाती हैं। नरईसे जो मूल्यवान चीजें प्राप्त हो सकती हैं, वे हैं सेलूलोज, इमारतके खम्भे और सिल्लियां, चारकोल, खाद्य द्रव्य, डाइनामाइटके धक्केको जज्ब कर जाने वाला पदार्थ, रेशे, ईंधन, तेल, पलीता, काठकी छोटी-मोटी चीजोंके बदले काम देनेवाली वस्तुयें, एसिड, कागज, गत्ता और चमकदार सूत। डण्ठलोंके बीचमें जो फुसफुसा पदार्थ होता है, वह भी उपयोगी है। उससे बारूद, चेहरेपर लगानेका पाउडर, ध्वनि-शोषक द्रव्य, इनक्यूबेटरोंमें डालनेका पर्त, लिनोलियम, मिट्टीके मीनाकारीके बर्तनोंकी तरहकी चीजें, वारनिश और अन्य कितनी ही चीजें बनायी जा सकती हैं, यह पता लगा लिया गया है।

लकड़ीसे लुगदी तैयार करनेवाली मिलोंसे जो कचरा निकलता है, उससे एक ऐसा पदार्थ बनाया जा रहा है, जिससे कितनी ही नित्य व्यवहारकी वस्तुयें बनेंगी।

उसकी शराब भी तैयार की जाती है। कनाडामें एक कारखाना है, जो वैसी लुगदीसे १ करोड़ गैलन शराब प्रतिवर्ष तैयार करना चाहता है। वानीलिन नामक जिस द्रव्यसे सुगन्ध पैदा की जाती है, वह भी लुगदी मिलके कचरेसे प्रस्तुत होने लगी है। कितनी ही वस्तुयें बनानेमें काम आनेवाले एक विशेष पदार्थ, वनस्पति तैल, एसेटिक एसिड, फारमिक एसिड और कारबन प्रस्तुत करनेके लिए जङ्गलकी बहुत-सी यों ही बरबाद जानेवाली चीजोंका उपयोग होनेकी व्यवस्था अमेरिकन सरकारने की है। ये चीजें लुगदी तैयार करनेवाली मिलोंका कचरा, लकड़ी चीरते समय गिरा हुआ बुरादा, रनन, छोटे-छोटे पौदे और छोटी-छोटी लकड़ियां भी, जिनका साधारणतः कोई उपयोग नहीं होता, हो सकती हैं। बालसम नामक पेड़की टहनियोंसे जो तेल निकाला जाता है, उसमें बड़ी ही मादक गन्ध होती है और उसे अनेक प्रकारके साबुनोंमें तो डाला ही जाता है, रङ्ग और वारनिशको पतला करने और उसे सुगन्धित बनानेके भी काममें लाते हैं। इस रङ्ग और वारनिशको जिन दरवाजों और खिड़कियोंमें लगाते हैं, उनमेंसे एक तरहकी सुगन्धि निकलती है और बड़ी रौनक मालूम होती है।



दूधके केसिन नामक द्रव्यसे प्रस्तुत ऊन।

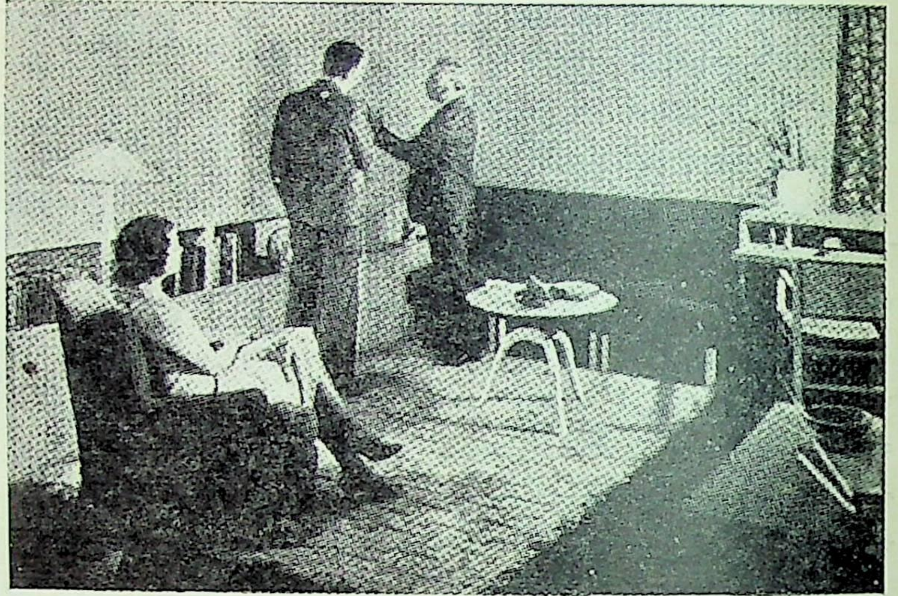


पनीरसे प्रस्तुत चीजोंमेंसे तोड़ निकाला जा रहा है।

खेतों और जङ्गलोंके करकटसे बिजली तैयार किये जानेकी सम्भावनायें भी हैं। नरई और तिनकोंको वैज्ञानिक प्रयोगोंसे गैसका रूप दिया जा चुका है और इनसे इतनी गैस तैयार की जा सकती है कि एञ्जिन बड़े मजेसे चल सकता है। इस करकटसे जो गैस तैयार होती है, वह साधारण गैसकी तरह ही होती है। जङ्गलकी जो अन्य चीजें बरबाद जाती हैं, उनसे कोयला तैयार किया जा सकता है। सम्भावना यह है कि इस तरह तैयार किये हुए कोयलेसे अमेरिकाके उत्तर-पश्चिम समुद्र-तटपर लोहेका उद्योग-धन्धा जमाया जा सकता है। पत्थरके कोयलेसे तैयार किये हुए कोलके स्थानपर करकटसे तैयार किये हुए वैज्ञानिक कोयलेका उपयोग हो सकेगा। अमेरिकाके इस क्षेत्रमें लकड़ी काटे जानेके फलस्वरूप लगभग ९ करोड़ टन

कचरा प्रतिवर्ष बरबाद जाता है। इसमें तार मिला देनेसे लकड़ी का 'कोक' बन जाता है और यह कच्चा लोहा गलानेकी भट्टियोंमें काम दे सकता है।

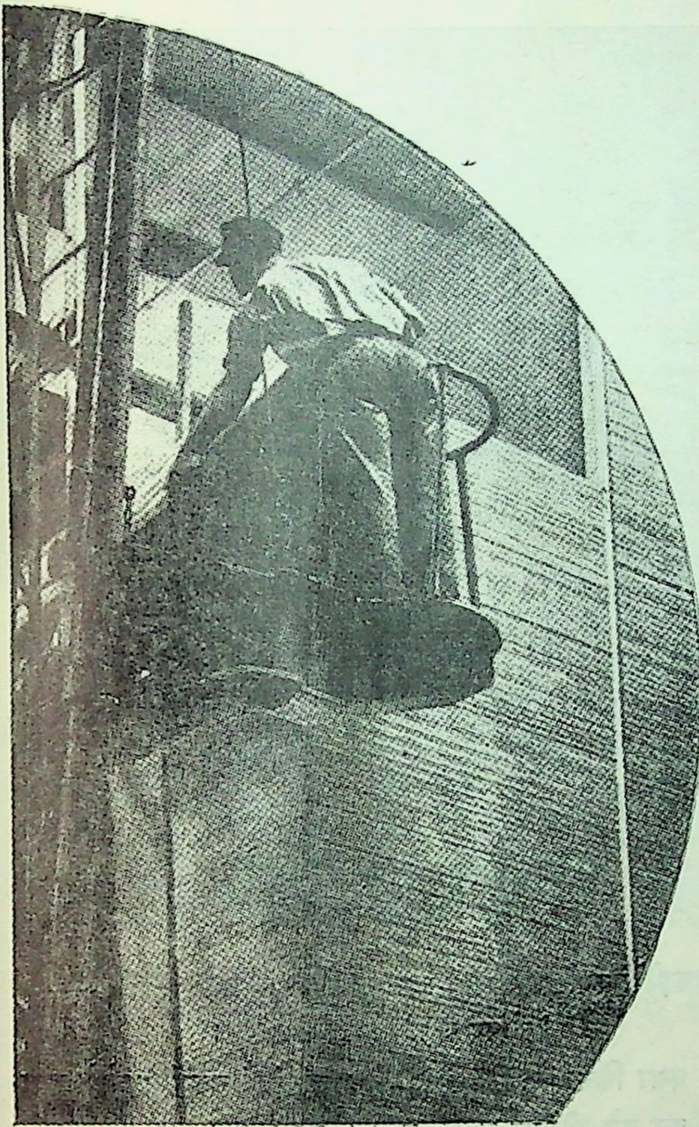
गन्नोंको पेर लेनेके बाद जो पाते बच रहते हैं, उनसे वैज्ञानिकोंको मेज-कुर्सी, इमारत बनानेका सामान और मोटरें बनानेमें सफलता हुई है। बात यह है कि अभी इन चीजोंमें जो सामान लगता है, वह महंगा है और पातोंसे जो पदार्थ तैयार किया जायगा, वह सस्ता पड़ेगा। किन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण जिस बातकी ओर वैज्ञानिकोंकी दृष्टि गयी है, वह है मक्खन निकले हुए दूध और पनीरसे मूल्यवान चीजें तैयार करना। अमेरिकामें यह लगभग ३० अरब क्वार्टमेंसे ६ अरब क्वार्टको छोड़कर बाकी सारा प्रतिवर्ष यों ही बरबाद जाता था। किन्तु अब इस २४ अरब क्वार्ट मक्खन निकले हुए दूध पनीर आदिके उपयोगके लिए कई उपाय खोज लिये गये हैं। 'केसिन' नामक द्रव्यको कागजपर चढ़ानेके काममें लाते हैं। रंगनेके उद्योगमें भी उसकी कुछ खपत होने लगी है। कुछ कपड़ोंमें मांड़ी देने, चमड़ा कमाने, बटन, किटोसिया और बक्सुआ बनाने और फर्श पर बिछानेका कपड़ा तैयार करनेके लिए भी आज उसका उपयोग हो रहा है। केसिनसे एक तरहका सूत तैयार किया जाता है, जो देखनेमें बढ़िया ऊन जैसा मालूम होता है। अब इस बातसे किसीको कोई आश्चर्य नहीं होगा, यदि भविष्यमें दूधके बने हुए कपड़े बाजारमें आयें और हमारे कपड़ोंमें अधिकांश



करकटके बोर्डोंसे तैयार किया हुआ कमरा।



ऊपर, सोयाबीनसे प्रस्तुत पदार्थ। नीचे, सोयाबीनके पदार्थसे तैयारकी हुई चीजें।



करकट (काठ) से तैयार किये हुए बोरोंको जमा किया जा रहा है।

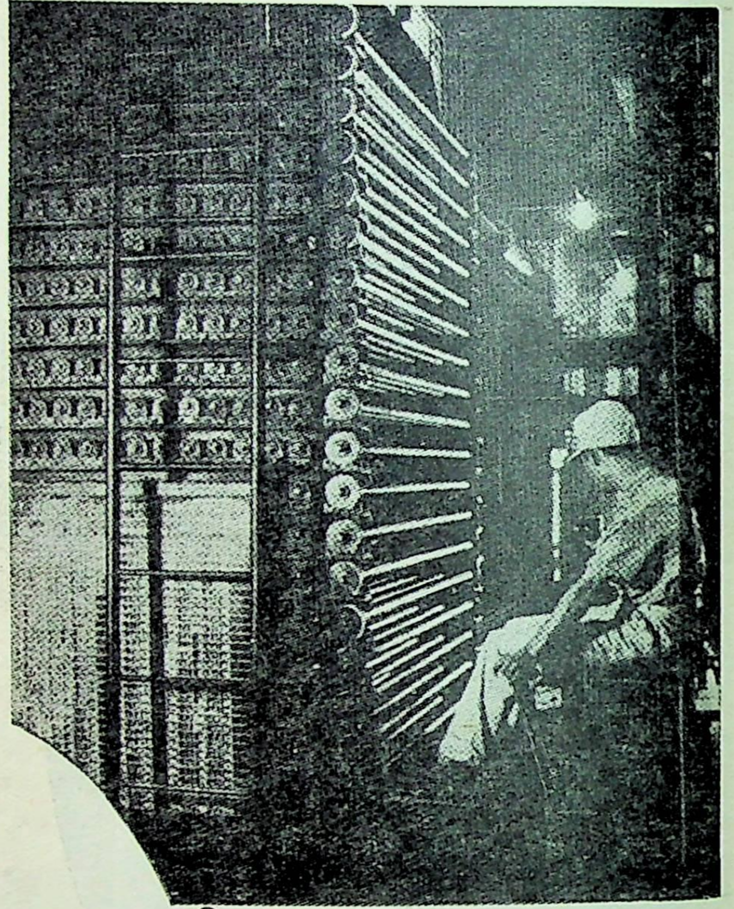
उन्हींका हो। मक्खन निकले हुए दूधमें लगभग ३ प्रतिशत केसिन नामक पदार्थ होता है। अमेरिकामें औसतसे प्रत्येक गाय लगभग ४००० पौण्ड दूध प्रतिवर्ष देती है। उसका अर्थ यह है कि उसके केसिनसे करीब १०० पौण्ड सूत मिल सकता है।

दूधके पनीरसे तैयार किये हुए एसिडसे वैज्ञानिकोंने रबड़ जैसा एक पारदर्शी पदार्थ तैयार किया है, जिससे कितनी ही चीजें तैयार की जा सकती हैं। कृत्रिम कांचसे कुछ अधिक लचीला और मुलायम होनेके साथ ही पनीरसे प्रस्तुत यह द्रव्य बहुत ही लचीला है, आसानीसे जैसे चाहे वैसे ही उसे मोड़ा जा सकता है और चिमड़ा तो वह इतना होता है कि खींचनेपर भी टूटना नहीं जानता। मक्खन निकले हुए दूधसे जब केसिन नामक पदार्थ निकाल लिया जाता है, तब उसके बचे हुए भागमें खमीर उठाकर लेक्टिक एसिड तैयार करते हैं, जिसका उपयोग बर्फ, शरबत, अचार, मुरब्बा आदिमें भी किया जाता है। कपड़ोंपर रङ्ग चढ़ाने, चमड़ेको कमाने और दूसरी कितनी ही चीजें तैयार करनेके लिए भी उसका उपयोग हो सकता है।

जब पनीर सुखा दिया जाता है, उसके नीचे एक सफेद पदार्थ रह जाता है। यह बहुत ही आसानीसे पानीमें घुल जाता है। इस पदार्थको रोटी, मिठाई आदि खाने और पीनेकी चीजोंमें व्यवहार करते हैं। उसे फलों, शाक-सब्जीके रसमें मिलाकर और अन्य प्रकारसे भी काममें लाते हैं। दूधमें जो पदार्थ मिश्रित हैं, वे इस द्रव्यसे प्राप्त किये जा सकते हैं—विशेषतः चूना जातीय पदार्थ और फास्फोरस-ऐसे रूपमें, जो आसानीसे शरीरमें मिल जाता है।

जङ्गलोंमें बुरादा, तिनके, करकट, छाल आदि जो चीजें बेकार जाती हैं, उनसे वाल बोर्ड, इनसुलेटिङ्ग बोर्ड, लकड़ीकी खपड़ैल, और दूसरी कितनी ही बाजारू चीजें बनायी जा सकती हैं। लकड़ीकी खपच्चियोंको एक यन्त्रमें डालकर स्टीमसे इतना दबाव डालते हैं कि खपच्चियां रेशे-रेशे हो जाती हैं। इसके बाद पानीके संयोगमें लाकर उस पदार्थको इतने जोरसे दबाया जाता है कि वह कठोर बोर्ड बन जाता है। १ अरब ५० करोड़ डालरकी जो कपास पैदा होती है, उसका बिनौला पहले बरबाद ही जाता था, परन्तु अब उसका मूल्य २० करोड़ डालर उठने लगा है। बिनौलेके तेलसे आज साबुन और मोमबत्तियां बनायी जाती हैं, लेम्पोंमें जलाने और खाना पकानेमें भी यह काम आता है। कपासकी किकसियोंसे चमकीला सूत तैयार किया जा रहा है और हेण्डबेगोंका कपड़ा, दीवालोंपर लगानेका कागज भी। विस्फोटक द्रव्योंके सिलसिलेमें काम आनेवाली ग्लिसरिनसे लगाकर 'खुश्क बर्फ' के लिए उपयोगी "कारबन डिआक्जाइड" तक लगभग १०० ऐसी व्यापारिक चीजोंका पता चल

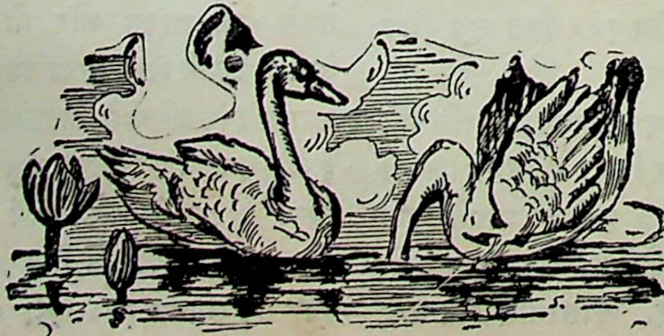
चुका है, जो अनाजसे तैयार की जा सकती हैं। आज अनाजकी जितनी फसल होती है, उसका दशांशसे अधिक भाग फैक्टरियोंके उपयोगमें आ जाता है। अभी तक सोयाबीनसे जितनी चीजें तैयार की जा चुकी हैं, उनसे भी अधिक चीजें तैयार होनेकी सम्भावनायें हैं। गेहूंके भूसेसे कागजके बक्स तैयार किये जा रहे हैं। इसी तरह ओरके छिलकोंसे भी एक प्रकारका तेलतैयार किया जा रहा है।



लकड़ीके कर्कटसे बोर्ड तैयार हो रहे हैं—करकटकी लुगदीको रेकोंपर चढ़ा दिया गया है।

जङ्गल और खेतोंके कचरे या फसलकी अनावश्यक उपजको उपयोगमें लानेके सम्बन्धमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उससे सेलूलोज नामक पदार्थ तैयार कर लिया जाता है और फिर इससे तरह-तरहकी चीजें तैयार की जाती हैं। हम सब जानते हैं कि आजकल तरह-तरहकी चीजें तैयार करनेके लिए सेलूलोज नामक पदार्थ कितने कामका है। उससे सभी तरहका कागज, चमकीले धागे, इमारत बनानेमें काम आनेवाले बोर्ड, चमड़ेके व्यवसायके लिए उपयोगी सीमेण्ट और दूसरी कितनी ही चीजें बनायी जा सकती हैं। यह सेलूलोज जब लकड़ीसे तैयार किया जाता है, खेतीकी उपजवाले सेलूलोजसे सस्ता भी पड़ता है। अमेरिकामें लगभग तिहाई जमीन ऐसी है कि उसमें जङ्गल आसानीसे उगाया जा सकता है। इस सिलसिलेमें अमेरिकामें चार प्रयोगशालाओंमें शोधका काम जारी है और वैज्ञानिक इस समस्याको हल करनेमें लगे हुए हैं कि गेहूं और जौके भूसे, सरसों और राईकी तोरी, ओट और धानके छिलके और कपासकी किकसियां और कपसेंटी आदिके रूपमें खेतोंकी जो ८॥ करोड़ टन उपज व्यर्थ जाती है, उसका क्या किया जाय। इसी तरह जङ्गलोंमें लकड़ी कटनेसे लगाकर उसे चीरकर तख्ते बनाये जाने तक, लगभग चतुर्थांस या पञ्चमांश भाग बरबाद हो जाय, उसे किस तरह काममें लाया जाय? इस सम्बन्धमें विज्ञानने यद्यपि रास्ता बहुत कुछ साफ कर दिया है—तथापि कूड़े, करकटसे करोड़ों रुपये कमानेके लिए अभी बहुत कुछ काम बाकी पड़ा हुआ है।

———



यदि संसारमें सिक्केका चलन बन्द हो जाय

श्री सन्तराम, बी० ए०

मानव-समाजके लिए सचमुच वह बड़े ही दुर्भाग्यका दिन था, जिस दिन उसने सिक्केका आविष्कार किया। संसारमें आज जितनी अशान्ति, रक्तपात, मारकाट, बर्बरता और नृशंसताके दृश्य देख पड़ते हैं, उनमेंसे अधिकांशके मूलमें यह सिक्का ही है। इस सिक्केने मनुष्य-समाजमें धन-लोलुपता बढ़ा दी है। इस सिक्केके प्रतापसे ही एक मनुष्य लाखों मनुष्योंको भूखा मारकर आप लाखों रुपया सञ्चित कर लेता है। जब सिक्का नहीं था, तब ऐसी बात सम्भव न थी। मनुष्यको जीनेके लिए आटा, दाल, घी, दूध, फल-फूल और वस्त्र आदि जिन वस्तुओंकी आवश्यकता है, उनको बहुत बड़े परिमाणमें सञ्चित करके कोई भी व्यक्ति चिरकाल तक सुरक्षित नहीं रख सकता। थोड़ी देर बाद ये वस्तुयें गल-सड़कर निरर्थक हो जाती हैं। फिर इनको दूसरोंसे छीनकर अपने यहां ले जाने और सञ्चित रखनेके लिए भी बड़े श्रमकी आवश्यकता है। परन्तु इसके विपरीत, सिक्के या नोटोंके रूपमें एक मनुष्य लाखों रुपया बड़ी आसानीसे सञ्चित रख सकता और दूसरोंको भूखों मार सकता है। इस प्रकार सिक्केके अभावमें मनुष्यको अमित धन-सञ्चयका विचार तक नहीं आ सकता, और समाजमें अपेक्षाकृत अधिक सुख-शान्ति रह सकती है।

पैसेने बहुसंख्यक लोगोंके जीवनको निस्तब्ध नैराश्यका जीवन बना दिया है। पैसेकी निरन्तर चिन्ता और आयास उनके लिए एक प्रकारके असाध्य रोगका रूप धारण कर चुका है। वे हर वक्त कामकी मशीन बने रहते हैं। यह मूर्खोंका जीवन है। वे समझते हैं, इसके बिना उनके लिए और कोई उपाय नहीं। परन्तु यह उनकी भूल है।

इस पृथ्वीपर अपनेको जीते रखना कोई कड़े श्रमका काम नहीं, वरन् एक क्रीड़ा-कौतुक है; परन्तु नियम यह है कि हमारा जीवन सरल एवं समझदारीका हो। सादा जीवन बितानेके लिए बहुत अधिक पदार्थोंकी आवश्यकता नहीं। मनुष्य भूमिके छोटे-से खण्डपर अपने हाथसे काम करके इतना खाद्य उत्पन्न कर सकता है, जो वर्ष-भरके लिए उसे पर्याप्त हो सकता है। इसके लिए बहुत अधिक पसीना बहाने और दिन-रात लगे रहनेकी आवश्यकता नहीं। आजसे कोई १०० वर्ष पूर्वकी बात है, अमेरिकाके प्रसिद्ध विचारक श्री हेनरी डेविड थोरोने शान्त, सरल और अनुशासनका जीवन बितानेका प्रयोग करके देखा था। वे नगर छोड़कर एक बनमें चले गये थे और अपनी आवश्यकताकी प्रायः सभी वस्तुयें अपने हाथसे उत्पन्न करते थे। वे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक, "वाल्डन" में लिखते हैं कि वर्षमें छः सप्ताह मजदूरकी भांति काम करके मैं अपने सारे खर्च निकाल लेता था। मैं अनुभव करता हूं कि यह व्यवसाय अतीव स्वतन्त्र था। मजदूरका दिन सूर्यास्तके साथ समाप्त हो जाता है। तब उसे अपना मन-भाता काम करनेकी छुट्टी रहती है। मुझे सारा शीतकाल और ग्रीष्मका अधिकांश समय अध्ययनके लिए मिल जाता था।

यदि मनुष्य मालूम कर ले कि वे कौन-कौन थोड़े-से पदार्थ हैं जिनके बिना हम जीवित नहीं रह सकते, तो सभ्यतापर इतरानेवाले नगरोंके बीच भी, आदिम जीवन बितानेमें बड़ा लाभ रहता है। विलासिताकी अधिकांश वस्तुयें और जीवनके अनेक कथित सुख-साधन न केवल अनिवार्य ही नहीं, वरन् मानव-जातिके उत्थानमें निश्चित रूपसे बाधायें हैं। हमारा जीवन छोटी-छोटी बातोंमें नष्ट हो जाता है। अधिकांश लोग नीच एवं अधम जीवन बिता रहे हैं। उन्हें सदा ऋणसे छुटकारा पाने या रोग और बुढ़ापेके दिनोंके लिए कुछ बचानेकी ही चिन्ता लगी रहती है। वे अपने जीवनका सर्वोत्तम भाग धन एकत्र करनेमें लगा देते हैं, ताकि आयुका सबसे कम कीमती समय वे स्वतन्त्रतापूर्वक बिता सकें। ऐसा ही एक मनुष्य धन कमाने अफ्रीका गया था, ताकि धन-सञ्चयके पश्चात् वह स्वदेश लौटकर एक कविका जीवन बिता सके।

व्यक्तियोंके सदृश राष्ट्र भी विलासितामें डूब रहे हैं। उन्होंने अपने खर्च और सुख-साधन बहुत बढ़ा लिये हैं।

उनके सामने सिवा खाने-पीने और मौज उड़ानेके और कोई उच्च आदर्श नहीं। इन सुख-साधनोंको पूरा करनेके लिए एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रको मिटानेपर तुला है, उसे अपना गुलाम बनानेकी भरसक चेष्टा कर रहा है। इन सब खराबियोंका इलाज, क्या व्यक्तियोंके लिए और क्या राष्ट्रोंके लिए, है कड़ी मितव्ययता, जीवनकी सादगी और उद्देश्यकी उच्चता। भोग-विलास और सुख-चैनकी सामग्रीके सम्बन्धमें पूछो तो संसारमें जितने भी बड़े बुद्धिमान, वैज्ञानिक, तत्त्ववेत्ता और मनस्वी हो गये हैं, उन सबका जीवन अतीव सादा था।

बहुत-से लोग जीवनकी कृत्रिम चिन्ताओंमें इतने फंसे रहते हैं कि वे जीवनके सुन्दर फलोंका आस्वादन नहीं कर पाते। तत्त्वज्ञानी होनेके लिए केवल सूक्ष्म विचार रखना ही पर्याप्त नहीं, वरन् विवेकसे प्रेम और सरलता, स्वतन्त्रता, उदारता और विश्वासका जीवन बिताना भी आवश्यक है। जीवनकी समस्याओंको केवल सैद्धान्तिक रूपसे नहीं, वरन् क्रियात्मक रूपसे हल करना चाहिए। राष्ट्रोंको दुर्बल करके नष्ट करनेवाली विलासिताका स्वरूप क्या है?

राष्ट्रोंको एक पागलपन-सा हो रहा है। वे दूसरे राष्ट्रोंकी धन-सम्पदा लूटकर आप सुख-चैनमें रहना चाहते हैं। कई अपनी विजयों और स्मारक-स्तम्भों द्वारा अपने नामको अमर बनानेका यत्न करते हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि वे अपने नामको अमर बनानेके लिए अपनी चाल-ढालको मार्जित और स्निग्ध बनायें। ईंट-पत्थरके स्तम्भों द्वारा नहीं, वरन् अपनी विचार-शक्ति द्वारा उन्हें अपने नामको अमर बनानेका यत्न करना चाहिए। बुद्धिमत्ताका एक भी अच्छा काम चांद-जितने ऊंचे स्मारक-स्तम्भसे अधिक अच्छा है।

मनुष्य पशुओंका-सा सादा भोजन खाकर भी सबल और स्वस्थ बना रह सकता है। एक विवेकशीलको ग्रीष्म-कालमें मक्कीके भुने हुए दो भुट्टे और छाछका एक गिलास मिल जाये, तो बस है। हमारे वैशेषिक-दर्शनकर्ता महामुनि कणाद फसल कट जानेके बाद खेतोंमें पड़े हुए अन्नके दाने उठाकर ही गुजर कर लेते थे।

आजकल लोग आवश्यकतासे अधिक वस्त्र पहनते हैं। फैशनके लिए कपड़ोंपर बहुत अधिक व्यय किया जाता है। परन्तु कपड़ेपर थेगली लगी होनेसे ही कोई व्यक्ति घटिया नहीं हो जाता। किसी महत्त्वपूर्ण कामको करनेके लिए नया सूट पहननेकी आवश्यकता नहीं।

आंधी-पानीसे रक्षाके लिए कोई आश्रय अवश्य होना चाहिए। परन्तु सदा इस चिन्तामें घुलते रहना कि मेरा मकान भी मेरे पड़ोसीके भवनके समान ही विशाल और सुन्दर होना चाहिए, बड़ा भारी दुःख है।

जिस मनुष्यका जीवन सादा और आवश्यकतायें कम हैं, उसके लिए घास-फूसकी झोंपड़ीमें जो आनन्द है, वह राजभवनमें नहीं। वह सवेरे पक्षियोंके साथ उठता है और पक्षियोंकी भांति ही निश्चिन्ततासे उल्लास प्रकट करता है। सवेरा दिनका सबसे अधिक स्मरणीय समय होता है। परन्तु जिस व्यक्तिका लचीला और सबल विचार सूर्यके साथ दौड़ता है, उसके लिए सारा दिन ही प्रातःकाल है। वह पेड़ोंके झुण्डमें बैठकर भगवान् भास्करके दर्शन करता हुआ, सूर्योदयसे मध्याह्न तक, आत्मचिन्तनमें मग्न रहता है। वृक्षोंपर सुन्दर पक्षी अपनी मधुर तानसे उसका मनोरञ्जन करते हैं, जङ्गली फूल उसके मस्तिष्कको सुवासित करते हैं और कलकल नाद करती हुई गिरि-तरङ्गिणी उसको शान्ति प्रदान करती है। कुछ लोगोंको शायद यह केवल आलसीपन जान पड़े, परन्तु आत्म-चिन्तनमें जो आनन्द है, वह सभ्यताके बड़े-बड़े सुख-साधनोंमें नहीं।

तपस्वी मनुष्य अपना सारा काम आप कर लेता है। वह अपने कपड़े आप धोता है, अपना कमरा आप बुहारता है, अपनी गाय आप दुहता है, अपनी लकड़ी आप काटता है, अपना मकान आप लीपता है। उसे किसी भी अच्छे कामके करनेमें अपमानका अनुभव नहीं होता। उसे पैसे खर्चकर सिनेमा जानेकी आवश्यकता नहीं। सारा संसार उसके लिए सिनेमा है। उसे सुगन्धित तेलोंकी आवश्यकता नहीं। प्रकृतिकी पुष्पावली ही उसके लिए लेवेण्डरकी शीशी है। उसे बिजलीके पङ्खेकी आवश्यकता नहीं। पवनदेवता ही उसका पङ्खाकुली है।

प्रकृतिके सहवासमें जीवन बितानेवालेके लिए कोई बहुत शोककी बात नहीं हो सकती। वह सब ऋतुओंका आनन्द लूटता है। कोई भी वस्तु उसके जीवनको भारभूत

बसन्त कुसुमाकर रस

सोना, मोती आदि से बना हुआ। किसी तरहसे आराम न होनेवाले धातु रोग और मूत्र रोग की सबसे अच्छी दवा।

कीमत :—७ गोली २) तोला १५)



मकरध्वज

अनुपान भेदसे सब रोगों को नष्ट करता है। पुराने और कठिन रोगोंमें इस दवा से जो लाभ होता है, वैसा संसारकी किसी दवासे नहीं होता।

कीमत :—७ खुराक की पाकेट का ॥)



श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन

(कलकत्ता)

रस, भस्म, कूपीपक्क रसायन, आसव, अरिष्ट, औषध तैल, घृत, अवलेह, चूर्ण, बटी आदि हर प्रकार की शास्त्रोक्त आयुर्वेदीय दवाओंका सबसे बड़ा और विश्वासी दवाखाना।

(दवाइयां हर जगह हमारे एजेन्टोंके पास मिलती हैं)



च्यवनप्राश

फेफड़ोंको Cod liver oil से ज्यादे मजबूत करता है। पुरानी दमा, खांसी, राजयक्ष्मा आदिकी मशहूर दवा।

कीमत :—२० तोले का डिब्बा १), १० तोले का डिब्बा ॥-)



चन्द्रप्रभा बटी

धातु पुष्टि की सबसे अच्छी और मशहूर शास्त्रीय दवा। वैद्य लोग हजारों वर्षों से इसे व्यवहार करते आ रहे हैं।

कीमत :—३० गोलियों की शीशी १)

नहीं बना सकती। वह बिजलीमें इन्द्रदेवका, वर्षामें वरुणका और आंधीमें पवनदेवका दर्शन करता है।

ऐसा मनुष्य अपनेको कभी अकेला नहीं अनुभव करता। वह एकान्तसे कभी नहीं ऊबता। वह कौन अन्तर है, जो मनुष्यको उसके साथियोंसे पृथक् कर उसे अकेला अनुभव कराता है? मनुष्य टांगोंसे चलकर एक-दूसरेके निकट नहीं होते। हमें किसके निकट पहुंचकर सबसे अधिक आनन्द मिलता है? निश्चय ही बहुत बड़े जनसमूहके निकट नहीं, वरन् आत्म-चिन्तन द्वारा जीवनमूल परमात्माके निकट पहुंचकर।

आज संसार पैसेके लिए बावला हो रहा है। मनुष्य अपनी आवश्यकतासे बहुत अधिक सामग्री और धन अपने पास सञ्चित करना चाहता है। इसीसे संसारमें घोर अशान्ति है। व्यक्ति और राष्ट्रकी यह लोलुपता प्रकृति-नियमके विरुद्ध है। देखिये, पीपलका पेड़ है। वह पातालसे रस खींचता है और अपनी टहनियों और पत्तोंको पहुंचाता है। जिस समय पत्ता कोंपल होता है, उसे अधिक पोषणकी आवश्यकता रहती है। वह अधिक रस लेता है। जब वह बड़ा होकर पूर्ण आकारका हो जाता है, तो फिर वह और रस लेना बन्द कर देता है। अब वह रस दूसरी कोंपलोंके काम आने लगता है। सब पत्ते प्रायः एक-से आकारके रहते हैं। ऐसा नहीं होता कि एक पत्ता तो एक इञ्च चौड़ा हो और दूसरा दस इञ्च। जब एक पत्ता पूर्णताको प्राप्त हो जाता है, तो फिर वह लालचसे और रस लेकर अपने पास सञ्चित नहीं करता। इस प्रकार जिसको जितने पोषणकी आवश्यकता रहती है, वह केवल उतना ही लेता है। परन्तु हम मनुष्य-समाजमें क्या देखते हैं? एक मनुष्यके पांच बच्चे हैं। उसे तो १५) मासिक मिल रहा है और जिसके एक भी बालक नहीं, वह पांच सहस्र ले रहा है। अपने उस फालतू धनसे वह समाजमें दुराचार और उपद्रव फैलाता है। एकके पास घरमें खानेको एक जूनका भोजन नहीं, दूसरा गुलछर्रे उड़ा रहा है।

हमारे प्राचीन भारतीय ऋषियोंने समाजमें शान्ति रखनेके लिए उपदेश दिया है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

अर्थात् यह सारा जगत् ईश्वरका वास-स्थान है। हे मनुष्य, तू त्यागसे पदार्थोंका भोग कर, लालच मत कर, यह धन किसी एकका नहीं, सब परमात्माका है।

जब त्यागके साथ किसी पदार्थका भोग किया जाता है, तो उससे मनुष्यका कल्याण होता है, जहां त्याग नहीं, केवल भोग ही है, वहां क्षय है।

संसारमें धनकी विषमताके कारण उत्पन्न होनेवाले अनिष्टोंको दूर करनेके लिए यूरोपीय समाज-शास्त्रियोंने मार्क्सवाद, बोल्शेविज्म प्रभृति अनेक वाद निकाले हैं। परन्तु कोई सफल होता दिखाई नहीं देता। जब तक जनताकी मनोवृत्ति ठीक न हो, तब तक केवल डण्डेके जोरसे सामाजिक बुराइयां दूर नहीं हो सकतीं।

हमारे भारतमें भी इस सम्बन्धमें किसी समय एक प्रयोग किया गया था। इसका नाम था वर्ण-व्यवस्था। यह भी एक प्रकारका वाद था। इसका सिद्धान्त यह था कि समाजका प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता एवं सामर्थ्यके अनुसार समाजकी कुछ-न-कुछ सेवा अवश्य करे और समाज उसके भरण-पोषणका उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले। उस समय कोई सिक्का या नोट नहीं थे। समाज प्रत्येक व्यक्तिको उसकी योग्यता देखकर एक प्रमाण-पत्र दे देता था कि यह व्यक्ति अमुक काम कर सकता है। जहां भी वह व्यक्ति जाता था, उससे वह काम लेकर उसे खान-पानकी चिन्ताओंसे मुक्त कर दिया जाता था। आजकलकी भांति लाहौरसे अमृतसर जानेवाले लोहारके लिए जेबमें रुपये रखनेकी जरूरत न थी। अमृतसर पहुंचते ही उसे रोटी मिल जाती थी और वह लोहारका काम करने लगता था। अब तक भी कहीं-कहीं देहातमें दूध, घी, फल आदि बेचना पाप समझा जाता है। गांवमें जाइये, आपको खानेके लिए ये पदार्थ मुफ्त मिल जायंगे। आपसे कोई मोल नहीं लिया जायगा। मेरे अपने देखनेकी बात है, वैद्य लोग दवाईका मोल नहीं लेते थे। धनी लोग उनकी आवश्यकताओंको पूरा करते थे और वे निर्धनोंकी निःशुल्क चिकित्सा करते थे। पढ़ानेकी योग्यता और प्रवृत्ति रखनेवाला व्यक्ति समाजके बालकोंको पढ़ाता था; परन्तु किसी बालकसे कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। खेती-बारी और पशु-पालन करनेवाले लोग दूध-दही और अनाजसे सेवा करते थे। जुलाहा

किसानके लिए कपड़ा बुनता था, बढ़ई मकानके दरवाजे और खिड़कियां बनाता था, नाई हजामत करता था, धोबी कपड़े धोता था, चमार जूता बनाकर देता था। इन सबका किसानकी फसलमें भाग रहता था। इस व्यवस्थाने कुछ काल तक तो बहुत अच्छा काम दिया। परन्तु जब बादको इसमें ऊंच-नीचका भाव उत्पन्न हो गया और विभिन्न काम करनेवालोंके लिए परस्पर रोटी-बेटी-व्यवहार निषिद्ध ठहरा दिया गया, तो यह समाज-व्यवस्था शान्तिदायिनी न रहकर विनाशकारी हो गयी। लोग अपने कर्तव्य-पालनकी अवहेलना करके केवल अधिकारोंपर ही सारा जोर देने लगे। अब तो इस सिक्के और नोटके युगमें इस व्यवस्थाकी आवश्यकता ही नहीं रह गयी। अब कलकत्तासे बम्बई जानेवाले व्यक्तिको ब्राह्मण या चमारका प्रमाण-पत्र या लेबल देनेकी आवश्यकता नहीं। यदि उसकी जेबमें पैसे हैं, तो वह वहां जाकर भूखा नहीं मर सकता।

हिन्दू सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा भी इसी सिद्धान्तके अनुसार बनी है। इसमें सब कुटुम्बियोंको अपनी योग्यताके अनुसार काम करना पड़ता है, और प्रत्येकको उसकी आवश्यताके अनुसार वस्त्र-भोजन आदि मिल जाता है। सम्पत्ति सबकी सम्मिलित रहती है। परन्तु परिस्थितियोंके बदल जानेसे अब यह प्रथा भी कामकी नहीं रही। इसके कारण परिवारोंमें कलह और अशान्ति है। सिक्केका चलन जारी हो जानेसे अब लोगोंको इस प्रथाकी उतनी आवश्यकता भी नहीं रही।

मेरी रायमें तो यदि संसारमें सिक्केका चलन बिलकुल बन्द हो जाय, तो इसके साथ ही भयङ्कर महायुद्ध भी बहुत कम हो जायं और संसारके सभी राष्ट्र प्रेमसे रहने लगें। परन्तु ऐसा कभी हो सकेगा, यह कहना बहुत कठिन है।



अमेरिकाके अरबपतियोंसे एक भारतीयकी भेंट

श्री इरालिल वर्गेश, एम० ए०

अमेरिका धनकुबेरोंका देश है, और उनसे मिलनेके लिए सभी लालायित रहते हैं। वर्षों पहले मैंने अपने अमेरिका-भ्रमणके सिलसिलेमें वहांके तीन अरबपतियोंसे मुलाकात की थी। राकफेलर, डाज और कारनेगी—तेल, तांबा और इस्पातके जरिये करोड़ों रुपये कमानेवाले इन व्यक्तियोंसे मिलकर मैंने अपने संस्मरण लिखे हैं। अतः पंक्तियां लिखी जा रही हैं।

अमेरिकाके अरबपतियोंसे खुलकर मिलनेका मौका कब मिलता है, पर मैं तीन-तीन अरबपतियोंसे मिला। उनसे मिलनेकी कहानियां दिलचस्प हैं और उनसे मिलनेके क्षणोंकी सराहना मैं खुद करता हूं।

जान डी० जूनियरने—इसी नामसे उन्हें पुकारा जाता है; क्योंकि उनके पिता श्री राकफेलरको जान डी० सीनियरके नामसे लोग जानते हैं—मुझे कृपापूर्वक दावतके लिए निमन्त्रित किया था। राकफेलर सपरिवार फ्लोरिडामें रहते हैं। यह भवन आकाश-विचुम्बी नहीं है, जैसा कि मेरे भारतीय भाइयोंका अनुमान होगा। मेरा भी ख्याल था कि अरबपतियोंके मकान आकाश-विचुम्बी राजप्रासादों-से होंगे। पर यह कितनी झूठी भावना थी।

श्रीमती राकफेलर दरवाजेपर मेरे स्वागतके लिए खड़ी थीं—और उनसे थोड़ी ही दूरपर सादी पोशाकमें एक खुफिया खड़ा था। अमेरिकामें मनुष्योंका अपहरण करनेवाले उठाईगीरोंने जैसा उपद्रव खड़ा कर रखा है, उससे उनकी रक्षा करनेके लिए ही उसकी नियुक्ति हुई है। श्रीमती राकफेलर लम्बे कदकी, सुन्दर महिला हैं। उनकी रोमन नासिका और समस्त शरीरसे अभिजात्य प्रकट होता है। अमेरिकन सीनेटके एक सदस्यकी पुत्री हैं। उनके भाई चेज नेशनल बैङ्क—संसारके सम्भवतः सबसे बड़े और निश्चय ही अमेरिकाके सर्वोत्कृष्ट बैङ्क—के प्रेसिडेण्ट हैं।

राकफेलर बड़े ही सरल प्रकृतिके हैं। लेकिन उनकी सरलताके भीतर चतुराई भरी है और भोजन करते और बात करते-करते मैंने परखा कि उनमें विचक्षण बुद्धि है। राकफेलर धूम्रपान नहीं करते, शराब हाथसे छूते नहीं—यद्यपि वे मद्य-निषेधके विरुद्ध हैं। राकफेलरके लड़के भी वहां थे और जैसा बाप वैसे ही लड़के। अपनी पोशाक, अपनी बातचीत, अपने रङ्ग-ढङ्ग, किसी भी तरहसे उन्होंने यह प्रकट नहीं होने दिया कि उनके पास अतुल धन-राशि है। राकफेलरने अपने सभी लड़कोंको यूनिवर्सिटीकी उच्च शिक्षा दी है और विवाह करनेके बाद सभीको अपने विभिन्न कारबारोंमें लगा दिया है। बापने बच्चोंको स्वावलम्बनका पाठ पढ़ानेमें कोई कसर नहीं रखी है। उनके एक लड़के नेल्सनको बापसे प्राप्त रकमसे अधिक कमानेके लिए एलीवेटर ब्वायका काम करना पड़ता था। उन्होंने संसारका—और भारतका भी—भ्रमण तीसरे दर्जेमें किया था और अपने बड़े-बड़े गट्ठरोंको स्वयं उतारते थे। नेल्सन राकफेलर मधुरजनी मनाकर अपनी पत्नी सहित अभी आये ही थे। लेकिन उस आकर्षण और सादगीसे भरी हुई तरुणीके शरीरपर मैंने जगमगाते हीरे नहीं देखे। उसके बदनपर आभूषण न थे। और हमारे भारतमें ? यहां हाथ, नाक, कान, केश—सभी जगह अधिकसे अधिक गहने गूथनेका पागलपन-सा है। अमीरोंके लड़के हीरे-जवाहरात पहनकर निकलते हैं, पर वैभव-प्रदर्शनका अहंकार राकफेलरके घरमें नहीं दिखाई पड़ता—राकफेलरके घरमें—अर्थात् संसारके सबसे धनी व्यक्तिके घरमें।

जान डी० जूनियरने मेरे सम्बन्धमें पूछा। मैंने कहा —मैं भारतमें वकालत करता हूं। अब अर्थशास्त्रमें मेरी दिलचस्पी बढ़ रही है और मैं अमेरिका यह सीखने आया हूं कि धनी कैसे बना जाय—धनी बननेका सबसे सरल और छोटा रास्ता कौन-सा है।

"सरल और छोटा रास्ता ?" राकफेलरने चौंकते-से कहा। उनकी आंखें इस तरह चमक उठीं, मानो उनकी भी दिलचस्पी इसमें बढ़ गयी है। जैसे उस रास्तेको जाननेके लिए वे भी उत्सुक हो उठे हों।

और फिर उन्होंने तत्काल ही पूछा भी—"है ऐसा कोई



नेल्सन राकफेलर अपनी कला-प्रियताके लिए अमेरिका भरमें प्रसिद्ध हैं।

रास्ता, मैं भी देखना चाहता हूं।"

"है," मैंने कहा—"या तो किसी धनी परिवारमें जन्म हो, या स्टाक मार्केटमें भाग्य साथ दे दे।"

वे प्रसन्न दिखाई पड़ रहे थे। जब मैं चलने लगा, उन्होंने मुझे एक छोटा-सा जञ्जीरमें बंधा हाथी (खिलौना) और एक घोड़ेकी नाल स्मृति-चिह्नके रूपमें भेंटमें दी। बड़े राकफेलर स्मृति-चिह्न मांगनेपर १० सेण्ट दिया करते हैं।

छोटे राकफेलरके एक लड़केने बातचीतमें दिलचस्पी ली। उसने कहा—"आपके देशमें दार्शनिक बातोंका खूब प्रचार है?"

"खूब," मैंने कहा—"आपके देशमें रुपया है और सुख और आराम है, और हमारे देशमें गरीबी और दार्शनिकता है—गरीबीका दर्शन और दार्शनिकताकी गरीबी है। मैं किसी समय आपसे भी विनिमयके लिए तैयार हूं।"

अमेरिकाके दूसरे धनिकोंके समान राकफेलरने भी देहातमें भवन बनवाये हैं। शहरके बाहर टेरी टाउनमें मैं एक दिन उनके घरपर पहुंच गया। वहांतक जानेके लिए राकफेलर-परिवारने सड़कें बनवा रखी हैं। ये उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं। हजारों एकड़ भूमि इधर-उधर बिखरी पड़ी है। राहमें जगह-जगह विज्ञप्तियां टंगी हैं—बिना आज्ञा प्रवेश निषेध—चुपचाप घुस आनेवालोंको पुलिसके हवाले किया जायगा। हमारी गाड़ी बढ़ती जा रही थी और एक भी आदमी न दिखाई पड़ता था। अन्तमें राकफेलरके भवन दिखाई पड़े। भवन क्या, उन्हें कुटीर कहना चाहिए। एकदम सादे। न तो उनमें सोनेकी ईंटें लगी थीं और न सीढ़ियोंपर सङ्गमरमर लगाये गये थे।

मजेदार बात है कि हमारे राजा-महाराजाओंके समान अमेरिकाके धनी-मानी ऊंची-ऊंची गगन-विचुम्बी इमारतें नहीं बनवाया करते। वे छोटी-छोटी कई इमारतें बनवाते हैं, जिससे परिवारके लोग सुविधानुसार अलग-अलग रह सकें और उनमें झञ्झट-झमेले न हों।

दूसरोंके समान ही राकफेलरने भी अनेक हथकण्डोंसे पैसा कमाया है। स्टैण्डर्ड आयल कम्पनीपर टारवेलने जो कुछ लिखा है, उससे तथा रिपले की 'रेलरोड प्राबलम्स (Rail road Problems) से इस सम्बन्धमें बहुत-सी बातें जानी जा सकती हैं। रिबेट और रेट सम्बन्धी झगड़े, मुकदमेबाजियां, कितने ही तरहके झगड़े हुए। राकफेलरको लोग तैल-पिशाच कहकर पुकारने लगे। अर्थ-पिशाचों और बुद्धिजीवी वकीलोंके सभी हथकण्डे काममें लाये गये। लेकिन यह सब तो आजकी सामाजिक व्यवस्थामें चलता ही है। राकफेलरने जो कुछ किया, वह भी इसके अनुसार ही था। उनके सामने समस्या थी कि या तो वे कुचल जायं : या कुचल दें। और उन्होंने अपनेको बचाकर दूसरोंको कुचल दिया। लेकिन राकफेलरने जो कुछ कमाया, उसका एक काफी भाग शिक्षा, स्वास्थ्य, खोज और अन्वेषणकी संस्थाओंमें लगा दिया है। सारे संसारमें राकफेलर-संस्थायें खुल गयी हैं। चीन और अरबमें अशिक्षा-निवारणार्थ लाखों रुपये लगे हुए हैं। ब्रेजील और पनामामें विषाक्त कीटाणुओंसे प्राणियोंकी रक्षाकी व्यवस्था हो रही है, तो भारतमें हैजा तथा दूसरी बीमारियोंसे त्राण देनेके लिए राकफेलरने लाखों रुपये दानमें दे डाले हैं। उन्होंने चाहे जिस ढङ्गसे पैसा कमाया हो, उसका उपयोग सुन्दर ढङ्गसे हो रहा है। अमेरिकामें दर्जनों सार्वजनिक संस्थायें राकफेलरके पैसेसे चल रही हैं।

राकफेलर-परिवारमें एक और खास बात देखनेमें आयी। कितने ही धनकुबेरोंकी भांति उन्होंने कभी यूरोपके शाही खान्दानोंकी राजकुमारियों तथा इस प्रकारकी सुन्दरियोंसे विवाह करनेका इरादा नहीं किया। अगर वे चाहते, तो यूरोपकी सुन्दरियां और राजकुमारियां उनके तलवे चाटतीं। पर कभी भी उन्हें ऐसे वाह्याडम्बरों अथवा ऐसी विलास-लीलाओंका आकर्षण नहीं हुआ।

मुझ छोटा-सा खिलौनेका जो हाथी राकफेलरने दिया था, उसे नचाते हुए मैंने कहा—"आप कभी भारत आइये न, मैं आपको सजीव हाथीपर चढ़ाऊंगा।"

कोई आश्चर्य नहीं, जो मेरे एक प्रतिष्ठित अमेरिकन मित्रने कहा—"......का धन अभिशाप है, पर राकफेलरका धन संसार-भरके लिए बरदान-स्वरूप है।"

[२]

न्यूयार्क शहर जहां समाप्त होता है, वहांसे हडसनके किनारे प्रायः छः सौ एकड़ जमीनपर डाजका भवन है। ये तांबेके विश्व-विख्यात व्यापारी हैं और संसार-भरमें इनकी खानें बिखरी हुई हैं।

डाज-परिवारमें मार्गन-परिवारकी लड़की ब्याही है। यह मार्गन-परिवार विश्व-विख्यात है। फ्रान्स और इंगलैण्डकी सरकारें उनसे कर्ज लिया करती हैं। प्रेसिडेण्ट विल्सन इस परिवारके मित्रोंमेंसे थे और न्यूयार्कमें वे जब कभी जाते, उन्हींके साथ ठहरते। मेरे वहां जानेपर मुझे वह कमरा दिखाया गया, जिसमें विल्सनने अपनी विश्व-विख्यात चौदह शर्तें रखी थीं। उनसे मिलनेपर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। यहां भी मैंने वही सादगी देखी, जो राकफेलरके घरमें देखी थी। उनकी छोटी पुत्रीने विदाईके अवसरपर मेरे कोटमें सुगन्धित फूलोंका एक गुच्छा लगा दिया।

[३]

एण्ड्रयू कारनेगी मर चुके हैं। उनकी विधवा है, जो पुराने मकानमें रहती है। बाहरसे बिना जाने कोई नहीं कह सकता कि यह संसारके एक अरबपतीका मकान है। लेकिन भीतर मकान आकर्षक है। सीढ़ियोंपर कीमती कालीन बिछे हैं। अतिथियोंको जिस कमरेमें बैठाया जाता है, उसमें कारनेगी, उनकी पत्नी, उनकी एकमात्र सन्तान पुत्रीका चित्र लगा हुआ है। जिस समय मैं वहां पहुंचा, उनकी पत्नी तथा पुत्री दोनों मौजूद थीं। मैंने चार्ल्स स्काबसे भी मिलनेकी इच्छा की, पर उन दिनों वे शहरसे बाहर थे। यह चार्ल्स स्काब कारनेगीके कारखानोंके मैनेजर थे और कहा जाता है कि कारनेगीके इतने महान् उत्थानमें उनका जबर्दस्त हाथ था।

कारनेगीके बारेमें सभी कहते हैं कि वे सादगी पसन्द करते थे ; पर उनके मकानके कितने ही हिस्सोंको देखनेके बाद राकफेलरकी अपेक्षा वहां अधिक विलास-सामग्री देखी। कारनेगी शान्तिके उपासक थे और पुस्तकालयोंके प्रेमी। ऐसे कार्योंके लिए उन्होंने बड़ी लम्बी-लम्बी रकमें दानमें दी हैं। वे सदा कहा करते थे कि रुपया एक पवित्र धरोहरके रूपमें है।

मैं जब चलनेको हुआ, तो कारनेगी-परिवारने मुझे एक थैली दी। मैंने उत्सुकतापूर्वक थैली खोली, तो देखा, उसमें छदाम भी नहीं। मैंने कहा—"मुझे पैसे दीजिये, थैली मैं स्वयं खरीद सकता हूं।"

उनके हंसते-हंसते पेटमें बल पड़ने लगे।

अमेरिकन धनकुबेरोंके बीचमें रहकर आपको पग-पगपर अपनेको क्षुद्र नहीं समझना पड़ता। उनके व्यवहारसे आप नहीं समझते कि आप उनसे क्षुद्र हैं। और हमारे धनी और राजे-महराजे? खुदा खैर करे।

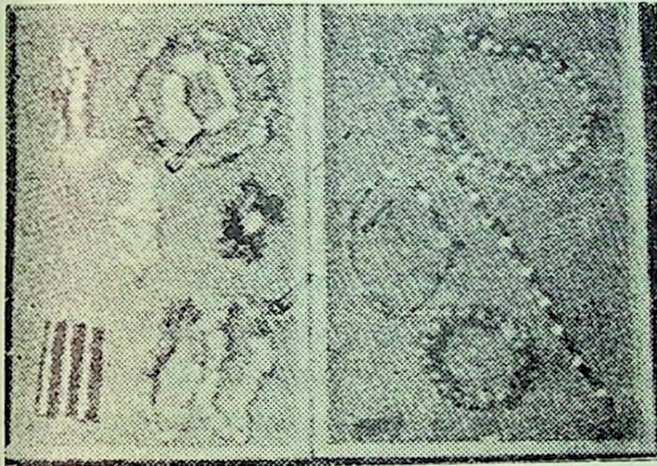
मैं अब किसी दिन फोर्डसे मिलना चाहता हूं।



दुनियाके कुछ अनोखे सिक्के

श्री कमलाकान्त शर्मा, एम० ए०

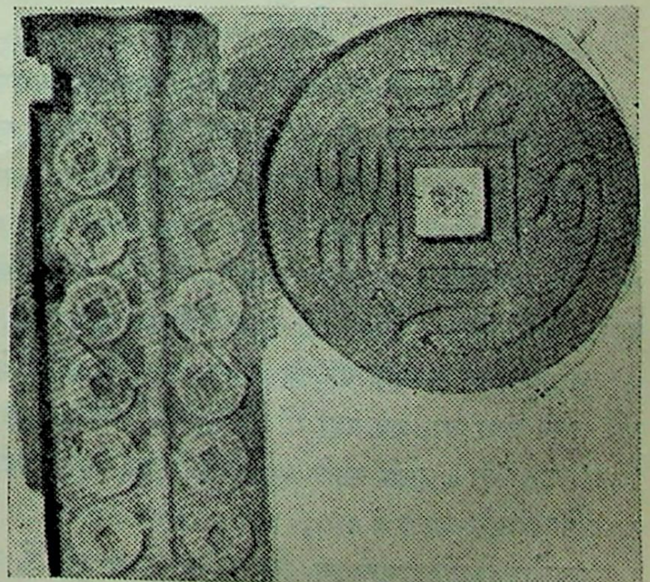
समाज-विज्ञानियोंका अनुमान है कि सभ्यताके प्रारम्भिक युगमें सिक्कोंका किसीको ख्याल भी नहीं था और पशु तथा अनाजके बदलेकी प्रणालीसे काम लिया जाता था। इसके बाद ज्यों-ज्यों विभिन्न वस्तुओंकी उपज होने



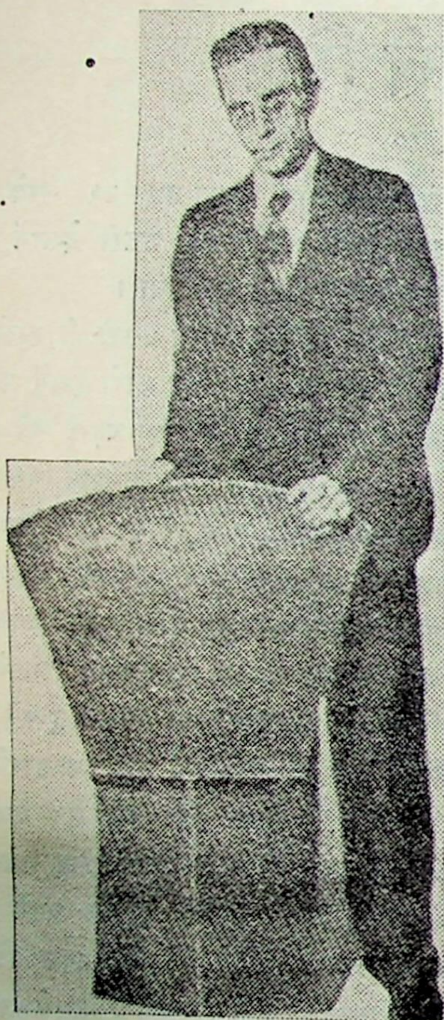
कौड़ियों और छूछे कातूसोंके सिक्के जो अबसीनियामें चलते हैं।

लगी और सभ्यताका धीरे-धीरे विकास होने लगा, उन्हें भी सिक्केके लिए व्यवहारमें लाया जाने लगा और इस प्रकार नमक, खजूर, नारियल, जैतूनका तेल, चाय, कोयला, चमड़ा और रबरको भी सिक्केका रूप दिया गया। अनुमान लगाया जाता है कि संसारमें अब तक १ लाख ३० हजार तरहकी मुद्रायें प्रचलित रही हैं। अगर प्राचीन सिक्के किसी जगह एकत्र कर दिये जायं, तो आप उनकी सूरत देखकर ही आश्चर्य करने लगेंगे। आप देखेंगे कि एक सिक्केकी सूरत हैटकी-सी है, एककी फावड़े-जैसी, एककी घोड़ेके जीन-सी और दूसरेकी चीतेकी जीभ-सी। अमेरिकाके हावर्ड गिब्सने इस प्रकारके संसारके हजारों तरहके सिक्कोंका एक अनोखा संग्रह कर रखा है। उन्हें सिक्का संग्रह करनेका व्यसन-सा है। इसके लिए उन्होंने बहुत-सा धन भी व्यय किया है। उनके सिक्कोंके म्यूजियममें एक ऐसा सिक्का है, जो संसारका सबसे बड़ा सिक्का समझा जाता है। यह सिक्का तांबेका है और इसका वजन ४५ सेरके लगभग है। कहा जाता है कि अमेरिकाके उत्तरी देशोंमें सौ वर्ष पहले इस सिक्केका व्यवहार होता था।

बर्मामें सिक्कोंके रूपमें कभी चाय चलती थी, रूसमें रोटी, चीनमें मट्ठा और दक्षिण समुद्रमें वेनी कोरो द्वीपमें पक्षियोंके पङ्ख। कोर्टेजने जिन दिनों मेक्सिकोपर चढ़ाई की थी, उन दिनों वहां पक्षीके पङ्ख न केवल सिक्कोंके रूपमें व्यवहृत होते थे, बल्कि क्वेटजल पक्षीके परोंसे राजाओंकी सभ्यताका अन्दाज लगाया जाता था और जो पर जितने ही आकर्षक होते थे, उनका उतना ही अधिक मूल्य समझा जाता था। अमेरिकामें सत्रहवीं शताब्दी तक कौड़ियोंके सिक्के चलते रहे हैं। दक्षिणी समुद्रमें एक याप नामका द्वीप है, वहां युगों तक, सिक्केके रूपमें पत्थरोंके रोड़े व्यवहारमें लाये जाते थे। ३० इञ्चकी परिधि और ८२ सेर वजनकी ये पाषाण-मुद्रायें एक सुन्दरसे सुन्दर रमणी खरीद सकती थीं। फिजी द्वीपमें ह्वेल मछलीके दांतोंके सिक्के चलते थे और दक्षिण अफ्रीकामें हाथीके बालोंके। जो बाल जितने ही लम्बे होते थे, वे उतने ही अधिक मूल्यके समझे जाते थे।



मलायाका एक मुद्रा-वृक्ष।



संसारका सबसे बड़ा सिक्का जिसका वजन लगभग ४९ सेर है।

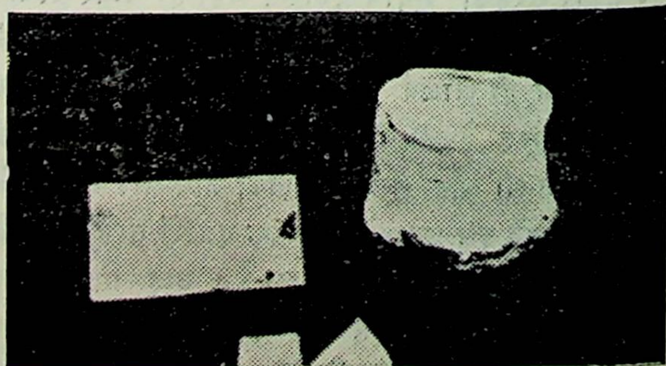
मलाया प्रायद्वीपके मल्लकामें सिक्कोंको एक वृक्षके रूपमें बनाया जाता था। सेबकी भांति एक दर्जन सिक्के एक वृक्षमें रहते थे। इसका रखनेवाला अपनी इच्छानुसार आवश्यकतापर सिक्कोंको तोड़कर अपना काम निकालता था और जब सब सिक्के समाप्त हो जाते, तो वह धड़को फेंक देता, क्योंकि फिर उसका कोई मूल्य नहीं रह जाता था।

कुर्दिस्तानमें सिक्के चांदीके पतले तारोंके होते थे। एक समय ऐसा था, जब यहां गोंदके बूंदोंसे सिक्केका काम लिया जाता था। इसके पहले बहुत दिनों तक यहां मिश्रीके टुकड़ोंके सिक्के चलते थे।

उपर्युक्त सिक्कोंका प्रचलन, जैसा कि लिख चुके हैं, उस कालमें था, जब आजकी तरह सभ्यताका विकास नहीं हुआ था। उस समय मनुष्योंकी आवश्यकतायें बहुत ही साधारण थीं। नयी-नयी वस्तुओंके न तो आविष्कार हुए थे और न आविष्कार करनेकी बुद्धिका विकास ही मनुष्योंमें हो सका था। लेकिन इस बीसवीं सदीमें, जब कि दुनियाकी सभ्यता अपनी चरम सीमा तक पहुंची हुई है और जब नित नूतन आविष्कार हो रहे हैं, तब यदि इस तरहके अनोखे सिक्कोंके प्रचलनकी बात कही जाय, तो अवश्य ही आश्चर्यजनक होगी। लेकिन आपको विश्वास करना पड़ेगा कि इस सदीमें भी संसारमें अजीब-अजीब सिक्के चला करते हैं। ध्यान रहे, 'अजीब सिक्कों' से यह तात्पर्य नहीं है कि नकली सिक्के चला करते हैं।

साइबेरियामें भारीसे भारी और हल्केसे हल्के सिक्के मिलते हैं। सुदूर उत्तरमें याकूबके कबीलेवाले तांबेका बड़ा 'फाक्स-मनी' प्रयोग करते हैं। इसको जारिस्टा एलिजाबेथ द्वितीयके शासनकालमें कज्जाक लोग लाये थे। यहींपर कागजकी तरह पतले चांदीके सिक्के भी होते हैं। जरा-सी हवाके झोंकेसे यह सिक्का आपके हाथसे उड़ जा सकता है।

अभी १९१४ की बात है। महासमर छिड़नेके साथ रूसी सरकारको पता चला कि लोग चांदी जमा कर रहे हैं। सरकारने फौरन् 'स्टाम्प मनी' इस्तेमाल करनेका हुक्म जारी कर दिया। स्टाम्पमनी मामूली टिकटकी शकलका था और कुछ मोटे, कुछ कड़े कागजपर छपा हुआ था। लेकिन इसकी पीठपर गोंद नहीं लगा हुआ था। सरकारकी तरफसे एलान हुआ था कि हरएक राजभक्त नागरिक इस सिक्केको 'कानूनी सिक्का' समझे और उसका व्यवहार करे। जाड़ेके मध्यमें, जब कि हाथ दस्तानेके भीतर भी ठिठुरते



पत्थरके टुकड़ोंके सिक्के, जो कहीं-कहीं अब भी चलते हैं।

रहते हैं; इस सिक्केको उठाना और काममें लाना बड़ा कठिन होता। जब हवा चलती, उस समय छः आनेका यह सिक्का फौरन् उड़ जाया करता और उसके पीछे लोगोंको उठानेके लिए दौड़ना पड़ता।

वहांपर स्लेजके ड्राइवर अपने मुंहमें गड्डके गड्ड छोटे सिक्के रखे रहते। उनको एक रुपयेका साफ नोट दिया जाय, तो वे अपने मुंहमें उंगली डालकर आवश्यक रेजकारी निकालकर दे देते थे। उस रेजकारीको वे अपने मुंहमें रखे हुए टिकटोंमेंसे निकालते। रेजकारी भींगी हुई होती। इससे लोगोंको बड़ी घृणा होती।

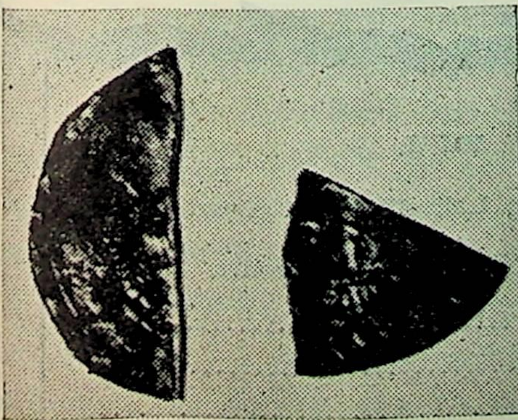
सिक्कोंका कष्ट गत महासमरके दिनोंमें प्रारम्भ हुआ था। उन दिनों एक बार जर्मनोंने ब्लोनी लाइनको तोड़ डाला और वारसाको जीत लिया, तब धातुके सिक्के बिलकुल ही अप्राप्य हो गये। लोगोंने सिक्कोंको अपने पास जमा कर लिया। इस बातके रोकनेके लिए अधिकारियोंने कुछ लोगोंको फांसी दे दी। ये लोग सिक्का छिपानेके जुर्ममें अपराधी ठहराये गये थे। उसका फल यह हुआ कि सिक्का काफी तादादमें फिर चालू हो गया।

बाहरी मङ्गोलियामें गोबीका रेगिस्तान है। वहांके रहनेवाले 'खालका लोग' रूसी सिक्कोंका इस्तेमाल करते हैं। इसी सिक्केके जरिये वहांका कारोबार चलता है। उनका अपना कोई सिक्का नहीं है।

मङ्गोलियाके सिक्कोंकी कहानी सुनिये। वहांपर पीले-नीले रङ्गके कपड़े पहने हुए दो आदमी बैठे रहते हैं। वे कसी हुई ऊंची टोपियां और पीतलकी कमानीवाला चश्मा पहने रहते हैं। उनके सामने एक छोटी-सी मेज होती है। उसपर एक तराजू, बहुत-से बटखरे और चांदीकी लम्बी छड़ी रखी रहती है। यह छड़ी चपड़ेकी छड़के बराबर होती है। जब कोई मुसाफिर अपने रूसी सिक्कोंको मध्य एशियाके सिक्कोंसे बदलना चाहता है, तो ये लोग उसके बराबर मूल्यका चांदीका टुकड़ा काटकर दे देते हैं। यही मङ्गोलियाका सिक्का है।



कुत्तेके दांत, जो न्यूगिनीमें आज भी सिक्केके रूपमें चलते हैं।



प्राचीन कालमें चलनेवाले अरेबियन सिक्के।

पैसिफिक समुद्रके दक्षिण-पश्चिम तरफ 'कैनीवड आइल्स' हैं। वहांके लोग सभ्यतामें बहुत पिछड़े हुए हैं। वहांपर यह नहीं कहा जाता कि 'हमें इतने मन धन चाहिए।' वहां सिक्कोंकी नाप वजनसे नहीं, गजोंसे होती है। आम तौरपर कबीलोंके मुखिया और उनके लड़के भी यह जानते हैं कि छोटी कौड़ियां, जो कि सिक्कोंके काममें आती हैं, कहां काफी संख्यामें मिलती हैं। सीधे-सादे गरीब लोग यह पता लगाते कि किन जगहोंपर ये कौड़ियां मिलती हैं और फिर इसका पता अपने मुखियाको बतला देते थे। पता बतलानेके बाद ये लोग न जाने कहां गायब हो जाते थे। कुछ लोगोंका अनुमान है कि ये मुखिया लोग उन जगहोंका पता जान लेनेपर, जहां कौड़ियां अधिक मिलती थीं, उन बेचारोंको मार डालते थे, जिससे उस गुप्त भेदका पता और लोगोंको न लग सके। कबीलोंके मुखिया लोग इन कौड़ियोंको स्वयं सिक्केका रूप देते थे। वे पहले कौड़ियोंको काफी समयके लिए जमीनमें गाड़ देते थे, इससे उनका रङ्ग उड़ जाता था, बादमें एक खास पत्थरसे वे उन कौड़ियोंके सिरेपर छेद कर देते थे। छेदमें तागा डालकर बेतके सिरेसे कौड़ियां बांध दी जाती थीं।

यहांपर इस तरहके छः सिक्के होते हैं, हालां कि गोरोंके साथ व्यापार करनेमें उनकी कीमत कम मानी जाती है, फिर भी ये सिक्के एक पौण्ड, दस शिलिङ्ग, सात, छः,

पांच शिलिङ्ग और डेढ़ शिलिङ्गके बराबर क्रमशः होते हैं। कौड़ियोंका एक पौण्ड करीब छः फीट लम्बा होता है। जो लोग बहुत अमीर होते हैं, वे अपने कौड़ियोंके सिक्कोंको सौ-सौ पौण्डके लच्छोंमें रखते हैं, क्योंकि इस भारी वजन-वाले सिक्केको उसी रूपमें इधर-उधर ले जानेमें बड़ी मुश्किल होती है।

आदिम जातिके लोग उन सिक्कोंपर जल्दी विश्वास नहीं करते, जिनको उनके यूरोपियन मालिक बार-बार बदला करते हैं। इटलीवालोंको अबसीनियाके लोगोंकी वजहसे पहले बहुत कष्ट उठाना पड़ा और अब भी उठाना पड़ा रहा है, क्योंकि वे मारिया थेरेसाके भारी सिक्कोंको हटाकर नयी तरहके कागजी सिक्के चलानेकी कोशिश कर रहे हैं। जब महारानी विक्टोरियाकी मृत्यु हो गयी और अफ्रीकाके नये सिक्कोंपर सम्राट् एडवर्डकी तस्वीर छपी, उस समय बड़ा बखेड़ा हुआ। वहांके रहनेवालोंने हैटवाला सिक्का मांगा, हैट सम्राज्ञीका ताज था।

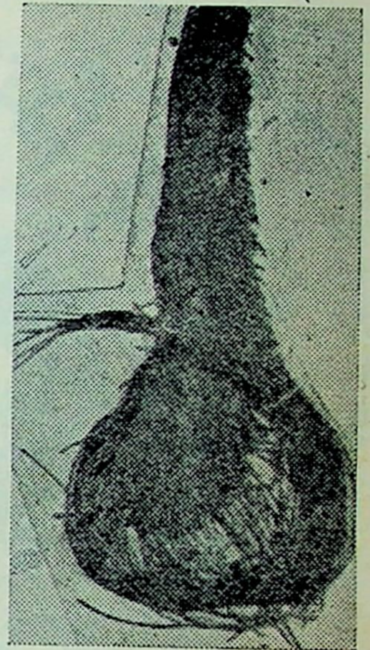
तिब्बतमें इस तरहके सिक्के उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तमें चला करते थे। तिब्बतके लोग उसपरकी लिखावटको नहीं समझते थे। उनको विश्वास हो गया था कि महारानी विक्टोरियाकी तस्वीर किसी बौद्ध पर्यटककी तस्वीर है। वह बौद्ध सिरपर ताजकी तरह कुछ पहने हुए है।

बैङ्कके नोटोंसे लदकर घूमनेकी बात कम लोगोंने सुनी होगी। जेबों और अपने सूटकेसको इन नोटोंसे अच्छी तरहसे भरकर घूमनेकी बात कम लोग जानते होंगे।

मञ्चूरियामें बहुत दिनों तक वहांके प्रान्तीय गवर्नरोंने अपने कागजी सिक्के चलाये थे। जितने भी कागजी सिक्कोंकी उन्हें आवश्यकता पड़ती थी, वे प्रेसोंमें छपवा लिया करते थे। मञ्चूरियाके बैङ्क नोट सुन्दर और छोटे होते थे।

उनमेंसे बहुत-से मोटरके टिकटोंसे बड़े नहीं थे। कुछ भी भंजानेपर नोट ही मिल सकते थे। मालूम पड़ता था कि ये नोट उन लोगोंकी जेब हीमें पैदा होते हैं।

एक दफाकी बात है। एक आदमी हारबिनके रूसी बैङ्कमें इन नोटोंको भंजानेके लिए गया। तीन हैट नोट भरकर देनेके बाद उसको चार पौण्डसे कुछ कम ही मिले। इसका कारण यह बतलाया गया कि विनिमयकी दरोंमें हमेशा उतार-चढ़ाव हुआ करता है। मालूम यह होता है कि 'रिजर्व' सोना वहां बिलकुल नहीं था। खजानेमें चांदीका होना अनुमान हीकी बात थी।



हाथीके बालके सिक्के, जो आज भी मध्य अफ्रीकामें मिलते हैं।

गवर्नरोंके इन नोटोंकी कीमत उसी समय तक थी, जब तक कि उनका शासन - काल रहता था। जब तक उस शासनके चलनेकी सम्भावना थी और जब तक उसकी धाक थी। जैसे ही यह मालूम हो जाता कि काफी संख्यामें सिपाही उसका विरोध करने लगे हैं और उनको सिपाहियाना कपड़ा और तनख्वाह ठीक समयपर और पूरी नहीं मिलती, उसी समय उस गवर्नरकी बदनामी होने लगती थी। उसका प्रभाव घटने लगता था, साथ ही विनिमयकी दर भी उसीके साथ घटने लगती थी। अगर इसके विपरीत वह नयी मैक्सिम बन्दूकें खरीदता और एक जर्मन शिक्षक भी उसके सिपाहियोंको सिखलानेके लिए आ जाता, तो फौरन् ही विनिमयकी दर उसके पक्षमें बढ़ने लगती थी। अगर केन्द्रीय सरकारसे बाकी टेक्सोंके लिए परवाना आ जाता, तो फौरन् उसके विनिमयकी दर गिरने लगती थी। इसके विपरीत अगर महारानीकी तरफसे खुशी और सम्मानके रूपमें उसका रूमाल अथवा चीनीका 'छाता रखनेका स्टेण्ड' उपहार-रूपमें आ जाता, तो उसके स्टाकमें काफी बढ़ती हो जाती थी। दर ऊपर चढ़ जाती थी।

स्वभावतः इसका नतीजा यह होता था कि प्रान्तीय सरकारों अथवा उनसे सम्बन्ध रखनेवाली किसी भी अफवाहको काफी अहमियत दी जाती थी और विदेशी बैङ्कोंके पास समाचार-पत्रोंमें प्रथम पृष्ठोंपर ये गरम खबरें छपकर पहुंच जाती थीं।



झीनसीन

गोल्ड टानिक पिल्स

दाम्पत्य-कलह की ज

पुरुषत्वहीनता

को

दूर करने के लिये

अक्सीर व अद्वितीय ई

सावित हो चुका है।

जीवनकी प्रधान कामनाएं त्रिविध हैं—

काम, उत्पादन एवं प्रेम। इनके बिना जीवन असार एवं निरानन्दमय प्रतीत होता है। सभी जीव इन त्रिविध कामनाओंके प्राकृतिक प्रयोगसे भली भांति परिचित हैं। प्राकृतिक नियमोंके उलंघनसे एवं अन्य अप्राकृतिक चेष्टाओंसे मनुष्य अपनी शक्ति, अपना बल और पौरुष खो बैठता है और नाना व्याधिओंका शिकार बन जाता है।

युवावस्थामें बलपौरुषहीन जीवन दुर्वह हो जाता है। सांसारिक सुखकी तृष्णा अतृप्त ही बनी रहती है। इस निराशमय जीवनके लिये प्रकृतिने जड़ी बूटियां बना रखी हैं—वे यही झीनसीन हैं। इसी झीनसीनको लेकर अन्य औषधियों के साथ विशेषकर स्वर्णके संयोगसे ये झीनसीन गोल्ड टा पिल्स बनायी गयी है।

इनके सेवनसे पुरुष शक्ति बढ़ती है, जीवनमें ओज स्फूर्ति आती है, स्वप्नदोष तुरत मिट जाता है, ढीले नस म बूत हो जाते हैं, शुक्रतारल्य प्रगाढ़ हो जाता है एवं नपुंस दूर हो जाती है। इस प्रकार मनुष्य सच्ची मर्दानगी प्रा अपना दाम्पत्य जीवन सुखमय बना सकता है। स्त्रियां सेवनसे अनुपम लाभ उठा सकती हैं।

इस दवाकी उपकारिताके विषयमें डाक्टर, हकीम रासायनिक, मजिस्ट्रेट आदि प्रख्यात सज्जनोंसे हजारों प्र पत्र मिल चुके हैं जो कि हमारे औफिसमें देखे जा सकते

मूल्य प्रति शीशी ४) डाक खर्च ।।) अलग

दो शीशी ८) डाक खर्च माफ

चाइनीज मेडिकल स्टोर [स्थापि १९२०

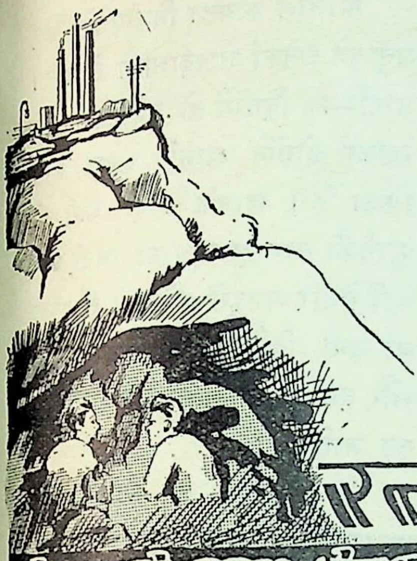
१२, डलहौसी स्कायर ईस्ट कलकत्ता (फोनः-कल०२४

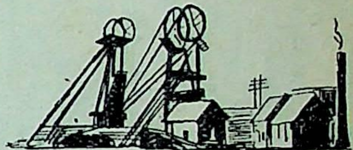
हेड आफिस-बम्बई, शाखायें-नयाबाजार देहली व अहमदाबाद

यह चीनकी ही कोई खास बात नहीं है। और देशोंमें भी ऐसा ही होता है। फ्रान्समें सरकारके ऊपर इस बातके लिए दबाव डाला जा रहा है कि प्रसिद्ध निकेलका छोटा सिक्का 'सोऊ', जिसके बीचमें छेद बना होता है, बन्द कर दिया जाय। इसका कारण यह बताया जाता है कि जितना ही इस सिक्केको लिया जाता है, उतना ही घाटा होता है। एक पौण्ड स्टर्लिङ्गमें इस तरहके तीन हजार पांच सौ सिक्के मिल सकते हैं। यही बात 'दो सोऊ' के सिक्केके बारेमें भी कही जा सकती है। साढ़े सात सेण्टाइम खर्च करके पांच सेण्टाइमका एक 'सोऊ' सिक्का बनता है। इसी तरह साढ़े ग्यारह सेण्टाइम खर्च करके दो सोऊ वाला सिक्का बनता है। विचार कीजिये कि अगर इसी तरहके करोड़ों सिक्के बनाये जायं, तो कितना घाटा होगा।

बील मार्कवाला वेन प्राइस नोट भी एक विचित्र चीज है। यह फिलीपाइन द्वीप-समूहमें मिलता है। महासमरके शुरूके दिनोंमें, आस्ट्रेलियाकी आक्रमणकारी सेनाने जर्मन न्यू गाइनापर विजय प्राप्त की। इस समय उसको रुपयोंकी बहुत अधिक जरूरत हुई। इसलिए इसने स्वयं अपने नोट छापे। सार्जेण्ट वेन प्राइस सरकारी सिक्का बनानेवाले नियुक्त किये गये। जर्मन औपनिवेशिक खजानेमें एक खास तरहकी छापनेकी मुहर बनायी गयी और आस्ट्रेलियावालोंने खुशी-खुशी लाल रङ्ग और जूतेकी पालिशसे बहुत-से रङ्ग तैयार किये। लेकिन नोटके लिए अच्छा कागज नहीं मिल सका। मांसके डब्बोंके लेबिल उचाड़े गये, उनपर नोट छापा गया। लेकिन नोटकी रोशनाई काफी गाढ़ी नहीं थी। इसलिए जब इस रोशनाईसे कुछ छापा जाता, तो नीचेसे लेबिलके हरूफ दिखाई पड़ने लगते थे। अन्तमें कागजके झोले, लिफाफोंके दूसरी तरफवाले हिस्से, समाचार-पत्रोंपर लपेटे जानेवाले कागज और इसी तरह दूसरे सामान इस्तेमाल किये गये। जिन नोटोंसे सिपाहियोंको तनख्वाहें दी जाती थीं, उनको ताश खेलनेके काममें लाया जाता था। इसका नतीजा यह हुआ कि वे सबके सब सिकुड़ गये और बुरी तरहसे फट गये। उनमेंसे कुछ बाकी बच गये। आज भी न्यू गाइनाके व्यापारकी जगहोंपर उनका दर्शन होता है।

———





रत्नगर्भा वसुन्धरा

श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव एम॰ एस-सी

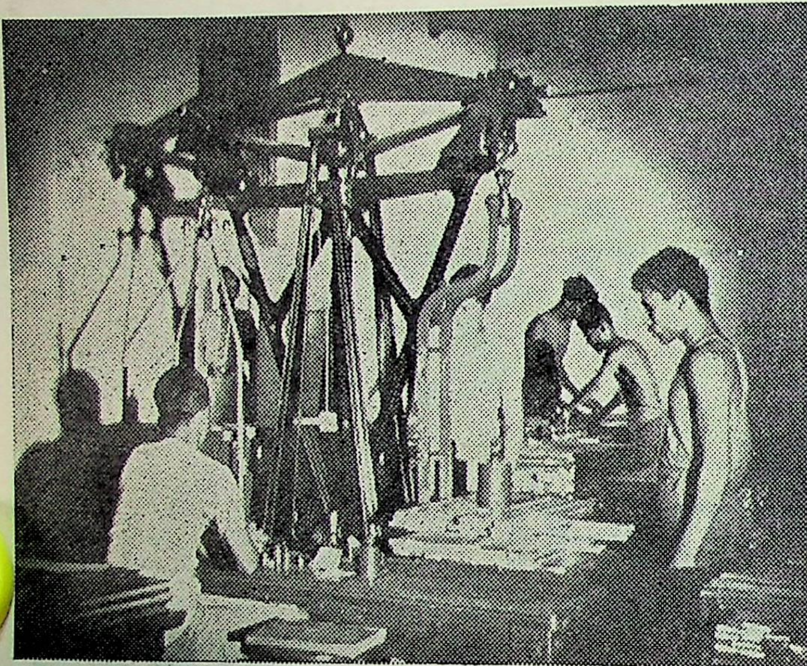
धरती माताके गर्भसे प्रति वर्ष अतुल धनराशि विभिन्न रूपोंमें आधुनिक युगका मानव प्राप्त करता है। इसके लिए वह भांति-भांतिके कष्ट और जोखिम उठानेमें तनिक-सी भी आनाकानी नहीं करता। कोयला, मिट्टीका तेल, पेट्रोल आदिसे लेकर लोहा, चांदी, सोना, प्लैटिनम, रेडियम सरीखी बहुमूल्य धातुयें तथा हीरा आदि पृथ्वीके अन्तःतलसे मनुष्य ढूंढ़ लाता है।

आजसे हजारों-लाखों वर्ष पहले प्राचीन कालमें जब लोग गुफाओंमें जीवन व्यतीत करते थे, संयोगवश उन्होंने एक दिन मांस भूननेके लिए ऐसी चट्टानके पास आग जलायी, जिसमें कच्चे लोहेका अंश पर्याप्त मात्रामें मौजूद था। तीव्र आंच पाकर काले रङ्गका पत्थर, जो वास्तवमें अशुद्ध लोहा था, पिघलकर बहने लगा। इस प्रकार अचानक लोहा पाकर वे प्रसन्नताके मारे फूले न समाये। धीरे-धीरे उन्होंने लोहेके हथियार तथा भांति-भांतिके कल-पुर्जे बनाने सीख लिये। भूतत्त्ववेत्ताओंने अनुसन्धान करके देखा है कि समूची पृथ्वीका लगभग २० वां भाग कच्चे लोहेसे निर्मित है। अवश्य ही इस अशुद्ध लोहेको भट्टीकी तेज आंचमें तपाकर शुद्ध करना होता है।

लोहेके रूपमें एक बेजोड़ चीज आधुनिक युगके मनुष्यको मिल गयी है। सूई, निब आदिसे लेकर विशालकाय पुल आदि सभीके निर्माणमें लोहेका प्रयोग प्रचुरतासे होता है। लोहेका विशेष गुण इस बातमें है कि भिन्न-भिन्न रीतिसे तैयार किया हुआ लोहा भिन्न-भिन्न विशेषतायें रखता है। एक ओर कमानीके लिए लचकदार लोहा तैयार किया जाता है, तो दूसरी ओर ऐसा लोहा भी आयरन फैक्टरियोंमें तैयार होता है, जिसमें लचक नाममात्रको भी नहीं होती। लोहेकी कुछ किस्में ऐसी होती हैं, जो इतनी कड़ी होती हैं कि तनिक-सी चोटसे शीशेकी तरह टूटकर चूर-चूर हो जायं, तो कुछ ऐसी जातियां भी मौजूद हैं, जो अत्यन्त ही मुलायम हैं।

दक्षिण यूरोपमें लगभग १००० वर्ष ईसासे पूर्व लोहेको लोग एक नियामत समझते थे। इसका मूल्य सोनेसे भी अधिक था। रोमन सभ्य-समाजमें लोहेको बहुत ही ऊंचा स्थान मिला था। विवाहके अवसरपर वधूके लिए लोहेकी अंगूठियोंका उपहार भेंट किया जाता था। रणभूमिसे लौटे हुए विजयी सरदारको उसके प्रति सम्मान प्रकट करनेके लिए लोहेकी अंगूठी भेंट की जाती थी। अवश्य उन दिनों लोहा इतनी प्रचुर मात्रामें तैयार नहीं होता था, इसी कारण लोहेका दाम इतना ऊंचा था। आज दिन समस्त संसारमें प्रति वर्ष ९ करोड़ ८० लाख टन इस्पात भिन्न-भिन्न फैक्टरियोंमें तैयार किया जाता है।

स्वयं हमारे देशमें भी दो-ढाई हजार वर्ष पूर्व बढ़िया किस्मका लोहा तैयार करना लोग जानते थे। दिल्लीमें ईसासे



भारतीय सिक्का—रुपया बन रहा है।

३६० वर्ष पूर्व लौह-स्तम्भ गाड़ा गया था, जो आज भी वहां खड़ा है। इसमें मोर्चा नहीं लग सकता। आजकलके बने हुए मोर्चा न लग सकनेवाले बढ़िया किस्मके इस्पातसे यह लौह-स्तम्भ किसी कद्र घटकर नहीं है। चीनके निवासी भी ईसासे ७०० वर्ष पूर्व कच्चे लोहेको भट्ठियोंमें पिघलाकर उससे बढ़िया इस्पात बनानेकी कलासे परिचित थे।

पृथ्वीके गर्भमें छिपी हुई सम्पत्तिमें कोयलेका स्थान भी काफी ऊंचा है। संसारकी तमाम खानोंसे लगभग १४५ करोड़ टन कोयला आजकल निकाला जा रहा है। कोयलेकी उपयोगिता देखते हुए इसे हम काला हीरा कह सकते हैं। निस्सन्देह कोयला हमारे आदरका पात्र है—कमसे कम अपनी लम्बी आयुके कारण। पत्थरके कोयलेका छोटा-सा टुकड़ा, जिसे आप अंगीठीमें जलाते हैं, करोड़ों वर्षकी आयु प्राप्त कर चुका है। युगोंकी धूप, वर्षा, और घने बन तथा उनका पृथ्वीके गर्भमें विलीन होना—कोयलेके इतिहासमें ये सभी बातें हैं।

कोयला नये युगकी देन है। प्राचीन कालमें कोयलेका नाम भी कोई नहीं जानता था। किन्तु आज सभी कारोबारी प्रान्तोंमें कोयलेका ही बोलबाला है। लोहेकी फैक्टरियां, बड़े-बड़े कारखाने, लम्बी-लम्बी रेलगाड़ियां, विशालकाय जहाज, सभी कोयलेके बलपर चलते हैं।

खानोंसे कोयला निकालनेके लिए मनुष्यने अनेकों आपदाओंको झेला है। प्रारम्भिक दिनोंमें तो हथेलीपर जान रखकर लोगोंने खानके अन्दर काम किया है। खानके अन्दर कभी तो पानीकी धार एकाएक फूट पड़ती और वहीं बेचारे मजदूरों वगैरहको ले डूबती या कभी विषैली गैसें निकल पड़तीं और दम घुट जानेसे लोगोंके प्राण-पखेरु उड़ जाते।

किन्तु मनुष्य इस क्षेत्रमें कभी हताश नहीं हुआ। विज्ञान और अपने अध्यवसायके बलपर वह निरन्तर आगे बढ़ता गया। फलस्वरूप उसने खान सम्बन्धी अनेक दिक्कतोंपर अब विजय प्राप्त कर ली है। तो भी विज्ञानके इस उन्नत युगमें खानोंमें आये दिन दुर्घटनायें होती ही रहती हैं।

कोयलेके लिए भांति-भांतिके कष्ट मनुष्य व्यर्थ ही नहीं उठाता। रसायन-विज्ञानने कोयलेका महत्त्व पहचाना है। एक जादूगरकी भांति कोयलेसे सैकड़ों भिन्न-भिन्न चीजें आधुनिक युगका रसायनज्ञ प्राप्त कर लेता है। एक टन कोयलेमेंसे लगभग ४ सेर द्रव गैस निकलती है। इसी द्रव गैससे कृत्रिम खाद, कृत्रिम बर्फ और विस्फोटक पदार्थ बनते हैं। इसके अतिरिक्त लगभग ६ मन जलानेवाली गैस, २ मन कोलतार और २०० मन 'कोक' कोयला उसी एक टन पत्थरके कोयलेसे निकलता है।

कोलतारसे क्रूड आयल, भांति-भांतिके रङ्ग, फोटोग्राफीके मसाले तथा अन्य बीसियों प्रकारकी दवाइयां तैयार होती हैं। १२०० से भी अधिक किस्मके भिन्न-भिन्न रङ्ग कोलतारसे प्राप्त होते हैं। वार्निश, फेल्ट आदि भी कोलतारसे ही तैयार किये जाते हैं।

पेट्रोल और मिट्टीके तेलके कुओंके पीछे भी हजारों-लाखों वर्षका इतिहास छिपा हुआ है। जिस प्रकार पत्थरके कोयलेका निर्माण पृथ्वीके गर्भमें दबे हुए जङ्गलोंकी लकड़ीसे हुआ है, उसी प्रकार कदाचित् प्राणियोंके अवशेषके सड़ने-

गलनेपर पेट्रोल और मिट्टीके तेलका निर्माण हुआ। प्रतिवर्ष संसारके भिन्न-भिन्न देशोंसे २८ करोड़ टन पेट्रोल कुओं और सोतोंसे निकाला जाता है। अमेरिकामें १८ वीं शताब्दीके अखीरके दिनोंमें पेट्रोलका पता पहली बार चला था। फिर तो धीरे-धीरे पेट्रोलका कारबार खूब फैल गया—इस सिलसिलेमें कुछ कुएं ऐसे भी गलाये गये, जिनसे प्रतिदिन ५० हजार पीपे पेट्रोलके निकलते हैं। पेट्रोल और मिट्टीके तेलके कारबारमें अपार सम्पत्ति फुंकनेके अतिरिक्त बेहद जानेंभी नष्ट हुई हैं। विज्ञानके नूतनतम आविष्कारोंकी सहायता प्राप्त होनेपर भी पेट्रोलके कुओंपर काम करनेवालोंको आये दिन विकट खतरोंका सामना करना पड़ता है।



तेलकी खानें जो आजके युद्धमें शक्ति-निर्णायक हो रही हैं।

पेट्रोलके कुओंपर काम करनेवाले श्रमिकोंका काम इतना खतरनाक है कि प्रतिवर्ष हर पांच व्यक्तियोंमेंसे एककी मृत्यु पेट्रोल-सम्बन्धी दुर्घटनाके कारण होती रहती है। अन्य किसी भी कारबारमें मृत्युका अनुपात इतना ऊंचा नहीं है।

पेट्रोलके कुओंकी चट्टानें तोड़नेके लिए नाइट्रोग्लिसरीन सरीखा शक्तिशाली विस्फोटक पदार्थ इस्तेमाल किया जाता है। तेलकी खानोंमें एक स्थानसे दूसरे स्थानको नाइट्रोग्लिसरीनका ले जाना अत्यन्त ही खतरनाक काम है। खास ढङ्गकी बनी हुई लारियोंपर लादकर नाइट्रोग्लिसरीनको एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाते हैं। लारी ड्राइवरको लारी चलाते समय हद दर्जेकी सावधानी बरतनी पड़ती है। लारीको जरा-सा धक्का पहुंचा कि नाइट्रोग्लिसरीन समूचीकी समूची धड़ाकेके साथ उड़ी और अपने साथ लारी और लारी ड्राइवरको भी खत्म कर दिया। इन ड्राइवरोंको इसी कारण वेतन भी बहुत ऊंचा मिलता है—लगभग २००० रुपये प्रति मास। प्रतिदिन २५ मीलसे ज्यादा दूर लारीको ड्राइव भी नहीं करना होता।

विस्फोटके डरसे ही नाइट्रोग्लिसरीन ले जानेवाली लारियां केवल रातके समय निर्जन सड़कोंपर चलती हैं। कुछ ही दिन हुए, एक साहसी नवयुवकने नाइट्रोग्लिसरीनकी लारी ड्राइव करनेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। आधी रातके सन्नाटेमें सड़कपर धीरे-धीरे कछुएकी चालसे वह अपनी लारी लिये जा रहा था। उसकी तमाम स्नायुयें सतर्क, एकदम खिंची हुई थीं कि कहीं किसी प्रकारकी उतावली या गलती न हो जाय। लारी पुलपरसे होकर गुजर रही थी कि पुलसे उतरते समय लारीका मडगार्ड पुलके एक खम्भेसे जरा-सा धक्का खा गया। आधे लमहेके अन्दर उस जगहपर न लारी थी, न ड्राइवर और न पुल। ५०० गजकी दूरीपर लोहेके टेढ़े-मेढ़े कुछ टुकड़े लारीके अवशेष-चिह्न-स्वरूप पड़े हुए मिले।



कामिनिया आइल (रजिस्टर्ड)

के दैनिक प्रयोग से अपने बालों की छिपी हुई सुन्दरता को जगा दो।

और इस तरह अपने सौन्दर्य के वैभवकी रक्षा करना सीखो। **कामिनिया आइल** बालों के लिये एक सुन्दर सजावट है बालों में छिपी हुई स्वाभाविक कोमलता और चमक इससे और भी खिल उठती है। इससे खालमें कोई खराबी नहीं आने पाती और उसमें बाल अच्छे जमते हैं। **कामिनिया आइल** बालों को गिरनेसे रोकता है।

१ बोतल का मू० १)३ बोतलकामू० २।।=
वी.पी. खर्च अलग

नमूना मुफ्त
डाकव्ययके लिये
।।।)का टिकट भेजिये

खुशबू का राजा

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

यह पुरानी पूर्व की सुगन्ध, जो अपनी सुगन्धता के लिये प्रसिद्ध है, मोगरा और चमेलीके फूलोंकी मिलावट से बना है। सब लोग इसे "ओटो का राजा" कहते हैं। हर जेबमें रखनेके काबिल हर साइजका मिल सकता है।

नमूने के लिये =) का टिकट भेजिये। खुशबूदार कार्ड, १ कार्ड का –), १ दर्जन का ।।) मूल्य ¼ औंस की शीशी का १।); १ ड्राम की शीशी का ।।।) वी० पी० खर्च अलग।

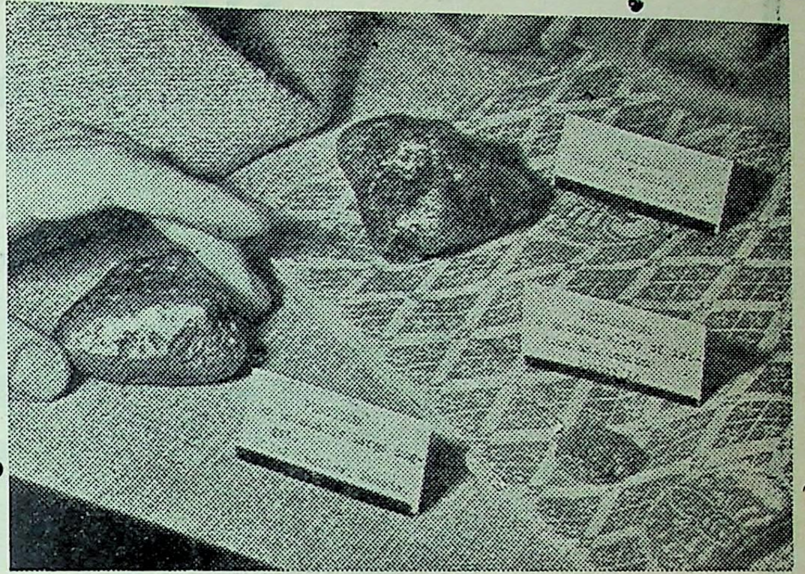
दिलबहार सोप (रजिस्टर्ड)

यह साबुन आश्चर्यजनक सफाई करनेवाला और जहरीला माद्दा दूर करनेवाला है। स्नानके समय तबीअत प्रसन्न हो जाती है। तीन टिक्की के बक्स का मू० ।।।=); तीन पैसे का टिकट आनेपर नमूना मुफ्त।

सोल वितरक :—एंग्लो इण्डियन ड्रग एण्ड केमिकल कम्पनी, बम्बई २

कलकत्ता स्टाकिस्ट्स सिकरी एण्ड कं० लि०, ५५, कैनिंग स्ट्रीट।

खनिज तैलके कुएं कभी-कभी १० हजार फीट अर्थात् २ मीलकी गहराई तक पहुंचते हैं। इन गहरे कुओंके गलानेमें काफी दिक्कतोंका सामनाकरना पड़ता है। दक्षिण कैलिफोर्नियाके कुएं तो प्रायः दो मीलसे ज्यादा गहरे हैं। कुएं तैयार हो जानेपर भी मुसीबतोंका खातमा नहीं हो जाता। शायद तेल अपने आप इतना ऊंचा न चढ़ सके, अतएव इञ्जीनियरको पम्प आदिकी सहायतासे तेलको ऊपर लाना होगा। और यदि तेलकी धार जोरोंके साथ निकलकर ऊंचे आकाश तक पहुंच जाती है, तो इञ्जीनियरको किसी न किसी विधिसे तेलकी इस तेज धारको मन्द बनाना पड़ेगा।



रत्नगर्भा वसुन्धराके दो रत्न।

खनिज तेलके कुओंमें सबसे बड़ा खतरा आग लगनेका होता है। पाइप धंसाते समय बर्मीकी रगड़से चिनगारी निकली और समूचे कुएंमें आग लग गयी। किसी मजदूरने असावधानीसे दियासलाईकी चिनगारी कुएंके नजदीक फेंक दी, या किसी इञ्जिनसे एकाध चिनगारी उड़कर कुएंमें जा पहुंची, बस कुएंके अन्दरसे आगकी लपटें आसमानको छूने लगीं। ऐसी दुर्घटनाके अवसरपर अक्सर सैकड़ों जानें नष्ट हो जाती हैं। ऐसी आगका बुझाना आसान काम नहीं है। बीसियों मोटे-मोटे नलों द्वारा भाप कुएंके अन्दर प्रवेश करायी जाती है। तेजीके साथ निकलती हुई यह भाप कुएंके अन्दरकी हवाको बाहर निकाल देती है। ताजी हवाकी कमीके कारण कुएंकी आग स्वयं बुझ जाती है। फिर भी आग बुझानेकी यह रीति उतनी आसान नहीं है, जितनी प्रकट रूपसे यह जान पड़ती है। कभी-कभी महीनों तक तेलके कुओंसे ऊंची अग्नि-शिखायें निकलती रहती हैं।

मेक्सिकोके एक तेलके कुएंमें इसी प्रकार आग लगी थी। इसकी लपटें १९०० फीट ऊंची चढ़ती थीं। कई मील-की दूरीसे लपटोंकी कड़क-धड़क सुनाई पड़ती थी। कई महीने तक यह आग जलती रही थी। आखिर मजबूत इस्पातका एक विशालकाय ढक्कन तैयार किया गया। इस हौदीनुमा ढक्कनका वजन कई टन था। मुश्किलोंसे लोहेकी पटरियोंपर खींचकर इसे कुएंके पास ले गये, और तब कुएंको इस ढक्कनसे ढक दिया—इस तरह आसमानकी हवासे वञ्चित किये जानेपर कुएंकी आग अपने आप बुझ गयी। ९८ दिन तक यह कुआं निरन्तर जलता रहा था। इस दर्मियान लगभग २० लाख गैलन पेट्रोलका नुकसान हुआ।

रूमानियामें तेलके एक कुएंमें पूरे ढाई बरस तक आग जलती रही थी। कभी-कभी तो हताश होकर आग बुझानेका प्रयत्न ही छोड़ देना पड़ता है। अपने आप तेलकी सप्लाई बन्द होनेपर ही यह आग बुझ पाती है और इस तरह लाखों रुपये खाकमें मिल जाते हैं।

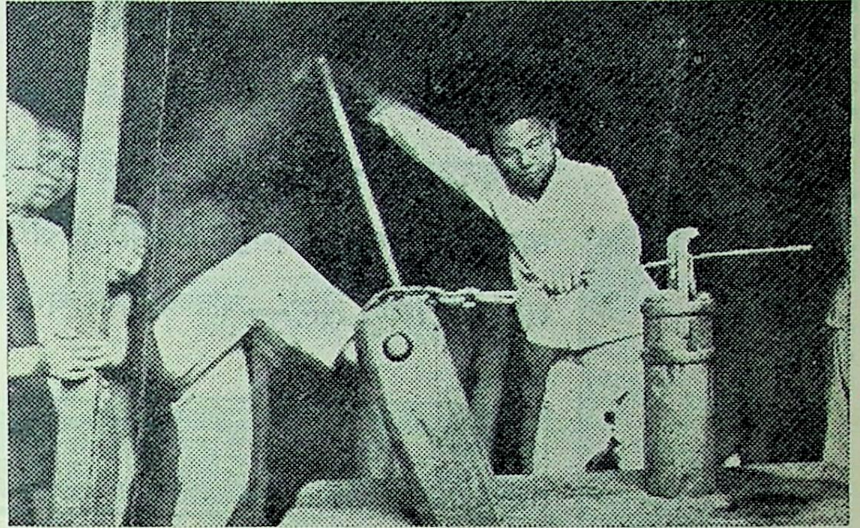
आग बुझानेके लिए कभी-कभी बड़े ही खतरनाक तरीकोंका इस्तेमाल किया जाता है। समूचे शरीरको एसबेस्टासके लबादेसे ढककर हाथमें डायनामाइटके बम-गोले लिये हुए पेटके बल रेंगता हुआ साहसी विशेषज्ञ तेलके कुएंकी ओर अग्रसर होता है। आंचकी तेजीसे वह घबराता नहीं। उसके लबादेमें आंखोंके सामने दो नन्हें-नन्हें सूराख कटे रहते हैं। उन सूराखोंपर रङ्गीन शीशे जड़े रहते हैं। इन्हीं द्वारा वह सामनेकी चीजोंको देख पाता है। आंचकी तेजीकी परवा किये बिना ही वह इञ्च-इञ्च करके आगे बढ़ता रहता है। कभी-कभी तो कुएंके पास तक पहुंचनेमें उसे दो दिन लग जाते हैं। कभी वह रास्तेमें ही गर्मी और

थकानके कारण बेहोश हो जाता है। ऐसी हालतमें दूर खड़े हुए उसके साथी उसकी कमरमें बंधी हुई रस्सी द्वारा उसे वापस खींच लेते हैं। पीछेकी ओर खींचते हुए बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है, क्योंकि उस विशेषज्ञके हाथोंमें डायनामाइटके बम रखे रहते हैं, जो जरा-सी रगड़ खानेपर विस्फोट कर उठते हैं।

रेंगते हुए जब ये विशेषज्ञ कुएंके किनारे पहुंच जाते हैं, तो ईश्वरका नाम लेकर कुएंके अन्दर अपनी पूरी शक्ति लगाकर डायनामाइटके बमको फेंकते हैं। कुएंके अन्दर बम फूटता है—भीषण धड़ाकेके साथ लपटोंका सम्बन्ध एक लमहेके लिए तेलसे अलग हो जाता है और इस बीचवाली जगहमें क्षणिक वैकुअम पैदा होते ही लपटें अपने आप बुझ जाती हैं। जान जोखिमके इस कामके लिए अक्सर चालीस-पैंतालीस हजार रुपये मजदूरीके मिलते हैं। इन विशेषज्ञोंको प्रायः अपने इस साहसिक पेशेके कारण अस्पतालके अन्दर भी महीनों ठहरना पड़ता है।

ईराकके पेट्रोलके कुएं मोसल नगरके नजदीक हैं। कुएंसे निकला हुआ यह पेट्रोल वहींपर साफ नहीं किया जाता, बल्कि रेगिस्तानके उस पार पाइप द्वारा तेलको हैफा नगरमें ले आते हैं। यहींपर कुएंसे निकला हुआ गन्दा तेल कारखानोंमें साफ किया जाता है। ११९० मील लम्बे रेगिस्तानमें पाइप बिछाना कुछ आसान काम न था। पाइपकी मरम्मतके लिए बीचमें १२ स्टेशन भी बनाये गये हैं—एक सिरेसे दूसरे सिरे तक इस निर्जन प्रान्तमें पाइपलाइनके सामानान्तर टेलीफोनके तार भी लगे हुए हैं। १० हजार मजदूरों और इञ्जीनियरोंके परिश्रमसे यह लाइन बिछायी गयी थी। लगभग १९ करोड़ रुपये इसके निर्माणमें खर्च हुए थे।

मजदूरोंके लिए पहननेके कपड़े, पीनेका पानी, खाद्यपदार्थ, पाइप, बोल्ट, औजार, टेण्ट इत्यादि सब कुछ हैफासे ले जाना पड़ा था। गर्मीकी शिद्दत भी बहुत तेज थी—और जाड़ेकी रातमें ओले भी गिरते थे। रेगिस्तानके



चीनी मजदूर चांदीके तार बना रहे हैं।

लुटेरोंसे भी रक्षा करना जरूरी था। रेगिस्तानके तूफानका सामना करना कुछ कम कष्टदायक न था। पाइप बिछानेके ही सिलसिलेमें; कितनों ही को मलेरियाका शिकार होना पड़ा और कितने ही अरब डाकुओंकी गोलीके शिकार बने।

शरारती अरब डाकू अनायास ही अधिकारियोंको परेशान करनेके लिए कभी-कभी मौका पाकर पाइपमें सूराख कर देते हैं और जब जोरोंके साथ उसमेंसे तेल निकलने लगता है, तब उसमें आग भी लगा देते हैं। इसी कारण समूची लाइनकी देख-रेख करनेके लिए बीच-बीचमें सन्तरियोंके लिए चौकियां बनी हुई हैं। ये बराबर इधरसे उधर गश्त लगाया करते हैं, ताकि पाइपको अरब डाकू किसी तरहकी क्षति न पहुंचा सकें।

पेट्रोलका मूल्य युद्धके दृष्टिकोणसे भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। स्वर्गीय फ्रेञ्च राजनीतिज्ञ क्लीमान्शूने एक बार कहा था कि "युद्धकालमें पेट्रोलकी एक बूंद हमारे लिए उतना ही महत्त्व रखती है, जितना रक्तकी एक बूंद।" युद्धकी तैयारीमें रत नाजी जर्मनी पिछले ९ वर्षोंसे निरन्तर अपने लिए अन्य देशोंसे पेट्रोल मंगा-मंगाकर जमा करता रहा है, ताकि युद्ध यदि काफी दिनों तक चला, तो पेट्रोलका टोटा न पड़े। और अब तो रूमानियापर हावी होकर वहांकी पेट्रोल कम्पनियोंकी सारी निकासीको जर्मनी अपने काममें ला रहा है।

युद्धमें पेट्रोल किस बहुतायतसे फुंकता है, इसका

अन्दाज आप केवल इस बातसे लगा सकते हैं कि बड़े आकारके वायुयान प्रति मीलकी यात्राके लिए एक गैलन पेट्रोल खर्च करते हैं। टैङ्क डेढ़ मील जानेमें एक गैलन खर्च करता है। युद्ध-पोत [बैटल-क्रूजर] प्रति घण्टा ७½ टन पेट्रोल जलाता है और सबमैरीन प्रति घण्टा ¼ टन पेट्रोल खर्च करता है।

खनिज तैलकी उपयोगिताको देखकर कुछ राजनीतिज्ञोंने इसे काले वर्णका स्वर्ण कहा है।

सोने-चांदीका अतीत कालके लोगोंके समयमें भी इस्तेमाल होता था। लगभग साढ़े तीन हजार वर्ष पहले मिश्रमें चांदी, सोनेकी अपेक्षा महंगी समझी जाती थी। उन दिनों सोनेके बने हुए आभूषणोंपर चांदीका मुलम्मा चढ़ानेमें लोग अपनी शान समझते थे। सिक्केके लिए चांदीका प्रयोग पिछले ७००० वर्षोंसे होता चला आ रहा है। नकद दाम देकर सौदा खरीदनेकी प्रथा जारी करनेका श्रेय चांदीको ही प्राप्त है। और सभ्यताके विकासमें मुद्रा द्वारा क्रय-विक्रयकी प्रणालीने महत्त्वपूर्ण सहायता पहुंचायी है।

धीरे-धीरे समयकी प्रगतिके साथ चांदीका प्रयोग कला, व्यापार इत्यादि विभिन्न क्षेत्रोंमें होने लगा, यहां तक कि आजकल फोटोग्राफीकी फिल्म और मसाले तैयार करनेमें भी चांदी इस्तेमाल होने लगी है।

वर्तमान युगकी चांदीकी खानें मैक्सिकोमें अधिक हैं। १९३२ में संसारकी चांदीकी समूची निकासीकी आधी चांदी मैक्सिकोसे प्राप्त हुई थी। दक्षिण अमेरिकामें भी चांदीकी अनेक बहुमूल्य खानें हैं। चांदीकी ये खानें पृथ्वीके अन्दर सुरङ्गोंके रूपमें सैकड़ों मील तक फैली हुई हैं। इन सुरङ्गोंके निर्माणमें कभी विषाक्त गैसें, तो कभी गर्म पानीके सोते एकाएक उबल पड़े, और साथ ही साथ दस-बीस मजदूरोंको भी यमलोक पहुंचा दिया।

पुराने जमानेके चांदीके सिक्कोंपर सम्राट् अथवा सम्राज्ञीके चित्रोंके बजाय बैल, शेर, हिरन आदि जानवरोंके सिरकी छाप रहती थी। इन चित्रोंका निरीक्षण करनेसे तत्कालीन सभ्यताके बारेमें काफी जानकारी हासिल की गयी है।

प्राचीन कालमें भी प्रतिदिनके प्रयोगमें आनेवाले बर्तन चांदीके बनाये जाते थे। मिश्रके अमीर-उमरा तथा बादशाहोंकी लाशके साथ कब्रमें चांदीकी तश्तरियां, गिलास, कटोरे इत्यादि रख दिये जाते थे, ताकि कयामतके दिन जब ये जीकर उठ बैठेंगे, तो इन्हें इधर-उधर अपनी आवश्यकतायें पूरी करनेके लिए बर्तन न ढूंढ़ने पड़ें। यूनानमें शराब ढालनेकी सुराहियां और प्याले भी चांदीके बनते थे। इटलीके विसूवियस ज्वालामुखीके उद्गारसे जिन दिनों पाम्पाई शहर जिन्दा दफना गया था, वहांके निवासी चांदीके बड़े-बड़े बर्तनोंमें खाना पकाया करते थे।

राष्ट्रीय सङ्कटके अवसरपर अक्सर मुल्कोंने अपने नागरिकोंके सोने-चांदीके बर्तन तथा आभूषण पिघलाकर सरकारी खर्चका काम चलाया है। १६४३ में इंगलैण्डके राजा चार्ल्स प्रथमने आज्ञा दी थी कि इंगलैण्डके तमाम चांदीके बर्तनोंको गलाकर उनके सिक्के ढाले जायं।

१७४२ में शेफील्डके एक अंगरेजने तांबेके बर्तनोंपर चांदीकी कलई करनेका तरीका ईजाद किया—फिर १९ वीं शताब्दीमें विद्युत्-करेण्टकी मददसे पीतल, तांबेके बर्तनोंपर चांदीकी बारीक तह चढ़ानेकी तरकीब भी ईजाद हो गयी। अब हर कहीं इसी विधिका प्रयोग करते हैं। इसे इलेक्ट्रोप्लेटिङ्गके नामसे पुकारते हैं। आजकल चांदीकी कलई करनेके लिए निकल-सिल्वर (गिलट) को चुनते हैं, क्योंकि इस धातुपर चांदीकी अत्यन्त चमकदार पालिश चढ़ती है।

सर्वप्रथम सोनेकी खान फरोह टाटमूसा बादशाहके जमानेमें ईसासे १९०० वर्ष पूर्व खोदी गयी थी। सिक्के बननेके पहले नियत वजनकी स्वर्ण-अंगूठियोंका बनाया जाना शुरू हुआ था। मिश्रमें लालसागरके किनारे ईसासे ११०० वर्ष पूर्व सोनेकी एक खानमें चौबीसों घण्टे खुदाईका काम होता था। उसके बाद तो लगभग सभी देशोंमें खानके अन्दर, नदीमें या समुद्रके जलमें, सोना कम-बेश मात्रामें मौजूद पाया गया। जर्मनीकी राइन नदीमें भी सोनेके टुकड़े प्रचुर मात्रामें पाये गये। यूरोपकी सबसे बड़ी सोनेकी खान ट्रान्सिलवानियामें है। प्रति वर्ष लगभग २९ मन सोना इस खानसे निकाला जाता है। दक्षिण अफ्रीका, जोहान्सवर्गकी स्वर्ण खानें संसार-भरमें प्रसिद्ध हैं। दक्षिण अफ्रीकाकी खानोंसे प्रति वर्ष एक लाख बीस हजार मन सोना निकाला जाता है। विशेषज्ञोंने तखमीना लगाया है कि इस हिसाबसे यदि हर साल सोना दक्षिण अफ्रीकाकी खानोंसे निकाला

गया, तो १९९० के बाद इतनी प्रचुर मात्रामें इन खानोंसे सोना प्राप्त न हो सकेगा।

सोनेकी निकासीमें दक्षिण अफ्रीकाके बाद सोवियट रूसका नम्बर आता है। उसके बाद अमेरिकाका संयुक्त राष्ट्र और तब कनाडा इस लिस्टपर आता है।

गत यूरोपीय महायुद्धने विभिन्न राष्ट्रोंकी स्वर्ण-सम्पत्तिको काफी अधिक मात्रामें घटाया-बढ़ाया है। अर्थशास्त्रके एक विद्वान्‌का कहना है कि गत महायुद्धमें जिन राष्ट्रोंने भाग लिया, उनकी स्वर्ण-सम्पत्तिका एक तिहाई भाग युद्धके व्ययमें खर्च हुआ और तटस्थ मुल्क और अमेरिकाके संयुक्त राष्ट्रने इस मौकेसे भरपूर फायदा उठाया—फलस्वरूप इनकी स्वर्ण-सम्पत्ति पहलेकी दुगुनी हो गयी।

खानसे निकले हुए सोनेका सबसे बड़ा टुकड़ा वजनमें लगभग २ मनसे ऊपर बैठता है। यह टुकड़ा आस्ट्रेलियाके विक्टोरिया प्रान्तमें मिला था। आजकल यह टुकड़ा इंगलैण्डमें है।

सोनेमें आघात-वर्द्धनीयताका गुण बहुत अधिक है। सावधानीसे पीट-पीटकर एकदम बारीक सोनेके वर्क तैयार किये जा सकते हैं। सवा तीन इञ्च लम्बे, सवा तीन इञ्च चौड़े, २५०० सोनेके वर्क आध छटांक सोनेके टुकड़ेमेंसे तैयार किये जा सकते हैं। राजयक्ष्मा, चर्मरोग, कुष्ट तथा अन्य कई रोगोंमें स्वर्ण औषधिके तौरपर प्रयोग किया जाता है। सहस्रों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वज औषधियां तैयार करनेके लिए विशेष रीतिसे सोनेको फूंककर स्वर्ण-भस्म तैयार कर लेते थे।

चांदी और सोना, दोनोंकी अपेक्षा कई गुनी महंगी धातु प्लैटिनम है। अवश्य ही जिन दिनों प्लैटिनम नयानया खानोंसे निकला था, लोगोंने इसका मूल्य आंकनेमें खूब धोखा खाया। अमेरिकामें कोलम्बियाके निवासियोंने इस सफेद रङ्गकी धातुको कच्चा सोना समझा था। इस कच्चे सोनेको वे फिर नदीमें फेंक दिया करते थे, ताकि कुछ दिनों पश्चात् पककर पीले रङ्गका सच्चा स्वर्ण यह बन जाय।

इस बहुमूल्य धातुके इतिहासमें अनेक रोचक घटनाओंकी कथा निहित है। लगभग १०० वर्ष हुए, रूसके तत्कालीन सम्राट् जारने एक स्वर्णकारको फांसीका दण्ड इसलिए दिया



जारकालमें एक बार प्लेटिनमके सिक्के चले थे !

था कि उसने चांदीके स्थानपर बेईमानी करके प्लैटिनम किसी आभूषणमें लगा दिया था।

दक्षिण अमेरिकासे स्पेनके व्यापारियोंने प्लैटिनम जब खरीदना शुरू किया, तो स्पेनिश गवर्नमेण्ट उनसे बेहद नाराज हुई। गवर्नमेण्टने फौरन् ही आदेश दिया कि इन सफेद टुकड़ोंको जमीनके अन्दर दफना दो या नदीमें डाल दो।

कई मुल्कोंमें उन दिनों सोनेके सिक्कोंमें प्लैटिनम मिलाकर लोग जाली सिक्के तैयार करते थे। दक्षिण अमेरिकामें तो इस अपराधके लिए कई व्यक्तियोंको फांसीकी सजा हुई थी।

प्लैटिनमकी नाकदरी इस हद तक बढ़ी हुई थी कि सोनेकी खानोंपर सोनेको स्वच्छ करनेके सिलसिलेमें प्लैटिनमके छोटे-छोटे टुकड़ोंको भी गर्दके सङ्ग धोकर पानीके साथ

बहा दिया जाता। बादमें जब प्लैटिनमके वास्तविक मूल्य-को लोगोंने आंका, तो कूड़ेमें इस फेंके गये प्लैटिनमकी खोजमें कोलम्बियाके किडो नगरके निवासियोंने अपने घरकी मिट्टी तक खोद डाली। एक व्यक्तिने तो उसकी तलाशमें अपना समूचा मकान ढा दिया। किन्तु उसकी मिहनत व्यर्थ न गयी। उसे इतना काफी प्लैटिनम मिल गया कि उसके मूल्यसे उसने अपना घर तो तैयार कर ही लिया और बचे हुए रुपयोंसे उसने एक बड़े पैमानेपर व्यापार भी शुरु कर दिया।

प्रयोगशालामें वैज्ञानिकोंने प्लैटिनमकी परीक्षा करके इसके विविध गुणोंका पता लगाया, और तब आर्थिक जगत्में प्लैटिनमको वास्तविक महत्त्व मिल पाया। कुछ वैज्ञानिकोंने इसे 'सफेद स्वर्ण' का नाम दिया था। प्लैटिनम धातुसे अत्यन्त बारीक तार खींचे जा सकते हैं। आध छटांक प्लैटिनमके टुकड़ेसे ११००० मील लम्बा तार खींचा जा सकता है। यह तार इतना बारीक होता है कि आंखोंसे ठीक तौरपर दिखाई भी नहीं देता।

प्लैटिनमका प्रयोग आभूषणों तक ही सीमित नहीं है। अत्यन्त ऊंचे तापक्रमपर पिघलनेके कारण प्लैटिनमकी बनी हुई छोटी-छोटी प्यालियां, प्रयोगशालामें अन्य धातुओंको उनमें रखकर पिघलानेके लिए प्रचुरतासे इस्तेमाल होती हैं। रासायनिक क्रियाओं द्वारा खाद उत्पन्न करनेके लिए भी प्लैटिनमके नन्हें-नन्हें कण इस्तेमाल किये जाते हैं।

डाक्टर इन्जेक्शन देते समय जिस सुईका प्रयोग करता है, उसकी नोकपर भी प्लैटिनम लगा होता है। फोटोग्राफीके काम आनेवाले कागजमें, सबमैरीनका पता लगानेवाले यन्त्रोंमें तथा भूचालका पता लगानेवाले यन्त्रोंमें प्लैटिनमका प्रयोग होता है। कृत्रिम दांतके निर्माणमें भी प्लैटिनम इस्तेमाल किया जाता है।

इस गुणग्राहकताने अब प्लैटिनमका मूल्य प्रति औन्स ४५०) पर पहुंचा दिया है। सन् १८०० में प्लैटिनमको अमेरिकामें बारह आने प्रति औन्सके हिसाबसे भी कोई नहीं खरीदता था।

१८१९ तक केवल कोलम्बियाकी खानोंसे प्लैटिनम प्राप्त होता था। किन्तु १८१९ में रूसकी यूराल पर्वत-श्रेणीमें प्लैटिनमकी अनेक खानें रूसके वैज्ञानिकोंने ढूंढ़ निकालीं।



अबसीनियाके राजा हेल सिलासी रास तफारीके राज्याभिषेकके अवसरपर पहननेके लिए यह हैटनुमा रजत-मुकुट एक अबसीनियनने बनाया था।

संसारकी निकासीका ९० प्रतिशत प्लैटिनम उन दिनों रूसकी खानोंसे ही प्राप्त होता था। तदुपरान्त गत महायुद्धके दिनोंमें कनाडा और दक्षिण अफ्रीकामें भी प्लैटिनमकी खानोंका पता उत्साही व्यक्तियोंने लगाया। प्लैटिनमके टुकड़े प्रायः छोटे साइजमें ही मिलते हैं। रूसकी खानसे १८४३ में प्लैटिनमका एक टुकड़ा साढ़े दस सेर वजनका निकला था। संसारका सबसे बड़ा प्लैटिनमका टुकड़ा यही है। आजकल उसकी कीमत ३३ हजार रुपयेके लगभग है। और आज तक खानोंसे निकले हुए तमाम प्लैटिनमके टुकड़े यदि इकट्ठे किये जायं, तो उनका कुल वजन ५८० टनसे अधिक न होगा। इस सम्बन्धमें इस बातका जिक्र कर देना अनुपयुक्त न होगा कि १९३६ में अकेले साल-भरके अरसेमें खानोंसे ११६० टन सोना निकाला गया था।

दक्षिण अमेरिकाकी तर जलवायुमें प्लैटिनम कम्पनियोंको अपने श्रमिकोंकी स्वास्थ्य-रक्षाका खास प्रबन्ध करना

पड़ता है। मलेरिया आदिसे उन्हें बचानेके लिए स्थान-स्थानपर इन कम्पनियोंने कैम्प-अस्पताल खोल रखे हैं। 'ड्रेज' जैसी विशालकाय मशीनोंको बन्दरगाहसे देशके भीतर खानों तक ले जानेमें भी इञ्जीनियरोंको अनेक मुश्किलोंका सामना करना पड़ता है।

पृथ्वीके गर्भसे हीरे, लाल और जवाहरात प्राचीन काल-से ही लोग निकालते आ रहे हैं। कुछ तो उनको आभूषणों-का सौन्दर्य बढ़ानेके काममें लाते और कुछ उन्हें बहुमूल्य सम्पत्ति मानकर तहखानोंमें रख छोड़ते हैं। लगभग ६० वर्ष पहले हीरे केवल भारतवर्ष और ब्रेजीलसे प्राप्त होते थे। किन्तु इसी बीच संयोगसे दक्षिण अफ्रीकाके ओरञ्ज फ्री स्टेट प्रान्तकी सूखी नदियोंके पेटमें हीरेके कन दिखलाई पड़े। कुछ ही दिनों बाद हीरे निकालनेकी बड़ी-बड़ी कम्पनियां वहां काम करती हुई दिखाई पड़ने लगीं। शुरूमें तो ऊपर-की नरम मिट्टीमें हीरेके टुकड़े मिल जाते थे; किन्तु बादमें हीरा प्राप्त करनेके लिए भी गहरी खानें खोदनी पड़ीं। किम्बर्लीकी हीरेकी खानें समस्त संसारमें प्रसिद्ध हैं।

रसायनज्ञों और भूतत्त्ववेत्ताओंका ख्याल है कि किम्बर्लीकी हीरेकी समृद्धिशाली खानोंमें हीरा अनन्त अन्तरिक्षसे उल्काओंके साथ आया है। तप्त उल्काओंके साथ आया हुआ गर्म लोहा पृथ्वीके वायुमण्डलसे गुजरनेपर भूतल-पर गिरते समय एकदम ठण्डा हो जाता है। ठण्डा होनेपर यह जोरोंसे सिकुड़ता है। उसके अन्दर सिकुड़नेसे 'कार्बन' के टुकड़ोंपर बेहद दबाव (प्रेशर) पड़ता है, फलस्वरूप कार्बन-के ये ही टुकड़े हीरेमें परिवर्तित हो जाते हैं। इस अपरि-मित दबावके कारण कार्बनके अणु एक-दूसरेके बहुत ही निकट आ जाते हैं, और उनकी तरतीब भी एक खास ढङ्ग-का अनुकरण करती है। इसी कारण हीरेका आपेक्षिक वजन कार्बनकी अपेक्षा १८ गुना बढ़ जाता है।

उक्त सिद्धान्त वैज्ञानिकोंकी निरी कल्पना नहीं है। कई एक वैज्ञानिकोंने तो प्रयोगशालाके अन्दर २००० डिग्री सेण्टीग्रेडके तापक्रमकी आंचमें कार्बनको तपाकर उसपर दो हजार मन प्रति वर्गइञ्चसे भी ज्यादाका दबाव डाला और फिर उसे एकाएक ठण्डा करके कृत्रिम ढङ्गसे उन्होंने हीरेके छोटे-छोटे टुकड़े तैयार कर लिये हैं। अवश्य ही इस तरीके-से हीरे तैयार करनेमें खर्च बहुत पड़ता है, अतएव व्याव-सायिक दृष्टिसे प्रयोगशालाके अन्दर हीरे तैयार नहीं किये जा सकते। इस दिशामें अब भी प्रयत्न जारी हैं। सर चार्ल्स पार्सनने स्वीकार किया है कि उन्होंने इस क्षेत्रमें असफल प्रयोगोंपर २० हजार पौण्डसे भी अधिक रकम खर्च की है।

हीरेका सबसे बड़ा टुकड़ा १९०५में प्रिटोरिया प्रान्तमें पाया गया था। उस वक्त इसका वजन ३१०६ कैरट था। एक कैरट ३.१७ ग्रेनके बराबर होता है। ट्रान्सवाल गवर्न-मेण्टने किङ्ग एडवर्ड सप्तमको १९०७ में इसे उपहारके रूपमें भेंट कर दिया। तबसे आज तक हीरेका इतना बड़ा टुकड़ा किसी भी खानमें नहीं मिला।

प्रकृतिके अतिरिक्त स्वयं मनुष्यने भी समय-समयपर करोड़ोंकी सम्पत्ति धरतीमाताके गर्भमें पहुंचायी है। शत्रुओं, चोरों तथा नातेदारोंकी दृष्टिसे अपने सोने, चांदी, हीरे, जवाह-रातको बचानेके लिए प्राचीन कालमें अन्य कोई साधन भी तो न था। प्रायः धन गाड़नेके बाद ऐसे व्यक्तियोंकी आक-स्मिक मृत्यु हो गयी, और उस गड़े हुए धनका भेद भी उन्हींके साथ चला गया।

यूनान और रोमके प्राचीन निवासी मृत व्यक्तियोंके मुंहमें सोनेके सिक्के रखकर उन्हें कब्रमें दफन करते थे, ताकि वैतरणी पार करते समय वे मल्लाहका खेवा आसानीसे अदा कर सकें। ख्याल किया जाता है कि ३०० ईस्वी तक जितनी स्वर्ण-मुद्रायें इस रीतिसे यूनानी और रोमनिवासियों-ने कब्रके अन्दर पहुंचायीं, उनका मूल्य १५ लाख रुपयेसे कम न होगा।

१९३९ में बाल्टिक सागरके द्वीप गाटलैण्डमें एक अमे-रिकनने इन सिक्कोंकी खोजमें वैज्ञानिक रीतिसे जमीनकी खुदाई की। उसने ५००० स्वर्ण-मुद्रायें, जिनपर रोमन सम्राटोंकी तसवीरें खुदी थीं, इस तरकीबसे इकट्ठी कीं।

पीरू (दक्षिण अमेरिका) की लेक गुआटावियाका सारा पानी इसलिए उलीचा गया था कि इङ्का बादशाहों-के जमानेका धन इस झीलके पेटसे निकाला जाय। परि-श्रम बेकार नहीं गया। लगभग ७५००० रुपयोंकी कीमतके सोनेके सिक्के तथा रत्न प्राप्त हुए। ये सिक्के आदि भक्त लोगोंने मृत बादशाहोंकी आत्माके लिए शुभकामनाकी प्रेरणासे झीलके अन्दर फेंके थे।

स्वयं हमारे देशमें दूर देहातमें पुरखोंने मकानकी

नींवोंमें तथा इधर-उधर आभूषण तथा रुपये गाड़ रखे हैं। अक्सर इस प्रकारके गड़े हुए धनका पता स्वयं उनके उत्तराधिकारियोंको भी नहीं लग पाता। इसलिए यदि कोई इस प्रकारका यन्त्र बनाया जा सके, जो जमीनको खोदे बिना बता सके कि इस स्थानपर इतना सोना गड़ा है, तो अनायास ही लाखों-करोड़ों रुपयोंकी कीमतका धन जरा-सी मिहनत द्वारा पुनः प्राप्त हो सकेगा। इस ढङ्गके यन्त्रका निर्माण करनेवाला भी कदाचित् अपने यन्त्रके इस्तेमालके लिए गहरी फीस लेगा।

दक्षिणा

डा० धर्मवीर, एम० ए०

"सचमुच तू कितना न्यारा निकला। मुझे न मालूम था कि तेरे अन्दर धोखा भी है। कितनी ही बार तुमने मुझसे मीठी-मीठी बातें कीं। परन्तु इस बातका पता ही न दिया कि तू यह भी कर सकता है। अगर यह मालूम हो जाता, तो तुझे यहांसे बाहर कदम ही न रखने देती। फिर देखती, तू कैसे जाता है।"

ये शब्द थे, जो एक अधेड़ स्त्री बागीचेमें बैठकर कह रही थी। उसके बाल काले थे। परन्तु सिरके अगले हिस्सेसे बाल उड़ चुके थे। मालूम होता था कि किसीने मोचना लेकर नोच डाले हैं। यह किसी बीमारीका नतीजा न मालूम होता था, क्योंकि बाकी सिरके बाल ज्योंके त्यों ही थे। उसके कपड़े मैले थे; इन्हें कमसे कम उजले कोई न कह सकता था। आंखें बन्द करके वह एक ऊनी नेकटाईको अपने हाथसे दायें गालमें लगाये हुए थी। नेकटाई मामूली न थी। आजकलके फैशनके मुताबिक वह चेककी थी। (पहननेवाला जरूर शौकीन होगा, मैंने अनुमान किया।) धूप काफी तेज थी, इसलिए मुझे यह असह्य मालूम होने लगी। यों भी मैं नहीं चाहता था कि किसी प्रकार उस स्त्रीको अपने चलनेसे तङ्ग करूं। उसकी शोक-समाधिको भङ्ग करना किसीके लिए भी पाप होता।

वह नेकटाईको चूम रही थी, जब कि आंखोंसे अश्रु-धारायें बहने लगीं। पता नहीं, हवामें गरमी ज्यादा थी, या मुझे ही ऐसा मालूम हुआ, उसके दोनों गालोंपर आंसुओंके सूख जानेसे दो धाराओंके निशान बन चुके थे। मैं रजनी-गन्धाकी क्यारीसे परे हटकर नीमकी आड़में खड़ा हो गया। वह कुछ गाने लगी, जिसका अर्थ मैंने यह समझा—"अगर तू जोगी हो जाता और दस बरसके बाद भी घरके सामने आकर अलख जगाता, तो कोयल-जैसी तेरी आवाजको मैं झट पहचान जाती। अरे आ, एक बार आकर तू देख तो सही!"

सिसकियां भरनेके बाद उसकी आहत कल्पनाका सोता फिर फूटा—"धोबनको मैंने अपना सबसे बहुमूल्य कपड़ा दिया। मैं चावसे इन्तजार कर रही थी कि वह आज लायगी, कल लायगी। लेकिन जब वह कपड़ा ही बह गया, तब उसका पटरा क्या करे? वह धोये क्या?...मालिनको मैंने कहा, फूल चुनकर हार पिरो लाना। मैं इन्तजार कर रही थी कि वह अब ला ही रही होगी। लेकिन जब बाग ही जल गया, तब वह हार कहांसे पिरोये?......सहेलियोंने आपसमें शर्त लगायी। मैंने उनसे कहा, मुझसे शर्त लगाओ। यदि तुममेंसे किसीके अन्दर इतना साहस है, तो ऐसा सुन्दर शेर पैदा करके दिखाओ!"

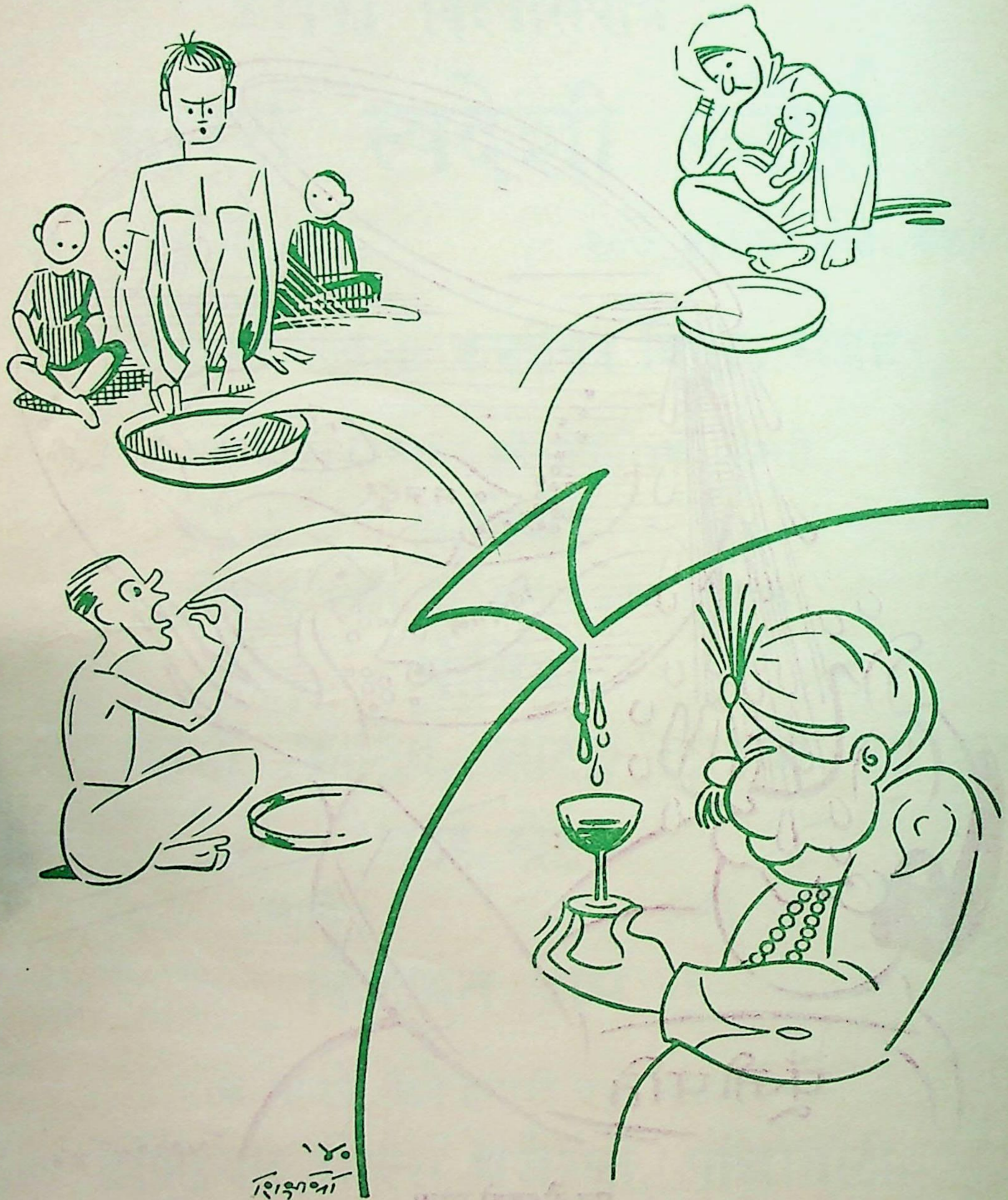
मैं जितने समय वहां खड़ा रहा, यह भग्न-हृदया अपनी कल्पनासे काम लेते हुए नये-नये गीत बनाती चली गयी। सौन्दर्यकी अनुभूति कहती थी कि थोड़ी देर और ठहरो। लेकिन दिलके लिए यह बोझ बहुत ज्यादा हो गया था। मैंने देखा कि दिलपर भी इन गीतों और कल्पनाकी देवीका प्रभाव हो रहा है; क्योंकि मेरी आंखोंको एकके बजाय दो स्त्रियां दिखाई देने लगीं।

मैं वहांसे हट गया। घर लौटनेपर कितनी ही देर तक यह दृश्य मेरी आंखोंमें समाया रहा। शामको हस्ब-मामूल जब मैं टहलनेके वास्ते निकला, तब बजाय नदी-किनारे जानेके उधर उसी शोक-विह्वलाके घरकी तरफ हो लिया। स्वयं दिलने ही पैरोंको इधर आनेका आदेश दिया; क्योंकि दिमाग तो ताजा हवाके पक्षमें दलीलें दे रहा था। परन्तु इस आयुमें दिलके सामने दिमागकी कब चलती है।

उसके घरके सामने पहुंचा, तो देखा कि स्त्री पत्थरकी सीढ़ियोंपर बैठी है। उसकी कुहनियां घुटनोंपर हैं और मुंह हाथोंमें ऐसा फंसा है, जैसे गोल सेब कटोरीमें फंस जाय। वह एकटक दक्षिणकी ओर देख रही थी। उसकी आंखोंसे आंसू न निकल रहे थे। परन्तु पानीके बहनेके लिए दोनों तरफ नाली-सी बनी हुई थी। मैं हिम्मत करके वहां खड़ा हो गया। बेशक खड़े रहो, उसने इसकी कुछ परवाह न की। मैंने ढीठ बनकर सवाल किया—"माई, अब तो अंधेरा हो गया है। तू क्या देख रही है?"



धन-दौलतकी प्यास



प्रजा-पालक !

"वह आ रहा होगा।" उसने ऐन भोलेपन और गम्भीरताके साथ कहा—"वह कह गया था कि शामकी गाड़ीसे आऊंगा।"

"शामकी गाड़ी!" मेरे मुंहसे निकला—"वह तो आ चुकी। पांच बजे आती है। अब तो छः भी हो लिये।"

"अच्छा, छः हो लिये!" भोलेपनकी वह मूर्ति बोली—"तब गाड़ी लेट हो गयी होगी। वह आयगा जरूर। वह कह गया था, शामकी गाड़ीसे आऊंगा।"

"लेकिन अब वह कैसे आ सकता है? अब तो···"

"आज वह कैसे आ सकता है! क्यों?"

"हां, आज वह कैसे आ सकता है?" मैंने अपनी गलतीको अनुभव किया। गलतीको दुरुस्त करनेके वास्ते मैंने 'अब' की जगह 'आज' का प्रयोग किया। उसमें मुझसे अधिक बुद्धि थी। इसी कारण पहले उसने मेरी भूल ठीक की—"हां, आज वह कैसे आ सकता है? अब तो छः भी हो चुके।"

"अच्छा, बहुत अच्छा।" यह कहकर उसने दोनों हाथ सीढ़ीपर टेके, जैसे उठने लगी हो। फिर बोली—"पर थोड़ी देर और क्यों न इन्तजार कर लूं?"

इस भोलेपनपर मैं रो दिया: मेरी आंखें तर हो गयीं। जैसे उस गलतीके लिए प्रायश्चित्त कर रही हों। परन्तु उस स्त्रीने मेरी तरफ बिलकुल न देखा था। इतनी देर बातें करते हुए वह उसी ओर देखती रही, जिस ओरसे उसे अपने लड़केके आनेकी आशा थी। मैंने अपना सिर नवाकर उसका धन्यवाद किया कि तुमने मेरी गलतीको दुरुस्त तो कर दिया, परन्तु जतलाया नहीं। कितनी उदारतासे काम लिया।

(२)

बाहरके एक पत्रकारने हमारे कालेजमें आकर लेक्चर दिया। क्योंकि ये सज्जन हाल ही में जापान होकर आये थे, इसलिए, "संसारमें जापानका स्थान," इस विषयपर उन्होंने व्याख्यान दिया। लेकिन व्याख्यानसे पहले उन्होंने एक दिलचस्प शर्त पेश की: हर दस विद्यार्थियोंमेंसे एक उनसे कोई न कोई प्रश्न जरूर करे। अध्यापकगणमेंसे हर-एकको, जितने वह चाहे, प्रश्न करनेकी छुट्टी थी। मैं इन दिनों मृत्युकी समस्यामें उलझा हुआ था, इस कारण मौन धारण करनेका निश्चय कर रखा था। फिर संसारमें जापानके स्थानका मृत्युसे क्या सम्बन्ध? परन्तु मेरी हैरानीकी कोई हद न रही, जब व्याख्यानदाताने ये शब्द कहे—"जापानके वर्तमान उत्कर्षमें सबसे बड़ा हाथ मृत्युके सम्बन्धमें जापानियोंकी मनोवृत्ति है। वे लोग मौतको ऐसा समझते हैं, जैसे मामूलीसे मामूली बात। हमारे यहां हिन्दू शास्त्रोंमें, विशेषकर भगवद्गीतामें, यह कहा गया है कि मरण और जन्म ऐसे ही हैं, जैसे फटे हुए पुराने कपड़े उतारना और नये पहनना। परन्तु जापानियोंने इससे भी बढ़कर कल्पनासे काम लिया है। वे कहते हैं, जन्म-मरण ऐसा ही है, जैसे एक दरवाजेसे निकलकर दूसरेमें प्रवेश करना। उनको जीवनसे मोह नहीं है, जैसा कि हिन्दुओंको है। हिन्दुओंकी फिलासफी या दर्शन ठीक है; परन्तु आचरण गलत है। घरमें जब कोई मर जाता है, तब ये लोग कुछ घण्टे नहीं, बल्कि महीनों तक रोना जारी रखते हैं।"

कुछ दिन पहले मेरे विचार भी ऐसे ही थे। मैं स्यापेको ठगी, रोनेको ढोंग और बाल वगैरह नोचनेको दिखावा समझता था। अक्सर औरतोंसे मुझे इसी कारण घृणा हो गयी थी। अपने मित्रोंसे मैंने इसका जिक्र भी किया। परन्तु जबसे मैंने उस शोक-ग्रस्त माताको देखा था, मेरी राय बदल गयी थी। फलतः मैंने निश्चय किया कि इन सज्जनसे व्यक्तिगत रूपसे बातचीत करनी चाहिए। वे व्याख्यान समाप्त करके चलनेको तैयार हुए, तो मैंने उनसे कहा—"यदि आपको कोई आपत्ति न हो, तो कल शाम मेरे यहां खानेकी कृपा कीजिये। मैं आपसे कुछ बातें करना चाहता हूं। मैं खुद ही आपको अपने साथ ले आऊंगा।" उन्होंने धन्यवाद-पूर्वक स्वीकार कर लिया।

भोजनसे पहले मैं उन्हें वह स्त्री दिखानेके लिए ले गया। क्योंकि इस केसने मेरी रायको पलट दिया था, इस कारण उनको इसका हाल दिखलाना जरूरी था। कपड़े मैले, बाल नोचे हुए, आंखोंसे नीचे गालोंपर अश्रु-धाराके बहनेके लिए दो मन्द मार्ग बने हुए हैं—ये सब बातें स्वयं उन्होंने नोट कीं। मैंने उन्हें यह बतला दिया कि इस समय यह सीढ़ियोंपर क्यों बैठी है। यह जानती है कि इस प्रकार बैठनेसे (या अगर कोई मूर्ख निर्दय इसे दिखलावा कहे, तो इस पवित्र दिखलावेसे) न तो उसकी बड़ाई होगी और

न कोई कुछ और ही कहेगा। अगर कोई कहेगा, तो यही कि पागल हो गयी है। और ऐसा सर्टिफिकेट लेनेके वास्ते कोई स्त्री या पुरुष तैयार न होगा।

"क्या अब इससे कुछ पूछना चाहते हैं ?" मैंने उनसे कहा।

"अरे !" वे बोले—"आप क्या कह रहे हैं ! इस समय इससे कुछ भी कहना इसके दिलको चोट पहुंचानेके बराबर है। मैं इसे पाप कहूंगा। परन्तु हां, यदि कोई दूसरा मनुष्य इसके विषयमें कुछ बता सके, तो अच्छा हो, ताकि सब कुछ मालूम हो जाय।"

हमारी खुश-किस्मतीसे पासके दफ्तरसे एक बाबू निकले। क्योंकि उन्होंने भी मेरे अतिथिका व्याख्यान सुना था, इसलिए जिज्ञासाके कारण पास आ गये। पूछा—"क्या मैं आपकी कोई सेवा कर सकता हूं !"

"कृपा है !" पत्रकारने कहा—"क्या आप यह बता सकते हैं कि यह, सामने सीढ़ियोंपर, कौन बैठी है ?"

"हां हां," वे बाबू बोले—"ये यहांके चीफ इञ्जीनियरकी पत्नी हैं। अच्छे खानदानसे सम्बन्ध है। बड़े घरकी मां हैं। हाल ही में इनका लड़का बलवीर इनसे जुदा हो गया है। ग्रेजुएट था; बल्कि इसी वर्ष उसने बी० ए० पास किया था। बड़ा खूबसूरत नौजवान। बड़ा सुन्दर स्वास्थ्य। टैनिसका मशहूर खिलाड़ी। हंसोड़। अच्छी आदतें। सर्वप्रिय। उसके तीन भाई और भी हैं। परन्तु वह इन सबमें निराला था; योग्य भी था। सारे घरको उससे आशायें थीं। स्वभावतः माताको चाव था कि बस, इस वर्षके अन्तमें बहू लायगा, तो मैं उसका माथा चूमूंगी। परन्तु भाग्यमें कुछ और लिखा था। छोटे भाईको लाहौर जाकर कालेजमें दाखिल कराने गया। वहां ही बुखार आया और चल दिया। माताके दिलकी साध दिल ही में रही। इतना भी तो न कर सकीं कि अन्त समयमें उससे दिलकी दो बातें कर लें। बस, इसी कारण प्रतिदिन शामकी गाड़ीके वक्त उसकी बाट जोहती हैं। जब नहीं आता, तब अगले दिनकी प्रतीक्षा करती हैं।"

हमने बाबू साहबको धन्यवाद दिया और घरको चल दिये। भोजन समाप्त करनेपर मैंने अपने मेहमानसे प्रश्न किया—"कहिये, अब आपकी क्या राय है ?"

"अभी तो मैं कुछ नहीं कह सकता।" उन्होंने उत्तर दिया—"इसपर कुछ समय गम्भीरता-पूर्वक विचार करनेके पश्चात् मैं कोई नयी राय बना सकता हूं। हां, इतना जरूर है कि आपने मेरे विचारोंमें बम फेंककर उथल-पुथल मचा दी है। इसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूं।"

"एक बात निवेदन करूं, यदि अनुचित न समझें।"

"बड़े शौकसे।" पत्रकार महाशयने कहा।

"देखिये," मैंने मेज-पोशके कोनेको साफ करते हुए कहा—"मैं समझता हूं कि बहुत-सी स्त्रियां इस मामलेमें दिखलावे और जाहिरदारीसे काम लेती हैं। सभी नहीं, बहुत-सी। मैंने अपनी आंखोंसे ऐसी स्त्रियोंको भी देखा है, जिनका कोई दूरका रिश्तेदार मर गया था। खाना खा-पीकर जब उन्हें बाकी कामोंसे फुरसत हुई, तब वे दरी बिछाकर ड्योढ़ीमें घेरा डालकर बैठ गयीं। एकने कहा—"इस बुड्ढेने भी क्या मुसीबत डाल दी है !" यह सुनकर सभी खिलखिलाकर हंसने लगीं। इस तरहके हंसी-ठट्ठेके बाद उन्होंने अपने-अपने सिरपरसे कपड़ा आगेको खिसकाया और मौतका राग शुरू कर दिया। मैं समझता हूं कि जाहिरदारीका यह रोना उपहासजनक ही नहीं, शायद घृणाजनक भी है। परन्तु कभी-कभी जाहिरदारी बिलकुल ही नहीं होती। उदाहरणार्थ, इस मातामें हम क्या देखते हैं ? यह तो कलाकारका रोना है। किसी साहित्यिक कलाकारके उपन्यासको यदि आग भस्म कर दे या गौ खा जाय, तो उसे कितनी मनोव्यथा होगी। वह सम्भवतः दिल ही में रोयेगा। यदि उसके आंसू निकल आयें, तो यह कोई बड़ी बात न होगी। लेकिन क्यों ? इस कारण कि उस कलाकारने इतने श्रमके पश्चात् अपनी शायद सर्वोत्तम कृति तैयार की थी। और यह स्त्री ? यह मां ? मातृत्व सबसे बड़ी कला है। माता इस कलाकी विशेषज्ञ है। मुझे मालूम नहीं कि संसारमें खुदाकी जरूरत है या नहीं; क्योंकि यदि मैं विकासवादमें विश्वास रखता हूं, तो मुझे ऐसी शक्तिकी आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु यदि मैं आस्तिक हूं, तो मेरा खयाल है कि ईश्वर सबसे बड़ा कलाकार है। वह सृष्टिकी रचना करता है। परन्तु संसारमें ईश्वरके इस गुणकी सबसे अधिक मात्रा किसमें पायी जाती है ? मातामें। फिर उस मातामें जिसने न केवल लड़का पैदा किया है, बल्कि

उसे इतना सुन्दर, स्वस्थ और नेक बनाया कि समस्त समाज उसकी प्रशंसा करता है। ऐसी अवस्थामें यदि वह माता अपनी उस सर्वोत्तम कृतिके छिन जानेसे महीनों या बरसों बाल नोचती है, जिसकी रचना उसने अपना खून देकर की, तो यह उसके वास्ते केवल क्षम्य ही नहीं, बल्कि शायद उचित ही है।''

"आपने मुझे अच्छा-खासा लेक्चर दे डाला!" पत्रकारने हंसते हुए कहा।

"क्षमा कीजिये, आप तो समझेंगे कि मैंने खाना खिलानेकी कीमत वसूल की है।"

"नहीं हुजूर, मैं तो इसे खानेके साथ दक्षिणा समझ रहा हूं।"

सुन्दरियोंका 'शस्त्रीकरण' और उसका लाखोंका खर्च

श्री चन्द्रशेखर, एम० ए०

आदि कालसे ही नारीने अपनी सौन्दर्य-वृद्धिके लिए तरह-तरहके श्रृङ्गार-प्रसाधनोंका व्यवहार किया है। पुरुष-की नजरोंमें वह सुन्दर दिखाई पड़े, इसके लिए उसने समय-समयपर विभिन्न साधनोंका उपयोग किया। उसे कभी सामाजिक अथवा राजनीतिक अधिकार मिले न थे, इसलिए अपने व्यक्तित्वके आधारपर ही उसे प्रभाव सञ्चित करना था। पर सौन्दर्य और आकर्षणको छोड़कर उसके पास और साधन क्या थे? इसीलिए नारीने सदा अपनेको संवारकर रखा है।

और इस विषयमें आधुनिक राष्ट्रोंकी-सी उसकी अवस्था रही है। "छुरे-खञ्जर" उसकी कमरमें भी हैं। गानेवालोंने "तीर-कमान" नारीकी आंखोंमें भर दिये हैं। गद्यमें यह छिछोरा-पन लगता है, विश्व-साहित्यमें आंखोंके तीर-कमानपर होने-वाली रचनायें लाखोंकी संख्यामें हैं। मनों साहित्य उनपर लिखा गया है। उसने जैसे सदा पुरुषकी कठोरतापर विजय पानेको ही एक ध्येय माना और इसके लिए ईवके जमानेसे ही वह युद्धरत रही है। नारीके लिए यह युद्ध दैनिक कार्यकी भांति आवश्यक रहा है। क्योंकि अगर वह पुरुषोंसे पराजित हुई, तो उसके लिए कहीं जगह नहीं— उसके लिए उसके अस्तित्वका कोई मूल्य नहीं। इसलिए अबलाको सदा 'घने लहरे रेशमके बाल' की जञ्जीर लेकर चलना पड़ा, जिससे पुरुष "तेरे रूप-जालमें कैसे बिंधवा दूं निज मृग-सा मन" सदा चिल्लाता रहे; क्योंकि वह जानता है कि "इनकौ मन बांधति नहीं, बारे बांधनिहारि।"

तो नारीको अपने इस शस्त्रागारके लिए काफी पैसेकी जरूरत रही है। आंखों, बरौनियों, केशों—सबको सजाने, संवारनेके लिए उसे अपरिमित पैसा खर्च करना पड़ता है। और इस मदमें सभी देशोंमें बहुत अधिक रुपये खर्च हो रहे हैं। बाकायदे सभी देशोंमें पुरुषपर विजय प्राप्त करनेके लिए नारीको शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित करनेके लिए नये-नये सौन्दर्य-प्रसाधनोंकी खोज हो रही है, नये-नये आविष्कार हो रहे हैं और नारियोंके तरकसमें नये-नये तीर संग्रह किये जा रहे हैं।



मुखमण्डलको और भी आकर्षक बनानेके लिए सौन्दर्य-विशेषज्ञ व्यस्त है।

अपनेको सुसज्जित करके आकर्षक बनानेकी साध और आवश्यकता नारीके लिए आज ही नहीं हुई है। जैसा कि हमने कहा है, बल्कि २३०० वर्ष पहले हम पढ़ते हैं कि पेरिक्लिस तथा उसके दूसरे युवकोंको आकर्षित करनेके लिए नारियां उंगलियों तथा अंगूठेके नाखून रंगती थीं। भारतमें प्रचलित अङ्गराग तथा दूसरे सौन्दर्य-प्रसाधनोंका उल्लेख कितने ही ग्रन्थोंमें है और भारतीय इतिहासमें जिसे महा-काव्य-काल कहा जाता है, उसमें भारतीय नारियोंके आलता, मेंहदी आदि कई प्रकारके पदार्थोंके भिन्न-भिन्न रूपमें

व्यवहार करनेके कितने ही उदाहरण मिलते हैं। ओविडने अपनी पुस्तक 'प्रेमकी कला' (The Art of Love, by Ovid) में लिखा है कि पुरुषोंके सामने नारीके शरीरका प्रदर्शन तब तक नहीं होना चाहिए, जब तक कि उसका श्रृङ्गार करके उसे आकर्षक न बना दिया जाय।

स्त्रियोंका निरस्त्रीकरणमें कभी भी विश्वास नहीं रहा। अतः सौन्दर्य-वृद्धिके कारखानोंमें कभी कमी या ढिलाई नहीं आयी। ऐसे कारखानोंके कला-विशारदोंका ध्यान सदा इस बातमें लगा रहता है कि किस मनोवैज्ञानिक अवसरपर कौन-सी वस्तु तैयार की जाय। यह व्यापार धुआंधार :चल रहा है। यही एक ऐसा व्यापार है,जिसमें व्यवसायी, कलाकार, वैज्ञानिक और रासायनिक अनेक प्रकारके लोगोंका सहयोग लेकर वस्तु-निर्माण किया जाता है। यूरोप और अमेरिकामें यह व्यापार खूब चल रहा है। पिछले दिनों भारतीय उद्योग-धन्धेमें जैसी वृद्धि हुई है, उसमें सौन्दर्य-प्रसाधनोंका व्यापार खूब चमका है।

ब्रिटेनके बोर्ड आव ट्रेडकी रिपोर्टके अनुसार ब्रिटेनमें सौन्दर्य प्रसाधनोंकी जो खपत हुई, उसके



अलसायी पलकोंमें वैज्ञानिक मादकता भर रहा है।

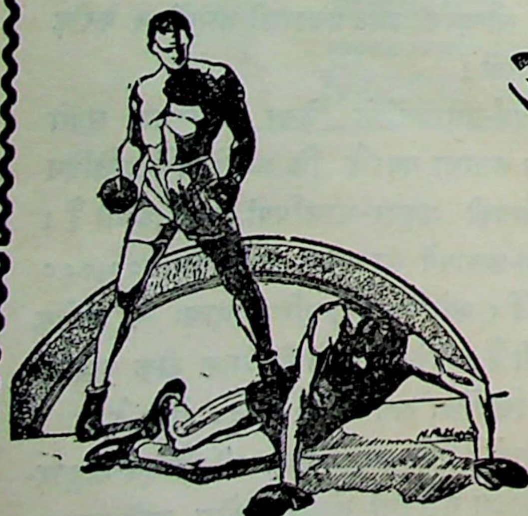


बरौनियोंपर शान चढ़ायी जा रही है।

अतिरिक्त ९,०००,००० पौण्डका उसने निर्यात किया। १९३८ में ब्रिटेनने सौन्दर्यकी आठ प्रकारकी वस्तुयें ९ करोड़ पौण्डकी बाहर भेजीं।

लेकिन सौन्दर्य-प्रसाधनोंको लेकर अमेरिका सबसे आगे है। हिसाब लगाया गया है कि अमेरिकामें प्रतिदिन १,०००,००० पौण्डकी श्रृङ्गार-सामग्रियां खर्च होती हैं। ब्रिटिश स्त्रियां केश-कलापमें सालाना प्रायः १७,०००,००० पौण्ड खर्च करती हैं। अमेरिकन सुन्दरियां प्रायः ९ करोड़ पौण्ड खर्च करती हैं। सिर्फ केशोंकी चमक ठीक रखनेके लिए इंगलैण्डकी स्त्रियोंका खर्च ४,५००,००० पौण्ड है।

ब्रिटेनके बाजारोंमें प्रायः७००० प्रकारकी सौन्दर्य-श्रृङ्गार-सामग्रियां हैं। ब्रिटिश नारियां लोशन, क्रीम, स्नो पाउडर, आदिपर प्रति वर्ष ५५,०००,००० पौण्ड खर्च करती हैं।



यूरोपके दूसरे देशोंमें भी हालत यही है। फ्रान्स और जापानकी नारियां किसीसे कम नहीं हैं। पेरिस फैशनका नेतृत्व करता है, यह कहावत है और इसकी इतनी अधिक प्रसिद्धि है कि दूसरे देशोंकी श्रृङ्गार-सामग्रियां भी पेरिसके नामसे चलती हैं। फैशनके पत्रोंमें पेरिसकी अब भी बड़ी महिमा है।

सौन्दर्य बढ़ानेवाली श्रृङ्गार-सामग्रियोंकी ही धूम नहीं है, बल्कि यूरोप और अमेरिकामें ऐसी सैकड़ों दूकानें खुल गयी हैं, जिनमें नारीके विभिन्न अङ्गोंकी कुरूपता मिटाकर उन्हें आकर्षक बनानेके प्रयत्न किये जाते हैं। नीनाकी नाक जरा-सी टेढ़ी है, तो वह उसे सुडौल बनानेके लिए वैज्ञानिकोंके यहां दौड़ रही है। और लीनाकी बरौनियां किस प्रकार आकर्षक बनायी जायें, इसके लिए सौन्दर्य-विशेषज्ञको मनमानी रकम दी जा रही है। यहां तक कि नारियोंने वैज्ञानिकोंको ऐसा विवश किया है कि वे चमड़ेके रङ्ग बदल देनेवाले प्रयोग करने लगे हैं। नारीने अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गको वैज्ञानिक साधनों और प्रसाधनोंसे ऐसा सजाना और परिष्कृत करना शुरू कर दिया है कि नारी आज फैक्टरी—कारखानेकी चीज बन गयी है।



सौन्दर्य-विशेषज्ञ अङ्ग-प्रत्यङ्ग सजानेमें लगे हैं।



होठोंको रंगनेके लिए एक-एक देश लाखों रुपये प्रति वर्ष खर्च करता है।

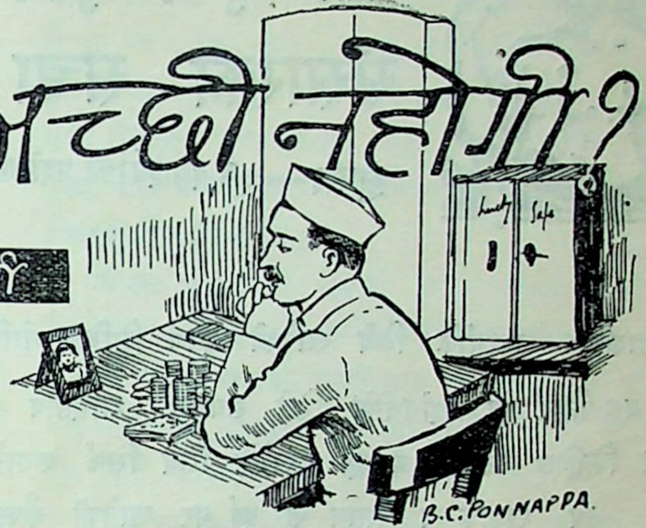
सौन्दर्य-वृद्धिके इन क्रिया-कलापोंमें होलीउड संसारमें सबसे आगे है। वहां सौन्दर्य-सामग्रियोंकी सबसे अधिक खपत है और सैकड़ों व्यक्ति फैशन और माडल निर्माण करनेमें ही वहां व्यस्त रहते हैं।

इंगलैण्डमें मोटर रखने और उसपर होनेवाले खर्चका प्रायः दूना खर्च सुन्दरियोंके श्रृङ्गार-प्रसाधनपर हो जाता है। और इंगलैण्डमें यद्यपि धूम्रपानका खर्च बहुत अधिक है, पर श्रृङ्गार-प्रसाधनोंका खर्च उससे प्रायः २९,०००,००० पौण्ड अधिक है। अमेरिकामें और भी अधिक है।

पर यह कभी बन्द नहीं हो सकता। संसारमें निरस्त्रीकरण भले ही हो जाय, पर नारियोंका अस्त्रीकरण कभी बन्द न होगा।

प्रतिभा अबभी अच्छी न होगी ?

श्रीमती सत्यवती शर्मा



ईस्टरकी छुट्टियां थीं। मैं भाई साहबके पास लाहौर आयी हुई थी। उन दिनों मौसम अत्यन्त सुहावना था। भाई साहब और मैं नित्य प्रातःकाल लारेन्स गार्डनकी तरफ घूमने जाया करते थे। वह अद्भुत व्यक्ति भी प्रायः हमें हर रोज ही मिला करता। कभी माल रोडपर और कभी बागके किसी कोनेमें। वह एक मैली तथा फटी हुई भूरे-से रङ्गकी अचकन पहने रहता था। उसकी आयु कोई पचास वर्षके लगभग होगी। सिरके बाल रूखे और बढ़े हुए, जूते टूटे हुए तथा धूलसे लथपथ, नेत्रोंमें हमेशा करुणा तथा एक प्रकारका उन्माद-सा छाया रहता था। लेकिन वह पागल भी नहीं मालूम पड़ता था। उसके गलेमें एक पीले-से रेशमी कपड़ेका दुपट्टा पड़ा रहता था, जिसके एक छोरपर कुछ रुपये तथा नोट और दूसरे सिरेपर एक जिल्द-सी बंधी मालूम होती थी। कभी-कभी वह अपनी पोटली खोलकर रास्तेमें ही रुपये गिनने लग जाता, फिर अपने-आप सम्मति-सूचक भावसे सिर हिलाकर दुपट्टेको पहलेकी भांति संभालकर गलेमें डाल लेता।

उस दिन हम लोग कठिनतासे अभी बड़े डाक-घरके पास ही पहुंचे थे कि फुटपाथपर वह मनुष्य जाता दिखाई दिया। वही दुपट्टा गलेमें डाले हुए। मेरे मनको फिर उत्सुकताने घेर लिया। मैं अपने कुतूहलको रोक न सकी, भाई साहबसे प्रश्न किया, "क्या यह आदमी सचमुच पागल है ?"

"बिलकुल पागल तो शायद नहीं।" वे कहने लगे, "सनकी अवश्य मालूम होता है। सुना है, गत जीवनमें इसके हृदयको कोई गहरी चोट लगी है, जिसने इसके मस्तिष्कमें रुपयोंकी सनक पैदा कर दी है।"

"जो हो, मैं अवश्य इससे इसकी कहानी पूछूंगी।" मैंने अनुनयकी दृष्टिसे भाई साहबकी ओर देखा।

"पगली लड़की ! क्या राह-चलतोंसे कभी इस तरहकी बातें पूछी जाती हैं ? संसारमें लाखों प्राणी हैं। प्रत्येकके अपने सुख-दुख हैं। सभीकी विभिन्न जीवन-धारायें हैं। तुम क्या करोगी किसीकी कहानी सुनकर।" उन्होंने प्यारसे मेरी पीठको थपथपाया।

मुझे चुप हो जाना पड़ा। किन्तु उस अनोखे आदमीके विषयमें जानकारी प्राप्त करनेकी मेरी जिज्ञासा बढ़ती ही गयी। कुछ ही क्षणोंमें हम लोग बागके अन्दर जा पहुंचे। भाई साहब तो खेलके बड़े ग्राउण्डमें टहलने लगे; परन्तु मैं कुछ थक-सी गयी थी, इसलिए एक कोनेवाली लताओंके झुरमुटमें छिपी बेञ्चपर जा बैठी।

वहां बैठे अभी मुझे एक मिनट भी नहीं बीता था कि मेरी दृष्टि सामनेवाली बेञ्चपर बैठे आदमीपर पड़ी। मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा। यह तो वही था। अपने पीले दुपट्टेकी गांठें खोले बैठा था। रुपये तथा नोट उसके सामने खुले पड़े थे, हाथमें एक चित्र था, जिसे वह बहुत ही ध्यानसे देख रहा था। उसके नेत्रोंसे कभी-कभी एकाध आंसू टपककर उस चित्रको भिगो रहा था। मैं विस्मय-विमूढ़-सी होकर एकटक उसकी ओर देखने लगी। एकाएक उसके मुखसे निकला—'आह मेरी प्रतिभा !' और उसने उस चित्रको हृदयसे लगा लिया।

मुझसे अब न रहा गया। चुपकेसे उठकर उसके पीछे जा खड़ी हुई। मैंने देखा, वह एक अत्यन्त सुन्दर, कमल-दल-से बड़े-बड़े नेत्रोंवाली आठ नौ वर्षकी बालिकाकी तस्वीर थी।



"बाबा, यह किसका चित्र है?" मैंने पूछा ।

उसने चौंककर मेरी ओर देखा । उसके मुखपर कठोरता-के चिह्न साफ झलक रहे थे; परन्तु न जाने क्यों, उसकी वह कठोरता एक पल-भरमें ही लोप हो गयी । जरा मुसकराकर बोला, "तुम कौन हो ? क्या तुम्हारा नाम भी प्रतिभा है ?"

"नहीं । मैं प्रतिभा नहीं हूँ । परन्तु क्या आप मुझे अपनी प्रतिभाकी कहानी सुनायेंगे ?"

"मेरी प्रतिभाकी कहानी !" वह व्यंग्यसे हंसा, "यह संसार उस पावन तथा दिव्य आत्माकी कहानी सुननेके योग्य नहीं है । शायद इसीलिए वह इस संसारसे घृणा-पूर्वक मुख फेरकर चली गयी । परन्तु बेटी ! न मालूम तुम्हें देखकर क्यों मेरे हृदयमें स्नेह उमड़ आया है । मेरी प्रतिभा भी तो आज ठीक तुम्हारी-जितनी ही होती । उसकी आवाज भी बिलकुल तुम्हारी-जैसी ही थी। अच्छा ! अगर सुनना चाहती हो, तो बैठ जाओ ।"

मैं चुपकेसे उसी बेञ्चके एक कोनेपर बैठ गयी ।

(२)

"वे दिन भी अभी तक भूले नहीं हैं," उसने अपनी आंखें पोंछते हुए कहना आरम्भ किया, "जब मेरे पास भी धन था, सम्मान था, दिन आनन्द-पूर्वक व्यतीत हो रहे थे। तभी प्रतिभाका जन्म हुआ था, जिससे हमारा आनन्द दुगुना हो उठा था । उसका प्यारा-सा भोला मुख देखकर हम दोनों प्राणी फूले न समाते । एकमात्र सन्तान होनेके कारण हमारे सम्पूर्ण स्नेहकी स्वामिनी प्रतिभा ही थी । हम अपने उस नन्हें-से संसारमें मग्न थे । वेदनाका वास्तविक अर्थ तक मैं नहीं जान पाया था । लेकिन भाग्य-को शायद हमारा वह सुख स्वीकार न था । धीरे-धीरे व्यापारके घाटेमें मेरा सब धन बह गया । यहां तक कि कभी-कभी हमें भोजन जुटानेके लिए भी कठिनता होती। पत्नीके सब आभूषण भी एक-एक करके बेचने पड़े । अब हम बिल-कुल लाचार हो गये । मैं सारे-सारे दिन दफ्तरों, स्कूलों तथा बैङ्कों आदिकी धूल छानता रहता, लेकिन कहीं नौकरी न मिलती । महीने-भर इसी प्रकार धक्के खानेके अनन्तर मुझे एक बैङ्कमें तीस रुपये मासिककी एक जगह मिल गयी । हमने इसीको सौभाग्य समझा । सोचा, चलो किसी प्रकार भोजनका प्रबन्ध तो हो ही जायगा । लेकिन विधाता-से यह भी न देखा गया ।" यह कहते-कहते वृद्धका स्वर कुछ कांप-सा गया । गलेको जरा साफ करते हुए उसने एक बार नोटोंको उलट-पलटकर देखा और रुपयोंको हाथमें लेकर थोड़ा खनखनाया; फिर डबडबाये नेत्रोंसे चुपचाप उस चित्रकी ओर देखने लगा ।

मैं उस कहानीको सुननेमें इतनी तन्मय हो गयी थी कि मुझे भाई साहबके आनेकी बिलकुल खबर न हुई । न जाने वे कबसे आकर हमारे पास बैठे कहानी सुन रहे थे। उस आदमीको चुप देखकर मैं कुछ कहने ही जा रही थी कि भाई साहबने मुझे सङ्केतसे मना कर दिया । शायद उन्हें भय था कि अधिक आग्रह करनेसे वह खीझकर कहीं अपनी बात कहना बन्द न कर दे । मैं चुपचाप उसके मुख-की ओर देखती रही ।

(३)

कुछ देर रुपयों और उस चित्रमें अपना मन उलझाये रखनेके बाद एकाएक सिर उठाकर उसने मेरी ओर देखा । उसके नेत्रोंमें अभी तक आंसुओंका अपार समुद्र लहरा रहा था । भर्राये हुए स्वरमें बोला, "उस दिन जब मैं बैङ्कसे लौटा, तो सूर्य प्रायः डूब चुका था । मैंने घरमें पांव रखते ही प्रतिभाको पुकारा । लेकिन उस दिन नित्यकी भांति "पिताजी, पिताजी" कहती हुई मुझसे नहीं लिपटी। उसकी माताने बताया कि उसके गलेमें आज बहुत दर्द है । मैं घबराया हुआ उसके पास पहुंचा । वह पीड़ासे कराह रही थी । सुबहसे दो चम्मच दूध भी उसके गलेके नीचे नहीं उतर सका था । बोलनेमें उसे बेहद कष्ट था । मैंने समझा, गला पड़ गया है । घी गर्म करवाकर मैंने स्वयं उसके गले-पर मालिश की । कहींसे ढूंढ़-ढांढ़कर गलेमें दवा भी लगा दी । लेकिन सब व्यर्थ । दर्द उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया । सारी रात बेचारीने छटपटाते बितायी ।

"अगले दिन आठ बजते ही मैं अपनी प्रतिभाको डाक्टरके यहां ले गया । परीक्षा करनेके अनन्तर डाक्टरने गम्भीर मुद्रा धारण करके मेरी ओर देखा ।"

'क्या है इसे ?' मैंने डरते-डरते प्रश्न किया ।

'डिपथीरिया ।'

"डिपथीरिया।" मैं कांप उठा। कुछ ही दिन हुए, हमारे एक पड़ोसीके बच्चेकी मृत्यु इसी बीमारीसे हो चुकी थी। इस रोगका डङ्क कितना विषैला होता है, मैं खूब जानता था।

'लेकिन घबरानेकी कोई बात नहीं।' डाक्टर आश्वासन देते हुए कहने लगे, 'रोगका अभी आरम्भ ही है। यदि दोपहरसे पहले-पहले इञ्जेक्शन लगने शुरू हो जायें, तो यह अवश्य अच्छी हो जायगी।' नुसखा लिखकर मेरे हाथमें देते हुए वे बोले, 'इतना जरूर याद रखना कि इस काममें थोड़ा भी विलम्ब करना ठीक न होगा। आप शीघ्र इञ्जेक्शन शुरू कर दीजिये।'

"मैं प्रतिभाको लेकर घर पहुंचा और उसे चारपाईपर लिटाकर स्वयं उसी क्षण दवाई लानेके लिए बाजारकी ओर चल दिया।

"महीना लगभग आधेसे अधिक समाप्त हो चुका था। तनख्वाहमेंसे केवल पांच रुपयेका एक नोट मेरी जेबमें बचा पड़ा था। उसीको लिये मैं दवाइयोंकी दूकानपर पहुंचा और नुसखा निकालकर दूकानदारकी ओर बढ़ा दिया। कुछ ही क्षणोंमें दूकानदारने एक छोटा-सा डिब्बा, जिसमें दवाईकी भरी छोटी-छोटी शीशियां रखी हुई थीं, एक कैश मेमो समेत मुझे लाकर दे दिया। कैश मेमोपर नजर डालते ही मेरे पांवोंके नीचेसे जमीन खिसक गयी। छियानवे रुपये बारह आने! इतने रुपये कहांसे पाऊंगा। मेरे नेत्रोंके सम्मुख अंधेरा छा गया। दूकानदारकी ओर देखकर बोला, 'इतने दाम ?'

'हम क्या कर सकते हैं। यह दवाई पहले बहुत महंगी थी। लड़ाईकी वजहसे इसका भाव और भी तेज हो गया है।' उन दिनों पिछली बड़ी लड़ाई हो रही थी।

"अब ? दीनतासे दूकान-मालिकसे कहा, "मेरे पास केवल पांच ही रुपये हैं। कोई सस्ती दवाई दे दीजिये।"

"मेरी बात सुनकर वहां जितने आदमी थे, सब खिलखिलाकर हंस पड़े। शायद उनमें दो-चार धनी ग्राहक भी थे। उनकी वह विषैली हंसी तीरकी तरह मेरे हृदयको पार कर गयी, लेकिन असमर्थ था। मन मारकर चुपकेसे बाहर चला आया। उस समय यदि कोई मेरे प्राणोंके बदले भी मुझे वह इञ्जेक्शनकी दवाई दे देता, तो मैं उस सौदेसे इनकार न करता। कुछ देर मैं किंकर्तव्य-विमूढ़-सा सड़कपर खड़ा रहा। फिर सोचा, कुछ दौड़-धूप तो करनी ही चाहिए। भागा हुआ अपने मित्रों तथा रिश्तेदारोंके यहां गया, लेकिन सभीने किसी-न-किसी बहानेसे टाल दिया। दोपहर हो गयी थी। सूर्यका ताप अपने शिखरपर था। लेकिन मुझे चैन कहां। पसीनेसे लथपथ उन्हीं डाक्टर साहबकी कोठीपर पहुंचा। शायद उन्हें ही दया आ जाय। शायद उन्हें कोई सस्ती दवा मालूम हो।

"वहां पहुंचनेपर पता चला कि डाक्टर साहब खाना खा रहे हैं। एक घण्टा प्रतीक्षा करनेके बाद वे बाहर आये और मेरी ओर प्रश्न-सूचक भावसे देखा।

"मैं रो पड़ा, 'डाक्टर साहब। जो दवाई आपने लिखी है, उसे खरीदनेके लिए रुपये मेरे पास नहीं हैं। आप किसी तरह मेरी बच्चीको बचाइये।'

"डाक्टरने आधे क्षण मेरी ओर देखा और सहानुभूति-सूचक स्वरमें बोले, 'भाई, मैं बिना फीस लिये इञ्जेक्शन करनेको तैयार हूं, पर दवाईका प्रबन्ध तो तुम्हींको करना होगा। दूसरी कोई ऐसी दवाई नहीं, जो इस रोगको दूर कर सके।'

"यह सहारा भी जाता रहा। हृदयमें दारुण व्यथा लिये मैं वहांसे लौटा। दोपहर बीती, सन्ध्या भी चली गयी। रजनीका अन्धकार सघन हो चला। हमारे तो बाहर-भीतर सर्वत्र ही अंधेरा छाया हुआ था। प्रतिभाका कष्ट बढ़ता चला जा रहा था। हम लोग गर्म घीकी मालिश रात्रि-भर उसके गलेपर करते रहे। और चारा ही क्या था। लेकिन इससे क्या बन सकता था। उस नन्हीं-सी तारिकाकी आभा क्षण-प्रतिक्षण क्षीण होती जा रही थी। हम अपनी इन पैशाचिक आंखोंसे अपने हृदयके उस टुकड़ेकी जीवन-ज्योतिको बुझते हुए देख रहे थे। आह! मैं कितना क्रूर हूं।" उसका गला रुंध रहा था, जरा दम लेकर बोला, "हमारी प्रतिभा अन्तिम क्षणों तक दवाई और डाक्टरकी प्रतीक्षा करती रही। लेकिन रुपये! उफ्! उस भोली लड़कीको क्या मालूम था कि उसके अभागे पिताके पास दवाई खरीदनेके लिए रुपये ही न थे। आखिर अगले दिन प्रातः ठीक इसी समय वह हमसे रूठकर चली गयी।"

यह कहकर उसने फिर चित्रकी ओर देखा। सहसा

उसकी आंखें प्रज्वलित हो उठीं। आंसुओंके स्थानपर वहां उन्माद-सा छा गया। मेरी ओर देखकर आवेशसे बोला, "अरे बिटिया, तुम क्यों रो रही हो? मेरी प्रतिभा मरी नहीं! वह जीवित है! जीवित! उधर देखो, उन लाल-लाल बादलोंके बिछौनेमें छिपी वह सो रही है। बीमार है न?" यह कहते हुए उसने फिर रुपयोंको उछाला और अट्टहास करके बोला, "यह देखो, कितने रुपये इकट्ठे कर लिये हैं। अब मेरी प्रतिभा अवश्य अच्छी हो जायगी। मैं इञ्जेक्शनकी दवाई लेने जा रहा हूं।"

उसने वे रुपये तथा चित्र अत्यन्त सावधानीसे अपने दुपट्टेमें बांध लिये और हमारी ओर बिना दृष्टिपात किये ही कुछ बड़बड़ाता हुआ उठकर तेजीसे एक ओरको चल दिया।

मेरा ध्यान टूटा। देखा, भाई साहबकी आंखें भी भीगी हुई थीं। दिन पूरी तरह निकल आनेके कारण हमारे इर्द-गिर्द सैर करनेवालोंका एक जमघट-सा लग गया था। उनसे मुंह छिपाकर हम अपने ऊपर प्रभुत्व पानेकी कोशिश करते हुए फाटककी ओर बढ़ने लगे।



केसर नाचती है।

तबलेपर उस्तादी थाप पड़ती है, हारमोनियम और सारङ्गीमें प्रतिद्वन्द्विता चलती है, नूपुर पहने कभी वह बिजली-की भांति यहां चमकती है, तो कभी वहां। अभी वह प्रोफेसर साहबके पास है, पलक झपते ही पण्डितजीके समीप—वहीं, नगरसेठ हैं, शहरका मशहूर गुण्डा भी, और न जाने कौन-कौन।

केसर गाती है।

कभी हिन्दी, कभी बंगला, कभी पञ्जाबी, कभी मद्रासी और कभी मराठी। लोग सुनते हैं, समझते हैं और नहीं भी, पर पैसे तो, दुअन्नी-चवन्नीसे लेकर पांच-दस रुपयेके नोट तक, फेंके जाते हैं।

केसर रोती है।

हां! जब केसरका "आदमी", जो समाजके सभ्य वातावरणमें पला है, उसे इन सब बातोंके लिए दुतकारता है, केसर रोती है, कहती है—"मुझे यह खुद पसन्द नहीं। तमाशबीन हंसते हैं, तो मुझे भी हंसना पड़ता है, उनकी भद्दी गालियां दिल कड़ाकर सह लेनी पड़ती हैं, अगर वे मेरे मुंहपर थूकें, तो भी मैं हंसती रहूंगी—पर वेश्यायें क्या इस जीवनको पसन्द करती हैं? नहीं! कभी नहीं!!"

"ड्रेसिङ्ग सर्किल" की गद्देदार मुलायम कुर्सियोंपर "फुलस्पीड"में चलते हुए पङ्खोंके नीचे, बनारसी मगही पानकी गिलोरियां चाबते हुए, उठङ्गे बैठे हम एक क्षणके लिए सोचते हैं, "अगर केसर इस पेशेको पसन्द नहीं करती, तो वह इसे छोड़ क्यों नहीं देती?" पर तभी आता है, तीर-सा जवाब, "मगर हम मजबूर हैं। खानेको रोटी और देह ढकनेको कपड़े चाहिए और उसके लिए चाहिए पैसे।"

खेल खत्म होता है। शान्ताराम और प्रभातकी कृति "आदमी" की हम समालोचना करते हुए घर लौटते हैं और सोचते हैं,

केसरने ठीक कहा।

प्रकाशकी "पूर्णिमा" में और न जाने कितने ही चित्रों-में हमने यही सुना।

गांवके गरीब कुम्हारसे वह प्रेम करती है, गांवके बनियेका लड़का, रेलकी गुमटीवालेकी लड़कीसे प्रेम करता है, ऊंचे घरानेकी वह कन्या गरीब हेडमास्टरको ही जीवन-सङ्गी बनाना चाहती है, जमीन्दार जयनारायणका पुत्र मठके गरीब साधुकी कन्या "राधा" को चाहता है। पर समाजको, घरवालोंको, माता-पिताको पसन्द नहीं कि उनका लड़का एक भिखमङ्गीसे प्रेम करे, उन्हें यह मञ्जूर नहीं कि उनकी लड़की एक साधारण स्थितिके लड़केको प्यार करे। "पैसा" इन समस्त सम्बन्धोंमें बाधक है। सम्बन्धियों-के लिये "पैसे" के सामने "प्रेम" का कोई मूल्य नहीं और यह कठोर नियम न जाने संसारके कितने आशावान नवयुवक-नवयुवतियोंकी आशापर तुषारपात करता है, उनके स्वप्नोंकी दुनिया भङ्ग हो जाती है, सारा जीवन रोते ही बीतता है और मृत्यु ही एकमात्र औषधि रह जाती है। इसकी झलक हम पाते हैं बम्बई टाकीजके चित्र "जीवन प्रभात", "अछूत कन्या" "कङ्गन" और "बन्धन" में। मगर प्रेम ऐसी वस्तु देखी गयी है, जिसका मोल तोल नहीं हो सकता, जिसे स्वर्णकी अपार राशि भी नहीं खरीद सकती। जमीन्दार जयनारा-यणका पुत्र अपनी जमीन्दारीपर लात मार देता है, वह अप-नाता है साहित्यिक, एक लेखकका जीवन, पैसे कमानेके लिए, जिस पेशेकी "पैसे" नामक शक्तिसे अनादि-कालसे

शत्रुता चली आ रही है; पर उसे यह स्वीकार नहीं कि वह एक ऐसी स्त्रीसे विवाह करे जिससे उसे प्रेम नहीं।

रणजीतके चित्रोंमें "पैसोंका हास्य" और "पैसोंका क्रन्दन" बराबर सुनता रहा हूं। उस दिन उसकी नवीन कृति "दिवाली" देखी। मनोविज्ञानके प्रोफेसरके विचारानुसार अगर कोई लड़का या लड़की बचपनमें चोरी करते पकड़ा जाय और उसकी एक खास विधिसे चिकित्सा की जाय, तो वह भविष्यमें सुधर जायगा। पर हम देखते हैं कि जिसे एक बार "पैसे" को लत लग गयी, जल्दी नहीं छूटी। फिल्ममें ही एक कलाकार भी देखनेमें आया। चित्रकला उसके लिए साधनाकी वस्तु थी, न कि कमानेकी। नगरसेठको एक ऐसे कलाकारकी आवश्यकता थी, जो उनकी बेडौल और भीमकाय कन्याका एक सुन्दर-सा चित्र बना दे, जिसके लिए वह मुंहमांगा दाम भी देनेको तैयार थे, पर उस चित्रकारको यह मञ्जूर नहीं हुआ। चित्रकला द्वारा वह कोई दोष छिपानेको तैयार नहीं हुआ, उसे यह प्रस्ताव कलाके लिए अपमानजनक प्रतीत हुआ। वह भूखों मर रहा था, पर थैलीको उसने ठुकरा दिया। दूसरे दिनसे सड़कोंपर अखबार बेचना उसने पसन्द किया, पर कला बेचना नहीं।

एक धनी सेठ भूखों मरते हुए कलाकारको अपने "पैसों" से नहीं खरीद सका।

जब किसीको सत्ता होती है, पैसे होते हैं, तो दुनिया उसकी परवाह करती है, नहीं तो अपने स्वजन भी दूर ही रहते हैं। यह महाभारत, रामायण, गीता और नीतिको समस्त प्राचीन और नवीन उपदेश-ग्रन्थोंमें कहा गया है। साथ ही यह भी सच है कि पैसेके नशेमें लोग संसारको भूल जाते हैं। "मदर इण्डिया" में बेटा अपनी मांको दरिद्र होनेके कारण ठुकरा देता है और फिर पैसे समाप्त हो जानेपर उसीके चरणोंमें आ गिरता है। "खानबहादुर", मिनर्वाकृत "मीठा जहर"में बन्धु-बान्धवोंको पैसेकी आवश्यकताके समय मुंह मोड़ते देखा और दिलको एक करारी चोट लगी। नेशनल स्टुडियोकी "औरत"में भाईको पैसेके लिए दूसरे भाईके खूनका प्यासा होते देख "पैसे" की मनमोहिनी शक्तिका अन्दाजा लगाया।

"अपने बेटेकी लाश मुझे कर्जके बदले देती हो? अरे! देना ही हो तो इसकी देहपर सोनेके जेवर पहनाके दो!" एक असहाय स्त्री, जिसका कोई सहारा नहीं हो, जिसके खेतमें अनावृष्टिके कारण अन्नका एक दाना भी पैदा न हुआ हो, जिसके एक ओर बच्चा पैदा हुआ हो और दूसरी ओर भूखके मारे दो-दो मासूम बच्चोंकी लाशें पड़ी हों, और उस मांने जब कर्जके तकाजेपर अपने बच्चेकी लाश दिखायी, तब महाजनका कठोर हृदय पिघला नहीं, वह तो लाश भी लेनेको तैयार है, बशर्ते कि उसकी देहपर कुछ गहने हों। इतनेपर भी न तो आकाश ही टूटा और न पृथ्वी ही फटी। पर हां! भारतके कर्ज देनेवाले निर्दयी महाजनोंका नङ्गा चित्र अवश्य "औरत" फिल्म देखनेवालोंके दिलोंमें खिंच गया।

"औरत" में ही हमने देखा कि एक सती-साध्वीका सतीत्व कुछ पैसोंके बलपर नहीं खरीदा जा सकता, जो इस तरहकी चेष्टा करता है, उसे ईश्वरके कोपका सामना करना पड़ता है।

बेकारीके चंगुलमें देशकी सन्तानको फंसते देखा, सुना और पढ़ा था बहुत; पर सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ा चित्र देखनेके बाद। फिल्म कारपोरेशनका ग्रेजुएट अभागा नवयुवक "कैदी" दर-दरकी ठोकर खाता है, वह समझता है कि बी० ए० की डिग्री उसके समस्त कष्टोंको दूर कर देगी, उसकी भूखी मां बहनको चार दाने देगी, मृत्यु-शय्यापर पड़े हुए भाईके लिए औषधि और दूध खरीदनेकी शक्ति प्रदान करेगी; पर होता है कुछ नहीं। सारी दुनिया उसे विडम्बना मालूम होती है, वह एक धनीकी हत्या करनेपर तुल जाता है और बनता है "कैदी।" वही समस्या हम रणजीतकी "होली" में देखते हैं। बुढ़िया मां और जवान बहन समझती हैं कि भैया अभी घर आता होगा और साथमें रुपयोंकी थैली लाता होगा और उधर उनका भैया जहां भी नौकरीके लिए जाता है, वहीं "नो वेकेन्सी" के साइनबोर्ड लटकते देखता है। धनी युवक उसकी सहायता करनेके बदले, उसे दुतकारते हैं, उसका और उसकी गरीबीका मजाक उड़ाते हैं, कुत्तेको अंगूरके गुच्छे दे सकते हैं, पर उस दरिद्र मानवको नहीं। बहनके दिलपर करारी चोट लगती है और वह गा उठती है—"धनवानोंकी दुनिया है यह—निर्धनके भगवान।"

कुछ युवतियां या युवक इसे चुपचाप सह लेते हैं, पर कुछ इसके विरुद्ध विद्रोह कर बैठते हैं। उन्हें समाजकी प्रणा-

लियां बर्दाश्त नहीं होतीं, धनका असमान विभाजन उन्हें अखरता है और वे प्राणोंको हथेलीपर लिये इनके विरुद्ध युद्ध छेड़ देते हैं और तब उन्हें प्रत्येक धनिक अपना शत्रु और प्रत्येक दरिद्र परम मित्र मालूम पड़ता है। भारी-भरकम सेठोंसे रुपये-पैसे छीन, जिनको इनकी आवश्यकता है, उनमें बांटते हैं। इसका चित्र हम "वाडिया" के प्रत्येक फिल्म-"हरीकेन हंसा", "फौलादी मुक्का", "जय भारत" आदिमें और "प्रकाश" के "स्टेट एक्सप्रेस", "हीरो नं० वन", "पासिंग शो" एवं अन्य समस्त स्टंट चित्रोंमें देखते हैं। राजाओं, जमीन्दारों और सेठोंके अत्याचारोंसे प्रजा, किसान और दीन-दुखियोंको मुक्ति दिलाना इन चित्रोंके नायक और नायिकाओंका कार्य होता है।

एक विचित्रता हमें चित्रोंमें यह मालूम पड़ती है कि एक ओर तो पैसेके लिए क्रन्दन हो रहा है, जमीन्दार और मिल-मालिक कोसे जा रहे हैं और दूसरी ओर अगर कहीं मिल-मालिक या जमीन्दार अच्छा निकल गया और उसने पैसे बांटने शुरू कर दिये, अपने आदमियोंके दुख-दर्दमें दिलचस्पी लेने लगे, तो वह भी मजदूरोंको मन्जूर नहीं होता। इसका अनुभव हमें "मड या अपनी नगरिया" और "हिन्दुस्तान हमारा" देखकर होता है। "हिन्दुस्तान हमारा" में एक जमीन्दारकी पुत्री गरीब किसानोंके बच्चोंमें मिठाई और खिलौने बांटती है, जिसे एक आदर्शवादी किसान युवक बुरा समझता है और किसानोंको उसका उपयोग नहीं करने देता और "मड" में जब एक मिल-

मालिककी कन्या मजदूरोंमें पैसे बांटती हैं, तो वहां भी एक आदर्शवादी मजदूर नवयुवक इसका विरोधी है। वह कहता है "यह पापके पैसे हैं, इन्हें हम नहीं छू सकते। हमारी आत्मा और हृदय इनके उपभोगसे गन्दे हो जायेंगे।"

इन चित्रोंको देखने और लेक्चर सुननेसे तो यही समझमें आता है कि मजदूर और किसानोंको अपने सेठोंके पैसे यों ही मुफ्तमें लेना पसन्द नहीं, वे चाहते हैं कि वे पैसे ठीक तौरपर मजूरीके रूपमें ही वितरित किये जायें। इनकी यह धारणा है कि पूंजीपतियोंके पैसे पापके पैसे हैं और हृदय एवं आत्माको कलुषित बना देते हैं।

मृत्युशय्यापर रोगी पड़ा है, उसकी हालत खराब है, पर अगर कोई चिकित्सक उसकी चिकित्सा करे, तो वह शायद बच सकता है पर चिकित्सक बिना पैसे लिये नहीं आ सकते, चाहे वह रोगी तड़प-तड़पकर औषधिके अभावमें मर जाय, मांके सामने उसका लाड़ला बेटा, स्त्रीकी आंखोंके सामने ही उसका जीवनधन चला जाय, घर उजड़ जाय, सारी गृहस्थीका सहारा उठ जाय, पर पैसेके बिना कुछ सम्भव नहीं। यों तो यह दर्दनाक दृश्य हम प्रायः सभी चित्रोंमें देखते हैं, पर "अछूत कन्या" के "बाबूलाल बैद्य" और उनकी अर्थलोलुपताको हम नहीं भूल सकते।

आदमी जब तक जिन्दा है, ठीक ही है; पर जहां जरा भी बीमार पड़ा, तहां उसके लालची सम्बन्धी किस प्रकार उसकी मृत्युकामना करते हैं, यह "वसीयत" में देख दङ्ग रह जाना पड़ता है। सब सम्बन्धी उसकी आखिरी सांसकी बाट जोहते हैं, तब उनको यह पसन्द नहीं कि वह फिर उठ बैठे, उस समय तो सबके दिलमें यही रहता है कि किसी तरह यह समाप्त हो और उसकी सम्पत्ति हाथ लगे। सबकी नजरें उसके जीवन-भरकी कमाईपर ही लगी रहती हैं। पैसा एक मनुष्यके लिए जिन्दगी है, तो दूसरी ओर उसके सर्वनाश और जान खोनेका कारण भी।

संसारमें नर-पिशाच कई तरहके होते हैं और उनमें सबसे बढ़कर नम्बर आता है उनका, जो रुपये-पैसेकी खनखनाहट और झनझनाहटपर अपने कलेजोंके टुकड़ोंको बाजारमें मोल-भाव कर बिना किसी विचार या पसोपेशके बेचते हैं। ऐसे पापियोंके लिए सजा क्या होनी चाहिए, इसके विषयमें हमेशा मतभेद रहेगा। हम बाप हैं, नाना हैं, भाई हैं, मामा हैं और मां हैं, मगर जहां थैली दिखाई पड़ी, जहां कानोंमें गूंजी रुपये-रुपयेकी बोली, और हमने बिना हिचकिचाहटके अपनी लड़की, नतिनी, बहन, भाञ्जी और कन्याको, उसके भविष्य, उसके भावी पतिका ख्याल किये बिना ही बेंच दिया, वही मनुष्य वास्तवमें नरपिशाच है। "प्रभात" कृत "दुनिया न माने" का "मामा" एक बड़ा जबर्दस्त उदाहरण है। समाज और पञ्चोंकी एक बड़ी पुरानी अवहेलना, जो समाजकी नींव खोद रही है, जो समाज, धर्म और मानवताको रसातलमें ले जानेके लिए बहुत काफी है, उसपर एक करारी चोट है। पैसेके बलपर लड़की खरीदना एक भयानक दुःखदायी पाप है, जो खरीदनेवाले और बेचनेवाले दोनोंको सुख नहीं लेने देता। कन्याके आंसू, लक्ष्मी, अन्नपूर्णा सरस्वती और दुर्गाके आंसू निश्चय ही समाजको डुबा देंगे, अगर वह जल्दी नहीं चेता।

अनमेल विवाह समाजकी व्यवस्था और सुख-शान्तिके लिए घातक है, चाहे वह कितने ही नोटोंकी होली जलाकर ही क्यों न हो। "घरकी रानी" के प्रोफेसर साहब, जो बहुत शिक्षित हैं, एक शादीके दलालके जोड़ भिड़ानेपर एक आधुनिक नवयुवतीसे विवाह कर लेते हैं। प्रोफेसर साहब शिक्षित होनेपर भी उतने आगे बढ़े हुए नहीं हैं, जितनी कि उनकी श्रीमतीजी। परिणाम होता है कि सारी जिन्दगी उनको रोते ही बीतती है। पैसेने दो प्राणियोंका गठबन्धन तो करा दिया, पर सुख नहीं दे सका उनके जीवनमें।

पैसा कमाना एक बहुत बड़ी कला है। पर अन्धे भी कलाका सहारा लेते हैं, यह जब तक मिनर्वाका "जेलर" नहीं देखा गया, तब तक पता न था। भारी कदम उठानेवाला पैसे देगा, हल्के कदमवाला नहीं, यह शिक्षा हमेशा याद रहेगी।

अगर एक आदमी सड़कपर चल रहा हो और लोगोंको मालूम हो जाय कि इसके पास पैसे हैं, तो वह आदमी संसारकी नजरोंमें कितना ऊंचा उठ जाता है, यह तो सुदामाकृत "आपकी मर्जी" और रणजीतका "मुसाफिर" देखनेपर ज्ञात होता है। भले ही उस आदमीके पास कुछ भी न हो, तो भी वह आराध्य देवता बन जाता है, और एक अज्ञात धनिक, चाहे वह कितना ही गुणवान क्यों न हो, ठोकरें खाता है। एक आदमी चाहे कितना ही बड़ा गधा हो, देखनेसे ही उसके

प्रति घृणा होती हो, मगर उसके पास पैसे हैं, तो दुनिया उसको अपने सिरपर बैठायेगी, उसकी हर तरहसे खातिरदारी करेगी, समाज और देशके कानून उसके लिए उतने कड़े नहीं रह जायेंगे, जितने कि एक गरीबके लिए कड़े होते हैं।

इतना होते हुए भी हम "मुसाफिर" से सुनते हैं, धनिक के जीवनमें सुख नहीं है। उसे सच्चे दिलसे कोई प्यार नहीं करता। सारा संसार उसे धोखेबाज और लूटनेको तैयार मालूम पड़ता है और कहीं उसे एक सच्चा मुहब्बत करनेवाला मिल जाय, तो उसे वह "पांच लाख रुपये" इनाममें देगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ओर तो संसार एक एक पैसेके लिए व्याकुल है और दूसरी ओर एक धनीको बैङ्क और तिजोरियोंमें लक्ष-लक्ष धन होते हुए भी सुख नहीं है। और यही हैं पैसेके दो पहलू।

नाटक और शीराजी

श्री कमल जोशी

काफी सोच-विचारके बाद नाट्यकारने यही तय किया कि अपनी नायिकाको वे अन्तिम अङ्कमें मार डालेंगे। इसी विचारमें उन्होंने कई दिन काट दिये और आखिरमें इसी निष्कर्षपर पहुंचे कि नायिकाकी किसी तरह हत्या कर देनेपर ही वे नाटकके रसका स्वाद दर्शकोंको दे सकेंगे। अतः अन्तिम अङ्कमें उन्होंने माधुरीको मार डाला। पर यहां यवनिका पतन न हुई।

रङ्गमञ्चपर दर्शकोंने नाटकको बहुत पसन्द किया, खूब तालियां बजीं। नये नाट्यकारकी प्रथम सफलता ऐसी ही होती है। अखबारोंमें भी इसकी कुछ चर्चा हुई। उनके मतानुसार इस नाटककी यह अद्भुत परिणति नाट्य साहित्य-में अनोखी थी। अब नाट्यकारने नये नाटककी नूतनतर परिणतिकी सृष्टि कर जनताको आकर्षित करनेकी ठानी। पर उन्होंने यह अनुभव किया कि यह काम इतना आसान नहीं है, तो भी उन्हें नासमझ बनना बड़ा अच्छा लगा। मन ही मनमें अक्लान्त भावसे वह कोशिश करने लगे। इस वक्त उनके मनकी अवस्था बड़ी चञ्चल हुई। इस मकानमें उनका जी नहीं लगा, वे नया मकान खोजने लगे। और एक नया नाटक भी शुरू हो गया—जिस दिन वे शीराजीके पासके एक फ्लैटमें आकर बस गये।

यह शीराजी अच्छी लड़की है। लेकिन हमेशा घरमें ही रहना पसन्द करती है और उसका मन जैसे मरा हुआ है। उसे नाटक देखनेका शौक नहीं। इस नाटकके बारेमें उसने सुना अवश्य था, लेकिन एक लड़कीको मार डाला है, सिर्फ इसी कारण लोग इतनी तालियां बजा रहे हैं—तारीफ कर रहे हैं,—क्यों, यह उसकी समझमें नहीं आता। शीराजी सोचती है—मनुष्यकी विचित्र रुचि होती है। कहानी सुननेके बादसे ही वह नाटक और नाट्यकारपर जली बैठी है। फिर, जब उसने सुना कि उसके पासके ही फ्लैटमें सशरीर उस नाट्यकारका आविर्भाव हुआ है, तब तो उसकी नाराजगीकी मात्रा जैसे और बढ़ गयी। हमेशा घरमें घुसे रहनेवाले और मुंह छिपानेवाले आदमीका मन समझना कठिन है। शीराजीके इन मनोभावोंका कारण समझना मुश्किल है।

लुक-छिपकर वह नाट्यकारका चलना-फिरना देखती है—बहुत भद्दा लगता है, कुत्सित मालूम होता है। और, कहनेमें कोई हर्ज नहीं—उसके दिलमें न जाने क्यों, एक घृणाका भाव जाग्रत होता है। इतने विद्वेषका कारण क्या है, यह शीराजी खुद नहीं जानती। इस भले आदमीमें क्या बुराई है, यह बतानेमें भी वह चिढ़ती है। असली बात यह है कि वह इस भले आदमीको कतई पसन्द नहीं करती। और यह भला आदमी भी एक नम्बरका उदासीन है। वह हमेशा अपनेमें ही व्यस्त रहता है। उनके साथ एक नौकर भी है, बहुत ही आज्ञाकारी। गम्भीर आवाजमें कभी-कभी नाट्यकार बड़े आदरसे पुकारते हैं—'सोमनाथ।' कन्धेके अंगोछेसे हाथकी प्लेट पोंछते-पोंछते नौकर सामने हाजिर होता है। क्या तो कहता है, सुनाई नहीं देता। काफी देर बाद मुंह ऊपर उठाकर नाट्यकार उसकी तरफ देखते हैं। कहते हैं, 'आ गया?—भाग।' शीराजीके कानोंमें अस्पष्ट आवाज आती है। नौकर मुस्कराकर चला जाता है। शीराजीके तनमें आग लग जाती है! यह कैसी विचित्र रीति है।

खिड़कीपर बैठे रहनेका शीराजीको व्यसन है, दोतल्ले-की खिड़कीपर। यहांसे रास्तेकी झलक जरा-सी ही दिखाई देती है, किन्तु नाट्यकारका पूरा कमरा दिखाई देता है। हां, नाट्यकार उसे नहीं देख पाते, इस ओर शीराजी-की सजग दृष्टि है। उस भले आदमीके किसी सबबसे इधर-उधर करते ही वह चटसे पर्दा खींच देती है। जालियों-का पर्दा है, इसके भीतरवालीकी दृष्टि तो बाहर जाती है, किन्तु बाहरवालेकी दृष्टि भीतर तक नहीं पहुंचती—पर्देके बाहर ही अटक जाती है।

शीराजी कुर्सीपर बैठकर ऊन बुनना शुरू करती है। यह उसका उपलक्ष्य है, या अवलम्बन। असलमें बाहरकी तरफ ही उसकी नजर ज्यादा रहती है। रोजका ही किस्सा है।

यहां तक कि आधी रात तक शीराजी जागती रहती है। उसकी यह आदत कोई नयी नहीं है, काफी पुरानी है। जिनका मन मरा हुआ होता है, उनके लिए रात ही ज्यादा उपभोग्य होती है—साधारणतः।

नाट्यकारके दरवाजेपर रातको पर्दा पड़ जाता है। खिड़की खुली रहती है। एक कोनेमें कुर्सी और मेज है, और बहुत सारी किताबें हैं—सब बेतरतीब रखी हैं। किसी भी चीजको ठीक ढङ्गसे रखनेकी उन्हें फुर्सत नहीं है—नौकर भी कम अहमक नहीं है, वह सिर्फ कहनेके मुताबिक ही काम करता है—अपने दिमागसे उसे कोई काम नहीं सूझता।

आधी रातके वक्त शीराजी देखती है कि नाट्यकारके पर्देपर एक छाया धीरे-धीरे प्रकट होती है, धीरे-धीरे अदृश्य हो जाती है—फिर प्रकट होती है और गायब हो जाती है। हवामें जब पर्दा उड़ता है, तो हाथमें किताब लिये हुए नाट्यकार चहलकदमी करते हुए नजर आते हैं। एक ढीला-ढाला लम्बा कोट वह पहने हुए हैं। यह किस देशका फैशन है, शीराजीकी समझमें नहीं आता। पर उसे यह बड़ा बेढङ्गा मालूम होता है। नाटक लिखनेपर नट बनना ही पड़ेगा—इसका क्या मतलब? और फिर, नाटक भी ऐसा, जिसके सिर-पैरका कोई ठिकाना नहीं। एक लड़कीकी हत्या कर दी है। ओह, कैसी पैथेटिक परिणति है। शीराजी हाथका काम छोड़ देती है और गालपर हाथ रखकर बैठ जाती है। टन-टन रातके दो बजते हैं। नाट्यकार मेजके सामने बैठे हैं, मानो उनकी कथाका स्तोत्र आ गया है। शीराजी ऊंघती है। छतपर आंखें गड़ाये वह सोच रहे हैं। उसे क्या जरूरत पड़ी है जो जागे, चटसे बिजलीका स्विच दबाकर वह सो जाती है।

शीराजी अकेली है। क्यों अकेली है, यह आप न पूछें। लेखकको हर वक्त चैलेञ्ज करनेसे कहानीका प्रवाह रुक जाता है। इसमें मुझसे ज्यादा आपका ही नुकसान है। तो भी, थोड़ी-सी कैफियत देनी है। वह देखनेमें अच्छी होनेपर भी उसका मुंह मीठा नहीं है। उसकी बातचीतकी उग्रताकी वजहसे उसके सङ्गी-साथी उससे दूर-दूर रहते हैं। लेकिन जिनकी बातें उग्र होती हैं, उनका हृदय बड़ा नरम होता है —इतनी-सी साधारण समझ लोगोंमें नहीं है। सिर्फ बाहरी रूपसे ही किसीको नहीं समझा जा सकता। लोगोंने उसके भीतरी रूपको नहीं पहचाना है, उन्होंने धोखा खाया है और शीराजीको धोखा दिया है। लेकिन, इस कहानीका लेखक उसके भीतरका नरम स्वाद पाकर उसके स्नेहमें पड़ गया है। हां, यह कहानीकी भीतरी चीज नहीं है।

घड़ीकी टिक-टिक सुनते-सुनते उस रातको शीराजी सो गयी। सुबह देरसे आंखें खुलीं। खिड़कीसे झांककर देखा कि नाट्यकारका दरवाजा और खिड़की बन्द है,—ओ, शीराजी सांस छोड़कर जैसे बची! इतने दिनों बाद वे कमरेसे बाहर निकले हैं! घरमें घुसे रहनेवाले मनुष्योंको शीराजी बहुत नापसन्द करती है। (पाठक-पाठिकायें हंसे नहीं)। वह नीचे उतरी, सुबहके कामकाज कर फिर ऊपर आ गयी। खिड़कीपर बैठ गयी। कितने ही दिनों बाद जैसे आज वह मुक्त हुई है। उसकी गानेकी इच्छा हुई, पर वह गाना नहीं जानती। नहीं जानती तो क्या हुआ, उसने गुनगुनाना शुरू किया। कल शामको रेडियोमें जो गाना सुना था, वही। पर फटे बांस-जैसी आवाज निकलती है; गला ठीक करनेपर और भी बिगड़ जाता है, खांसनेपर भी साफ नहीं होता। अपने मनमें शीराजी खुद हंसती है। पड़ोसकी बहू बड़ी चञ्चल है—पतिके साथ हंसी कर रही है—टाई नहीं बांधने देती। अच्छी औरत है। ऐसी हंसी वही हंस सकती है—शीराजी तो किसी भी दिन इस तरह नहीं हंस सकती! और इतनी ही देरमें मति बदल गयी? कटोरी बजा-बजाकर लड़केको दूध पिला रही है। क्या तो गाना भी गा रही है? वाह, शीराजीका हल्का मन एकाएक भारी हो गया।

अखबार अभी तक नहीं देखा है। शीराजी अखबार ले आयी, मेजपर ही औंधे मुंह लेटकर पढ़ना शुरू किया। हश, अब भी महासमारोहके साथ? जैसे समारोहका अन्त नहीं होगा। इतने लोग जाते हैं, एक दिन वह भी चली जाय, नाटक देख आनेमें नुकसान ही क्या है? चूल्हेमें जाय नाटक, अखबारको दूर फेंककर वह नीचे उतरी। उसे कितना काम है! तीन टेबल क्लाथ, दो हफ्ते हैं,—खैर!

मांने पूछा—'आज कालेज खुला हुआ है, न?'

'मालूम नहीं। लेकिन मैं नहीं जाऊंगी।'

'क्यों?'

'यों ही, इच्छा नहीं है।'

जल्दीसे वह फिर ऊपर आ गयी। मेजकी दराज खोली, कलैण्डरकी तरफ देखा—आज कौन-सा दिन है? नहीं, अभी दो दिनकी छुट्टी है। मां उसे बाहर भेजकर जैसे बचती हैं। यह बिलकुल सच है। रात-दिन कमरेमें ही घुसे रहना उन्हें पसन्द नहीं। बाहरकी हवा स्वास्थ्यके लिए जरूरी है। औरत होनेका यह मतलब नहीं कि चौखटके बाहर पैर ही न रखा जाय, उनके लिए भी बाहरकी खुली हवामें घूमना जरूरी है—यही मांका ख्याल है।

यह तो हुआ, लेकिन शीराजीने सारी छुट्टियां यों ही आलस्यमें बिता दीं—पढ़ाई-लिखाई कतई नहीं की। वज्राघात हुआ उस वक्त, जब मांने कालेजकी याद दिलायी! ऊन और क्राचेट!—ये समय नष्ट करनेके मूलमें हैं।

शीराजी किताब लेकर बैठी।

आज उसने पर्दा उठा दिया और जी भरकर बाहरकी हवाका उपभोग किया।

उसके हाथमें एक विदेशी नाटक है। इसमें तो कहीं भी किसीकी हत्या नहीं की गयी है, तो भी रसकी कमी नहीं है? इस नाटककी प्रसिद्धि भी काफी है। हत्या और आत्म-हत्याके नाटक उसने बहुत पढ़े हैं, लेकिन ऐसी निष्ठुर हत्या-की कहानी कहीं नहीं पढ़ी। (टीका—सदाशय हत्याका संवाद लेखकको नहीं मालूम)। एक लड़कीको जबरदस्ती मारा गया है! विचित्र! शीराजीने नाट्यकारके बन्द दर-वाजेकी ओर देखा। दरवाजा खुलनेका नाम नहीं, सोम-नाथ भी सङ्गतिके असरसे शायद नाट्यकार हो गया है। वह भी जान पड़ता है, कहीं बाहर गया है।

शामके वक्त दरवाजा खुला और मुंहमें चुरुट दबाये नाट्यकार साहब बरामदेमें आकर खड़े हुए। शीराजी नाट्यकारको सिरसे पैर तक अच्छी तरह देखने लगी। उंह, सिर्फ नाम ही नाम है—चेहरेमें चमकप्रद कुछ भी नहीं है। यहां तक कि श्रद्धा पाने लायक विन्दु-मात्र चिह्न भी सर्वाङ्गमें नहीं है। किन्तु नाटक देखनेका थोड़-सा शौक शीराजीको हुआ। शौक नहीं, कौतूहल। जिसके बारेमें इतना शोर मचा हुआ है, वह है क्या—उसने सोचा कि अपनी आंखोंसे देखा जाय।

लेकिन देखने उसे जाना नहीं पड़ा। एक अप्रत्याशित सन्ध्याको उसीके कमरेमें दो गानोंके बाद घोषित किया गया कि अब नाटक शुरू होगा। हां? शीराजीको बड़ी हंसी आयी। कहां, प्रोग्राममें तो उसने यह लक्ष्य नहीं किया। जल्दी-जल्दी अखबार खोलकर उसने देखा—वाकई, नाट्यकारका नाटक अभिनीत होगा। काठकी कुर्सीसे उठ-कर शीराजीने आराम-कुर्सीको खिड़कीके नजदीक खींचा, आरामसे उसपर बैठ गयी और बिजली बुझा दी।

नाट्यकार रेलिंगके सहारे आकर खड़े हो गये। शायद नाटक सुननेकी ही उनकी इच्छा थी, किन्तु उनके कमरेमें रेडियो नहीं है—शीराजीके कमरेके रेडियोकी आवाजपर ही निर्भर करना पड़ा। खिड़की खोलकर, पर्दा हटाकर शीराजी अंधेरे कमरेमें बैठकर नाटक सुनने लगी।

नायक और नायिका। दोनों एक-दूसरेको बचपनसे जानते-पहचानते हैं। यौवन आया और प्रेम भी बढ़ा। प्रेमको लेकर हुआ द्वन्द्व कौन ज्यादा प्रेम करता है, कितना प्रेम करता है—इसका परिमाण नापनेके लिए कलह होने लगा। कलह नहीं, तर्क-वितर्क। नहीं, तर्क-वितर्क भी नहीं कहा जा सकता—उपयुक्त शब्द शीराजीको याद नहीं आ रहे हैं। कुछ भी हो, दोनोंमें प्रेमकी इस प्रतियोगिताके शुरू होनेके साथ-साथ तीन अङ्क खत्म हो गये। बिलकुल मामूली प्लाट, शीराजीको उसमें कुछ भी नवीनता नजर न आयी। वह कानोंसे नाटक सुन रही है और आंखें नाट्यकारपर गड़ी हुई हैं। ओह, बेचारा! देखो न, इतने घमण्डसे इधर-उधर चहलकदमी कर रहा है! अपनी चीजके प्रति मनुष्य अन्धा हो जाता है। नहीं तो इस नाटकके लिए नाट्यकारको इतना ज्यादा चञ्चल होनेकी क्या जरूरत थी?

इसके बाद अन्तिम अङ्क शुरू हुआ। हत्याका दृश्य सुननेके लिए शीराजी अधीर आग्रहसे कान खड़े करके बैठ गयी। कई दृश्य खत्म हो गये और शोचनीय स्थलपर नाटक खटकता है। नायक तन, मन, धनसे नायिकाको चाहता है, अपनी सारी शक्तिका प्रयोग कर वह नायिकाका आलि-ङ्गन कर रहा है। (शीराजीको हंसी आ रही है। ओह, नायकका कैसा भीषण हुङ्कार है! एकाएक सब रुक गया! उधर नाट्यकार स्तब्ध होकर खड़े हो गये। धीमी-धीमी आवाज कानोंमें पड़ी, नायिकाको नायक पुकार रहा है, लेकिन कोई उत्तर नहीं मिलता। यह क्या?—नायिका मर गयी? आतङ्क और दुःखसे पीला पड़कर नायक चीख उठा—

'मा-धु-री।' नाट्यकार भी चिल्ला उठे—'सोमनाथ—पानी।'

इतनी देरमें सारी चीज शीराजीके लिए पानी हो गयी। यह है! उसका ख्याल था कि न जाने क्या होगा। नाट्यकार कमरेमें टहल रहे हैं, टहलना नहीं—इसे तो दौड़ना कहते हैं! इसी नाटकपर इतना नाज-नखरा है? वाह री तकदीर! शीराजीने भी उठकर सुराहीसे एक ग्लास पानी पिया। उसके हलकके नीचे जैसे नाटक भी उतर गया।

शीराजीका ख्याल हुआ कि नाट्यकारने इस नाटककी रचना लड़कियोंका मजाक उड़ानेके लिए ही की है। नहीं तो कोई भी लड़की अपने प्रेमीको 'कितना प्रेम करते हो', 'कितना प्रेम करते हो', यह पूछकर पागल बनाती है? ठीक हुआ नायिकाका, कैसी बेवकूफ, नायकने भी अच्छी सीख दी—अच्छा हुआ। अब जीवनमें उसे प्रेमका नाम नहीं लेना पड़ेगा। लेकिन तत्काल ही ख्याल आया कि यह तो वास्तवमें किसी लड़कीने नहीं कहा—यह सारी उपज तो नाट्यकारके दिमागकी ही है। बस, उसकी सारी नाराजगी नाट्यकारपर थी। इच्छा हुई—वह धड़धड़ाती हुई जाय और दो-चार जली-कटी बातें सुना आये, पर वह तो उसकी नायिका-जैसी बेशर्म नहीं है। वह चुपचाप बैठ गयी। हां, एक कड़ी चिट्ठी भेजनेमें क्या बुराई है। बेवकूफोंका गरूर उससे और बढ़ता है।

देखूं। पड़ोसकी बहू बड़ी चञ्चल है। शीराजी खिड़कीपर खड़ी हो गयी। और उसका पति भी कम दुष्ट नहीं है। कमरेमें रोशनी जली हुई है और ऐसी रसिकता कर रहे हैं—उन्हें क्या समझ नहीं। देखनेकी इच्छा नहीं होती, फिर भी बिना झांके उससे नहीं रहा जाता। दोनों बड़े मजेमें हैं। शीराजीने एक लम्बी सांस छोड़ी।

नाट्यकारकी भी शायद एक ऐसी माधुरी देवी हैं—इसमें आश्चर्य क्या! लड़कीका भाग्य! शायद उस लड़कीको और कोई नहीं मिला?

शीराजीका मन न जाने क्यों खराब हो गया। वह बिस्तरेपर लेट गयी, और आहत सांपकी तरह नाट्यकारपर, नहीं, अपने ऊपर नाराज होने लगी।

किसीपर नाराज न होते हुए लेटे ही लेटे वह निष्पक्ष भावसे विचार करनेकी कोशिश करने लगी। अच्छा, नाट्यकार इतनी चहलकदमी क्यों कर रहा था? उसके जीवनमें क्या ऐसी कोई घटना हुई है? उनका निस्स्वार्थ प्रेम पाकर किसी लड़कीकी शोचनीय मृत्यु हुई, और इसके बाद ही उस दुर्घटनाको सदा स्मरण रखनेके लिए ही क्या उन्होंने यह प्लाट बनाया है? अगर ऐसा है, तो निश्चय ही असहनीय दुःख है। पर दूसरे ही क्षण उसकी राय बदल गयी। धुश, ऐसा क्या कभी होता है? लड़कियोंका मजाक उड़ाया है। शीराजी उठी। व्यर्थ समय नष्ट करनेसे क्या फायदा, अब वह पढ़ने बैठेगी।

बिजली जलाकर वह पढ़ने बैठी, किन्तु यह क्या? नाट्यकारके कमरेमें अंधेरा है! वह कहीं बाहर गये हैं? विचारोंका अन्त नहीं! किताब खोलकर शीराजीने पढ़नेकी कोशिश की, लेकिन पढ़ न सकी। मन ही मन वह नाट्यकारपर क्रोधित होने लगी। कुछ भी हो, विचित्र जीव है।

खाना वगैरह खाकर वह बहुत रातको ऊपर आयी। अब भी उस फ्लैटकी बिजली नहीं जली है। मालिकके साथ-साथ नौकर भी गप्पें लड़ाने चला गया है? दोनों एक-से ही मिले हैं। नहीं, उनके कमरेमें भी अंधेरा है, दुष्ट बहू भी सो गयी है। शीराजी इस वक्त एकदम अकेली है! कैसे वह वक्त काटे, यह उसकी समझमें न आया। नींद भी तो उसे नहीं आती। रातको इतनी जल्दी सोना उसे पसन्द नहीं है। कालेज भी वह जाती है और रातको जागरण भी करती है—यह उसकी बहुत पुरानी आदत है।

बैठकर वह इधर-उधरकी बातें सोचने लगी, काफी वक्त बर्बाद किया। रात क्रमशः बढ़ रही है, अचानक—'सोमनाथ!'

शीराजीने सिर उठाकर देखा: नाट्यकार लौट आये हैं, दो बजे हैं। इसके मानी? इतनी देर तक कहां थे? आभी रातके पहले लौट आनेपर शायद नाट्यकार नहीं हुआ जाता? पास-पड़ोसके लोग क्या कहेंगे? शीराजीको बड़ा गुस्सा आया, वह कमरेमें चहलकदमी करने लगी, अब उसने सोनेका निश्चय किया—उसका सिर झनझना रहा है। सिरमें दर्द होगा क्या, दराजसे उसने 'ऐस्प्रो' की एक गोली निकालकर खायी। नहीं, उसे न जाने क्यों कुछ भी अच्छा नहीं लगता! चारों ओर उसे खाली-खाली लग रहा है। बुखार तो नहीं आयेगा?

नाट्यकार पढ़नेकी मेजपर खाना खा रहे हैं। किसी भी

बातका शऊर हो, तब न ! सब विचित्र है । क्या सोचते हैं और क्या करते हैं—यह कुछ समझमें नहीं आता । इतनी रातको घर लौटनेपर उनके प्रति मनुष्यकी घृणा बढ़ेगी या कम होगी ? वितृष्णासे शीराजीका सारा शरीर कांपता है । किन्तु वह कौन है ? शीराजीने झांककर देखा । सोमनाथ बिलकुल गधा है । खानेको तो परोसा है, पर एक ग्लास पानी नहीं दे सकता ?

जाने भी दो । वह लेट गयी । उसका शरीर अब आराम चाहता है । किन्तु लेटनेपर भी उसे नींद नहीं आ रही है । कहां, उनके मनकी इतनी खराब हालत तो कभी नहीं हुई ? आज ही ऐसा क्यों हुआ ? वह उठी और खिड़कीपर जाकर खड़ी हो गयी । चारों ओर अन्धकार है । अकेली शीराजी जाग रही है ।

इसके बाद वह कब लेटी और कब उसकी आंखें मुंद गयीं, यह उसे याद नहीं । मांने दरवाजा खटखटाकर जब उसे जगाया, तब काफी देर हो चुकी थी । कालेज जानेका वक्त भी हो गया था । लेकिन वह कालेज नहीं जायेगी—उसकी तबियत बड़ी खराब है ।

मां नीचे चली गयीं ।

'सोमनाथ, सोमनाथ ।'

पुकार सुनकर शीराजीने देखा । अरे, यह क्या ? कमरे-की सारी चीजें बीचमें इकट्ठी हैं और एक स्तूप-जैसा बन गया है । सोमनाथ चीजें बांध रहा है । इसका मतलब ? फिर कहीं चले ? कुछ देर तक देख-सुनकर शीराजीने समझा-वाकई, नाट्यकार कहीं जा रहे हैं । यदि जाना ही था, तो व्यर्थके लिए क्यों आये ? बिना ऐसा किये उनका काम नहीं चलता ?

शीराजी खड़ी-खड़ी देखने लगी । अब उसकी इच्छा नीचे जानेकी न रही । सोमनाथ अपने सिरपर चीजें रखकर नीचे ले जाता है, और फिर ऊपर आता है । नीचे शायद गाड़ी है, यहांसे दिखाई नहीं देती । आखिरमें नाट्यकारने कमरेमें चारों तरफ एक बार नजर दौड़ायी और हाथकी छड़ी नचाते हुए नीचे उतर गये ।

शीराजी अचल खड़ी रही । उसका सारा शरीर बहुत भारी हो गया । सिर भी फिर झनझनाने लगा । पड़ोसकी बहू गालपर हाथ रखे अकेली खड़ी है—पति शायद कामपर चले गये हैं ? शीराजीको अब न जाने कितना काम है ? उससे सबमें गलती हो रही है । नहीं, वह कुछ भी न समझ सकी । सब जैसे कैसा-कैसा हो गया । घृणासे, वितृष्णा-से वह नाट्यकारपर जलने लगी ।

———

क्या आप लखपती होंगे ?

श्री गिरिजाप्रसन्न घोष, बी० एस-सी०

क्या आप लखपती होंगे—यह प्रश्न यों तो बहुत ही मामूली-सा है, परन्तु लखपती होनेके चक्करने हजारों ही नहीं, लाखों व्यक्तियोंको परेशान कर रखा है और उस जमानेमें कर रखा है, जब समाजका शोषक वर्ग कहकर पूंजी-पतियोंकी खबर ली जा रही है। पेशा चाहे दूकानदारी हो या दलाली, नौकरी हो या जमीन्दारी, प्रत्येक व्यक्ति अधिक-से-अधिक धन बटोरनेका—मालामाल होनेका प्रयत्न करता है! मानव-समाजकी इस मनोवृत्तिको दृष्टिमें रखकर ही नीतिकारने कहा था कि जिसके पास कुछ नहीं है, वह सौ रुपया चाहता है, जिसके पास सौ रुपया है, वह हजारपती होना चाहता है। इसी तरह हजारपती चाहता है कि वह लखपती और जो लखपती है, वह चाहता है कि करोड़पती हो जाय! मनुष्यकी अभिलाषाओंकी कोई सीमा नहीं है।

मनुष्यकी अभिलाषाओंकी कोई सीमा हो या न हो, परन्तु ऊपरसे देखनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी सफलताओंकी सीमा जरूर है और यह सीमा उसकी क्षमता, योग्यता, परिस्थिति और साधन, कितनी ही बातोंपर निर्भर है। इसीलिए हम यह देखते हैं कि मालामाल होनेकी स्पर्धामें सबसे आगे रहनेकी अभिलाषा तो प्रायः सभी करते हैं, परन्तु सभी मालामाल हो नहीं पाते। उनमेंसे कुछ अपने प्रयत्नमें सफल भी होते हैं और कुछ बिलकुल ही विफल, कुछ लोग विफल हो जानेपर भी अपनी स्थितिमें कुछ न कुछ सुधार करनेमें समर्थ हो जाते हैं। एक और बात भी देखनेमें आती है और वह यह कि मालदार लोगोंका भी एक अपना वर्ग है और उस वर्गके ९९ प्रतिशत व्यक्तियोंमें बहुत बातें मिलती हैं। अपने जीवन-सम्बन्धी प्रश्नोंके विषयमें वे उसी दृष्टिकोणसे नहीं सोचते, जिससे अन्य व्यक्तियोंको देखते हैं। चांदीके चबूतरेपर खड़े हो जानेपर सर्वसाधारण सम्बन्धी कितने ही महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंके विषयमें या तो उनका विचार ही बदल जाता है या फिर विचार ढकोसला मात्र रह जाता है। किसी कविने लिखा है—"कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।" यह क्या गलत है? अपने चारों ओर ऊंची-ऊंची अट्टालिकाओंपर निगाह डालिये और फिर उनके निकट सम्पर्कवाले व्यक्तियोंसे पूछिये—आपको दया-कठोरता, प्रेम उपेक्षा, आदर-अनादर, मान-अपमान, प्रशंसा-निन्दा, और शिष्टता-अशिष्टता, मनुष्य-हृदयके सुन्दरसे सुन्दर और बुरेसे बुरे भावोंकी कहानी सुननेको मिलेगी। इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। जिन व्यक्तियोंमें मालामाल होनेके परमाणु पाये जाते हैं, उनके मनोभावोंमें प्रायः कुछ अद्भुत मिश्रण देखनेमें आता है और अपना स्वार्थ साधन करनेके लिए जब जैसे मनोभावकी आवश्यकता होती है, वैसा ही वे बना लेते हैं।

मालामाल होने—दूसरे शब्दोंमें लखपती होनेके परमाणु जिन लोगोंमें पाये जाते हैं, उनकी मनोवृत्तियोंका अध्ययन प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डा० के० बारेन पी०-एच० डी० ने किया है। डा० बारेन मनोविज्ञानके विशेषज्ञ माने जाते हैं और उनके प्रयत्नोंसे अब यह सम्भव हो गया कि किसी व्यक्तिको यह बतलाया जा सके कि वह लखपती होगा या नहीं? डा० बारेनने एक कसौटी निश्चित की है, जिससे उन व्यक्तियोंका पता लगाया जा सकता है, जिनके लखपती हो जानेकी सम्भावना है, जिनमें लखपती होनेके परमाणु हैं। डा० बारेनका मत है कि जो लोग लखपती होते हैं, उनकी मनोवृत्ति बहुत कुछ मिलती-जुलती है और साथ ही व्यक्तित्वकी कितनी ही बातोंमें भी मेल होता है। इस विश्वासके आधारपर गत २९ वर्षमें डा० बारेनने कई हजार लखपतियोंको अध्ययन किया और उसके बाद उन्होंने कसौटीके रूपमें ३० प्रश्न तैयार किये हैं, जिन्हें नीचे दिया जा रहा है। उनका विश्वास है कि सचाईके साथ विचार-पूर्वक यदि प्रत्येक प्रश्नका ठीक-ठीक उत्तर दिया जाय, तो बीमा कम्पनियोंके मृत्यु विषयक अनुभवकी तरह यह बतलाया जा सकता है कि कोई व्यक्ति लखपती होगा या नहीं। जो प्रश्न दिये गये हैं, उनमेंसे प्रत्येकके लिए १ नम्बर नियत है। जिस प्रश्नका उत्तर आप

'हां'में दे सकें, उसका एक नम्बर रख लीजिये और जिस प्रश्नका उत्तर आप "नहीं" दें, उसका कोई नम्बर मत रखिये। सब प्रश्नोंका उत्तर देनेके बाद जोड़कर देखिये कि आपने कितने नम्बर प्राप्त किये। नम्बरोंकी संख्याका आपके लखपती होनेके साथ क्या सम्बन्ध है, यह अन्तमें देखिये।

डा० बारेनकी प्रश्नावली

(१) आप क्या रुपया चाहते हैं या वह अधिकार, जो साधारणतः संसारकी अन्य सब चीजोंकी अपेक्षा रुपयेसे ही अधिक प्राप्त होता है ?

(२) नीति या अन्य जनोंके भावोंकी परवा न कर आप अपनी व्यक्तिगत योजनाओंको कार्यान्वित करते हैं ?

(३) आप क्या अपनेको महापुरुष मानते हैं और बाहरसे नम्र बनते हैं ?

(४) आपका हृदय जो कुछ चाहता है, या आपकी प्रवृत्ति जो प्रेरणा करती है, उसके बजाय अपनी बुद्धिका तकाजा पूरा करनेका इरादा क्या आपमें है ?

(५) आपके विचारोंमें उत्पादन-शक्ति तो है ? आप इन विचारोंको कार्यान्वित तो करते हैं ?

(६) क्या आपको ऐसी मूल्यवान चीजें एकत्र करनेका व्यसन है, जिन्हें मुनाफेके साथ बेचा जा सकता है—जैसे टिकट, तैलचित्र, अलभ्य पुस्तकें आदि।

(७) आप अपने रोजगार या कार्यके विषयमें हमेशा ही कुछ अधिक जाननेका प्रयत्न करते रहते हैं, जिससे आप अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको पछाड़े रहें ?

(८) क्या आप सामूहिकके बजाय व्यक्तिगत उद्योगके लिए जान लड़ा देते हैं ?

(९) जनता जिस तरह सोचती हो, उसके विरुद्ध आचरण करनेका नैतिक बल क्या आपमें है—भले ही आपके साथी वैसा आचरण करनेके कारण आपसे घृणा करें या आपका मखौल उड़ायें ?

(१०) लोगोंपर कैसे प्रभाव डालना चाहिए और कैसे उनका नेतृत्व करना चाहिए—क्या आपको यह आता है ?

(११) क्या ऐसे कार्य करनेके लिए आप अपनेको तैयार कर सकते हैं, जो आपको स्वयं अप्रिय हों ?

(१२) अपनी व्यक्तिगत योजनाओंको पूरा करनेके लिए कठिन परिश्रम करनेवाले उपयुक्त व्यक्तियोंका चुनाव करनेकी योग्यता क्या आपमें है ?

(१३) आप दूसरोंके बजाय क्या अपने लिए काम करना पसन्द करेंगे और क्या अपना कारबार आरम्भ करनेका साहस आपमें है ?

(१४) जब तक कोई समस्या हल न हो जाय या जब तक कोई कार्य सन्तोषजनक रूपमें पूरा न हो जाय, तब तक उसमें संलग्न रहनेकी योग्यता क्या आपमें है ?

(१५) प्रकट रूपमें अलङ्घनीय बाधाओंके रहते हुए भी उनकी परवा न कर क्या आप अपने काममें लगे रहते हैं ?

(१६) "अशर्फियां लुटें कोयलोंपर छाप" की कहावत चरितार्थ किये बिना क्या आप मितव्ययी हैं ?

(१७) आप अपने साथी बच्चोंके साथ जब अपने खिलौनोंकी बदलौअल करते थे, तब अक्सर इस व्यापारमें मुनाफा तो रहता था न ?

(१८) माता-पिता द्वारा मजबूर नहीं किये जानेपर भी कुछ अतिरिक्त रकम पैदा करनेकी इच्छासे क्या आपने स्कूलके घण्टोंके बाद बाकी समयमें अपने लिए कोई काम खोज लिया था ?

(१९) क्या आप लोगोंको यह विश्वास दिलाते हैं कि आपका वचन ही आपका लेख है !

(२०) क्या आप यह विश्वास करते हैं कि दूसरोंके सङ्गठित कार्यके मुनाफेको बुद्धिमत्तापूर्वक नियन्त्रित और प्राप्त कर साधारणतः लखपती हुआ जाता है ?

(२१) खर्च कम करने, बिक्री बढ़ाने और मुनाफा ज्यादा उठानेके लिए नये-नये उपाय निकालनेकी योजना तैयार करनेपर आप क्या प्रतिदिन १२ घण्टे विचार करते हैं और फिर अपने निर्णयोंके अनुसार क्या आप कार्य करते हैं ?

(२२) आप सावधानीसे अपने स्वास्थ्यकी रक्षा तो करते हैं ?

(२३) दूसरोंके इरादोंके विषयमें आपको सन्देह रहता है और क्या आप उनके सम्बन्धमें सही-सही विश्लेषण करते हैं ?

(२४) अच्छी तरह जांच कर लेनेके बाद ही अपने निर्णयोंकी सचाईपर क्या आप अपना रुपया लगानेके लिए तैयार हैं ?

(२५) जिस कार्यके विषयमें आप स्वयं नहीं जानते, उसे किसीके इशारेपर उसीके लाभके लिए करनेसे क्या आप बचते हैं ?

(२६) हानि-लाभकी गुञ्जाइशके लिए रकम जमा देकर क्या आप सट्टा करनेसे बचते हैं ?

(२७) क्या आप इस बातको जानते हैं कि केवल कठिन परिश्रम और मितव्ययतासे कभी कोई आदमी लखपती नहीं हुआ, परन्तु अन्य लोग जो काम करते हैं, उसका मुनाफा, सब लोगोंके परिश्रमका मुनाफा स्वयं प्राप्त कर लेनेसे कोई भी लखपती हो सकेगा ?

(२८) क्या आपमें सङ्गठन करनेकी योग्यता है ?

(२९) आपके आरामसे रहनेकी दृष्टिसे आपकी आमदनी चाहे काफ़ीसे भी ज्यादा हो, परन्तु क्या आप इससे हमेशा ही असन्तुष्ट रहते हैं ?

(३०) क्या आप जानते हैं कि रुपयेसे कैसे काम लिया जाता है ?

प्राप्त नम्बरोंका अभिप्राय

इन प्रश्नोंका सही-सही उत्तर देनेसे आपको जितने नम्बर मिलेंगे, उनसे आपके लखपती होनेके सम्बन्धमें यह नतीजा निकाला जा सकता है—

१२ या कम—व्यापारी या कारबारीके रूपमें निश्चित विफलता।

१३–१५–तीसरे दर्जेके व्यापारी।

१६—२१—मध्यम श्रेणीके व्यापारी, औसत दर्जेकी आमदनी।

२२—२४—अच्छे व्यापारी, आप आरामसे अपना स्थान निर्माण कर सकते हैं।

२५—२६—बहुत अच्छे व्यापारी; आप कुछ धन कमा सकते हैं।

२७—२८—ऊंचे दर्जेके व्यापारी और औद्योगिक; आप अच्छी रकम पैदा कर सकते हैं।

२९—३०—प्रमुख उद्योगी, आपमें लखपती होनेके लिए आवश्यक सभी परमाणु हैं।

हमारी दवाओंके लिये कुछ महानुभावोंकी राय—

श्रीमान् डाक्टर कुंवर महेन्द्रसिंह साहब बिसेन मालगुजार, मौजा हुरा कुतगुवाँ, पोस्ट राहतगढ़, ज़िला सागर से लिखते हैं :—

आपका निदान और आपकी दवाएं अचूक हैं

आपका भेजा हुआ "सुधावलेह" व "नवधातुरोगान्तक" सेवन किये। आपने अपने निदान से मुझे पित्तज प्रमेह सिद्ध किया था। आपकी निदान क्रिया इतनी तीव्र है कि मैं उसकी किसी प्रकार प्रशंसा करनेमें समर्थ नहीं हूं। वैसी ही आपकी दवाएं हैं, जो अमृत का काम करती हैं। मुझे आपकी दवाओंसे लाभ हुआ, वह आज आठ साल से, मैं इस रोग से पीड़ित था, नहीं हुआ। कीमती-से-कीमती दवाएं सेवन कर चुका था। कारण निदान का भी था। आपने रोगानुसार औषधि भेजी, जो मेरे मर्ज पर रामवाण सिद्ध हुई। आगे मैं प्रमेहनाशक औषधि सेवन करता था, तो कुछ दिन लाभ होकर अचानक गरमी बढ़ने से रोगग्रस्त हो जाता था। मेरी गरमी आपके सुधावलेह ने शान्त की, आपकी प्रशंसा मैं अपने मुंह से नहीं कर सकता, क्योंकि आपका निदान और दवाएं अचूक हैं, उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, वह थोड़ी है।

२८—१०—४०

आपका कृपाभिलाषी—

डाक्टर कुंवर महेन्द्रसिंह।

श्रीमान् विष्णुशंकरजी मेहता, श्री शङ्कर लॉज, नरसिंहगढ़, सी. आई. से लिखते हैं :—

आपका कृष्णविजय तैल अतीव हितकर है !



"स्वास्थ्य रक्षा" नामक ग्रन्थ में लिखा हुआ "कृष्णविजय तैल" एक शीशी वी० पी० द्वारा भेजने की कृपा कीजिये। आपका यह तेल अतीव हितकर है। मैंने गरमी के रोगी पर इसका प्रयोग किया, उसे इससे खूब लाभ हुआ। त्वचाजनित रोगियोंको भी इससे लाभ पहुंचा। इसके लिये आपको धन्यवाद है।

२४—५—३९

आपका शुभचिन्तक :—

विष्णुशंकर मेहता।

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा।



मानव, सभ्यता और पैसा

एक विषम सङ्कट-काल है, जिससे संसार आज गुजर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिजपर युद्ध और प्रति-हिंसा, घृणा और संशय, अविश्वास और प्रवञ्चनाकी शक्तियां उठतीं और टकरा रही हैं! आकाश तिमिराच्छन्न है और वातावरणमें पशुत्वके फूत्कार और दैन्यके चीत्कारके स्वर भय भर रहे हैं।

और मानव त्रस्त और विकल है। सर्वनाशकी प्रलयङ्करी शक्तियां लड़ रही हैं। मानव और मानवताके भविष्यको वर्तमानने एक ललकार—एक चुनौती दी है। एक सन्धि-स्थलपर सारी शक्तियां एकत्र होकर चिताकी लपटोंकी भांति अपना ही संहार करनेपर तुली बैठी हैं। प्राचीन और नवीनका सङ्घर्ष है। और सङ्घर्ष चल रहा है।

और इस सङ्घर्षके निकलनेवाले परिणाम और उसकी सम्भावनायें मानवको उलझा रही हैं। युगोंसे बने आये आदर्शों और सिद्धान्तोंको नवीन परिस्थितियों और कारणोंने चुनौती दी है कि क्यों न वे परिवर्तित कर दिये जायें।

ये चुनौतियां हैं उन व्यवस्थाओंको, जिनमें मानव-सभ्यताने अपने विकासका चाहे जितना साधन पाया हो, पर मानवको अपने विकासके साधन ढूंढ़नेमें सदा कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। समाजकी आर्थिक व्यवस्थामें, जैसी कि वह युगोंसे चली आती रही है, मानवको—अधिकांश मानवको—उन उपादानोंकी उपलब्धि न हो सकी, जिनमें वह लोक-कल्याणकी भावनाओंके प्रति ईमानदार रहते हुए आत्म-विकास कर सके।

'लोक-कल्याणकी भावनाओंके प्रति ईमानदार रहते हुए आत्म-विकास कर सके' हमने कहा है। युगोंसे चली आयी जिस पूंजीवादी व्यवस्थाका बोलबाला रहा है और जिसकी रक्षा और विकासके लिए ही प्रधानतः साम्राज्य-विस्तार, उपनिवेश, मैण्डेट आदिकी महत्त्वाकांक्षायें और व्यवस्थायें बनीं, अनेक उपादानों और अनेक साधनोंका जिस व्यवस्थाको संरक्षण प्राप्त है, उस पूंजीवादने आत्म-विकासकी स्थितियां उत्पन्न कीं, पर लोक-कल्याणकी भावनाके प्रति ईमानदार रहते हुए आत्म-विकास करनेकी अवस्थायें भी क्या पूंजीवादने सम्भव रखीं?

सभ्यताके विकासमें पूंजीवादके कामोंकी एक बहुत बड़ी तालिका है, जिसे पूंजीवादके समर्थक पेश करते हैं। ज्ञान-विज्ञानके बहुत-से साधनोंका उपभोग मानव-सभ्यताके लिए उसने सम्भव किया है, यह पूंजीवादका दावा है। कला-कौशल, स्थापत्य कला, ललित कला तथा राष्ट्रोंका आन्तरिक और वैदेशिक सम्पर्क अधिकाधिक निकटवर्ती बनानेकी दिशामें पूंजीवादकी महान् सेवायें आदि उसके पक्षमें दिये जानेवाले महान् तर्क हैं। अनेक अन्वेषणों और मनुष्यके सुखके साधनोंकी खोज पूंजीवादने की, और उसने समुद्र नापे, आकाश नापा, मानवको मानवके निकट लाकर उसे बन्धुत्वकी भावना सिखानेमें अपनी सफलताओंका उपयोग किया—यह पूंजीवादका दावा है, और मनुष्यको अधिकाधिक अपनी महत्त्वाकांक्षाओंको चरितार्थ करनेका वह महान् सन्देश और शक्तिवाहक है—यह उसका तर्क है। पर

एक प्रश्न

है, जिसने मानवको पिछले अनेक वर्षोंसे उलझा रखा है और आजकी दुनिया जिसका समाधान चाहती है। पूंजीवादने जिस सभ्यताको, जिस व्यवस्थाको, जिन साधनों

और जिन-जिन उपकरणोंको जन्म दिया है—उनमें मानवकी सभ्यताका विकास हुआ, पर उस विकासमें मानवका स्थान क्या रहा ? जिन नयी-नयी कलाओंके विकासमें, जिन ज्ञान-विज्ञानके नये-नये तथ्यों और अचरज-भरे आविष्कारोंके आधारोंपर पूंजीवाद टिकना चाहता है, उनमें साधारण मानव—अधिकांश मानव—का कितना हित हुआ ? साधन एकत्र हुए, पर साध्य क्या रहा ? सभ्यता किसलिए और किसके लिए ? पूंजीवादने एक ओर स्थापत्य कलाके विकासमें सहायता पहुंचायी, पर उसकी कौन-सी उपयोगिता उनके लिए है, जिनके पास एक फूसकी झोंपड़ी नहीं, जाड़ेकी ठण्डी रातोंमें जिनके नन्हें-नन्हें शिशुओंके हाथ-पांव ठिठुरकर निर्जीव हो जाते हैं, गर्मीकी अग्निवर्षासे जिनकी क्षण-भर भी रक्षा नहीं हो पाती और जिन्हें बादलोंकी गरज, बिजलीकी कौंध और मूसलाधार वर्षाकी रातें पेड़ोंके नीचे तनोंको सिरका सहारा बनाये काटनी पड़ती हैं ? कितने दिनोंसे यह क्रम चला आ रहा है और इस क्रमके शिकार कितने व्यक्ति आज तक हो चुके ! एक-दो नहीं, दस-बीस-पचास नहीं—लाखों और करोड़ोंकी संख्यामें पीड़ित मानव आकाशके चंदोवेके नीचे घासके फर्शपर अपने दिन-रात काटते हैं । ऐसे लाखों-करोड़ों—निराश्रय, गृह-विहीनोंके लिए स्थापत्य कलाका कितना मूल्य है ? पेड़ोंकी छायामें जाड़े, गर्मी, बरसातकी असहनीय रातें काटनेवाले इन अभागोंसे कोई पूछे कि पूंजीवादके सहारे अंकुरित और पल्लवित होनेवाली स्थापत्य कलाने उन्हें सुख और शान्तिके कौन-से साधन दिये ? इस स्थापत्य कलाके उत्थानपर इन अभागोंमेंसे किसे पूंजीवादकी विरुदावली गानेका उत्साह होगा ? कौन इसे प्रातःकालीन आकांक्षा और सन्ध्याकालीन सन्तोषका विषय बना सकेगा ?

पूंजीवाद और लोक-कल्याण

अधिकाधिक लोगोंका अधिकाधिक सुख—जब उस विवेचकने लक्ष्य घोषित किया था, तब उस घोषणामें पूंजीवादके प्रति अविश्वासकी ही भावना नहीं थी, पूंजीवादपर एक फैसला भी उसमें था । पूंजीवादी व्यवस्थामें आत्म-विकासकी सम्भावनायें लोक-कल्याणकी भावनाओंके कितनी प्रतिकूल हैं, इसकी अभिव्यक्ति प्रोधनके इस वाक्यमें हुई थी कि समस्त पूंजी चोरी है—(All property is theft)। लोक-कल्याणकी उपेक्षा, बल्कि लोक-कल्याणके शोषणके सहारे जिस पूंजीवादकी सांस चल रही है, उसमें जिस सभ्यताका विकास हुआ है, उसमें साधारण मानवके लिए कोई स्थान नहीं । और न तो भविष्यमें ही उनके लिए कोई जगह है, अगर व्यवस्थायें यों ही चलती रहीं । और

इसके कारण

हैं । राजनीतिका मूल मन्त्र है अर्थ-नीति । राजनीतिक सुधारोंकी दीवाल कभी स्थायी नहीं हो सकती, जब तक उसके आर्थिक आधार सुदृढ़ नहीं हों । सारे संसारमें पिछले दिनों प्रजातन्त्रात्मक सिद्धान्तोंकी पराजय दिखाई पड़ी और प्रतिगामी शक्तियां बल-सञ्चय करती दिखाई पड़ीं, जिसका अन्तिम परिणाम फैसिज्मके रूपमें दिखाई पड़ा है, उसके मूलमें प्रजातन्त्रात्मक सिद्धान्तोंके आर्थिक पहलूकी दुर्बलता है, जिसने राजनीतिक समानताके होते हुए भी सभी नागरिकोंके लिए उनका उपयोग असम्भव बना दिया । सर्वत्र पूंजीवादका बोलबाला है । फ्रान्स, ब्रिटेन और अमेरिकाके प्रजातन्त्रात्मक विधानोंमें नागरिकोंके समानाधिकारका कितना ही उल्लेख हो, व्यावहारिक राजनीतिमें उसका कोई अस्तित्व नहीं । भारतकी भी यही अवस्था है । और संस्थाओंकी बात जाने दें । कांग्रेसकी राजनीतिका जो रूप विगत निर्वाचनों और कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंके शासन-कालमें दिखाई पड़ा, उसकी प्रतिक्रिया बहुतोंपर अच्छी नहीं हुई । कौन कह सकता है कि निर्वाचनके लिए उम्मेदवार बनाते समय कांग्रेसके झण्डेके नीचे की गयी देशसेवाओंका ही ख्याल रखा गया और आर्थिक दृष्टिकोणका अभाव रहा ? पिछले दिनों कई प्रान्तोंमें जो अनुशासन-सम्बन्धी व्यवस्थायें की गयी हैं और कई सदस्यों तथा अधिकारियोंमें जो नोकझोंक हुई है—जिसका एक अच्छा नमूना युक्तप्रान्तमें अभी हालमें दिखाई पड़ा—वे सब बातें समानताके दावेके विरुद्ध अकाट्य तर्क हैं । राजनीतिक कूटनीतिमें ऐसी घटनायें वाञ्छनीय हों या न हों, अवसरवादिता राजनीतिमें गुण हो या अवगुण, प्रश्न यह नहीं है—प्रश्न है सीधा पैसेका । जिन गांधीजीके नेतृत्वमें आज कांग्रेस है, उनका जब जमीन्दारों और पूंजीपतियोंमें ट्रस्टीका-सा विश्वास हो, तब उनके लिए उन्हीं जमीन्दारों और पूंजीपतियोंको असमर्थ नागरिकोंका ट्रस्टी

और नेता मानकर व्यवस्थापिका सभाओंमें भेजना कुछ भी आश्चर्य-जनक नहीं हो सकता।

तो मानव समाजकी इस व्यवस्थामें पैसेका जो महत्त्व-पूर्ण स्थान बन गया है, उसकी प्रतिक्रिया लोक-कल्याणके अनुकूल हो सकेगी—इसकी आशा नहीं की जा सकती। विचारकोंका राजनीतिक आदर्शवाद इसके कारण नष्ट हो रहा है, लोक-कल्याणकी भावना इसके कारण नष्ट हो रही है—शोषणका मार्ग जो खुला, तो अवरुद्ध नहीं होना चाहता। राजनीति आज अर्थनीतिकी दासी बन रही है—बड़ी-बड़ी पूंजीके फर्म उसका सञ्चालन करनेमें शक्तिशाली प्रमाणित हो रहे हैं, सम्पन्न और विपन्न दो श्रेणियां बनी और सदा बनी रहें, इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीवाद षड्-यन्त्रमें लीन है। प्रगतिशील विचार-धाराका विरोध और नियन्त्रण इसका काम है और यही लक्ष्य है, जिसकी ओर पूंजीवादकी सारी शक्तियोंका सञ्चालन अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने-पर हो रहा है—और इस लक्ष्यके लिए पूंजीवाद और फैसिज्म, दोनोंके साधनोंमें बहुत अधिक अन्तर नहीं है।

पैसेका भविष्य

पर पैसेका भविष्य अन्धकारपूर्ण है। यह कहना तो गलत है कि यूरोपकी प्रगतिशील और प्रतिगामी शक्तियां इस युद्धमें लड़ रही हैं, पर जिस धरातलपर यह युद्ध चल रहा है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। विश्वकी राज-नीतिक विचार-धाराका झुकाव पूंजीवाद-विरोधी है। यूरोपमें पिछले कई वर्षोंमें ऐसी सरकारोंकी स्थापना कई देशोंमें हुई, जिन्हें साफ-साफ समाजवादी तो नहीं कह सकते; पर जो पापुलर फ्राण्ट सरकारें स्थापित हुईं, उनका रुख पूंजीवाद-विरोधी था। स्पेनमें मैनुएल अजाना और फ्रान्समें मो० ब्लुमकी सरकारें इस सिद्धान्तपर बनी थीं। और भी कई देशोंमें प्रगतिशील विचार-धाराओंका रुख स्पष्ट है। सर्वत्र सर्वहारा उठ रहा है। साथ ही भूखों और बेकारोंकी संख्या बढ़ रही है, पूंजीवादी सभ्यताका नग्न रूप ज्ञान-विज्ञानकी रोशनीमें और भी स्पष्ट हो रहा है। और उधर राष्ट्रोंकी कमर आर्थिक बोझसे दबी जा रही है। एक ओर कराहते हुए बच्चोंको दो बूंद दूध नसीब नहीं हो रहा है और दूसरी ओर विज्ञान भयानक विनाशलीलामें लीन है। संसारकी आर्थिक श्रृङ्खला टूट रही है।

इस प्रकार समाजकी आर्थिक व्यवस्थायें कितनी दूषित हो चली हैं, यह स्पष्ट होता जा रहा है। और उधर दूसरी प्रगतिशील शक्तियां पूंजीवादके विरोधके होते हुए भी शक्ति-सञ्चय करती जा रही हैं। यह विचार-धारा है, जिसमें समाजके लिए मङ्गल-सूचक सङ्केत है। और इसलिए मानव भविष्यकी ओर आशा-भरे नेत्रोंसे प्रतीक्षा कर रहा है—भविष्य महान् अर्थपूर्ण सम्भावनाओंसे भरा हुआ है। और ये सम्भावनायें पीड़ित मानवके उद्धारका सार्थक सङ्केत कर रही हैं।

भारतकी औद्योगिक स्थिति

आवश्यक प्राकृतिक साधनोंसे परिपूर्ण होनेपर भी इस देशकी औद्योगिक स्थिति बहुत ही खेदजनक है और यही कारण है कि गरीबी और बेकारीसे देशवासी बहुत दुःखी हो रहे हैं। यह गरीबी और बेकारी देशके उद्योग-धन्धों और कला-कौशलकी उन्नतिसे दूर हो सकती है, इसमें मतभेद-की गुञ्जायश हो सकती है; परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि उद्योग-धन्धों और कला-कौशलकी उन्नतिसे गरीबी और बेकारीकी समस्या हल होनेमें बहुत दूर तक निश्चित रूपसे सहायता मिल सकती है। सहायता मिल सकती है; परन्तु देशकी आर्थिक और औद्योगिक नीतिपर देशवासियोंका अधिकार नहीं है। इस बेबसीका परिणाम यह हो रहा है कि देशकी औद्योगिक शक्तियां शिथिल और कुण्ठित हो रही हैं।

रुई और जूट

पहले देशके कुछ साधनों और फिर कुछ उद्योग-धन्धोंपर दृष्टिपात कीजिये। रुई पैदा करनेकी दृष्टिसे हिन्दुस्तानका संसारमें दूसरा स्थान है। औसतसे सालमें ७० लाख गांठ (एक गांठ=४०० पौण्ड) रुई पैदा होती है और इसमेंसे लगभग आधी रुई बाहर भेज दी जाती है, जिसका मूल्य २४ करोड़ ६६ लाख रुपयेसे लगाकर ३१ करोड़ ४ लाख रुपये तक होता है। इस रुईका अधिक भाग अभी तक बढ़िया रेशेवाला नहीं है। जूटका स्थान भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। ९० सैकड़ा जूट बङ्गालमें होता है। इसकी उपज औसतसे प्रति वर्ष ९० लाख गांठ होती है। इसका भी लगभग आधा भाग यों ही बाहर भेज दिया जाता है और बाकी आधेसे टाट और बोरे बनाये जाते हैं। यद्यपि संसारके कितने ही देशोंमें जूटका प्रतिनिधि खोजनेका प्रयत्न हुआ है, तथापि

युद्धने जूटकी आवश्यकताको सर्वोपरि प्रत्यक्ष कर दिया है। इसी तरह१९३९-४०में ३करोड़ रुपयेका ऊन बाहर भेजा गया था और भेजा गया था कालीन बनानेके लिए। किन्तु इधर जबसे युद्ध हो रहा है, सेनाके लिए कम्बल बनानेके निमित्त उसका उपयोग किया जा रहा है। रेशमके निर्यातका औसत २-३ लाख रुपये है; परन्तु स्वदेशमें बाहरसे रेशम आता भी है और उससे रेशमी कपड़े बनाये जाते हैं। सनई आदि अन्य रेशेदार चीजोंका निर्यात भी कुल मिलाकर ७०–८० लाख रुपयेके लगभग हर साल हो जाता है।

सूत और कपड़ेका व्यवसाय अभी तक पूरी उन्नति नहीं कर सका है और यह इसीसे समझा जा सकता है कि हम अपनी रुई बाहर भेजकर अपना शरीर ढकनेके लिए दूसरे देशोंसे सूत और कपड़ा मंगाते हैं। १९३८-३९ में ३ करोड़ ६० लाख पौण्ड सूत और ६७ करोड़ २० लाख गज कपड़ा बाहरसे आया था और उसी साल ३ करोड़ ६९ लाख पौण्ड सूत और २२ करोड़ १४ लाख गज कपड़ा हिन्दुस्तानसे बाहर गया। हिन्दुस्तानके सूत और कपड़ेके गाहकोंमें बर्मा मुख्य है, जहां सूत और कपड़ेके हमारे सारे निर्यातका लगभग आधा भाग गया। इससे यह स्पष्ट है कि सूत और कपड़ेके व्यवसायकी उन्नतिके लिए बहुत बड़ा क्षेत्र है न केवल स्वदेशमें, स्वदेशकी सीमासे बाहर अन्य देशोंमें भी। आज देशमें कुल ३८९ मिलें हैं, जिनमें १ करोड़ ५९ हजार ३७० तकुए और २ लाख २ हजार ४६४ करघे हैं और कुल मिलाकर १ करोड़ ३३ लाख ३७ हजार ५६९ आदमी काम करते हैं। जूटके उद्योग-धन्धेकी अवस्था भी कुछ वैसी ही है। १९३७-३८ में देशमें १०५ जूट-मिलें थीं, जिनमें २० करोड़ २९ लाख ५ हजार ६४० रुपये पूंजी लगी हुई थी। उस साल इन मिलोंमें ११६७००० टन जूट खप गया और ६९७००० टन कच्चा जूट बाहर गया। इसके अलावा मिलों द्वारा तयार किया हुआ ९९३००० हजार टन हेसियन आदि भी बाहर भेजा गया। यद्यपि इस व्यवसायका भविष्य संसारकी औद्योगिक प्रतिद्वन्द्वितामें आ रहा है, तथापि कोई कारण नहीं है कि उस प्रतिद्वन्द्वितामें हम टिक न सकें। यह केवल युद्ध-कालका ही प्रश्न नहीं है। इस प्रतिद्वन्द्वितामें टिकनेकी कोशिश करनेके साथ ही यह आवश्यकता भी है कि जूट और उसकी चीजोंके नये-नये उपयोग खोज निकाले जायं और आज जूटसे दरियां, कालीन आदि जो चीजें खासी तादादमें, पहलेसे कहीं ज्यादा, तैयार की जा रही हैं, उन्हें सुन्दर और सुलभसे सुन्दरतर और सुलभतर बनाया जाय। इन चीजोंके लिए अभी तक स्वदेशमें बहुत बड़ा बाजार है, शर्त यही है कि उन्हें जनसाधारणकी चीज बनाया जा सके।

तिलहन और तैल द्रव्य

तिलहन और तैल-उत्पादक कितने ही अन्य द्रव्य इस देशकी खास पैदावार हैं; परन्तु लगभग ११ करोड़ ९० लाखका तिलहन और तैल-द्रव्य और २ करोड़ ३ लाख रुपयेकी खली विदेश चली जाती है। तैल-द्रव्योंको पैदा करनेमें हिन्दुस्तानका स्थान संसारमें दूसरा है; परन्तु यह कैसे दुःखका विषय है कि कितने ही देशवासी गरीबीसे मजबूर होकर अपने घरोंमें मिट्टीका दिया भी न जला सकें। १९३९-४० के आंकड़ोंके अनुसार ७ करोड़ १७ लाख रुपयेकी मूंगफली, ३ करोड़ १७ लाखकी तीसी, ७१ लाख रुपयेकी अण्डी, ३२ लाख रुपयेकी सरसों और ७॥ लाख रुपयेके तिल विदेशोंको भेजे गये। एक लाख रुपयेका नारियलका तेल भी साधारण अवस्थामें बाहर चला जाता है। इन सब द्रव्योंसे जो तेल निकाला जाता है, उसका जो भाग खाने-पकानेके काममें आ जाता है, उसके अलावा बचा हुआ सारा भाग तेल, साबुन, रङ्ग-वारनिश, मशीनोंके तेल और औषधियां आदि बनानेमें लग जाता है। ये कई गुने मूल्यपर इस देशमें भी काफी आती हैं। हमारे सामने १९३८-३९ के अङ्क हैं। उस साल २२ लाख ४३ हजार ६०८ रुपयेका साबुन और सुगन्धित चीजें, ८८ लाख ९८ हजार ८५३ रुपयेकी रङ्ग-वारनिश और १ करोड़ ५ लाख १७ हजार रुपयेकी खाद इस देशमें आयी। अण्डीका तेल रेचक होता है और यह भी औषधिके रूपमें विदेशोंसे बहुत आता है। क्या इन वस्तुओंके उद्योग-धन्धोंको उन्नत बनाकर यह रकम नहीं बचायी जा सकती? प्रकृतिने देशको अपनी जो विभूतियां प्रदान की हैं उनका उपयोग देशमें होनेसे ही देशवासी सुखी और समृद्ध हो सकते हैं।

खनिज पदार्थ

अभी तक जिन उद्योग-धन्धोंका उल्लेख हुआ है, उनके अलावा भी कई धन्धे हैं, जिनका आधार देशके खनिज

साधन हैं। खनिज पदार्थोंके सम्बन्धमें देशवासियोंको उस समय भी खासी जानकारी थी, जब संसारके अन्य भागोंके निवासी उनके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते थे। महत्त्वपूर्ण खनिज पदार्थोंकी इस देशमें अच्छी स्थिति है। १९३८ में सब मिलाकर ३४ करोड़ १४ लाख रुपयेके खनिज पदार्थ निकाले गये थे, जिनमें २ करोड़ ८३ लाख ४२ हजार ९०६ टन कोयला ही १० करोड़ ६४ लाख रुपयेका था। इस उद्योगमें औसतसे लगभग १ लाख ९९ हजार व्यक्तियोंने रोजाना काम किया। १९३८ में ४५ लाख ५६ हजार ९७४ रुपयेका २७ लाख ४३ हजार ६७९ टन कच्चा लोहा निकाला गया; परन्तु क्या इसका उपयोग स्वदेशमें हुआ? १९३८ में १९ लाख ३९ हजार टन लोहा तैयार किया गया था, जिसमेंसे ५ लाख २९ हजार २९४ टन लोहा स्वदेशसे बाहर चला गया और इन देशोंसे करोड़ों रुपये मूल्यकी मशीनें और कल-पुर्जे इस देशमें आये। लोहेका व्यवसाय अभी तक इस देशमें कितनी गिरी हुई हालतमें है, इसका कुछ पता बाजारमें आंख खोलकर निगाह दौड़ानेसे तत्काल ही चल सकता है। लोहे जैसी ही दशा मैंगानीजकी है, जिसकी दृष्टिसे संसारमें हिन्दुस्तानका स्थान तीसरा है। यह धातु लोहेको फौलाद बनानेके काममें आती है। देशमें ३ करोड़ ८८ लाख रुपयेसे भी अधिक मूल्यकी ९६७९२९ टन (१९३८) मैंगानीज निकाली जाती है। इस देशके व्यवसायमें वर्तमान स्थितिमें ६० हजार टनसे ज्यादा मैंगानीजकी खपत नहीं है और इसका अधिक भाग अन्य देशोंको चला जाता है। १९३८ में यह निर्यात ५१८३४२ टन था। संसारका तीन चौथाई अबरक इस देशमें निकलता है और १९३८ में यह था ४२ लाख रुपयेका १२३१६९ हण्डर। इसकी ८० सैकड़ा खानें बिहारमें हैं और मजदूर महिलायें इसके परत अलग करनेमें इतनी कुशल हैं कि हर साल कितने ही टन अबरक विदेशोंसे इसी कार्यके लिए यहां आता है।

कागजका उद्योग

कुछ अन्य उद्योग-धन्धोंमें कागजका उद्योग भी मुख्य है। १९३८-३९ में ९ लाख ४२ हजार ५३६ रुपयेकी ऐसी चीजें बाहर चली गयीं, जिनसे कागज बनाया जा सकता था। उसी सालमें देशमें कुल ९९ हजार १९८ टन कागज देशमें तैयार हुआ और ४७३८४ टन अखबारी रद्दीको छोड़ दिया जाय, तो कागज, गत्ता आदि मिलाकर १ लाख ६ हजार २४९ टन कागज विदेशोंसे हिन्दुस्तानमें आया, जिसका मूल्य लगभग ३ करोड़ २३ लाख रुपये बैठता है। इस देशमें अभी तक कागजकी कुल ११ मिलें हैं और जब यह पता चलता है कि कागजके निर्यातके लिए भी बहुत बड़ा क्षेत्र है, तब तो इस उद्योगका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल मालूम होता है। इसकी कठिनाइयोंसे हम अनभिज्ञ नहीं हैं; परन्तु हम यह भी जानते हैं कि यदि इस उद्योगको उन्नत होना है, तो इन कठिनाइयोंको भी पार करना ही होगा।

कांच और चीनी

कांच और चीनीके जिस उद्योगने पिछले कुछ वर्षोंमें खासी उन्नति की है, उसमें भी अभी बहुत कुछ सम्भावनायें हैं, यद्यपि यह सन्तोषकी बात है कि १९३५-३६ में जहां कुल २९६००) की कांचकी चीजें इस देशसे अन्य देशोंको भेजी गयी थीं, वहां १९३८-३९ में १ लाख १६ हजार रुपयेकी चीजोंका निर्यात हुआ; परन्तु इस उद्योगके भविष्यका कुछ अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि १९३८-३९ में १। करोड़ रुपयेकी कांचकी चीजें अन्य देशोंसे इस देशमें आयीं। चीनीके उद्योगने पिछले कुछ वर्षोंमें अपनी स्थितिको मजबूत बनाया तो है सही और १९३९-४० में १४३ मिलोंमें १३॥ लाख टन चीनी जहां स्वदेशमें तैयार हुई थी, वहां लगभग ६३॥ लाख रुपयेकी ५९ हजार टन चीनी (१९३८-३९) विदेशोंसे भी आयी थी, परन्तु इस उद्योगका भविष्य बहुत कुछ निर्यात-व्यापारपर निर्भर है—विशेषतः जब हम देखते हैं कि १९३८-३९ में कुल २४ लाख १८ हजार रुपयेकी चीनी ही इस देशसे बाहर भेजी गयी है; किन्तु चीनीके निर्यात-व्यापारकी उन्नतिमें सबसे बड़ी बाधा एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता है, जिसके द्वारा समुद्र मार्गसे स्वदेशसे बाहर चीनी जानेपर रोक लगी हुई है। युद्धके कारण इस समझौतेकी स्थितिमें बड़ा अन्तर पड़ गया है और आशा की जाती है कि भारत-सरकार उसे तत्काल उठा देनेके प्रश्नपर भारतके हितोंके अनुकूल निर्णय करेगी। सूत और कपड़ेके उद्योग-धन्धेके बाद देशमें चीनीके उद्योगका ही स्थान है और इससे लगभग सवा लाख आदमियोंको काम मिला हुआ है।

चमड़ा, लाख और....

चमड़ा, लाख, मिट्टीका तेल और नमक आदि उद्योगोंके भी बहुत उन्नति करनेकी गुञ्जायश है। १९३८-३९ में ३८१००० रुपयेका ३९३०० टन चमड़ा बाहर भेजकर १९ लाख ४९ हजार रुपयेके जो जूते विदेशोंसे मंगवाये गये हैं, वे सम्भवतः आसानीसे स्वदेशमें तैयार हो जाते, यदि प्रयत्न किया जाता। इसी तरह यदि देशवासी अपने देशके नमकका ख्याल रखते, तो आज देशकी यह शोचनीय अवस्था क्यों होती और क्यों ३८ लाख रुपयेका ३ लाख १२ हजार टन (१९३८-३९) नमक स्वदेशमें बाहरसे आता। हमें दुःख है कि देशके सभी उद्योग-धन्धोंके सम्बन्धमें विस्तारके साथ लिखनेके लिए स्थान नहीं है। हम जानते हैं कि उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिमें बाधक कितने ही अन्य कारण भी हैं, जैसे जल-वायु सम्बन्धी स्थिति, आवश्यक पूंजी मिलनेकी कठिनाइयां, विशेषज्ञोंकी कमी और सुशिक्षित और कुशल श्रमजीवी—किन्तु इन सब कठिनाइयोंपर बहुत ही आसानीसे विजय प्राप्त की जा सकती है, यदि आर्थिक और औद्योगिक व्यवस्थापर देशवासियोंका पूरा नियन्त्रण हो, उसपर देशका अधिकार हो। संसारके सब देशोंने यह अधिकार रखकर औद्योगिक उन्नति की है और हमारा विश्वास है कि यह देश भी इसका अपवाद नहीं है।

——

——

'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट कलकत्तासे पं० मातासेवक पाठक द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

REGD. No. C. 22



विश्वमित्र

सम्पादक—

मूलचन्द्र अग्रवाल

फरवरी, १९४१ वर्ष ९ संख्या १०१ माघ, १९९७

गीत

भूल गयी मैं गीतोंका स्वर !
दूर क्षितिजके पार गा रहा,
कोई सुन्दर गीत मनोहर !
भूल गयी मैं गीतोंका स्वर !

मुक्त वायुमें उड़नेवाला,
मुग्ध पगलीका मन मतवाला,
मुग्ध हुआ सुन तान निराली-
मचल रहा बन्धनमें पड़कर !
भूल गयी मैं गीतोंका स्वर !

कितने दिवस बीतते जाते,
दुख-सुख सहते, रोते, गाते,
किन्तु हृदयका यह सूनापन
रहता है प्राणोंमें घुलकर !
भूल गयी मैं गीतोंका स्वर !

मेरी व्यथा न मिटनेवाली,
छिपा-छिपा बचपनसे पाली,
पीड़ाकी इस मधुर कसकसे
भरा हुआ निशि-दिन उन्मन उर !
भूल गयी मैं गीतोंका स्वर !

—तारा पांडे

'ट्रात्स्कींकी हत्या करनेके लिए मुझसे प्रेम किया था !'

श्री बाबूराम मिश्र

"मेरे शब्दोंपर ध्यान दीजिये—वे मेरी हत्या करनेकी कोशिश फिर करेंगे। मेरी भविष्यवाणी याद रखिये—यह उस समय होगा, जब नाजी इंगलैण्डपर जोरदार हमला आरम्भ करेंगे।"—ये शब्द अद्भुत मेधावी और जबर्दस्त क्रान्तिकारी लियोन ट्रात्स्कीके हैं, जिन्हें उन्होंने हत्या होनेके ३ महीने पहले २४ मई १९४० को पत्रकारोंके इस प्रश्नके उत्तरके सिलसिलेमें कहा था कि "आखिर आप इतनी गोलियोंसे बचे कैसे ?" लियोन ट्रात्स्कीने पत्रकारोंको उत्तर देते हुए कहा—"आप जानते हैं, बहुत लोग लाटरीका टिकट खरीदते हैं; परन्तु पाता कोई संयोगसे ही है। संयोगवश आज मेरे नामकी लाटरी ही निकल आयी।"

स्वदेशसे दूर निर्वासित अवस्थामें ट्रात्स्की उन दिनों मैक्सिकोके हल्लेसे अलग पहाड़ियोंके नीचे हरे-भरे खेतोंके बीच बसे हुए कोयाकेन गांवमें रहते थे। उनका मकान भी बहुत बड़ा नहीं था। उसमें केवल २० कमरे थे। मकानके चारों ओर पहले एक छोटी-सी दीवालका अहाता था और इसीमें एक बड़ा फाटक लगा हुआ था। अहातेके भीतर फाटक और मकानके बीचमें एक छोटी-सी वाटिका थी। एक कमरेमें बैठकर ट्रात्स्की पढ़ते-लिखते थे। इसीसे सटे हुए कमरेमें उनका पलंग था। ट्रात्स्कीकी स्त्री नेथालियाने यद्यपि राजनीतिमें कभी भाग नहीं लिया था, तथापि जीवनके कठिनसे कठिन अवसरोंपर भी वे हमेशा रहीं अपने पतिके साथ ही और इस घरमें भी वे अपने पतिके साथ छायाकी तरह रहती थीं। ट्रात्स्कीके साथ चार अन्य व्यक्ति भी थे, पूर्ण विश्वस्त और उनकी रक्षा करनेके लिए हमेशा ही हर तरहसे तैयार। यही चारों व्यक्ति उनके सेक्रेटरी भी थे। ट्रात्स्की जब कभी कुछ लिखना चाहते, यही लिखा करते थे। मृत्यु मुद्दतसे ट्रात्स्कीका पीछा कर रही थी, उन्हें हमेशा ही अपने जीवनकी आशङ्का रहती थी। इसीलिए मैक्सिकोकी सरकारने भी पुलिसके पांच जवानोंको उनकी रक्षाके लिए तैनात कर दिया था। ये उनके मकानके बाहर एक गुमटीमें रहा करते थे।

ट्रात्स्की यों भी बहुत सतर्क रहते थे; परन्तु २४ मईको धावा बोलकर जब उनकी हत्या करनेका असफल प्रयत्न किया गया, उसके बाद वे बहुत ही सावधान हो गये थे। मैक्सिको-की सरकारने पुलिसके जवानोंकी तादाद बढ़ा दी और सैनिकोंको भी तैनात कर दिया। स्वयं ट्रात्स्कीने मकान-का अहाता ऊंचा करा लिया। उसके फाटकमें दुहरा फौलादी दरवाजा लगवा दिया, जिससे कोई घुसनेवाला यदि एक दरवाजेसे घुसता, तो जब तक दूसरा दरवाजा न खुले, उसे पिंजड़ेमें बन्द-सा रहना होता। उन्होंने अपने रक्षकोंकी संख्या भी बढ़ा दी और जो प्रबन्ध किया जा सकता था, कर लिया। यों चौकसीमें कोई कसर नहीं थी; किन्तु उन्होंने अपने विषयमें जो भविष्य-कथन किया था, वह सोलह आने सही निकला, उसे कोई प्रबन्ध नहीं टाल सका।

इंगलैण्डपर जर्मनोंके जोरदार हमले अगस्त १९४० के मध्यमें आरम्भ हुए और २० अगस्तको सन्ध्या समय ५॥ बजे जैक्सन उनके पास पहुंचा। ट्रात्स्कीको उस समय रञ्च-मात्र भी यह सन्देह नहीं था कि मृत्यु उनके इतने समीप आ गयी है। वे उस समय अपने घरके आंगनमें टहल रहे थे। जैक्सन उनके पास यों भी कभी-कभी आता-जाता था। इसीलिए उसे प्रवेश पानेमें कठिनाई नहीं हुई। एक सप्ताह पहले भी वह आया था और यह निश्चित कर गया था कि अगले सप्ताह किसी दिन आकर एक लेखके विषयमें वह बातचीत करेगा। २० अगस्तको जब वह आया, लेख उसके साथ था। आते ही जैक्सनने कहा—"मैं लेख लाया हूं—अगर आप मेरे लिए कुछ समय निकालकर उसे देख सकते।"

"अच्छा, चलिये अन्दर चलें।"—यह कहते हुए ट्रात्स्की उसे पढ़ने-लिखनेके कमरेमें ले गये। जैक्सन कुछ घबड़ा-सा रहा था। उसका गला सूख रहा था। रसोई-घरमें ट्रात्स्की-की पत्नी चायकी तश्तरियां रख रही थीं। उनसे और कुछ बोले बिना उसने बड़ी मुश्किलसे कहा—"मुझे एक गिलास पानी दीजियेगा ?"



महान् क्रान्तिकारी और मेधावी लियोन ट्राट्स्की, जो निर्वासित अवस्थामें मैक्सिकोके पास एक गांवमें गत २० अगस्तको एक विश्वासघातीकी छुरीके शिकार हुए।

"अवश्य, मैं आपको थोड़ी चाय भी दे सकती हूं।"—ट्राट्स्कीकी पत्नीने उत्तर दिया।

"चाय नहीं, पानी।"—यह कहा और जैक्सन एक गिलास पानी गटगट पी गया। हमें अच्छी तरह स्मरण है, स्वामी श्रद्धानन्दके हत्यारेने भी स्वामीजीसे अपनी प्यास बुझानेके लिए पानी मांगा था।

ट्राट्स्की इस समय तक अपने पढ़ने-लिखनेके कमरेमें कुर्सीपर जा बैठे थे। जैक्सन पीछेसे पहुंचकर उसी कमरेमें उनकी किताबें देखता हुआ घूमने लगा। इधर-उधर घूमकर जब वह ट्राट्स्कीके पीछे पहुंचा, उसने अपने कोटकी जेबमें हाथ डाला। उसके पास दो शस्त्र थे—तेज छुरी और रिवाल्वर। छुरी वह ट्राट्स्कीको चुपचाप मार डालनेके लिए लाया था, जिससे वह अपना काम करनेके बाद किसीके जाननेसे पहले ही भाग भी जाय। रिवाल्वर इसलिए थी कि अगर आवश्यकता पड़े, तो उससे भी काम लिया जा सके।

जैक्सनने मौका देखा और अपनी तेज छुरी ट्राट्स्कीके शिरमें भोंक दी! छुरीका लगना था कि पीड़ासे व्याकुल होकर ट्राट्स्की चीख उठे। इसके साथ ही उनमें न मालूम कहांसे असाधारण शक्ति आ गयी कि वे डगमगाते हुए उठ खड़े हुए और जैक्सनसे भिड़ गये। इसी समय जैक्सनका हाथ रिवाल्वरपर पड़ा; किन्तु ट्राट्स्कीके दो सेक्रेटरी पहुंच गये। एकने जैक्सनको दबोच लिया और दूसरेने खूनसे लथपथ ट्राट्स्कीको पलंगपर लिटाया। अन्य पहरेदार भी वहां पहुंचे और जैक्सनकी अच्छी कुन्दी हुई। एक पहरेदारने तो उसका काम ही तमाम कर देना चाहा; परन्तु ट्राट्स्कीकी पत्नीने रोक दिया और कहा—"उसे जानसे मत मारो।" उन्होंने सोचा कि हो सकता है, इसके जीवित रहनेसे इस षड्यन्त्रके कुछ अन्य व्यक्तियोंका पता चले।

जैक्सन सिसकियां भर रहा था। उसके मुंहसे निकला—"उन्होंने मेरी मांको जेलखानेमें डाल दिया है।"

ट्राट्स्की जब एम्बुलेन्समें अस्पताल जा रहे थे, उन्होंने कहा—"वह या तो कोई ओगपू है या फासिस्ट—ओगपू होना ही बहुत सम्भव है।" ट्राट्स्कीको विश्वास था कि इस बार वे नहीं बचेंगे। उन्होंने अस्पताल पहुंचनेसे पहले ही



ट्राट्स्कीको छुरीसे साङ्घातिक रूपमें घायल करनेवाला विश्वासघाती फ्रैङ्क जैक्सन या जैके मोरण्ड वाण्डेन ड्रेस—जिसे ओगपू बतलाया जाता है।

यह कह दिया था और यही हुआ। अगले दिन अस्पतालमें ही ट्राट्स्कीकी मृत्यु हो गयी और इस तरह संसारका एक महापुरुष उठ गया—एक ऐसा महापुरुष उठ गया, जिससे किसी समय यूरोपके बड़े-बड़े शक्तिशाली राष्ट्र भी थर्राते थे और जिस समय वे अदम्य साहस और दृढ़ताके साथ विपत्ति और प्रतिकूल परिस्थितिको चुनौती देते और दुर्भाग्यसे सङ्घर्ष करते हुए भटक रहे थे, उस समय भी यूरोपके बड़े-बड़े राष्ट्र उन्हें अपने यहां आश्रय देनेमें डरते थे। शव-परीक्षा होनेपर पता चला कि ट्राट्स्कीके मस्तिष्कका वजन ३॥ पौण्ड था। उनके शव-संस्कारके समय लगभग २००० व्यक्ति उपस्थित थे।

२४ मईको ट्राट्स्कीकी हत्या की जानेके जिस असफल प्रयत्नका सङ्केत प्रारम्भमें किया गया है, उसका विवरण अप्रासङ्गिक नहीं होगा। वर्तमान महासमर आरम्भ होनेसे पहले अगस्त १९३९ में जब रूसके सर्वाधिकारी स्टैलिन और जर्मनीके सर्वाधिकारी हिटलरमें समझौता हुआ, सारा संसार चकित रह गया। इस समझौतेके बाद ट्राट्स्कीको अपने विषयमें जब यह जंचने लगा कि वे कुछ ही दिनोंके मेहमान हैं, उन्होंने अपने रक्षकोंकी संख्या बढ़ा दी और बड़ी सावधानीसे रहने लगे; क्योंकि उस समझौतेसे कितने ही रूसी यह अनुभव करने लगे कि ट्राट्स्कीने स्टैलिनके धोखा देनेके सम्बन्धमें जो कुछ कहा था, वह ठीक ही था। स्टैलिनको खटका चतुर्थ इण्टरनेशनलका हो सकता था और उसके प्रधान ट्राट्स्की थे। उन्होंने घोषणा की थी कि स्टैलिनके नेतृत्वमें तृतीय इण्टरनेशनल अब लेनिनके सिद्धान्तोंकी समर्थक नहीं है।

ट्राट्स्कीने जिसकी आशङ्का की थी, वह दुर्घटना २४ मई १९४० को होते-होते रह गयी। उस समय सवेरा हो रहा था; किन्तु तब तक पुलिसके पहरेदारोंकी बदलीका समय नहीं हुआ था। कुछ लोगोंके चलने-जैसी आहट पाकर एक पहरेदारने जब उधर देखा, पुलिसकी वर्दीमें पांच आदमी दिखलाई पड़े। उसने अपने साथियोंसे कहा—"बदलीवाले आ गये। खैर, आज कुछ जल्दी ही सही। हर्ज क्या है।" उसकी यह बात सुनकर अन्य चार साथी तैयार हो ही रहे थे कि पुलिसकी वर्दीमें वे पांच आदमी पहुंच गये, सबके सब बिलकुल अपरिचित। अब पता चला कि धोखा हो गया; परन्तु भूल सुधारनेके लिए समय नहीं था। आये हुए पांचों व्यक्तियोंने पुलिसके जवानोंको दबोच लिया और हथकड़ियां डाल दीं। इसी समय एक अन्य व्यक्ति आया और इसने पुलिसके जवानोंके सामने मशीनगन कर दी। बाहर मकानके फाटकके पास कितने ही सशस्त्र आदमी तैयार खड़े हुए थे। इस भीड़मेंसे एक व्यक्तिने धीरेसे फाटकको हथेलीसे थपथपाया। आवाज सुनते ही ट्राट्स्कीके अमेरिकन रक्षक राबर्ट शेल्डन हार्टेने भीतरसे ही पूछा—"कौन है? क्या है?"

"एक बहुत जरूरी समाचार—वृद्ध महाशयके लिए।"

आवाज पहचानी हुई जैके मोरण्ड वाण्डेन ड्रूसकी थी। ट्राट्स्कीके पास वह अक्सर आता-जाता था। ट्राट्स्कीके सेक्रेटरी हार्टेने किवाड़की सन्धिमेंसे देखकर उसे पहचान लिया और द्वार खोल दिया। यह हुआ नहीं कि जैके मोरण्ड वाण्डेन ड्रूस एक ओरको हट गया और अगल-बगलसे कितने ही सशस्त्र लोग घुस पड़े। हार्टे शिरपर लोहेकी एक छड़का आघात लगते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। ट्राट्स्कीके तीन अन्य सेक्रेटरी पैरोंकी आवाज सुनकर उठ ही रहे थे कि दल वहां पहुंच गया। दलके एक व्यक्तिने डपटकर कहा—"वहीं रहो तो तुमसे कोई न बोलेगा।" इसी समय एक सेक्रेटरीने भागनेकी कोशिश की; परन्तु मशीनगनसे फायर होते देखकर उसे लौटना पड़ा। जिस समय बाहर यह हो रहा था, लगभग एक दर्जन आततायी भीतर घुसकर अपना काम कर रहे थे। उनमेंसे दोने दाहक बम फेंककर ट्राट्स्कीके पढ़ने-लिखनेके कमरेमें आग लगा दी। तीन अन्य व्यक्ति द्वारपर खड़े होकर पासवाले कमरेमें ट्राट्स्कीके पलंगको गोलियोंका निशाना बनाने लगे। कमरेकी खिड़कीमेंसे कुछ अन्य लोगोंने मशीनगनसे निशाना लगाया। इसके बाद सीटी बजी और वे सबके सब ट्राट्स्कीकी दो मोटरोंमें बैठकर चले गये और अपने साथ मूर्च्छित अवस्थामें हार्टेको भी लेते गये।

गोलियोंकी आवाज और हल्ला सुनकर जब गांवसे पुलिस पहुंची, पहरेवालोंको हथकड़ियोंमें पाया! जो लोग ट्राट्स्कीकी हत्या करने गये थे, उन्होंने लगभग ३०० गोलियोंसे काम लिया था। गोलियां लगनेके ७१ छेद तो उस कमरेमें थे, जिसमें ट्राट्स्की सोया करते थे। ट्राट्स्कीका एक सत्रह वर्षका पौत्र आगमें प्रायः जल गया था! यह सब हुआ; परन्तु कुछ समय पीछे जब समाचार-पत्रोंके संवाददाता पहुंचे,

ट्राट्स्कीकी पत्नी झाड़ू लगाकर कमरा साफ कर रही थीं, कांचके टुकड़े बटोर रही थीं और बिखरी हुई चीजोंको संभाल रही थीं। ट्राट्स्कीकी अंगुलियां कांचके टुकड़े लगनेसे यद्यपि लोहू-लुहान हो रही थीं, तथापि वे अपना बयान लिखा रहे थे। इस बयानमें उन्होंने स्टैलिनपर हत्याकी चेष्टा करनेके निमित्त उकसानेका दोषारोपण किया था।

इस लोमहर्षण काण्डसे ट्राट्स्कीके बच जानेका संयोग यह हुआ कि जिस समय ट्राट्स्कीके मकानमें वे लोग घुसे हुए थे, पढ़ने-लिखनेके कमरेमें पहुंचनेसे पहले ही उनकी चहल-पहल और बातचीतसे ट्राट्स्कीकी पत्नी जाग गयीं और अपने पतिको बड़े जोरसे खींचते हुए धीरेसे कहा—'उठो, जल्दी उठो।' कम्बलोंको पलंगपर छोड़कर ट्राट्स्की उठे और खिड़कीके नीचे एक अंधेरी जगहमें जा छिपे और उनकी पत्नी नेथालियाने उन्हें अपने शरीरसे ढक लिया। पलंगपर कम्बल कुछ इस तरह पड़े हुए थे कि आनेवाले धोखा खा गये और उन्होंने ट्राट्स्की और उनकी पत्नीको उसीपर सोता हुआ समझा। ये लोग जब चले गये, ट्राट्स्की और उनकी पत्नी, दोनों छिपनेकी जगहसे निकल आये। इस काण्डके सम्बन्धमें ट्राट्स्कीने स्टैलिनपर दोषारोप किया था; परन्तु स्टैलिनके पक्षपातियोंका कहना था कि दुर्घटना हुई ही नहीं, स्टैलिन-को बदनाम करनेके लिए गढ़ी गयी है—यद्यपि उसी दिन ट्राट्स्कीकी दो मोटरें १० मील दूर एक खन्दकमें बरामद हुईं और एक महीने पीछे हार्टेकी लाश मैक्सिकोसे २० मील दूर एक झोंपड़ीमें मिली। उसका शरीर गोलियोंसे छलनी हो रहा था। जांच-पड़तालके समय यह प्रश्न उठा था कि आखिर हार्टेने द्वार कैसे खोल दिया। क्या वह मिला हुआ था? उस समय भी ट्राट्स्कीने यही कहा था कि "विश्वास नहीं होता। यह सारा काण्ड है तो 'ओगपू' का ही। हार्टे मेरे यहां दो महीनेसे था। मैं उसे दोषी नहीं मानता, फिर भी हो सकता है, वह ओगपूका एजेण्ट हो।" जो हो, बादमें पुलिसकी जांचसे यह भी पता चला कि हार्टेने यदि द्वार न खोला होता, तो भी यह सारा काण्ड होता; क्योंकि वे लोग सीढ़ी, रस्सी, हुक, बम और किवाड़ चीरनेके लिए बिजलीकी आरी लेकर गये थे। इस काण्डके सिलसिलेमें पुलिसने जिन तीस स्टैलिनिस्टोंपर मामला चला रखा है, उनमेंसे नौने जुर्मका इकबाल कर लिया है। अस्तु।

लियोन ट्राट्स्कीका जन्म १८७९ में एक साधारण किसानके घर हुआ था। वे बड़े अध्ययनशील क्रान्तिकारी थे। १९०५ को क्रान्तिके नेताओंमें होनेके कारण उन्हें साइबेरियामें निर्वासित किया गया था; परन्तु वहांसे वे भाग निकले और वर्षों भटकते फिरे। इन्हीं दिनोंमें कुछ समय तक वे न्यूयार्कमें भी रहे और एक दर्जीकी दूकानपर काम किया। १९१७ में वे स्वदेश लौट आये और लेनिनके दाहिने हाथ बनकर अक्टूबरवाली क्रान्तिको सफल बनाया। उन्होंने प्रबल लाल सेनाका सङ्गठन किया और एक ही समयमें २६ मोर्चोंपर शत्रुओंसे लोहा लिया। रूसमें बोल-शेविक शासन स्थापित होनेपर लेनिन उसके प्रधान हुए। ट्राट्स्की सेना-विभागके प्रधान अधिकारी थे और स्टैलिन थे कम्यूनिस्ट पार्टीके जनरल सेक्रेटरी। आज स्टैलिन रूसके सर्वाधिकारी हैं और १३-१४ वर्ष तक लगातार मृत्युको चकमा देते रहनेके बाद ट्राट्स्की-जैसे मेधावी महापुरुषका अन्त जिस दुःखजनक परिस्थितिमें हुआ, उसका लम्बा इतिहास १९२२ की मईमें आरम्भ हुआ था, जब लेनिन बीमार हुए थे और बोलने तकमें असमर्थ हो गये थे।

सब प्रश्नोंका एक प्रश्न उस समय यह था कि लेनिनके बाद रूसका सर्वाधिकारी कौन होगा। स्टैलिन और ट्राट्स्की दोनों प्रतिद्वन्द्वी थे और साथ ही समर्थ भी। परन्तु एक ही समयमें दोनोंकी महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्ति कैसे होती। जुलाईमें लेनिनकी अवस्था सुधरने लगी और अक्टूबर तक वे क्रेमलिनमें काम देखने लगे, इसलिए स्टैलिन-ट्राट्स्की-द्वन्द्व स्थगित हो गया। उसी साल दिसम्बरमें लेनिनकी तबीयत फिर खराब हुई। यह भय होने लगा कि वे कहीं अपने उत्तरा-धिकारीको मनोनीत न कर दें। ट्राट्स्कीको इसकी ज्यादा चिन्ता नहीं थी; क्योंकि लेनिनके चिकित्सक डाक्टर गेटियरसे पूछकर वे यह जान चुके थे कि यह बीमारी अन्तिम नहीं है। स्टैलिनकी अवस्था कुछ भिन्न थी, वे ज्यादा चिन्तित थे विशेषतः इसलिए भी कि पहली बीमारीके बाद लेनिनने उनकी राजनीतिक हरकतोंके विषयमें जो कुछ सुना था, उसके कारण स्टैलिनके अधिकारोंको कुछ कम कर देनेका इरादा जाहिर किया था।

ट्राट्स्कीकी हत्याके सिलसिलेमें मैक्सिकोकी पुलिसने कितनी ही बातोंका पता लगाया है। मुद्दतसे दबाकर रखे



बायीं ओर—इसी छुरीसे ट्राट्स्कीकी हत्या की गयी।
ऊपर—ट्राट्स्कीका सुरक्षित मकान।

हुए कुछ कागजोंसे भी अनेक बातोंका पता चला है और अमेरिकन पत्रोंने उन्हें प्रकाशित किया है। इनमें एक बात तो यह है कि लेनिनको विष दिया गया था और दूसरी यह है कि लेनिनने मृत्युसे पहले जो वसीयत की थी, उसमें ट्राट्स्कीको सर्वाधिक योग्य बतलाते हुए स्टैलिनको पदच्युत करनेकी आवश्यकता प्रकट की थी। इन दोनों बातोंके विषयमें भारी मतभेद है और बात जिस स्थितिमें प्रकट हुई है, उसके कारण उसकी सचाईमें सन्देह होना और उसपर विश्वास न होना भी स्वाभाविक ही है। जो हो, कहते हैं, लेनिनकी दूसरी बीमारीके दिनोंमें एक बार जब स्टैलिन, ट्राट्स्की, ग्रेगरी, जिनोवीफ और एल० बी० कामनेवकी मीटिङ्ग हो रही थी, सेक्रेटरीके चले जानेपर स्टैलिनने यह प्रकट किया कि लेनिनने अभी-अभी विषके लिए प्रार्थना की है। ट्राट्स्कीको इससे बड़ा आश्चर्य हुआ और अन्य व्यक्तियोंने भी इसका कारण पूछा। स्टैलिनने कहा—वे कष्टमें हैं। भय है कि कहीं पागल न हो जायं। वे विष इसलिए चाहते हैं कि जब उन्हें यह विश्वास हो जाय कि कोई लाभ नहीं है, तब वे उसका उपयोग कर सकें।

ट्राट्स्कीने मेजपर घूंसा मारकर कहा—यह हो नहीं सकता। बीमारीका कष्ट तो दूर हो ही जायगा; परन्तु पासमें विष रहनेसे यह हो सकता है कि कभी निराशामें डूबकर वे उसे खा लें—यह जोखिम नहीं उठायी जा सकती।

कामनेव और जिनोवीफने ट्राट्स्कीका समर्थन किया और यह बात जहांकी वहीं रह गयी; परन्तु इस सम्बन्धमें ट्राट्स्कीको सन्देह बना ही रहा। उन्होंने घातक आक्रमण होनेसे केवल १० दिन पहले लिबर्टी पत्रको १० अगस्त १९४० की संख्यामें एक लेख लिखकर अपना यह सन्देह प्रकट भी कर दिया था। ट्राट्स्की स्वयं लेनिनसे ही पूछना चाहते थे; परन्तु वे यह कर न सके, क्योंकि उसी दिन लेनिन फिर बेहोश हो गये। उस समय स्टैलिन या ट्राट्स्की किसीको भी पता न था कि लेनिन अपनी वसीयत लिखा चुके हैं। बेहोश होनेसे एक महीने पहले लेनिनने अपने विश्वासी स्टेनोग्राफर मोशिये वोलोडिचेवाको पास बुलाया और सेक्रेटरीने उनकी वसीयत लिखा दी। यह वसीयत रूसकी जनताके नाम एक सन्देशके रूपमें थी, जिसमें स्टैलिनके विरुद्ध चेतावनी और परामर्श दिया गया था। दस दिन बाद लेनिनने इस वसीयतमें कुछ अन्य पंक्तियां जुड़वायीं, जिनमें स्टैलिनको पदच्युत करनेकी सिफारिश की गयी थी।

कुछ समय बीतनेपर लेनिनकी अवस्थामें फिर सुधार हुआ और ४ मार्च १९२३ को वे फिर बोलने लगे और उन्होंने अपने स्टेनोग्राफरको एक मेमो लिखाया, जिसमें स्टैलिनके साथ सभी व्यक्तिगत और कामरेडी सम्बन्ध तोड़



ऊपर—ट्राट्स्कीके शवका जुलूस। दाहिनी ओर—ट्राट्स्कीके पढ़ने-लिखनेका कमरा जिसमें उनपर छुरीसे वार किया गया।

देनेके लिए कहा गया था। लेनिनकी पत्नीने इन कागजोंको बिलकुल गुप्त रखा और तब प्रकट किया, जब उनका ऐतिहासिक महत्त्व नष्ट हो गया था। अगले दिन लेनिनको फिर मूर्च्छा आ गयी और इसी अवस्थामें रहनेके बाद २१ जनवरी १९२४ को उनकी मृत्यु हुई।

ट्राट्स्कीने उस समय यदि अपनी क्षमतासे काम लिया होता, तो निश्चय ही वे रूसके सर्वाधिकारी हो जाते; परन्तु उन्हें सेण्ट्रल कमेटीपर पूर्ण विश्वास था कि वह उन्हींको अपना नेता चुनेगी। ट्राट्स्की स्वभावसे कुछ-कुछ उद्धत भी थे। उन्होंने अपने कितने ही मित्रोंको शत्रु बना लिया था। इस बीचमें स्टैलिन राजनीतिक दांवपेंच चल रहे थे, सौदा पटा रहे थे। उन्होंने जिनोवीफ और कामनेवको अपने साथ मिला लिया और कम्यूनिस्ट पार्टीको चुस्त कर लिया।

इसी समय वसीयतकी बात प्रकट हुई और लेनिनकी पत्नीने यह चाहा कि उसे कम्यूनिस्ट पार्टी कांग्रेसके समक्ष पढ़ा जाय। वसीयत टाइप किये हुए दो पृष्ठोंमें थी। उसमें ट्राट्स्कीके विषयमें लिखा था कि "उनमें असाधारण योग्यता है। सेण्ट्रल कमेटीमें वे सर्वाधिक योग्य हैं—यद्यपि उनमें एक त्रुटि है, अत्यधिक आत्म-विश्वास।" स्टैलिनके विषयमें उन्होंने लिखाया था—"जनरल सेक्रेटरी होकर स्टैलिनने अपने हाथमें बहुत ज्यादा शक्ति कर ली है और मुझे यह निश्चय नहीं है कि उन्हें हमेशा ही अपनी इस शक्तिसे काम लेनेका ढङ्ग मालूम रहता है।" दस दिन पीछे उन्होंने जो इबारत जुड़वायी थी, वह इस प्रकार थी—"मैं कामरेडोंसे प्रस्ताव करता हूँ कि वे स्टैलिनको पदच्युत करनेके लिए उपाय सोचें।"

स्टैलिन और उनके समर्थकोंपर इस वसीयतकी जो प्रतिक्रिया होनी चाहिए थी, वही हुई। कम्यूनिस्ट पार्टी कांग्रेसके सामने उसे कभी नहीं लाया गया और अर्सा बीत जानेके बाद लेनिनकी विधवाने जब बहुत जोर दिया, स्टैलिनने उन्हें शान्त करनेके लिए कम्यूनिस्ट कांग्रेसके कुछ प्रमुख मेम्बरोंकी एक कमेटीके सामने उसे रखना स्वीकार कर लिया। इस कमेटीमें स्टैलिनके मित्रोंका बहुमत था। कमेटीकी बैठकमें कामनेवने वसीयत पढ़ सुनायी। स्टैलिनने कहा कि "इस वसीयतका कोई मूल्य नहीं है। उसे बीमारीकी हालतमें स्त्रीके प्रभावके अधीन लिखा गया है।" इसके बाद बहुमतसे निश्चय किया गया कि वसीयत असली नहीं है। यह भी निश्चय हुआ कि उसे तालेमें रख दिया जाय। ट्राट्स्कीने समयका मूल्य न समझकर परिस्थितिकी उपेक्षा की थी, इसलिए उनके हाथसे जीवनका सर्वश्रेष्ठ सुअवसर निकल गया। समय चूकनेके बाद फिर क्या ?

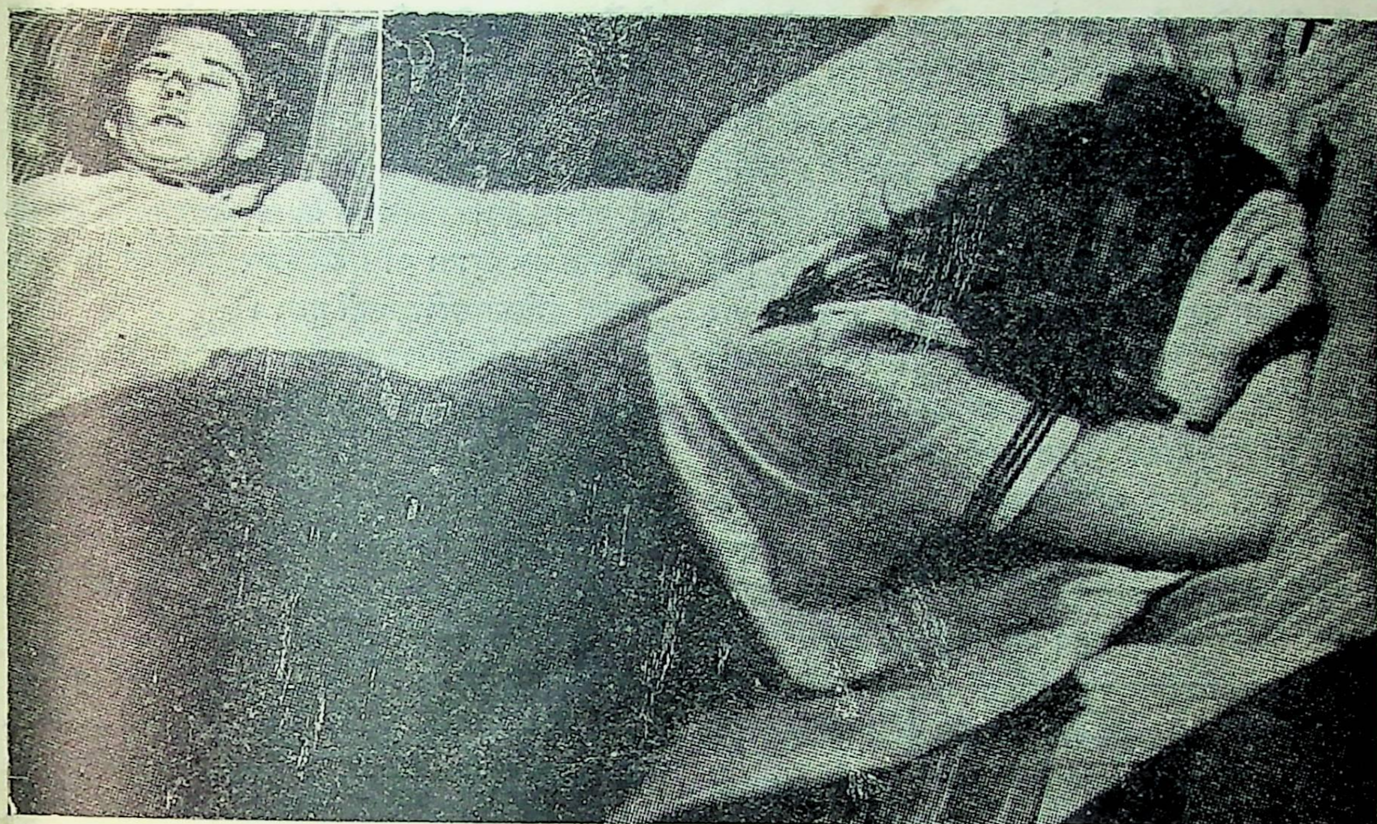
ट्राट्स्कीके जीवनका एक नया अध्याय आरम्भ हुआ।

लेनिनकी मृत्युके बाद जब उनकी वसीयत बनावटी मान ली गयी और स्टैलिन सर्वाधिकारी हो गये, इसके एक साल बाद ट्राट्स्की सेना-मन्त्रीके पदसे हटा दिये गये। नवम्बर १९२७ तक उन्हें प्रत्येक पद और सम्मानसे वञ्चित हो जाना पड़ा। उनके साथियोंका भी बड़ा अपमान हुआ। ट्राट्स्कीने परिस्थितिसे विवश होकर खुले तौरसे यद्यपि अपनी गलतीको स्वीकार कर लिया था और यह भी मान लिया था कि स्टैलिन सही है, तथापि उन्हें कम्यूनिस्ट पार्टीसे भी निकाल दिया गया और वह समय आया कि उसी साल सोवियट शासनके दसवें वार्षिकोत्सवके दिन जब लाल सेना मास्कोकी सड़कोंसे होकर निकल रही थी, ट्राट्स्की सड़कके किनारे लोगोंकी भीड़में खड़े होकर उसे देख रहे थे और उस भीड़में कोई उन्हें पहचानता भी नहीं था। ये वही ट्राट्स्की थे, जिन्होंने किसी समय इस सेनाका सङ्गठन किया था और जो कुछ ही समय पहले इस सेनाके सर्वप्रधान अधिकारी थे।

रूसमें राजनीतिक विरोधियोंकी जो गति होती थी, उससे ट्राट्स्की अनभिज्ञ नहीं थे। १९२८ की जनवरीमें समाचार आया कि निर्वासित ट्राट्स्की कहीं चीनी तुर्किस्तानकी सीमाके पास हैं। यहां भी वे स्टैलिनके विरुद्ध आन्दोलन करनेमें व्यस्त रहते। उनके मित्र और अनुयायी रूसमें पर्चे पहुंचाते रहते थे। ट्राट्स्कीके सैकड़ों अनुयायियोंको जेलमें डाल दिया गया था और ट्राट्स्कीको भी ठिकाने पहुंचानेके लिए कोशिश जारी थी। ओगपू एजेण्ट अपना काम कर रहे थे; परन्तु ट्राट्स्कीको पता लग गया कि उन्हें उड़ाया ही जानेवाला है। बस फिर क्या था, अपने परिवार और कागज-पत्रों समेत वे चुपचाप तुर्की चले गये। वहांसे ट्राट्स्कीने जर्मनी, आस्ट्रिया, फ्रान्स, स्पेन, इटली, जेकोस्लोवेकिया, नारवे और हालैण्डमें जानेकी अनुमति चाही; परन्तु इन सब देशोंने उन्हें अपने यहां आकर रहनेसे मना कर दिया। इंगलैण्डमें उन दिनों मजदूर-दलकी सरकार थी। तुर्कीमें रहनेके दिनोंमें भी स्टैलिनके विरुद्ध उनका प्रचार जारी रहा। कस्तुन्तुनियाके पास जिस मकानमें वे रहते थे, उसमें एक दिन किसीने आग लगा दी। उसमें ट्राट्स्कीके कितने ही बहुमूल्य कागज-पत्र जल गये। ट्राट्स्कीका सन्देह कुछ और ही था परन्तु तुर्कीकी सरकार अपने पड़ोसीको नाराज नहीं करना चाहती थी, इसलिए उसने अग्निकाण्डकी जांच करनेके बजाय इसीमें सबकी खैर समझी कि ट्राट्स्की तुर्कीसे चले जायं; परन्तु वे जाते तो कहां? कोई देश उन्हें अपने यहां रखनेके लिए तैयार न था। अन्ततः स्टालिनकी दृष्टिसे बचनेके लिए एक दिन ट्राट्स्की चुपचाप तुर्कीसे चले गये और फ्रान्समें रहने लगे; किन्तु इस अवस्थामें वे बहुत दिन तक नहीं रह सके। एक साल बाद रूसने फ्रान्सकी सरकारके पास इस बातका प्रतिवाद भेजा कि पेरिसके पास फाण्टेन ब्लू नामक बस्तीमें गुप्त रूपसे रहकर ट्राट्स्की रूसमें क्रान्ति फैलानेका प्रयत्न कर रहे हैं। उन दिनों नाजी जर्मनी अपनी तैयारी कर रहा था और फ्रान्सीसी सरकार रूसके साथ मैत्री रखना चाहती थी, इसलिए बेचारे ट्राट्स्कीको वहांसे भी अपने परिवार समेत रवाना होना पड़ा। इस समय पावनेदार बुरी तरह उनके पीछे पड़े हुए थे और उन्हें प्रतिक्षण विस्तृत ओगपू-जालमें फंस जानेकी आशङ्का व्यग्र किये रहती थी।

फ्रान्स छोड़नेके बाद ट्राट्स्कीको नारवेमें स्थान मिला। यह १९३६ की बात है, जब रूसमें जिनोवीफ, कामनेव और दूसरे कितने ही प्रभावशाली राजनीतिज्ञोंको गोलीके घाट उतारकर जबानबन्दी की जा रही थी। इन्हीं दिनों प्रधान ओगपू हेनरी यगोडाको भी प्राणदण्ड मिला। अवाञ्छनीय व्यक्तियोंको रहस्यपूर्ण ढङ्गसे ठिकाने लगानेके लिए यह प्रसिद्ध था। उसे स्टैलिनके तरीकोंका सारा भेद मालूम था और इसीसे शायद यह भी अवाञ्छनीय हो गया था। ट्राट्स्कीने नारवेमें रहकर इन सब बातोंके विषयमें धुआंधार लेख लिखे और बतलाया कि इन काण्डोंका असली भेद क्या है? इसका परिणाम यह हुआ कि १९३६ के अन्तमें जब आज्ञापत्रकी अवधि पूरी हुई, उनसे नारवेसे चले जानेके लिए कह दिया गया। सम्भव है, इसके लिए नारवेपर बाहरसे दबाव डाला गया हो।

नारवेमें जिस समय ट्राट्स्की इस चिन्तामें थे कि कहां जायं, उसी समय उन्हें मैक्सिकोके प्रसिद्ध चित्रकार डीगो रिवेराका निमन्त्रण मिला और मि० डीगो रिवेराके प्रयत्नसे मैक्सिकोकी सरकारने भी ट्राट्स्कीके वहां जानेपर आपत्ति नहीं की। ट्राट्स्की और उनकी पत्नी नारवेके एक तेल ढोनेवाले जहाजपर बैठकर जनवरी १९३७ में मैक्सिको पहुंचे। वहां बहुत समय तक वे पहले तो डीगो रिवेराके साथ ही



अमेरिकन सुन्दरी सिलविया एजलोफ—जो ट्राट्स्कीके अनुयायियोंमें हैं और जिनसे कपट-प्रेम कर घातकने ट्राट्स्कीके निकट सम्पर्कमें आनेका रास्ता निकाला ! बायीं ओर ऊपर कोनेमें—सिलविया एजलोफका चेहरा।

रहे; परन्तु बादमें डीगो रिवेरासे स्वभाव न मिलने और उनके मकानपर रक्षाका समुचित प्रबन्ध न होनेके कारण ट्राट्स्की कोयाकेन गांवमें चले गये और अपनी रक्षाकी समुचित व्यवस्था कर वहीं रहने लगे। २० अगस्त १९४० को जैक्सनकी छुरीसे यहीं घायल होनेके बाद उनकी मृत्यु हुई। इससे पहले जैके मोरण्ड बाण्डेन डूसके नेतृत्वमें २४ मई १९४० को अचानक २०-२२ आततायियों द्वारा उन्हें गोलियोंका शिकार बनानेका जो असफल प्रयत्न हुआ था, वह भी इसी गांवमें किया गया था।

ट्राट्स्कीके पुत्र और पुत्रियोंकी मृत्यु बड़ी ही शोचनीय अवस्थामें उनकी हत्या होनेसे पहले ही हो चुकी थी। १९२८ में रूससे भागते समय ट्राट्स्कीकी पुत्री नीना क्षय रोगसे पीड़ित थी। उसे वे मास्कोमें ही छोड़ आये थे। ट्राट्स्कीके मास्कोसे चले आनेके बाद यह भी न हुआ कि उस बेचारीकी चिकित्सा होती। उसे इसी अवस्थामें मृत्यु-मुखमें चला जाना पड़ा। दूसरी पुत्री जिनेदा जर्मनीमें थी। उसे रूस जाकर अपने पति और पुत्रको देखने तकका अवसर नहीं दिया गया और जब यह अवस्था असह्य हो गयी, उसने आत्महत्या कर ली। ट्राट्स्कीके एक पुत्रका नाम शेरगी था। राजनीतिसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। उसे जेलमें ठूंस दिया गया। शेरगीकी रिहाई हो सकती थी, यदि ट्राट्स्की अपना स्टैलिन-विरोधी प्रचार बन्द कर देते; परन्तु यह उन्हें स्वीकार नहीं हुआ और अभागे शेरगीका पता नहीं चला कि क्या हुआ। ट्राट्स्कीके दूसरे पुत्रका नाम था लियोन सिडाफ। ट्राट्स्की उनपर बड़ा विश्वास करते थे। १९३७ में जब मास्कोमें अवाञ्छनीय व्यक्तियोंपर मामले चल रहे थे, सिडाफ भागकर पेरिस चले गये और यूरोपमें ट्राट्स्कीके अनुयायियोंका नेतृत्व करनेके इरादेसे अपने पिताके साथ मैक्सिको नहीं गये। पेरिसमें उन्होंने रूसी भाषामें स्टैलिन-विरोधी पत्र निकाला। जनवरी १९३८ के एक अङ्कमें उन्होंने यह बतलाया कि ओगपूके एजेण्टोंने किस तरह उन्हें उड़ा ले जानेकी कोशिश की। उन्होंने इन्स्टीट्यूट आव सोशल

हिस्ट्रीके पेरिसवाले दफ्तरसे १८० पौण्ड महत्त्वपूर्ण कागज चोरी चले जानेकी बात भी प्रकट की। इसके कुछ समय बाद ही मैक्सिकोमें ट्रात्स्कीने सार्वजनिक रूपसे यह प्रकट किया कि 'ओगपू' मेरे लड़केके प्राण लेनेपर उतारू है। उन्होंने कहा कि मैं यह बयान इस आशासे दे रहा हूं कि इसके प्रकाशित होनेसे मेरे पुत्रकी हत्या नहीं की जायगी; परन्तु ट्रात्स्कीकी यह आशा पूरी नहीं हुई। ३ सप्ताह बाद सिडाफ रहस्यपूर्ण ढङ्गसे बीमार हुए और १९-२० दिनकी बीमारीके बाद छटपटा-छटपटाकर मर गये। सन्देहजनक स्थितिमें मृत्यु होनेके कारण उनकी शव-परीक्षा हुई; परन्तु उससे क्या होना था। मृत्युका कारण अन्त्रि-निरोध और पक्षाघात बतलाते हुए शव-परीक्षकने यह मत प्रकट किया कि विषकी जांच पेरिसके एक विशेषज्ञ डा० कोहेन एब्रेस्ट ही कर सकते हैं। इस विशेषज्ञकी जांच समाप्त ही नहीं हुई। फ्रान्सीसियोंको यह मालूम हो गया था कि सिडाफकी मृत्युके कारणोंकी जांच-पड़ताल यदि होगी, तो रूस इसे फ्रान्सका मित्रतापूर्ण कार्य नहीं समझेगा—और फ्रान्सको उस समय रूसकी मित्रताकी सबसे अधिक आवश्यकता थी। इस स्थानपर यह लिखना अप्रासङ्गिक न होगा कि १६ फरवरी १९३८ को सिडाफकी मृत्यु हो जानेके बाद आगस्ट क्लिमेण्ट नामक जिस व्यक्तिने ट्रात्स्कीवादियोंका नेतृत्व संभाला था और जो रोजर वरट्राण्ड नाम रखकर पेरिसके पास एक बस्तीमें रहता था, उसके सारे कागज-पत्र ४ महीने बाद जुलाईमें चोरी चले गये और इसके ९ दिन पीछे स्वयं वह भी लापता हो गया। कई सप्ताह बाद एक दिन पेरिसके पास सीन नदीमें उसकी लाश मिली, जिसके शिर और पैर, दोनों ही अङ्ग काट डाले गये थे।

और जैके मोरण्ड वाण्डेन ड्रूस नामक वह रहस्यपूर्ण व्यक्ति कौन है, जिसकी आवाज पहचानकर ट्रात्स्कीके सेक्रेटरी हार्टेने गत २४ मईवाली दुर्घटनाके दिन फाटक खोल दिया था? इसी तरह गत २० अगस्तको ट्रात्स्कीपर घातक हमला करनेके इरादेसे मिलनेवाला यह जैक्सन कौन है और उसके सिसकियां भरकर यह कहनेका क्या अर्थ है कि "उन्होंने मेरी मांको जेलखानेमें डाल दिया है।" मैक्सिको की पुलिसने इस सम्बन्धमें जो कुछ पता लगाया है, उसका सार यह है—जैके मोरण्ड वाण्डेन ड्रूस और जैक्सन, ये दोनों नाम एक ही व्यक्तिके हैं। १९३७ में जब वह पेरिसमें आया, उसने अपना यही नाम बतलाया था। वह अपनेको क्रान्तिकारी विचारोंका बेल्जियन कहता था; परन्तु उसका असली नाम क्या है, यह कोई नहीं कह सकता। पेरिसमें वह पत्रकार-कलाका अध्ययन करता और साथ ही ट्रात्स्कीवादियोंसे मेल बढ़ाता था। उस समय किसीको भी उसके 'ओगपू' होनेका सन्देह नहीं हुआ।

१९३८ में सिलविया एजलोफ नामक सुन्दरी छुट्टीके दिन बिताने न्यूयार्कसे पेरिस गयी। जैके मोरण्ड वाण्डेन ड्रूसको यह काम सौंपा गया कि वह सिलविया एजलोफका विश्वासभाजन बने, जिससे उसे मैक्सिकोमें ट्रात्स्कीके सम्पर्कमें आनेका अवसर मिल सके। बात यह थी कि ट्रात्स्कीके विचारोंमें सिलविया एजलोफकी दृढ़ निष्ठा थी और १९३९ में वे ट्रात्स्की-सङ्गठनके न्यूयार्कवाले दफ्तरमें प्रचार-कार्यकी सञ्चालिका भी थीं। १९३७ में जब ट्रात्स्की मैक्सिको पहुंच गये, ये भी उनके पास अक्सर आने-जाने लगीं। ट्रात्स्कीका उनपर पूर्ण विश्वास था। ट्रात्स्कीके अनुयायियोंमें सिलविया एजलोफकी बहिन रूथ भी थीं। यूरोप और अमेरिकाके बीच ट्रात्स्कीके जो गुप्त पत्र आते-जाते थे, उनका प्रबन्ध रूथके ही हाथों होता था।

सिलविया एजलोफ जब पेरिस पहुंचीं, सारी योजना तैयार हो चुकी थी, जैके मोरण्ड वाण्डेन ड्रूसने समय न खोकर एक पार्टीमें उनसे परिचय प्राप्त किया और फिर तो घनिष्टता बढ़ानेके लिए उसने प्रत्येक अवसरका उपयोग किया। इन सब बातोंका परिणाम यह हुआ कि सिलविया एजलोफने ३० वर्षकी उम्रमें प्रणयका माधुर्य अनुभव किया। दोनों ही ट्रात्स्कीके प्रशंसक थे; परन्तु वह धोखा खा रही थी। उसे यह पता नहीं चला कि वह प्रशंसा और प्रणय वास्तवमें प्रशंसा और प्रणय नहीं, ओगपू-एजेण्टका कपटाचार है और इसीमें ट्रात्स्कीकी मृत्युका हाथ छिपा हुआ है।

छुट्टी पूरी हो जानेपर सिलविया एजलोफ न्यूयार्क लौट गयी। कुछ दिनों बाद जैके मोरण्ड वाण्डेन ड्रूस भी प्रणयकी पेंग बढ़ानेकी आड़में अपना उद्देश्य पूरा करनेके लिए वहां पहुंच गया। अपने कामके लिए उसने जल्दबाजी नहीं की। १९३९ के अन्तमें एक दिन उसने मैक्सिको जानेका इरादा किया और एक ठण्डी सांस लेकर कहा—"क्या ही अच्छा

होता, अगर मैं ट्रात्स्कीसे मिलकर बातचीत कर पाता । वे महान् लेखक हैं । मेरा विश्वास है कि वे मेरी सहायता कर सकते हैं ।"

सिलविया एजलोफने वाण्डेन ड्रेसको पहचाना तो था ही नहीं, सहज भावसे उसने कहा—मैं आपको उनसे मिला सकती हूं ।

इस घटनाके बाद जैके मोरण्ड वाण्डेन ड्रेसको 'ओगपू' द्वारा एक बनावटी पासपोर्ट मिल गया । वह जब मैक्सिकोमें था, ३ महीनेकी छुट्टी लेकर सिलविया भी वहां पहुंच गयी और एक दिन उसे ट्रात्स्कीसे मिला दिया । बड़ी देर तक बातें हुईं । बिदा होते समय नम्रतासे वाण्डेन ड्रेसने कहा—"आप नहीं अनुभव कर सकते कि आपने मुझे कितना सम्मानित किया है । क्या मैं कभी-कभी आलोचनाके लिए अपने लेख आपके पास लाया करूं ?"

"जरूर ।"—ट्रात्स्कीने कहा—"लेकिन मैं कड़ा आलोचक हूं ।"

इस मुलाकातके बाद वाण्डेन ड्रेसका ट्रात्स्कीके पास आने-जानेका सिलसिला जारी हो गया । सिलवियाके न्यूयार्क लौट जानेके बाद भी वह आता-जाता रहा । इसीलिए २४ मईको जब उसने फाटक थपथपाकर यह कहा कि "एक बहुत जरूरी समाचार, वृद्ध महाशयके लिए है, " तब ट्रात्स्कीके सेक्रेटरी हार्टेको द्वार खोलते देर न लगी । यह भेद खुलने न पाये कि किसकी आवाज पहचानकर फाटक खोला गया था, इसीलिए शायद आततायी मूर्च्छित अवस्थामें हार्टेको लेते गये और बादमें उसकी लाश ही मिली। ट्रात्स्कीकी हत्या करनेके लिए २४ मईको जो प्रयत्न किया गया था, वह सफल नहीं हुआ था । इसके लिए ओगपू अफसरने वाण्डेन ड्रेससे जवाब तलब किया, उसकी मांको जेलमें डाल दिया और अगली बार अकेले उसीपर ट्रात्स्कीकी हत्या करनेका भार डाला । फ्रेङ्क जेक्सन नामसे एक बनावटी कनाडियन पासपोर्टका प्रबन्ध कर दिया, जिससे सरकारी अफसरोंकी आंखमें धूल डाली जा सके। सिलविया एजलोफ और ट्रात्स्की उसे अन्त तक जैके मोरण्ड वाण्डेन ड्रेस नामसे ही जानते रहे ।

२० अगस्तको घातक आक्रमण करनेसे एक सप्ताह पहले जब जैक्सन ट्रात्स्कीसे मिला था, तब असलमें वह यह देखने आया था कि पहलेकी ही तरह आसानीसे ट्रात्स्कीके समक्ष पहुंच सकता है या नहीं । उसने अगले सप्ताहमें किसी दिन आकर लेख दिखलानेकी जो इच्छा प्रकट की थी, वह तो बहाना ही था ।

सिलविया एजलोफको जब यह मालूम हुआ कि ट्रात्स्कीकी हत्या उसके प्रणयी वाण्डेन ड्रेसने की है, जिसे उसने कई महीने पहले स्वयं ही मिलाया था, तब उसपर सहसा वज्रपात हो गया । उसकी हालत खराब थी । अस्पतालमें वह विलाप करते हुए कहती—"ट्रात्स्कीको कुछ हो गया, तो मैं मर जाऊंगी ।" कुछ दिनों बाद एक बार पुलिसने सिलवियाको जैक्सनके सामने किया । उसे देखते ही वह चिल्ला उठी—"हत्यारा, ओगपू, ट्रात्स्कीकी हत्या करनेके लिए ही तूने मुझसे प्रेम किया था ! मौतके मुंहमें जा !"

जैक्सनकी जेबमें एक पर्चा पाया गया था, जिसमें उसने अपनेको बेल्जियन लिख रखा था; परन्तु यह असत्य प्रमाणित हुआ । उसने यह भी लिख रखा था—ट्रात्स्कीको मारनेकी तैयारी मैं दो कारणोंसे कर रहा हूं—उन्होंने स्टैलिनकी हत्या करनेके लिए मुझसे कहा है और सिलविया एजलोफके साथ मेरे विवाह करनेका भी विरोध किया है ।

सिलविया एजलोफने जैक्सनकी पिछली बातसे इनकार किया और पहली बात कुछ ऐसी है, जिसपर शायद ही किसीको विश्वास हो । जैक्सनपर मामला चल रहा है और यदि वह ट्रात्स्कीकी हत्याका अपराधी ही साबित हो, तो भी उसे आजन्म कारावास ही हो सकता है; क्योंकि मैक्सिकोमें किसीको फांसी नहीं दी जाती। ट्रात्स्कीके अनुयायियोंका ख्याल है कि ओगपूके एजेण्ट अब शायद जैक्सनका ही काम तमाम कर देनेकी चेष्टा करें, जिससे कभी यह प्रकट न हो सके कि इस षड्यन्त्रमें कौन-कौन शामिल था। मैक्सिकोकी पुलिसका भी सम्भवतः यही विश्वास है और जैक्सनकी रक्षाका विशेष प्रबन्ध कर दिया गया है ।

———



यह विश्व-सङ्कट और पूंजीवाद

श्री महादेव प्रसाद

राजनीतिज्ञोंकी दृष्टिमें युद्ध राजनीतिक दांव-पेंचोंका एक सिलसिला-मात्र है; परन्तु गत महासमरके समय यूरोपके विभिन्न देशोंके सोशल डेमोक्रेटोंने अपने देशके मजदूरोंसे उसमें सहायता देनेके लिए यह कहकर अनुरोध किया था कि वह सभ्यता, स्वभाग्य-निर्णय और मातृभूमिकी रक्षाके लिए हो रहा है। इस अनुरोधकी तहमें जानेकी आज आवश्यकता नहीं है; परन्तु युद्धोंके ऐतिहासिक विवेचनसे यह स्पष्ट है कि वे दो तरहके होते हैं—प्रगतिशील और प्रतिक्रियाशील। प्रगतिशील युद्धोंका आधार प्रगतिशील समाजकी स्थापना कर जनताको अधिक अधिकार और सुविधायें देना होता है। चौदहवीं शताब्दीसे लगाकर १९ वीं शताब्दीके मध्य तक जो युद्ध और सङ्घर्ष हुए, उन्हें पहली श्रेणीमें रखा जा सकता है। इस तरह साम्राज्यवादके विरुद्ध जहां-जहां सङ्घर्ष हो रहे हैं, उन्हें भी प्रगतिशील ही कहा जा सकता है; किन्तु पूंजीवादी वर्गके स्वार्थोंकी रक्षाके लिए यदि कोई सङ्घर्ष हो, तो उसे प्रगतिशील नहीं कहा जायगा; क्योंकि उसके मूलमें प्रगतिशील समाज-व्यवस्थाका कोई प्रश्न ही नहीं होता। उदाहरणके लिए जापानके विरुद्ध चीनकी लड़ाई प्रगतिशील है, परन्तु चीनके विरुद्ध जापानकी लड़ाई उसके प्रतिकूल प्रतिक्रियाशील है।

लोग समझते हैं कि राज्य-विस्तारके लिए देशोंको अपने अधीन कर लेना ही साम्राज्यवाद कहलाता है। राज्य-विस्तारकी लालसाके पीछे आर्थिक स्वार्थ काम कर रहे हैं, इसे भी वे समझते हैं। कभी वे कहते हैं, अमुक युद्ध बाजारोंके लिए, भोजनके लिए, अपने देशकी अतिरिक्त जनताके निवासस्थान आदिके लिए हो रहा है। लेकिन युद्धोंका विश्लेषण करनेमें इतनेसे ही अधिक सहायता नहीं मिल सकती। इसके लिए और भी अधिक विस्तारकी आवश्यकता है और इस सिलसिलेमें साम्राज्यवादको अनेक दृष्टियोंसे देखना होगा। आधुनिक साम्राज्यवादको पूंजीवादकी वह मञ्जिल माना गया है, जब समाजके विभिन्न आर्थिक प्रयत्न कुछ लोगोंकी मुट्ठीमें हो जाते हैं। उसकी प्रधान विशेषता यह है कि वह अपने उपनिवेशोंके विभिन्न उद्योग-धन्धोंमें पूंजी भी नियोजित करता है।

औद्योगिक पूंजीवादके प्रथम युगमें कारखाने, खानें और दूसरे कारबार बहुत छोटे थे। उनपर कुछ परिवारों या कई हजार हिस्सेदारोंका अधिकार होता था; पूंजी भी उसमें बहुत अधिक नहीं लगती थी। किन्तु उन्नति होनेके साथ ही मशीनोंको अधिक पूंजीकी आवश्यकता हुई; इधर मशीनोंसे बनी हुई चीजोंके बाजार भी दुनियाके कोने-कोनेमें दिखाई पड़ने लगे। प्राचीन उद्योग-धन्धे नष्ट होने लगे, क्योंकि मशीनोंकी प्रतियोगिताके सामने वे टिक नहीं सके। जहां मशीनोंकी यह प्रतियोगिता कारगर नहीं हुई, वहां अन्य उपायोंसे काम लिया गया।

रेल और जहाजोंके आविष्कारके साथ ही साथ लोहा और इस्पातके उद्योगमें बहुत उन्नति तथा विस्तार हुआ, बहुत-से विशालकाय कारखाने बन गये। बड़े उद्योग-धन्धोंको चलानेमें किफायत होती है और मुनाफा भी अधिक होता है। 'मात्स्यन्याय'से छोटे कारखानोंमें कुछ तो मिट गये और कुछ बड़ोंके पेटमें चले गये। आगे चलकर इसी उद्योग-विस्तारसे एकाधिपत्यका जन्म हुआ। उत्पादनका नियन्त्रण मुट्ठी-भर लोगोंके हाथमें आ गया। पूंजीवादके इस रूपका विकास १९०० ई० के आसपास हुआ। उत्पादन और पूंजीमें इतनी वृद्धि हुई कि कुछ व्यक्तियोंका एकाधिपत्य हो गया और आर्थिक जीवनमें भी इनका प्रभाव बहुत बढ़ गया।

प्रत्येक उन्नत पूंजीवादी देशमें, और खासकर जर्मनी तथा अमेरिकामें यह बात दिखाई पड़ी। पिछले महायुद्धके बादसे ब्रिटेनमें भी उद्योग-धन्धोंपर एकाधिपत्य बढ़ गया। लन्दन ट्रैन्सपोर्ट बोर्ड, इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीज, यूनिलिवर आदि हरएककी पूंजी डेढ़ अरबसे कम नहीं है। बैङ्क आव इंगलैण्डके अलावा वेस्टमिनिस्टर, लायड्स, नेशनल प्राविन्सियल, वार्कलेज, मिडलैण्ड बैङ्ककी कुल 'पेड-अप' पूंजी एक अरब रुपये है और इनमें ३० अरब रुपये जमा हैं।

१३३ डाइरेक्टर इन बैङ्कोंका नियन्त्रण करते हैं। वे लोग कुल ११७२ उद्योग-धन्धोंके कारखानोंके डाइरेक्टर भी हैं। विशाल कम्पनियोंमें भी, जिनमें २५ अरब रुपये लगे हुए हैं, यही बात देखी जाती है। अप्रासङ्गिक होते हुए भी जान लेनेकी बात यह है कि उपर्युक्त पांच विशाल बैङ्कोंका ब्रिटेनकी कञ्जरवेटिव पार्टीसे घनिष्ट सम्बन्ध है और हाउस आव लार्ड्सके कमसे कम ९४ सदस्य लन्दनके बैङ्कर और पूंजीपति हैं।

फ्रान्सके सम्बन्धमें इस बातको समाचारपत्रोंका प्रत्येक पाठक जानता है कि सिर्फ दो सौ परिवार फ्रान्सपर शासन करते हैं। बैङ्क आव फ्रांसके डाइरेक्टरोंमें करीब-करीब सभी १७वीं सदीसे परिवार-परम्परासे होते आ रहे हैं। इसी बैङ्कने१९३६के संयुक्त मोर्चेवाली फैसिस्ट-विरोधी सरकारको मुद्राकी दर कम करके तोड़ डाला था। इस युद्धमें हिटलरके सामने फ्रान्सके आत्म-समर्पणमें भी इसका तथा उपर्युक्त दो सौ परिवारोंका ही हाथ रहा है। गर्डन स्कैफर नामक अंगरेज विद्वान्ने अपनी पुस्तक 'दौलत और गरीबी' (Poverty and Riches) में अच्छी तरह सिद्ध किया है कि फ्रान्सकी तरह ब्रिटेनपर तीन सौ धनकुबेर परिवारोंका शासन चल रहा है। इस बातको भला कौन नहीं जानता कि क्रुप्स, बेयर, थैसन, सामेन्स आदि उद्योग-धन्धोंके मालिक तथा प्रशाके जङ्कर नामक जमींदार-समुदाय हिटलरको अपनी अंगुलियोंके इशारेपर नचाते हैं। इटलीके सम्बन्धमें भी यही बात कही जा सकती है। अमेरिकन राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्टने कहा था कि सत्रह परिवार अमेरिकापर शासन करते हैं। जान गन्थाने 'एशिया'में दिखाया है कि मितुइई नामक ग्यारह परिवारोंका सङ्घ जापानपर शासन करता है। यह स्पष्ट है कि पूंजीवादी समाजमें विशाल उद्योग-धन्धोंपर कुछ सिण्डीकेटों और इसी तरहके कुछ अन्य सङ्गठनोंका नियन्त्रण तथा अधिकार है और इन उद्योग-धन्धोंके मालिकोंका आपसमें घनिष्ट सम्बन्ध भी है।

बैङ्क-पूंजी और औद्योगिक पूंजीमें घनिष्ट सम्बन्ध हो जानेका नतीजा यह हुआ है कि पूंजीपतियोंके हाथमें प्रत्येक देशके शासनकी बागडोर आ गयी है। राष्ट्र पूंजीपतियोंकी कार्य-समिति बन गये हैं।

उद्योग-धन्धोंके बचपनमें उनके मालिकोंका बैङ्करोंसे घनिष्ट सम्बन्ध नहीं था। बैङ्कर लोग औद्योगिक पूंजीपतियोंको रुपया उधार देते थे और उसके बदलेमें उन्हें कुछ सूद मिलता था। लेकिन औद्योगिक विकासके साथ ही साथ 'शेयर कम्पनियां' स्थापित हो गयीं, बैङ्कोंके मालिकोंने भी औद्योगिक कारखानोंके शेयर खरीदने शुरू किये। औद्योगिक पूंजीपतियोंने भी बैङ्कोंके शेयर खरीदने आरम्भ किये। इस तरह इन दो प्रकारके पूंजीपतियोंमें घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो गया, उनकी शक्ति भी बहुत बढ़ गयी। ब्रिटेनमें जमीन्दार भी उनसे मिल गये। बैङ्क-पूंजीपति उन्हीं कम्पनियोंको रुपया उधार देते, जो अपने मालका आर्डर बैङ्कसे सम्बन्ध रखनेवाले कारखानोंको देतीं, कर्ज लेनेवाली कम्पनियोंसे वे अनेक प्रकारकी सुविधायें प्राप्त करते। कर्ज देनेके अलावा वे (बैङ्क) कम्पनियोंको अन्य सहायता भी देते थे। इसी तरह औद्योगिक तथा बैङ्क-पूंजीपतियोंने अपनी पूंजी और प्रभावको बहुत बढ़ा लिया और विभिन्न उद्योगोंपर एकाधिपत्य स्थापित कर लिया। राष्ट्रपर भी उनका अधिकार बढ़ता ही गया। इसका एक उदाहरण देखिये। इंगलैण्डके पांच विशाल बैङ्कोंका जिक्र ऊपर किया गया है। उनमें बैङ्क आव इंगलैण्ड नामक सरकारी बैङ्कका उल्लेख नहीं किया गया था। इस बैङ्कके छब्बीस डाइरेक्टर हैं। स्त्रियां डाइरेक्टर नहीं बन सकतीं। १८७० ई० में वे २६ डाइरेक्टर १९७ दूसरे औद्योगिक सङ्गठनोंके भी डाइरेक्टर थे; १९१३ में वे ३२९ तथा १९३९ में ११५० प्रतिष्ठानोंके डाइरेक्टर बन गये थे। १९३९ के आंकड़ोंमें लन्दन ट्रैन्सपोर्ट बोर्ड तथा इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीज भी सम्मिलित हैं। ट्रैन्सपोर्ट बोर्ड और केमिकल इण्डस्ट्रीजने भी अनेक सङ्गठनोंपर नियन्त्रण स्थापित कर लिया है। इससे बैङ्कके डाइरेक्टरोंकी अतुल शक्तिका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। बैङ्क आव इंगलैण्डके ७ डाइरेक्टरोंको लेकर एक 'ट्रेजरी कमेटी' बनायी गयी है। यही सरकारके साथ सम्बन्ध रखती है। इन्हीं सातोंपर करोड़ों जनताका भाग्य निर्भर है। अस्तु।

औद्योगिक पूंजीवाद अपनी उन्नत अवस्थामें केवल मालके निर्यातसे ही सन्तुष्ट नहीं हुआ, उसने पूंजीका भी निर्यात किया। यह १८५० ई०के बाद हुआ। विदेशी कम्पनियों अथवा राष्ट्रोंको सूद तथा विशेषाधिकारोंकी शर्तपर

रुपया उधार दिया जाने लगा। ब्रिटिश उपनिवेशोंमें रेलवे, कारखानों, खानों आदिके लिए भी सूदपर रुपया दिया जाता था। कभी-कभी देशी पूंजीपतियोंका मुकाबला करनेके लिए तथा विशेष सुविधायें देखकर बैङ्क-पूंजीपति प्रधानतः अपने अधीनस्थ देशोंमें स्वयं भी कारखाने स्थापित करते हैं। लेनेवाले देशों और कम्पनियोंको उन्हीं कारखानोंसे मशीनें आदि मंगवानी पड़तीं, जिनसे उनके महाजन बैङ्कोंका सम्बन्ध होता था। इस प्रकार पूंजीवादके दोनों हाथ एक ही साथ काम करते। हिन्दुस्तान इसका अपवाद नहीं है। कलकत्तेके आस-पासकी जूट मिलों, सूती कपड़ेकी मिलों, लोहेके कारखानों और रेलवे कम्पनियोंकी पूंजीका विश्लेषण करनेसे सारी बातोंका पता अपने आप चल जाता है। देशके कितने ही उद्योग-धन्धोंपर विदेशी पूंजीका आधिपत्य है। यह आधिपत्य रखनेवाली कम्पनियां आजकल अपने डाइरेक्टरोंके बोर्डमें दो-एक हिन्दुस्तानियोंको भी स्थान देने लगी हैं; परन्तु इससे असली स्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं होता। ऐसा मालूम होता है कि औद्योगिक पूंजीवादियोंने दुनियाको आपसमें बांट लिया है। यह लोहा, तेल और अन्य कई उद्योगोंमें खास तौरसे देखनेमें आता है।

अब इसका एक अन्य पहलू भी देखिये। १८७६ ई० में यूरोपीय राष्ट्रोंने अफ्रीका महादेशके सैकड़े १० हिस्सेपर अधिकार कर लिया था। लेकिन १९०० ई० तक सैकड़े ९० हिस्सेपर उपर्युक्त शक्तियोंका कब्जा हो गया। आज तो अफ्रीकाका कोई भी हिस्सा स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता। है। मिश्रको पिछली लड़ाईके जमानेमें अंगरेजी सरकारने स्वाधीनता प्रदान की है। परन्तु इस स्वाधीनताका जो रूप है, उससे कोई भी अनभिज्ञ नहीं है। तात्पर्य यह है कि आत्मरक्षा करनेमें असमर्थ देश लावारिस नहीं रह गये। एक देशके बैङ्क-पूंजीपतियोंका किसी दूसरे देशके उसी वर्गको रुष्ट किये बगैर किसी देशपर अधिकार करना सम्भव नहीं है। इसीलिए समाजकी वर्तमान व्यवस्थामें युद्धोंका अन्त ही होने नहीं आता। एक युद्ध समाप्त होनेके साथ ही दूसरे किसी युद्धकी भूमिका तैयार होने लगती है। फिर यह युद्ध चाहे साम्राज्य-विस्तारके लिए हो या आत्म-विस्तारके लिए।

मुट्ठी-भर लोगोंके हाथमें पूंजी सञ्चित हो जानेसे राष्ट्र-व्यवस्थापर भी उनका अधिकार बढ़ जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि विभिन्न देशोंकी राजनीतिका उन मुट्ठी-भर लोगोंके स्वार्थसे अविच्छेद्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इसीलिए प्रत्येक पूंजीवादी साम्राज्यवादी देश अपने पूंजीवादी गुटकी स्वार्थ-रक्षाके लिए विदेशी प्रतिद्वन्द्वियोंके विरुद्ध कर लगाकर और मालका परिमाण निश्चित कर व्यवस्था करता है और इस अस्त्रके विफल होनेपर स्वार्थ-रक्षाके लिए युद्ध होने तककी नौबत आ जाती है। संसारके इतिहासमें इस तरहके युद्धोंकी भरमार है और इस देशके इतिहासमें भी इसके विवरणसे पन्ने रंगे हुए हैं। यही नहीं, आजकी औद्योगिक नीति भी इस विषयकी सचाईका समर्थन कर रही है। १९३५ वाले शासन-विधानमें भी गवर्नर-जेनरलको विशेषाधिकार दिया गया है कि वह उन प्रस्तावोंको रद्द कर दे, जिनसे दुनियाके बाजारमें भारतीय साखको धक्का पहुंचनेकी सम्भावना हो। पाठक समझ गये होंगे कि विश्वके बाजारका अर्थ लन्दनके बाजारसे ही है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ब्रिटेनके न्यस्त स्वार्थ पूंजीपतियोंकी रक्षा भारतमें करती थी। १८५८ में भारतका शासन कम्पनीके हाथसे पार्लमेण्टके हाथमें चला गया और यह भी वही काम कर रही है, जो पहलेवाली कम्पनी किया करती थी। कम्पनीसे स्वार्थकी रक्षा भली भांति नहीं हो रही थी, इसीलिए पार्लमेण्टने उस कामको अपने हाथोंमें ले लिया।

अब प्रश्न यह है कि प्रतिद्वन्द्वी बैङ्क-पूंजीपतियोंमें सङ्घर्ष अवश्यम्भावी क्यों है? वे शान्तिपूर्वक समझौता करके दुनियाको सदाके लिए आपसमें क्यों नहीं बांट लेते हैं? लिखा जा चुका है कि विभिन्न देशोंके एकाधिपत्य-सम्पन्न पूंजीपतियोंके गुट दुनियाके बाजारको आपसमें बांट लेते हैं। सरसरी निगाहसे देखनेसे मालूम होगा कि इस तरहका बंटवारा करके पूंजीवादी गुट अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें अपने स्वार्थोंका सामञ्जस्य कर सकते हैं, आपसी प्रतिस्पर्द्धा, विरोध तथा युद्धको सदाके लिए विदा कर सकते हैं। लेकिन अनुभव यह कहता है कि वैसा कोई अन्तर्राष्ट्रीय समझौता स्थायी नहीं हो सकता है। दृष्टान्तके लिए समझ लीजिये, १९०९ ई० में कोई समझौता हुआ। समझौता

विभिन्न दलोंके (जैसे ब्रिटेन, फ्रान्स, जर्मनी, अमेरिका) तत्कालीन उत्पादनके आधारपर हुआ था। पूंजीवादका एक बुनियादी नियम है असम-वृद्धि। ऊपरवाले समझौतेके बाद जर्मनी या अमेरिकाकी उत्पादन-शक्ति बढ़ गयी, इस दशामें पुराने समझौतेसे वह सन्तुष्ट नहीं रह सकता। वह समझौतेको माननेसे इनकार कर देगा। दूसरे दल अगर उसकी बातको नहीं मानते हैं अर्थात् उसे और भी बाजार प्रदान नहीं करते हैं, तो बाजारोंके लिए नये सिरेसे तीव्र सङ्घर्ष शुरू हो जायगा। सभी समझौतोंके लिए यही बात लागू होती है। अगर ऐसा नहीं होता, तो समझौते-सन्धियों आदिके टूटने तथा सङ्घर्ष, युद्ध आदिका प्रसङ्ग ही नहीं आता। असमान वृद्धिका सिद्धान्त सभी उद्योगों और देशोंमें लागू होता है। अतएव विभिन्न समझौतों, सन्धियोंको हम अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीपतियोंके आपसी सङ्घर्षकी सामयिक रुकावट कह सकते हैं।

सिर्फ आर्थिक सङ्घर्षोंसे किसी समस्याका समाधान नहीं हो सकता। इसीलिए विभिन्न देशोंके बैङ्क-पूंजीपति अपनी राष्ट्र-व्यवस्थाके बलपर प्रतिद्वन्द्वियोंके लिए करकी दीवाल खड़ी करते हैं, आयातका परिमाण निश्चित कर देते हैं, दूसरे प्रतिद्वन्द्वियोंकी तुलनामें सुविधाजनक वाणिज्य-समझौता करनेकी चेष्टा करते हैं, किसी खास उद्योगपर अपने एकाधिपत्यको और भी मजबूत करनेका उद्योग करते हैं, युद्धके लिए अस्त्र-शस्त्र तैयार करते हैं, जिससे शत्रुको हराकर अपने एकाधिपत्यको स्थायी रूप दिया जा सके।

बैङ्क-पूंजीपतियोंके हाथमें अरबों रुपया इकट्ठा हो जानेसे ही युद्ध होता है। ऊपरसे देखनेसे उत्पादन तथा पूंजीके केन्द्रीयकरणसे उत्पन्न होनेवाली लड़ाई सामाजिक सर्वनाशका कारण बन जाती है; लेकिन पूंजीवादी उत्पादन-प्रथासे केवल साम्राज्यवादी युद्धोंकी ही उत्पत्ति नहीं होती है, उत्पादन-शक्तिकी वृद्धि तथा प्रतिद्वन्द्वी पूंजीपतियोंके गुटोंकी प्रतियोगिताके कारण विभिन्न उपायोंसे उत्पादन-खर्च कम करके खरीदनेकी शक्ति तथा उत्पादनमें सामञ्जस्य स्थापन करनेका प्रयत्न भी एक साधारण बात हो जाती है। युद्धके अतिरिक्त शायद किसी भी समय समग्र उत्पादन-शक्तिका उपयोग नहीं किया जाता है। यहां तक कि वाणिज्यके अच्छे दिनोंमें भी अनेक बड़े-बड़े कारखाने, विस्तृत भूमि, अरबोंकी सम्पत्ति तथा लाखों मजदूर बेकार पड़े रहते हैं। इंगलैण्डमें आज भी कई लाख मजदूर बेकार हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिकामें यह संख्या २ करोड़ तक पहुंच गयी है। रूजवेल्टके 'नवविधान' को वहांके पूंजीपतियोंने कामयाब नहीं होने दिया। इससे बेकारोंको कुछ सहायता मिलती। 'इण्डियन फिनैन्स' नामक पत्रके अक्टूबरके एक अङ्कमें बतलाया गया है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिकामें २० अरब रुपयेकी पूंजी बेकार पड़ी हुई है। एक छोटे-से गुटके हाथमें पूंजी एकत्र हो जानेके कारण एक ऐसी परिस्थिति दिखाई पड़ रही है कि जिसमें उत्पादन बराबर पिछड़ा रहता है। किसी समय व्यक्तिगत पूंजी मानव-समाजकी उत्पादिका शक्तिकी वृद्धि करनेमें सहायक सिद्ध हुई थी, लेकिन आज वह उत्पादन-वृद्धिमें प्रधान बाधा बन गयी है।

साम्राज्यवादी दलोंमें प्रतियोगिताके कारण मजदूरोंकी दशा दिनपर दिन खराब होती जाती है। उन्नत मशीनोंसे काम लेकर मजदूरोंकी संख्या कम कर देनेसे उत्पादन-शक्ति बढ़ जाती है। अस्त्र-शस्त्र तथा युद्धमें काम आनेवाली दूसरी चीजोंके उत्पादनसे समाज-हितकर उद्योग-धन्धोंको धक्का पहुंचता है, वे दबा दिये जाते हैं। बेकारीकी समस्या व्यापक हो जाती है, मजदूरोंका खर्च तो बढ़ जाता है (चीजोंकी महंगीके कारण); लेकिन आमदनी पहली-सी ही रहती है। मूल्यमें आपेक्षिक वृद्धि (आपेक्षिक इसलिए कि मन्दीके बाजारकी तुलनामें ही उत्पादन अधिक होता है) के पश्चात् आर्थिक सङ्कट अनिवार्य हो जाता है। इस सङ्कटका बहाना करके पूंजीपति मजदूरोंकी मजदूरी और भी कम कर देते हैं। इसलिए मजदूरोंमें व्यापक असन्तोष दिखाई पड़ता है, वर्ग-सङ्घर्ष और भी तीव्र और व्यापक हो जाता है।

पूंजीवादके साम्राज्यवादी अध्यायकी एक और विशिष्टताका पता हमें इस बातसे चलता है कि साम्राज्यवादी देश अपने अधीनस्थ देशोंकी अनुन्नत अवस्थासे अत्यधिक लाभ उठाते हैं। इसका एक कारण तो यह है कि अनुन्नत जनताके रहन-सहनका दर्जा निम्न-कोटिका होता है, दूसरा कारण यह भी है कि मशीनोंसे उत्पन्न चीजें मजदूरोंके हाथ अधिक मुनाफेपर बेची जाती हैं। किसानोंकी फसलका लागत-मूल्य भी मुश्किलसे मिलता है, लेकिन उन्हें मशीनोंसे बनी चीजोंको अधिक मूल्य देकर खरीदना

पड़ता है। किसी भी वस्तुका विनिमय-मूल्य निर्धारित होता है उसमें लगी हुई समाजके लिए आवश्यक मेहनतके परिमाणसे। उदाहरणके लिए हम देखते हैं कि मिलोंमें एक गज कपड़ा तैयार करनेमें समाजके लिए आवश्यक जितनी मेहनत लगती है, करघोंमें उससे दस-बीस गुनी अधिक मेहनत लगती है। लेकिन हिन्दुस्तानमें आ जानेपर उपर्युक्त विलायती कपड़ेको भी करघेके कपड़ेका ही मूल्य मिलता है, जो अत्यधिक है। जहां एक ही प्रकारकी मशीनें काममें लायी जाती हैं, वहां भी दक्षताके कारण अधिक मुनाफा हो सकता है। यह बात सभी उद्योगोंके लिए कही जा सकती है। परन्तु बैङ्क-पूंजीपतियोंका अत्यधिक मुनाफा उसी तरह होता है।

अधीन देशोंके अतिरिक्त मुनाफेका प्रभाव मजदूर-आन्दोलनपर पड़ता है। प्रथम औद्योगिक क्रान्ति इंगलैण्डमें होनेके कारण वहांके पूंजीपति दुनिया-भरमें अपना माल बेचकर मुनाफा करने लगे, उन्होंने अपने देशके मजदूरोंको कुछ सुविधायें प्रदान की थीं। ये सुविधायें दक्ष मजदूरोंको ही मिली थीं। इसीलिए ब्रिटेनके इञ्जीनियरों और कपड़ेके कारखानोंके दक्ष मजदूरोंके किसी-किसी वर्गके रहन-सहनका दर्जा दूसरे देशोंके मजदूरोंसे ऊंचा है। इसका नतीजा यह हुआ कि इस वर्गके मजदूर साम्राज्यवादी औपनिवेशिक स्वार्थोंको अपना ही स्वार्थ समझने लगे। उद्योग-धन्धेवाले साम्राज्यवादी देशोंमें यह देखनेमें आता है कि अधिक आमदनी करनेवाला मजदूरोंका समुदाय तथा उनके नेता अवसरवादी हो जाते हैं, विशाल मजदूर वर्गसे वे अपने स्वार्थको अलग समझते हैं और पूंजीवादियोंसे समझौता कर लेते हैं। आगे बढ़नेके साथ-साथ यह मनोवृत्ति और भी प्रबल हो जाती है; समाजवादी तथा मजदूर-आन्दोलनके अग्रगामी वर्ग अपने देशके बैङ्क-पूंजीपतियोंकी साम्राज्यवादी नीतिमें फंस जाते हैं। पिछले युद्धके समय यही बात देखनेमें आयी थी, यद्यपि १९०७ ई० में जर्मनीके स्टट्गार्ट नामक नगरमें और बादमें स्विजरलैण्डके बासले स्थानमें प्रस्ताव पास कर पहले ही सारी बातें स्पष्ट कर दी गयी थीं, बतला दिया गया था कि विश्व-सङ्कटके समय मजदूरोंका दृष्टिकोण क्या होना चाहिए और वैज्ञानिक समाजवादके पिता कार्ल मार्क्सने तो १८४७ में ही यह घोषणा कर दी थी कि मजदूरोंका कोई देश नहीं है।

आज संसारमें जो अशान्ति और सङ्घर्ष दिखलाई पड़ रहा है, उसका सारा रहस्य इसीमें है और इसीमें इस अन्धकार-पूर्ण अवस्थासे निकलनेका सङ्केत भी है; क्योंकि साम्राज्यवादके अधीन उपनिवेशोंमें स्वतन्त्रताके आन्दोलनका जन्म उसी अवस्थासे होता है, उसीसे यह पुष्ट भी होता है और केन्द्रीभूत एवं सङ्गठित पूंजीवादसे उत्पन्न असामञ्जस्य ही अन्तमें उसकी सफलताका कारण बन जाता है। यह विश्वास निराधार नहीं है कि मानव-समाजको युद्ध, भूखों मरनेकी स्थिति और लाखों व्यक्तियोंकी बरबादीसे यदि छुटकारा मिलना हो, तो वह सामाजिक सामञ्जस्यसे ही सम्भव है।



प्यास

श्रीमती उषादेवी मित्रा

उस दिन और आजकी परिस्थितिमें अन्तर अवश्य ही हिमालय पर्वत-जैसा रहा होगा, परन्तु दिन था वह भी इसी भारतका—स्वर्ण रौद्र किरणमें झलमलाता-सा। हरद्वारकी वह कलकलाती-छलछलाती, ज्ञातयौवना गङ्गा, सांझ-विहान रूपसियोंका खासा मेला, धनवानों-दरिद्रोंकी भीड़, तटसे प्रायः लगे हुए छोटे-बड़े मकान, झोंपड़ियां।

श्रीनाथ, बलिष्ठ और सुन्दर युवक श्रीनाथ, उस उजड़े-से मकानकी खिड़कीके सामने बैठा-बैठा कुछ लिखनेकी चेष्टा करता। उसका चित्त अनजान दिशामें भरम जाता—वह ऊंची अट्टालिका, और उसके अधिवासी सुखी हैं—सुखी-असीम सुखी। कितनी अनगिनती कुर्सियां, मेजें, सोफे, अरगनीपर सुन्दर चमकीले वस्त्र, छोटे-बड़े टीन और मटके अनाजसे भरे हुए। गेहूंसे आधा भरा वह मटका? उसीमें तो उसकी पीठका बोझ खाली किया गया था न। और वह ऊंची मसनद? कैसा गुलगुला था वह गद्दा। नहीं भी कैसे? पैर ही तो रख पाया था वह उसपर, और—श्रीनाथकी चिन्ता उस स्वर्ण-कलश-युक्त पलंगपर टिक गयी। दृष्टिकी सार्थकता, मनकी मादकता—उस अपूर्व सुन्दरीकी ओरसे श्रीनाथ आंखें फेरता भी कैसे?

माता पुकारतीं—"आज भी नहीं गया कामपर? तीन नागे कट जायंगे, हफ्तेमें मिलेगा ही क्या? नन्हें-नन्हें बच्चे भूखों मरेंगे।"

उस सुन्दरीकी सलवारका गोटा श्रीनाथके नेत्रोंमें झपकी भर देता, ओढ़नीका कलाबत्तू हृदयमें बिजलीका प्रकाश फैलाता।

"हूं।"—कहता वह—"हूं—हूं।"

"बैठनेसे कहीं काम चला है? जा बेटा, कहीं खोज-ढूंढ़कर देख, काम कहीं लग ही जायगा।"

"सावल, फावड़ा सब टूट गये।"

"दूसरे ले लो।"

"हाथोंमें यह छाले।"

"तो बोझ ही ढो ले।"

झल्ला पड़ता श्रीनाथ—"तो मैं ही क्यों दिन-रात मेहनत-मजदूरी करूं।"

"फिर करे कौन? मैं?"

"सो मैं क्या जानूं? अकेला पेट, अकेला आदमी।"

"तेरे यह भाई-बहन और मैं?"

"मैं क्या जानूं?"

"फिर इसीलिए तुझे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया?"

"क्यों?"—अवाक्-विस्मयसे पूछता—"क्यों?"

"क्यों? नादान जैसी बातें करता है! बिना कमाईके कहीं दुनिया चली है, खायगा क्या? पैसे चाहिए—पैसे।"

"और इसी उम्मीदसे तूने पाला था मां?" फिर वह गुनगुनाकर कहने लगा—"कमाई—पैसे।"

उसके भावुक चित्तपर बड़ा आघात लगता।

× × ×

तब पौषके शुभ्र वातसे बरफ-विन्दु-से झरने लग गये थे। युवक श्रीनाथ शीतसे कांपता हुआ बोझा उठाये दबता-सा चला जा रहा था—एक चपरासीके पीछे-पीछे। और जब दुतल्लेपर सुसज्जित अट्टालिकामें वह उपस्थित हुआ, तब अट्टालिकामें सर्वत्र विद्युत्का तीव्र प्रकाश फैल चुका था। उस वैभवके प्रति लालायित होकर देखा उसने, किन्तु दृष्टि आबद्ध हो रही गलीचेपर बैठी सुन्दरीके गुलाल-जैसे मुखपर—गङ्गातीरवर्ती पारिजात-सी उसी नारीपर।

"क्या देख रहा है बेवकूफ?"

धक्का खाकर श्रीनाथ जैसे कुछ देरके लिए जागा-सा, पीछे वही चपरासी था।

"पलंगकी वही परी।" तन्द्रासे जैसे श्रीनाथका स्वर मन्द हो गया हो।

बैठी हुई तीनों नारियां खिलखिलाकर हंस पड़ीं—मानो उनके सामने एक जीवित कौतुक हो।

"चपरासी, तुम जाओ, रामसहायसे कहो—बोझ लेता जाय।" एक स्त्रीने कहा। कदाचित् वह दोनों इसकी सहचरी हों या दासी।

बोझसे छुटकारा पाकर श्रीनाथ सीधा होकर खड़ा हो गया।

"क्या देखता है मजदूर।"

"उस परीको।"—अनायास श्रीनाथ कह उठा।

फिर भी वही फुलझड़ी-सी हंसी।

"इसे जानता है?"

"नहीं।"

"यह प्रसिद्ध सुरमाबाईजी हैं।"

"नहीं, परी।"

"तो परीको देखनेके लिए भी पैसे लगते हैं।"

"पैसे?" श्रीनाथकी चेतना लौटी।

"समझे? पैसे लगते हैं—पैसे—पैसे।" एक स्त्री बोली।

"अब बेवकूफकी तरह खड़ा ही रहेगा या जायगा?" दूसरीने आवाज लगायी।

उसे जाते देखकर सुरमा उठी—"बेचारा गरीब।" कहते हुए उसने आलमारी खोली और पांच रुपये निकालकर कहा—"लो।" हाथ पसारकर श्रीनाथने ले लिये वह रुपये और फिर कहा—"लो।" जैसे बाईजीकी प्रतिध्वनि कर उठा हो।

"क्या?"—विस्मयसे सुरमाने पूछा।

"पैसे लो।" वही पांच रुपये सुरमाके पैरके नीचे रखकर खड़ा था श्रीनाथ।

सखियोंकी नस-नसमें कौतुक भर उठा। किन्तु हंसनेका प्रयत्न करके भी सुरमा हंस न सकी। अनिमेष दृष्टिसे वह श्रीनाथको देखने लगी—सो भी इतने हास-परिहास, व्यङ्ग-कौतुकके बाद।

"तुम भले हो, चङ्गे हो, स्वस्थ हो, सुन्दर हो, युवक हो।"—वह बोली इस तरह, जैसे कि गुनगुनाकर अपने आपको सुना रही हो।

"तो?" वैसे ही पूछा श्रीनाथने।

सुरमा जैसे इठला-इठलाकर देखने लगी उसे।

"चाह नहीं सकती हो तुम मुझे?" श्रीनाथने प्रतीक्षा बिना किये ही पूछा।

"नहीं।"

"सो भी क्यों नहीं? जब कि मैं सुन्दर हूं, स्वस्थ हूं, भला हूं, तब भी? जब कि मैं तुम-सी नारीसे प्रेम करनेके लायक हूं और जब कि मैं तुम्हें चाहने लग गया हूं—तब—तब भी नहीं? फिर भी नहीं क्यों?"

"एक कमी—वह भारी कमी जो है तुममें।"

"कमी?"

रुपये उसे लौटाकर सखियोंने कहा—"दूर हो जा मजदूर। इस परीका सपना देखा कर। इसे देखनेके लिए हजारों रुपयेकी जरूरत है। इन पैसोंसे तेरा एक महीना कट जायगा।"

"पैसा—पैसा" गुनगुनाता श्रीनाथ चल पड़ा। उसकी छातीपर वज्र-सा लगा। पैसोंसे प्रेमका सौदा।

× × ×

भारतके स्तनसे दूधकी धारा। चहुंओर हरियाली, छोटे-बड़े अनेक हरे खेत। उनके बीचमें बनती हुई दुमञ्जिली अट्टालिका। ईंट-गारा ढोते और पत्थर तोड़ते हुए मजदूर। खेतोंको जोतते और बोते हुए किसान, मजदूर।

श्रीनाथ पत्थर तोड़ रहा था। हथौड़ेका आघात पत्थर-पर—जैसे पैसोंकी एक सुन्दर ध्वनि हो।

पैसा—पैसा, प्रेमके मूलमें पैसा, माताके स्नेहका आधार पैसा, दुनियाकी इज्जतमें पैसा, साधुकी धूनीमें पैसा, दुनिया रमी है पैसोंपर। सो यह पैसे?—सोचते हुए श्रीनाथने कुरतेकी जेबसे पांच रुपये निकाले, हथेलीपर उन्हें रखकर मोहित-सा वह देखता रह गया। जीवनमें एक साथ पांच रुपये शायद ही कभी देखे हों, नये, चमकीले, गोल-गोल, वे पूरे पांच रुपये।

तो यह रुपये? हां, अमीरोंको अमीरी ठाठसे रखनेवाले, मनचाही चीजोंको खरीदनेवाले यह रुपये—सो इन्हें मैं भी कमा सकता हूं। नहीं भी कैसे? यह पांच? मैंने ही तो यह पांच पल-भरमें कमाये हैं।

खन-खन—वाह, कैसी मधुर ध्वनि है इन रुपयोंकी? और वह नरम गद्दी? वह परी? सब—सब खरीद सकता हूं रुपयोंके बलसे।

श्रीनाथ मुग्ध नेत्रोंसे रुपयोंको देखने लगा। कभी हाथसे उनका वजन तोलता, कभी आंखके नीचे तक उन्हें ले जाता, कभी जिह्वाग्रभागसे स्पर्श करता, कभी गिनता।

पैसों ही पर थमी है यह धरती। चाहूं तो मैं भी कल उस चमकती हुई कारपर बैठ सकता हूं, वैसी पचासों कारें

खरीद सकता हूं। और उसे ? घमण्डमें चूर औरत, एक वेश्या, वह भी मुझ गरीबसे गरीबीके कारण घृणा करे! नारी, मोहिनी, राक्षसी नारी, नहीं भी कैसे ? मां—मेरी अपनी मां—हां, चाहिए पैसा, रमी है धरती पैसोंपर। कमा सकता हूं पैसा, यह पांच रुपये। फिर कैसे ?

जब श्रीनाथकी चिन्ता गम्भीरतामें डूबनेको हुई, तब पीछेसे लगायी किसीने जूतेकी ठोकर—"क्यों रे पाजी, कामचोर, इसी तरहसे काम कर रहा है ? दिन-भरकी मजदूरी काट लूंगा।"

उस ठोकरसे वह परिचित नहीं था—ऐसा नहीं, किन्तु फिर भी न जाने क्यों, श्रीनाथका दारिद्र्यपीड़ित निर्जीवप्राय मन उस ठोकरको सह लेता—जैसे दुर्निवार-सा हो। किन्तु उस दिन वह उठा—"खबरदार, मारनेवाले तुम कौन होते हो ? रख लो अपना काम।" इसके बाद वाद-प्रतिवादका अवसर दिये बिना ही उसने उठा ली अपनी हथौड़ी, और चल पड़ा।

"ओ श्रीनाथ, हमारे यहां काम करोगे ?" एक अन्य व्यक्तिने पुकारा। श्रीनाथ चलते-चलते रुका और फिर उसके यहां काम करनेमें जुट गया।

शीतकी उस भरी दोपहरीमें एकाकी श्रीनाथ खोदता चला जा रहा था, कभी उस ओरकी हरियालीपर उसकी भटकी-सी दृष्टि बंध जाती, कभी चित्त भरम पड़ता उस अट्टालिकाके नरम गलीचेपर, रूपपरी बाईजीपर। और तब चित्त लौटकर रम रहता पैसोंपर—चाहिए पैसा, पैसा-पैसा।

और यह धरती ? वह हरी-हरी गेहूंकी बालें ? यह घास-पत्ती, पेड़-पौधे, यह आलू, बैंगन, सेम ? सभी तो धरती ही उपजाती है न ? और पैसे ? सहसा वह एकदम सीधा होकर खड़ा हो गया, आंख गड़ाकर धरतीको देखने लगा। देखते-देखते वह पागलकी तरह हंस उठा—है, इसी धरतीके नीचे पैसोंका ढेर है—पैसे, रुपये, सोना। कैसा अन्धा हूं मैं, कैसा पागल ? अन्नकी हांड़ी यह अपने गर्भमें भरे रहती है, शाक-सब्जी, फल-फूल सब-सब। फिर पैसे ही क्यों नहीं? हैं और जरूर हैं पैसे। इन्हीं पसोंसे भरी धरतीपर कब्जा करनेके लिए ही आदिकालसे एक-दूसरेसे लड़ते-झगड़ते, खून बहाते आ रहे हैं न ? कैसा अन्धा हूं मैं ?

अर्द्ध उन्मत्त-सा जब श्रीनाथ घर आया, तब माता अवाक्, शङ्कित मुखसे उसे देखती ही रह गयी, तब तक खोदनेके यन्त्रोंको लेकर वह चल ही तो पड़ा था।

हरद्वारसे दूर—बहुत दूर तराईमें, घाममें तपा हुआ श्रीनाथ खोदता ही चला जा रहा था। एक दृढ़ निश्चय उसके हाथोंमें शिथिलता आने न देता, स्थिर-निश्चय हृदयमें निराशाको न आने देता, चला जाता वह खोदता हुआ—रात-दिन भूखा और प्यासा। न जाने कितने दिन और कितनी रातें निकल चुकीं, किन्तु श्रीनाथकी स्फूर्ति निकलकर भी न निकलना चाहती।

× × ×

चन्द्रमाकी रजत चांदनी, उस प्रशस्त गड्ढेमें जैसे अनगिनती सितारे चमक उठे। एक क्षण खोदना बन्दकर श्रीनाथके नेत्र, हृदय उसी चमकमें कब समाहित-से हो रहे, सो वह कुछ भी नहीं जानता।

तब ? उस एक दिनकी बात। उस बृहत् अट्टालिका, अनेक दास-दासी, गाड़ी-मोटरके झमेलेमें भी कहीं पता न चलता उस मजदूर नहीं, अमीर, स्वर्ण-खानके मालिक श्रीनाथका। नहीं, उस दिन भी नहीं—जिस दिन कि सुरमाबाईकी गाड़ी आकर उसके द्वारपर रुकी।

नवनिर्मित, परिष्कृत गृह, मूल्यवान द्रव्य-सामग्री, श्वेत रेशमी वस्त्र पहने, माला जपती, सङ्गमर्मरकी चौकीपर बैठी जम्हाई लेती हुई श्रीनाथकी माता। सुरमा मणि-मुक्ता-खचित वस्त्र-अलङ्कार पहने एक जीवित नक्षत्रकी भांति आकर खड़ी हो गयी।

विनीत प्रणामके साथ पूछी उसने श्रीनाथकी बात। माताने उस ओर अवहेलनासे देखा, कहा—

"श्रीनाथ ? कौन जाने कहां, ऊपर होगा।"

झपटी-सी चली गयी सुरमा ऊपर, कमरोंमें झांकती हुई उस कमरेमें पहुंची—जहां रुपये, पैसे, मोहरोंके ढेर लगे हुए थे। बन्द द्वारके कांचके भीतरसे उसने झांककर देखा, नहीं, उन ढेरोंके पास श्रीनाथ कहीं भी नहीं था। विस्मय-स्तब्ध वह देर तक खड़ी रही। फिर श्रीनाथके छोटे भाईसे पूछा। उत्तर वैसा ही सीधा-सा संक्षिप्त था—"होंगे कहीं बैठकमें।"

पहुंची सुरमा बैठकमें भी—जहां कितने ही धनी-मानियों, व्यापारियों आदिका एक खासा दरबार-सा लगा

हुआ था। मुनीम-गुमाश्ते सिर झुकाये कुछ लिख रहे थे।

"श्रीनाथ बाबू कहां हैं?"—सुरमाने व्यस्ततासे पूछा।

"उन्हींके लिए हम भी बैठे हैं—उस आश्चर्यकी कथा सुननेके लिए।"

"मिट्टीके नीचेसे सोना निकाला, एक अचम्भा ही तो हो गया।" एकने कहा।

कोई कह उठा—"कलका मजदूर आजका राजा, अजीब है यह दुनिया।"

"अरे भाई, अपढ़ मजदूरके भीतर भी एक ऐसी प्रतिभा भरी है, सो कौन जानता था।"

"बस।"—हाथ उठाया सुरमाने—"कहां है वह?"

"ईश्वर जाने।"

"मैं उसे ढूंढ़ निकालूंगी।"—चल पड़ी सुरमा अशान्त गतिसे। कहां-कहां उसने खोजा और कब तक वह खोजती रही, सो तो वही जाने।

× × ×

उस दिन आकाशमें सूरज डूब चुका था। मेघोंके साम्राज्यमें पवन लुप्त हो गया था, धूसर परछाईंमें धरती निद्रित-सी हो रही थी।

बोल उठी सुरमाकी पायल–रिन-झिन–उस स्वर्णभण्डार-के मध्यमें। अन्धकार? नहीं, उस खानके भीतर सूर्यकिरणें पिचकारीमें भरकर फेंकी जा रही थीं—चारों ओर स्वर्णकी झिलमिली।

सुरमा मध्य भागमें पहुंचकर थम रही, नेत्रोंकी दृष्टिमें समा रहा एक सर्वग्रासी मोह, और तब उसका विस्मय विमूढ़तामें समा रहा—तभी-जब कि देखा उसने श्रीनाथ-को वहींपर बैठे हुए।

चारों ओर चमकीले सुवर्ण प्रस्तर, छोटे-बड़े चमकते पत्थर, उन्हींपर बैठा, देहको उसीमें चिपकाकर बैठा अतुल धनका स्वामी श्रीनाथ।

"श्रीनाथ!"—धीरे-धीरे, दबे-दबे, विस्मयसे उभरते-उभरते पुकारा उस सुरमा-सी सुरभित सुरमाने।

देखा उस ओर श्रीनाथने। एककी दृष्टि दूसरेको इस तरहसे रिक्त, शङ्कित कर सकती है—इस बातकी सत्यताकी रक्षा कर रही थी उस दिनकी वह सुरमा।

आशङ्कासे भरी-भरी वह सिहर उठी—कहां है वह रूप-मुग्ध, लालायित दृष्टि? कहां, सो कैसे और कब और किसने छिपा ली, कहां समा गयी वह दृष्टि? किसने छीन लिया उस दृष्टिको? कौन-से उजड़े मैदानमें गुम हो गयी वह दृष्टि? इन आखोंमें इसने कौन-से रक्त-पिपासु राक्षस-को बसेरा दे डाला है?

"श्रीनाथ, आज मैं आयी हूं और एकान्त भावसे तुम्हारी ही होकर रहनेके लिए आयी हूं। सुन रहे हो न?"—तो भी एक निर्लज्ज स्त्री कह ही उठी।

"जाओ।"—जैसे कोई गहरे कूपसे कह उठा।

"जाऊं? अब जरूरत नहीं है मेरी तुमको?"

"है।"

"तो?"

"यह अनन्त पिपासा—"

"अविश्वास कैसा? उस पिपासाकी मैं शान्ति कर दूंगी—प्रेमके कलोच्छ्वाससे। सिरहाने बैठी गान सुनाया करूंगी—प्रेमसे भरा।"

सहसा वह चीत्कार कर उठी—"श्रीनाथ—श्रीनाथ, यह क्या?"–उसके विस्फारित नेत्र श्रीनाथकी देहपर आबद्ध हो रहे।

"तुम्हारे रोम-रोम इस तरहसे काले क्यों पड़ रहे हैं? वे सिकुड़ क्यों रहे हैं? नसें तन क्यों रही हैं? नसें नीली क्यों हो रही हैं?"

"प्यास—प्यास।"

"प्यास? इस अतुल धनका स्वामी भी अपनेको प्यासा कहे?"

"प्यास—प्यास—प्रतिपल वह बढ़ती जाती है।"

स्तब्ध हो रही सुरमा—यह कहां, वह कौन-से रक्त-पिपासु दैत्यके निकट आ मरी है?—पल-भर, पल-भर उसने नेत्र उठाकर फिर भी उस ओर देखा, फिर भाग निकली। उसे लगने लगा—उसके अन्तरमें बैठी वह पर्देकी आड़की नारी कहीं उस पिपासामें योग न दे बैठे। कौन जाने, एक हलके परदेकी ही तो आड़ है न।

———

ये हैं १९४१ की महिलायें

श्रीमती राजलक्ष्मी अरोड़ा



अमेरिकन युवती जूनहार, जो केवल १२ दिनमें टाइपिस्टसे वायुयान-चालक हो गयीं।

भौतिक स्वतन्त्रता और समानताका दावा गर्वके साथ करनेवाली यूरोपीय महिलायें जब जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें पुरुषों-से स्पर्धा कर रही हैं, तब यही कैसे हो सकता था कि वे आकाशमें उड़ने और अपने साहस-का परिचय देनेमें पुरुषोंसे बहुत पीछे रहतीं। हवाई जहाजोंके आविष्कारने इस दुनियामें क्रान्ति उपस्थित कर दी है। १७ दिसम्बर १९०३ को इस युगका पहला हवाई जहाज आकाशमें उड़ा था। इसके निर्माता मि० ओरविली राइट नामक प्रसिद्ध अमेरिकन वैज्ञानिक थे। उस समय इसकी रफ्तार ३० मील प्रतिघण्टे थी। मि० ओरविली राइट जब अपने बनाये हुए हवाई जहाजमें सबसे पहले उड़े होंगे, उस समयके कौतूहलकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। आज वह बात नहीं रह गयी है। हवाई जहाजोंकी निर्माण-कलामें गत ३८ वर्षमें असाधारण उन्नति हुई है और प्रत्यक्ष है कि हवाई जहाजोंकी बदौलत १९०३ की अपेक्षा आज दुनिया बहुत छोटी रह गयी है। पहले अगर कोई पृथिवीकी परिक्रमा करनेका साहस करता, तो उसे निश्चय ही कई महीने लग जाते। किसी यूरोपियन लेखकने ३० दिनमें पृथिवीकी परि-क्रमा करनेकी कल्पना की थी और उसे बड़े ही रोचक ढङ्गसे लिखा था। हवाई जहाजोंकी उन्नतिने उस कल्पनाका सारा माधुर्य नष्ट कर दिया है। अमेरिकाके प्रसिद्ध करोड़पती हावर्ड ह्यूज ११ जुलाई १९३८ को न्यूयार्कसे रवाना हुए। उन्होंने हवाई जहाज द्वारा ३ दिन १९ घण्टे १३ मिनटमें पृथिवी-परिक्रमा की, केवल उड़नेका ही समय जोड़ा जाय तो कुल ९७ घण्टे ७ मिनटमें। इसकी तुलना उन १०८३ दिनोंसे कीजिये, जिन्हें १५१९ ईसवीमें जहाज द्वारा पृथिवी-परिक्रमा करनेमें स्पेन-निवासी मेगेलिनने लगाया था। मेगेलिन स्पेनके सेविली स्थानसे ५ जहाजोंको लेकर रवाना हुआ था और जब वह लौटकर पहुंचा, केवल एक जहाज रह गया था।

इसका श्रेय हवाई जहाजके आविष्कारकको है कि मनुष्य उत्तर ध्रुवके ऊपरसे बिना रुके हुए लगातार ६७६० मील तक उड़ता चला गया, जब उड़ना आरम्भ किया तो जमीनपर उतरे बिना लगातार २७ दिन तक उड़ता ही रहा, ऊंचा चढ़ने लगा तो ७२३९५ फीट तक चढ़ता ही चला गया। इसी तरह जब मनुष्य हवाई जहाजमें बैठकर हवाका प्रति-द्वन्द्वी हुआ, तब घण्टेमें ४६९.११ मील तक उड़ा।

लिखा जा चुका है कि इस स्पर्धामें यूरोप और अमे-रिकाकी महिलायें पुरुषोंसे बहुत पीछे नहीं हैं। मई १९३८ में फ्रान्सकी प्रसिद्ध महिला मिसेज डुयेरनने एक लम्बी उड़ान भरनेका प्रयत्न किया था। उन्होंने ओवान स्थानसे ईराक तक २४४७.७२८ मीलकी यात्रा एक ही उड़ानमें तय की थी। फ्रान्सकी एक अन्य महिला हैं मिले हिल्ज, इन्होंने १९३६ में २८७४३.३५२ फीटकी ऊंचाई तक चढ़नेका साहस दिखलाया था। इसी तरह हवाई जहाजकी तेज रफ्तारकी दृष्टिसे अमेरिकाकी प्रसिद्ध महिला जे० कोचरनका स्थान पहला है, जो घण्टेमें २९२.२७१ मीलके हिसाबसे हवाई जहाजको उड़ा ले गयी थीं। अमेरिकाकी एक अन्य महिला



फ्रान्सके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री मोशिये रैनाकी पत्नी मेडम पाल रैना हवाई जहाज उड़ानेमें बहुत कुशल हैं।

हैं मिसेज अमीलिया ईयर हार्ट पुटनम। इन्होंने १९३२ में अकेले ही हवाई जहाज द्वारा अटलाण्टिक महासागरको पार किया था, ग्रेस बन्दरगाहसे उड़कर १३॥ घण्टेमें २०२६॥ मीलकी यात्रा कर आयरलैण्डमें पहुंची थीं। पुरुषोंने हवाई जहाजकी रफ्तार, उड़ान और अन्य प्रकारकी क्षमताओंकी जो मर्यादा अभी तक कायम की है, वह निश्चय ही अन्तिम नहीं है; परन्तु जो विवरण यहां दिया गया है, उससे यह तो स्पष्ट ही है कि महिलायें भी इस दिशामें अच्छे साहसका परिचय दे रही हैं और अभी तक भले ही वे पुरुषोंसे आगे न जा सकी हों, पुरुषोंको पछाड़ न सकी हों; परन्तु उनके पीछे तो चल ही रही हैं, बड़ी शीघ्रतासे पुरुषोंकी कक्षामें आ रही हैं। यह बड़े हर्षका विषय है।

यों तो पहले ही सारा संसार जान चुका है कि इस युगके लिए हवाई जहाजोंका महत्त्व कितना अधिक है न केवल यात्रा करने और डाक ले जानेके एक अच्छे और द्रुतगामी यानके रूपमें, बल्कि युद्धके एक आवश्यक और प्रबल साधनके रूपमें भी। वर्तमान महासमर १९१४ वाले महासमरसे बहुत बातोंमें बिल्कुल भिन्न है और यह भिन्नता अन्य कितने ही नये-नये आविष्कारोंके कारण जो है वह तो है ही, हवाई जहाजोंकी उन्नतिके कारण भी बहुत कुछ है। यहां हवाई जहाजोंकी युद्ध-कलाके विषयमें कुछ लिखना अभीष्ट नहीं है, हम जो कुछ कहना चाहते हैं उसका निचोड़ यही है कि हवाई जहाज शान्ति और युद्ध, दोनों ही कालोंमें मानव-समाजके लिए बहुत ही उपयोगी साबित हुए हैं और हो रहे हैं। फिर यह केवल उपयोगिताका ही प्रश्न नहीं है, जमीनसे ऊपर आकाशमें हवासे बातें करते हुए यात्रा या सैर-सपाटा करनेमें कुछ बात ही दूसरी है। आकाश-विहारका आनन्द यदि महिलाओंको विशेष रूपसे आकर्षित न करे, तो वह और किसे करेगा। क्या आश्चर्य है, यदि इस ओर यूरोप और अमेरिकाकी महिलाओंका ध्यान विशेष रूपसे आकृष्ट हुआ और उन्होंने इसमें इतना अनुराग दिखलाया कि उनकी प्रगतिकी ओर सारे संसारकी आंखें लगी हुई हैं।

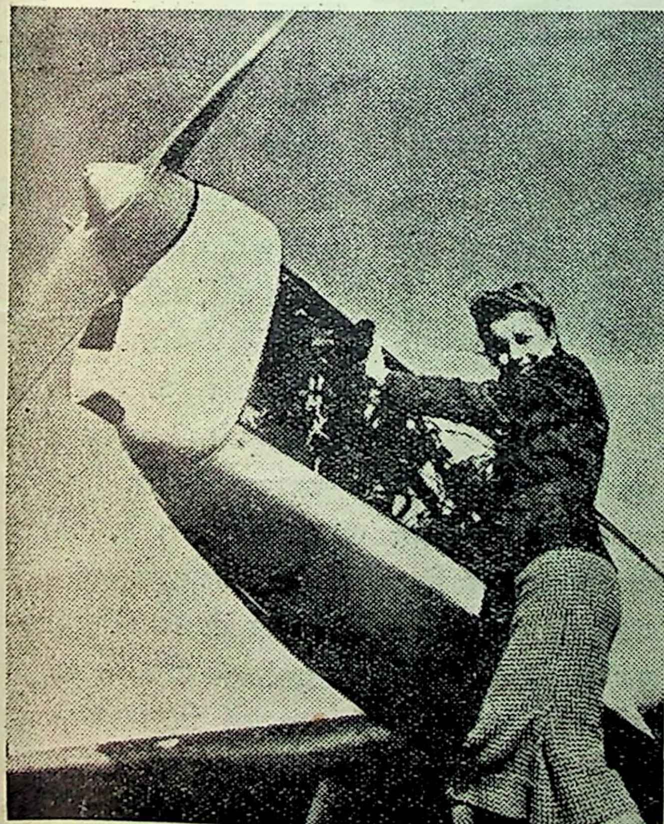
वर्तमान महासमरसे पहले ही हवाई जहाज चलानेकी कला सीखनेमें सैकड़ों नहीं, हजारों महिलायें निपुण हो चुकी हैं। फ्रान्स और अमेरिका, ये दोनों देश संसारके अन्य देशोंसे इस दृष्टिसे बहुत आगे हैं; परन्तु इंगलैण्ड भी पीछे नहीं है। फ्रान्सके भूतपूर्व प्रधानमन्त्री मोशिये रैनाकी पत्नी मेडम पाल रैना हवाई जहाज उड़ानेकी कलामें बहुत ही दक्ष हैं और उन्होंने अपने देशमें महिलाओंको हवाई जहाज उड़ाना सीखकर आकाश-विहार करनेके लिए बहुत प्रोत्साहन दिया है। फ्रान्सकी दो अन्य महिलाओं — मिसेज डुयेरन और मिले हिल्जका उल्लेख पहले ही किया गया है, जिनका नाम क्रमशः हवाई जहाज द्वारा लम्बी उड़ान भरने और उसे आकाशमें बहुत ऊंचाईपर चढ़ा ले जानेकी दृष्टिसे संसारकी महिलाओंमें प्रथम है। इसी तरह जे० कोचरन पहली महिला हैं जिन्होंने अपना हवाई जहाज २९२.२७ मीलकी रफ्तारसे उड़ाया। अटलाण्टिक महासागरको सर्वप्रथम

अकेले ही पार करनेवाली और इस तरह मृत्युके साथ क्रीड़ा करनेका हौसला रखनेवाली महिला हैं मिसेज अमीलिया ईयर हार्ट पुटनम। इन दोनों महिलाओंको जन्म देनेका गौरव अमेरिकाको है। जिस देशने इस तरहकी साहसी महिलाओंको जन्म दिया है, वह क्यों न अपनेको गौरवशाली समझे।

इंगलैण्डकी महिलाओंने यद्यपि हवाई जहाज चलानेमें कोई रेकार्ड नहीं कायम किया है, तथापि वहां महिलाओंमें हवाई जहाजको स्वयं उड़ाने और आकाशमें विहार करनेके लिए इतना उत्साह है कि आश्चर्य होता है और साथ ही प्रसन्नता भी। युद्धसे पहले ही वहां यह अवस्था थी कि सप्ताहके अन्तमें किसी दिन, जब मौसम साफ हो, हवाई जहाजोंके क्लबमें जाइये—आपको कितनी ही महिलायें वहां मिलेंगी। चालकका टोपा और गागल लगाये हुई इन महिलाओंमेंसे कोई अपने हवाई जहाजके एञ्जिनको ठीक कर रही होगी, तो कोई पेन्सिल हाथमें लिये हुए नक्शोंमें व्यस्त



अमेरिकन युवती जूनहार शिक्षकके साथ नक्शा देखनेमें तल्लीन हैं।



आकाशमें उड़नेसे पहले हवाई जहाजके कल-पुर्जोंकी आवश्यक जानकारी प्राप्त करनेके प्रयत्नमें कुमारी थेल्मा मोरिस (ब्रिटेन)।

होगी और कोई उड़नेके लिए बिलकुल ही तैयार होगी। एक ही मिनटमें आप देखेंगे कि वह आकाशमें चिड़ियोंकी तरह स्वच्छन्द विहार कर रही है। ये हैं नवयुगकी महिलायें, जिनकी संख्या ब्रिटेनमें युद्धसे पहले-पहले १० हजारसे अधिक थी। हवाई जहाजोंके क्लबोंमें जाकर ये अपने अवकाशके समयमें चालकका लाइसेन्स प्राप्त करनेके लिए शिक्षा प्राप्त करती हैं, अवकाशके समयका सर्वोत्तम उपयोग करती हैं। १॥-२ साल पहले ब्रिटेनमें इस तरहका लाइसेन्स रखनेवाली महिलाओंकी संख्या १००० से ज्यादा थी।

इन आकाश-विहारिणी महिलाओंमेंसे बहुत तो इसीसे सन्तुष्ट रहतीं कि कुछ शिलिङ्ग खर्च कर अपने अवकाशके कुछ घण्टे हवाई जहाज द्वारा सैर-सपाटा कर तबियत बहलानेमें लगायें। जिनके पास अपनी मशीन नहीं होती, वे नाममात्रके किरायेपर उसे अपने क्लबसे आसानीसे प्राप्त कर ही लेतीं। कितनी ही महिलायें चलाना सीख जानेसे पहले ही अपना हवाई जहाज खरीद लेतीं और जो नहीं खरीद सकतीं, वे भी यह तो सोचतीं ही कि कब उन्हें उसे खरीदनेका अवसर मिल सकेगा। लड़ाई आरम्भ होनेके बादसे यद्यपि



जूनहारको पीठपर पेराशूट बांधनेकी शिक्षा दी जा रही है।

ब्रिटेनके जिस कारखानेने 'अलबतरास' और 'माथ' टाइप-के हवाई जहाजोंको तैयार किया है, उसीने सस्ते मेलका एक अन्य हवाई जहाज 'माथ माइनर' भी तैयार किया है। बनावट और मशीनरी इतनी सादी है और उड़ाना इतना आसान है कि उसे हवाई मोटर कहना ही ठीक है। यह हवाई मोटर युद्धसे पहले ५७५ पौण्डमें बिक रही थी। मिलकर अगर उसे खरीदना चाहतीं, तो मध्य स्थितिकी दो-तीन महिलायें भी उसे आसानीसे खरीद सकतीं। उसे रखनेके लिए भी दो पौण्ड मासिक किरायेका गैरेज काफी है। २४ फीट लम्बी और इसकी आधी चौड़ी जगहमें यह मजेसे रखी जा सकती है। घरके पीछे अगर २०० वर्ग गज तककी कोई खुली जगह हो, तो गैरेजकी भी जरूरत नहीं, वहीं टीनडाली जा सकती है और आकाशसे सीधे वहीं उतरा जा सकता है। फिर, इससे भी अधिक सुभीता

पुरुष चालकोंकी शिक्षाका कार्य बहुत बड़े पैमानेपर हो रहा है, तथापि महिलाओंके लिए भी युद्धने अभूतपूर्व अवसर उपस्थित किया है और वे इससे पूरा लाभ उठा रही हैं, वर्तमान परिस्थितिमें भी जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें पुरुषोंके साथ कदम उठा रही हैं, और सेना भी उनके लिए अपवाद नहीं है।

इंगलैण्डकी महिलाओंको आकाश-विहारिणी बननेके लिए सबसे अधिक प्रोत्साहन मिला है उस परिस्थितिसे, जो युद्धसे पहले वहां थी और युद्धके बाद तो वह और भी अधिक अनुकूल हो गयी है।

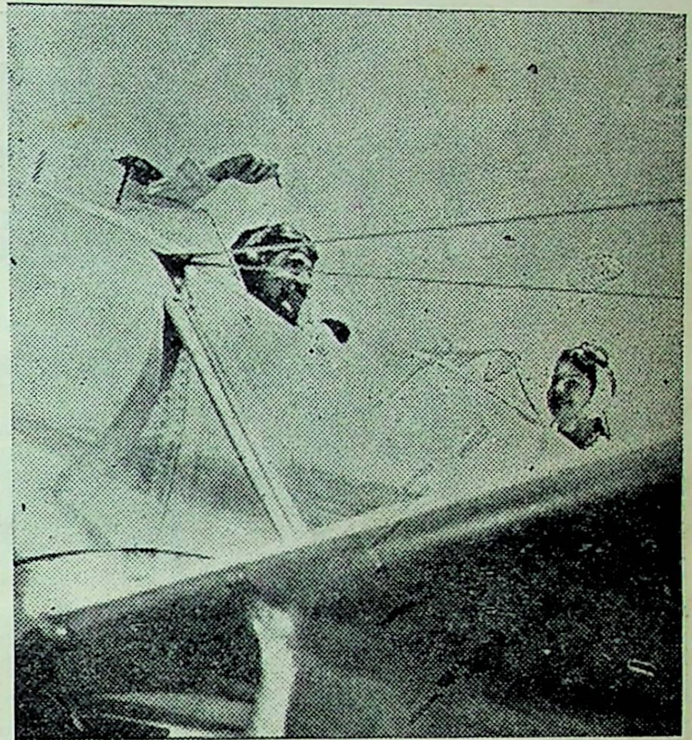
एक और—हवाई जहाज चलाना सीखनेके लिए जहां क्लबों तक आसानीसे पहुंचा जा सकता है, वहां कुछ पौण्डोंमें लाइसेन्स मिलनेमें भी कोई कठिनाई नहीं। इस हवाई मोटरमें उड़नेसे पेट्रोलका खर्च भी कम ही होता है—एक गैलनमें २५ मील। जहां इतनी सब सुविधायें हों वहां क्यों न ब्रिटेनकी महिलायें आकाशमें विहार करने और वायुसे विनोद करनेका आनन्द लें। युद्धसे पहले उनके लिए सप्ताहके अन्तिम दिनोंका सैर-सपाटा ब्रिटेनकी सीमा तक ही सीमित नहीं रह गया था और क्यों रह जाता, जब वे दो घण्टेमें दो पौण्ड खर्च कर आसानीसे पेरिस होकर लौट

सकती थीं। इस सैर-सपाटेमें यदि कोई सहेली भी शामिल हो, तो खर्च बिलकुल ही कम।

अमेरिकन महिलायें तो बहुत पहलेसे ही हवाई जहाज द्वारा उड़कर अपना नाम कर चुकी हैं। इसके लिए उन्हें वहां सारी सुविधायें हैं और वह समय दूर नहीं मालूम होता, जब हवाई जहाज मोटरोंका स्थान ले लेंगे। अमेरिकन महिलाओंको हवाई जहाजमें बैठकर सैर-सपाटा करने और उसे स्वयं उड़ानेके लिए कितना उत्साह है, इसका कुछ अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि गत अगस्तमें जूनहार नामक एक पचीस वर्षीय सुन्दरीने कुल १२ दिनकी शिक्षाके बाद ही चालकका लाइसेन्स प्राप्त कर लिया।

जूनहारकी कहानी बड़ी ही रोचक है—यद्यपि जूनहारकी तरह कितनी ही महिलाओंने इससे पहले ही कुछ अधिक समयमें चालकका लाइसेन्स प्राप्त कर लिया है। हवाई जहाजोंके कारबारके दफ्तरमें जूनहार टाइपिस्टका काम किया करती थी। वहीं टाइपराइटरपर अंगुलियां चलाते-चलाते वह देखती कि सामने कैसे भर्राटेके साथ हवाई जहाज आकाशमें चढ़ जाते हैं। कई महीने देखते रहनेके बाद एक दिन उसने चालक होनेका निश्चय किया। इसके लिए कुछ रकम पास होना आवश्यक था। उसे प्रति सप्ताह २५ डालर वेतन मिलता था। उसने नये कपड़े नहीं खरीदे, अपने छोटे-मोटे काम भी स्वयं ही किये और जब आवश्यक रकम जमा हो गयी, एक दिन वह सीधी हवाई जहाज चलानेकी शिक्षा देनेवाले क्लबमें पहुंच गयी और कहा—"मैं उड़ना सीखना चाहती हूं।" जूनहारने शिक्षाकालमें ३२५ डालर फीस देकर कुल १२ दिनमें हवाई जहाज चलानेकी योग्यता प्राप्त कर ली। उसका वजन यद्यपि ११३ पौण्डसे घटकर १११ पौण्ड रह गया, तथापि यह क्षति अधिक नहीं थी। इच्छा होनेसे अब उसे टाइपिस्ट रहनेकी जरूरत नहीं है। वह चाहे तो किसी भी हवाई जहाज क्लबमें शिक्षिका हो सकती है। उसके दफ्तरकी कितनी ही युवतियोंने अपने जीवनका क्रम बदल लिया है।

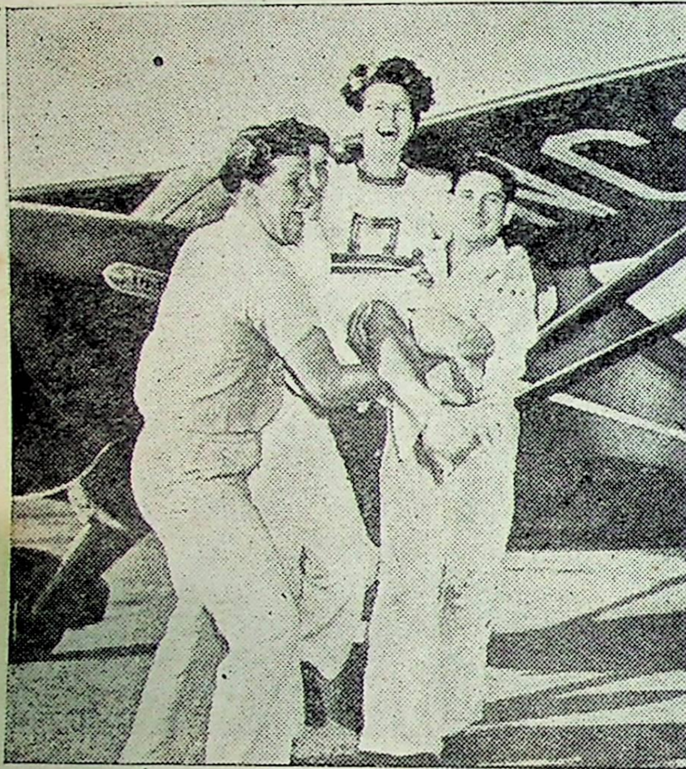
चालक होनेकी शिक्षाके लिए डाक्टरी परीक्षामें उत्तीर्ण होना अत्यन्त आवश्यक है—आंखकी दृष्टि, हृदयकी अवस्था, रक्तका दबाव और साधारण स्वास्थ्य ठीक होना ही चाहिए। आंखें कमजोर हों, तो उपयुक्त कांचवाले गागलोंसे



चालकके लिए कई सङ्केत जानना भी आवश्यक है। शिक्षक अपने शिरपर हाथ ले जाकर जूनहारको सङ्केत कर रहा है।

काम चल जाता है। आरम्भमें नक्शोंकी सहायतासे हवाई जहाजोंके मार्गसे परिचित होना पड़ता है। फिर, आकाशमें हवाई जहाज ले जानेसे पहले उसके पुर्जोंकी थोड़ी जानकारी भी होनी ही चाहिए, जिससे अगर मशीनमें कुछ खराबी हो जाय, तो उसे सुधारा जा सके। हवाई जहाजके आगे लगे हुए पङ्खेका घुमाना सीखनेमें कितने ही चालकोंको कठिनाई पड़ती है। जमीनपर उतरने और आकाशकी ओर उठनेका अभ्यास यों तो जल्दी ही हो जाता है; परन्तु यदि इसमें थोड़ी भी लापरवाही की जाय, तो बड़ा भय रहता है। पैराशूट सीखनेवालेकी पीठपर ही बंधा रहता है, जिससे आवश्यकता पड़नेपर काम लिया जा सके।

अमेरिकाके कानूनके अनुसार किसी व्यक्तिके चालक होनेके लिए यह अनिवार्यतः आवश्यक है कि वह शिक्षकके साथ कमसे कम ८ घण्टे तक उड़ चुका हो—शिक्षकके साथ इसलिए कि यदि कोई गलती होने लगे, तो उसे वहीं ठीक कर दिया जाय। इस कार्यके लिए, शिक्षकके साथ उड़कर शिक्षा पानेके लिए खास तरहके हवाई जहाज होते हैं,



पहली उड़ानका असीम आनन्द—हवाई जहाज जमीनपर उतरते ही क्लबके मिस्त्रियोंने जूनहारको प्रसन्नतासे उछलकर उठा लिया।

जिनमें नियन्त्रण रखनेके पुर्जे दुहरे होते हैं। शिक्षकोंको उड़ते समय प्रायः हाथसे सङ्केत करनेकी आवश्यकता पड़ जाती है। ये सङ्केत पहले ही बतला दिये जाते हैं। शिक्षक यदि अपने शिरके ऊपर हाथ ले जाय, तो उसका अर्थ यह है कि वह स्वयं मशीनको नियन्त्रणमें लेना चाहता है। इसी तरह जहाजको नीचे या ऊपर ले जाने और मोड़नेके सम्बन्धमें भी सङ्केत हैं। उनके बातचीत कर सकनेके लिए भी व्यवस्था है। यह कहनेकी तो आवश्यकता ही नहीं है कि इस शिक्षाके बाद परीक्षा भी होती है। परीक्षामें उत्तीर्ण होनेपर चालक ५० मीलकी दूरी तक किसी भी दिशामें जा सकता है, परन्तु प्राइवेट चालकका लाइसेन्स मिलनेके लिए ३९ घण्टेकी उड़ान आवश्यक है। यह लाइसेन्स हो, तो फिर उड़नेपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। आकाश असीम है।

अमेरिकन महिलायें इस अनन्त आकाशकी ओर बड़ी शीघ्रतासे बढ़ रही हैं। जलसेना और वायुसेनासे अलग बहुत ज्यादा संख्यामें युवक और युवतियां आकाशमें विचरण करनेके लिए आवश्यक शिक्षा पानेके निमित्त क्लबोंमें पहुंच रही हैं। इस तरहके १०० शिक्षार्थियोंमें कमसे कम २० तो युवतियां होती ही हैं। मोटर चलानेकी भांति हवाई जहाज उड़ानेमें भी अमेरिकन महिलायें पुरुषोंसे किसी तरह भी कम कुशल नहीं हैं।

महिलाओंकी इस प्रगतिकी दृष्टिसे स्वदेश कहां है, हमारी मातायें और बहनें इस ओर कैसा कदम उठा रही हैं, यह प्रश्न स्वभावतः उठता है। यह कम दुःखकी बात नहीं है कि देशकी १७ करोड़से अधिक महिलाओंमें 'ए' श्रेणीका लाइसेन्स रखनेवाली बहिन केवल एक श्रीमती गीताबाई गैंडगिल हों। इसीसे बी० श्रेणीका लाइसेन्स रखनेवाली बहिनोंकी संख्याका भी अनुमान किया जा सकता है। किन्तु महिलाओंकी बात हम क्या कहें, जब देखते हैं कि चालक होनेके उत्साही हजारों और लाखों युवकोंके लिए भी कोई अवसर व्यवहारतः नहीं है। हवाई जहाजों द्वारा उड़नेका जो उत्साह आज यूरोप और अमेरिकाके युवकों और युवतियोंमें देखा जाता है, उसका यहां शतांश भी नहीं है। इसका कारण एक ओर जहां शिक्षा-सम्बन्धी स्थिति, रहन-सहन और सामाजिक विचार हैं, वहां इससे भी प्रबल कितने ही अन्य कारण हैं, जो देशके शिक्षित युवकों और युवतियोंके अग्रसर होनेके मार्गमें बाधक हो रहे हैं—प्रोत्साहन देनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं है। जो क्लब हवाई जहाज चलानेकी शिक्षा देते हैं, उनकी संख्या सारे भारतमें कुल १० है, जिनमें तीन रियासतोंमें हैं। इन क्लबोंकी शोचनीय अवस्थाका कुछ अनुमान इसीसे हो सकता है कि अगस्त १९४० में लखनऊ क्लबको केवल १७ दिन हवाई जहाज मिल सका और इन दिनोंमें कुल ५४ घण्टे तक उड़ा जा सका। ब्रिटिश भारतके सभी क्लबोंकी १९३८ की रिपोर्ट भी इस समस्याके बहुत ही खेदजनक पहलूपर प्रकाश डालती है। १९३७ में इन सब क्लबोंमें जहां कुल मिलाकर १०६८३ घण्टे उड़ा गया था, वहां १९३८ में केवल ९३६८ घण्टे। इस प्रगतिशीलताकी भी भला कोई सीमा है? फिर यहां 'बी' श्रेणीका लाइसेन्स भी लगभग ७०० रुपयेमें पड़ता है और 'ए' श्रेणीके लिए तो लगभग ३००० रुपयेकी खासी रकम ही चाहिए! गरीब देशवासियोंको हौसला हो तो कैसे? क्या आश्चर्य

है, यदि देशमें प्राइवेट हवाई जहाजोंकी संख्या—युद्ध आरम्भ होनेके पहले—नरेशोंके २० हवाई जहाजोंको छोड़कर कुल ४५ हो। युद्ध आरम्भ होनेके बाद पुरुष चालकोंको तैयार करनेके लिए इधर कुछ प्रगति देखनेमें आ रही है, और हालमें ही बाहरसे कुछ हवाई जहाज लेकर एक जहाज आ गया है और दूसरा आ रहा है, कुछ छात्र-वृत्तियोंकी भी व्यवस्था हुई है, परन्तु यह सारा प्रयत्न इतने विशाल देशमें प्रायः नहींके बराबर है और संसारकी प्रतिद्वन्द्वितामें हमारा कोई स्थान नहीं है। अभी तक देशमें हवाई जहाजों सम्बन्धी उच्चसे उच्च शिक्षाकी कोई व्यवस्था नहीं है और स्वदेशमें हवाई जहाज तैयार करनेकी बात तो अभी तक चर्चा ही है।

हम कहां हैं—यह समझनेके लिए इंगलैण्ड और अमेरिकाकी ओर देखनेका तो कोई अर्थ ही नहीं है—हमारे सामने छोटा-सा आस्ट्रेलिया है, जहां जबसे युद्ध आरम्भ हुआ है, गत १॥ वर्षमें हवाई जहाज चलानेकी शिक्षा देनेवाले क्लबोंकी संख्या २५ गुनी हो गयी है और जहां पहले प्रतिमास ८ चालक तैयार हो रहे थे, वहां आज २०० चालक तैयार हो रहे हैं।

———

कोरियाकी सैर

श्री रामनाथ विश्वास

सिंगोरी नदीका पुल पारकर मैं कोरियामें घुसा। मेरे आनेकी खबर पहले ही अखबारोंमें छप चुकी थी। मैं अभी अधिक दूर नहीं गया था कि एक कोरियन युवकने आकर कहा—महाशय, मैं आपको पिं इयां तक रास्ता दिखा दूंगा। बातचीतके सिलसिलेमें मालूम हुआ कि उसने मिशनरी स्कूलमें मैट्रिकुलेशनकी परीक्षा पास की है। अंगरेजीमें अच्छी तरह बातचीत कर लेता है। हिन्दुस्तानके बारेमें भी उसने कई किताबें पढ़ी हैं। कोरियाकी जापानी सरकारने मेरे साथ एक सिपाही भी भेज दिया था। थोड़ी दूरपर एक पहाड़ मिला। पहाड़पर नये पेड़ पनप रहे थे। मैंने ठहरकर युवकसे इसका कारण पूछा। उसने बताया कि "जब कोरिया चीनका मित्र राज्य था, उस समय कोरियनोंने पहाड़के सब पेड़ोंको काटकर इसे चीनके पहाड़ोंकी तरह बना दिया था। जापानियोंके आनेके बाद नये पेड़ उग रहे हैं और देशका प्राकृतिक अभियोग कुछ अंशोंमें दूर हुआ है।" साइकिलपर चढ़ते हुए मैंने कहा—"जापानियोंके आनेसे कमसे कम एक लाभ तो जरूर हुआ है।" युवकने आश्चर्यसे कहा—"जापानियोंके आनेसे बहुत लाभ हुआ है, और वे हमारे लिए गैर थोड़े ही हैं। लेकिन आप ही कहेंगे कि कोरिया पराधीन है। पराधीन सोनेके सिंहासनपर बैठकर भी पराधीन ही है—स्वाधीन नहीं। जो पराधीन है, वह मनुष्य नहीं है, जङ्गलका जानवर भी नहीं है, वह पालतू कुत्ता है। मैंने समझा था, आप बुद्धिमान हैं और ऐसी बात नहीं करेंगे। लेकिन मुझे मालूम हो गया कि आप दुनियाके बारेमें कुछ भी नहीं जानते हैं, विदेशोंमें सीखनेके लिए निकले हैं।" मैंने कहा—"चुप रहकर मनुष्य कितना सीख सकता है।" युवकने लज्जित होकर कहा—"चलिये, दिन बहुत चढ़ आया है।" हम लोग आगे बढ़े।

कोरियामें एक कहावत है कि जापानी क्लर्क, कोरियन मजदूर और चीनी हिकमत इन तीनोंको इकट्ठा करके दुनियाको जीता जा सकता है। मैं कोरियनोंकी मेहनत करनेकी बहादुरी देखने लगा। सबेरे ही वे कुदाल लेकर खेतमें पहुंच जाते हैं। दोपहर हो गयी, अभी तक घर जानेका नाम तक भी नहीं है। घृणा करना वे नहीं जानते। मनुष्यके मल-मूत्रको वे खादके काममें लाते हैं। इसे भी वे खरीदते हैं। युवकने बताया कि ये खेत किसानोंके नहीं, धनिक वर्गके हैं। अपनी गाढ़ी कमाई अगर किसानोंके पास रहती, तो उनकी यह दशा क्यों होती।

हम पगडण्डीके रास्ते आगे बढ़ रहे थे। एकके बाद दूसरा गांव हम पार कर रहे थे। बङ्गालके गांव भी इसी तरहके होते हैं। दोपलिया घर पुआलसे छाये गये हैं। लेकिन इनमें रहनेवालोंकी शकल हमारी तरह नहीं है। कोरियाकी राजनीतिक और आर्थिक अवस्था हिन्दुस्तानसे मिलती-जुलती है। यहां भी धान और कपास



कोरियाका एक कस्बा—घरोंकी हालत देखिये।

होती है। सोयाबीन यहांकी खास पैदावार है। सेब, नासपाती और अंगूर भी होते हैं। मैंने युवकसे पूछा—आज हम किस शहरमें पहुंचेंगे ? उसने कहा—अब 'सेन-सेन' आनेवाला है। साथ ही साथ उसने कहा—कोरियाके गांव, शहर, नदी, नाले, पहाड़ वगैरहके कोरियन नामोंको बदलकर जापानियोंने जापानी नाम रख दिया है। २२ अगस्त, १९१० की सन्धिके अनुसार जापानियोंने कोरियापर अपना अधिकार स्थापित किया। १८९७ से १९१० तक इस देशका नाम तैहान रहा और सन्धिके बाद जापानियोंने इसे 'चोजेन' कर दिया। यूरोपियन, खासकर ब्रिटिश और अमेरिकन लोग पुराने नामोंको ही पसन्द करते हैं, लेकिन जापानियों द्वारा सम्पादित किसी भी नक्शेमें कोरियाका नाम आपको नहीं मिलेगा। किसी जातिके अस्तित्वको मिटानेका यह भी एक तरीका है। इसके पहले कोरियामें धार्मिक परिवर्तन हुए हैं, लेकिन भाषा और नामोंमें किसीने हस्तक्षेप नहीं किया। बौद्ध, कनफिउसियस, ईसाई आदि धर्मोंका आगमन हुआ, लेकिन आदमियों, स्थानों, पहाड़ों आदिके नाम ज्योंके त्यों रहे। हमारी विशिष्टता जीवित थी, जापानी इसे मिटानेपर तुले हुए हैं, इसीलिए कोरिया चोजेन हुआ और १९३८ में तायोयान बन गया।

गांवमें घांघरा पहनकर औरतें काम कर रही थीं। पोशाक सफेद कपड़ेसे ही बनती है। पुरुष चीनियोंकी-सी पोशाक पहनते हैं, लेकिन यह सफेद सूतकी होती है। गांवमें हम लोहारकी दूकानपर बैठे थे। हमारे आ जानेसे उसे काम करनेमें असुविधा हो रही थी। एक वृद्ध और युवक दोनों मिलकर छुरियां तैयार कर रहे थे। वे हमारे लिए खानेकी चीजें ले आये—भात, मांस और सब्जी। लोहार युवकने मुझे पहचान लिया था। कारण,'तंवा एलव' नामक अखबारमें मेरे आनेका सचित्र विवरण निकल चुका था। लोहार युवकने पूछा—आपका नाम मुस्लिम युगके पहलेका है या बादका ? मैंने कहा—आधा मुसलमानोंके आनेके पहलेका और बाकी आधा बादका है। उसने मेरा नाम लिखा। उसमें रामनाथ एक तरफ और विश्वास दूसरी तरफ था। उसने मेरे साथी कोरियन युवकसे कहा कि वह मुझे समझा दे कि मुसलमानी युगके बादका अर्थात् विश्वास नाम ग्रहण कर मेरे पुरखोंने गलती की है, राष्ट्रीय विशिष्टता बनाये रखनेके लिए अपनी भाषामें नाम रखना ही ठीक है। मेरे साथी युवकने कहा—विजेताके दिये हुए नाम और भाषाको ग्रहण करनेसे जाति लुप्त हो जाती है, गुलामोंकी जाति बन जाती है। सत्ताहीन मानव-जीवन वृथा है। जापानियोंकी भाषा और नाम-सम्बन्धी साम्राज्यवादी नीतिकी यह प्रतिक्रिया थी। लेकिन एक देहाती लोहारके मुंहसे सुनकर मुझे अपार आनन्द हुआ।

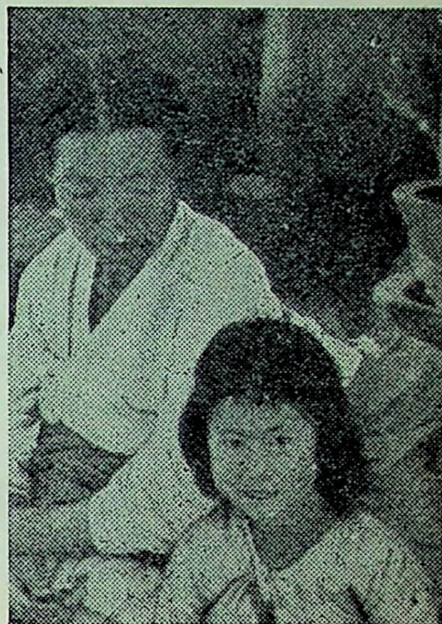
शामको सेन-सेनमें पहुंचकर एक छोटे कोरियन होटलमें मैंने डेरा डाला। चीना और कोरियन भोजनमें ज्यादा फर्क नहीं है। यहां एक दिन रहकर मैं कुछ युवकोंके साथ एक सम्पन्न गांवमें गया। पुरुष खेतोंमें काम कर रहे थे। यहां जानेपर मुझे मालूम हुआ कि कोरियामें अभी तक ऐसे गांव हैं, जहांतक 'अहं ब्रह्मोऽस्मि'को छोड़कर और कोई धर्म नहीं पहुंच सका है। इस धर्मको माननेवाले निपुण तीरन्दाज होते हैं।

एक दिन शामको देखा कि एक जापानी अफसर कुछ बच्चोंको लेकर रास्तेकी बगलमें खड़े हुए। एक ओर जापानी बच्चोंको और दूसरी ओर कोरियन बच्चोंको खड़ा कराया गया। इनकी उम्र १० से अधिक नहीं थी। बराबर जोड़के कोरियन और जापानी बच्चोंमें लड़ाई शुरू हुई। पहले जोड़के कोरियन बच्चेने जापानी बच्चेको दे मारा और उसकी छातीपर चढ़ बैठा। जापानी बच्चेने देर तक व्यर्थ ही

उठनेकी कोशिश की। जापानी अफसरने विजयी कोरियन बच्चेको दो पेन्सिलें इनाममें दीं। इसके बाद दूसरा जोड़ आया। इस बार भी कोरियन बच्चेने बाजी मार ली। तीसरी बार जापानी बच्चेकी जीत हुई। उसे इनाममें एक पेन्सिल मिली। मैंने पूछा—पुरस्कारमें यह भेद कैसा? जवाब मिला—जिससे कोरियन बच्चे शीघ्र ही जापानियों-की तरह शक्तिशाली हो सकें, इसीलिए यह व्यवस्था की गयी है।

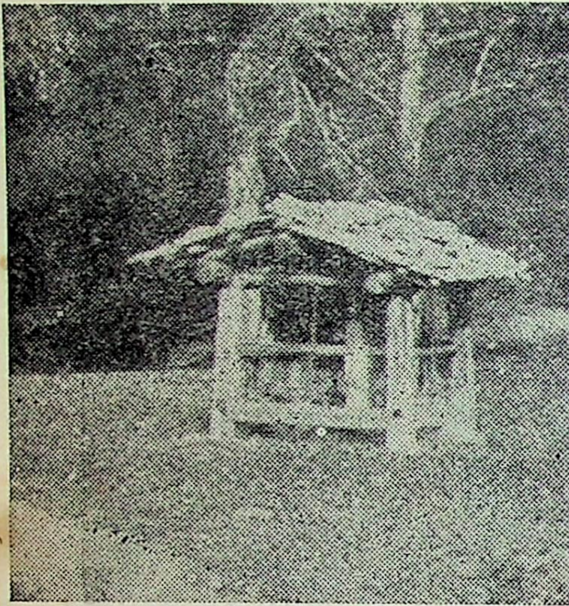
सवेरे उठकर मैं रवाना हुआ। साथमें एक दूसरा कोरियन युवक चला। वह कुछ ही दिन पहले जेलसे निकला था। ये लोग जेल इसलिए भेजे गये थे कि कोरियनोंके लिए जापानियोंके समान अधिकार पानेके लिए आन्दोलन करते थे और जापानियोंसे कहते थे कि धनी जापानियोंकी गुलामीसे छुटकारा पानेका आन्दोलन करो। इसी जुर्ममें दण्डित बहुत-से कोरियन और जापानी युवक जेलमें उनके साथी थे। हिन्दुस्तानकी खबरें सुननेके लिए वे मेरे साथ चल रहे थे। थोड़ी दूर जाकर हम लोग बैठ गये। किन्तु मुझे लम्बा सफर करना था। रास्तेमें मील बतानेवाले पत्थर नहीं हैं। रास्ता ऊंचा-नीचा और पहाड़ी है। इन्हीं पहाड़ोंमें खेती अधिक होती है। कुछ देरके बाद हम दोनों रवाना हुए। बीच-बीचमें दो-एक चीनियोंकी दूकानें मिलती थीं। युवकने कहा—चीनी दूकानदारोंके यहां सभी आते हैं, यद्यपि आज चीनियों और कोरियनोंमें भारतीय हिन्दू-मुसलमान-सा सङ्घर्ष हो रहा है। लेकिन यह आर्थिक है। कुछ मूर्ख कोरियन युवकोंका कहना है कि चीनी चीन चले जायं, उन्हें हम यहां व्यापार नहीं करने देंगे। टाइडेन, सिडल और हेजो आदि नगरोंमें इन्हीं युवकोंने चीनियोंकी बहुत-सी दूकानें लूट ली थीं और कुछ चीनियोंको मार भी डाला था। लेकिन शिक्षित युवकोंको समझनेमें देर न लगी कि इस आन्दोलनके पीछे कौन है और इसीलिए वे आगे नहीं बढ़े।

सीन् एन्उ पहुंचकर मैं एक जापानी होटलमें ठहरा। होटलके मालिक 'ओसाका मनीची सिम्बून' के संवाददाता थे। उन्हींसे मैंने पहले-पहल कहा—चीनियोंको निकाल देना अच्छा है, लेकिन उनपर इस तरहका अत्याचार करना ठीक नहीं है। मेरी बातोंकी अक्षरशः रिपोर्ट



कोरियन माता और पुत्री।

उपर्युक्त अखबारमें छपी थी, लेकिन अन्तमें उन्होंने यह भी लिख दिया कि दुनियाकी शान्तिके लिए चीन-जापानकी मित्रता अत्यावश्यक है। किन्तु दुनियाकी इस शान्तिका अर्थ है अपने स्वार्थोंको सोलहो आने कायम रखना। जापान चीनको गुलाम बना ले या जापान-शासित कोई जाति चीनका सर्वनाश करे, इसमें चीन बाधा प्रदान न करे, तभी शान्ति हो सकती है। साम्राज्यवादी जापानकी शान्तिका अर्थ यही है। चीन जापानकी इस शान्तिको नहीं चाहता और जापानमें भी एक दल है, जो चीनका समर्थन करता है। वह चाहता है कि चीन स्वतन्त्र हो जाय और उन्नति करे। रातके चार ही बजे उठकर मैं सियारकी ओर चल-पड़ा। रास्तेमें हवा बहुत गर्म मालूम हो रही थी। मुझे मूली-जैसी किसी चीजका खेत दिखाई पड़ा। निकट जाकर सूंघनेपर मालूम हुआ, मूली नहीं है। जापानी किसानने मुझसे एक टुकड़ा कागज मांगकर कुछ लिखा और प्रश्न-बोधक चिह्न बनाकर मुझे समझनेकी कोशिश करनेके लिए कहा। उसने कहा था—'हेज, पुलिही।' पिं इयांका जापानी नाम हेज है, वहां जाकर पुलिससे पूछना। पिं इयां-में मुझे पुलिससे पूछनेकी जरूरत नहीं हुई। मुझे मालूम हुआ कि इस मूलपर जापानने एकाधिकार स्थापित कर लिया



रास्तेके किनारे देव-स्थान—अक्सर यात्री कुछ-न-कुछ चढ़ाकर आगे बढ़ते हैं।

है। हिन्दुस्तानकी तरह कोरियाकी जापानी सरकारने नमकपर भी एकाधिपत्य स्थापित कर लिया है। चीनमें इस मूलकी खपत अधिक है, जापानी इसे बेचकर मालामाल हो जाते हैं। इसे ताजा खानेसे शरीरकी पुष्टि होती है।

पिं इयांको हम हिन्दुस्तानका शिमला, शिलाङ्ग, मन्सूरी या दार्जिलिङ्ग कह सकते हैं। सिर्फ यही नहीं, इसका प्राकृतिक सौन्दर्य हमारे श्रीनगरकी तरह है। दुनियाके ऐसे स्थानमें भी धनी तो मौज करते हैं और गरीब भूखों मरते हैं। शहरमें घुसते ही पुलिससे मुलाकात हुई। उसीकी सहायतासे मैंने एक कोरियन होटलमें ठहरनेका प्रबन्ध किया। रातमें मैं खूब सोया। सवेरे मैं शहर देखनेके लिए निकला। बाजारमें घुसते ही एक आदमीने खींचकर मुझे बैठाया। मुझे खानेके लिए कुछ फल मिले। मेरा सत्कार करनेवाला आदमी भाषाकी अड़चनके कारण मुझसे बातचीत नहीं कर सका, लेकिन साथियोंकी मार्फत बहुत-सी बातें उसने मुझसे पूछ लीं। शहरके कई फाटकोंमें जापानियोंकी लड़ाईके समयकी गोलियोंके चिह्न आज भी दिखाई दे रहे थे। शहरसे गांवमें गया। पुरुषोंके सिरपर लम्बे बाल थे, मानो वे सब साधु हों। उनका शरीर गठीला था। वे सब हंसमुख थे। उन्हें देखकर ऐसा मालूम होता है, मानो वे पाप जानते ही नहीं।

होटलमें कुछ युवक मुझसे बातचीत करनेके लिए आये। इनमें कोरियन और जापानी दोनों ही थे। उन्होंने मुझसे प्रश्न किया कि बुद्ध या लेनिन, किसके दिखाये हुए रास्तेसे चलकर शान्ति होगी? उत्तर देनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं था। मैं कुछ कह ही रहा था कि खुफिया पुलिसका आदमी वहां पहुंच गया। उस दिन मुझे एक नाट्यशालामें निमन्त्रित किया गया था और वह मुझे ले जानेके लिए आया था। उसने आते ही कहा—मेरा काम खुफियाका है। मेरे पास बैठे हुए युवक इसपर खूब हंसे।

जापानियोंने कई प्रकारसे कोरियनोंको निश्चिन्त कर देना चाहा था। लेकिन असफल होकर उन्हें अब प्रेमका रास्ता पकड़ना पड़ा है। पहले विदेशी अखबारोंमें निकलता था कि जापानी कोरियनोंके गांवके गांव उड़ा देते हैं, शायद इसका नतीजा अच्छा नहीं हुआ है। अब जापानी प्रेमसे कोरियनोंपर विजय पाना चाहते हैं, और प्रेमका सबसे पहला लक्षण है समता। जापानियों और कोरियनोंमें वेतनकी समता प्रायः स्थापित हो गयी है। मैंने अपनी आंखों देखा है कि एक जापानी महिला पीठपर एक बच्चेको बांधकर सड़कपर निकली, इसी समय एक कोरियन युवक अपनी साइकिलके साथ उस महिलापर आ गिरा। महिलाको जोरकी चोट लगी, बहुत-से जापानी सामने ही खड़े हुए थे, लेकिन कोई बोला तक नहीं। इस तरहकी घटना अगर शङ्घाई या पेकिंगमें होती, तो चीन-जापानमें एक नयी लड़ाई शुरू हो जाती।

उसी दिन शामको मैंने भाषण दिया, उपस्थिति अच्छी थी। मैंने लोगोंको समझानेकी कोशिश की कि विदेशियों द्वारा किये गये हिन्दुस्तान-विरोधी प्रचारकी ओर उन्हें ध्यान नहीं देना चाहिए। कोरियामें हिन्दुस्तानी पर्यटक बहुत कम जाते हैं। कोरियन हिन्दुस्तानी पर्यटकोंका बड़ा सम्मान करते हैं।

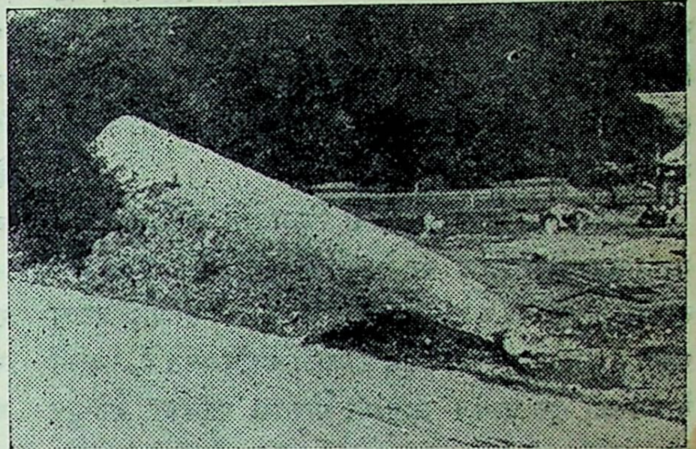
पिं इयांसे विदा होनेके समय एक युवक मेरा सङ्गी बन गया। रास्तेमें गांवोंके लोग मेरे आगमनसे खुश होते थे, अंगरेजी जाननेवाले मेरी उम्र और मैंने कितने विवाह किये हैं, पूछते थे। स्त्रियां मुझे देखकर बहुत डर जाती थीं। उन्हें बताया गया है कि हिन्दुस्तानमें पुरुष नारीपर तरह-तरह-

के अत्याचार करता है, उसे पिंजड़ेमें बन्द कर देता है, विष देकर मार डालता है। हिन्दुस्तानी स्त्रियां पशुसे भी खराब हैं, उन्हें बच्चा पैदा करनेवाली मशीन-मात्र समझा जाता है। इसी तरहकी और भी झूठी बातें फैलायी गयी हैं।

दोपहरको खा-पीकर एक जापानी होटलमें आराम कर रहा था। दाहिनी ओर थाना है। थानेके आंगनमें करीब दो सौ आदमी पकड़कर लाये गये हैं। थोड़ी देरके बाद एक उच्च जापानी अफसर आया और एक मेजपर खड़े होकर बोलने लगा—तुम्हारे काममें सरकार हस्तक्षेप नहीं करना चाहती, तब पुलिसने तुम्हें क्यों गिरफ्तार किया है? आपको मालूम है न कि लोगोंकी स्वास्थ्य-रक्षाका भार सरकारने अपने ऊपर लिया है। आपके दुर्बल या रोगी होनेसे सरकारकी क्षति होगी। नरहत्याके लिए आप ही लोगोंने विशेष कानून बनाया है। नरहत्याको कोरियन सरकार पसन्द नहीं करती और इस अपराधके अपराधीको वह जो सजा देती है, उसे आप जानते हैं। इसके बाद एक डाक्टर आया। उसने चित्र दिखाकर समझाना शुरू किया कि बाजारमें एक आदमी तरबूज बेच रहा है, उसपर मक्खियां भिनभिना रही हैं। लोग उसी तरबूजको खरीदकर खा रहे हैं, तन्दुरुस्त लोगोंको अधिक नुकसान नहीं हो रहा है, लेकिन कमजोर लोग बीमार पड़ रहे हैं और मर रहे हैं। डाक्टरने चिल्लाकर कहा—इन लोगोंकी मृत्युका जिम्मेवार कौन है? तरबूज बेचनेवाले इनकी मृत्युके लिए जिम्मेवार हैं। उन्हें फांसी देनेसे कोई अपराध नहीं होगा।

अफसरने हंसकर कहा—मैं तुम्हें फांसी नहीं देना चाहता, लेकिन अपनी आजकी बिक्रीके पैसे और बचा हुआ माल यहीं रख जाओ। इसे हम तुम्हारे ही सामने गाड़ देंगे। अगर ऐसा अपराध तुम लोगोंमेंसे किसीने किया, तो उसे फांसीकी सजा मिलेगी। फेरीवाले एक-एक करके अपना पैसा जमा करने लगे। हम भी लौट आये। बाहर आकर मैंने पूछा—क्या पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था? जवाब मिला—इस तरहकी घटना प्रायः हुआ करती है।

कोरियनोंके प्रति इस तरहके उदार बर्तावका एकमात्र कारण है उनका प्रगतिशील राजनीतिक आन्दोलन। आज



मिट्टीके बर्तन पकानेका आवा—कोरियामें मिट्टीके बर्तन चीनसे भी अच्छे बनते हैं।

मेरे रास्तेमें जितने गांव मिले, उनके अधिवासियोंमेंसे बहुतोंको मैंने दुनियाकी दैनिक खबरोंसे परिचित पाया। हिन्दुस्तानकी खबरोंके अलावा, वे मुझसे चीनियोंका समाचार भी पूछते थे। साधारणतः कोरियनोंको चीन-सरकार अपने यहां आनेकी आज्ञा नहीं देती, क्योंकि धनके लोभसे बहुतेरे कोरियन चीनमें जापानियोंकी तरफसे खुफियाका काम करने लग जाते हैं। कोरियाकी साधारण जनता अपने देशवासियोंके इन कामोंको बिलकुल पसन्द नहीं करती, यहां तक कि कोरियामें लौटनेपर ऐसे लोगोंका अपने गांवोंमें रहना मुश्किल हो जाता है। ग्रामवासी उसका सामाजिक बहिष्कार करते हैं। यों चीन कोरिया और मन्चूकोका मित्र है और अपने इन भूतपूर्व प्रान्तोंको स्वाधीन देखना चाहता है। इसी प्रसङ्गमें यह बतला देना अनुचित न होगा कि सिर्फ एक हिन्दुस्तानीके कारण आज तिब्बतवासी हिन्दुस्तानियोंको अंगरेजी सरकारका चर समझते हैं।

जापानी अफसरोंसे कोरियन युवक नहीं डरते, वृद्ध कोरियन भी जापानियोंके भक्त नहीं हैं। कहुसे सारिवान पहुंचनेपर बहुत-से लोग मुझे देखनेके लिए आये। कोरियनोंकी संख्या अधिक थी, जापानियोंकी कम। उनके पारस्परिक व्यवहारसे ऐसा मालूम हुआ कि वे कोरियनोंसे घृणा नहीं करते। लेकिन यह बर्ताव मेरे सामने तक ही सीमित क्यों? मैं एक अच्छे जापानी होटलमें ठहरा, झुण्डके झुण्ड कोरियन मुझसे मिलनेके लिए आते थे। होटलका मालिक

जापानी इसे पसन्द नहीं करता था। दो-एक कोरियन युवकोंको उसने डांटा, उन्होंने भी इसका यथोचित उत्तर दिया, होटलवालेकी लड़कीने आकर सबको शान्त कर दिया। इससे ऐसा मालूम हुआ, मानों कोरियन जापानियोंको अपना शासक नहीं समझते हैं।

पुलिस और सेना इन दोनों विभागोंमें कोरियनों और जापानियोंकी पोशाक या वेतनमें फर्क नहीं है। कभी-कभी दोनोंमें झगड़ा हो जाता है, तो जापानियोंको ही पीछे हटना पड़ता है। कोरियनोंसे वे इस तरहका बर्ताव करते हैं, जिसमें वे अपनेको भूल जायं। जापानी पोशाक पहनकर बैठे हुए एक कोरियनकी ओर देखकर एक राष्ट्रीय विचारके कोरियनने मुझसे सङ्केत किया और कहा कि क्या वह मनुष्य है? इसी तरहसे कोरियनोंने अपने मनुष्यत्वको खो दिया है।

इन बातोंको देखकर मैं कुछ चञ्चल-सा हो गया। मलायाके साधारण कर्मचारी भी अफसरोंसे समानताका बर्ताव करते हैं, उनके सामने ही सिगरेट पीते हैं, पान खाते हैं और आफिसके कामके बाद उनसे साधारण आदमीका-सा बर्ताव करते हैं, लेकिन स्वदेशमें नौकरी पाते ही लोग निम्नतम श्रेणीके दास बन जाते हैं, अफसरोंकी पूजा करना, उन्हें डाली लगाना उनका काम हो जाता है।

सन्ध्या समय जापानी होटलवालेने बड़ी भद्रता दिखायी। अपने मित्रोंसे उन्होंने मेरा परिचय कराया, अपने साथ घर ले गये और उसके चारों ओर घुमाकर दिखाया। जहां कहीं भी मच्छर पैदा होनेकी सम्भावना थी, नमक डाल दिया गया था। नमकीन पानीसे मक्खियों और मच्छरोंके अण्डे नष्ट हो जाते हैं और उनके छोटे बच्चे भी मर जाते हैं। उन्होंने कोरियन घरोंकी ओर इशारा करके कहा—वे ऐसा नहीं करते। कोरियाका राष्ट्रीय पत्र तथा रोज प्रचार करता है कि अपनी पोशाक और भाषा रखकर प्रगतिशील रहो। अपनापन खोकर जीवित रहना मृत्युके समान है।

दूसरे दिन सवेरे रवाना हुआ और कम्बो नामक स्थानमें आकर एक कोरियनके घरमें ठहरा। अगले दिन फिर रवाना हुआ और शामको एक गांवमें जापानीके घरमें डेरा लगाया। दूसरे दिन गांव देखनेके लिए निकला, गांव छोटा ही था। गांवमें चोरी नहीं होती, लोग ताला नहीं लगाते। हर-एक घरमें चरखा और करघा दिखाई पड़ा। कहीं रेशम और कहीं सूती कपड़ा बुना जाता है। कपड़े अपने लिए होते हैं, बेचनेके लिए नहीं। गांवका दर्जी सिङ्गर मशीनसे ही सीता है। मैंने उससे पूछा—क्या जापानी मशीन नहीं है? उसने कहा—नहीं। गांवोंमें रहनेवाले जापानी अपनी खादको जमीनके नीचे गाड़ देते हैं, लेकिन कोरियन किसान हिन्दुस्तानी किसानोंकी तरह जमीनके ऊपर ही ढेर लगाकर रख देते हैं। कोरियन घरोंमें दिनमें मक्खियों और रातमें मच्छरोंका राज्य होता है, लेकिन जापानी घरोंमें ऐसा नहीं होता। एक ही गांवमें यह अन्तर देखा जा सकता है।

काइज शहर पुराना है। साफ-सुथरे, छोटे-बड़े बहुत-से घर तैयार हो रहे हैं। लोगोंमें उत्साह है। व्यापार खूब होता है, कुछ कारखाने भी हैं। घरोंमें बिजलीसे चलनेवाली छोटी-मोटी मशीनें हैं। बिजली पानीकी तरह सस्ती है। जिन चीजोंकी मांग जितनी ही अधिक होगी, जापानी उसका दाम उतना ही कम करनेकी कोशिश करते हैं।

मैंने एक कोरियन युवकसे पूछा—आप मक्खी और मच्छर भगानेका बन्दोबस्त क्यों नहीं करते? उसने जवाब दिया—हमारी इच्छा होती है कि सभी बातोंमें जापानियोंसे उल्टा काम करें। मैंने कहा—ऐसा करनेसे कोरिया किसी दिन लुप्त हो जायगा, जापानियोंसे स्वतन्त्रताकी लड़ाई लड़नेके लिए कोई नहीं रह जायगा। अगर आप अपनी भलाई चाहते हैं, तो अच्छी चीजोंको ग्रहण कीजिये और बुरी बातोंको त्याग दीजिये। युवकने मेरे मतकी पुष्टि की।

काइजमें एक बड़ा कोरियन स्कूल है। एक अमेरिकन अध्यापक इसे चलाते हैं। मैंने स्कूलमें भाषण देना चाहा, लेकिन उन्होंने कहा—यह कैसे हो सकता है? हमारे पास समय कहां है। मैंने कोरियन सरकारकी ओरसे दिये हुए हुक्मनामेको दिखाया। वह हंसकर बोले—यह तो सम्मन है, आइये मैं सब प्रबन्ध कर दूंगा। मैंने हिन्दुस्तानी महिलाओंके विरुद्ध होनेवाले प्रचारके खिलाफ भाषण दिया और कहा कि इस श्रेणीके प्रचारक अपनी मां-बहनोंका सम्मान करना नहीं जानते।

अन्धविश्वासकी वेदीपर

श्री परशुराम नौटियाल

कलकत्तेमें दो किस्मके आदमी रहते हैं, एक तो वे, जो धनी हैं या फिर जो रास्तोंमें भीख मांगते हैं। महेश-जैसे आदमीका वहां गुजारा नहीं, सुबहसे शाम तक खटना और महीनेमें पचीस रुपल्ली लेकर घर लौटना—महेश-जैसे ग्रेजुएटोंका अपमान नहीं तो यह और क्या है? यूनिवर्सिटीकी डिग्रीको सन्दूकमें रखकर बेकार रहना ही उसने पसन्द किया, घरको उसने लिख दिया कि नौकरी-चाकरी कुछ है नहीं, शादीकी अभी जरूरत क्या है? वह पन्द्रह रुपयेका ट्यूशन करता और कलकत्तेके एक मेसमें रहता।

मेसवालोंके लिए वह एक रहस्य था। कोई सोचता, गुम-सुम कमरेमें बन्द रहकर कोई वैज्ञानिक प्रयोग कर रहा है; कोई समझता, बेकारीका मारा है; किसीका ख्याल था, बड़ा खतरनाक आदमी है और कोई कहा करता, बेचारा सीधा जीव है।

कालीचरण बाबू महेशके पितासे कई महीनोंसे पत्र-व्यवहार कर रहे थे कि महेशके लिए वे अपनी कन्या कृष्णाको दें और महेशके पिताकी आज्ञा पाकर एक दिन काली बाबू उस मेसमें आये ही थे कि उन्हें सीढ़ीके पास ही एक मोटे-से आदमीसे पूछना पड़ा—"क्या महेश बाबू नामसे कोई इस मेसमें रहते हैं?" प्रश्नका पूछना था कि मोटे महाशय जैसे एकाएक बरस पड़े—"और क्या नहीं रहते, महाराजको खिलाओ-पिलाओ, रहनेको जगह दो और पैसेकी बात ही नदारद, ऐसे भला कब तक चल सकता है?—होगा ऊपर पड़ा हुआ—देख लीजिये।"

काली बाबू चकराये कि बात क्या है। पूछा—"क्यों, क्या बात है?"

जवाब मिला—"बात और क्या होगी, अरे महाराज, एक तो खाते हैं, दूसरे ऊपरसे रोब छांटते हैं। आज पूरे तीन महीने हो गये, एक पैसा नहीं मिला—आप क्या उनसे मिलना चाहते हैं—कहिये क्या काम है, क्या कहीं नौकरीका जुगाड़ है? अरे दीजिये बेचारेको कहीं नौकरी-चाकरी, पेट भरके खाना तो खा ले। अजी आज जनाबसे पैसा मांगने गये, तो कहते हैं, 'रखना हो तो रखो, नहीं तो कह दो, चले जायं, इस तरह रोज-रोजकी बातें बर्दाश्त नहीं होतीं।' भला आप ही बताइये, अपना पैसा मांगना भी क्या बातें हैं?"

काली बाबूने कहा, "तो आप कह क्यों नहीं देते कि चले जाओ, जगह खाली करो?"

वह बोला, "वाह साहब! आप भी खूब मजाक करते हैं। कह दूं कि चले जाओ? कहां चला जाय? इस मेसको छोड़कर उसका और है कौन इस कलकत्तेमें? भूखा न मरेगा, रहेगा कहां, उसमें मांगनेकी भी अक्ल नहीं। अगर कुछ अक्ल ही होती, तो आज बी० ए० पास किया था, उसमें क्या नहीं था, दो सौ रुपये महीनेकी सर्विस करता कहीं जाकर, यहां हमारे लिए बवाल न बना रहता।"

काली बाबूने कहा, "कितने दिनसे रहते हैं आपके यहां?"

वह बोला, "रहनेको तो आज पूरे तीन वर्ष हो गये थे, मगर ऐसा रहना भी क्या रहना, काम-धाम तो कुछ करता नहीं, कहींसे पन्द्रह रुपये लाता है और सबके सब मेरे हाथमें रख देता है, अपने लिए कुछ भी नहीं रखता। ऐसे आदमियोंको भला निकाला जाता है, ऐसे आदमियोंको तो घरसे बाहर निकलना ही नहीं चाहिए, राम जाने क्या हो गया, आज पूरे तीन महीने हो गये एक पैसा भी नहीं दिया, एक पैसा।"

काली बाबूने कहा, "तो उनपर आपका पैंतालीस रुपया ही तो बाकी है न? लीजिये, मैं दे देता हूं।"

वह बोला, "आप! आप क्या उनके बड़े भाई हैं? हां-हां, इसीलिए वे अभी तक पूछते थे कि मुझे पूछनेके लिए कोई आया कि नहीं – आइये-आइये, चलिये बैठिये।"

गद्दीपर बैठते हुए काली बाबूने कहा, "मैं उनका बड़ा भाई नहीं हूं, वे मेरे दोस्तके लड़के हैं, मैं आपसे कुछ पूछने आया था—"महेश लड़का है कैसा?"

"कैसा और क्या होगा, हमारे मेसमें सबसे अच्छा, सबसे खूबसूरत।"

"नहीं-नहीं, मेरा मतलब है, उसका स्वभाव-चरित्र कैसा है?"

"स्वभाव तो ऐसा है कि बस कुछ न पूछिये। और चरित्रके बारेमें तो कहना ही क्या है, घरसे बाहर कभी निकलता ही नहीं।"

'घरसे बाहर निकलनेसे क्या चरित्र अच्छा नहीं रहता?"

"अरे महाराज! हमारे इसी मेसमें ऐसे-ऐसे देवता हैं कि जो सात-सात दिन तक लापता रहते हैं। महेशमें यह सब नहीं है। सिगरेट, पान, चाय, किसी भी चीजको वह छूता तक नहीं।"

काली बाबू "अच्छा तो मैं जरा उनसे मिलकर आ जाता हूं" कहकर ऊपर चले गये। ऊपर जाकर उन्होंने देखा, महेश किसी किताबमें कीड़ेकी तरह चिपका हुआ है, किसीके आनेका उसे पता नहीं। उसे हिलते-डुलते न देख काली बाबूने कहा, "क्या महेश बाबू आपका ही नाम है?"

"आं, हां, बोलिये।" महेश जैसे चौंक उठा।

"मैं आपसे मिलने आया हूं।" कहकर काली बाबू कुर्सी खींचकर बैठ गये।

"इसी वक्त?" महेशने कहा।

"हां; क्यों, आप क्या किसी काममें लगे हैं?"

"नहीं, काम तो कुछ नहीं—बोलिये।"

"मैं रामगढ़से आया हूं, चौधरी कालीचरण मेरा नाम है, नारायण बाबू मेरे मित्र हैं, तुम तब छोटे-से थे, नारायण बाबू और मैं उस जमानेमें एक साथ काम करते थे, जमाना गुजर गया, आज तुम इतने बड़े हो गये हो, घरसे नारायण बाबूने कुछ लिखा है, कोई चिट्ठी तो आयी होगी?"

"हां-हां, आयी तो थी, पिताजीने सब कुछ लिख दिया था, मगर बात यह है कि मैं इस समय बिलकुल ही बेकार हूं, अभी तो शादीका कोई इरादा नहीं, आप फिर कभी आते, तो अच्छा था।"

"बेटा महेश! शादी-ब्याहका मामला 'फिर कभी आते या आज नहीं कल' कहकर तो नहीं चलता, शादी तो होगी ही, तुम्हें तो नहीं मालूम, तुम्हारे पितासे मेरी इस बारेमें बहुत पुरानी बातचीत है, तुम सयाने हुए हो, कृष्णा भी सयानी हुई है, तुम्हारा हमारा कोई लेने-देनेका झगड़ा तो है नहीं, नौकरी भी मिल ही जायेगी, और फिर नौकरीका तुम्हें करना ही क्या, इधर भी तुम्हारा, उधर भी तुम्हारा, दो प्राणी तुम हो, खाओ-पीओ और सुखसे रहो, बस हां कह दो।"

"आप ठीक कहते हैं, मगर शादी-ब्याहके मामलेमें जरा सोच-समझकर काम लेना ही अच्छा होता है, जरा अपने पैरोंपर खड़े होने दीजिये, फिर देखा जायेगा, अभी जल्दी क्या है?"

"अपने पैरपर क्या तुम अभी नहीं हो, अब कौन-से तुम पराये बस हो, फिर भी जल्दीकी कोई बात नहीं थी, मगर कृष्णाकी चिन्ता है, वह बड़ी हो गयी है, उसे तुम्हारे हाथमें सौंप जाता तो अच्छा था, बड़ी लड़की रमा थी, उसे मैं उसके योग्य स्थानपर दे चुका हूं, भगवानकी दयासे वह आज एक बच्चेकी मां बन गयी है, अब बेटा! इसमें नू-ना करनेकी जरूरत नहीं, तुम दोनोंको एक करके मैं निश्चिन्त हो जाना चाहता हूं।"

"बाबूजीने सब कुछ तो लिख ही दिया था, आपको इतना कहनेकी कुछ जरूरत ही नहीं थी, मगर फिलहाल शादीकी ऐसी जरूरत नहीं देख रहा हूं, और भी कई बातें हैं, अभी तो कुछ कह नहीं सकता।"

काली बाबू हारे नहीं, मगर उनके दिमागमें एक और ही बात काम करने लगी—लड़का अच्छा है, भद्र है, कुलीन है, शिक्षित है और सुन्दर भी है। अपनी कृष्णाके लिए उससे अच्छा वर उन्हें भला कहां मिल सकता था, क्षणभरकी बचपनकी बातोंसे नाराज होकर चले जाना उन्होंने अच्छा न समझा, उन्होंने सोचा, आज नहीं तो कल और नहीं तो दूसरे दिन जरूर रास्तेपर आयेगा ही, इसलिए कृष्णासे हिला-मिला देना अच्छा रहेगा, इस मिलापसे भी उसके मतमें परिवर्तन हो सकता है और इसीलिए उन्होंने कहा—

"अच्छा तो कोई बात नहीं, कुछ दिन तुम भी सोच लो, मगर कभी-कभी उधर आया तो करो, इतने नजदीक रहकर भी तुम तो कभी मिलते नहीं। बेटा, हम लोगोंका आजका नहीं, बहुत पुराना सम्बन्ध है, उधर आया करो—बोलो कब आओगे, कल या परसों रविवारको?"

बिना सोचे-समझे ही महेशके मुंहसे निकल पड़ा, "रविवार ही ठीक है।"

"अच्छा, तो रविवारको मैं तुम्हारा इन्तजार करूंगा। देखना, कहीं भूल न जाना, आओगे तो, खाना वहीं खाना होगा मगर !"

"अब खाने-वानेका झगड़ा..."

"नहीं-नहीं, खानेके लिए वहीं आना होगा, बस अब मैं जाता हूं।" कहकर काली बाबू चले गये।

(२)

ठीक समयपर महेश रविवारके दिन रामगढ़ काली बाबूके यहां पहुंचा, काली बाबू तो देखते ही ऐसे प्रफुल्ल हुए कि जैसे स्वर्गका कोई दूत आया हो, "आओ-आओ महेश बेटा, आओ—अरे कृष्णा! महेश आया है।" कहते-कहते वे स्वयं बाहर निकले और दूसरे कमरेमें बैठी कृष्णाको वहां ले आये। महेशको इतना स्वागत कुछ ज्यादा ही लगा, मगर इसपर विचार करनेका उसके पास समय नहीं था। कृष्णा वहां आ पहुंची थी, दोनोंने एक दूसरेको नमस्ते किया; किन्तु दोनों ही जैसे एक दूसरेमें समा गये, दोनोंके मुंहपर लाली छा गयी। काली बाबूने कहा—

"जाओ बेटी, पहले चायका इन्तजाम करो, खाना-पीना पीछे होगा।"

कृष्णा चायका इन्तजाम करने चली गयी। चमकता हुआ चेहरा न होनेपर भी कृष्णामें वह सौन्दर्य अवश्य था, जिस-पर महेश-जैसा व्यक्ति मुग्ध हो सकता था। सरल, सुगठित शरीर, भोला चेहरा, बड़ी-बड़ी काली आंखें, सादा पहनावा और बोलीमें चतुरता—महेशका मन भर जानेपर भी आंखें जैसे प्यासी ही रहीं। वह पूरी तरह देख भी न पाया था कि तब तक वह चाय बनानेके लिए चल पड़ी।

कुछ देर बाद ही कृष्णा उस कमरेमें आयी और चायवाली टेबुल महेशके सामने रखकर पुनः बाहर जा रही थी कि महेशके साथ उसकी आंखें चार होते ही वह दरवाजेसे टक्कर खाते-खाते बची और मुस्कराती हुई चली गयी, महेश-को भी हंसी आयी, किन्तु उसने मुंहपर रूमाल लगा लिया, इसी समय कृष्णा चाय टेबुलपर रख गयी और एक क्षण बाद ही तश्तरीमें कुछ लेकर आयी।

काली बाबू बोले—"महेश कुछ शर्मीला लड़का है बेटी, उसे तो अपने सामने खिला जा, नहीं तो वह खायेगा नहीं। बेटा, जल्दीसे चाय पी लो, फिर भोजन।"

कृष्णा तो मुस्कराकर चुप रह गयी, पर महेश काली-बाबूकी ओर मुंह फेरकर बोला—"खानेमें भला मुझे क्या शरम ?"

कृष्णा बैठी रही, काली बाबू दूसरे कमरेमें जा रहे थे कि महेशने कहा—"आइये आप।"

काली बाबूने कहा—"मेरा तो आज रविवारका व्रत है, मैं तो आज जल तक नहीं छूता, तुम पीओ बेटा, मैं अभी आया, तुम निश्चिन्त होकर खाओ-पीओ, अपना घर है।" कहकर काली बाबू चले गये।

कृष्णा पास खड़ी रही, महेश चाय पीने लगा, दोनोंमें कोई कुछ न बोलता था, पर महेशने नीरवता भङ्ग की। बोला—"चायकी तो इस वक्त कोई आवश्यकता नहीं थी। क्या खाना अभी तैयार नहीं है?"

कृष्णाने कहा, "तो हर्ज ही क्या है।"

महेशने कहा, "हर्ज तो कुछ नहीं, पर मुझे जरा जल्दी जाना है इसीलिए।"

कृष्णा बोली, "क्यों, क्या यहां अच्छा नहीं लग रहा है? न भी लगे, तो आज थोड़ा कष्ट ही सही।"

महेशने कहा, "नहीं, कष्टकी तो कोई बात नहीं, मगर जरा काम था..."

बात काटकर कृष्णा बोली, "आज रविवारके दिन भी भला काम नहीं छूटा, इतना ही जरूरी काम था, तो आने-की जरूरत ही क्या थी ?"

"मगर अब तो आ गया हूं, अब क्या किया जाय ?" कहते-कहते वह मुस्कराया भी।

कृष्णा बोली, "अब आज तो जा नहीं सकते।"

महेश चाय समाप्त कर चुका था; कृष्णा बिना उत्तरकी प्रतीक्षा किये ही कप-प्लेट उठाकर ले गयी, थोड़ी देर बाद पिताजीके साथ आयी और उनके सामने ही बोली—"बाबूजी, इनको यहां अच्छा नहीं लग रहा है।"

चौंककर जैसे काली बाबूने कहा—"क्यों, क्या हुआ, महेश ?" कृष्णा दूसरी ओर मुख करके मुस्करा रही थी।

"कुछ नहीं, किसने कहा कि अच्छा नहीं लग रहा है ?" महेशने पूछा।

कृष्णा काली बाबूकी ओर देखकर बोली—"अभी आप कहते थे कि मैं जल्दी जाना चाहता हूं।"

जोरसे हंसकर काली बाबूने कहा—"कृष्णा तुम्हें चिढ़ा रही है, मगर क्यों, तुम जल्दी क्यों जाना चाहते हो ?"

"कुछ नहीं, योंही। कुछ काम था, इसीलिए कहा।" महेशने कहा।

"बाबूजी, काम कुछ नहीं, यहांसे जानेका बहाना बना रहे हैं।" कृष्णा बोली।

काली बाबूने महेशके कन्धोंपर हाथ रखते हुए कहा—"आजके दिन तो यहीं रहो बेटा, कल चले जाना, एक दिनमें क्या कुछ बिगड़ जायेगा।"

उन्होंने कृष्णाकी ओर देखकर कहा—"अच्छा तो महेश-को खाना खिलाओ बेटी, तब बैठकर बातें करेंगे।"

महेशने कहा, "और आप ?"

कृष्णाने कहा, "उनका तो उपवास है न आज, उन्हें खाना नहीं है, आप चलिये न।"

महेश चुपचाप कृष्णाके साथ चला गया, इतनी बातें न होतीं, तो महेश अकेले बैठकर कृष्णाके सामने कैसे खाना खा सकता। इसलिए कृष्णासे हारकर भी महेश मन ही मन प्रसन्न हो रहा था।

भोजनके लिए आसनपर बैठाते हुए कृष्णा बोली—"कैसी हार खानी पड़ी ?"

"अपने ही घरपर हरा देना कोई बड़ी बात है ?" आसनपर बैठकर महेशने कहा।

कुछ गम्भीर होकर कृष्णा बोली—"क्षमा कीजियेगा, मुझे नहीं मालूम था कि यह मेरा ही घर है, नहीं तो हरानेकी कोशिश नहीं करती।"

सुनते ही महेशको यह समझनेमें कसर नहीं रही कि कृष्णा नाराज हो गयी है, वह लज्जित हो गया, बोला—"आप नाराज हो गयी हैं ?"

कृष्णाने जवाब दिया, "मुझे अपने ही घरपर नाराज होनेका अधिकार है क्या ?"

महेशने कहा, "कृष्णा, तुम सचमुच नाराज हो गयी हो ?"

'तुम' शब्दके सुनते ही कृष्णाके मनकी सारी भावनायें अपने आप ही नष्ट हो गयीं। उसने कहा, "आप ही तो ऐसी बातें करते हो।"

"तो अब माफ कर दिया न मुझे ? मैं अब खाना खाऊं ?"

कृष्णाने चुपचाप मुस्कराकर उत्तर दिया और उसके मुस्कराते ही महेशने खाना आरम्भ कर दिया। कृष्णा बैठी हुई थी। महेश बीच-बीचमें आंख उठाकर उसे देख लेता था। एक बार जब कृष्णा खाना लाने गयी हुई थी, महेशने सोचा—"कृष्णा-जैसी लड़कीसे विवाहके लिए इनकार करना वास्तवमें बेवकूफी है।" इतनी सुशील लड़की उसने अपने जीवनमें न देखी थी, उसने मौका हाथसे न जाने दिया और सुविधा पाकर इसी समय और भी कुछ अपने दोनोंके जीवनके बारेमें पूछ लेना अच्छा समझा। कृष्णा कुछ लेकर आ गयी थी। उसके खाना देते-देते महेशने कहा—"देखो कृष्णा, जो कुछ खाना था, वह तो खा चुका। अब जबर्दस्ती न करो।"

"खाइये, अभी जबर्दस्ती क्या है ?"

"अभीका अभिप्राय ?"

"आप नहीं जानते ?"

"बतलाओ न ?"

"अच्छा, जानेकी जिद न कीजिये—जब तक मैं न कहूं।"

"तुम कभी न कहो, तो क्या मैं कभी न जाऊं ?"

"क्या मैं इतना भी विश्वास नहीं कर सकती—"

"कि तुम कहो तो मैं यहीं बना रहूं।"

"इसमें भी क्या सन्देह है।"

"अच्छा कृष्णा, एक बात पूछूं ?"

"पहले मेरी बातका जवाब दीजिये।"

"हां, तुम्हारी ही बातका जवाब है मेरी बातमें।"

"तो पूछो।"

"यह तो तुम भी जानती हो कि काली बाबू हम दोनोंकी शादीके लिए व्यस्त हैं, इसीलिए मैं पूछता हूं, हम दोनोंकी शादी हो जानी क्या अच्छी है, क्या तुम मेरे साथ सुखी रह सकती हो, जब कि मैं एकदम बेकार हूं, कहीं नौकरी-चाकरी तो करता नहीं ?"

"मैं सब जानती हूं, मैं सब सुन चुकी हूं—और यह भी कि शादी करनेका इरादा भी नहीं है।"

"यह तो पुरानी बात है, अब नहीं, मगर तुम पहले मेरी बातका जवाब दो।"

"मैं क्या जवाब दूं, अपने मनसे दूसरेके मनकी बात जानी जा सकती है, अब मेरी बातका जवाब दो।"

"किस बातका ?"

"वही विश्वासवाली बातका ?"

"उसका जवाब तो तुम्हें पहले ही मिल चुका है।"

महेश उस दिन तो वहां रहा ही, दूसरे दिन भी सन्ध्या तक उसे वहीं रहना पड़ा। दूसरे दिन सन्ध्याको जब वह घर लौटा, तो उसने अनुभव किया कि जीवनकी बहुत बड़ी सार्थकता अब उसमें आ गयी है, उसके हृदयमें एक माधुर्य भर गया है। कृष्णाका खयाल वह एक क्षणके लिए भी अपने मनसे नहीं भुला सका, कल्पनाओंका समुद्र उसके सामने लहराने लगा।

(३)

सुबह उठते ही महेश प्रायः रोज ही छतपर चहलकदमी किया करता था और सामने रास्तेके उस पारवाली छत-पर खेलते हुए बच्चेको देख लिया करता था। बच्चा उसे बहुत ही प्यारा लगता था, उसका दिल उसे उठानेके लिए चाहता था, मगर दूसरेका बच्चा, दूसरी छतपर, कैसे सम्भव था ? वह बच्चेके खेलोंको देखकर बड़ा विनोद अनुभव करता। किन्तु जब उसकी मां छतपर आती, वह वहांसे दृष्टि हटा लेता। बहुत दिनोंसे यह क्रम जारी था, बिना बोले और बिना परिचयके ही बच्चेकी मां महेशसे परिचित हो गयी थी, महेश भी उस घरके सभी लोगोंको अच्छी तरह जानता था, यद्यपि कभी भी किसीसे बात करनेका मौका नहीं मिला था।

उस दिन भी महेश अपनी कल्पनाओंके आनन्दमें एक-टक बच्चेको देख रहा था कि इसी समय बच्चेके पिताने आकर उसे गोदमें उठा लिया और सीढ़ियोंसे नीचे सड़कपर जाकर उसे जमीनपर उतार दिया और उंगली हाथमें ले वे आगे बढ़ने लगे।

महेशको मौका मिला, वह जल्दी-जल्दी नीचे उतरा और बच्चेके पीछे-पीछे जाने लगा। बच्चेकी मां अभी तक खिड़कीसे देख ही रही थी, उसने महेशको भी बच्चेके पीछे जाते देखा। एकाएक महेशने पीछेसे बच्चेको गोदमें उठा लिया। अकचकाकर पिताने महेशकी ओर देखा। बच्चा इस आकस्मिक व्यवहारसे शायद अत्यन्त भयभीत हो उठा और जोरसे रो पड़ा। महेश भी लज्जित हो गया। उसने कहा—"मैं सामनेकी मेसमें रहता हूं। बच्चेको रोज ही देखा करता हूं, मगर यह रो क्यों पड़ा ?"

राजूको अपनी गोदमें लेकर उसके पिताने कहा— 'इसी मेसमें ?"

कुछ साहस-सा महेशमें पैदा हुआ। वह बोला—"जी हां, इसी मेसमें, इस बच्चेको बहुत चाहता हूं, मगर यह अभी तक रोता क्यों है।"

उसके पिताने कहा—"कोई बात नहीं, ठीक हो जायेगा।" और वे उसे लेकर आगे बढ़े, महेश लौट आया, राजूका रोना अभी तक न रुका।

महेश अपनेको लज्जित और अपराधी-सा समझ रहा था, मेसमें अपनी सीटपर बैठते ही उसने सामनेके मकानपर नजर दौड़ायी, बच्चेकी मां बड़े गौरसे महेशकी ओर देख रही थी, महेशने किताब निकाली और चुपचाप अपनी सीटपर लेटकर पढ़ना शुरू किया, क्षण-भरमें ही वह सो गया।

नींद खुलते ही उसने एक बार सामनेके घरकी ओर नजर उठायी, देखकर वह घबरा गया, बहुत-से आदमियोंसे घिरा डाक्टर किसी रोगीकी परीक्षा कर रहा है। उसका हृदय धक्-धक् करने लगा—कहीं राजू तो बीमार नहीं पड़ा ? उसने देखा, राजूके माता-पिता भी वहां खड़े हैं और नहीं है तो एक बच्चा ही नहीं है। इसी वक्त राजूके पिताने पास खड़े आदमीको महेशकी ओर इशारा करके बताया। महेश सिरसे पैर तक कांप उठा। उसने देखा, डाक्टर कुछ व्यक्तियों-को साथ लिये उस कमरेसे बाहर निकला है, महेशको चारपाईपर बच्चा पड़ा हुआ दिखाई दिया, एक अनिष्टकी आशङ्कासे उसका हृदय थर्रा उठा, वह कुछ सोच ही रहा था कि राजूके पिताके साथ चार आदमी महेशके कमरेमें आ धमके। गुस्सेसे उनकी आंखें लाल हो रही थीं।

"आइये…" कुछ टूटे-से शब्द महेशके मुंहसे निकले।

राजूके पिताने कहा, "बता हरामजादे, क्या किया तूने उस वक्त" और जोरसे कड़ककर उसने कहा, "बता क्या किया था बच्चेको उठाकर ?"

महेशने कहा, "क्यों, क्या हुआ ?"

महेशके कमरेवाले अन्य दो आदमियोंने आगे बढ़कर कहा, "क्यों, क्या हुआ ?"

आनेवाले सभी गुस्सेसे कांप रहे थे, एकने जोरोंकी चपत महेशके गालपर जड़ते हुए कहा, "साला पूछता है क्या हुआ ?" दूसरी ओरसे भी एक चांटा रसीद करते हुए उसने कहा, "बताऊं क्या हुआ ?"

महेशने अपने आपको बचानेकी कोशिश करते हुए कहा, "बताओ भी तो क्या हुआ ?"

इसपर सभीने उस अकेलेपर अपना जोर आजमाना आरम्भ किया, और तब तक आजमाया, जब तक वह एकदम बेहोश होकर गिर न पड़ा। शोर-गुल हुआ। ऊपर-नीचेके बहुत-से आदमी एकत्र हो गये। पूछ-ताछ हुई—क्या हुआ, क्या हुआ ? वे सब एक साथ ही बोल उठे, "यह साला राक्षस है, इसने बच्चेपर जादू कर दिया। उसका बुरा हाल है। १६ रु० देकर डाक्टरको बुलाना पड़ा।" महेशको बेहोश देखकर वे सब जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। किसीकी समझमें यह नहीं आया कि आखिर बात क्या है। मेसके मालिकने अपने खर्चेसे डाक्टर बुलाया, वह खुद बड़े ही पसोपेशमें पड़ा था कि क्या करें और क्या न करें। मगर जब तक महेश होशमें नहीं आता, तब तक वह कुछ भी सोच न सका।

इधर महेश पड़ा था और उधर बच्चा। दो-तीन घण्टेके बाद महेशको जब होश आया, उसने जब आंखें खोलीं, तो उसके पास कोई न था। उसने सामनेके मकानकी ओर देखा, बच्चा पड़ा था, सिरहाने मां बैठी थी, दो-तीन आदमी राजूके पिताके साथ दूसरे कमरेमें बातें कर रहे थे। महेशने यहींसे चिल्लाकर कहा, "बच्चा कैसा है ?"

किन्तु उसकी आवाज किसीके कानमें न पड़ी, बड़े कष्टसे महेश अपनी जगहसे उठा और गिरता-पड़ता नीचे उतरा। मेस-मालिकने उसे पकड़ते-पकड़ते पूछा, "अरे कहां जा रहे हो, क्या बात है ? सुनो भी तो।" वह चिल्लाता ही रह गया और महेश रास्ता पार करके सामनेवाले मकानमें चढ़ गया, लड़खड़ाता हुआ वह राजूवाले कमरेमें घुस गया, आश्चर्यसे सभी उसको देखने लगे; किन्तु किसीने उसे रोका नहीं। जाते ही कम्पित स्वरसे महेशने पूछा, "बच्चा कैसा है?" यह कहते-कहते वह गिरने-सा लगा। राजूके पिताने उसे संभाल लिया, कुर्सीपर बिठाते हुए कहा, "अच्छा है।"

महेश हांफते हुए कहने लगा, "मैंने नहीं समझा था," और बाकी वह नहीं कह सका कि एकाएक खूनकी उलटी हुई। सहारा देते-देते वह ठण्डा पड़ने लगा, हाथ-पांव अकड़ते जा रहे थे, देखते ही देखते वह वहीं बेहोश हो गया। घरवालोंने उसे दूसरे कमरेमें ले जाकर लिटा दिया। जहां बच्चेकी चिन्ता मिटती जा रही थी, वहां महेशकी चिन्ताने उन्हें चञ्चल कर दिया और महेशकी सेवामें वे तल्लीन हो गये।

(४)

"क्यों दयाल, क्या बात है। क्या हुआ बच्चेको ? अब कैसा है।" कहते-कहते काली बाबू उस कमरेमें प्रविष्ट हुए, उनके पीछे-पीछे कृष्णा थी। वे बोले, "मैं तो तार पाते ही चल पड़ा। कैसा है बच्चा ? आज ही क्या हो गया, चार दिन पहले तो मैं देखकर गया था, बिल्कुल ठीक था।"

राजूकी मांने कहा, "सुबह भी तो ठीक था बाबूजी, हंसता हुआ बाजार गया और रोता हुआ घर लौटा। देखा तो १०४ डिग्री बुखार, अपने आप तो मरेगा ही, मेरे बच्चेको भी ले जाना चाहता था।"

"कौन ले जाना चाहता था ?" काली बाबूने पूछा और बच्चेका हाथ देखकर उन्होंने कहा—"अब तो बिल्कुल ठीक है, बुखार नहीं है, क्यों, क्या हुआ था ?"

रमाने कहा, "वह देखो न, पड़ा है भीतर जञ्जाल कहींका।"

आश्चर्यसे काली बाबू और साथ ही कृष्णा, दोनों उस कमरेमें गये तो देखते ही दङ्ग रह गये, काली बाबूने दुःखसे मर्माहत होकर कहा—'क्या हुआ महेशको ?' कृष्णा हतबुद्धि होकर रमाकी ओर देखने लगी। रमा पहले ही अवाक् होकर काली बाबूकी ओर देख रही थी। दयाल, रमा आदि सभीने एक साथ कहा—"कौन महेश ?"

काली बाबूने महेशकी नाड़ी देखी और बोले—"क्या हुआ इसको, महेश यहां कैसे आया ?"

रमा बोली, "होगा और क्या ? बच्चेको तो मार ही दिया था इसने, यहीं सामने तो रहता है।"

काली बाबूने कहा, "रहता तो है, मगर किया क्या है इसने ?"

दयालने सारा किस्सा आदिसे अन्त तक सुनाया, काली बाबू तो सुनकर सन्न रह गये। कृष्णाको सब बातें

सुनकर इतनी व्याकुलता हुई कि वह उठकर दूसरे कमरेमें चली गयी ।

काली बाबूने कहा—"दयाल, तुमने यह क्या किया, महेश और जादू, अरे यही तो वह है जिसके लिए कृष्णाके बारेमें बातचीत हो रही है, तुम लोगोंका दिमाग तो नहीं खराब हो गया । जादू-टोना भी कुछ होता है ! ओह, तुम लोग अन्धविश्वासमें आकर इतना अनर्थ कर सकते हो ? क्या समझा होगा वेचारेने, और बड़े गांवमें नारायण बाबूके पास क्या मुंह दिखायेंगे, और इसका ही भगवान जाने क्या हाल हो । वेचारा इतना भोला लड़का और तुम भी कितने सभ्य और शिक्षित ! विश्वास नहीं होता कि तुम भी ऐसी नादानी कर सकते हो । दयाल, तुम्हें उस वक्त क्या हो गया था ?"

दयालको अब तक अपनी मूर्खताका पता चल गया था । उसने सिर नीचा कर कहा—"क्या कहूं । दूसरोंके कहनेसे वैसी ही बुद्धि हो गयी । अब क्या करना चाहिए ?"

"करना और क्या है । डाक्टरने क्या कहा । बचेगा या नहीं ?"

"अभी-अभी तो आया है, डाक्टरको दिखानेका मौका ही कहां मिला ?"

"तब, देखते क्या हो, जाओ, डाक्टरको लाओ । अब तो जो होना था, हो गया ।" काली बाबूकी आवाजमें अत्यन्त शिथिलता आ गयी थी, निराश भावसे वे महेशके मुंहपर नजर गड़ाये हुए थे ।

दूसरे कमरेमें जाकर रमाने देखा, कृष्णा एक कोनेमें खड़ी है । उसका मुंह सूखा हुआ है । आवाज सुनते ही कृष्णा दीदीसे लिपटकर रोने लगी । बाहर काली बाबू अकेले रह गये थे, वे अपने आपही कह उठे—"वेचारा बच्चेसे प्यार करता था, गोदमें उठा लिया था तो क्या अनर्थ हो गया था, इसी बातके लिए उसे मौतकी सजा ?"

कृष्णा और रमा दोनोंने यह बात स्पष्ट सुनी, कृष्णाको सान्त्वना देते हुए रमाने कहा—"जा, मुंह धो डाल ।"

कृष्णा दूसरे कमरेमें मुंह धोने गयी, रमा भी उसीके पास जाकर बोली—"कृष्णा, तू इन्हें पहलेसे जानती थी ? पहले कभी इनसे मुलाकात हुई थी ?"

कृष्णा बोली—"कल ही तो सारे दिन हमारे यहां थे ।"

रमाने कृष्णासे कुछ और भी पूछना चाहा, परन्तु उसने लज्जासे अपनी दृष्टि दूसरी ओर ले जाकर मूक भाषामें उत्तर दिया और एक गहरी सांस लेकर चुप रह गयी ।

कृष्णाकी इस कातरताको देख रमाकी मानसिक वेदना और बढ़ गयी, वह चुप न रह सकी, बोली—"कृष्णा ! चिन्ता न करो, वे बहुत जल्द अच्छे हो जायेंगे, तुम विश्वास करो, हम उनकी सेवामें किसी तरहकी भी कमी न रखेंगे और ईश्वरने चाहा, तो बहुत जल्द तुम्हारी जोड़ी मिलेगी ।"

कृष्णाको दीदीकी बातसे भरोसा तो हुआ, किन्तु एक अज्ञात आशङ्काकी छाया उसके मुखपर स्पष्ट रूपसे झलकती थी ।

डाक्टरको लेकर दयाल आ पहुंचा । सन्ध्या हो गयी थी । बच्चा अपने आप ही उठ बैठा था, लगता था, जैसे वह नींदसे उठा हो । डाक्टरने महेशको देखा और इशारेसे काली बाबूको दूसरे कमरेमें ले जाकर कुछ कहा । दवाई लिखकर डाक्टर चले गये । काली बाबूने लौटकर कहा—"दयाल, महेशको रामगढ़ पहुंचानेकी व्यवस्था करो ।"

दयालने कहा, "डाक्टर क्या कह गया है ?"

"कुछ नहीं, अच्छा हो जायेगा, कुछ दिन लगेंगे । इसलिए रामगढ़ ले जाना ही अच्छा होगा ।"

"मगर बाबू, इस हालतमें तो मैं नहीं ले जाने दूंगी । कसूर हमसे हो गया तो उसे हम ही भोगेंगे, रास्तेमें कुछ हो गया तो ?" रमाने कहा ।

ममतासे काली बाबूका हृदय भर आया—"नहीं बेटी ! तुमको मैं क्या कुछ कहता हूं !"

दयाल बोला—"जरा होश आ ले, फिर देखा जायेगा, अभी तो आप भी आराम कीजिये ।"

कृष्णा यद्यपि कुछ न बोलती थी, मगर उसकी इच्छा थी कि महेशको रामगढ़ पहुंचाया जाय । किन्तु काली बाबू रमा और दयालको दुखी करके जाना नहीं चाहते थे, इसलिए उस रातको वहीं रहना निश्चित हुआ ।

रातको कृष्णा और रमा महेशके पास ही बैठी रहीं, दवा और इञ्जेक्शनके बलपर महेशके शरीरमें कुछ गर्मी आ रही थी, किन्तु बेहोशी अभी तक वैसी ही थी । काली बाबू अपनी दोनों लड़कियोंपर महेशकी शुश्रूषाका भार देकर सो गये, दयालको रमा और कृष्णा दोनोंने जगा रहने नहीं दिया ।

कृष्णा बोली, "तुम भी सो जाओ दीदी !"

रमाने कहा, "तू सो जा बहन ! मुझे जागनेकी आदत है।"

कृष्णा बोली, "मुझे भी तो नींद नहीं आ रही है।"

और जब रातके बारह बजनेको हुए, तो रमाकी आंखोंमें नींद भर-भर आने लगी, कृष्णा बोली, "तुम सो जाओ न दीदी, मैं जाग तो रही हूं।"

जब रमा चली गयी और गहरी नींदमें सो गयी, कृष्णा एकटक महेशके मुखको निहारने लगी। वह सोचने लगी—देवताओं-जैसे व्यक्तिपर हाथ उठाते उन राक्षसोंको जरा भी दया न आयी। एक बार चारों ओर देखकर वह फिरसे महेशका मुंह देखने लगी। किन्तु वह अधिक देर तक देखती न रह सकी। उसका हाथ महेशके माथेपर स्वयं ही जा लगा और सारे बदनमें बिजली-सी दौड़ गयी। उसने महेशका दाहिना हाथ भी अपने हाथमें ले लिया। उसका शरीर कांप रहा था। इसी वक्त उसने देखा, महेशके शरीरमें कुछ बल आया है, वह हिलने-डुलने लगा है और एकाएक उसने आंखें भी खोल दीं। कृष्णाने उसका हाथ छोड़ दिया।

आंखें खोलते ही महेशने आश्चर्यसे कृष्णाकी ओर देखा और बोला, "कृष्णा...तुम यहां...मैं कहां हूं ?"

"दीदीके घरपर।"

महेश कुछ क्षण तो सोचता रहा, फिर बोला—"दीदी ? कौन दीदी, वह बच्चा कैसा है ?"

"ठीक है। वह मेरी दीदीका बच्चा है। वह अब अच्छा हो गया है, तुम बोलो नहीं, डाक्टरने मना किया है।"

"बच्चा अच्छा है, ईश्वरका धन्यवाद। मैं उसे प्यार करता हूं। किन्तु मैं क्या जानता था कि यह भी एक पाप है। मगर इसमें इनका क्या कसूर, यह जादूमें अन्धविश्वास होनेका फल है।" कृष्णा चुप रही, बड़ी-बड़ी आंखोंसे उसके गालोंपर केवल दो बूंद ढुलक पड़े। महेशने कहा, "कृष्णा ! अब मेरी समझमें आया कि मेरा क्या काम है। यदि अच्छा हो सका, तो इस अन्धविश्वासको नष्ट करनेमें अपना सारा जीवन लगाऊंगा। कृष्णा ! तुम रो रही हो, तुम खुश होओ, मैं भी खुश हूं, मुझे आज अपने कार्यका पता चल गया, आज मुझे मालूम हुआ कि मुझे क्या काम करना चाहिए। कृष्णा ! तुम भी इस कामको करोगी और इस काममें मेरी सहायता करोगी ?"

कृष्णा बोली, "तुम पहले अच्छे हो जाओ, मैं तो तुम्हारे साथ हूं ही।"

गद्गद, किन्तु भर्रायी आवाजमें महेशने कहा, "तुम मेरा साथ दोगी ? दोगी—मगर एक बात है, मैंने तुम्हारे पिताजीसे कह दिया है कि मैं शादी नहीं करूंगा, तुम उनसे कह दो, मैं शादी करूंगा और कृष्णाके साथ ही। कृष्णा ! तुम कह देना उनसे, नहीं तो वे कहेंगे, जिद्दी है, और देखो, एक बार बच्चेको तो दिखा दो, वह अच्छा हो गया न अब, ले आओ, उसे दिखा दो एक बार ?"

नेत्रोंमें आंसू भरकर कृष्णाने उसके मुखपर हाथ रखा और कहा, "राजूको सुबह देख लेना, वह इस वक्त सो रहा है, तुम इस वक्त आराम करो, लोग क्या कहेंगे ?"

कुछ वितृष्णाका भाव लिये महेश बोला, "अरे सुबह होनेमें अभी बहुत देर है, तुम ले आओ न राजूको।" महेशने यह सब इतनी तेज आवाजसे कहा कि काली बाबूसे लेकर बच्चे तक सभी हड़बड़ाकर उठ बैठे। स्वयं महेशपर भी इस तेज आवाजका असर पड़ा, खूनके वमन फिरसे आरम्भ हो गये।

चेष्टा की गयी डाक्टरकी दवा देनेकी, किन्तु महेशके हाथ-पैर तो ठण्डे हो चुके थे।

× × ×

महीनों शोकसागरमें निमग्न रहनेके बाद कृष्णा जब सावधान हुई, उसको ये शब्द याद आये—"कृष्णा ! तुम भी इस कामको करोगी और इस काममें क्या तुम मेरी सहायता करोगी ?" उसे यह भी याद आया—"मैं तो तुम्हारे साथ हूं ही।" गुनते-गुनते उसके मुंहसे निकल पड़ा—"मुझे आज अपने कार्यका पता चल गया।" उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो कोई उससे कह रहा हो—"कृष्णा ! तुम्हें अपना वही कार्य पूरा करना चाहिए।"

कृष्णाने आकाशकी ओर देखा। उसके चेहरेपर एक मुस्कराहट एक क्षणके लिए आयी और लुप्त हो गयी। इस मुस्कराहटमें प्रसन्नता नहीं, निश्चयकी रेखायें स्पष्ट ही झलक रही थीं।

कृष्णाने विवाह नहीं किया। वह समाजको अन्धविश्वासके अन्धकारसे निकालनेके लिए अपनी सारी शक्ति लगाकर कार्य कर रही है।

हिन्दोस्तानी और राष्ट्रीय एकता

श्री सन्तराम, बी० ए०

इस दिन मैं लाहौरके एक सरकारी पुस्तकालयमें बैठा पत्र-पत्रिकायें देख रहा था। देखते-देखते मेरे हाथमें "हमारी जबान" नामकी एक उर्दू-पत्रिका पड़ गयी। यह देहलीसे निकलती है। उसका उद्देश्य उर्दूको भारतकी सर्वव्यापक भाषा बनाना है। उसमें मि० जिन्नाका भी आशीर्वाद छपा था। उसमें आपने कहा था कि उर्दू मुसलमानोंकी राष्ट्र-भाषा है। इसका जितना अधिक प्रचार होगा, मुसलमान उतने ही अधिक सङ्गठित और सुदृढ़ होंगे। मि० जिन्नाकी इस स्पष्टोक्तिको पढ़कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मेरे मनमें अनायास यह प्रश्न उठा कि क्या वे लोग भारी भूल नहीं कर रहे हैं, जो "हिन्दोस्तानी" नामकी एक नयी भाषा इसलिए बनाना चाहते हैं कि मुसलमान हिन्दी नहीं समझते।

भारतमें मुसलमानोंकी संख्या ८ करोड़से कुछ कम बतायी जाती है। इन ८ करोड़में बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा, मद्रास, पञ्जाब, बम्बई, गुजरात, राजपूताना आदिके भी मुसलमान हैं। इन मुसलमानोंकी भाषा उर्दू नहीं। उनकी भाषा वही है, जो वहांके हिन्दुओंकी है। बम्बईमें रहनेवाले मि० जिन्नाकी भाषा वहीं रहनेवाले सर सीतलवादकी भाषासे अलग नहीं। कलकत्तामें निवास रखनेवाले मि० फजलुल हक वही भाषा बोलते हैं, जो श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय बोलते हैं। लाहौरमें रहनेवाले मि० जफरअलीकी भाषा मेरी भाषासे भिन्न नहीं है। फिर इन लोगोंको अपनी बात समझानेके लिए हिन्दुओंको एक नवीन भाषा गढ़नेकी क्या आवश्यकता है? पारसी, यहूदी, चीनी, अंगरेज, मुगल, पठान आदि लोग बाहरसे आये हैं। इनकी भाषा और हिन्दुओंकी भाषामें थोड़ा-बहुत अन्तर हो सकता है। परन्तु उनकी संख्या तो दालमें नमकके बराबर भी नहीं। सौमें पञ्चानवे मुसलमान तो ऐसे हैं, जिनके पूर्वज हिन्दू थे। वंशकी दृष्टिसे उनमें और हिन्दुओंमें कुछ भी अन्तर नहीं। श्री कन्हैयालाल गौबा आज हिन्दू हैं तो उनकी भाषा और है; कल जब वह खालिद लतीफ गौबा बन जाते हैं तो उनकी भाषा और हो जाती है, वह अपने भाई जीवनलाल गौबाकी भाषाको समझनेमें असमर्थ हो जाते हैं और उनके साथ बातचीत करनेके लिए जीवनलाल गौबाको "हिन्दोस्तानी" नामकी एक नवीन भाषाका आश्रय लेनेकी आवश्यकता हो जाती है, यह बात मेरी समझमें नहीं आती।

हिन्दोस्तानीको सच्चे मुसलमान भी पसन्द नहीं करते। वे सब, काश्मीरसे लेकर कुमारी अन्तरीप तक और अटकसे लेकर आसाम तक, मि० जिन्नाकी भांति शुद्ध उर्दूके ही पक्षमें हैं। यदि इसमें किसीको सन्देह हो, तो वह उपर्युक्त "हमारी जबान"के कुछ अङ्क पढ़कर देख ले। उसे मेरी बातका विश्वास हो जायगा।

"हिन्दोस्तानी"के पक्षपातियोंको हिन्दी कठिन प्रतीत होती है। इसलिए वे इच्छा, भावना और अनुभूतिको हटाकर उनके स्थानमें ख्वाहिशात, जजबात और महसूसात रखना चाहते हैं। उनकी धारणा है कि भारतके अधिकांश लोग अर्थशास्त्र, राजनीति और परिस्थिति नहीं समझते। इसलिए इनका बहिष्कार करके इक्तसादियात, सियासियात और माहूल कहना चाहिए। पञ्जाबमें सर्वसाधारण लोग घरोंमें स्वभाव, बधाई, असीस, काया, गुण, न्याय, अन्न-जल, जन्म, ग्राम, शोक, ज्ञान, अम्बर, बहन, मां, पिता आदि शब्द बोलते हैं। परन्तु अब इन शब्दोंको निकालकर इनके स्थानमें आदत, मुबारकबाद, दुआ, जिसम, सिफत, इन्साफ, आबोदाना, पैदायश, देहात, मातम, इल्म, आसमान, हमशीरा, वालिदा और वालिदको प्रचलित किया जा रहा है। पञ्जाबी भाषामें ८० प्रति सैकड़ासे भी अधिक शब्द संस्कृतके हैं। सिक्खोंके गुरु सब पञ्जाबमें हुए हैं। आप उनकी 'वाणी'को पढ़ जाइये। आपको मेरे कथनका प्रमाण मिल जायगा। नवें गुरु तेगबहादुरजीका जन्म अमृतसरके निकट गोन्दवाल नामक एक छोटे-से गांवमें हुआ था। वे ठेठ पञ्जाबी थे। उनके दो "शब्द" मैं नीचे देता हूं —

तो हिन्दू मुसलमानोंके और न मुसलमान हिन्दुओंके साहित्य और भावको भली भांति समझ सकते हैं। हिन्दोस्तानी जाननेवाला मुसलमान सूर और तुलसीके ग्रन्थ नहीं पढ़ सकता। इसी प्रकार हिन्दोस्तानीका अनन्य भक्त हिन्दू सीरतुल नबव्वत और तौबातुन नसूह नहीं समझ सकता। हिन्दोस्तानीकी खींचातानीमें दोनोंकी मट्टी खराब है—

आंखें कहें कि दिल ही ने हमको किया खराब।
और दिल कहे कि आंखोंने मुझको डुबा दिया॥
बिगड़ा किसीका कुछ न, मगर हाय मुफ्तमें।
दोनोंकी जिदने खाकमें हमको मिला दिया॥

कहा जाता है कि हिन्दोस्तानी वह भाषा है, जो उत्तर भारतमें बोली जाती और फारसी एवं नागरी दोनों लिपियोंमें लिखी जाती है। पर मैं पूछता हूं कि क्या यह भाषा फारसी लिपिमें लिखी जा सकती है? ऐसी बात है, तो कोई कर्म, क्रम और करमका भेद, पानी एवं पाणिका भेद, परभू एवं प्रभुका भेद, डंड़ एवं डण्टरका भेद फारसी लिपिमें लिखकर दिखलाये। संस्कृत शब्दोंका लिखा जाना तो दूर रहा, फारसी लिपिमें तो स्वयं उसके अपने शब्द भी शुद्ध नहीं लिखे जाते। मुतमव्वल और नबव्वतको उर्दू-पढ़े मैट्रिक लड़के मुतमूल और नबूत ही पढ़ते देखे गये हैं।

फिर एक कठिनाई और है। गणित और भौतिक विज्ञानकी पुस्तकोंमें वैज्ञानिक परिभाषायें एक ही भाषामें कैसे रखी जा सकती हैं। हिन्दीमें जहां तापमापक, केशाकर्षण, समभुज त्रिकोण, लघुत्तम समापवर्तक और नक्षत्र है, वहां उर्दूमें क्रमशः मिक्यासुल हरारत, कशशे अनाबीबे शेरी, मुसल्लस मुसाविउल माकैन, जुआजाफ अकल और अजरामे फलकिया होगा। कुछ लोग कहते हैं कि जैसे अंगरेजीमें वैज्ञानिक परिभाषायें सब लैटिन या फ्रेञ्च हैं, वैसे हम भी हिन्दोस्तानीमें वही लैटिन और फ्रेञ्च परिभाषायें रख लेंगे। परन्तु वे यह नहीं समझते कि बंगला, मराठी, हिन्दी, गुजराती और तामिलके साथ जो सम्बन्ध संस्कृतका है, वही सम्बन्ध लैटिनका अंगरेजी आदि यूरोपीय भाषाओंके साथ है। विभिन्न भाषा-भाषी भारतीय लोगोंके लिए जैसे संस्कृत परिभाषायें समझना और स्मरण रखना सुगम है, वैसे ही यूरोपके लोगोंके लिए लैटिन परिभाषायें समझना सुगम है। अंगरेजी भाषासे अनभिज्ञ भारतीय बालकोंको जितना "समभुज त्रिकोण" अपना शब्द ज्ञात पड़ता है, उतना आईसेसोलस ट्रायङ्गल नहीं।

हिन्दोस्तानीके पक्षपाती कहते हैं कि हिन्दू और मुसलमानको मिलानेके लिए ऐसी 'आधा तीतर, आधा बटेर' भाषाका होना आवश्यक है। इस प्रकार हिन्दीको भ्रष्ट करनेसे यदि हिन्दू-मुसलिम एकता हो जाय, तो मैं इसे एक सस्ता सौदा समझता हूं। परन्तु कठिनाई तो यह है कि इससे भी वैसा होना सम्भव नहीं दिखलाई पड़ता। जैसा कि मैंने ऊपर मि० जिन्नाके "हमारी जबान"को भेजे हुए आशीर्वादसे दिखलाया है, मुसलमान उर्दूको अपनी राष्ट्रीय भाषा मानते हैं। अपने सङ्गठनके लिए वे इसे अनिवार्य समझते हैं। वे इसमें हिन्दीके शब्द मिलाकर इसे गंदला करनेको तैयार नहीं। गत १३ नवम्बरको लाहौरमें लाला लाजपतरायकी बरसीके उपलक्षमें एक सम्मेलन किया गया था। सम्मेलनका विचारणीय विषय था—"हिन्दोस्तानीका स्वरूप कैसा हो?" सम्मेलनके प्रधान थे पञ्जाबके प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता डा० गोपीचन्दजी। उसमें जबलपुरके शिक्षाइन्स्पेक्टर डा० सूफीने कहा कि मैं बाहरसे आया हूं। मुझे इस सम्मेलनमें बोलनेके लिए पहलेसे कहा भी न गया था। यों ही मेरी रूमी टोपी देखकर मुझे अभी पकड़ लिया गया है। पता लगानेपर मालूम हुआ कि सम्मेलनके संयोजकोंको बहुत यत्न करनेपर भी सारे लाहौरमें एक भी मुसलमान ऐसा नहीं मिला, जो उर्दूको छोड़कर हिन्दोस्तानीके पक्षमें बोलनेको तैयार हो।

मुसलमानोंका मत स्पष्ट है। वे इसे किसीसे छिपाते नहीं। वे कहते हैं कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग-अलग राष्ट्र हैं। उनकी सभ्यता, उनकी संस्कृति, उनका इतिहास, उनकी भाषा, उनके रीति-रिवाज और उनके महापुरुष सब एक दूसरेसे बिलकुल पृथक् हैं और मुसलमान "पाकिस्तान" के नामसे अपना एक पृथक् स्वदेश भी बनानेका राग अलाप रहे हैं। ऐसी परिस्थितिमें हिन्दोस्तानी भाषा गढ़कर हिन्दू-मुसलिम ऐक्यकी जो कल्पना की जा रही है, वह कैसी है, यह सहज ही सोचा जा सकता है।

कोई प्रयत्न सफल तभी हो सकता है, जब वह ठीक दिशामें किया जाय। उलटी दिशामें किया गया भगीरथ प्रयत्न भी निष्फल होता है। दो मनुष्योंकी भाषा एक होनेसे ही

उनमें प्रेम एवं ऐक्य नहीं हो जाता। पञ्जाबका ब्राह्मण भाषा-भेद होनेपर भी अपनेको संयुक्त प्रान्तके ब्राह्मणके जितना निकट समझता है, उतना पञ्जाबके कहारके निकट नहीं। इसी प्रकार संयुक्त प्रान्तका कायस्थ भाषा-ऐक्य होनेपर भी अपनेको संयुक्त प्रान्तके बनियेके उतना निकट नहीं समझता, जितना भिन्न भाषा-भाषी बङ्गालके कायस्थके। मि० जिन्ना पञ्जाबी भाषा नहीं जानते। परन्तु उनका जो प्रेम पञ्जाबके सर सिकन्दरसे है, वह बम्बईमें रहनेवाले सर सीतलवादके साथ नहीं। इसका कारण क्या है? कारण यह है कि जिन लोगोंके साथ हम रोटी-बेटीका व्यवहार कर सकते हैं, उनके साथ ही हमारी प्रकृत घनिष्टता होती है। हिन्दू सामाजिक जीवनमें मुसलमानोंसे अलग रहकर केवल राजनीतिक जीवनमें उनको मिलाना चाहते हैं। परन्तु समाज-शास्त्रका यह नियम है कि एक देशमें बसनेवाले दो जन-समुदाय जब एक दूसरेसे सामाजिक घनिष्टता नहीं करते, तो उनमेंसे एक अपनेको ऊंचा और दूसरा नीचा समझने लगता है। इस ऊंच-नीचके भावके उत्पन्न होते ही उनकी एकता नष्ट होकर उनमें ईर्ष्या, द्वेष और वैमनस्य उत्पन्न हो जाता है। फिर भाषाकी एकता उनको मिलाये नहीं रख सकती।

अलबत्ता, सामाजिक एकता होनेसे भाषाकी एकता अपने आप हो जायगी। दोनोंके मेल-जोलसे भाषाका स्वाभाविक विकास होगा। जब तक सामाजिक एकता स्थापित नहीं होती, भाषाकी एकताकी समस्या भी हल नहीं होगी। दोनोंके बीचके सामाजिक अन्तरको दूर कर दीजिये, सभी भेदभाव मिट जायंगे।

थोड़े दिनकी बात है, मैं लाहौरसे होशियारपुर जा रहा था। रेलके जिस डिब्बेमें मैं सवार हुआ, वहां तीन मनुष्य आपसमें वाद-विवाद कर रहे थे। उनमें एक मुसलमान था, दूसरा सिख और तीसरा आर्यसमाजी। मुसलमान फारसी-अरबीके मोटे-मोटे शब्दोंसे भरी हुई उर्दू बोल रहा था। उसके मुबहिस और तनकीद आदि शब्द ऐसे थे, जिन्हें बहुत कम लोग समझते थे। मैंने उससे पूछा, आप ऐसी क्लिष्ट उर्दू क्यों बोल रहे हैं, आप पञ्जाबीमें बात क्यों नहीं करते? वे बोले—पञ्जाबी एक गंवारू (बलगर) बोली है। मैंने कहा, आप भी तो पञ्जाबी हैं। वे बोले, मैं पञ्जाबी नहीं, मैं अलीगढ़ी हूं। मैंने कहा, आप अलीगढ़में पढ़े बेशक हों, परन्तु आपका उच्चारण एवं आकार-प्रकार साफ बता रहा है कि आप पञ्जाबी हैं।

इतनेमें सिख महाशय उनको सम्बोधन करके कुछ क्रोधसे बोले—आपके घरकी बोली चाहे गंवारू हो, हमारे घरोंकी पञ्जाबी तो सुसभ्य है।

अब आर्यसमाजी महाशय भी बोल उठे। वे कहने लगे, अजी उर्दू-लिपि जैसी सदोष लिपि दूसरी कोई नहीं, लिखो कुछ और पढ़ो कुछ; हमारी नागरी लिपि देखिये, जो भी शब्द कहो, ठीक-ठीक लिखा जाता है।

इसपर मुसलमान महाशयके एक दूसरे साथी बोले कि उर्दू लिपिमें सीन, सुआद और सेकी ध्वनिमें थोड़ा-थोड़ा अन्तर है; उनका शुद्ध उच्चारण हम भारतीय नहीं कर सकते, ईरानी लोग कर सकते हैं। आपकी नागरी लिपिमें उन सब ध्वनियोंके लिए केवल एक "स" है। इसलिए वह लिपि किसी कामकी नहीं।

इसपर दोनों पक्षोंमें कुछ तेजी आ गयी। मनोमालिन्य बढ़ते देख मैंने उन मुसलमान महाशयसे हंसकर कहा—भाई साहब, मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूं। कृपया राजनीतिक और साम्प्रदायिक विचारको अलग रखकर निष्कपट भावसे उत्तर दीजिये।

उन्होंने कहा, पूछिये। मैंने कहा, उर्दू, पञ्जाबी और हिन्दीके इस झगड़ेको छोड़कर मुझे बताइये कि क्या कोई ऐसा उपाय भी है, जिससे हिन्दू-मुसलमानमें एकता हो जाय? साथ ही मैंने स्वयं ही सुझा दिया कि यदि हिन्दू छूत-छात छोड़ दें और सामाजिक सम्पर्कमें घनिष्टता लायें, तो क्या इससे वैमनस्य कम नहीं हो जायगा?

मेरे ये शब्द सुनते ही उन्होंने उर्दू बोलना बन्द कर दिया और हंसकर पञ्जाबीमें कहने लगे कि—"यदि यह बात हो जाय, तो फिर कहना ही क्या है; तब सारा झगड़ा ही न समाप्त हो जाय। फिर तो हिन्दू-मुसलमान एक दूसरेके गलेमें बांहें डालकर मिल जायं।"

हिन्दू आज मुसलमानोंको साम्प्रदायिक और राष्ट्र-विरोधी कहकर कोसते हैं। परन्तु वे अपने उन दोषोंको नहीं देखते, जिन्होंने मुसलमानोंको प्रोत्साहन दिया है। इसलाम देश-द्रोह नहीं सिखलाता। हजरत मुहम्मदने अरबोंको

अरबसे प्रेम करना सिखाया और उनसे योरूशलम छुड़ाकर अरबमें मक्केको काबा बनाया। कुरानमें लिखा है—"कोई देश नहीं, कोई जाति नहीं, जहां हमने नबी नहीं भेजा उस देश या जातिकी बोलीके साथ।" ऐसी शिक्षाकी विद्यमानतामें कोई भारतीय मुसलमान देशमें फूट डालने या स्वदेशके प्रति अभक्ति रखनेको अच्छा नहीं कह सकता। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि जाति-भेद मिट जाय, तो इसके साथ ही छूतछात भी मिट जायगी और हिन्दू और मुसलमान एक दूसरेमें घुल-मिल जायंगे। फिर जो सभ्यता और संस्कृति वस्तुतः अधिक उपयोगी होगी, वह जीवित रहेगी, घटिया संस्कृति नष्ट हो जायगी। इस प्रकार दोनों जातियोंके सामाजिक मेल-मिलापसे न अलग पाकिस्तान बनानेकी आवश्यकता मुसलमानोंको रहेगी और न हिन्दीको हिन्दोस्तानी बनाकर भ्रष्ट करनेकी हिन्दुओंको। बङ्गाल-सरकारने अभी एक विज्ञप्ति निकालकर कहा है कि आगामी मनुष्य-गणनामें हिन्दुओंके वर्ण, उपवर्ण और सम्प्रदाय सब लिखे जायंगे, ताकि हिन्दुओंकी विभिन्न जातियोंकी राजनीतिक और आर्थिक दशाका ज्ञान प्राप्त हो सके; परन्तु मुसलमानोंको केवल मुसलमान ही लिखा जायगा, उनकी जाति, उपजाति या सम्प्रदाय कुछ नहीं लिखा जायगा, क्योंकि मुसलमानोंने सरकारके पास ऐसा करनेकी प्रार्थना की है। इसका परिणाम क्या होगा? मुसलमान तो एक ठोस दल बने रहेंगे और हिन्दू आपसमें सरकारी नौकरियों और दूसरे राजनीतिक अधिकारोंके लिए उसी तरह लड़ेंगे, जैसे आज हिन्दू और मुसलमान लड़ते हैं।

जो हिन्दू आपसमें इस प्रकार छिन्न-भिन्न हैं, वे मुसलमानोंको अपने साथ मिलाकर एक राष्ट्र बनाने जा रहे हैं, यह हास्यजनक नहीं तो क्या है? इसलिए देशका सच्चा और स्थायी कल्याण इसीमें है कि हिन्दुओंमेंसे सामाजिक विषमता और भेदभाव दूर कर दिया जाय। मुसलिम-हिन्दू-ऐक्यका प्रयत्न करनेके साथ ही हिन्दुओंमें समता और बन्धुताका भाव जागृत करना आवश्यक है। हिन्दुओंमें इस पुनीत भावके जागरित होते ही पाकिस्तान, हिन्दोस्तानी और अन्य कितने ही विवाद अपने आप शान्त हो जायंगे। तभी भारतमें सच्ची राष्ट्रीयता उत्पन्न हो सकेगी।

——

सान्ध्य-गीत

देखो, सांझ झुकी आती है!

दिशा-दिशासे सिमट-सिमट कर
उज्ज्वल रवि-कर-निकर मनोहर
तममें लीन हुआ जाता है; अंधियारी बढ़ती जाती है।
देखो, सांझ झुकी आती है!!

जहां प्रातमें था उजियाला,
फैला था आलोक निराला,
उसी जगह अब धुंधले तमकी, वह देखो, छाया छाती है!
देखो, सांझ झुकी आती है!!

दिक्-दिगन्तमें नीरवता है,
कण-कणमें भय-कातरता है,
देखो, छाया-पथमें दिनकी उजली आयु चुकी जाती है!
देखो, सांझ झुकी आती है!!

—जितेन्द्रकुमार।

यह अन्याय और उत्पीड़न !

श्री एस० शङ्करन् अय्यर, बी० एस-सी०

"हमारे आर्थिक और राजनीतिक जीवनमें हिन्दुस्तानियोंका जो प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है, उसे यदि हम नहीं रोकेंगे, तो सिंहालियोंका नष्ट हो जाना अनिवार्य है।" ये शब्द हैं, जिन्हें सीलोनकी राष्ट्रीय कांग्रेसके २१ वें अधिवेशनके स्वागताध्यक्ष मि० डी० एस० सेनानायकने अपने भाषणके अन्तमें कहा है। मि० सेनानायक सीलोन-सरकारके कृषि-विभागके मन्त्री भी हैं, इसलिए उनके इन शब्दोंका महत्त्व और भी ज्यादा हो जाता है और सहज ही यह समझा जा सकता है कि सीलोन-प्रवासी स्वदेशवासियोंके सामने कैसा कठिन समय है।

ब्रिटिश सरकारके औपनिवेशिक विभागके अधीन सीलोन स्वदेशके बिलकुल पास ही है। सीलोन और भारतका सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन है। पुरातत्त्वशास्त्रियोंमें जब रावणकी लङ्काके सम्बन्धमें मतभेद है, तब उसकी बात यदि छोड़ दी जाय, तो भी ईसासे २९९ वर्ष पूर्व सम्राट् अशोकने अपने पुत्र और पुत्रीको बौद्ध-धर्मका प्रचार करनेके लिए सीलोन भेजा था और वहां उनका बड़ा स्वागत-सत्कार हुआ था। सीलोनकी कितनी ही चीजें सीलोन और भारतके उस प्राचीन सम्बन्धकी साक्षी आज भी दे रही हैं; किन्तु इधर परिस्थितिमें कुछ परिवर्तन हो गया है और जिन हिन्दुस्तानियोंका स्वागत-सत्कार होता था, उन्हें वहांसे खदेड़ा जा रहा है, उनके वहां रहनेमें तरह-तरहकी कठिनाइयां पैदा की जा रही हैं—यद्यपि उसी अधिवेशनके अध्यक्ष मि० ई० ए० पी० विजयरत्नेने अपने भाषणमें यह आवश्यकता अनुभव की है कि "परस्पर मैत्री, सद्भाव और सहानुभूतिकी आवश्यकता सीलोन और हिन्दुस्तान, दोनोंको है, हिन्दुस्तानकी अपेक्षा सीलोनको उनकी आवश्यकता शायद अधिक है। इसीलिए हमें इसका खेद है कि हमारे प्रतिनिधियोंका प्रयत्न सफल नहीं हुआ। परन्तु हमें इसमें सन्देह नहीं है कि सीलोन और हिन्दुस्तानमें जो मतभेद है, उसे दूर करनेकी पूरी कोशिश की जायगी।"

सीलोनकी राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्षने जिस मतभेदका उल्लेख किया है, उसका एक अपना इतिहास है। १९३८ की गणनाके अनुसार सीलोनमें चाय और रबड़ आदिके बगीचोंमें काम करनेवाले हिन्दुस्तानी मजदूरोंको संख्या ६ लाख ८२ हजार ५७० है। ये प्रायः सबके सब हमारे प्रान्त मद्रासके हैं। इन मजदूरोंके अलावा भी हजारों हिन्दुस्तानी हैं, जो वहां दूकानदार, अध्यापक और सरकारी कर्मचारी हैं। म्युनिसिपल बोर्डोंमें भी जो हिन्दुस्तानी नौकर हैं, उनकी संख्या भी हजारों है। १९२३ में प्रवास-कानूनकी व्यवस्थाके अनुसार जब हिन्दुस्तानियोंके सीलोन जानेके लिए द्वार खोल दिया गया, उसी समयसे यह प्रश्न हमेशा ही सामने आता रहा है कि सीलोन-प्रवासी हिन्दुस्तानी मजदूरोंका कमसे कम वेतन कितना होना चाहिए। भारत-सरकारके बहुत लिखा-पढ़ी और कोशिश करनेके बाद १९२७ में इस प्रश्नका कुछ निपटारा हुआ और सीलोनमें कानून बननेके बाद जनवरी १९२९ से उस निपटारेके अनुसार कार्य होने लगा। किन्तु रबड़ और चायके व्यापारकी स्थितिने फिर :पलटा खाया और १९३२ और १९३३ में कितने ही बगीचोंके मजदूरोंका वेतन कम कर दिया गया। उसी सालके मध्यमें स्थितिमें फिर कुछ सुधार हुआ और साल-भर पीछे १९३४ के जूनसे फिर पुराने हिसाबसे हिन्दुस्तानी मजदूरोंको वेतन मिलने लगा। रबड़ और चायकी मन्दीके उन दिनोंमें हिन्दुस्तानसे सीलोनके लिए मजदूरोंका जाना प्रायः बन्द ही रहा; परन्तु १९३७ के अन्तमें रबड़ और चायके व्यवसायमें जब फिर कुछ गरमी आयी, सीलोनके प्लाण्टरोंकी दृष्टि इस देशकी ओर गयी; क्योंकि व्यवसाय-सम्बन्धी उस स्थितिसे पूरा लाभ उठानेके लिए उन्हें चाहिए थे मजदूर और ये हिन्दुस्तानके सिवाय उन्हें कहां मिलते। उस समय यह अनुमान किया गया था कि लगभग २० हजार मजदूरोंकी आवश्यकता होगी; परन्तु सीलोन-सरकारने केवल ५ हजार नये मजदूरोंको बाहरसे लानेकी आज्ञा दी। मजदूरोंकी यह मांग होनेपर भारत-सरकारने हिन्दुस्तानी मजदूरोंकी मजदूरीकी दरमें

सुधार होने और साथ ही ग्राम-पञ्चायतके निर्वाचनमें हिन्दुस्तानियोंको मताधिकार दिये जानेका प्रश्न उठाया। सीलोन और भारतमें आज जो मतभेद उपस्थित हो गया है और जिसके कारण पिछले तीन वर्षमें उत्तरोत्तर विरोध-भाव बढ़ता गया है, उसके मूलमें यही दो प्रश्न हैं। इन प्रश्नोंका निपटारा नहीं होनेके कारण हिन्दुस्तानसे किसी मजदूरको भर्ती होकर सीलोन नहीं जाने दिया गया है।

सीलोन-सरकारने १९३६ में सीलोन-प्रवासियोंकी, जिनमें ज्यादा संख्या हिन्दुस्तानियोंकी ही है, समस्याओंके सम्बन्धमें एक कमीशन नियुक्त किया था। इसकी रिपोर्ट लगभग दो साल पीछे १९३८ में प्रकाशित हुई। सीलोन-सरकारके कृषि-मन्त्री मि० सेनानायकने अपने भाषणमें एक स्थलपर यद्यपि यह कहा है कि "बहुसंख्यक हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानको अपना घर और सीलोनको अपनी काम करनेकी जगह समझते हैं और सीलोनमें स्थायी रूपसे रहनेका उनका इरादा नहीं है," तथापि कमीशनकी रिपोर्टमें इस सम्बन्धमें बिलकुल ही स्पष्ट कहा गया है कि "प्रतिशत ४० से ५० तक हिन्दुस्तानी मजदूरोंको सीलोनका स्थायी निवासी समझा जा सकता है और बगीचोंमें जो हिन्दुस्तानी मजदूर काम करते हैं, उनमेंसे काफी मजदूरोंका जन्म इसी टापूमें हुआ है।" कमीशनने यद्यपि हिन्दुस्तानी मजदूरोंकी कोई संख्या नहीं दी थी, तथापि यह मत प्रकट किया था कि "जब काम होता है, वे आ जाते हैं और जब काम नहीं रहता, वे चले जाते हैं। टापूकी जो भी आर्थिक और अन्य प्रकारकी उन्नति हुई है, उसका श्रेय प्रवासी मजदूरोंको है। इन प्रवासी मजदूरोंके बिना यह उन्नति हो ही नहीं सकती थी। हिन्दुस्तानियोंको अधिक मजदूरी नहीं मिलती है। प्रवासियोंपर नियन्त्रण रखनेकी वर्तमान व्यवस्था काफी है और सिंहालियोंको काम मिलनेके लिए हिन्दुस्तानियोंके सीलोन जानेपर प्रतिबन्ध लगाना व्यवहारिक नहीं है।" कमीशनकी इन सिफारिशोंके रहते हुए भी हम देख रहे हैं कि सीलोन-सरकारने कितनी ही आज्ञायें जारी कर हिन्दुस्तानियोंका वहां रहना मुश्किल कर दिया है और कदम-कदमपर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ रहा है।

पहले ग्राम पञ्चायत सम्बन्धी आज्ञा ही लीजिये। इसकी मन्शा स्त्रियों और पुरुषों, सबको मताधिकार देना था। इस सम्बन्धमें पहले जो व्यवस्था थी, उसमें संशोधन किया गया और जिन यूरोपियनों और अन्य नागरिकोंको मताधिकार नहीं था, उन्हें भी यह अधिकार दिया गया। यदि इस सुधारकी सुविधासे किसीको अछूता रखा गया, तो वे हैं हिन्दुस्तानी मजदूर, जिन्हें सीलोनकी वर्तमान समृद्धिका श्रेय है। इस अनुचित भेदभावसे हिन्दुस्तानियोंमें क्षोभ फैला और बड़ा आन्दोलन हुआ। इसपर उस आज्ञासे जातीय भेदभावकी गन्ध दूर करनेके लिए एक कौशलसे काम लिया गया। सीलोन कौंसिलकी स्थायी समितिने यह नया संशोधन रखा कि जिन वर्गोंको—यूरोपियनों, हिन्दुस्तानियों और अन्य नागरिकोंको—अभी मताधिकार नहीं है, उन सबको मताधिकार दिया जाय; परन्तु इसमें शर्त यह रहे कि मताधिकारी वही व्यक्ति माना जायगा, जिसके पास कमसे कम ९ एकड़ जमीन हो और जो मालगुजारी देता हो। जहां तक हिन्दुस्तानियोंको मताधिकार मिलनेका प्रश्न है, इस नये संशोधनका कुछ अर्थ नहीं था; क्योंकि मालगुजारी और ९ एकड़ जमीनकी शर्त होनेके कारण प्रायः सभी यूरोपियनों और अन्य नागरिकोंको अपने आप मताधिकार मिल गया और रह गये तो केवल हिन्दुस्तानी—चाय और रबड़के बगीचोंमें काम करनेवाले लगभग ७ लाख हिन्दुस्तानी मजदूर, दूकानदार और अध्यापक आदि, जिनके पास न तो जमीन है और जो न मालगुजारी ही देते हैं। इस सुधारका भी हिन्दुस्तानियोंने जोरदार प्रतिवाद किया, परन्तु उसका कुछ परिणाम नहीं निकला। सीलोनकी कौंसिलमें पास होनेसे पहले भेदभावका रङ्ग छिपानेके लिए उसमें इतना और परिवर्तन कर दिया गया कि बगीचोंमें काम करनेवाले किसी भी मजदूरको ग्राम-पञ्चायतके निर्वाचनमें वोट देनेका अधिकार नहीं होगा, चाहे वह मजदूर हिन्दुस्तानी हो या सिंहाली। यह संशोधन अपने इसी रूपमें जनवरी १९३९ से सीलोनका कानून बन गया है; परन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि उससे हिन्दुस्तानियोंके साथ घोर अन्याय हुआ है। मजदूरोंमें सिंहालियोंकी संख्या नगण्य है और इस कानूनसे व्यवहारतः केवल हिन्दुस्तानियोंकी ही हानि हुई है; क्योंकि उससे लाखों हिन्दुस्तानी उस मताधिकारसे वञ्चित रह गये हैं, जिसे सीलोनमें

रहनेवाले अन्य वर्गोंको—यूरोपियनोंको भी दिया गया है। सीलोन और हिन्दुस्तानके सम्बन्धकी दृष्टिसे इससे अधिक दुर्भाग्यकी बात और क्या हो सकती है।

प्रवासी हिन्दुस्तानियोंके साथ सीलोनमें जो जबर्दस्ती की जा रही है, उसकी सीमा यहीं तक नहीं है। सीलोन-सरकारके विभिन्न विभागोंमें रोजदारीपर १३५४ हिन्दुस्तानी काम करते थे। इनमेंसे १२२९ हिन्दुस्तानी ऐसे थे, जिन्हें नौकरी करते हुए ५ वर्षसे कम हुए थे। सिंहालियोंको काम देनेके नामपर इन सबको बरखास्त कर दिया गया है और जिन १३२३ हिन्दुस्ता नयोंको नौकरी करते हुए पांच या अधिक वर्ष बीत चुके हैं, उन्होंने नौकरीसे "स्वेच्छापूर्वक" अवकाश ग्रहण कर लेना स्वीकार कर लिया है। हमें इसमें सन्देह नहीं है कि सीलोन-प्रवासी हिन्दुस्तानियोंने अवकाश ग्रहण करनेका जो निश्चय "स्वेच्छापूर्वक" किया है, उसमें स्वेच्छाका नाम भी नहीं है और उन्होंने भावी सङ्कटकी आशङ्कासे डरकर ही वैसा किया है, उन्हें यह विश्वास हो गया है कि सीलोन-सरकार उन्हें जब नौकरीसे हटाना चाहती है, तब न्याय और अन्याय-जैसा कोई विचार उसके वैसा करनेमें बाधक नहीं हो सकता। इसे यदि स्वेच्छापूर्वक अवकाश ग्रहण करना कहा जाय, तो अनुचित दबाव किसे कहा जायगा ? भारत-सरकारने सीलोन-सरकारकी इस मनोवृत्तिके प्रतिवादमें यदि व्यापारिक समझौतेकी बातचीत नहीं की, तो यह उचित ही किया।

अगस्त १९३९ से सीलोनमें एक ओर जहां प्रत्यावर्तन-नीतिसे काम लिया जा रहा है, वहां दूसरी ओर हिन्दुस्तानियोंकी दूकानोंपर नियन्त्रण लगा दिया गया है, जिससे सिंहाली दूकानदार हिन्दुस्तानी दूकानदारोंकी स्पर्द्धासे बच सकें। दूकान-नियन्त्रण-आर्डिनेन्स इतना व्यापक है कि उसमें दूकानके बन्द करनेका समय निश्चित करने तककी व्यवस्था है; परन्तु आर्डिनेन्सके इस भागको अभी तक काममें नहीं लाया गया है। प्रत्यावर्तन-नीतिकी मंशा इसके सिवाय और कुछ नहीं है कि घर पहुंच जानेपर कुछ रुपये मिलनेका लालच देकर हिन्दुस्तानियोंको सीलोन छोड़ आनेके लिए तैयार कर लिया जाय। सीलोन-सरकारकी इस नीतिके शिकार लगभग ६०० हिन्दुस्तानी हुए हैं और वे सीलोनसे हिन्दुस्तान लौट आये हैं। ये हिन्दुस्तानी प्रायः वही हैं, जिन्हें सरकारी नौकरीसे अलग किया गया है। सरकारी नौकरीसे अलग कर दिये जानेपर, बेकार हो जानेपर उन्हें जिस अवस्थाका सामना करना पड़ रहा होगा, क्या आश्चर्य है, यदि उन्होंने "डूबतेको तिनकेका सहारा" उक्ति चरितार्थ करनेके लिए इस दयनीय स्थितिको स्वीकार कर लिया। सीलोन-सरकारके हिन्दुस्तानी विरोधी कार्योंमें अन्यतम है १९३९ की एक आज्ञा, जिसका सम्बन्ध मछली मारनेके व्यवसायसे है। इस आज्ञाके अनुसार कोई भी गैर-सिंहाली सीलोनमें मछली पकड़कर बेच नहीं सकता, जब तक इसके लिए लाइसेन्स न लिया जाय। कोई गैर-सिंहाली यदि किसी सिंहालीको रखकर यह चाहे कि उसके द्वारा मछलियां पकड़वाकर बेचे, तो इस आज्ञाके अनुसार वह यह भी नहीं कर सकता, जब तक लाइसेन्स न हो। भारत-सरकारकी ओरसे जब इस व्यवस्थाका प्रतिवाद किया गया, तब सीलोन-सरकारकी ओरसे यह उत्तर मिला कि जो हिन्दुस्तानी काफी अर्सेसे सीलोनमें बसे हुए हैं और मछली पकड़नेका व्यवसाय नियमित रूपसे करते हैं, उन्हें लाइसेन्स मिलनेमें किसी तरहकी कठिनाई नहीं होगी। सीलोन-सरकारका यह उत्तर वास्तवमें कोई उत्तर नहीं है; क्योंकि हिन्दुस्तानियोंको सीलोनसे खदेड़नेके लिए वह जितने उपायोंसे काम ले रही है, उनके देखते हुए किसीको भी इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि उसका परिणाम भी मछली पकड़ने और बेचनेके व्यवसायमें लगे हुए हिन्दुस्तानियोंके लिए घातक ही होगा और कुछ ही वर्षोंमें इस क्षेत्रमें हिन्दुस्तानियोंका कोई स्थान नहीं रह जायगा।

सिंहालियोंके स्वार्थोंके नामपर सीलोन-सरकार जो यह सब कर रही है, हिन्दुस्तानियोंके सम्बन्धमें जिस बहुत ही अनुचित मनोवृत्ति और अन्याय एवं अनुदारतापूर्ण नीतिका परिचय दे रही है, उसका वास्तवमें कोई वास्तविक कारण नहीं है। सिंहालियोंके हितके लिए हिन्दुस्तानियोंको मताधिकारसे वञ्चित रखना, भेदभावमूलक नीति बरतना, वर्षों सेवा करनेके बाद भी सरकारी और म्युनिसिपल नौकरियोंसे हटा देना, दूकानदारी, अध्यापकी और कोई अन्य धन्धा करनेके रास्तेमें अड़ङ्गा लगाना और तरह-तरहके उपायोंसे काम लेकर हिन्दुस्तानियोंको सीलोन छोड़ आनेके लिए विवश करना केवल अनुचित ही नहीं,

अनावश्यक भी है। अधिक अर्सा नहीं हुआ, जेकसन इमीग्रेशन कमीशनने अपनी रिपोर्टमें प्रवासी हिन्दुस्तानियों-की स्थितिको दृष्टिमें रखकर यह मत प्रकट किया था कि "किसी तरहकी आर्थिक हानि पहुंचाना तो दूरकी बात है, प्रवासी हिन्दुस्तानियोंसे सीलोनको लाभ हुआ है।" सीलोन-सरकारकी हिन्दुस्तानियों सम्बन्धी वर्तमान नीति निःसार होनेका इससे अधिक पुष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है। इसीलिए हमारा यह दावा है कि सीलोन-सरकारके कृषि-विभागके मन्त्री मि० सेनानायकने सीलोन-प्रवासी भारतीयोंके कारण सिंहाली लोगोंके आर्थिक और राजनीतिक भविष्यके सम्बन्धमें जो भय प्रकट किया है, वह बिलकुल थोथा है, उसमें कुछ भी सार नहीं है। मालूम यह होता है कि अपनी पार्टीका राजनीतिक प्रभाव बनाये रखने और सिंहालियोंकी जागृतिसे अधिकसे अधिक लाभ उठाते रहनेके लिए सीलोन-सरकारके वर्तमान अधिकारियोंने हिन्दुस्तानियों सम्बन्धी वर्तमान अदूरदर्शितापूर्ण नीतिको स्वीकार किया है; परन्तु इससे होगा क्या? हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिको विपन्न बनाकर सीलोनकी समृद्धिकी रक्षा नहीं की जा सकती और न सिंहालियोंका ही प्रकृत हित किया जा सकता है। हम देख रहे हैं कि इस नीतिके फलस्वरूप हिन्दुस्तानी मजदूरोंमें भी बड़ा असन्तोष फैल गया है। अपनी अनिश्चित अवस्थासे वे बेचैन हो उठे हैं। कितने ही बगीचोंमें हड़ताल होनेके समाचार समय-समयपर आते रहे हैं और एक स्थान मोलोयामें तो इतनी सङ्गीन हालत हो गयी कि पुलिसको गोली तक चलानी पड़ी। सीलोन-सरकारकी वर्तमान नीतिसे सिंहालियोंके सङ्कीर्ण भावोंको हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध अनुचित प्रोत्साहन मिला है, जिससे उनके पारस्परिक सम्बन्धमें कटुता बढ़ गयी है और इसके कारण जो अवाञ्छनीय घटनायें घटित हो सकती हैं, उनका भी अभाव नहीं रहा है। यह अवस्था है तो बहुत ही दुःखजनक, परन्तु इसके लिए हिन्दुस्तानी किसी तरह भी जिम्मेदार नहीं हैं।

हिन्दुस्तानी आखिर चाहते क्या हैं? मांग यही तो है न, कि उन्हें उपयुक्त वेतन मिले और साथ ही वे अधिकार और सुविधायें भी, जिन्हें अन्य लोगोंको दिया गया है या जो पहलेसे ही अन्य लोगोंको मिली हुई हैं। शासन-नीतिमें भेदभाव और वह भी एक ऐसे वर्गके साथ, जिसके श्रमको सीलोनकी वर्तमान समृद्धिका गौरव प्राप्त है, यों भी बुरा है और साथ ही सीलोन और सिंहालियोंके स्वार्थोंके लिए भी हानिकर है। हिन्दुस्तानी अपने लिए कोई विशेष सुविधा नहीं चाहते। वे केवल वही अधिकार चाहते हैं, जो दूसरोंको मिला हुआ है। सीलोन-सरकारके कृषि-विभाग-के मन्त्री मि० सेनानायकने बतलाया है कि भारत-सरकार और सीलोन-सरकारके बीच पिछले दिनों जो बातचीत समझौतेके लिए चल रही थी, उसमें सीलोन-सरकारकी ओरसे यह प्रस्ताव किया गया था कि वोट देनेका अधिकार उन्हीं हिन्दुस्तानियोंको मिलना चाहिए, जो स्थायी रूपसे सीलोनमें बस गये हों। इसी तरह नागरिकताके पूरे अधिकार उन हिन्दुस्तानियोंको मिलना चाहिए, जिन्हें वहां रहते हुए दो पीढ़ियां हो गयी हों। सीलोन-सरकारका यह विचार कई कारणोंसे ठीक नहीं है। स्वदेशमें हम देखते हैं कि मताधिकार पानेके लिए किसीके स्थायी रूपसे बसने-की शर्त नहीं है। हजारों ही यूरोपियन हैं, जो यहां स्थायी रूपसे नहीं बसे हुए हैं, फिर भी उन्हें मताधिकार है और वे इस देशकी एसेम्बलियों और अन्य संस्थाओंमें अपने प्रतिनिधि चुनकर भेजते हैं। ब्रिटिश सरकारके जिस औप-निवेशिक विभागके अधीन सीलोन है, उसीके कई अन्य उपनिवेशोंमें मताधिकार पानेके लिए स्थायी रूपसे बसनेकी कोई शर्त नहीं है और उन उपनिवेशोंमें यूरोपियनोंको मताधिकार मिला हुआ है। इस स्थितिमें कोई कारण नहीं है कि हिन्दुस्तानियोंको मताधिकार देनेसे इनकार किया जाय या उसके लिए कोई ऐसी शर्त रख दी जाय कि व्यवहारतः केवल हिन्दुस्तानी ही उस अधिकारसे वञ्चित रहें, विशेषतः जब यह प्रमाणित है कि सीलोन-प्रवासी हिन्दुस्तानियोंमेंसे बहुसंख्यक अपने प्रवास-देशको अपनाकर वहीं रहने लगे हैं, और वास्तवमें उनमेंसे बहुतोंने वहीं जन्म भी लिया है।

हिन्दुस्तानियोंकी इस न्याय्य मांगको थोड़ी देरके लिए अलग रखकर एक अन्य दृष्टिकोणसे भी इस समस्यापर विचार किया जा सकता है। इस समय जब सारी दुनियामें विभिन्न राष्ट्र मित्रता और सद्भावनाओंके परमाणुओंको एकत्र कर रहे हैं, क्या यह खेदकी बात नहीं होगी कि

सीलोन हिन्दुस्तान-जैसे एक विशाल देशकी सद्भावनाओं और मित्रताकी परवा न करे और भयङ्कर राजनीतिक अदूरदर्शिताका परिचय दे। हिन्दुस्तान और सीलोन दोनोंको पारस्परिक सद्भावकी आवश्यकता है। दोनोंकी राजनीतिक स्थिति भी न्यूनाधिक समान ही है, हम जिस पीड़ासे छटपटा रहे हैं, सिंहाली भी उससे पीड़ित हैं और यह बड़े ही दुःख और आश्चर्यका विषय है कि इस वास्तविक स्थितिको भुलाकर सीलोनके प्रमुख राजनीतिज्ञ लाखों हिन्दुस्तानियोंके गलेमें हीनताका पट्टा बांध रहे हैं, देशके आत्मसम्मानको चुनौती दे रहे हैं और हमारी विवशतासे लाभ उठाकर वह कर रहे हैं, जो एक पड़ोसीको नहीं करना चाहिए। परन्तु इसके लिए हम दोषी किसे ठहरायें, सिंहाली राजनीतिज्ञोंको या उस श्रृङ्खलाको, जिसके वे अङ्ग हैं और जिसके अधीन कितने ही अन्य उपनिवेशोंमें भी हमारे भाइयोंको समानाधिकारसे वञ्चित रखा गया है और वञ्चित किया गया है। सीलोनमें जो कुछ हो रहा है, जीवनके प्रत्येक क्षेत्रसे हिन्दुस्तानियोंको उत्सन्न करनेके लिए जिस निन्दनीय नीतिसे काम लिया जा रहा है, उसे देशवासी बड़ी मनोव्यथासे देख रहे हैं। यह अन्याय और उत्पीड़न क्या कभी भुलाया जा सकता है? सात लाख हिन्दुस्तानियोंको क्या यों ही तिरस्कृत अवस्थामें पड़ा रहने दिया जा सकता है? सीलोन-प्रवासी हिन्दुस्तानियोंकी यह अवस्था निश्चय ही हमारी वर्तमान राजनीतिक परिस्थितिका प्रतिबिम्ब मात्र है और एक दिन होगा जब देशकी राजनीतिक स्थितिमें परिवर्तन होगा, और सीलोन-प्रवासी हिन्दुस्तानियोंकी अवस्था भी उसी समय बदल जायगी। अभी तो हम हृदयपर भारी बोझ रखकर सहानुभूतिसे एक गहरी सांस ही लेते हैं। सीलोनके भाई और बहनें स्वदेशकी प्रगतिपर दृष्टि रखें और उज्ज्वल भविष्यमें विश्वास रखकर जहां हैं वहीं अपने अधिकारोंकी रक्षा करने और जो अधिकार एवं सुविधायें दूसरोंको मिली हुई हैं, उन्हें स्वयं भी पानेके लिए सङ्गठनपूर्वक सङ्घर्ष चलाते रहें।

नूतन विहान

स्वागत है ओ नूतन विहान !

हंस-हंस जीवन न्योछावर हो,
मर मिटनेकी भर अमर चाह।
जीवन-सुमनोंका थाल लिये,
बतला मन्दिरकी कौन राह ?
बैठा हूं कबसे जोह रहा,
कर कृपा बता पूजा-विधान !

भर दे नव-जीवन तृण-तृणमें
सूखे सुमनोंमें सुरभि-आश।
रजनीके तम-मय आंगनमें
मधुमयी उषाका सुख-प्रकाश।
कवि कोकिल डाली-डालीपर
गायें नव-युगका मधुर गान।

—श्रीचन्द्र अग्निहोत्री।

भारतका श्रमिक नारी-वर्ग

श्री प्रभागचन्द्र शर्मा

नेपोलियनने एक बार मेडम केण्डोरसेटसे झुंझलाकर कहा था—"मैं औरतोंका राजनीतिमें दखल देना कतई पसन्द नहीं करता।"

इसपर, अपने युगकी दलित नारी जातिकी संरक्षिका केण्डोरसेटने निर्भीकतासे जवाब दिया—"आप ठीक कहते हैं सेनापति, लेकिन जिस देशमें नारीका सिर काट फेंकनेका अमानुषिक कार्य सामाजिक प्रथा समझा जाता हो, वहांकी नारियोंके लिए यह स्वाभाविक है कि वे पूछें, ऐसा क्यों?"

संसार-भरके नारी-आन्दोलनकी जड़में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, इसी प्रकारके अपमानके मूल भावकी प्रतिक्रिया प्रस्तुत है। आध्यात्मिक प्रभुताका गौरववाही भारतवर्ष, पिछली डढ़ शताब्दीसे उन अभागे देशोंमें रहा है, जहांके मानवने अभी-अभी जबान खोलना सीखा है। तब वहांकी नारीका क्या पूछिये? स्वयं नारी जब आज मांग करने लगी है कि उसे समान अधिकार दीजिये, तब धर्म और शासनके ठेकेदार तेवरियां चढ़ा-उतार रहे हैं। वह राज्य-व्यवस्थामें हाथ चाहती है। वह पुरुष-जीवनकी चारित्रिक उच्चताकी मांग करती है। वह अपने सर्वतोमुखी 'अबला-पन' को एकबारगी छिन्न-भिन्न कर देना चाहती है। वह चाहती है कि पुरुष और स्त्री मिलकर एक ऐसे समाजकी सृष्टि करें कि जिसमें प्रवृत्तियोंके अस्वस्थ दबावके बदले उनका स्वस्थ प्रसार सम्भव हो सके। लेकिन आज तो मांगकी धारा एक तरफ चलती है, तो वरदानका प्रवाह बिलकुल दूसरी तरफ बह रहा है! मजा यह कि नारीने समानताकी इच्छा की, तो उसे पुरुषने, शासनने, क्या दिया? दुर्भाग्य, रोटीके लिए अजहद कशमकश, वेश्यावृत्ति, गुलामी! आर्थिक दुर्व्यवस्थावाला मशीन युग आज सम्पूर्णतः हावी हो रहा है। औद्योगिक सभ्यताके मानव कारखानों, खदानों, खेतों और अन्यत्र काम करनेवाली औरतोंके दयनीय जीवनपर यह कहकर लक्ष ही नहीं देना चाहते कि 'मजदूरी तो मजदूरीके ढङ्गपर होती है।' वे प्राचीन कालका हवाला देते हैं। तब भी नारीका यही भाग्य था। मानते हैं, कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें इन चीजोंपर प्रकाश डाला गया है। किन्तु केवल आजकी भौतिक दृष्टिसे पिछले इतिमें प्रवेश करना उचित न होगा। यह दृष्टि हमें आजके विकास-साधनोंमें प्राप्त हुई है। वह युग आर्थिक विषमताके रहते भी मानवीय संस्पर्शका युग था। हम एक दूसरेके प्रति मशीन नहीं बन गये थे। जड़ नहीं हो गये थे। ईसासे ३२१-२९६ पूर्वके समयकी स्थितिका प्रतिबिम्ब कौटिल्यके अर्थ-शास्त्रमें है। तब स्त्रियां चर्खा चलाती थीं। खेतोंपर काम करती थीं। सभी कुछ था। यदि कुछ नहीं था, तो आजकी भांति उनकी लाचारियोंका बर्बर शोषण नहीं था। आजकी व्यवस्थाके साथ यहीं मूल झगड़ा है। नारीकी मान-मर्यादाका खयाल तब किस हद तक था, इसका नमूना कौटिल्य अर्थ-शास्त्रके एक उद्धरणसे देते हैं:—

"जो स्त्रियां घरसे बाहर नहीं आ सकती हों, जिनके पति परदेस गये हुए हों, जो विधवा हों अथवा बालिका हों, उन्हें स्त्री नौकरानियोंके मार्फत घर ही पर काम पहुंचाया जा सकेगा।" इतने ही से बस नहीं हो जाता। बुनाई-केन्द्रोंमें या अन्यत्र जहां औरतें काममें लगी होती थीं, वहांकी व्यवस्था कैसी थी?—

"जो स्त्रियां बुनाई-केन्द्रोंपर आ सकती थीं, उनके लिए अपना सूत देकर धन प्राप्त करनेकी व्यवस्था थी। यदि वहांका व्यवस्थापक उन स्त्रियोंसे कुछ बेजा लाभ उठाना चाहता या पैसे देनेमें देर करते पाया जाता, तो उसे सख्त दण्ड भोगना होता था।"

यह सब लिखनेका इतना ही अर्थ है कि आजका सभ्य मानव केवल अपने तौर-तरीकोंको, उस दिनके तथाकथित बर्बर मानवके रवैयेकी समतामें देख ले! इतने वर्ष बीत जानेके बाद, विश्वके अर्थशास्त्री एकमतसे कौटिल्यके आदर्श राज्यकी व्याख्याको आज मान्य कर रहे हैं। सर टामस मूरका 'यूटोपिया' ग्रन्थ आज एच० जी० वेल्स-जैसे प्रखर इतिहासज्ञ, विचारकके दिमागमें भावी सृष्टि-रचनाकी

बौद्धिक प्रेरणा दे रहा है। किन्तु जिन्हें पता है, उनसे यह छिपा नहीं कि कौटिल्यके आदर्श राज्य-स्वप्नके आगे 'यूटोपिया' मात्र बाहरी रूपरेखा-भर है। मैं उस युगको आजके युगके साथ नहीं सोच रहा हूं। न मैं इस विश्वासका ही हूं कि सर्वथा प्राचीन तरीके आज अपनाये जायें। किन्तु इस तथ्यमें मेरी दृढ़ आस्था है कि मानवीय समवेदन, मानव-हृदय, मानव स्वभाव प्रायः नहीं बदला करते।

यहां घटनाओंके ऐतिहासिक विस्तारमें न जाकर सिर्फ इस तरह वस्तुस्थितिको रखना है कि इस औद्योगिक युगके प्रारम्भ होते ही श्रमिक स्त्री-वर्गकी स्थिति सिद्धान्ततः कुछ बदल गयी है। प्राचीन पारिवारिक पद्धतिके ह्रास और ग्रामोद्योग प्रकरणकी समाप्तिके साथ मशीन-उद्योगका आविर्भाव, भारतीय सामाजिक जीवनपर तिहरा प्रहार है। इस युगका खासा प्रभाव-काल १८८० से आर्थिक इतिहासकार लगाते हैं। उस समय कहीं-कहीं फैक्टरियां थीं। सन् १९१९ से भारतवर्षमें फैक्टरियोंकी बाढ़ आ गयी। अब मानवका श्रम, मात्र औद्योगिक श्रम समझा जाने लगा। श्रमकी उत्पत्तिका एक पहलू समझा गया। फलतः समयके मातहत श्रमको जीनेके लिए लाचार होना पड़ा। और लो, मानव समयका दास, श्रमका माध्यम और फैक्टरीका जड़ पुर्जा बननेको विवश हुआ! महायुद्ध चल रहा था। भारतमें चीजें तेजीसे बनने लगीं। वहां माल चाहिए; यहां मजदूरोंकी खाल चाहिए! इस प्रतियोगिताने मनुष्यको निरीह कर दिया, निर्जीव कर दिया। स्वाभाविक था कि फैक्टरियोंमें कुछ असन्तोष होता। वह हुआ। युद्ध बन्द होने तकका मजदूरोंसे और समय मांगा गया। मजदूर चुप हो गये। युद्ध बन्द हुआ। वर्सेलीजकी सन्धि हुई। भारतवर्षने १९२२ का 'फैक्टरी ला एमेण्डमेण्ट एक्ट' देखा। 'दि न्यू माइन्स एक्ट आव १९२३' बना। 'दि वर्क मेन्स कम्पेन्सेशन एक्ट' आया और '१९२६ का ट्रेड यूनियन एक्ट' बना। तात्पर्य यह कि इन कानूनोंके द्वारा सर्वथा पिसे हुए मजदूरने, यह समझनेके बजाय कि इन एक्टोंकी लौह धाराओंने उसकी आत्मा और जीवनीशक्तिको सुखा दिया है—यह समझा कि चलो, उसका श्रमका अधिकार सुरक्षित कर दिया गया! इसकी भी प्रतिक्रिया होनी थी। आजकी मजदूर हड़तालोंके रूपमें वह प्रत्यक्ष है। लेकिन इस लेखमें स्त्री मजदूरोंकी स्थितिपर प्रकाश डालना ध्येय है, अतः उस पहलूको छोड़ देता हूं। १९३१ की मर्दुमशुमारीके आंकड़ोंके अनुसार इस देशमें कृषि-मजदूर ३१५०००००, खेतिहर मालिक २७००००००, खेतिहर काश्तकार ३४००००००, जमींदार ३२५००००, अन्य ७२५००००, औद्योगिक मजदूर २६०००००० और घरेलू नौकर ११०००००० हैं। अस्तु।

१९२२ से १९३२ तक फैक्टरियों और उनमें काम करनेवाले पुरुष-स्त्री मजदूरोंकी औसत संख्यामें किस प्रकार वृद्धि हुई, उसका लेखा देकर हम अपनी दिशा व्यक्त करेंगे :—

वर्ष	फैक्टरियोंकी संख्या	पुरुष मजदूर	स्त्रियां
१९२२	५१४४	१३६१००२	२०६८८७
१९२३	५९८५	१४०९१७३	२२१०४५
१९२४	६४०६	१४५५५९२	२३५३३२
१९२५	६९२६	१४९४९५८	२४७५१४
१९२६	७२५१	१५१८३९१	२४९६६९
१९२७	७५१५	१५३३३८२	२५३१५८
१९२८	७८६३	१५२०३१५	२५२९३३
१९२९	८१२९	१५५३१६९	२५७१६१
१९३०	८१४८	१५२८३०२	२५४९०५
१९३१	८१४३	१४३८४८७	२३११८३
१९३२	८२४१	१४१९७११	२२५६३२

ऊपर लिखे आंकड़ोंके अनुसार सन् १९२९ का वर्ष स्त्री मजदूरोंकी सबसे अधिक संख्या २५७१६१ का वर्ष था, जो कुल कामगरोंका १७.०७ प्रतिशत होता है। प्रान्तवार यदि देखा जाय, तो नीचे लिखे आंकड़े अधिक बारीकीसे वस्तुस्थितिपर प्रकाश डालते हैं। मद्रासमें २५.६३ फीसदी, बम्बईमें २०.७३ फीसदी, बङ्गालमें १३.७५ फीसदी, यू० पी० में ७.०६ फीसदी, पञ्जाबमें १४.४७ फीसदी, बर्मामें १०.२६ फीसदी, बिहार-उड़ीसामें ८.९८ फीसदी, सी०पी० और बरारमें ३५.१७ फीसदी, आसाममें ३३.४८ फीसदी, अजमेर मेरवाड़ामें ११.४९ फीसदी, दिल्लीमें २.७५ फीसदी, कुर्ग और बङ्गलोरमें २७.९९ फीसदी और सीमान्तमें ३.०७ फीसदी औरतें खानोंमें भुन रही हैं। एक तो शक्तिरूपा नारीको लौह-राक्षसके कठोर पञ्जेमें डालकर हमारी नागरिकता सन्तुष्ट है कि उसने नारीको स्वावलम्बनकी ओर अग्रसर किया है। दूसरे वह इस बातकी ओरसे कतई उदासीन है कि

अनैतिकताके मूल्यपर दिया हुआ यह स्वावलम्बन राष्ट्रको कहां ले जा छोड़ेगा ? बात यहीं नहीं रुकती। यह निकृष्टतम कार्य हमने नारीको सौंपा है। उसमें औसतन् मजदूरिनोंकी संख्या नगण्य है। इसी तरह खदानोंमें, खेतोंमें और घरोंमें श्रमिकका काम करनेवाली औरतोंका भी दुर्भाग्यपूर्ण इतिहास है, मात्र आंकड़ों ही में उस चीजका प्रदर्शन यहां अभीष्ट नहीं। नारीको उद्योग-धन्धोंमें स्थान देनेका विरोध नहीं है। नारीके भाग्यको, इन सब बातोंके साथ हम विपन्न नहीं देखना चाहते। या तो कौटिल्यके आदर्श राज्यमें काम करनेवाली नैतिक उच्चताके समस्त पथसे प्रशस्त मजदूरिन वह हो अथवा सोवियट रूसकी वह सामर्थ्यमयी मजदूरिन नारी हो कि जिसके सम्मुख शासन अदबसे झुका रह जाय, जिसे लेनिनकी इन पंक्तियोंके गौरवका सौभाग्य प्राप्त हो कि "उनके बगैर हमारी क्रान्ति-विजय सम्भव न थी।"

"यह हमारा काम होना चाहिए कि हर मजदूर स्त्रीके लिए राजनीति सुलभ हो।

"प्रत्येक भटियारिन तकको शासन चलानेकी योग्यता सीखने देनेकी सुविधा हो।"

परन्तु हम आज कहां हैं ? जिस प्रकार धनके प्रभुत्वने भारतीय मानव-जीवनकी सभी प्रगतिको दिशायें घेर दी हैं, उससे कहीं अधिक नारीके अधःपातको न्यौत रखा है। देह और मनका समान रूपसे स्वस्थ विकास होनेपर नैतिक सन्तुलन सम्भव है। नारीकी देहका हाल कारखानोंके जीवनमें व्यक्त है। अब जरा उसके मनकी ओर आइये। नारीके मनोलोकका विकास औद्योगिक ढङ्गपर फिल्म-व्यवसायके द्वारा हो रहा है। विचारवान लोग इस व्यवसायके भीतरी रहस्यको समझते हैं। तब भी थोड़ा तथ्यपूर्ग प्रकाश डाल देना आवश्यक हैः—

"सबसे पहली मूक फिल्म १९१३ में श्री फालकेने भारतवर्षको दी। और पहला बोलपट इम्पीरियल फिल्म कम्पनी द्वारा १९३० में तैयार हुआ। बिलकुल ठीक आंकड़े तो प्राप्त नहीं हैं, लेकिन १९३२-३३ के आंकड़ोंसे पता चलता है कि उस वक्त तक १२९ कम्पनियां बोलपट तैयार करनेके लिए देशमें चल रही थीं, जिनमेंसे ८० से अधिक बम्बई ही में चलीं। इस उद्योगमें तब तक १४००० आदमी लगे हुए थे, जिनमें ४० फीसदी कुछ तो भी पढ़े-लिखे लोग थे। केवल १० फीसदी प्राणी ऐसे थे, जो उच्च शिक्षा-प्राप्त कहे जा सकते हैं।

"१९३२-३३ के ही आंकड़ोंके अनुसार इस धन्धेमें २० फीसदी औरतें लगी हुई थीं।"

(लीलावती मुन्शी, 'अवर काजमें', पृष्ठ १५८)

यह तो इसकी रूपरेखा हुई। आज ८ वर्षके बाद बेहद तरक्की हो गयी है इस व्यवसायमें। हर्षकी बात होगी, यदि इस व्यवसायको भविष्यमें गौरव प्राप्त हो! लेकिन नारी जातिकी दीप्ति और प्रखरताका नाश तेजीसे हुआ जा रहा है। फिल्म-अभिनेत्रियोंकी बात मैं नहीं करता। शिक्षित और कुलीन लड़कियां, जो कलाको उच्चता प्रदान करनेका स्वप्न लेकर इस क्षेत्रमें पदार्पण किये हुए हैं—उनकी हालत फिल्म-प्रवेशके पहले दिनके मुकाबिले आज क्या हो गयी है ? नाम यहां लिखना ठीक नहीं, किन्तु अच्छी कुलीन लड़कियां पति-परिवर्तनको खेलकी तरह खेल डालनेमें जरा हिचकिचाहट नहीं अनुभव करतीं। हां, कुछ वेश्याओंने इस क्षेत्रमें जाकर जीवनकी व्यवस्था, यौवनका संरक्षण अवश्य प्राप्त कर लिया है। हम इसका सम्मान करते हैं। तादाद तब भी अधिक उन स्त्रियोंकी है, जो आये दिन अधःपातमें डूबी जा रही हैं। जैसा कि कुछ लोग समझते हैं, जरूरतसे अधिक वेतन ही नारीके अनाचारमें प्रवृत्त होनेका मुख्य कारण नहीं है। धनका स्रोत जिन हाथोंमें है, वे श्रम-चोर हैं। आलसी हैं। उनकी प्रवृत्तियां विकारग्रस्त हो उठी हैं। वे स्त्रीके रूपको अपनी वासनाका लीलागृह मानते हैं। नारी-जीवनकी पवित्रता उन्हें अवैज्ञानिक, बर्बर धारणा लगती है।

टाल्स्टाय जब ११-१२ वर्षके नन्हें बच्चे थे, तब खेल ही खेलमें सर्वप्रथम कात्याके गोरे, कोमल कन्धेको चूमकर स्तब्ध हो गये थे। उनके भाई वोलोदियाने जब उस लड़कीको चूमा, तो मुग्ध हो, कह उठा—ओह, कैसी कोमलता, कैसी ऊष्मा है इसके स्पर्शमें! टाल्स्टाय लिखते हैं—"लेकिन मैं भाईकी तरह बोल तो सकता ही न था। इस आनन्दके अतिरेकका अनुभव कर मेरी आंखोंमें तो आंसू भर आये थे!"

इस घटनाको देनेका अभिप्राय यह है कि ललित कला, काव्य, साहित्य और विश्वकी सम्भ्रान्त उथल-पुथल ऐसी ही शक्ति-रूपा नारीकी प्रेरणासे हुई है, विश्वमें। नारीकी

देहका व्यापार करनेवाले कारखानेदारोंको यह सुझाना होगा। धनके प्रमादमें बावले श्रीमन्तोंको इस दिशाका स्वास्थ्य प्रदान करना होगा। रवि ठाकुर लिखते हैं :—

"नारी! तेरे हास्यमें, जीवन-स्रोतका समस्त सङ्गीत निहित है।

"नारी! जब तुम गृहकार्यमें व्यस्त इधर-उधर घूमती हो, तो तुम्हारे अवयवोंसे ऐसा गान उठता है, जैसा पहाड़ी झरना अपने पत्थरोंसे टकराते हुए गान करता है!

"नारी! तुम अपने दिव्य अंगुलि-स्पर्शसे जब मेरी चीजोंको छू देती हो, तो व्यवस्था, समरस, एकता, सामञ्जस्य सङ्गीतकी भांति आपसे आप उसमें आ जाता है!

"नारी! तूने विश्व-हृदयको अपने अश्रुकी गहनतासे इस तरह कैदी बना लिया है, जैसे सागरने पृथ्वीको!"

आज क्रान्तिकी अगवानीमें हमारी समूची शक्ति अनेक रूप धरकर व्यस्त है। प्रवाह-मात्रसे काम नहीं चलेगा। हमें देखना पड़ेगा कि उस प्रवाहका प्रसार कैसा है, उसमें विकार कहां है, कितना है। अस्वस्थ प्रवाह गंदला हो जाता है।

"के बोले मां तुमि अबले" का गीत गानेवाले, उस अबला मांपर हो रहे इन विकार-प्रहारोंको रोकें, तभी कुछ उत्कर्ष सम्भव है। वीरवर सावरकरजी अन्दमनसे अपने भाई-बहनोंको लम्बे पत्र लिखा करते थे। एक बार उन्होंने अपने भाईकी नवविवाहिता वधूके बारेमें सलाह देते हुए लिखा था :—"प्रत्येक युवतीके स्वास्थ्यकी जितनी हानि होगी, उतनी ही हानि आनेवाली प्रजाकी होगी। वह भूत समयको भविष्यत्से जोड़नेवाली सोनेकी सांकल है। वह अपनी जातिकी उन्नतिका वचन है!" तब कारखानों तथा अन्य व्यवसायोंमें लगी हुई लाख-लाख नारियोंके स्वास्थ्यकी ओर उपेक्षा रखते हुए हम क्या प्रगतिशील रह सकेंगे?

उपर्युक्त पंक्तियोंके द्वारा विद्वद्वर सावरकरजीने भारतीय राष्ट्रको सन्देश दिया है। उन्होंने खासा सङ्केत कर दिया है कि हमारा उत्कर्ष कहां है और वह किस पथसे जानेपर मिलेगा?

नवयुग

नवयुगका अवरोध करोगे, अरे भीरु, ओ कातर!
रवि - करसे क्या द्रोह करोगे, अन्धकारके अनुचर!

इस बानेसे रोक सकोगे क्या जाग्रतिकी आंधी
उस यौवनको उठते जिसने मृत्यु पगोंसे बांधी
सुलग रहा जिसकी आंखोंमें जग-वैषम्य अपावन
सुन पड़ता जिसकी सांसोंमें परिवर्तनका गर्जन

और इधर ये जो भाईको अछूत कहकर भागे
स्वामी होकर भी चलते हैं जो नारीके आगे
जो जर्जर समाजकी छातीपर कोल्हू-से बैठे
दास रूढ़ियोंके देखो तो हैं गुरुतामें ऐंठे

वे उनको रोकेंगे जो हैं क्षितिज नापते पदमें
सबके सुखमें सुख पाते जो, हंसते हैं दुख-नदमें
बन्द किये आंखें, जीवनकी जो सार्थकता भूले
वे रोकेंगे महाकालकी करवट, भ्रममें फूले

—अञ्चल

पछतावा

श्री "रहबर"

"**मां !** क्या औरतोंका जन्म एकादशीके व्रत रखने और कथायें सुननेके लिए ही होता है ?" बालक व्रजने अपनी बूढ़ी मांसे पूछा ।

"बेटा ! धर्म-कर्म न हो, तो जीवन किस कामका ?" वृद्धा मांने कथा सुननेकी सामग्री गुड़, चावल, आटा और पैसे आदि एक थालीमें रखते हुए कहा ।

"यह अच्छा धर्म-कर्म है कि भूखे मरो और ब्राह्मणोंकी गप्पें सुनो ।"

"ज्ञानकी बातें कहते हैं, बेटा ।" मांने थालीको एक सफेद कपड़ेसे ढांपते हुए जवाब दिया ।

"तो यह ज्ञानकी बातें मुझसे सुन लो और यह गुड़ और पैसे मुझे दे दो ।" व्रजने बालपनके सरल स्वभावसे कहा ।

"शास्त्रकी बातें हैं, तुम क्या जानो ।" मांने आपत्ति की ।

"मैं तो जानता हूं, तुम न सुनो तो दूसरी बात है ।"

"अच्छा, सुनाओ तो भला !" मांने थाली एक तरफ रख दी और बेटेके मुंहकी ओर टकटकी लगाकर बैठ गयी ।

"एक राजा बड़ा अन्यायी और पापी था ।" व्रजने कथा शुरू की—"उसने जन्म-भर दान-धर्मका नाम नहीं लिया । वह अपनी प्रजाको दुख देता रहा ।" व्रज बिलकुल पण्डिताई ढङ्गसे कह रहा था—"एक दिन शिकार खेलते-खेलते अपने साथियोंसे वह बहुत दूर निकल गया । गर्मीके दिन थे । लू चल रही थी । उसे मार्ग नहीं मिलता था । भूखा-प्यासा थककर वृक्षके नीचे बैठ गया । सन्ध्या हो गयी । एक खील तक उसके मुंहमें न गयी । वह राजा था, उसने भला भूख-प्यास काहेको सही थी । वहीं बे-होश हो गया और उसके प्राण निकल गये । ईश्वरकी माया, उस दिन निर्जला एकादशी थी ।" वृद्धा मां आश्चर्यसे सुन रही थी और व्रज कह रहा था—"जब यमराजके दूत उसकी आत्माको धर्मराजके पास ले गये, तो उसने खाता देखकर कहा, 'इसने पाप तो बहुत किये हैं; परन्तु एकादशीका व्रत रखते हुए मरा है, इसलिए इसे स्वर्ग ले जाओ ।'—यह है" व्रजने मुस्कराना शुरू किया—"एकादशीके व्रतका माहात्म्य। जो एकादशीका व्रत रखता है, उसे ऐसा ही फल मिलता है ।" यह कहकर उसने मांपर गहरी दृष्टि डाली और फिर पूछा—"क्यों, ठीक है न मां ?"

"ठीक तो है । पर अब तुम्हीं बताओ कि यह ज्ञान है कि नहीं ?"

"ज्ञान ! इसमें ज्ञानकी कौन-सी बात है ?" व्रजने हंसते हुए कहा ।

"ज्ञान क्यों नहीं, साफ तो बताया है कि व्रत रखनेसे पापी भी तर जाते हैं ।"

"तो स्वर्गमें पापी बसते हैं ?" व्रजने सवाल किया ।

"अरे बावले ! स्वर्गमें पापी नहीं, धर्मात्मा बसते हैं ।"

"न कहीं स्वर्ग है और न कोई ऐसे स्वर्गमें पहुंच सकता है । यह सब ढकोसला......"

मां पृथिवीके घूमनेमें विश्वास कर सकती थी, लेकिन उसके लिए यह मानना असम्भव था कि कहीं स्वर्ग है ही नहीं । उसकी उम्र-भरकी अभिलाषाओं, उमङ्गों और तपस्याका सम्बन्ध इसी स्वर्गसे था । उसने स्वर्गके कितने ही सुन्दर और रोचक चित्र बना रखे थे । अब इन चित्रोंको नष्ट करना उतना ही दुःखजनक था, जितना एक प्यासेको यह मालूम होना कि जिस नदीकी ओर वह दौड़ा जा रहा है, उसमें पानी ही नहीं । अतः मांने बेटेकी बात काटकर कहा—

"तो यह शास्त्र और ब्राह्मण, सब झूठे हैं ?"

"हां झूठे । साफ झूठे ।" व्रजने सिर हिलाते हुए पूर्ण विश्वाससे कहा ।

वृद्धा मांको अपने स्वर्गकी चिन्ता तो जाती रही, परन्तु बेटेके परलोककी चिन्ता उत्पन्न हो गयी और उसने बड़े दुलारसे कहा—

"न बेटा, शास्त्र और ब्राह्मणोंकी निन्दा नहीं करते ।"

उसने ये शब्द कई बार कथामें सुने थे और यह भी सुना था कि जो इनकी निन्दा करता है, वह नरकमें जाता है । मांने बेटेका नरक जाना तो अलग रहा, उसे यह बताना भी उचित नहीं समझा ।

(२)

कई साल बीत गये।

अब ब्रजमोहन शिक्षित युवक था। वह साम्यवादी विचारोंका समर्थक था और देशकी आजादीका पक्षपाती। शिक्षासे छुट्टी पाकर वह अपने गांव बसेखामें रहने लगा था। उसने ग्राम-सुधारकी कुछ पुस्तकें मंगा रखी थीं। उनमें-से लाभदायक बातें पढ़-पढ़कर ग्रामीणोंको सुनाता, सरल भाषा और रोचक ढङ्गसे उनकी व्याख्या करता और बतलाता कि किसान बेचारे सुबहसे शाम तक काम करते हैं, बैसाख और जेठकी गर्मी और पूस-माघकी सर्दी सहते हैं, फिर भी उनका पैदा किया हुआ अनाज उन्हें नहीं मिलता और उन्हें साल-भर तङ्गीमें रहना पड़ता है। अपना काम चलानेके लिए उन्हें किसीसे कर्ज लेना पड़ता है, जिसके बोझसे वे जीवन-भर उभर नहीं सकते। उन्हें पेट भरनेको रोटी नहीं मिलती, उनके बच्चे बिलकुल अशिक्षित रह जाते हैं।

ग्रामीण इन बातोंको बहुत पसन्द करते थे। और क्यों न करते, इनमें सत्य था, सहानुभूति थी और थीं उनके अपने मनकी बातें। हृदयमें बरसोंसे दबी हुई उमङ्गें उठ रही थीं। उन्हें अनुभव होता था कि युग पलट रहा है, अब वे दिन दूर नहीं, जब उन्हें भी आदमी समझा जायगा, वे भी मौज-से भरपेट खा-पी सकेंगे और उनके बच्चे भी पढ़-लिख सकेंगे।

किन्तु आर्थिक परिवर्तनके साथ-साथ ब्रजमोहन उनमें सामाजिक परिवर्तन भी देखना चाहता था। टोना-टोटका और यन्त्र-मन्त्रके विरुद्ध लोगोंको समझाते हुए ओझों, सयानों और रूढ़ियोंके भक्त पण्डितों और मुल्लाओंकी भी वह खूब खबर लेता। वह कहता—"ये सब राजाओं, नवाबों और पैसेवालोंके एजेण्ट हैं, जो भोले-भाले और अपढ़ भाइयोंसे कहते हैं—'सबको प्रारब्धका लिखा मिलता है। सबको छोटा-बड़ा ईश्वरने बनाया है। जिसका भाग्य ही खोटा है, वह भाग्यवान कैसे बन सकता है?' यह भाग्य और तकदीर सब धोखा है, जाल है। उनका मतलब है कि हम तकदीरका खेल समझकर ऐसे ही गफलतमें पड़े रहें और ये धर्म और धनके ठेकेदार आनन्द लूटते रहें..."

लोग ये बातें सुनते। कुछ इन बातोंसे चकित होते और कुछ उसकी प्रशंसा करते हुए कहते—"आदमी पढ़कर ही तो आदमी बनता है। हम तो मिट्टीकी दीवाल हैं, न समझें न बूझें, हमारा होना न होना बराबर है।"

सारांश यह कि ब्रजके आनेसे गांवमें नवजीवन फैल रहा था। लोग स्वच्छता और स्वाभिमानकी ओर झुकने लगे थे। सब लोग इन बातोंसे ब्रजमोहनका मान करते और उसकी बातें तबीयतसे सुनते थे। आस-पास देहातमें भी चर्चा तो थी ही, खास-खास अवसरोंपर लोग दूर-दूरसे चलकर वहां पहुंचते थे।

ब्रजमोहनकी मां अपने बेटेकी यह प्रशंसा और मान देखती, तो गर्व करने लगती। मगर जो दूसरोंका सुधार करना चाहता है, वह अपना घर पहले देखता है। इसलिए ब्रजमोहनको वृद्धा मांके पुराने विचार भाते नहीं थे। वह देखता कि मां जब शामको दिये जलाने लगती है, तो जलाती ही चली जाती है। एक तुलसीके नीचे, एक नालीमें, एक कुएंकी मुंडेरपर—मतलब कि सिलसिला खतम ही होने नहीं आता। कभी वह बालकोंकी भांति हंसकर और कभी झुंझलाकर कहता—"मां! जब एक लालटेन जलानेसे काम चल सकता है, तो दियोंका यह तांता लगानेसे क्या फायदा?"

मां हंसकर कहती—"तू क्या जाने।" और चुप हो जाती। उसमें बेटेके सवालोंका जवाब देनेकी क्षमता न थी। वह यों जवाब देती भी न थी, फिर भी कभी-कभी यह बातचीत बड़ी लम्बी और मनोरञ्जक हो जाती थी।

(३)

ब्रजमोहनकी मां गांवकी बुढ़ियोंमें थी। स्त्रियां प्रायः उससे धर्म-कर्म और दूसरी कितनी ही बातोंके बारेमें सलाह लेने आया करती थीं; क्योंकि इन बातोंमें उसकी राय अकाट्य समझी जाती थी। मगर अब न जाने क्यों, उसे इन बातोंके विषयमें राय देनेमें पहली-सी प्रसन्नता न होती थी, बल्कि अपने मनमें किसी बातका अभाव-सा अनुभव होता था। वैसे वह सब बातें उसी तरह समझा देती; परन्तु मनमें शङ्कायें उठ रही थीं, जिन्हें समझनेमें वह बिलकुल असमर्थ थी।

इसका कारण यह था कि ब्रजकी बातोंसे उसके मनमें असन्तोष उत्पन्न हो गया था और मांमें अब उसकी पहली-सी पूर्ण श्रद्धा नहीं रह गयी थी। यद्यपि वह ब्रजकी बातोंपर ध्यान नहीं देना चाहती थी और उन्हें यह सोचकर

भुलानेकी कोशिश करती थी कि "ब्रज इन बातोंको क्या जाने ? उसने तो अंगरेजी पढ़ी है और अंगरेजी पढ़कर धर्मसे विश्वास उठ जाता है।"

हम दूसरोंको लाख धोखा दें; परन्तु अपने मनको धोखेमें नहीं रख सकते। जिस तरह जीभ बार-बार दर्दवाले दांतसे टकराती है, वह भी अपने मनकी शङ्काको कुरेदती थी और इन शङ्काओंसे प्रभावित होकर वह सोचती थी कि कोई ऐसी बात मिले, जिसका जवाब ब्रजूसे न बन पड़े। इसलिए वह कभी-कभी स्वयं ही ब्रजूसे बहस करने लगती और प्रश्न पूछती। मगर ब्रज उनका उत्तर दे देता। किन्तु मांको बेटेकी विद्वत्तासे वह प्रसन्नता न होती, जो उसे निरुत्तर कर होती। यह उसके धर्मका सवाल था, जिसे उसने बेटेके पालन-पोषणसे भी अधिक तपस्या करके रखा था। वह जिस प्रकार बेटेको सब दुःखोंसे सुरक्षित देखना चाहती थी, उसी प्रकार अपने धर्मको भी शङ्काओंसे दूर रखना चाहती थी। अब अपने ही घरमें धर्म और बेटेमें द्वन्द्व छिड़ा था। वह कहां जाये ?

(४)

संक्रान्तिका दिन था। लोग नहरपर नहाने जा रहे थे। वृद्धाकी पड़ोसिन उसे बुलाने आयी। ब्रज सैरसे लौटकर आया था और नहानेकी तैयारी कर रहा था। उसने मांको तैयार देखकर कहा—

"इतनी दूर जाते थक न जाओगी मां ?"

"है तो दूर, बेटा ! पर लोग तीर्थोंपर नहाने जाते हैं। क्या हमसे इतना भी नहीं हो सकता कि नहरमें ही नहा आयें।"

"न तीर्थोंमें नहानेसे कुछ मिलता है और न नहरमें, बल्कि मैल और लग जाता है। घरपर क्यों न नहायें ? देखो, कितना साफ पानी है।" ब्रजने बर्तनमेंसे पानी उछालकर कहा।

मां तो चुप हो गयी, मगर पड़ोसिन बोली—"तो क्या सब लोग व्यर्थ जाते हैं ?"

"हां, मैं तो यही कहूंगा व्यर्थ, बिलकुल व्यर्थ।"

"अच्छा तो बताओ, गङ्गाका जल बरसों रखे रहनेपर भी खराब क्यों नहीं होता ?"

"हां-हां, बताओ ! इसमें कोई तो बात जरूर है।" मांने जल्दीसे कहा। उसकी आंखें प्रसन्नतासे चमक रही थीं।

"इसमें पहाड़ोंकी बूटियोंका फास्फोर्स मिला होता है। इसके सिवा और कोई बात नहीं।" ब्रजने सहज ही उत्तर दिया।

मांके मनमें जो आशा उत्पन्न हुई थी, वह मिट गयी और वह अप्रतिभ-सी हो गयी। मगर पड़ोसिनने हंसकर कहा—"दादी, तुम्हारा ब्रजू तो बड़ी बातें जानता है।"

"अरी, इसकी बातोंका क्या ठिकाना है, लोग सुनते हैं और दङ्ग रह जाते हैं।" बूढ़ी मांके अप्रतिभ चेहरेपर फिर कुछ दीप्ति दिखाई पड़ने लगी।

दोनों नहाने चली गयीं।

(५)

एक साल बीत गया।

बूढ़ी मां अब भी कथा-कीर्तनमें जाती थी, मगर खुशीसे नहीं, स्वभावसे विवश होकर। वह अब अन्यमनस्क-सी रहती थी, मानो कुछ खो गया हो। कभी वह इधरकी चीज उधर रख देती और कभी उधरकी इधर, अन्दरके कपड़े बाहर और बाहरके अन्दर रख आती। परन्तु वह यह नहीं जानती थी कि अपने विचारोंके लिए क्या करे और ब्रजसे क्या कहे ? मांको ब्रजसे पूर्ववत् प्रेम था, मगर अब उसे पहली-सी सुख-शान्ति नहीं थी। शायद इसलिए कि उसे अनुभव होने लगा था कि ब्रज अब उसे पहले-जितना नहीं चाहता।

आज वह अपनी पिटारियोंको खोल-खोलकर देख रही थी कि ब्रज भी बाहरसे आ गया।

"क्या कर रही हो मां ?" उसने पूछा।

"कुछ नहीं बेटा, ऐसे ही समय बिता रही हूं।" मांने पुराने चीथड़ेकी एक गांठ खोलते हुए जवाब दिया।

"समय क्या बिताना है, कुछ तो कर ही रही हो।"

"पढ़ो इस कागजमें क्या लिखा है ?" मांने कागजका एक लाल टुकड़ा बेटेको देते हुए कहा—"तुम्हारे पिता लाये थे।"

यह कागज उस गांठसे निकला था, जिसे वह खोल रही थी। ब्रजके पिताको मरे आठ सालसे अधिक हो गये थे। न जाने कितने अर्सेसे यह कागज यों ही बंधा हुआ था। ब्रजने इसे बड़ी उत्सुकता और सावधानीसे खोलना आरम्भ किया।

जैसे इसमें कोई मन्त्र लिखा हो। तभी तो मांने इसे इतनी हिफाजतसे रखा था। लेकिन जब खोला, तो एक इश्तहार निकला, जो आधा उर्दू और आधा गुरुमुखीमें छपा हुआ था। अब शायद शहरमें वह दूकान ही न हो, जिसकी ओरसे यह कभी प्रकाशित हुआ था। उसके पिताको प्रायः शहर जाना पड़ता था, कभी जेबमें डाल लिया होगा। वहांसे मांके हाथ लगा, तो उसने संभालकर रख लिया।

ब्रजने एक नजर इश्तहारपर और एक नजर मांपर डाली। वह आश्चर्यकी मूर्ति बनी खड़ी थी। न-जाने रहस्य-जगत्से क्या प्रकट होनेवाला है? ब्रजको मांकी हालतपर हंसी आयी और उसकी नासमझीपर तरस। और उसने इश्तहार-को फाड़कर फेंक दिया।

"क्या था बेटा?" मांने पूछा।

"कुछ नहीं।" ब्रजने रूखेपनसे जवाब दिया।

"कुछ क्यों नहीं, कितने सुन्दर अक्षर लिखे थे!"

ब्रज बिना कुछ कहे हंसता हुआ बाहर चला गया। मां पहले तो उसकी तरफ देखती रही, फिर एक ठण्डी सांस भरकर रह गयी। बड़ी देर तक यों ही बैठे रहनेके बाद उसने वह पिटारी बन्द की।

(६)

ब्रज मांके लिए एक ऐसी पहेली था, जिसे वह समझ नहीं सकती थी। कभी वह मीठी-मीठी बातें करता और कभी हृदयको मसलकर चल देता।

बसन्तका सुरभित मौसम था। वृक्षोंपर नयी-नयी कोंपलें फूट रही थीं। प्रातःकालका शीतल समीर बह रहा था। मां और ब्रज दोनों बैठे थे। मांने सोचा, क्यों न ब्रज ही से यह पहेली समझ लूं।

"बेटा, एक बात बताओगे?" उसने बड़ी आशा और दुलारके साथ कहा।

"पूछो मां, क्या बात है?"

"मैं यह पूछती हूं कि लड़कोंको पढ़-लिखकर मां-बापसे प्रेम क्यों नहीं रहता?"

"आखिर मां, तुम यह सवाल क्यों पूछती हो?" ब्रजने एक प्रकारका दुःख अनुभव करते हुए कहा।

"वैसे ही।"

इस "वैसे ही" में भी एक रहस्य था। ब्रजका रोम-रोम तिलमिला उठा। वह तो प्राणिमात्रके प्रेमकी पताका फहराता था, मगर उसकी अपनी ही मां उसके प्रेमसे बञ्चित थी। यह विचार उसके लिए कितना दुःखदायक और कितना विषादजनक था! वह पांच मिनट तक संज्ञाहीनकी तरह बैठा रहा। जब वह फिर अपने आपमें आया, तो उसने देखा कि एक नये संसार और नये जीवनका मार्ग खुल गया है। उसने आज पहली बार अनुभव किया कि उसने सुधारकी धुनमें मांके भावोंको कितनी ठेस पहुंचायी है। जो मां इश्तहारके टुकड़ेको प्रिय वस्तु समझकर वर्षों छातीसे लगाये रही हो, उससे बुढ़ापेके अन्तिम दिनोंमें बहस करनेसे क्या लाभ। मेरे लिए जो पुराने इश्तहारका पुर्जा था, वही उसके लिए कितनी ही मधुर स्मृतियोंका केन्द्र था; मेरे लिए जो अन्धविश्वास है, वही उसके जीवनका सर्वस्व है। मैंने उसे बिना सोचे-समझे नष्ट कर दिया। ब्रजमोहनने सोचा, समाजमें रूढ़ियां और अन्धविश्वास होनेका कारण है जनसाधारण-का अज्ञान। यह अज्ञान जब दूर होगा, अन्धविश्वासका किला अपने-आप ढह जायगा। इसके लिए नौजवानों-में शिक्षाका प्रसार करना चाहिए, बूढ़ोंको परेशान नहीं। उनसे क्या आशा है। यह सोचकर उसने मांके पैर पकड़ लिये और सिसकते हुए कहा—"मां, आज भी तुम मेरे लिए पहले ही जैसी हो।"

उसके आंसू मांके पैर धो रहे थे और मांके आंसुओंसे उसका आंचल भीग रहा था। उसने बड़ा जोर लगाकर ब्रजको उठाया और अपनी छातीसे लगा लिया।



डा० सर शान्तिस्वरूप भटनागर

श्री श्यामनारायण कपूर, बी० एस-सी०

डाक्टर सर शान्तिस्वरूप भटनागर उन थोड़े-से इने-गिने भारतीय वैज्ञानिकोंमेंसे हैं, जो संसारमें अपने महत्त्व-पूर्ण अनुसन्धानों और वैज्ञानिक कार्योंसे स्वदेशके लिए यथेष्ट यश और कीर्ति उपार्जित कर रहे हैं। डा० भटनागरने आचार्य राय ही की भांति अपना तन-मन-धन रसायन-विज्ञानकी सेवामें उत्सर्ग कर दिया है। अपनी प्रतिभा और परिश्रमसे आपने लाखों रुपया पैदा किया और उसे विज्ञानकी सेवामें लगा दिया है।

डा० शान्तिस्वरूप भटनागरका जन्म पञ्जाब प्रान्तके शाहपुर जिलेमें भेड़ा नामक स्थानमें १८९५ ई० में हुआ था। आपके पिता श्री परमेश्वरी सहायने बालक शान्ति-स्वरूपकी शिक्षा-दीक्षाका उचित प्रबन्ध किया। प्रारम्भिक शिक्षा दयालसिंह हाई स्कूलमें दी गयी। प्रतिभा तो थी ही, आपने विश्वविद्यालयकी सभी परीक्षायें सम्मानपूर्वक पास कीं। १९१९ ई० में आपने लाहौरके एफ० सी० कालेजसे एम० एस-सी० की परीक्षा विशेष योग्यतापूर्वक पास की। इस परीक्षामें बहुत ज्यादा नम्बर पानेके उपलक्षमें आपको इंगलैण्ड जाकर रसायन-विज्ञानका अध्ययन करनेके लिए दयालसिंह छात्रवृत्ति प्रदान की गयी।

विदेशोंमें शिक्षा—१९१९ ई० में श्री भटनागरने अध्ययन एवं अनुसन्धान-कार्यके लिए इंगलैण्डकी यात्रा की। इंगलैण्डमें आप लन्दनके यूनिवर्सिटी कालेजमें भर्ती हुए और सर विलियम रेमजे इन्स्टीच्यूटमें प्रो० एफ० जी० डाननकी देखरेखमें अनुसन्धान-कार्य किया। वहां आपने अपनी प्रतिभाके बलपर एक और छात्रवृत्ति प्राप्त की। १९२० में आपने वैज्ञानिक और औद्योगिक खोज-विभागमें कार्य किया। रेमजे इन्स्टीच्यूटमें काम करनेके साथ ही आपने अवकाशके समयमें यूरोपकी यात्रा की और वहांकी प्रमुख विज्ञानशालाओंका निरीक्षण किया। जर्मनीके सुप्रसिद्ध कैसर विल्हैल्म इन्स्टीच्यूटमें तथा पेरिसकी संसार-प्रसिद्ध संस्था सारबोनमें भी कुछ मास तक रहकर आपने अध्ययन किया। १९२१ में आपको लन्दन - विश्वविद्यालयकी ओरसे डी० एस-सी० की उपाधि प्रदान की गयी।

भारतमें आगमन—भारत वापस आनेपर डा० भट-नागर उसी वर्ष काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें रसायन-विज्ञानके प्रोफेसर नियुक्त किये गये। आप विश्वविद्यालयमें शीघ्र ही लोकप्रिय हो गये। १९२४ तक आप हिन्दू-विश्व-विद्यालयमें रसायनके प्रोफेसरका काम करते रहे। आपके प्रयत्नसे रसायनशालामें कई महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किये गये। उनका विवरण यूरोपके कई प्रतिष्ठित अनुसन्धान-पत्रोंमें प्रकाशित हुआ। फलस्वरूप शीघ्र ही यूरोपमें भी डा० भटनागरके अनुसन्धानोंकी चर्चा होने लगी और १९२४ ई० में आपको लिवरपूलमें होनेवाली वैज्ञानिकोंकी कान्फरेन्समें आमन्त्रित किया गया।

लिवरपूलसे वापस आनेपर आपको पञ्जाब-विश्वविद्या-लयमें भौतिक रसायनका प्रोफेसर नियुक्त किया गया। आप विश्वविद्यालयकी रसायनशालाओंके डाइरेक्टर हो गये और इनमें होनेवाले अनुसन्धान-कार्यका उत्तरदायित्व आपपर आ गया। वहां स्वयं स्वतन्त्र रूपसे अनुसन्धान-कार्य करने-की भी अच्छी सुविधायें मिलीं और आपकी प्रतिभा और अधिक चमक उठी। यहां आपने जो महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किये, उन्हींके कारण आपकी गणना विज्ञान-संसारमें भारतके उत्कृष्ट रासायनिकोंमें की जाने लगी।

अनुसन्धान-कार्य—पञ्जाब - विश्वविद्यालयमें कार्य करते हुए (१९३८ तक) आपने सवा सौसे अधिक मौलिक खोज-निबन्ध प्रकाशित कराये। पायस (Emulsion) के बारेमें आपने बहुत दिनों तक शोध की तथा उसके सम्बन्धमें नवीन महत्त्वपूर्ण नियम मालूम किये हैं। कौन पायस किस प्रकारका है, वैद्युत्वालकता द्वारा इसे मालूम कर लेनेकी भी एक विधि आपने ज्ञात की है। ऐसे पायस, जिनमें तेलका पानीमें वितरण हुआ है, काफी विद्युत्चालकता दिखलाते हैं; परन्तु विरुद्ध प्रकारके पायसोंमें विद्युत्चालकता नहींके बराबर होती है। इस नवीन विधिसे डा० भटनागर ही को नहीं, वरन् दूसरे

वैज्ञानिकोंको भी पायसोंके सम्बन्धमें अपनी खोज करनेमें बड़ी सुविधा मिली है।

लाहौरमें रहकर आपने अणुओंके चुम्बकीय गुणोंका भी विशेष रूपसे अध्ययन किया और अणुओंकी रचना एवं गठनपर प्रकाश डालनेमें सफलता प्राप्त की। इस सम्बन्धमें काम करते हुए आपने ज्ञात किया कि कोयला, जो अ-चुम्बकीय पदार्थ है, किसी दूसरे पदार्थके अधिशोषण करनेपर चुम्बकीय हो जाता है। डा० भटनागरके इस प्रयोगसे यह भी सिद्ध हो जाता है कि अधिशोषण एक रासायनिक क्रिया है।

आपके पायस, कोलोइड, प्रकाश रसायन तथा अणुओंके चुम्बकीय गुण-सम्बन्धी अनुसन्धान विज्ञान-संसारमें विशेष महत्त्वकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। आपने अणुओंके चुम्बकीय गुण मालूम करने और उन्हें ठीक-ठीक नापनेके लिए एक बहुत सही उपकरण तैयार किया है। चुम्बकीय रसायनपर आपका एक बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ Physical Principles & Applications of magneto chemistry भी प्रकाशित हो चुका है। इधर पिछले कुछ वर्षोंमें आपने अणुओंकी रचना और उनके चुम्बकीय गुणों सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किये हैं।

औद्योगिक अनुसन्धान और दानशीलता—डाक्टर भटनागरका कार्यक्षेत्र केवल विशुद्ध वैज्ञानिक शोधों तक ही सीमित नहीं है। आपने औद्योगिक महत्त्वके अनेक उपयोगी एवं व्यावहारिक अनुसन्धान किये हैं तथा उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिके लिए बहुत-सी नयी एवं सुधरी हुई रीतियां मालूम की हैं। इनसे चतुर व्यवसायियोंने समुचित लाभ भी उठाया है। पञ्जाबके मिट्टीके तेलके कारखानोंने आपके अन्वेषणोंकी सहायतासे लाखों रुपयेका लाभ उठाया है। टाटाकी सुप्रसिद्ध तेल-मिलने भी डा० भटनागरके आविष्कारोंके पेटेण्ट स्वत्व खरीदे हैं। वर्तमान महायुद्ध आरम्भ होनेपर उद्योग-धन्धोंके सञ्चालनमें कई व्यावहारिक कठिनाइयां उपस्थित हुईं। बहुत-से अत्यन्त आवश्यक रासायनिक पदार्थोंका भारतमें विदेशोंसे आयात ही बन्द हो गया। युद्ध-सम्बन्धी बहुत-सी आवश्यक चीजें इस देशमें तैयार होनेमें कठिनाइयां पहुँचने लगीं। अतः भारत-सरकारकी ओरसे औद्योगिक और वैज्ञानिक अनुसन्धानके लिए एक



डा० सर शान्तिस्वरूप भटनागर।

विशेष विभाग बनाया गया और डा० भटनागर इस विभागके डाइरेक्टर नियुक्त किये गये। आप इसी पदपर अलीपुर (कलकत्ता) में सरकारी प्रयोगशालामें अन्वेषण-कार्य कर रहे हैं।

डा० भटनागरकी औद्योगिक खोजोंका काम सबसे पहले अटक आयल कम्पनीके सञ्चालकों तथा लन्दनके स्टील ब्रादर्स लिमिटेड नामक फर्मने उठाया। स्टील ब्रादर्स लिमिटेडके सञ्चालक आपकी पेट्रोलियम सम्बन्धी खोजोंसे बहुत ही प्रभावित हुए और आपको १॥ लाख रुपये दिये, जिससे आप अपना कार्य जारी रख सकें और कम्पनीको अपने व्यापार-सञ्चालनमें उचित परामर्श दे सकें। डा० भटनागर-ने यह रकम पञ्जाब-विश्वविद्यालयको दे दी और पेट्रोलियम सम्बन्धी शोधके लिए एक स्वतन्त्र विभाग कायम कराया। १९३६ में स्टील ब्रादर्स लि० के बुलानेपर आप लन्दन गये। वहां आपसे अनुसन्धान-कार्यके सिलसिलेमें परामर्श किया गया। इधर १९३४ से डाक्टर साहबकी नवीन योजनाके अनुसार पञ्जाब-विश्वविद्यालयमें पेट्रोलियम सम्बन्धी जो शोध-

कार्य हुआ था, उससे प्रभावित होकर स्टील ब्रादर्स लिमिटेडने फिर ढाई लाखकी रकम दी और आपने इसे भी विश्वविद्यालयको दे दिया। डा० भटनागरके इस सात्विक दान और आत्मत्यागके उदाहरण इस देशमें ही नहीं, दूसरे देशोंमें भी बहुत कम मिलते हैं। उनकी तुलना प्रसिद्ध वैज्ञानिक फेराडे, डेवी पास्च्योर और राक्ससे की जा सकती है। डा० ई० पी० ई० राक्सको डिप्थीरिया नामक रोगका एक विशेष इञ्जेक्शन निकालनेके लिए ओसरिस पुरस्कार मिला था और उन्होंने उसकी सारी रकम पास्च्योर इन्स्टीच्यूटको दान कर दी थी।

आप समय-समयपर कुल मिलाकर लगभग चार लाख रुपया पञ्जाब-विश्वविद्यालयको दान कर चुके हैं। विश्वविद्यालयने इस रकमसे एक रिसर्च फण्ड कायम कर दिया है। इस फण्डसे निम्नलिखित छात्रवृत्तियां प्रदान की जाती हैं:—

एमर्सन फैलो २५०)-१०)-३५०) मासिक, डिमाण्ट मोरेन्सी वुलनर फैलो—२००)-१०)-३००) मासिक, फजले हुसैन फैलो—१६०)-१०)-२६०) मासिक, शादीलाल फैलो—१००)-५)-१२५) मासिक, डोनन फैलो—११५)-५)-१४०) मासिक और ड्यूनिक्लिफ फैलो—११५)-५) १४०) मासिक। बिड़ला ब्रादर्ससे मिलनेवाली २१०००) की रकमको भी आपने विद्यार्थियोंको छात्रवृत्तियां देनेके लिए विश्वविद्यालयको दे दिया है।

पेट्रोलियमके व्यवसायके बारेमें आपने जो अनुसन्धान किये हैं, उन्हें स्टील ब्रादर्सने पेटेण्ट करा लिया है; परन्तु इन पेटेण्टोंसे जो आमदनी होती है, उससे डा० भटनागरको रायल्टीके तौरपर अच्छी रकम मिलती है। इस रायल्टीका भी आधा भाग आपने विश्वविद्यालयको दान कर दिया है और इस दानसे सर हरबर्ट रिसर्च फण्डकी स्थापना की गयी है। इन बड़ी रकमोंको दान करनेके अलावा डाक्टर साहब अपने शिष्योंकी बराबर आर्थिक सहायता करते रहते हैं। अपनी निजी आमदनीसे सैकड़ों रुपये प्रतिमास आप विद्यार्थियोंको चुपचाप दे देते हैं। मध्यम श्रेणीके विद्यार्थी आपकी सहायतासे विशेष उपकृत हुए हैं। इस प्रकार आप विद्यार्थियोंकी जो सहायता करते हैं, वह अपना कर्तव्य समझकर—यश और कीर्तिकी अभिलाषासे प्रेरित होकर नहीं। जिस विद्यार्थीको सहायता दी जाती है, उसे भी यह अनुभव करनेका मौका नहीं दिया जाता कि उसपर किसी प्रकारका अहसान किया जा रहा है।

डा० भटनागरकी प्रतिभा और असाधारण विद्वत्तासे आकर्षित होकर दूर-दूरके विद्यार्थी आपके पास शिक्षा ग्रहण करने आते हैं। इन विद्यार्थियोंके रूपमें आपने विज्ञानकी सेवाका एक विस्तृत क्षेत्र तैयार किया है। आपके शिष्योंमें डा० माताप्रसाद तो अपने अनुसन्धानोंसे भारत ही नहीं, वरन् विदेशोंमें भी समुचित ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। अभी जनवरी मासमें काशीमें होनेवाले अखिल भारतीय विज्ञान-कांग्रेसके २८ वें अधिवेशनके रसायन-विभागके आप सभापति भी बनाये जा चुके हैं।

नवीन अनुसन्धान—इधर हालमें डा० भटनागरने और भी कई एक महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किये हैं। इनसे भारतके उद्योग-धन्धोंको बहुत काफी प्रोत्साहन मिलेगा। स्टील ब्रादर्सके साथ भी आपने अपने कई नवीन अन्वेषणोंको पेटेण्ट कराया है। इनमेंसे दो विशेष उल्लेखनीय हैं—(१) मिट्टीके तेलकी रोशनीकी तेजी बढ़ाना और (२) बिना गन्धका मोम (Deodorised Wax) तैयार करना। खनिज तैलोंके साथ ही आपने वनस्पति तैलोंके सम्बन्धमें भी बहुत ही लाभदायक एवं व्यावहारिक अन्वेषण किये हैं। वनस्पति तैलोंसे डिजिल इञ्जन चलाना इनमें विशेष उल्लेखनीय है। अब तक डिजिल इञ्जन खनिज तैलों ही की मददसे चलाये जाते थे और इस प्रकार देशका बहुत-सा धन विदेशोंको चला जाता था। आशा है, इस नवीन अन्वेषणसे भारतको समुचित लाभ होगा। वनस्पति तैलोंसे आपने खनिज तैलों ही के समान कार्य करनेवाले लुब्रिकेटिङ्ग आयल्स (Lubricating oils) भी बनानेके सफल प्रयत्न किये हैं।

बड़े-बड़े उद्योग-धन्धोंकी रद्दी और कूड़े-करकट आदिको काममें लानेकी भी तरकीबें ढूंढ़ निकालनेमें आपने उल्लेखनीय कार्य किये हैं। कपड़ेकी मिलोंकी रुईके गूदड़ आदिसे पश्मीना सिल्क बनानेकी नयी तरकीब ढूंढ़ निकाली है। इसी तरह जूटके गूदड़ तथा बिनौलेके तेलसे भी कई उपयोगी चीजें बनानेकी तरकीबें ढूंढ़ निकाली हैं। बिनौलेके तेलसे कांचके समान पारदर्शक प्लास्टिक तैयार करनेकी जो रीति आपने निकाली है, वह विशेष प्रशंसनीय है। यह प्लास्टिक (Plastic) कांचके समान पारदर्शक होते

वर्सेलोसेलियाके स्टेशनके एक होटलका 'वेटर' खुरासानके भूतपूर्व शाह लियोके रूपमें पहचाना गया था, जिसे रूसियोंने पदच्युत कर १२ हजार वृत्ति देना आरम्भ किया था।

चौबीस वर्षका चीन-सम्राट्, जो छः वर्षकी अवस्थामें ही गद्दीपर बिठा दिया गया था, सन् १९२४ में पदच्युत किया गया और आज वह पेकिङ्ग नगरमें गरीबीसे दिन काट रहा है। वहांकी प्रजातन्त्र सरकारने उसे ६५ हजार पौण्ड वार्षिक देनेका वादा किया था; किन्तु आज तक एक पाई भी नहीं दी गयी। ५० पौण्ड मासिक किरायेके मकानको छोड़कर उसके पास कोई स्थायी सम्पत्ति नहीं है। भूतपूर्व सम्राट्के नाते जब कभी उसे कहीं निमन्त्रित होकर जाना पड़ता है, तो बेचारा बड़े सङ्कोचके साथ उन नकली आभूषणोंको पहनकर जाता है।

हंगरी की निर्वासित रानी और आस्ट्रियाकी सम्राज्ञी गीटाके जीवनपर तो एक खासा उपन्यास ही लिखा जा सकता है। यह महारानी किसी समय ११०० कमरोंका वैभव भोगती थी; किन्तु इसके बाद ही वह रानी-पदसे वञ्चित होकर अपने आठ बच्चोंके साथ दर-दरकी भिखारिन बन गयी।

फ्रेङ्क गोडार्डको देखिये। किसी समय वह घूंसेबाजीमें ब्रिटेनका चैम्पियन था; लेकिन कुछ ही समय हुआ, वह कहांसे कहां आ पहुंचा और सड़क खोदनेवाले मजदूरके रूपमें काम पानेपर अपनेको धन्य समझने लगा। उसने कुश्तियोंमें जो धन कमाया, उससे आरामके साथ जिन्दगी बितानेकी लालसा हुई। लेकिन भाग्यका फेर, उसका व्यवसाय नष्ट हो गया, जिसकी क्षतिपूर्ति वह न कर सका। उसने हालीउडमें अभिनेताके रूपमें काम करना चाहा, लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। अन्तमें उसे निराश होकर इंगलैण्ड लौट जाना पड़ा।

इंगलैण्ड आनेपर भी उसके दिन नहीं लौटे और ७ वर्ष तक बेकार पड़ा रहा। और जब अन्तमें उसे एक मजदूरके रूपमें नौकरी भी मिली, तो काम करते समय वह एक बार गिर पड़ा और उसकी एक बांह टूट गयी। इसके बाद उसे निमोनियाका शिकार होना पड़ा। भाग्यसे वह बीमारीसे बच गया, लेकिन उसकी स्थिति नहीं बदली।

यही हाल टामी जोवुडका भी हुआ। वह भी कभी विश्व-विजयी पहलवान था; लेकिन समयने ऐसा पलटा खाया कि उसे अपनी जीविका चलानेके लिए सड़कोंपर घूम-घूमकर ग्रामोफोनके रेकार्ड बजाने पड़े। उसने कुश्तीसे ७५००० पौण्ड कमाये थे, लेकिन भाग्यसे वह सारा धन नष्ट हो गया।

एच० जार्डन मार्टको भी रुपयोंके मोहके कारण राजासे रङ्क बन जाना पड़ा। उसकी दयनीय अवस्थाकी जड़ २०००००० पौण्डकी सम्पत्ति थी। वसीयतके अनुसार ४० वर्षकी अवस्था होनेपर ही वह उस धनको प्राप्त कर सकता था। लेकिन उसका जोश इतना अधिक बढ़ा कि उसने सारे शहरको खूनके रङ्गमें रंगना शुरू कर दिया। वसीयतमें एक शर्त यह भी थी कि वह केवल नेकचलनीका प्रमाण देनेपर ही उसे प्राप्त कर सकेगा। उस समय उसकी अवस्था २२ सालकी थी। उसने सोचा कि अबसे १८ साल बाद धन मिलेगा, तो वह न मिलने हीके बराबर होगा। इसलिए उसने अपनेको दूसरी ही दिशामें बहा दिया। फलस्वरूप उसका वह धन ही नहीं मारा गया, बल्कि उसे अपने पितासे जो भत्ता मिलता था, उससे भी हाथ धोना पड़ा। इसका नतीजा यह हुआ कि उसे अपनी जीविकाके लिए मछुएका काम करना पड़ा। वह धनी लोगोंको नावपर बैठाकर मछलीका शिकार करने ले जाता और उन लोगोंसे जो पैसे मिलते, उन्हींपर सन्तोष करता।

इस प्रकार आपको धनकी अस्थिरताके अन्य अनेक उदाहरण देखनेको मिल सकते हैं। इन सबसे यही प्रतीत होता है कि पैसेका मनुष्यके जीवनपर कितना व्यापक प्रभाव है। केवल पैसा ही मनुष्यके भविष्यका विधायक है। उज्ज्वल भविष्य बनानेके लिए जहां मनुष्यको आत्मविश्वासपूर्वक कर्मनिरत होनेकी आवश्यकता पड़ती है, वहीं पैसेकी भी कम आवश्यकता नहीं होती।

———



इस सोनेके पहाड़का क्या होगा ?

डा० ए० पी० अग्निहोत्री, पी-एच० डी०

सारे संसारमें कितना सोना है, यह तो पता नहीं है; परन्तु साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि उसका ६० सैकड़ेसे भी ज्यादा भाग संयुक्त राज्य अमेरिकामें है। अमेरिकामें कुछ अजीब जादू है, जो सारे संसारका सोना सहस्रधार बनकर पहुंच रहा है। अमेरिकामें चाहे खेतोंमें गेहूं पैदा हों या कारखानोंमें तरह-तरहकी चीजें तैयार की जायं, जहाजोंमें लद जानेपर ये सारी चीजें, जिनका अन्य देशोंके लिए निर्यात किया जाता है, अमेरिकाके लिए सोना बन जाती हैं। कोई आश्चर्य नहीं है, यदि आज अमेरिकन सरकारके खजानेमें ५-६ अरब पौण्डका सोना हो।

फिर, यह सोना तो अभी अमेरिकाकी ओर खिंचता ही जा रहा है और जो परिस्थिति है, उसमें आगे भी एक मुद्दत तक जो सोना संसारके विभिन्न देशोंमें सोनेकी खानोंसे निकलेगा, अमेरिकामें पहुंच जायगा। बात यह है कि अमेरिकन सरकार सोनेके लिए प्रति औन्स (लगभग २॥ तोला) ३५ डालर (१ डालर = लगभग ३। रु०) दे रही है। डालर संयुक्त राज्य अमेरिकाका सिक्का है और आज संसारमें इसकी काफी धाक है। अमेरिकन सरकार सोना लेती है और उसका मूल्य उस सिक्केमें चुकाती है, जिसकी स्थिति यूरोपियनोंकी दृष्टिमें सबसे अधिक दृढ़ है।

अमेरिकामें सोनेका जो पहाड़ बनता जा रहा है, उसके कारण कितने ही प्रश्न सामने आ रहे हैं और इन प्रश्नोंका हल करना भी उतना आसान नहीं है। अमेरिकन सरकारको अब सोनेकी जरूरत नहीं है; परन्तु वह करे तो क्या करे ? क्या उसे सोना खरीदना ही बन्द कर देना चाहिए या जितना मूल्य वह आज दे रही है, उसे ही घटा देना चाहिए ? जो सोना जमा हो रहा है, सिक्के ढालकर क्यों न उसका प्रचलन कर दिया जाय ? ये सब उपाय हैं, जिनकी ओर दृष्टि जाती है। अमेरिकामें इनपर अच्छी तरह विचार किया गया है; परन्तु विशेषज्ञोंकी दृष्टिमें इनमेंसे किसी भी उपायसे काम नहीं चल सकता। किन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि अमेरिका यदि अपनी वर्तमान नीतिसे आगे भी काम लेता रहे, तो एक दिन ऐसा हो सकता है, जब संसारके कोने-कोनेसे सारा सोना खिंचकर वहां पहुंच जायगा।

अब देखना चाहिए कि संसारके सोनेपर अमेरिकाका आधिपत्य किस तरह कायम हो गया। आर्थिक मन्दीका वह जमाना अभी तक लोगोंको भूल नहीं गया है। अमेरिकाके लिए वह बड़ी कठिनाईका समय था। वहां लोग बैङ्कोंपर टूट रहे थे और अपने धनके सिक्के लेकर दबा रखना चाहते थे। भय हो रहा था कि डालरोंके पीछे रिजर्वमें 'वचन' के सिवाय कुछ न रह जायगा। स्थितिको बचानेके लिए अमेरिकन सरकारने एक मार्ग निकाला—स्वर्णमानका परित्याग कर दिया। इसका अर्थ था करेन्सीके बदलेमें सोना देनेसे इनकार। रक्षित स्वर्ण-निधिकी रक्षा करनेके लिए दो तरीकोंसे काम लिया गया—सोनेका निर्यात रोक दिया गया और सोनेका रखना गैरकानूनी कर दिया गया। इसका तुरन्त ही यह फल हुआ कि अमेरिकन स्वर्ण-निधिका निकास बन्द हो गया। अमेरिकन सरकारको अपना सोना बेचना तो पहले ही स्वीकार नहीं था, उसने सोना खरीदना भी आरम्भ कर दिया और उस समय जिस सोनेका दाम २०.६७ डालर प्रति औन्सके हिसाबसे चुकाया जाता था, उसका मूल्य ३५ डालर प्रति औन्सके हिसाबसे दिया जाने लगा। उस समयसे अब तक अमेरिकन सरकार इसी हिसाबसे सोनेका मूल्य चुका रही है।

इस तरह डालरका मूल्य गिरानेमें अमेरिकन सरकारकी मन्शा यह थी कि अमेरिकाकी सीमामें तो वहांकी चीजोंका मूल्य चढ़ जाय; परन्तु विदेशोंमें वही कम हो जाय और इतना कम हो जाय कि अन्य देशोंके लिए अमेरिकन वस्तुओंका निर्यात आसानीसे हो सके। अमेरिकन अर्थ-शास्त्रियोंका विश्वास था कि डालरका मूल्य गिर जानेसे स्थिति संभल जायगी और इसमें सन्देह नहीं है कि स्थितिमें सुधार भी हुआ, अमेरिकामें वस्तुओंका मूल्य उसके बाद नीचे नहीं गिरा। परन्तु विशेषज्ञोंके लिए बहुत दिनों तक यह विषय विवादास्पद रहेगा कि डालरका मूल्य गिरा

देनेसे ही अवस्थामें परिवर्तन हुआ है। कितने ही विशेषज्ञों-का यह निश्चित मत है कि आज अमेरिका सोनेका जो मूल्य प्रति औन्स चुका रहा है, वह बहुत ज्यादा है। इसी तरह बहुत लोगोंका यह मत भी है कि आज जब यूरोपमें युद्ध हो रहा है, सोना तो हर हालतमें अमेरिका पहुंचता ही—चाहे उसका मूल्य बढ़ाया जाता या नहीं। युद्ध-लग्न देशोंका ही नहीं, भविष्यकी आशङ्काओंसे चिन्तित अन्य यूरोपीय राष्ट्रोंका भी सोना अमेरिकामें गये बिना नहीं रह सकता था। किसीका सोना सुरक्षित रहनेके खयालसे जाता, तो किसीका युद्ध-सामग्री खरीदनेके लिए और किसीका अन्य व्यापारिक कारणोंसे—यह स्पष्ट ही है। अमेरिकामें जो नया सोना खानोंसे निकला, वह तो निकला ही, भय-भीत यूरोपियनोंने भी अपना सोना सुरक्षित रहनेकी दृष्टिसे अमेरिका भेजा। जब लड़ाईके बादल उमड़ने लगे, यूरोपि-यन देशोंकी सरकारोंने अपना सोना न्यूयार्कके बाजारमें बेचा, जिससे युद्ध-सामग्री खरीदनेके लिए डालर तैयार रहें। अमेरिकासे युद्ध-सामग्री खरीदे बिना तो काम चल ही नहीं सकता था।

सोनेको दबाकर रखनेके लिए स्वदेश सारे संसारमें मश-हूर है; परन्तु अमेरिकाकी ओर संसारके सोनेका जो यह प्रबल प्रवाह आरम्भ हुआ, तो स्वदेशका सोना भी अपने स्थानपर स्थिर न रह सका—उस प्रबल धारामें पड़कर बह गया। सोनेका मूल्य जहां पहले, १९३१ में ब्रिटेन द्वारा स्वर्णमान छोड़े जानेसे पहले लगभग २३ रुपये तोले था, वहां आज तो वह लगभग ४२ रुपये तोले हो रहा है। १९३१-३२ से १९३८-३९ तक ७ वर्षमें इस देशसे लगभग ३ अरब ३८ करोड़ ९० लाख रुपयेका सोना बाहर गया है। *

अमेरिकाके किसानों और कारखानेदारोंने १९३४ से इधर अन्य देशोंसे जितना माल मंगाया है, उसकी अपेक्षा ९० करोड़ पौण्ड मूल्यका अपना माल अधिक भेजा है और यह जितना माल अधिक भेजा है, उसका मूल्य अमेरिकाको सोनेके रूपमें मिला है। अमेरिकाकी सीमामें जितना भी सोना पहुंचे, उसे सरकारके हाथ बेच ही देना होगा। इस तरह सारे संसारका सोना अमेरिकामें जमा होता जा रहा है, कच्चुकीके फोर्ट नाक्स स्थानमें पहाड़ बनता जा रहा है। यह सोनेका पहाड़ यों देखनेमें चाहे कितना ही सुन्दर और आकर्षक हो; परन्तु वह है खतरनाक, इसमें सन्देह नहीं है।

इस सोनेके पहाड़के पीछे यह भय तो हमेशा ही रहेगा कि कभी न कभी यह हो सकता है, उसे सिक्कोंमें बदल दिया जाय। यह होनेसे बाजारमें सिक्कोंकी बाढ़ आ जाना और फिर विषम अवस्था पैदा होना निश्चित है, इसीलिए यह भी हो सकता है कि इस स्वर्ण-निधिको रखकर करेन्सी नोट जारी होते रहें। अमेरिकाके वर्तमान कानूनके अनुसार करेन्सी नोटोंके साथ स्वर्ण-निधिका अनुपात १००:४० रहना चाहिए। अमेरिकन डालरके करेन्सी नोटोंके विषयमें अनु-मान है कि वे लगभग २ अरब पौण्डके चल रहे हैं और स्थिति यह है कि जहां स्वर्ण-निधिको ४० प्रतिशत होना

---

* ब्रिटेनके स्वर्णमान छोड़नेसे इधर सोनेकी दृष्टिसे स्वदेशकी स्थिति बहुत ही शोचनीय हो गयी है। जो सोना देशमें निकलता है, उसका औसत १९०३-४ से लगाकर १९१८-१९ तक लगभग ३। करोड़ रुपये वार्षिक और उसके बाद १९३४-३५ तक लगभग २॥ करोड़ रुपये वार्षिकका रहा है। १९३४-३५ से इधर ३ करोड़ रुपये वार्षिकसे अधिकका सोना निकाला जा रहा है। इस तरह मोटे हिसाबसे १९२२-२३ से इधर लगभग ४९ करोड़ रुपयेका सोना स्व-देशमें निकाला गया। इसी अर्सेमें लगभग २ अरब ७२ करोड़ १२ लाख रुपयेका सोना बाहरसे इस देशमें आया। कुल मिलाकर यह सोना ३ अरब १७ करोड़ १२ लाख रुपयेका हुआ; परन्तु १९२२-२३ से १९३८-३९ तक कुल मिलाकर ४ अरब ९८ करोड़ ९० लाख रुपयेका सोना बाहर भेजा गया। इसमें १ अरब ८१ करोड़ रुपयेका जो अन्तर है, उसका अर्थ सहज ही समझा जा सकता है। निःसन्देह इन आंकड़ोंसे तोलका हिसाब नहीं लगाया जा सकता और विभिन्न वर्षोंमें सोनेके मूल्यमें जो अन्तर रहा है, उसे भी दृष्टिमें रखना ही चाहिए; परन्तु इस निर्यातसे सोनेकी जो अत्यन्त कमी होती जा रही है, वह तो स्पष्ट ही है। उसका पता इधर स्वर्ण-निर्यात कम होते जानेसे चल रहा है। १९३२-३३ में ६६ करोड़ ८४ लाख रुपयेका स्वर्ण-निर्यात हुआ था, उसके बाद घटते-घटते यह रकम १९३८-३९ में १३ करोड़ ८१ लाख रुपये तक आ गयी है।

चाहिए था, वहां करेन्सी नोटोंकी रकम ४० प्रतिशतसे भी कम है। उसमें उतार-चढ़ावके लिए भी यदि गुञ्जायश रख ली जाय, तो करेन्सी नोटोंके बराबर तो स्वर्ण-निधिको समझना ही चाहिए। संसारके इतिहासमें यह बिलकुल नयी बात है और नहीं कहा जा सकता कि इसका परिणाम अन्तमें क्या होगा; क्योंकि अमेरिका आज भी तो अपनी रुई, मशीनरी और गेहूं देकर संसारके अन्य देशोंसे सोना खींच रहा है—एक ऐसी चीजको ले रहा है, जिससे वह काम नहीं ले सकता, जो उसके यहां पहलेसे ही आवश्यकतासे अधिक जमा हो रही है।

संसारकी साधारण स्थितिमें स्वर्ण-प्रवाहकी दिशा बदलती रहती है। एक समयमें सोनेका जो प्रवाह एक देश-की ओर होता है, वह अन्य समयमें किसी दूसरे देशकी ओर हो जाता है। यह व्यापारिक परिस्थितियोंके कारण होता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारमें जब किसी देशका निर्यात बढ़ने लगता है, उस देशमें सोना भी बढ़ने लगता है। जब किसी देशमें सोना बढ़ने लगता है, उस देशकी वस्तुओंका मूल्य चढ़ने लगता है। यह होनेसे अन्य देशोंके लिए उस देशकी वस्तुओंको खरीदनेमें कठिनाई पैदा हो जाती है, फलतः निर्यात कम होने लगता है और वह अवस्था भी आ सकती और आती है, जब निर्यातकी अपेक्षा आयात अधिक होने लगता है और उस देशको कसर पूरी करनेके लिए अपना सोना बाहर भेजनेकी आवश्यकता हो जाती है। अमेरिकामें जो सोना आज जमा हो रहा है, क्या कभी उसकी समस्या इस तरह स्वाभाविक ढङ्गसे हल होगी? जहां तक मनुष्यकी बुद्धि सोच सकती है, अभी तो यह असम्भव ही प्रतीत होता है।

जहां तक वर्तमान महासमरका प्रश्न है, अमेरिकाकी स्थिति भी बिलकुल अनिश्चित है—भले ही प्रेसिडेण्ट रूज-वेल्ट बार-बार यूरोपमें कदम न रखनेकी बात कह रहे हों। परन्तु थोड़ी देरके लिए यदि यह मान लिया जाय कि अमे-रिका प्रत्यक्ष रूपसे इस युद्धमें नहीं पड़ेगा और यूरोप एवं अफ्रीकामें ही वर्तमान युद्धका अन्तिम निर्णय हो जायगा, तो भी यह ध्रुव सत्य है कि युद्धके बाद बहुत समय तक यूरोप इस स्थितिमें नहीं होगा कि अपने यहांकी वस्तुओंको अमेरिका-के बाजारमें रख सके, इतनी अधिक तादादमें रख सके कि अमेरिकाको बदलेमें अपना सोना निकालनेकी आवश्यकता हो जाय। परन्तु यदि सम्भव हो, तो भी अमेरिकन कार-खानेदारोंको क्या वह स्थिति पसन्द होगी? क्या वे यह चाहेंगे और बर्दाश्त कर लेंगे कि अमेरिकामें जो चीजें तैयार होती हैं, उनके साथ संसारके अन्य देशोंकी चीजें बाजारमें स्पर्द्धा करें और आगे रहें? इस प्रश्नका उत्तर जब "नहीं" है, तब वर्तमान अवस्थाका परिणाम क्या यही नहीं होगा कि संसारका सारा सोना धीरे-धीरे अमेरिकामें पहुंच जाय और यह सोना भी उसके लिए बेकार ही हो।

सोनेकी यह समस्या स्वयं कोई बीमारी नहीं है; परन्तु संसारकी एक कष्टसाध्य बीमारीका पूर्व लक्षण है। इस व्याधिसे पीड़ित होनेपर सम्भव है, कुछ राष्ट्र इस प्रश्नपर विचार करें कि सोनेको धन ही नहीं मानना चाहिए परन्तु यह व्याव-हारिक नहीं है। सोना सोना है और वह सोना रहेगा। सर्वाधिकारीतन्त्र देशोंमें सोना निषिद्ध ठहराया जा सकता है, परन्तु यदि इन देशोंको किसी अन्य देशसे कुछ मंगाना होगा, तो या तो सोना देना होगा या फिर अपने यहांकी चीजोंसे बदला करना होगा। जिन देशोंमें आज सोनेने सिक्केका स्थान ले रखा है, उनके लिए सोनेको हटाना असम्भव ही है; क्योंकि उसकी प्रतिक्रिया अन्य सम्बन्धित देशोंपर भी होगी। इस अवस्थामें सोनेकी समस्या हल होनेका एक ही उपाय है, संसारकी स्थितिमें परिवर्तन हो, वर्तमान अशान्ति और भयका स्थान शान्ति और विश्वास ले, जिससे सब देशोंका पारस्परिक व्यापार साधारण स्थिति-में आये। अभी तो सारा संसार प्रत्यक्ष ही विषमज्वरसे पीड़ित हो रहा है। व्यापारिक सामञ्जस्यके लिए जो शान्ति और विश्वास अत्यन्त आवश्यक है, उसकी दृष्टिसे भविष्यके गर्भमें क्या है, यह कहनेका दुःसाहस इस समय कौन कर सकता है। परन्तु निर्विवाद-रूपसे इतना तो कहा ही जा सकता है कि सोना रखनेके कारण यह सम्भव है कि यूरोप और एशियाके लिए अमेरिकाको साहूकार और डालरको संसारके व्यापारका माध्यम बन जाना पड़े।

———

सोवियट रूसमें शिक्षा-प्रचार

श्री "रवि"

सोवियट रूसके जिन क्रान्तिकारी परिवर्तनोंने सारे सभ्य संसारमें हलचल मचा दी है, उनमें वहांकी शिक्षा-प्रणाली विशेष उल्लेखनीय है ; क्योंकि थोड़े-से समय ही में किस प्रकार रूसने निरक्षरताको नष्ट कर दिया, यह जाननेकी बात है। किसी भी राष्ट्रका उत्थान अथवा पतन विशेषतः वहांकी शिक्षा-प्रणालीपर ही अवलम्बन करता है।

सोवियट रूसके नेता नवयुवकोंकी शिक्षापर बहुत जोर दे रहे हैं। इसमें उन्होंने सारी शक्ति लगा दी है। योग्यसे योग्य स्त्रियों तथा पुरुषोंको यह काम सौंपा गया है। अक्टूबरकी क्रान्तिके बाद रूसके नेताओंने आश्चर्यजनक साहससे काम लेकर यह घोषणा कर दी थी कि वे दस वर्षके भीतर ही निरक्षरताको भगा देंगे। उन्होंने नवयुवकों हीको नहीं, वरन् बूढ़ों तकको साक्षर बना डालनेका निश्चय कर लिया था।

सोवियट सरकार उन दिनों एकदम नयी थी और उसे विभिन्न कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था। द्रव्यका अभाव-सा ही था। देशमें खूनखच्चर भी बन्द न हो पाया था और दुर्भिक्षके कारण प्रजा तबाह थी। किन्तु फिर भी केवल तीन वर्ष ही में सरकार आगे बढ़ी। उसने यह अनुभव किया कि उसकी रक्षाके लिए प्रत्येक प्रजाजनका शिक्षित होना परमावश्यक है। इस सङ्कल्पको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए पहले उसने शिक्षाविषयक वर्णभेदको नष्ट किया। देवालय और पाठशालाका पुराना सम्बन्ध तोड़ दिया।

रूसमें शिक्षा चार विभागोंमें बांटी गयी है, जिनपर क्रमशः विचार किया जाना आवश्यक है—(१) बालकोंकी शिक्षा, (२) प्राथमिक शिक्षा (श्रमजीवी पाठशाला), (३) औद्योगिक शिक्षा और (४) उच्च शिक्षा।

बालकोंकी शिक्षावाली श्रेणियोंमें तीनसे सात वर्ष तकके बच्चोंको शिक्षा दी जाती है। यह शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य है। बालकोंका भार सरकारपर होता है। इसके लिए विभिन्न किण्डरगार्टन स्कूल हैं। जहां जैसा स्थान मिल जाता है—सरकार किण्डरगार्टन स्कूल खोलकर कार्य आरम्भ कर देती है।

रूसी शिक्षा-शास्त्री नवीन बाल-साहित्यके निर्माणमें लग गये हैं। पुराने जमानेमें, भारतकी तरह भूत-प्रेत, राजा-रानी तथा देवी-देवताओंकी कहानियां रूसमें भी बहुत प्रचलित थीं। रूसी शिक्षा-शास्त्री इसकी जगह नवीन बाल-साहित्य निर्माण कर चुके हैं। संसारके सामने वे एक नया आदर्श उपस्थित करनेका निश्चय कर चुके हैं, भले ही संसार इस सङ्कल्पपर हंसे। वहां शिक्षाकी विशेषता यही है कि वह दैनिक जीवनसे सम्बद्ध है। इसके लिए यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम विद्यार्थियोंके अनुकूल हो। अतः सोवियट रूसमें शिक्षाका माध्यम वहांकी मातृ-भाषा ही रखी गयी है। भारतसे कहीं ज्यादा भाषायें रूसमें प्रचलित हैं ; परन्तु उपर्युक्त सिद्धान्तका पूरा-पूरा पालन किया जाता है। साइबेरियाके इर्कुटस्क प्रदेशमें कारागास नामक छोटी-सी जाति रहती है। इसकी जनसंख्या (स्त्री-पुरुष और बच्चे) केवल ४०९ है। भाषा इनकी तुर्कीका रूपान्तर ही है। ये लोग बद्दू हैं और शिकार द्वारा ही जीवन-यापन करते हैं। मगर यहां बच्चोंके लिए खास तौरपर स्कूल खोला गया है। यहां बच्चे केवल शीतकाल ही में पढ़ने आते हैं ; क्योंकि गर्मियोंमें वे अपने माता-पिताके साथ घूमने चले जाया करते हैं। दूसरी बद्दू जाति जिप्सी लोगोंकी है। इन्हें शिक्षित बनानेके लिए जिप्सी वर्णमाला तैयार की जा रही है।

जारके शासनकालकी शिक्षाका एक उदाहरण देखिये—

"प्रश्न—हमारा धर्म अपने जारके प्रति क्या कर्तव्य सिखाता है ?

उत्तर—बन्दना, स्वामिभक्ति, कर देना, सेवा, प्रेम और प्यार सबका सार बन्दना और स्वामिभक्ति है।" *

आज रूसमें हरएक प्रान्त अपनी शिक्षाका निर्माण स्वतन्त्रतापूर्वक करता है। धर्मके विरुद्ध यद्यपि स्कूलोंमें कोई

* पण्डित जवाहरलाल नेहरू-कृत 'रूसकी सैर' पृष्ठ १४३



बच्चोंकी एक शाला।

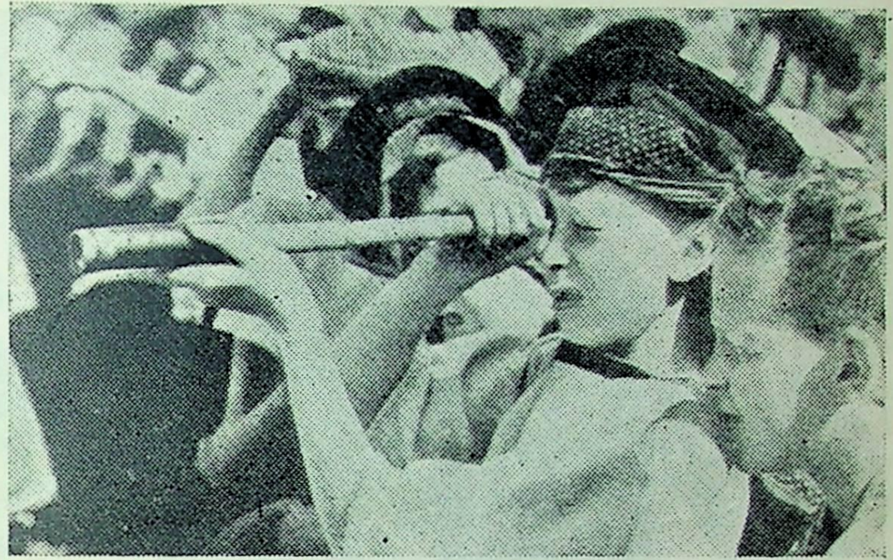
कमजोर बच्चोंको भारी काम नहीं सौंपा जाता। कमजोर आंखों-वाले बच्चोंको पहली पंक्तिमें बिठाया जाता है। सिखानेके लिए व्याख्यान नहीं देने पड़ते, वल्कि डाल्टन-शैली द्वारा बच्चोंको पढ़ाया जाता है।

इस 'विद्यालयमें जानेसे पूर्वके समय'में बालकोंको रूसी सरकार पौष्टिक भोजन, आराम और खेल-कूदके स्थान, कला-कौशल-परिचय, प्रकृति-ज्ञान तथा वर्तमान संसार और सामाजिक संस्थाओंका परिचय देकर एक अद्वितीय शिक्षाकी नींव डाल रही है।

रूसमें प्राथमिक शिक्षा देनेके लिए नियमित पाठशालायें आठ वर्षके बालकोंसे शुरू होती हैं। इन्हें श्रमजीवी शालायें पुकारा जाता है। इनके दो विभाग हैं। पहला विभाग आठसे बारह वर्ष तकके लिए और दूसरा बारहसे पन्द्रह, सोलह अथवा सतरह तकका होता है। परन्तु अभी तक यह बात सन्दिग्ध है कि विशेष प्रकारकी औद्योगिक शिक्षा पन्द्रह वर्षकी अवस्थासे शुरू की जाय या सतरह वर्षकी की अवस्थासे? अतः इन शालाओंमें बालकोंको पन्द्रहसे सत्रह वर्षकी अवस्था :तक रहना पड़ता है। देशके प्रत्येक बालकको आठ वर्षका होते ही अनिवार्य रूपसे इन शालाओंमें भर्ती होना पड़ता है। ऐसी श्रमजीवी शालायें विशेष रूपसे देहात ही में अधिक होती हैं। सन् १९२४ ई० में ऐसी शालायें ८७ प्रतिशत गांवोंमें और शेष १३ प्रतिशत शहरोंमें थीं; परन्तु छोटे-छोटे गांवोंमें ये शालायें

विशेष आन्दोलन नहीं है, फिर भी आधुनिक रूसी शिक्षा-प्रणालीमें धर्मके लिए कोई स्थान नहीं है।

स्कूलोंमें भर्ती होनेके लिए परीक्षायें नहीं होतीं। न साल-भर बाद ही परीक्षा होती है। वर्ष-भरके कामको देखकर बालकोंको ऊपरी दर्जेमें चढ़ा दिया जाता है। सभी स्कूलोंमें बालक और बालिकायें शामिल ही पढ़ती हैं। समय-समयपर डाक्टर निरीक्षण करते रहते हैं और



जरा दूरबीनका शौक तो देखिये।

ठिक नहीं पातीं, क्योंकि वहां स्थान बहुत होते हुए भी साधनोंका अभाव रहता है। दूसरे फसलके दिनोंमें ग्रामीण जनता स्कूल छोड़कर फसल काटने चली जाती है। बेचारे देहाती सर्वथा अशिक्षित रह जाते हैं, फिर भी रूस बराबर शिक्षा-प्रचार करता हुआ देहाती निरक्षरताको मिटाता चला जा रहा है। किसान शिक्षा-प्रचारमें बड़ी दिलचस्पी ले रहे हैं। उन्होंने अपने ही प्रयत्नोंसे भी स्कूल खोले हैं।

देहातमें शिक्षाका प्रसार कितना हुआ है, इसका पता इस बातसे चलता है कि सन् १९१३ ई० में केवल २८०० देहाती लेटर-बक्स थे। सन् १९२६ ई० में (अर्थात् १३ वर्ष बाद) ६४००० देहाती डाकखाने थे। 'किसान गजट' नामक पत्र सन् १९२३ ई० में शुरू किया गया था और आज दस लाखसे भी ऊपर उसकी ग्राहक-संख्या है।

श्रमजीवी शालाओंमें सम्मिश्रण-ढङ्गसे शिक्षा-प्रचार होता है। शिक्षाके विषय ऐसे ही होते हैं, जिनमें मनुष्यकी स्वभावतः दिलचस्पी होती है। उदाहरणार्थ ग्रामकी श्रमजीवी शालामें विद्यार्थी ग्राम्य जीवन, फसलोंकी कटनी और उपजका अध्ययन करेगा। इस प्रकार विषय और पद्धति दोनों परस्पर सम्बद्ध हो जाते हैं। वहांके विद्यार्थियोंके पास पुस्तकें नहीं होतीं। विद्यार्थियोंके लिए वहांके घर-द्वार, मुहल्ले और गांवकी व्यवस्था आदिका निरीक्षण करना ही मुख्य काम रहता है। सितम्बर मासमें जब बालक स्कूलमें आना शुरू करते हैं, तभीसे वे वृक्षोंके पत्तों, फल-फूल, बीज आदि इकट्ठे करने लगते हैं और स्कूलमें इन्हीं विषयों-पर चर्चा की जाती है। इस प्रकार प्रकृतिसे पढ़नेवाले भला क्योंकर अशिक्षित रह सकते हैं।

शिक्षाके विषयोंका चुनाव विद्यार्थियोंके जीवन-क्रमको देखकर किया जाता है। विषय चुन लेनेके बाद वे उससे सम्बन्ध रखनेवाले अभ्यास-क्रमको बांधते हैं। एक श्रमजीवी शालाके आचार्यके शब्दोंमें "हम स्कूलके काम-काज और नागरिक जीवनको सम्बद्ध करना चाहते हैं। हम न तो किसी विषय-विशेषकी शिक्षा देते हैं और न गणित, भूगोल या ऐसे ही किसी गूढ़ विषयमें बालकको उलझा देते हैं; बल्कि प्रत्येक कक्षामें हम किसी भी एक वस्तुका अध्ययन, मनन और विवेचन करवाते हैं। और वह वस्तु भी बाहरकी नहीं, वरन् अपने ही आसपासकी सामग्रीमेंसे चुनते हैं।"

उक्त शालाओंकी तीसरी विशेषता यह है कि विद्यार्थियोंको बड़े सम्मानके साथ रखा जाता है। नगरकी इन शालाओंमें प्रत्येक कक्षामें तीन-तीन विद्यार्थियोंकी एक समिति होती है, जिसका एक मन्त्री होता है। स्कूलकी प्रबन्ध-समितिमें इस मन्त्रीका ऊंचा स्थान है। सारे स्कूलमें विद्यार्थियोंकी सारी प्रवृत्तियां विद्यार्थियों ही के हाथोंमें रहती हैं। शिक्षा-प्रचारके लिए चलती-फिरती तसवीरोंसे बहुत काम लिया जाता है। 'ग्राम-नीति' का फिल्म भी पिछले दिनों तैयार किया गया है।

श्रमजीवी शालाओंके बाद रूसकी उद्योग-शालाओंका नम्बर आता है। विद्यार्थीको श्रमजीवी शालासे निकलकर उद्योगशालामें जाना पड़ता है। इसमें विद्यार्थी ४ वर्ष तक रहता है। इन शालाओंके तीन विभाग किये गये हैं:— (१) कृषि-विद्यालय (२) शिल्पशाला (३) यन्त्रकला विद्यालय। इन स्कूलोंमें चार घण्टे पढ़ाई और चार घण्टे परिश्रम करना पड़ता है। यन्त्रकला विद्यालयोंमें दो प्रकार-



छोटे-छोटे बच्चे अध्यापिकाके साथ सैर-सपाटेके लिए जा रहे हैं।

के विद्यार्थी भर्ती किये जाते हैं। एक तो वे विद्यार्थी हैं, जो आगे चलकर किसी कारखानेमें काम करना चाहते हैं और दूसरे वे कारीगर हैं, जिन्हें कारखानोंमें काम करते-करते बहुत वर्ष बीत गये हैं, किन्तु अभी तक हस्त-कौशलके अतिरिक्त किसी विषयका सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करना जिनके लिए आवश्यक है। दोनों प्रकारके विद्यार्थियोंको उद्योगशालाओंमें योग्यतानुसार शिक्षा दी जाती है।

सोवियट रूसकी औद्योगिक शालायें अपनी ओर अधिक ध्यान आकर्षित कर सकी हैं और वे अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं, इसके कई कारणोंमें एक मुख्य बात यह है कि विद्यार्थी काम करके यथार्थमें कमाने लगते हैं। भारतकी तरह वे स्कूलोंसे निकलते ही नौकरीकी तलाशमें नहीं दौड़ते। देशके जीवनमें वे अपना स्थान पहले ही चुन लेते हैं। इनकी निरक्षरता दूर करनेके लिए कई प्रकारके उपाय किये गये हैं। श्रमजीवी सङ्घ, मजदूरोंके क्लब, किसानोंकी संस्थायें, सहकार समितियां और जेलखाने शिक्षाके केन्द्र बना लिये गये हैं। पुस्तकालयोंकी संख्या जोरोंसे बढ़ रही है। यहां चलते-फिरते पुस्तकालय भी हैं। सस्ती पुस्तकें, जिनमें श्रमजीवी वर्गकी समस्याओंका जिक्र होता है, हजारोंकी संख्यामें प्रकाशित होती रहती हैं।

उच्च शिक्षाके लिए प्रायः २० विश्वविद्यालय हैं। इसके अलावा मास्को नगरमें २ विश्वविद्यालय हैं। इनके नाम क्रमशः ओरिएण्टल विश्वविद्यालय और सनयात सेन विश्वविद्यालय हैं। साम्यवादियोंके सिद्धान्तोंपर इन विश्वविद्यालयोंमें शिक्षा दी जाती है।

सन् १९२९ ई० में जो उच्च शिक्षा-संस्थायें सोवियट रूसमें थीं, उनके आंकड़े इस प्रकार हैं—डाक्टरी शिक्षा-६६, शिक्षाशास्त्र-३३१, कृषि-कार्य-१९२, कला-कौशल-२१९, अर्थशास्त्र और समाज-शास्त्र-५३ तथा सङ्गीत और कला-९२। गत १९ वर्षमें जो उन्नति हुई है, उसकी तो कल्पना ही की जा सकती है। क्रान्तिके कुछ समय बादसे ऐसी प्रवृत्ति हो गयी है कि लोग पुरानी बातोंकी निन्दा करने लगे हैं; परन्तु शिक्षा-कमिश्नर लूना चार्स्कीके विषयमें एक कहानी है। क्रान्तिके आरम्भ-कालमें गृह-युद्ध शुरू हो गया था। उस समय एक अफवाह उड़ा दी गयी कि मास्कोके क्रेमलिनका एक भाग गिरा दिया गया है। यद्यपि यह केवल गप्प थी;

परन्तु लूना चार्स्की इस खबरको सुनकर रोने लगे। तुरन्त वह दौड़कर लेनिनके पास पहुंचे और इस्तीफा पेश कर दिया। तात्पर्य यह है कि शिक्षा-विभागका कमिश्नर पुरानी इमारत तककी बर्बादीको नहीं सह सका। आज लूना चार्स्की शिक्षा-सम्बन्धी प्रत्येक संस्थाका सञ्चालन करते हैं।

रूसमें कला-भवनके विद्यार्थियोंमें गृहस्थीके बन्धनमें बंधा शायद ही कोई छात्र होगा। कला-भवनोंमें प्रविष्ट होनेवाले विद्यार्थियोंके लिए किसी व्यापारी मण्डलके प्रमाणपत्रकी आवश्यकता होती है। कला-भवनके विद्यार्थी श्रमजीवी समाजके ही बालक होते हैं। अतः वे तरह-तरहके व्यवसायोंमें निपुणता दिखाने ही में दिलचस्पी लेते हैं। सारांश यह है कि रूसके विद्यार्थी देशके उज्ज्वल भविष्यमें पूरा-पूरा सहयोग दे रहे हैं।

कालेजोंके बाद यूनिवर्सिटियोंका नम्बर आता है। यूनिवर्सिटी शब्दसे विद्यार्थियोंको चिढ़-सी है, क्योंकि पुरानी यूनिवर्सिटियां किसी न किसी रूपमें जारशाहीकी पोषक थीं और उस समय केवल उच्च वर्ग ही के लोगोंकी शिक्षाके लिए बनायी गयी थीं। यद्यपि रूसके प्राचीन स्थानोंमें वे ही पुरानी यूनिवर्सिटियां अभी तक चल रही हैं, तथापि नवीन युगका प्रभाव चारों ओर दिखाई देता है।

सोवियट रूसमें शिक्षाका सबसे महत्त्वपूर्ण अङ्ग है विद्यार्थियोंकी स्वतन्त्रता और संस्थाके प्रबन्धमें उनका स्थान। सोवियट सरकार शिक्षा-सम्बन्धी इन्स्टीट्यूटोंको तीन उद्देश्योंसे चला रही है। पहला उद्देश्य यह है कि सोवियट सरकारकी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक प्रवृत्तियोंके नेताओंको यथानियम शिक्षा प्राप्त हो सके। दूसरा यह कि उच्चशिक्षाके कालेजों व विश्वविद्यालयोंके लिए अध्यापक तैयार हो सकें और तीसरा यह कि मनुष्यकी मर्यादामें आनेवाले सारे ज्ञान-क्षेत्रमें नाना विधि प्रश्नोंका निराकरण प्रयोगशालाओं द्वारा हो जाया करे।

सोवियट रूसके शिक्षा-प्रचारका विषय यहां समाप्त होता है। हम यह कह सकते हैं कि उसमें अभी तक त्रुटियां हैं; परन्तु इतने ही से वह उपेक्षणीय नहीं हो जाता। बात यह है कि इस दिशामें रूस बड़ी तेजीसे आगे बढ़ रहा है। स्वयं स्टालिन कहता है—"यदि मैं रूसको साम्यवादकी उच्चतर सीढ़ीपर नहीं ले जा सका, तो मैं समझूंगा कि मैं व्यर्थ ही जिया।"

"कुछ पैसे"

श्री रामसरन शर्मा

शीला बैठीकी बैठी रह गयी।

मानो हाथ-पैरोंमें जान न हो। सत-सा निकल गया हो।

शीला युवती थी। उसके पास वह धन था, जिसे लूटनेको सभी लालायित रहते हैं।

रूप, यौवन। उसकी मदमाती आंखों और उसके रूपमें कुछ भी कमी न आयी थी उसके दुर्भाग्यके कारण।

शीलाका विवाह भी हो चुका था—और अब वह विधवा थी।

विधवा! विधाताका मूर्तिमान अभिशाप!

ससुरालमें रह सकना तो असम्भव ही था। उसे कौन बिठाकर खिलाता। बिना पतिकी स्त्रीका बिना मांकी लड़कीसे भी अधिक बुरा हाल होता है।

झख मारकर शीला घर—अपनी मांके पास—लौट आयी।

जिस चिट्ठीका पानेवाला ही न रहा हो, वह भेजनेवालेके ही पास लौट आती है।

और वहां वह और उसकी बूढ़ी मां गले मिलकर रोलीं। पर रोनेसे कहीं काम चलता है। आंसू पेट नहीं भरते।

शीलाकी मां और शीला—दोनों ही तो अपाहिज थीं, पर, भीख मांगनेसे लाचार।

शीलाने कुछ काढ़ना, बुनना शुरू किया।

पर बेचे कहां। किसके पास जाये यह कहनेको कि वह खरीद ले। उसके खरीदार तो मिल सकते थे, पर उसकी बनायी चीज तो झञ्झट ही थी।

रात-रात-भर आंखें फोड़कर भी तो दोनोंका पेट न भर पाता था।

और शीला नित्य ही देखती, उसे घूरनेवालोंकी कमी न थी—सीटियां बजतीं, बांके जवान अकड़-अकड़कर अपनी जवानी दिखाते।

देख-देखकर शीला अपने फटे आंचलमें और भी छिप जाती।

एक दिन उसे किसीने एक पर्चा-सा दिया—

शीलाने पढ़ा। वही प्रेम-मुहब्बतकी बातें थीं। मर जानेका दावा था, शायद धमकी भी थी।

शीला खूब रोयी। गरीबका बस आंसुओंपर ही चलता है।

बड़ी कोशिशसे शीलाको कुछ काढ़नेका काम एक सेठके यहां मिल गया। हफ्ते-भर काढ़ लेनेके बाद कुछ आने पैसे मिल जाते थे, वही उन दोनोंका पेट भर देते थे।

कहानी कुछ पुरानी-सी हो रही है। पर, किया भी क्या जाये? पैसा तो पुराना ही है न? इसका राज्य भी सदासे ही रहा है।

कहानी पुरानी होकर भी तो नित्य ही हमारी आंखोंके आगे आती रहती है। नयी ही तो है। नयी और पुरानीका अन्तर ही क्या? कपड़ा धुलकर नया-सा ही तो लगता है।

हां, तो शीलाके दिन कट रहे थे।

एक दिन उसकी मां बीमार पड़ गयी। बूढ़ी थी, बीमार तो पड़ना ही था।

फिर पैसेकी महिमा भी तो होनी थी। न बीमार पड़ती तो काम कैसे चलता?

दवा होती भी क्या और कहांसे। गरीबकी बीमारीका इलाज भूखा रहना है या फिर मौत। दवा तो दामोंसे मिलती है।

जब बीमारी ही भूखसे हो तो……

फिर भी दवा तो करते ही हैं।

शीलाने भी की।

बीमारी बढ़ती गयी। उसे बढ़ना ही था।

एक दिन शीलाके पास कुछ भी न रहा। था ही क्या? जो भी दो-चार पैसे थे, दवामें खर्च हो गये थे।

एकदम लाचार थी।

उधर मांका हाल……

हारकर शीला आज मांगने चली।

पड़ोसियोंमेंसे किसीने इशारेसे, आंखोंसे—किसीने साफ-साफ ही कुछ कह दिया।

शीला धरतीमें गड़-गड़-सी गयी।

पर, गरीब लौटकर बोल भी तो नहीं सकता है।

धीरे-धीरे, एक दिन शीलाको—झुकना ही पड़ा।

अपनी मुट्ठीमें—कोमल हाथमें—वे कड़े पैसे दाबकर वह घर आयी।

मन-मन-भरके पैरोंसे।

मांको पथ्य दिया।

और……

और इस दुःख-कथाका एक ही दृश्य और है।

कुछ दिन बाद—

शीला अब समझदार हो गयी थी।

घर भी साफ था। सजावट भी थी। बड़े-से आईनेमें देखकर वह सुन्दर भी बनती थी।

थी भी तो।

और उस चमकदार कमरेमें आनेवाले अब पैसे नहीं, रुपये देते थे।

रात-भरके प्रेमके बाद—सुबह शीला मुट्ठीमें वे पैसे-रुपये दबाये जाकर मांको दे देती थी और—और पड़ जाती थी चुपचाप!

आने-जानेवाले चले जाते थे।

पर, कभी शीला सोचती—

क्या?……जाने भी दो उन बातोंको।

पेट भरनेको पैसा तो चाहिए ही।

यह है समाजकी पीड़ा और मानव-जीवनकी शोचनीय दुर्बलताओंकी विडम्बना।





जर्मन सैनिकोंकी वर्दी-भक्ति

१९०६ की बात है, बर्लिनके पास एक स्थानमें कुछ घण्टे बिताकर सात जर्मन सैनिक बारकोंमें लौटनेकी तैयारी-में अपने नायककी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें इस तरह एक लाइनमें खड़े देखकर तमाशाई लोगोंकी एक छोटी-मोटी भीड़ वहां जमा हो गयी। इस भीड़के बीचसे एक आदमी बड़ी शानसे निकला और नायककी ओर बढ़ने लगा। वह जेल-गार्डके कप्तानकी वर्दी पहने हुए था। उसे देखते ही 'अटेन्शन' के साथ अपने सैनिकों सहित नायकने फौजी सलाम किया। कप्तानने रोबके साथ नायकसे कहा—"तुम यहांसे अकेले ही लौट जाओ और कमाण्डिङ्ग अफसरको सूचित करो कि इन सैनिकोंको सरकारी कामपर भेजा गया है। ये मेरे साथ जायंगे।"

नायकने सलाम किया और चल दिया। सैनिक कप्तानके साथ रेलवे स्टेशनकी ओर चले। रास्तेमें उसने चार अन्य सैनिकोंको भी अपने साथ ले लिया। यहांसे वे सब रेलवे ट्रेनसे कोइपीनिक नामक स्थानमें गये। यह स्थान बर्लिनके पड़ोसमें है। स्टेशनसे कप्तान उन्हें सीधे टाउन हाल ले गया और सङ्गीनधारी सैनिकोंको तैनात कर आज्ञा दी कि जब तक मैं आज्ञा न दूं, यहांसे न तो किसीको बाहर जाने दिया जाय और न बाहरसे किसीको हालमें घुसने दिया जाय। उसने टाउन हालके प्रत्येक द्वारपर एक-एक सैनिक-को रखकर बचे हुए सैनिकोंको अपने साथ लिया और कोइपीनिक म्युनिसिपैलिटीके चैयरमैन डा० लेङ्गरनके घर गया और जबर्दस्ती दरवाजा तोड़कर भीतर घुस गया। उसके साथके दोनों सैनिक दरवाजेपर डटे हुए थे। चेयर-मैन डा० लेङ्गरनकी हवा बिगड़ रही थी। कप्तानने उनकी ओर घूरकर कर्कश स्वरमें कहा—"तुम्हीं डा० लेङ्ग-रन हो?"

"जी, सरकार।"

"तुम अब गिरफ्तार हो। तुम्हें पहरेमें अभी बर्लिनके फौजी जेलखानेमें पहुंचाया जायगा। वहीं तुम्हें गिरफ्तारी-का कारण बतलाया जायगा।"

"पर गिरफ्तारीका हुक्म...क्या मैं देख सकता हूं?"

"ये सैनिक जो मेरे साथ हैं—बहस करनेकी जरूरत नहीं।"

"बहस करनेकी जरूरत नहीं," ये शब्द कुछ इस ढङ्गसे कहे गये कि डा० लेङ्गरनने चुप रहनेमें ही बुद्धिमानी समझी। उन्होंने कहा—"मैं भी फौजमें अफसर था। मुझे आशा है, मेरे साथ उपयुक्त व्यवहार किया जायगा।"

कप्तानपर डाक्टरकी इस बातका कुछ असर पड़ा और उसने कहा—"तब मैं आपको इस शर्तपर छोड़ देता हूं कि आप स्वयं ही बर्लिन चले जायं और वहां हाजिर हो जायं। मैं केवल एक सैनिक आपके साथ भेजूंगा, लेकिन आपको रवाना तुरन्त ही होना चाहिए।"

डाक्टरने धन्यवाद देते हुए नम्रतासे पूछा—"क्या मेरी पत्नीको भी मेरे साथ जानेकी आप इजाजत देंगे?"

कप्तानने यह स्वीकार कर लिया। इसके बाद वे एक सैनिकके पहरेमें तुरन्त ही बर्लिनके लिए रवाना हो गये।

डाक्टरको बर्लिनके लिए रवाना कर बचे हुए एक

सैनिकके साथ कप्तान वहां गया, जहां दफ्तरमें म्युनिसिपैलिटीके खजान्चची हर वान विल्टबर्ग थे। सङ्गीनधारी सैनिक और कप्तानको देखकर उनके होशहवास गुम हो गये। उन्हें बतलाया गया कि सरकार म्युनिसिपैलिटीके हिसाब-किताबकी जांच करेगी। हिसाबके सारे रजिस्टर और रोकड़बाकी जब्त हवाले कर दी गयी, कप्तानने सारी रकम तो अपने पास रख ली और कांपते हुए खजानचीकी ओर देखकर सैनिकसे कहा—"इसे भी बर्लिनमें वहीं ले जाओ। सावधान रहना।"

कप्तान फिर टाउन हाल लौटा। सारे सैनिकोंको एकत्र कर कहा—"जब तक बर्लिनसे हुक्म न मिले, कोई हालसे निकलने न पाये।" इसके बाद पुलिसको सैनिकोंके खाने-पीनेका इन्तजाम करनेके लिए कहकर कप्तानने स्टेशनका रास्ता लिया।

टाउनहालमें बड़ी गड़बड़ी फैल रही थी। म्युनिसिपैलिटीके मेम्बर उस समय वहां उपस्थित थे और वे अचानक ही टाउनहालमें घिर गयेथे। वे हालसे बाहर नहीं जा सकते थे। उन्हें अपनी इस अवस्थाका कारण भी नहीं मालूम था। बड़ी देर तक आपसमें बहस करनेके बाद उनमेंसे किसीने सन्तरीसे पूछा कि क्या बाहर समाचार भेजा जा सकता है।

सन्तरीने यह इस शर्तके साथ स्वीकार कर लिया कि टाउन हालकी इमारतसे बाहर कोई न जाय। इसपर टाउन हालमें घिरे हुए म्युनिसिपल मेम्बरोंने जर्मनीके गृह-मन्त्रीके पास यह तार भेजा—"टाउन हालपर सैनिकोंने दखल कर लिया है। जरूरत यह है कि उत्तेजित जनताको शान्त करनेके लिए हमें उसका कारण मालूम हो।"

गृह-मन्त्रीने इस तारके उत्तरमें चेयरमैन और खजानचीका अनुसरण करनेके लिए हिदायत की थी; परन्तु इसका कुछ अर्थ नहीं था, क्योंकि वे टाउनहालको छोड़ तो सकते ही नहीं थे।

टाउन हालमें इधर अभी गृह-मन्त्रीके तारका अर्थ समझनेकी कोशिश की ही जा रही थी कि उधर डा० लेङ्गरन अपनी पत्नी और उस सैनिकके साथ बर्लिनमें जेलखानेके फाटकके सामने जा पहुंचे। सैनिकने जब कैदीको हवाले किया, जेलखानेका अफसर बहुत चकराया। सैनिकके पास कोई वारण्ट तो था ही नहीं, पूछनेपर वह इसके सिवाय और कुछ नहीं कह सका कि मुझे जो आज्ञा दी गयी थी, मैंने उसका पालन किया है। उसे यह भी नहीं मालूम था कि जिस कप्तानने उसे आज्ञा दी, उसका नाम क्या है?

इसपर जेलखानेके अफसरने फौजी हेड क्वार्टरको टेलीफोन किया। तुरन्त ही नगरके कमाण्डिङ्ग अफसर काउण्ट वान मोल्टके वहां पहुंच गये। थोड़ी देर पीछे बर्लिनके जेलखानेके एक बड़े अफसर मेजर प्रिन्स जोकीम अलबेस्ट एक खुफियाके साथ वहां पहुंचे और सभी अफसरोंने परामर्श किया कि आखिर बात क्या है। इसी समय वहां सशस्त्र पहरेमें म्युनिसिपैलिटीके खजानची पहुंच गये। उनके पहुंचते ही अफसरोंको यह समझनेमें देर न लगी कि सारा माजरा क्या है। उन्होंने नायकको चकमा देने और सैनिकोंके साथ कोइपीनिक जानेसे लगाकर टाउन हालके घेरे, चेयरमैन और खजानचीकी गिरफ्तारी और अन्तमें स्टेशनके लिए उसके प्रस्थान तककी सारी घटनाओंकी शृङ्खला ठीक की। बर्लिनके फौजी और सरकारी केन्द्रोंमें तहलका मचा हुआ था। अधिकारी इस बातको सोचकर झेंपते थे कि किसी बदमाशने उन्हें अपनी बनावटी वर्दीसे चकमा देकर बुरी तरह छकाया। 'कप्तान' का पता लगानेके लिए पुलिस सरतोड़ कोशिश कर रही थी।

कितनी ही बातोंका पता चला—वह कुछ अर्सेसे कोइपीनिकमें चक्कर लगाया करता था। नायकके पास पहुंचनेसे पहले उसने एक मामूली-सी मेसमें खाना खाया था। उसकी वर्दी जेल-गार्डके कप्तानकी थी, परन्तु उसमें कई विचित्रतायें भी थीं। उसका कोट अन्य रेजिमेण्ट-जैसा था। वह जो टोप लगाये हुए था, वह भी कुछ भिन्न प्रकारका था। 'कप्तान' होनेकी दृष्टिसे उसकी उम्र बहुत ज्यादा थी और उसकी टांगें भी कुछ झुकी हुई थीं। उसने कोइपीनिकसे स्ट्रालां रूमेल्सबर्गका टिकट लिया था और रास्तेमें रिक्सडोर्फ स्टेशनकी टट्टियोंमें उसने अपने कपड़े बदले थे। यहीं उसकी तलवार बरामद हुई थी।

आखिर उसी साल २६ अक्टूबरके दिन दुनियाको इस 'कप्तान' का भेद मालूम हुआ। उस दिन बर्लिनके पड़ोसमें पुलिसने एक बस्तीमें दो मकानोंकी तलाशी ली और 'कप्तान' को पकड़ लिया। वह मोची था और उसका नाम था विलहेल्म वोइट। अपनी ५७ वर्षकी उम्रके २७ वर्ष उसने जेलमें

ही व्यतीत किये थे। वह अपनी हरकतोंसे पहलेसे ही काफी मशहूर था। १८९१ में उसने एक बड़ी अदालतके सरकारी कैशबक्सपर हाथ साफ कर दिया था।

कोइपीनिक काण्डका विवरण सचमुच ही बड़ा मनोरञ्जक था और लोग वोइटकी जबानी उसे सुनना चाहते थे, परन्तु वोइटने जब तक शराब न मिले, कुछ भी कहनेसे इनकार कर दिया। आखिर उसे शराब दी गयी और उसने सारी बातोंको स्वीकार कर लिया। अदालतका कमरा लोगोंकी हंसीसे गूंज उठा, जब वे ग्यारह सैनिक गवाही देनेके लिए खड़े हुए। अदालतने वोइटको चार सालकी सजा दी। लोगोंने इस सजाके विरुद्ध बड़ा हल्ला किया और संसारके कितने ही हिस्सोंसे लोगोंने वोइटके लिए रुपया-पैसा और उपहारकी अन्य वस्तुयें भेजीं, परन्तु पुलिसने सारी चीजें दाताओंके पास लौटा दीं।

मानव-समाज और विज्ञान

विश्वमें आज जो अशान्ति फैली हुई है, उसकी दृष्टिसे अमेरिकाके कितने ही प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंसे यह प्रश्न किया गया था कि विज्ञानकी बदौलत आज मनुष्यको जो असीम सामर्थ्य हो गयी है, उसका उपयोग क्या मानव-जातिको नष्ट करनेके लिए ही हो रहा है? सर्वाधिकारी तन्त्र देशोंकी वैज्ञानिक सफलता क्या गणतन्त्री देशोंसे अधिक है? क्या गणतन्त्र प्रणाली वैज्ञानिक है और क्या भविष्यके गर्भमें ऐसे आविष्कारोंकी सम्भावना है, जिनसे अपने अस्तित्वके लिए मनुष्यको कुछ अधिक सन्तोष मिल सके? यही प्रश्न कितने ही अन्य वर्गोंके सामने भी रखे गये थे, परन्तु अन्य सब वर्गोंने जहां मानव-समाजके भविष्यके सम्बन्धमें बड़ा संशय प्रकट किया है, वहां वैज्ञानिकोंने बड़ी आशा प्रकट की है। वे यह नहीं विश्वास करते कि सभ्यता समाप्त होने जा रही है और इतिहासका अन्धकार-युग समीप है। इसके विपरीत वे यह सोच रहे हैं कि मानव-जातिका अस्तित्व एक नये रूपमें आ रहा है, जो आजकी अपेक्षा कहीं अच्छा और आकर्षक है। उदाहरणके लिए वे यह अनुभव करते हैं कि आज बहुसंख्यक युद्ध प्राकृतिक सुविधाओं और साधनोंको पानेके लिए होते हैं और आज विज्ञानने यह सम्भव कर दिया है कि उनमेंसे कितने ही साधन आसानीसे प्रयोगशालाओंमें प्रस्तुत हो सकें। मनुष्योंका अपने ही भाइयोंको मारना-काटना हमेशा ही बड़ा बीभत्स कार्य है और साथ ही मूर्खतापूर्ण भी है, विशेषतः जब वह कुछ ऐसी चीजोंके लिए हो, जो जितनी चाहें, अन्य उपायोंसे मिल सकती हैं।

वैज्ञानिकोंका दृढ़ विश्वास है कि गणतन्त्र प्रणाली ही जीवनकी एक सम्भव प्रणाली है। बात यह है कि मानव-जीवनके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है सत्यका शोध और यह स्वतन्त्र वातावरणमें ही हो सकता है। यूरोपमें गत १५० वर्षमें जो प्रगति हुई है, वह इतिहासमें अभूतपूर्व है, और यह नहीं होती, यदि १८ वीं शताब्दीमें उदार विचारोंका प्रवाह न चल निकला होता। वैज्ञानिकोंका पूर्ण विश्वास है कि एकाधिपत्यवादी मनुष्यकी बुद्धिपर, उसके विचारोंपर जिस तरहका प्रतिबन्ध लगा देते हैं, जिस तरहकी कड़ाईके साथ मनुष्यकी विकासोन्मुख प्रवृत्तियोंका नियन्त्रण करते हैं, उससे अधिक समय तक उन्नति कभी होती नहीं रह सकती।

लोहा, कोयला, तेल आदि द्रव्य आज जितनी तादादमें निकाले जा रहे हैं और इन पदार्थोंकी जितनी ज्यादा खपत हो रही है, उससे भय है कि कहीं इनका अन्त ही न हो जाय, वसुन्धराका अक्षय भण्डार ही न खाली हो जाय; परन्तु वैज्ञानिकोंको इसका भय नहीं है। उदाहरणके लिए तेल ही लीजिये। आज पेट्रोलकी जितनी खपत है, उसके आधारपर अनुमान है कि तेलका भण्डार बहुत शीघ्र चुक जायगा। इससे पहले ही अन्य क्षेत्रोंको खोज लिया गया है और इन क्षेत्रोंसे तेल निकालनेमें लागत भले ही कुछ अधिक लगे, परन्तु कई हजार वर्ष तक काम चलता रहेगा। कोयले और लोहेके सम्बन्धमें भी यही बात है। लाखों और करोड़ों टन कच्चा लोहा और कोयला रखनेवाले कितने ही क्षेत्रोंका पता लगाया जा चुका है और वैसा कोई भय वास्तवमें नहीं है; परन्तु इससे भी बढ़कर जो बात है, वह यह है कि आज नहीं तो कल किसी भी वस्तुसे, जिसमें जल और कोयला जातीय द्रव्य हो, पेट्रोल प्रस्तुत किया जा सकेगा। मोटरोंके कामका बहुत ही बढ़िया पेट्रोल शीरेसे तैयार किया जा चुका है। डा० वर्लने जर्मनीसे भागकर अमेरिकामें शरण ली है। ये अनाज, लकड़ी, घास-पात,

किसी भी चीजसे पेट्रोल तैयार कर सकते हैं। फिर आज-कल जिन नये-नये यन्त्रोंकी सहायतासे पेट्रोल तैयार किया जाता है, उनके कारण भी बड़ा सुभीता हो गया है, उत्पादन तिगुना हो गया है और आसानी भी हो गयी है।

कुछ चीजें अवश्य ऐसी हैं, जो बड़ी ही भयावह हैं। मिट्टी अगर कटती रहे, तो यह बात मनुष्य-समाजके लिए घातक होगी। कुछ धातुयें भी ऐसी हैं, जिनके बिना काम चल ही नहीं सकता; परन्तु साधारणतः यह कहा जा सकता है कि विज्ञान कुछ ऐसी आश्चर्यजनक वस्तुयें उपस्थित करने जा रहा है, जिन्हें आजकलकी कुछ चीजोंसे ही तैयार किया जायगा। ये वस्तुयें अच्छी और उपयुक्त होंगी, इसमें तो सन्देह किया ही नहीं जा सकता।

इस सिलसिलेके आविष्कारोंमें एक तो बिना मिट्टीकी खेती है। इस खेतीके लिए जमीनकी बिलकुल ही जरूरत नहीं है। रासायनिक विधिसे केवल जलमें किसी भी अनाज, तिलहन, शाक और फलके पौदेको उगाया जा सकता है और फसल काटी जा सकती है। बालूमें साधारणतः कोई वृक्ष या पौदा नहीं उगता, परन्तु रासायनिक विधिसे बलुई जमीनका उपयोग भी बढ़ियासे बढ़िया फल और अनाज उगानेके लिए किया जा सकता है। कोई देश यदि सचाईके साथ यह अनुभव करता हो कि उसके निवासियोंका दम घुट रहा है, पर्याप्त स्थान नहीं है, तो वह आसानीसे खेतीकी इस प्रणालीको अपने यहां प्रोत्साहन दे सकता है और चालू भी कर सकता है। अभी तो सारे संसारमें पृथिवीका अष्टमांशसे भी कम भाग जोता-बोया जाता है। इसे यदि आधुनिक तरीकोंसे जोता-बोया जाय, तो खेतीका क्षेत्रफल इतना ही रहनेपर भी बड़ी आसानीसे दूनी जनसंख्याका काम चल जाय।

नकली खाद्यपदार्थ तैयार होनेका युग आरम्भ हो चुका है। जर्मनीमें वैज्ञानिकोंने लकड़ीसे चीनी तैयार की है और कोयलेसे मनुष्यके खाने योग्य चिकनई। सभ्यताकी प्रगतिने हमारे खानेकी कितनी ही चीजोंके पोषक तत्त्वोंको कम कर दिया है, परन्तु विज्ञानने हमें बतलाया है कि ये पोषक तत्त्व हमें कहांसे मिल सकते हैं। कुछ पोषक तत्त्वोंको रासायनिक विधिसे तैयार भी किया गया है और अब वैज्ञानिक यह अनुसन्धान कर रहे हैं कि खाद्य पदार्थोंमें जो खनिज द्रव्य रहते हैं, इस सभ्यताकी बदौलत कहीं वे भी तो नहीं नष्ट हो जाते। वे यह पता लगानेकी चेष्टा कर रहे हैं कि जिन खेतोंमें सालमें कई फसलें उगायी जाती हैं या जिनमें बहुत ज्यादा फसलें उगायी जा चुकी हैं, उनमें आज जहां ३-४ खनिज पदार्थोंवाली खाद मिलायी जाती है, वहां क्या १६-१७ तरहके खनिज द्रव्योंवाली खादका उपयोग किया जा सकेगा, जिससे उसमें उत्पन्न होनेवाले फलों या शाकोंके रूपमें मानव-समाजको अधिकसे अधिक पौष्टिक तत्त्व मिलनेमें कोई सन्देह नहीं रह जाय।

रसायन-विज्ञानकी दृष्टिमें खाद्य-पदार्थों सम्बन्धी सम्भावनाओंकी कोई सीमा ही नहीं है। एक ऐसे आदमीकी कल्पना कीजिये, जो रात-दिन काम करते रहनेपर भी नहीं थकता और जो न बीमार पड़ता है। हो सकता है कि उसमें यह क्रिया-शक्ति बिना जाने ही ऐसे पदार्थोंको खानेके कारण हो, जिनमें पोषक तत्त्व विशेष मात्रामें रहता है। आजकल सौमें कोई एक ऐसा आदमी मिले तो मिले, परन्तु वैज्ञानिक तो यह चेष्टा कर रहे हैं कि अभी यदि अधिक नहीं तो सौमें कमसे कम बीस मनुष्य तो वैसे अवश्य हो जायं, आगे संख्या बढ़ती रहे और वह दिन आये कि सभी व्यक्ति पराक्रमी और शक्ति-सम्पन्न बन सकें।

विज्ञानके क्षितिजपर आज कितनी ही सम्भावनायें हैं, जो मानव-समाजके लिए प्रत्यक्ष होनेवाली हैं। कितने ही औषधि-द्रव्य इधर साल-डेढ़ सालमें तैयार हुए हैं, जिनसे एक जातिके कितने ही रोगोंको दूर किया जा सकेगा। आशा तो यही है कि इस क्षेत्रमें अभी तक मनुष्यको जितनी सफलता मिली है, उससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण सफलतायें भविष्यके गर्भमें हैं। वनस्पतियोंके क्षेत्रमें इधर एक बड़ा आश्चर्यजनक आविष्कार हुआ है, जिसकी सहायतासे नये प्रकारके नकली पौदे उत्पन्न किये जा सकेंगे। यह एक विष है, जिसे पिया बांस जातीय एक पौदेकी जड़से निकाला गया है, जिन वनस्पतियोंपर उसका प्रयोग होता है, वे बहुत अधिक बढ़ती हैं—शायद हजार गुनी तक बढ़ जाती हैं। इस तरह उगायी हुई कितनी ही वनस्पतियोंको स्थायी बनाया जा सकता है, साथ ही फलोंकी भी। आशा यह है कि फलोंका आकार बहुत बड़ा हो जायगा—सन्तरे तरबूज-जैसे और बेर बैगन-जैसे होने लगेंगे और इनमें सुगन्ध

भी बड़ी मजेदार आने लगेगी। फूलोंका आकार तो बढ़ ही जायगा, रङ्ग भी बदल जायगा। गन्नेपर ऐसे पौदेकी कलम लगायी गयी है, जो गन्नेसे बहुत लम्बा होता है। इससे यह आशा की जाती है कि गन्ना बहुत बड़ा होने लगेगा। इसी तरह तम्बाकू, कपास और गेहूंके पौदे भी बहुत ऊंचे होने लगेंगे।

फिर विज्ञानकी बहुत बड़ी देन वह अणुवीक्षण यन्त्र भी तो है, जिसे आंखपर लगाकर देखनेसे वस्तुयें १० हजार गुनीसे लगाकर ३० हजार गुनी तक दिखलाई पड़ती हैं, फोटोके चित्रोंको १ लाखसे २ लाख गुना तक बढ़ाया जा सकता है। इन यन्त्रोंकी सहायतासे जब आकाशकी ओर देखा जायगा और सूर्य, चन्द्र, मङ्गल आदिके चित्र लिये जायंगे, तब निश्चय ही प्रकृतिके कितने ही नये-नये रहस्य सामने आये बिना नहीं रह सकते। किन्तु इन सबसे अधिक चमत्कार-पूर्ण सम्भावनायें हैं उस प्रयत्नमें, जो परमाणुओंसे शक्ति उत्पन्न करनेके लिए वैज्ञानिक कर रहे हैं, यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्रयत्न कब सफल होगा। परन्तु जब वह सफल होगा, मनुष्यके नियन्त्रणमें असीम शक्ति आ जायगी और इसमें खर्च इतना कम आयेगा कि उसे मुफ्त ही समझना चाहिए। वैसा हो जानेपर मानव-समाजके लिए आवश्यक किसी भी वस्तुको प्राप्त करनेके लिए आजकी तुलनामें बहुत थोड़ा श्रम करना होगा। उस अवस्थामें यह सम्भव है कि या तो कोई भयङ्कर महासमर छिड़ जाय और मानव-समाजका संहार हो जाय या लोग विवेकसे काम लें और अनन्त काल तक सुख और शान्तिसे रहें। जहां तक मशीनों-के उद्योग-धन्धोंका प्रश्न है, यह निश्चित है कि मनुष्योंको जीवनमें ४-६ वर्ष या सप्ताहमें २-४ घण्टेसे ज्यादा काम करनेकी आवश्यकता नहीं रह जायगी। कमसे कम वैज्ञा-निकोंको तो अभीसे यह युग प्रत्यक्ष हो रहा है।

सेनायें कहां चली गयीं ?

दिल्लीके पठान सुलतानोंमें मुहम्मद तुगलकका नाम आता है, जो इस देशके इतिहासमें अपनी सनकके लिए मशहूर है। कहते हैं, उसने अपने समयमें चीन-विजय करनेके लिए एक बड़ी सेना भेजी थी, जिसका बादमें फिर कुछ पता नहीं चला—न तो चीन ही विजय किया गया और न वह सेना ही लौटी। मुहम्मद तुगलककी इस सेनाके नष्ट होनेका कारण चाहे कुप्रबन्ध ही रहा हो, परन्तु सेनाओंके लापता हो जानेके कितने ही उदाहरण मिलते हैं और आधुनिक घटनाओंमें मिलते हैं। यह बात कुछ है बड़ी विलक्षण-सी कि शस्त्रास्त्रोंसे लैस हजारों व्यक्ति लापता हो जायं, इस तरह लापता हो जायं कि उनका कहीं पता न चले, उनके नष्ट हो जानेका भी कोई चिह्न न मिले। इस तरह लापता हो जानेवाली सेना यदि बड़ी न हो, तो यह ख्याल किया जा सकता है कि उसे शत्रुओंने काट दिया होगा या भून दिया होगा, परन्तु यदि तीन हजार जवानोंकी ऐसी सेना नष्ट हो जाय जिसका अपने हेड क्वार्टरके साथ बेतार-यन्त्र द्वारा सम्बन्ध हो, जिसके साथ तोपें, टैङ्क, घोड़े और अन्य युद्ध-सामग्री हो, तो उसके इस तरह काट दिये जाने या भून दिये जानेपर कौन विश्वास करेगा कि एक भी सैनिक न बचा हो। यदि यह मान लिया जाय कि सबके सब तीन हजार सैनिक काट डाले गये होंगे, तो भी क्या यह समझमें आनेकी बात है कि विजेता उनकी लाशें गाड़नेकी परवा करेगा। परन्तु यदि इसे भी मान लिया जाय, तो भी विजेता यह तो बतलायेगा ही कि उसकी सेनाके साथ उन सैनिकोंकी अमुक जगह लड़ाई हुई थी, जिसमें वे सब मार डाले गये। विजेता यदि यह न भी बतलाये, तो कमसे कम ३००० सैनिकोंका कोई भी चिह्न तो मिलेगा ही। यह हो नहीं सकता कि ३००० लाशोंको जमीनमें गाड़ा जाय और कोई चिह्न न मिले। यह सब होते हुए भी कई बार सेनाकी सेना लापता हो गयी है और उसका कोई चिह्न नहीं मिला है।

यह कैसे हुआ, यही रहस्यकी बात है।

जिन दिनों स्पेनका गृह-युद्ध चल रहा था, ४००० सैनिकोंका दल पिरेनीज पर्वत-मालाकी बर्फमें लापता हो गया। ये सब सैनिक सुशिक्षित थे और शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित थे।

१९३५ में अबसीनियापर इटलीने हमला किया था। इटालियन सैनिकोंका एक दल अबसीनियनोंसे लड़ने गया था, परन्तु न तो वह लौटा और न उसका कुछ पता ही चला। इन लापता सैनिकोंको खोजनेके लिए एक अन्य सेना भेजी गयी और हवाई जहाजोंने चारों ओर उड़कर

देखा, परन्तु सब व्यर्थ ! सारेके सारे सैनिक लापता हो गये थे। इन सैनिकोंकी संख्या लगभग १००० थी।

लगभग १ साल हुआ, एक मोर्चेपर चीनी सैनिक जापानियोंको हरा रहे थे। चीनी सैनिकोंकी संख्या लगभग ३००० थी और ये सब शस्त्रास्त्रोंसे लैस थे। फिर भी ये सब जादूकी तरह लापता हो गये। यह तो असम्भव ही है कि ३००० सैनिक अपना पक्ष छोड़कर जापानके साथ हो जाते, तो इसका संसारको पता न चलता। यह हो सकता है कि दस-बीस सैनिक शत्रुपक्षमें मिल जायं और किसीको पता न चले। परन्तु यदि ३००० सैनिक वैसा करें, तो बात छिपी नहीं रह सकती।

कुछ और पहलेकी बात है, दक्षिणअमेरिकाका बोलविया देश ग्रानचाको—युद्धमें लगा हुआ था। एक बारकी बात है कि २००० सैनिक एक मोर्चेके लिए भेजे गये। रास्ता घने जङ्गलमेंसे होकर था। पता नहीं चला कि ये सब सैनिक कहां चले गये और क्या हुआ।

नारफाक सैनिकोंके लापता हो जानेकी घटना और भी रहस्यपूर्ण है। गेलीपोलीमें उन्हें तुर्कोंसे लड़ने भेजा गया था। उनके साथ लङ्काशायर फुसीलियर्स और आनसन रेजिमेण्ट—दो अन्य ब्रिटिश टुकड़ियां भी गयी थीं। इस लड़ाईमें तुर्कोंने मशीनगनसे बड़ा करारा मुकाबिला किया, जिससे लङ्काशायर और आनसन रेजिमेण्टोंके सैनिक पीछे हट गये, परन्तु नारफाक सैनिक घिर गये। गेलीपोलीके इस सङ्घर्षमें विजय अंगरेजोंको मिली। जब पहाड़ीपर अंगरेजोंका अधिकार हो गया, यह प्रश्न हुआ कि नारफाक सैनिक कहां गये। जो तुर्की सैनिक बन्दी बनाये गये थे, उनसे जब पूछा गया, उन्होंने कहा—सबके सब काट दिये गये। परन्तु जब उनसे जहां उनकी लाशें हों, वहां पहुंचानेके लिए कहा गया, तब वे अकचकाकर रह गये और यह उत्तर दिया कि उनकी लाशें गाड़ दी गयीं ; परन्तु वे यह नहीं बतला सके कि आखिर उन्हें कहां गाड़ा गया। इसपर सारे इलाकेमें उनका पता लगानेके लिए सैनिकोंकी टुकड़ियां भेजी गयीं। परन्तु और कोई चीज मिलनेकी तो बात ही क्या है, उनका बटन तक नहीं मिला और तीन सौके तीन सौ सैनिक अदृश्य हो गये। उनका टोप, बन्दूक या बैज कुछ नहीं मिला।

सबसे अधिक रहस्यपूर्ण घटना वह है, जिसमें ५०० फ्रान्सीसी और १५० अन्य सैनिक आश्चर्यजनक रूपसे बिलकुल ही लापता हो गये। यह घटना १९०४ में इण्डो-चीनमें घटित हुई थी। ये सब शस्त्रास्त्रोंसे पूरी तरह सुसज्जित थे और उन्हें वहांके मूल निवासियोंके विद्रोहको दमन करनेके लिए राजधानी सैगूनसे भेजा गया था। इनके साथ हलकी तोपें, गोली-बारूद और मुद्दत तक काम देनेके लिए रसद थी और मूल निवासियोंका दमन करनेके लिए ये सब बहुत काफी थे। परन्तु इन ६॥ सौ सैनिकोंमेंसे एक भी लौटकर नहीं आया और न यही पता चला कि उनकी मूल निवासियोंसे कहीं कोई बड़ी लड़ाई हुई। मूल निवासियोंसे पूछा गया, परन्तु किसीने भी यह नहीं कहा कि उसने सैनिकोंको देखा है। यह अभी तक रहस्य है और शायद आगे भी यह रहस्य ही रहेगा कि विभिन्न अवसरोंपर ये सेनायें कहां चली गयीं।

प्रकृति सञ्चय करना सिखलाती है

सन्त लोगोंका उपदेश है कि पेटके लिए इतनी हाय-हाय क्यों ? जिसने मुंह दिया है, वह पेट भी भरेगा। पर वास्तविक जीवनमें तो इसके खिलाफ ही देखा जाता है। पक्षी सवेरेसे शाम तक दौड़-धूप करते रहते हैं, तब जाकर कहीं उनका पेट भरता है। चौपायोंको भी दिन-भर भोजनकी चिन्तामें ही भटकते हम देखते हैं। इन पशु-पक्षियोंपर सभ्यतासे बिगड़ जानेका दोष नहीं लगाया जा सकता। चींटियां अपने बिलोंमें महीनोंके लिए भोजन सञ्चय करके रखती हैं। मधुमक्खियां भी फूलोंके मौसममें शहद सञ्चय करके रखती हैं, जिससे वह जाड़ोंके मौसममें काम आ सके।

आदमी तो विकृत है, प्रकृतिसे दूर है। उसने प्रकृतिसे लड़कर उसपर विजय पायी है, प्रकृतिको गुलाम बनाया है। वह अपने बुद्धिबलसे कलकी फाकेकशीको दूर रखनेका उपाय पूरी तैयारीके साथ करता है। वह यौवनमें बुढ़ापेके लिए सञ्चय करता है—सिर्फ अपने ही लिए नहीं, आगामी पीढ़ियोंके लिए भी सञ्चय करके रख जाता है। मनुष्य केवल 'कल' का भय भगाने ही के लिए नहीं, भविष्यमें निश्चिन्त रहने और ऐश-आराम करनेके लिए भी सञ्चय करता है।

मनुष्यको सञ्चय करनेका यह पाठ प्रकृतिने पढ़ाया है।

प्रकृति स्वयं प्राणियोंके शरीरमें आवश्यक द्रव्योंका सञ्चय करती है।

एञ्जिनके काम करनेके लिए जैसे कोयला, पेट्रोल आदिकी जरूरत होती है, वैसे ही प्राणियोंके जीवित रहनेके लिए भोजनकी आवश्यकता होती है। प्राणी रोज खुराक खाते हैं और यह खुराक शरीरमें श्रमकी पूर्ति करनेमें लग जाती है, परन्तु उसका कुछ भाग चरबीके रूपमें शरीरमें सञ्चित हो जाता है। जिन दिनों भोजन नहीं मिलता, उन दिनों यह पूर्व-सञ्चित चरबी काम देती है।

अनेक जन्तु ऐसे हैं, जो जाड़ोंके मौसममें या अन्य किसी विशेष मौसममें—जब कि उनको भोजन नहीं मिल सकता—चलते-फिरते नहीं, बल्कि एक जगहपर निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। उन दिनों यही सञ्चित चरबी उनके भोजनका काम देती है और धीरे-धीरे कम होती रहती है। प्रतिकूल ऋतु बीत जाने तक वे इसी चरबीके सहारे जीते हैं। चरबी कम हो जानेके कारण वे बहुत दुबले हो जाते हैं। अनुकूल मौसम आनेपर वे फिर भोजनके लिए दौड़-धूप, जीवन-संग्राम करनेमें प्रवृत्त हो जाते हैं।

प्रकृति यह काम आदमीके शरीरमें भी करती है। जांघ, पेट आदि शरीरके कुछ हिस्सोंमें धीरे-धीरे चरबी सञ्चित होती रहती है। इसी कारण जब लगातार बहुत दिनों तक उपवास किया जाता है, तो शरीरमें सबसे पहले चरबी ही घटती है। शरीरमें प्रकृतिका दूसरा बैङ्क जिगर है। इसमें शकरका सञ्चय है, लेकिन यह बहुत बड़ा नहीं है। प्राणियोंके शरीरमें शकर द्राक्षशर्कराके रूपमें पायी जाती है; लेकिन जब खूनमें शकर जरूरतसे ज्यादा होती है, तब अतिरिक्त इक्षुशर्कराके रूपमें यकृत्में जमा हो जाती है और खूनमें कमी पड़नेपर वहांसे मिलती है। इस प्रकार जिगर महाजनका काम करता है।

ऊंटके विषयमें सब लोग जानते ही हैं कि वह अनेक दिनों और हफ्तों तक बिना खाये-पिये रह सकता है। उसके शरीरमें, विशेषतः उसकी पीठके कोहानमें चरबी सञ्चित होती रहती है, जो भोजनका काम देती है और पानी भी पेटके अन्दर इसी प्रयोजनसे बनी विशेष थैलियोंमें सञ्चित होता रहता है।

साइबेरिया आदि ठण्डे देशोंका रीछ गर्मियोंमें ही खाता-पीता और चलता-फिरता है, और उन देशोंमें गर्मीका मौसम बहुत छोटा—सिर्फ दो-तीन मासका—होता है, जाड़ोंके मौसम-भर यह रीछ किसी खोहमें पड़ा सोया करता है और उन दिनों उसके शरीरके अन्दरकी यह चरबी ही उसे भोजन देती है, गर्मीका मौसम आनेपर वह फिर उठकर चलने-फिरने लगता है।

मेढक और मछलियां बरसातके मौसममें अपने शरीरमें चरबीका सञ्चय कर लेती हैं और जब तालाब आदि सूख जाते हैं, वे भी उसमें नीचे दबी रह जाती हैं। वर्षा होनेपर वे फिर ऊपर आ जाती हैं। इसीसे वर्षाके अन्तमें मेढक खूब मोटे-ताजे रहते हैं और वर्षाके प्रारम्भमें बहुत दुबले-पतले। जब वे मोटे रहते हैं, उनके शरीरमें आधेसे अधिक चरबी होती है।

वनस्पति वर्ग भी प्रकृतिके इस कार्यके लिए अपवाद नहीं है। बीजोंमें जो कोमल हिस्सा होता है, वह उस बीजसे पैदा होनेवाले अंकुरके लिए भोजन है। यह तब तक काम देता है, जब तक छोटा पौधा भूमिसे भोजन लेने लायक नहीं हो जाता। प्राणियोंके लिए भोजनका जो महत्त्व है, वही महत्त्व वनस्पतियोंके लिए पानीका है। अतः पौधे पानीका सञ्चय तथा उसकी रक्षा करते हैं। नारियलमें जो पानी पाया जाता है, वह भविष्यमें उससे पैदा होनेवाले पौधेके उपयोगके लिए है। रेगिस्तानोंमें पानीकी कमी होती है, अतः वहां पैदा होनेवाले नागफनी तथा करीलकी जातिके पौधोंमें पत्तों तथा शाखाओंके छिलकेमें क्यूटिन नामक एक पदार्थकी एक पतली तह होती है। इससे पानी धूपसे सूखकर उड़ नहीं सकता और इस प्रकार बहुत दिनों तक वर्षा न होनेपर भी ये पौधे सूखने नहीं पाते। आलूके छिलकोंमें एक पदार्थ होता है, जिसमें होकर पानी उड़ नहीं सकता। इसीलिए महीनों खुले रखनेपर भी आलू नहीं सूखते। इसी कारण आप देखेंगे कि यदि आलूका छिलका उतार दिया जाय, तो वह दो ही चार दिनमें सूख जाता है।

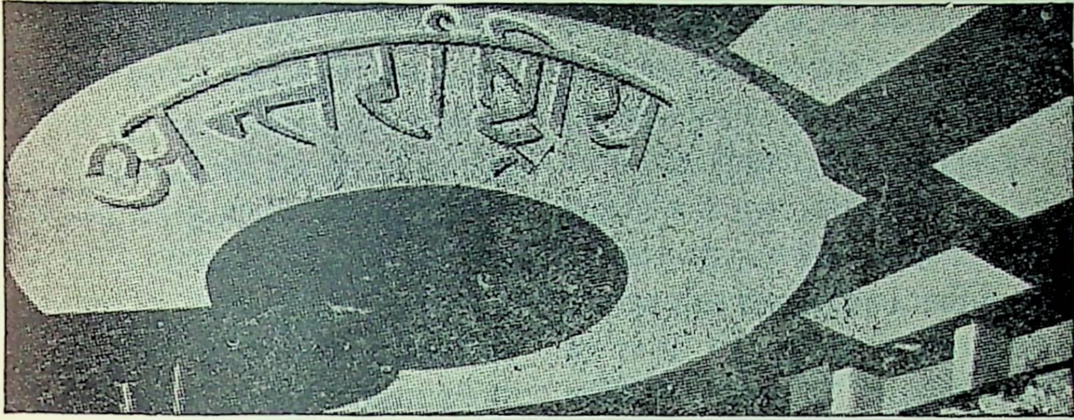
—सिद्धगोपाल।

जीवनकी कुछ भूलें

भूल मनुष्यसे होती है इसमें सन्देह नहीं है, परन्तु यह भी निर्विवाद रूपसे सत्य है कि मनुष्य अन्य लोगोंकी और अपनी भूलोंसे लाभ उठाकर बुद्धिमान बनता है। इसीलिए

एक बार भूल करनेमें जहां कोई ज्यादा वैसी बात नहीं है, वहां भूलोंको दुहराते रहना और भूलको भूल न समझना निश्चय ही मूर्खता है। जब कोई बात किसी व्यक्तिका स्वभाव बन जाती है, तब यह देखा जाता है कि वह उसे करता ही है, जान-बूझकर करता है और बिना जाने यों भी करता है। भूलोंके सम्बन्धमें भी यही कहा जा सकता है। कई तरहकी भूलें जब घर बना लेती हैं,सुधार होना असम्भव ही हो जाता है। कितनी ही बातें ऐसी भी हैं जिन्हें भूल कहना और समझना भी मुश्किल होता है, परन्तु लोक-व्यवहार सम्बन्धी अनुभव यह बतलाता है कि वे हैं भूल ही—आरम्भसे अन्त तक भूल ही हैं। जीवनकी इस तरहकी कुछ बड़ी भूलोंको एक पाश्चात्य लेखकने गिनाया है। उसका कहना है कि जीवनकी सबसे बड़ी भूल यह है कि कोई मनुष्य सही और गलतीके सम्बन्धमें अपना एक अलग मापदण्ड निश्चित करनेकी कोशिश करे और फिर यह आशा भी करे कि सब कोई उसे स्वीकार कर लेंगे। हमें जिस तरह अपना मनोरञ्जन करना पसन्द है, उसी तरह दूसरोंको भी होगा, यह विचार और प्रयत्न भी ऐसा है, जिसे भूल ही कह सकते हैं। इसी तरह जो लोग यह आशा करते हैं कि सारी दुनियाके लोगोंका मत बिलकुल एक तरहका हो जाय, सभी तरहकी प्रवृत्तियोंके लोग एक तरहके बन जायं वे भी भूल करते हैं। महत्त्वशून्य छोटे-मोटे प्रश्नोंके आगे न झुकना और तन जाना भी भूल ही है। इससे प्रायः बड़ी हानि हो जाती है। अपने कामोंको सर्वथा दोषरहित और पूर्ण समझना, जिसका कोई उपाय न हो, उसकी चिन्तासे स्वयं परेशान होना और दूसरोंको परेशान करना, अन्य लोगोंकी कमजोरियोंके लिए गुञ्जायश न रखना, स्वयं जिस कामको न कर सकते हों, उसे अशक्य और असम्भव मान लेना और साथ ही अपने सीमित मस्तिष्कमें जो कुछ आ सकता हो, उसीमें विश्वास करना—ये सब ऐसी बातें हैं जिन्हें जीवनकी बड़ीसे बड़ी भूल माननेमें किसीको आनाकानी नहीं हो सकती। किसीको सहायताकी आवश्यकता हो और हमारे लिए यह सहायता देना सम्भव हो, इस स्थितिमें सहायता न देना और यह समझना कि यही समय हमेशा बना रहेगा, बहुत बड़ी भूल है, जिसका पछतावा अक्सर मनुष्यको तब होता है, जब अवसर हाथसे निकल जाता है। एक बड़ी भूल लोगोंसे यह भी होती है कि वे किसी वाह्य गुणके आधारपर व्यक्ति या व्यक्तियोंका मूल्य आंकते हैं और यह भूल जाते हैं कि मनुष्यको उसके आन्तरिक गुण ही बनाते हैं। हमेशा ही याद रखनेकी एक बात यह भी है कि परिस्थिति कभी निराशामय नहीं होती, मनुष्य स्वयं निराश हो जाते हैं।

———



जापान आस्ट्रेलियापर हमला करेगा ?

बहुत-से आस्ट्रेलियावासियोंका विश्वास है कि यदि वर्तमान महासमर विश्वव्यापी महासमर हो जाय, तो जापानकी जल-सेना हवाई जहाज होनेवाले जहाजोंके साथ डारविन बन्दरगाह और समुद्र-तटके अन्य नगरोंपर अधिकार कर लेगी और फिर देशके भीतरी भागोंकी ओर चल पड़ेगी, क्योंकि जापान आस्ट्रेलियाके मध्यमें खाली प्रदेशोंपर और साथ ही सटे हुए उष्ण कटिबन्धके प्रशान्त महासागरवर्ती भूभागोंपर अधिकार कर लेना चाहता है; परन्तु यह विश्वास ठीक नहीं है, क्योंकि इस क्षेत्रमें जापानके ललचानेके लिए कोई बात नहीं है। जापानी देश चाहते हैं, इसमें तो सन्देह ही नहीं है; परन्तु मरुस्थल-जैसे नहीं। आत्मनिर्भर होनेके लिए जापानी औपनिवेशिकोंको चाहिए चावल, मूलीका शाक और मछलियां। इन चीजोंका मतलब है उपजाऊ जमीन और पानी। यदि किसी जापानीको खोये हुए जानवरोंकी खोजमें घोड़ेकी पीठपर सवार सरपट जाते देखा जाय, तो यह दृश्य सचमुच कुछ अनोखा ही होगा। जापानियोंमें यह प्रवृत्ति ही नहीं है।

जापानियोंने उष्ण कटिबन्धवर्ती आस्ट्रेलियाका मूल्य तोलकर पहले ही समझ लिया होगा कि उसमें कुछ सार नहीं है। उसके लिए यदि कुछ दिया जाय, तो भी जापान जल्दी तैयार हो जायगा, इसमें सन्देह ही है। फिर, इसका ही क्या ठिकाना है कि जापान इस लड़ाईमें जर्मनीकी ओरसे लड़ेगा ?

तर्क निराधार नहीं है। पहले तो वह चीनमें ही बुरी तरह उलझा हुआ । वह रूसपर भी निगाह रखना ही चाहेगा, यदि सम्भव हो तो लड़नेके इरादेसे नहीं। फिर, ब्रिटिश साम्राज्यके देशोंके साथ क्या वह अपना सारा व्यापार खो देनेके लिए तैयार है ? हो सकता है, उसे अमेरिकाके साथ भी उस स्थितिमें अपने व्यापारसे हाथ धोना पड़े। इन सब देशोंके साथ जापानका कई तरहका सम्बन्ध है। जापानका इन देशोंके साथ आधेसे ज्यादा व्यापार है। यह व्यापार यदि चौपट हो जाय, तो जापानके ७ करोड़ निवासियोंकी मिट्टी खराब हो जायगी।

लुटेरों-जैसी प्रवृत्तिका तटस्थ जापान कुछ अन्य क्षेत्रोंपर अधिकार कर सकता है, जो कहीं अधिक सम्पन्न हैं। प्रशान्त महासागरके दक्षिणी भागमें डच ईस्ट इण्डीजका द्वीप-समूह है। संसारमें ये टापू सर्वश्रेष्ठ हैं। इनपर हालैण्डका अधिकार है, परन्तु हालैण्ड इन दिनों जर्मनीके अधीन है। इन टापुओंमें हालैण्डकी जो सेना है, वह काफी नहीं है। हालैण्डके मित्र ब्रिटेन और फ्रान्स स्वयं उलझे हुए हैं और जब दुनियामें भेड़ियाधसान-नीतिसे काम लिया जा रहा है, ये टापू जापानके बिलकुल सामने ही तो हैं।

इस द्वीप-समूहके दो टापू तो जापानकी परिधिमें पहलेसे ही हैं। इनमें पहला टापू तो है सुमात्रा—१२०० मील लम्बा। संसारके टापुओंमें इसका स्थान चौथा है। सुमात्राका अनुभव रखनेवाले एक यूरोपियनकी दृष्टिमें यह संसारका सबसे अधिक सम्पन्न टापू है। इसमें आबादी बहुत ही कम, प्रायः ६० लाख है और इसीके बगलमें जो दूसरा जावाका टापू है, वह यद्यपि क्षेत्रफलमें कम है, तथापि उसमें ४ करोड़ आबादी है और चप्पा-चप्पा जोता-बोया जा

रहा है। सुमात्रा टापूकी जनसंख्या उसके विस्तारकी दृष्टिसे कुछ भी नहीं है। सुमात्रामें तेल और कोयला बहुत है। रबड़ तो जितनी सुमात्रामें होती है, संसारके अन्य किसी भागमें नहीं। नारियल बहुत पैदा होता है। वनस्पति तेल और बढ़िया तम्बाकू भी बहुत होता है। सुमात्रामें यदि अधिक आबादी हो और पूरी शक्ति लगाकर सारे साधनोंसे काम लिया जाय, तो वहां प्रत्येक वस्तु उत्पन्न की जा सकती है।

दूसरा टापू है बोर्नियो। यह संसारका सबसे बड़ा टापू है और करीब-करीब खाली ही पड़ा हुआ है। उसका एक छोटा प्रदेश ब्रिटेनके अधिकारमें है; परन्तु सबसे अधिक सम्पन्न और बहुत बड़ा भाग डचोंके अधिकारमें है। इस भागमें तेल तो रसता है।

इस युगमें तेलका महत्त्व सबसे अधिक है और युद्ध-कालमें तो उसकी तुलनामें कोई अन्य वस्तु आ ही नहीं सकती। इतना साधन-सम्पन्न रहनेपर भी इस टापूकी रक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं है।

जापानके इरादा करने-भरकी देर है, इन सब टापुओं-की सारी सम्पत्ति उसके अधिकारमें आयी हुई ही है। इस स्थितिमें क्या जापान डारविनपर अधिकार करने जायगा? अच्छा, यदि यह मान लिया जाय कि जापान डारविन बन्दरगाहमें पहुंच गया, तो भी कहीं पैर टिकानेके लिए उसे इस बीरान भूभागमें १००० मील आगे भी बढ़ना होगा और अपने केन्द्रसे वह कई हजार मील दूर पहुंच जायगा। फिर, यदि फ्रान्स और ब्रिटेनकी जल-सेना उसपर पीछेसे हमला करे, तो उसकी क्या हालत होगी? इसी तरह यदि अमेरिकन जल-सेना पहुंचे, तो वह कितनी कठिनाईमें पड़ जायगा? और दक्षिणी आस्ट्रेलियामें क्या जापानियोंका स्वागत नहीं किया जायगा? निश्चय ही वहां जापानियोंका जबर्दस्त मुकाबिला किया जायगा और जापानियोंके उधर देखने तकका दुःसाहस करनेकी कोई सम्भावना नहीं है।

मि० जे० एच० कर्लका मत है—"मेरा यह मत नहीं है कि जापान ब्रिटेन या आस्ट्रेलियासे लड़ना चाहता है। वह कई सालसे दोनों देशोंको जानता है। फिर, जापानको अपने व्यापारका भी ख्याल है। सब बातोंपर विचार करने-के बाद जापान तटस्थ ही रहना चाहेगा, परन्तु यदि यह मत ठीक न मालूम होता हो, तो हमेशा ही इस बातको याद रखिये—जापान अनुभव करता है कि अन्य किसी जगह अपना काम बनानेमें ज्यादा सुविधा रहेगी।"

अमेरिकाको जीतनेकी योजना

जापान और अमेरिकाका युद्ध कहां होगा और इस युद्धमें अमेरिकाको कैसे जीता जा सकता है, इस विषयपर टोकियोमें पिछले दिनों एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसके लेखक हैं जनरल क्योकत्सु साटो। इनका कथन है कि यह तो नहीं कहा जा सकता कि जापान और अमेरिकामें युद्ध कब और कहां होगा; परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि इस युद्धमें हवाई द्वीप-समूहका महत्त्व सैनिक दृष्टिसे अत्यन्त अधिक होगा—यह प्रश्न नहीं है कि युद्धके कारण क्या होंगे और उसमें आक्रमणकारी कौन होगा? इस टापूपर अधिकार रखने और जमानेके लिए जो लड़ाई होगी, उसकी सफलता या विफलतासे युद्धकी दिशाका निर्णय हो जायगा। हवाई द्वीप-समूहमें युद्ध-सञ्चालनका मुख्य केन्द्र रखकर अमे-रिका चाहे तो जापानकी राजधानी टोकियो या ओसाका-पर आसानीसे बम बरसा सकता है, यदि वह अपने तेज हवाई जहाजोंसे काम ले। जब तक इस टापूपर अमेरिकाका अधिकार रहेगा, जापानको हमेशा ही अपनी रक्षाके लिए प्रयत्नशील रहना होगा; परन्तु यदि इन टापुओंपर जापानका अधिकार हो गया, तो जापानकी जल-सेना आक्रमण आरम्भ कर अमेरिकाके पश्चिम तटके नगरोंपर बम गिरा सकेगी।

इसीलिए यदि अमेरिकासे युद्ध हो, तो जापानको अधिक-से अधिक मूल्य चुकाकर—कुछ जहाजोंको खोकर भी हवाई द्वीप-समूहपर अधिकार कर लेना चाहिए। हवाई द्वीप-समूह और अमेरिकामें जितना अन्तर है, उससे थोड़ा ही ज्यादा इन टापुओंसे जापानका फासला है। इसका अर्थ यह है कि जब दोनों देशोंके जहाजोंकी चाल बराबर हो, अमेरिकाकी जलसेना वहां पहले पहुंच जायगी, इसीलिए जरू-रत यह है कि जापानकी जलसेनामें ऐसे जहाज हों, जिनकी रफ्तार अमेरिकाकी जलसेनाके जहाजोंसे तेज हो।

यदि युद्ध-घोषणा होनेसे पहले ही अमेरिकाके जङ्गी जहाज इस टापूमें पहुंच गये हों, तो याकोहामा और हवाई टापूके बीचमें कहीं समुद्रके वक्षस्थलपर संग्राम होगा। इस संग्राममें यदि जापानी विजयी हों, तो हवाई द्वीप-समूहपर उनका अधिकार हो जायगा और आगे लड़ाई जारी रखनेमें

सुभीता हो जायगा। परन्तु यदि यह मान लिया जाय कि जापानी इस संग्राममें हार जायंगे, उन्हें बड़ी कठिनाइयोंके बीच अपनी रक्षा करनी होगी। इसीलिए जापानके लिए सबसे अधिक महत्त्वकी बात यह है कि अमेरिकन जलसेनाके हवाई द्वीप-समूहमें पहुंचनेसे पहले ही युद्ध आरम्भ हो जाय और जापानी बिजलीकी तरह टूट पड़ें। जापान और अमेरिकाके इस युद्धमें पहला संग्राम हवाई टापूके लिए होगा। इसमें यदि जापानी सफल हुए, तो उनका पहला काम होगा अमेरिकाकी जलसेनाके मुख्य भाग और पनामा नहरको नष्ट कर देना। प्रशान्त महासागरवर्ती अमेरिकन जलसेनाको नष्ट कर देनेसे अमेरिकाके पश्चिमी तटपर सेना उतारना जापानके लिए सहज हो जायगा। पनामा नहरको इसलिए नष्ट कर देना चाहिए कि अमेरिकन जलसेनाको उसी मार्गसे रसद और युद्ध-सामग्री पहुंचेगी। पनामा नहरपर हमला गगन-सेना करेगी। इस नहर और प्रशान्त महासागरवर्ती अमेरिकन जलसेनाके नष्ट हो जानेसे युद्धका पूर्वार्द्ध हो जायगा।

जापान और अमेरिकाके युद्धका उत्तरार्द्ध राकी पर्वतमालामें आरम्भ होगा, जिससे समुद्र-तटवर्ती अधिकृत क्षेत्रमें जापानी सेनायें जमा हो सकें। राकी पर्वतमालाके पश्चिममें अपनी स्थिति सुदृढ़ बना लेने और पूरी तैयारी कर लेनेके बाद पूर्वकी ओर जापानी सेनायें बढ़ने लगेंगी। युद्धका अन्तिम अध्याय यहींसे आरम्भ होगा। यह लड़ाई साधारण अवस्थामें ६-७ वर्ष चलेगी। परन्तु इससे अधिक समय भी ले सकती है।

अमेरिकन सेनाओंके पहले पहुंच जानेके कारण यदि जापानके लिए हवाई द्वीप-समूहपर अधिकार करना सम्भव न रह जाय, तो बुद्धिमानी इस बातमें होगी कि जापान अपनी पूरी तैयारी करनेसे पहले अमेरिकन जङ्गी जहाजोंसे करारी टक्कर न ले।

यह सम्भव है कि इस लड़ाईमें जापानके समुद्र-तटपर बम गिराये जायं और बड़े-बड़े शहरोंपर भी हवाई जहाजों द्वारा हमले हों। जापानकी जलसेनाको तीन कार्य करने होंगे—प्रशान्त महासागरवर्ती अपने तटकी रक्षा, शत्रु-सेनाको कहीं भी उतरने नहीं देनेकी चेष्टा और शत्रुके बड़े-बड़े जहाजोंपर ध्वंसक नौकाओं, छोटे-छोटे जङ्गी जहाजों और पनडुब्बियों द्वारा हमला करनेके अवसरकी प्रतीक्षा। अपनी पूरी तैयारी हो जानेपर अवसर मिलते ही जोरदार हमला किया जायगा और उसके अन्तमें हवाई द्वीप-समूहपर जापानका अधिकार हो जायगा।

इस लड़ाईमें जापान चाहे आक्रमणकारी हो अथवा वह अपनी रक्षा ही करे, इसमें सन्देह नहीं है कि यह युद्ध यदि एक बार आरम्भ हो गया, तो वर्षों चलेगा। इसमें समूचे जापान राष्ट्रको धैर्यके साथ बड़ा त्याग करना होगा।

"अमेरिकाकी जनता" और "वे स्वार्थी"

जनवरीके प्रथम सप्ताहमें अमेरिकाके प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने कांग्रेसके समक्ष भाषण करते हुए अमेरिकन राष्ट्रोंके सम्बन्धमें बड़ी चिन्ता प्रकट की। उन्होंने कहा कि "जब तक आक्रमणकारी राष्ट्र आक्रमण कर रहे हैं, तब तक आक्रमणके समय, स्थान और तरीकेको उन्हें ही पसन्द करना है, हमें नहीं। यही कारण है कि अमेरिकाके सभी प्रजातन्त्र देशोंका भविष्य भारी खतरेमें है।"

अमेरिकाको यह खतरा किस तरहका है? क्या अमेरिकापर किसी बाहरी आक्रमणका भय है? स्वयं प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट कहते हैं—"समुद्र-पारसे सीधा हमला होनेका कोई भय नहीं है—यह चर्चा बहुत है। यह स्पष्ट है कि जब तक ब्रिटिश जल-सेनाकी शक्ति बनी हुई है, अमेरिकापर सीधा हमला होनेका कोई भय नहीं है, किन्तु यदि ब्रिटिश जलसेना न हो, तो भी इस बातकी सम्भावना नहीं है कि जब तक कोई सैनिक महत्त्वके कुछ स्थानोंपर अधिकार न कर ले और उन स्थानोंको आक्रमणका केन्द्र न बनाये, तब तक हजारों मील समुद्र पारकर अमेरिकामें सेना उतारना मूर्खता ही होगी।"

प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने कितनी ही शर्तोंके साथ उसे मूर्खता कहा है—इसीसे यह समझा जा सकता है कि उनके सामने सम्भावनायें हैं। ये सम्भावनायें निराधार नहीं हैं। सब कुछ युद्धकी परिस्थितिपर निर्भर है।

भय और आशङ्काओंके इस वातावरणमें जो एक अनुभूति बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, वह यह है कि १९१९ की शान्ति अन्यायपूर्ण थी—अन्यायकी मात्राका प्रश्न दूसरा है। प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट कहते हैं—"हमें यह याद रखना चाहिए कि

'१९१९ की शान्ति' उस 'शान्ति' से बहुत ही कम अन्यायपूर्ण थी, जो म्यूनिक-काण्डसे पहले ही आरम्भ होगयी थी, अत्याचारपूर्ण नयी व्यवस्थाके रूपमें जिसे कार्यान्वित किया जा रहा है और जिसे आज प्रत्येक देशमें फैलानेकी कोशिश की जा रही है। अमेरिकन जनता उसका विरोध करनेके लिए अविचिल भावसे डट गयी है। गणतन्त्र प्रणाली-के जीवनपर इस समय संसारके प्रत्येक भागमें आक्रमण किया जा रहा है, कहीं सशस्त्र आक्रमणके रूपमें और कहीं विषाक्त प्रचार द्वारा। यह वे कर रहे हैं, जो चाहते हैं कि गणतन्त्र प्रणाली नष्ट हो जाय। भविष्यमें हमारा देश और हमारी प्रणाली सुरक्षित रहे, यह बहुत कुछ उन घटनाओंपर निर्भर है, जो हमारी सीमासे दूर घटित हो रही हैं। चार महाद्वीपोंमें गणतन्त्रमूलक अस्तित्वकी रक्षाके लिए सशस्त्र प्रयत्न किया जा रहा है। यह प्रयत्न यदि विफल हुआ, यूरोप, अफ्रीका, एशिया और आस्ट्रेलियाकी जनता और उसके साधनोंपर विजेताओंका प्रभुत्व हो जायगा। किसी भी व्यक्तिके लिए यह सोचना ठीक नहीं है कि तैयार हुए बिना अमेरिका अकेले ही एक हाथ पीछे बांधकर सारे संसारको हरा सकता है। कोई भी यथार्थवादी अमेरिकन डिक्टेटरों-की शान्तिसे अन्तर्राष्ट्रीय उदारता, सच्ची स्वतन्त्रताकी स्थापना, निरस्त्रीकरण या अच्छे व्यापारकी आशा नहीं कर सकता। हमें हमेशा ही उनसे सावधान रहना है, जो शस्त्रास्त्रोंकी खड़खड़ाहटके बीच शान्तिका उपदेश करते हैं। हमें उन थोड़े-से स्वार्थियोंसे खास तौरसे सावधान होना चाहिए, जो अपने घोंसलेको सजानेके लिए अमेरिकन पक्षीके पङ्ख काट लेंगे।"

प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टके अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति और युद्ध-सम्बन्धी विचारोंका महत्त्व जितना इस समय है, शायद इससे पहले कभी नहीं था। इसीलिए हमें यह कहना ही चाहिए कि डिक्टेटरोंकी प्रवृत्तिकी दृष्टिसे उनकी अमेरिका सम्बन्धी आशङ्कायें चाहे कितनी ही ठीक हों, परन्तु चार महाद्वीपोंमें गणतन्त्रमूलक अस्तित्वकी रक्षाके प्रयत्नका जहां तक सम्बन्ध है, उनका दृष्टिकोण भ्रमात्मक है। कमसे कम अफ्रीका और एशियाका जहां तक सम्बन्ध है, वह निश्चित रूपसे भ्रमात्मक है। प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टसे यह छिपा हुआ नहीं हो सकता कि मन्द भाग्यअफ्रीकाके लिए 'गणतन्त्रमूलक अस्तित्व' का कोई अर्थ नहीं है और इस युद्धके बाद भी सम्भवतः उसका कुछ अर्थ नहीं होगा। एशियामें अन्य कई भागोंके साथ ही हिन्दुस्तानके लिए, जिसका क्षेत्रफल रूस-को छोड़कर सारे यूरोपके बराबर है और जिसकी जनसंख्या संसारके पञ्चमांशके बराबर है, 'गणतन्त्रमूलक अस्तित्व' की रक्षाके प्रयत्नका क्या उद्देश्य है, यह बार-बार चाहनेपर भी हमें नहीं मालूम हो सका है। क्या प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट इस बातसे अनभिज्ञ हैं और यदि अनभिज्ञ नहीं हैं, तो संसार-के इन भागोंके लिए क्या कहते हैं। यह बड़े दुःखकी बात होगी, यदि गणतन्त्र-प्रणालीके प्रति प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टका प्रेम यूरोप और उसके निवासियों तक ही सीमित रहे और इसके बाहर उसका कुछ अर्थ न हो। अस्तु,

प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने जब "अमेरिकन जनता" और "थोड़े-से स्वार्थियों" का उल्लेख किया है और गणतन्त्र प्रणालीके शत्रुओंके "सशस्त्र आक्रमण" की बात कहनेके साथ ही उनके विपाक्त प्रचारका भी सङ्केत किया है, तब यह बतलाना कम रोचक न होगा कि अमेरिकन जनतामें कौन-कौन जातियां हैं और उनकी संख्या कितनी है।

संयुक्त राज्य अमेरिकाकी जनताका एक तिहाई भाग विदेशी है—विदेशी इस अर्थमें है कि या तो वे विदेशोंसे गये हुए हैं, किसी अन्य देशमें जन्म लेनेके बाद अमेरिकामें जाकर बस गये हैं या फिर वे उनकी सन्तान हैं, जिन्होंने किसी अन्य देशमें जन्म लिया था। पिछली बार अमेरिकाकी जो जनगणना हुई थी, उसमें ऐसे व्यक्तियोंको 'श्वेताङ्ग विदेशी' लिखा गया था। आजकल इस तरहके श्वेताङ्ग विदेशियों-की संख्या अमेरिकामें लगभग ४ करोड़ है। इन चार करोड़ श्वेताङ्ग विदेशियोंमें किस देशके कितने आदमी हैं, इसका कुछ विवरण यह है—

६८ लाख जर्मनी, ४५ लाख इटली, ४३ लाख ब्रिटिश द्वीप, ३३ लाख पोलैण्ड, ३३ लाख कनाडा, ३१ लाख स्केण्डिनेविया, ३० लाख आयलैंण्ड, २६ लाख रूसी, १३ लाख जेकोस्लोवेकिया, ९ लाख आस्ट्रिया और ५ लाख हंगरी। हालैण्ड, फ्रान्स, यूगोस्लाविया, लिथुआनिया, यूनान, स्पेन, पुर्तगाल, रूमानिया, स्विजरलैण्ड, फिनलैण्ड, मैक्सिको, कूबा, फिलीपाइन, जापान, चीन, अरमीनिया, तुर्की और सीरियाके निवासियोंकी संख्या भी हजारों है। राज-

धानी न्यूयार्कके ७० लाख निवासियोंमें ५० लाख श्वेताङ्ग विदेशी हैं, जिनका जन्म विदेशोंमें हुआ है या जो इसी तरह विदेशोंमें उत्पन्न माता-पिताकी सन्तान हैं। फिर अमेरिकामें १ करोड़ २० लाख निग्रो भी तो हैं, जो उन गुलामोंकी सन्तान हैं, जिन्हें वहां उन दिनों लाया गया था, जब यूरोपके विभिन्न देशोंके निवासी जाकर बस रहे थे और जब गन्ना, तमाखू, चावल और कपासकी खेतीके लिए इन गुलामोंकी अनिवार्य आवश्यकता थी। अमेरिकाके गण-तन्त्र-प्रेममें क्या इन अभागोंके लिए भी कोई स्थान है? अमेरिकाके हतभाग्य मूल निवासियोंको तो पूछता ही कौन है?

कनाडा और भारतमें युद्ध-बन्दी

युद्धके बन्दियोंके साथ कैसा व्यवहार किया जाय, इस सम्बन्धमें १९२९ में जिनेवामें ४६ राष्ट्रोंके प्रतिनिधियोंने बैठकर अन्तर्राष्ट्रीय नियम निश्चित किये थे। वर्तमान युद्धमें दोनों ही पक्षोंके बन्दियोंके साथ इन्हीं नियमोंके अनुसार व्यवहार किया जाता है। इन नियमोंके अनुसार किसी युद्ध-बन्दीको सैनिक रहस्य प्रकट करनेके लिए विवश नहीं किया जा सकता। उनके रहनेके लिए साफ-सुथरी और समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए और पर्याप्त भोजन दिया जाना चाहिए। बन्दियोंको अपने सम्बन्धियों और मित्रोंको पत्र लिखने और उनके पत्र पानेकी सुविधा होनी चाहिए। युद्ध-सामग्री तैयार करनेके सिवाय उनसे काम कराया जा सकता है; परन्तु इस अवस्थामें उन्हें अन्य श्रम-जीवियोंके बराबर मजदूरी देनी होगी। बन्दी यदि अफसर हो और काम करना चाहे, तो उसे भी काम देना होगा। ये बन्दी अफसर चाहे काम करें या नहीं; परन्तु उन्हें अपने दर्जेके अफसरके बराबर वेतन देना होगा। इस देशमें लगभग ४० हजार इटालियन युद्ध-बन्दियोंको लाया जा रहा है, जिन्हें अफ्रीकामें किसी मोर्चेपर बन्दी बनाया गया था। बन्दियोंमें अफसर भी हैं। यह आशा की जाती है कि इन बन्दियोंको रखनेमें जो खर्च आयेगा, उसे ब्रिटिश सरकार देगी और भारतके शिर उसे नहीं लादा जायगा। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाके अनुसार बन्दी कमाण्डरको प्रतिमास ५८ पौण्ड और सेकेण्ड लेफ्टिनेण्टको प्रतिमास ११ पौण्ड दिये जायंगे। साधारण सैनिकोंके आरामके साथ रहनेके लिए भोजन, वस्त्र, स्थान, रोशनी, चिकित्सा आदिकी सारी व्यवस्था की जायगी; परन्तु अपने कपड़े उन्हें स्वयं साफ करने होंगे। कैम्पमें वे जो काम करेंगे, उसके लिए उन्हें कुछ न मिलेगा; परन्तु बाहर काम लिये जानेपर उन्हें ९ आनेसे लेकर १० आने तक अन्य दक्ष मंजदूरोंके समान मिलेंगे और इनका दिन भी आठ घण्टेका ही समझा जायगा। ब्रिटिश अधिकारी बन्दियोंको युद्धस्थलके आस-पास कहीं रखने और उनकी संभाल करनेमें अपनी शक्ति लगानेकी अपेक्षा यह अच्छा समझते हैं कि उन्हें हजारों मील दूर हिन्दुस्तान, कनाडा या आस्ट्रेलियामें भेजकर छुट्टी पा ली जाय। हिन्दुस्तानकी तरह कनाडामें भी कई हजार युद्ध-बन्दी पहुंचे हैं। ये युद्ध-बन्दी या तो युद्ध-क्षेत्रमें पकड़े गये हैं अथवा उन्हें किसी जहाजपर पकड़ा गया है। युद्ध आरम्भ होनेके समय पहले जिन जर्मनों और बादमें जिन इटालियनोंको नजरबन्द कर दिया गया था, वे इन युद्ध-क्षेत्रके बन्दियोंके अलावा हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाके अनुसार किसी तटस्थ देशका निरीक्षक—अक्सर स्विजरलैण्ड-का—नियमित रूपसे यह देखा करता है कि युद्धके बन्दियों-के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है, नियमानुसार व्यवहार होता है या नहीं, बन्दियोंको कोई खास शिका-यत तो नहीं है।

इटालियन युद्ध-बन्दियोंको यहां आये अभी बहुत समय नहीं हुआ है। उस दिन वे जैसे ही बम्बईमें जहाजसे उतरे, सीधे ट्रेनोंमें बैठाकर युद्ध-बन्दी कैम्पोंमें भेज दिये गये। कनाडामें जर्मन युद्ध-बन्दियोंको पहुंचे हुए काफी अर्सा बीत चुका है और उनके विषयमें कितनी ही मनोरञ्जक बातें मालूम हुई हैं। वहां जर्मन युद्ध-बन्दियोंकी नीली कमीजपर सामने और पीछेकी ओर लाल रङ्गमें दो घेरे छाप दिये गये हैं। ये वृत्त एक फीट व्यासके हैं। इसी तरह पाजामेपर दोनों ओर ऊपरसे नीचे तक ३ इञ्च चौड़ी लाल धारी है। इन लाल वृत्तोंका कोई कैदी यदि भाग निकले, तो अधिकारियोंको उसके विषयमें साधारण मजदूरका धोखा नहीं हो सकता। वृत्तका लाल रङ्ग छुड़ाया नहीं जा सकता और अगर कोई कपड़ा काटकर उसे अलग करे, तो भी पहचानमें आये बिना तो रह ही नहीं सकता। पाजामेकी दोनों ओरवाली

धारियोंको अगर कोई काटे, तो वस्तुतः पाजामा ही नहीं रह जायगा।

इस देशमें युद्ध-बन्दियोंके भाग निकलने और जनतामें मिल जानेका वैसा खतरा नहीं है, परन्तु कनाडामें यह बात नहीं है। वहां युद्ध-बन्दी भाग निकलनेके लिए बड़ी कोशिश करते हैं और हिकमतोंसे काम लेते हैं। एक बारकी बात है, जेलखानेके कपड़े, मजबूत दीवालें, कांटेदार तार और सशस्त्र रक्षकोंके रहते हुए भी २० जर्मन युद्ध-बन्दी संयुक्त राज्य अमेरिकामें पहुंच जानेकी आशासे प्रेरित होकर भाग गये। परन्तु उनमेंसे हरएकको पकड़ लिया गया। उनमेंसे एकको तो गोलीका शिकार ही हो जाना पड़ा और एकको तभी पकड़ा जा सका, जब उसकी टांग गोली लगकर घायल हो गयी। दो अन्य नाजी युद्ध-बन्दी एक मोटर ट्रककी धुरीपर लगे हुए लकड़ीके तख्तेपर बैठकर लापता हो गये। टोरण्टोके उत्तर एक जेलखानेके नाजी युद्ध-बन्दियोंने दीवालके नीचेसे होकर ६० फीट लम्बी सुरङ्ग खोदी और इसमें होकर एक चालक और एक जल-सेना अफसर निकल गया। चालक तो ३०० मील दूर पकड़ा गया; परन्तु जल-सेना अफसरका पता नहीं चला। उसके कमरेको जब देखा गया, उसमें एक रेडियो सेट मिला। जेलखानेमें उसे कहीं पुराने टेलीफोनके कुछ पुर्जे मिल गये थे। उसका एक साथी बहरा बन गया, अतः उसे कानमें लगानेके लिए एक छोटा फोन खरीद लेनेकी अनुमति दे दी गयी थी। जल-सेना अफसरने उन पुर्जों और इस फोनसे ही वह रेडियो सेट तैयार कर लिया था। बन्दी फिर वैसी सुरङ्गें खोदनेका साहस न करें, इसीलिए कैम्प जेलके अफसरोंने उनमें यह प्रचारित कर दिया कि डिनामाइटकी टिकियां दीवालके आसपास जमीनमें गाड़ दी गयी हैं।

कनाडाका एक कैम्प जेल देखनेके बाद एक निरीक्षकने लिखा है—"कमरे अच्छे हैं। प्रत्येक कमरेमें ६ से १२ तक बिस्तरे हैं। बन्दियोंको कनाडाके सैनिकोंके समान राशन मिलता है। उनका अधिक समय तरह-तरहके खिलौने, जैसे

जहाज आदि बनानेमें बीतता है। ये खिलौने जेलमें ही बिक जाते हैं। बन्दी कई तरहकी शिक्षाके लिए आपसमें ही क्लास भी चलाते हैं। वे चाहें तो खेलोंकी व्यवस्था हो सकती है; परन्तु अधिकांश बन्दी तो जेलके अहातेमें तेजीके साथ घूमना ही पसन्द करते हैं। उनका व्यवहार साधारणतः ठीक होता है; परन्तु वे रहते हैं गम्भीर और असहयोग किये हुए।"

बन्दियोंको प्रतिदिन कनाडियन भाषाका एक पत्र दिया जाता है, परन्तु इसे प्रति सप्ताह बदल दिया जाता है, जिससे कोई बाहरसे साङ्केतिक विज्ञापन द्वारा बन्दियोंके पास सन्देश न पहुंचा सके। बन्दियोंके सम्बन्धी जर्मनीसे अक्सर नाजी रेडियो द्वारा सन्देश भिजवाते हैं। इन सन्देशोंमें अगर कोई आपत्तिजनक बात नहीं होती है, तो उन्हें बन्दियोंको दे दिया जाता है; परन्तु शब्द बदल दिये जाते हैं, जिससे कोई गुप्त सङ्केत न रह जाय। कितने ही जर्मन और इटालियन नजरबन्दोंकी स्त्रियां कनाडियन हैं और ये उनसे मिल सकती हैं; परन्तु न तो लिखकर कुछ दे सकती हैं और न लिखा हुआ कुछ ले सकती हैं। बन्दी प्रति सप्ताह एक पोस्टकार्ड और एक लिफाफा भेज सकते हैं। डाक महसूल कनाडा ही देता है; परन्तु बन्दियोंका प्रत्येक पत्र पहले सेन्सर आफिसमें जाता है और वहां पढ़कर उसकी छानबीन की जाती है।

मालूम ऐसा होता है कि जेलखानेके साथ तिगड़मका अटूट सम्बन्ध है। जर्मन बन्दी गुप्त चिट्ठियां लिखनेमें सिद्धहस्त होते हैं। एक अफसरने अपना अनुभव बतलाते हुए लिखा है—कुछ नीबूके रससे लिखते हैं। इस तरहकी लिखावट कागजको गरम करनेसे उभड़ आती है। कुछ बन्दी रोटी लपेटनेके मोमिया कागजको चिट्ठीवाले कागजपर रखते हैं और फिर उसपर किसी नुकीली चीज, जैसे दियासलाई आदिसे लिखते हैं। इस तरहकी लिखावटपर तम्बाकूकी राख रगड़नेसे अक्षर स्पष्ट हो जाते हैं। इन सब हरकतोंसे परेशान होकर अब बन्दियोंको चिट्ठी लिखनेके लिए एक खास तरहका कागज दिया जाता है। इससे उनकी हरकतका पता आसानीसे चल सकता है।

बन्दियोंके नाम संयुक्त राज्य अमेरिकासे जो चिट्ठियां पहुंचती हैं, उनमेंसे किसी चिट्ठीके भेजनेवालेपर यदि सन्देह हो, तो उसका नाम वाशिङ्गटनमें अधिकारियोंके पास भेज दिया जाता है, जिससे यह पता लगाया जा सके कि भेजनेवाला व्यक्ति शत्रुका एजेण्ट तो नहीं है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाके अनुसार जितने भी इटालियन और जर्मन युद्ध-बन्दी कनाडामें पहुंचते हैं, उन सबका नाम इटली और जर्मनीको सूचित किया जाना चाहिए। अलबत्ता, नजरबन्दोंके नाम नहीं बतलाये जाते हैं; परन्तु उनकी तादाद बतलायी जा सकती है। बर्लिन और रोमके जासूसोंने कितनी ही बार यह प्रयत्न किया कि नजरबन्दोंके नाम मालूम हो जायं, जिससे उन्हें यह पता चल सके कि उनका कोई एजेण्ट अभी तक काम करनेके लिए स्वतन्त्र है या नहीं। एक नजरबन्दने न्यूयार्कमें एक जर्मन स्टीम शिप कम्पनीको कुछ लिख भेजा। कुछ दिनों बाद उस नजरबन्दके पास ३ डालर नकद और उपहार-स्वरूप कुछ चीजें एक न्यूयार्क-निवासीकी ओरसे पहुंच गयीं। कुछ अन्य नजरबन्दोंने भी इस रहस्यपूर्ण व्यक्तिको लिखा और उनके पास भी उसी तरह तीन-तीन डालर और उपहार-स्वरूप चीजें पहुंचीं। इसके बाद अचानक ६७ जर्मन नजरबन्दोंने उसके पास पत्र भेजा। ये सब पत्र रोक लिये गये। यह स्पष्ट है कि न्यूयार्कमें शत्रुका कोई एजेण्ट नजरबन्दोंकी सूची तैयार कर रहा था। बादमें नजरबन्द कैम्पके अफसरको पत्र मिला, जिसमें प्रत्येक नजरबन्दके लिए ४॥ डालर इस शर्तके साथ देनेका प्रस्ताव किया गया था कि वह नाम बतलाता जाय। अफसरने कुल संख्या--नाम नहीं---बतलाते हुए यह उत्तर दिया कि नजरबन्दोंके लिए जो कुछ दिया जायगा, वह उनके पास निश्चित रूपसे पहुंचा दिया जायगा; परन्तु इसके बाद कोई रकम नहीं पहुंची। नजरबन्दोंके नामकी सूची तैयार करनेकी जो कोशिश शत्रुका कोई एजेण्ट कर रहा था, वह व्यर्थ हो गयी। कनाडामें इटालियनों और जर्मनोंकी संख्या कई लाख है और इनमेंसे बहुत थोड़े नजरबन्द किये गये हैं। बाकी इटालियनों और जर्मनोंको महीनेमें एक बार पुलिसमें हाजिरी देनी पड़ती है।

फोर्ट हेनरी नामक स्थानमें जर्मन और इटालियन युद्ध-बन्दियोंके लिए कैम्प जेल है। एक दिन एक नाजी युद्ध-बन्दीसे जब पूछा गया कि आपके साथ व्यवहार तो अच्छा होता है, उसने गम्भीरतासे कहा—

"हम लोग युद्ध-बन्दी हैं।"

"आपको कोई शिकायत है ?"

"हमें कनाडियन भाषाके अखबार मिलते हैं। यह हमें कैसे पता चले कि क्या हो रहा है ?"

"क्या आप जानते हैं कि युद्धका क्या हाल है ?"

"निश्चय ही हिटलर आसानीसे जीत लेगा।"

जर्मन बन्दियोंको हिटलरके विजयी होनेमें विश्वास है। जाड़ेसे पहले जमीनमें पानीके पाइप बैठानेके लिए एक अफसरने जब जर्मन बन्दियोंकी सहायता चाही, उनके मुखियाने कहा—"जाड़ेमें आपको पाइपकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी। उस समय तक हम यहां नहीं रहेंगे। गत वर्ष हिटलर जब मेरे भाईकी रेजिमेण्टमें गया था, उसने कहा था कि १९४० के अन्त तक सभी सैनिक अपने-अपने घरपर लौट जायंगे। इससे १९४० का अन्त होनेसे पहले ही युद्ध समाप्त हो जायगा।"

कनाडियनोंका विश्वास इससे बिलकुल भिन्न पहलेसे ही था और यही ठीक साबित हुआ है। युद्ध अभी चल ही रहा है।

———



समाज-सेवकोंसे

स्वार्थके क्षेत्रके बाहर यदि हम अपनी नजर जरा भी दौड़ायें,तो हमें अपने सामने आर्त समाज दिखाई देता है। वह करुण क्रन्दन कर रहा है, परन्तु हमें उसकी जरा भी परवा नहीं। हम इतना भी विवेक नहीं रखते कि यदि हमारे महलके चारों ओर आग लगी हुई है, तो हमारा सुन्दर महल कब तक सुरक्षित रहेगा और कब तक सुरक्षित रहेगा हमारा वह परिवार, जो उस महलमें नाना प्रकारके बहुमूल्य आभूषणोंसे आच्छादित होकर मौजसे अपने दिन काट रहा है। मेरी तुच्छ बुद्धिमें समाज-सेवा और देश-सेवाका पवित्र कार्य स्वार्थसाधनके बाहर नहीं है—अन्तर केवल इतना ही है कि विवेकी मनुष्य इसे समझता है और अविवेकी इसकी अवहेलना करता रहता है। पश्चिमी देशोंमें समाज-सेवा और देश-सेवाके कार्य स्वार्थसाधनके अङ्ग माने जा चुके हैं। जिस दिन अपने देशमें भी वे इस गणनामें आ जायेंगे, त्यागका आडम्बर हवा हो जायेगा। आज जो करोड़पती लाख रुपये सार्वजनिक कार्यों और संस्थाओंके लिए देता है, वह दानी और प्रशंसनीय माना जाता है और जो देशके लिए जेल जाता या अन्य कष्ट सहता है, वह उल्लेखनीय माना जाता है, इसका मुख्य कारण यही है कि समाजमें स्वार्थकी भावना इतनी अधिक भरी हुई है कि करोड़पती अपने करोड़ों रुपयोंको अपने लिए ही समझे बैठा हुआ है और देश-सेवा दैनिक जीवनका आवश्यक कार्य नहीं बन पाया है।

कार्यकर्ताओंमें अभी सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि समाज-सेवाको हम लोग परोपकारकी गणनामें रखे हुए हैं। जो अपना काम है उसे परोपकार मान लेना बहुत बड़ा भ्रम है जिससे हमें यथाशीघ्र छुटकारा पाना चाहिए और यह आशा न करनी चाहिए कि समाज-सेवाका कार्य करनेके कारण समाज हमारा अभिनन्दन करे।

आलोचनाओंसे भी हमें न घबराना चाहिए, परन्तु यह चेष्टा अवश्य रहनी चाहिए कि आलोचकोंको आलोचनाके लिए कमसे कम मौका मिले। इस सिलसिलेमें आत्म-वञ्चना (अपने आपको धोखा देना) सबसे खतरनाक चीज है। जो कार्यकर्ता इसका शिकार बना हुआ है, वह कभी पनप नहीं सकता। आत्मा मनुष्यका सबसे बड़ा मित्र और आत्मा ही मनुष्यका सबसे बड़ा शत्रु है। मैंने अपनी स्त्रीको पर्देके अभिशापसे मुक्त बना दिया है, यह वही कार्यकर्ता कह सकता है जिसकी धर्मपत्नीको उसके सहयोगसे इतना आत्मबल प्राप्त हो गया है कि वह हर मौकेपर पर्देका बहिष्कार करती रहती है। यही बात अन्य सामाजिक कुरीतियोंके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। सामाजिक रूढ़ियां इतनी प्रबल बन गयी हैं कि उन्हें पद-दलित करनेके लिए काफी आत्मबलकी आवश्यकता है। जो सबको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करता है, उसके लिए रूढ़ियोंसे छुटकारा पाना कठिन है। कार्यकर्ता किसी नाटकका अभिनेता नहीं, जो जैसा मौका देखे वैसा ही रूप धारणकर अपना पार्ट अदा करने लगे। कई ऐसे मौके आ सकते हैं, जब कि कार्यकर्ता यह निश्चय न कर सके कि उसे यह कार्य करना चाहिए अथवा नहीं। ऐसे मौकोंपर आत्मा ही उसका सच्चा मित्र है।

कलके समाज-सेवक आजके देश-सेवक हैं—यह बात तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है। इसलिए समाज-सेवाका खास स्थान है। बाढ़-पीड़ितोंमें मैंने चावल बांटनेका सत्कार्य किया, इसलिए मैं समाज-सेवक हो गया—यह बड़ी भ्रान्त धारणा है। तब तो कल अपने परिवारके रोगियोंका इलाज करते हुए भी आप समाज-सेवक हो गये। रायबहादुरीके टाइटिलके समान समाज-सेवकका टाइटिल इतना सस्ता नहीं कि कुछ रुपये दिये और टाइटिलधारी बने। एक स्नातककी भांति हमें उन सभी गुणोंका संग्रह करना होगा, जो समाज-सेवकके लिए आवश्यक माने गये हैं। बाढ़-पीड़ितोंको चावल बांटकर लौटते हुए युवकने यदि घर आते ही घरमें चूल्हा जला न देख अपनी स्त्रीपर प्रहार कर दिया, तो वह समाज-सेवक कैसा। एक सुन्दर और सुशिक्षित लड़की देखकर आप ऐसे समाज-सेवक बने कि दूसरे वर्णकी कन्यासे विवाह कर डाला, परन्तु ज्यों ही वह लड़की धर्म-पत्नी बनी कि उसपर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया, यह समाज-सेवकका काम नहीं। उसे तो न्यायकी तराजू अपने हाथमें लेकर काम करना पड़ेगा और देखना होगा कि मुझसे कोई अन्याय तो किसी दिशामें नहीं हो रहा है।

स्त्रीको आवश्यकता थी, इसलिए विधवा-विवाह तो आपने कर लिया, परन्तु स्नान करते हुए जहां किसी मेहतरने आपको छू लिया, आप काबूसे बाहर हो गये और फिर स्नान कर अपने खोये हुए धर्मको वापस बुलाने लगे। जोशमें आकर किसी विधवा-विवाहमें तो सम्मिलित हो गये, परन्तु घर आते ही पञ्चोंके सामने कान पकड़कर उठने-बैठने लगे कि भविष्यमें मुझसे ऐसा अपराध कभी न होगा। समाज-सुधार और समाज-सेवाकी यह गति बड़ी भयानक है। लड़का होनेपर कहने लगे कि मैं तो समाज-सुधारक हूं, इसके ब्याहके लिए मेरे यहां कोई दहेज नहीं मिल सकता, परन्तु लड़केकी शादी होनेपर चुपचाप अपने घरमें थैली रखनेके लिए लड़कीवालोंसे बातचीत करने लगे। इन साधारण कमजोरियोंको रखनेवाले क्यों इस आत्म-वञ्चनामें फंसे कि हम समाज-सुधारक या समाज-सेवक हैं। सुधार और सेवाका मार्ग बड़ा ही कंटीला है और यथेष्ट सत्साहसके बिना इस पथका पथिक कोई नहीं बन सकता। सचाईका ठेका बड़े आदमियोंने ही नहीं ले रखा है। नेता नामधारी छुआछूतसे छुटकारा नहीं पा सकता, तो इसका यह अर्थ नहीं कि देशमें ऐसे कार्यकर्ताओंका अभाव है, जो सचाईके साथ छुआछूतका भूत भगा चुके हैं।

कार्यकर्ताको विद्या, बल, बुद्धिकी उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी आवश्यकता सत्साहसकी है। सत्साहस ही कार्यकर्ताका मुख्य अवलम्ब है। इसके बिना उसके सभी कार्य कोरे प्रदर्शन हैं। यदि वह प्रदर्शनप्रिय नहीं है, तो पुत्रकी उत्पत्तिपर प्रसन्न और पुत्रीकी उत्पत्तिपर शोकाकुल भी न होगा और दोनोंको स्वस्थ और शिक्षित बनाना अपना प्रधान कर्तव्य समझेगा। सच्चा कार्यकर्ता बाल-विधवाओंके पुनर्विवाहका समर्थन फांसीके तख्तेपर खड़े होकर भी करेगा, क्योंकि वह जानता है कि इस जटिल प्रश्नकी अवहेलना नहीं की जा सकती। वह यह नहीं कह सकता कि उनके साथ मेरी सहानुभूति तो काफी है, परन्तु···। कौन ऐसा हृदयशून्य कार्यकर्ता होगा, जो परन्तु···का व्यवहार करे। देवियां यही तीन न्याय तो चाहती हैं—जन्म लेनेपर दुखी न हो, विवाह करनेपर थैली न मांगो और दैवकोपसे यदि अल्पायुमें वैधव्य प्राप्त हो, तो समाज-शुद्धिके लिए उस वैधव्यको फिर सौभाग्यमें परिणत करो। जो इन तीन बातोंका समर्थक है, उसका जीवन धन्य है।

नारीकी दयनीय स्थिति

"अभियुक्ताओंने किया चाहे जो कुछ हो, परन्तु उन्होंने किया एक अविवाहित कुलीन युवतीको बचानेके लिए। इस युवतीने असमर्थ होकर एक मूर्खतापूर्ण कार्य कर डाला था और यदि यह बात फैल जाती कि उसके बच्चा हुआ है, तो उसका जीवन ही बरबाद हो जाता।" इन शब्दोंमें हिन्दू-समाजमें नारीकी दयनीय स्थितिका एक करुणापूर्ण चित्र हमारे सामने आ जाता है। हमारे सामने एक-एक कर कितनी ही बातें आती हैं, कुलीनता—अविवाहित युवती, असमर्थतावश मूर्खता, झाड़ीमें बच्चेकी लाश और बात फैल जानेसे जीवन बरबाद हो जानेका भय। इन सब बातों-पर जितना ही विचार किया जाय, उतना ही दुःख होता है।

वह थी एक रेलवे कर्मचारीकी पुत्री—सयानी हो जाने-पर भी उसका विवाह नहीं हुआ था। मानव-स्वभावकी



क मूल्य ६) विश्वमित्र कार्यालय एक प्रति

कलके समाज-सेवक आजके देश-सेवक हैं—यह बात तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है। इसलिए समाज-सेवाका खास स्थान है। बाढ़-पीडितोंमें मैंने चावल बांटनेका सत्कार्य

छुआछूतसे छुटकारा नहीं पा सकता, तो इसका यह अर्थ नहीं कि देशमें ऐसे कार्यकर्ताओंका अभाव है, जो सचाईके साथ छुआछूतका भूत भगा चुके हैं।

कि मुझ

अ

डाबर आंवला केश तैल

(सुगन्धित)

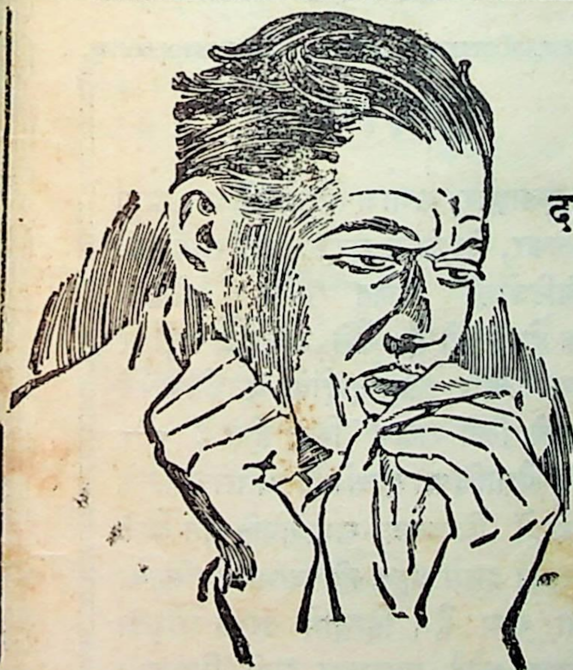
आपने बहुत तरहके आंवला केश तैल व्यवहार किये होंगे और इसके गुणोंसे :भली प्रकार परिचित होंगे। आप एक बार डाबर आंवला केश तैलको व्यवहार कर देखिये:। हमें आशा; है आप इसकी मनोहर सुगन्ध और मस्तिष्क तथा केश सम्बन्धी गुण देनेवाली विशेषताओं से अधिक सन्तुष्ट होंगे।

यह ४ औंस और १ पौंड की शीशियों में बिकता है।

अपने स्थानीय हमारे एजेण्टसे खरोदिये।

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लिमिटेड

विभाग नं० २ पोष्ट बक्स ५५४, कलकत्ता।



कासाबिन

दमा और खांसीके लिये शीघ्र फलदायो औषधि

जो लोग कफ, खांसी, सर्दी, टनसिल आदि रोगोंसे ग्रसित हैं उन्हें कासाबिन का अवश्य सेवन करना चाहिये। इससे उनकी बीमारी तुरत अच्छी हो जायगी।

●

अनेक अच्छे उपादानों से प्रस्तुत इस औषधि का सेवन करने से सभी प्रकारकी कफ की बीमारी दूर होती है और सांस लेने की सारी कठिनाइयां दूर होती हैं।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मास्युटिकल वर्क्स लि०

कलकत्ता : : : बम्बई

विषय-सूची

बहिरापन

विज्ञान को नई आश्चर्यजनक खोज !



कानका बहना, जलन, भयानक दर्द, खुजली, फोड़ा-फुन्सी, मवाद आना, नासूर, सूजन, पर्दा खराब होना, कानमें भनभन, सांय-सांय, सी-सी, सीटी की तरह आवाजें आना, कम सुनना या एकदम न सुनना अथवा ज्वरके बाद सर्दीसे या कुनैनके दुर्व्यवहारसे पैदा हुआ कैसा ही नया, पुरानेसे पुराना बहिरापन क्यों न हो चमत्कारी 'बधिरता-हरन' के इस्तेमालसे शर्तिया आराम होता है। लाखों बहिरे उससे ठीक-ठीक और साफ-साफ सुनने लगे। आराम न हो तो दाम वापस। कीमत २) रु०।

बवासीर

महात्मा से प्राप्त आश्चर्यजनक दवा



खूनी या बादी, नयी या पुरानी तथा अन्दरूनी, बाहरी चाहे जैसी बवासीर क्यों न हो, महात्मासे प्राप्त जादू-असर 'अर्शमारा' के एक बार के इस्तेमाल से दर्द, खुजली, टीस, सूजन, जलन, मवाद आना, खूनका गिरना फौरन आराम होता है। ३ दिन में खराब से खराब बवासीर, नासूर, भगन्दर, बिना आपरेशनसे जड़ से शर्तिया आराम होता है। लाखों निराश रोगी अच्छे होकर अन्य रोगियोंसे इसके इस्तेमालकी सिफारिश करते हैं। आराम न हो तो दाम वापस। कीमत २) रु०।

दमा-श्वासकी रामबाण दवा

चाहे जैसा नया या पुराना से पुराना दमा यानी श्वास क्यों न हो 'दमा-हारी' के व्यवहारसे चाहे जितने जोरका दम उभड़ा हो सिर्फ एक खुराक लेनेसे छातीको खींचन, श्वांस की तकलीफ, खाँसी, पीठका भारीपन दूर करके सुखमय नींद लाती है। पुराना से पुराना दमा चाहे तन सूखकर काँटा हो गया हो और कोई चीज खाने से हजम नहीं होती हो, तकिये के सहारे रात भर जागा करते हों वे रोगी पूरी शीशी पीनेसे भले चंगे हो गये हैं और जीवन सुखमय बिताते हैं तथा गद्‌गद्‌ हृदय से आशीर्वाद देते हैं, हजारों प्रशंसा पत्र मोजूद हैं। कीमत २), तीन शीशी ५) रु०

पता :—आरोग्य सदन,

दुर्गादेवी स्ट्रीट (कुंभारवाड़ा), बम्बई ४

नोट कर लीजिये—

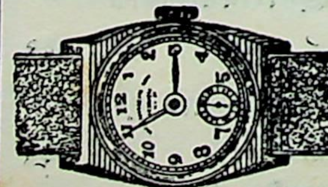
	१ वर्ष	६ मास	३ मास
दैनिक (डांकसे)	१८)	१०)	६)
स्थानीय—	१५)	८)	५)
साप्ताहिक—	४)	२।।)	०
मासिक—	६)	३।।)	०
दैनिक बर्माके लिये	२५)	१४)	८)
साप्ताहिक—,,	७)	४)	०
मासिक— ,,	८)	५)	०

मैनेजर—विश्वमित्र

सफेद बाल काला



विवलिन केश तेल उन्हें सदाके लिये जड़से प्राकृतिक रंगमें ला देगा। खिजावोंको दूर कीजिये। ७ वर्षसे प्रसिद्ध विवलिनका व्यवहार कीजिये। छोटो शशो १।।।≈) बड़ो शोशो ३), तोन शीशियां (पूरेकार के लिये) बिना डाक खर्च के भेजी जाती हैं। एजेण्टः— राइमर एण्ड कम्पनी, ११४ आशुतोष मुकर्जी रोड, कलकत्ता।



६ सप्ताह और

आधुनिक, सुन्दर साइज ३।।) रुपय।

हम लोग घड़ियां सीधी स्वीटजरलैंडसे बड़ी तादादमें मंगाते हैं। आप हमारी घड़ियों को बेच कर आसानी से रु० पैदा कर सकते हैं। दूसरे प्रति घड़ी १०) में बेचते हैं और हम लोग सिर्फ ३।।) में छोटी साइज लेडीज सुन्दर घड़ी ४।।), ४ सालकी गारन्टी। एकबार ३ घड़ी लेनेसे डाक व्यय देना नहीं पड़ेगा। रोलेण्ड वाच कम्पनी, पोस्ट बक्स नम्बर १००,०७ कलकत्ता २१ ए





विश्वमित्र



सम्पादक—
बाबूराम मिश्र, विशारद

मार्च, १९४१ वर्ष ९ संख्या १०२ फाल्गुन, १९९७

प्रभात

प्राचीके प्राङ्गण बीच खड़ी मुस्काती ऊषा नागरी !

स्वर्णिम रवि - किरणोंसे सत्वर,
लो, गया अवनिका अञ्चल भर,
खुल गये पद्मके बन्द अधर ;
उतरी अम्बरसे रूम-झूम अवनीपर प्रात-विभावरी !

कटिपर ले घट सुन्दर - सुन्दर,
पनिहारिन जातीं पनघटपर
बजते रुनझुन पायलके स्वर ;
द्विज-परियां तरुकी फुनगीपर गा रहीं मनोहर राग री !

पट गया तिमिरका अन्ध-कूप,
खिल उठी नव्य रेशमी धूप,
निखरा वसुधाका दिव्य रूप ;
वह देखो, दमक उठा उसके मस्तकपर नवल सुहाग री !

—बैजनाथप्रसाद सिनहा, 'विस्मृत'

कौटिल्यकालकी साम्पत्तिक स्थिति

श्री गोपाल दामोदर तामस्कर

किसी भी देशकी भौतिक उन्नति उसकी साम्पत्तिक स्थिति है। कौटिल्यकालमें हमारे भारतवर्षकी साम्पत्तिक स्थिति कैसी थी, यह मालूम होते ही उस समयकी हमारी भौतिक उन्नतिका पता लग जायेगा।

आजके समान, अथवा आजसे कई गुना अधिक, देशके लोगोंकी साम्पत्तिक स्थितिका मुख्य आधार कृषि-कार्य था। कौटिल्यने अपने "अर्थ-शास्त्र" में राजाका ध्यान कृषिकी ओर दिलाया है और अपनी शासन-व्यवस्थामें एक स्वतन्त्र कृषि-विभागको स्थान दिया है। दूसरे अधिकरणके प्रथम अध्यायमें कौटिल्य लिखता है:—"गांवमें 'आराम' या 'विहार' की शाखायें न रहने पायें और न नट, नर्तक, गायक, वादक, वाग्जीवन (भांड़) और कुशीलव (भाट) आकर लोगोंके काममें विघ्न करने पायें, क्योंकि ग्रामीण लोग बड़े निःसहाय होते हैं और खेत ही उनकी सारी आजीविका है।" इसी प्रकार दूसरे अधिकरणके प्रथम अध्यायमें कौटिल्य लिखता है कि "राजा दण्ड, विष्टि और करसे उत्पन्न होनेवाली बाधाओंसे कृषिको नष्ट न होने दे।" अर्थात् किसानोंको उचित दण्ड दे, उनसे बहुत अधिक बेगार न ले तथा कर आदि भी नियमानुसार उचित ही प्रमाणमें ले, जिससे वे खेती अच्छी तरह कर सकें। "इसी प्रकार चोरों, हिंसक जन्तुओं, विष-प्रयोग तथा व्याधियोंसे पशुओंकी रक्षा करे।" खेतीकी उन्नतिके लिए यह भी आवश्यक है कि "गांवमें रहनेवाला किसान यदि बीज बोनेके समय खेतमें बीज नहीं बोता या खेतको छोड़ देता है, तो उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए।" उद्देश्य यह है कि कोई किसान चाहे अथवा न चाहे, पर जनता और राजाके लिए उसे खेती करनी ही होगी। इसीलिए उसने इस बातकी भी व्यवस्था बतायी है कि "यदि कोई पुरुष अपनी भूमिको नहीं जोतता, तो कोई भी दूसरा पुरुष बिना लगान दिये ही उसको जोत ले और पांच वर्ष तक उसका उपभोग कर उसे मालिकको वापस कर दे। परन्तु यदि उस भूमिको ठीक करनेमें कुछ खर्च, श्रम आदि लगा हो, तो उसका मूल्य मालिकसे वसूल कर ले।" "जो खेत न बोये गये हों, उनको अधिक या अधबटाईकी शर्तपर कोई भी जोत ले। जो लोग केवल अपना शारीरिक श्रम करके जीविका कमाते हों, उन्हें उपजका चौथा या पांचवां भाग देनेकी शर्तपर न बोया हुआ भाग (बोनेके लिए) दे दिया जाय।" सारांश, खेतीका महत्त्व जनता और राज्यके लिए इतना अधिक था कि खेती करना या न करना कृषिकारकी इच्छापर नहीं छोड़ा जा सकता था—इच्छा हो या न हो, उसे खेती करनी ही पड़ती थी।

इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि कौटिल्यने अपनी शासन-व्यवस्थामें एक कृषि-विभाग रखा और उसके अध्यक्ष सीताध्यक्षको महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। 'सीताध्यक्ष' को कृषि-शास्त्र, शुल्व-शास्त्र तथा वृक्षायुर्वेदका ज्ञान होना चाहिए, अन्यथा इन शास्त्रोंको जाननेवालोंको अपनी सहायताके लिए रखना चाहिए। शुल्व-शास्त्र वह शास्त्र है, जिसमें भूमि आदिकी पहचान और नापनेकी रीतियां रहती हैं। वृक्षायुर्वेदमें वृक्ष आदिके सम्बन्धका ज्ञान पाया जाता है। गांवोंकी रक्षाके लिए दुर्ग भी बनानेकी व्यवस्था कौटिल्यने बतायी है। ग्रामोंकी संख्या तथा, उनकी मनुष्य-संख्या बढ़ानेके लिए दूसरे देशोंसे भी मनुष्य बुलानेके लिए उसने कहा है। प्रत्येक गांवमें कमसे कम सौ घर और अधिकसे अधिक पांच सौ घर होना चाहिए। वर्षापर ही खेतीका अवलम्बित रहना ठीक नहीं। इसके लिए सिंचाईका प्रबन्ध करनेके निमित्त कौटिल्यने राजाको आदेश दिया है। वह कहता है—"सेतुबन्ध (बांध बनाकर बनाये हुए जलाशय) अन्न आदिकी उत्पत्तिके प्रधान कारण (योनि) हैं। क्योंकि अन्न आदि वृष्टिके द्वारा कभी प्राप्त होते हैं, कभी नहीं; परन्तु सेतुबन्धके द्वारा वे सदैव प्राप्त हो सकते हैं।" इसलिए राजा "नित्य जल (जिनमें नदी आदिसे हमेशा जल आता रहे) अथवा अनित्य जल (जिनमें पानी हमेशा न रहकर केवल वर्षा ऋतुमें इकट्ठा हो जाये) वाले जलाशय बनवाये। यदि अन्य कोई इस कार्यको करना चाहे, तो उसे जलाशय आदिके लिए भूमि, नहर आदिके मार्ग तथा

आवश्यक लकड़ी आदि देकर अनुगृहीत करे।" इसी प्रकार सेतुबन्धोंका उल्लेख कई स्थानोंपर है। सेतुबन्धोंके बनानेमें सहयोग देना सबका कर्तव्य था। "सम्भूय सेतुबन्ध यानी सबके सहयोगसे बननेवाले सेतुबन्धोंमें यदि कोई मनुष्य इच्छा न होनेके कारण काम न करना चाहे, तो अपनी जगह अपने नौकर तथा बैलोंको काम करनेके लिए अवश्य दे। यदि ऐसा करनेमें कोई आनाकानी करे, तो उससे उसके कामके हिस्सेका सारा खर्च ले लिया जाय; परन्तु कार्य समाप्त होनेपर उससे उसे कुछ भी लाभ न उठाने दिया जाय (अधि० २, अ० १, सूत्र २५-२७)"। सेतुबन्धोंका उपयोग बाग-बगीचोंके लिए भी बताया है (अधि० २, अ० १, सूत्र २४)। सेतुबन्धोंके लिए कर देना पड़ता था और उनमें होनेवाली मछली, रहनेवाले पक्षी आदि वस्तुयें राजाकी ही होती थीं। तकाबीकी भी प्रथा उस समय थी। "राजाको उचित है कि वह धान्य, पशु, धन आदि खेतीके उपयोगी पदार्थोंके द्वारा किसानोंको यथावसर सहायता देता रहे। फसल पैदा होनेपर किसान अपने सुभीतेके अनुसार धीरे-धीरे ये सब वस्तुयें राजाको दें (अधि० २, अ० १, सूत्र १४-१५)। इसी रीतिसे कोषमें वृद्धि होनेकी आशा है।"

इस वर्णनसे यह स्पष्ट है कि खेतीका महत्त्व उस समय बहुत था और उसकी इस देशमें सब उपायोंसे उन्नति की जाती थी। इस दृष्टिसे सामान्य लोगोंकी साम्पत्तिक स्थिति अवश्य सन्तोषजनक रही होगी।

खेतीका धन्धा महत्त्वपूर्ण तो था, पर उस समय जङ्गलसे कुछ कम लाभ न था। वास्तविक बात यह है कि उस कालमें इस देशमें जङ्गल बहुत थे। ये जङ्गल धीरे ही धीरे कटे और उनमें खेती शुरू हुई। प्राकृतिक जङ्गलोंके अलावा जहां आवश्यकता होतो, कृत्रिम रीतिसे भी जङ्गल लगाये जाते थे। "चार कोस तक फैले हुए, एक द्वारवाले, चारों ओर खोदी हुई खाईसे सुरक्षित, सुस्वादु फलों, लताकुञ्जों, फूलोंके गुच्छों, कण्टकरहित वृक्षों तथा उथले जलाशयोंसे युक्त, मृग तथा अन्य जङ्गली जानवरोंसे भरे, काटे हुए नखों और टूटे हुए दांतोंके बाघ, शिकारके योग्य हाथियों, हथिनियों तथा बच्चोंसे युक्त, मृगवन राजाके लिए तैयार किये जायं। इस वनके समीप ही, योग्य भूमिपर एक और मृगवन तैयार कराया जाय। उसमें सब देशोंके जानवर लाकर रखे जायें। कुप्याध्यक्ष प्रकरणमें बताये लकड़ी आदि द्रव्योंके लिए एक-एक वस्तुका एक-एक वन लगाया जाय (अधि० २, सूत्र ३-९)।" आजकलके समान उस समय भी जङ्गलोंका एक मुख्य अधिकारी रहता था। उसे 'कुप्याध्यक्ष' कहते थे। जङ्गलोंकी रक्षा आदिका समस्त कार्य उसके जिम्मे था। जङ्गलके वृक्षोंके नामोंसे जङ्गलातकी आमदनीका पता लग जायेगा। "शाक (सागोन), तिनिश, (तेंदू ?), धन्वन (पीपड़ ?), अर्जुन, मधूक (महुआ), तिलक, साल, शीशम, अरिमेद (एक प्रकारका खैरका वृक्ष), खिरनी, सिरस, खैर, सरल (एक प्रकारका देवदार); ताल (ताड़), साजा, अश्वकर्ण (सालका एक प्रकार), सोमवल्क (सफेद खैर), कश (बबूल), आम, कदम्ब, गूलर आदिकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। उटज, चाप, वेणु, वंश, सातीन, कण्टक, भाल्लूक बांसोंके भेद हैं। बेंत, शीकबल्ली, वाशी, श्यामलता, नागलता आदि लताओंके भेद हैं। मालती, मूर्वा (मरोरफली), आक, सन, गवेधुका (नागबला), अतसी (अलसी) आदि, यह वल्कवर्ग है। अर्थात् इनकी बाहरी छाल काममें आती है। मूंज, बल्वज (एक प्रकारकी घास) रस्सी बनानेके साधन हैं। ताली (ताड़का एक भेद), ताल (ताड़), भूर्ज (भोजपत्र) आदिका पत्ता लिखनेके काममें आता है। किंशुक (ढाक), कुसुम, कुंकुम (केसर) वस्त्रादि रंगनेके काममें आते हैं। कन्द, मूल आदि औषधियां हैं। कालकूट, वत्सनाभ, हालाहल, मेषशृङ्ग, मुस्ता, कुठ, महाविष, वेल्लितक, गौरार्द्र, बालक, मार्कट, हैमवत, कालिङ्गक, दारदक, अङ्कोलसारक, उष्ट्रक आदि विष हैं (अधि २, अ० १७, सूत्र ४-१२)।" जिन लोगोंको जङ्गलकी इतनी चीजें मालूम हों, उन्हें तथा उनके राज्यको उनसे अच्छी आय अवश्य होती रही होगी।

उस समय जानवरोंकी संख्या भी कम नहीं देख पड़ती। वैसे तो कौटिल्यने सभी पशुओंके सम्बन्धमें कुछ न कुछ अवश्य बताया है; पर ढोरों, घोड़ों और हाथियोंके सम्बन्धमें बहुत विस्तारपूर्वक बताया है। प्रत्येक प्रकारके जानवरकी देखरेखके लिए एक अलग शासन-विभाग था और उसका एक अलग अध्यक्ष था। ढोरोंके लिए गोऽध्यक्ष,

घोड़ोंके लिए अश्वाध्यक्ष तथा हाथियोंके लिए हस्त्यध्यक्ष नामक अधिकारी थे। इन अधिकारियोंका विशेष काम राज्यके जानवरोंकी देखभाल करना था। उनके पालनकी व्यवस्थाकी छोटीसे छोटी बात कौटिल्यकी दृष्टिसे नहीं चूकने पायी है। इसमें नस्ल सुधारनेकी व्यवस्था भी सम्मिलित है। ढोरोंके शरीरकी प्रत्येक वस्तुका उपयोग बताया है। घोड़े उस समय सेनाके लिए अत्यन्त आवश्यक थे। इसलिए उनके भी पालन-पोषणकी विस्तृत व्यवस्था कौटिल्यने दी है। घोड़ोंकी चिकित्साकी भी व्यवस्था उसने बतायी है। उस प्राचीन कालमें अन्यत्र कहीं पशुचिकित्साकी व्यवस्था न थी। "कम्बोज, सिन्धु, अरट्ट और बनायुदेशके घोड़े उत्तम होते हैं; बाल्हीक, पापेय, सौवीर तथा तैतलके मध्यम होते हैं; शेष देशोंके साधारण होते हैं। कम्बोज काबुल, अरट्ट सम्भवतः काठियावाड़ है, बाल्हीक बलख होगा, पापेयका स्थान निश्चित करना कठिन है, सौवीर राजपूताना है, तैतलका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। घोड़ोंसे अधिक हाथियोंके पालन-पोषणपर कौटिल्यने ध्यान दिलाया है। उनके जङ्गल अलग चाहिए, उनके चिकित्सक, शिक्षक, सेवक चाहिए। गोपालनके लिए भारतवर्ष सदैव प्रसिद्ध रहा है। यहां गोपालन एक धार्मिक कर्म था। उसकी अवहेलना इधर हुई और इसका दुष्परिणाम भी हम भोग रहे हैं। अब शुद्ध दूध और उससे बननेवाली वस्तुयें अप्राप्य हो गयी हैं।

आजकल देशकी समृद्धि खनिज पदार्थोंपर भी निर्भर है। कौटिल्यके समय इनका महत्त्व कुछ कम न था। खनिज पदार्थोंके तीन भेद देख पड़ते हैं। एक है मणि, दूसरा है हीरा और तीसरा धातुवर्ग है। मणियोंके चार प्रकार बताये हैं:—(१) माणिक्य, (२) वैदूर्य, (३) नीलम और (४) स्फटिक। इनमेंसे प्रत्येकके रूप, रङ्ग, उत्पत्ति-स्थान आदिके अनुसार उपभेद किये हैं और उनके गुण-दोष बताये हैं। हीरोंके भी अनेक भेद बताये हैं। उनके भेद बहुधा उत्पत्ति-स्थानके अनुसार किये हैं। सभाराष्ट्रक, मध्यमराष्ट्रक, काश्मक, श्रीकेटनक, मणिमन्तक, इन्द्रवानक नामक छः भेद उत्पत्ति-स्थानके अनुसार बताये हैं। धातुओंका वर्णन बहुत लम्बा-चौड़ा है। कौटिल्यने शासन-व्यवस्थामें एक आकराध्यक्षकी योजना बतायी है। उसे "शुल्वशास्त्र, धातु-शास्त्र, रस, पाक (सुवर्ण आदिको अग्निमें तपानेसे उनके रूपमें चमक पैदा कर देना आदि) और मणिराग (मणियोंके वर्ण आदि बदलने) के विषयमें अच्छी जानकारी होनी चाहिए।" धातुओंमें सोना, तांबा, सीसा, लोहा, त्रपु (टिन ?), चांदी मुख्य हैं। ये धातुयें कैसे स्थानोंमें मिल सकती हैं, उन्हें कैसे शुद्ध करना चाहिए और उनके अनेक प्रकारके मिश्रण कैसे बनाना चाहिए, इत्यादि बातें कौटिल्यने बहुत विस्तारपूर्वक बतायी हैं। इससे यह स्पष्ट है कि धातुशास्त्रकी उस समय बहुत उन्नति हुई थी। सुवर्णके प्रकार और मिश्रण तो आजके संसारके लिए बहुत कुछ नये हैं। इनके सिवा कुछ अन्य खनिज पदार्थ बताये हैं। सम्भवतः नमक भी खानोंसे निकलता था, ऐसा जान पड़ता है। इसके लिए एक लवणाध्क्ष अलग था। इसी प्रकार सोनेके कामके लिए एक अलग सुवर्णाध्यक्ष था। सुवर्णकी उत्पत्तिके स्थानोंमें जम्बूनद और शतकुम्भ आये हैं। जम्बूनद जम्बूपर्वतसे निकलनेवाली नदी है। शतकुम्भ कोई पर्वत है। इसी प्रकार हाटक, वेणु और शृङ्गशुक्ति भी कोई स्थान ही जान पड़ते हैं। चांदीकी उत्पत्तिके स्थानोंमें तुत्थ, गौड़, कम्बू और चक्रवाल नाम आये हैं। तुत्थ भी किसी स्थानका नाम था या वह चूर्णके अर्थमें आया है, यह कहना कठिन है। अन्य धातुओंमें वैक्रन्तक, आरकूट, कंस, ताल और लोध्र आये हैं। कंस तो कांसा स्पष्ट है, ताल सम्भवतः हरताल है, वैक्रन्तक, आरकूट और लोध्रका ठीक-ठीक अर्थ करना कठिन है। धातुओंके बर्तन भी बनते थे (लोहभाण्डव्यवहारं च—अधि०२, अध्याय १२, सूत्र २६)।

इससे यह स्पष्ट है कि भारतवर्षमें उस समय अनेक धातुयें निकलती थीं, धातुओंकी अनेक चीजें बनती थीं और धातुओंके अनेक प्रकारके मिश्रण होते थे। कौटिल्यने स्वयं खनिज पदार्थोंका महत्त्व बहुत अधिक माना है:—

आकरप्रभवः कोपः कोपाद्दण्डः प्रजायते।
पृथिवी कोपदण्डाभ्यां प्राप्यते कोषभूषणा ॥ ४९ ॥

(अधि० २, अ० १२)

"कोषकी उन्नति खानोंपर निर्भर है, कोषके उन्नत होनेपर सेना तैयार हो सकती है, और कोष और सेनासे कोष-परिपूर्ण पृथ्वी प्राप्त हो सकती है।"

इसी प्रकार समुद्रसे भी अनेक वस्तुयें प्राप्त होती थीं। इनमें मोती, मूंगा और नमक मुख्य हैं। उत्पत्ति-स्थानोंके

अनुसार मोतियोंके ये वर्ग बताये हैं—(१) ताम्रपर्णिक, (पाण्ड्यदेशकी ताम्रपर्णी नदीके), (२) पाण्ड्यवाटक (पाण्ड्यदेशकी पाण्ड्यवाट अथवा मलयकोटि पर्वतके), (३) पाशिक्य (सम्भवतः पाटलिपुत्रके पासकी पाशिका नदीके), (४) कौलेय (सिंहल द्वीपकी कुला नामक नदीमें होनेवाले), (५) चौर्णेय (केरल देशके मुरचि नामक नगरके पासकी चूर्णा नदीमें होनेवाले), (६) माहेन्द्र (महेन्द्र पर्वतके पासके समुद्रमें होनेवाले), (७) कार्दमिक (ईरान देशकी कर्दमा नदीमें होनेवाले), (८) स्रौतसीय (बर्बरके किनारे स्रोतसी नामक नदीमें होनेवाले), (९) हादीय (बर्बरके किनारे समुद्रसे लगी हुई श्रीघण्ट नामक झीलमें उत्पन्न होनेवाले), (१०) हैमवत (हिमालय पर्वतपर होनेवाले)।

यह स्मरण रखना चाहिए कि इनमेंसे बहुतेरे स्थानोंमें अब भी मोती निकलते हैं । हिमालयपर भी मोती मिलते थे, यह पढ़कर कुछ लोगोंको आश्चर्य होगा । पर विशेष आश्चर्यकी बात नहीं है । अब वैज्ञानिकोंने यह सिद्ध कर दिया है कि हिमालय समुद्रसे निकला है और समुद्रकी बहुत-सी वस्तुयें उसपर अब भी मिलती हैं । इसलिए थोड़े बहुत मोती मिलते रहे हों या अब भी मिलें, तो कोई आश्चर्य नहीं । इस प्रकार हिन्दुस्तानके पर्वतोंपर तथा किनारेके समुद्रपर कई स्थानोंमें मोती मिलते थे । उस कालमें मोतियोंका मूल्य बहुत था । मोतियोंके रूप-रङ्गके अनुसार भी कौटिल्यने उनका वर्गीकरण किया है, पर यहां उसे बतानेकी आवश्यकता नहीं है ।

प्रवाल (मूंगे) की उत्पत्तिके दो स्थान बताये हैं:— बर्बरकी नदी (अलकन्दा) के मुखमें होनेवाला आलकन्दक और यवनों (सम्भवतः यूनानियों) के द्वीपके पास विवर्ण नामक समुद्रमें होनेवाले वैवर्णक । ऐसा जान पड़ता है कि यवनोंके यानी यूनानियोंके सम्बन्धका ज्ञान कौटिल्यको था और उस समय यूनान और हिन्दुस्तानके बीच व्यापार होता था । कौटिल्यके कालके निर्णयके लिए यह भी एक साधन है ।

हम ऊपर बता ही चुके हैं कि नमककी व्यवस्थाके लिए लवणाध्यक्ष नामक एक अलग अधिकारी था । नमक तैयार किया जाता था और खानोंसे भी निकलता था । कई प्रकारके क्षार भूमिसे तथा समुद्रसे निकाले जाते थे । श्रोत्रिय, तपस्वी, बेगारी अपने खानेके लिए नमक बिना दामके ले जा सकते थे । बहुत-सा नमक बाहरसे भी आता था और उसपर चुङ्गी देनी पड़ती थी । इससे स्पष्ट है कि नमक खोदने और बनानेका धन्धा अच्छी हालतमें था ।

यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि व्यापार उस समय कच्चे पदार्थोंका होता था । सोना-चांदी, मोती-मूंगा, हीरा-मणि, नमक और क्षार, वनोंकी समस्त वस्तुयें, घोड़े आदि वस्तुयें ही बहुत बिकती थीं । तथापि अनेक प्रकारके वस्त्रोंका व्यापार कुछ कम न था । उस समय भी इस देशमें अनेक प्रकारके वस्त्र बनते थे और इस कामके लिए शासनव्यवस्थामें एक सूत्राध्यक्ष था । "सूत्राध्यक्षको चाहिए कि सूत, कवच, वस्त्र और रज्जु (रस्सी) आदि पदार्थोंके कातनेबुनने और बटने आदि कामोंको उन-उन पदार्थोंके जाननेवाले चतुर कारीगरोंसे कराये तथा ऊन, वल्क (छाल कूटनेसे निकले हुए रेशों), कपास, सेमर आदिकी रुई, सन, और क्षौम (सम्भवतः अलसीके रेशे), को विधवाओं, लूलोंलंगड़ों (अन्यङ्ग), कन्याओं, संन्यासिनियों, अपराधिनियों, वेश्याओंकी बूढ़ी माताओं, बूढ़ी राज-दासियों और बूढ़ी देवदासियोंसे कतवाये।" इस उद्धरणमें कई बातें आ गयी हैं । पहले तो यह ज्ञात होता है कि वस्त्रोंके सिवा तन्तुपदार्थोंसे कवच, रस्सी आदि अन्य वस्तुयें भी बनती थीं । दूसरे, कपासके तन्तु ही नहीं, किन्तु ऊन, वल्क, सेमर, सन और क्षौम (सम्भवतः अलसीके रेशे) का भी उपयोग होता था । इन बातोंमें वह काल आजसे किसी प्रकार पीछे न था । तीसरे, सरकारका यह काम था कि वह बेकारों, अपाहिजों और अन्य कार्य करनेमें असमर्थ लोगोंको काम देकर पालन-पोषण करे । इससे यह भी ज्ञात होता है कि सूत कातनेका धन्धा सभी लोग करते थे । वस्त्र वगैरह बुननेका धन्धा कारीगर ही करते थे, पर सूत कातनेका काम घर-घर होता था ।

वेतन आदिके सम्बन्धमें निम्नलिखित नियम बताये हैं:—"सूतकी सफाई, मुटाई और मध्यमताको देखकर इनके वेतनका निर्णय किया जाय तथा काते हुए सूतकी अधिकता-न्यूनताका भी विचार किया जाय। सूतके प्रमाणको देखकर उन्हें (विधवा आदि सूत कातनेवाली स्त्रियोंको)

तैल, आंवला, उबटन आदि देकर अनुगृहीत किया जाय, जिससे वे प्रसन्न होकर अधिक कार्य करें। पर्वोंके दिनोंमें भोजनादि देकर उनसे काम कराया जाय।" बुनाईके सम्बन्धमें ये नियम दिये हैं:—"क्षौम, दुकूल, क्रिमतान, राङ्कव (एक प्रकारके हिरणके बाल) और कपासका सूत कतवाने तथा उसे बुनवानेका काम कराते समय सूत्राध्यक्ष कारीगरोंको गन्ध, माल्य आदि देकर प्रसन्न करता रहे और उनसे भिन्न-भिन्न प्रकारके वस्त्र, आस्तरण, प्रावरण आदि बनवाये। सूतके कवच आदि वस्तुओंको उन कामोंको जाननेवाले कारीगरों तथा शिल्पियों (कारीगरोंसे अधिक महीन काम करनेवालों) से बनवाये।" स्त्रियोंसे काम लेते समय निम्नलिखित नियमोंका ध्यान रखना आवश्यक था:—"जो स्त्रियां परदेमें रहकर ही काम करना चाहें, जिनके पति परदेश गये हों अथवा जो अङ्गविकल और अविवाहित कन्यायें अपना पेट पालन करना चाहें, उनसे दासियों द्वारा (कपास आदि भेजकर) कतवानेका काम करवाया जाय और उनके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार किया जाय। जो स्त्रियां प्रातःकाल ही स्वयं या दासियोंके साथ सूत्रशालामें अपना किया हुआ काम (काता हुआ सूत) लेकर पहुंचें, उन्हें (उनसे वह लेकर) उनका उचित वेतन दे दिया जाय। (यदि वहांपर अंधेरा हो तो) इतना ही प्रकाश किया जाय, जितना कि सूतकी परीक्षा करनेके लिए आवश्यक हो। स्त्रीका मुख देखनेपर या कार्यको छोड़ अन्य कोई बातचीत करनेपर (ऐसा करनेवालेको) प्रथम साहस दण्ड दिया जाय। वेतन देनेका समय टालने तथा काम न करनेपर भी (किसी कारण-विशेषसे) वेतन देनेपर मध्यम साहस दण्ड दिया जाय।"

कारीगरोंके साथ मेल-जोल रखना आवश्यक है:--"रज्जू-वर्तकैश्चर्मकारैश्च स्वयं संसृजेता माण्डानिच वघ्रादीनि वर्तयेत्" (अधि० २, अ० २४, सूत्र २१-२२), (रस्सी आदि बनानेवालोंसे तथा चमड़ेका काम करनेवालोंसे मेल-जोल रखे और उनसे चमड़ेकी चीजें तथा भिन्न-भिन्न प्रकारकी रस्सियां आदि बनवाये।) ऊपरके नियमोंमें केवल सरकारी सूत्रशालाके कामका वर्णन है। परन्तु इससे यह स्पष्ट है कि सूतकी कताई-बुनाईका काम उस समय बड़े महत्त्वका था और इसे करनेवाले किसी विशिष्ट जातिके लोग न थे, किन्तु जिसे समय था, पेटके लिए कमाई करनेकी आवश्यकता थी और जिसे ये काम आते थे, वह इन कामोंको करता था। जहां सैकड़ों लोगोंको वस्त्र, आस्तरण, प्रावरण आदिकी आवश्यकता थी, वहां इस काममें कितने लोग लगे होंगे और इस प्रकार कितने लोगोंका पेट इस एक प्रकारके धन्धेसे पलता होगा, यह सरलतासे जाना जा सकता है। हम तो यह कह सकते हैं कि खेतीके धन्धेके बाद इसी धन्धेका महत्त्व रहा होगा। बेकारीको दूर करनेके लिए जो नियम दिये हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि बेकारी दूर करनेका काम राजाका था। ऐसी स्थितिमें कौन बेकार रह सकता है और किसकी साम्पत्तिक स्थिति इतनी बुरी हो सकती है कि उसे भूखों मरना पड़े?

व्यापारकी ठीक व्यवस्था हुए बिना देश भरपूर समृद्ध नहीं हो सकता। समृद्धिके लिए व्यापार आवश्यक है। व्यापारके लिए मार्ग आवश्यक हैं। इसके लिए कौटिल्यने अपनी व्यवस्थामें एक पण्याध्यक्षका रहना आवश्यक बताया है। "पण्याध्यक्षको चाहिए कि वह दूकानोंमें दूकानदारोंके निज़ी पुराने मालके आने-जानेका प्रबन्ध करे। साथ ही वह तराजू और नाप-तौलकी वस्तुओंकी जांच करे।" नाप-तौलके दोषोंको दूर करनेके लिए कौटिल्यने अनेक नियम दिये हैं। उनको यहां विस्तारपूर्वक बतानेकी आवश्यकता नहीं है। इतना जान लेना आवश्यक है कि झूठे नाप-तौलोंके द्वारा कोई भी व्यापारी लोगोंको ठगने न पावे, इस बातपर ध्यान देना राजाका कर्तव्य था। इसी प्रकार अधिक दाम लेनेवालोंको, घटियाको बढ़िया माल बताकर बेचनेवालोंको, हानिकारक मालका व्यापार करनेवालोंको दण्ड देना भी आवश्यक बताया है। यही नहीं, किन्तु सट्टेका व्यापार भी करनेसे रोकनेके लिए उसने नियम दिये हैं—"पण्याध्यक्षको चाहिए कि वह धान्य आदि संगृहीत वस्तुओंकी विक्री प्रजाकी भलाईकी दृष्टिसे करे।" इस सब व्यवस्थाके लिए राज्यकी ओरसे पण्यशालायें (व्यापारके गञ्ज) होती थीं। दूसरे अधिकरणके पांचवें अध्यायमें कहा है कि "पक्की ईंटोंसे चुना हुआ, चारों ओर मकानोंसे घिरा हुआ, एक द्वारवाला, अनेक कोठरियों और खनोंसे युक्त, चारों ओर खुले खम्भोंके चबूतरोंसे (बरामदोंसे) घिरा हुआ पण्यगृह तथा कोष्ठागार बनाये।" इससे यह स्पष्ट

होता है कि व्यापारके गञ्ज या चौक बनानेकी कल्पना उस समय थी।

कौटिल्यने व्यापारके मार्गोंका कोई पृथक् वर्णन या उल्लेख नहीं किया है। उनका ज्ञान तो हमें केवल सामान्य रीतिसे हो सकता है। उसका कहना है कि व्यापार-मार्ग ऐसे चाहिए कि उनसे विशेष लाभ हो सके। केवल हीरा और मणि, मोती और मूंगा, सोना और चांदी आदि बहुमूल्य पदार्थोंके व्यापारके लिए व्यापार-मार्ग नहीं बनाने चाहिए। (अधि० ७, अ० १२, सूत्र १९-२४) व्यापार-मार्गोंमें कौटिल्यके मतानुसार स्थल-मार्ग श्रेयस्कर हैं; क्योंकि यद्यपि जल-मार्गमें खर्च कम पड़ता है, थोड़े परिश्रमसे तैयार हो सकता है तथा माल आसानीसे आ-जा सकता है और अधिक लाभ हो सकता है, तथापि वह ठीक नहीं है, क्योंकि सदा उपयोगी नहीं हो सकता, वह रुक जा सकता है, वर्षाके समय उससे आना-जाना कठिन होता है, इसलिए साथ ही उसमें भय भी अधिक रहता है, जिसका प्रतिकार करना कठिन है। स्थल-मार्गमें ये बातें नहीं हैं। "जल-मार्ग और स्थल-मार्गमेंसे पहला तो स्थायी नहीं होता, पर दूसरा स्थायी होता है।"

उस कालमें पैदल रास्ते ही नहीं, किन्तु गाड़ियोंके, गधे, ऊंट, बैल आदि जानवरोंकी पीठपर माल लाने और ले जानेके यानी लमानों, बञ्जारों और कारवोंके मार्ग चारों ओर थे और उनके द्वारा यथेष्ट व्यापार होता था। सारे वर्णनसे यह भी स्पष्ट होता है कि कई मार्ग राजाकी ओरसे बनाये जाते थे। अन्यथा 'वर्तनी' लेनेका नियम न रहता। जब राजाकी ओरसे मार्ग ही न बनते, तो वह किस आधारपर मार्ग-कर लेता?

जनताकी साम्पत्तिक स्थितिका अनुमान उसके घरोंसे भी हो सकता है। इस सम्बन्धमें कौटिल्यका कथन यह है:—"सीमामें ही घर बनवाये। दूसरेकी दीवारके सहारे कोई मकान न खड़ा करे। मकानकी नींव दो अरत्नी या तीन पद करे। दस दिनके बनाये हुए सूतिका गृहको छोड़कर बाकी सब मकानोंमें अवस्कर (पायखाना?), पानी (निकलने) की नालियां, कुआं (उदपान), उपयुक्त भोजनशाला (पाकगृहोचितम्) बनवाये। इस नियमका उल्लङ्घन करनेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जाय। इसी प्रकार उत्सवोंके अवसरपर पानी निकलनेकी नालियोंका तथा चूल्होंके स्थानका प्रबन्ध करे। तीन पद या डेढ़ अरत्नी गहरी नाली प्रत्येक घरमें बनायी जाय, ताकि वह सदैव बहती रहे या उपयुक्त स्थानमें जाकर गिरे। इस नियमका उल्लङ्घन करनेपर ५४ पण दण्ड किया जाय। (घरसे कुछ दूर) चार खम्भोंकी यज्ञशाला बनवाये। उसीमें एक अरत्नी (१॥ फुट) गहरा पानीका हौद, आटेकी चक्की तथा अन्न आदि कूटनेकी ओखली रहे। इस नियमका उल्लङ्घन करनेपर २४ पण दण्ड किया जाय। प्रत्येक साधारण दो मकानोंके बीच या छज्जे या उसारेवाले मकानोंके उसारेके बीच एक किश्कु (एक हाथ या तीन पैर) का अन्तर रहना चाहिए। दो मकानोंके छप्परोंमें चार अंगुलका अन्तर रहे अथवा जुड़े रहें। गलीकी ओर एक दरवाजा केवल एक किश्कु चौड़ा बनवाये, जिसके कपाट सरलतासे खुल सकें। उसके ऊपर एक छोटी-सी खिड़की प्रकाश आनेके लिए बनवाये। यदि उससे (उस घरसे) लगकर (कोई दूसरा) मकान हो, तो वह (खिड़की) बन्द कर दी जाय। अथवा मकानके मालिक आपसमें समझौता कर लें, तो और किसी प्रकारका मकान बना लें, पर एक दूसरेको कष्ट न होने दें। छप्परके ऊपरी भागको चटाईसे ढक दें, ताकि वर्षासे कष्ट न हो। छप्पर ऐसा बनाया जाय कि वह झुकने या टूटने न पाये। ऐसा न करनेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जाय। जो पुरुष दूसरोंके घरोंके दरवाजे और खिड़कीकी ओर दरवाजे या खिड़की बनायें, उन्हें भी यही दण्ड दिया जाय; परन्तु राजमार्गकी ओर (दरवाजे या खिड़कियां) बनवाये, तो कोई बुराई नहीं। गड्ढा, सीढ़ी (जीना), नाली, लकड़ीकी सीढ़ी (नसेनी) और पायखाना आदिसे जो बाहरके लोगोंको (पड़ोसियोंको) कष्ट पहुंचायें, या उन्हें अपने स्थानका ठीक उपयोग न करने दें या पानी निकलनेका ठीक प्रबन्ध न कर दूसरेकी दीवारोंको क्षति पहुंचायें, उन्हें १२ पण दण्ड दिया जाय। यदि यह कष्ट मल-मूत्रके कारण हो, तो दुगुना दण्ड दिया जाय। वर्षा ऋतुमें प्रत्येक नाली खुली रहनी चाहिए। ऐसा न करनेपर १२ पण दण्ड दिया जाय।" इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस कालमें सर्वसाधारणके मकान अच्छे होते थे। उनमें प्रत्येक बातका प्रबन्ध होता था और सफाईपर अच्छा ध्यान दिया जाता था।

मजदूरीकी दरसे भी लोगोंकी साम्पत्तिक स्थितिका पता लग जाता है। परन्तु खेद है कि इस सम्बन्धका ज्ञान हमें कौटिल्यके अर्थ-शास्त्रसे ठीक-ठीक नहीं होता। तृतीय अधिकरणके १३ वें और १४ वें अध्यायोंमें मजदूरों और दासोंके सम्बन्धके अनेक नियम दिये अवश्य हैं, पर उनसे यह नहीं मालूम होता कि भिन्न-भिन्न कार्योंके लिए मजदूरी क्या थी। ये नियम बहुधा अपराधोंके दण्डके सम्बन्धके हैं या करारके उल्लङ्घनके सम्बन्धके हैं। "मजदूरको चाहिए कि वह अपनी मजदूरी निश्चित कर ले। यदि मजदूरी ठहरी न हो, तो किये कामके प्रमाणके अनुसार तथा उसके करनेमें लगे समयके अनुसार मजदूरी दी जाय। यदि मजदूरी न ठहरी हो तो किसानी करनेवाला मजदूर फसलका दसवां हिस्सा, चरवाहा घीका दसवां हिस्सा और विक्रेता बिक्रीका दसवां हिस्सा ले। कारीगर, गाने-बजानेका काम करनेवाले नट, चिकित्सक, वाग्जीवन परिचारक आदि लोगोंको (नठहरानेपर) उतना ही वेतन दिया जाय, जितना दूसरे स्थानोंमें मिलता हो, अथवा विज्ञ लोग जो कहें, वही दिया जाय।" कपड़ोंकी धुलाई अवश्य दी है। "अच्छे वस्त्रोंकी धुलाई एक पण, साधारण वस्त्रोंकी आधा पण और हलके प्रकारके वस्त्रोंकी एक चतुर्थ पण दी जाय। मोटे कपड़ोंकी धुलाई एक या दो माष और (यदि वे) रंगे हों, तो इसकी दुगुनी दी जाय।"

"एक धरणकी कोई वस्तु बनानेके लिए एक माष मजदूरी दी जाय। यदि सुवर्णकी वस्तु बनायी जाय, तो उसका आठवां हिस्सा मजदूरी दी जाय। अथवा वह वस्तु विशेष कारीगरीकी हो, तो मजदूरी दुगुनी तक बढ़ा दी जाय। तांबा, पीतल, कांसा, लोहा, कसकुट आदिकी वस्तुकी बनवाई पांच सैकड़ा दी जाय। सीसे और रांगेकी वस्तुओंके लिए एक पल पीछे एक काकणी वेतन दिया जाय। जो पुरुष (धातुओंकी) खान, रत्नोंकी खान अथवा गड़े हुए धनका पता लगाये, उसे उसका छठा हिस्सा दिया जाय। यदि पता लगानेवाला पुरुष राजभृतक (राजकर्मचारी) हो, तो उसे बारहवां हिस्सा दिया जाय। यदि वह गड़ा हुआ खजाना एक लाख पण हो तो राजा उसका मालिक होता है। यदि इससे कम हो, तो खोजनेवाला ही उसका मालिक होता है, परन्तु वह उसका छठा हिस्सा राजाको दे।" (अधि० ४, अ० १)।

खेतीके मजदूरोंके वेतनके सम्बन्धमें एक स्थानपर (अधि० २, अ० २४ में) कहा है—"खेतोंकी रखवाली करनेवालों, ग्वालों, दासों तथा अन्य मजदूरोंको कामके अनुसार भोजनकी धान्यादि सामग्री दी जाय। इसके अतिरिक्त सवा पण वेतन प्रति मास दिया जाय। इसी प्रकार कामके अनुसार कारीगरोंको भोजन और वेतन दिया जाय।"

यद्यपि यह वर्णन बहुत स्पष्ट और पूर्ण नहीं है, तथापि इतना तो स्पष्ट है कि मजदूरोंकी मजदूरी किसी प्रकार कम नहीं मालूम पड़ती। यदि हिसाब लगाया जाय, तो वह आजसे अधिक ही जान पड़ेगी। यदि किसानीके मजदूरको भोजनकी सामग्री मिलनेपर अन्य वस्तुओंके लिए सवा पण वेतन मिलता था अथवा फसलका दसवां हिस्सा वह पाता था, तो आजसे वह किसी प्रकार कम नहीं कहा जा सकता। इस हिसाबसे आज कोई भी पुरुष मजदूरी देनेको तैयार न होगा। सुनार आज यदि सोनेका एक अष्टमांश मजदूरी मांगे तो बड़े-बड़े धनी भी इतना देनेसे पीछे हटेंगे। धुलाईके लिए आज सामान्य लोग जितना देते हैं, उससे उस समयकी धुलाईकी मजदूरी कई गुनी अधिक मालूम पड़ती है। सामान्य लोगोंकी स्थिति अच्छी न हो, तो इतनी मजदूरी कोई न देगा।



युद्ध और महिलायें

श्री बाबूराम मिश्र, विशारद

"कोशिश मेरी हमेशा यही रही कि मैं चीनके निवासियोंको समझ सकूं और उनसे कुछ प्रेरणा ले सकूं। मैंने उनके विषयमें और उनके गौरवपूर्ण सांस्कृतिक इतिहासके सम्बन्धमें पढ़ा बहुत था और मैं उस वास्तविकताको देखना चाहता था। वास्तविकता मेरी आशाके अनुकूल ही निकली। मैंने उस जातिको विज्ञ, गम्भीर और अपने महान् अतीतके अनुरूप केवल बुद्धिमान ही नहीं पाया, बल्कि मैंने पाया कि वे लोग बड़े बलिष्ठ, जीवन और शक्तिसे परिपूर्ण हैं और आधुनिक परिस्थितिसे सामञ्जस्य स्थापित करनेवाले हैं। बाजारमें जाते हुए एक मामूली आदमीके चेहरेपर भी हजारों वर्षोंकी संस्कृतिकी छाप है। किसी हद तक मैंने यही आशा बांधी थी; लेकिन मुझे जिसने सचमुच प्रभावित किया, वह थी नवीन चीनकी अद्‌भुत शक्ति। सैन्यबलका मैं कोई पारखी नहीं था; परन्तु मैं यह कल्पना नहीं कर सकता कि ऐसी जीवनी शक्ति और सङ्कल्पवाली और युग-युगका बल अपने पीछे रखनेवाली वह जाति कभी कुचली जा सकती है।"—यह मत पण्डित जवाहरलालजी नेहरूका है, जिसे उन्होंने अपनी अगस्त १९३९ वाली चीन-यात्राके संस्मरणोंमें प्रकट किया है। इस यात्रामें नेहरूजीने मार्शल चियांग-काई-शेककी पत्नीसे भी मुलाकात की थी। उनके सम्बन्धमें वे लिखते हैं—"मेरा सौभाग्य था कि मैं उस देशकी सर्वश्रेष्ठ महिला श्रीमती चियांगसे मिला, जिनसे राष्ट्रको लगातार प्रेरणा मिलती रही है।" चीनकी स्वतन्त्रताके जन्मदाता स्वर्गवासी डा० सन यात सेनकी पत्नीके सम्बन्धमें नेहरूजीने लिखा है—"जबसे उस क्रान्तिका विधायक नहीं रहा, वे चीनकी क्रान्तिकी जीवन-ज्योति और आत्मा बनी हुई हैं।"

नवीन चीनकी यह अद्‌भुत शक्ति क्या है? यों तो सारा संसार देखता है कि गत ८ वर्षसे चीन जापानके बर्बर साम्राज्यवादसे लोहा ले रहा है और अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेके लिए उसने बड़े साहसके साथ असीम कठिनाइयोंका सामना किया है और त्याग और बलिदानकी कड़ीसे कड़ी परीक्षामें भी उत्तीर्ण होनेके लिए हमेशा ही तैयार रहा है। चीनके विभिन्न दलोंने अपना आपसी मतभेद उठाकर ताकमें रख दिया है और वे मिलकर अपने शत्रुसे लड़ रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि इस लड़ाईमें चीनको रूस, अमेरिका और ब्रिटेनसे सहायता मिल रही है; परन्तु यह है चीनियोंका स्वतन्त्रता-प्रेम, अदम्य साहस, हिमालय-जैसी अचल दृढ़ता और स्वाभिमान, जो उन्हें शत्रु जबर्दस्त होते हुए भी नहीं झुकने देता। चीनियोंकी इस दृढ़तासे जापानियोंका हौसला पस्त हो रहा है। वहांके राजनीतिज्ञोंको चीन सम्बन्धी अपने उद्योगका भविष्य स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ता और वे चिन्ताके स्वरमें उसकी चर्चा करते हैं। और इधर चीनमें इस युद्धने नये जीवनका सञ्चार कर दिया है, चीनी नर-नारी बड़ी शीघ्रतासे नवीन दृष्टिकोणको अपना रहे हैं, शताब्दियोंके संस्कारोंको बदल रहे हैं, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और औद्योगिक सभी समस्याओंको परिस्थितिके अनुरूप बिलकुल नये ढङ्गसे हल कर रहे हैं। इसमें सन्देह है कि जापानने साम्राज्य-लिप्सासे प्रेरित होकर चीनकी स्वतन्त्रतापर यह अनुचित प्रहार न किया होता, तो चीनमें इतने शीघ्र ये सब क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाते। चीनके इस नये जीवनमें चीनी महिलाओंका प्रशंसनीय सहयोग है। श्रीमती चियांगने इस युद्धमें अपने देशके पुरुषों और स्त्रियोंको वह प्रेरणा की है कि उनमेंसे प्रत्येक चीनकी महत्त्वाकांक्षाओंकी सजीव प्रतिमा बन गया है और आज चीनको स्वाधीनताकी रक्षाका भार केवल पुरुषोंपर ही नहीं है, चीनी स्त्रियां भी अपना उत्तरदायित्व पूरा कर रही हैं, वे युद्ध-क्षेत्रमें पुरुषोंकी ही भांति पराक्रम दिखला रही हैं और जिन चीनी गुरिल्लोंने जापानियोंको परेशान कर रखा है, उनकी जननी भी एक चीनी महिला ही है। महिलाओंने प्रत्येक देशमें राष्ट्रीय सङ्कटके समयमें पुरुषोंको शक्ति प्रदान की है, शक्तिरूपा होना चरितार्थ किया है और चीनमें भी वे अपने इसी रूपमें प्रकट हो रही हैं। चीनकी मातायें, बहनें और देवियां यदि अपने रूपमें



ट्रेनिङ्ग कैम्पमें चीनी महिलायें।

बेलके लिए जो घरको नरक बना डालती हैं, जिन्हें अपने बाल संवारने और होठ एवं नाखून रंगने और पाउडर लगाकर दिन-भर शीशेके सामने खड़े रहनेसे फुरसत नहीं है, जिनकी दृष्टिमें सुकुमारता ही बड़प्पन और दिनभर निठल्ले रहनेमें ही गौरव है और जिन्हें रंग-रेलियोंमें ही जीवनका सच्चा आनन्द मालूम होता है। चीनकी ये महिलायें इस तरहकी विलासितासे सर्वथा दूर रहते हुए हाथमें बन्दूक थामकर राष्ट्रकी वेदीपर बलिदान हो रही हैं और दूसरोंको बलिदान होनेकी प्रेरणा कर रही हैं।

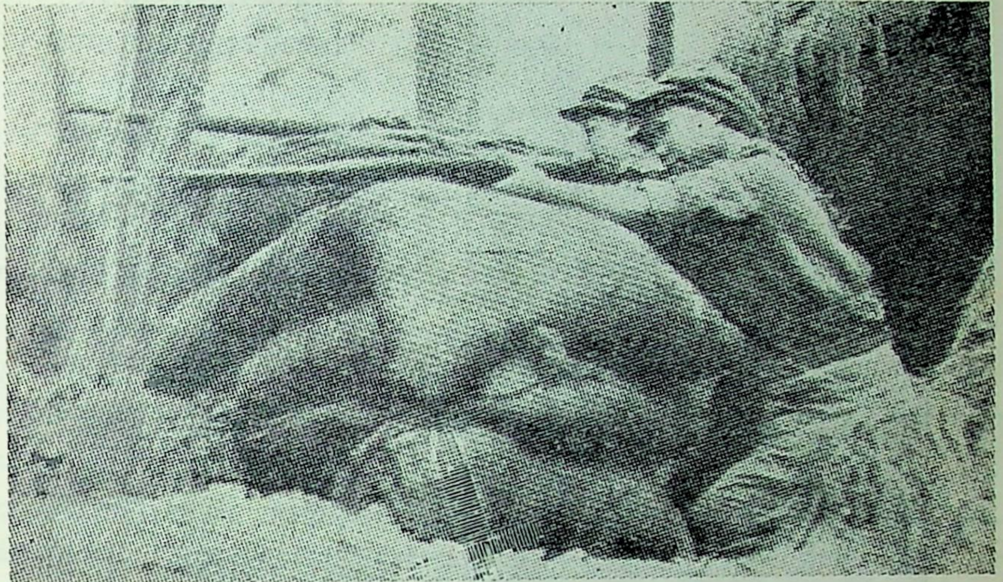
पुरुषोंको शक्ति देने और प्रेरणा करनेके लिए सामने न आयी होतीं, तो कौन कह सकता है कि चीनी पुरुषोंने अपने प्रयत्न-से संसारको वैसा ही चकित किया होता, जैसा वे आज कर रहे हैं।

जापानियोंके अनुमानके अनुसार आज भी मार्शल चियांग-काई-शेकके पास २० लाख सैनिक हैं; परन्तु यह अनुमान ठीक नहीं है। चीनी सैनिकोंकी संख्या इससे कहीं ज्यादा है और कमसे कम चालीस हजार स्त्रियां भी वीर-भूषा धारण किये हुए देशके शत्रुओंसे मोर्चा ले रही हैं।

कल्पना कीजिये—आज चीनके रङ्गमञ्चपर चालीस हजार स्त्रियां फौजी ढङ्गसे चल रही हैं। उनकी वर्दी फटी-पुरानी और मैली है। वह उनके शरीरपर ठीक आती भी नहीं है, क्योंकि उसे उन्होंने युद्ध-क्षेत्रसे उठा लिया है, जहां उनके भाई, प्रियजन, पति, पुत्र और पिता, सबने जापानियोंकी मशीनगनोंकी गोलियोंका शिकार होकर वीरगति पायी है। चीनके युद्ध-क्षेत्रमें ये वीराङ्गनायें दृढ़ताके साथ बढ़ती हैं, साहसके साथ लड़ती हैं और चीनके इतिहासमें अपना नाम अमर कर जाती हैं। उनके चेहरेपर दृष्टि डालिये—निश्चयकी रेखायें विद्यमान हैं और साहस और शक्तिकी देवियां ये सचमुच स्त्रियां हैं। ये स्त्रियां हैं इसमें सन्देह नहीं है; किन्तु ये स्त्रियां वे नहीं हैं, जो तिलचट्टा देखकर दूर भाग जाती हैं या नये-नये गहनों, सुन्दर कपड़ों और बढ़िया

चालीस हजार स्त्रियोंकी सेना—बन्दूक और कारतूसोंसे लैस सुशिक्षित सेना, बहुत लोगोंके लिए तो इसकी कल्पना ही अनर्गल है। स्त्रियां भी सैनिक हो सकती हैं और युद्ध-क्षेत्रकी कठिनाइयां झेल सकती हैं, यह उनकी समझमें ही नहीं आता। वे सोचते हैं कि हो सकता है, कोई स्त्री स्वयं युद्ध-क्षेत्रमें सैनिक सेवा करनेके लिए उत्सुक हो; परन्तु अपने शरीरके लिए वह क्या करेगी। उनका खयाल है कि कोई स्त्री या तो स्त्री रह सकती है या सैनिक बन सकती है। यह नहीं हो सकता कि एक ही समयमें वह स्त्री हो और सैनिक भी। सैनिकोंमें एक मनोवृत्ति होती है, जो साधारणतः स्त्रियोंमें नहीं देखी जाती। किसी स्त्रीको यदि सफल सैनिक बनना हो, तो उसे अपना चिरपोषित स्त्री होनेका संस्कार बदलना होगा और अपनेमें सैनिकों-जैसी मनोवृत्तिको लाना होगा। यह विचार सर्वथा ठीक नहीं है। स्त्री और पुरुषके साधारण जीवनमें एक अस्पष्ट रेखा-सी मालूम होती है, जो कार्यक्षेत्रको दो भागोंमें विभक्त कर देती है और समाजमें स्त्रियों और पुरुषोंका कार्यक्षेत्र प्रायः बंट-सा जाता है। आराम और सुविधाकी दृष्टिसे साधारणतः स्त्री घरमें या घरके अधिक समीप रहती है और पुरुषके स्नेह, प्रेम और

आदर-भावके कारण वह प्रायः ऐसे ही कार्योंको करती है, जिनमें शारीरिक बल और श्रमकी अधिक अपेक्षा नहीं होती। इसके विपरीत पुरुष जीवन-संग्राम-के कठोरसे कठोर क्षेत्रमें रहता है और रहना चाहता है। यह स्वाभाविक है। मनुष्य जिससे प्रेम करता है, उसे शक्ति-भर अधिकसे अधिक आराम पहुंचाना चाहता है। जीवनकी परि-स्थितिसे विवश होकर जिन पुरुषोंको अपनी स्त्रियोंके



युद्ध-क्षेत्रमें जापानियोंको सबक सिखा रही हैं।

साथ काम करना पड़ता है, उनमें हम आज भी यही पाते हैं—पुरुष फावड़ा लेकर मिट्टी खोदता है तो स्त्री उस मिट्टी-को फेंकने जाती है, पुरुष पानी निकालता है तो स्त्री खेत सींचती है, पुरुष फसल काटता है तो स्त्री सिला बीनती है, पुरुष खेतमें काम करता है या नौकरी अथवा दूकान-दारी करता है तो स्त्री घर और बच्चोंकी संभाल करती और भोजन बनाती है। यह व्यवस्था पारस्परिक सुविधाके लिए है और जिस तरह प्रत्येक व्यवस्था-में गुण और दोष दोनों ही होते हैं, इस व्यवस्थामें भी गुण और दोष दोनों ही हो सकते हैं; परन्तु सैकड़ों वर्षसे चली आनेके कारण वह हमारा एक संस्कार बन गयी है और आज स्थिति यह है कि कार्यक्षेत्रके इस विभाजनको दृष्टिमें रखकर अक्सर यह कहा जाता है कि वह तो स्त्रियोंका कार्य है, पुरुषोंको उसे करनेमें लज्जा आनी चाहिए अथवा अमुक कार्य तो पुरुषोंका है, स्त्रियोंके लिए उसे करना सम्भव नहीं है। यह केवल सामाजिक जीवनकी सुविधा और उसके लिए की हुई व्यवस्थाका प्रश्न है, इससे अधिक और कुछ नहीं—वैसे यह कौन नहीं जानता कि जिन कार्योंको हम स्त्रियोंका समझते हैं, उन्हें आज बहुत-से पुरुष कर रहे हैं, इसी तरह जिन कार्योंका ठेका पुरुषोंके नाम समझा जाता है, उन्हें आज महिलायें बड़ी सफलताके साथ कर रही हैं। साधारण कालमें जब यह स्थिति हो, तब राष्ट्रीय सङ्कट-कालके विषयमें कहना ही क्या है। मातृभूमि जब अपनी सन्तानका आह्वान कर रही हो, देशकी स्व-तन्त्रताकी रक्षा करनेका कर्तव्य जब सामने हो, तब स्त्रियों और पुरुषोंके कार्यका प्रश्न नहीं उठता। उस समय एक ही प्रश्न होता है—राष्ट्रके गौरवकी रक्षा करनेके लिए सर्वस्व त्याग करना और संसारको यह बतलाना कि हम भी मनुष्य हैं और मनुष्यकी तरह शिर ऊंचा कर रहना चाहते हैं। इतिहासमें सभी देशोंमें ऐसे अवसर आते रहते हैं और जब ऐसा अवसर आता है, कर्तव्यकी पुकार होती है, राष्ट्र जब उनका आह्वान करता है, हमेशा ही स्त्रियां अपना साधा-रण कार्य-क्षेत्र छोड़ देती हैं और अपनी मनोवृत्तिको, शताब्दियोंके संस्कारको इतना बदल डालती हैं कि आश्चर्य होता है। वे अपनी इस बदली हुई मनोवृत्तिसे एक पवित्र सङ्कल्पके साथ कदम उठाती और युद्ध-क्षेत्रमें पराक्रम दिखला कर अपनेको अमर बना लेती हैं। अतीत कालसे लगाकर आज तक नारी जातिने अपने स्वभावकी इस विशेषताको सभी देशोंमें कायम रखा है और कोई भी देश इसका अप-वाद नहीं है। शत्रुका संहार करनेके सङ्कल्पके साथ जब कोई महिला बन्दूक हाथमें लेकर खड़ी होती है, तब वह मूर्तिमान रणचण्डीका रूप धारण करती है।



चीनी महिलाओंने यह भुला दिया है कि वे स्त्रियां हैं। उनकी वर्दीमें अन्तर भले ही हो, परन्तु भावोंमें कोई अन्तर नहीं है।

जापानियोंने चीनकी लाखों महिलाओंको यही रूप धारण करनेके लिए विवश कर दिया है। आज चीनकी महिलायें अपनी मनोवृत्ति बदल रही हैं और स्त्री होनेका खयाल छोड़कर सैनिक शिक्षा पानेके लिए छावनियोंमें पहुंच रही हैं। उन्हें तीन महीने तक शिक्षा देकर दक्ष बना दिया जाता है। सवेरे ४ बजकर २९ मिनटपर पहला बिगुल बजा। पांच मिनटमें बिलकुल तैयार हो जाना ही चाहिए; क्योंकि ४॥ बजे दूसरा बिगुल बजनेके साथ सभी स्त्रियोंको परेड करनेके लिए सामने ही मैदानमें 'फाल इन' हो जाना पड़ता है। छावनीमें रहनेवाली महिलाओंके लिए कङ्घीकी गिनती विलास-द्रव्योंमें की जाने लगी है और बहुत कम महिलायें कङ्घीसे काम लेती हैं। ६॥ बजे तक परेड होती है। इसके बाद आधी सूखी रोटी और एक प्याला पानीसे जलपान होता है। जलपान समाप्त होते न होते किसी सैनिक विषयपर व्याख्यान आरम्भ हो जाता है, इसके अनन्तर दोपहरको भोजन मिलने तक चांदमारी, घोड़ेकी सवारी और मशीनगन चलानेका अभ्यास किया जाता है। दोपहरके भोजनमें साधारणतः भात और झोर रहता है। खानेमें १० मिनटसे ज्यादा नहीं लगना चाहिए। भोजनके बाद थोड़ी देर तक आराम, फिर परेड, व्याख्यान, रातके ७॥ बजे फिर भोजन और आध घण्टे बाद ८ बजेसे शयन। रातके भोजनमें साधारणतः शाक होता है और मांस भी, यदि मिल सके।

शिक्षण-कालकी दिनचर्या बतलाते हुए प्रसिद्ध चीनी महिला मिस लू-सी ताऊने लन्दनमें एक पत्रकारसे कहा—"हमें रातको बूट जूते पहने हुए सोना पड़ता था। कभी-कभी तो हम सब पूरी वर्दी पहने रहतीं और कन्धेपर बन्दूक लटकती रहती। इसका परिणाम यह होता कि हमें एक ही करवट सोना होता। कभी-कभी यह भी होता कि रातको अचानक बिगुल बजता और हम सब सोतेसे उठकर तत्काल तैयार हो जातीं। इस जीवनमें कठिनाइयां चाहे कितनी ही हों; परन्तु तीन महीनेके शिक्षा-कालको समाप्त कर जब हम युद्ध-क्षेत्रमें शत्रुके सामने लड़ने जातीं, उस समयकी कठिनाइयोंके मुकाबिलेमें ये कुछ भी नहीं हैं। केम्पमें हमें सोनेके लिए कमसे कम एक चटाई तो मिलती थी; परन्तु युद्ध-



जापानियों द्वारा गिरफ्तार चीनी महिला सैनिक।



अंगरेज स्त्रियोंकी सेना।

क्षेत्रमें हमें अक्सर जमीनपर ही सोना पड़ता था, वर्दी और बन्दूकसे लैस केवल एक चादर ओढ़कर। केम्पमें पहले ही खाना कम मिलता था, खाइयोंमें तो अक्सर दो-दो, तीन-तीन दिन तक मुंहमें दाना पड़नेकी नौबत नहीं आती। हमें जिस स्थितिमें रहना पड़ा है, उसके बाद अब यह कोई नहीं कह सकता कि स्त्रियां पुरुषोंकी तरह कठिनाइयां नहीं झेल सकतीं, पुरुषों-जैसा धीरज नहीं दिखला सकतीं। एक बात और भी है—स्त्रियां कभी शिकायत नहीं करतीं। पुरुष सैनिक जब अधिकारियोंके सामने शिकायत करेंगे कि उन्हें अमुक चीज नहीं मिलती या अमुक चीज चाहिए, तब स्त्रियां हमेशा ही यह उत्तर देंगी—हमें कुछ नहीं चाहिए।''

स्वभावतः यह प्रश्न होता है कि जब स्त्रियोंकी इन रेजिमेण्टोंको पुरुष रेजिमेण्टोंके साथ हफ्तों रहना पड़ता होगा, तब उनके नैतिक जीवनपर क्या असर पड़ता होगा? इस तरह मिल-जुलकर रहनेके अवसर अक्सर आते रहते हैं; परन्तु चीनी पुरुष सैनिक इस मामलेमें बिलकुल पक्के हैं और प्रत्येक अवस्थामें वे महिला सैनिकोंका सम्मान करते ही हैं। पुरुष सैनिकोंको जीवनका बड़ा कटु अनुभव हुआ है, आक्रमणकारी जापानियोंके कारण उन्हें अपनी स्त्री, बच्चों, माता और बहिनों, सभी प्रियजनोंको छोड़कर आना पड़ा है। इन प्रियजनोंमेंसे कितने ही जापानियोंकी गोलियोंके शिकार हुए हैं। इन सबकी व्यथासे पुरुष सैनिकोंका हृदय संक्षुब्ध रहता है और उनके क्षोभका यह भाव प्रकट होता है उस दृढ़ताके रूपमें, जिसे वे देशके शत्रुओंसे लड़नेमें दिखला रहे हैं। उनके सामने एक ही बात होती है—शत्रुपर कठोरसे कठोर आघात करना। फिर, युद्ध-क्षेत्रमें जापानियोंसे लोहा लेनेवाली स्त्रियां भी तो आखिर सैनिक ही हैं। स्वयं वे भी तो यह भूल गयी हैं कि वे स्त्रियां हैं। उन्होंने अपना स्त्री-भाव दूर कर दिया है। अपने बनाव-शृङ्गारकी ओर उनका बिलकुल ही ध्यान नहीं है। किसी सैनिककी पुरानी वर्दी पहनकर ही वे काम चला रही हैं। उनमेंसे बहुतोंने अपने शिरके बाल भी कटा दिये हैं। फिर भी कभी-कभी यह होता है कि कोई-कोई पूर्व-प्रेमी बहुत दिनोंके बाद खाइयोंमें अचानक एक दूसरेके सामने आ जाते हैं और आंखें चार होते



सेनाके हेड क्वार्टरमें भोजन और सफाईकी व्यवस्था रखनेवाली अंगरेज महिलायें।

ही अतीतकी खोयी हुई स्मृति जग जाती है। इस तरहकी कोई बात जब होती है, कानोंकान उसे फैलनेमें देर नहीं लगती। आखिर पुरुषों और महिलाओंके शरीरमें—खाइयोंमें होनेसे क्या—हृदय तो है ही। चीनी अधिकारी यह नहीं चाहते कि उनके सैनिकोंका हृदय मोमका हो, जो थोड़ी-सी आंच लगते ही पिघल जाय, धोखा दे जाय।

यहां तक चीनके सम्बन्धमें हुआ। इस देशके इतिहासमें महिलाओंके शस्त्र लेकर युद्ध-क्षेत्रमें जाने और शत्रुसे लोहा लेनेके बहुत उदाहरण हैं। प्राचीन कालमें हम केकईको राजा दशरथके साथ युद्ध-क्षेत्रमें जाता हुआ पाते हैं। इधर मध्य-कालमें अहिल्याबाई, दुर्गाबाई, लक्ष्मीबाई आदिका उल्लेख इतिहासमें गौरवके साथ किया गया है। इधर महात्मा गांधीने जब-जब राष्ट्रीय सङ्घर्ष किया है, महिलायें अपने हिस्सेका कार्य करनेमें पीछे नहीं रही हैं, उन्होंने अपनी मनोवृत्ति बदल दी है और घरसे बाहर निकलकर लाठी चार्जसे लेकर कारावास तक, सब तरहकी कठिनाइयोंका स्वागत किया है और बतला दिया है कि अवसर आनेपर, मातृभूमिकी पुकार होनेपर वे भी अपना कर्तव्य पालन करनेमें, तितिक्षा, तप और त्याग दिखलानेमें पुरुषोंसे पीछे नहीं हैं। यह कुछ अहिंसात्मक सङ्घर्षके सम्बन्धमें ही नहीं है, हमारा विश्वास है कि भारतीय महिलाओंका युद्धस्थलमें अवतीर्ण होकर पराक्रम दिखलानेका गौरवपूर्ण संस्कार मिट नहीं गया है। भारतीय नारी वीर-वेशमें दुर्गा, युद्धकी देवी होती है। ९ वर्ष पहले अबीसीनियापर इटलीने आक्रमण किया था, उस समय वहांकी महिलाओंने अपने देशके शत्रुओं-के विरुद्ध शस्त्र धारण किया था और अब भी जब वहांसे इटालियनोंको मार भगानेका अवसर आया है, वे अपने पति, पिता और भाइयोंके कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर युद्ध-क्षेत्रमें डट गयी हैं। यूरोपके जो देश आज युद्ध-लग्न हैं, उनमें भी स्त्रियां अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देशसेवा कर रही हैं, त्याग, साहस, धैर्य और सहिष्णुताका अपूर्व परिचय दे रही हैं। जब हम यह सोचते हैं कि ये स्त्रियां वे हैं जिन्हें ओठ और नाखून रंगने, पफ, पाउडर और लवेण्डर-से चेहरेको आकर्षक बनाने, वेश-भूषा संवारने, शिरके बाल ही नहीं, आंखोंकी बिन्नियों तकको बनाने और दिन-रात रंगरेलियां करनेसे फुरसत नहीं थी और जिनका जीवन विलासितामय हो रहा था, तब सहस्र मुखसे सराहना करनेको जी चाहता है। युद्धके आरम्भमें ही जब सैनिकोंको अधिक संख्यामें भर्ती किया गया, स्त्रियोंने दफ्तरों, कारखानों, दूकानों और दूसरे क्षेत्रोंमें पुरुषोंका स्थान ले लिया, उन्हें सैनिक बनकर युद्ध-क्षेत्रमें जाने और शत्रुसे लड़नेके लिए अवकाश दे दिया। युद्धके कारण कितने ही नये उद्योगोंका आरम्भ किया गया। स्त्रियोंने इनमें भी पूरा योग दिया और देशकी आन्तरिक व्यवस्था सम्बन्धी दूसरे कितने ही कार्योंका भार भी उन्होंने अपने कन्धोंपर उठाया। जिन स्त्रियोंके लिए घर छोड़ना सम्भव नहीं है, वे घरपर रहकर ही सैनिकोंके लिए, जिनमें उनके पति, पुत्र, पौत्र, भाई आदि प्रियजन भी हैं, अवकाश-के समयका सदुपयोग करती हैं, किरोसियासे तौलिया, मोजे, स्वेटर, आदि बुनती हैं। साबुन, सिगरेट, पुस्तकों आदिके साथ इन चीजोंको वे पारसल द्वारा सेनामें अपने स्वजनोंके पास भेजती रहती हैं। इस तरहकी चीजोंको सैनिकोंके पास भेजनेके लिए वे सामूहिक आयोजन भी करती हैं।

पिछले साल अगस्त और सितम्बरमें जर्मनोंने इंगलैण्ड-

पर हवाई जहाजों द्वारा हमला किया था। इन हमलोंको रोकनेके लिए अंगरेजोंने पहलेसे ही आकाशमें बैलूनों द्वारा तारोंकी रुकावट डाल रखी थी। यह रुकावट बड़ी कारगर साबित हुई। रुकावटके ये तार जिन बैलूनोंमें लटकते रहते हैं, उन्हें इंगलैण्डमें इन दिनों कितने ही नये और पुराने कारखानोंमें तैयार किया जाता है, जिनमें हजारों स्त्रियां काम कर रही हैं। काम दिन-रात २४ घण्टे जारी रहता है। आठ-आठ घण्टेकी ड्यूटीपर तीन पारियोंमें कर्मचारी आते हैं। कर्मचारियोंमें ८०-९० सैकड़ा स्त्रियां होती हैं। इस कार्यकी शिक्षा देनेके लिए स्कूल हैं। अधिकांश स्कूल फैक्ट-रियोंमें ही हैं। पहले बैलूनोंको सीनेकी पूरी शिक्षा दी जाती है और जब छात्रायें इस कार्यमें दक्ष हो जाती हैं तब उन्हें फैक्टरीमें भेजा जाता है।

इंगलैण्ड और अन्य देशोंमें स्त्रियोंकी युद्धकालीन देश-सेवा इस तरहके कार्यों तक ही सीमित नहीं है, गोली, बारूद, बम, कारतूस और शस्त्रास्त्र बनानेके कारखानोंमें भी वे कार्य कर रही हैं। बैलून तैयार करनेके कार्यकी अपेक्षा यह कार्य कुछ कठिन है, तथापि इस कठिनाईको वे आजकल कठिनाई नहीं गिन रही हैं और उनकी क्षमता देखकर दांतों-तले अंगुली दबानी पड़ती है।

इंगलैण्डकी स्त्रियोंको युद्ध-सम्बन्धी सेवाओंका जो अनुभव है, वह नया नहीं है। गत महासमरमें १९१६-१७ में ब्रिटेनको अपनी स्थल, जल और वायु-सेनाके लिए यथेष्ट संख्यामें पुरुष मिलनेमें कठिनाई अनुभव होने लगी थी। युद्ध-कालमें जहां कितने ही नये उद्योगोंको चलाना आव-



अक्सर वर्दी पहने हुए ही सोना पड़ता है।



बैलून बनानेकी शिक्षा।

श्यक होता है, वहां पुराने उद्योग-धन्धोंको भी तो चालू रखना ही पड़ता है। कोई राष्ट्र कितने अर्से तक युद्ध चलाता रह सकता है, यह बात कितनी ही दूसरी बातोंके अलावा इन उद्योग-धन्धोंके ठीक तरहसे चलते रहनेपर निर्भर है। १९१७ की जनवरीमें पुरुषोंकी कमीकी समस्या हल करनेके लिए युद्ध-कौन्सिलकी बैठक हुई। एक अधिकारीको फ्रान्स भेजा गया। उसने लौटकर बतलाया कि कमसे कम १२००० आदमी सेनामें अर्दली, बावर्ची, क्लर्क, टेलीफोन आपरेटर आदिका कार्य करते हैं और यदि स्त्रियां इनका स्थान ले सकें, तो इन सबको युद्ध-क्षेत्रमें खाइयोंमें भेजा जा सकता है। इस निर्णयमें विलम्ब नहीं लगाया गया। स्त्रियोंकी एक सेना खड़ी की गयी, जिसमें बातकी बातमें एक लाख महिलायें भर्ती हो गयीं। जल-सेना और वायु-सेना विभागोंने अपने महिला दलोंका सङ्गठन अलग किया। इसके साथ ही महिलाओंकी ट्रान्सपोर्ट सर्विस भी सङ्गठित की गयी। इन सबने गत महासमरमें बड़ी सराहनीय सेवा की थी।

१९३८ में जब वर्तमान महासमरके बादल ही मंडरा रहे थे, इंगलैण्डकी महिलाओंको यह समझनेमें देर नहीं लगी कि उनके सामने कैसा कठिन समय उपस्थित होने-वाला है। मई १९३८ में, युद्ध आरम्भ होनेसे सवा साल पहले, एक दिन सात महिलायें ब्रिटिश सरकारके युद्ध-विभागमें गयीं और महिलाओंकी एक सेना सङ्गठित करने-का प्रस्ताव रखा। ये महिलायें गत महासमरमें प्रशंसनीय सेवा कर चुकी थीं और इंगलैण्डकी सात महिला संस्थाओं-

का प्रतिनिधित्व कर रही थीं। युद्ध-विभागने योजनापर अच्छी तरह विचार करनेके बाद सितम्बर १९३८ में, वर्तमान युद्ध आरम्भ होनेसे १ साल पहले २० हजार स्त्रियोंकी सेना खड़ी करनेका निश्चय किया और अगले महीनेसे केवल १२० स्त्रियोंसे यह कार्य आरम्भ हो गया। आज इनकी संख्या कई लाख है और सेनाका कोई विभाग ऐसा नहीं है जिसमें महिलायें न हों। कई विभागोंका कार्य तो केवल महिलाओंके ही हिस्सेमें पड़ गया है।

इंगलैण्डमें महिलाओंकी इस सेनामें जो युवती भर्ती होना चाहती हो, उसे कमसे कम १८ सालका तो होना ही चाहिए; परन्तु ४३ सालसे अधिकका नहीं। अलबत्ता, जिन स्त्रियोंको गत महासमरमें सैनिक सेवा करनेका अवसर मिला हो, उन्हें ५० सालकी उम्र होनेपर भी भर्ती किया जाता है। इंगलैण्डमें महिलाओंमें युद्धमें भाग लेनेके लिए इतना उत्साह है कि १८ वर्षकी उम्र नहीं होनेपर भी वे भर्ती होने पहुंच जाती हैं और १८ वर्षकी उम्र होनेका बहाना बनाकर भर्ती होनेका प्रयत्न करती हैं। उम्रकी भांति ही अधिकारी ऊंचाईपर भी पूरा ध्यान रखते हैं। ५ फीट २ इञ्चसे कम ऊंचाई नहीं होनी चाहिए। कम ऊंचाई होनेपर यह आशा नहीं की जाती कि वे भारी-भारी चीजोंको उठाने और रखनेका कार्य आसानीसे कर सकती हैं। उम्र और ऊंचाई उपयुक्त होनेपर ये युवतियां कई फार्म भरती हैं। डाक्टर यह देखता है कि उनका स्वास्थ्य ठीक है या नहीं। यदि सब बातें ठीक हुईं, तो उन्हें घर जाने और इन्तजार करनेके लिए कह दिया जाता है। इंगलैण्डमें महिलाओंको फौजी शिक्षा देनेके लिए पांच बड़े-बड़े डिपो हैं, परन्तु अक्सर कई महीने बाद बुलाये जानेका नम्बर आता है। जबसे इनकी शिक्षा आरम्भ होती है, इनको सरकारकी ओरसे सारी आवश्यक वस्तुयें मिलने लग जाती हैं। इसके अलावा उन्हें कुछ जेब-खर्चके लिए भी मिलता है—रोजाना वालण्टियरके १ शिलिङ्ग ४ पेन्स से लगाकर चीफ कमाण्डेण्टके २८ शिलिङ्ग ८ पेन्स तक दर्जेके अनुसार। भोजनकी व्यवस्था कैम्पमें ही होती है; परन्तु यदि यह सम्भव न हो, तो उन्हें उसके लिए रोजाना ३ शिलिङ्ग ८ पेन्ससे लगाकर ८ शिलिङ्ग ९ पेन्स तक भत्ता अलग दिया जाता है। उन्हें वहां साधारण कवायद-परेडके अलावा कितने ही कार्योंकी शिक्षा दी जाती है, जैसे प्राथमिक उपचार, गैसके नकाबोंका व्यवहार, टेलीफोन क्लर्क, टेलीप्रिण्टर आपरेटर, बावर्चीखाने, गोदाम और दफ्तर सम्बन्धी सारे कार्य। कैम्पमें इस शिक्षामें उन्हें महीना-सवा महीना लग जाता है। जीवन बड़ा कठोर मालूम होता है; परन्तु यह कौन नहीं जानता कि स्वतन्त्रता जितनी कठिनाइयां झेलकर प्राप्त की जाती है, उसकी रक्षा करनेके लिए भी वैसी ही कठिनाइयां सहनेके लिए व्यक्तिको तत्पर रहना पड़ता है। इंगलैण्डके इस महिला दलमें सभी श्रेणियोंकी स्त्रियां भर्ती हुई हैं और हो रही हैं। इनमें कोई किसी सैनिक अफसरकी पत्नी है, तो कोई किसी पुलिस कान्स्टेबलकी पुत्री या बहिन। कोई पहले नर्स, क्लर्क, मिस्त्री, बावर्ची, ड्राइवर, टेलीफोन आपरेटर या अभिनेत्री थी, तो कोई लेखक, कैशियर या फोटोग्राफर। कोई किसी दूकानमें काम करती थी, तो कोई किसी फैक्टरी या होटलमें। किसीने दर्जीगिरीका काम कर रखा था, तो किसीने चित्रकारी या केश-सज्जाका। कोई किसी गृहस्थके यहां काम करती थी, तो कोई अपने ही घरका सारा भार उठाये हुए थी। आज इन सब महिलाओंका जीवन बिलकुल ही बदल गया है। कितनी ही देवियां कार्यवश वर्दी पहिनकर ही खुशीसे सोती हैं, जिससे यदि आवश्यकता पड़ जाय, तैयार होनेमें उन्हें विलम्ब न लगे। जीवनकी विभिन्न परिस्थितियोंमें रहनेपर भी आज ये महिलायें एक-सी वर्दी पहनकर एक ही मेजपर साथ-साथ एक तरहका खाना बड़ी खुशीसे खाती हैं; किन्तु इस कठिन स्थितिमें रहनेपर भी जब उन्हें अवकाश मिलता है, अपनी किरोसियाका उपयोग किये बिना नहीं रहतीं।

युद्धलग्न देशोंकी महिलाओंके इस जीवनकी ओर स्वदेशकी बहिनें और मातायें क्या दृष्टिपात करेंगी ? हम सबने उस युगमें जन्म लिया है, जिसमें किसी भी देशके पुरुषों और स्त्रियोंके सामने परीक्षाका कठोरसे कठोर अवसर उपस्थित हो सकता है—और आज क्या हमारे सामने वह अवसर नहीं है ?

——

मांगका सिन्दूर

श्री मनोहरलाल बजाज

शहनाईकी धीमी ध्वनि हवाकी लहरोंमें गूंज रही थी और साथ ही वे गीत भी सुनाई पड़ रहे थे, जो रमाको बिदा करते समय रिश्तेदार स्त्रियां हिचकियां ले-लेकर गा रही थीं।

राधा छतपर बैठी यह करुणा-पूर्ण दृश्य देख रही थी। सारी गली बिजलीके प्रकाशसे जगमगा रही थी। रमाके मकानके आगे कहार पालकी लिये खड़े थे और बारातियोंकी एक अजीब-सी हलचल मची हुई थी। इतनेमें लड़कीके रोनेका शब्द सुनाई दिया, जिसपर सभी निस्तब्ध होकर लड़कीके पिताकी ओर ताकने लगे। वे भीगी आंखोंसे लड़कीको गोदमें लिये हुए पालकीकी ओर बढ़ रहे थे।

एक बार फिर बाजोंका शब्द गूंजा। अब पिताने जी कड़ा करके अपनी लाड़ली लड़कीको पालकीमें बैठा दिया। लड़की सिसकियां भरने लगी और लड़केवाले खुशीके बाजे बजाते हुए चलने लगे। राधाने देखा कि सब हलचल बन्द हो चुकी है, सिवाय स्त्रियोंकी आवाजके, जो भरे हुए कण्ठोंसे सुहागके गीतका आखिरी पद गा रही हैं। उसने अपने आंसू पोछनेके लिए धोतीका आंचल उठाया। अश्रुओंसे आंचल पहले ही भीग चुका था।

उसे वहीं बैठे-बैठे याद आया कि एक दिन वह भी इसी प्रकार ब्याही गयी थी। इसी प्रकार पिताने उसे पालकीमें बैठाते हुए कहा था—"अब तेरा हमसे कोई सम्बन्ध नहीं। आजसे तेरी दुनिया, तेरा सुख-दुःख, सब तेरे पतिके चरणोंमें है।" तब मांने भी उसके सिरपर हाथ फेरते हुए कहा था—"रोकर क्या बनेगा, बेटी। संसारका नियम ही ऐसा चला आया है कि लड़की सयानी होकर पराये घरकी लक्ष्मी बन जाती है।" इसके बाद वह अपनी ससुरालमें आ गयी थी और अभी छः मास तक ही पतिका सुख देख पायी थी कि एक दिन उसकी मांगका सिन्दूर और हाथोंके कङ्गन लेकर उसके पतिदेव सदाके लिए चले गये। इस यादसे उसकी आंखोंसे आंसू बहने लगे।

× × ×

आज वह घरमें अकेली है। सास, ससुर और देवर, सब निर्जला एकादशीका स्नान करने हरद्वार गये हैं। जबसे नरेन्द्रदेवने उसे इस दुनियामें बिलखता छोड़ा, वह सासकी उपस्थितिमें कुछ डरी और दबी हुई-सी रहती है। सासको पास आया देख, वह झट किसी न किसी काममें लग जाती है। पता नहीं, अब उसमें यह भाव क्यों बढ़ रहा है कि वह ससुरालवालोंकी कुछ नहीं होती। वृथा इस घरमें पड़ी हुई है। वह चारों तरफ आंखें फाड़-फाड़कर देखती है और यह जान लेनेके लिए बड़ी अधीर दिखाई देती है कि अब वह क्यों उन लोगोंके बीचमें गैर-सी मालूम होती है। अभी कलकी बात है कि सासकी इकन्नी गुम हो गयी थी, तो उसने सारा घर सिरपर उठा लिया था। ससुरके शान्त करानेपर उसने कहा—"मुझे इकन्नीकी चिन्ता नहीं। मैं तो चोरको पकड़ना चाहती हूं। आज इकन्नी उठी है, कल न जाने क्या गुम होगा।" और जब ससुर चले गये, सास चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी—"मैं चोरको खूब जानती हूं, जिसने यह इकन्नी उठायी है।" उस समय पता नहीं, राधा क्यों समझने लगी थी कि सासका सङ्केत उसीकी ओर है। ऐसी छोटी-छोटी बातोंसे प्रतिदिन उसकी आंखोंमें धुआं-सा लग जाता।

आंखोंको हथेलियोंसे दबाती हुई वह उठी और आकर अपनी चारपाईपर बैठ गयी। नियम-विरुद्ध चलनेसे जीवनमें एक नवीनता-सी आ जाती है, जो प्रायः किसी अंश तक मनोविनोदका काम दे जाती है। वह पैताने रखे हुए बिस्तरपर सिर रखकर लेट गयी और एक लम्बी सांस ली। जब उसने हृदयमें यह विचार दुहराया कि आज उसकी सास घरमें नहीं है, तो घर और आकाश उसे कितने विस्तृत और कितने प्यारे प्रतीत हुए। प्रतिदिन तो जैसे इसी घरमें उसका दम घुटता था।

वह सोचने लगी कि जब पहले-पहल वह इस घरमें आयी थी, तब इसी सासने किस प्रकार उसकी बलैयां ली थीं। घर-घर उसकी प्रशंसा करती न थकती थी कि "बहन! बहू क्या है, सच्चा हीरा है। हरएकके भाग्यमें कहां कि ऐसी

लक्ष्मी बहू मिले।" और जब एक बार जरा उस विधवा ब्राह्मणीका छोटा लड़का मैले वस्त्रोंसे उसे—नयी बहूको—देखने आया था, तो इसी सासने उस अनाथ बालकके मुंह-पर जोरसे चपत लगाकर कहा था—"फिर नङ्गे सिर मेरी बहूके सामने आया, तो पकड़कर खाल उधेड़ दूंगी।"

आज इस सास और उस सासमें कितना अन्तर है!

× × ×

दिनके स्वामी हैं यदि सास और ससुर, तो रातके राजा हैं पतिदेव—जिन्होंने पहली रात ही उससे इतना प्रेम किया था कि राधा उन्हें अपना सर्वस्व समझने लगी थी। तब उसने इस असीम शून्यमें झांककर देखा था कि उसकी दुनियाका सूर्य कणमें उतर आया है। सारा आकाश आंख-के तिलमें समा रहा है और यह अनन्त विश्व एक मूर्तिमें प्रकट हो रहा है। उसने अश्रु-युक्त आंखोंसे अपने देवताके चरण पकड़ लिये। मानो अब उसकी इच्छाओंके आगे एक रेखा खिंच गयी थी।

सहसा नरेन्द्रदेवकी दृष्टि मेजपर पड़ी, जहां भोजन थालीमें पड़ा ठण्डा हो रहा था। उन्होंने थाली उठाकर बीचमें रख ली और राधाकी ओर एकटक देखकर कहा—"रानी! कुछ खाओ तो।"

वह लजाते हुए बोली—"मुझे भूख नहीं। आप ही भोजन कीजिये।"

"मैं!"—नरेन्द्रने दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए कहा—"सच मानो, रानी! तुम्हें देखकर मेरी सारी भूख मिट गयी है।" फिर उन्होंने राधाकी झुकी हुई ठोड़ीको अंगुली-से ऊपर उठाते हुए कहा—"कितना सुन्दर है तुम्हारा मुंह!"

"आपके पास बैठकर मुझे भी भूख नहीं रही।"

"खूब!" नरेन्द्रदेव खिलखिला उठे—"तब तो मुझे कमानेसे छुट्टी मिली। यदि तुम्हें भूख लगे, तो मेरे पास बैठ जाना। मुझे जब भूख लगेगी, मैं अपनी रानीके दर्शन कर लूंगा।"

राधा मनमें मुस्करायी। कितने भावपूर्ण हैं ये वाक्य। कितना प्रेम टपकता है इन शब्दोंसे। यदि इसी प्रकार उसे पतिका प्रेम मिलता रहा, तो उसका दाम्पत्य जीवन बड़े आनन्दसे बीत जायेगा।

वह रात यों ही हंसते-खेलते बीती। कोई भी सोया नहीं—सुहाग-रातको नींद भी किसे आती है?

स्त्री अबला है। समाजमें बिना पतिके वह अपाहिज है। यह जानकर दिन-रात उसने अपने पतिकी सेवा की थी। वे भी उसपर मन्त्रमुग्ध थे। जब वे दिन-भरके काम-काजसे थके घर आते, तो राधा उनके लिए गर्म दूध लेकर आती। वह प्यारसे उसके मुखकी ओर निहारकर कहते—"तनिक मुस्कराओ तो, रानी। तुम्हें मुस्कराते देख मेरे हृदयका सारा बोझ उतर जाता है।"

वह लज्जासे मुस्कराकर गर्दन नीचे कर लेती। तब नरेन्द्रदेव बेसुध होकर उस लज्जा-मयी मुसकानमें मग्न हो जाते। यह उन्हें प्रायः कवि बना दिया करती थी। वह खाली गिलास उसके हाथमें देते हुए कहते—"रानी! मेरे लिए इन कोमल हाथोंको कष्ट मत दिया करो।"

तब वह कहती—"आप नहीं जानते कि आपके लिए कष्ट उठाकर मुझे कितना आनन्द मिलता है।"

ऐसे पवित्र प्रेमको देखकर नरेन्द्र गद्गद हो जाता। वह कहता—"मुझे विश्वास है कि हम लोग अनन्त काल तक इस प्रेम-सुधाको पीते रहेंगे।"

राधा सिर हिला देती। इस प्रकार चुपचाप उनके प्रणय-दिवस बीत रहे थे।

और तब एक दिन वह प्रातःकालके समय सीढ़ियोंसे नीचे उतर रही थी। रातको पतिदेवपर देर तक पङ्खा झलनेके कारण वह सो न सकी थी। इसलिए उनींदी आंखों-से, कुछ खोयी हुई-सी उतर रही थी कि सहसा सास और ससुरके वार्तालापसे वह चौंक उठी। उसने धोतीके आंचलसे पकड़ा हुआ लोटा सीढ़ियोंपर रख दिया और दबे पांव किवाड़की ओटमें होकर सुनना शुरू किया। यह सास थी, जो चावल छांटते हुए ससुरसे कह रही थी—"सुनते हो, बेटा तो हमारे हाथसे गया।"

ससुरने हुक्केका कश छोड़ते हुए कहा—"क्या मत-लब?"

सासने चावल वहीं रख दिये और पास आकर बोली—"देखते नहीं। बहूने आते ही न जाने क्या मन्त्र फूंक दिया है कि वह हमारी तो कुछ सुनता ही नहीं। न कभी पास आकर बैठता है और न कभी बताता है कि आज कौन-सा शाक

पकाया जाय। रूखा-सूखा जो परोस दो, चुपके खा जाता है। नमक कम हो, तो बोलता नहीं। अधिक हो, तो भी कुछ कहता नहीं। अब पता नहीं कि वह क्यों इतना बदल गया है कि पहली आवाजपर बोलता ही नहीं। मैं सामने आ जाऊं, तो अपराधियोंकी भांति दृष्टि नीचे डालकर पाससे गुजर जायगा। और यदि कहीं उस रानीसे भेंट हो जाय, तो दोनों घण्टों बैठे हंसते रहेंगे।" फिर सास रोने लगी—"मैं मां हूं, मां। मैं चाहती हूं कि मेरा नरेन्द्र फिर उसी तरह मेरे पास आये।"

राधा कांप उठी। उसने सोचा कि अब तक उसने कितनी भूल की है। अपने प्रेम-क्षितिजको सीमित बनाकर वह कितनी क्षुद्र-हृदया रही है। पतिके परे सास है, ससुर है, परिवार है और एक बड़ा समाज है। उसे इन सबकी उपेक्षा न करनी चाहिए। फिर स्त्री तो मनुष्य-मात्रकी मां है। उसका हृदय सबके लिए विशाल और उसका स्नेह सबके लिए अनन्त होना चाहिए।

उस समय वह मनुष्यत्वसे कितना ऊपर उठ गयी थी। तब उसने यहीं सासके रूपमें मांको देखा था और ससुरके वेशमें अपने पिताको पाया था, और स्नेहावेगमें रो पड़ी थी। उसने यह समझा था कि माता-पिताके प्रति पतिकी उदासीनताका उत्तरदायित्व वास्तवमें उसीपर है।

उसका जीवन यथार्थमें घटनाओंका संग्रह था। अभी कुछ दिन शान्तिसे कटे होंगे कि फिर एक ऐसी लहर उठी, जिससे उसकी नाव चट्टानसे टकराकर चूर-चूर हो गयी। एक दिन जब वह धूपमें बैठी बाल सुखा रही थी, तो नरेन्द्र कराहते हुए घर आये। छातीमें दर्द उठ रहा था। सारे घरमें एकदम बेचैनी फैल गयी। सास तो उसी समय दौड़कर मुहल्लेके डाक्टरको बुला लायी।

शीत ऋतु अपने पूरे यौवनपर थी, और इन दिनों वर्षा हो जानेसे सर्दी कुछ और भी अधिक चमक उठी थी। राधा नरेन्द्रको रोज रोकती थी कि कुछ दिनोंके लिए सैर छोड़ दीजिये, परन्तु उन्होंने एक न मानी। आज प्रातःकाल सर्दी छातीमें बैठ गयी, जिससे उन्हें निमोनिया हो गया।

अब नरेन्द्रदेव दिन-रात पलंगपर पड़े रहते। सारे घरमें सन्नाटा रहने लगा। डाक्टर रोगीको देखते, और पञ्जोंके बल बाहर आकर नरेन्द्रके पितासे कुछ धीरे-धीरे कहते। कोनेमें बैठी हुई राधा, घूंघटकी ओटसे ससुरके अनमने मुख-की ओर देखती और आनेवाले खतरेकी कल्पना करके मन ही मन रोने लगती।

मनुष्य लाख करे, परन्तु होता वही है, जो भाग्यमें लिखा हो। आखिरी शामको नरेन्द्रके फिर हलका-हलका दर्द उठने लगा। वे बिस्तरपर पड़े कराहने लगे। जल्दीसे डाक्टरको बुलाया गया, जिसने आते ही जो नींद लाने-वाली दवाई दी, तो फिर नरेन्द्रकी निद्रा भङ्ग न हुई।

इधर नरेन्द्रकी सेवा-शुश्रूषा करते-करते राधाका अङ्ग-अङ्ग टूट चुका था। सारे शरीरपर बेहोशी-सी छा रही थी। तब सासने उसे वहांसे हटाकर ऊपर भेज दिया था कि वह वहां जाकर विश्राम करे। अभी आधी रात ही बीती होगी कि फिर उसकी मांने उसे झंझोड़कर उठाया। वह हड़बड़ाकर उठी और मांका उदास मुख देखकर एक अस्पष्ट भयसे उसकी बोलनेकी सारी शक्ति लुप्त हो गयी। वह चुपकेसे मांके पीछे हो ली, जो उसे नीचे ले आयी। नीचे आकर उसने स्त्रियोंके बीचमें पड़े हुए शवपरसे कपड़ा हटाया और अपना सिर पीटने लगी। राधाने अपने पतिकी ओर देखा, जिसे जीवन-ने अधीर कर रखा था, किन्तु अब मृत्युने पूर्ण शान्ति प्रदान कर दी थी। उसकी आंखोंसे एक बूंद न निकली, न उसने कोई चीख मारी। वरन् चुपचाप टकटकी बांधे अपने प्रियतम-को निहारती रही। मानो शरीरका हर पुर्जा अपनी जगह-पर स्थिर हो गया था।

राधाको अपना कङ्गन खोलकर चितामें डालने, मांगका सिन्दूर पोंछनेकी याद आयी। उसे वह समय भी याद आया, जब उसने स्वर्गीय पतिके शवके हाथ जोड़कर अपने मनमें कहा था—"प्राणनाथ! एक दिन माता-पिताने सम्बन्ध तोड़कर मुझे आपके हाथ सौंपा था। आज आप भी मुझे अकेली छोड़े जा रहे हैं!" यह कहते हुए उसकी आंखोंसे आंसू बह उठे थे।

× × ×

राधाने गहरी सांस ली। मनमें अनेक विचार उठ आने-से उसके सिरमें पीड़ा-सी होने लगी। वह चारपाईपरसे उठी और टहलती-टहलती छतके पिछवाड़े चली गयी, जहां पवनके शीतल झोंकोंसे उसे आनन्द-सा मिला। उसने चारों दिशाओंमें दृष्टि दौड़ायी, देखा कि दिशान्त तक नीरवताका

राज्य है। सारी सृष्टि स्वप्नावस्थामें है। मेघाच्छन्न चन्द्रदेव किसी-किसी जगह अपनी धुंधली किरणें बरसा रहे हैं। इस शब्दहीन रात्रिमें, विस्तृत आकाशके नीचे, उसे पूर्ण शान्तिका अनुभव होने लगा। वह मुण्डेरका सहारा लेकर खड़ी हो गयी और नयन मूंदकर अपने आपको भूल गयी।

अनायास मुण्डेरके ऊपर पीपलकी टहनियोंपर खड़खड़ाहट होनेसे वह चौंक पड़ी। दृष्टि ऊपर की; देखा कि एक कबूतरी पीपलकी टहनीपर बैठी फुदक रही है और हृदय-विदीर्ण स्वरमें गुटरगूं-गुटरगूं बोल रही है। वह सोचने लगी कि यह कबूतरी भी शायद मेरी ही भांति विधवा है। कुछ दिन पहले यह अपने पतिके साथ कलोलें करती थी। इधर एक दिन किसी नटखट छोकरेने कबूतरपर गुलेल छोड़ दी, जिससे वह बेचारा मर गया। हो न हो, वह इसी कबूतरीका प्रियतम था।

राधाको कबूतरीकी दशापर बहुत दया आयी। जीमें आया कि वह इस कबूतरीको कलेजेसे लगाकर खूब रोये। संसारमें जितने पीड़ित लोग हैं, सबके दुःख-दर्द खुद लेकर उन्हें सुखी कर दे। क्या ही अच्छा होता, यदि वह ऐसा कर सकती। उसे रह-रहकर उस ब्राह्मणीके बालकका ध्यान आ रहा था, जिसे सासने झिड़कियां देकर चपतें लगायी थीं। हाय! वह कितना निर्दोष था। वह स्वयं भी निर्दोष होकर, कितना सङ्कट झेल रही है। पतिकी मृत्युके उपरान्त जब उसकी मांने उसे अपने साथ ले जाना चाहा था, तब इसी सासने रोककर कहा था—"दुनिया क्या कहेगी? जब खुशीका समय था, तब तो बहूको सिर-आंखोंपर बिठाया और जब बेचारीपर बुरे दिन आये, तो उसे घरसे निकाल बाहर किया। मैं अपने मुंहपर कालिख पोतना नहीं चाहती। राधा मेरी अपनी लड़की है; वह यहीं रहेगी। इसे नरेन्द्रकी निशानी समझ, अपना जी तो ठण्डा कर लिया करूंगी।"—और यह कहकर उसने धोतीके छोरसे आंखें पोंछ ली थीं। तबसे वह ससुरालमें जीवनके दिन पूरे कर रही है।

रखनेको तो सासने उसे रख लिया है, परन्तु सच्ची बात यह है कि वह ससुरालमें जी नहीं रही, वरन् रह रही है। वह देखती है कि कभी किसी प्रसङ्गमें उसकी सम्मति नहीं ली जाती और उसकी बातोंको कम ध्यानसे सुना जाता है। जब घरवाले आपसमें बातें कर रहे हों और ऊपरसे वह आ जाय, तो सभी मौन होकर उसकी ओर ताकना शुरू कर देते हैं। वास्तवमें कोई भी उसे पास बिठाकर प्रसन्न नहीं। यह वह खूब समझती है। वह घरका कामकाज करते थककर चूर हो जाय, तो कोई भी न कहेगा कि राधा! तुम थक गयी होगी। थोड़ा विश्राम कर लो। घरमें उसकी स्थिति ऐसी टहलुईसे अच्छी नहीं है, जो रूखा-सूखा खाकर जिन्दगी-भरके लिए हो।

फिर, कपड़े भी तो वह सबके उतारे हुए पहनती है—मैले और पेवन्द लगे हुए। जब उसके पतिदेव जीवित थे, तब वह कैसे बढ़िया वस्त्र और कैसे सुन्दर आभूषण पहनती थी। और अब जब वह खिड़कीमें खड़ी होकर मुहल्लेकी युवतियोंको रङ्ग-बिरङ्गी साड़ियोंसे सुसज्जित और हार-शृङ्गार किये हुए देखती है, तब उसका हृदय रेशमी साड़ियोंके लिए तरसकर रह जाता है। अभी उस दिनकी बात है कि सास घरपर न थी। अनायास आकाशपर घने बादल छा जानेसे नन्हीं-नन्हीं बूंदें पड़ने लगीं। उसने आधी बांहोंका ब्लाउज पहन रखा था। वर्षासे भीगी शीतल वायु जो उसकी कोमल बांहों और नर्म शरीरसे छुई, तो उसे वह दृश्य याद आया कि किस प्रकार सुहाग-रातको वह सज-धजकर अपने हृदयेश्वरके पास गयी थी। उसने अपनी निगाह कमरेकी ऊंची दीवारोंपर दौड़ायी और गहरी सांस लेकर रह गयी। फिर न जाने किस विचारसे उठी और घरके सब किवाड़ बन्द करके कपड़ों और गहनोंका सन्दूक उठा लायी। उसने सन्दूक खोलकर साड़ियोंकी तरफ देखा और मन-ही-मन एक अजीब-सी खुशीका अनुभव करने लगी। सब साड़ियोंको एक-एक करके उसने हाथमें लिया और उन्हें अतृप्त नेत्रोंसे देखा। सब्ज जारजटकी एक साड़ी लेकर उसने उसे बड़े आईनेके सामने ओढ़ा, जिसमेंसे उसकी गोरी-गोरी गोल बांहें अर्ध-नग्न दिखाई दीं। दो चमकते कांटे निकालकर उन्हें अपनी काली अलकोंमें छिपे हुए कानोंमें लटकाया। कोमल कलाइयोंमें कङ्कन पहने। माथेपर बिन्दी लगायी। मांगमें सिन्दूरकी रेखा खींची। फिर आईना देखा--ओह! वह कितनी सुन्दर है; जलतरङ्गके स्वरपर नाचती हुई समुद्रकी परियोंसे भी सुन्दर। उसका मुरझाया हुआ सौन्दर्य नित्यकी अपेक्षा कितना निखरा हुआ है। यदि वह नित्यप्रति ऐसा ही पहनावा पहने, तो सचमुच वह कितनी रूपवती जान पड़े।

परन्तु इस सौन्दर्यसे क्या, यदि कोई प्रशंसा करनेवाला नहीं हो ? यदि अपने भाग्यमें दो प्यार करनेवाली बांहें नहीं हो सकतीं, तो इस लावण्यसे क्या लेना है।

इस विचारसे उसकी कल्पनाको जोरका आघात लगा कि वह विधवा है—विधवा। विधवाको शृङ्गार न करना चाहिए। परन्तु वह आईनेके समक्ष कैसी सुन्दरी मालूम होती है। वह विधवा नहीं; भला विधवायें ऐसी सुन्दर हुआ करती हैं। उसे अपने सौन्दर्यपर बहुत दया आयी। आंखें जलसे भर गयीं और अपना सारा पहनावा तत्काल उतार डाला। मांगसे सिन्दूर पोंछा और उसके नेत्रोंसे पानीकी नदी बहने लगी। उस रातको ही उसने सोचा था कि इस तूफानको अवश्य दबाना चाहिए।

यही सोचकर अब उसने जीवनका किवाड़ बन्द कर रखा है और सदा अपने अन्तर्जगत्में मस्त रहती है। परन्तु उसका देवर मोहन कभी-कभी आकर इस किवाड़को खड़खड़ाता है और तब वह छिद्रोंमेंसे झांकती है। किसी बातसे प्रभावित होकर वह चाहती है कि किवाड़ खोलकर उसका स्वागत करे; किन्तु हाथ अपने आप रुक जाते हैं और वह अधीर-सी हो उठती है।

मोहन दस बजे खाना खाकर आफिस जाता है। अभी नौ ही बजते होंगे कि वह नहा-धोकर खाना खाने पहुंच गया। राधाने खाना परोसकर उसके आगे रखा। एक-दो ग्रास खाकर मोहनने मुस्कराकर कहा—"भाभी ! कैसी मीठी रोटी पकाती हो तुम।"

राधाने अपनी प्रशंसा सुननेके लिए कहा—"तुम नुक्स न निकालो तो और निकाले भी कौन ?"

"सच कहता हूं, भाभी। लगता है, जैसे तुमने रोटियोंमें शहद मिला दिया हो। जी चाहता है कि इन हाथोंको......" वह अपने आप रुक गया।

तब भाभीने, जो सब समझ जाती है परन्तु अपने देवरके मुखसे सुनना चाहती है, मुस्कराकर पूछा—"क्या करना चाहते हो इन हाथोंसे।"

"कुछ नहीं।"—वह लज्जित होकर मुस्कराने लगा।

फिर भाभीने देखा कि उस मुस्कराहटमें कितना निवेदन है, आवाजमें कितनी फरियाद है। वह अनुभव करती है, जैसे उसके अन्दर कोई तूफान-सा उठ रहा हो। वह जल्दीसे तवेपर रखी हुई रोटीकी ओर देखती है, जो प्रायः जलने लग जाती है।

कभी-कभी वह एकान्तमें सोचती है कि यह तूफान दबेगा भी। एक दिन जब उसके पतिदेव जीवित थे, उन्होंने ही उससे कहा था—"जानती हो रानी, कि ब्याह क्यों होता है।"

उसने गर्दन उठाकर नरेन्द्रकी ओर देखा था, मानो उसकी निस्तब्धता बता रही थी कि वह यह जान लेनेके लिए बहुत व्याकुल है।

"सुनो, मनुष्यमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि कितने ही मानसिक विकार होते हैं। मनुष्यको इन भावोंपर नियन्त्रण रखना चाहिए, यह सही है; परन्तु कभी-कभी ही नहीं, बहुधा यत्न करके भी मनुष्य इन भावोंपर नियन्त्रण नहीं रख सकता। मनुष्यकी इस स्वाभाविक दुर्बलताको सुव्यवस्थित रखने और समाजको उसकी तबाहियोंसे बचानेके लिए मनुष्यका ब्याह आवश्यक ठहराया गया है। स्वाभाविक मनोभावोंका वेग पानीके उस प्रवाहकी तरह है, जिसे एक हद तक ही बांधकर रखा जा सकता है। क्या तुम नहीं जानती कि जिस पानीके निकासके लिए कोई रास्ता नहीं होता, वह इधर-उधर फैलकर गन्दगी बढ़ाता है।" इसलिए वह ख्याल करती है कि यदि उसके अन्दरका तूफान शान्त न हुआ, तो क्या आश्चर्य है कि वह भी किसी दिन तबाह हो जाय।

कुछ भी हो, वह मोहनको चाहती है। उसकी मीठी-मीठी बातें सुनकर सुधबुध खो देती है। परन्तु आंख उठाकर भी उसकी ओर नहीं देखती। क्या इसीसे मोहनके प्रति उसका प्रेम प्रकट नहीं ? आज सुबह जब सभी हरद्वार जानेकी तैयारियां कर रहे थे, तो मोहन दौड़ता हुआ उसके पास आया—"भाभी ! सुन, हम हरद्वार जा रहे हैं। निर्जला एकादशीका स्नान करना है। चलोगी न तुम भी ?"

भाभी बोली—"नहीं मोहन ! मेरी ओरसे भी तुम्हीं एक डुबकी लगा लेना। मैं समझूंगी कि मेरा भी स्नान हो गया।"

मोहन नटखट था, भला चुप क्यों रहता। बोला—"वाह ! सुबहकी सरदीमें नहाकर ठिठरनेका समय जब आया, तो मेरी ओरसे भी डुबकी लगा लेना और जो घरमें

अच्छी-अच्छी मिठाइयां खानेका अवसर आया, तो फिर मोहन कौन होता है।"

भाभीने मुस्करा दिया। उसके मुंहसे निकल ही गया—"तुमसे क्या मिठाइयां अच्छी हैं ?"

अगले क्षण वह डर गयी, जैसे कोई उसका पाप देख गया हो। वह कहते-कहते रुक गयी। आगे कुछ न बोली।

"तुम्हें अवश्य चलना होगा, भाभी।" मोहनने उसकी कलाइयां पकड़ते हुए कहा—"मालूम होता है कि तुम मुझसे कुछ नाराज हो।"

मोहनने ज्योंही उसकी कलाइयां पकड़ीं, राधापर नशा-सा छा गया। शरीरमें बिजली-सी दौड़ गयी। उसके होठ अपने आप फड़क उठे। जीमें आया कि वह एक बार उसका हाथ अपनी छातीपर रखकर हृदयकी अवस्था बतलाये और कहे "क्यों अनजानकी तरह कहते हो कि मैं तुमसे नाराज हूं। मैं तो तुम्हारे नामकी माला फेरती हूं, तुम्हारे प्रेममें घुलती हूं।" परन्तु यह क्या ? उसकी हथेलियोंसे पसीना छूटने लगा। दिल जोरसे धक-धक कर उठा। उसने मोहनके हाथ अलग करते हुए, भर्रायी हुई आवाजमें कहा—"आदमी बनो, मोहन। कोई देखे, तो क्या कहे।" मोहन जैसे शर्मसे पानी-पानी हो गया। होठोंमें मुस्कराता हुआ, वहांसे भाग निकला।

चन्द्रदेव बढ़ते-बढ़ते सिरके ऊपर आ गये थे। आकाश बिलकुल निर्मल हो चुका था। नीले आकाशमें छोटे-छोटे तारोंका प्रकाश मन्द पड़ गया था। राधा अभी तक वहीं खड़ी थी। बीती हुई घटनायें एक-एक करके उसकी आंखोंके सामने आ रही थीं और वह सोच रही थी कि उसका जीवन कितनी विपत्तियों और कितनी इच्छाओंसे भरा है। रातकी सूनी घड़ियोंमें वह सदा अपनेको अकेला पाती है। कोई साथी भी नहीं, जिससे दिलकी बातें कह सके। मोहन है, जिसे वह तन-मनसे चाहती है और हर रोज सोचती है कि आज वह उसे अपना प्रेम बतलायेगी; परन्तु जब अवसर आता है, लोक-लज्जा उसे धर दबाती है, उसपर भय-सा छा जाता है, हृदयकी धड़कन तेज हो जाती है और वह उसकी ओरसे आंखें हटाकर तवेपर रखी हुई रोटीकी तरफ देखने लगती है, जो तेज आंचपर प्रायः जलने लग जाती है। परन्तु इतनी विपत्तियां रहते हुए भी उसे इस घरसे ऐसा अस्पष्ट मोह हो गया है, जो लम्बी सजावाले कैदीको प्रायः जेलखानेकी दीवारोंसे हो जाया करता है।

इसी समय घड़ीमें तीन बजेका शब्द हुआ। अब उसकी आंखें नींदसे भारी होने लगीं। चलो ! यह जीवन इसी प्रकार कटता रहेगा। जिसका उपचार नहीं, उसकी चिन्ता कैसी ? मनमें यह कहकर वह चारपाईकी ओर बढ़ने लगी। परन्तु अचानक दृष्टि जो पीपलकी टहनीपर गयी, तो उसके दिलमें जैसे कोई बर्छा छेदने लगा। उसने देखा कि एक सफेद कबूतर कबूतरीके पास बैठा है और उसकी चोंचमें अपनी चोंच डालकर क्रीड़ा कर रहा है। कभी कबूतरी इधर-उधर दौड़ती है, तो कबूतर गुटरगूं करता हुआ उसके पीछे भागता है। राधाके पैरोंकी आहट सुनकर वह जोड़ा चौंक उठा और देखते ही देखते पर फड़फड़ाकर आकाशमें उड़ने लगा। राधाने देखा, जैसे रुईके दो गाले हवाकी सतहमें तैर रहे हों। वह तृषित नेत्रोंसे उनकी ओर देखती रही। उसे ऐसा मालूम हुआ कि जीवन शून्य है। उसकी आंखें आंसुओंसे डबडबा आयीं और हृदय असह्य पीड़ासे व्याकुल हो गया। उसके सामने सामाजिक विभीषिका ताण्डव करने लगी। उसने अपनी विवशता अनुभव की। उसका मन हरद्वारमें जा पहुंचा। उसने सोचा—गङ्गा माईकी गोदमें ही मुझे सब व्यथाओंसे छूटकर चिरशान्ति मिल सकती है। उसने सोचा, एक अच्छा अवसर हाथसे निकल गया। परन्तु फिर आयेगा—यह सोचकर उसे कुछ सान्त्वना मिली और यह गुनगुनाते-गुनगुनाते उसकी आंख झपक गयी—"जीवन दिन चारका रे, मन मूरख फिर पछताना।"

———



नारीका स्थान—घरका प्राङ्गण या बाहर

श्री अवनीन्द्रकुमार, विद्यालङ्कार

भावी सामाजिक व्यवस्थाका जब हमारे सामने विचार आता है, तब पहला सवाल हमारे सामने यही आता है कि भविष्यकी हमारी दुनियामें नारीका स्थान क्या होगा। क्या आजके समान वह घरके आंगनमें बन्द रहेगी, या अमेरिकन नारीके समान पुरुषके कन्धेसे कन्धा भिड़ाती हुई, जीवनके हरएक क्षेत्र और हरएक दिशामें साथ-साथ सहयोग करती हुई, आवश्यकता आनेपर सङ्घर्ष करती हुई और पुरुषसे भी आगे बढ़नेका यत्न करती हुई चलेगी। हमें यह प्रश्न कुछ अटपटा-सा मालूम होता है; परन्तु इस प्रश्नके उत्तरपर हमारी सन्ततिकी शिक्षाका रूप और प्रकार और देशकी संस्कृतिका भविष्य-रूप निर्भर है। अतः हम इसको प्रवाहपर छोड़कर निश्चिन्त नहीं हो सकते। संयुक्त कुटुम्ब-प्रथा जिस प्रकार हमारे न चाहते हुए भी नष्ट हो गयी और रहे-सहे उसके अवशेष भी समाप्त होते जाते हैं, उसी प्रकार घर और गृहिणीके बारेमें हमारे पुराने विचारों, पुरानी धारणाओं और पुराने विश्वासोंपर प्रबल आघात हो रहे हैं। यदि हम योजनापूर्वक अपनी सामाजिक व्यवस्थामें नारीका स्थान निश्चित कर देंगे और नर-नारीकी महत्त्वाकांक्षाओंमें सामञ्जस्य और समन्वय स्थापित कर सकेंगे, तब सम्भव है कि हम घरके वर्तमान सुख, शान्ति और सुविधाको भी बनाये रख सकें, अन्यथा नारी-शक्तिके हृदयके अन्तरतम प्रदेशमें आज जो घोर विप्लव मचा हुआ है, वह हमारे घरकी संस्थाका ही उच्छेद कर देगा और अमेरिकनोंके समान हमारा जीवन भी होटलका जीवन हो जायगा और हमारे बच्चे, माताओंकी गोद और घरके हिण्डोलेमें लोरियोंके साथ न झूलकर शिशु-गृहोंमें दाइयोंकी गोदमें पलेंगे। यदि इसके विपरीत हमने बुद्धिमानी की, नर-नारीकी महत्त्वाकांक्षाओंमें सामञ्जस्य स्थापित कर दिया, नारीको नरके समान समाजमें स्थिति प्रदान कर दी और साथ ही उसका घरसे फ्रेञ्च नारीके समान सम्बन्ध स्थापित कर दिया, तब संम्भव है कि घरके कारण आज हम जो सुख, सन्तोष, शान्ति और सुविधा प्राप्त कर रहे हैं, वह भविष्यमें भी प्राप्त करते रहें।

प्रागऐतिहासिक काल और उसके बाद सभ्यताके प्रारम्भिक युगमें नर-नारीकी स्थिति एक समान थी। उस समय नारीके लिए न घर था, न उसने गृहिणीका नाम धारण किया था। अधीनताका सवाल ही उत्पन्न नहीं हुआ था। कई अंशोंमें नारी ही शासिका थी और वही प्रेरक शक्ति थी। जब तक मनुष्य-समाजने एक जगह स्थिर रूपसे बसकर रहना आरम्भ नहीं किया था और खेती करना नहीं सीखा था, तब तक नारी घरके आंगनमें बन्द नहीं हुई थी, परवश और पराधीन नहीं थी; क्योंकि जीविकोपार्जनमें उसका बराबरका भाग था। शिकार या खेती करने लगनेपर पुरुषने घरके बाहरका कार्य संभाला और स्त्रीने घरके आंगन या उसके आसपास होनेवाली खेतीका। खेतीके साथ ही नारीका स्थान गौण हो गया। नारीके पास घरका काम ही रह गया। जीविकोपार्जनमें उसका प्रत्यक्ष भाग नहीं रहा। नारी अपने उदर-निर्वाहके लिए नरके आश्रित होती गयी। समयके साथ उसकी यह आर्थिक अधीनता बढ़ती गयी और संस्कृतिके विकासके साथ उसकी प्राकृतिक भिन्नताने मिलकर नारीको सदाके लिए पुरुष-वृक्षके आश्रयमें रहनेवाली लता बना दिया।

छोटे-छोटे जनतन्त्रोंका स्थान जब बड़े-बड़े राज्योंने ले लिया, नारीकी पराधीनता और भी अधिक हो गयी। वह अब पुरुषके शृङ्गार, विलास और सुख-साधनकी एक सामग्री हो गयी। साम्राज्योंके टूटने और छोटे-छोटे राजाओंके उदय होनेपर और सामन्तशाहीका जन्म होनेपर नारीकी स्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं आया। विरक्त लोगोंने जहां उसको 'नरकका द्वार' बताया, वहां दुनियाबी पुरुषोंने घोषणा की—"न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति।" वह न दीनकी रही, न दुनियाकी। उसके लिए सबसे बड़ा धर्म 'पति-सेवा' बताया गया। स्त्रीकी महिमा, तपस्या और उसका गौरव इसीमें माना गया कि वह पतिकी सेवा एक निष्ठासे करे। नारीका सौभाग्य उसका सिन्दूर रहने तक माना गया।

सिन्दूर पुछते ही वह अभागी हो गयी। इसीलिए नारीने भी पतिके दीर्घायुष्यके लिए नाना प्रकारके व्रतों और अनुष्ठानोंका सिलसिला बांधा। मध्यकालकी नारी इस अवस्थामें ही सन्तुष्ट थी; क्योंकि उसको अपनी शक्ति, अपने अधिकारों और अपनी महत्ताका ज्ञान न था।

आधुनिक और वैज्ञानिक युगका जब उदय हुआ और औद्योगिक क्रान्तिने सामाजिक और आर्थिक ढांचा सर्वथा बदल दिया, मध्यवर्ग आगे बढ़ा। इसमेंसे एक नये वर्गका—पूंजीपति-श्रेणीका जन्म हुआ। स्वेच्छाचारी निरंकुश राजतन्त्रका अन्त होकर सीमित राजतन्त्र और जनतन्त्रका उदय हुआ। वकील, डाक्टर, इञ्जीनियर, पत्रकार आदि पेशोंके रूपमें मध्यम वर्गने समाजपर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। गांवोंकी जगह बड़े-बड़े शहरोंने ली। बड़े-बड़े कारखाने खुले। इस परिवर्तित स्थितिमें नारीकी भी आंखें खुलीं। उसको अपनी शक्ति और अपने गौरवका ज्ञान हुआ। अपनी स्थितिसे असन्तोष उत्पन्न हुआ। कृषियुगमें जब तक पुरुष दिन-भर खटता था, नारीको घरमें मेहनत करना अखरता नहीं था। परन्तु अब स्थिति बदल गयी। औद्योगिक और वैज्ञानिक क्रान्तिने श्रमको हल्का कर दिया। पुरुष पहलेसे भी अधिक सुख और आनन्दका उपभोग करने लगा। मजदूरोंके कामके घण्टे कम हुए, उनके जीवनकी सुख-सुविधा भी बढ़ी। नगरोंके सौन्दर्यमें अभिवृद्धि हुई। स्वभावतः इस युगकी नारीके मनको भी जनाकीर्ण नगरोंने अपनी ओर आकृष्ट किया। इस परिवर्तित स्थितिमें वह अपना स्थान ढूंढ़ती ही थी कि १९१४-१८ के विश्वव्यापी यूरोपियन महासमरने उसका स्थान पूर्ण रूपसे निश्चित कर दिया। नारीके मनमें विद्यमान भ्रान्तियां महासमरने दूर कर दीं। पुरुष-समाजने नारीके मनमें जो यह धारणा बिठा रखी थी कि उसमें पुरुषोंके समान क्षमता नहीं, योग्यता नहीं, वह कठिन और भारी कामोंको करनेके अयोग्य है, और इस कारण आत्मविश्वासका जो अभाव सदियोंसे हो गया था, उसे यूरोपियन महायुद्धने दूर कर दिया। महासमरके सङ्कटमें राष्ट्रका आह्वान आनेपर उसने पुरुषका छोड़ा काम ही नहीं किया, बल्कि अपनी योग्यता, क्षमता और सामर्थ्यसे सिद्ध कर दिया कि नारी और नरमें किसी प्रकारका अन्तर नहीं है, यदि उचित शिक्षा दी जाय और उपयुक्त अवसर मिले, तो वह उस सारे कामको, जो कि पुरुष केवल अपने लिए सुरक्षित समझे हुए है और समझता है कि नारी उनको नहीं कर सकती, पुरुषके समान ही योग्यता और चतुराईसे कर सकती है। महासमरने सिद्ध कर दिया कि नारीका स्थान समाजमें पुरुषके समकक्ष है, उसकी स्थिति पुरुषसे नीचे और अधीन नहीं है। यही नहीं, नारियोंने पुरुष-समाजको समाजकी शासन-व्यवस्था नारियोंके हाथोंमें देनेके लिए ललकारा और चुनौती दी कि जिस विश्व-शान्तिके लिए वह लालायित है और यत्न करके भी जिसको वह स्थापित नहीं कर सका है, उसको नारी कर सकती है। वर्तमान युद्धने नारीको एक नया अवसर दिया है। आजकी नारी पुरुषको कह रही है कि अब तक तुम जीवनके हरएक क्षेत्रमें असफल रहे हो, अतः समाज और राज्यकी बागडोर अब नारीके हाथोंमें दो। आज वह जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें पुरुषको चुनौती देती हुई अग्रसर हो रही है।

भारतीय नारी अभी मध्ययुगमें ही है। जो गांधी-युगकी महान् क्रान्तिने भी समाजके इस विचारको नहीं बदला है कि—

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति॥"

आज भी भारतीय आकाश इसी रागसे गूंज रहा है कि स्त्रीका स्थान घरमें है। स्त्री-शिक्षाका उद्देश्य लड़कियोंको योग्य माता और योग्य पत्नी बनाना है। स्त्री-शिक्षाका उद्देश्य स्त्रीको योग्य नागरिक बनाना है, यह बात अभी तक ध्यानमें नहीं आती। यही कारण है कि हमारे अनेक शिक्षण-शास्त्री सहशिक्षाके विरोधी हैं और वे बालकों और बालिकाओंकी शिक्षाके पाठ्यक्रममें अन्तर रखनेके पक्षमें हैं। आम जनता ही नहीं, शिक्षितोंमें भी यह विश्वास पाया जाता है कि स्त्री ताड़नसे ही वशमें रहती है। इस मनोवृत्तिका कारण क्या है?

जुहू, विश्ववरा आदि ब्रह्मवादिनियों और अनेक मन्त्रद्रष्टा स्त्रियोंके नाम वैदिक सूक्तोंके प्रारम्भमें हम पाते हैं। गार्गी, मैत्रेयी जैसी विदुषी और कैकेयी जैसी वीराङ्गनाका नाम भी हम भारतीय वाङ्मयमें पढ़ते हैं। मध्यकालमें मण्डन मिश्रको जीतनेवाले शङ्कराचार्यको भी पराजित करनेवाली स्त्रीका नाम 'शङ्कर दिग्विजय' में है।

ज्यामितिके अनेक साध्यों और प्रमेयोंसे भारतीय नारीका नाम जुड़ा हुआ है। विजयनगरम् साम्राज्यके अन्तःपुरकी सारी व्यवस्था ही नहीं, अपितु कोषकी व्यवस्था भी स्त्रियोंके हाथमें थी। पठान-कालमें रजियाको हम दिल्लीके सिंहासनपर देखते हैं। अहिल्याबाई, लक्ष्मीबाई, ताराबाई और मीराबाईको भी कौन नहीं जानता। इस समय मन्त्री और पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी तकके पदपर स्त्रियां पहुंची हैं। एक भारतीय स्त्री राष्ट्रीय महासभाकी अध्यक्ष भी हुई है। यह सब होते हुए भी वैदिक कालसे लेकर अब तक कभी भारतीय नारीको हम पुरुषके समकक्ष नहीं पाते हैं।

प्राचीन आर्य सभ्यता पितृमूलक थी और द्रविड़ सभ्यता थी मातृमूलक। आज जिस सभ्यतामें हमारा लालन-पालन हुआ है, वह पितृमूलक है। इसमें घरके अन्दर माताकी प्रधानता नहीं है, बल्कि पिताकी प्रधानता है। यही कारण है कि विद्या, वैभव और शक्तिकी कल्पना नारी-आकृति—सरस्वती, लक्ष्मी और चण्डी व काली-में करके भी हमने नारीको पुरुषके बराबर कभी स्थान नहीं दिया है। कल्पनाशील भारतीय मस्तिष्कने अर्धनारीश्वरकी कल्पना करके भी पुरुषकी ही प्रधानता कायम रखी। द्रविड़ जाति और आर्य जातिमें मिश्रण करनेके ख्यालसे उस जातिके देवी-देवताओंको आर्योंने अपना लिया। महादेव 'शिव' और 'रुद्र' रूप दोनोंमें प्रकट हुए। भवानी, पार्वती, चण्डी, काली, लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियोंको आर्य जातिने पूजा और आदरका स्थान दिया। मगर इन सबको आर्य देवताओंकी पत्नीके रूपमें। हम देखते हैं कि सतीको दक्ष-यज्ञमें जानेकी अनुमति शिवने नहीं दी थी। आर्य जातिने नारीकी समानताके सिद्धान्तको स्वीकार नहीं किया। ऋग्वेद और अथर्ववेदका सूर्या सूक्त—विवाह सूक्त—भी यही घोषित कर रहा है। पाणि-ग्रहणके समय जो मन्त्र पढ़े जाते और वर-वधू अग्निको साक्षी करके जो प्रतिज्ञा प्राचीन कालसे करते आये हैं, वह भी इसी बातको प्रकट करती है। इस बातको स्पष्ट करनेके लिए यहां प्रतिज्ञाके कुछ मन्त्र देना अप्रासङ्गिक न होगा।

वर वधूको वस्त्र देते हुए पारस्कर गृह्यसूत्रके निम्न वाक्य पढ़ता है—

"ओं जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्ति पावा। शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः॥"

"ओं या अकृतन्न वयन् या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवी जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः॥"

पार० गृ०। कां १। कं० ४।१२-१३

पाणिग्रहणके समय वर-वधू निम्न मन्त्रोंसे प्रतिज्ञा करते हैं—

ओं गृभ्णामि ते सौभग त्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्यांय देवाः।

ऋ० मं० १०। सू०-८५ म० ३६

ओं भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत्। पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव॥

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।

मया पत्या प्रजावति शंजीव शरदः शतम्॥

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्।

तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परिधत्तां प्रजया॥

अथर्व० कां० १४। सू० १। मं०५१-५३

पिता द्वारा कन्याका दान किया जाता है। वैवाहिक विधियोंमें कन्यादान पहली विधि है, जिसके बाद पाणिग्रहण होता है। इसलिए विवाहके मन्त्रोंमें रेखाङ्कित वाक्योंको देखकर हमें आश्चर्य न मानना चाहिए। जब पति पत्नीको कहता है कि मैं तेरा गृहपति हूं और तू मेरी पोष्या है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक युगकी भारतीय नारी समानताका अधिकार और अपनी आर्थिक स्वतन्त्रता खो चुकी थी। प्राचीन स्मृतिकारोंने, यह ठीक है कि विवाहका आदर्श 'सखा सप्त पदी भव' बताया है। सप्तपदीमें यह अन्तिम वाक्य है और सम्भवतः इसको हम हिन्दू विवाहका आदर्श कह सकते हैं। मगर व्यवहारतः और पाणिग्रहणके मन्त्रोंसे सिद्ध है कि आर्योंने नारीको पुरुषके समान नहीं माना। यह कोई अनहोनी बात भी नहीं है। कृषि-युगमें संसार-भरमें नारी अपनी स्वाधीनता खो चुकी थी। वेद भी कृषि-युगके हैं। यदि स्वर्गवासी रमेशचन्द्र दत्तके अर्थको ठीक माना जाय, तो आर्यका अर्थ ही किसान है (ऋगतौ)। इसलिए भारतीय नारीने यदि इस समय

अपनी स्वाधीनता खो दी, युधिष्ठिरने द्रौपदीको दांवपर लगानेमें ज़रा भी सङ्कोच नहीं किया, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। विस्मयकी बात केवल इतनी है कि अभी तक हम इस धारणाको पाल रहे हैं और पुष्ट कर रहे हैं।

भगवान् बुद्धके समय नारीको पुरुषके समान स्थिति प्राप्त नहीं थी। नारीको जब प्रवज्या देनेका समय आया, तब भगवान् बुद्ध भी चौंके, मगर पुरानी परम्पराको तोड़कर नारीको भी नरके समान प्रवज्या देनेका विधान किया। भगवान् बुद्धके समान भारतमें नारीकी स्वतन्त्रताका हिमायती इस देशमें बीसवीं सदीसे पहले कोई नहीं हुआ। हिन्दू धर्ममें संन्यासीका स्थान है, मगर संन्यासिनीके लिए जगह नहीं है। सामाजिक विषमताके मूलमें यही धार्मिक विषमता है। आर्थिक पराधीनताने इसको और भी बढ़ा दिया। नारीने पुरुषके द्वारा बनाये सब कायदे-कानूनोंको माना और उसके स्वेच्छाचारको भी सहन किया। इस पराधीनताकी मरुभूमिमें हरे-भरे स्थान केवल मनुके ये वाक्य हैं—

स्त्रियान्तु रोचमानायां सर्वन्तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥

मनु० ३, श्लो० ६२

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रै तास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

मनु० अ० ३, श्लो० ५५-५६

मगर मनुने भी समानताका अधिकार नहीं दिया। क्योंकि मनुने पूजा करनेकी विधि बतायी है—

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूति कामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवे च॥

मनु० अ० ३, श्लो० ५९

१९ वीं सदीके महान् सुधारक और आर्यसमाजके प्रवर्तक स्वामी दयानन्द भी इससे आगे नहीं गये। स्त्री और पुरुषकी समानताके अधिकारको स्वीकार नहीं किया। मनुने जो स्थिति स्त्रीकी बतायी है, अच्छे मालिक अपने भृत्योंको भी उसी स्थितिमें रखते हैं और मनुने स्त्रीके प्रति जिस प्रकारका व्यवहार करनेकी सिफारिश की है, वह व्यवहार चतुर मालिक अपने नौकरोंके साथ भी करते हैं। इसलिए यदि आज भारतीय नारी मनुके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित न करे, तो इसमें उसका कोई कसूर नहीं। मध्ययुगमें नारीका जीवन पतिके बिना निरर्थक माना गया। उसका स्वतन्त्र अस्तित्व और व्यक्तित्व है, इसको तक स्वीकार नहीं किया गया। जायदादसे भी उसको वञ्चित रखा गया। हमारा आज भी व्यवहार लड़कीकी अपेक्षा लड़केके प्रति अधिक पक्षपातपूर्ण होता है। लड़केकी इच्छाओंको पूरा करनेकी तरफ जितना ध्यान दिया जाता है, उतना लड़कीकी इच्छाकी पूर्तिकी ओर नहीं। इस स्थितिमें भी जब १९३० में महात्माजीने सत्याग्रह आरम्भ किया, सैकड़ों नारियोंने सदियोंसे लादे बन्धनोंको तोड़कर जेलोंकी राह ली और हंसते-हंसते उन कष्टोंको सहा, जिनके नामसे पुरुष घबड़ाते थे। नारी-जीवनमें एकाएक इस परिवर्तनसे भारतीय नारीमें एक नूतन जीवनने प्रवेश किया। उसकी आंखें खुलीं और आज वह घर-घरमें विद्यमान डिक्टेटरोंका अन्त करनेके लिए आगे बढ़ी है। नारीका मानसिक विकास जिस तेजीसे हो रहा है और उसमें जिस तीव्रगतिसे परिवर्तन हो रहा है, उतनी तेजीसे पुरुष-समाजका मानसिक क्षितिज विस्तृत नहीं हो रहा है और वह आज नारीको घरके प्राङ्गणमें जबर्दस्ती रखनेकी कोशिश करता हुआ दिखाई देता है।

आज भारतीय नारी शेष दुनियाकी नारीके समान घरमें ही बन्द रहकर रहनेको तैयार नहीं। यदि उसको जबर्दस्ती रखा जायगा, तो वह गृहिणीके गौरवपर भी लात मारनेको तैयार है। तुर्कीकी महिलायें सैनिक शिक्षा प्राप्त कर रही हैं, क्रीटकी नारियां ग्रीसके राजासे रणक्षेत्रमें जानेकी आज्ञा मांग रही हैं, तब भारतीय नारीको प्राङ्गणमें बन्द करके क्या रखा जा सकता है? आज युद्धका रूप बदल गया है। आज सेना सेनासे नहीं लड़ती, बल्कि सारा देशका देश दूसरे देशसे लड़ता है। सैनिक और असैनिक भेद जाता रहा है। हरएक बालिगके लिए इसने—चाहे वह नर हो या नारी—सैनिक शिक्षा आवश्यक कर दी है। राष्ट्र-रक्षाके प्रकारमें परिवर्तन हो गया है। अब सेनापर अपनी रक्षाके लिए नागरिक निर्भर नहीं रह सकते। नागरिकोंको अपनी रक्षा आप करनी होगी, अतः सैनिक शिक्षा

प्राप्त करना भी उनके लिए आवश्यक हो गया है। सैनिक शिक्षा-प्राप्त नारीको क्या घरके प्राङ्गणमें बन्द रखा जा सकता है?

एक समय था, जब नारी नौकरी करके जीविकोपार्जन नहीं करती थी। हम यह बात मध्यय श्रेणी और रईस श्रेणीको नजरमें रखकर कह रहे हैं। साधारण जनसमाजकी, जिसमें मजदूर और किसान हैं, नारियोंके बारेमें हम यहां कुछ नहीं कह रहे हैं। क्योंकि उनके सामने तो यह समस्या कभी आयी ही नहीं। उस समाजकी स्त्रियां तो प्राचीन कालसे लेकर आज तक घरसे बाहर जाकर काम करती हैं। पुरुषके समान जीविकोपार्जन करती हैं, घरका भी धन्धा करती हैं और पुरुषकी नकेल अपने हाथमें रखती हैं। मध्यम वर्गकी अपेक्षा वहां नारी अधिक स्वाधीन है और उसको ज्यादा अधिकार प्राप्त हैं। यदि वहां स्त्री कुछ पराधीन दिखाई देती है, तो इसका कारण यह है कि तथाकथित उच्च समाजकी स्त्रियोंकी देखादेखी वे भी वैसी बननेकी कोशिश करती हैं। इसलिए हमें यहां केवल मध्यम समाजकी समस्याको ही देखना है। यही समाज पैसा पास होनेपर हाथसे काम करना निन्दनीय समझता है। इसी सफेदपोश वर्गके सामने यह प्रश्न आज विकट रूपमें खड़ा है—नारी घरके प्राङ्गणमें रहे या बाहर।

जीवन अधिकाधिक खर्चीला होता जाता है। विज्ञानने जीवनको सुखी बनानेके अनेक साधनोंका आविष्कार किया है। मनुष्य इस कारण अधिकाधिक आरामतलब होता जाता है। वह अपनी शक्तिपर निर्भर न रहकर अब यन्त्रोंपर अधिक निर्भर रहने लगा है। अब उसका मनोरञ्जन अपने कण्ठसे निकला गीत नहीं करता, बल्कि रेडियो करता है। मगर जिस अनुपातसे जीवन-व्यय बढ़ रहा है, उसी अनुपातसे आमदनी नहीं बढ़ी है। इसके अतिरिक्त रुपयेकी क्रय-शक्ति भी घट रही है। इस कारण आज अधिकांश मध्यम वर्गके लोग बड़ी कठिनाईसे जीवन व्यतीत कर रहे हैं। पारिवारिक मानदण्डको बनाये रखनेके लिए कमाईका बढ़ाना आवश्यक है। मगर यह स्त्रीके घरसे बाहर निकलकर जीविकोपार्जनमें लगनेके सिवाय अन्य किसी तरह सम्भव नहीं। पुरुष जानता है कि मार्ग यही है। मगर वह समाजमें निन्दाके भयसे घबड़ाता है। स्त्रीकी कमाई खाता है, यह सुननेके लिए वह तैयार नहीं है। दूसरे, उसे डर है कि यदि स्त्री भी धन उपार्जित करने लगे, तो वह उसका आदर न करेगी, उसको पूछेगी नहीं, उसकी सेवा न करेगी, रोटी पकाकर न देगी और उसकी मर्जीके मुताबिक उसके विलासका साधन न रहेगी। बच्चोंको पालनेके लिए तो वह आज भी नौकर रखता है, यदि नहीं रखता, तो उसको उसके रखनेमें आपत्ति नहीं है। असली भय उसको यह है कि स्त्री उसके हाथसे निकल जायगी। उसका रोब और दबदबा नहीं रह जायगा। मगर प्रश्न तो यह है कि उसका यह रोब और दबदबा कब तक कायम रहेगा? या तो उसको अपने जीवन-निर्वाहका मानदण्ड नीचा करना होगा, बच्चोंको उच्च शिक्षासे वञ्चित रखना होगा या फिर स्त्रीको भी अपने समान अधिकार, स्वाधीनता और समान अवसर देना होगा। भारतीय नारी आज पुरुषके समान अवसर चाहती है। अवस्थायें बाध्य कर रही हैं कि हम उसकी इस बातको बिना विरोधके स्वीकार कर लें। इस अवस्थामें उसका घरसे सम्बन्ध भी बना रहेगा और घरसे अपना नेह-नाता और बन्धन तुड़ानेकी कोशिश भी वह न करेगी और न विवाह और घरको कैदखाना मानेगी। यदि हमने उसकी इस न्यायोचित मांगको स्वीकार नहीं किया, तो वह इस जेलखानेसे मुक्त होनेका प्रयत्न करेगी और हमारी गृहसंस्था नष्ट हुए बिना न रहेगी। इसलिए हमारी भलाई इसीमें है कि हम उसकी इस मांगको चुपचाप बिना किसी विरोधके स्वीकार कर लें। स्त्रीको आर्थिक स्वाधीनता देनेमें हमें सङ्कोच न करना चाहिए। जब तक स्त्री अपने पेट-पालनके लिए पुरुषकी कमाई और उसकी शुभेच्छापर निर्भर है, तब तक नारी स्वाधीन नहीं कही जा सकती। मताधिकार भी उसको वास्तविक अधिकार और स्वतन्त्रता नहीं दिला सकता। इसलिए नारीकी वास्तविक स्वाधीनताका मूल आर्थिक स्वाधीनतामें ही है। इसलिए आज वह इसके लिए प्रयत्न कर रही है। हमें पुराने संस्कारोंसे विवश होकर उसके इस न्यायोचित अधिकारका विरोध नहीं करना चाहिए।

स्त्रीको आर्थिक स्वाधीनता देनेके बाद स्वभावतः प्रश्न उठता है—क्या फिर भी हमारा घरेलू जीवन बना रहेगा? क्या फिर भी हम घरका सुख और घरकी शान्ति प्राप्त कर

सकेंगे ? इसका जवाब हमारे व्यवहारपर निर्भर है। यदि स्त्रीको आर्थिक स्वाधीनता हम स्वेच्छासे दे दें और घरके प्रति उसकी ममता बनाये रखनेमें हम सहायक हों, तो भविष्यमें भी घरमें शान्ति और सौख्य रह सकेगा। फ्रेञ्च नारी जिस प्रकार अपना घर पसन्द करती है और होटल-को नापसन्द करती है, उसी प्रकार उस अवस्थामें भारतीय नारी भी होटल-जीवनको नापसन्द करेगी। मगर यदि हम चाहें कि उसके दिनका अधिक भाग रसोई-घरमें व्यतीत हो, तब निस्सन्देह हमें निराश होना पड़ेगा। आजकी भारतीय नारी यह माननेके लिए तैयार नहीं कि उसका जीवनोद्देश्य रोटी पकाने और बच्चे पालनेके सिवाय और कुछ नहीं है। यदि पुरुषका कुछ जीवनोद्देश्य है, तो स्त्रीका भी है। आज नारी नरकी प्रतिष्ठा और पूजासे अपनेको सम्मानित और गौरवान्वित नहीं देखना चाहती। आज वह अपनी क्षमता, शक्ति और योग्यताके बलपर गौरवमयी और महिमामयी बनना चाहती है। उसकी इस आकांक्षा-का यदि हम विरोध करेंगे, तो समाजमें एक भयङ्कर विप्लव मच जायगा।

यदि हम स्त्रीको आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिए अवसर देना स्वीकार कर लें, तब हम देखेंगे कि राष्ट्रीय योजना कमेटीने स्त्रीके अधिकारोंके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव स्वीकार किया है, वह बहुत नरम, युक्तियुक्त और उचित है। कमेटीका निर्णय है—(अ) योजित समाजमें स्त्रीका स्थान पुरुषके समान होगा। समान स्थिति, समान अवसर और समान जिम्मेदारी स्त्रीकी स्थितिका निर्णय करनेके लिए पथ-प्रदर्शक सिद्धान्त होंगे। (ब) केवल स्त्री होनेके कारण स्त्रीको किसी कार्यक्षेत्रसे अलग न रखा जायगा। (स) स्त्रियों द्वारा समान नागरिक स्थिति और सामाजिक और आर्थिक अधिकार प्राप्त करनेके लिए पहले विवाह होनेकी शर्त आवश्यक न होगी। (द) स्टेट व्यक्तिको आधार-भूत सामाजिक यूनिट (इकाई) मानेगा और इसीके अनुसार योजना बनायेगा।

राष्ट्रीय योजना कमेटी जिस समाजकी रचनामें प्रवृत्त है, उसमें नारीका क्या स्थान होगा, इसका उपर्युक्त प्रस्ताव-में आभास मिल जाता है। सामाजिक व्यवस्थाका आधार परिवार न होकर व्यक्ति होगा। इस अवस्थामें युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदीको दांवमें हारनेकी सम्भावना न रहेगी। सिद्धान्ततः हमारे राष्ट्रने नारीकी समानताके अधिकारको स्वीकार कर लिया है। आवश्यकता है कि हम इसको व्यावहारिक रूपमें भी स्वीकार करें और पुरानी धारणाओं-का परित्याग कर दें। नारीको रमणीके रूपमें न देखकर हम उसको अपने समान एक नागरिकके रूपमें देखें। जिस दिन हमारी दृष्टि और विचारमें यह परिवर्तन हो जायगा, उस दिन व्यवहारतः भी नारीके समान अधिकारके दावेको स्वीकार करनेमें हमें आपत्ति न होगी। जिस दिन हम उसके इस दावेको व्यावहारिक रूपसे स्वीकार कर लेंगे, उस दिन हमारे राष्ट्रके इतिहासमें नवीन युगका उदय होगा, नवीन व्यवस्था स्थापित होगी और वर्तमान विषमताका अन्त हो जायगा।

——

गीत

तुम भी भूल गये अपनेको !

मैं तारोंमें छिपा और तुम
चले खोजने अश्रु-लहरमें,
मैं अगाध बन गया विन्दुसे
तब तुम उतरे सागर - स्वरमें।

हुई सलिल-सी मेरी शीतल
आज प्रलयकी अन्तर्ज्वाला,
यह देखो, मैं आज कौन हूं—
नभ, समीर, पृथिवी, घन-माला !

इतना प्यार लगे करने तुम
प्रिय ! कबसे मेरे सपनेको ?
तुम भी भूल गये अपनेको !

—केदारनाथ मिश्र, "प्रभात"

जिन्हें काल निगल रहा है

श्री शिवशङ्करन् अय्यर, बी० एस-सी०



टोडा स्त्री ।

दक्षिण भारतमें नीलगिरि पर्वत - श्रेणियोंमें समुद्रकी सतहसे ७००० फीटकी ऊंचाईपर उटकमण्डसे १७-१८ मील दूर एक पठार है, जङ्गलोंसे हरा-भरा, पहाड़ी नालोंसे भरपूर और अत्यन्त चित्ताकर्षक। यह रमणीक स्थान टोडा लोगोंकी आवास-भूमि है। इस जातिके सामने आज जीवन-मरणकी समस्या अत्यन्त विकट रूपमें उपस्थित है। १९०१ में जब मनुष्य-गणना हुई, टोडोंकी कुल संख्या ८०० थी। १९३१ की पिछली मनुष्य-गणनामें उनकी संख्या घटकर कुल ६०० रह गयी। ३० वर्षमें जन-संख्यामें २०० का ह्रास उस जातिके लिए कम नहीं है, जिसके पुरुषों और स्त्रियोंकी संख्या कुल मिलाकर ६०० हो और जो कम होती जा रही हो। यदि इस ह्रासकी प्रगति यही रहे, तो अगली शताब्दी आरम्भ होने तक इस जातिका नाम ही उठ जायगा। संसारमें आज तक कितनी ही जातियोंका लोप हो चुका है और यह बड़े दुःखकी बात होगी, यदि हमारे देखते-देखते स्वदेशकी एक प्राचीन जातिका लोप हो जाय।

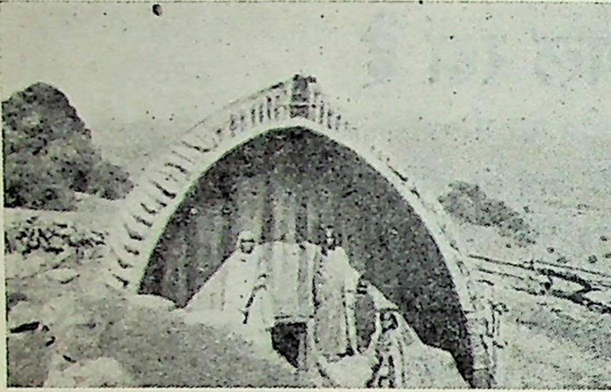
टोडा लोगोंका विश्वास है कि उन्हें नीलगिरिकी उपत्यकामें ईश्वरने ही उत्पन्न किया है। उनके मतानुसार ईश्वरने एक चोटीपर मोती गिराया, जिससे उनके देवता टीकिरजीकी उत्पत्ति हुई। टीकिरजीने एक बेतसे जब पृथिवीको पीटा, धूलमेंसे टोडा जातिका प्रथम पुरुष उत्पन्न हुआ और उसके साथ ही भैंस भी, जिसके गलेमें घण्टी बंधी हुई थी। यह घण्टी वे आजकल भी दिखलाते हैं। बिक्कापतिमें उनका जो एक देवस्थान है, उसमें यह घण्टी रखी हुई है।

टोडोंमें आज जो रीति-रिवाज पाये जाते हैं, उनका आधार टीकिरजीका बतलाया हुआ मार्ग ही है। टोडा समाजमें भैंसियोंका स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है।



टोडा पुरुष ।

टोडोंके गांव मांद कहलाते हैं। हरएक गांवमें ३-४ से लगाकर ५-६ तक झोंपड़ीनुमा घर होते हैं। लोगोंके आनेजानेके रास्तेसे मील-दो मील हटकर किसी नालेके किनारे हरे-हरे वृक्षोंकी आड़में ये लोग अपने घर बनाते हैं। प्रत्येक गांवमें एक मन्दिर होता है और साथ ही कुछ दूरीपर भैंसियोंके बांधनेका घर भी। झोंपड़ियोंका ढांचा टोकरियोंकी तरह बांसका बनाते हैं। इसका ऊपरी भाग साधारणतः गोलाईदार होता है; परन्तु गरीब टोडोंकी झोंपड़ियोंका ढांचा युक्तप्रान्तके देहातकी मड़इयोंकी तरह तिकोना होता है। इस ढांचेको फूससे अच्छी तरह छाते हैं। आगे और पीछे लकड़ियां लगी होती हैं। सामनेकी ओर झोपड़ीमें बिलकुल छोटा द्वार होता है, मुश्किलसे २॥ फीट ऊंचा और करीब १॥ फीट चौड़ा। यह इतना छोटा होता है कि उसमेंसे कोई बैठे-बैठे अपने अङ्गोंको सिकोड़कर ही किसी तरह निकल सकता है। इस दरवाजेके बाहर दोनों तरफ छोटे चबूतरे होते हैं। स्त्रियां इनपर बैठकर या तो अपनी धोती या चादरको काढ़ती या फिर अपने बालोंको घुंघराला बनानेके लिए मक्खन लगाती रहती हैं। बालोंको मक्खनसे तर रखनेका इन्हें बड़ा चाव होता है। झोंपड़ीमें भीतर बायीं ओर अच्छा खासा चबूतरा होता है। टोडा परिवारके सब लोग उसीपर सोते हैं। इस चबूतरेके नीचे दाहिनी ओर



सम्पन्न टोडा-परिवारकी झोंपड़ी, सिरेपर गोलाई और छोटा द्वार देखिये।

भोजन-व्यवस्था होती है। ये लोग अपना भोजन आगपर बनाते हैं, परन्तु झोंपड़ीमें धुआं निकलनेके लिए कहीं छेद तक नहीं रखते, खिड़कीका तो नाम ही नहीं लेना चाहिए। उनके बर्तन पीतल और मिट्टीके होते हैं, जो प्रायः झोंपड़ीमें पीछेकी ओर रहते हैं। टोडोंके मिट्टीके बर्तनको यदि कोई अन्य व्यक्ति छू ले, तो उनकी दृष्टिमें वह अपवित्र हो जाता है और वे उसे फेंककर फोड़ देते हैं।

टोडोंका मन्दिर उनकी झोंपड़ीकी तर्जपर ही होता है। अन्तर केवल यही है कि मन्दिर बनानेमें अधिक साव-धानीसे काम लिया जाता है और उसे कुछ अधिक सुन्दर बनाया जाता है। उसके आगे और पीछे लकड़ी न लगाकर पत्थर लगाते हैं। एक मन्दिरके द्वारके ऊपर शिलामें भैंसका शिर, चन्द्रमा, पचकोना तारा और खजूरका पेड़ खुदा हुआ है। मन्दिरके चारों ओर एक अहाता होता है, जिसमें पुजारीके सिवाय अन्य कोई व्यक्ति नहीं जा सकता। मन्दिरमें पवित्र दूध रहता है, जिसे कितने ही रस्म-रिवाजोंके समय काममें लाते हैं।

टोडोंका सबसे मशहूर गांव है मुत्तानद। यह नाम उस मोतीपर रखा गया है, जिसे टोडा-पुराणके अनुसार ईश्वरने पहाड़ीपर गिराया था। यही एक गांव है, जहां झोंपड़ोंके बिलकुल पास ही बलिदान किया जाता है। पहिचानके लिए रस्म-रिवाज पूरी करनेके स्थानके पास कई पत्थर गड़े हुए हैं। इनके पास ही एक बड़ा गोल पत्थर पड़ा हुआ है। इसी तरहके छोटे-बड़े कई अन्य पत्थर भी हैं। टोडा लोग जब अपनी कोई रस्म पूरी करनेके लिए एकत्र होते हैं, तब बड़े पत्थरसे अपनी शक्ति-परीक्षा करते हैं और छोटे-बड़े अन्य पत्थरोंसे खेल खेलते हैं। पहाड़ीके ऊपर गाजरनुमा एक अन्य मन्दिर भी बना हुआ है। इन्हें टोडोंकी भाषा में "पोह" कहते हैं। सारे इलाकेमें कुल तीन-चार 'पोह' हैं। पोहके चारों ओर पत्थरोंको एक-दूसरेके ऊपर रखकर एक घेरा बना देते हैं, जिसमें एक ओर दो ऊंची शिलायें खड़ी कर आने-जानेके लिए थोड़ी जगह छोड़ देते हैं।

टोडा समाजमें बहुपति-प्रथा है। स्त्री एक परिवारके सभी भाइयोंकी सम्पत्ति समझी जाती है और जिस व्यक्तिके साथ विवाह होता है, केवल वही नहीं, अन्य भाई भी उसका उपभोग करते हैं। भाइयोंमेंसे एक स्त्रीको 'तीर-कमान' देता है और इसके बाद जो सन्तान होती है, वह उसीकी मानी जाती है। कालान्तरमें दूसरा भाई स्त्रीको तीर-कमान देनेकी रस्म पूरी करता है। इसके बाद जो सन्तान होती है, वह दूसरी बार तीर-कमानकी रस्म पूरी करनेवाले भाईकी समझी जाती है। बच्चे बहुत कम पैदा होते हैं, इसीलिए भय है कि यह जाति लुप्त हो जायगी।

टोडोंमें अतिथि-सत्कारकी भावना बड़ी सुन्दर है। उनका कद भी अच्छा खासा होता है और साधारणतः ऊंचाई होती है लगभग ५ फीट ७ इञ्च। माथा चौड़ा, नाक और ओठ सुडौल, आंखें छोटी, भौंहें नीचेकी ओर झुकी हुई और ठोड़ी कुछ निकली हुई—डाढ़ी और मूंछ होनेपर चेहरा बड़ा रोबीला मालूम होता है; परन्तु स्त्रियोंके चेहरेमें वह बात नहीं। वैसे वे भी देखनेमें भली लगती हैं। उनके



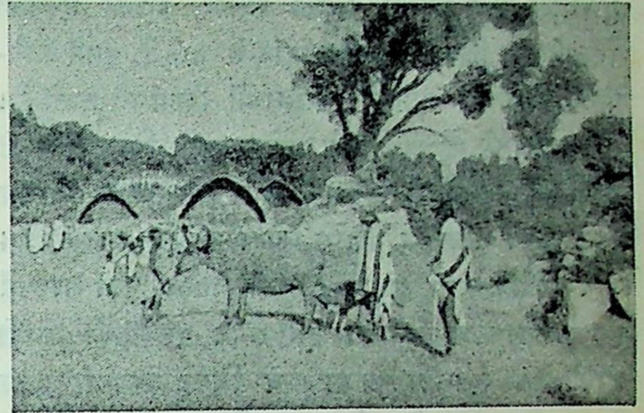
गरीब टोडा-परिवार—द्वारमेंसे बैठे-बैठे हाथ-पैर सिकोड़ कर ही निकला जा सकता है।

सौन्दर्यमें घुंघराले बालोंका विशेष स्थान है। इसके लिए वे मक्खनका उपयोग करती और बालोंकी लटें-जैसी बनाकर रखती हैं। स्त्रियों और पुरुषों, दोनोंका पहनावा करीब-करीब एक-सा ही है। अपने घरपर सूत कातकर जो कपड़ा तैयार होता है, उसीका व्यवहार किया जाता है। स्त्रियां और पुरुष सब लुङ्गी बांधते और ऊपरसे चादर ओढ़ते हैं। उनकी आवाज कोमल और बोलीमें चढ़ाव-उतार होता है।

टोडा लोगोंके नाम पहाड़ियों, चट्टानों या नदियोंपर रखे जाते हैं। इस बातकी बड़ी सावधानी रखी जाती है कि किसी मृत व्यक्तिका नाम न रखा जाय। उनका विश्वास है कि मृत व्यक्तिका नाम नहीं लेना चाहिए। टोडोंका एकमात्र धन्धा है भैंस पालना। भैंसके दूध, मक्खन और घीका व्यवहार खूब करते हैं। भैंसियां ही उनकी सम्पत्ति हैं। किसी टोडाके पास जितनी अधिक भैंसें होती हैं, उसे उतना ही धनी माना जाता है। धनी टोडे पालकीपर बैठकर बाहर जाते हैं। इनके पास अच्छी जातिकी भैंसियां देखनेको मिल सकती हैं। इनके सींग बहुत लम्बे होते हैं। तीन जातिकी भैंसियोंके आधारपर मन्दिर भी तीन कोटियोंके होते हैं। भूरे रङ्गकी भैंस, जिसके सींग नीचेकी ओर मुड़े हुए हों, सबसे अधिक पवित्र मानी जाती है और काले रङ्गकी ऊपरकी तरफ सींगोंवाली सबसे कम। दोनोंके बीचके खैरे रङ्गकी भैंसको बीचका समझ लेना चाहिए। पुजारीको पसन्द करनेके लिए बड़ी सावधानीसे काम लिया जाता है, उसे मन्दिरकी पशुशालाका कार्य-भार उठानेके लिए उपयुक्त बातोंकी शिक्षा दी जाती है। पोले बांसको एक ओर काटकर ये लोग दूध दुहनेके काममें लाते हैं। यों स्त्रियां घरसे बाहर निकलती और घूमती-फिरती भी हैं; परन्तु उतना ज्यादा नहीं। दूध और भैंसियों सम्बन्धी कोई कार्य उन्हें नहीं करना पड़ता। पुरुष अक्सर: खासा दिन चढ़ चुकनेके बाद जब हवाकी ठण्डक कम हो जाती है, झोंपड़ीसे बाहर निकलते हैं।



पोह—टोडा मन्दिर।



टोडा मांद (गांव)—भैंस दुहनेकी तयारी।

टोडोंमें मृतक संस्कारका रिवाज बड़ा विचित्र है। इसमें काफी खर्च भी बैठ जाता है। यह दो तरहका होता है—पहली तरहका वह, जिसमें मृतक संस्कार तुरन्त किया जाता है और दूसरी तरहका वह, जिसे कई दिन बाद करते हैं। मृतक संस्कारके समय दो-तीन भैंसोंका बलिदान करते हैं, जिससे परलोकमें वे मृतकको मिलें। मृत व्यक्तिके शिरके कुछ बाल काट लिये जाते हैं और इन्हें बहुत संभालकर उस समय तक रखते हैं, जब तक दूसरा कोई वैसा अवसर न आये। इसके अनन्तर कुछ रस्म पूरे करनेके बाद शवको जला देते हैं। किसीके मर जानेपर पास-पड़ोसके टोडा लोग मन्दिरके बाहर एकत्र होते हैं। पुजारी भी बाहर रहता है। टोडोंमें यह रिवाज है कि बड़े-बड़े अवसरोंपर उनके यहां कोटा लोग—नीलगिरि पर्वतकी एक अन्य जाति—बाजे बजाने आते हैं। किसीके मर जानेपर जहां स्वजन-सम्बन्धी रोते और आंसू बहाते हैं, वहां बाजा भी बजता है। बाजा बजानेवाले कोटे इस अवसरपर कपड़ा लाते हैं और उन्हें बदलेमें जहां कुछ अनाज मिलता है, वहां वे भैंसे भी मिल जाते हैं, जिन्हें बलिदान किया जाता है। शवको सफेद कपड़ेसे ढककर पहले मन्दिरके द्वारपर ले जाते हैं, जहां उसे बाहर ही बायीं ओरवाले चबूतरेपर रख दिया जाता है। अब पुजारी अपने स्थानसे उठता और मृतकके मुंहमें पत्तेसे थोड़ा पवित्र दूध डालता है। इस समय कुटुम्बी विलाप करते रहते हैं। वहांसे शवको कौड़ियों, बटनों और

गुरियोंसे सजी-सजायी बांसकी रथीपर[1] रखकर मृतककी कितनी ही प्रिय वस्तुओंके साथ ले जाते हैं, इनमें खाने-पीनेकी चीजें भी रहती हैं। श्मशानमें स्त्रियां भी जाती हैं।

श्मशानमें पहुंचकर सबसे पहले मृतकके निकट सम्बन्धी पुरुषों और स्त्रियोंमेंसे कोई वृद्ध और वृद्धा अपने स्थानसे उठकर अन्य स्त्रियोंके शिरसे अपना अंगूठा लगाती है। अन्य पुरुषोंके साथ यह रस्म नहीं होती। पुरुष आपसमें एक तरहका शब्द करते हैं। इसी समय एक बेतकी लकड़ी हाथमें लेकर मृतकका पुत्र या अन्य निकट सम्बन्धी अथवा मृतक यदि बालक हो, तो उसका पिता या चचा कुछ दूर हट जाता है और जमीन कुरेदता है। लाश इसके पास रख-कर परिवारका प्रत्येक व्यक्ति बारी-बारीसे यही कार्य करता है। इसके बाद समाजके मुखियासे मृतकका वह आत्मीय तीन बार पूछता है—मिट्टी डालूं? मुखिया उत्तर देता है कि डालो। इसपर वह व्यक्ति पहले मृतकके शिरसे अपना माथा लगाकर विलाप करता और फिर उसी तरह जमीनसे अपना माथा लगाता है। इसके बाद वह मिट्टी उठाता और तीन बार शवपर डालता और तीन ही बार कुरेदे हुए स्थानकी ओर भी फेंक देता है, मानो यह बतलाता हो कि यह शरीर मिट्टीका है और इसे मिट्टीमें ही मिल जाना है।

भैंसियोंको बलिदान करनेकी रस्म इसी समय पूरी की जाती है। शिरमें कुल्हाड़ीके जोरदार आघातसे जब भैंस गिर जाती है, मृतकके पैरोंको उसके शिरसे छुआते हैं और फिर उसे ले जाकर चितापर रख देते हैं। उसकी प्रिय वस्तुयें चितापर सजाकर रख दी जाती हैं, छाता लगा देते हैं, तीर कमान रख देते हैं। एक थैलीमें कुछ रकम और गहने भी रखे जाते हैं। ये गहने या सिक्के यदि मांगकर रखे गये हों, तो उन्हें बादमें निकाल लेते हैं। मृतक यदि बच्चा हो तो उसके शिरकी लटको काटकर जला दिया जाता है; परन्तु यदि वह वयस्क हो, तो उसे रख लेते हैं। माता-पिता चितापर रखे हुए बालकके मस्तकसे अपना मस्तक तीन बार लगाते हैं और इसी समय लकड़ियोंकी रगड़से प्रस्तुत की हुई अग्नि चितामें लगा दी जाती है। चिताकी आगके ऊपरसे तीन बार बच्चेका पालना भी झुलाते हैं। टोडोंका विश्वास है कि मृतककी आत्मा इसी समय पर-लोकके लिए प्रस्थान करती है।

समस्या यह है कि हम सब लोगोंके देखते-देखते क्या काल भारतकी एक प्राचीन जातिको निगल जायगा? इन लोगोंको बचानेके लिए क्या कोई उद्योग नहीं किया जा सकता और समयके गर्तमें डूबनेसे पहले उन्हें बचानेके लिए क्या समाज-सेवकोंको उद्योग नहीं करना चाहिए? हमारा यह विश्वास है कि टोडोंको विनष्ट होनेसे बचाया जा सकता है, यदि उनमें नवीन संस्कारोंका प्रचार किया जाय, शिक्षा और नयी दुनियासे उनका सम्बन्ध जोड़ा जाय और उन्हें बतलाया जाय कि उन्हें कैसे घर बनाना चाहिए और किस तरह रहना चाहिए। सन्तान-वृद्धिकी दृष्टिसे यदि उनके व्यवहारिक जीवनमें कोई दोष हो, उसे भी दूर करनेका यत्न किया जाना चाहिए। किसी व्यक्तिको जीवनदान देनेका जो माहात्म्य है, उसे कौन नहीं जानता, किसी लुप्तप्राय जातिको जीवन देनेका जो महत्त्व है, उसकी तुलना भला किससे की जा सकती है।

हमें ईसाई मिशनरियोंको देखना चाहिए, जो कितनी दूरसे चलकर आते और जङ्गलों और पहाड़ियोंमें भटकते रह-कर मूल निवासियोंके पास पहुंचा करते हैं। फिर, टोडा तो हिन्दू हैं—भले ही उनका विश्वास कुछ बातोंमें हमसे भिन्न हो। समाजसेवाके कार्यमें लगी हुई हिन्दू संस्थाओंको उनमें पहुंचकर एक लुप्तप्राय जातिको नया जीवन देनेका कार्य हाथमें लेना चाहिए।



वह रूमाल

श्री चन्द्रकान्त बाली, शास्त्री, प्रभाकर

क़िस्मतका नट सबके सिरपर नाच रहा है। न जाने कब, किस तालपर, किस ढबसे कदम उठाये। अगर कदम ठीक उठा तो सब खैरियत है, नहीं तो इसका नतीजा उलटा ही निकलता है। जरा ताल बिगड़ा नहीं कि मुसीबतोंका पहाड़ ही टूट पड़ता है। इतना अवश्य है कि जिन्होंने इस स्थितिमें धैर्य रखा, उन्होंने आगे चलकर फिर उन्नति की और ताल बिगड़नेके साथ ही जिनका दम टूट गया, वे हमेशाके लिए गिर गये। धर्मपाल बी० ए० पहली श्रेणीके लोगोंमें ही गिने जायंगे। इनकी किस्मत इतना बुरा ताल देकर नाच उठी कि इष्ट-मित्र और सम्बन्धी दांतों-तले अंगुली दबाने लगे, पर ये अविचल भावसे अपनी किस्मतका नाच देखते रहे। मानो, इन्हें पहले ही ज्ञान हो गया कि हमारी किस्मत उलटी निकलेगी।

धर्मपाल बी० ए० जातसे खत्री हैं। इनके पिता महीपाल रेलवेमें गार्ड थे। १२०, रु० मासिकसे काम चलाते थे। धर्मपालकी आयु सात सालसे कुछ कम थी। अभी प्राइमरीमें ही चल रहा था कि पिता कुछ महीने क्षयसे पीड़ित रहकर चल बसे। कुछ पूंजी चिकित्सामें उड़ चुकी थी और कुछ बच रही थी। किस्मतके बली धर्मपालके और भाई-बहन कुछ भी न थे। देवदत्तस्य एक एव पुत्रः, स एव ज्येष्ठः, स एव कनिष्ठः। इसकी माता ज्योत्स्ना देवीने थोड़ी पूंजी रहनेपर भी उसकी सुव्यवस्था रखी और धर्मपालको बी० ए० तक पढ़ाया। धर्मपालने इस बेकारीके जमानेमें नौकरीकी बड़ी तलाश की; कचहरियोंमें, पोस्ट आफिसोंमें, म्यूनिसिपैलिटियोंमें; न मालूम कहां-कहां सैकड़ों अर्जियां भेज रखी थीं। पर जवाब कुछ नहीं। जब किस्मत और बुरी तरह ताल ठोंकने लगी, भूखने होश-हवास गुम कर दिये। बी० ए० महोदय बड़े लाचार थे। आखिर कुछ सोच-समझकर माताके पास गये और बाहर जानेका बहाना किया, जिससे चार आने मिले। धर्मपालसे कुछ अनुचित प्रश्न करना माताने कभी सीखा ही न था। उसे मालूम था कि मेरा लड़का निकम्मी आदतोंसे परे है। माताजीके चरणोंमें मत्था टेक धर्मपाल घरसे बाहर निकले और कोट शूजाबादका रास्ता लिया। परिस्थितिने धर्मपालको यह सिखला दिया था कि ईमानदारी और सचाईके साथ कोई भी काम किया जाय, उसमें कोई बुराई नहीं है, बुराई मेहनतसे जी चुराकर भीख मांगनेमें है। कोट शूजाबाद जाकर उसने स्टेशन-कुलीका लाइसेन्स कटा लिया और अपना नाम 'धम्मू' मशहूर किया। धर्मपाल बी० ए० आज धम्मू कुली बन गये। किस्मतका खेल इसे कहते हैं।

(२)

बड़े जन्तु छोटे जन्तुओंको हमेशा हड़प जाते हैं। मनुष्य भी इस सिद्धान्तसे बाहर नहीं है। मोटी तनख्वाह पानेवाले आफिसर भी अपने मातहतोंका न्यूनाधिक शोषण किया करते हैं। बेचारा धम्मू कुली भी इस चक्कीमें पिस रहा है। उसे रुपये-पीछे इकन्नी काटकर पहले ही किसीको भेंट दे देनी पड़ती है और खुशीराम प्लेटियरके घर जो नौकरी बजाता है, वह अलग।

दोपहरका वक्त था, मौसम अच्छा था। कराची मेलके छूट जानेपर धम्मू दौड़ा-दौड़ा खुशीराम प्लेटियरके घर पहुंचा और अपने काममें जुट गया। खुशीरामके मकानके पिछवाड़े एक अच्छा बगीचा था। पहले ही पार्कमें नल लगा हुआ था। धम्मू घरसे दो गागरें लाया और भरनेमें व्यग्र हो गया। इतनेमें उसके कानमें एक अत्यन्त मीठे गीतका स्वर पड़ा। यह संस्कृत-गीत था, जिसके अन्तमें आया था—मधुना प्रलयातीतं मधुरे! शृणु मम गीतं मधुरे!

धम्मू खड़ा हो गया। मीठी ध्वनि उत्तरोत्तर पास आ रही थी। धम्मूने घूमकर देखा—सुधा टहनियोंको छेड़ती हुई उसकी तरफ आ रही है।

थोड़ी ही देरमें सुधा धम्मूके पास खड़ी हो गयी और चुप हो गयी। धम्मू झट पूछ उठा—'चुप क्यों हो गयीं?"

सुधा—तुम इसका मतलब समझते हो?

धम्मू—क्यों नहीं?

सुधा—भला यह कौन-सी जबान है।

धम्मूने भाव बदलकर कहा—संसकिरत।

सुधा—संसकिरत!—तुम जिसका नाम भी ठीक नहीं बोल सकते, उसे क्या समझोगे?

धम्मू—मतलब न सही, सुननेमें तो अच्छा लगता है।

सुधा—अच्छा! अब तुम्हारे कानोंको अच्छा लगता रहे और मैं (मुंह बनाकर) गला फाड़-फाड़कर गाती रहूं! भला तुमसे एक बात पूछूं?

धम्मू—पहले सुनाओ, पीछे पूछ लेना।

सुधा—नहीं, पहले पूछूंगी और पीछे सुनाऊंगी।

धम्मू—अच्छा पूछो।

सुधा—तुम सारे दिन गधेकी तरह काम करते रहते हो, क्या तुम्हारा दिल कभी थोड़ा आराम करनेको नहीं चाहता?

धम्मू—भला यह भी कोई पूछनेकी बात है।

सुधा—क्यों नहीं, भला बताओ।

धम्मू—चाहता क्यों नहीं?

सुधा—तो फिर.........

इतनेमें देर हो जानेकी वजहसे खुशीराम प्लेटियरकी स्त्रीने चिल्लाकर कहा—'अरे धम्मू, ओ धम्मू!'

इस चिल्लाहटने दोनोंकी भाव-भङ्गीको भङ्ग कर दिया, एक बसते हुए संसारको हिला दिया। धम्मू नल चलानेमें जुट गया। सुधा कुछ गुनगुनाती हुई एक तरफ चली गयी।

सुधा खुशीराम प्लेटियरकी पहली लड़की है। उमर लगभग चौदहकी, एम० बी० गर्ल हाई स्कूलमें मैट्रिकमें पढ़ती है।

(३)

छः महीने बाद—

खुशीराम प्लेटियर अपने परिवारके साथ दशहरेकी छुट्टीमें मुलतान गये थे। अभी कराची मेलसे उतरे हैं। धम्मू कुली उनके सामानके पास खड़ा हुआ दूसरे कुलीका इन्तजार कर रहा है कि कोई आये और यह सामान उठवा दे। इतनी ही देरमें बिजलीकी तरह तड़पती और कड़कती हुई सुधा पहुंची और धम्मूको फटकारते हुए कहा—'क्यों बे, इस तरह खड़ा-खड़ा क्या देख रहा है, सामान उठाकर चलता क्यों नहीं।'

धम्मूका माथा ठनका। सेवाभावकी अगली-पिछली भावनायें नष्ट हो गयीं। अभी नयी बनी हुई प्रेमवीणाके तारको एक जोरका झटका लगा। क्या करता, लाचार था। बोला—'सामान उठानेके लिए किसी कुलीका इन्तजार कर रहा हूं।'

सुधा—चल, उठा सामान, मैं उठवाती हूं।

धम्मू—आपसे नहीं उठेगा।

इतनेमें रमजान कुली पहुंचा और सामान उठाने लगा। रमजानके सिरपर ट्रङ्क रखा गया। सुधाने फलोंवाली टोकरी रमजानके सिरपर रखनेके लिए बांह फैलायी ही थी कि ट्रङ्ककी रगड़से उसकी बांहमें खासी खरोंच आ गयी। रमजान तो धुआंधार चालमें निकल गया। परन्तु सुधाकी बांहसे खून निकल आया। धम्मूने जेबसे रूमाल निकाला और उसकी बांहपर तरीकेसे लपेट दिया। उस खूनको रोकनेके लिए इतना ही उपचार काफी था।

आगे सुधा चली और पीछे बाकी सामान सिरपर लादकर धम्मू चला। धम्मू जा तो रहा था, पर उसे मालूम न था कि मैं कहां जा रहा हूं, क्या लिये जा रहा हूं और किसके साथ जा रहा हूं। उसके पांव बिलकुल हलके-से पड़ रहे थे। उसके सामने अंधेरा और प्रकाश कुछ भी न था। उसका एक संसार बस रहा था और एक संसार उजड़ रहा था। एक ही क्षणमें बहुत-से संसार बसे और उजड़ गये। उसका ध्यान भङ्ग तब हुआ, जब ये रोषपूर्ण शब्द उसके कानमें पड़े—'अरे तू कहां जा रहा है!' ये शब्द खुशीराम प्लेटियरके थे।

सुधाकी बांहमें रूमाल लपेटा हुआ देखकर जब उससे पूछताछ हुई और उसके खरोंच लग जानेकी बात जाहिर हुई, रमजानको गालियां मिलीं और धम्मूको भी फटकारा गया। सुधाकी मांने 'टिङ्चर-आयो-डीन' से सुधाका घरेलू उपचार किया। सुधाने खूनसे तर-बतर वह रूमाल रुखाईके साथ खिड़कीसे बाहर फेंक दिया। धम्मूको मजदूरीमें एक-आध डांट और मिल गयी।

खुली हवामें पहुंचकर धम्मू फिर अपने काल्पनिक संसारमें जा बसा। उसे न दूसरी ट्रेनकी फिक्र थी और न खाने-पीनेकी। वह अपनी कल्पनाओंमें मस्त था। वह एक ओर चल पड़ा। चलते-चलते वहां रुका, जहां खूनी रूमाल पड़ा हुआ था। धम्मूने इधर-उधर देखकर वह रूमाल उठा लिया। आंखोंने उस रूमालको अतृप्त भावसे देखा। हृदयने उसका

मूल्य आंका। हाथोंने उसे उठाकर जेबमें बड़ी सावधानीसे रख दिया।

डालपर बैठी हुई एक बुलबुल चहचहा उठी।

(४)

शरद-पूर्णिमाकी रात और नौ बजेकी बात—

इस घनी चांदनीमें मिल-जुल जानेवाले (सफेद) वस्त्र पहने हुई सुधा बंगलेके पिछवाड़े उद्यानमें झूलेका सहारा लेकर खड़ी हुई है। न तो पूरी तरह झूलेपर है और न जमीनपर ही। इसलिए जब वह जमीनसे पांव उठा लेती है, तो थोड़ा झूल भी लेती है। शून्य स्थानमें उसका मन्द स्वर बड़ा मधुर मालूम हो रहा है। वह कुछ गा रही है।

सुधा गानमें तन्मय थी। उसे अपनी जरा भी सुधबुध न थी। किसीने उसे पुकारा—'सुधा!' इससे ध्यान भङ्ग होनेपर जब सुधाने घूमकर देखा, धम्मूको खड़ा हुआ पाया। कड़ककर उसने कहा—"क्यों?"

"मांजी बुला रही हैं।"

"अच्छा तू चल, मैं आ जाऊंगी।"

धम्मू जाने लगा, पर सुधा अब अपने ऊपर काबू न रख सकी। उसके अन्दर एक कंपकंपी-सी दौड़ गयी। मैं कहां हूं, किसके सामने हूं—उसे इसकी जरा भी सुध न रही। आपेसे बाहर होकर उसने कहा—"धम्मू!"

'आया' कहकर धम्मू लौट पड़ा। दिल धक्-धक् करने लगा। पैरोंसे जमीन खिसकने-सी लगी। सुन्न होकर खड़ा हो गया। सुधाने पूछा—क्या-क्या काम हो गया।

धम्मू इसका उत्तर देना चाहता था, पर मानो जबानको लकवा मार गया हो। थोड़ी देर पहले धम्मू अपना सारा इतिहास जानता था, पर लौटकर वहां आते ही सब कुछ भूलभाल गया। उसने अपने-आपको बड़े साहससे संभाला और बोला—"बरतन साफ कर दिये हैं और पानी भर दिया है।"

"और?"

"बस।"

"धम्मू! तुमसे एक बात पूछूं?"

"मैं आपका नौकर ठहरा, आप जो चाहें, पूछ सकती हैं।"

"तुम्हें क्या हो गया है?"

"कुछ नहीं।"

"तुम्हारे होश-हवास भी तो ठिकाने नहीं हैं।"

"नहीं, कुछ नहीं है।"

"तुम काम भी मन लगाकर नहीं करते।"

"जैसे बन पड़ता है, करता हूं।"

"मुंहपर भी तो झांइयां-सी पड़ गयी हैं।"

"मालूम नहीं।"

"नहीं, कुछ है, कुछ न कुछ अवश्य है।"

"नहीं, कुछ नहीं है।"

सुधा—तुम कहनेमें झिझक रहे हो; कोई बात है, पर तुम कुछ कहना नहीं चाहते।

धम्मू—कोई होती तो जरूर कहता, सच कहता हूं, कुछ नहीं।

सुधा—जो कुछ हो, सच-सच कह दो।

बड़ी मुश्किल समस्या है। धम्मू बुरी तरह फंस गया। कहना चाहता है, पर शब्द नहीं मिलते, जबान नहीं खुलती। उधर सुधाकी मांका और प्लेटियर खुशीरामका डर, लोक-लज्जा और इधर सुधाका हठ! धम्मू इस कठिनाईमें कुछ निश्चय नहीं कर सका। उसे चुप देखकर सुधाने कहा—"कुछ चाहिए?"

धम्मू—हां।

सुधा—क्या?

धम्मू—कोई दस रुपये।

इस बार न मालूम सुधाने कौन-सा जादू फूंककर प्रश्न किया था। अपने ऊपर सौ-सौ काबू रखनेवाले धम्मूके मुंहसे १०) रु० बरबस निकल ही गये।

'अच्छा, ठहर।' कहकर सुधा हवा हो गयी।

धम्मूको खुशीरामके यहां नौकरी बजाते हुए डेढ़ साल होनेको हैं। आज तक धम्मू अविचल भावसे नौकरी करता आया है। धम्मूके सामने न तो ऐसी परिस्थिति कभी आयी और न उसने कभी ऐसा प्रश्न ही किया था। उसे एक आवश्यकताके आगे झुकना पड़ा। स्वाभिमानसे उठनेवाली आंखें नीची हो गयीं। सेवाके बल स्वाभिमानसे ऊंचा रहनेवाला मस्तक आज झुक गया।

काफी देर तक धम्मू इसी प्रकार सोचता रहा। जब सिर उठाकर देखा, तो सामनेसे सुधा आ रही थी।

सुधा पहुंचते ही बोली—यह लो!

धम्मूने हाथ फैलाकर रुपये ले लिये। रुपये लेते समय छत्राकी दो अंगुलियां धम्मूके हाथसे छू गयीं। धम्मूके शरीर-में बिजली-सी दौड़ गयी। धम्मूने छुधाको देखा। छुधाने धम्मूको देखा। धम्मूकी आंखें कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए झुक गयीं। धम्मू बोला—धन्यवाद!

छत्राने मुस्कराकर कहा—यह शिष्टाचार भी तुम्हें आता है।

धम्मू—"शिष्टाचार नहीं, मैं हृदयसे कहता हूं।"

छुधा—कोई बात नहीं। तुम जब चाहो, लौटाना।

धम्मू वहां खड़ा रहा। छुधा चल दी। धम्मू उसे अतृप्त नेत्रोंसे देखता रहा। चांदनी पारकर छुधा अंधेरेमें आंखसे ओझल हो गयी।

(९)

भाग्यका चक्र ही तो है। कभी ऊपर और कभी नीचे। धम्मूने कुलीगीरीके जमानेमें काफी दिक्कतोंका सामना किया। परन्तु अन्तमें उसके दिन फिरे। शेरकोट स्टेशनपर उसके मित्र थे, जिनकी असीम कोशिशोंसे धर्मपाल बी० ए० को 'टी० टी० आई०' की नौकरी मिल गयी। नौकरीका परवाना जब आया, तब उसने छुधादेवीसे १०) रु० उधार लिये। धर्मपालको 'धम्मू' का बाना छोड़े हुए तीन महीने बीत गये। किसी सज्जनने अपनी लड़की देकर धर्मपालके भाग्यको क्रियात्मक महत्त्व दे दिया। इसी खुशीमें एक दो महीने और बीत गये।

एक दिन धर्मपाल दौरा करते हुए मुल्तान आ निकले, तो कोट शुजाबादका ध्यान आया। छुधा याद आयी, १० रुपये याद आये और अपनी पिछली जीवनीका चित्र सामने आ गया। इन स्मृतियोंने धर्मपालको शुजाबाद चलनेके लिए विवश कर दिया। उससे नहीं रहा गया।

मौसम गर्मीका है। लगभग ग्यारहका समय होगा। धर्मपाल बी० ए० कोट, पैण्ट, हैट पहने साहबी ठाठसे लाला खुशीराम प्लेटियरकी कोठीपर जा पहुंचे। लालाजी आराम-कुर्सीपर पड़े ऊंघ रहे थे। पह्वा चल रहा था। पासमें चटाई-पर बैठी हुई छुधा किसी पत्रिकाके पन्ने उलट रही थी। धर्मपाल बेखटके अन्दर चले गये और पुकारा—'लालाजी! नमस्ते।'

लाला खुशीरामकी ऊंघ टूटी। हैट-पैण्टवाले साहबको देखकर वे कुछ झिझके। छुधा नवागन्तुकको सरसरी निगाह-से देखकर उठ खड़ी हुई और कमरेमें हो गयी। लालाजीने स्वागतसूचक निगाहसे देखा और कहा—"आइये।"

धर्मपाल पास ही पड़ी हुई कुर्सी खींचकर बैठ गये। कहा, "मुझे पहचाना आपने!"

खुशीराम—"देखा तो जरूर है, पर याद काम नहीं कर रही है।"

धर्मपाल—"मैं हूं धम्मू—कुली।"

खुशीराम—"ओहो! ओहो! धम्मू! यह क्या हो गया है? इतना परिवर्तन?"

धर्मपालने दस रुपये देते हुए कहा—"आपकी दयासे।"

खुशीराम—ये रुपये कैसे हैं? इतने दिन कहां रहे?

धर्मपाल—मैं रेलवेमें 'टी० टी० आई०' हो गया हूं। ये रुपये छुधा बहनसे उधार लिये थे।

खुशीराम—सच! कहां तक पढ़ा है तुमने?

धर्मपाल—मां-बापने मुझे बी० ए० तक पढ़ाया है।

खुशीराम—फिर इतने दिन कुली बने रहे?

धर्मपाल—भाग्यका चक्कर!

खुशीराम—ये रुपये कब लिये थे?

धर्मपाल—जब गया था।

खुशीराम—क्या तनख्वाह मिलती है?

धर्मपाल—तनख्वाह मामूली है।

खुशीराम—तुम्हारे पिता क्या काम करते थे?

धर्मपाल—यहीं मुल्तानमें स्टेशन मास्टर थे।

खुशीराम—यहीं मुल्तानमें? क्या नाम था?

धर्मपाल—लाला महीपालजी।

खुशीराम—अच्छा...अच्छा, तुम महीपालके लड़के हो! पहले कभी नहीं बतलाया। तो तुम हमारे अपने ही अजीज ठहरे न?

धर्मपाल—क्यों नहीं।

खुशीराम—धर्मपालजी! आप तो खत्री हैं। लाला महीपालकी थोड़ी-थोड़ी याद मुझे अभी तक है।

धर्मपाल—जी, मैं खत्री हूं, 'सेठ कक्कड़' हूं।

खुशीराम—अच्छा, तो तुम विवाह तो आखिर करोगे ही?

धर्मपाल—जी, कई महीने हुए मेरा विवाह हो चुका है।

धर्मपालके मुंहसे इतने अक्षर निकले ही थे कि पास वाले कमरेसे धड़ामसे किसीके गिरनेकी आवाज आयी। लाला खुशीराम दौड़े-दौड़े अन्दर चले गये। धर्मपाल अविचल तथा साश्चर्यभावसे कारण जाननेकी इच्छासे बैठे रहे। बात यह हुई कि धर्मपालके आनेपर सुधा अन्दर तो चली गयी, पर नवागन्तुकको देखते ही पहचान गयी कि हो-न-हो, यह धम्मू ही है। अन्दर जाकर वह बरामदेमें होनेवाली बातें सुनने लगी। दरवाजेकी बगलमें बैठनेके इरादेसे वह एक कुर्सी उठाकर जब चलने लगी, उसके कानोंमें यह आवाज आयी--"जी, मेरा विवाह हो चुका है"। इसपर सुधाका सिर चकराने लगा, उसके होश उड़ गये और मामूली ही ठोकरसे सुधा कुर्सी समेत धड़ामसे गिर पड़ी। उसके शरीरमें अब प्राण नहीं रह गये थे।

(६)

ला० धर्मपाल बी० ए० शुजाबादसे चले गये। दौरेसे लौटकर उस दिन जब वे घर पहुंचे, देखा—धर्मपत्नी कुछ धो रही है। उन्होंने प्रश्न किया कि क्या धो रही हो।

'एक रूमाल।' श्रीमतीने जवाब दिया और अपने पतिदेवको देखने लगीं। हाथ रूमालको ही रगड़ते रहे।

'कौन-सा रूमाल ?'--किसी स्मृतिसे धर्मपालका दिल धक्-धक् करने लगा।

'वही, जो आपके ट्रङ्कमें पड़ा था, जिसपर खूनका दाग है।' श्रीमती रूमाल भी रगड़ती रहीं और जवाब भी देती गयीं।

'क्यों ?' धर्मपालके आगे अंधेरा छा गया। पैरों-तलेसे जमीन खिसक गयी। उनके मुंहपर एक रङ्ग आता और एक रङ्ग जाता था।

श्रीमतीजी अपनी धुनमें कह रही थीं-'मैंने सोचा, रूमाल धोकर साफ कर दूं, ऐसा गन्दा रूमाल रखनेसे क्या फायदा ?' धर्मपालके बचे-खुचे होश उड़ गये। उनके पैर लड़खड़ाने लगे और पास ही पड़ी हुई चारपाईपर धमसे पड़ गये। उनका मुंह सूख रहा था। पत्नी घबड़ाकर अपनी जगहसे उठी और उसने उन्हें संभाला। ठण्डे पानीसे उनकी आंखें धोयीं। उनपर पङ्खेकी हवा की। कुछ देर बाद दो घूंट ठण्डा पानी पीकर जब धर्मपालने अपनेको कुछ संभाला, उन्होंने बड़ी मुश्किलसे अपनी मानसिक व्यथा बतलाते हुए पत्नीसे कहा—"तुम्हें क्या मालूम कि रूमालके उस दागको मिटाकर तुमने मेरी कितनी मधुर स्मृतियोंको मिटा दिया ! वह रूमाल और उसका वह खूनका धब्बा मेरी जिन्दगीका एक इतिहास था।"

बेचारी पत्नी हतबुद्धि-सी होकर सब सुन रही थी। सचमुच उसे क्या पता था कि जिसे वह रूमालका एक धब्बा समझ रही है, वह प्रियतमकी मधुर स्मृतियोंका एक इतिहास है।

सीमा-विस्तार

मैं सीमा विस्तार कर चुका !
स्वयं मिटा अपनी लघु संसृति निज असीम संसार कर चुका !!

अणु - अणुमें, कण - कणमें मेरे
प्रियकी सुन्दर परछाईं है ;
प्रियकी मोहक रूप - माधुरी
दृग-प्यालोंमें भर आयी है !
कर प्रियको मैं प्यार सहज ही निखिल विश्वको प्यार कर चुका!
मैं सीमा विस्तार कर चुका !

प्रियकी स्मृति, मेरा चिर-बन्धन,
प्रियकी सांसें, हृदय - स्पन्दन ;
प्रियके सुन्दर स्वप्न रंगीले
मेरी आंखोंके अक्षय धन
मैं प्रियकी सीमामें अपनी सीमा एकाकार कर चुका !
मैं सीमा विस्तार कर चुका

—जितेन्द्रकुमार।

साम्प्रदायिक एकताकी योजना

श्री रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०, एल-एल० बी०

भारतवर्षमें साम्प्रदायिक समस्याने ऐसा विकट रूप धारण किया है कि बीस वर्षोंसे महात्मा गांधी और राष्ट्रीय महासभा द्वारा अथक प्रयास किये जानेपर भी हिन्दू-मुसलमानोंमें समझौता नहीं हो सका। आज हिन्दू-मुसलमानोंके सम्बन्ध भारतकी स्वाधीनता-प्राप्तिके मार्गमें बाधा सिद्ध हो रहे हैं। जबसे यूरोपमें जर्मनी और ब्रिटेनमें महायुद्ध छिड़ा है, तबसे भारतमें हिन्दू-मुसलिम विरोधने अत्यन्त उग्र रूप धारण किया है। भारतमें साम्प्रदायिक समस्याका विकास कैसे हुआ और इसके लिए कौन उत्तरदायी है—इस प्रश्नपर इस लेखमें विचार करना आवश्यक नहीं है। परन्तु वास्तवमें महान् आश्चर्य और विषादका विषय यह है कि कांग्रेस, हिन्दू-महासभा और मुसलिम लीग—इन तीनों संस्थाओं द्वारा समझौतेका प्रयत्न किये जानेपर भी आज तक वह हल न हो सकी। सभी दलोंके नेता यह कहते नहीं थकते कि भारतमें साम्प्रदायिक समस्या स्वराज्यके मार्गमें एक महान् बाधा है। उपर्युक्त सभी संस्थाओंके नेता भारतके लिए स्वाधीनता-प्राप्तिको अपना लक्ष्य घोषित करते हैं। कांग्रेस समस्त भारतकी जनताके लिए पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना चाहती है। मुसलिम लीग भी अपना ध्येय भारतकी स्वाधीनता घोषित कर चुकी है और हिन्दू-महासभा भी भारतके लिए स्वाधीनता-प्राप्त करना अपना लक्ष्य मानती है। अब प्रश्न यह है कि जब इन तीनों संस्थाओंका लक्ष्य भारतके लिए स्वाधीनता प्राप्ति है, तब इनमें परस्पर सङ्घर्ष क्यों है ?

इस सङ्घर्ष और मतभेदको स्पष्ट रूपमें समझनेके लिए हमें भारतकी स्थिति और इन राजनीतिक दलोंके सिद्धान्तोंपर विचार करना है। कांग्रेस एकमात्र 'राष्ट्रीय' संस्था है। वह 'राष्ट्रीय' इस अर्थमें है कि भारतके विविध सम्प्रदाय—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, पारसी, जैन, बौद्ध इत्यादि—कांग्रेसमें सम्मिलित होकर भारतकी जनताके लिए पूर्ण स्वाधीनताके लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए उद्योग कर सकते हैं। कांग्रेसका द्वार प्रत्येक भारतीयके लिए खुला हुआ है। परन्तु हिन्दू-महासभा और मुसलिम लीग इस अर्थमें 'राष्ट्रीय' नहीं हैं। क्योंकि हिन्दू-महासभामें कोई मुसलमान या ईसाई सम्मिलित नहीं हो सकता और न मुसलिम लीगमें कोई हिन्दू, ईसाई या पारसी शामिल हो सकता है। कांग्रेस भारतकी समस्त विविध जातियों एवं सम्प्रदायोंके लिए पूर्ण स्वाधीनता चाहती है। परन्तु हिन्दू-महासभा अथवा मुसलिम लीग क्रमशः हिन्दुओं और मुसलमानोंकी दृष्टिसे ही इस प्रश्नको हल करना चाहती हैं। बस, यही इन तीनोंमें पारस्परिक सङ्घर्षका एक आधारभूत कारण है।

हिन्दू-महासभा हिन्दू-समाजको हिन्दू-राष्ट्र मानती है। उसका यह मन्तव्य है कि भारतवर्ष हिन्दुओंकी मातृ-भूमि है और आर्यावर्त—आर्योंकी भूमि—के वास्तविक उत्तराधिकारी हिन्दू हैं। हिन्दू-राष्ट्रसे मुसलमानोंने शासनकी बागडोर अपने हाथमें ली और मुगल सम्राट् तथा नवाबोंको पराजित कर मराठों और सिक्खोंने उसे फिर अपने हाथमें कर लिया। इनसे छीनकर अंगरेजोंने भारतपर अपना अधिकार जमाया। इसलिए स्वतन्त्र हो जानेपर भारतमें हिन्दू-राष्ट्र ही शासन करनेका अधिकारी है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि वह अल्पमतों (मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों, सिक्खों) का दमन करेगा। बल्कि हिन्दू-राष्ट्र समस्त अल्पमतोंके वैध हितोंकी रक्षाको अपना पवित्र कर्तव्य मानेगा। अल्पमतोंके वैध हितों व अधिकारोंका दमन नहीं किया जायगा। सन् १९३१ की मनुष्य-गणनाके अनुसार भारतमें हिन्दुओंकी जन-संख्या लगभग २४ करोड़ है और मुसलमानोंकी संख्या ८ करोड़ है। इस प्रकार भी भारतमें और अधिकांश प्रान्तोंमें हिन्दुओंका विशाल बहुमत है।

राष्ट्रीय महासभाने यह घोषणा कर दी है कि वह समस्त भारतमें गणतन्त्र स्वाधीन राज्यकी स्थापना करना चाहती है। आज संसारमें दो ही प्रमुख गणतन्त्र राज्य हैं—ब्रिटेन और अमेरिका। कई शताब्दियों तक अथक प्रयत्न करनेके

बाद ब्रिटेन और अमेरिकाने गणतन्त्रका विकास किया है। प्रजातन्त्रकी भावनाका प्रसार व प्रचार करनेमें बर्क, मिल और रूसो-जैसे विचारकोंकी विचार-धाराने बड़ा योगदान दिया। अंगरेजोंके द्वारा इन विचारोंका प्रसार भारतमें हुआ और राजा राममोहन राय, जस्टिस रानाडे, बाल गङ्गाधर तिलक, म० गोखले, श्री विट्ठलभाई पटेल, माननीय श्री श्रीनिवास शास्त्री और महात्मा गांधीने प्रजातन्त्रके आदर्शको भारतीय राजनीतिमें स्थान दिया। ब्रिटेनमें प्रजातन्त्रका अर्थ यह है कि वहांकी प्रतिनिधि-संस्था पार्लमेण्ट सर्वोच्च संस्था है, जिसे अपनी समस्त प्रजापर अधिकार प्राप्त है और वह अपनी समस्त प्रजाके लिए प्रत्येक विषयपर नियम बनानेकी अधिकारिणी है। राष्ट्रीय महासभा अर्थात् कांग्रेस भी यह चाहती है कि भारतमें इसी प्रकारका प्रजातन्त्र राज्य स्थापित हो। प्रजातन्त्रकी सफलताके लिए बहुमतकी सत्ताके सिद्धान्तमें जनताका विश्वास होना आवश्यक है। यह निश्चय है कि किसी देश या समाजमें सभी व्यक्ति किसी भी प्रश्नपर सर्व-सम्मत नहीं होते। इसी कारण यह नियम प्रचलित है कि यदि किसी प्रश्नपर समाज या देशका बहुमत पक्षमें हो, तो उसे समस्त देश या समाजको स्वीकार करना चाहिए। देशके शासनमें भी इसी सिद्धान्तके अनुसार कार्य होता है। प्रत्येक प्रजातन्त्र-राज्यमें बहुमतको यह अधिकार है कि वह मन्त्रिमण्डल-निर्माण कर शासन-सञ्चालन करे। इंगलैण्ड और अमेरिकामें राजनीतिक दलोंका आधार धर्म-विश्वास नहीं है। उन देशोंमें राजनीतिक दल राजनीतिक और आर्थिक कार्यक्रमके आधारपर होते हैं। इस प्रकार 'धर्म' राजनीतिमें हस्तक्षेप नहीं करता। कांग्रेसका यह दावा है कि भारतमें भी इसी प्रकार बहुमतका शासन हो।

इस प्रकार बहुमतके शासनका अर्थ है हिन्दू-बहुमत। भारतमें हिन्दुओंकी जनसंख्या २४ करोड़ है और शेष ११ करोड़ अन्य जातियां हैं। इसलिए हर दशामें हिन्दुओंका बहुमत अनिवार्य है।

मुसलिम लीग अब तक मुसलमानोंको भारतका एक अल्पमत मानती थी और इस कारण वह अल्पमतके हितोंकी रक्षाके लिए विशेषाधिकारोंकी मांग पेश करती थी। परन्तु नवीन शासन-विधानकी प्रान्तीय-स्वराज्यकी योजनाके अनुसार भारतके ११ प्रान्तोंमें जो शासन हुआ है, उससे मुसलिम लीगके नेता मि० मुहम्मद अली जिन्नाने यह सबक लिया है कि प्रजातन्त्र भारतके अनुकूल नहीं है। इसलिए मुसलिम लीग भारतमें प्रजातन्त्र नहीं चाहती। प्रजातन्त्र भारतके लिए क्यों अनुकूल नहीं है? मि० जिन्ना इसके उत्तरमें कहते हैं कि भारतमें हिन्दुओंका विशाल बहुमत है और प्रजातन्त्रमें बहुमतका शासन होता है। इसलिए बहुमतका अर्थ हुआ हिन्दू-राज्य। वह हिन्दू-राज्य नहीं चाहते। मि० जिन्नाने मुसलमानोंके लिए पाकिस्तान अर्थात् पृथक् मुसलिम-राज्यकी स्थापनाके लिए मार्च १९४० में लाहौरमें मुसलिम-लीगके विगत अधिवेशनमें एक प्रस्ताव स्वीकार कराया। परन्तु पाकिस्तानकी योजनाको मुसलमानोंका एक विशाल बहुमत स्वीकार नहीं करता। हिन्दू महासभा, कांग्रेस, सिक्ख, आर्यसमाज, ईसाई, पारसी आदि कोई भी पाकिस्तानकी योजनाको स्वीकार नहीं करता। पञ्जाबकी, जिसमें मुसलमानोंका बहुमत है, सरकारके प्रधानमन्त्री सर सिकन्दर हयात खां अखिल भारतीय मुसलिम लीगकी कार्य-समितिके प्रमुख सदस्य होते हुए भी, पाकिस्तानके विरुद्ध हैं।

इस प्रकार कांग्रेस, महासभा और लीगका उद्देश्य भारतकी स्वाधीनता होनेपर भी इनमें परस्पर विरोध है। ब्रिटिश सरकारकी ओरसे यह कहा जाता है कि जब तक भारतकी साम्प्रदायिक समस्या हल न हो जायगी, तब तक भारतमें औपनिवेशिक स्वराज्यकी स्थापना सम्भव नहीं।

कांग्रेस ब्रिटिश सरकारको यह दोष देती है कि वह फूट डालकर शासन करनेकी नीतिका प्रयोग करती रही है और जब तक भारतमें शासनका वर्तमान दृष्टिकोण कायम रहेगा, तब तक साम्प्रदायिक एकताकी समस्याका हल होना सम्भव नहीं। वह हिन्दू-महासभा और मुसलिम लीगके नेताओंको साम्प्रदायिक विद्वेषके लिए उत्तरदायी ठहराती है। हिन्दू-महासभाका यह कहना है कि जब साम्प्रदायिक समझौतेकी वार्ता होती है, तब हिन्दू-महासभाकी उपेक्षा की जाती है और इसीलिए यह समस्या हल नहीं होती; क्योंकि समझौता हिन्दू-मुसलमानोंमें होगा। कांग्रेस तो 'राष्ट्रीय' है, उससे इससे क्या सम्बन्ध। मुसलिमलीग कांग्रेसको हिन्दू संस्था मानती है और हिन्दू सभाके नेता

कांग्रेसको मुसलिम संस्था कहते हैं। क्योंकि वह हिन्दू-हितोंकी रक्षाके लिए कोई ध्यान नहीं देती और हिन्दू-हितोंपर आघात होनेपर भी मुसलमानोंको प्रसन्न करनेके लिए उदासीन-सी हो जाती है।

ब्रिटिश सरकार यह चाहती है कि साम्प्रदायिक समस्या हल हो जाय। कांग्रेस और हिन्दू-सभा भी ऐसा ही चाहती हैं। परन्तु आज तक किसीने भी साम्प्रदायिक एकताके लिए कोई ऐसी सर्वाङ्गपूर्ण एवं सुनिश्चित योजना प्रस्तुत नहीं की, जिससे भारतके सभी सम्प्रदाय सहमत हों। आज तक साम्प्रदायिक समझौतेके लिए जितने भी प्रयत्न किये गये, उनका आधार किसी सम्प्रदाय-विशेषको कुछ विशेषाधिकार और कुछ रिआयतें देना ही रहा है। इस प्रवृत्तिका परिणाम यह हुआ कि साम्प्रदायिक मांगें अधिकाधिक बढ़ती गयीं। इस प्रकार समझौतेके लिए किये गये प्रत्येक प्रयत्नने साम्प्रदायिक विद्वेषको बढ़ाया ही है। महात्मा गांधीने हिन्दू-मुसलिम-एकताको कांग्रेसके कार्यक्रममें स्थान दिया, परन्तु उन्होंने आज-पर्यन्त हिन्दू-मुसलिम-एकताकी कोई सुनिश्चित योजना नहीं रखी।

आज भारतमें साम्प्रदायिकता अत्यन्त भयङ्कर रूपमें प्रचलित है। इसने भारतके नागरिक जीवनको अत्यन्त विषैला ही नहीं बना दिया है, प्रत्युत अखण्ड भारतको खण्ड-खण्डमें बांट देनेकी प्रवृत्तिको भी प्रोत्साहन दिया है। आपको यह तथ्य स्वीकार करके कि भारतमें साम्प्रदायिक मतभेद विद्यमान है, उसके निवारणका उद्योग करना चाहिए। एक दूसरेपर दोषारोप करने तथा ब्रिटिश सरकारकी "विभाजन और शासन" की नीतिको ही साम्प्रदायिक मतभेदके लिए उत्तरदायी ठहरानेसे हमारी समस्यायें हल नहीं हो सकतीं। इस समय तो देशके नेताओंको साम्प्रदायिक समस्या हल करनेके लिए एक निश्चित योजना बनानी चाहिए।

जनताके सामने इस समय तीन मुख्य प्रश्न हैं—राजनीतिक, सामाजिक-धार्मिक और आर्थिक। कांग्रेस राजनीतिक प्रश्नपर सबसे अधिक जोर दे रही है और दूसरे प्रश्नोंको वह उतना महत्त्व नहीं दे रही है। मुसलिम लीग और हिन्दू-महासभा धार्मिक प्रश्नपर अधिक जोर दे रही हैं, और दूसरे प्रश्नोंकी ओरसे वे उदासीन हैं। भारतके समाजवादी आर्थिक प्रश्नपर ही अपनी पूरी शक्ति लगा रहे हैं और शेष प्रश्नोंका उनकी दृष्टिमें कोई महत्त्व नहीं है। परन्तु सत्य तो यह है कि भारतीय समस्याको इस प्रकार आंशिक रूपसे हल करनेके प्रयत्नमें ही सङ्घर्षके बीज हैं। एक सच्चे राष्ट्रवादीको भारतीय समस्यापर प्रत्येक दृष्टिसे विचार करना आवश्यक है।

भारतकी राजनीतिक समस्या क्या है? भारतकी जनताके लिए स्वराज्य, स्वाधीनता। भारतकी राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस आज ५० वर्षसे भी अधिक समयसे इस समस्याको हल करनेमें लगी हुई है। उसके सामने यही सबसे मुख्य विषय रहा है।

भारतकी आर्थिक समस्या क्या है? भारतमें ८०% सैकड़े जनता ग्रामोंमें निवास करती है और वह कृषि या कृषि-सम्बन्धी व्यवसायोंपर निर्भर है। ग्रामोंमें भूमिपर जमीन्दारोंका स्वामित्व है और किसान भूमिहीन हैं। केवल मजदूरी करके अपना पालन-पोषण करते हैं। भारतमें अभी तक उद्योग-धन्धोंका पूर्ण विकास नहीं हुआ है; परन्तु औद्योगिक उन्नतिके लिए देशमें पर्याप्त क्षेत्र तैयार हो गया है। औद्योगिक नगरोंमें पूंजीवादियों द्वारा व्यवसायोंका सञ्चालन हो रहा है, जिनमें करोड़ों मजदूर काम कर रहे हैं। आये दिन किसान-जमीन्दारों तथा मिल-मजदूर-मालिकोंमें पारस्परिक सङ्घर्ष अधिक स्पष्टतम होते जा रहे हैं। देशमें भयङ्कर गरीबी और गजबकी बेकारी फली हुई है और जनताका आर्थिक शोषण इतने भीषण रूपमें हो रहा है कि जिससे जनतामें घोर अशान्ति और असन्तोष है। जो लोग यह सोचते हैं कि ये सङ्घर्ष तो समाजवादी तथा किसान कार्यकर्ताओं द्वारा पैदा किये जा रहे हैं अथवा भारतके सामने कोई आर्थिक समस्या नहीं है, वे बड़ी भ्रान्तिमें हैं। सत्य यह है कि समाजवादी विचार-धाराके प्रसारने किसान-जमीन्दारों और मालिक-मजदूरोंके सम्बन्धको स्पष्ट रूपमें हमारे सामने रख दिया है। उसने इनके पारस्परिक हितोंके अनिवार्य सङ्घर्षकी ओर सङ्केत किया है।

भारतमें धार्मिक समस्या बड़े उग्र रूपमें विद्यमान है। यदि भारतमें हिन्दू, इसलाम, ईसाई आदि केवल धार्मिक सम्प्रदाय (Religious Sects) मात्र होते, तो समस्या इतनी

विकट और पेचीली नहीं होती, जितनी इस समय है। क्योंकि आज तो प्रत्येक धर्म एक जाति और उसकी संस्कृति, विचार-धारा, सामाजिक आदर्श तथा जीवनादर्शका एक प्रतीक बन गया है। प्रत्येक धर्मकी निजी संस्कृति है, उस संस्कृतिकी अभिव्यक्तिके लिए एक भाषा है और उसका अपना साहित्य है। इस प्रकार धार्मिक समस्याका सम्प्रदायके धर्मसे ही सम्बन्ध नहीं है, प्रत्युत उसकी संस्कृति, विचार-धारा, रहन-सहन, भाषा और साहित्यसे भी सम्बन्ध है।

अतः हमें सबसे पहले साम्प्रदायिकताके तथ्यको स्वीकार करना चाहिए। प्रत्येक सम्प्रदायके मतभेदोंके साथ ही उसके विद्यमान तत्त्वोंको भी स्वीकार करना चाहिए। हमें स्वीकार करना चाहिए कि भारतमें रहनेवाले प्रत्येक सम्प्रदायको अपनी समस्याओंको अपने ही ढङ्गसे हल करनेका अधिकार है, समस्त सम्प्रदाय भारतीय परिवारके अङ्ग हैं। यदि प्रत्येक सम्प्रदायको अपनी निजी समस्यायें अपने ही ढङ्गसे हल करनेका अधिकार मिल जाय, तो इसमें शक नहीं कि समस्त सम्प्रदायोंके वे लोग, जिनके हित सामान्य (common) होंगे, एक साथ मिलकर समस्त भारतीय जनताके हितके लिए मिलकर काम करेंगे। इस प्रकार जब साम्प्रदायिक एकता स्थापित हो जायगी, तब भारतकी राजनीतिक स्वाधीनताका प्रश्न भी आसानीसे हल हो जायगा। ऐसी स्थितिमें भारतकी जनताकी आर्थिक समस्याको भी सामाजिक न्यायकी दृष्टिसे हल किया जायगा —साम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे नहीं।

इस दृष्टिसे साम्प्रदायिक एकताकी योजनाकी रूपरेखा निम्न प्रकार है। भारतमें प्रान्तों और राज्योंके सङ्घके साथ-साथ सम्प्रदायोंका सङ्घ भी होना चाहिए। इसके लिए राज्यके समस्त कार्यों और विषयोंको दो भागोंमें विभाजित कर देना चाहिए-एक विभागमें ऐसे विषय और कार्य हों, जिनका सम्बन्ध समस्त भारतीयोंसे हो और दूसरे विभागमें ऐसे विषय और कार्य हों, जिनका सम्बन्ध विविध सम्प्रदायोंसे हो। जिन विषयों व कार्योंका समान रूपसे समस्त भारतीयोंसे सम्बन्ध होगा, उनका प्रबन्ध राजनीतिक शासन-प्रबन्धके अन्तर्गत होगा। इस प्रकारके विषय निम्नलिखित हैं:—पुलिस, सेना, यातायात, आबपाशी, मालगुजारी, व्यापार, उद्योग इत्यादि। जिन विषयों या कार्यों-का सम्बन्ध कुछ नागरिकोंसे होगा, उनका प्रबन्ध विशेष संस्थाओं द्वारा होगा। इन विषयोंके अन्तर्गत वे समस्त विषय और कार्य शामिल हैं, जो किसी एक सम्प्रदाय और उसके साम्प्रदायिक जीवनकी विशिष्टताओंसे सम्बन्ध रखते हैं। ऐसे विषय निम्न प्रकार हैं:—वैयक्तिक कानून, प्रत्येक सम्प्रदायके सामाजिक रीति-रिवाज, धार्मिक संस्थायें, मन्दिर, मसजिद और गिरजे तथा गुरुद्वारे, संस्कृति, भाषा, साहित्यिक परम्परायें तथा सांस्कृतिक शिक्षा आदि।

भारतके प्रान्तोंका पुनर्निर्माण इस ढङ्गसे किया जाय कि वे प्राकृतिक विभागोंके अधिक समकक्ष हो सकें। इस तरह जब साम्प्रदायिक विषयोंका प्रबन्ध राजनीतिक शासन-प्रबन्धके क्षेत्रसे अलग हो जायगा, तब राजनीतिमें साम्प्रदायिक आधारपर निर्वाचन-प्रणालीकी कोई आवश्यकता न रहेगी।

भारतके प्रत्येक प्रान्तमें और भारतीय राज्य या राज्य-समूहमें प्रादेशिक सरकारें होंगी, जो पूर्णतया प्रजातन्त्र होंगी। यह सार्वजनिक हितके समस्त शासन-प्रबन्ध-सम्बन्धी कार्योंका सञ्चालन करेगी। प्रान्तीय या राज्यकी सरकारके साथ-साथ जातीय सङ्घ होंगे। प्रत्येक जातिके लिए, जिसकी निजी संस्कृति, भाषा, साहित्य और धर्म होगा, एक जातीय सङ्घ होगा। इन जातीय सङ्घोंका प्रान्तीय या रियासतोंकी सरकारोंसे वही सम्बन्ध होगा, जो शरीरके अवयवोंका शरीरसे होता है। अर्थात् ये जातीय सङ्घ अपना भिन्न अस्तित्व रखते हुए सरकारसे सम्बद्ध होंगे, अलग नहीं।

प्रत्येक प्रान्तमें हिन्दू, मुसलिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी तथा दलित वर्गके लिए जातीय सङ्घ उनकी जन-संख्याको दृष्टिमें रखते हुए बनाये जायं। जैसे पञ्जाबमें सिक्खोंका सङ्घ बनाया जा सकता है—मद्रासमें अब्राह्मणोंका जातीय सङ्घ बनाया जा सकता है।

प्रत्येक प्रान्तमें प्रत्येक जातीय सङ्घकी एक निर्वाचित परिषद् होगी। यह सङ्घ अपने अधिकारियोंका चुनाव करेगा और इन अधिकारियोंके कार्य दो प्रकारके होंगे—व्यवस्था-सम्बन्धी तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी। जातीय सङ्घका प्रत्यक्ष उदाहरण पञ्जाबमें सिक्ख सम्प्रदायकी शिरोमणि गुरुद्वारा-

प्रबन्धक कमेटी है। इस सङ्घके प्रबन्ध-सम्बन्धी कार्य निम्नलिखित होंगे:–धार्मिक संस्थाओं, धर्म-मन्दिरों तथा धर्मादाका नियन्त्रण। ये सङ्घ अपनी जातिके स्कूलोंमें अपनी संस्कृतिकी शिक्षाका प्रबन्ध कर सकेंगे। परन्तु शिक्षाकी देशव्यापी या प्रान्तव्यापी साधारण योजनामें हस्तक्षेप न किया जायगा। ये जातीय सङ्घ अपनी धार्मिक शिक्षाके लिए प्रबन्ध कर सकेंगे तथा और शिक्षाके माध्यमके लिए भाषाके सम्बन्धमें भी निश्चय कर सकेंगे।

प्रबन्ध-सम्बन्धी इन अधिकारोंके अतिरिक्त जातीय सङ्घको वैयक्तिक कानून बनानेका भी अधिकार होगा। देशमें दीवानी, फौजदारी तथा व्यापारिक कानूनोंका निर्माण तो प्रान्तीय सरकार या केन्द्रीय सरकारके अधीन होगा; परन्तु हिन्दू, मुसलिम या ईसाई अथवा दलित-सङ्घ अपने-अपने सम्प्रदायके सम्बन्धमें नियम और कानून बना सकेंगे। इस तरह ये सङ्घ अपने-अपने सदस्योंके लिए उत्तराधिकार, विरासत, वसीयत, साम्पत्तिक विभाजन, स्त्री-धन, विवाह, तलाक, धार्मिक संस्था, पूजा-स्थान, भाषा, संस्कृति, धर्म तथा अपने रीति-रिवाजोंके सम्बन्धमें कानून बना सकेंगे और वे कानून अपने सङ्घके सदस्योंपर ही लागू होंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि आरम्भमें सामाजिक प्रगतिकी गतिमें बाधा पड़ेगी, क्योंकि कट्टरपन्थियोंका इन जातीय सङ्घोंमें पूर्ण प्रतिनिधित्व होगा और सामाजिक प्रगतिके कार्यमें प्रगति-विरोधी लोगोंकी ओरसे बाधायें डाली जायंगी। परन्तु जब जातिकी सम्पूर्ण जनताको यह विश्वास हो जायगा कि जातिका सामाजिक भविष्य उसके हाथमें है, तो कट्टरपन्थी इस प्रकार बाधायें अधिक दिनों तक न डाल सकेंगे। जो जातियां समस्त भारतमें निवास करती हैं—जैसे हिन्दू, मुसलिम, ईसाई तथा दलितवर्ग—उनके अखिल भारतीय जातीय सङ्घ होंगे। इन अखिल भारतीय जातीय सङ्घोंकी परिषदोंमें ऐसे विषयोंपर विचार किया जायगा अथवा ऐसे कार्योंका नियन्त्रण किया जायगा, जिनका समस्त देशमें व्याप्त जातिसे सम्बन्ध होगा।

इस योजनापर विचार करनेके बाद कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न और हैं, जिनका भलीभांति समाधान हुए बिना साम्प्रदायिक एकता हो नहीं सकती। पहला प्रश्न तो यह है कि इन जातीय सङ्घोंका राजनीतिक सरकारसे क्या सम्बन्ध होगा? जातियोंके राजनीतिक अधिकारोंका संरक्षण किस प्रकार होगा? अब इसके बाद सत्ताका प्रश्न आता है। सत्ता किसके हाथमें होगी? सेनाका निर्माण किस ढङ्गसे होगा? केन्द्रीय सरकार किस प्रकारसे सङ्गठित होगी? आर्थिक प्रश्नोंको किस प्रकार हल किया जायगा? देशी राजोंका स्वराज्यमें क्या स्थान होगा?

भारतमें प्रत्येक जाति केवलमात्र अपने धर्म, संस्कृति, भाषा और साहित्यकी ही रक्षा नहीं चाहती, बल्कि वह देशकी शासन-सत्तामें भी भाग लेना चाहती है। इसके लिए उचित तो यही है कि प्रत्येक जातिको शासन-सत्तामें समान रूपसे भाग लेनेका अधिकार हो, किसी एक जातिके हाथमें शासन-सत्ता निरपेक्ष रूपसे न हो। यदि ऐसा न होगा, तो साम्प्रदायिक कलह और भी भयङ्कर रूपमें प्रकट होकर रहेगा। प्रत्येक प्रान्तमें और केन्द्रमें ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि दो धारा-सभायें हों। प्रथम धारा-सभामें प्रतिनिधियोंका निर्वाचन सम्मिलित निर्वाचन-प्रणालीके आधारपर हो और द्वितीय चेम्बरमें प्रत्येक प्रमुख जातिका समान संख्यामें प्रतिनिधित्व हो। उदाहरणार्थ संयुक्त प्रान्तकी द्वितीय राज्य-परिषद् (Second Chember) में यदि १०० सदस्य हैं, तो हिन्दू, मुसलिम, ईसाई, सिक्ख तथा दलित वर्गके जातीय सङ्घोंके बराबरकी संख्यामें सदस्य चुने जायं। इस प्रकार प्रत्येक जाति-सङ्घके २० सदस्य द्वितीय चेम्बरमें हो जायंगे। कोई भी बिल या प्रस्ताव जो प्रथम चेम्बरमें स्वीकृत हो जायगा, वह स्वीकृतिके लिए द्वितीय चेम्बरमें प्रस्तुत किया जायगा। यदि द्वितीय चेम्बरमें एक जातीय सङ्घके समस्त प्रतिनिधि सर्व-सम्मतिसे किसी बिलका विरोध करेंगे, तो वह स्वीकार नहीं किया जायगा। इस प्रकार प्रत्येक जाति अपने हितोंकी रक्षा कर सकेगी। प्रान्तोंके समान केन्द्रमें भी एक द्वितीय चेम्बर होगा, जिसमें समस्त भारतकी जातियोंका समान रूपसे प्रतिनिधित्व होगा।

इस योजनामें केन्द्रीय और प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलोंका सङ्गठन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि मन्त्रिमण्डलके हाथमें सरकारकी शासन-नीति रहती है। प्रत्येक राजनीतिक दलके नेताओंको कानून-निर्माण तथा नीति-निर्माणके कार्यमें अपना प्रभाव डालनेकी पूर्ण सुविधा मिलनी

चाहिए। दलोंके नेताओंके हाथमें सरकारकी नीतियों तथा कार्यक्रमका निर्धारण हो। परन्तु उनके अनुसार कार्य करनेवाले मन्त्री ऐसे लोग हों, जिनमें समस्त प्रतिनिधियोंका विश्वास हो। भारतके लिए केन्द्र तथा प्रान्तोंमें राष्ट्रीय सरकारें होनी चाहिए। केन्द्रकी दोनों धारा-सभाओंके प्रतिनिधि एक साथ एकत्र होकर मन्त्रिमण्डलका चुनाव करें और यह चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व-प्रणालीके आधारपर हो, जिससे प्रत्येक प्रमुख दलका मन्त्रिमण्डलमें प्रतिनिधित्व हो सके। प्रति वर्ष यह निर्वाचित मन्त्रिमण्डल अपना एक प्रधान, राष्ट्रपति निर्वाचित करे। प्रान्तोंमें भी इसी प्रकारकी राष्ट्रीय सरकार हो। मन्त्रिमण्डलका निर्माण भी इसी प्रकार हो।

प्रत्येक राज्यमें सेनाका मुख्य स्थान है और उसका सङ्गठन इस ढङ्गसे किया जाय कि देशकी कोई एक जाति राजनीतिक सत्ता हस्तगत करनेमें उसका प्रयोग न कर सके। जिस प्रकार इटलीमें मुसोलिनी और जर्मनीमें हिटलरने अपने-अपने देशकी शासन-सत्ताको हस्तगत करनेमें इटली या जर्मनीकी सेनाका उपयोग किया, वैसी स्थिति भारतमें उत्पन्न न हो, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। सेनापर केन्द्रीय सरकारका नियन्त्रण होना चाहिए। सेनामें किसी भी जातिको प्रतिनिधित्वसे वञ्चित न रखा जाय। प्रत्येक जातिको समुचित प्रतिनिधित्व दिया जाय। इसके अतिरिक्त किसी एक प्रान्तसे ही सारे देशकी सेनाके लिए भरती नहीं की जाय। प्रत्युत सारे देशसे भरती की जाय।

आर्थिक प्रश्नोंके सम्बन्धमें बात यह है कि निर्णयका पूर्ण अधिकार प्रान्तीय और केन्द्रीय एसेम्बलीको होगा। आजके साम्प्रदायिक वातावरणमें आर्थिक प्रश्नोंको सांस्कृतिक और धार्मिक प्रश्नोंसे इतना मिला दिया गया है कि हम आर्थिक प्रश्नोंपर स्वतन्त्र रीतिसे विचार नहीं कर सकते। अतः जब हम साम्प्रदायिक जीवनके सांस्कृतिक पहलूको सामान्य राजनीतिक क्षेत्रसे अलग कर देंगे, तब हम आर्थिक प्रश्नोंको ठीक-ठीक ढङ्गसे समझ सकेंगे और उनका समाधान भी ठीक ढङ्गसे कर सकेंगे। सारांश यह है कि भारतका शासन-विधान भारतीय स्थितिको ध्यानमें रखकर ऐसे ढङ्गसे बनाया जाय, जिसमें प्रत्येक जाति यह अनुभव करे कि देशमें राज्य उसके अस्तित्वकी उपेक्षा नहीं करता। प्रत्येक जातिकी स्वतन्त्र सत्ता है—उसकी निजी संस्कृति है, सामाजिक परम्परायें हैं और धार्मिक विश्वास हैं। भारतके शासन-विधानमें प्रत्येक जातिका स्थान है। प्रत्येक जातिको समान अधिकार है। कोई भी जाति किसी दूसरेपर निर्भर नहीं है। समस्त जातियां भारतीय हैं और उन्हें अपने अतीत, वर्तमान तथा भविष्यके लिए भारतको ही अपनी मातृ-भूमि मानना चाहिए। प्रत्येक जाति भारतीय समाजका अङ्ग है। प्रत्येक जातिको अपने ही ढङ्गसे अपनी विशेष प्रतिभाके द्वारा अपना विकास करनेका समान अधिकार है।

गीत

कवि तू विश्वको तो देख

खूब देखी निशा - ऊषा
सुन्दरीकी वेष - भूषा
किये तूने हैं अनेकों ही तिलक अभिषेक
कवि तू विश्वको तो देख

सङ्कुचित ही क्षेत्र भाया,
क्षुद्र, हा! कैसा बनाया
जन्मसे जो था मिला दैविक तुझे सुविवेक
कवि तू विश्वको तो देख

विश्वका जो करुण क्रन्दन
लेखनीका बने नन्दन
छोड़कर अब लीक निर्मित कर नयी निज रेख
कवि तू विश्वको तो देख

—गिरीशदत्त पाण्डेय।

डच इण्डीजकी समस्या

श्री दिल्लीरमण रेग्मी, एम० ए०, एम० लिट्०

जापानकी आंखें इधर कुछ दिनोंसे प्रशान्त महासागर-स्थित हालैण्डके उपनिवेश-द्वीपोंपर लगी हुई हैं। कुछ दिन हुए इन उपनिवेशोंके साथ आर्थिक सम्बन्ध कायम रखनेके लिए उसने एक व्यापार-प्रतिनिधि वहां भेज दिया है और बहुत अंशमें जापानको अपनी मांगें पूरी करानेमें परिस्थिति सहायक सिद्ध हुई है। फिर भी, जैसा सोचा जाता था कि हालैण्डकी पराजयके कारण डच उपनिवेशोंका यथावस्थित रहना असम्भव है, कमसे कम इन पंक्तियोंको लिखने तक गलत ही साबित हुआ है। यह आश्चर्य है कि हालैण्डकी पराजयके कारण डचोंकी सामरिक शक्तिमें जो कमजोरी आ गयी है, इससे जापानने साम्राज्यकी इच्छा रखते हुए भी अभी तक फायदा नहीं उठाया है।

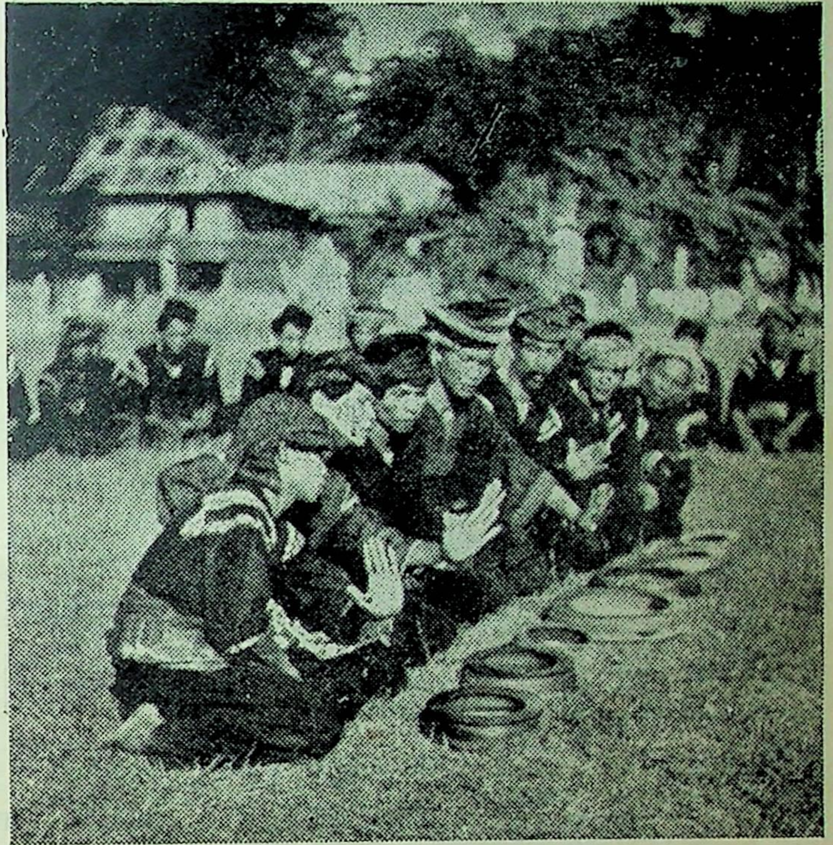


जावाकी स्त्रियां चाय साफ करते हुए—ईस्ट इण्डीजमें खेतीसे कितनी ही बहुमूल्य वस्तुओंके अलावा चाय भी बहुत होती है। बहुमूल्य धातुओं और तेलके कारण इन टापुओंपर स्वार्थी राष्ट्रोंकी आंखें लगी हुई हैं।

जापानका सम्बन्ध

डच ईस्ट इण्डीजपर कितने ही कारणोंसे साम्राज्यवादी राष्ट्रोंकी दृष्टि हो सकती है और निःसन्देह दृष्टि है। इन द्वीपोंके आगे आर्थिक, औद्योगिक और सामरिक विस्तार और प्रकृतिदत्त अक्षय वस्तुओंके सामञ्जस्य-पूर्ण उपभोगकी समस्या उपस्थित ही होनेवाली है। डच ईस्ट इण्डीजके साथ जापानका जबर्दस्त आर्थिक सम्बन्ध है। वहांकी उपजका अधिक भाग जापान समेट लेता है। जापानको ये चीजें वैसी ही सुविधासे अन्य देशोंसे नहीं मिल सकतीं। इन द्वीप-पुञ्जोंमें भाग्यवश या दुर्भाग्यवश सांसारिक उन्नतिके

लिए आवश्यक सामग्रीका भण्डार प्रचुर मात्रामें विद्यमान है और यह भण्डार ऐसा है, जो दुर्योधनके हाथोंसे व्यय किये हुए धनकी तरह दिन-प्रति-दिन बढ़ता जाता है। बहुत से ऐसे उपनिवेश हैं, जो साम्राज्यके लिए भार हो जाते हैं; किन्तु डच इण्डीजका हाल बिलकुल उलटा है, वह साम्राज्यका सहायक है। लौह और कपासके सिवाय अन्य वस्तुयें बहुत अधिक परिमाणमें डच इण्डीजमें हैं। अलकतरा, कोयला है; पर उतना नहीं। यहां रबर, टीन, पेट्रोल, चाय, काफी, तम्बाकू, ईख, पाम आयल, नारियल और अन्य कई चीजें इतनी अधिक पैदा होती हैं कि उनसे केवल डच इण्डीजकी आवश्यकता ही पूरी नहीं होती, अन्य साम्राज्यवादी राष्ट्रोंको भी ये चीजें मिल जाती हैं। इधर कुछ दिनोंसे औद्योगिक उत्पादनपर भी जोर दिया जाने लगा है, यद्यपि आज तक इन उपनिवेशोंका दुनियाके साथ सम्बन्ध रहा है केवल कच्चे मालके लिए। यह माल अधिकतर बाहर भेजा जाता है। आर्थिक सङ्कटके दिनोंमें भी बाहर भेजी जानेवाली वस्तुओंका मूल्य था ७४ करोड़ गिल्डर—और एक गिल्डर साधारणतः अठारह आनेके बराबर होता है।



सुमात्राके मिनाङ्ककेबाऊ—इनमें स्त्रियां नृत्य नहीं करतीं। हाथों आदिसे भाव प्रदर्शन करती और गाती हैं।

जापान ये सब वस्तुयें अपने काममें लाता है। रबर, टीन, चाय, तम्बाकू और अन्य कई वस्तुयें जापानको इण्डीजसे ही मिलती हैं। जापानको अधिकतर पेट्रोलके लिए सबसे अधिक सतर्क रहना पड़ता है। परन्तु पिछले दिनों जापानको पेट्रोल-क्षेत्रमें भी सुविधा मिल चुकी है। शायद इस क्षेत्रमें सभी पक्षों द्वारा नरम नीतिसे काम लिये जानेके कारण जापानने कड़ा रुख नहीं किया। जापानमें पेट्रोलकी उत्पत्ति प्रायः नहींके बराबर है, मञ्चूरिया और समुद्रतटवर्ती चीनमें सम्भावना तो है; पर कार्य सिद्ध नहीं हो पाया है। डच इण्डीज ही ऐसा है, जो जरूरत पूरी कर सके। पेट्रोलके कारण ही इन टापुओंका स्थान पञ्चम है। १९३९ में ६१,९८०,००० बैरल तेल उत्पादन हुआ था और अच्छी तरह प्रयत्न किये जानेपर यह उत्पादन बढ़ सकता है। जापानके सामने पेट्रोल-सम्बन्धी प्रश्न महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि वर्तमान शक्ति-सन्तुलनकी ओर दृष्टि डालनेपर, इण्डीजका हालैण्डके हाथमें रहना, अन्य अवस्थामें जैसा भी हो, समरमें पड़नेके लिए उत्सुक जापानके लिए नितान्त आपत्तिजनक है। हालैण्डके साथ लड़नेका सवाल नहीं है। किन्तु हालैण्डके पीछे ब्रिटेन और अमेरिकाका जबर्दस्त गुट है, जो चाहे तो तेलका निर्यात जापानकी ओर एकदम बन्द कर दे। जर्मनी-इटलीका साथी बनकर यदि जापान युद्धमें शामिल हो, तो उसका परिणाम भी यही होगा। इसके अलावा इण्डीजमें जापानका निर्यात भी काफी पहुंचता है। इण्डीजकी जनता गरीब है, इसीलिए वह सस्ता जापानी माल पसन्द करती है। डच सरकारने जापानी आयातको



मिनाङ्कवाऊ लोगोंका बाजार—मुसलमान होनेपर भी इनमें पर्दा नहीं है।

है, जो वहां व्यापारमें लगी हुई है। अमेरिकाकी यह पूंजी रबर और तैल-व्यवसायमें अत्यधिक फंसी हुई है, जिसके लिए भी डच इण्डीजके शासनको अपने अनुकूल रखना अमेरिकाके लिए आवश्यक है।

मलायाके बारेमें जिक्र किया जा चुका है। डच इण्डीजके साथ ब्रिटेनका आर्थिक और व्यापारिक सम्बन्ध गहरा नहीं है। यों ब्रिटिश पूंजी वहां लगी हुई है, फिर भी वह इतनी नहीं है कि इसके कारण ही ब्रिटेनको सतर्क रहना पड़े। ब्रिटेनके लिए इण्डीज सामरिक दृष्टिसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

सामरिक महत्त्व

इण्डीज हिन्द महासागरसे प्रशान्त महासागरमें जानेके द्वारपर है। आधुनिक व्यापार और साम्राज्यका विभाजन जिस

कम करनेके लिए आयात-करकी एक दीवाल खड़ी कर दी है और जापानके साथ अच्छा सलूक नहीं किया गया है; किन्तु अब तक भी जापान ८॥ करोड़ गिल्डरका माल इण्डीजमें भेज रहा है, इसलिए कच्चा माल पानेके अलावा जापानका निर्यात सम्बन्धी स्वार्थ भी इण्डीजमें है।

ब्रिटेन और अमेरिका

अमेरिकाको डच इण्डीजसे साधारण तौरपर कच्चा माल मिलनेका ही फायदा है। कच्चा माल जो इण्डीजसे मिलता है, प्रायः वही है जो जापानको मिलता है। इनमें रबर और टीन तो निहायत जरूरी हैं। परन्तु अमेरिकाको ये सब चीजें उतनी ही मात्रामें पड़ोसी ब्रिटिश मलायासे भी मिल जाती हैं। अमेरिकाकी दृष्टिसे ब्रिटिश मलायाका इण्डीजके साथ आर्थिक ऐक्य है, क्योंकि उत्पादनकी समताके साथ-साथ दोनों देश भौगोलिक दृष्टिसे एक ही हैं। इसीलिए एक देशका असर दूसरे देशपर पड़े बिना नहीं रह सकता है। डच इण्डीजके जापानके हाथमें चले जानेसे ब्रिटिश मलायाका सुरक्षित रहना असम्भव है। अमेरिकाकी नीति डच इण्डीजके सम्बन्धमें इसी दृष्टिसे चल रही है। साथ-साथ दूसरा ख्याल अमेरिकाको अपनी पूंजीका भी

तरह किया गया है, उसे कायम रखनेके लिए इस द्वारकी रक्षा करना आवश्यक है। प्रशान्त महासागरमें जिन राष्ट्रोंका स्वार्थ है, उनके लिए इस द्वारका बड़ा महत्त्व है। फ्रान्सको यदि छोड़ दिया जाय, तो ब्रिटेन और अमेरिकाकी दृष्टिसे इस प्रश्नपर विचार करना चाहिए। ब्रिटिश मलायाका सवाल बहुत पेचीला है; किन्तु पास होनेके कारण उसकी स्थितिमें परिवर्तन होनेका प्रभाव बर्मा और भारतपर भी पड़ सकता है। डच इण्डीज यदि किसी विरोधी राष्ट्रके हाथमें चला जाय, तो ब्रिटिश मलायाकी रक्षा होना मुश्किल है। उस अवस्थामें, जल्दी हो या देरमें, ब्रिटेनको प्रशान्त महासागरसे हटना ही पड़ेगा और एक रूपमें आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्डसे भी। फिर आस्ट्रेलियाका निकटवर्ती टापू होनेसे न्यूगिनीपर क्या उसका कोई असर नहीं पड़ेगा? ब्रिटेनके लिए इसीलिए इण्डीजकी रक्षाका सवाल अपनी रक्षाका सवाल है। ब्रिटिश मलायामें आर्थिक स्वार्थ और फिलिपाइन्स पास होनेके कारण अमेरिकाके लिए उसका वही अर्थ है। फिलिपाइन्सके नजदीक बहुत-से टापू जापानके हाथ लग गये हैं—इनमेंसे हैनान और चीन-सागरके कतिपय टापुओंमें उसने किलेबन्दी भी शुरू कर दी है। कोई भी

अनुमान कर सकता है कि डच इण्डीजके जापानके हाथमें चले जानेके बाद फिलिपाइन्सकी कैसी हालत होगी। किसीको भी यह समझनेके लिए अधिक बुद्धिमान होनेकी आवश्यकता नहीं है कि अमेरिकाको वैसी स्थितिमें सारे प्रशान्त महासागर और हिन्दसागर-स्थित देशोंके व्यापारसे अलग होना पड़ेगा।



बोर्नियोकी एक मूल निवासी विधवा—हाथी-दांतोंके आभूषण देखिये। उसकी यही सम्पत्ति है।

अभी तक डचोंके पास क्यों ?

यह इसलिए सम्भव हुआ कि सिवाय जापानके कोई दूसरा राष्ट्र इण्डीजके स्वामित्वमें परिवर्तन नहीं चाहता है और इसी ख्यालने अमेरिका और ब्रिटेनको एक सूत्रमें बांध रखा है। हम जानते हैं कि इण्डीजकी सामरिक स्थिति बहुत ही कमजोर है। जहाजी शक्तिमें वह बराबर ब्रिटिश जलसेनापर ही निर्भर रहता आया है और २ क्रूजरों (७००० टन), १२ डेस्ट्रायरों और १८ सबमेरीनोंके सिवाय वहां कोई जङ्गी जहाज युद्धके योग्य नहीं है। स्थलपर लड़नेके लिए फौजका भी सन्तोषजनक बन्दोबस्त नहीं है। किन्तु यह सब होते हुए भी जापानके इण्डीजपर कब्जा न कर सकनेके दो कारण हैं। पहला यह कि जापान अभी तक यह नहीं समझता कि इण्डीजपर कब्जा करनेके लिए यही अवसर उपयुक्त है। चीनकी उलझन अभी तक नहीं सुलझ सकी है। वहां परिस्थिति जापानके लिए पहलेसे ज्यादा खराब हो रही है। बोर्नियो अथवा न्यूगिनीमें फौज पहुंचाना इतना मुश्किल नहीं होता, अगर चीनी उलझनसे जापान निकल चुका होता। जापानसे इण्डीज कमसे कम २००० मीलकी दूरीपर है। इसके सिवाय जितने जहाज हैं, चीनमें फौजी निर्यात पहुंचानेमें लगे हैं—बाकी जहाज अन्य व्यापारिक कार्योंको कर रहे हैं। चीनकी समस्याको छोड़ भी दें, तो जापानके इण्डीजमें फंसनेका यही परिणाम होता कि व्यापारमें लगे हुए जहाजोंको इण्डीज-सम्बन्धी फौजी कारवाइयोंमें लग जाना पड़ता और जापानको जहाजी व्यापारसे हाथ धोना पड़ता। दूसरा कारण है विभिन्न राष्ट्रोंके एक साथ हमला करनेका डर। इधर रूसके साथ जापानकी नहीं पट रही है और इण्डीजमें धावा बोलनेका मतलब यह होता कि अमेरिका और ब्रिटेनके साथ युद्ध छिड़ जाता। तीन राष्ट्रोंसे लड़ाई करनेकी सामर्थ्य जापानमें नहीं है।

फिर भी इण्डीजके लिए जापानके ललचानेका कारण है—जापानसे पांच गुना ज्यादा बड़ा होनेके कारण जापानके फैलावकी दिशा उसी ओर है। सम्पूर्ण एशियाके नेतृत्वकी अभिलाषा तो है ही। इसी खयालसे जापान इण्डीजपर अधिकार जमानेको तुला हुआ है। किन्तु उपर्युक्त प्रतिकूल वातावरणके कारण अपनी मंशा पूरी नहीं कर सका। इसमें उसे बाधा पड़ रही है। अमेरिकाके, जो जापानके प्रशान्त महासागरमें थोड़े भी प्रभुत्व-विस्तारको सहन नहीं कर



डच बोर्नियोमें दक्षिण-पूर्वके जङ्गली लोगोंमें मृत्युका बड़ा भय होता है। यह भय निवारण करनेके लिए वे किसीके मर जानेपर इस तरहके बड़े-बड़े मटकोंसे मनमानी शराब ढरकते हैं।

उससे फायदा उठा ले। इसके लिए डच सरकार ही जिम्मेदार है, जिसने पहले गलती की है। डच इण्डीजको बगैर किसी सहायताके छोड़नेका सवाल नहीं है। किन्तु साम्राज्यवाद-ने जो दबाव डाला है, इण्डीजकी जनता आज उसे समझ गयी है और समझकर उससे छुटकारा पाना चाहती है। सम्भव है कि जापानके लिए यह परिस्थिति लाभकर हो।

एक बात और—डच इण्डीज-में ७ करोड़ आदमी हैं, जिनमें जापानी हैं केवल ८००० । तुलनामें जापानी भले ही शक्ति-हीन समझे जायं; किन्तु साम्रा-ज्यवादके खिलाफ इण्डीजकी जनताको उभाड़नेके लिए ये ८००० भी पर्याप्त हैं। जापान यह खेल भी खेल सकता है।

हालकी घटनाओंके प्रकाशमें हम जापान और अमेरिकाके बीच अनबन कुछ बढ़ती हुई-सी देखते हैं। कार्डेलहलके वक्तव्यका जवाब जापानी अखबारोंने अखबारी बम फेंककर दिया है। वर्तमान खतरनाक परि-स्थितिसे यही अनुमान किया जाता है कि जापान चुप रहनेवाला नहीं है। डच इण्डीजके लिए यह अच्छा संवाद नहीं है। साम्राज्यवादका पञ्जा फैसिज्म फैला रहा है और अगर ग्रीस आज उसका शिकार हुआ है, तो इण्डीजके लिए हमलेकी सम्भावना दूर नहीं मालूम पड़ती। धुरी शक्तियां ब्रिटेनकी शक्ति बंटानेके लिए इधर-उधर जाल फैला रही हैं। यह सही है कि इण्डीजके अनुकूल अमेरिकाका रुख कड़ा है। और इधर आज तक अमेरिकाके कारण ही इण्डीज बच रहा है। फिर भी उसे फैसिज्मके चङ्गलसे बचनेके लिए एक बार सारी शक्ति लगाकर प्रयत्न करना होगा।

सकता, कतिपय वक्तव्योंसे यह स्पष्ट हो चुका है। अतएव वर्तमान परिस्थितिमें जापानने इण्डीजसे व्यापारिक सुविधा प्राप्त करनेमें ही सन्तोष कर लिया है। शान्तिपूर्वक व्यापार कायम करनेके जापानके विचारकी पुष्टि करनेके लिए डच और ब्रिटिश सरकारने कुछ व्यापारिक प्रतिबन्ध भी हटा लिये हैं और आज मामला यहीं अटका हुआ है।

एशियाके नेतृत्वका भार धुरी शक्तियोंने जापानपर रख दिया है; किन्तु इसपर तब तक अमल नहीं होनेका, जब तक अन्य दो शक्तियां अपने प्रयत्नमें सफल होती रहें। लड़ाई बन्द न होने तक क्या परिणाम होगा, यह कोई नहीं कह सकता। किन्तु इण्डीज अथवा यों कहिये, अन्य उपनिवेशोंमें भी राष्ट्रीयताकी जो लहर चल रही है, शायद जापान

हम लोगोंके लिए इण्डीजकी राजनीतिक घटनाओंका खास अर्थ है। यह द्वीप-समूह भारतवर्षके बहुत ही निकट है। हिन्द महासागरके द्वारपर होनेके कारण इण्डीजके स्वामित्वमें यदि परिवर्तन हो, तो भारतवर्षपर असर पड़े बिना नहीं रह सकता। हमें यह भी तो सोचना है कि स्वराज्यशाली हो जानेपर हमें अपनी रक्षाके लिए पर्याप्त बन्दोबस्त करना होगा, ताकि एक साम्राज्यवादसे निकलनेपर दूसरे साम्राज्यके चंगुलमें न फंसना पड़े। इण्डीजकी समस्यासे देश लापरवाह नहीं रह सकता।

रहस्यमय भारत

श्री सन्तराम, बी० ए०

यह पवित्र भरत-खण्ड भगवान्की विभूतियोंका भाण्डार है। इसमें ऐसे-ऐसे रहस्यमय पदार्थ देखनेको मिलते हैं, जो भूमण्डलके किसी दूसरे देशमें शायद ही कहीं मिलें। उन्हें देख-सुन बुद्धि चकित-स्तम्भित रह जाती है। उनकी सत्यतामें विश्वास करनेको मन नहीं होता; परन्तु जो प्रत्यक्ष हो, उससे इनकार भी कैसे किया जा सकता है।

इसी जनवरीमें मैं कलकत्ते गया था। वहां मैं ९९, हाजरा रोडपर श्री रलाराम चोपड़ाके यहां ठहरा था। उन्हीं दिनों उनके यहां बम्बईसे एक और सज्जन भी आये हुए थे। बातों-बातोंमें उनसे अच्छा परिचय हो गया। उनका नाम श्री बालकृष्णदास सेठ है। आपका जन्मस्थान यद्यपि पञ्जाबके अन्तर्गत वजीराबादमें है, परन्तु आप वर्षोंसे बम्बईके उपनगर खारमें रहते हैं। कोई ६९ वर्षका वय है। किसी समय आप लाखोंके स्वामी थे। आप सरकारी सेनामें और सर्वे डिपार्टमेण्टमें भी नौकर रह चुके हैं। ठेकेदारी भी करते रहे हैं। अपने कारबारके सिलसिलेमें आप भारतके विभिन्न प्रदेशोंके अतिरिक्त ईरान आदि देशोंकी भी यात्रा कर चुके हैं। अपनी यात्रामें आपको अनेक आश्चर्यजनक वस्तुयें देखनेको मिली हैं। आप अन्धविश्वासी या कट्टर सनातनी नहीं, किसी समय अच्छे आर्यसमाजी थे। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द और दिल्लीके स्वर्गीय सेठ रग्घूमलजीके साथ इनका घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। आपकी द्वितीय धर्मपत्नी कन्या-गुरुकुलमें पढ़ी हुई हैं। आजकल आप उदार विचारके हिन्दू हैं। किसी सम्प्रदाय-विशेषसे सम्बन्ध नहीं रखते। आपने जो अद्‌भुत बातें मुझे बतायीं, उन्हें उन्हींके शब्दोंमें पढ़िये।

बम्बईसे कोई ६ मील दूरपर शिवा नामका एक छोटा-सा टापू है। टापूमें सांप बहुत हैं। जिधर देखो उधर सांप ही सांप दीखते थे। कोई ९ वर्षकी बात है, वहां एक बुढ़िया माई रहती थी। उसमें कुछ ऐसी शक्ति थी कि सांप उसे काटते नहीं थे। वह सांपको पकड़कर उसका विष निकाल लेती थी और फिर उसे छोड़ देती थी। यह विष औषधि में काम आता है। बम्बईसे आकर लोग उससे मोल ले जाते थे। इस टापूमें जहां मेरी जगह है, वहां एक मणिवाला सांप रहता था। कोई दो गज लम्बा और डेढ़ इञ्च मोटा था। उसका रङ्ग काला था। वह कुक्कुट खा जाता था। उसके साथ सदा दो और सांप भी रहते थे। जब वह अपने मुंहमेंसे मणिको निकालकर बाहर रखता था, तो चारों ओर प्रकाश हो जाता था। मणिको देखकर चूहे अपने-अपने स्थानपर नाचने लगते थे और वह उनको पकड़कर पेटमें डाल लेता था। लोग उसकी मणि लेनेके लिए लालायित रहते थे। एक धनवान सेठ तो उसके लिए एक लाख तक देनेको तैयार था। उसका पराग नामका एक नौकर था। एक दिन वह परातमें आटा गूंध रहा था। इतनेमें मणिवाला सांप निकल आया। उसने मणि निकालकर बाहर रख दी। इससे आलोक-सा फैल गया। परागने मणि पानेके लिए सांपपर परात दे मारी। परन्तु वह सांपके नहीं लगी। सांप झटपट मणिको मुंहमें डालकर कहीं चला गया। इसके कुछ दिन बाद वही सांप फिर निकला। इस बार परागने मणिके लालचसे उसे मार डाला और चिमटोंसे उसका मुंह खोलकर मणि ढूंढ़ने लगा। परन्तु मणि न मिली। वह पिघलकर पानी हो चुकी थी।

मैंने पूछा—क्या आपने अपनी आंखसे सर्प-मणिको चमकता हुआ देखा था या यह सब सुना-सुनाया है।

बालकृष्णदासने उत्तर दिया—मैं आपको जो कुछ सुना रहा हूं, सब आंखों देखी बातें सुना रहा हूं—दूसरोंसे सुनी-सुनायी नहीं। मणिवाला सांप खारमें निकला था। वहां एक प्लाट खाली पड़ा था। आजकल उस प्लाटमें एक नालबन्द बैठता है। आप इस मणिवाले सांपकी बात सुनकर ही चकित हो रहे हैं। आपको सांप देखने हों, तो मैं आपको एक और स्थान बताता हूं। वहां जाइये। वहां आपको अगणित सांप मिलेंगे।

मैंने पूछा—वह कौन जगह है? उन्होंने बतलाया, उसका नाम शङ्कर नारायण है। वह मद्रास प्रान्तके अन्तर्गत मदुरा नगरीसे ५८ मीलके अन्तरपर है। मदुरामें आपको शङ्कर नारायणके पण्डे मिल जायंगे। वे आपको वहां ले जायंगे। वह जगह बस्तीसे दूर बनमें है। मुझे एक पण्डा वहां ले गया था। तांगेपर जब हम वहां पहुंचे, मार्गपर पहले हमें एक सांप सिर उठाये खड़ा मिला। मैं उसे देखकर डर गया। परन्तु पण्डेने कहा, डरिये मत, मेरे पीछे-पीछे चले आइये। पण्डेने चादर हिलाकर कुछ सङ्केत-सा किया। इसपर वह सांप वहांसे भाग गया। आगे जानेपर चार-पांच मनुष्य झाड़ू लगाते हुए मिले। थोड़ी दूर आगे जानेपर जब मैंने पीछे मुड़कर देखा, तो क्या देखता हूं कि सांपोंकी एक बहुत बड़ी मण्डली हमारे पीछे-पीछे आ रही है। मैं देखकर बहुत घबराया। परन्तु उस पण्डेने मुझे शान्त रहनेको कहा। वह बोला, आप घबराइये नहीं, ये आपको काटेंगे नहीं। उसने मेरे इर्द-गिर्द एक रेखा खींच दी। सांप उसके बाहर ही ठहर गये। एक भी उसके भीतर न आया। वहां खड़े होकर जब मैंने शिवलिङ्गकी ओर देखा, तो एक बड़ा सांप उससे लिपटकर उसपर फण फैलाये पड़ा था। अपने चारों ओर सांप ही सांप देख मेरे रोमाञ्च हो रहा था और मैं कांप रहा था। मैंने कहा, मुझे बाहर ले चलो। इसपर वह पण्डा मुझे उस बनसे बाहर ले आया।

शङ्कर नारायणमें सांपोंको दूध पिलानेके लिए मैसूर राज्यकी ओरसे बहुत-सी गायें हैं। वहां बहुत-से सोनेके कुण्ड बने हुए हैं। उनमेंसे कुछ तो बहुत नीचे हैं और कुछ पर्याप्त ऊंचे। उनमें दूध डाल दिया जाता है। छोटे सांप नीचेके कुण्डोंमेंसे और बड़े सांप ऊंचे कुण्डोंमेंसे दूध पी लेते हैं। वहां उन दिनों दो पैसे सेर दूध मिलता था। मेरे पास डेढ़ सौ रुपये थे। वे मैंने पण्डेको सांपोंको दूध पिलानेके लिए दे दिये। आप हिसाब लगाइये, डेढ़ सौ रुपयेका कितना दूध आया होगा। परन्तु वे सांप सभी दूध चट कर गये।

मैंने पूछा—सेठजी, आपने वहीं सांप देखे हैं या किसी दूसरी जगह भी?

फूंकवां सांप

उन्होंने कहा—लगभग १९०४ की बात है, मैं सर्वे आफ इण्डियामें नौकर था। उन दिनों बम्बईको सिन्धसे रेलवे द्वारा मिलानेके लिए भूमि नापी जा रही थी। हम राधनपुर राज्यमें सर्वे कर रहे थे। वह जगह आबू पर्वतसे कोई ३९ मीलके अन्तरपर है। रेत ही रेत है। इस प्रदेशमें रण नामकी एक खारी झील है। जब पवन चलती है, तो उसके झोंकेसे झीलका पानी एक ओरसे हटकर दूसरी ओरको हो जाता है और जहांसे पानी हटा, वहां सरोवरकी पेंदीपर नमककी एक बहुत मोटी तह जमी रह जाती है। तब लोग वह नमक निकाल लेते हैं। कभी-कभी पवन पांच-पांच, छः-छः दिन एक ही दिशामें बहती रहती है। फिर जब वह अपनी दिशा बदलती है, तो जहांसे नमक उठाया गया है, वहां पानी हो जाता है और दूसरी ओर जमे हुए नमकका थोक। इस प्रकार इस सरोवरसे प्रति वर्ष सहस्रों मन नमक निकाला जाता है।

इस प्रदेशमें अजगरोंके अलावा एक और प्रकारका सांप भी होता है। उसे फूंकवां सांप कहते हैं। वह कोई डेढ़ गज लम्बा और दो-तीन इञ्च मोटा होता है। मनुष्यके सामने आकर जब वह उसकी फूंकके साथ अपने मुंहकी फूंक मिलाता है, मनुष्यका रङ्ग नीला पड़ जाता है। यह प्रायः रातमें बाहर निकलता है। यदि उस सांपको मारकर सवेरा होनेसे पहले-पहले उस मनुष्यके गलेमें डाल दिया जाय, तो वह मनुष्य बच जाता है, नहीं तो अवश्य उसकी मृत्यु हो जाती है। इस सांपका स्वभाव है कि मनुष्य तक पहुंचनेके पहले वह रास्तेमें पड़ी स्टूल, कुर्सी, तिपाई आदि सभी वस्तुओंको खींचकर अलग हटा देता है। इसलिए इससे बचनेके लिए हम सोते समय अपने सिरहानेके

इर्द-गिर्द छः-सात दो धारवाली तेज बरछियां गाड़ लेते थे। सांप उनको उखाड़नेके लिए उनके गिर्द लिपटकर खींचता था और कटकर मर जाता था। यह सांप बहावलपुर राज्यमें बहुत पाया जाता है। इसका रङ्ग लाली लिये होता है।

रेतकी मछली

गुजरात और सिन्धके बीचका प्रदेश थल कहलाता है। यह मरुभूमि है। जब वायु चलती है, तो रेतके पहाड़के पहाड़ एक स्थानसे उड़कर दूसरे स्थानपर जा पहुंचते हैं। इन रेतके टीलोंके नीचे मनुष्य, पशु, मकान सब दब जाते हैं। इसलिए हम इस मरुस्थलीमें सरकण्डेकी सिरकियां लगाकर सोया करते थे। सिरकीकी छत ढलवां होनेसे रेत उसपर इकट्ठी नहीं होती और मनुष्य दबनेसे बच जाता है। मैं शिकारी आदमी हूं। हमारे साथ जितने मनुष्य सर्वेके कामके लिए गये थे, उन सबके पास भी बन्दूकें थीं। परन्तु एक तो उस राज्यमें आखेट करनेका निषेध था और दूसरे उस थलके प्रदेशमें कोई शिकार मिलता भी न था। हम लोग कई दिनसे मांसके लिए तरस रहे थे। एक दिन हमने देखा कि रेतके टीलेमेंसे कोई पङ्खदार चीज झुण्डकी झुण्ड आकाशकी ओर उड़ती है, परन्तु थोड़ी दूर ऊपर जाकर फिर नीचे गिर पड़ती है। हम समझ न सके और टीलेपर जाल फैला दिया। कुछ ही देरमें वह उन पङ्खदार जन्तुओंसे भर गया। वे पङ्खदार मछलियां थीं; परन्तु हमने कभी विचारा तक न था कि रेतमें बिना पानीके भी मछलियां रह सकती हैं। वास्तवमें यह रेग माही (गोल्डन फिश) थी। यह नपुंसकोंको औषध-रूपमें खिलायी जाती है। बहुत गरम होती है। इसकी मात्रा केवल दो रत्ती है। परन्तु इसका कुछ भी ज्ञान न होने और बहुत दिनसे मांस न मिलनेसे, हम सब इसे खूब पेट भर-भरकर खा गये। हमें इस प्रकार रेग माही खाते देख हमारा भील नौकर रघुवैया खूब हंसा, परन्तु उसने कहा कुछ नहीं। रात बीतनेपर जब सवेरे सोकर उठे, तो सभी लोग मारे पीड़ाके चिल्ला रहे थे। सबकी मूत्रेन्द्रिय सूज गयी थी। मूत्रकी एक बूंद मुश्किलसे, बड़ी पीड़ाके साथ निकलती थी। इसपर हमारा भील नौकर रघुवैया कहींसे बहुत-से बड़े-बड़े मतीरे ले आया। भरपेट तरबूज खानेसे हमारी पीड़ा शान्त हो गयी और मूत्र खुलकर होने लगा। फिर उसने गांवकी भील कन्याओंसे एक विशेष खारी पानी मंगाया, जिससे धोनेसे मूत्रेन्द्रियकी जलन दूर हो गयी।

इस प्रदेशमें सिंह बहुत पाये जाते हैं। यहां हमने भील कन्याओंको सिंहोंकी सवारी करते देखा। इन लड़कियोंका रङ्ग बिलकुल ही काला था। परन्तु इनके शरीरकी गठन और आकृति अतीव सुन्दर और मनोहर थी। उनके होंठ स्वभावतः ऐसे लाल थे, मानो पान चबा रखा हो। कांटोंसे पत्तोंको सीकर उन्होंने शरीरको ढक रखा था और सिरको कई रङ्गोंके सुन्दर जङ्गली फूलोंके मुकुटोंसे सजाया था। इन लड़कियोंमें कुछ अद्भुत शक्ति है। मैंने इन्हें अपनी मानसिक शक्तिसे मेज, कुर्सी और छड़ीको अधरमें निराधार खड़े करते तो कई बार देखा है। इनमेंसे प्रायः प्रत्येक लड़कीके पास अपना एक सिंह है। वह उसपर सवार होकर बनमें विहार करती है। सिंह उससे कुछ नहीं बोलता। वह उसके पीछे-पीछे वैसे ही चलता है, जैसे पालतू कुत्ता अपने स्वामीके पीछे चला करता है। एक दिनकी बात है, एक सिंह बनसे आकर हमारे पाससे होकर निकला। मैंने डरकर झट बन्दूक उठा ली और उसपर गोली दागने ही को था कि एक भील लड़कीने दौड़कर मेरा हाथ पकड़ लिया। वह हमारे असिस्टेण्ट इञ्जीनियर राजा बी० के० गोविन्द राजलूके यहां रसोई बनानेपर नौकर थी। वह कड़ककर बोली—'काय करतोस दुष्टा! हा माझा सिंह आहे।' अर्थात् ओ दुष्ट, तू यह क्या करने चला है? यह तो मेरा सिंह है। तब लड़कीने अपने मुंहपर हाथ रखकर एक विशेष शब्द किया। इसपर वह सिंह वहीं ठहर गया और लड़कीने जाकर उसे पकड़ लिया।

मैंने पूछा—सेठजी, वे लड़कियां क्या कोई जादू जानती हैं, जिससे वे सिंहोंको वशमें कर लेती हैं?

इसपर श्री बालकृष्णदासजी बोले—उनके पास जादू-वादू कुछ नहीं है। उन्होंने बनके सभी सिंहोंको बिगाड़ रखा है।

मैंने कहा—मैंने आपका अभिप्राय नहीं समझा।

उन्होंने कहा—स्कूलमें हम एक तमाशा किया करते थे। जब कोई कुतिया गरम होती, हम उसके स्रावमें कपड़ेका टुकड़ा भिगोकर रख लेते थे। हमारे स्कूलके सामनेसे कभी-कभी सरकारी सेनायें मार्च करती हुई जाया करती

थीं। उनके अंगरेज अफसरोंके पास बहुत बढ़िया जातिके कुत्ते होते थे। वे भी घुड़सवार अफसरोंके पीछे-पीछे चला करते थे। कुत्तेके निकट जाकर हम वह कपड़ेका टुकड़ा दिखला देते थे। उसकी गन्धसे कुत्ता अफसरके पीछे जाना छोड़कर हमारे पीछे चलने लगता था। लाख सीटी देनेपर भी वह फिर साहबके पीछे नहीं जाता था। इसी प्रकार ये लड़कियां सिंहके बच्चेको पकड़कर उसकी जननेन्द्रियको मलती हैं। इससे उस इन्द्रियका स्राव उनके हाथमें लग जाता है और उसकी बास उसमें बस जाती है। बस, फिर जब भी वे उस सिंहको अपना हाथ सुंघाती हैं, वह कुत्तेकी भांति उनके पीछे-पीछे फिरने लगता है।

अद्‌भुत कन्द-मूल

थलके रेतीले प्रदेशमें नरा चेट नामका एक सुन्दर सरोवर है। हम चलते-चलते उसपर जा पहुंचे। सरोवरका घेरा कोई चार मील लम्बा होगा। सरोवरके इर्द-गिर्द जङ्गल था। उसमें सङ्गतरा, केला, खस आदि उगे थे। सरोवरके किनारे एक महात्मा थे। वहां और भी बहुत-से साधु थे। महात्माने सबके हम ८०० मनुष्योंको भोजनके लिए निमन्त्रण दिया। वे जङ्गलसे एक विशेष प्रकारका कन्द-मूल लाये। उसे भूना गया, तो उसमेंसे दूधमें पकी हुई सेवईं-सी निकलीं। महात्माने हम सबके आगे केलेके पत्ते बिछाकर उनपर एक एक फलीकी सेवइयां, सङ्गतरे और केले परोस दिये। उस मूलमेंसे निकला हुआ वह खाद्य पदार्थ बड़ा ही स्वादिष्ट और पौष्टिक था। अड़तालीस घण्टे तक उससे भूख नहीं लगी। मनुष्य मुश्किलसे एक फली खा सकता था। पूछनेपर मालूम हुआ कि उसकी एक बेल-सी होती है। उसमें केलेकी ऐसी फली लगती है। वह फली रेतके नीचे दबी रहती है। उसके केवल दो-चार छोटे-छोटे पत्ते ही भूमिसे बाहर निकले रहते हैं। उस फलीको आगमें भूननेसे उसमेंसे उपर्युक्त स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ निकलता है। इस बेलकी जड़ शकरकन्दकी ऐसी होती है। उसे भी आगमें भूनकर शकरकन्दकी भांति ही खाया जाता है। हमने देखा, यह बेल वहां जङ्गलमें बहुत फैल रही थी। हमारे साथ जम्मू राज्यके कुछ मनुष्य थे। उन्होंने बताया कि हमारी ओर इस बेलको तरड़ कहते हैं। जब हम साधुके पाससे विदा होने लगे, तो उसने भूमिमेंसे खोदकर हमें चांदीके पुराने सिक्के दिये। वे जगन्नाथियां-जैसे थे। हमारे अफसर कर्नल एच० हार्नने लेकर वे सब लन्दन म्यूजियममें भेज दिये। उस सरोवरपर कोई डेढ़ सौ साधु थे। उनमेंसे कई ढाई-तीन सौ वर्षकी आयुके थे।

महात्माओंसे भेंट

पञ्जाबके चम्बा राज्यमें पांगी नामका एक स्थान है। वह चम्बासे ७ दिनके अन्तरपर है। वहां सैकड़ों वर्षोंका पड़ा हुआ रक्त हिम या खूनी बर्फ है। सन् १९०४-५ की बात है। सरकारकी ओरसे कर्मचारियोंका एक दल वहां सीमाका पत्थर लगाने गया था। मैं भी उस दलमें था। मैं रास्ता भूलकर पांगीसे १४ मील एक ओरको भटक गया। वहां मुझे एक गुफा मिली। जिस समय मैं वहां पहुंचा, उस समय बादल बहुत बुरी तरहसे घिर रहे थे। आश्रय लेनेके विचारसे मैं उस गुफामें घुसा। भीतर जाकर देखा तो वहां एक विशालकाय और दिव्यमूर्ति महात्मा बैठे थे। उनके बड़े-बड़े नेत्रोंसे ज्योति निकल रही थी। उन्हें देखते ही मैंने उनके चरणोंमें सिर नवा दिया। महात्माने पूछा, तुम इधर भटककर कहां चले आये? अच्छा, अब बैठ जाओ। यह बादल तीन दिन तक नहीं हटेगा। तब तक तुम यहीं रहो। उन्होंने मुझे खानेको फल दिये। इतनेमें आकाशसे बर्फकी लम्बी-लम्बी सलाइयां-सी बरसने लगीं और तीन दिन तक बराबर तुषारपात होता रहा। मैंने देखा, वहां सायम्-प्रातः कुछ गायें आती थीं। उस गुफाके निवासी साधुओंको जितने दूधकी आवश्यकता होती थी, उतना वे निकाल लेते थे। तब वे गायें फिर पहाड़के ऊपर चढ़ जाती थीं। मैं ठीक तो नहीं कह सकता कि गुफा-निवासी साधु कितनी-कितनी आयुके थे, परन्तु देखनेसे उनकी आयु कई सहस्र वर्षकी जान पड़ती थी। यूरोपीय लोग हिमालयके उच्चतम शिखरपर चढ़नेका कई बार विफल प्रयत्न कर चुके हैं। उन्हें मालूम नहीं कि पांगीसे उस शिखरपर चढ़नेके लिए नैसर्गिक मार्ग बना हुआ है। जब तुषारपात बन्द हुआ और आकाश निर्मल हो गया, तो महात्माने निकटवर्ती बस्तीसे दो लड़कियोंको बुलाया और मेरा असबाब उठाकर मुझे लद्दाख पहुंचा देनेको कहा। लद्दाख वहांसे यों २८ दिनका रास्ता है; परन्तु वे लड़कियां एक सीधे मार्गसे मुझे ३ दिनमें ही लद्दाख ले गयीं। लोग सुनकर आश्चर्यचकित रह गये।

पांगीमें एक स्थानपर एक पानीका झरना है। उसमेंसे प्रतिदिन नीलम, पन्ना, चुन्नी आदि मणियां निकलती हैं। देखनेपर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे किसीने झाड़ूसे बुहारकर ये मणियां इकट्ठी कर दी हों। मणियां इकट्ठी करनेका ठेका होता है। आवेके लगभग रत्न राज्यको देने पड़ते हैं। एक समयकी बात है, एक व्यक्तिने ठेका लिया। उसे लालच आया। उसने चाहा कि झरनेके भीतरसे सब मणियां एक ही बार निकाल लूं। उसने डिनामाइट लगाकर उस झरनेको उखाड़ डाला। परन्तु वहां मणियोंका चिह्न तक न निकला, वरन् आगेके लिए भी मणियोंका निकलना बन्द हो गया। सुना है, चार-पांच वर्ष बन्द रहनेके बाद वे फिर निकलने लगी हैं। जम्मूके प्रसिद्ध ठेकेदार हाकिम सिंह रत्नसिंह कपूरके पास पिछले दिनों वहांका ठेका था। कई ठेकेदार बड़ी-बड़ी बहुमूल्य मणियां बकरियोंको खिला देते हैं और उन बकरियोंको राजाके राज्यसे बाहर ले आते हैं। इस प्रकारकी चोरीसे सबके सब बहुमूल्य रत्न उनके पास ही रहते हैं, उन्हें उनमेंसे राज्यको भाग नहीं देना पड़ता।

उन दिनों मथुरा-नागदा-रेलवे लाइन बन रही थी। नकोदर, जिला जालन्धर निवासी श्री गोपालदास सूद वहां सुकीण्ड नदीका पुल बनवा रहे थे। वे सुपरवाइजर थे। उनका डेरा कई दिनसे नदीके तटपर लगा था। वे देखा करते थे कि जिस खोहसे नदी निकलती-सी दिखलाई पड़ती थी, दूसरे-चौथे दिन उस ओरसे नदीमें राख, फल आदि बहकर आते थे। उन्होंने पता लगानेके लिए गुफाके बाहर खूंटे गाड़कर उनमें मजबूत रस्से बांध दिये। उन रस्सोंके सहारे हमारे मजदूर कसियोंसे दलदल और काईको साफ करने लगे। दलदल और काई हटानेपर नीचे पक्का किनारा निकला, मानो सीमेण्टका फर्श हो। हम उसपर-से चलकर गुफाके भीतर गये। गुफा काफी लम्बी थी। उसमें अंधेरा था। लालटेन लेकर हमने भीतर प्रवेश किया। कुछ दूर भीतर जानेपर हमें उसके दूसरी ओर सूर्यका प्रकाश देख पड़ा। हम आगे चलते हुए जब गुफाके बाहर आये, तो वहां एक खुला मैदान पाया। वहां एक सुन्दर वाटिका लगी थी। उसमें केले, सन्तरे, इमली, आम, मूली, कद्दू आदि वस्तुयें लगी थीं। दो मनुष्य वाटिकामें निराई कर रहे थे। उन्होंने हमसे पूछा, तुम कौन हो और यहां क्यों आये हो? वे संस्कृत बोलते थे। मैंने तो कुछ नहीं समझा, परन्तु बाबू गोपालदास संस्कृत समझते थे, उन्होंने उनकी बात समझकर उन्हें उत्तर दे दिया। आगे जानेपर हमें कई साधु देख पड़े। उनमेंसे एक पेड़में उलटा लटक रहा था, एक बांहको ऊपर उठाये खड़ा था और उसकी वह बांह सूखकर लकड़ी हो गयी थी, एक अग्नि ताप रहा था, और कई दूसरे साधु ध्यान-चिन्तनमें लगे थे। वाटिकामें एक जगह चौराहा था। थोड़ी देर बाद वहां सब साधु एकत्र हो गये। एक वृद्ध साधुको एक टोकरेमें बैठाकर वहां लाया गया। टोकरेमें सेमलकी रुई बिछी हुई थी, ताकि उसे कष्ट न हो। वह सबका गुरु था। उसका शरीर सूखा हुआ था, सिर बहुत बड़ा था और वह आंखें बहुत कम झपकाता था। गुरुजीके आ जानेपर एक साधु कथा कहने लगा। उसके पास भोज-पत्रपर लिखी हुई एक पुस्तक थी। पढ़ते-पढ़ते जब वह कोई भूल कर देता था, तो वृद्ध गुरु ऊंहूं करके उसे रोक देता था। फिर उन्होंने पत्तोंको पीसकर बनाये हुए लड्डू हमें खानेको दिये और आप भी खाये। वे स्वादिष्ठ, करारे, चटपटे और नमकीन थे। तब उन्होंने हमें वहांसे चले जानेको कहा और आदेश किया कि फिर यहां कभी न आना।

बद्रीनारायणके रास्तेमें

सन् १८९७ में मैं पलटन नं० ३६ में नौकर था। परन्तु अफसरोंने मुझे कमसरियट विभागमें लगा दिया था। मैं पेशावरसे रानीखेत कमसरियटके कामपर आया था। हम यहां चावल खरीदा करते थे। एक दिन मेरे पहाड़ी नौकरने कहा, चलिये बाबूजी, आपको बद्रीनारायणके दर्शन करा लायें। मैंने कहा, वह बहुत दूर है, मेरे पास इतने दिनका अवकाश नहीं। उसने कहा, आप इस बातकी चिन्ता न कीजिये, मैं आपको एक सीधे मार्गसे तीन दिनमें ही वहां पहुंचा दूंगा। बस, मैं उसके कहनेसे चल पड़ा। वह रास्ता बड़ा बीहड़ था। चलते-चलते एक जगह मुझे भयङ्कर शब्द सुनाई पड़ा। देखा तो एक जङ्गली भैंसा नथुने फुलाये और तेवरी चढ़ाये हमारी ओर आ रहा है। हमारे पास पहुंचकर वह ठहर गया और बड़े क्रोधसे घूरने लगा। मैंने बन्दूक भर-कर उसपर दाग दी। गोली उसके मर्मस्थलको चीरकर निकल गयी और वह वहीं मरकर गिर पड़ा। हम आगे चल पड़े। यद्यपि बद्रीनारायणके लिए दो-तीन मार्ग थे, परन्तु मेरे

नौकरने "चनेकी चाल" होकर जानेवाला मार्ग ग्रहण किया था। कुछ दूर आगे जानेपर एक स्थानपर हमें कुछ नग्न पुरुष साधु और एक वृद्धा साध्वी मिली। वह भी नङ्गी ही थी। उसके बाल बिलकुल सफेद हो चुके थे। सब लोग उसे मां कहते थे। उसने मुझे देखते ही कहा—तूने मेरे बेटेको क्यों मारा? उसने तेरा क्या बिगाड़ा था? मैंने प्रणाम करके कहा—मां, मैंने तो आपका कोई बेटा नहीं मारा। वह बोली—इस बनके सभी जन्तु मेरी सन्तान हैं; तुमने उस भैंसेको व्यर्थ मार डाला है। तब मैंने कहा, मां, मुझे पता नहीं था; यह पहाड़ी नौकर मुझे इस मार्गसे ले आया है। तब वह बोली—अभी मेरे सभी बच्चे—सिंह, बाघ, सुअर, हाथी, भैंसे—यहां एकत्र होनेवाले हैं। वे तुम्हें देखते ही मार डालेंगे। इसलिए तुम तुरन्त यहांसे चले जाओ। तब उसने हमें खानेके लिए फलादि दिये। मैंने भक्तिभावसे मांके चरण छुए। वह बोली, आज ४०० वर्षके बाद किसी गृहस्थने मेरे चरणोंको स्पर्श किया है। अच्छा, जाओ, भगवान् तुम्हारा कल्याण करेंगे। उसने हमें एक मार्ग बता दिया। उससे हम सायङ्काल बद्रीनारायण जा पहुंचे। वहां सब लोग चकित रह गये कि तुम इतना शीघ्र कैसे आ पहुंचे। वे बोले, जिस मार्गसे तुम आये हो, उस मार्गसे तो आज तक कोई जीता बचकर नहीं आया। तुम्हारा अहोभाग्य है, जो तुम्हें मां और साधु-मण्डलीके दर्शन हो गये। उनके दर्शन तो किसीको नहीं होते।

हस्ती-पालित बालिका

गौहाटी-आसाम-रेलवे बन रही थी। मैं भी वहां काम करता था। एक दिन मैं एक पोखरेमें नहा रहा था। कुछ दूरपर मुझे एक सूंड़-सी तैरती देख पड़ी। वह धीरे-धीरे मेरी ओरको आ रही थी। किनारेपर खड़े लोगोंने चिल्लाकर मुझसे कहा—पोखरेसे बाहर निकलकर भाग जाओ; वह देखो तुम्हें पकड़नेके लिए हाथी आ रहा है। मैं वहांसे भागा। इतनेमें चार-पांच सूंड़ें और देख पड़ीं। भागते समय मेरे हाथका सिगरेट गिर गया। उससे जङ्गलमें आग लग गयी। इसपर हाथी मेरे शत्रु हो गये। मेरी गन्ध उनको मालूम हो गयी। वे मेरे पीछे झपटे। जङ्गली हाथियोंसे बचनेके लिए रेलवेवालोंने लोहेके मजबूत तार लगाकर एक बड़ा घेरा बना रखा था। मैं दौड़कर उसके भीतर चला गया। तब मेरे प्राण बचे।

उन दिनों वहां सरदार सुन्दर सिंह फारस्ट आफिसर थे। उन्होंने मुझे बताया कि ये हाथी बुरी बला हैं। जिससे शत्रुता हो जाय, उसे मारकर ही छोड़ते हैं। यहां रेलवे लाइनपर एक कांटेवाला था। ये किसी कारण उससे चिढ़ गये। एक दिन जाकर उसे और उसकी स्त्री दोनोंको मार डाला। परन्तु उसकी नन्हीं-सी लड़कीको उठाकर ले गये। उसे उन्होंने मारा नहीं। एक हाथी उसे अपनी पीठपर लिये फिरता रहता। मैंने स्वयं भी उसे देखा था। वह हाथीकी पीठपर बैठी हुई इधर-उधर घूमा करती थी। वह बिलकुल नङ्गी थी। हाथ-पांवोंके बल हाथीकी भांति ही चलती थी। बोल न सकती थी। हाथियोंके शब्दोंको समझती थी और सङ्केतसे अपनी बात उनको समझा देती थी। वह वृक्षोंपर बन्दरकी भांति चढ़ जाती थी। एक दिन वह हाथीपर बैठी हुई आ रही थी। उसके साथ और भी कई हाथी थे। हमने उनके सामने गन्ने और फलादि डाले। परन्तु वे दूर ही खड़े रहे। उनके निकट नहीं आये। उन्होंने खानेसे इनकार कर दिया। तब वह लड़की हाथीपरसे उतरी। उसने आकर फलों और गन्नोंको सूंघा, फिर वापस जाकर हाथीकी सूंड़को हिलाया और एक विशेष प्रकारका शब्द किया। इसपर वे सब हाथी गन्ने और फल खाने लगे। हमने लड़कीको कई बार रोटी और मिठाई देकर देखा। परन्तु वह ऐसे पदार्थ नहीं खाती थी। अब हमने उसे प्रतिदिन फल-फूल देना आरम्भ किया। वह धीरे-धीरे हमसे हिल गयी। डर दूर हो जानेसे अब वह घेरेके भीतर भी आने लगी। हाथी उसके पहरेदारके रूपमें उस तारके घेरेके बाहर खड़े रहते थे। लड़की फल-फूल सूंघकर हाथियोंको दे देती थी और वे खा जाते थे। अब वह हम सबके घरोंमें घूमने लगी। अंगरेज अफसरोंकी मेमें भी उसे बहुत प्यार करती थीं। हमने धीरे-धीरे उसे रोटी और आलू खाना सिखा दिया। उसे बोलना सिखानेका भी यत्न किया गया, परन्तु सफलता न हुई। उसके सामने मैंने मांस रखा। उसने उसे सूंघा। फिर आंखें उठाकर मेरे मुंहकी ओर देखने लगी। परन्तु खाया नहीं। हमारी इच्छा हुई कि इसे पकड़कर देश ले चलें। परन्तु हमें डर था कि इससे हाथी हमारे बैरी बन जायंगे। क्या मालूम, रेलगाड़ीमें ही टक्कर मार दें अथवा हमारे पीछे दौड़ पड़ें।

मन्त्र-बलसे वर्षा बन्द

श्री बालकृष्णदासके मुखसे सुनी हुई जो बातें मैंने ऊपर लिखी हैं, मैं नहीं कह सकता कि वे कहां तक सत्य हैं। कितने ही पाठकोंको उनकी सचाईमें सन्देह हो सकता है। परन्तु उनसे मेरी एक प्रार्थना अवश्य है। वे इन बातोंको केवल इसीलिए झूठ या गप्पाष्टक न समझ लें, कि ये एक भारतीयके मुखसे निकली हैं। वे इनकी सचाईका पता लगानेका भी यत्न करें। मि० ब्रण्टन नामके एक यूरोपीयने एक पुस्तकमें भारतके योगियोंका वृत्तान्त लिखा है। उसमें वर्णित बातें श्री बालकृष्णदासकी बतायी बातोंसे कुछ कम आश्चर्यजनक नहीं। परन्तु पुस्तकका लेखक एक यूरोपीय होनेसे बहुत कम भारतीय उनकी सचाईमें सन्देह करते हैं।

इसी प्रकार हालमें "एस्ट्रालोजिकल मैगजीन" में एक लेख छपा है। उसमें लिखा है कि लामा लोग मन्त्र-बलसे ओले बरसा सकते और वर्षा बन्द कर सकते हैं, इस सचाईका अब स्पष्ट रूपसे प्रदर्शन किया जा सकता है। जो लोग आध्यात्मिक अनुभवोंको समझ नहीं सकते, वे इनको केवल विशृङ्खल-बुद्धि लोगोंकी साक्षियां कहकर बहुधा हंसा करते हैं। परन्तु इस प्रकारके मनोभावके मूलमें है अविद्या और आजकलके शिक्षणालयोंमें दी जानेवाली एकपक्षीय शिक्षा। उसी पत्रिकामें फिर लिखा है—

वर्षाको बन्द करनेके लिए एक तुरही ली जाती है। इसके बाहरकी ओर साङ्केतिक चिह्न बड़े सुन्दर ढङ्गसे खुदे होते हैं और उसके भीतर सुवर्ण आदि अनेक धातुओंके टुकड़े कुछ सरसोंके दानोंके साथ इकट्ठे रखे होते हैं। जिस समय तूफानका प्रकोप हो रहा हो, लामा इस तुरहीको हाथमें पकड़े हुए खेतमें मन्त्र पढ़ता है। उसके मन्त्र-पाठसे बड़े-बड़े ओले टूटकर बहुत छोटे-छोटे टुकड़े हो जाते हैं और फसलको हानि नहीं पहुंचाते। इसका पूरा-पूरा वर्णन अलाइस इलेजबेथ ड्राकोट्टस-लिखित "वाइस आव मिस्टिक इण्डिया" में मिलता है। लामाओंकी दूसरी रीति यह है कि ओले गिरनेकी ऋतुमें लामा लोग वाटिकाओंकी सीमापर रक्षाप्रद प्रार्थना-पताका लगा देते हैं।

जब बादलकी गरज और ओलोंके तूफान घिर रहे होते हैं, लामा अपनी धर्म-पुस्तक लेकर उसमेंसे एक प्राचीन संस्कृत-मन्त्र पढ़ता है। इस मन्त्रका पाठ बड़ी भारी तैयारी, उपासना, उपवास और चिन्तनके अनन्तर ही किया जा सकता है। ओले गिरनेसे पहले जो मेघनाद होता है, पहले उसे बन्द करना होता है। इसके लिए एक विशेष मन्त्र है। फिर जब सचमुच ओले गिरने लगते हैं, तो लामा, हाथमें तुरही लिये, खेतमें जाता है, और जिस दिशासे ओले आ रहे होते हैं, उधर सरसोंके दाने छिड़ककर, वह मन्त्र पढ़ता है और उससे ओलोंका बरसना बन्द कर देता है।

लोगोंका विश्वास है, और यह विश्वास कुछ झूठा भी नहीं, कि मन्त्रके बलसे बड़ेसे बड़े ओले भी टुकड़े-टुकड़े होकर परमाणुके बराबर छोटे हो जाते हैं। इसकी व्याख्या सरल है। मन्त्रोच्चारणसे वायुमण्डलमें जो कम्पन उत्पन्न होता है, वह ओलेपर बिजलीके आघातके सदृश कार्य करता है। इस प्रकार मनुष्यके मुखसे निकले हुए शब्दका प्राकृतिक तत्त्वोंपर प्रभुत्व सिद्ध होता है।

अलाइस इलिजबथ यों लिखती है—

"श्रीमान् महाराजा साहबने वर्षामें हमें लामा-नाच देखनेके लिए बुलाया। यह नाच साधारणतः खुले मैदानमें होते हैं। मैंने महाराजासे पूछा कि लामाओंके पहने हुए सुन्दर वस्त्र वर्षामें खराब न हो जायंगे? परन्तु उन्होंने ऐसे ढङ्गसे उत्तर दिया, मानो ऐसी आश्चर्यजनक बातें बिलकुल साधारण हों—'मेरा खयाल नहीं कि उनके कपड़े खराब होंगे, क्योंकि मेरे लामा मन्त्र पढ़कर वर्षाको रोक सकते हैं।' यह बात स्वयं मुझे भी मालूम थी। लामा-नाचके दिन मूसलाधार पानी बरस रहा था। हम वाटरप्रूफ और छातोंसे सुसज्जित होकर घरसे चले। परन्तु जब हम राजभवनके आंगनमें पहुंचे, जहां नाच आरम्भ होनेको था, तो वर्षाकी एक बूंद नहीं गिर रही थी। किसी रहस्यमय रीतिसे ये लोग आंधी-पानीको अपने वशमें करनेकी क्षमता रखते हैं।" ट्रिब्यून, २० जनवरी १९४१

यदि श्रीमती इलिजबथकी बातोंपर अंगरेजी पढ़े-लिखे लोग विश्वास कर सकते हैं, तो इस लेखमें वर्णित बातोंपर भी विश्वास करनेमें उन्हें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

श्वेत बनाम अश्वेत

श्री रुद्रनारायण अग्रवाल, बी० ए० (आनर्स)

"किसी अंगरेजको धर्मभीरु बना देना हंसी-खेल नहीं है। यदि वह बुरी तरह घायल हो जायगा, तो ईश्वरकी प्रार्थना बड़बड़ाने लगेगा; परज्योंही वह स्वस्थ हुआ कि पुराने पापी-की भांति कह उठेगा कि मुझे पहलेसे ही मालूम था कि मैं मरनेवाला नहीं हूं।" ये पंक्तियां पर्ल बककी हैं, जिन्हें उन्होंने फारेन अफेयर्समें अपने एक लेखमें लिखा है। लेखक महोदयने अंगरेजके चरित्रका विश्लेषण करनेमें आवश्यकतासे अधिक कठोरतासे काम लिया है—शायद इसलिए कि वह स्वयं अमेरिकन हैं और अमेरिकनों और अंगरेजोंमें यह सौहार्दपूर्ण आदान-प्रदान बराबर चलता रहता है। अंगरेजोंको अनुदारता और दकियानूसी मतका दोषी ठहराया जाता है और उनके सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि वे केवल अपना ही दृष्टि-कोण समझ सकते हैं, किसी दूसरेका नहीं। परन्तु इसी अपराधके दोषी जर्मन लोग रह चुके हैं। जापानी चीनियों-का दृष्टिकोण समझनेमें अपने-आपको असमर्थ पाते हैं। संयुक्त राष्ट्रवालोंकी समझमें मैक्सिकोके राष्ट्रपति कारडे-नसकी राजनीति आज तक न आयी, और फ्रेञ्च लोग तो कल तक जर्मनोंको मानव जातिका घोर शत्रु समझते थे।

वास्तवमें कोई व्यक्ति, वर्ग, राष्ट्र या राष्ट्र-समूह किसी दूसरे व्यक्ति, वर्ग, राष्ट्र या राष्ट्र-समूहके दृष्टिकोणको तभी न्याय्य माननेको तैयार होता है, जब उसके लिए विवश हो जाता है। जब तक कैसरके जर्मनोंके हाथमें शक्ति थी, तब तक वे एशियाई जातियोंको श्वेत जातिके लिए खतरा समझते थे। बाक्सर-विद्रोहके बाद कैसर द्वारा भेजे गये जर्मनोंने चीनमें जिस दौरात्म्यका परिचय दिया, उससे चीनी जनताको पता चल गया कि बगैर जाने-पूछे अपरिचितोंको घरमें आने देनेका कैसा भयङ्कर परिणाम होता है। पर गत महायुद्धके बादसे जो जर्मन चीनमें गये, उन्होंने वहांकी जनताके साथ सामाजिक सम्पर्क स्थापित करनेमें कोई बुराई नहीं देखी। जापान अब चीनको मनानेकी फिक्रमें है और समझने लगा है कि चीनके साथ बराबरीका व्यवहार करके भी सुदूर पूर्वमें नया युग स्थापित किया जा सकता है। यह बात दूसरी है कि चीनको इस प्रकारका बराबरीका बर्ताव भी पसन्द न हो। कारडेनसने जबसे भूतपूर्व फ्रेञ्च राष्ट्रपति लेब्रुनके पास इटली-की युद्ध-घोषणाकी निन्दाका तार भेजा है, तबसे संयुक्त राष्ट्र भी मैक्सिको-निवासियोंको मनुष्य समझने लगा है। रहे फ्रेञ्च, सो पेतांको हिटलरसे हाथ मिलाये अभी जुम्मा-जुम्मा आठ ही रोज हुए हैं।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि शक्ति, अधिकार और वैभव ही व्यक्ति, वर्ग या राष्ट्रको अनुदार और अपनी बातपर अड़ा रहनेवाला बनाता है। यह सही है कि श्वेत जातियोंमें अंगरेज अपेक्षाकृत अधिक अनुदार और जिद्दी समझे जाते हैं; पर इसका कारण यही है कि उन्हें साम्राज्यका वैभव और ऐश्वर्य अपेक्षाकृत अधिक दिनों तक उपभोग करनेका अवसर मिला है।

और यहीं ब्रिटिश जातिके लिए सबसे बड़ा खतरा है। अंगरेज शक्तिशाली हो सकते हैं; सम्भव है, वे समस्त श्वेत जातियोंकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हों; पर इससे यह कहां साबित हुआ कि वे संसारकी समस्त श्वेत और अश्वेत जातियोंपर समान भावसे, एक ही समयमें, अपना दबदबा बिठाये रख सकेंगे ? यह १९४१ है--१९१४ नहीं है, जब श्वेत जातियोंके विध्वंसकारी अस्त्र-शस्त्रोंकी बात सुन-सुनकर पूर्वी जातियां अविश्वासके साथ सिर हिलाया करती थीं। अब अश्वेत जातियोंमें भी विज्ञानको समझने और उससे लाभ उठानेकी क्षमता आ गयी है। उन्होंने श्वेत जातियोंको लड़ते हुए देखा है, लड़ते हुए देख रही हैं। वे बम्बईमें आये हुए सहस्रों इटालियन बन्दियोंको एक बाड़ेमें बन्द देखती हैं और उनका श्वेत जातियोंको देवोपम पुरुष समझनेका १८वीं सदीका संस्कार नष्ट होता जा रहा है। चीन भारतसे पहले ही सोच-समझ चुका है। उसने गत महायुद्धके बाद जर्मनोंकी हालतको देखा। इसके बाद उसने जापानियों द्वारा अंगरेजोंपर किये गये अत्याचारोंको देखा। बस, उसने समझ लिया कि श्वेत जातियां भी हमारी ही भांति लड़ती-भिड़ती हैं और पिछड़े हुए शत्रुको रौंद डालनेमें एशियाई

जातियोंसे अधिक उदार नहीं होती हैं। निकट पूर्वके लोगोंने भी गत महायुद्धमें और उसके बादसे बहुत कुछ देखा-सुना है। अफ्रीकामें इस समय जो कुछ हो रहा है, उससे वहांकी हब्शी जातियोंको श्वेत जातियोंके सम्बन्धमें दिनपर दिन अधिक जानकारी होती जा रही है।

इस समय श्वेत जातियोंमें जो भयङ्कर गृह-युद्ध हो रहा है उसमें चाहे जो जाति विजयी हो, एशिया और अफ्रीकामें उसे बिलकुल दूसरे ही ढङ्गका आचरण करना होगा। ताजा समाचार है कि चीनी फौजोंने जापानी फौजोंको करारी हार दी। ब्रिटेन और अमेरिकामें यह संवाद बड़े हर्षके साथ पढ़ा गया होगा। पर वास्तवमें यह उतना पुलकित होनेकी बात नहीं है—कमसे कम अंगरेजों और अमेरिकनोंके लिए। कैसरने चीन और जापानको पीत दानवके नामसे अभिहित किया था। बस, चीन-जापानका यह युद्ध इस पीत दानवको व्यायाम करनेका अवसर दे रहा है। चीनकी जनसंख्या इतनी है कि दो-एक करोड़का नाश उसके लिए कोई अर्थ नहीं रखता। आये दिन बाढ़का प्रकोप लाखों आदमियोंको बहाकर ले जाता है। अधिकांश जनता बुभुक्षित है। प्लेग और अन्य बीमारियोंका भी दौरदौरा रहता है। इसलिए यदि जापानके साथ लड़नेमें दो-चार, दस-बीस लाख चीनियोंका संहार हो जाय, तो भी चीनी राष्ट्रको जन-संख्याके अभावकी शिकायत नहीं करनी पड़ेगी। यही अवस्था जापानकी है। उनमें सन्तानोत्पत्तिकी क्षमता काफी है और इधर तो जन-संख्या-वृद्धिको विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इस प्रकार इस गृह-युद्धका केवल एक परिणाम होगा—या तो चीन जापानके अधिकारमें आ जायगा, या जापानको चीनसे जाना पड़ेगा और उसके साथ सचमुच ही बराबरीका बर्ताव करना पड़ेगा। और इन दोनोंमेंसे कोई भी परिणाम श्वेत जातियोंके लिए अनुकूल न होगा। यदि अंगरेज और अमेरिकन या जर्मन और इटालियन यह सोचते हैं कि यूरोपीय युद्धके बाद वे फिर उसी प्रकार चीनमें अपना प्रभुत्व और प्रभाव रखनेमें समर्थ होंगे, तो वे बड़ी भारी भूल कर रहे हैं। जमाना पलट गया है—पूर्व तकमें!

बिलकुल यही अवस्था उत्तरी अफ्रीका और अरबकी है। उत्तरी अफ्रीकामें चार महाप्रदेश हैं—अल्जीरिया, टूनीसिया, लीबिया और मोरक्को। इन सबमें मोरक्को सबसे अधिक लड़ाकू प्रदेश समझा जाता है। यहींके अर्द्ध-अरब निवासियोंने किसी समय स्पेनको रौंद डाला था। इसके बाद अल्जीरियाकी बारी है। टूनीसियाकी गिनती लड़ाकोंमें नहीं, चीखने-चिल्लानेवालोंमें है। एक अरब कहावत है, टूनीसिया स्त्री है, अल्जीरिया मर्द है और मोरक्को शेर है।

इस शेरके दुर्दिन १८६० से आरम्भ हुए। गत शताब्दीके अन्तमें मोरक्कोके सुलतानको स्पेनसे युद्ध करना पड़ा और युद्धका खर्च चलानेके लिए ब्रिटेन और फ्रान्सकी उदार-हृदय सरकारोंसे उधार लेना पड़ा। अब जर्मनीके कैसरको चिन्ता हुई कि कहीं ब्रिटेन और फ्रान्स इस प्रकार मोरक्कोमें न जा घुसें। उसने भी अपने कोषकी कुञ्जी सुलतानके हवाले करनेका वादा किया। फ्रान्सने जर्मनीको मनाना चाहा; पर इन दोनों शक्तियोंका समझौता नहीं हुआ। फलतः फ्रान्सने स्पेनके साथ समझौता करके मोरक्कोपर चढ़ाई कर दी और मोरक्कोकी एकमात्र स्वतन्त्र रियासत बरबर देशको दो भागोंमें बांटकर उन्हें अर्द्ध स्वतन्त्र रहने दिया। एक भागमें स्पेनका प्रभाव और दूसरेमें फ्रान्सका प्रभाव माना गया। अब स्पेनको लोहेकी जरूरत थी। उसने यह आवश्यकता अपने प्रभाववाले प्रदेशमें बसनेवाले कबीलोंसे पूरी की; पर उसे उस लोहेकी कीमत देनेकी बात समझमें नहीं आयी और २००० स्पेनिश सिपाही कबीलेवालोंके लोहेपर जबर्दस्ती कब्जा करने जा पहुंचे। यह बात १९२० की है। मूर लोग अब भी जीवट रखते थे। उनके नेता अब्दुल करीमने स्पेनिशोंको करारी हार दी और फिर वह फ्रेञ्च प्रभाववाले प्रदेशपर भी चढ़ दौड़ा। यह बात १९२४ की है। बस, फ्रेञ्च अधिकारियोंने इस 'विद्रोह' को दबा दिया और अब्दुल करीमको निर्वासित कर दिया। चारों ओर कानून और व्यवस्थाका सिक्का बैठ गया और शान्तिदेवीने पदार्पण किया। बस, स्पेनिश प्रभाववाले प्रदेशमें फिर स्पेनिश लोग आ पहुंचे और मूरों और स्पेनिशोंमें लड़ाई बहुत दिनों तक चलती रही।

इसके बाद ही १९३६ में जनरल फ्राङ्कोने निश्चय किया कि स्पेनका उद्धार करना आवश्यक है। इस सत्कार्यमें मूरोंका उपयोग किया गया और उन्हें आश्वासन दिया गया कि उद्धारका काम समाप्त होते ही उन्हें स्वतन्त्रता प्रदान कर दी जायगी। खैर, उद्धारका काम समाप्त हो गया।

पर मूरोंसे स्वतन्त्रता उतनी ही दूर है, जितनी उस घोड़ेसे वह गाजर, जिसे गाड़ीवानने अपने चाबुकमें बांधकर उसके मुंहके आगे लटका रखा था। घोड़ेने गाजरमें मुंह मारनेके लालचमें जल्दी-जल्दी कदम उठाये, मञ्जिल तय हो गयी, पर गाजर और उसके मुंहका फासला वही रहा!

फलतः घोड़ेने गाजर पानेकी आशा छोड़ दी है, और चूंकि वह मूर घोड़ा है, इसलिए उसने दुलत्तियां झाड़ना आरम्भ कर दिया है।

यही अवस्था अल्जीरिया और टूनीसियाकी है। फ्रान्सके प्रभाववाले मोरक्कोमें तो अशान्तिकी आग जल रही है। ये सब अर्द्ध-अरब हैं और बड़े अच्छे लड़ाके हैं। स्वतन्त्र फ्रान्सके अन्तिम प्रधान मन्त्री रेनाकी यही हविस रही कि यदि किसी प्रकार मूर सिपाहियोंको ठीक समयपर फ्रान्समें लाकर जर्मन सिपाहियोंसे भिड़ा पाते, तो फ्रान्स अब भी स्वतन्त्र होता। इस समय यह समस्त उत्तरी अफ्रीका यूरोपकी श्वेत जातियोंके इस गृह-युद्धको प्रच्छन्न हर्षोल्लासके साथ देख रहा है। वे लोग क्या करेंगे, उनका क्या प्रोग्राम है, इस सम्बन्धमें वे खामोश हैं:

"वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आस्मां,
हम अभीसे क्या बतायें क्या हमारे दिलमें है।"

परन्तु उनका प्रोग्राम चाहे जो कुछ हो, वे अब श्वेत जातियोंके हाथकी कठपुतली बननेको तैयार नहीं हैं। वे यूरोपियन राजनीतिको समझने लगे हैं और श्वेत जातियोंपरसे उनका विश्वास हमेशाके लिए उठ गया है।

आजकल फिलस्तीनमें शान्ति मालूम होती है। यहूदी और अरब मित्र हो गये और दोनोंको एकाएक याद आ गया कि कुछ भी सही, हैं तो पैगम्बर इब्राहीमकी औलाद— यह सन्तोषकी बात हुई। परन्तु यदि इस ऐतिहासिक मिलनका कुछ ब्यौरा बाहरी संसारको भी मालूम होता, तो बड़ी बात होती। शायद रूटरको युद्ध-सम्बन्धी समाचार भेजनेसे ही अवकाश नहीं है।

पर इतनी बात अवश्य है कि अरबोंको अब अपने विजेताओंका असली रूप मालूम हो गया है। उन्हें इस बातका पश्चात्ताप अवश्य होगा कि उन्होंने तुर्कोंका साथ छोड़कर लारेन्सका साथ क्यों दिया। तुर्क यहूदियोंको तो फिलस्तीनमें न ठूंसते, देशके टुकड़े-टुकड़े तो न करते, सारेके सारे देशको डाकुओंकी उपाधि तो न देते। पर साथ ही यदि कोई उनसे यह पूछे कि तुम ब्रिटिश साम्राज्यमें ही बने रहना पसन्द करोगे या इटालियन साम्राज्यमें दाखिल होना, तो वे एक स्वरसे अंगरेजोंके अधीन ही रहना पसन्द करेंगे। कोई भी साम्राज्यवाद बुरा है—चाहे वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद हो, चाहे इटालियन, चाहे फ्रेञ्च। परन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवादके संस्कार और रीति-रिवाज अब पुराने हो गये हैं और अंगरेजोंके दोष और गुण समझमें आ गये हैं। इसके विपरीत मुसोलिनीकी इसलामकी शमशीर अभी तक अरबोंके हृदयोंमें कुछ विशेष विश्वासके भाव उत्पन्न नहीं कर सकी है। उनके आगे अबीसीनियाका उदाहरण मौजूद है, जब मार्शल ग्रेजियानीकी हत्या करनेकी चेष्टा करनेके अपराधके दण्डस्वरूप हजारों अबीसीनियनोंको तलवारके घाट उतार दिया गया था। कुछ अबीसीनियन अदिस अबाबाके अमेरिकन राजदूतावासमें जा छिपे थे। इटालियन फौजके अफसरने अमेरिकन राजदूतको आश्वासन दिया कि वे दूतावास छोड़कर बाहर निकल आयेंगे, तो उनसे कुछ न कहा जायगा। इस आश्वासनपर विश्वास करके अबीसीनियन बाहर निकल आये और उन्हें मशीनगनसे भून दिया गया। अंगरेज ऐसा कभी न करते—वे दिये हुए वचनका पालन करना जानते हैं। यह बात दूसरी है कि वह वचन ही वे ऐसी गोल-मटोल भाषामें दें, जिसके एकसे अधिक अर्थ निकाले जा सकें।

जैसा कि कहा जा चुका है, इस युद्धमें चाहे जो विजयी हो, उसे अश्वेत जातिके प्रति एक नवीन प्रकारका आचरण करना होगा। यदि मशीनगन और हवाई जहाज ही चङ्गेज और तैमूरके वंशजोंपर अधिकार जमा सकते हैं, तो पूर्वी जातियां भी ये यन्त्र बनाना सीखेंगी और नर-संहारके कार्यमें पाश्चात्य जातियां पूर्वी जातियोंकी क्या समता करेंगी? श्वेत जातियोंके भावी नेताओंको एक बार यह तय करना है कि वे अश्वेत जातियोंको हमेशाके लिए अपना शत्रु बनाना चाहती हैं या मित्र? वह जमाना गया, जब गोली-बारूद और लेफ्ट-राइटके जादूके जोरसे मुट्ठी-भर यूरोपियन बड़े-बड़े एशियाई देशोंपर दबदबा बैठानेमें सफल हो जाते थे। अब अश्वेत जातियां भी लेफ्ट-राइट कर सकती हैं।

युद्ध-संवाददाताओंकी कठिनाइयां

डा० ए० पी० अग्निहोत्री, पी० एच-डी०

"अगर आपका यह खयाल हो कि युद्ध-संवाददाताका कार्य बड़े साहस, कौशल, जोखिम और उद्योगका है, तो यह भूल है। प्रत्येक वस्तु युद्ध-संवाददाताके प्रतिकूल है और दोनों ही पक्षोंने यह सीख लिया है कि चुप्पी भी एक शस्त्र है, कुछ न कहनेमें ही कुशल है।" यह अनुभव जार्ज सेल्डेसका है, जिसे उन्होंने पिछले दिनों प्रकाशित किया है। वे लिखते हैं—"इसका परिणाम क्या हुआ है। जर्मन सेनाओंने अपनी सीमासे आगे बढ़कर जब वारसापर धावा किया, युद्धमें हवाई जहाजों और पैदल सेनाके सामूहिक सहयोगका कौशल पहली बार इतने विशाल रूपमें प्रत्यक्ष हुआ था; परन्तु संसारमें कहीं भी इस चढ़ाईका विवरण किसी प्रत्यक्षदर्शी द्वारा प्रकाशित नहीं किया गया। एक अमेरिकन पत्रकार किसी तरह पोलैण्डसे निकलकर रूमानिया जा पहुंचा था और उसने वारसामें जो कुछ देखा था, उसे लिखा था; परन्तु अमेरिकामें पहुंचते-पहुंचते उसका विवरण बहुत पुराना हो गया था।

"फिनलैण्डमें हालत और भी खराब थी। इसमें सन्देह नहीं है कि समाचार-पत्रोंके कालम फिनलैण्डके समाचारोंसे भरे रहते थे; परन्तु इन समाचारोंका भेद तब मालूम हुआ, जब युद्ध समाप्त हुआ और सबने जो यथार्थ बात थी, उसे स्वीकार किया। युद्ध-क्षेत्रके पास कोई फटका तक न था, किसीने कुछ न देखा था और समाचार वही थे, जिन्हें फिनलैण्डके अधिकारियोंने प्रकाशित होनेके लिए दे दिया था।

"फ्रान्सके युद्धसे लगाकर ब्रिटेनके संग्राम तक, सर्वत्र यही तो हुआ—कहीं किसीने न तो रिपोर्ट भेजी और न प्रत्यक्षदर्शीकी कोई कहानी ही प्रकाशित हुई।"

जून १९४०की बात है, एक अमेरिकन पत्रके युद्ध-संवाददाताको बड़ी विकट स्थितिमें पड़ जाना पड़ा था। उन दिनों फ्रान्सका हौसला बिगड़ चुका था और एक तरहसे भगदड़ पड़ी हुई थी। लोग भयावह क्षेत्रसे सुरक्षित क्षेत्रकी ओर जा रहे थे। इन्हींमें संवाददाता महोदय भी थे। रास्तेमें फौजी पुलिसको उनपर शत्रुका भेदिया होनेका सन्देह हुआ और उन्हें रोककर पूछताछ की जाने लगी। संवाददाताने बहुतेरा कहा, परन्तु वहां सुनता कौन? उसने अपने संवाददाता होने सम्बन्धी कागज-पत्र दिखलाये, परन्तु इन कागजोंको समझता कौन? उनमें कोई इतना पढ़ा-लिखा न था कि उन कागजोंको पढ़कर समझ सकता। निदान यह तय हुआ कि संवाददाताके कागजोंको कई मील दूर अफसरके पास देखनेके लिए भेज दिया जाय और इस बीच वह फौजी सिपाहियोंके पास वहीं रहे। कागज-पत्र लेकर जाने और लौटनेमें कुछ विलम्ब तो लगता ही, संवाददाता महोदयने अपने जूते उतार लिये और आरामसे बैठ गये। जब काफी अर्सा हो गया और जो सिपाही उनके कागज-पत्र लेकर अफसरके पास गया था, वह लौटकर नहीं आया, तब सिपाहियोंको संवाददाता महोदयपर निगाह रखनेका काम अखरने लगा। ऊबकर उन सबने उसे गोलीसे उड़ा देनेका निश्चय किया। संवाददाताने बहुतेरा चाहा कि यह निर्णय सिपाहीके कागज-पत्र लेकर लौट आने तक स्थगित रखा जाय, परन्तु किसीने उसकी एक बात नहीं सुनी। सिपाही गोलीसे उड़ा ही देनेवाले थे कि संवाददाताने गिड़गिड़ाकर कहा—"जब यही करना है, कृपया जूते तो पहन लेने दीजिये।" सिपाहियोंको उसके भाग्यपर कुछ तरस हो आया और उन्होंने उसे जूते पहन लेनेकी अनुमति दे दी। वह जूता पहनने लगा और सिपाही आपसमें बातें करने लगे। संवाददाताने जूते पहननेमें ज्यादासे ज्यादा समय लगानेका प्रयत्न किया। इस बीचमें वह अफसर स्वयं वहां पहुंच गया, जिसके पास संवाददाताके कागज-पत्र भेजे गये थे। उसने पहुंचते ही संवाददाताको रिहा कर दिया।

युद्ध-संवाददाताओंकी आज जो स्थिति है, वह इस घटनासे अच्छी तरह मालूम हो जाती है। संवाददाताओंकी इस स्थितिका अनुभव आजसे कई साल पहले स्पेनमें ही हो गया था। जिन दिनों जनरल फ्राङ्कोकी सेना मेड्रिडपर बम-वर्षा कर रही थी, निशाना बैठता तो एक ही बम २०-२५ संवाददाताओंका काम तमाम कर देता। ये सब वहां

होटल फ्लोरिडामें रहते थे। स्पेनमें कितने ही संवाददाता अपने पत्रके लिए एक भी पंक्ति भेजनेसें पहले ही मर गये। युद्ध-संवाददाताओंका कार्य अब सचमुच मृत्युके साथ खेलने-जैसा हो गया है।

१९१४-१८ के महासमरमें युद्धके संवाददाताओंकी स्थिति भले ही आजसे अच्छी रही हो, परन्तु खतरा कम नहीं था। कितने ही नामी युद्ध-संवाददाताओंमें रिचर्ड हार्डिङ्ग डेविस, केप्टेन ग्रानविले फारटेस्क फारटेस, डिक डेविस, इलिस आशमीड बारलेट, विल इरविन, मेरी बोयल ओरिली आदिका नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनमेंसे कई बड़े ही खुर्राट थे, जिन्हें युद्ध-क्षेत्रका अच्छा अनुभव था। रिचर्ड हार्डिङ्ग डेविसने जर्मन सेनाके ब्रुसल्समें प्रवेश करनेका विवरण बड़े ही रोचक ढङ्गसे लिखा था। केप्टेन ग्रानविले फारटेस्कने अपने संवादोंमें संसारको इस बातसे चकित कर दिया था कि जर्मन सेनाके अफसरोंने १ अगस्त १९१४ को बेल्जियमकी तटस्थता भङ्ग कर दी थी और उस दिन सवेरे वे दो मोटरोंमें बैठकर बेल्जियमकी सीमामें चले गये थे। फारटेस, डिकडेविस और इलिस आशमीड बारलेटको तो युद्धके आरम्भमें ही जासूस होनेके सन्देहमें पकड़ लिया गया था। आठ दिन तक बन्दी जीवन बिताकर वे मुक्त होनेमें समर्थ हुए थे। युद्ध आरम्भ होनेके बाद विल इरविनको ३ महीनेमें आठ बार गिरफ्तार किया गया था। जर्मनों, अंगरेजों और फ्रान्सीसियोंने दो-दो बार और बेल्जियम और हालैण्डके अधिकारियोंने एक-एक बार। इन गिरफ्तारियोंसे वे किसी तरह बच निकले और तब उन्होंने ईप्रेसकी पहली लड़ाईका विवरण प्रकाशित किया। एक बार जब उन्हें जर्मनोंने गिरफ्तार किया, डेविसके साथ वे जर्मन सेनाओंकी पंक्तिके पीछे थे। उस समय तक अमेरिकन संवाददाताओंके लिए इतना ही पर्याप्त समझा जाता था कि वे 'अमेरिकन' कहकर अपना पासपोर्ट दिखला दें; परन्तु रिचर्ड हार्डिङ्ग डेविसने अपना जो चित्र रख छोड़ा था, बोअर-युद्धके समयकी ब्रिटिश वर्दीमें था। जर्मनोंके लिए यह काफी था। जर्मनोंने जब उन्हें पकड़ा, उन्हें ब्रिटिश वर्दीमें देखकर गोलीसे उड़ा देनेका हुक्म दिया। अब डेविसको अपनी स्थितिका पता चला और उन्होंने बातचीत कर चतुराईसे जर्मन अधिकारियोंका सन्देह दूर कर दिया और इस तरह अपनी जान बचायी।

विल इरविनकी गिरफ्तारी जब दूसरी बार हुई, वे जान टी मैकशन और आरनो डोश फ्लूरोटके साथ थे। तीनोंने एक टैक्सी ली और युद्ध देखनेके लिए चल पड़े। उन्हें पता नहीं था कि युद्ध-क्षेत्र बड़ी शीघ्रतासे उन्हींकी ओर बढ़ता चला आ रहा है। यह जानकारी न रखनेका फल यह हुआ कि बेल्जियमका वह इलाका उनके बाहर निकल सकनेसे पहले ही जर्मनोंके अधिकारमें हो गया। उनके पास बेल्जियम सरकारका जो आज्ञापत्र था, वह अब किसी कामका नहीं था। विल इरविन और उनके साथियोंको जर्मनोंने गिरफ्तार कर लिया। युद्ध-संवाददाता हेरी हेनसनको किसी अन्य स्थानमें पकड़ लिया गया। ये सब बर्लिन पहुंचाये गये। वहां विल इरविनको सूझ आ गयी और उन्होंने जर्मन अधिकारियोंके सामने यह प्रस्ताव रखा कि वे सभी युद्ध-संवाददाताओंको युद्ध-क्षेत्रमें, जहांसे पकड़कर लाया गया था, भेज दें, जिससे वे जर्मन पक्षकी रिपोर्ट भेज सकें। कहना न होगा कि जर्मन अधिकारियोंने यह स्वीकार कर लिया और उन सबको रिहाकर युद्ध-क्षेत्रमें भेज दिया।

मेरी बोयल ओरिली पहली महिला हैं, जो इसी समयके आसपास युद्ध-संवाददाताका कार्य करनेके लिए बेल्जियममें पहुंचीं। युद्धकी प्रारम्भिक अवस्थामें बेल्जियनोंको संवाददाताओंकी आवश्यकता नहीं थी, जो वहांकी बातें लिखकर बाहर सर्वत्र फैला देते। फल यह हुआ कि बेल्जियम सरकारने उन्हें अपनी सीमासे बाहर चले जानेकी आज्ञा दे दी। वे सीमासे बाहर हालैण्डमें चली गयीं; परन्तु छिपकर फिर बेल्जियममें लौट आयीं और गुप्त रूपसे रहने लगीं। इस समय जर्मन सेनाओंका दबाव बढ़ रहा था और बेल्जियमसे स्त्रियां और बच्चे भाग रहे थे। मेरी बोयल ओरिली इन्हींमें शामिल हो गयीं। दो सप्ताह तक उन्हें इन्हींके साथ रहकर बड़ी कठिनाइयोंमें दिन बिताने पड़े। लोग अपने खेतोंको योंही छोड़कर भाग गये थे, उनमेंसे गाजरें और गोभी अपने हाथोंसे उखाड़-उखाड़कर खाने, कच्चा ही खानेके लिए उन्हें विवश होना पड़ा। रास्तेमें उन्हें जमीनपर सोना पड़ता था। मेरी बोयल ओरिलीने ये सब कष्ट उस अवस्थामें रहकर इसलिए उठाये थे कि वे सब बातोंको प्रत्यक्ष देखकर कुछ लिख सकें।

१९१४ के कुछ महीने इसी तरह बीतनेके बाद जब तक नया साल आरम्भ हुआ, ब्रिटेन, फ्रान्स, जर्मनी, बेल्जियम आदि सभी देशोंको अनुभव हो चुका था और युद्ध-संवाददाताओंकी स्थिति बदल चुकी थी। अमेरिकन संवाददाताओं के पहुंचने तक वहां साहस और कौशल दिखलानेके लिए कोई बात ही नहीं रह गयी थी। इनमेंसे जिन्हें अपने पत्रोंके लिए रोजाना तार भेजनेकी आवश्यकता नहीं थी, वे युद्ध-क्षेत्रमें चले गये और सैनिकोंके साथ खाइयोंके कीचड़में सोनेका इन्तजाम किया, जहां इधर-उधर गोले गिर रहे थे। कितने ही संवाददाता इन खाइयोंमें मर गये। जिन्होंने यह नहीं किया, वे युद्धस्थलसे यों तो दूर रहते थे, परन्तु दिनमें वहां चले जाते थे। उन्हें जिन रास्तोंसे जाना होता, उनपर इतनी भीड़ रहती कि चलना ही मुश्किल था। रातको जब वे लौटते और टेलीग्राफ आफिस जाकर तार लगानेकी जल्दीमें होते, तब भी सड़कोंपर भीड़के कारण बड़ी कठिनाई होती। सड़कोंसे जब सेनायें आती-जाती हों और युद्ध-सामग्रीको ढोया जा रहा हो, यह काम कितना कठिन है, इसका अनुमान आसानीसे किया जा सकता है। आगे चलकर तो ये कठिनाइयां और भी ज्यादा हो गयीं और जनरल पर्सिङ्ग द्वारा पत्रकारोंकी एक समिति बनाये जानेके बाद तो कोई काम ही नहीं रह गया। युद्ध-संवाददाताओंके लिए मोर्चेपर पहुंचना और देखना सम्भव नहीं रह गया था और न कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण बात ही थी, जिसे वे तार द्वारा भेजते। यदि कोई वैसी महत्त्वपूर्ण बात होती भी, तो उनके लिए उसे भेजना सम्भव नहीं रह गया था; क्योंकि कड़ा सेन्सर बैठा हुआ था। यदि कोई सेन्सरकी आंखमें धूल डालकर कुछ भेजनेकी कोशिश करता, तो उसे फौजी अदालतके सामने जाना पड़ता। उन्हीं दिनों १९१७ में वीथ विलियमने एक विवरण लिखा, जिसमें यह बतलाया था कि फ्रान्सीसी सैनिकोंमें विद्रोह-भावना जग रही है। इसके लिए मोशिये क्लिमेन्शूने उन्हें प्राणदण्ड देनेका विचार किया; परन्तु वह तो यह कहिये कि वे अमेरिकन थे, नहीं तो सचमुच उन्हें गोलीसे उड़ा दिया जाता।

एक घटनाका उल्लेख कम मनोरञ्जक न होगा। १३ सितम्बर १९१८ की बात है, अमेरिकन सेना सेण्ट मिहिलपर अधिकार करनेके लिए गोलाबारी कर रही थी। जो अमेरिकन सैनिक युद्ध-संवाददाता जार्ज सेल्डेसकी मोटर चला रहा था, उसने सीधे मिहिलमें ही पहुंचा दिया। जार्ज सेल्डेसके सामने इसके सिवाय अब कोई मार्ग नहीं था कि वहां उतरकर देखते। उन्होंने यही किया भी; परन्तु जब वे वहां पहुंचे, जर्मन सेनायें रवाना हो चुकी थीं। मिहिल-निवासियोंने अपने त्राताकी तरह उनका स्वागत किया, चुम्बनोंसे उनके दोनों गाल लाल हो गये और उस दिन खुशीसे छुट्टी मनायी गयी।

१९१४ में जब महासमर आरम्भ हुआ, केप्टेन विल्सन बेल्जियमकी राजधानी ब्रुसल्समें थे। ये लन्दन डेलीमेलके संवाददाता थे। १९२२ में उन्होंने अमेरिकामें एक बड़ा ही मनोरञ्जक रहस्य प्रकट किया। ब्रुसल्समें उन्हें नृशंस अत्याचारोंका विवरण लिखनेके लिए आदेश दिया गया; परन्तु उस समय तक अत्याचारों-जैसी कोई बात सामने नहीं थी, अतः डेलीमेलने उन्हें जो लोग घरबार छोड़कर विपन्न अवस्थामें भाग रहे थे, उन्हींकी कष्ट-कथा लिखनेके लिए कहा। इसमें वैसे कोई कठिनाई नहीं थी; परन्तु केप्टेन विल्सनने देखा कि जब कल्पनासे ही काम चल सकता है, तब भटकनेकी क्या जरूरत है। वे ब्रुसल्सके बाहर एक छोटी बस्तीमें खाना खाने जाया करते थे। उन्होंने एक दिन सुना कि जर्मन वहां पहुंच गये। इसपर उन्होंने एक बच्चेको जलते हुए घरकी रोशनीमें जर्मन सैनिकोंके हाथोंसे बचानेकी हृदय-विदारक कहानी लिखी। इस कहानीका प्रकाशित होना था कि इंगलैण्डमें उस बच्चेके लिए सहानुभूतिकी बाढ़-सी आ गयी। लगभग ५००० व्यक्तियोंने उसे गोद लेनेका इरादा प्रकट किया और डेलीमेलके दफ्तरमें उसके लिए कपड़ोंका तो ढेर ही लग गया। बड़ी विकट परिस्थिति तो उस समय उपस्थित हुई, जब डेलीमेलकी ओरसे केप्टेन विल्सनको बच्चा भेज देनेके लिए लिखा गया। वास्तवमें तो बच्चा कोई था ही नहीं। इस समस्याको हल करनेके लिए उन्होंने शरणार्थियोंकी संभाल करनेवाले एक डाक्टरको मिलाया और लिख भेजा कि बच्चेकी मृत्यु हो गयी।

युद्ध-संवाददाताओंकी दृष्टिसे १९१४ से पहलेका जमाना कुछ दूसरी तरहका था। उसमें हम युद्ध-संवाददाताओंको सैनिकोंके साथ कन्धेसे कन्धा मिलाकर लड़ते हुए पाते हैं। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तमें दक्षिण अफ्रीकामें बोअर-युद्धमें

मार्निङ्ग पोस्टके संवाददाता होकर ब्रिटेनके वर्तमान प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल गये थे। ये जिस ट्रेनमें जा रहे थे, वह उलट गयी और बोअर सेनानायकने उन्हें पकड़ लिया। ये युद्ध-बन्दी बनाकर प्रिटोरियामें रखे गये; परन्तु आधी रातको जेलसे भाग गये। ब्रिटिश रिसालेमें पहुंचकर उन्होंने युद्धमें सक्रिय भाग लिया था।

बोअर-युद्धसे पहले अमेरिकामें कूबाकी लड़ाईका आरम्भ एक प्रकारसे युद्ध-संवाददाताने ही किया था। रिचर्ड हार्डिङ्ग डेविस कर्नल ल्योनार्ड वुडके बराबर घोड़ेपर जा रहे थे। उनके पीछे थे लेफ्टिनेण्ट कर्नल थियोडोर रूजवेल्ट। ये एक सेनाके साथ सेन्शियागो जा रहे थे। रास्तेमें उन्हें शत्रु कहीं दिखलाई न पड़ता था। संयोगवश रिचर्ड हार्डिङ्ग डेविसने अपनी दूरबीन उठाकर एक ओर देखा और उनके मुंहसे निकल पड़ा--"आहा, कर्नल रूजवेल्ट, उधर देखिये।" लेफ्टिनेण्ट कर्नलने उधर देखा, तो पहाड़ीपर शत्रु-सैनिक दिखलाई पड़े। उसी क्षण उन्होंने अपनी तलवार उठाकर सैनिकोंको आज्ञा दी और युद्ध आरम्भ हो गया। इस युद्धमें कितने ही संवाददाताओंने क्रियात्मक भाग लिया था। एडवर्ड मार्शलको तो अपनी एक टांगसे ही हाथ धोना पड़ा था और युद्धके बाद लेफ्टिनेण्ट कर्नल थियोडोर रूज-वेल्टके लिए अमेरिकाके राष्ट्रपति होनेका रास्ता साफ हो गया था।

इस युद्धमें कई संवाददाताओंने बड़े साहसका परिचय दिया था। गत महासमरमें फ्रान्सीसियोंने अमेरिकन सैनिकोंके सम्बन्धमें कहा था—"अमेरिकन कीर्ति-चिह्नोंके लिए लड़ते हैं।" कूबाके युद्धमें न्यूयार्क जर्नलके युद्ध-संवाद-दाता जेम्स क्रीलमेनने यह कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध किया था। उन्होंने एक सैनिक दलका नेतृत्व किया और एलकेनी-के मोर्चेपर विजय पाकर अपने पत्रके लिए स्पेनिश पताका लेकर लौटे। जिस समय वे लड़ रहे थे, एक गोलेसे पताका अपने स्थानसे पहाड़ीके उस ओर गिर पड़ी, जिधर स्पेन-वालोंका अधिकार था। क्रीलमेनने देखा कि वह मलबेमेंसे बाहर निकल रही है। इसपर क्रीलमेन अदम्य उत्साह और साहसके साथ उधर बढ़ा, गोले और गोलियां बरस रही थीं, पीठ और बांहमें गोलियां लगनेसे क्रीलमेनका शरीर भी खूनसे लथपथ हो रहा था; परन्तु इस वीरने झण्डा लेकर ही दम लिया। उनके साथियोंने उसी झण्डेको शरीरपर डालकर उन्हें कई मील दूर फौजी अस्पतालमें पहुंचाया। कई घण्टे पीछे जब वहां उन्होंने आंख खोली, विलियम रेण्डोल्फ हर्स्ट उनके पास कहानी लिखनेकी प्रतीक्षामें बैठे हुए थे। उन्होंने सनसनाती हुई गोलियोंके बीच वहां क्रीलमेनकी जबानी सारी कहानी सुनी और उसे वहीं लिख डाला। सब कुछ लिख चुकनेके बाद हर्स्टने कहा—"खेद है कि आप घायल हो गये; परन्तु लड़ाई कैसी मजेदार थी! हमें संसारके सारे पत्रोंसे बाजी मार लेनी चाहिए।"

"वर्ल्ड" पत्रके संवाददाता सिल्वेस्टर स्कोवेलने तो कमाल ही किया। सेन्शियागोमें विजयोत्सव मनाया जा रहा था। जनरल शाफ्टरको गवर्नमेण्ट हाउसपर अमे-रिकन झण्डा फहराना था; परन्तु जनरल शाफ्टर इतने मोटे थे कि गवर्नमेण्ट हाउसपर चढ़ना उनके लिए मुश्किल ही था। वे अगर गवर्नमेण्ट हाउसकी छतपर न चढ़ते, तो झण्डा फहराते समयका चित्र कैसे लिया जाता। संवाददाता यह देखकर झण्डा फहरानेके लिए गवर्नमेण्ट हाउसकी छतपर चढ़ गये। चारों ओर सनसनी फैल गयी। जनरल शाफ्टरने कार्यक्रम रोक दिया और संवाददाताको नीचे आनेकी आज्ञा दी। संवाददाता नीचे तो उतर आया; परन्तु जहां जनरल शाफ्टर कूबावालोंका भक्तिभाव स्वीकार कर रहे थे, वहां जाकर उनकी नाककी ओर जोरका घूंसा ताना। इसके लिए संवाददाताको जेलकी सजा दी गयी; परन्तु उस समय तक वहां कोई जेल थी ही नहीं, फलतः उसके लिए एक नयी तरहकी सजा निकाली गयी। उन दिनों एक चबूतरा स्पे-निश मूर्तिको गोलीसे उड़ानेके लिए बनाया गया था। संवाददाताको दण्डस्वरूप उस दिन सन्ध्या तक उसी चबू-तरेपर खड़े रहनेके लिए विवश किया गया।

वह जमाना कुछ इसी तरहका था। संवाददाता युद्ध-क्षेत्रमें जाते और लड़कर, क्रियात्मक भाग लेकर सजीव कहा-नियां लिखते थे। वे जो बातें लिखते थे, उनमें उनकी अनु-भूति होती थी। उनका वर्णन घटनाओंका सिलसिला-मात्र नहीं होता था।

उस युगमें संवाददाता बनकर युद्ध-क्षेत्रमें गये हुए व्यक्ति प्रायः या तो योद्धा बनकर लड़ने लग जाते और फिर कहानी लिखते या फिर शत्रुसे लड़नेके लिए गये हुए योद्धा ही युद्ध

समाप्त हो जानेके बाद अपनी साहित्यिक प्रवृत्तिसे प्रेरित होकर कुछ लिखते और जनसाधारणको बहुमूल्य युद्ध-साहित्य देते। हिन्दीमें इस तरहके साहित्यका बिलकुल अभाव नहीं है।

आज युद्ध-संवाददाताओंकी कई समस्यायें हैं। एक समस्या तो यही है कि जहां भयङ्कर अग्निवर्षा हो रही हो, अन्धाधुन्ध गोले, गोलियां और बम गिर रहे हों, वहां वे अपने जीवनकी रक्षा किस तरह कर सकते हैं और जो कुछ भी देखा हो, उसे लेकर रेडियो स्टेशन या तारघर कैसे पहुंच सकते हैं। इससे भी जटिल प्रश्न है आजकलका सेन्सर, जो प्रायः सारेके सारे समाचारोंको निगल जाता है। इससे पार कैसे पड़ सकती है। फिर टेलीविजन भी तो है, जिसका आविष्कार वैज्ञानिकोंने किया है और जिसका प्रयोग सफलताके साथ हुआ है। इस यन्त्रसे यदि युद्ध-क्षेत्रमें सफलताके साथ काम लिया जा सके, तो फिर संवाददाताकी कोई आवश्यकता ही नहीं रह जायगी। जिस तरह आज हम रेडियोसे लन्दन, न्यूयार्क, दिल्ली और बम्बईका प्रोग्राम सुनते हैं, उसी तरह घर बैठे युद्ध-क्षेत्रकी तोपोंका गर्जन, सैनिकोंकी भिड़न्त, हवाई जहाजोंकी गनगनाहट, आकाश-युद्ध, बम-वर्षा आदि सुनना और साथ ही आंखोंसे देखना यदि जनताके लिए सम्भव हो गया, तो संवाददाताका स्थान एक टेलीविजन आपरेटरको मिल जायगा और यह भी मशीन-युगकी बहुत बड़ी विजय होगी।

———

निश्चय

अब हम भी जगकर देखेंगे!

देखे सपने सोते - सोते,
गिने सितारे रोते - रोते;
खो बैठे चेतना सुनहले
सुख-सपनोंमें खोते - खोते;
अब अपने इन वस्त्रोंको फिर हां, हम भी रंगकर देखेंगे।
अब हम भी जगकर देखेंगे!

सोते - सोते रात न बीती,
वह वियोगकी बात न बीती;
आंखोंने जल ही जल देखा,
रो-रोकर बरसात न बीती;
अब हम भी इस जलधाराके उस तटपर लगकर देखेंगे!
अब हम भी जगकर देखेंगे!

अन्धकारने घिरकर देखा,
रजनीने फिर-फिरकर देखा;
शशिने अपने स्वेत सिन्धुमें,
डूब-डूब तिर-तिरकर देखा;
अब हम भी मायाके मायाजालोंमें पड़कर देखेंगे!
अब हम भी जगकर देखेंगे!

—श्यामविहारी शुक्ल, 'तरल'

फेडरल यूनियन

श्री रामस्वरूप व्यास

संसारकी आजकी भीषण परिस्थितिको देखते हुए प्रायः सबके मनमें यह प्रश्न उठता है कि हम सभ्य कहलाते हुए भी क्यों इस बर्बरताके गर्तमें गिरे हुए हैं। संसारके एक बड़े भागमें मनुष्य एक दूसरेके नाशमें लिप्त हैं। एक दूसरेके नगरोंका विध्वंस करने तथा निरीह नागरिकोंकी हत्या करनेमें लगे हुए हैं। और इस प्रकारकी हत्यासे मनुष्यताको बचानेका दावा करते हैं। प्रचारके कारण आज सर्व साधारण वास्तविक स्थितिको समझ ही नहीं पाते हैं, क्योंकि सच्ची बात उन तक पहुंच ही नहीं पाती। सब ऊपरकी बातोंको पकड़कर चलते हैं। फिर भी, कुछ विचारक ऐसे हुए हैं जिन्होंने संसारकी परिस्थितिका गहरा अध्ययन किया है और जिन कारणोंसे यह अवस्था उपजी है उनपर प्रकाश डाला है तथा यह भी बतलाया है कि भविष्यमें संसारका सङ्गठन किस प्रकार करना चाहिए।

इस प्रकारके विचारक कई हैं। श्री एच० जी० वेलस इनमें सबसे प्रसिद्ध हैं। परन्तु आज..सबसे अधिक जिस व्यक्तिने संसारका ध्यान खींचा है, वह 'यूनियन नाउ' के लेखक मि० क्लेरेन्स स्ट्रीट हैं। मि० स्ट्रीट जेनेवामें एक अमेरिकन पत्रके संवाददाता थे और राष्ट्र-सङ्घकी नींव पड़नेके समयसे ही वह उसके निकट सम्पर्कमें गये थे। वहां उन्हें जो अनुभव हुए, उनपर विचार करके उन्होंने संसारके सङ्गठनकी एक ऐसी योजना बनायी, जो अमेरिकाके संयुक्त राज्योंके समान ही है। वह कहते हैं कि संसारके सङ्गठनकी आज यही सबसे अच्छी और व्यवहारिक योजना है। जिस व्यवस्थाका उन्होंने प्रतिपादन किया है, उसे फेडरल यूनियनके नामसे पुकारा गया है।

इस योजनापर विचार करनेसे पहले हमें उन बातोंकी जांच करनी होगी, जिनके कारण आजकी भीषण अव्यवस्था उत्पन्न हुई है। इस अव्यवस्थाके दो मुख्य कारण हैं,—एक राष्ट्रीयता, दूसरा राष्ट्रीय राज्यकी प्रभुता। इन दोनोंके कारण जो स्थिति उत्पन्न होती है, वह अनिवार्य रूपसे युद्धका रूप धारण कर लेती है। वास्तवमें तो राष्ट्रीय राज्यकी योजना ही इस प्रकारकी है कि जिसमें युद्धका स्थान महत्त्वपूर्ण है। आज राष्ट्रीयताके सुन्दर पहलूको ही हम देख पाये हैं या फिर उसका एक ही पहलू हमारे सामने रखा गया है, और उसके दूसरे तथा वीभत्स पहलुओंको हमसे छिपाये रखनेका प्रयत्न किया जाता है। ब्रिटिश सरकारके प्रचार विभाग द्वारा यह कहा जाता है कि नाजी लोग मनुष्य नहीं, हिंसक पशु हैं और इसी प्रकार जर्मनी द्वारा भी ब्रिटेनपर तरह-तरहके अभियोग लगाये जाते हैं। दोनों कहते हैं कि दूसरे पक्षके लोग युद्धमें बर्बरता दिखा रहे हैं और उन्हें तो बाध्य होकर ही बर्बरताका जवाब बर्बरतासे देना पड़ता है। परन्तु वास्तविक स्थिति इससे कुछ भिन्न है। जो भावना इन दोनों राष्ट्रों, या युद्धमें संलग्न किन्हीं भी दूसरे राज्योंको तरह-तरहकी भीषणता तथा बर्बरतापर उतारू करती है, वह राष्ट्रीयता ही है। राष्ट्रीयताकी भावनाको उत्तेजन देकर ही आज ब्रिटेन व जर्मनी एक दूसरेके संहारमें लिप्त हैं। इसे एक प्रकारकी सामूहिक हत्या भी कहा जा सकता है। परन्तु राष्ट्रीयताने, जिसका दूसरा नाम देश-भक्ति भी है, उन्हें इतना अन्धा बना रखा है कि आज वे संसारमें शान्तिका दम भरते हुए भी किसी अच्छी व्यवस्थाको जन्म नहीं देना चाहते। हमें इस राष्ट्रीयताको समझकर इसके विषसे बचना चाहिए तथा इसके मन्त्रपर मुग्ध न हो जाना चाहिए। आज भारतमें सर्वत्र राष्ट्रीयताकी धूम मची है। इस सम्बन्धमें हमारे यहां इतनी ही अच्छी बात है कि इसके साथ अब तक अहिंसाका पुट मिला है। परन्तु किस दिन अहिंसाका स्थान हिंसा ले लेगी, यह कहना बड़ा कठिन है। जहां हम यह स्वीकार करते हैं कि गांधीजी सच्चे मनसे एक ऐसे समाजकी रचना करनेका प्रयत्न कर रहे हैं जिसमें हिंसाका स्थान कमसे कम हो, वहां हमें यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि कांग्रेसके कितने ही राजनीतिज्ञ अहिंसाको श्रद्धाकी दृष्टिसे नहीं देखते, वरन् एक नीति मानकर चलते हैं। हाल ही में जब कांग्रेसकी कार्य-कारिणी समिति तथा

गांधीजीमें अहिंसापर मतभेद हुआ था, तब केवल खान अब्दुल गफ्फार खानने ही अहिंसाके प्रति पूरी श्रद्धा दिखायी थी। और सब तो ब्रिटेनको सहायता देनेको तत्पर थे। हमारे यह कहनेसे कोई यह न समझे कि हम कांग्रेसके नेताओंके विरुद्ध कुछ कहना चाहते हैं। कहनेका अर्थ इतना ही है कि जो लोग साधारण तौरपर अहिंसाके मार्गपर चलते हैं, वे भी कभी-कभी हिंसाको अपनानेको तैयार हो जाते हैं और यह तब तक होता रहेगा, जब तक राष्ट्रीयता प्रथम रहेगी।

यहां यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि हम तो केवल अपने स्वत्वोंको मांगते हैं और चाहते हैं कि आज हमारा जो शोषण हो रहा है, वह बन्द हो जाय। हम अपने देशमें अपना राज्य चाहते हैं, इसे राष्ट्रीयता कहा जाय या कुछ और। परन्तु प्रश्न इतना सीधा नहीं है। राष्ट्रीयता मनुष्य जातिके विकासकी एक सीढ़ी है और यह अन्तिम सीढ़ी नहीं है। बहुत-से देश आज इस प्रकारका व्यवहार कर रहे हैं, जिससे ज्ञात होता है कि राष्ट्रीयता ही मनुष्य जातिका चरम लक्ष्य है। मनुष्यने जिस प्रकार अपना सामाजिक विकास किया है, उसमें व्यक्ति, कुटुम्ब, जाति तथा एक प्रदेशमें बसनेवाले लोगोंके समूहको एक इकाई माना गया है। आज राष्ट्रीय राज्य एक इकाई है, परन्तु यह मनुष्य जातिके विकासकी अन्तिम इकाई है; यह समझ लेना भारी भूल होगी। जिस प्रकार मनुष्य इतनी अवस्थाओंमें होकर इस अवस्थापर पहुंचा है, उसी प्रकार उसे इस अवस्थाको भी पीछे छोड़ देना होगा। आज हम सारे भारतको एक राष्ट्रके रूपमें स्वीकार करते हैं; परन्तु यह देश कोई स्वयंसिद्ध इकाई नहीं है। यह देश भी अनेक राजनीतिक परिवर्तनोंमें होकर गुजरा है। उत्तर तथा दक्षिण भारतकी भाषा, विचारों तथा खान-पानमें काफी भेद है। भौगोलिक परिस्थिति भी एक दूसरेको अलग करती है। जिस प्रकार हिमालय भारतको एशियासे अलग करता है, उसी प्रकार विन्ध्या तथा सतपुड़ाकी पहाड़ियां उत्तर भारतको दक्षिण भारतसे अलग करती हैं। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि भारत कोई स्वयंसिद्ध इकाई नहीं है। और यदि देशी-विदेशीका भेद किया जाय, तो भी थोड़ा विवेकसे काम लेने और इतिहासके पृष्ठोंपर दृष्टि डालनेकी आवश्यकता है। जो लोग आर्योंको भी बाहरसे आया हुआ मानते हैं, उनकी दृष्टिमें थोड़े-से आदिवासियोंको छोड़कर सभी तो विदेशी हैं। जो हूण, शक, तातार, मङ्गोल इत्यादि जातियां आकर बसीं, वे भी विदेशी ही थीं। इसके बाद जब अंगरेज आये, वे भी विदेशी ही थे। पहले आनेवाली जातियां बादमें आनेवाली जातियोंको विदेशी कहती आयी हैं और इसी सापेक्षिक अर्थमें हम इस शब्दको ले सकते हैं।

जिस प्रकार स्वदेशी या विदेशीकी भावनाको उभाड़कर हमारी राष्ट्रीयताको उत्तेजित किया जाता है, उसी प्रकार 'गुलाम' शब्दका भी उपयोग होता है। यह शब्द इतनी बुरी अवस्थाका द्योतक है कि यदि इसका उपयोग हमारे लिए होता है, तो हमारे मनमें अपनी अवस्थाके प्रति बड़ा क्षोभ पैदा होता है तथा हम उस अवस्थासे मुक्तिके लिए प्रयत्न करते हैं। परन्तु इसके अर्थोंकी गहराईमें जानेसे कुछ और ही स्थिति ज्ञात होती है। गुलाम शब्दका अर्थ मोल लिया हुआ दास है। परन्तु यहां जिस अर्थमें प्रयोग होता है, वह यह है कि 'हम' अपनी इच्छानुसार देशका शासन-तन्त्र नहीं चला सकते। हमें इस 'हम' शब्दपर गौर करना चाहिए। जो लोग आर्योंके भी इस देशमें आकर उपनिवेश बसानेमें विश्वास करते हैं, वे यही कहेंगे कि जबसे आर्योंने अपनी सत्ता भारतमें फैलायी, तबसे यह देश गुलाम ही रहा है; क्योंकि आर्य लोग भारतके लिए विदेशी थे। आज भारतकी राजनीतिक इकाई भारतके नामसे पुकारा जानेवाला सारा देश है; परन्तु कुछ सौ वर्ष पहले ही यहां भिन्न-भिन्न लोगोंका राज्य था और राजपूत, सिक्ख, मरहटे, मुसलमान आपसमें लड़कर एक-दूसरेपर गुलामी लादने या उससे मुक्त होनेका प्रयत्न करते थे। आज ये सब मिलकर कांग्रेसके रूपमें देशकी राजनीतिक परिस्थिति बदलनेमें प्रयत्नशील हैं। इस समय इस परिस्थितिकी खास बात यह है कि हमसे भिन्न वर्णवाले लोग हमपर राज्य करते हैं। परन्तु जिस प्रकार हमने विदेशीकी व्याख्या सापेक्षिक रूपसे की थी, उसी सापेक्षिक रूपमें हमें इस 'गुलामी' का अर्थ भी करना होगा; क्योंकि सत्ता चाहे किसीकी हो, देशपर शासन करनेवाला वर्ग तो छोटा-सा ही होगा और दूसरे लोग उसके नीचे रहनेके कारण 'गुलाम' होंगे। अन्तर इतना ही होगा कि उस समय सफेद नहीं, ताम्र वर्णके लोग राज्य करते होंगे।

उपर्युक्त बातोंका यह अर्थ नहीं कि लेखक वर्तमान राजनीतिक अवस्थाको हमेशा बनाये रखनेके पक्षमें है। लेखक न इस पक्षमें है कि अंगरेज लोग अपने स्वार्थोंकी दृष्टिसे हम-पर हमेशा ही शासन करते रहें और न वह यह मानता है कि उनका वर्ण हमसे भिन्न है और वे यहां बसनेवाली जातियोंमें सबसे बादमें आये हैं, इस कारण अंगरेजोंको यहां-से चले जानेके लिए बाध्य कर देना चाहिए। वास्तवमें इन बातोंको संकुचित राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे देखनेसे काम न चलेगा। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि एक पराधीन राष्ट्रके लिए अन्तर्राष्ट्रीयताकी बातें करना व्यर्थकी बकवास है। पहले वे स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेना चाहते हैं और मानते हैं कि बिना इसके उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय जीवनमें कोई मान्य स्थान नहीं मिल सकता। परन्तु लेखकका मत है कि जब तक हम संकुचित राष्ट्र-भावनाको पकड़े बैठे रहेंगे, तब तक देश और संसार, किसीका भी उद्धार नहीं होनेवाला है।

राष्ट्रीयताका वर्तमान स्वरूप या राष्ट्रीय राज्यका विचार बहुत पुराना नहीं है। यह कल्पना पश्चिमके विचारोंकी उपज है। इस राष्ट्रीयताके साथ एक प्रकारकी ऐसी राज्य-व्यवस्थाकी भी कल्पना की गयी है, जिसे प्रजा-सत्तात्मक कहा गया है। इसका मूल सिद्धान्त 'जनता द्वारा जनताके लिए जनताका राज्य' रखा गया है। आज हमारे देशमें जिस बातने प्रधान महत्ता ले रखी है, वह यह है कि जनताके प्रतिनिधि तथा भारतवासी ही राज्य-व्यवस्था चलायें। परन्तु हमें इस भ्रममें न पड़ना चाहिए कि केवल अपने ही वर्ण या देशके लोगों द्वारा सत्ताके सञ्चालनसे सब ठीक हो जायगा। आज भी जर्मनी और ब्रिटेनमें किसी विदेशी सत्ताका राज्य नहीं है। वहांके अपने ही लोग राज्य-व्यवस्था चलाते हैं। परन्तु इतनेपर भी क्या वहां लोग सुखी हैं? अन्य बातोंको छोड़ दिया जाय तो भी बीस वर्षमें इन्हें दो विनाशकारी युद्ध लड़ने पड़े तथा देशके लाखों नौजवान और खरबों रुपये इनमें स्वाहा हो गये। कोई भी विदेशी राज्य आकर क्या इतना अधिक शोषण या संहार करनेमें समर्थ होता? इसी प्रकार यूरोप आज विद्या तथा विज्ञानमें सबसे बढ़ा-चढ़ा होकर भी उसका उपयोग मनुष्यताके लाभके लिए नहीं, वरन् नाश-के लिए कर रहा है।

हमें राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रीय राज्यकी इतनी विस्तृत विवेचना इस कारण करनी पड़ी, जिससे इन शब्दोंके पीछे छिपी हुई हकीकतका पता लग जाय। राष्ट्रीयताका अपना एक स्थान हो सकता है; परन्तु हम उसे एक ऐसे देवताके रूपमें स्वीकार नहीं कर सकते जिसके लिए सब कुछ, यहां तक कि मनुष्यके श्रेष्ठतम भावोंको भी बलि देना पड़े। हमें इस राष्ट्रीयताके कारण उपजी हुई अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता नहीं चाहिए, वरन् चाहिए राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय जीवन-में सन्तुलन और सामञ्जस्य। संसारको एक ऐसी व्यवस्थाकी आवश्यकता है, जिसमें हम राष्ट्रीयतासे आगे बढ़कर अन्त-र्राष्ट्रीय दृष्टिसे सब प्रश्नोंको देखें और केवल एक समूह, वर्ग या प्रदेशमें बसनेवाले लोगोंके लाभको न देखकर सारे संसारके लाभको देखें। यह 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के समान कोरी भावना नहीं है, आज जीवनमें इसकी व्यवहारिक व्यवस्थाकी आवश्यकता है। विज्ञान द्वारा आविष्कृत याता-यातके साधनोंने संसारके विभिन्न प्रदेशोंको एक दूसरेके बहुत निकट ला दिया है। आर्थिक सङ्गठन भी इस प्रकारका होता चला जा रहा है, जिसमें एक देशके लोगोंका दूसरे देशपर निर्भर करना आवश्यक हो गया है। इन बातोंमें तथा राष्ट्रीय भावनामें विरोध है और इस विरोधके कारण ही आजकी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है।

इस सबका अन्त लानेके लिए मि० स्ट्रीट तथा दूसरे विचा-रकोंने जो मुख्य-मुख्य बातें सुझायी हैं, वे ये हैं—सबसे पहले सारे देशोंके वैदेशिक विभागोंको तोड़ देना होगा और उन्हें एक सर्वराष्ट्रीय सत्ताके अन्तर्गत रख देना होगा। इसी प्रकार सब देशोंकी सेनाओंको अन्तर्राष्ट्रीय सत्ताके अधीन करना होगा। हरएक राष्ट्र जिस प्रकार अब सेना रखकर उसका मनचाहा उपयोग करता है, तब वह न कर सकेगा। सेनाका उपयोग केवल अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता ही कर सकेगी। इसके साथ सारे संसारका आर्थिक तन्त्र और राजस्व सत्ता भी अन्तर्राष्ट्रीय समितिके हाथोंमें देनी होगी। आज-कल यह सत्ता भी एक प्रकार छिपे युद्ध तथा शोषणका काम करती है और आपसकी होड़में हरएक देश दूसरे देशके व्यापारिक हितोंको नुकसान पहुंचाता है। उपनिवेशोंकी समस्या भी आज इसी प्रकारकी है। यूरोपके थोड़े-से देश संसारके भारी भागपर अधिकार जमाये हुए हैं। इनको भी

किसी देश-विशेषके हाथमें न रहने देकर वहां बसनेवाले लोगोंके हितकी दृष्टिसे प्रबन्ध करना होगा। यह किसी राष्ट्रकी बपौती नहीं मानी जायगी। संसारके यातायातके साधनोंपर भी अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण ही रहेगा, क्योंकि ये सार्वजनीन उपयोगकी चीजें हैं। मुद्राका चलन तथा नियन्त्रण भी अन्तर्राष्ट्रीय ही होगा और इसी प्रकारसे समाचार जाननेके साधनोंपर भी सार्वदेशिक सत्ता ही नियन्त्रण रखेगी।

ये वे मुख्य-मुख्य बातें हैं, जिनपर किसी देश-विशेषका अधिकार न होकर अन्तर्राष्ट्रीय सत्ताका अधिकार हो; क्योंकि बिना इसके हम शान्ति स्थापित नहीं कर सकेंगे, और शान्ति जीवनके लिए आवश्यक है। प्रश्न यह उठता है कि यह सब किस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सत्ताके अधीन हों। यह सत्ता तीन प्रकारकी हो सकती है—एक तो राष्ट्र-सङ्घके नमूनेकी, जिसमें सारे राष्ट्र अपनी सत्ताको तिल-मात्र भी न छोड़ते हुए एक प्रकारसे 'सन्धि' कर लेते हैं और एक दूसरेको सामूहिक रक्षाका वचन देते हैं। दूसरी सत्ता इस प्रकारकी हो सकती है कि इसमें सबसे बलवान राष्ट्र या समूह सारे संसारको दबाकर अपना आधिपत्य कायम कर ले। तीसरी सत्ता इस प्रकारकी हो सकती है, जिसमें सब राज्य अपनी थोड़ी-थोड़ी सत्ता एक केन्द्रीय सत्ताको दे दें और थोड़ी सत्ता अपने पास रखें। इस प्रकारकी राज्य-व्यवस्थाका नमूना अमेरिकाके संयुक्त राष्ट्र हैं। इन तीनों प्रकारकी व्यवस्थाओंका विचार करते हुए हमें तीसरी व्यवस्था सबसे अनुकूल लगती है। मि० स्ट्रीटने भी इसी व्यवस्थाका पक्ष लिया है। राष्ट्रसङ्घकी कार्यप्रणालीका अध्ययन उन्होंने निकटसे किया तथा वह इस निष्कर्षपर पहुंचे कि इसके सङ्गठनमें ही विफलताके बीज हैं। उनका मत है कि जब तक विभिन्न राष्ट्र अपनी प्रभुता नहीं छोड़ेंगे और अपने-अपने हितोंको ही सर्वप्रधान समझेंगे, तब तक संसारमें किसी भी शान्तिपूर्ण व्यवस्थाका अन्त होनेवाला नहीं है। दूसरी व्यवस्था बलपूर्वक अन्य राष्ट्रोंपर लादी गयी होगी, इसलिए इसे कोई खुशीसे स्वीकार न करेगा। तीसरी व्यवस्था ही मध्यका सुन्दर मार्ग है और अनुभवने यह भी बता दिया है कि यह सफल हो सकती है। इसमें अपने-अपने प्रदेशोंकी आन्तरिक व्यवस्था वहांके लोगोंके हाथमें होगी और केन्द्रीय सत्ताके हाथमें उन्हीं बातोंका नियन्त्रण होगा, जिनका जिक्र हम पहले कर आये हैं।

अमेरिकाके संयुक्त राज्योंमें इस व्यवस्थाका जन्म काफी समय पहले हो चुका है और वहां इस प्रकारका तन्त्र काफी सफलतापूर्वक चल रहा है। वहांके नागरिक दो प्रकारकी सत्ताओंके अधीन हैं—एक अपने छोटे-से राज्यकी तथा दूसरी फेडरल सरकारकी। कुछ बातोंमें फेडरल सरकार नागरिकोंका नियन्त्रण तथा रक्षा करती है और कुछ बातोंमें वह अपनी प्रादेशिक सरकारोंके अधीन होती है। प्रादेशिक सरकारें अपने अधीन विभागों सम्बन्धी नियमोंका निर्माण करती हैं।

इस प्रकारके सङ्गठनको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए भी मि० स्ट्रीटने एक योजना बनायी है। वे कहते हैं कि आज जितने भी प्रजातन्त्र राज्य हैं, उन सबको मिलकर इस व्यवस्थाका श्रीगणेश कर देना चाहिए। फिलहाल इसके सदस्य ब्रिटिश साम्राज्यके सारे देश, फ्रान्स और उसके उपनिवेश, अमेरिकाका संयुक्त राज्य, बेलजियम, हालैण्ड, स्वेडन, नारवे और स्विजरलैण्ड हो सकते हैं। उनका कहना है कि इन सब देशोंकी मिलकर इतनी शक्ति हो जायगी तथा इनके पास संसारके साधन और सामग्रीका इतना भारी भाग होगा कि इसके बाहर रहनेवाले राष्ट्रोंके लिए अलग रहना कठिन हो जायगा और वह भी बादमें इसकी सदस्यता स्वीकार किये बिना न रहेंगे। साथ ही सदस्यता स्वीकार करनेके लाभ अधिक होंगे और बाहर रहनेमें अधिक असुविधा होगी। पर वह यह भी कहते हैं कि जो राष्ट्र शुरूमें सदस्य होंगे और जो बादमें आयेंगे, उन सबके अधिकार और सुविधायें समान ही होंगी और सबके लिए सदस्यताका मार्ग खुला रहेगा।

यह विश्वास किया जाता है कि मि० स्ट्रीटसे भिन्न अमेरिकन सरकारके मस्तिष्कमें भी एक प्रकारकी अन्तिम शान्ति-योजना घूम रही है। उसमें मानव जातिके एक अन्तर्राष्ट्रीय समाजकी स्थापनापर विचार किया गया है। यह समाज आर्थिक एवं राजनीतिक प्रजातन्त्रपर अवलम्बित होगा। इसमें विजित तथा विजयी दोनों ही प्रकारके राष्ट्रोंके लिए सामाजिक न्याय और आर्थिक सुरक्षाकी व्यवस्था की जानेकी बात कही जाती है। यह भी कहा

जाता है कि स्थायी शान्तिके लिए इसमें प्रत्येक जातिको धर्म तथा भाषणकी स्वतन्त्रता दी जायगी। युद्धके पश्चात् होनेवाली बेकारीकी समस्याको हल करनेके भी इसमें निश्चित उपाय रखे गये हैं। खयाल यह है कि अमेरिकाके अधिकारी उपयुक्त समयपर इसे प्रकट करेंगे। इस योजनासे अभीष्ट पूरा होगा या नहीं, यह कहना अभी ठीक नहीं है। समय आनेपर ही उसकी रूपरेखा देखकर उसके विषयमें अधिक कहा जा सकेगा।

हमें यहां यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह सङ्गठन कितना आवश्यक है। हमें तो इसकी उपयोगिता स्वयंसिद्ध दिखाई देती है। साथ ही संसार जिस ओर आगे बढ़ रहा है, उसमें इस तरह इस व्यवस्थाके आनेकी बहुत सम्भावना भी है। परन्तु यह व्यवस्था अपने आप न आयेगी, इसके लिए भी भारी प्रचार और सङ्गठन होनेकी आवश्यकता है। यदि हमें संसारको भयङ्कर सङ्कटके गर्तमें गिरनेसे बचा लेना है और संसारकी शान्तिपूर्ण व्यवस्था करनी है, तब हरएक समझदार और शान्तिप्रिय व्यक्तिका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह विश्वसङ्घकी कल्पनापर गम्भीरतापूर्वक विचार करे और यह सोचे कि उसे इसके लिए क्या करना होगा।

——

टूटी कलिकाके प्रति--

री टूटी कलिका पराधीन !
किस मानवने दानव बनकर, कर दिया तुझे यों वृन्तहीन !

तू क्षीण हुई या छिन्न हुई,
इसलिए भला क्यों खिन्न हुई !
विपदाओंके सागर तरकर
तू प्रणय-जलधिमें लीन हुई !
तू सोच नहीं कर चिरसङ्गिनि, मैं भी तुझ-सा हूं एक दीन !
री टूटी कलिका पराधीन !

पङ्खड़ियोंमें तेरा यौवन—
अब तक विकसित हो पाया था !
उस यौवनके विकसित सरमें,
अमृतोपम रस भर आया था !
किस निष्ठुरने कर दिया अहह सखियों कौड़ीकी तीन-तीन !
री टूटी कलिका पराधीन !

पर तुझको क्यों इसका गम हो,
तरुमें तेरा अन्तर्तम हो,
मधुपावलियोंके जीवनमें—
केवल करुणाका उद्गम हो !
नैनोंमें नीर छिपा हो, उरमें हो करुणाकी धार पीन !
री टूटी कलिका पराधीन !

वह दिन है याद मुझे, जब तू
यौवन-मदमें इतराती थी।
भौंरोंसे प्रेम निभा करके,
कवियोंके दिल बहलाती थी !
पर श्रीहत सब शृङ्गार हुआ, तू भूलुण्ठित गौरव-विहीन !
री टूटी कलिका पराधीन !

तेरी यह दीन दशा लखकर
कवि रोता है प्रेमाश्रु लिये,
रोने वाले ही रोयेंगे—
वह रोये क्या जो व्यर्थ जिये !
तेरे जीवनमें त्याग अरी, मेरा जीवन है त्यागहीन !
री टूटी कलिका पराधीन !

—सहदेव पञ्जिकार।

शुक्लजीकी साहित्योपासना

श्री परमानन्द शर्मा

भारतेन्दु-युगने खड़ी बोलीके साहित्यके सर्वाङ्गकी रूपरेखा तैयार कर दी थी। एकाङ्गिक अङ्गोंपर अपनी तूलिकासे रङ्ग भी फेर दिया था। परन्तु भाषाके अव्यवस्थित रूपने साहित्यके भीतर परिधि-व्यापी जाल-सा प्रसरित कर रखा था। द्विवेदी-युगने उसके परिष्कारमें समस्त शक्ति लगा दी। अपनी अनवरत साधनाके फलस्वरूप उन्होंने हिन्दी-भाषाके विशाल प्राङ्गणमें दिव्य प्रकाश उपस्थित कर दिया। भाषाके भीतर जैसे प्राणोंका सञ्चार हो चला। अमार्जित रूपके मोहकी अंगड़ाई टूटने लगी। साहित्य-क्षेत्रमें रचना-कुशल, कर्मशील कलाकार सम्मुख आने लगे। इस समय साहित्य-क्षेत्रमें सुन्दर रचनाओंके पौधोंकी बाढ़ रोकनेके लिए विशृङ्खल झाड़-झङ्खाड़की अधिकता थी। उन्हें उखाड़ फेंकनेके लिए और हिन्दी-साहित्यके विचार-शृङ्खला-बद्ध स्वरूपको उपस्थित करनेके लिए साहित्यिक जनताकी आकांक्षाने नवीन शक्ति और उत्साहका अनुभव किया। साहित्यके युग-युगकी प्रवृत्तियोंकी विश्लेषणात्मक गवेषणा एवं समीक्षात्मक प्रणालीकी मांग पेश हुई। ऐसे अवसरपर बा० काशीप्रसादजी जायसवालकी प्रेरणा और श्री प्रेमघन-जीके साहित्यिक स्पर्शकी देनस्वरूप पं० रामचन्द्रजी शुक्लकी साहित्योपासना प्रारम्भ हुई। आकांक्षा-वृत्तिकी तृप्ति और मांगकी पूर्तिके लिए हिन्दी-साहित्यमें आलोचनात्मक रचनाका निर्माण-कार्य अपने वर्तमान रूपमें इन्होंने आरम्भ किया।

साहित्य-क्षेत्रमें भिन्न-भिन्न विषयोंकी विविध रचनाओंके रूप-विस्तार द्वारा ही पूर्ण विकास नहीं होता; बल्कि अनियन्त्रित वृद्धि सर्वाङ्गीन उन्नतिमें बाधक सिद्ध होती है। साहित्यके व्यापक विकासमें समालोचनाका प्रमुख स्थान है। जिस साहित्यमें समालोचनाका एकान्त अभाव हो गया हो, वह कभी पनप नहीं सकेगा। यदि किसी अङ्गकी उन्नति होगी भी, तो उसकी विशेषता और व्यापकताको हृदयङ्गम करनेमें सर्वसाधारण असमर्थ रहेंगे। अवश्य ही ऐसी स्थितिमें साहित्यको स्वस्थ रखनेके लिए समीक्षाका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हमारे साहित्यका वैज्ञानिक उपचार शुक्लजीने एक महान् कविराजकी भांति अपनी विवेचनात्मक रचनाओंकी रासायनिक क्रियाओं द्वारा अच्छी तरह सम्पन्न किया है।

शुक्लजीका जन्म १८८४ ईसवीमें युक्तप्रान्तके बस्ती जिलेके अगोना गांवमें हुआ था। अक्षरारम्भके बाद आपकी शिक्षाका आरम्भ संस्कृतसे हुआ। प्रारम्भसे ही आपको अध्ययनका बड़ा व्यसन था। कुछ दिनों संस्कृत चलानेके बाद आपकी अंगरेजी शिक्षा आरम्भ हुई और १९०१ में आपने एण्ट्रेन्सकी परीक्षा पास की। कालेजमें एफ० ए० की पढ़ाई भी आरम्भ की, और दो-तीन वर्षमें उसे पास भी किया। परन्तु इसके बाद विविध झञ्झटोंके कारण श्री शुक्लजीको कालेजकी पढ़ाई छोड़ देनेके लिए विवश हो जाना पड़ा। अध्ययनशील तो थे ही, पढ़ना-लिखना आपने निरन्तर जारी रखा और १९०६ में कानूनकी परीक्षा दी। आरम्भमें आपका इरादा वकालतका पेशा अपनानेका था, किन्तु कानूनकी परीक्षामें जब फेल हो गये, तब जीवनकी दिशा ही बदल गयी और मिर्जापुरमें आपने मिशन हाई स्कूलमें अध्यापकका कार्य स्वीकार कर लिया।

श्री शुक्लजीकी साहित्य-सेवा इससे पहले ही आरम्भ हो चुकी थी। १९०२ में हिन्दी लेखकोंके दकियानूसी विचारों और उनमें प्रचलित अनेक कुप्रवृत्तियोंके विरुद्ध उन्होंने "विषैले जन्तु" शीर्षकसे इण्डियन पीपुलमें एक लेख-माला प्रकाशित की, जिसके फलस्वरूप हिन्दी-पत्रोंमें बड़ी हलचल मच गयी। इसी समयके आसपास भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके समकालीन पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' द्वारा सम्पादित "आनन्द कादम्बिनी" में आपने लिखना आरम्भ किया और बादमें "सरस्वती" में भी लेख लिखे। हिन्दी-जगतको आपकी गवेषणात्मक प्रखर प्रतिभा और गम्भीर योग्यताका परिचय इसी समय हो गया। इसके बाद ही १९०८ में आप नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा काशी बुलाये गये। "हिन्दी-शब्द-सागर" के प्रकाशनके समय

सहायक सम्पादकके रूपमें कार्य करनेके लिए नियुक्त हुए। नागरी प्रचारिणी पत्रिकाका सम्पादन भी उन्होंने ८-९ वर्ष तक किया। फिर काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें हिन्दीके प्रोफेसर और अन्तमें हिन्दीके हेड आफ दि डिपार्टमेण्ट भी रहे। बीच-बीचमें यहां अंगरेजी-पत्रोंमें हिन्दी भाषा और साहित्य सम्बन्धी आलोचनात्मक निबन्ध भी लिखते रहे। इनकी साहित्यिक साधना अपने युगके लेखकोंमें सबसे अधिक मार्मिक एवं गम्भीर थी। इनकी रचनाओंमें दिल बहलानेकी सामग्री नहीं रहती, ठहरकर चिन्तन करनेकी वस्तु रहती है, जो उच्च श्रेणीके शिक्षार्थियोंके लिए बड़े महत्त्वकी है।

शुक्लजी गम्भीर और विचारपूर्ण साहित्यके निर्माता थे। उनकी रचनाओंकी सबसे बड़ी विशेषता है उनका गम्भीर अध्ययन, मनन और अन्तमें सृजन। गम्भीर अध्ययन और मनन किये बिना वे किसी भी विषयपर कलम नहीं उठाते थे। संस्कृत, अंगरेजी और उपलब्ध हिन्दी-साहित्य सम्बन्धी उनका अध्ययन तुलनात्मक था और इस पाण्डित्यकी छाप उनकी प्रत्येक रचनापर रहती थी। इन्होंने विवेचनात्मक ग्रन्थोंका ही निर्माण नहीं किया है, वरन् कवितायें भी लिखी हैं और अनेक उपादेय ग्रन्थोंका अनुवाद भी किया है। यहां इनके रचित और अनूदित कुछ ग्रन्थोंका विवरण देकर, उनकी भाषा-शैलीकी विवेचना की जायगी। इन्होंने एडिसनके "एसे आन दि इमेजिनेशन" का अनुवाद "कल्पनाका आनन्द" शीर्षकसे किया है। मेगास्थनीजका भारतवर्षीय विवरण भी इंगलिशका ही अनुवाद है। सर पी० माधवरावके "माइनर हिन्ट्स" का अनुवाद "राज्य-प्रबन्ध-शिक्षा" नामसे किया है। राखालदास बनर्जीके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास "शशाङ्क" का अनुवाद आवश्यक परिवर्तनके साथ किया है। जर्मनीके जगद्विख्यात प्राणि-तत्त्ववेत्ता हैगलकी प्रसिद्ध पुस्तक "रिडल आफ दि यूनिवर्स" का अनुवाद "विश्व-प्रपञ्च" नामसे किया है। यह अनात्मवादी आधिभौतिक सिद्धान्तका ग्रन्थ है। इसकी १९९ पृष्ठोंमें तात्त्विक विवेचनापूर्ण भूमिका लिखी है। इसके अन्दर पारिभाषिक शब्दोंको भारतीय दर्शनोंसे लेकर भाषा-निर्माण किया है। इसमें विषयके प्रतिपादनके निमित्त एक विशेष शैलीका निरूपण है। संस्कृत-मिश्रित शब्द-सङ्गठन और वाक्योंका गूढ़-प्रयोग अत्यल्प है। संस्कृत शब्दोंका उतना ही आधार लिया गया है, जिससे विषय-निरूपण सुबोध हो। तात्पर्य यह कि इसमें भाषाको दुरूहतासे बचानेकी भरपूर चेष्टा की गयी है; परन्तु विषयकी गम्भीरताने उसे कुछ क्लिष्ट रहने ही दिया है। "लाइट आफ एशिया" के आधारपर "बुद्ध-चरित" नामक आठ सर्गोंका व्रजभाषामें एक सरस काव्यग्रन्थ उन्होंने लिखा है। इसमें भावुक हृदयकी वृत्तिका स्फुरण सर्वत्र है। कवितामें हृदयकी रागात्मक वृत्तियोंको मानव तक ही सीमित न रखकर प्रकृतिके निस्सीम प्राङ्गण तक पहुंचनेका प्रयत्न किया है। प्राकृतिक दृश्योंके हर तरहके विभावोंपर दृष्टि डालनेकी सफल चेष्टा की है। भाषाके प्रयोगमें भी स्वतन्त्र गतिका प्रवाह-प्रसार किया है। भाषाका चालू रूप अधिक है एवं साहित्यिक व्रजभाषाकी नकल कम। भूमिकामें व्रज, अवधी, खड़ी बोली तीनोंके भाषा-विज्ञानकी मार्मिक विवेचना की है। विविध छन्द-निरूपित इसकी माधुरी आस्वादन करने योग्य है।

शुक्लजीने 'भ्रमर गीत' और 'वीरसिंहदेव चरित' का सम्पादन उचित तथा आवश्यक टीका-टिप्पणीके साथ किया और जायसी ग्रन्थावलीका सम्पादन यत्नपूर्वक किया। प्राप्य प्राचीन प्रतियोंका मनयोगपूर्वक स्वाध्याय करनेके बाद जायसीके इस समय तकके प्रकाशित सब ग्रन्थोंसे अधिक मार्जित संस्करण निकाला। इससे भी अधिक उपादेयता इस ग्रन्थकी भूमिका द्वारा प्रकट हुई है। इस काव्य-ग्रन्थके भीतर वर्णित सब तत्त्वोंपर आलोचनात्मक प्रकाश पूर्णरूपसे डाला है। जायसीकी विवेचनात्मक मीमांसा करके साहित्यके परीक्षार्थियों और जिज्ञासुओंका मार्ग अति सुगम कर दिया है। प्रायः सभी कठिन शब्दोंके अर्थ दे दिये गये हैं; परन्तु फिर भी कहीं-कहीं पेचीली उलझनें रह गयी हैं, जिनकी समीचीन मीमांसा करना आवश्यक था। तुलसी-ग्रन्थावलीके सम्पादकोंमें एक शुक्लजी भी थे। आपने तुलसीदासकी समीक्षा बड़ी सहृदयतासे की है, जैसे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी हो। कविताकी विशेषता और सौन्दर्य-सन्तुलन करनेमें स्पष्टता, निर्भीकता और न्यायपरतासे काम लिया है। तुलसी-साहित्यके रत्नोंको हिन्दी जनताके सम्मुख प्रकट करनेकी शक्ति शुक्लजीमें ही थी। यह दूसरेके बूतेका काम नहीं। ऐसी बुद्धिपरक विवेचनात्मक समीक्षा हिन्दीमें

नहीं है, अन्य भाषाओंके साहित्यिकोंकी बात में नहीं कह सकता ।



आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ।

सन् १९३० ई० में विचारात्मक निबन्धोंका संग्रह 'विचार-वीथी' नामसे प्रकाशित हुआ। निबन्धोंकी विशेषता इस बातमें है कि विषयके भीतरी तत्त्व तक पाठकको ले जानेकी सफल चेष्टा की गयी है। उसमें चिन्तनशील व्यक्ति ही निवेश कर सकता है। यही ग्रन्थ बादमें "चिन्तामणि" के रूपमें प्रकाशित हुआ और इसपर मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक दिया गया। यह शुक्लजीके साहित्यिक जीवनकी अमर कीर्ति है। हिन्दी साहित्यका इतिहास हिन्दी शब्द-सागरकी भूमिकाके रूपमें "हिन्दी साहित्यका विकास" शीर्षकसे १९२९ की जनवरीमें निकला। इसीके आदि-अन्तमें विशेष बातें बढ़ाकर एक पुस्तकाकार संस्करण संवत् १९८६ में प्रकाशित हुआ। हिन्दी-साहित्यके इस इतिहासपर हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयागने आपको ५००) रु० का पुरस्कार भी दिया। इसमें हिन्दी-साहित्यके इतिहासकी प्रवृत्तिमूलक विवेचना, ऐतिहासिक तत्त्वोंकी आलोचना एवं सम्पूर्ण ऐतिहासिक सामग्रीका औचित्यपूर्ण वर्गीकरण युक्तिपूर्वक किया गया है। अब इसका द्वितीय संस्करण भी प्रकाशित हुआ है। इसमें आधुनिक कवियोंकी भी विवेचना की गयी है। काव्यमें रहस्यवाद आलोचनाका एक बड़ा ही विशद ग्रन्थ है। इसमें रहस्यवाद और छायावादका पूरा विवेचन है। पाश्चात्य काव्यधाराके मूल तत्त्वोंका आधार लेकर विवेचन अधिक किया गया है। इसलिए भारतीय रहस्यवादके प्रतिकूल यह विवेचन अनेक अंशोंमें हो गया है। यहांका तमाम प्राचीन साहित्य रहस्यवादकी ही भूमिपर निर्मित हुआ है। युग-युगकी धारा भिन्न-भिन्न शैलियोंमें रहस्यवादकी ही आधार-शिलापर टिकी हुई है।

चौबीसवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें साहित्य-परिषद्के सभापति-पदसे शुक्लजीने एक भाषण दिया था। वह

पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया है। इसमें काव्यकी बड़ी गम्भीर और विस्तृत आलोचना की गयी है। भारतीय आलोचना-प्रणाली और पाश्चात्य समीक्षा-पद्धतिका, उनके प्रचलित वादोंका, उनसे उत्पन्न प्रवृत्तियोंका तथा प्रवृत्तियों-के व्यापक प्रभावका वर्णन किया गया है। आधुनिक काव्य-धारापर अल्प ही विवेचन है। साहित्यके अपर अङ्गोंपर सरसरी निगाह दौड़ायी गयी है। बा० राधाकृष्णदासका जीवनचरित, प्राचीन पारसका अनुसन्धानपूर्ण संक्षिप्त इति-हास, आदर्श जीवन आदि रचनायें भी इनकी सुन्दर हैं।

शुक्लजीने खड़ी बोलीमें जो कवितायें की हैं, उनमें आपने प्रकृति-वर्णनका अधिक आश्रय लिया है। बिना अति-रञ्जनाके उसके स्वाभाविक रूपको ही चित्रित किया है। कहीं-कहीं करुण-रसका बड़ा अच्छा परिपाक हुआ है। प्रकृतिका पर्यवेक्षण आपकी कविताओंमें प्रायः प्रकट हुआ है।

मिर्जापुरके वृद्ध साहित्यिक स्वर्गवासी प्रेमघनजीके द्वारा सम्पादित "आनन्द-कादम्बिनी" नामक पत्रिकासे आपने जो साहित्यिक साधना प्रारम्भ की थी, कौन जानता था कि वह आगे चलकर इतनी व्यापक बनेगी। तबसे बराबर आपकी भाषा और शैली प्रौढ़ होती गयी। निगूढ़ विचारात्मक निबन्ध-रचनामें आप सिद्धहस्त थे, जिसमें आपके उत्कृष्ट व्यक्तित्वका पता चलता है। व्यक्तित्व-का प्रकाश शैलीमें स्पष्ट लक्षित होता है। ठोस आलोचना-पद्धतिका आविर्भाव हिन्दी-साहित्यमें आपने ही किया। आलोचनाओंमें आपके गम्भीर अध्ययन और विषयपर सम्यक् अधिकारका पूर्ण प्रकाश है। भाषामें गम्भीर प्रकृति, नियमित परिष्कार एवं विशुद्ध प्रौढ़ता उपस्थित रहती है। आपकी भाषाका सौष्ठव, वाक्योंके आवर्त्तमय गुम्फनकी विशेषतामें प्रकट होता है। निबन्धों और आलोचनाओंमें विवेचनात्मक गाम्भीर्य, निराला चिन्तन और गवेषणात्मक सूझकी मार्मिक एवं दृढ़ अभिव्यञ्जना निहित है। शैलीमें सर्वत्र एक चमत्कारपूर्ण वैभव दृष्टिगोचर होता है। अनुभ-वात्मक उक्तियोंका अनुकूल सम्मिश्रण दुरूह शैलीको रोचक एवं लावण्यमय बना देता है। उन्होंने गद्य-शैलीको स्थिर रूप देकर उसकी सीमाको व्यापक तथा प्रभावशाली बनाया है। लेखोंमें स्वतन्त्र विवेचनको विशेष प्रश्रय देनेके कारण भावाभिव्यक्ति भी स्वच्छन्द हुई है। आपकी रचनामें संस्कृत-गर्भित वाक्योंका अच्छा सङ्गठन है। इसमें सूक्ष्म विवेचनका आनन्द तो आता है; परन्तु सर्वसाधारणका आकर्षण कम हो जाता है। जिन निबन्धोंमें सूक्ष्म विवेचनका रूप साधा-रण हो गया है, वहां सबकी समझमें आनेवाली भाषा स्पष्ट प्रकट हुई है। जहां भावावेशकी क्लिष्टता नहीं, वहां वह व्यावहारिक जीवनकी सुसम्बद्ध विवेचनाके रूपमें प्रकट हुई है। भाषामें जहां उर्दू शैलीके मुहावरे और वक्रोक्तियोंका प्रयोग किया है—दृष्टान्तोंका बाहुल्य हो गया है। सारांश यह कि भाषाने विषयके उपयुक्त रूप धारण किया है, भावों और विचारोंका अनुसरण किया है; किन्तु यह होनेपर भी भाषामें कहीं नखरेबाजी नहीं मिलेगी; सर्वत्र गम्भीरताकी छाप लगी रहती है, शब्दोंका सौष्ठव बना रहता है।

ऐसे साहित्य-महारथीका देहावसान ५६ वर्षकी अवस्था-में गत २ फरवरी रविवारको रातके ९॥ बजे बनारसमें हृदयकी गति रुक जानेसे हो गया। शुक्लजी मुद्दतसे बनारस-में ही रहा करते थे। उनके निधनसे कवि, विचारक, साहित्यकार और श्रेष्ठ समालोचकके रूपमें हिन्दी-साहित्य-का एक अनूठा रत्न खो गया। उनकी सफल साहित्योपा-सना हमारे साहित्यके लिए गौरवकी बात है। शुक्लजीकी कीर्ति, शुक्लपक्षकी धवल चांदनीकी भांति साहित्यिकोंको सदा निर्मल आलोक देती रहेगी।

———



जुगुप्सा

श्री "रमण"

जिन्दगीकी तहकी आकांक्षा जैसे जहर बन गयी सन्ध्याके लिए। वह चाहती—अपने दामनको किसीकी मुट्ठीमें न रहने दे, कोई उसमें अपना अपनापन न खोजे। सन्ध्या, तिरस्कृता सन्ध्या रात-दिन चलकर—रोते-हंसते चलकर जिस दिन अपनी मञ्जिलपर या उसके समीप भी पहुंच जायेगी, वह उसे अपनी सफलता ही समझ अपने एकाकीपनको प्रणाम करेगी। और तभी सन्ध्याकी बायीं आंख फड़क जाती। और वह देखती अपने सामने—एक धुंधला पथ, पथपर मीलोंके पत्थर—पत्थरोंपर धूल, और तब वह एक अज्ञात आशङ्कासे सिहर जाती, प्रातःका प्रकाश पानेपर कुमुदकी तरह !!

सन्ध्याका जीवन आज कागजकी जिन्दगी है। उससे न खवास आ सकता और न उसका अस्तित्व ही कुछ माना जा सकता। वह समझ भी न पायी थी कि जिस जीवनमें कल तक लड़कपन ही लड़कपन भरा पड़ा था, जहां वह डरने और सिहरनेके सिवाय कुछ जानती ही न थी—वहीं वह अपने मरणके लिए एक संसार कैसे चुपचाप तैयार कर सकी है। उसे स्वयं वह संसार पसन्द नहीं है; किन्तु स्वप्नमें भी जब उसे मिटते देखती—चौंककर जग जाती। संसारकी निःसारता उसे पसन्द भले ही न हो, उस दुनियाका सञ्चालन उसे अच्छा न लगे—किन्तु उसकी आड़में जो एक टीस थी, एक किसीके लिए चाह थी, वह उसकी मांग थी। वे उसे पसन्द थे। और सन्ध्या अपने जीवनमें एकसे एक बहुमूल्य चीजें देकर भी उसे खोनेके लिए तैयार न थी। वह जानती थी, जीतेन उसके लिए असम्भव है। ठीक तभी वह उस दिनकी याद करती—आजसे साल-डेढ़ साल पहलेकी, जब एकाएक एक दिन जीतेन उससे नुमाइशमें आ मिला था। नुमाइश आलोकित करनेवाले अनेक लाल-पीले बिजलीके बल्बोंमें उसे उस दिन वह रङ्ग भी दिखाई पड़ा, जिसे उसने आजसे बहुत वर्ष पहले एक जलती चितामें देखा था।

तब वह केवल ग्यारह वर्षकी थी। घरमें कुबेर, जैसे उस समय मेहमान बनकर रहते थे। सन्ध्या उस अवसरको अच्छी तरह समझ भी न पायी थी कि परिस्थितिके एक चक्करमें बातें एकदम बदल गयीं। उसके पिताजीके हाथोंमें रुकावट न थी। और यही कारण था कि मरते-मरते वे सन्ध्यापर एक बीता छाया भी न छोड़ गये। मांको सन्ध्याने कब खो दिया था—उसे याद नहीं। पुरानी दीवालपर दीमकोंसे चाटी हुई एक पुरानी तस्वीरको ही वह मां समझती आयी है—अपने बेखबरीके दिनोंसे !

घरके सन्नाटेसे छीनकर उसके मामाने उसे क्या नहीं दिया ? अपना क्या कहना ! नगरमें जो इज्जत और आदर पैदा किया था, वह अन्दाजमें नहीं आनेको। और धीरे-धीरे सन्ध्या भूलने लगी थी उन स्मृतियोंको। हंसने लगी थी आसपासके फूलोंको देखकर। क्या जीवन है ?—कभी-कभी यह भी सोचती—कल जिन आंखोंसे धारा बह रही थी—विश्वास भी न था कि कभी बन्द होंगी; आज ही उनमें धूल उड़ने लगी। तोताचश्म इन्सान न जाने किसपर फख़्र करता है ? पौदोंकी भी जिन्दगीमें यह आसान नहीं। आप एक जगहसे उठा लें, तो दूसरी जगह अख्तियार करनेका नाम ही नहीं। उसे याद आता—उसी दिन चम्पाकी बगलसे जब मालतीको उठाकर वह अपने कमरेके वातायनके नीचे लगा आयी—तो दूसरे दिन सवेरे मालती सूख गयी थी। सन्ध्याने पानी पटाया—सवेरे और शाम—इस तरह तीन दिन, और मालती न हंसी, न विहंसी। और वह ? कलका घर आज याद भी नहीं। आजका घर, शायद कल फिर अपरिचित। छिः, यह क्यों ? हम जिसके लिए रोते हैं, कभी-कभी उसे जहर भी दे देते हैं और जिसे रोज जहर देते हैं, उसे क्यों प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते हैं ? सन्ध्या इन समस्याओंमें और भी उलझ जाती तब !

ठीक उन्हीं दिनोंमें, जब वह इस अकेलेपनसे ऊब रही थी, जीतेनने आकर उसका मन बहलाया। एकाकी तूफानोंसे घिरे मांझीने जैसे दूर एक नाव देखी हो। जीतेन उस कोठीके समीप ही रहता। शामको कभी-कभी वह सन्ध्याके मामाजीके पास आकर, कुछ देर बैठ, चला जाता।

सन्ध्या उसे देखती, उसे पूछती और आप ही आप समझा भी करती। जीतेन क्यों इस तरह पागलकी सूरत बनाकर रहता है। लाखैरोंकी तरह बड़े-बड़े बाल, जिनमें न तेल, न कङ्घी महीनोंसे! अस्त-व्यस्त कपड़े और खाली आंखें! सन्ध्या इसे नहीं चाहती कभी भी, न इसे पसन्द करती। कई बार तो उसने निश्चय किया कि जीतेनको पकड़कर वह, उसके बालोंको कङ्घी कर देगी—लेकिन जीतेन सामने आया नहीं कि सन्ध्या बेकल भाग निकलती। वह स्वयं बहुत बार इसे जानना चाहती कि इसका कारण क्या है? वह क्यों नहीं जीतेनके सामने ही रह, कह-सुन लेती है। किन्तु प्रश्नके नाग-पाशमें सन्ध्या और भी बंध जाती। जीतेनको वह देख लिया करे, बस इससे अधिक उसकी मुराद कुछ न थी—और वह इससे ज्यादा कुछ समझ भी न पाती।

और जीतेन?

उसकी हरी फुलवारीपर जैसे एक बार पाला पड़ चुका था। अपनी एक दुनिया वह किसी कोमल ठोकरमें मिटा चुका था। यही कारण था कि उसकी आंखें आग उगलतीं—दृष्टिमें भाप रहती! वह अपनी स्थिति भी अच्छी तरह समझता। गरीब आदमी! भले ही बोरे न सीता हो—फिर भी सन्ध्याकी स्पर्धा उसके लिए अनुचित थी। और इसे वह खूब जानता कि एक-न-एक दिन उसे आंखें मूंद-कर, जहरकी एक घूंट हलकके नीचे उतारनी होगी। बहुत मुमकिन है—यह जहर इस बार वह पचा न पाये और सारे शरीरमें फैल जानेपर—उसका अन्त भी हो; किन्तु डरना काम कायरका है। जहरसे उसने दुनिया भर दी है। दुनियाने स्वयं जहर तैयार किया है। अब उसे पीता कौन है? उससे भागता कौन है? चाहो या न चाहो, तुम्हारी इच्छा हो या न हो, गलेपर एक हाथ रखकर कोई पिला देगा। हम उफ् भी न कर सकेंगे। हम पीकर कह भी न सकेंगे। शायद हम रोज पीते हैं—उस जहरके ही कारण प्रतिक्षण क्षय भी होते जा रहे हैं। एक-एक सांस इस जहरीले वातावरणमें जहर बनकर निकल रही है—और जीतेन सिहरता नहीं—कांपता नहीं!!

तो उस दिन जब जीतेन सन्ध्याके घर गया—तो सोच-कर गया कि वह सन्ध्यासे उसकी एक तस्वीर मांगेगा। वह नहीं तय कर पाया था कि वह उसे लेकर क्या करेगा। फिर भी उसे उसकी आवश्यकता है, वह यही जानता है। जीतेनके मांगते ही, सन्ध्या कुछ घबड़ा-सी गयी। उसने पूछा—

"लेकर क्या करोगे?" और जीतेनने कभी इसका समाधान न किया था। वह तो यही जानता था कि वह मांगेगा और सन्ध्या एक दे देगी। यदि वह जानता कि उसे इतनी हुज्जतोंका भी जवाब देना होगा—तो शायद वह मांगता ही नहीं। उसने रुकते-रुकते कहा—

"करूंगा क्या, देखा करूंगा!" और सन्ध्या भी इसे समझ चुकी थी कि तस्वीर तो देखने-भरकी चीज है। वह कुछ और पूछती—लेकिन नहीं; उसने लाकर एक अपनी छोटी तस्वीर दे दी। उस देनेमें चुपचापकी बू भी थी। और वह नहीं जानती थी कि वह तस्वीर देते डर क्यों रही है। क्यों नहीं चाहती कि कोई वह तस्वीर जीतेनको देते देखे। उसने जीतेनसे कहा—"जाओ, इसे रखकर आओ—नहीं कोई देख लेगा।"

और जीतेन रख आया, अपनी मेजपर!

और अभी जीतेन सन्ध्याकी आंखोंमें अच्छी तरह निखर भी न पाया था कि उसे दूर जाना पड़ा। उसे छोड़ना पड़ा वह चमन, जिसे उसने बसाया था। सन्ध्या इसे सह न सकी। रोते-रोते हिचकियां बंध गयीं, लेकिन जीतेन न रुका। काश, यह जीतेनके वशकी बात होती। परिस्थिति भी कितनी ही मजबूरियोंको लेकर आती है। अधिकतर देखा गया है—जो आप चाहते हैं, परिस्थितियां उनकी प्रतिकूलतामें ही जा निकलती हैं। एक साथ ही लाख-लाख मनुष्योंके मारनेके यन्त्रका आविष्कार हुआ। चन्द्रमाकी सतहपर ज्वालामुखी हैं और पर्वत भी; इसे देखनेके यन्त्र बनाये गये—किन्तु अभीसे एक क्षण बाद जो क्षण आ रहा है, उसमें क्या होने जा रहा है, इसे प्रकाश-में कोई न ला सका। और मानव समझता है, उसने क्या नहीं विजय कर लिया। वह सागरकी पगली लहरोंपर जलयान चला सका—हवाको आधार बना, वहां महल भी बना सका—किन्तु उस जलयानकी स्थिरता, उस महलके टिकाऊपनके विषयमें कुछ भी न कर सका। यह जय है या पराजय?

और एक पीड़ाकी दुनियाको अन्तस्तलमें बसा जीतेन सन्ध्यासे दूर, रवि-किरणों-सा जा खड़ा हुआ ।

तो इसके बीत गये लम्बे तीन वर्ष ! क्षीणसे क्षीण होकर जीतेन सन्ध्याकी यादसे गुजर चुका था । यही कारण था कि उस दिन जब नुमाइशमें सन्ध्याने जीतेनको देखा, तो भूलती हुई पहचानने लगी । वह कुछ देर तक न पहचान सकी कि वह वही जीतेन था, जिसने जाते समय उसकी पुतलियोंको सावन-भादों बना दिया था । और—तभी उसे स्मरण हो आया । लज्जासे सन्ध्या झुक गयी । जीतेन क्या कहेगा ? अभी तीन वर्ष भी न पूरे हुए होंगे कि सन्ध्याने मुझे भुला दिया । औरतोंकी जात ! विश्वास करनेके योग्य नहीं हैं वे । और सन्ध्याने आंखें चुराकर देखा । जीतेन भींगी आंखोंसे सन्ध्याकी पुतलियोंमें अपनी उस दुनियाको खोज रहा था; जिसे उसने आजसे तीन साल पहले अमानतके रूपमें उसे सौंपा था । बातें बदल चुकी थीं । सन्ध्या उस आसानी और सफाईके साथ अब जीतेनसे बातें न कर सकती थी । और जीतेन इसका कारण न समझ रहा था । कितना समय निकल गया; पर सन्ध्या उसके पास न आयी, न बोली । और इतना ही नहीं, उसने जीतेनसे बिना कुछ कहे चल भी दिया । आखिर यह दीवार बीचमें कैसे खड़ी हो गयी ।

वह उसके बादसे दो-तीन बार सन्ध्याके घर भी गया; किन्तु सन्ध्यासे मुलाकात न हो सकी । मामाजीसे बातें होतीं और वह लौट आता । वह सोचता—सच तो है कि सन्ध्यासे मेरी नहीं निभ सकती । वह है अमीर—जिनके प्यार और प्रेममें धन—पैसेका बड़ा मोल । मैं गरीब—जिसे प्यार करनेका अधिकार भी नहीं ! किन्तु कभी-कभी वह प्रेमके साम्यवादको भी सोचता । इस दुनियामें तो नीच और ऊंच, गरीब और धनीका विचार नहीं । किन्तु वह यह भूल जाता कि उसका युग और था । यह पैसोंका युग है—पैसोंके सहारे प्रेम और प्यारकी भी दुनिया अब बसायी जा रही है ।

और उस दिन बातें स्पष्ट हो गयीं जीतेनके लिए, जिस दिन उसने सुना कि सन्ध्याकी शादी एक आई० सी० एस० से होने जा रही है । वह क्षुब्ध न हो, यह बात न थी । उसे चोट पहुंची थी जरूर; किन्तु कहां और कितनी, यह कोई न जान सका । जीतेन—निर्जीव जीतेन—अपनी उसी पुरानी राहपर एक बार और लाकर पटक दिया गया, जिसे एकाकी समझकर वह उस उपवनकी ओर दौड़ा था ।

—और विवाहके सप्ताह-भरके बाद सन्ध्या जब उपहारमें आयी चीजोंको देख रही थी, तो एक पार्सलसे निकली एक शीशी और जीतेनका एक पत्र । वह सिहर गयी । पत्रमें लिखा था—

सन्ध्या,

कुछ उपहारमें दूं, यह आवश्यक है । चन्द कतरे जो तुम्हारी यादमें आंखोंने बहाये हैं, उन्हींको मैं इस शीशीमें भेज रहा हूं । मेरा क्या, मैं तो फिर अपनी पुरानी राहपर हूं—

तुम्हारा ही
जीतेन

और इसे पढ़ते ही पढ़ते सन्ध्याके हाथसे वह शीशी चुनूसे जमीनपर गिरकर टूट गयी । आंसू जमीनपर फैल गये । धूल उन्हें पीने लगी । ठीक उसी समय सन्ध्या सोच रही थी—दुनियाके किस सिक्केसे वह इनका मोल लगा सकती है ? वह क्या देकर इन्हें खरीद सकती है ??

जिन्दगीकी तहकी आकांक्षा जैसे जहर बन रही थी सन्ध्याके लिए । वह चाहती—अपने दामनको किसीकी मुट्ठीमें न रहने दे, कोई उसमें अपना अपनापन न खोजे । सन्ध्या, तिरस्कृता सन्ध्या रात-दिन चलकर, रोते-हंसते चलकर जिस दिन अपनी मञ्जिलपर या उसके समीप भी पहुंच जायेगी, वह उसे अपनी सफलता ही समझ अपने एकाकीपनको प्रणाम करेगी ।

और तभी सन्ध्याकी बायीं आंख फड़क जाती । वह देखती अपने सामने एक धुंधला पथ, पथपर मीलोंके पत्थर, पत्थरोंपर धूल—और तब वह एक अज्ञात आशङ्कासे सिहर जाती, हलका अन्धकार होनेपर कमलिनीकी तरह !!

———



भाग्यनिर्माणमें अवसरका हाथ

श्री ब्रजकिशोर वर्मा 'श्याम'

—"सतर्कतासे अवसरकी ताकमें रहना, कौशल और साहससे अवसरको प्राप्त करना, शक्ति और दृढ़ताके द्वारा अवसरोंको सर्वोत्तम सफलतापर पहुंचाना—निश्चय ही सफलताको देनेवाले प्रधान सद्गुण हैं।"

—आस्टिन फेल्पस

चित्रशालामें एक व्यक्तिने प्रवेश किया। बहुत-से चित्र उसे दिखलाये गये। एक चित्रमें एक चेहरा बालोंसे ढका हुआ था। पैरोंमें पङ्ख लगे हुए थे।

दर्शकने पूछा—यह किसकी तस्वीर है?

मूर्तिवालेने कहा—अवसरकी।

"इसका मुंह क्यों छिपा हुआ है?"

"क्योंकि जब यह मनुष्योंके सामने आता है, तो वे इसे पहचान नहीं सकते।"

"इसके पैरोंमें पङ्ख क्यों लगे हैं?"

"क्योंकि यह जल्दी चला जाता है और एक बार चला जाता है, तब फिर इसको कोई नहीं पा सकता।"

एक लेटिन लेखकने लिखा है—"अवसरके चेहरेके सामने बाल होते हैं और पीछे वह गञ्जा रहता है। यदि तुम सामनेके बालोंको पकड़ लो, तो उसे पकड़ सकते हो, किन्तु यदि तुम चला जाने दोगे, तो स्वयं देवता भी उसे फिर न पकड़ सकेगा।"

कई लोग असाधारण अवसरकी प्रतीक्षा किया करते हैं। साधारण अवसर उनकी दृष्टिमें उपयोगी नहीं रहते। परन्तु वास्तवमें कोई अवसर छोटा-बड़ा नहीं है। छोटे-से-छोटे अवसरका उपयोग करनेसे, अपनी बुद्धिको उसीमें भिड़ा देनेसे वही बड़ा हो जाता है। ई० एच० चेपिनने ठीक ही लिखा है कि सर्वोत्तम मनुष्य वे नहीं हैं जो अवसरोंकी बाट जोहते रहते हैं, परन्तु वे हैं जो अवसरोंको अपना दास बना लेते हैं। लाखों अवसरोंको खोजनेसे शायद ही ऐसा अवसर मिले, जो खास तौरसे तुम्हारी सहायता कर सके। परन्तु तुम्हारे सामने सर्वदा ही अवसर उपस्थित रहते हैं, यदि तुममें इच्छा-शक्ति है, काम करनेकी ताकत है, तब तो तुम स्वयं ही उनसे फायदा उठा सकते हो। स्कूल तथा कालेजका प्रत्येक पाठ एक अवसर है। प्रत्येक परीक्षा जीवनका एक अवसर है। कठिनाईका प्रत्येक पल एक अवसर है। प्रत्येक सदुपदेश एक अवसर है। प्रत्येक व्यापार-सम्बन्धी बात एक अवसर है। उस अवसरसे तुम नम्र हो सकते हो, मनुष्यत्व प्राप्त कर सकते हो, ईमानदार हो सकते हो और मित्र बना सकते हो। विश्वासपात्रका हरएक सबूत एक अवसर है। जीवन अवसरोंकी एक धारा है।

आलसी आदमी ही शिकायत किया करते हैं कि उन्हें समय नहीं है, उन्हें अवसर प्राप्त नहीं है, पर काम करनेवाले ऐसी बातें कभी नहीं कहते। कुछ नवयुवक छोटे-मोटे अवसरोंको उपयोगमें लाकर इतना काम कर डालते हैं कि जितना दूसरे सारे जीवनमें भी नहीं कर सकते। प्रत्येक मिलनेवाला व्यक्ति, दिनकी प्रत्येक घटना, उनके ज्ञान भण्डारको—उनके व्यक्तित्वको आगे बढ़ाती है।

एल० हूवरिट कहता है—'मेरे जीवनकी सर्वश्रेष्ठ घड़ी वह थी, जब मैंने होमरकी लिखी हुई इलियडकी पन्द्रह पंक्तियां पढ़ी थीं।'

अखबार बेचनेका धन्धा जीवनकी सफलता और सम्मान पानेके लिए क्या कोई अच्छा अवसर है? अखबार बेचकर रोजके भोजनका प्रबन्ध करना कोई बड़ी किस्मतकी बात नहीं है। इसपर भी अमेरिकाके व्यापारका पुनर्जन्म करनेवाले एडीसनने ग्राण्ट ट्रङ्क रेलवेपर अखबार बेचनेका काम शुरू किया था।

कारडिनलने कहा है कि ऐसा कोई भी व्यक्ति संसारमें नहीं है, जिसके पास एक बार भाग्योदयका अवसर न आता हो। परन्तु जब वह देखता है कि यह व्यक्ति उसका स्वागत करनेके लिए तैयार नहीं है, तब वह उलटे पैर लौट जाता है।

राकफेलरने अपना अवसर पेट्रोलियममें देखा। उसकी आंखोंके सामने मन्द-मन्द दीपकके प्रकाशसे जागृत होनेवाले सैकड़ों घर थे। पेट्रोलियम बहुत था, पर उसके साफ करनेकी क्रिया इतनी रद्दी थी कि उससे साफ तेल नहीं

निकलता था। यहीं राकफेलरका अवसर था। उसने सैम्युअल एण्डरूज नामक पार्टरको अपना हिस्सेदार बनाया। उसने एक अच्छी विधिसे तेलको साफ करना शुरू किया। उसका तेल बहुत साफ होता था। शीघ्र ही उनकी वृद्धि होने लगी। उन्होंने फ्लागी नामक एक तीसरे हिस्सेदारको शामिल किया। परन्तु एण्डरूज शीघ्र ही असन्तुष्ट हो गया।

एक दिन राकफेलरने पूछा—तुम क्या लोगे?

एण्डरूजने वेपरवाहीसे एक पुरजेपर लिख दिया—"१० लाख डालर।" २४ घण्टेके अन्दर राकफेलरने १० लाख डालर देते हुए कहा—"एक करोड़की अपेक्षा दस लाख देकर सस्तेमें ही निपट गये।" बीस वर्षोंमें वह छोटा-सा तेल साफ करनेवाला कारखाना—जिसके यन्त्रकी कीमत मुश्किलसे एक हजार डालर होगी—स्टैण्डर्ड आयल ट्रस्टमें परिवर्तित हो गया, जिसका मूलधन ९ करोड़ डालर है, जिसके स्टाकका मूल्य १७ करोड़ डालर था और बाजार-भावसे जिसकी कीमत १ अरब ९ करोड़ डालर है।

ऐसे अनेक लोग हैं जो अक्सर अवसरको पकड़कर धनवान हो गये और करोड़पति कहलाने लगे। परन्तु अवसरोंका क्षेत्र यहीं समाप्त नहीं हो जाता। नयी पीढ़ीके सामने ऐसे-ऐसे अवसर आते हैं, जिनका उपयोग करके वे इञ्जीनियर, विद्वान्, कला-विशारद, कवि आदि बन सकते हैं।

एलिजाबेथ फ्राय नामक देवीने इंगलैण्डके जेलखानोंमें अवसर देखा। सन् १८१३ तक लन्दनके जेलखानोंकी बड़ी बुरी अवस्था थी। एक ही कमरेमें लगभग ३०० औरतें अर्ध-नग्न अवस्थामें बन्द कर दी जाती थीं। उनको न बिस्तर मिलते थे और न कपड़े। बूढ़ी, युवती और बालिकायें सभी घास और चिथड़ोंपर सोया करती थीं। कोई उनकी परवाह नहीं करता था। प्राण-रक्षा मात्रके लिए सरकार उन्हें भोजन देती थी। श्रीमती फ्रायने जेलखानेमें शिक्षाका प्रचार करना अपने जीवनका मुख्य कार्य बना लिया। कौन सोचता था कि इस भयङ्कर, विकारपूर्ण दलके उद्धारके लिए कोई आगे आयेगा? किसे मालूम था कि माताके महान् प्रेमके द्वारा कोई रमणी इन पाप और अज्ञानमें डूबी हुई स्त्रियोंको हृदयसे लगायेगी? किन्तु अन्तमें शिक्षाका काम शुरू हो गया। तीन—केवल तीन महीनेकी शिक्षामें वे भयङ्कर पशु शान्त और निर्दोष हो गये। अन्तमें सरकारने इस बातको कानून् जारी कर दिया। एक सदी बीत गयी और आज श्रीमती फ्रायकी स्कीम सभ्य संसार-भरमें काममें लायी जाती है।

एक लड़का मार्गसे जा रहा था। मोटरके धक्केसे वह गिर पड़ा। उसकी एक नस टूट गयी और खून बड़े जोरसे बहने लगा। किसीको कुछ नहीं सूझा था कि क्या करें। यदि थोड़ी देर और खून बहता, तो सम्भव था कि लड़का बड़ी बुरी अवस्थामें पड़ जाता। परन्तु उसी समय एक आस्ट्रे नामक युवककी नजर उसपर पड़ी। उसने नसके ऊपरी हिस्सेको बांध दिया। इससे खूनका जाना बन्द हो गया। लड़केकी जान बच गयी। लोग युवककी खूब प्रशंसा करने लगे। आस्ट्रेकी छाती फूलकर दूनी हो गयी। इसी उत्साहने उसे संसारका एक प्रसिद्ध सर्जन बना दिया।

एक दिन हाथार्न और लांगफेलो भोजन कर रहे थे। उनके एक मित्र जेम्स फील्ड भी वहां मौजूद थे। उन्होंने कहा—"देखो, मैं कितने दिनसे हाथार्नसे एक आर्केडियन दन्त-कथाके आधारपर कहानी लिखनेके लिए कह रहा हूं। कथानक यों है कि आर्केडियन लोगोंकी भाग-दौड़में एक लड़की अपने प्रेमीसे जुदा हो गयी। उसने अपना सारा जीवन उसे ढूंढ़नेमें बिता दिया और अन्तमें एक अस्पतालमें मृत्यु—शय्यापर उसे पाया।" यह सुनकर लांगफेलो आश्चर्यमें पड़ गया। उसने हाथार्नसे कहा—"अगर तुम्हारा विचार इस कहानीके लिखनेका नहीं है, तो क्या तुम मुझे इसपर कविता बनानेकी आज्ञा देते हो।" हाथार्नने स्वीकार कर लिया। लांगफेलोने अवसरसे लाभ उठाया और संसारके सामने "इवेञ्जेलिन" नामक काव्य उपस्थित कर दिया।

भला कौन नहीं जानता कि पानीसे भरे किसी बर्तनमें कोई एक ठोस चीज डुबायी जाती है, तो थोड़ा पानी बह जाता है; परन्तु कोई अपने इस ज्ञानका उपयोग न कर सका। अर्कनीदिसकी नजर इस चीजपर पड़ी। उसने देखा कि प्रत्येक पदार्थ अपने आयतनके बराबर पानी बाहर फेंक देता है। इसी दिनसे संसारको सब प्रकारके पदार्थोंका आयतन निकालनेका सिद्धान्त प्राप्त हो गया।

कौन नहीं जानता था कि कोई भी लटकता हुआ पदार्थ जब हिला दिया जाता है, तो वह इधर-उधर हिलता

है। उसकी यह गति धीरे-धीरे हवाके विरोध और घर्षणसे बन्द हो जाती है। किसीने भी इस घटनाका मूल्य नहीं समझा। परन्तु बालक गेलीलियोने एक दिन पाइजा नगरके गिरजाघरमें ऊंचाईपर लटकते हुए चिरागको देखा। हवाके झोंकोंके कारण चिराग झूलने लगा था। इसी झूलनेकी गतिने पेण्डुलमके सिद्धान्तको जन्म दिया।

यह सब जानते हैं कि कोई भी चीज ऊपरसे नीचेकी ओर गिरती है। लेकिन पेड़परसे सेवको नीचे गिरते देखकर पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणका सिद्धान्त न्यूटनने ही खोजा था।

रस्किनका कहना है कि एक भी घण्टा ऐसा नहीं है। जो भाग्य-निर्माणके लिए उपयोगी न हो। ऐसी एक भी घड़ी नहीं जाती, जिसका निश्चित किया हुआ काम फिरसे किया जा सकता हो। नेपोलियन सर्वोत्कृष्ट अनुकूल समयपर बड़ा ही ध्यान देता था। उसे अपने हाथसे न जाने देकर वह बड़ी-बड़ी शत्रु-सेनाओंपर विजय प्राप्त कर लेता था।

सेण्ट बरनार्डकी घाटीका निरीक्षण करके लौटे हुए इञ्जीनियरसे नेपोलियनने पूछा—"क्या रास्ता पार करना सम्भव है?" इञ्जीनियरने झिझकते हुए कहा—"हां, शायद हम पार कर लेंगे।"

"सिपाहियो, आगे बढ़ो।" सामने दिखाई देनेवाली बहुत-सी कठिनाइयोंकी ओर थोड़ा भी ध्यान दिये बिना नेपोलियनके मुंहसे निकल पड़ा। इंगलैण्ड और आस्ट्रियाके लोग इस नाटे कदके नवयुवककी बातें सुनकर हंसते थे और कहते थे कि ६०हजार मनुष्योंकी सेना, सैकड़ों मन युद्धास्त्रोंके साथ, आल्पस पहाड़को भला कैसे पार कर सकती है? परन्तु उसी समय जिनेवामें उसके सैनिक साथी शत्रुओंसे घिरे भूखों मर रहे थे। विजयी आस्ट्रियन नीसके फाटकोंपर धावा कर रहे थे। क्या ऐसे सङ्कटके समय नेपोलियन अपने साथियोंसे मुंह मोड़ सकता था?

जब यह असम्भव बात सम्भव हो गयी, तो लोग कहने लगे—"वाह, यह कौन-सी बड़ी बात है, ऐसा तो पहले भी हो सकता था।" दूसरे लोग राहकी भीषण कठिनाइयोंके कारण उसे दुस्तर कार्य कहते थे। बहुत-से कमाण्डरोंके पास भी सेना हथियार और अन्य उपयोगी सामग्रियां थीं, परन्तु उनके पास वह दृढ़ इच्छा-शक्ति नहीं थी, जिसके कारण बोनापार्टका कलेजा कठिनाइयोंको देखकर वज्र हो जाता था। वह कड़ीसे कड़ी आपत्तिके आ जानेपर अपनी आवश्यकताओंके द्वारा ही अपने अवसरोंका मालिक बन बैठता था।

क्या ये सब बातें अपने आप हो गयीं, जब होरेशसने केवल दो साथियोंके बलपर ९० हजार रसकनोंकी सेनाको टाइवरके पुलके टूटने तक रोक लिया था, जब लियोनिड्सने थर्मापोलीपर जरजेकको रोका था, जब सीजरने हार होते देख भाला लिये हुए आगे बढ़कर युद्धका कायापलट कर दिया था, जब विङ्कल रीडने अपनी छातीको आस्ट्रेलियन भालोंके सामने करके आजादीका अवरुद्ध मार्ग खोल दिया था, जब वर्षों तक नेपोलियन किसी युद्धमें पराजित नहीं हुआ था?

इतिहासके पन्ने ऐसे हजारों उदाहरणोंसे भरे पड़े हैं जिनसे पता चलता है कि शीघ्र निर्णय और आत्माकी पुकार ही एक ऐसा अवसर है, जिसकी पुकारपर किये हुए कार्यके सामने संसारकी कोई बाधा ठहर नहीं सकती।

वर्तमान युगमें एक पढ़े-लिखे संयमी युवकके सामने, एक चपरासीके लड़केके सामने, एक क्लार्कके सामने, एक गली-गली भटकनेवाले अनाथके सामने पचासों बड़े-बड़े सुगम मार्ग खुले पड़े हैं। पहले इने-गिने थे, आज अनेक हैं। जो बातें भूतकालमें इस श्रेणीके मनुष्योंकी सीमाके बाहर थीं, वे ही आज उनका स्वागत करनेके लिए खड़ी हैं। अवसरोंकी कमी नहीं, भाग्य पलट देने वाली घटनाओंकी कमी नहीं, कमी है तो केवल कार्यशील दृढ़ युवकोंकी।

जिसे हम जीवनकी एक महत्त्वपूर्ण घड़ी कहते हैं, वह अरनाल्ड महोदयके कहनेके अनुसार एक ऐसा अवसर है, जो हमारी पहले की सुरक्षित सारी ताकतोंको इकट्ठा कर उनके द्वारा काम निकालता है। आकस्मिक घटनायें केवल उन्हींके काम की हैं, जिन्हें उनसे काम लेनेका ज्ञान पहले ही से हो। अन्य लोगोंके सामनेसे ऐसी घटनायें निकल जाती हैं।

हमारी सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि हम हमेशा एक ऐसे बहुत अच्छे अवसरकी तलाशमें रहते हैं, जिसके द्वारा हम क्षण-भरमें महान् हो जायें। जूएके दांवके समान हम बिना प्रयत्नके ही विजय और धन-दौलत प्राप्त कर लेना चाहते हैं। हम बिना काम किये उस काममें पारङ्गत

कहलाना चाहते हैं, अध्ययनसे दूर रहकर भी ज्ञानवान कहलाना चाहते हैं, उधारके धनपर श्रीमन्त बनना चाहते हैं। लेकिन इस तरहकी धोखेकी टट्टी कब तक अपना अस्तित्व रख सकती है ?

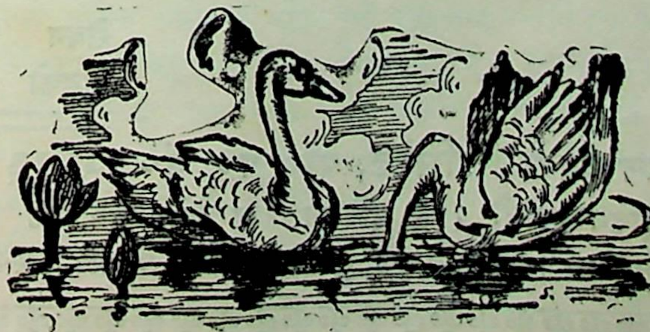
मानव-प्रकृति ऐसी बनी है कि बहुधा एक सुन्दर शब्द या एक तुच्छ सहायता किसी असहाय जीवन-नौकाको आपत्तिसे बचा सकती है, अथवा उसके जीवनको सफलताके पथपर ले जा सकती है। हमारे सामने अगणित वीरोंके उदाहरण हमें साहस देने और उत्साहित करनेके लिए मौजूद हैं। भाग्यहीन बालक डिसरेलीने कहा था—"जो बातें एक बार हो चुकी हैं, वे ही फिरसे हो सकती हैं। मैं गुलाम नहीं हूं, कैदी नहीं हूं, मैं अपनी ताकतसे बाधाओंको दूर कर सकता हूं।" उसके खिलाफ सब कुछ था, उत्साह देनेके लिए केवल हजारों वर्षोंके उदाहरण-मात्र थे। वह सोचता था कि जब जोसफ नामका गरीब यहूदी ४ हजार वर्ष पहले परिश्रमसे मिश्रका प्रधान मन्त्री हो गया, तब क्या वह भी प्रधान मन्त्री नहीं हो सकता ? वह छोटी स्थितिके बीचसे आगे बढ़ा, मध्य स्थितिसे भी ऊंचा उठा और सर्वोच्च स्थितिसे भी ऊपर उठकर वह राजनीतिक तथा सामाजिक शक्तिका मालिक बन बैठा। पार्लमेण्टमें लोगोंने उसकी हंसी उड़ायी, उसे घृणाकी दृष्टिसे देखा, अपनी अनिच्छाओंको प्रकट किया; परन्तु उसने केवल यही कहा—'समय आयेगा जब तुम मेरी बात सुनोगे।' और समय आया, जब वह भाग्यहीन बालक इंगलैण्डका प्रधान मन्त्री हो गया। लगभग २९ वर्ष तक वह राज्यका भाग्यविधाता बना रहा।

एक गरीब लड़का था। उसे स्कूलकी शिक्षा नहीं मिली थी। परन्तु अपने कार्योंसे वह मानव-जातिकी प्रशंसाका पात्र हो सका। अमेरिकाके युद्धके समय वह वहांका प्रेसीडेण्ट था और उसने ४ लाख गुलामोंको मुक्त कर दिया।

इस लम्बे कदके दुबले-पतले, भद्दी सूरतवाले नवयुवककी झाड़ काटते समयकी कल्पना कीजिये। सोचिये, उसके मकानका फर्श अच्छा नहीं है, खिड़कियां नहीं है। वह सन्ध्याके समय आगके उजालेमें गणित और व्याकरणका अध्ययन कर रहा है। ब्लैक स्टोनके ग्रन्थको पढ़नेकी इच्छासे वह ४ मीलकी यात्रा करता है और इस अमूल्य पुस्तकको लाता है। रास्तेमें वह सौ पृष्ठ पढ़ लेता है, यही अब्राहम लिङ्कन अमेरिकाका भाग्यविधाता हो गया। 'अवसर नहीं है,' 'भाग्य नहीं है।' इस तरहकी पुकार मचाकर जीवन नष्ट करनेवालोंके लिए यह कैसा जीवित उदाहरण है !

तो कहना मैं यह चाहता हूं कि अपने अवसरकी बाट मत देखो, उसे स्वयं ही खोजो और पहचानो। फर्ग्युसन नामक गड़रियेके लड़केकी भांति अवसर बनाओ। देखो उसने थोड़े-से कांचके टुकड़ोंके द्वारा दूर आकाशके तारोंकी दूरीका पता लगाया। जार्ज स्टीफन्सके समान अवसर बनाओ। देखो उसने खरिया मिट्टीके एक टुकड़ेकी सहायतासे कोयलेकी गाड़ियोंके तख्तोंपर गणितके नियमोंको सीखा था। जब भाग्य चमक रहा हो और कर्तव्य राह बतला रहा हो, तो उस मौकेको मत जाने दो, भयसे कांप कर दूर न हटो। वीरतासे अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ते जाओ। अवसर तुम्हारी राह देख रहा है। उद्योगी पुरुष साधारण अवसरको भी स्वर्णमय बना लेता है।

———





रबड़की कहानी

रबड़का महत्त्व आज इतना अधिक है कि डच ईस्ट इण्डीजकी समस्याओंके सिलसिलेमें वह प्रशान्त महासागर-वर्ती किसी भावी महासमरके लिए भूमिका-सी बन रही है। संसारके दैनिक जीवनमें उसका व्यवहार इतने प्रकार-से हो रहा है कि यह समझना ही कठिन है कि रबड़की यह उन्नति इतने शीघ्र हुई है।

रबड़के उत्पादनकी दृष्टिसे जो देश संसार-प्रसिद्ध हैं, उनमें मलायाका स्थान पहला है। साधारण स्थितिमें मलायासे ३ लाख ६० हजार टन रबड़का निर्यात प्रतिवर्ष होता है। ३९ वर्ष पहले १९०९ ईस्वीमें कुल १०४ टन रबड़का निर्यात हुआ था। इससे ९ वर्ष पहले १९०० ईस्वीमें रबड़के रोपे हुए वृक्षोंसे केवल ४ टन रबड़ सारे संसारमें पैदा हुई थी। वह जमाना जङ्गलोंमें अपने आप उगे हुए रबड़के पेड़ोंसे रबड़ प्राप्त करनेका था।

अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें प्रगतिशील औद्योगिकों और वैज्ञानिकोंने कुछ-कुछ यह अनुभव किया कि रबड़से औद्योगिक क्षेत्रमें क्या आश्चर्य घटित होनेकी सम्भावनायें हैं। १७७० ईस्वीमें रसायन-शास्त्री जोजेफ प्रीस्टलेने यह पता लगाया कि रबड़ कागजसे पेन्सिलके चिह्न मिटानेके काममें आ सकती है। इस आविष्कारके बाद रबड़ छोटी-छोटी चकत्तियोंके रूपमें बाजारमें आयी। आरम्भमें ये चकत्तियां लगभग एक इञ्च लम्बी और इतनी ही चौड़ी एवं मोटी होती थीं और इंगलैण्डमें ७॥-७॥ शिलिङ्गमें बिकती थीं।

अंगरेजीमें 'रब' शब्दका अर्थ होता है रगड़ना। जिस पदार्थको आज हम रबड़ नामसे पहचानते हैं, उसे पेन्सिलके चिह्न मिटानेके लिए कागजपर रगड़ा करते थे, इसीलिए इसका नाम रबर या रबड़ पड़ गया। यह विचित्र पदार्थ उन दिनों दक्षिण अमेरिकाके ब्राजिल प्रदेशके जङ्गलोंसे आता था। पेन्सिलके अक्षर मिटानेके सिवाय उसका उपयोग किसी अन्य कार्यके लिए भी हो सकता है, इसका पता उस समय किसीको भी नहीं था। दक्षिण अमेरिकामें उस समय इसे 'काउ चौक' कहते थे। बहुत समय तक रबड़को इसी स्थितिमें रहना पड़ा; परन्तु औद्योगिक और वैज्ञानिक लगातार यही प्रयत्न कर रहे थे कि किस तरह इसका उपयोग अन्य कार्योंके लिए किया जा सकता है।

१८२० ईस्वीमें थाम्स हेनकाक नामक व्यक्तिने पोशाक-की चीजें तैयार करनेमें रबड़का उपयोग करनेके लिए पेटेण्ट लिया। परन्तु यह बड़ी व्ययसाध्य प्रणाली थी, क्योंकि विदेशोंसे आयी हुई रबड़की बड़ी-बड़ी ईंटोंसे रबड़के बारीक पर्त निकालने पड़ते थे और इसमें बहुत-सा माल व्यर्थ चला जाता था। थाम्स हेनकाक इससे निराश नहीं हुए और कई साल बाद उन्होंने एक मशीन निकाली, जिसे 'मास्टी-केटर' कहते हैं। इस मशीनसे वे रबड़के कचरेसे फिर उसकी ईंटें बना लेते और इस तरह उसे काममें ले आते थे। उन्होंने एक अन्य मशीन भी निकाली, जो धुलाईका काम करती थी। ये मशीनें आज भी काममें आ रही हैं, यद्यपि उनमें समयकी प्रगतिके साथ ही काफी सुधार हो गया है।

ग्लासगो-निवासी चार्ल्स मेकिन टोश भी इस सिल-

सिलेमें जो उद्योग कर रहे थे, उसका परिणाम यह हुआ कि १८२३ में उन्होंने रबड़के घोलसे दो धागोंको मिलाकर वाटर प्रूफ बनानेके लिए पेटेण्ट लिया। इससे वे कोट बनाया करते थे। परन्तु इसमें बड़ी कठिनाई यह थी कि रबड़के घोल द्वारा प्रस्तुत ये चीजें न तो ज्यादा शीतमें ठहर सकती थीं और न गर्मीमें। इस सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंका प्रयत्न जारी ही था कि १८३९ में चार्ल्स गुडईयरने यह आविष्कार किया कि यदि रबड़के साथ गन्धकको मिला दिया जाय, तो उसकी लचक दूर नहीं होती और ज्यादा गर्मी या सर्दीसे भी उसे कोई हानि नहीं पहुंचती। गुडईयर यह प्रयोग अमेरिकामें कर रहे थे, वहांसे १८४२ में थाम्स हेनकाकने इस गन्धक-मिश्रित रबड़के कुछ टुकड़े प्राप्त किये और बादमें रबड़में गन्धक मिलानेके लिए एक मशीन निकाली। इस क्रियासे रबड़का व्यापारिक महत्त्व बढ़ गया और लगातार जो उन्नति होती गयी, उसीसे संसारमें रबड़को उसका वर्तमान महत्त्व प्राप्त हुआ। इस सिलसिलेमें रबड़की खेती-सम्बन्धी प्रयत्नोंका इतिहास बहुत ही उत्साहजनक है।

१८४२ से १८७२ तक—३० साल तक कोई खास बात नहीं हुई। इस अर्सेमें निरन्तर ही जङ्गली पेड़ोंसे रबड़ प्राप्त की जाती थी। अमेरिकामें अमेजन नदीके आसपास रबड़के जङ्गल ही जङ्गल थे। ये जङ्गल मनुष्योंसे भर गये। परन्तु यह तरीका उपयुक्त नहीं था। इसमें खर्च तो भारी आता ही था, खतरा भी कम नहीं था। इसीलिए यह प्रश्न सामने आया कि क्या इन रबड़के वृक्षोंको अन्यत्र नहीं उगाया जा सकता। इस प्रश्नको हल करनेके लिए सबसे पहले सर जोजफ हुकरने कदम उठाया, जो ब्रिटेनमें क्यू स्थानवाले सरकारी बागके डाइरेक्टर थे। इनके कहनेसे सरकारने कुछ व्यक्तियोंको अमेजन नदीवाले जङ्गलोंमेंसे रबड़के बीज या पौदे लानेके लिए वहां भेजनेका निश्चय किया, जिससे सरकारी बागमें रबड़के बीजोंको बोया या पौदोंको लगाया जा सके। इस उद्देश्यसे १८७३ में मि० जेम्स कालिन्स ब्राजिल गये और वहांसे रबड़के वृक्षके कई सौ बीज अपने साथ लेकर लौटे। इन बीजोंको बोया गया। लगभग १ दर्जन पौदे उगे, जिनमेंसे छः पौदोंको हिन्दुस्तान भेजा गया; किन्तु जलवायु ठीक नहीं पड़ा और ये सब सूख गये। इसके बाद सर जोजेफ हुकरने मि०—और बादमें सर—हेनरी ए० विखमको लिखा, जो अमेजनकी घाटीमें सेण्टाराम स्थानमें रबड़के वृक्षोंको लगा रहे थे। इन्होंने इंगलैण्ड ले जानेके लिए लगभग ७० हजार बीज जमा किये और उन्हें तापुयो कुलियोंकी पीठपर लादकर सेण्टाराममें पहुंचाया। संयोग यह हुआ कि 'अमेज़ोना' जहाज जो माल लेकर लिवरपुलसे गया था, उसके उतर जानेके बाद लौटती बार उसे माल ही नहीं मिला। इसी समय भारत-सरकारके नामपर मि० विखमने इस जहाजको किराये कर लिया और उतने बड़े जहाजमें केवल इन बीजोंको इंगलैण्ड लाया गया। लिवरपुलमें १४ जून १८७६ को ये बीज जहाजसे उतरे और वहांसे एक स्पेशल ट्रेन द्वारा उन्हें क्यू स्थानमें पहुंचाया गया। यथासमय इन ७० हजार बीजोंसे लगभग ३ हजार पौदे उगे। इन्हींमेंसे कुछ पौदे सीलोन, हिन्दुस्तान और मलायामें भेजे गये और सुमात्रा, जावा और डच ईस्ट इण्डीजके अन्य टापुओंमें भी इसका विस्तार हुआ। मलायामें आज सारे संसारकी ४१ प्रतिशत रबड़ पैदा होती है। सीलोनमें रबड़का पौदा सर्वप्रथम हेनकोटा गोगाके बोटानिकल गार्डनमें लगाया गया था। इस देशमें इसकी खेती कोचीन, ट्रावनकोर और दक्षिणी-पश्चिमी मलाबार एवं उत्तरी-पूर्वी आसाममें होती है।

मलायामें रबड़की खेतीके लिए गैर-सरकारी तौरसे सबसे पहला प्रयत्न १८८३ में एक अंगरेज खेतिहरने किया। इसने सीलोनसे बीज मंगाये और लिनसममें लगभग २०० पेड़ोंको लगाया। काफीकी खेतीसे जो खेतिहर निराश हो चुके थे, उन्होंने भी इस ओर ध्यान दिया और १९०९ तक लगभग ५० हजार एकड़ जमीनमें रबड़के पेड़ लग गये। मुनाफेका काम देखकर बहुत लोगोंका ध्यान इस ओर खिंचा और मोटरोंके टायर बनानेके लिए रबड़की जो मांग हुई, उसके कारण इस व्यापारमें असाधारण उन्नति हुई। १९१३ में मलायासे केवल ८३ हजार ७२० टन रबड़का निर्यात हुआ था; परन्तु आज तो लगभग ३ लाख ६० हजार टनका निर्यात होता है और १९ लाख एकड़से भी अधिक जमीनमें उसकी खेती होती है।

साधारणतः ६ सालमें जब रबड़का पौदा ३ फीट लम्बा और २० इञ्च चौड़ा हो जाता है, तब उससे रबड़ टपकानेका

कार्य आरम्भ कर दिया जाता है। इसके लिए पेड़के एक ओर आधे भागकी छालको एक-एक दिनके अन्तरसे शनैः शनैः काटते रहते हैं। यह छाल एक बारमें इतनी कम काटी जाती है कि लगभग २ महीनेमें १ इञ्च जगह पूरी होती है और वृक्षके एक ओरवाले भागसे रबड़ टपकानेमें लगभग ५ साल लग जाते हैं। इतना ही अर्सा वृक्षके दूसरी ओरसे रबड़ टपकानेमें लग जाता है और इस बीचमें वृक्षका पहला भाग, जहांसे रबड़ टपकानेका कार्य आरम्भ किया गया था, बिलकुल ठीक हालतमें हो जाता है। वर्षा-कालको छोड़कर लगभग सालभर यह काम जारी रहता है और एक व्यक्ति २५०-३०० वृक्षों तकको टपका लेता है।

रबड़ पैदा करनेकी दृष्टिसे अभी तक स्वदेश मलायासे बहुत पीछे है। १९२८ से इधर उत्पादन लगभग दूना हो गया है। १९२८ में जहां १ करोड़ ५९ लाख ४६ हजार ९९३ पौण्ड रबड़ इस देशमें पैदा हुई थी, वहां १९३८ में ३ करोड़ १० लाख ६५ हजार ७५९ पौण्ड रबड़ पैदा हुई। क्षेत्रफल भी इसी तरह ७९२१६ एकड़से बढ़कर १ लाख २९ हजार ३११ एकड़ हो गया। इस रबड़का काफी हिस्सा इसी देशकी सीमामें खुले हुए कारखानोंमें खप जाता है, फिर भी १९३९-४० में ९३॥ लाख रुपयेकी रबड़ विदेशोंको भेजी गयी थी।

सेन्सरका इतिहास

सेन्सर आज इतना व्यापक हो गया है कि उसे प्रायः सभी लोग जान गये हैं। समाचारों, तारों, चिट्ठियों और अखबारों, सबपर सेन्सर लगा हुआ है, जिसकी मंशा यह है कि कोई ऐसी बात बाहर न जाने पाये, जिसे बाहर जाने देना अभीष्ट नहीं है और जिसकी जानकारीसे शत्रु लाभ उठा सकता है। बाहरसे आनेवाले समाचारों, तारों, चिट्ठियों और अखबारोंपर सेन्सर इसलिए बैठाया जाता है कि कोई अवाञ्छनीय बात देशमें न फैलने पाये। सेन्सरका प्रभाव केवल उसी देश तक सीमित नहीं रहता जिसमें उसकी व्यवस्था होती है, उसकी सीमासे बाहर भी प्रभाव पड़ता है।

सेन्सर पहले था या नहीं, यदि था, तो उसका क्या रूप था और धीरे-धीरे किस तरह उसने अपना वर्तमान रूप ग्रहण किया, ये प्रश्न स्वभावतः उठते हैं। जहां तक पता चलता है, सेन्सरकी कैंची-जैसी कोई चीज उस समय नहीं थी और न किसीको आजकलकी नीली पेन्सिल-जैसी किसी चीजका पता था। उस समयका जीवन आजकलसे बिलकुल भिन्न था, लोगोंका रहन-सहन, स्वभाव और आकांक्षायें और साथ ही साधन भी आजकलसे बिलकुल भिन्न थे। प्राचीन भारतमें साहित्य-निर्माणका कार्य ऐसे व्यक्तियों-के हाथमें था, जिनकी मानसिक स्थिति बहुत ऊंची थी। कम लिखा जाता था और जो कुछ लिखा जाता था, अच्छी तरह सोच-विचारकर, लोकहितसे प्रेरित होकर। उस कालमें राजाकी परिभाषा ही यह थी कि जो प्रजारञ्जन करता हो। फलतः सेन्सर-जैसे किसी प्रतिबन्धका प्रश्न ही नहीं उठता था और यदि प्रश्न उठता भी हो, तो ऐसी कोई बात नहीं मिलती, जिससे यह समझा जाय कि लोगोंकी आवाज-को दबाया जाता था या दबाया जा सकता था। रामके द्वारा अन्तमें सीताके परित्यागसे हम क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं? ऋषियों द्वारा कितने ही राजाओंको सिंहासन-च्युत करनेके जो आख्यान मिलते हैं, उनसे क्या समझा जा सकता है? पौराणिक और महाकाव्य-कालसे इधरकी रचनाओंमें जो नाटक और उपन्यास मिलते हैं, उनकी रचना प्रायः ऐसे कवियोंने की है, जिन्हें किसी न किसी रूपमें राजकीय आश्रय प्राप्त था। इन रचनाओंको राजकीय स्वीकृति प्राप्त होना तो स्वाभाविक ही है, फिर भी उनमें तत्कालीन समाज और व्यवस्थाकी यथेष्ट आलोचना है। इतिहासके मध्यकालमें हम कवियों और चारणोंको बड़ा अच्छा प्रचारक पाते हैं; किन्तु इस कालमें राजाओंके दर-बारमें प्रायः कोई न कोई इतिहासकार भी किसी न किसी रूपमें मिलता है, जो चाहे तो प्रामाणिक इतिहास लिखनेके लिए रहता हो या घटनाओंको अभीष्ट रङ्गमें रंगकर लिखने और एक दूसरे रूपमें सेन्सरकी आवश्यकताको पूरा करनेके लिए। फिर भी यदि कोई राजकीय व्यवस्थाको अपने किसी कार्यसे क्षति पहुंचानेका प्रयत्न करता, तो उसे अधिका-रियोंका कोपभाजन होना ही पड़ता। जहां तक सर्व-साधारणका प्रश्न है, यदि भूल या भ्रमसे उन दिनों कोई अयथार्थ बात लिखी जाती, तो उसपर हरताल फेर दी जाती थी अथवा यदि किसी कविकी रचनामें कोई अन-

धिकारी बादमें अपनी ओरसे कुछ मिला देता, तो इस मिलावटको 'क्षेपक या प्रक्षिप्त ठहरा दिया जाता था। क्षेपक या प्रक्षिप्त भाग ठहरानेकी इस प्रणालीने निःसन्देह साहित्य-में नैतिक सेन्सरका काम किया; क्योंकि असली रचनाके मुकाबिलेमें क्षेपक या प्रक्षिप्त भागको कोई मूल्य नहीं दिया जाता।

जहां तक जानकारी है, यूनानमें भी यद्यपि कैंची और नीली पेन्सिलका किसीको पता न था, तथापि नाटकोंका यथेष्ट चलन था, जिनमें जनताके भावोंको प्रकट किया जाता था। तत्कालीन नाटकोंकी तुलना आजकलके अख-बारोंसे की जा सकती है। इन नाटकोंमें सङ्केतसे उत्तेजक और विरोधसूचक मनोभाव प्रकट किया जाता था। इन नाटकोंकी रचना राजकीय संरक्षणमें होती थी, इसलिए यह तो कहना ही चाहिए कि एक हद तक सेन्सर हो जाता था या कमसे कम उन्हें राजकीय स्वीकृति मिल जाती थी। यह होनेपर भी अधिकारी नाटकोंको वर्जित नहीं ठहराते थे—भले ही उनमें राज्याधिकारियों, राजकीय संस्थाओं और राजनीतिज्ञोंकी आलोचना की गयी हो। किन्तु यदि यह आलोचना कुछ अधिक कड़ी होती और यह देखा जाता कि जनतापर उसका प्रभाव अवाञ्छनीय रूपमें पड़ रहा है, तो नाटककारोंको राजद्रोही ठहराया जाता और अभियोगपर विचार होनेके बाद उन्हें प्राणदण्ड भी दिया जाता; परन्तु वैसी कोई बात न हो, तो व्यक्तिके विचारोंके प्रति यथेष्ठ सहिष्णुता दिखलायी जाती थी, किन्तु बादमें जब कटु आलोचनाकी मात्रा कुछ बढ़ गयी और वह अक्सर सामने आने लगी, तब सूत्रधारके कथनोपकथनपर एक सीमा तक सेन्सर लगानेकी मांग हुई। इसके बाद जब यूनानी नाटक-काल अवनतिकी ओर जाने लगा, प्लेटोंने नाटककारोंकी रचनाओंपर प्रतिबन्ध लगानेकी मांग निश्चित रूपसे की, जिससे लोगोंमें "अनुचित बातें" न फैलने पायें।

रोमनोंमें यूनानियों-जैसी सहिष्णुता नहीं थी। टेसी-टसके कथनानुसार सम्राट् आगस्टस पहला व्यक्ति था, जिसने एक लेखकको उसके लेखके लिए सजा दी थी। यह लेख उसकी दृष्टिमें राज्यके लिए भयावह था। टेसीटसने ऐसे शासकोंसे घृणा प्रकट की है, जो अपनी क्षणभंगुर सत्ता—शक्तिका उपयोग विचारोंका, जिनसे वे पूर्ण सहमत नहीं होते, दमन करनेके लिए करते हैं। उसने इस नीतिका मखौल उड़ाया है और कहा है कि वर्जित रचनायें और भी अधिक उत्सुकताके साथ पढ़ी जाती हैं।

डिनो क्लिशियनने कई कदम आगे बढ़कर आगस्टस-को भी पीछे छोड़ दिया। उसने एक तत्कालीन लेखक हार-मोजिसको प्राणदण्ड देनेकी आज्ञा दी और यह कानून बनाया कि अगर कोई व्यक्ति ऐसी पुस्तकोंका व्यापार करेगा जिनमें सम्राट्के विरुद्ध कुछ लिखा गया हो, तो उसे प्राणदण्ड दिया जायगा।

जिन शताब्दियोंमें ईसाइयतके विचारोंके साथ पुराने विचारोंका सङ्घर्ष हो रहा था, उनमें रोमन कैथलिकोंके प्राधान्यका युग आरम्भ होने तक यह अवस्था थी कि जिसके हाथमें सत्ता होती, वह विरोधी पक्षके धर्मकी बातोंका प्रकाशन रोक देता था। यह काम उस समय कुछ भी कठिन नहीं था, क्योंकि किताबें हाथसे लिखी जाती थीं और वे थोड़े ही मनुष्योंके पास होती थी और उन्हें नष्ट कर देनेका परिणाम होता था विरोधी धर्मकी बातोंको नष्ट कर डालना।

ईसाई चर्चके सेन्सरका पहला उदाहरण है एशिया माइनर-के पादरियोंका पालकी 'बनावटी' जीवनीको वर्जित ठहराना। सन्तों सम्बन्धी अतिशयोक्तिपूर्ण कहानियोंको भी जला दिया गया और उनका प्रचार बन्द कर दिया गया। इन कहानियोंको कितने ही पादरियोंने अपने पास जमा कर लिया और इस तरह उनका प्रचार ही बन्द हो गया।

उस समय जो लोग ईसाई, मुसलमान या यहूदी नहीं थे, उनके रिवाजों और जादूके कामोंपर यूरोपमें सेन्सर लगाया गया था। जादू सम्बन्धी पुस्तकोंकी होली प्रायः देखनेमें आती थी। जिनपर जादूगर होनेका सन्देह होता, उन्हें बुरी तरह सताया जाता। अपने शत्रुको परेशान करनेका सबसे आसान बहाना यह था कि वह जादू सिख-लाता है। यह सब देखनेमें चाहे कितना ही भिन्न हो, परन्तु असलमें सेन्सर ही था।

मध्ययुगमें सेन्सरने एक विचित्र रूप धारण कर लिया। जिन संस्थाओंका पुस्तकोंके लिखने, नकल करने या वित-रण करनेसे सम्बन्ध था, उनपर फ्रान्समें विशेष नियन्त्रण रखा जाता था। नियन्त्रण केवल लेखकों और व्यवसा-

यियोंपर ही नहीं, जिल्दसाजों तक पर रहता था। पेरिस विश्वविद्यालयमें स्थायी सेन्सर विभाग था, जो साहित्य-रचना और प्रचार-कार्यमें लगी हुई सभी संस्थाओंके मेम्बरोंसे शपथ लेता था। इस विभागकी ओरसे कुछ नियम भी बनाये गये थे, जिनका उद्देश्य था आपत्तिजनक विषयोंको प्रकाशित न होने देना। प्रकाशित होने और लोगोंके हाथोंमें देनेसे पहले किसी भी किताबके लिए इस विभागकी स्वीकृति अनिवार्यरूपसे आवश्यक थी। इस सेन्सरकी स्वीकृति जिस पुस्तकको न मिली हो, उसका खरीदना, बेचना या उधार लेना दण्डनीय था। राजकीय स्वीकृतिकी मुहर जिस किताबपर न हो, उसे लोगोंको देने या लिखनेमें योगदान करनेसे किसीको भी १५६७ ईस्वी तक मृत्युदण्ड दिया जाता था। इसके बीस साल बाद पुस्तकोंको छापनेका व्यवसाय अच्छी तरह जम गया। टाइपका आविष्कार हो गया था। इन्हीं दिनों कलोनके पादरीने यह फतवा दिया कि जिस पुस्तककी हस्तलिपिको सेन्सरने पास न कर दिया हो, उसे छापना, बेचना और पढ़ना वर्जित है।

जर्मनीमें छापेखानेके आविष्कारके साथ सुधार-सम्बन्धी छोटी-छोटी पुस्तिकाओंकी बाढ़ आ गयी—यद्यपि सेन्सरसे पास कराये बिना कोई पुस्तक प्रकाशित किये जानेपर उसके लेखक, मुद्रक और प्रकाशकको कड़ी सजा दी जाती थी। इन पुस्तिकाओंके प्रकाशक मुख्यतः ऐसे व्यक्ति होते थे, जो आज यहां हैं तो कल वहां। ये अपना काम बड़ी तेजीसे करते थे और अक्सर इनका पता लगाना मुश्किल हो जाता था; परन्तु बादमें जब साम्प्रदायिक और राजकीय दोनों सत्ताओंने एक ही शक्तिका रूप ग्रहण किया, राजद्रोहके विरुद्ध सङ्घर्षने एक नया रूप पकड़ा और वह यह कि देहाती क्षेत्रमें लेखकों और मुद्रकोंपर अभियोग चलानेसे अक्सर राज्याधिकारी ही उन्हें बचा लेते थे।

छापेखानेके आविष्कारका एक निश्चित परिणाम यह हुआ कि सेन्सरका प्रतिबन्ध वैसा कड़ा और सहज नहीं रहा—यद्यपि सेन्सरके पक्षपातियोंको हमेशा ही उपहासका सामना करना पड़ा है।

जर्मनीके एक स्कूलकी घटना

पेरिससे प्रकाशित 'फ्रान्स मेगजीन' में यह घटना प्रकाशित हुई है—

जर्मनीके एक प्रान्तमें हिटलरने किसी स्कूलका निरीक्षण किया। एक क्लासमें जाकर उन्होंने पहले लड़केसे पूछा—"तुम्हारी उम्र कितनी है ?"

"११ वर्ष, फुहरर।"

"अच्छी तरह मेहनत तो करते हो ?"

"बहुत अच्छी तरह, फुहरर।"

"तुम्हारे राजनीतिक विचार क्या हैं ?"

लड़केने नाजी ढङ्गसे सलाम किया और जोरसे चिल्लाकर कहा—"नाजी, फुहरर।"

हिटलरने लड़केको धन्यवाद दिया और आगे बढ़कर दूसरे लड़कोंसे इसी तरहके प्रश्न किये और सब लड़कोंने पहले लड़केकी तरह सब प्रश्नोंके उत्तर दिये। अन्तमें जिस लड़केसे उन्होंने पूछा, उसने उत्तर दिया—

"मैं प्रजातन्त्रवादी हूं।"

"प्रजातन्त्रवादी ! क्यों ?" हिटलरने आश्चर्यसे पूछा।

लड़केने उत्तर दिया—"मैं इसीलिए प्रजातन्त्रवादी हूं, कि मेरे बाप, दादा और परदादा सभी प्रजातन्त्रवादी थे।"

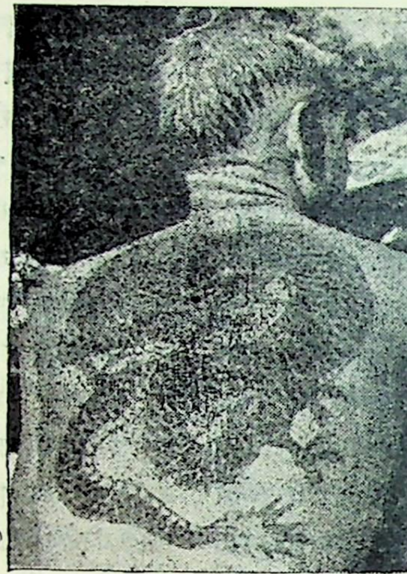
"और यह मान लिया जाय कि तुम्हारा बाप डकैत, बाबा हत्याकारी, परबाबा चोर रहा हो, तो तुम क्या होगे ?"

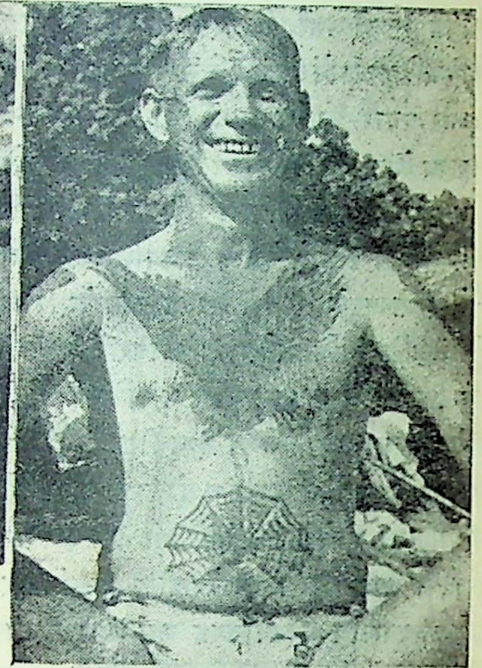
बच्चेने तत्काल जोरके साथ कहा—"नाजी, फुहरर।"

गोदनेका विचित्र रिवाज

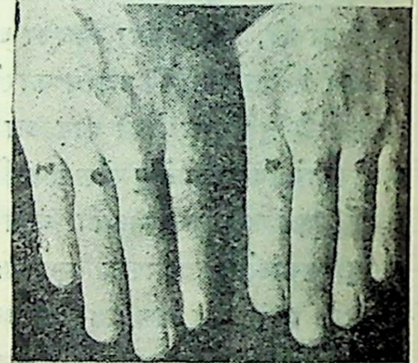
स्वदेशमें विभिन्न भागोंमें कहीं कम और कहीं ज्यादा स्त्रियोंमें गोदना गुदवानेका रिवाज है। हाथ, पैर, टांग, कपोल, मस्तक, ठुड्डी, गला, छाती आदि अङ्गोंमें, शायद सुन्दरता बढ़ानेके लिए, वे गोदना गुदवाती हैं। अशिक्षित और कम पढ़े-लिखे लोगोंमें इसका इतना चलन है कि शरीरका वह अङ्ग ही विवर्ण हो जाता है। जिन समाजोंमें शिक्षाका कुछ प्रचार हो गया है और जो अभिमानके साथ कुछ सभ्य होनेका दावा करते हैं, उनमें भी यह रिवाज तो बना ही हुआ है; परन्तु वैसे वीभत्स रूपमें नहीं—बहुत अवस्थाओंमें तो केवल उसका रूप ही बदल गया है। अशिक्षित स्त्रियां जहां गोदनेके नीले रङ्गसे अपने कुछ अङ्गोंकी खालको बिलकुल ही ढक लेती हैं, वहां शिक्षित समाजोंमें केवल ठुड्डी या कपोलपर केवल एक छोटे-से बनावटी तिलसे

ही सन्तोष कर लिया जाता है। बांहपर नाम लिखाने या फूल आदि कोई चित्र बनवानेका रिवाज भी कुछ प्रान्तोंमें हो रहा है और यह बीमारी स्त्रियोंकी तरह पुरुषोंमें भी फैल रही है। कितने ही पुरुष अपनी बांहोंपर अपना नाम लिखाते और चित्र बनवाते देखे जाते हैं।



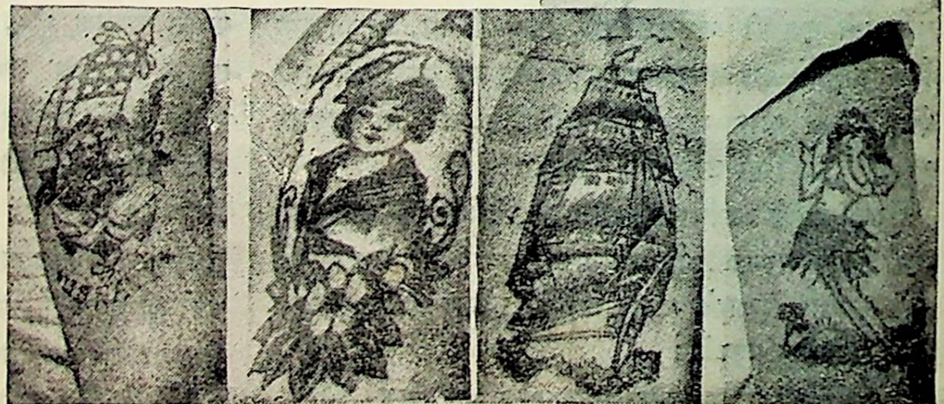


गोदना गुदवानेका रिवाज इसी देश तक सीमित नहीं है। कितने ही देशोंमें तो उसे शरीरके स्थायी श्रृङ्गारका एक आवश्यक अङ्ग समझा जाता है और पेट, पीठ, छाती, हाथ, पैर, चेहरा आदि कोई अङ्ग बाकी नहीं छोड़ा जाता। उन देशोंमें यह कार्य बड़ी कारीगरीसे किया जाता है, उसमें भी कलाका सुन्दर प्रदर्शन होता है। प्रशान्त महासागरके टापुओंके मूल निवासियोंमें गोदनेकी कलाका प्रदर्शन खास तौरसे देखनेमें आता है; परन्तु जापान और अमेरिका जैसे उन्नत देश भी इसका अपवाद नहीं हैं। वहां सैकड़ों एकड़ खाल गोदनेसे रंगी देखी जा सकती है और गोदने गुदवानेमें पुरुष भी स्त्रियोंसे पीछे नहीं हैं। ये गोदने इन देशोंमें विशेष भावोंके द्योतक समझे जाते हैं।



चित्र (नीचे बायीं ओरसे तीसरा) गुदवानेका भी बहुत रिवाज है; परन्तु लङ्गर और जङ्गी जहाज समेत अमेरिकन झण्डेके गोदनेको (नीचे बायीं ओरसे पहला) सबसे ज्यादा पसन्द किया जाता है।

अमेरिकाकी जल-सेनाके सैनिकोंके इन गोदनोंको देखिये। चित्रमें ऊपर बायीं ओर पीठपर अजदहा चित्रित है। यह जापानी कारीगरीका नमूना है। जल-सेनाके सैनिककी छातीपर पांव फैलाये हुए चील देशभक्तिका भाव प्रकट कर रही है। मकड़ी और उसके जालेसे भी वही भाव प्रकट होता है; परन्तु उतना उत्कृष्ट नहीं। यह विश्वास किया जाता है कि अंगुलियोंपर HOLD FAST "मजबूतीसे पकड़ो" लिखावट (दाहिनी ओर बीचमें) रहे, तो धोखा खाकर समुद्रमें गिर जानेका भय नहीं रहता। पुराने जमानेके जहाजका



इसके बाद ये सैनिक युवतियोंके चित्रोंको पसन्द करते हैं। इस तरहके गोदनोंके दो चित्र यहां दिये गये हैं। नीचे

बायीं ओरसे दूसरे चित्रमें युवतीको जलसेनाके सैनिककी पोशाकमें दिखलाया गया है और नीचे दाहिनी ओर कोनेपर नृत्य करती हुई युवती होनो लूलूकी गोदना गोदनेकी कलाका प्रदर्शन है।

कुछ ऐतिहासिक घोड़े

घोड़ोंकी स्वामिभक्तिके जो ऐतिहासिक विवरण मिलते हैं, उनसे पता चलता है कि यह पशु अनेक अवसरोंपर मनुष्यका सच्चा मित्र प्रमाणित हुआ है। घोड़ोंने बहुत बार युद्ध-क्षेत्रमें अपनी पीठपर सवार योद्धाओंके प्राणोंकी रक्षा की है। इतिहासके पृष्ठोंमें उन वीरोंके साथ ही उन घोड़ों-का नाम भी अमर रहेगा।

बारहवीं शताब्दीके अन्तमें महोबा, कन्नौज और दिल्ली-का अच्छा दबदबा था। उस समय महोबेके परमाल राजाके कृपापात्र सरदार और योद्धा उदयसिंह जिस घोड़ेपर चढ़ते थे, उसका नाम बेंदुला था। देशके इतिहासमें उदयपुरके महाराणा प्रतापसिंहके घोड़ेकी जो कीर्ति है, वह अन्य किसी-की नहीं। इस घोड़ेका नाम चेटक था। युद्धमें एक पैरमें घायल हो जानेके बाद भी चेटकने महाराणा प्रतापसिंहको शत्रु-सेनाके मध्यसे बाहर ले जाने और इस तरह उनके प्राण बचानेके लिए जिस पानीका परिचय दिया था, वह अपना उदाहरण नहीं रखता। कौन कह सकता है कि चेटकने यदि महाराणा प्रतापसिंहके प्राणोंकी रक्षा न की होती, शत्रु-सेनाके बीचसे बाहर ले जाकर उन्हें सुरक्षित स्थानमें न पहुंचाया होता, तो इतिहासमें मेवाड़की वह कीर्ति होती, जो आज है।

जून १५७६ में (द्वितीय ज्येष्ठ शुक्लपक्ष संवत् १६३३ विक्रमी) अकबरके सेनापति मानसिंहने महाराणा प्रताप-पर चढ़ाई की थी। हल्दीघाटीकी भूमि आजकी इस युद्धकी याद दिलाती है और बतलाती है कि उस कालमें मेवाड़ने अपनी स्वतन्त्रता और स्वाभिमानके लिए कितना त्याग किया था। हल्दीघाटीके इस युद्धमें एक दिन महाराणा प्रतापसिंह अकबरके सेनापति मानसिंहके सामने पहुंच गये। मानसिंह हाथीपर सवार थे और महाराणा प्रताप थे अपने घोड़े चेटकपर। चेटकका रङ्ग नीलापन लिये हुए श्वेत था। महाराणाने मानसिंहसे कहा कि प्रतापसिंह आ गया है, अब जो हो सके, बहादुरी दिखाओ। महाराणाने यह कहते हुए मानसिंहपर भालेका वार किया; परन्तु मानसिंह झुक गये और इस तरह वारको बचा ले गये। महाराणाका भाला उनके कवचमें ही लगा। इस समय महाराणाके घोड़ेके अगले दोनों पैर मानसिंहके हाथीकी सूंड़के सिरेपर लगे हुए थे। हाथीकी सूंड़में तलवार थी और उसे वह घुमा रहा था। इस तलवारसे चेटकका एक पिछला पैर घायल हो गया। भालेका वार करनेके बाद महाराणाने यह समझा कि मानसिंह मर गये और उन्होंने अपने घोड़ेको पीछे मोड़ लिया। हल्दीघाटीसे अनुमान दो मील दूर बलीचा नामक एक गांव आज दिखलाई पड़ता है। गांवके पास एक नालेके पास प्राचीन शिवालय है। पुरातत्त्व-शास्त्रियोंका मत है कि यह शिवालय विक्रमी संवत् १४०८ (१३५१ ईस्वी) का बना हुआ है। इसी शिवालयके पास चेटकका शरीरपात हुआ और वहां उसका चबूतरा आज भी बना हुआ है। यह चबूतरा देखनेसे बहुत पुराना नहीं मालूम होता। इस सम्बन्धमें प्रसिद्ध ऐतिहासिक रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचान्दजी ओझाने अपने 'उदयपुर राज्यके इतिहास'में बतलाया है कि "चेटकका पुराना चबूतरा नष्ट हो गया है, उसके स्थानपर मिट्टी और पत्थरोंका नया चबूतरा उसके पुजारियोंने बनवा लिया है, जिसके ऊपर एक सतीका स्तम्भ खड़ा किया गया है। उसके एक पार्श्वमें घोड़ेपर चढ़े हुए किसी वीर पुरुषकी मूर्ति बनी हुई है। अनुसन्धान करनेसे ज्ञात हुआ कि यह नया चबूतरा पुराने चबूतरेके स्थानपर बनाया गया है और उस चबूतरेकी पूजाके निमित्त बहुत-सी भूमि दी गयी है, जो अब तक पुजारियोंके अधिकारमें है। मूल चबूतरेपर सम्भव है कि पत्थरका घोड़ा बना हुआ हो"

यद्यपि ओझाजी प्रामाणिक नहीं मानते, तथापि यह प्रसिद्ध है कि जब महाराणा घायल चेटकपर मुगल सेनाओंके बीचसे निकले जा रहे थे, दो मुगल सवारोंने उनका पीछा किया। चेटक घायल था, इसलिए वह उतना तेज नहीं दौड़ सकता था। इसीलिए धीरे-धीरे मुगल सवार महाराणा-के पास पहुंचने लगे। वे चोट करनेवाले थे कि पीछेसे आवाज आयी—"ओ नीला घोड़ा रा असवार!" मुड़कर महाराणाने देखा, तो भाई शक्तसिंहको पाया। कर्नल टाडके कथनानुसार

शक्तसिंह अकबरके पास बहुत पहले ही चले गये थे और इस युद्धमें वे भी अकबरकी ओरसे लड़ रहे थे। उन्होंने जब देखा कि दो मुगल सवार घायल महाराणाका पीछा कर रहे हैं, तब उनके हृदयमें भ्रातृ-प्रेम उमड़ आया और उन्होंने भी पीछा किया। पास पहुंचकर शक्तसिंहने मुगल सवारोंको मार डाला और दोनों भाई एक-दूसरेसे गले लगाकर मिले। घायल चेटककी मृत्यु वहीं हुई और वहीं उसका चबूतरा बनाया गया। महाराणा शक्तसिंहके घोड़ेपर वहांसे गये। हल्दीघाटीके युद्धके १०० वर्ष बाद एक पुस्तक लिखी गयी थी—राजशस्ति महाकाव्य। उसमें भी मुगलों द्वारा पीछा किये जाने और बादमें शक्तसिंह द्वारा उनके मारे जानेका उल्लेख हुआ है।

घायल चेटकपर सवार महाराणाका पीछा दो मुगलों द्वारा किये जानेके विवरणसे हमारे सामने जून १८११ की एक अन्य ऐतिहासिक घटना आ जाती है। उन दिनों यूरोपमें अंगरेजों और फ्रान्सीसियोंमें युद्ध हो रहा था। केम्पो फारमियो स्थानकी बात है, शत्रुका पता लगानेके लिए १३ नं० लाइट ड्रूगूनके कारपोरल लोगनको एक ब्रिटिश ब्रिगेड और कुछ पुर्तगीज सवारोंके साथ भेजा गया था। उनपर अचानक फ्रान्सीसियोंने इतना जोरदार हमला किया कि हटनेके लिए विवश होना पड़ा। कारपोरल लोगन सबसे पीछेवाली टुकड़ीके साथ था। शत्रुके सैनिक दबाते चले आ रहे थे। लोगनके एक हाथमें लगाम थी और केवल एक हाथसे वह लड़ रहा था। इस दाबमें लोगन अकेला पड़ गया। दो सैनिक अपने कर्नलके साथ उसपर बुरी तरह झपट रहे थे। ये वार करने ही वाले थे कि लोगनने पीछे लौटकर दोनों सैनिकोंको मार डाला और उसके कुछ समय बाद द्वन्द्व युद्धमें कर्नलको भी धराशायी कर दिया। इस कठिन परिस्थितिमें लोगनका घोड़ा ही था, जिसने साथ देते रहकर उसके प्राणोंको बचाया। १५ नम्बर हुसर्सके लेफ्टिनेण्ट कर्नल (बादमें लेफ्टिनेण्ट जनरल सर) जोजेफ थेकवेल जिस घोड़ेपर सवार थे, कोरुना स्थानमें एक गोली उसकी खालको छीलती हुई चली गयी, फिर भी घोड़ेने इन्हें सुरक्षित स्थानमें पहुंचा दिया। व्रिटोरियाके युद्धमें भी उसने बड़ी वीरता दिखलायी और पिरेनीज पर्वतमालामें भी उसने बराबर साथ दिया। टूलूजमें उसके पेटमें एक गोली लगी और बादमें वाटरलूके युद्ध-क्षेत्रमें तो उसकी टांग ही बेकाम हो गयी और वहीं घोड़ा और उसका सवार दोनों ही साथ-साथ काम आये। विटोरियाके युद्ध-क्षेत्रमें अपनी वीरतासे नाम पानेवाले डब्लू० एच० पेनिङ्गटन जिस घोड़ीपर चढ़ते थे, उसका नाम ब्लेकबैस था। ११ नम्बर रिसालेमें ब्लेक बैस जैसा तेज कोई जानवर नहीं था। एक दिन युद्धमें उसकी पिछली टांगमें गोली लगी, जिससे वह पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसका सवार भी साथ ही गिर पड़ा, परन्तु कुछ ही क्षण बीतने पाये होंगे कि घोड़ीने अपने होश ठिकाने किये और सवार समेत उठकर बड़े वेगसे झपटी, किन्तु उसका अन्तिम काल आ गया था, कुछ ही गज आगे गयी होगी कि उसके एक गोली लगी और वह जमीनपर गिरकर मर गयी। पेनिङ्गटन पड़ तो बड़ी कठिनाईमें गया था; परन्तु एक सैनिकने उसे अन्य घोड़ा लाकर दिया, जिसने सुरक्षित स्थानमें पहुंचाकर उसकी जान बचायी।

स्ट्राथफील्डसाइके मैदानमें एक कब्र बनी हुई है, जिसपर लिखी हुई इबारतका अभिप्राय यह है—

"यहां कोपेनहेगेन नामक घोड़ा दफन हुआ है, जिसपर वाटरलूके युद्धमें दिन-भर वेलिङ्गटनके ड्यूकने सवारी की थी। इसका जन्म १८०८ में हुआ था और मृत्यु १८३६ में हुई। यद्यपि यह पशु था, तथापि एक नम्र साधनके रूपमें इसे भी उस गौरवशाली दिनकी कीर्तिमें साझीदार होना ही चाहिए।"

इस लिखावटपर कुछ अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। इतिहासमें घोड़ोंके शौर्यकी कितनी ही कहानियां मिल सकती हैं जिनमें वीर योद्धाओंकी भांति ही घोड़ोंने भी बड़े साहस और वीरताका परिचय दिया है। सैनिक घोड़ोंके विवरणके साथ एक खच्चरकी कब्रका उल्लेख अप्रासङ्गिक न होगा। सण्डे क्रानिकलकी रिपोर्टके अनुसार फ्रान्समें एक फौजी खच्चरकी कब्र है। इसपर यह इबारत लिखी हुई है—"मेण्डीकी स्मृतिमें, जिसने अपने जीवनमें दो कर्नलों, चार मेजरों, दस कप्तानों, चौबीस लेफ्टिनेण्टों, बयालीस सार्जेण्टों, सिपाही आदि चार सौ बत्तीस अन्य व्यक्तियों और एक बमपर दुलत्ती जमायी थी।"

———



शुक्लजीका निधन

हिन्दीके अमर साहित्यकार आचार्य पं० रामचन्द्रजी शुक्लका देहावसान गत २ फरवरीको काशीमें हृदयकी गति बन्द हो जानेसे हो गया। शुक्लजीकी आयु यद्यपि ५६ वर्षकी थी और कई सालसे उन्हें दमाकी शिकायत थी, तथापि उनके मरनेका अभी कोई समय नहीं था। शुक्लजीने लगभग ४० वर्ष तक हिन्दीकी अनवरत सेवा की, उसकी विविध आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए आमरण यत्न किया और इसमें उन्होंने अच्छी सफलता भी पायी। उन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्यकी जो सेवा अपने जीवनमें की है, उसका स्थायी महत्त्व है। काशीकी नागरी-प्रचारिणी सभाने गत ३२ वर्षमें हिन्दीकी जो सेवा की है, उसे कौन नहीं जानता। इस सभासे गत ३२ वर्षसे शुक्लजीका अटूट सम्बन्ध था और यद्यपि उन्होंने आरम्भमें 'हिन्दी-शब्द-सागर' के एक सम्पादकके रूपमें अपनी सेवायें सभाको दी थीं, तथापि मरनेके समय वे इस संस्थाके सभापति और त्रैमासिक नागरी प्रचारिणी पत्रिकाके सम्पादक थे। इस बीचमें शुक्लजीने कई साल तक हिन्दू विश्वविद्यालयमें हिन्दी विभागके प्रधानका पद सुशोभित किया और अपनी 'चिन्तामणि' नामक रचनापर जहां हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे १२००) का मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक पाया, वहां युक्तप्रान्तीय हिन्दुस्तानी एकेडेमीने भी हिन्दी साहित्यके इतिहासपर आपको ५००) का पुरस्कार देकर अपना गौरव बढ़ाया। शुक्लजी हिन्दीके सर्वाङ्गीण विद्वान् थे और उनकी विद्वत्ताको सब स्वीकार करते थे। वे केवल लेखक और कवि ही नहीं, उच्च कोटिके विचारक और मर्मज्ञ समालोचक भी थे। उन्होंने गम्भीर अध्ययन और मनन करनेके बाद हिन्दीमें उच्च कोटिके मौलिक साहित्यका निर्माण किया और समालोचनाकी उस पद्धतिको विशद बनाया, जिसकी छाप साधारणतः विरोधीपर भी पड़े बिना नहीं रहती। शुक्लजी यों बड़े गम्भीर स्वभावके थे; परन्तु किसीसे बातें करनेपर वह गम्भीरता बदल जाती थी और ऐसा मालूम होता था, मानो उनमें सहृदयता और सरलता कूट-कूटकर भरी हुई है। हमें दुःख है कि शुक्लजी असमय हिन्दी माताकी गोद खाली कर गये। उनके निधनसे हिन्दी-जगत्की असीम क्षति हुई है। मातृभाषाकी सेवामें जिसने अपनी बहुमूल्य शक्तियोंको जीवन-भर लगाया और अमर साहित्यकी रचना कर अमर कीर्ति स्थापित की, उसकी सद्गति होनेमें तो कोई सन्देह किया ही नहीं जा सकता। हिन्दी-भाषियोंको शुक्लजीसे उऋण होनेके लिए नागरी-प्रचारिणी सभाके शुक्लजीका स्मारक बनानेके प्रयत्नको सफल बनाना चाहिए।

हिन्दीपर प्रहार

प्रान्तकी भाषाके सम्बन्धमें पञ्जाब-सरकार जिस नीतिसे काम ले रही है, उसका परिणाम निश्चित रूपसे यही हो सकता है कि कुछ वर्षों बाद वहां हिन्दी और गुरुमुखीका नाम न रह जाये। पञ्जाबकी जनतामें ५७ प्रतिशत मुसलमान हैं और २७ प्रतिशत हिन्दू हैं। सिखोंकी संख्या रिया-

सतों समेत सारे पञ्जाबमें १९३१ की गणनाके अनुसार ४० लाख ७२ हजार है और प्रान्तकी जन-संख्यामें सिखोंका औसत भी लगभग १५ प्रतिशत है। जनताकी यह स्थिति होते हुए भी पञ्जाब-सरकार प्रत्येक सम्भव उपायसे उर्दूका प्रयोग बढ़ाना, उसे प्रान्तकी व्यवहारिक भाषा बनाना चाहती है। इसका परिचय हालमें ही उसके कितने ही कार्योंसे मिला है। यह मनोवृत्ति अनुचित है और प्रान्तके अल्पसंख्यक समुदायके साथ यह भारी अत्याचार है। यह केवल हिन्दी और गुरुमुखीका प्रश्न नहीं, उस संस्कृति और उन विचारोंका प्रश्न है, जिनका प्रतिनिधित्व करनेका गौरव हिन्दी और गुरुमुखीको प्राप्त है।

दबी हुई बातोंको उखाड़नेकी आवश्यकता नहीं है। प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी प्रस्तावित कानूनके विषयमें हिन्दुओं और सिखोंका आम खयाल है कि उसमें शिक्षाके लिए अनिवार्य रूपसे उर्दूको माध्यम बनानेका प्रयत्न किया गया है। इस सम्बन्धमें कुछ समय पहले डा० सर गोकुलचन्द नारंगके लिखनेपर पञ्जाब-गवर्नरके सेक्रेटरीने उत्तर दिया था कि उसमें ऐसी कोई धारा नहीं है, जिसमें उर्दूको शिक्षाका माध्यम बनानेकी बात कही गयी हो। जहां तक मसबिदेके शब्दोंका सम्बन्ध है, उत्तर सही है, उसमें सचमुच कोई धारा नहीं है जिसमें उर्दूके विषयमें वैसा कहा गया हो; परन्तु व्यवहारिक स्थिति क्या है? पञ्जाबमें जिम्मेदार अधिकारियोंने कितनी ही बार इस बातको छिपाया नहीं है कि पञ्जाबमें शिक्षाका माध्यम उर्दू होगी। मसबिदेकी व्यवस्थाके अनुसार योग्य वयके प्रत्येक बालकके लिए किसी ऐसे स्कूलमें भर्ती होना आवश्यक होगा, जिसे सरकारी स्वीकृति प्राप्त हो-और इस सरकारी स्वीकृतिकी असलियत क्या है? डा० नारंगके कथनानुसार "शिक्षा-विभाग द्वारा ऐसे अनेक सरकुलर निकले हैं, जिनमें जान-बूझकर स्कूलोंमें हिन्दी और गुरुमुखीको हतोत्साहित करनेके प्रयत्न किये गये हैं, ऐसे स्कूलोंको स्वीकृत नहीं किया गया, जिनमें हिन्दी ही शिक्षाका माध्यम थी। इन्स्पेक्टरोंने स्कूलोंके मैनेजरोंसे यह कहा है कि यदि शिक्षाका माध्यम उर्दू हो, तभी स्कूल स्वीकृत किये जा सकते हैं।" अधिकारियोंकी जब यह मनोवृत्ति हो और पञ्जाब-सरकारके प्रकाशन विभागकी एक विज्ञप्तिमें जब पूर्वावस्था बनाये रखनेकी बात कहते हुए यह स्पष्ट किया जाता हो कि "उर्दूकी वर्तमान स्थितिपर उस विवादका कोई प्रभाव नहीं पड़ने दिया जायगा, जो दुर्भाग्यसे हालमें आरम्भ हो गया है," तब कोई क्या समझ सकता है। पञ्जाब-सरकारके शिक्षा विभागकी वर्तमान नीति यह है कि कोई नया स्कूल खोलनेके लिए जब किसी इलाकेसे प्रार्थना-पत्र प्राप्त होता है, तब वह उस इलाकेकी "आवश्यकताओं और परिस्थिति" की दृष्टिसे गुण-दोषोंपर विचार करती है। आवश्यकताओं और गुण-दोषोंकी यह बात बहुत ही व्यापक है और उसमें मनमानीके लिए बहुत गुञ्जायश है। क्यों नहीं पञ्जाब सरकारको अपनी शिक्षा सम्बन्धी नीतिके विषयमें साफ शब्दोंमें यह घोषणा करनी चाहिए कि सभी सरकारी स्कूलोंमें हिन्दी, उर्दू और गुरुमुखीके माध्यमसे, जिसे छात्र पसन्द करे, शिक्षा दी जायगी और जहां हिन्दी और गुरुमुखी पढ़नेवाले १०—१५ छात्र तक होंगे, वहां भी उनके लिए व्यवस्था की जायगी। पञ्जाब-सरकार यदि सचमुच ही हिन्दी और गुरुमुखीको उत्सन्न नहीं करना चाहती हो, तो उसे सभी सरकारी स्कूलोंके अध्यापकोंके लिए हिन्दी, उर्दू और गुरुमुखीका जानना अनिवार्य कर देना चाहिए और प्रान्तको यह अवसर भी देना चाहिए कि यदि कोई शिक्षा-प्रेमी हिन्दी या गुरुमुखी सम्बन्धी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए किसी खास क्षेत्रमें कोई प्रयत्न करे, तो उसे सरकारका पूरा संरक्षण मिले।

पञ्जाब-सरकारके उर्दूके पक्षपातका एक अन्य उदाहरण भी हमारे सामने है—पिछले दिनों दूकानों और अन्य व्यापारिक दफ्तरोंमें काम करनेवाले कर्मचारियोंके लिए पञ्जाबमें भी एक कानून पास हुआ है. इसमें कर्मचारियोंको छुट्टियों, कामके घण्टों और तनख्वाह आदिके सम्बन्धमें कितनी ही सुविधायें दी गयी हैं। इस कानूनकी एक धारामें व्यवस्था यह है कि कर्मचारियोंके कामके घण्टोंको एक नोटिसके रूपमें टांगना चाहिए। यह नोटिस अंगरेजीमें होना चाहिए और उसका सही और स्पष्ट अनुवाद उर्दूमें भी रहना चाहिए। हमारे लिए यह समझना कठिन है कि अंगरेजी नोटिसका अनुवाद उर्दूमें ही क्यों होना चाहिए? क्यों नहीं उसे हिन्दी और गुरुमुखीमें भी होना चाहिए। निश्चय ही इसका मतलब इसके सिवाय अन्य

कुछ भी नहीं है कि पञ्जाब सरकार हिन्दी और गुरुमुखीको गरदनियां देकर प्रत्येक सम्भव उपायसे उर्दूको प्रोत्साहन दे रही है, उसे आगे बढ़ाकर, उर्दू के प्रान्तकी भाषा सच्चे अर्थमें होनेकी स्थिति पैदा कर रही है। इसपर किस हिन्दी-भाषीको क्षोभ नहीं होगा और क्या कोई ऐसा भी सिख होगा, जो अपने प्रान्तमें ही अपनी धर्म-भाषाकी यह अवस्था देखकर दुःखी न हो उठे ?

हम यह जानते हैं कि पञ्जाब-सरकारकी यह नीति विधानकी उस व्यवस्थाके विपरीत है, जिसके अनुसार सभी प्रान्तोंकी अल्पसंख्यक जातियोंकी भाषा और संस्कृतिकी रक्षा की ही जानी चाहिए। हम यह भी जानते हैं कि संयुक्त प्रान्त, बिहार और मध्यप्रान्तमें उर्दू-प्रेमियोंकी संख्या बहुत कम मुश्किलसे १५ सैकड़े है, फिर भी इन प्रान्तोंमें जो उर्दू पढ़ना चाहे, उसके लिए पूरी सुविधा है। यह स्थिति होनेपर भी आज जैसा रवैया है, हमें आशा नहीं है कि पञ्जाबके गवर्नर इस समस्याकी असलियतको समझनेकी चेष्टा करेंगे और अपने मन्त्रि-मण्डलकी नीतिपर उचित नियन्त्रण रखनेका प्रयत्न करेंगे। इसीलिए हम चाहते हैं कि पञ्जाबके हिन्दू और सिख हिन्दी और गुरुमुखीके लिए—दूसरे शब्दोंमें अपनी संस्कृति और भाषाके लिए अपने कर्तव्यका निश्चय यह समझकर करें कि भाषा और संस्कृतिको खोकर कोई जाति अपनापन बनाये रखनेमें—जिन्दा रहनेमें समर्थ नहीं हो सकती। जातियोंके जीवनमें भाषाका महत्त्व बहुत अधिक है और हम यह जानते हैं कि पञ्जाबके हिन्दू और सिख उससे अनभिज्ञ नहीं हैं।

साहित्यमें उपन्यासका स्थान

"बहुत-से महापुरुष कविताकी उपयोगिताको स्वीकार तो किसी प्रकार करते हैं, पर शृङ्गार-रस उनके निर्मल नेत्रोंमें कुछ खार-सा अथवा तेज तेजाब-सा खटकता है। वह शृङ्गार-रसकी रसीली लताको विषैली समझकर कविता-वाटिकासे एकदम जड़से उखाड़ फेंकनेपर तुले खड़े हैं। उनकी शुभ सम्मतिमें शृङ्गार ही सब अनर्थोंकी जड़ है, शृङ्गार-रसके "अश्लील" काव्योंने ही संसारमें अनाचार और दुराचारका प्रचार किया है। शृङ्गारके साहित्यका यदि आज संसारसे संहार कर दिया जाय, तो सदाचारका संचार सर्वत्र अनायास हो जायं। फिर संसारके सदाचारी और ब्रह्मचारी बननेमें कुछ भी देर न लगे।"

यह मत स्वर्गवासी पण्डित पद्मसिंह शर्माका है, जिसे उन्होंने बिहारी सतसईकी टीकामें अपने वक्तव्यमें व्यक्त किया है। बहुत लोग उपन्यास-ग्रन्थोंपर भी ठीक इसी तरहकी राय प्रकट करते हैं। उनकी दृष्टिमें उपन्यास साहित्यका कलङ्क-मात्र है, जैसे शुभ्र वस्त्रपर काला धब्बा। जहां तक हम जानते हैं, यह राय उन्हीं लोगोंकी है, जो स्वानुभवकी अपेक्षा लोकप्रवादपर ही भरोसा रखना पसन्द करते हैं। हमारे देखनेमें कुछ ऐसे व्यक्ति आये हैं, जो जानबूझकर अच्छे उपन्यासोंसे भी हमेशा ही बचते हैं और इसी कारण अपनेको सद्गुणी मानते हैं।

यह कोई नहीं कहता कि उपन्यास सर्वथा निर्दोष वस्तु हैं और न यही कहा जा सकता है कि सभी उपन्यास प्रशंसनीय हैं। संसारमें ऐसी कोई वस्तु ही नहीं, जो सर्वथा निर्दोष हो। जहां गुण है, वहां दोष भी होता ही है। उपन्यास प्रकृतिके इस नियमका अपवाद नहीं हैं। फिर भी हमारा यह मत है कि कितने ही दोष रहते हुए भी उपन्यास त्याज्य नहीं हैं और उनका अस्तित्व साहित्यमें समाजके हितार्थ ही है।

मानव-समाजके सब प्रयत्नोंके मूलमें आवश्यकता होती है। प्रकृतिके इस सिद्धान्तके अनुसार यदि किसी समय हिन्दीमें उपन्यासोंकी रचना हुई और कुछ अधिक संख्यामें हुई, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। इसमें खिन्न होनेकी कोई बात नहीं है; क्योंकि समाजको जिसकी चाह थी, उसकी पूर्ति हो गयी। जहां आवश्यकता होती है, वहां उपयुक्तता भी किसी न किसी रूपमें होती ही है। फिर, उपन्यासोंकी रचनामें कोई अस्वाभाविक बात भी नहीं है। कल्पनाओंके लोकमें विचरण करना और प्रसन्न होना मनुष्यका स्वभाव है। काल-प्रभावसे यही कल्पनायें दिलचस्प कहानियां बन जाती हैं। धीरे-धीरे उनका प्रचार हो जाता है। गुणाढ्य कवि-कृत कथा सरित्सागर या अरेबियन नाइट आदिकी उत्पत्ति ऐसे ही हुई है। इतिहाससे मालूम होता है कि संसारभरमें ऐसा एक भी देश या मनुष्य जाति नहीं है, जिसमें कोई ऐसा कथा-संग्रह न हो।

अंगरेजीमें ऐसे संग्रहको 'फाक टेल्स' और इस विषयपर जो शास्त्र बना है, उसे 'फाक लोर' कहते हैं।

सभ्यताके विकासके साथ-साथ मनुष्यका अज्ञान घटने और अनुभव बढ़ने लगता है और वह कल्पना और वास्तविकताका तारतम्य समझने लगता है। तब वह कल्पनाको तो नहीं छोड़ता, पर वास्तविकताके साथ उसका सामञ्जस्य कर देता है; इसी कारण कथा-वार्त्ताओंमें धर्म-प्रेम, नीति, ईश्वर-भक्ति आदि उपदेश सम्मिलित हो जाते हैं। यह कौन नहीं जानता कि मनुष्य स्वभावसे ही कहानी-प्रिय है। उसकी विचार-धारापर सहज ही कोई प्रभाव डालना हो, तो इसी कहानी-साहित्यका प्रयोग करना होगा। फिर उपन्यास क्या है? कथा-साहित्यका ही तो एक प्रकार है।

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर और रूसके कौण्ट टालस्टायके नामसे तो सभी परिचित ही हैं। दोनों ही मानव-जातिके हित-चिन्तक और विश्व-विख्यात उपन्यासकार हैं। यहां उपन्यासोंकी हिमायतमें जो कुछ लिखा गया है, उससे कोई यह समझ लेनेकी गलती न करे कि मैं प्रत्येक उपन्यासके लिए वैसा लिख रहा हूं। मेरा अभिप्राय सुरुचिपूर्ण उपन्यासोंसे है। ऐसे उपन्यास अंगरेजीमें भी कम हैं, हिन्दीकी तो बात ही क्या? हिन्दीकी उपन्यास-प्रणालीका पीछा अभी तक तिलिस्म और ऐयारीने नहीं छोड़ा है।

अच्छे उपन्यासोंसे समाज-सुधारका कार्य कितनी आसानी और शीघ्रतासे होता है, इसके कुछ उदाहरण अप्रासङ्गिक नहीं होंगे। किसी कालमें यूरोप और अमेरिकामें गुलामोंका व्यापार होता था। अफ्रीका-निवासी बेचारे नीग्रो बड़े तङ्ग थे। इस व्यापारके परिणाम इतने पैशाचिक थे कि उनका वर्णन करना कठिन है। उसे बन्द करनेके लिए अमेरिकावासी कुछ सज्जनोंने बड़ा ही परिश्रम किया। इस कुप्रथाकी जड़ उखाड़नेके लिए जो प्रयत्न किये गये उनमें एक महिलाका साहित्यिक प्रयत्न भी था; उससे समाजपर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और अमेरिकन जनताको इस व्यापारसे बड़ी घृणा हो गयी। इस महिलाका नाम था "मिसेज एच० बी० स्टोब" और उसने गुलामोंके व्यापारकी निन्दामें जो उपन्यास लिखा है, उसका नाम है—"टाम काकाकी कुटिया यह उपन्यास इतना सर्वजनप्रिय हो गया कि उसका प्रकाशन होनेके पहले सप्ताहमें ही उसकी दश सहस्र प्रतियां हाथों-हाथ बिक गयीं और पहले छः मासमें यह संख्या पचास हजार तक पहुंच गयी। पुस्तक करुणा रससे परिपूर्ण है और गुलामोंके व्यापारका नाश करनेमें उसका बहुत बड़ा भाग है।

डेफो-कृत "राबिनसन क्रूसो" उपन्यास अंगरेजीमें बहुत ही प्रसिद्ध है। अंगरेज जातिपर इस उपन्यासका विलक्षण प्रभाव पड़ा है। राबिनसन क्रूसो पढ़कर अंगरेजोंमें बचपनसे ही अपनी जन्मभूमिको छोड़कर दूर-दूर देशोंमें जाने और उपनिवेश बसानेकी भावना जग जाती है। इसीके फलसे कुछ ही पीढ़ियोंमें संसारके सब हिस्सोंमें ब्रिटिश उपनिवेश बन गये। ब्रिटेनका यह वैभव बढ़नेके और भी अनेक कारण होंगे, पर समाजमें बाहर निकलकर उपनिवेश बसानेका हौसला पैदा करनेका महत्त्वपूर्ण कार्य क्रूसो और तत्कालीन अन्य उपन्यासोंने भी किया है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसी तरह ओलीवर ट्विस्ट भी एक उपन्यास है, जिसके प्रभावसे अंगरेज समाजका ध्यान गरीबोंके घरोंकी तरफ आकर्षित हुआ और सरकारको उनके सुधारपर विचार करना पड़ा। मेरी कारेली उपन्यास-लेखिकाके डेविल्स मोटर और ट्रेजर आफ हेवेन नामक उपन्यास प्रसिद्ध होते ही पार्लमेण्टका ध्यान मोटर-गाड़ियोंकी बुराइयोंकी ओर आकर्षित हुआ और उन्हें रोकनेके लिए सरकारको एक कानून बनाना पड़ा।

यूरोप और अमेरिकाकी अन्यान्य भाषाओंमें भी ऐसे अनेक उपन्यास हैं, जिनके प्रभावसे समाजमें बड़ी हलचल मच गयी और उसका चित कुरीतियोंसे हट गया। रूसकी पिछली राज्य-क्रान्तिके लिए गोर्कीके उपन्यासोंने बड़ा काम किया था।

मराठी, बंगला और गुजरातीमें हरिनारायण आपटे, शरत चटर्जी और गोवर्द्धनराम त्रिपाठी अच्छे उपन्यासकार हैं, जिन्होंने समाजकी विचार-धारापर खासा प्रभाव डाला है। हिन्दीमें भी इधर एक अर्सेसे सुरुचिपूर्ण कहानी-साहित्य और उपन्यासोंका निर्माण हो रहा है, जिनका समाजके जीवनके प्रत्येक अङ्गपर अच्छा प्रभाव देखनेमें आ रहा है। हमारे नवयुवक एवं नवयुवती-समाजमें बहुत बड़ा परिवर्तन हो रहा है और इसका श्रेय उपन्यासोंको भी कम

नहीं है। हिन्दी-उपन्यास और कहानी-साहित्यमें आज जीवनकी सभी समस्याओंको हल करनेका प्रयत्न देखनेमें आ रहा है। यूरोप-अमेरिकामें "उपन्यास-लेखन" की कलाने इतनी उन्नति की है कि अब वह एक स्वतन्त्र शास्त्र बन गया है; परन्तु हिन्दीमें अभी तक वह समय नहीं आया है।

—जयदेवप्रसाद अम्बष्ट 'मधुकर'

प्राप्ति-स्वीकार

लड़खड़ाती दुनिया। लेखक—पण्डित जवाहरलालजी नेहरू; प्रकाशक—सस्ता-साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली; पृष्ठ-संख्या १७१; कागज और छपाई सुन्दर; मूल्य ॥)

इस पुस्तकमें पं० जवाहरलालजी नेहरूके २१ लेखोंका संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय-समयपर म्यूनिक सङ्कट, हिन्दुस्तान और इंगलैण्ड, ब्रिटेनके युद्धके उद्देश्य, रूस और फिनलैण्ड, आजादी खतरेमें है, हमारा क्या होगा आदि शीर्षकोंसे १९३८-३९-४० में लिखा था। चीन और स्पेनकी यात्रा सम्बन्धी लेखोंको तो नेहरूजीके संस्मरण ही कहना चाहिए। पुस्तक उपादेय है।

विज्ञानके चमत्कार। लेखक—श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव एम० एस-सी०; प्रकाशक—ज्ञानमण्डल लिमिटेड, काशी; पृष्ठ-संख्या १९६; छपाई सुन्दर; मूल्य १)

इस सचित्र पुस्तकमें इस युगके कितने ही वैज्ञानिक चमत्कारोंकी कथा सरल हिन्दीमें लिखी गयी है। हिन्दीमें इस तरहकी प्रामाणिक पुस्तकका अभी तक अभाव-सा ही था। लेखकने इसकी पूर्तिका सफल प्रयत्न किया है।

छात्र हितकारी पुस्तक माला, दारागञ्ज, प्रयागकी, तीन पुस्तकें—(१) देशकी आनपर। लेखक—श्री गणेश पाण्डेय, पृष्ठ-संख्या १२६, मूल्य ॥), (२) चरित्र-निर्माणकी कहानियां। लेखक—श्री व्यथित हृदय, पृष्ठ-संख्या १५१, मूल्य ॥); (३) युगारम्भ। सम्पादक—श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृष्ठ-संख्या २०४; मूल्य १॥)

पहली पुस्तकमें देशभक्तिपूर्ण ९ कहानियां हैं, जिनमें दो कहानियोंकी घटनाओंका सम्बन्ध स्वदेशसे है। भाषा ओजपूर्ण है और रचना सामयिक है। कहानियोंके ऐतिहासिक होनेके कारण पुस्तकका महत्त्व अधिक हो गया है। दूसरी पुस्तकमें चौबीस रोचक कहानियोंका संग्रह है। पुस्तकका उद्देश्य उसके नामसे ही प्रकट है। छात्रोंको इस तरहकी पुस्तकें पढ़नेसे स्फूर्ति और प्रेरणा हो सकती है। तीसरी पुस्तकमें वर्तमान युगके १६ कवियोंके संक्षिप्त परिचयके साथ उनकी रचनाओंका रसास्वादन कराया गया है। स्वर्गीय प्रसादजीको छोड़कर इस पुस्तकके अन्य सभी कवि हमारे सामने हैं। यह आवश्यक नहीं है कि परिचयके आलोचनात्मक अंशसे सभी सहमत हों, फिर भी वाजपेयीजीका प्रयत्न सराहनीय है और पुस्तक संग्रह करने योग्य है।

जुगनू। लेखक—श्री सहदेव पञ्जिकार; प्रकाशक—बी० एल० सिंह, मु० नोनसर, सुलतानगञ्ज, ई० आई० आर०; पृष्ठ संख्या ५५; छपाई सुन्दर।

छोटे आकारकी इस पुस्तिकामें लेखककी भावपूर्ण २९ कविताओंका संग्रह है। कवितायें ओज और प्रसाद-गुणसे पूर्ण हैं और साथ ही सामयिक भी हैं।

नीचे दी हुई पुस्तकें भी मिल गयी हैं। प्रेषकोंको धन्यवाद—(१) प्रभुमतिके दोहे। लेखक और प्रकाशक—प्रभुलाल अग्रवाल, सिकन्दराबादी, हापड़, जिला मेरठ। (२) भारतीय गोशालायें। लेखक—श्री उत्तमचन्द मोहता, युवक समिति, सिरसा, पञ्जाब; मूल्य ।=)



महिलाओंका आदर्श

वर्तमान समयमें देशमें जो जागृति हुई है, वह है तो अच्छी; परन्तु जिस पाश्चात्य संस्कृतिकी ओर हम सब बड़ी तेजीसे भागते जा रहे हैं, क्या उसके परिणामकी ओर भी कभी ध्यान आकर्षित हुआ है। यूरोप और अमेरिकामें यह सभ्यता अपनी चरम सीमाको पहुंच गयी है। वहां सभ्यताका जो तूफान आ गया है, धीरे-धीरे वह पूर्वकी ओर भी बढ़ रहा है। स्वदेशपर भी उसका प्रभाव पड़ रहा है और यह अधिक उपयुक्त होगा कि उसके परिणामोंको भली भांति समझ लिया जाय। प्रत्येक समाजका कोई एक आदर्श होता है, जो विचारोंका सङ्घर्ष उपस्थित होनेपर जन-समूहको एक निश्चित मार्गका सङ्केत करनेके साथ ही दृढ़ता भी प्रदान करता है। भारतीय नारी-समाजका भी एक आदर्श है। हमें संसारकी प्रगतिसे लाभ उठाना चाहिए; परन्तु क्या इसके लिए अपने आदर्शोंसे गिर जाना आवश्यक है? मैं यह नहीं मानती कि प्रगतिशील होने और रहनेके लिए वैसा होना आवश्यक है—यह अनिवार्य है कि हम सब उस प्रवाहमें तिनकेकी तरह बहें। गौरव तो अपनापन रखनेमें है—प्रवाहका तिनका बननेमें नहीं।

नारी-आन्दोलनको प्रथम स्थान देना अधिक उपयुक्त इसलिए होगा कि विश्वमें जो परिवर्तन माताओं और बहिनोंने कर दिखाये हैं, वे और किसीने नहीं। किन्तु आज नारी-आन्दोलनके रूपमें जो हलचल विश्वमें है, उसका ध्येय पुरुषको पीछे ढकेलकर अपने अधिकारोंके लिए लड़ना तथा उन्हें प्राप्त करना है। इस सम्बन्धमें जो समस्यायें विदेशोंमें उठ रही हैं, वे कुछ विचित्र-सी हैं और यह विचित्रता इस बातमें है कि अधिकार और कर्तव्य, दोनोंमें अभी तक सामञ्जस्य नहीं किया जा रहा है। समाजका प्रत्येक व्यक्ति यदि केवल अपने कर्तव्यकी चिन्ता करे और उसे ही पूरा करनेकी चेष्टा करे, तो अधिकारोंकी समस्या अपने आप हल हो जाती है। कर्तव्यनिष्ठा सेवा-भावको प्रोत्साहन देती है और सेवा-भाव सङ्घर्ष नहीं होने देता। सङ्घर्ष अच्छा है; परन्तु प्रत्येक क्षेत्रमें और प्रत्येकके साथ नहीं। इसकी भी कोई मर्यादा होती है। स्त्री और पुरुषके बीच कर्तव्य और अधिकारकी जो समस्यायें हैं, उन्हें पारस्परिक सद्भावसे हल किया जाना चाहिए, सङ्घर्षसे नहीं; क्योंकि सङ्घर्षका अर्थ है खींच-तान और हार-जीत—और इसकी कल्पना ही गृहस्थीके स्वर्गको नरकमें परिवर्तन कर डालनेके लिए काफी है।

मनुष्यका भावनामय संसारमें विचरण करना उपयुक्त है, लेकिन भावनायें भी विभिन्न प्रकारकी होती हैं। एक प्रकारकी भावनाओंसे मनुष्य ऊंचा उठता है तथा दूसरे प्रकारकी भावनायें उसे पतनके अन्धकारपूर्ण कूपमें गिरा देती हैं। उन्हीं भावनाओंसे चाहे वह स्वर्गके नन्दनबनमें विहार करे, चाहे नरककी गन्दी गलियोंमें। मनुष्यका जीवन सच्चे अर्थमें भावनायें ही हैं; परन्तु केवल भावुक होना और विवेकसे काम न लेकर केवल कल्पनाओंके पीछे पड़ना ठीक नहीं। विवेकयुक्त भाव सदा मनुष्यको ऊंच-नीच सोचने व विचारनेकी शक्ति देते रहते हैं, लेकिन अविवेकी बननेसे यह नहीं होता। यह कौन नहीं जानता कि भावावेशमें उचित-अनुचितका बिलकुल ही ख्याल नहीं रहता और कभी-

कभी प्रायः वैसी अवस्थामें बड़ा अनर्थ हो जाता है। जरूरत यह है कि नारी-आन्दोलनके मूलमें भावावेश न हो, जिससे परिस्थितिको असली रूपमें देखा, समझा और सुलझाया जा सके।

प्रत्येक देशके आदर्श भिन्न-भिन्न होते हैं। किसी देश-विशेषके आदर्शोंका समझ लेना सबके लिए सरल नहीं है। हां, शायद उस समय वे समझमें आ सकते हैं? जब उन्हें उसी दृष्टिसे देखा जाय, जिससे बनाया गया है। हमारे भारतीय आदर्शोंकी ओर यदि कोई विदेशी घृणाकी दृष्टिसे देखे और प्रतिकूल आलोचना करे, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। राम और कृष्ण, शिवाजी और तुलसी, राणा प्रताप और गुरु गोविन्द सिंह और सीता एवं सावित्रीको जिस दृष्टिसे हम देखते हैं, उनके लिए कैसे सम्भव है, उनसे जो प्रेरणा हमें मिलती है, वह उन्हें कैसे मिल सकती है। इसीलिए हमें एक-दो बार नहीं, बार-बार इस बातपर विचार करना चाहिए कि पाश्चात्य सामाजिक प्रवाहमें हम कितनी दूर तक जा सकते हैं। यह आत्म-गौरवकी समस्या है।

भारतके प्राचीन आदर्शोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए हमारे लिए भारतीय साहित्यका अध्ययन करना आवश्यक है। भारतीय ग्रन्थोंका पठन-पाठन करनेसे यह ज्ञात होता है कि अपने पूर्वज सामाजिक प्रश्नोंकी गहराईमें कितनी दूर तक जानेवाले थे। रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थोंकी रचना घटना-प्रधान न कर चरित्र-प्रधान करनेमें यही रहस्य प्रतीत होता है। इन्हीं चरित्रोंमें हमारे आदर्श निहित हैं। इन ग्रन्थोंमें प्रत्येक चरित्रमें प्रेम और कर्तव्यको सर्वप्रथम स्थान दिया गया है, लेकिन नारकीय रूपमें नहीं। प्रेमके साथ ही कर्तव्य-पाठ भी पढ़ाया गया है; क्योंकि कर्तव्य-भावना न हो, तो प्रेम प्रेम नहीं, प्रेमकी विडम्बना है। रामायणमें माता कौशिल्याका चरित्र तो देखिये। कौन-सी ऐसी मां होगी, जो अपने बेटेको दूसरेके कहनेके अनुसार बन जाने देगी? लेकिन वे कहती हैं कि "तात जाउं बलि कीन्हेउ नीका, पितु आयसु सब धर्मक टीका।", "राज देन कहि दीन बन, मोहिं न दुख लवलेश॥", "जो पितु-मातु कहेउ बन जाना, तो कानन शत अवध समाना।" सुमित्राको लीजिये—भ्रातृ-प्रेमके लिए वे कैसी स्फूर्ति प्रदान करती हैं? सीताकी-सी स्वामि-भक्ति व पतिव्रत-धर्मका भी कहीं उदाहरण मिलेगा? पतिके सुखमें अपना सुख मानना और उसके दुखको अपना दुख समझना, यह उनके चरित्रकी महत्ता है।

इसी तरह रामचन्द्रने सीताके प्रति जो प्रेम और आदरका भाव दिखलाया है और अन्त तक एक पत्नीव्रत-धर्मका पालन जिस निष्ठाके साथ किया है, उसपर किस समाजके पुरुषोंका सिर गौरवसे ऊंचा नहीं हो जायगा। दाम्पत्य-जीवन जब इस उच्च स्थितिमें हो, समाजके स्त्री-पुरुषोंमें परस्पर जब इस तरहका पूर्ण प्रेम और आदरका भाव हो, तब संसारका कोई प्रश्न उनके हृदयमें अन्तर या शङ्का नहीं पैदा कर सकता। आजकल महिलाओंके अधिकारोंकी जो समस्या है, वह वास्तवमें स्त्री और पुरुष वर्गके पारस्परिक विश्वास, प्रेम, आदर, विचार-सहिष्णुता और अधिकसे अधिक त्यागकी समस्या है। किन्तु इसे हल किया जा रहा है बिलकुल दूसरी ही तरह—पुरुषों और स्त्रियोंमें भौतिक स्पर्धाको जन्म देकर, उन्हें एक-दूसरेका पूरक नहीं, प्रति-द्वन्द्वी बनाकर। वे झगड़े जो आजकल प्रायः रोज ही सुनने और पढ़नेमें आते हैं, कभी नहीं हो सकते, यदि पार-स्परिक प्रेम, विश्वास और आदर-भावके आधारपर इस गुत्थीको सुलझाया जाय। भारतीय संस्कृति आन्तरिक सौन्दर्य चाहती है, बाह्य नहीं। यों बाह्य भी हो, तो सोनेमें सुगन्ध ही समझिये; परन्तु असली चीज वह है, यह नहीं। स्त्रीका गौरव सदा पतिके साथ रहने और उसका दायित्व बंटानेमें है। उसका वन्दनीय रूप वह है, जिसमें वह माता कहलाती है। इस सम्बन्धमें अन्य बहिनोंका जो कुछ भी मत हो, लेकिन यदि वे मनन करके इसपर विचार करेंगी तो अवश्य मेरे ही निष्कर्षपर पहुंचेंगी। भारतकी स्त्रियां मूर्खा न होकर विदुषी हुआ करती और अपने पति, पुत्र और स्वजन-सम्बन्धियोंसे लगाकर समाज और देश तक, सबके प्रति अपना दायित्व पूरा करनेमें सुख अनुभव करती थीं और निःसन्देह वे करती हैं—भले ही आज हमारी अवस्था पहलेसे बहुत गिरी हुई हो।

भारतका कौटुम्बिक जीवन सदासे आदर-सम्मान-पूर्ण रहा है। मेलके साथ रहनेसे जो आनन्द मिलता है, वह अकेले रहनेसे नहीं। समाजमें विभिन्न कुटुम्बोंमें अब जो झगड़े प्रायः उठने लगे हैं, इसका यही कारण है कि यहांका

वातावरण पाश्चात्य प्रभावसे आक्रान्त होता जा रहा है। पहले यह अवस्था नहीं थी, इसीसे आध्यात्मिकताका इतना प्रसार हुआ। कुटुम्बके कामोंमें लगातार लगे रहनेसे जो आनन्द प्राप्त होता है, वह और किसी ढङ्गसे नहीं। इस देशका कौटुम्बिक जीवन प्रकृत, सादा, सरल और प्रेममय है, जबकि यूरोपका अप्राकृतिक, बनावटी, जटिल और वैज्ञानिक है। अब भी उस कौटुम्बिक आनन्दको नष्ट होनेसे बचाया जा सकता है, यदि हम समयकी प्रगतिके साथ सामञ्जस्य रखते हुए भारतीय आदर्शोंको जीवनमें व्यवहारतः अपनाये।

यह बात नहीं है कि देशकी राजनीतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेके लिए उपयुक्त आदर्शोंका अभाव है। भारतीय इतिहासके मध्य-कालका अध्ययन करनेसे यह ज्ञात होता है कि समय-समयपर राजपूत स्त्रियोंने जो आदर्श स्थापित किया है, विश्व-इतिहासमें उसका जोड़ नहीं मिलता। वे अपने हाथोंसे रणमें प्रस्थानके पूर्व एक साथ पति और पुत्रको अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित किया करती थीं। उस समयकी महिलायें कहा करती थीं कि "हम मरना भी जानती हैं। यदि समय अनुकूल न हुआ, तो भी कोई सोचकी बात नहीं है। हमारे लिए जीवन यहां भी आदर्शपूर्ण है और वहां भी।" तभी तो वे महिलायें वीरस्नुषा, वीररमणी, वीरपत्नी और वीरगर्भा इत्यादि नामोंसे सम्बोधन की जाती थीं। उनके लिए यह उचित भी था।

अन्तमें एक बात और—शिक्षाका विरोधी कोई नहीं है, किन्तु शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो यहांकी कन्याओंको गृहलक्ष्मी, अन्नपूर्णा, समाज-शोभा और जन-शक्ति पदके लिए उपयुक्त कर दे। शिक्षा ऐसी हो, जिससे हमारे देशकी महिलाओंमें पवित्रता, विचारोंकी उच्चता, धीरता, गम्भीरता, दृढ़ता, साहस, संयम आदि गुणोंका विकास हो, उनमें स्वदेशकी प्रत्येक बातके लिए निष्ठा हो और वे ऐसी हों कि देश अपना सिर दूसरोंके सम्मुख उठा सके।

—विद्यावती अग्रवाल।

लज्जाजनक और दुःखजनक

संसारमें जब विश्वबन्धुत्वकी समस्या हल करनेके लिए विचारक अपनी बहुमूल्य शक्तियोंका उपयोग कर रहे हैं, हिन्दू समाजके मार्गमें डोली और पालकी भी एक बाधा बनकर सामने आ रही है। हमारा सङ्केत गढ़वालकी ओर है, जहां उच्च जातिके लोग हरिजन भाइयोंको डोली और पालकीमें बैठने नहीं देते और उन्हें अपने इस अधिकारसे काम लेनेसे जबर्दस्ती रोकते हैं

डोला और पालकीको लेकर जब बिजोली और मेंदोलीकी दो हरिजन बारातोंका प्रश्न सामने आया, महात्मा गांधीको भी गढ़वालमें सत्याग्रह स्थगित करना पड़ा। सत्याग्रहीके लिए यह आवश्यक है कि वह जातिमूलक छुआछूत, अस्पृश्यतामें विश्वास न करता हो और हरिजन भाइयोंको समान व्यवहारका अधिकारी मानता हो। हरिजनोंकी अवस्था यों तो अन्य स्थानोंमें भी अभी तक उच्च कहलानेवाली जातियोंके समकक्ष नहीं हुई है और उनके सम्बन्धमें जनताका दृष्टिकोण बड़ी शीघ्रतासे बदल रहा है; परन्तु गढ़वालकी अवस्थामें अभी तक ज्यादा परिवर्तन नहीं हुआ है और वहां हरिजन भाइयोंकी जागृतिमें सबसे बड़ी बाधा वे डाल रहे हैं, जिन्हें सबसे अधिक सहायक होनेमें अपना सौभाग्य समझना चाहिए। हमारा अभिप्राय उच्च जातिके लोगोंसे है।

गढ़वालमें हरिजनोंकी संख्या लगभग एक लाख है। इनमेंसे दो-ढाई हजार हरिजन भाइयोंने आर्यसमाजके सहयोगसे अपना दृष्टिकोण बदल लिया है। वे प्रगतिशील विचारोंका अनुसरण करते और अपनेको आर्य कहते हैं। गढ़वालमें हरिजनोंके नागरिक अधिकारोंका, जिनमें डोली और पालकीका प्रश्न भी आ जाता है, जो आन्दोलन चल रहा है, उसे यही भाई चला रहे हैं। यह आन्दोलन लगभग ३० वर्षसे हो रहा है। कितनी ही बार अदालती कार्यवाहियां हुई हैं, जिनमें लगभग २५०००) व्यय हो चुके हैं। फिर भी स्थितिमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है और अवस्था ज्योंकी त्यों बनी हुई है। इन आर्यसमाजियोंके साथ उच्च जातिके लोग बराबरीका व्यवहार नहीं करते, बल्कि उनके साथ भी हरिजनों-जैसा ही व्यवहार होता है। इस "हरिजनों-जैसे व्यवहारमें" जितनी बातें हो सकती हैं, वे सब आ गयीं—कुएंसे पानी निकालना, स्कूलोंमें उच्च जातिके लड़कोंके साथ बैठकर पढ़ना, जीवनकी सुविधाओंके लिए समान अवसर पाना आदि। शिकायतोंकी इस लम्बी सूचीमें गढ़वालमें डोली और पालकीका

प्रश्न भी है। हरिजन भाइयोंमें जब किसीका विवाह होता है, स्वभावतः उसकी इच्छा डोली और पालकीका व्यवहार करनेकी होती है, परन्तु उच्च जातिके लोगोंके अत्याचारोंके कारण वह वैसा करने नहीं पाता। अक्सर यह देखनेमें आता है कि किसी हरिजनकी बारात जब गांवमें होकर निकलती है और यदि गांववालोंको पता चल जाता है, तो वे इस बातपर अड़ जाते हैं कि गांवमें किसी हरिजनको—वर या वधूको भी—पालकीमें बैठकर नहीं निकलना चाहिए। इससे उस गांवकी हालतकी कल्पना सहज ही की जा सकती है, जहांसे बारात चलती होगी या जहां वह पहुंचती होगी।

गढ़वालके सवर्णोंकी यह मनोवृत्ति बहुत ही लज्जाजनक है। यह कुछ २-२॥ हजार हरिजन आर्यसमाजियोंका नहीं, एक लाख सर्वसाधारण हरिजनोंके नागरिक अधिकारोंका प्रश्न है। आज हम जिस युगमें हैं, उसमें यदि किसी व्यक्तिके पास पैसा हो, हाथी, घोड़ा और मोटरकी तो गिनती ही क्या है, वह हवाई जहाज भी खरीद सकता है और कोई सवर्ण किसी भाईको वैसा करनेसे रोकनेका साहस नहीं कर सकता। हरिजन भाई इसका अपवाद नहीं हैं और वे भी यदि सुभीता हो, मोटरका उपयोग कर ही सकते हैं। इस स्थितिमें किसीको डोली और पालकी-जैसी तुच्छ बातें उठाकर अपने ही भाइयोंके स्वाभिमानको ठेस पहुंचानेकी निन्दनीय चेष्टा नहीं करना चाहिए और बड़प्पनके झूठे मोहको छोड़ देना चाहिए। अपने ही भाइयोंसे घृणा करने और उन्हें दूर-दूर करनेमें न तो बड़प्पन है और न बुद्धिमानी है। समयका और यदि समयको समझनेकी बुद्धि न हो तो स्वार्थका तकाजा यह है कि उच्च जातिके भाई अपने इन भाइयोंको खुशीसे गले लगायें और उन्हें अपने समान सारी सुविधायें देकर सच्चे अर्थमें अपने बड़प्पनका, अपने हृदयकी विशालताका परिचय दें; किन्तु यह परिचय देते हुए भी इस बातको भूल न जायें कि हरिजनोंको ये सब सुविधायें देकर वे कोई अहसान नहीं कर रहे हैं, अपना कर्तव्य पालन कर जीवन सफल बना रहे हैं।

अन्धविश्वाससे अनर्थ

"कुछ अज्ञात व्यक्तियोंने शिरमें चोट पहुंचायी, इसीलिए उसकी मृत्यु हुई"—एक फैसलेकी ये पंक्तियां समाजमें



श्रीमती श्रीदेवी मुसद्दी, कानपुरकी प्रथम मारवाड़ी महिला, जिन्हें भौती गांवमें सत्याग्रह करनेके कारण गत १३ फरवरीको भारत-रक्षा कानूनके अनुसार गिरफ्तार किया गया।

फैले हुए अन्धविश्वासकी एक दुःखजनक घटनाकी याद दिलाती हैं, जो कलकत्तेसे १८ मील दूर एक गांवमें गत १६ जनवरीको घटित हुई। बरुईपुरमें ४९ वर्षकी एक हिन्दू विधवा रहती थी। उसे अर्सेसे मलेरिया ज्वर आता था। उस दिन वह मूर्छित हो गयी। गांववालों और उसके लड़केने यह समझ लिया कि वह मर गयी। इसपर सब लोग उसे श्मशान ले गये। उसे चितापर रखकर आग लगायी ही थी कि अचानक वह उठकर बैठ गयी। मूर्छित होनेके समय वह अपने घरमें थी। चितासे उठनेपर उसने अपनेको अन्य स्थानमें विचित्र स्थितिमें पाया, लोगोंकी भीड़ भी देखी। सब कुछ देखकर बुढ़िया घबड़ा गयी, उसने कुछ कहा; परन्तु किसीकी समझमें नहीं आया। लोगोंने जब बुढ़ियाको चितासे उठते देखा, उन्होंने सोचा कि हो न हो, यह भूतकी ही हरकत है। पहले तो वे सब दूर भाग गये, परन्तु बादमें हिम्मत की और पास आकर उस बेचारीपर लाठियोंसे प्रहार करना आरम्भ कर दिया। बुढ़ियाके

लड़केने रोका; परन्तु उसकी सुनता कौन ! उसके चिल्लानेपर पुलिस और अन्य लोग वहां पहुंचे, परन्तु तब तक वह बेचारी बुरी तरह घायल हो चुकी थी। इसी अवस्थामें अगले दिन उसे कलकत्ते लाया गया, जहां दो दिन पीछे उसकी मृत्यु हो गयी।

यह हृदय-विदारक घटना बतलाती है कि अन्धविश्वास-के वशीभूत मनुष्य हृदयहीन ही नहीं, बुद्धिहीन भी बन-कर कैसा राक्षसी कर्म करनेके लिए तैयार हो सकता है। कल्पना कीजिये उस दृश्यकी, जब उस अबलाने मूर्छासे जगनेपर अपनेको श्मशानमें पाया होगा और मूढ़ ग्रामीण और कुटुम्बी बदहवास होकर उसपर लाठियां बरसाने लगे होंगे! वह चिल्लाती होगी और नरपिशाच उसका भूत उतारनेमें अपनी मनुष्यताका श्राद्ध कर रहे होंगे। बेचारी बुढ़िया उनकी आंखोंके सामने वर्तमान हो रही थी और अन्धविश्वास उसे भूत बनानेपर तुला हुआ था। भूतों सम्बन्धी मूढ़ विश्वासके कारण आये दिन अनेक शोचनीय घटनायें होती रहती हैं और विविध व्याधियोंसे पीड़ित होनेपर भूतों सम्बन्धी मिथ्या विश्वासोंके कारण कोई उपचार कराये बिना ही देशमें हजारों मनुष्य मरते रहते हैं और ओझों और स्यानोंकी दूकान चलती रहती है। इस सामाजिक बुराईकी जड़ है वह अज्ञान, जिसने काफी गहराई तक अपनी जड़ें फैला रखी हैं और जिसके कारण समाज-सुधारका कार्य बड़ी धीमी गतिसे अग्रसर हो रहा है।

अभी उस दिनकी घटना है—एक सज्जनसे बातचीत हो रही थी। इन पंक्तियोंके लेखकने प्रश्न किया कि आपने अपनी लड़कीको स्कूलमें दाखिल करानेके सम्बन्धमें क्या निश्चय किया? उन्होंने कुछ सङ्कोचके साथ कहा—"क्या बताऊं, जब-जब उसकी पढ़ाई आरम्भ की जाती है, उसकी तबियत खराब हो जाती है, ज्वर आदि किसी न किसी तरहकी शिकायत पैदा हो जाती है। उसे भर्ती करानेका इरादा अभी छोड़ दिया है।" बात यह हुई कि उक्त सज्जनने अपनी ७-८ सालकी लड़कीको पढ़ानेके लिए एक अध्यापक रखा था। अध्यापक रखनेके कुछ दिन बाद ही लड़कीको ज्वर आने लगा और उस अध्यापकको छुड़ाकर पढ़ाई बन्द कर दी गयी। बहुत दिनों पीछे एक अन्य अध्यापक रखा गया और उसे पढ़ाते दो दिन ही हुए थे कि लड़कीको चेचक निकल आयी और बादमें भी स्वास्थ्य कुछ ठीक न रहा। बस, यह विश्वास हो गया कि हो न हो, पढ़ाईके साथ लड़कीके बीमार हो जानेका जरूर कुछ सम्बन्ध है। समझानेकी चेष्टा तो बहुत की गयी; परन्तु ऐसा मालूम हुआ कि शायद किसी अज्ञात प्रभावके कारण वे इस मामलेमें अपनी विवशता अनुभव कर रहे हैं। जो हो, पढ़े-लिखे लोगोंमें भी जब इस तरहके मूढ़-विश्वास देखनेमें आयें, तब यह कैसे आशा की जा सकती है कि समाज प्रगति-पथपर तेजीके साथ अग्रसर हो सकता है। अन्ध-विश्वासोंके चंगुलमें फंसे हुए अभिभावकोंके हाथोंमें बच्चोंके रूपमें देशका भविष्य कैसे खतरेमें है, उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। यह काम युवकोंका है कि प्रत्येक सम्भव उपायसे वे सभी तरहके अन्धविश्वासोंपर चारों ओरसे प्रहार करें और इसका कोई अवसर हाथसे न जाने दें।



सङ्गीतके साथ आक्रमण

पोलेण्डपर आक्रमण करनेमें जर्मनोंने पैदल सेना और हवाई जहाजोंके सहयोगका अपूर्व कौशल दिखलाया था। पोलैण्डके बाद अप्रैल १९४० में जब जर्मनोंने नारवेपर आक्रमण किया और राजधानी ओसलोपर अधिकार जमाया, उन्होंने सङ्गीतके सम्मोहनास्त्रका उपयोग बड़ी सफलताके साथ किया। इसी तरह हालैण्डमें पैराशूटों द्वारा जितनी अधिक संख्यामें सैनिकोंको उतारा गया, उसका भी कोई उदाहरण नहीं है। फ्रान्स जर्मनीकी इस चालसे पूरी तरह सतर्क रहा; परन्तु वहां जर्मनोंने इतनी अधिक संख्यामें टैङ्कोंसे काम लिया कि फ्रान्सीसियोंसे कुछ करते-धरते न बन पड़ा। गत सितम्बरमें हिटलरने इंगलैण्डके आकाशमें सैकड़ों हवाई जहाज एक साथ भेजकर अग्निवर्षा करने और ब्रिटिश जनताको त्रस्त कर देनेकी चालसे काम लिया; परन्तु इसमें उसे विफल हो जाना पड़ा। उसके हवाई जहाजोंकी क्षति भी बहुत अधिक—ब्रिटेनके हवाई जहाजोंकी क्षतिकी तुलनामें कई गुनी हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि अब ब्रिटिश टापूपर जर्मनोंके हमलेका जोर कम हो गया है और वह इधर कई महीनेसे अपना समय मुख्यतः बालकन और भूमध्यसागरकी राजनीतिमें लगा रहा है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसने इंगलैण्डपर हमला करनेका इरादा छोड़ दिया है। गत २४ फरवरीको नाजी पार्टीके ११ वें जन्म-दिवसपर म्यूनिक बीयर सेलेरमें हिटलरने जो भाषण किया, उसमें उसने अपने इस इरादेके सम्बन्धमें कहा कि 'हमारा सामुद्रिक युद्ध तो अब शुरू होगा। हम नयी पनडुब्बियोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मार्च और अप्रैलमें वह जल-युद्ध आरम्भ होगा, जिसकी कभी आशा भी न की गयी होगी। ब्रिटेन जब यूरोपमें कदम रखेगा, हम उसका मुकाबिला करेंगे। जहां-जहां ब्रिटिश जहाज जायेंगे, हमारी पनडुब्बियां अन्त तक जायेंगी। मैंने प्रतीक्षा करना सीखा है, और प्रतीक्षा करनेके इस समयमें मैं बैठा नहीं रहा हूं।"

नारवेकी राजधानी ओसलोपर अधिकार जमानेके समय जर्मनोंने सङ्गीतके सम्मोहनास्त्रसे किस तरह काम लिया और कुछ समयके लिए नागरिकोंको किस तरह मन्त्र-मुग्ध कर दिया, यह विवरण बड़ा ही मनोरञ्जक है। उस दिन ओसलोमें जर्मन बैण्ड मनोहर सङ्गीत और जर्मन एवं अमेरिकन नृत्यके स्वर निकाल रहा था। जर्मन सैनिक सड़कोंपर दिखलाई पड़ते थे; परन्तु एकार्डियन बाजेके साथ खुशीसे गाते हुए, मानो कोई वैसी बात न हो। पार्लमेण्ट-भवनके सामने नाजियोंका एक बैण्ड मधुर सङ्गीत अलाप रहा था और ओसलोके नागरिक उसका आनन्द ले रहे थे। इस तरहका विचित्र सङ्गीत उन्होंने भला पहले कब सुना होगा। सम्भवतः उनमेंसे किसीको यह पता न था कि सङ्गीतकी इस स्वर-लहरीकी आड़में जर्मन सेनायें बड़े वेगसे नारवेके समुद्र-तटपर उतर रही हैं। जर्मन बैण्डके इस सङ्गीतका सिलसिला दिन-भर—काफी रात बीत जाने तक जारी रहा और ऐसा कभी न हुआ कि उसके चारों ओर सुननेवालोंकी भीड़ न रही हो। इस कौशलसे काम लेकर ९ अप्रैल १९४० को जर्मनोंने कुछ ऐसा जादू कर दिया कि यद्यपि जर्मन सैनिकोंकी संख्या कुल १५०० थी और ओसलो-

की जनसंख्या थी लगभग २॥ लाख, तथापि किसीने उनका मुकाबिला नहीं किया। सब मन्त्र-मुग्धकी तरह दिन-भर मजेसे बैण्ड सुनते रहे।

जिस समय ओसलोके नागरिक जर्मन बैण्ड सुननेका मजा लूट रहे थे, दिनमें जर्मन सैनिकोंकी छोटी-छोटी टुकड़ियां उनकी स्वाधीनता लूटनेमें लगी हुई थीं, पार्लमेण्ट-भवन और अन्य सरकारी इमारतोंपर दखल जमा रही थीं, पार्लमेण्ट भवनकी खिड़कियोंमें खड़े हुए जर्मन सैनिक खुशीके गीत गा रहे थे औ उनका एक साथी एकार्डियन बाजा बजा रहा था। नीचे फुटपाथपर ओसलोके नागरिकोंकी भीड़ लगी हुई थी। उनके चेहरेपर चकित होने जैसा भाव था; परन्तु उसमें किञ्चित् प्रसन्नताका भी पुट लगा हुआ था।

दो दिन बाद सङ्गीतके इस सम्मोहनास्त्रका प्रयोग विस्तृत रूपमें किया गया। उस दिन २० हजार जर्मन सैनिकोंका मुख्य दल उतरा। बन्दरगाहके अर्धवृत्ताकार क्षेत्रमें अद्भुत दृश्य दिखलाई पड़ता था। सम्भवतः जर्मन सेनाओंके तीन प्लाटून बांधपर थे। उनका सामान वहीं सामने था और बन्दूकोंके ढोके लगे हुए थे। इसी समय "चलो नगरकी ओर चलें" इस सङ्गीतके साथ जर्मन सैनिकोंने कदम उठाया और इसका उत्तर सङ्गीतकी हीस्वर-लहरीसे उन जहाजोंने दिया, जिन्होंने थोड़ी देर पहले इन सब सैनिकोंको उतारा था। चारों ओर सङ्गीत-ध्वनि गूंज उठी। इस सङ्गीतका अर्थ यह था कि जो सैनिक उतर रहे हैं, उनके लिए कोई खटकेकी बात नहीं है। ओसलोके नागरिक यह नहीं समझ सके कि उनकी राजधानीपर दखल जमाया जा रहा है।

बैण्ड और सङ्गीतका यह समा कई घण्टे तक रहा। इस बीचमें सारी जर्मन सेना उतर गयी। नारवेकी सेनाने नगरकी रक्षाके लिए कुछ नहीं किया, इससे लोगोंको बड़ा अचम्भा हुआ और जब नाजी हवाई जहाजोंने आकाशमें उड़ना आरम्भ किया, वे हक्क-बक्के होकर रह गये। यद्यपि इन नाजी हवाई जहाजोंने बम नहीं गिराये थे, तथापि वे यह तो देख ही रहे थे कि मशीनगनोंके साथ हजारों सैनिक निकल रहे हैं। उस समय उनकी उदासीनता दूर हुई और उन्हें वास्तविक परिस्थितिका पता चला; परन्तु अब क्या हो सकता था।

१२ अप्रैलको जहाजोंमें और भी जर्मन सैनिक पहुंचे और जहां तक ओसलोका प्रश्न था, मुकाबिला करना असम्भव हो गया। अब किसीको धोखेमें रखनेकी जरूरत नहीं थी। सङ्गीत और बैण्डका स्वर अब कहीं न सुन पड़ता था। सङ्गीतकी यह स्वर-लहरी ओसलोकी स्वतन्त्रताको बहा ले गयी।

वर्तमान युद्धमें भविष्यका स्वप्न

हाल ही में लन्दनमें एक सभा हुई, जिसमें युद्ध-मन्त्रि-मण्डलके प्रमुख सदस्य अर्नेस्ट बेविनने पोलैण्डकी राष्ट्रीय कमेटीके प्रधान जनरल सिकोर्सकीको भरसक सहायता देनेका आश्वासन दिया। जनरल सिकोर्सकीने अपनी वक्तृता देते हुए कहा कि अबकी बार पोलैण्ड अवश्य ही राष्ट्र-सङ्घके अनुशासनोंका पालन करेगा। इस सभामें एच० जी० वेल्स भी थे। आपने जनरल सिकोर्सकीके भावोंकी प्रशंसा की।

गत महायुद्ध (१९१४-१८) राष्ट्रीयता, स्वराष्ट्र-निर्णयके सिद्धान्तोंकी रक्षाके नामपर हुआ था। प्रेसिडेण्ट विल्सन (संयुक्त राज्य अमेरिका) ने इन सिद्धान्तोंके आधारपर ही मध्य और पूर्वीय यूरोपमें कतिपय नये राष्ट्रोंके निर्माणपर जोर दिया। परिणामतः आस्ट्रिया और हंगरी अलग हो गये; जेकोस्लोवेकिया, फिनलैण्ड, लेटविया, एस्थोनिया, लिथुआनिया, पोलैण्ड आदि नये राष्ट्र बनाये गये और जर्मनी, आस्ट्रिया और रूसका बहुत-सा भूभाग इसी सिद्धान्तके आधारपर नये राष्ट्रों अथवा पुराने साम्राज्योंको दे दिया गया। अल्पसंख्यक जातियों और मतोंकी समस्याका बीज बो दिया गया। जेकोस्लोवेकियामें रहनेवाले जर्मन, रूथेनियन, स्लोवेक, पोल और हंगेरियन; यूगोस्लेवियामें रहनेवाले क्रोट, ग्रीस और मुसलिम; रूमानियामें रहनेवाले हंगेरियन, यूक्रेनियन और बलगर; पोलैण्डमें रहनेवाले यूक्रेनियन, रूसी, जर्मन, लिथुएनियन और यहूदी आदि अपने अधिकारोंके लिए आवाज उठाने लगे।

आर्थिक विषमताओं, शस्त्रीकरण और युद्ध आदिकी समस्याओंपर विचार करने और उनको शान्तिमय ढङ्गसे सुलझानेके लिए एक राष्ट्र-सङ्घकी स्थापना हुई। परन्तु यहांपर भी राष्ट्रीयताने अपना शिर उठाया और सङ्घको प्रायः असफल बना दिया। राष्ट्रीय स्वार्थपरताने अन्तर्राष्ट्रीयताके

बन्धनोंको शिथिल कर दिया और बीस वर्षके अवकाशमें संसारको एक दूसरा विश्वव्यापी युद्ध देखना पड़ा।

हां, इस बार विचार-धारा बदली हुई है। पिछली बार राष्ट्रीयताकी लहर थी। परन्तु इस बार राष्ट्रीयताके लिए उतना उत्साह नहीं। बेल्जियम, लग्जेम्बर्ग, हालैण्ड, नारवे जैसे छोटे-छोटे राष्ट्रोंका पतन विचारकों और राजनीतिज्ञोंके सामने है। गत महायुद्धके पूर्व बेल्जियमको स्वतन्त्रताकी गारण्टी मिली हुई थी, जिसके अनुसार ब्रिटेन और फ्रान्सने उसे सहायता दी। इस बार बेल्जियमने गारण्टी स्वीकार नहीं की और परिणाम पाठकोंके सम्मुख है। परन्तु इस समय चारों ओर सङ्घ-शासनके विचारोंका प्राधान्य है। पोलैण्ड जैसा राष्ट्र, जिसने कि राष्ट्र-सङ्घके अनुशासनोंको भङ्ग किया था, आज भी इन सिद्धान्तोंमें अपना विश्वास प्रकट करता है। इससे विचार-परिवर्तनका अनुमान किया जा सकता है।

इन विचारोंका आधार क्या है? इतिहासके पण्डित भली भांति जानते हैं कि जब तक विज्ञानकी इतनी उन्नति नहीं हुई थी, जब तक आने-जानेके मार्ग सुगम न थे और शीघ्रगामी सवारियां न थीं, तब तक प्रथम तो बड़े-बड़े राष्ट्र न थे, यदि थे भी, तो उनके शासनका इतना केन्द्रीकरण न हुआ था। तार, वायुयान और रेडियो तथा विद्युत्शक्ति कल्पना-मात्र थे। परन्तु आज इन आविष्कारोंने राष्ट्रीय सीमाओंको तोड़ दिया है। राष्ट्रके अन्दर तो सङ्गठित और केन्द्रित शासन है ही, एक राष्ट्रका दूसरे राष्ट्रसे भी सम्बन्ध जुड़ गया है। सड़कें, रेलगाड़ियाँ, तार, केबिल-ग्राम, जहाज और हवाई जहाज आये दिन राष्ट्रोंकी सीमाओंको पार किया करते हैं और रेडियो तो शत्रुकी सीमाओंको भी पार कर जाता है। सारांश यह कि आज संसारकी सीमायें सिकुड़ गयी हैं, संसारके राष्ट्र एक-दूसरेके बहुत निकट आ गये हैं—आचार-विचार, खान-पान और ज्ञान-विज्ञानमें भी। ऐसी दशामें छोटे-छोटे राष्ट्रोंको राष्ट्रीय सीमाओंके अन्दर सीमित रखना अप्राकृतिक और सर्वथा कृत्रिम है।

आर्थिक शक्तियां भी छोटे राष्ट्रोंको मिटानेपर तुली हुई हैं। इस संसारमें छोटे-छोटे राष्ट्र व्यापारिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। बड़े-बड़े कारखाने बनाना, राष्ट्रके औद्योगीकरणकी बड़ी-बड़ी योजनायें आरम्भ करना इन राष्ट्रोंके लिए सम्भव नहीं। आजकल एक राष्ट्रको औद्योगीकरणके लिए अनेक प्रकारके कच्चे माल और धातुओंकी आवश्यकता होती है। इन वस्तुओंके लिए छोटे राष्ट्रोंको सदैव ही अन्य राष्ट्रोंके अधीन रहना पड़ेगा, अथवा बिना औद्योगिक उन्नतिके वे सभ्यतामें पिछड़ जायेंगे और ग्राम्य उद्योगोंके सहारे स्वतन्त्र भी न रह सकेंगे। यदि औद्योगीकरण भी सम्भव हो सका, तो बाजारोंकी आवश्यकता होगी और आज जब कि संसारके प्रत्येक देशने आयात-करसे अपने बाजार बाहरी देशोंके लिए बन्द कर दिये हैं, ऐसी अवस्थामें इन छोटे राष्ट्रोंका स्वतन्त्र आर्थिक जीवन दो दिन न चल सकेगा। यही कारण है कि बालकन देशोंको प्रथम तो ब्रिटेन और फ्रान्स और आज जर्मनीके आश्रित रहना पड़ा। यही दशा स्केण्डीनेवियाके देशों और नीदरलैण्डकी भी थी। स्पष्ट है कि आर्थिक दृष्टिसे भी छोटे राष्ट्रोंको राष्ट्र-सङ्घोंका अङ्ग बन जाना चाहिए था। १९३१ में जर्मनाने आस्ट्रियासे इसी प्रकारका एक आर्थिक सङ्घ बनानेका प्रस्ताव किया था। ओटावा कान्फरेन्समें ब्रिटिश साम्राज्यने अपने आर्थिक बन्धनोंको और भी मजबूत किया। इसी समय अमेरिका, फ्रान्स और जर्मनीमें इसी प्रकारकी विचार-धारायें घर कर चुकी थीं और जापानने पूर्वमें एक नवीन व्यवस्थाको घोषणा की थी।

इस युद्ध (१९३९) ने भी एक बात तो स्पष्ट कर दी—छोटे-छोटे स्वतन्त्र राष्ट्रोंका जीवन अब सङ्कटमें है। छोटे राष्ट्र अपनी सीमाओंकी रक्षा नहीं कर सकते। ठीक है कि युद्धमें मशीनोंकी आवश्यकता अधिक है। परन्तु कोई छोटा राष्ट्र इतनी मशीनें और युद्ध-सामग्री भी पैदा नहीं कर सकता। ब्रिटेनके पीछे केवल ४॥ करोड़ ब्रिटेन-निवासी ही नहीं, लगभग ४९ करोड़ साम्राज्यके नागरिक भी हैं। तभी तो वह जर्मनीसे मोर्चा लेनेमें समर्थ हो सका है। आजकल युद्धमें मशीनोंके साथ-साथ मनुष्योंकी भी आवश्यकता है। आजके युद्ध जन-युद्ध हैं। जो नागरिक युद्धमें जाकर तोप और बन्दूकें नहीं चलाते, वे भी कुली आदिका काम करते हैं, सामानके लाने और ले जानेमें सहायक होते हैं, अन्यथा घरपर खेतीबारी करते अथवा पुतलीघरोंमें सहायक होते हैं। इन सभी खाद्य-पदार्थों और मशीनोंकी सहायतासे लड़ाइयां लड़ी जाती हैं। चीन-जापान-

युद्धमें उभयपक्षके लगभग ४० लाख सिपाही खेत आ चुके हैं, लगभग ४० लाख ही मैदानमें आज भी जुटे हुए हैं और शेष लगभग ५० करोड़ नागरिक इस युद्धके लिए सामग्री जुटा रहे हैं। हिटलरकी छत्रछायामें लगभग २० करोड़ नागरिक हैं, सोवियट प्रजातन्त्रकी जन-संख्या भी लगभग इतनी ही है। इन राष्ट्रोंके सामने किसी छोटे राष्ट्रके लिए मोर्चा लेना सरल कार्य नहीं।

यह तो स्पष्ट है कि राष्ट्र-रक्षा, राजनीतिक, वैज्ञानिक तथा आर्थिक—किसी भी दृष्टिसे छोटे राष्ट्रोंका जीवन आज सङ्कटमें पड़ गया है। इन शक्तियोंको ध्यानमें रखते हुए संसारके कुछ विचारकोंने राष्ट्र-सङ्घ और सङ्घ-शासनके विचार संसारके सम्मुख रखे।

संसारमें सङ्घ-शासनोंका इतिहास है। प्राचीन कालमें भी ग्रीस और भारतवर्ष तथा रोममें इस प्रकारके शासन पाये जाते थे। परन्तु इस समय स्विजरलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा और दक्षिणी अफ्रीकाके उदाहरण हमारे सामने हैं। बर्नार्ड शाका कहना है कि इन उदाहरणोंको लेकर ही राष्ट्र-सङ्घकी स्थापना की गयी थी। चाहे उदाहरण किसी भी सङ्घसे लिया गया हो, इस विचारको सर्वप्रथम प्रेसिडेण्ट विल्सनने ही संसारके सन्मुख रखा था। हां, इसके पूर्व भी, एच० जी० वेल्स महोदय इन विचारोंको लेकर लन्दनमें अपनी एक लीग बना चुके थे। इसी प्रकारकी कई लीगें यूरोप और अमेरिकाके अनेक देशोंमें फैली हुई थीं।

परन्तु जिस समय इस विचारको कार्यरूपमें परिणत करनेका समय आया, उस समय राष्ट्रोंमें मतभेद हो गया।

राष्ट्र-सङ्घ जन्मसे ही दुर्बल उत्पन्न हुआ। जिनेवामें अनेक राष्ट्रोंके प्रतिनिधि मिलते थे; परन्तु वे मिलकर किसी प्रश्नपर निर्णय करने, अथवा एक प्रश्नको बहुमतसे पास कर उसको कार्यरूपमें परिणत करनेपर बाध्य न थे। कोई एक राष्ट्र राष्ट्र-सङ्घके निर्णयको ठुकरा सकता था। और जहांपर कि राष्ट्रोंके हितोंमें विषमता हो, वहां सर्वसम्मति प्राप्त करना असम्भव होता है। राष्ट्र-सङ्घके कुछ सदस्योंके पास अपने अधिकृत देशोंके वोट थे, अतएव राष्ट्र-सङ्घमें सब देशोंको समानताके अधिकार भी न थे। इसके अतिरिक्त राष्ट्र-सङ्घके न्यायालयके निर्णय सर्वमान्य न थे, उसके प्रस्ताव भी अनेक राष्ट्र माननेके लिए बाध्य नहीं किये गये। जापान, जर्मनी और इटली, एक-एककर राष्ट्र-सङ्घसे अलग हो गये; परन्तु राष्ट्र-सङ्घने उनपर अपने निर्णयोंको माननेके लिए दबाव नहीं दिया। अतएव, राष्ट्र-सङ्घसे राष्ट्रोंका विश्वास ही हट गया।

कारण भी स्पष्ट थे। कुछ बड़े-बड़े राष्ट्र आरम्भसे राष्ट्र-सङ्घमें सम्मिलित न थे। संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियट रूस और दक्षिणी अमेरिकाके कुछ देश प्रारम्भमें राष्ट्र-सङ्घसे अलग रहे। और संयुक्त राज्य अमेरिका सदैव ही राष्ट्र-सङ्घसे अलग रहा। राष्ट्र-सङ्घके पास अपनी कोई पुलिस अथवा सेना भी न थी, जिसकी सहायतासे राष्ट्र-सङ्घ अपने निर्णयोंको कार्यरूपमें परिणत करता। और राष्ट्रीय प्रभुत्वकी भावनायें हर प्रकारसे राष्ट्र-सङ्घके कार्यमें बाधक होती थीं।

राष्ट्र-सङ्घकी इन कमजोरियोंके कारण संसारको यह घातक युद्ध देखना पड़ा। अतएव, आजकल, संसारके विचारक इन दुर्बलताओंको निवारण करनेकी अनेक युक्तियां सोच रहे हैं।

बर्नार्ड शा, हैरोल्ड लास्की अथवा वेल्स जैसे विद्वान् तो किसी भी प्रकारकी शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाके लिए तत्पर हो सकते हैं। वे तो चाहते हैं कि राष्ट्र स्वाभिमानकी भावनाओंका त्याग कर एक शान्तिमय अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाकी स्थापना करनेमें सहायक हों। राष्ट्र-सङ्घकी अपनी निजी सेना, पुलिस, नौकरशाही, न्यायालय आदि होने चाहिए और उसकी आज्ञायें प्रत्येक राष्ट्रके लिए शिरोधार्य हों। हां, अल्पमताधिकार, सांस्कृतिक स्वतन्त्रता आदि सुरक्षित होनी चाहिए।

अन्य अनेक विद्वान् इन विचारोंसे पूर्णरूपेण सहमत नहीं। कोई राष्ट्र-सङ्घके एक अङ्गको दुर्बल रखना चाहता है, कोई दूसरेको।

इस युद्धके आरम्भ होनेके कुछ ही मास पूर्व अमेरिकाके एक पत्रकारने एक पुस्तक लिखी; जिसका नाम यूनियन नाउ (अब राष्ट्र-सङ्घ हो) है। इस लेखकने नात्सी और फासिस्ट तथा समाजवादी निरंकुश शासनोंसे भयभीत हो प्रजातन्त्रोंको सुरक्षित रखनेका एक मार्ग निकाला। इसके अनुसार यूरोपके बारह प्रजातन्त्र राज्य और संयुक्त राज्य अमेरिका मिलकर एक सङ्घशासन स्थापित करें, जिनका कि राजनीतिक, आर्थिक और फौजी सम्बन्ध हो। उनका अपना एक न्यायालय, पुलिस, व्यवस्थापिका सभा, आर्थिक कमीशन आदि होंगी। इस पुस्तकपर संसारके विद्वानों और राजनीतिज्ञोंने अपने विचार प्रकट किये। अमेरिकाने पुस्तकका स्वागत किया, यूरोपने नहीं। ब्रिटेनने समझा कि यह अमेरिकाको शक्तिशाली बनानेका यत्न है। इसके पश्चात्, जब युद्ध आरम्भ हो गया, तब तो अनेक शान्तिवादी और मजदूर दलके विद्वानोंने राष्ट्र-सङ्घ और सङ्घशासनोंके सम्बन्धमें विचार करना आरम्भ किया। प्रोफेसर लास्की, वेल्स, बारबारा वूटन, कोल आदिने राष्ट्रसङ्घकी योजनाका समर्थन किया। डाक्टर डाल्टनने भी, जो ब्रिटेन द्वारा की हुई नाकेबन्दीके मन्त्री हैं, "हिटलरका युद्ध" (Hitlar's war) नामक पुस्तक लिखी। ब्रिटेनकी मजदूर पार्टीने भी इस सम्बन्धमें अपने प्रस्ताव पास किये। डा० डाल्टनने ब्रिटेन और फ्रान्सके सङ्घपर जोर दिया है। इनकी एक व्यवस्थापिका सभा, फौज आदिका प्रस्ताव रखा है। पिछले जून (१९४०) में, जब तक कि फ्रान्स पराजित न हुआ था, ब्रिटेनने यही प्रस्ताव मोशिये रेनाडके सामने रखा था, परन्तु फ्रान्सने स्वीकार न किया।

सभी विद्वानोंकी योजनाओंमें एक भारी कमी है। ये विद्वान् संसारकी लगभग एक अरब जनताको भूल जाते हैं। सारी योजनायें केवल स्वतन्त्र देशोंके लिए हैं; उपनिवेशों—अफ्रीका, भारत, चीन जैसे देशोंके लिए नहीं। योजनाओंकी यह सबसे बड़ी त्रुटि है। इसी कारण, डी० एन० प्रिटको इन योजनाओंकी धुर्रियां उड़ानेका अवसर मिल गया है। उसका कहना है कि ये योजनायें असफल होंगी। प्रथम तो

उपनिवेश दासता स्वीकार न करेंगे और बार-बार सङ्घ-शासनोंके विरुद्ध सर उठायेंगे, दूसरे स्वयं स्वतन्त्र राष्ट्रोंमें उपनिवेशोंके आधारपर वैमनस्य पैदा हो जायेगा, और बाजारोंके लिए युद्ध आरम्भ हो जायेंगे। जो कठिनाइयां राष्ट्र सङ्घके सामने थीं—राष्ट्रोंकी बाजारोंके लिए स्पर्धा और उपनिवेशोंके स्वातन्त्र्य युद्ध—भावी सङ्घोंके सम्मुख भी रहेंगी। इस समालोचनामें सत्यकी मात्रा है। इस विद्वान्‌का कहना है कि सङ्घ-शासन साम्यवाद और स्वतन्त्रताके आधारपर ही स्थापित किये जा सकते हैं। समानता सङ्घ-शासनके लिए प्रथम सोपान है, उपनिवेशों और अधीन देशोंको स्वतन्त्रता देना पहला कदम है। प्रिटका आदर्श सोवियट सङ्घ-शासन है।

हिटलर और मिकाडोके भी (यूरोप और एशियाके लिए) अपने निजी स्वप्न हैं। एक यूरोपमें नूतन व्यवस्था स्थापित करना चाहता है, दूसरा एशियामें। जर्मनीकी ओरसे, गत महायुद्धसे पूर्व ही, मिटिल यूरोप (Mittel Europe) की एक योजना प्रकाशित हुई थी। इसका अर्थ भी जर्मनीका नेतृत्व स्थापित करना था—हिटलरकी नव्य व्यवस्थाका भी। हिटलर और मिकाडो, दोनों ही निरंकुश शासन स्थापित करना चाहते हैं। अतएव ये योजनायें व्यवहार्य नहीं। हां, अमेरिकामें एक अखिल अमेरिका कान्फरेन्स हो चुकी है और संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाकी मनरो-नीतिके आधारपर इन राष्ट्रोंका सङ्गठन हो रहा है। दूसरी ओर, ब्रिटिश साम्राज्य भी एक सङ्गठित इकाई है। अतएव किसी-न-किसी रूपमें ये दो सङ्घ संसारके सम्मुख आ चुके हैं। नये सङ्घोंका निर्माण भविष्यके गर्भमें है।

नये विचारोंका प्रभाव भारतवर्ष और उसके सीमान्त-प्रदेशोंपर भी हुआ है। जब तक युद्ध आरम्भ न हुआ था, बर्मा और सीलोनमें भारत-विरोधी आन्दोलन उग्र रूप धारण कर चुके थे। भारतीय नागरिकोंका जान-माल इन देशोंमें सुरक्षित न था। परन्तु अब इन राष्ट्रोंको भान हुआ है कि उनकी स्वतन्त्र सत्ता बिना किसी बड़े राष्ट्रकी सहायताके असम्भव है। अतएव वे भारतके निकट आना चाहते हैं। भारतीय सङ्घ-शासनका एक अङ्ग होनेके लिए भी कतिपय राजनीतिज्ञ उत्सुक हैं। बर्मामें तो भूतपूर्व प्रधान मन्त्री स्वयं इन विचारोंके समर्थक हैं; सीलोनमें भी, श्री देसाईके कथनानुसार, भारत-विरोधी आन्दोलन शान्त हो रहा है।

परन्तु स्वयं भारतमें भी कुछ सङ्घ-विरोधी विचार-धारायें हैं। उदाहरणके लिए, उग्रवादियोंका एक दल भारतकी सङ्घ-शासन-व्यवस्था (१९३५ के एक्ट) के विरुद्ध था, तथा मुसलिम लीग पाकिस्तानकी योजना सामने ला चुकी है।

सन् १९३५ के सङ्घ-शासन-सम्बन्धी एक्टके विरोधी तो बहुत-से विद्वान् और राजनीतिज्ञ रहे हैं; परन्तु सिद्धान्तसे, भारतके सङ्घ-शासनके विरोधी बहुत कम राजनीतिज्ञ थे। वे केवल उत्तरदायित्वपूर्ण सङ्घ-शासन चाहते थे, और १९३५ के सुधारोंमें यह उत्तरदायित्व केवल नामके लिए था। सारांश यह कि आज भारतवर्षके लगभग सभी दल सङ्घ-शासनके समर्थक हैं। इसके विरोधी नगण्य हैं, जो भारतके शासनको केन्द्रीय बनाना चाहते हैं।

हर्षका विषय यह है कि अब मुसलिम लीगके भी अनेक सदस्य पाकिस्तानकी योजनाको असम्भव समझते हैं—राजनीतिक, आर्थिक और सैनिक दृष्टिसे। सर सिकन्दर हयातने इस योजनापर खेद प्रकट किया है और मि० फजलुलहक देशके बड़े दलोंसे समझौता कर देशको उन्नतिकी ओर ले जाना चाहते हैं। स्वयं जिन्ना साहबने वायसरायसे पत्र-व्यवहार करते हुए पाकिस्तानपर बहुत कम जोर दिया है, मुसलिम प्रतिनिधित्वपर अधिक। और फिर पाकिस्तानके भी नित ही नये अर्थ निकाले जा रहे हैं। तात्पर्य यह कि पाकिस्तानको सङ्घ-शासनकी योजनामें ठीक ढङ्गसे बैठानेका प्रयत्न किया जा रहा है।

स्पष्ट है कि इस युद्धके अन्त तक अवश्य ही नयी विचार-धाराओंका प्राधान्य होगा। इस बार राष्ट्रीयताका नहीं, वरन् अन्तर्राष्ट्रीयता, अथवा राष्ट्र-सङ्घके विचारोंका। भारतवर्षपर भी इसका प्रभाव पड़ेगा और अन्य राष्ट्र-सङ्घोंके साथ ही भारत भी एक सङ्घ-शासन होगा। समाज और इतिहासका रुख बड़े-बड़े सङ्घ-शासनोंकी ओर है। इस प्रवाहको रोकना समाजके लिए घातक होगा। —अनिल

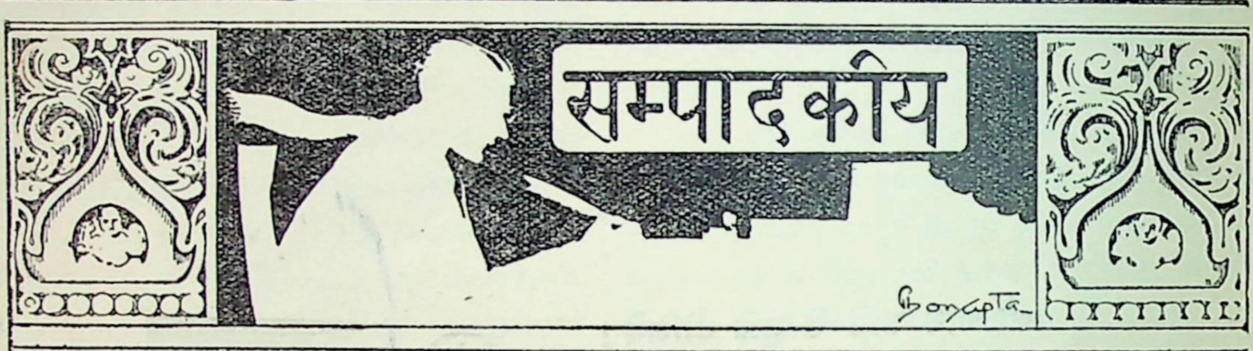




सारिडन



सब प्रकार का दर्द दूर करता है



एञ्जिन बनानेका उद्योग

"गत वर्ष बड़ी लाइनके रेलवे एञ्जिनोंको इसी देशमें तैयार करनेकी जो आशा दिलायी गयी थी, उसे स्थगित रखना पड़ा, क्योंकि युद्ध-सामग्री और फौजी जरूरतकी दूसरी चीजोंको तैयार करनेके लिए व्यवस्थाका विस्तार इतना अधिक करना पड़ा है कि दक्ष मजदूरों, मशीनों और विभिन्न प्रकारकी सामग्रीकी अत्यन्त आवश्यकता पड़ गयी है। इसीलिए वर्तमान स्थितिमें किसी तरहका उद्योग आरम्भ नहीं किया जा सकता और जो कारखाने बड़ी लाइनोंके एञ्जिन बनानेके लिए चुने गये थे, उन्हें युद्ध-सामग्री तैयार करनेके काममें लगा दिया गया है।"—यह अंश भारत-सरकारके रेलवे सदस्य सर एण्डरू क्लोके रेलवे बजट सम्बन्धी भाषणका है, जिसे उन्होंने गत १९ फरवरीको केन्द्रीय असेम्बलीमें दिया था। देशवासियोंको भारत-सरकारकी इस नीतिसे निराशा और क्षोभ होना स्वाभाविक है। जनताका यह क्षोभ केन्द्रीय असेम्बलीमें रेलवे बजटपर बहस होनेके समय गत २६ फरवरीको उस समय प्रकट हुआ, जब सरदार सन्तसिंहने बजटमें कमी करनेका एक प्रस्ताव रखकर सरकारकी इस नीतिपर विचार किया। बड़ी लाइनके एञ्जिनोंके इस देशमें बननेकी दृष्टिसे आज देशकी जो शोचनीय स्थिति है, उसके लिए भारत-सरकारकी नीति ही जिम्मेदार है। सर हेनरी गिडनी तकको यह स्वीकार करना पड़ा कि बड़े-बड़े उद्योग-धन्धोंकी दृष्टिसे आज हिन्दुस्तानकी जो स्थिति है, वह सरकारकी उस जिदका परिणाम है, जिसे उसने जानबूझकर किया है।" गत वर्ष सरकारने जब एञ्जिन बनानेके लिए बड़ा कारखाना खोलनेका विचार प्रकट किया था, तब युद्ध चल रहा था और सरकारी कमेटीने जब इस विषयमें अपनी रिपोर्टमें यह सिफारिश की थी कि "एञ्जिन बनानेका उद्योग आरम्भ करनेके लिए सबसे अधिक उपयुक्त समय यही है और बिना किसी विशेष सहायता या संरक्षणके उसे आरम्भ किया जा सकता है", तब भी युद्ध चल रहा था और युद्ध-जनित सारी परिस्थिति सामने थी। हम यह माननेके लिए तैयार नहीं हैं कि कमेटीके मेम्बरोंने युद्ध-जनित परिस्थितिकी सम्भावनाओंको ध्यानमें नहीं रखा होगा। परन्तु रेलवे सदस्य सर एण्डरू क्लोको इस बातसे क्या मतलब ? उनका काम तो विशेषज्ञोंकी इस रायको याद रखनेसे बनता है कि "अतीत कालमें हिन्दुस्तानने रेलवे एञ्जिन स्वयं न बना, विदेशोंसे खरीदकर लाभ उठाया है।" यह सही है कि युद्ध-सामग्री और दूसरी चीजोंको तैयार करनेके लिए व्यवस्थाका विस्तार किये जानेके कारण दक्ष मजदूरों, मशीनों और विभिन्न प्रकारकी सामग्रीकी अत्यन्त आवश्यकता पड़ गयी है; परन्तु यह कोई कारण नहीं है कि वर्तमान स्थितिमें भी उद्योग आरम्भ न किया जा सके—शर्त यही है कि सरकार उसे आरम्भ करनेका निश्चय करे। यह तो कोई कहता ही नहीं है कि युद्ध-सामग्री तैयार करना बन्द कर दिया जाय। हम केवल यही चाहते हैं कि एञ्जिन बनानेके उद्योगको कम महत्त्वपूर्ण न समझा जाय। देशवासी कितने समयसे इसके लिए चिल्लाते रहे हैं; परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला और गत वर्ष आशा बंधा देनेके बाद जब इस वर्ष उसके सम्बन्धमें कुछ बतलानेका समय आया, तब रेलवे सदस्य युद्ध-जनित कठिनाइयोंका बहाना बनाकर पीछे हट गये

और कहने लगे कि जनवरी १९४१ की स्थिति जनवरी १९४० से भिन्न है। यही नहीं, उन्हें निश्चित शब्दोंमें यह भी कहनेका साहस नहीं हुआ कि युद्ध समाप्त होते ही यह उद्योग आरम्भ कर दिया जायगा। आज जिस तरह युद्ध-जनित स्थितिकी आड़ लेकर देशकी इस बड़ी आवश्यकता-की उपेक्षा की जा रही है, क्या गारण्टी है कि युद्धके बाद भी वैसा ही कोई बहाना नहीं मिल जायगा।

निराशाजनक रेलवे बजट

भारत-सरकारके १९४१-४२ के रेलवे बजटके आंकड़ोंसे यह प्रकट है कि रेलवे विभागकी आर्थिक अवस्था बहुत ही सन्तोषजनक है और आमदनीमेंसे खर्च निकाल लेनेके बाद पिछले कई सालसे उत्तरोत्तर अधिक लाभ हो रहा है। १९३९-४० में ९७ करोड़ ६५ लाख रुपये आय, ९३ करोड़ २ लाख रुपये व्यय और ४ करोड़ ६३ लाख रुपये बचत हुई। चालू साल १९४०-४१ के बजटमें गत वर्ष १ अरब ३ करोड़ ७५ लाख रुपये आय, ९५ करोड़ ४६ लाख रुपये व्यय और ८ करोड़ २९ लाख रुपये बचत होनेका अनुमान था; परन्तु अब अनुमान है कि आय ५॥ करोड़ अधिक अर्थात् १ अरब ९ करोड़ २५ लाख रुपये, व्यय ८० लाख रुपये कम अर्थात् ९४ करोड़ ६६ लाख रुपये और बचत ६ करोड़ ३० लाख रुपये अधिक अर्थात् १४ करोड़ ५९ लाख रुपये होगी। आगामी वर्ष १९४१-४२ में आय १ अरब ८ करोड २५ लाख रुपये और व्यय ९६ करोड़ ४२ लाख रुपये और बचत ११ करोड़ ८३ लाख रुपये होनेका अनुमान है। आगामी वर्षमें आमदनीका अनुमान चालू सालसे कुछ कम रखा गया है; क्योंकि इस वर्ष जनवरीमें असाधारण रूपसे जो अधिक आमदनी हुई, उसका क्या ठिकाना। सम्भव है, आगामी वर्षमें वह न हो। इन आंकड़ोंसे जो बात बिलकुल स्पष्ट है, वह यह है कि गत दो वर्ष और आगामी वर्षमें रेलवे विभागको कुल मिलाकर ३१ करोड़ ५ लाख रुपयेकी बचत होनेका अनुमान है, जिसमेंसे २४ करोड़ ४७ लाखकी करारी रकम केन्द्रीय सरकारकी साधारण आमदनीके हिसाबमें शामिल कर दी जायगी और रेलवेको 'वही ढाकके तीन पात' की कहावत चरितार्थ करनेके लिए यों ही रहने दिया जायगा। साधारणतः रेलवे विभागकी इस सारी बचतको रेलवे निधिमें पड़ना चाहिए और उससे जनताको कुछ सुविधा मिलनी चाहिए; परन्तु यह नहीं होता। जब आमदनी कम होनेकी सम्भावना दिखलाई पड़ती है, तब किसी न किसी रूपमें भाड़ा और किराया तो बढ़ा दिया जाता है, जैसा कि गत वर्ष मार्चके आरम्भमें हुआ था; परन्तु जब बचत होने लगती है, तब उसका उपयोग न तो बढ़े हुए किराये-भाड़ेको कम करनेके लिए किया जाता है और न यात्रियोंको आराम मिलनेका कोई प्रबन्ध करनेके लिए। बचतका उपयोग जिस तरह किया जाता है, वह बहुत ही खेद और निराशाजनक है और रेलवे सदस्यको भी इसमें सन्देह नहीं है।

रेलवे बजटके निराशाजनक होनेके कितने ही कारण हैं। हमें बतलाया गया है कि भाड़े-किरायेमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होनेकी कोई गुञ्जायश नहीं है। "सरकारका इरादा है कि कोयलेके यातायातपर जो सरचार्ज लगता है, उसे अप्रैलसे अक्टूबर तक ५ प्रतिशत कम कर दिया जायगा। सरकार इस बातपर विचार कर रही है कि कोयले और गेहूंके निर्यातको प्रोत्साहन देनेके लिए भाड़ेमें जो कमी की गयी थी, उसे जारी रखना आवश्यक है या नहीं। उपनगरोंके सीजन टिकटके मूल्यमें गत वर्ष टिकटोंके मूल्यमें वृद्धि किये जानेके समय कोई वृद्धि नहीं की गयी थी। इस प्रश्नपर भी विचार हो रहा है कि यह व्यापारिक दृष्टिसे लाभ-कर है या नहीं। इस बातपर भी विचार किया जा रहा है कि ईस्ट इण्डियन रेलवेमें ५० मीलसे अधिककी यात्राके लिए जो भाड़ा लिया जाता है, उसे क्या अन्य रेलवे लाइनोंकी कक्षामें ले आना चाहिए; परन्तु अगले तीन महीनोंमें कोई परिवर्तन नहीं होगा। अनाज और चारेको भाड़ेकी जो सुविधा मिली हुई है, उसे हम जारी रखना चाहते हैं; क्योंकि जहां तक अभी अनुमान किया जा सकता है, कर्मचारियोंपर इतना अतिरिक्त व्यय नहीं करना होगा कि अधिक आमदनी करना आवश्यक हो जाय; परन्तु अनाज-को जो रियायत मिली है, वह कर्मचारियों सम्बन्धी आर्थिक मांगपर निर्भर है और चारेको सुविधा मिलनेके लिए गत वर्ष जैसे जोरदार कारण नहीं हैं।" इससे भविष्यकी सम्भा-वनाओंका कुछ अनुमान किया जा सकता है। उसका सीधा-सादा अर्थ यह है कि अगर कोई नया परिवर्तन नहीं भी

होने जा रहा हो, तो भी रेलवे विभागकी असाधारण समृद्धिसे न तो व्यापारी वर्गको कोई लाभ होगा और न यात्रियोंको कोई उल्लेखनीय सुविधा होगी। यों बजटमें यात्रियोंको आराम देनेके लिए ९ लाख ६९ हजार रुपयेकी गुञ्जायश रख ली गयी है; परन्तु यह पता नहीं है कि इसमेंसे कितनी रकमका उपयोग तीसरे दर्जेके यात्रियोंके लिए किया जायगा, जिनसे रेलवेको यात्रियोंकी मदकी ८० सैकड़ा आमदनी होती है। इसी तरह कर्मचारियोंके मकान बनानेके लिए जो रकम निकाली गयी है, हमें पता नहीं है कि उसमेंसे कितनी रकमका उपयोग निम्न श्रेणीके कर्मचारियोंके लिए किया जायगा। फिर, रेलवे बजटकी यह बात भी कम खेदजनक नहीं है कि जिन १८ ब्राञ्च लाइनोंको अनुत्पादक और 'व्यर्थ' समझकर तोड़ देनेका निश्चय किया जा चुका है, उनमेंसे १३ को १९२७-३२ में ही खोला गया था। इस अदूरदर्शिताके लिए किसे जिम्मेदार समझा जायगा और जब लाइनें तोड़कर उनका लोहा विदेश भेज देनेका निश्चय किया गया है, तब इस व्यापारमें जो क्षति होगी, यह सर्वथा उचित ही होगा, यदि उसे देनेके लिए खरीदारपर जोर डाला जाय।

सिन्धमें उलझन

गिरफ्तार होनेसे पहले राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आजादने सिन्ध प्रान्तका दौरा कर यह प्रयत्न किया कि वहां असेम्बलीकी राजनीतिक पार्टियोंमें जो खींचतान चली आ रही है, वह समाप्त हो जाय। राष्ट्रपतिको इसमें सफलता हुई और जो समझौता हुआ, उसके फलस्वरूप सिन्धमें फैली हुई अराजकताका अन्त हो गया, हिन्दुओंकी हत्याओंका जो सिलसिला जारी था, वह बन्द हो गया। इसपर सभी पक्षोंको सन्तोष और प्रसन्नता होनी ही थी; परन्तु मि० जिन्नाको यह सहन नहीं हुआ और उन्होंने ऐसी चालोंसे काम लिया कि आखिर वह समझौता भङ्ग हो गया, सिन्धमें राजनीतिक उलझन फिर पैदा हो गयी और भय है कि वर्तमान मन्त्रिमण्डलको त्याग-पत्र देकर अपना स्थान खाली करना ही होगा। इस स्थितिके मूलमें यों तो मुसलिम लीग और उसके नेता मि० जिन्नाकी नीति है, तथापि हमारी दृष्टिमें उसके लिए जिम्मेदार हैं सिन्धके प्रधान मन्त्री मीर बन्दे अली खां तालपुरे, जो समझौता हो जानेके बाद लीगमें शामिल हो गये और जो अब यह कह रहे हैं कि मुसलिम लीग उन्हें इस्तीफा देनेकी अनुमति ही नहीं दे रही है। दूरदर्शी राजनीतिज्ञोंने मीर बन्दे अली खां तालपुरेके मुसलिम लीगमें शामिल होकर अपना रङ्ग बदल देनेके समय ही ताड़ लिया था कि कुछ न कुछ दालमें काला अवश्य है और उससे मौलाना आजादवाली योजना रद्द हो सकती है!

राष्ट्रपति आजादवाले समझौतेकी शर्तें यद्यपि उस समय प्रकाशित नहीं हुई थीं, तथापि उसकी जितनी बातें आज तक सामने आ चुकी हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि वर्तमान प्रधान मन्त्री मीर बन्दे अली खां तालपुरेको अधिकसे अधिक गत १९ फरवरीको त्याग-पत्र दे देना चाहिए था और उनके स्थानपर प्रधान मन्त्री पदका दायित्व या तो सर गुलाम हुसेन हिदायतुल्लाको संभाल लेना चाहिए था या उनके असमर्थ होनेपर खान बहादुर अल्लाबख्शको। प्रधान मन्त्री मीर बन्दे अली खां तालपुरे अपने पदसे इस्तीफा न देकर इस समझौतेको व्यर्थ कर रहे हैं, इसे कोई भी भला आदमी अनुचित ही कहेगा। मीर बन्दे अली खां तालपुरेकी हिमायतमें मि० जिन्ना यह कहते हैं कि समझौतेपर हस्ताक्षर करनेवालोंने अपनी व्यक्तिगत हैसियतसे ही हस्ताक्षर किये थे और यह भी सही है कि उसपर मीर बन्दे अली खांके नहीं, मि० जी० सैयद और खान बहादुर खूरोके हस्ताक्षर हैं, तथापि यह कोई नहीं मान सकता कि मीर बन्दे अली खां तालपुरेको समझौतेकी धाराओंका पता नहीं था, और न उन्होंने 'डेली गजट' की इस बातका ही खण्डन किया है कि समझौतेपर मीर बन्दे अली खांने हस्ताक्षर इसलिए नहीं किये थे कि एक भले आदमीकी हैसियतसे उन्होंने अपनी जबानसे जो कुछ कह दिया था, वह काफी था। व्यक्तिगत हैसियतसे हस्ताक्षर करनेकी दलीलमें भी दम नहीं है, क्योंकि १९४० के आरम्भमें लीगी मन्त्रियोंने स्वतन्त्र हिन्दू पार्टीके मेम्बरोंके साथ समझौता किया था, जिसके अनुसार मीर बन्दे अली खां तालपुरेको प्रधान मन्त्री बननेका मौका मिला था—यद्यपि यह समझौता करनेके लिए लीगी मन्त्रियोंने मुसलिम लीगके अधिकारियोंकी पूर्व स्वीकृति नहीं ली थी। इससे लीगी मन्त्री स्वतन्त्र रूपसे समझौता करने-

का अपना अधिकार स्थापित कर चुके हैं और यह कहना ठीक नहीं है कि राष्ट्रपति आजादवाले समझौतेपर जिन लोगोंने हस्ताक्षर किये थे, उन्होंने अपनी व्यक्तिगत हैसियतसे वैसा किया था। अस्तु,

खानबहादुर अल्लाबख्श पार्टीकी ओरसे प्रधान मन्त्री मीर बन्दे अली खां और खानबहादुर खूरोमें अविश्वासका प्रस्ताव उपस्थित करनेका नोटिस दे दिया गया है और पार्टियोंकी जो स्थिति है, उससे इसके पास हो जानेमें सन्देह नहीं है। यद्यपि इस राजनीतिक उलझनको सुलझानेका प्रयत्न किया जा रहा है, तथापि हमें आशा नहीं है कि उसमें सफलता होगी। हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि महात्मा गांधीने कांग्रेस पार्टीको राष्ट्रपतिवाले समझौतेपर दृढ़ रहनेके लिए कहा है और यदि यह सम्भव न हुआ अर्थात् प्रधान मन्त्री मीरबन्दे अली खांने अपना स्थान खाली न किया, तो कांग्रेस पार्टी उन्हें स्थानच्युत करनेके लिए खानबहादुर अल्लाबख्श और उनकी पार्टीका साथ देगी और उन्हें बतलायेगी कि समझौतेको भङ्ग करनेके बाद भी उनके लिए प्रधान मन्त्री बना रहना सम्भव नहीं है।

मकतबोंमें हिन्दू बच्चे

बङ्गाल असेम्बलीमें राय हरेन्द्रनाथ चौधरीके एक प्रश्नके उत्तरमें शिक्षा-मन्त्री, जो प्रधान मन्त्री भी हैं, माननीय मि० फजलुल हकने बतलाया कि मार्च १९४० में हिन्दुओंके ७४५०६ लड़के मकतबोंमें पढ़ रहे थे। इससे दो साल पहले १९३८ में इनकी संख्या ३२१४९ थी। विभिन्न जिलोंके विवरणसे मालूम होता है कि १९३८ और १९४० के बीच मकतबोंमें पढ़नेवाले हिन्दू बच्चोंकी संख्या २४ परगनामें ७४८ से बढ़कर २२१९, नदियामें ८२९ से बढ़कर २३१२, मुरशिदाबादमें ६८३ से बढ़कर १४८६, जैसोरमें ७३१ से बढ़कर ३२१६, खुलनामें २७३ से बढ़कर ८२९, बर्दवानमें १६५८ से बढ़कर २४३७, वीरभूमिमें ११८२ से घटकर ११७७, बांकुड़ामें १७२ से बढ़कर २६३, हुगलीमें १०५९ से बढ़कर १५६१, हावड़ामें २६२ से घटकर ११६, मेदिनीपुरमें १८९१ से बढ़कर २१९०, डाकामें १८५४ से बढ़कर ९५७६, मैमनसिंहमें ३८४९ से घटकर ३४३६, फरीदपुरमें १००१ से बढ़कर २९३६, बाकरगञ्जमें ४३९१ से बढ़कर ९९७६, चटगांवमें ३३०६ से बढ़कर ६९६१, नोआखालीमें २४६२ से बढ़कर ७३८८, त्रिपुरामें १३७ (१९३८), राजशाहीमें ६९५ से बढ़कर १०१७, दिनाजपुरमें १४८७ से बढ़कर १६५४, रङ्गपुरमें ९६० से बढ़कर १५६९०, जलपाईगुड़ीमें ५१३ से घटकर २५२, बोगड़ामें ७५७से बढ़कर १४५५, पबनामें ९२३ से घटकर ६१२ और मालदामें ३३० से बढ़कर ५४७ हो गयी। जसोर, ढाका और रङ्गपुर जिलोंकी स्थिति तो और भी अधिक शोचनीय है, जहां मकतबोंमें पढ़नेवाले हिन्दू बच्चोंकी संख्या २ सालमें चौगुनी, पचगुनी और सोलहगुनीसे भी अधिक हो गयी है। यह विवरण अपनी कहानी स्वयं कह रहा है और उसपर अधिक लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जान लेनेकी बात यही है कि मकतब खासकर मुसलमान लड़कोंकी शिक्षाके लिए हैं। उनमें जो किताबें पढ़ायी जाती हैं, वे भी वैसी ही होती हैं, उनमें साम्प्रदायिक रङ्ग भी होता ही है और परिस्थितिवश ही क्यों न सही, हिन्दू लड़कोंके बचपनसे ही इन किताबोंद्वारा शिक्षा पानेका जो परिणाम हो सकता है, उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। बङ्गालमें पिछले वर्षोंमें मकतबोंकी संख्या काफी तादादमें बढ़ गयी है और अन्य प्राइमरी स्कूलोंके अभावमें इन मकतबोंमें पढ़नेके लिए हिन्दू लड़कोंको विवश होना पड़ रहा है। हिन्दुओंके सांस्कृतिक जीवनको खोखला करनेके लिए इससे अधिक और क्या चाहिए। हिन्दू बच्चोंके साथ यह भारी अत्याचार है, और जब हम यह सोचते हैं कि इस स्थितिके लिए प्रान्तकी शिक्षा सम्बन्धी वर्तमान नीति जिम्मेदार है, तब हमारे क्षोभकी कोई सीमा नहीं रहती। यह एक समस्या है, जिसपर बङ्गालके प्रत्येक हिन्दूको विचार करना चाहिए।

बङ्गालका बजट

बङ्गाल-सरकारके चालू सालके बजटमें १ करोड़ ३ लाख रुपयेका घाटा है—१३ करोड़ ८२ लाख रुपयेकी आमदनी और १४ करोड़ ८५ लाख रुपयेका खर्च। आगामी साल १९४१-४२ में यद्यपि आमदनी २१ लाख रुपये अधिक अर्थात १४ करोड़ ३ लाख रुपये और खर्च ५२ लाख रुपये अधिक अर्थात् १५ करोड़ ३७ लाख रुपये होनेका अनुमान किया गया है। फलतः आगामी वर्षमें १ करोड़ ३४ लाख रुपये

घाटा होगा। इस घाटेकी पूर्तिके लिए सरकारको कुछ न कुछ करना ही होगा। अर्थमन्त्रीने अपने भाषणमें स्पष्ट ही तो कहा है कि "शीघ्र ही हमें आमदनी बढ़ानेके उपाय खोजने पड़ेंगे।" इन उपायोंका अभी पता नहीं है; परन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि जनतापर टेक्सोंका बोझ पहलेसे ही इतना लदा हुआ है कि अधिक भार लादनेमें समझदारी न होगी

बजटके आंकड़ोंसे किसी भी सरकारकी शासन-नीतिपर प्रकाश पड़ता है। हम यहां केवल आबकारी विभागके आंकड़ोंपर ही विचार कर रहे हैं। इस विभागकी आमदनी गत तीन वर्षसे लगातार बढ़ रही है। १९३७-३८ में १५४५६०००), १९३८-३९ में १५९३५०००) और १९३९-४० में १६५९८०००) आय इस मद्से हुई। चालू सालके संशोधित अनुमानके अनुसार इस मदमें पूर्व अनुमानसे १४ लाख रुपये अधिक अर्थात् १ करोड़ ७९ लाख रुपये आमदनी होगी। यह वृद्धि देशी शराब, अफीम और गांजाके कारण हुई है। ये आंकड़े बतलाते हैं कि बङ्गालकी जनताके नैतिक और शारीरिक स्वास्थ्यके लिए जिम्मेदार अधिकारी अपनी जिम्मेदारीका पालन कितनी अच्छी तरह कर रहे हैं। उस दिन बङ्गाल असेम्बलीमें शासन-नीतिकी सफाई देते हुए माननीय अर्थमन्त्री मि० एच० एस० सुहरावर्दीने कहा कि "शराब कम पी गयी है; परन्तु आमदनी बढ़ जानेका कारण यह है कि नाजायज शराबकी खपत कम हो गयी है।" इस दलीलकी निःसारता स्वयं प्रकट है। आंकड़ोंसे यह साफ जाहिर है कि शराबकी खपत ज्यादा हुई; परन्तु अर्थमन्त्री नाजायज शराबकी खपत कम होनेकी दलील देकर उसका औचित्य दिखला रहे हैं—यद्यपि नाजायज शराबकी खपतके आंकड़े पेश करना उनके लिए सम्भव नहीं है। फिर, गांजा और अफीमकी आमदनीमें जो वृद्धि हुई है, उसके सम्बन्धमें अर्थमन्त्री क्या कहते हैं? प्रान्तकी १३ करोड़ ८२ लाख रुपयेकी आमदनीमेंसे यदि १ करोड़ ७९ लाख रुपयेकी—रुपयेमें दो आना—आमदनी यदि शराब, अफीम और गांजासे हो तो यह कहनेमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं मालूम होती कि माननीय मि० फजलुल हककी सरकार शराबियों, अफीमचियों और गंजेड़ियोंकी बदौलत चलनेकी सुकीर्ति लूट रही है।

तुर्की-बलगेरिया सन्धि

तुर्की और बलगेरियामें पिछले दिनों जो महत्त्वपूर्ण अनाक्रमण-सन्धि हुई है, उसकी बातोंका पूरा विवरण तो प्रकाशित किया नहीं गया है; परन्तु इटालियन न्यूज एजेन्सीके एक समाचारमें यह बतलाया गया है कि "अन्य देशोंके साथ जो सन्धियां हैं, उन्हें किसी तरहकी क्षति पहुंचाये बिना ये दोनों देश इस बातपर सहमत हैं कि उनकी परराष्ट्र-नीतिका अटल आधार है किसी भी आक्रमणसे दूर रहना, परस्पर अच्छे पड़ोसियों जैसा मैत्री-सम्बन्ध कायम रखना और उचित उपायोंसे व्यापार बढ़ाना।" बलगेरियाके साथ किसी देशकी कोई महत्त्वपूर्ण सन्धि हो, तो हमें उसका पता नहीं है; परन्तु ब्रिटेनके साथ तुर्कीकी महत्त्वपूर्ण सन्धि है। इस सन्धिके अनुसार "यदि कोई यूरोपियन शक्ति भूमध्यसागर-क्षेत्रमें आक्रमण करे, तो ब्रिटेन और फ्रान्सके साथ तुर्की सहयोग करेगा। इसी तरह वैसी अवस्था उत्पन्न होनेपर फ्रान्स और ब्रिटेन भी तुर्कीकी सहायता करनेके लिए पहुंचेंगे। रूमानिया और यूनान यदि वादा पूरा करने और सहायता देनेके लिए ब्रिटेनको बुलायें, तो उस अवस्थामें तुर्की तटस्थ रहेगा। यदि रूस किसी बातमें शामिल हो, तो तुर्कीको कार्य करनेकी स्वतन्त्रता होगी; क्योंकि तुर्की और रूसमें परस्पर अनाक्रमण-सन्धि है। ब्रिटेनको अधिकार होगा कि वह आवश्यकता पड़नेपर दरे दानियाल होकर अपनी सेना काले सागरमें ले जाये।" इस सन्धिपर तुर्की और बलगेरियावाली सन्धिका कोई असर नहीं पड़ेगा। इससे जो एक बात निश्चित रूपसे मालूम होती है, वह यह है कि न तो तुर्की बलगेरियापर हमला करेगा और न बलगेरिया तुर्कीपर। परन्तु इससे यह पता नहीं चलता कि यदि यूनानपर आक्रमण करनेके लिए जर्मनी रास्ता चाहे और दबाव डाले, तो बलगेरियाका रुख क्या होगा। सन्धिपर हस्ताक्षर होनेके समय दोनों पक्षोंकी ओरसे जो कुछ कहा गया है, उससे यद्यपि इस समस्यापर कोई प्रकाश नहीं पड़ता, तथापि बादमें तुर्कीका रुख बिलकुल स्पष्ट हो गया है। तुर्की पत्रोंने लिखा है और तुर्की पर-राष्ट्र मन्त्री मो० साराजोगलूने भी कहा है कि "तुर्की अपनी सन्धियोंपर सचाईके साथ डटा हुआ है। तुर्कीके सुरक्षा-



क्षेत्रमें विदेशियोंकी जो कार्यवाहियां होंगी, उनसे तुर्की उदासीन नहीं रह सकता। उसकी सीमाकी अखण्डता और स्वतन्त्रताके विरुद्ध जो भी आक्रमण किया जायगा, उसका मुकाबिला शस्त्रोंसे किया जायगा।" यूनानके साथ तुर्की-का जो मैत्री-सम्बन्ध है, वह तुर्की परराष्ट्र-मन्त्रीके इस कथनका अपवाद नहीं है और यह विश्वास किया जा सकता है कि बलगेरियाने जब तुर्कीकी सभी पूर्व-सन्धियोंको मान्य किया है, तब उसने यूनान और तुर्कीके सन्धि-सम्बन्धको भी भुला न दिया होगा; किन्तु जर्मनीके यूनानपर हमला करनेकी सम्भावना होनेके कारण जो प्रश्न सबके मनमें उठ रहा है, उसके सम्बन्धमें बलगेरिया अपनी नीति स्पष्ट क्यों नहीं करता, विशेषतः जब यह पढ़नेमें आ रहा है कि बल-गेरियामें जर्मन काफी तादादमें पहुंच गये हैं और सड़कें दुरुस्त करनेमें लगे हुए हैं। क्या इसमें भी कुछ रहस्य है ?

पूर्वमें युद्धके बादल

प्रशान्त महासागरमें इधर कुछ तेजीसे युद्धके बादल घिरते दिखलाई पड़ रहे हैं। इस दृष्टिसे सबसे महत्त्वपूर्ण समाचार यह है कि जापानके परराष्ट्र मन्त्री मि० मत्सुओका शीघ्र ही एक सन्धि-पत्रपर हस्ताक्षर करनेके लिए रूसकी राजधानी मास्को जा रहे हैं। इस समझौतेके सम्बन्धमें दो-तीन महीनेसे रुक-रुककर निरन्तर ही समाचार आते रहे। इन समाचारोंसे यह प्रकट होता रहा है कि रूसके साथ समझौता करनेके लिए जापान बहुत उत्सुक है और साथ ही जर्मनी भी यह कोशिश कर रहा है कि रूसके साथ समझौता हो जानेके बाद यदि जापान उधरसे निश्चिन्त हो जाय, तो अच्छा। इस समय जर्मनीको यही अभीष्ट हो सकता है कि यदि जापान रूसकी चिन्तासे मुक्त होकर प्रशान्त महा-सागरमें युद्धाग्नि प्रज्वलित करे, तो ब्रिटेन और अमेरिकाकी शक्ति इधर बंट जायगी और उसके बाद न तो ब्रिटेनके लिए यह सम्भव रह जायगा कि वह यूरोपमें जर्मनीको पस्त करनेके लिए अपनी शक्ति लगा सके और न अमेरिकाके लिए यह सम्भव रह जायगा कि ब्रिटेनकी जितनी अधिक सहायता वह इस समय कर रहा है, उतनी करता रह सके। अपने विरोधीकी शक्ति बंटाने और उसे जितने अधिक स्थानोंमें भिड़ाया जा सकता हो, भिड़ानेमें जर्मनी अपना लाभ देख सकता है; परन्तु यह लाभ उतना वास्तविक नहीं है। ब्रिटेनकी शक्तिका जहां तक सम्बन्ध है, वह पहलेसे ही बंटी हुई है और यह समझ लेनेकी बात है कि प्रशान्त महा-सागरमें यदि युद्ध हुआ, तो वहां इंगलैण्डसे ब्रिटिश सेनाओं-को जानेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। इस समय भी मलाया और सिङ्गापुरमें जो ब्रिटिश सेना जमा है, वह इंगलैण्डसे गयी हुई नहीं है। रही अमेरिका द्वारा ब्रिटेनको सहायता मिलनेकी बात, इस सम्बन्धमें पिछले दिनों एक बार प्रेसि-डेण्ट रूजवेल्टने कहा था कि यदि अमेरिकाको प्रशान्त महा-सागरमें किसी झमेलेमें फंसना पड़े, तो भी ब्रिटेनको जो सहायता देनेका निश्चय किया गया है, वह मिलती रहेगी। इस सहायताके सम्बन्धमें यह भुला नहीं देना चाहिए कि अपनी रक्षाको खतरेमें डालकर अमेरिकाने सहायता नहीं दी है। जो हो, प्रश्न यह है कि जापानको जब चीनका युद्ध ही भारी पड़ रहा है, क्या वह ब्रिटेन और अमेरिकाके विरुद्ध ताल ठोककर मैदानमें आयेगा और क्या वह रूसके साथ सन्धि करनेके लिए मञ्चूकोकी सीमापर रूसकी मांग स्वीकार कर लेगा, सखालियन टापूके तेलसे अपना हाथ खींच लेगा और मछलियोंके क्षेत्रसे हट जायगा ? साधारण परि-स्थितिमें यह होनेकी कोई सम्भावना नहीं की जा सकती परन्तु जापान पूर्व एशियामें नयी व्यवस्था कायम करनेका स्वप्न जो देख रहा है और आश्चर्य नहीं होगा, यदि वह उसके लिए यही अवसर उपयुक्त समझे और रूसके साथ किसी तरहकी भी शर्तोंपर समझौता कर लेनेके बाद उसके लिए चेष्टा करे। कमसे कम जर्मनी यही चाहेगा और जापान पहले ही कह चुका है कि उसे अपने सङ्कटग्रस्त मित्रकी सहायता करना आता है। जापानी राजनीतिज्ञोंकी इस मनोवृत्तिकी दृष्टिसे जब इन समाचारोंको देखते हैं कि अमे-रिकन प्रजाजन चीन खाली कर रहे हैं, हैनान और उसके आसपास जापानी सेना जमा हो रही है, इण्डो चीनको वशवर्ती करनेके लिए जापानी पत्रोंने आन्दोलन आरम्भ कर दिया है, मलायामें ब्रिटिश सैनिक पहुंच गये हैं, तब गम्भीर स्थिति होनेमें सन्देह नहीं रह जाता।

वही पुराना राग

ब्रिटिश पार्लमेण्टमें गत २४ फरवरीको भा[illegible]धारे मि० अमेरीने युद्धके उद्देश्योंकी दृष्टिसे भार[illegible]

सम्बन्धमें जो कुछ कहा, उसे पढ़कर हमें उस जिद्दी लड़केकी याद हो आयी, जो यह कहता था कि जब तक तैरना नहीं आ जायगा, पानीमें कदम नहीं रखूंगा। १९३५ के विधानको औपनिवेशिक स्वराज्यकी दिशामें लम्बा कदम बतलाकर उन्होंने कांग्रेस और मुसलमानोंका उल्लेख किया और कहा कि "इसी स्थितिका सामना करनेके लिए हालमें सम्राट्-की सरकारने यह स्पष्ट कर दिया था कि वह युद्धके बाद जल्दीसे जल्दी हिन्दुस्तानियोंके विचारके उपयुक्त नये विधानको कार्यान्वित करनेके लिए तैयार है; परन्तु यह विधान हिन्दुस्तानके राष्ट्रीय जीवनके मुख्य पर-माणुओंके समझौतेके आधारपर होगा।" मि० अमेरी इस समझौतेको विधानके लिए आवश्यक मानते हैं और जब तक समझौता न हो, उस जिद्दी लड़केकी तरह अपनी जगहसे टससे मस नहीं होना चाहते; परन्तु यह भूल जाते हैं कि विधान भारत और ब्रिटेनके बीचका प्रश्न है और समझौता हमारा घरेलू विषय है, जिसका विधानके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ जि[illegible] गणतन्त्र-सिद्धान्तकी रक्षाके लिए यह युद्ध करनेकी बात कह रहे हैं, उसका तकाजा यह भी है कि हिन्दुस्तानके भीतरी प्रश्नोंको उसी प्रणालीसे हल किया जाय और ब्रिटिश नीतिका सञ्चालन इसी उद्देश्यसे हो; परन्तु हम देखते हैं कि यह नहीं हो रहा है। यूरोपमें गणतन्त्रके सिद्धान्तोंकी रक्षा की जाती है और इस देशमें विधानसे पहले समझौता होनेकी अनिवार्य आवश्यकता दिखलाकर मि० जिन्नाको प्रोत्सा-हन दिया जाता है, यह समझनेके लिए किसीको भी अधिक बुद्धिमान होनेकी जरूरत नहीं है। मि० अमेरी कहते है कि "ब्रिटिश साम्राज्यकी महान् उन्नतिके [illegible] सिद्धान्त हैं स्वशासन और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, और इस न्यायके लिए हम आज लड़ रहे हैं।" हमारा कहना यह है कि आज हिन्दुस्तानकी जेलोंका निरीक्षण कर किसीको भी यह जाननेमें कठिनाई नहीं हो सकती कि उनके [illegible] दावेमें कोई सार नहीं है।

...त्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट कलकत्तासे पं० मातासेवक पाठक द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।



विश्वामित्र

सम्पादक—

श्री रामाशीष सिंह

सितम्बर, १९४१ — वर्ष ९ संख्या १०८ — भाद्र, १९९८

रवीन्द्रनाथकी अन्तिम कविता

(गत ३० जुलाईको अस्त्रोपचारके समय रवीन्द्रनाथने निम्नलिखित कविता बोलकर लिखायी थी, यही उनकी अन्तिम कविता है ।)

दुःखेर आंधार रात्रि बारे बारे
ऐसे छे आमार द्वारे;
एकमात्र अस्त्र देखेछिनु,
कष्टेर विकृत भाल, त्रासेर विकट भङ्गी यत ।
अन्धकारे छलनार भूमिका ताहार
यत बार भयेर मुखोस तार करेछि विश्वास
तत बार हयेछे अनर्थ पराजय,
एइ हारजित खेला, जीवनेर मिथ्या ए कुहक
शिशु काल हते विजड़ित पदे-पदे एइ विभीषिका,
दुःखेर परिहासे भरा
भयेर विचित्र चलच्छवि
मृत्युर निपुण शिल्प विकीर्ण आंधारे

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

श्री 'आनन्द'

भाई भाई एक ठाईं, भेद नाईं नाईं
एक देश, एक भगवान
एक जाति, एक मन प्राण—
—रवीन्द्रनाथ ।

जन्म और वंश-परिचय

विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर अब इस लोकमें नहीं रहे। अपनी लेखनी द्वारा लगातार ६७-६८ वर्षों तक मानवताको सेवा करनेके बाद गत श्रावणी पूर्णिमाके पुण्यमय दिनको उन्होंने अपनी जीवनलीला समाप्त की। रवीन्द्रनाथ सौन्दर्यके प्रतीक थे। वह मन, वचन, कर्मसे सौन्दर्यके उपासक थे और जीवन-पर्यन्त सत्यं, शिवं, सुन्दरम्के अन्यतम पुजारी बने रहे।

रवीन्द्रका जन्म यद्यपि बङ्गालमें हुआ था और वह बङ्गाली थे, फिर भी वह केवल बङ्गाल और भारतके ही नहीं, विश्वकी विभूति थे। जिस प्रकार व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास, कबीर किसी प्रान्त या देश-विशेषके नहीं हैं, समस्त विश्वका उनपर अधिकार है, उसी प्रकार रवीन्द्रनाथ समस्त मानव-जगत्की सम्पत्ति हैं। आज उनका नश्वर शरीर पञ्चभूतोंमें मिल गया है, परन्तु उनका नाम सदा अमर रहेगा, क्योंकि कीर्ति यस्य स जीवति।

रवीन्द्रनाथका जन्म ७ मई १८६१ को कलकत्तेके जोड़ासांको महल्लेके अपने पैतृक भवनमें हुआ था। उनके पिताका नाम महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर था और माताका नाम शारदादेवी। वह अपने पिताके सबसे छोटे पुत्र थे। रवीन्द्रनाथ बड़े भाग्यशाली थे। उनका जन्म एक ऐसे परिवारमें हुआ था, जिसपर लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंकी बराबर कृपा थी। यद्यपि कविपर लक्ष्मीकी कम अनुकम्पा न थी और उसने उस महादेवीका बड़े ललित छन्दोंमें गुणगान किया है, फिर भी सरस्वतीकी ही उसपर विशेष कृपा थी, जिसके प्रमाणमें वाग्देवीने उसके भवनको अपना मन्दिर बना लिया था। बङ्गालमें ठाकुर-परिवारको जैसी ख्याति प्राप्त है, वैसी सम्भवतः और किसीके भाग्यमें नहीं। इस परिवारमें बड़े-बड़े विचारक, धर्मोपदेशक, दार्शनिक, तत्त्वज्ञानी, विद्वान्, कलाकार और सङ्गीतज्ञ हो गये हैं। रवीन्द्रनाथके बड़े भाई द्विजेन्द्रनाथ दार्शनिक थे, दूसरे भाई ज्योतिरीन्द्रनाथ उच्च कोटिके कलाकार थे, जिनके रेखा-चित्रोंकी प्रशंसा यूरोपके श्रेष्ठ कलाकारोंने की है। उनके तीसरे भाई प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने सिविल सर्विसमें प्रवेश किया। उनके भतीजे अवनीन्द्र ठाकुर, जिनकी ७० वीं जयन्ती विश्व-कविके आदेशानुसार हालमें ही मनायी गयी है, भारतीय चित्रकलाके उन्नायक हैं। साहित्य और कलाके साथ-साथ ठाकुर-परिवारमें सङ्गीतका भी बड़ा आदर है। यहां यह लिखना अप्रासङ्गिक नहीं होगा कि साहित्य और कलाकी उपासनामें ठाकुर-परिवारकी महिलायें भी पुरुषोंसे किसी प्रकार कम नहीं रही हैं। इसी सुसंस्कृत एवं सुशिक्षित परिवारमें, साहित्यिक एवं कालामय वातावरणमें रवीन्द्रनाथका जन्म हुआ और उनकी प्रतिभाका विकास हुआ।

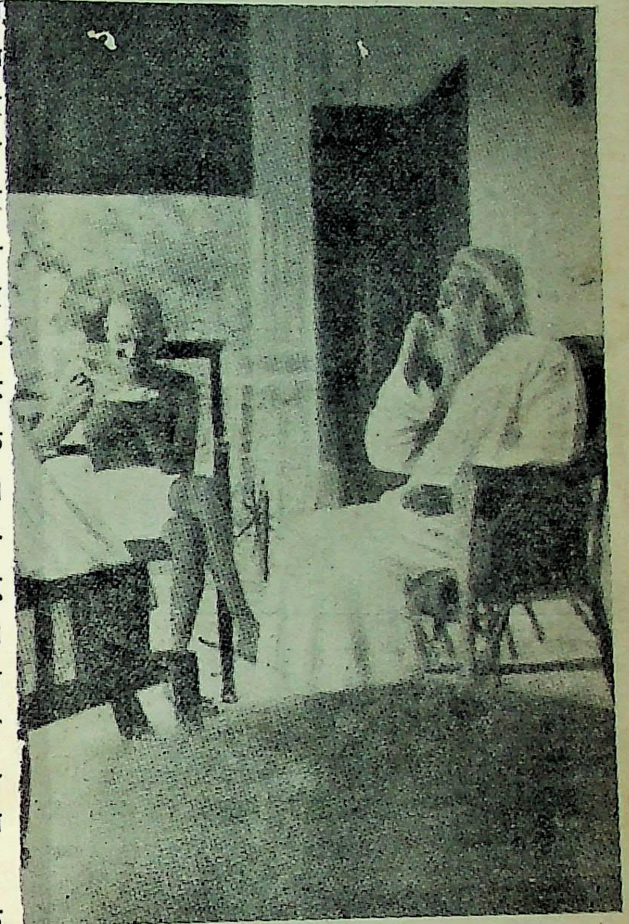
बाल्यकाल एवं शिक्षा

रवीन्द्रनाथके पितृदेव बड़े गम्भीर स्वभावके थे। जीवनके शेष भागमें वह संसारके झञ्झटोंसे अलग रहना चाहते थे। फिर भी, घरमें क्या हो रहा है, इसकी जानकारी उन्हें रहती थी। जब रवीन्द्रनाथ छोटी अवस्थाके थे, तभी उनकी माताका देहान्त हो गया। इसलिए उनका लालन-पालन विशेष रूपसे घरके दास-दासियों द्वारा हुआ। रवीन्द्रनाथने अपने इन आरम्भिक दिनोंका वर्णन अपने आत्म-संस्मरणमें बड़े विश्लेषणात्मक ढङ्गसे किया है। उनको लिखाने-पढ़ानेके लिए गृह-शिक्षक नियुक्त किये गये, पर उन्होंने उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। स्कूलमें पढ़नेके लिए भेजे गये, पर वहांसे भी वह किसी तरह भाग निकलते थे। बात यह थी कि वह जन्मसे ही स्वतन्त्र प्रकृतिके थे।

प्राचीन नियमों और कायदे-कानूनोंको माननेकी उनकी कभी इच्छा नहीं होती थी। पुरानी रूढ़ियोंके विरुद्ध विद्रोही प्रवृत्तिसे रवीन्द्रको आत्म-तुष्टि मिलती थी। यही कारण था कि वे अपने हृदयके भावोंको अपनी कवितामें इतने सुन्दर ढङ्गसे व्यक्त करनेमें सफल हुए। कुछ ऐसे बालक होते हैं, जो किसीकी डांट-फटकार या कड़े शासनको बर्दाश्त नहीं कर सकते, बालक रवीन्द्र भी इसी प्रकृतिके थे। इसलिए गृह-शिक्षकों अथवा स्कूलके अध्यापकोंके कड़े नियन्त्रणमें रहकर शिक्षा पाना उनके लिए असम्भव था। स्कूल और कालेज-की शिक्षा उनके किस कामकी थी। उन्हें न तो मजिस्ट्रेट बनकर अपराधियोंको दण्ड देना था और न किसी व्यापारिक संस्थाका प्रधान बनकर करोड़पति बननेकी ही कामना थी। वह तो प्रकृतिके पुजारी थे। वह संसारमें लीलामय, रहस्य-मय जगन्नियन्ताके दिव्य सन्देश सुनाने आये थे। इसलिए आधुनिक शिक्षा-प्रणाली उनकी प्रकृतिके अनुकूल नहीं थी। इससे न तो उनकी अन्तर्वृत्तियोंका विकास हो सकता, न उनके हृद्गत भावोंका समुचित रूपसे प्रस्फुटन ही हो सकता था। उन्हें वास्तविक शिक्षा तो मानव-जीवनके महाविद्यालयसे मिली। उन्होंने विश्वका ज्ञान अपने जीवनकी समस्त परिस्थितियों और वातावरणका अध्ययन कर प्राप्त किया।

रवीन्द्र ऐश्वर्यशाली पिताके पुत्र थे। सुख-वैभवमें उनके दिन बीत रहे थे। बड़े लाड़-प्यारसे उनका लालन-पालन हो रहा था। उनकी परिचर्या करनेके लिए अनेक नौकर-चाकर उनके आगे हाथ जोड़े खड़े रहते थे। राजप्रासादमें वह रहते थे। पर उस विशाल भवनके पास ही गरीबोंके भी घर थे, जिनकी दीवारें और छतें पुकार-पुकारकर उनकी दरिद्रता और असहायावस्था बतला रही थीं। रवीन्द्रका कवि-हृदय इस वैषम्यको देखकर करुणासे आर्द्र हो जाता था। अपनी युवावस्थामें अपने विशाल भवनके बरामदेमें रेलिङ्ग पकड़े वह घण्टों सामनेकी झोंपड़ियोंमें रहनेवाले तथा अपनी पुष्करणीमें नहानेवाले विविध प्रकारके व्यक्तियोंकी विभिन्न स्थितियोंमें जीवनका अध्ययन करते रहते थे।

रवीन्द्रनाथ कुछ दिन तक ओरियण्टल सेमिनरीमें, फिर कुछ दिन नार्मल स्कूलमें और बादको बङ्गाल एकाडेमीमें पढ़ते रहे। विद्यालयके अतिरिक्त घरपर भी उनके लिए अच्छे-अच्छे शिक्षक नियुक्त किये गये थे। जिस समय वह नार्मल



रवीन्द्रनाथ, महात्मा गांधी और एण्डरूज।

मद्राससे लौट आये और अपने पिताके साथ मसूरी चले गये। मसूरीसे वापस आनेपर वह चन्द्रनगरमें ज्योतिरीन्द्रनाथ ठाकुरके साथ रहने लगे। यहींपर रवीन्द्रनाथने 'सन्ध्या-सङ्गीत' की कवितायें लिखना आरम्भ किया।

साहित्यिक प्रयोग

'सन्ध्या-सङ्गीत' के प्रकाशित होनेपर रवीन्द्रकी बड़ी ख्याति हो गयी और लोगोंको स्पष्ट हो गया कि उनमें कविकी वास्तविक प्रतिभा है। उन्होंने इन कविताओंकी रचना कविताके प्राचीन नियमोंसे सर्वथा मुक्त हो, स्वतन्त्र रूपसे अतुकान्त और अमात्रिक छन्दोंमें की, जो उस समय बंगला साहित्यके लिए बिलकुल नयी बात थी। इसके बाद उन्होंने 'प्रभात सङ्गीत' भी लिखा। इन दोनों पुस्तकोंका यथेष्ट आदर हुआ।

रवीन्द्रनाथ

श्री 'आ

भाई भाई एक ठाईं,
एक देश, एक
एक जाति, ए

जन्म और वंश-परिचय

विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर अब इस लोकमें नहीं रहे। अपनी लेखनी द्वारा लगातार ६७-६८ वर्षों तक मानवताको सेवा करनेके बाद गत श्रावणी पूर्णिमाके पुण्यमय दिनको उन्होंने अपनी जीवनलीला समाप्त की। रवीन्द्रनाथ सौन्दर्यके प्रतीक थे। वह मन, वचन, कर्मसे सौन्दर्यके उपासक थे और जीवन-पर्यन्त सत्यं, शिवं, सुन्दरम्के अन्यतम पुजारी बने रहे।

रवीन्द्रका जन्म यद्यपि बङ्गालमें हुआ था और वह बङ्गाली थे, फिर भी वह केवल बङ्गाल और भारतके ही नहीं, विश्वकी विभूति थे। जिस प्रकार व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास, कबीर किसी प्रान्त या देश-विशेषके नहीं हैं, समस्त विश्वका उनपर अधिकार है, उसी प्रकार रवीन्द्रनाथ समस्त मानव-जगत्की सम्पत्ति हैं। आज उनका नश्वर शरीर पञ्चभूतोंमें मिल गया है, परन्तु उनका नाम सदा अमर रहेगा, क्योंकि कीर्ति यस्य स जीवति।

रवीन्द्रनाथका जन्म ७ मई १८६१ को कलकत्तेके जोड़ासांको महल्लेके अपने पैतृक भवनमें हुआ था। उनके पिताका नाम महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर था और माताका नाम शारदादेवी। वह अपने पिताके सबसे छोटे पुत्र थे। रवीन्द्रनाथ बड़े भाग्यशाली थे। उनका जन्म एक ऐसे परिवारमें हुआ था, जिसपर लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंकी बराबर कृपा थी। यद्यपि कविपर लक्ष्मीकी कम अनुकम्पा न थी और उसने उस महादेवीका बड़े ललित छन्दोंमें गुणगान किया है, फिर भी सरस्वतीकी ही उसपर विशेष कृपा थी, जिसके प्रमाणमें वाग्देवीने उसके भवनको अपना मन्दिर बना लिया था। बङ्गालमें ठाकुर-परिवारको जैसी ख्याति प्राप्त है, वैसी सम्भवतः और किसीके भाग्यमें नहीं। इस परिवारमें बड़े-बड़े विचा-

बोलपुरसे रवीन्द्रनाथ अपने पिताके साथ साहबगञ्ज, दानापुर, इलाहाबाद, कानपुर आदि स्थानोंका भ्रमण कर अमृतसर गये। वहां वह करीब एक मास रहे और वहांसे डलहौसी पहाड़ गये, जहां वह कुछ दिन अपने पितासे संस्कृत, ज्योतिष और अंगरेजी पढ़ते रहे। यह सन् १८७३ की बात है। पञ्जाब प्रान्तकी यात्रा कर रवीन्द्रनाथ कलकत्ता लौट आये और फिर बङ्गाल एकाडेमीमें पढ़ने लगे। पर वह विद्यालय उनके मनोनुकूल नहीं था, इसलिए वह सेण्ट जेवियर स्कूलमें भर्ती कराये गये।

१८७४ ई० में नवम्बर या दिसम्बर महीनेकी 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिकामें 'अभिलाष' नामक उनकी एक लम्बी कविता प्रकाशित हुई। यही उनकी सर्वप्रथम मुद्रित कविता थी। उस समय रवीन्द्रनाथकी अवस्था १३ वर्ष ७ महीनेकी थी।

साहित्य-क्षेत्रमें

इसके पहले रवीन्द्रनाथ अपने घरमें होनेवाले उत्सवोंमें परिवारके व्यक्तियों तथा सम्बन्धियोंमें ही गान या कविता सुनाते थे। सर्वसाधारणके सामने आनेका कभी मौका नहीं मिला था। यह अवसर उन्हें उस समय मिला, जब वह करीब चौदह सालके थे। सन् १८७५ ई० की ११ फरवरीको उन्होंने सर्वप्रथम एक मेलेमें सर्वसाधारणके सामने अपनी कविता पढ़कर सुनायी। उनकी यह कविता साप्ताहिक 'अमृत बाजार पत्रिका' में (उस समय उसका प्रकाशन अंगरेजी और बंगला दोनों भाषाओंमें होता था) प्रकाशित हुई।

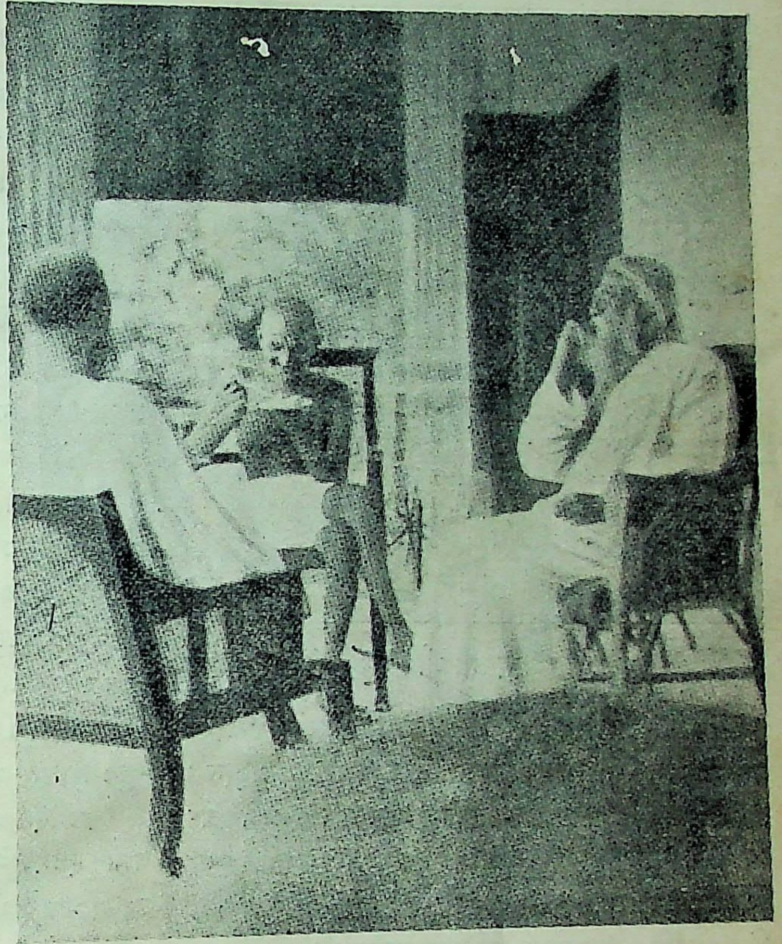
इसके बाद 'ज्ञानांकुर ओ प्रतिबिम्ब' नामक पत्रिकामें रवीन्द्रनाथकी कई कवितायें, आलोचनात्मक लेख तथा 'वनफूल' नामक काव्य प्रकाशित हुए। 'भानुसिंह ठाकुरेर पदावली'की सात कवितायें 'भारती' नामक मासिक पत्रिकामें प्रकाशित हुईं। इसके बाद उसी पत्रिकामें 'करुणा' नामक उपन्यास धारावाहिक रूपमें प्रकाशित होता रहा। इसी समय उन्होंने 'गाथा' भी लिखी। उपर्युक्त रचनायें उनकी पन्द्रह वर्ष आयुकी कृति हैं, जब कि, कहा जाता है कि उनका साहित्यिक जीवन आरम्भ हो गया था।

इंगलैण्ड-यात्रा

सन् १८७८ ई० में रवीन्द्रनाथने इंगलैण्डकी यात्रा की। वहां जाकर वह पहले ब्राइटनके एक पब्लिक स्कूलमें और बादको लन्दन यूनिवर्सिटी कालेजमें भर्ती हुए। लन्दनमें

उन्होंने जान (बादको लार्ड) मोर्लेके छोटे भाई प्रोफेसर हेनरी मोर्लेसे अंगरेजीका अध्ययन किया। वहां रहते समय उन्हें कामन्स सभामें ग्लेडस्टोन और ब्राइटके भाषण सुननेका अवसर मिला था। वहींपर उन्होंने 'भग्नतरी' नामक एक गाथाकी रचना की और 'भारती'में प्रकाशित होनेके लिए 'यूरोप-प्रवासीर पत्र' नामक पत्रावली भी भेजी। इंगलैण्ड-प्रवास-कालमें ही उन्होंने 'भग्न-हृदय' नामक एक और काव्य आरम्भ किया था, जिसे भारत लौटनेपर पूरा किया। सन् १८८० में रवीन्द्रनाथ इंगलैण्डसे वापस आये। मातृ-भूमिसे इतनी दूर रहनेपर भी, इस अल्पकालीन प्रवासमें उनके साहित्यिक जीवनमें कभी बाधा नहीं पड़ी। वहां रहकर उन्होंने जिन पुस्तकों या कविताओंकी रचना की, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, उनका बंगला साहित्यमें प्रमुख स्थान है। वह प्रथम श्रेणीके पत्र-लेखक थे। उनका पत्र-व्यवहार, चाहे व्यक्तिगत हो, चाहे सार्वजनिक, बड़ा सुन्दर होता था। उनके पत्रसे पढ़नेवालेको अपूर्व साहित्यिक आनन्द मिलता था। 'यूरोप प्रवासीर पत्र' इसी कोटिके पत्र थे। उन्होंने अपने जीवनमें समय-समयपर विभिन्न व्यक्तियोंके नाम जो पत्र लिखे हैं, उनका संग्रह बंगला साहित्यकी एक अमूल्य निधि है। यूरोपसे लौट आनेके बाद उन्होंने 'वाल्मीकि प्रतिभा' और 'कालमृगया' नामक गीति नाट्योंकी रचना की। ये दोनों नाटक उनके घरमें अभिनीत हुए। इन दोनोंकी भूमिकामें स्वयं रवीन्द्रनाथ रङ्गमञ्चपर उतरे थे।

सन् १८८१ में उन्होंने एक सार्वजनिक सभामें सर्वप्रथम लिखित भाषण दिया। विषय था सङ्गीत। सभाके दूसरे ही दिन रवीन्द्रको बैरिस्टरी पढ़नेके लिए फिर इंगलैण्डकी यात्रा करनी पड़ी। पर मार्गमें ही उनके विचार बदल गये, वह

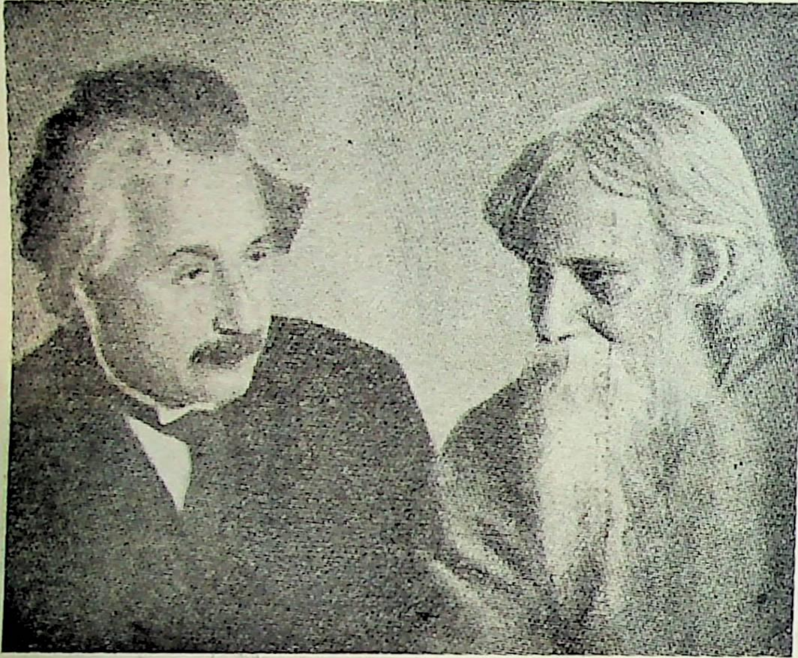


रवीन्द्रनाथ, महात्मा गांधी और एण्डरूज।

मद्राससे लौट आये और अपने पिताके साथ मसूरी चले गये। मसूरीसे वापस आनेपर वह चन्दननगरमें ज्योतिरीन्द्रनाथ ठाकुरके साथ रहने लगे। यहींपर रवीन्द्रनाथने 'सन्ध्या-सङ्गीत' की कवितायें लिखना आरम्भ किया।

साहित्यिक प्रयोग

'सन्ध्या-सङ्गीत' के प्रकाशित होनेपर रवीन्द्रकी बड़ी ख्याति हो गयी और लोगोंको स्पष्ट हो गया कि उनमें कविकी वास्तविक प्रतिभा है। उन्होंने इन कविताओंकी रचना कविताके प्राचीन नियमोंसे सर्वथा मुक्त हो, स्वतन्त्र रूपसे अतुकान्त और अमात्रिक छन्दोंमें की, जो उस समय बंगला साहित्यके लिए बिलकुल नयी बात थी। इसके बाद उन्होंने 'प्रभात सङ्गीत' भी लिखा। इन दोनों पुस्तकोंका यथेष्ट आदर हुआ।



रवीन्द्रनाथ और आइन्स्टीन।

'मानसी' की अधिकांश कविताओंको लिखा। 'मानसी'में कविकी प्रतिभा, वर्णन-शैली स्पष्टतः प्रौढ़ हो चली थी। उसी समय उन्होंने 'राजा रानी' नामक नाटक भी लिखा। गाजीपुरसे उन्होंने बैलगाड़ीमें बैठकर सारे भारतका भ्रमण करनेका निश्चय किया। उस समय उनकी अवस्था तीस वर्षके लगभग थी। भारतमें विभिन्न भागोंमें घूमकर जीवनकी तीर्थयात्रा करनेकी उनकी अभिलाषा थी। परन्तु रवीन्द्रके पिता महर्षिको, जो कुछ घरमें होता था, उसकी पूरी जानकारी थी। उन्होंने देखा कि रवीन्द्रका चित्त घरेलू कामोंसे क्रमशः हटता जाता है, इसलिए उन्होंने उनका इरादा पूरा नहीं होने दिया। उन्होंने रवीन्द्रको भारत-भ्रमणकी राय नहीं दी, इसके बदले उन्होंने अपने पुत्रको जमीन्दारीका काम देखनेका आदेश दिया। रवीन्द्रनाथ 'काम'का नाम सुनकर पहले तो बहुत डरे, पर बादको पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की।

कुछ दिन जमीन्दरीका काम संभालनेके बाद रवीन्द्र-नाथने १८९० में दूसरी बार यूरोपकी यात्रा की। पर वहां उनका मन नहीं लगा, इसलिए वह शीघ्र ही वापस चले आये। वहां रहते समय वह प्रतिदिन डायरी लिखते थे, जो 'साधना' नामक पत्रिकामें 'यूरोप यात्रीर डायरी' नामसे प्रकाशित होती थी। 'साधना'में उनकी बहुत-सी रचनायें प्रकाशित हुईं। वह उस समय बंगलाकी सर्वश्रेष्ठ पत्रिका थी। किसी समय रवीन्द्रनाथ उसके सम्पादक भी रहे।

इसके पश्चात् उन्होंने बिलकुल नूतन शैलीमें 'विविध प्रसङ्ग' नामक ग्रन्थ लिखा। यह भी बहुत लोकप्रिय हुआ। इसमें वर्णित विषय कोई विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं, पर उनकी वर्णन-शैली बिलकुल नयी और रोचक है।। इसी समय कविने 'बहु ठाकुरानीर हाट' नामक उपन्यास लिखा, जिसे उन्होंने अपना पहला उपन्यास माना है।

१८८३ के दिसम्बर महीनेमें खुलनाके बेनीमाधवराय चौधुरीकी कन्यासे रवीन्द्रनाथका विवाह हुआ। कन्याका माता-पिताका रखा नाम था भवतारिणी, ठाकुर परिवारमें आनेपर उनका साहित्यिक नाम रखा गया 'मृणालिनी।' विवाह होनेके बाद ज्योतिरीन्द्रनाथ ठाकुरकी पत्नीका देहान्त हो गया। रवीन्द्रनाथके साहित्यक जीवनका विकास ज्योतिरीन्द्रनाथ और उनकी पत्नीकी विशेष सहायतासे हो रहा था। रवीन्द्रकी माताकी मृत्युके बाद ज्योतिरीन्द्रनाथ-की पत्नीने ही उनकी माताका स्थान ग्रहण किया था, इससे उनकी मृत्युसे रवीन्द्रनाथके हृदयको बड़ा आघात पहुंचा।

उसके कुछ ही दिन बाद रवीन्द्रनाथ गाजीपुर गये, जो गुलाबके फूलोंके लिए भारत-विख्यात है। वहां रङ्ग-बिरङ्गे फूलोंके बीच रवीन्द्रने कुछ समय तक अपना कवि-जीवन बिताया। गाजीपुरमें ही उन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक

सार्वजनिक कार्य

रवीन्द्रनाथ कवि थे, इसलिए राजनीतिके प्रति उनकी विशेष रुचि न होना स्वाभाविक ही था। पर पराधीन देशमें तो प्रत्येक देशवासीका जीवन, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे, उससे विजड़ित होता है। इसलिए रवीन्द्रनाथ जैसा व्यक्ति राज-नीतिसे कैसे अछूता रह सकता था। यह १८९५-९६ की बात है। उस समय बङ्गालमें राजनीतिक जागृति विशेष रूपसे जोर पकड़ रही थी। यह आश्चर्यकी बात नहीं है कि रवीन्द्रनाथ जनसाधारणके आन्दोलनमें क्यों भाग लेने लगे, बल्कि आश्चर्यकी बात तो यह है कि अब तक वह इससे

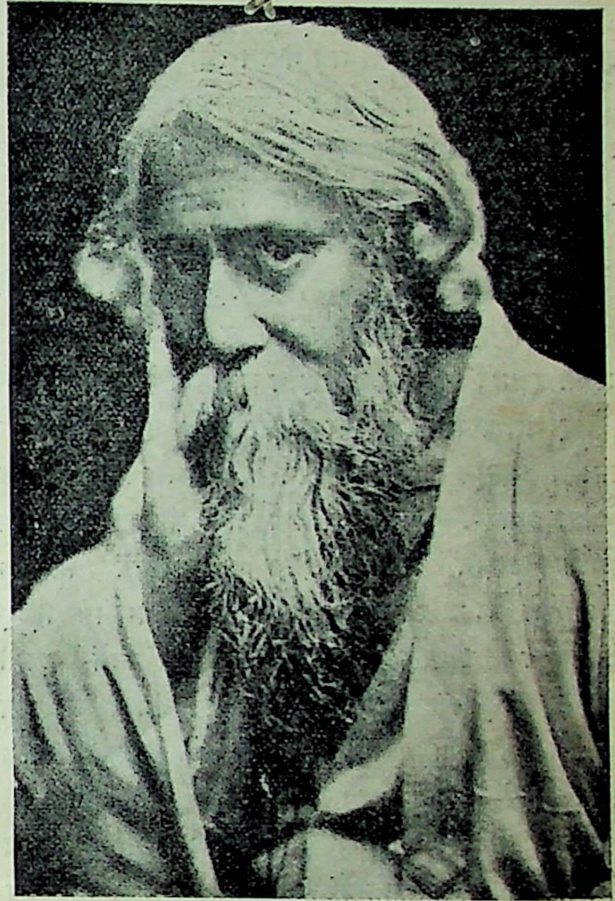
अलग क्यों रहे। सम्भवतः उनकी पारिवारिक स्थिति उनके मार्गमें बाधक थी। जो हो, अब वह कार्यरूपमें राजनीतिमें भाग लेने लगे। कई राजनीतिक सभाओंका सभापतित्व भी किया। देशकी वर्तमान अधोगति देखकर उन्हें बड़ा क्षोभ होता था। इस समय उन्होंने जो नाटक लिखे हैं, उनके पात्रोंसे अपने राजनीतिक विचार बड़ी खूबीसे प्रकट कराये हैं। उनकी 'कल्पना' नामक पुस्तक उनकी एक उत्कृष्ट राजनीतिक रचना है।

१९०१ का वर्ष रवीन्द्रके जीवनका एक महत्त्वपूर्ण वर्ष है। इसी वर्ष 'बङ्ग-दर्शन' नामक पत्रका पुनः प्रकाशन आरम्भ हुआ। रवीन्द्रनाथ उसके सम्पादक हुए। उसी पत्रमें उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'चोखेर बाली' (आंखकी किरकिरी) प्रकाशित होने लगा। उस उपन्यासने यह प्रमाणित कर दिया कि रवीन्द्रनाथ न केवल एक महान् कवि हैं, महान् उपन्यासकार भी हैं। इसी वर्ष बोलपुरमें उनके ब्रह्मचर्य आश्रमकी स्थापना हुई, जो अब शान्ति-निकेतनके नामसे विश्व-विख्यात है। १९०१ और १९०४ के बीच उन्होंने एक दूसरा बृहद् उपन्यास 'गोरा' लिखा। यह उपन्यास भी बहुत प्रसिद्ध है। १९०५ में 'खेया' नामसे गीतोंका संग्रह लिखा।

बङ्ग-भङ्ग-आन्दोलन

बङ्गालके इतिहासमें १९०५ ई० स्मरणीय वर्ष है। इसी वर्ष बङ्ग-भङ्ग-आन्दोलन छिड़ा, जिसने बङ्गालियोंको पागल बना दिया था। बङ्गालके प्रायः सभी बड़े-बड़े नेताओंने इस आन्दोलनमें भाग लिया। रवीन्द्रनाथ ही क्यों पीछे रहनेवाले थे। कमर कसकर आन्दोलनमें कूद पड़े। उस समय उन्होंने जो रचनायें लिखीं, वे मुर्दोंमें भी जीवन-सञ्चार कर देनेवाली हैं। विश्वके राजनीतिक साहित्यमें उन रचनाओंकी टक्करकी बहुत कम रचनायें मिलेंगी। अब रवीन्द्रनाथ अधिकारियोंकी नजरोंमें खटकने लगे। यद्यपि उनका नाम राजनीतिक सन्दिग्ध व्यक्तियोंकी सूचीमें नहीं था, फिर भी वह क्या करते हैं, कहां जाते हैं, इस ओर विशेष ध्यान रखा जाता था। यहां तक कि उनके पीछे एक भेदिया भी लगा दिया गया था।

बङ्ग-भङ्ग-आन्दोलनमें क्रियात्मक भाग लेनेके बाद रवीन्द्रनाथ फिर सांसारिक झञ्झटोंसे मुक्त हो, शान्ति-निकेतनमें विश्राम करने लगे। वहीं फिर अपना साहित्यिक



विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ

जीवन आरम्भ किया। इस अवधिमें शान्ति-निकेतनमें उन्होंने अपने कई प्रसिद्ध ग्रन्थोंकी रचना की।

नोबल-पुरस्कार

१९०९ में रवीन्द्रकी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'गीताञ्जलि' प्रकाशित हुई। इसी पुस्तकने उनकी ख्याति संसार-भरमें फैला दी और उन्हें विश्व-कविके उच्चासनपर बिठाया। गीताञ्जलिके प्रकाशित होनेके बाद रवीन्द्रनाथ तीसरी बार इंगलैण्ड गये। वहां वह अपने साथ अपनी इधरकी लिखी कविताओंका अंगरेजी अनुवाद ले गये थे। अनुवादसे आयरलैण्डके प्रसिद्ध कवि मि० यीट्स अत्यन्त प्रभावित हुए। और भी कितने ही अंगरेज कवि रवीन्द्रकी कविताओंका रसास्वादन कर बहुत मुग्ध हुए। लन्दनकी 'इण्डिया सोसायटी' ने गीताञ्जलिका अंगरेजी संस्करण प्रकाशित कर उसकी एक-एक प्रति अपने मेम्बरोंको भेंट की। इंगलैण्डमें गीताञ्जलिका अपूर्व स्वागत हुआ। अब रवीन्द्रनाथकी

ख्याति यूरोप और अमेरिका तक फैल गयी। चारों ओर उनकी कृतियोंकी धूम-सी मच गयी। भारत लौटनेपर यहां भी उनके प्रशंसकोंने वैसा ही उत्साह दिखाया। सर्वत्र उनकी प्रशंसा होने लगी। जब उनकी कवित्व-प्रतिभाकी ख्याति दिग्दिगन्तमें व्याप्त गयी, तब १९१३ में उन्हें विश्व-विख्यात नोबल-पुरस्कार प्रदान किया गया। इस प्रकार रवीन्द्रनाथने अपनी प्रतिभासे, भारतके गौरव और मानको बढ़ाया और इस बातको प्रमाणित कर दिया कि जो भारत आजसे हजारों वर्ष पहले अपने ज्ञान और विद्याके लिए संसारमें प्रसिद्ध था, पराधीन होनेपर भी वह अपने पूर्व गौरव और मानको अक्षुण्ण रखनेमें समर्थ है। नोबल-पुरस्कारके विजेता होनेपर, कलकत्ता यूनिवर्सिटीने भी उन्हें डाक्टरकी उपाधि प्रदान कर अपनेको गौरवान्वित किया। १९१४ में सरकारने उन्हें 'सर' की उपाधिसे विभूषित किया। गीताञ्जलि यूरोप और अमेरिकामें इतनी लोक-प्रिय हुई कि जब तक कि उसका बंगलाका प्रथम संस्करण समाप्त भी नहीं हो पाया था कि अंगरेजीमें उसके कितने ही संस्करण समाप्त हो गये।।

इंगलैण्डसे वापस आनेपर रवीन्द्रनाथ शान्ति-निकेतन पहुंचे। उनको बधाई देनेके लिए, कलकत्तेसे एक स्पेशल ट्रेन द्वारा ५०० यूरोपियन और भारतीय शान्ति-निकेतन गये। उन व्यक्तियोंमें जस्टिस आशुतोष चौधरी, आचार्य जगदीशचन्द्र बसु, रेवरेण्ड मिलबर्न, मौलवी अब्दुल कासिम, सतीशचन्द्र विद्याभूषण आदि प्रमुख थे। किन्तु उनकी उस सम्वर्धनाके उत्तरमें, उन्हें रवीन्द्रनाथने जो उत्तर दिया, उससे वे बड़े मर्माहत हुए और उसकी चर्चा बार लाइब्रेरियोंमें बहुत दिनों तक होती रही। रवीन्द्रनाथने कहा कि मेरे साहित्यिक जीवनमें देशवासियों द्वारा सदा मेरा विरोध और विद्रूप किया गया। आज जब पश्चिमने मेरी शक्तिको स्वीकार किया है, तो देशवासी हर्षसे फूले नहीं समाते। इसलिए आप लोग जो सम्मानका प्याला ले आये हैं, उसे मैं केवल हाथसे ही छूता हूं, हृदयसे पी नहीं सकता।

१९१६ में रवीन्द्रनाथने जापानकी यात्रा की। यात्राके मार्गमें उन्होंने 'कणिका' का अंगरेजीमें अनुवाद किया। जापानमें उन्होंने 'राष्ट्रीयता' पर भाषण दिये। जापान भ्रमण करनेके बाद वह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका गये, जहां उन्होंने 'राष्ट्रीयता' और 'व्यक्तित्व' पर व्याख्यान दिये। अमेरिकन यात्रामें उन्हें अपूर्व सफलता मिली, पर वहां ज्यादा दिन रहनेकी उनकी इच्छा नहीं हुई और तत्काल ही वह भारत लौट आये। यह १९१७ ई० की बात है। १९१८ में उनकी पुत्रीका देहान्त हो गया, जिससे उन्हें बहुत शोक हुआ। उस समय जो प्रथम यूरोपियन युद्ध छिड़ा हुआ था, उसमें जो अपार धन-जनकी क्षति हो रही थी, उससे उनका चित्त अत्यन्त खिन्न हो गया था। उन्होंने उस नरसंहारके विरुद्ध काफी लिखा भी।

१९१८ में ही अमृतसरमें जालियानवाला बागका लोमहर्षक काण्ड हुआ। सारे देशमें उसका तीव्र विरोध हुआ और बड़े कड़े शब्दोंमें उसकी निन्दा की गयी। कवि रवीन्द्रका हृदय इस रोमाञ्चकारी काण्डसे बिचलित हो उठा। उससे क्षुब्ध हो कविकी वाणी प्रबल वेगसे फूट निकली। उन्होंने लार्ड चेम्सफोर्डको पत्र लिखकर, प्रतिवाद स्वरूप, अपनी सरकी उपाधि त्याग दी। तबसे वह बराबर पञ्जाबके हत्याकाण्डका विरोध करते रहे।

विश्व-भारती

रवीन्द्रनाथ शान्ति-निकेतनको विश्वविद्यालयमें परिणत करना चाहते थे, जहांपर संसारके विभिन्न देशोंके लोग अपने विचारोंका आदान-प्रदान कर सकें। १९२० में वह फिर इंगलैण्ड गये। वहां कुछ दिन रहनेके बाद वह यूरोपके और भी कई देशोंमें गये। सभी जगह उनका अपूर्व स्वागत और सम्मान हुआ। यूरोपका भ्रमण कर लौटनेके बाद उन्होंने इस बार कुछ नया कार्य करनेका विचार किया। इस समय उनकी अवस्था ६० वर्षकी हो चली थी। २३ दिसम्बर १९२१ को उन्होंने शान्ति-निकेतनकी यूनिवर्सिटी, विश्व-भारतीकी स्थापना की और अपने हृदयकी चिर-आकांक्षित अभिलाषा पूरी की।

इस प्रकार विश्व-कवि रवीन्द्र आजीवन अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा द्वारा हिन्दू सभ्यता, संस्कृति और भारतवर्षकी लुप्त प्रतिष्ठाका पुनरुद्धार करते रहे। उनका जीवन ऋषि-तुल्य था और भारतके इतिहासमें उन्हें वही स्थान प्राप्त होगा, जो भारतके प्राचीन महान् विचारकों, दार्शनिकों और कवियोंको प्राप्त है।

———

रधिया

श्री 'पहाड़ी'

आधी रात बीत जानेपर भी जब काशी नहीं आया, तो रधिया कांप उठी। आपसमें तो उनका झगड़ा रोज ही हुआ करता है। काशी भले ही उसे मारता-पीटता है, फिर भी वह उसका सगा है। उससे वह गुस्सा होकर आखिर समझौता कर लेना सीख गयी है। रधिया और काशी दो नहीं, उनकी एक गृहस्थी है, जिसकी जिम्मेवारी दोनोंपर है, और वे उसे चलाया करते हैं। काशीके प्रति उसके दिलमें विद्रोह भी उठता है। वह काशी तो अब बहुत बदल गया है। पहले ऐसा नहीं था। तब उन दोनोंके बीच झगड़ा होकर, बात बहुत नहीं बढ़ती थी। दोनोंके जीवनमें नयी आकांक्षा और उम्मीदें थीं। काशी एक युवक था और रधिया एक सुन्दर छोकरी। दोनों आपसमें एक-दूसरेको खूब प्यार करते थे। अब तो जवानीका वह उफान चुक गया था और दोनोंके जीवनके बीच 'युगकी दासता' ने एक खाई भी डाल दी थी, जिसे पाकर उनमें अपना-अपना असन्तोष बढ़ रहा था।

सात साल पिछला जमाना। तब काशीमें कोई भी बुरी आदत नहीं थी। वह सारे मुहल्लेके लड़कोंके गिरोह-का सरदार था। उसकी शरारतोंसे सब घबराया करते थे। उसके साहसकी चर्चा सबमें चालू रहती थी। और एक दिन मेलेसे लौटते हुए रधिया अकेली छूट गयी। वह दिन आज याद हो आया। मेलेमें बड़ी भीड़ थी। उसके सब साथी आगे बढ़ गये। वह उनको ढूंढ़ने लगी, कि सांझ हो आयी थी। बस, वह जल्दी-जल्दी घरकी ओर बढ़ गयी। लेकिन राहमें गुण्डोंने उसे घेर लिया। वे उससे अश्लील मजाक कर, उसे छेड़ने लगे। वह तो घबरा गयी थी। उसी वक्त वहां काशी पहुंच गया। और काशी·········

"काशी आ गया।" रधियाकी सासने पूछा। वह बुढ़िया फटे-पुराने गुदड़ोंके बीच पड़ी है। बहुत तेज बुखार-में पड़ी हुई अपनी मौतका इन्तजार कर रही है। इस बीमारीमें भी बीचमें टें-टें-टें लगाये रहेगी। रधियाका तो अङ्ग-अङ्ग टूट रहा था। वह बहुत कमजोर है। जरा भी सामर्थ्य अब उसमें बाकी नहीं। इसपर भी अभी-अभी एक अजीब काण्ड हो गया।

इन मजदूर दलवालोंको भी न जाने क्या पड़ी रहती है। एक हड़ताल करनेको कहेगा, दूसरा मजदूरोंको भड़-कायेगा, जैसे कि वह सारे हकोंकी लड़ाई काशी और रधियाके लिए हो रही है, जिसे जीतकर वे दोनों चैनकी वंशी बजायेंगे। उस वंशीका स्वर-साधन ठीक करनेके लिए एक 'पव्वा' कण्टरी काशी पिया करता है। पिये बिना जैसे कि गाड़ी अटक जायेगी।

शायद वे लोग नहीं जानते कि काशी निगोड़ा नहीं। उसकी मां है, उसकी बीबी है, उसके बच्चे हैं, इसीलिए उसे हड़तालमें अगुआ बनाना अनुचित होगा। उसको नारे लगा गलत जोश सौंपना एक भूल है। उसे अपनी टूटी-उजड़ती हुई गृहस्थीको संभालनेके लिए पैसा चाहिए। वह पैसा मज-दूरीसे मिलता है। मजदूरोंकी अजीब हालत होती है। वे बातको ठीक समझे बिना ही कभी-कभी जलूस निकाल दिया करते हैं। जब एक दल हड़ताल कर देता है, तो दूसरा दल सहानुभूति दिखानेके लिए काम छोड़ देता है। तीसरा दल इसे एक 'फैशन' मान शामिल होता है और उससे मजदूरोंकी आवाजका सही 'व्यक्तित्व' नहीं बन पाता। कभी-कभी तो साधारण कच्ची चोटें खाकर ही वह सब थोथा साबित हो जाता है।

कुछ भी हो, बुराईके भीतर बुराइयां हैं और उनको समझकर ही काशी और उसके साथियोंने वह शहर छोड़ दिया। दिन-भर वे सफर करते रहे। उस दलमें एक निठल्ला युवक भी था, जो हरएक बात मजाक-सी कह देता था।

चोखे तो बोला—"काशी, मुझे घर चार रुपये भेजने हैं। छुधिया बीमार है। अगले कस्बेके 'पोस्ट आफिस' से 'मनिआडर' कर देना।"

"चुप भी रह चोखे, पहले अपने पेटकी फिक्र कर। मरनेवालेको कोई भी नहीं बचा सकता है।" काशी तावसे बोला।

रधियाने इसी वक्त काशीकी ओर देखा। उसका बदन टूट रहा था। एक बच्चा गोदीमें और एक पीठपर था। वह बार-बार भीगी पलकोंको पोंछ लेती थी। काशीके सिरपर कपड़ोंकी गठरी थी और हाथपर बरतनोंकी बोरी। उसका चेहरा भी मुरझाया हुआ था। चोखे फिर बोला—"काशी।"

"क्या है चोखे। यही न, छधिया मर जायेगी। अच्छा है, इस पापी दुनियासे तर जायेगी। हमीं जीकर क्या कर रहे हैं।"

इसी बीच एक और मजदूर बोला—"वहां तो हम बेकार नहीं रहेंगे। काम मिल जायेगा।"

"हम किसी मिलके भीतर घुस जायेंगे।" दूसरा मजदूर दम्भमें बोला।

"भीतर!" चोखेकी समझमें बात नहीं आयी।

"क्यों, डरकी बात क्या है। वे काम नहीं देंगे, तब वहांके मजदूरोंको बहकाकर, हड़ताल करवा देंगे।"

वह 'हड़ताल' जैसे कि उनकी सब परेशानियोंको सुलझा सकती है। पैसेके सहारे खड़ा रहनेवाला मजदूर जब भूखा रहता है, तो वह निर्माणकी बात कदापि नहीं सोच सकता है। वह क्या करे। उसकी मजबूरी ऊपर उठ आती है। वह अपनेको नष्ट होता देखकर भी फीकी हंसी हंसता है। उसके चारों ओर एक बड़ी भीड़ भी लगी रहती है। उसकी दृष्टि भी ताड़ीखाने, कण्टरीकी दूकान, सूद देनेवाले पठान और मिलके मालिकोंसे बाहर जैसे कि कभी नहीं पड़ेगी।

'पोस्ट आफिस' के नजदीक पहुंचनेपर, चोखे बोला—"काशी, 'मनिआडर' कर दे।"

'मनिआडर! मनिआडर!! क्या चिल्ला रहा है।" काशी खीसें निकालकर बोला।

उसकी चढ़ी आंखें लाल थीं। मानो कि दुनिया और भगवानपर आया सारा गुस्सा उबल पड़ा हो। रधियाका बच्चा रास्तेमें कस्बेकी एक दूकानकी ओर देखकर मचल उठा।

"हरामजादे चुप रह।" काशीने उसे घूरते हुए कहा। रधिया अण्टीसे पैसा निकाल रही थी। उसका हाथ रुक गया।

मुन्नी अब तक चुपचाप अपनी मांकी छातीसे चिपकी सोयी हुई थी। रात-भरसे उसकी तबीयत खराब थी। उसे बुखार था। रधिया बहुत थक गयी। उसने मुन्नीको अपनी सङ्गिनको देना चाहा, लेकिन मुन्नी चुपचाप पूरी नींद न जाने कब सो चुकी थी। उसकी आंखें मुंदी ही रहीं, जैसे कि अब नहीं खुलेंगी।

सबने सावधानीसे मुन्नीको देखा। "हा भाग!" कह रधिया फूट-फूटकर रोने लगी।

चोखेने मुन्नीको उठाया। पास ही जङ्गलकी ओर ले जाकर, एक गड्ढेमें गाड़ दिया। उसकी आंखोंसे टप-टप-टप आंसूकी बूंदें टपकीं। वह फिर लौट आया।

रधिया ठगी-सी खड़ी थी। उससे पूछा—"मेरी मुन्नी-को हाय! अकेली छोड़ आये हो?"

चोखे क्या समझाता। सांझ हो आयी थी। अभी शहर बहुत दूर था। मुन्नीका सारा लोभ बिसारकर वे सब आगे बढ़ गये। उनका अपना सब विश्वास उस शहर-पर केन्द्रित था कि वहां नौकरी मिलेगी।

रधिया चौंकी। उसकी सास उठ खड़ी हुई थी। वह सारा स्वप्न मिट गया। उसकी सासने अपना फटा कम्बल संभाला, पुराने टूटे जूते पहने और बोली—"मैं काशीको बुला लाती हूं। वह लड़-झगड़कर चला गया है।"

बुढ़िया सन्निपातकी हालतमें बाहर चली गयी। रधिया तो असहाय पड़ी थी। उसका दिल घबरा रहा था। कभी तो एकाएक ख्याल आता, मुन्नो वहां बंदरियाकी बच्ची-सी चिपकी है। लेकिन वह तो दिनमें मर गयी थी। सब झूठ था। उसका बच्चा चुपचाप फर्शपर सो रहा था। रधियाकी कमर दुख रही थी। हाथ-पांव फूल गये.........

एक-एककर पिछली बातें याद आयीं। मेलेसे लौटकर काशीने उसे बचाया था। फिर दोनोंकी शादी हुई। पहले कितने सुखसे उनके दिन बीतते थे। कभी झगड़ा होता था, फिर समझौता भी। उनकी गृहस्थी हर तरह ठीक चालू थी।

और आज। एक नये शहरकी धर्मशालामें वह पड़ी हुई है। काशी न जाने कहां शहरमें भटक रहा होगा। उसके समीप कोई भी नहीं है। वह असहाय और अकेली है। दिन-भरके लम्बे सफरके बाद यही आखिर उसे देखना बदा रहा होगा।

"ओ मां !" उसका सारा शरीर दुख रहा था। अभी एक घण्टा पहले ही काशी लात-घूंसोंसे उसकी मरम्मत करके चला गया। वह घटना :

वह किसके लिए पैसे संभाल, बचा करके रखती है। काशीसे पैसे छुपाकर रखना क्या अपराध है। काशीने पैसे मांगे थे, चुपचाप दे देती। वह दारू पिये, चाहे जुआ खेले, उसे कुछ भी मतलब नहीं है। वह बेहोश हो गयी थी। उसकी तबीयत न जाने क्यों खराब हुई। चोखे कम्पाउण्डरको बुलाकर ले आया। कम्पाउण्डरने दवा लिखकर चोखेको अस्पताल भेज दिया। और काशी बाजारका चक्कर लगा, लौटा था। उसे भूख लगी थी। आकर चीखा, "खाना लाओ ?"

उसकी मां बोली, "आज खाना कहां बना है। बाजारसे खा लेना।"

"मुझे खाना दो।" काशी फिर चिल्लाया।

काशीके गुस्सेको रधिया पहचानती थी। वह एक दिन बेकारोंकी सभामें सारे शहरकी मिलोंको उजाड़नेकी कसम खा चुका था। उसी वक्त वह एक मिलके पास खड़ा होकर, ईंटें उखाड़ रहा था, जैसे कि सारी मिलको नेस्तनाबूद करनेकी ताकत उसमें हो। वह अपनी धुनका पक्का व्यक्ति है। उस दिन पुलिसवालोंने उसे पकड़, कुछ बेंत लगाकर, छोड़ दिया। और उसने नशेमें कसम खायी थी कि वह एक दिन सब पुलिस-मैनोंके गले घोंटेगा। नशेमें वह आपेमें नहीं रहता है।

रधियाने अपनी अण्टीसे चार पैसे निकाल फेंकते हुए कहा था, "बाजारसे खाना खा लेना। मेरी तबीयत ठीक नहीं है।"

"हरामजादी, बदमाश, झूठ बोलती है। चार पैसे ! निकाल रुपया।" काशीने चार लातें जमायीं। रधिया उठी और फिर लड़खड़ा धड़ामसे जमीनपर गिर पड़ी।

कम्पाउण्डरको गुस्सा चढ़ा। उसने काशीकी गरदन पकड़कर चांटे जड़ते हुए कहा, "नालायकके बच्चे। वह खुद ही मर रही है। तुझे नशेमें कुछ होश भी है।"

"मरने दो !" काशी खीसें निकाल हंस पड़ा। नाचने लगा—"मर जायेगी—मर जायेगी।" फिर चुपचाप उसने रधियाकी अंटियासे रुपया निकाला और यह कहकर कि "तुम अपनी माशूकाको बचा लो" बाहर निकल गया।

रधियाको जरा होश आया। वह कांप उठी। काशी यह कैसा कलङ्क उसपर लगा ग[illegible] था। उफ ! यह भी सुनना बदा होगा। वह उठनेकी निरर्थक चेष्टा करने लगी। कम्पाउण्डर बोला, "लेटी रहो।"

लेकिन रधिया पगली-सी बोली—"तुम यहांसे चले जाओ।" और फिर फर्शपर गिर पड़ी। कम्पाउण्डरने जब यह हाल देखा, मौतके आश्रयमें उसे सौंपकर वह चुपचाप चला गया।

वह अब चौंकी। वह पैसे किसके लिए बचाती है। उसका सुख क्या है ? काशी उसका पति है। वह चाहे कुछ भी हो। दोनों एक हैं। उसने पैसे मांगे थे, तो वह दे देती। वह चाहे शराब पिये, चाहे कुछ। उसीकी कमाईके पैसे हैं। वह शराब ठीक तो पीता है। वह बहुत परेशान जो रहता है।

अब तो वह बुढ़िया भी चली गयी थी। उस अंधेरी कोठरीमें रधिया चुपचाप लेटी रही। बच्चा बहुत पहले भूखसे सिसक-सिसककर रोता, थका-मांदा सो गया था। वह फिर सोचने लगी कि काशी कहां होगा। किसी शराबकी दूकानके बाहर पड़ा होगा। वह उसे ढूंढ़ने जायेगी। वह हिम्मत कर उठी। पर सब बेकार, फिर उसी तरह लेट गयी। एकाएक उस भारी अन्धकारमें उसने अपनी मांकी आवाज सुनी, मानो वह उसे पुकार रही हो। तो क्या उसकी मां स्वर्गसे उसे अपने साथ लेने आयी है। वह अभी नहीं जायेगी। उसका बच्चा है। उसकी परवाह कौन करेगा। बिना मांके बच्चोंकी देखभाल ठीक-ठीक नहीं होती है। लेकिन उसने आंखें फाड़-फाड़कर देखा, सच ही उसकी मां दरवाजेपर खड़ी उसे अपनी ओर इशारेसे बुला रही थी।

"नहीं मां ! नहीं-नहीं, मैं नहीं आऊंगी।" वह जोरसे चिल्लायी। वह शब्द भी उस अन्धकारमें विलीन हो गया।

फिर चारों ओर वही सुनसान। वह काशी कहां होगा। कल वह उससे कहेगी—काशी, अब तो तुमने दुनियाकी लाज शरम भी खो दी है। लोगोंको तो देखा करो। इस तरह हम कै दिन चलेंगे।

मां-मां-मां······वह मुन्नी रो रही थी। मुन्नी सच ही उसकी छातीसे चिमटी रही।

मां-मां-मां……वह मुन्नी हो थी। मुन्नी कहां रही तू। लौट आयी……

फिर लगा कि लोग गड्डा खोद रहे हैं। उसे गाड़ रहे हैं। ओफ!

वह काशी न जाने क्यों चला गया। बुढ़िया कहां होगी। चोखे भी अभी तक लौटकर नहीं आया था। रधिया बेहोश हो गयी।

चारों ओर घना अन्धकार था। इसीलिए वह सम्भव घटना छुपी-सी रही।

बड़ी रात गये चोखे आया। आकर पुकारा—"भाभी! भाभी!!"

कुछ न सुन भी कहता रहा—"ओ भाभी, तूने बुढ़ियाको क्यों जाने दिया। वह मोटरसे दबकर मर गयी है।"

लेकिन उसकी बात कौन सुने? रधियाको अब यह सब सुन लेनेकी फुर्सत नहीं थी। शायद उसमें सुननेकी सामर्थ्य होती, सब कुछ सुनती। वह अब उससे बरी थी। रोजकी झञ्झटोंसे अनायास आज छुटकारा मिल चुका था।

अब भी घोर अंधियारा था। चोखेने अपनी जेब टटोली। दियासलाई नहीं मिली। वह कोठरीमें इधर-उधर ढूंढ़ने लगा। तभी एक कोनेमें सिकुड़ी रधिया मिली। वह उसे हिलाता हुआ बोला—"भाभी! भाभी!!"

भाभी उठ सकती, उठती। उठकर सारी दुनियाकी फिक्र बटोर लेती।

"मां—मां।" बच्चा, हड़बड़ाता उठ पुकारने लगा।

रधियाके आगे तो अब बच्चेके उठने और भूखे रहनेका सवाल ही नहीं उठ सकता था।

"मां, भूख लगी है।" बच्चा बोला।

"चुप रह अभागे।" चोखे बोला।

बच्चेकी समझमें बात नहीं आयी। वह रोने लगा।

उस अन्धकारमें चोखेकी आंखोंसे टप-टप-टप आंसूकी बूंदें टपक पड़ीं। वे आंसूकी बूंदें रधियाका मुंह धो रही थीं।

वह सिसक-सिसककर रो रहा था। बच्चा भी अब रोने लगा।

× × ×

दूसरे दिन सुबह पुलिसने काशीको मजिस्ट्रेटके सामने पेश किया। वह शराबके नशेमें चूर एक मिलकी दीवारसे ईंटें निकाल रहा था। चौकीदारके मना करनेपर उसने उसपर हमला किया।

मजिस्ट्रेटने कानूनकी दफाकी सच्चाई बरतनेके लिए सही सबूत पाकर उसे इस जुर्ममें सिर्फ पांच सालकी सजा और सौ रुपया जुर्माना किया।

× × ×

रधियाकी बाकी कहानी अब पांच साल बाद काशी लौटकर सुनायेगा। वह जेलमें काम करते-करते वादा करता है कि अब कभी रधियाको नहीं मारेगा। शराब नहीं पियेगा।

पांच सालका लम्बा अरसा वह रधियाकी यादमें व्यतीत कर रहा है।

———



जापानकी वैदेशिक नीति

श्री रामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए० एल-एल० बी०

जापान प्रशान्त महासागरमें चीनके पूर्व-उत्तरमें एक टापू है, जिसका क्षेत्रफल १४८,८०० वर्गमील है। उसके कोरिया, फारमोसा और दक्षिणी सखालिन उपनिवेश हैं, जिनका क्षेत्रफल ११४,६०० वर्गमील है। जापान देशकी कुल जन-संख्या ७ करोड़ ३० लाख है और उसके प्रवासियोंकी जन-संख्या ३ करोड़ है।

उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धसे जापानने पाश्चात्य देशोंका अनुकरणकर अपनी शासन-व्यवस्थाको पाश्चात्य ढांचेमें ढालनेका प्रयत्न किया। जापान ही एशियामें सबसे पहला देश है, जिसने पाश्चात्य आधुनिकताको अपनाया। बहुत ही शीघ्र उसने अपने देशमें प्रजातन्त्र-शासन-प्रणालीको स्थान दिया और सेनाका सङ्गठन भी आधुनिक ढङ्गसे किया। सन् १९०५ में जब जापानने रूसके विरुद्ध युद्ध किया, तब वह पूर्णतया एक साम्राज्यवादी राष्ट्र बन चुका था।

सन् १९१४-१८ के विश्व-युद्धमें जापान मित्र-राष्ट्रोंकी ओरसे जर्मनीके विरुद्ध लड़ा था। परन्तु सन् १९१९ के बादसे कुछ ऐसी परिस्थितियां पैदा हो गयीं, जिनके कारण वह ब्रिटेनसे अलग होता चला गया। उधर जबसे रूसमें राज्य-क्रान्तिके फलस्वरूप सन् १९१७ में समाजवादी शासन-प्रणालीकी स्थापना हुई, तबसे उसे रूससे भय पैदा हो गया। सोवियट रूस महान् देश है—उसका क्षेत्रफल भी विशाल है। उसकी सीमायें यूरोपमें पोलैण्डकी पूर्वी सीमासे आरम्भ होकर एशियाके उत्तरमें प्रशान्त महासागर तक जाती हैं।

सन् १९३१ में जापानने मञ्चूरिया (जो चीनका उत्तरी प्रदेश था) पर आक्रमण किया और उसपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। मञ्चूरिया और चीनी जेहोल प्रान्तोंको मिलाकर एक नया राज्य कायम कर दिया। इस राज्यका नाम मञ्चूको रख दिया गया और मञ्चू-वंशके अन्तिम चीनी सम्राट् यूईको, जो सन् १९११ में सिंहासन-च्युत कर दिया गया था, मञ्चूकोका राष्ट्रपति बना दिया। वास्तवमें यह कोई स्वतन्त्र राज्य नहीं है। मञ्चूको जापानके प्रभुत्वमें है। इसका क्षेत्रफल ४६०,००० वर्गमील तथा जन-संख्या ३ करोड़ है। मञ्चूकोमें जापानी प्रवासियोंके लिए पर्याप्त भूमि है, जहां वे रह सकते हैं। परन्तु उसकी जलवायु उनके लिए अनुकूल नहीं है। मञ्चूरियामें केवल २ लाख जापानी प्रवासी हैं।

जापानकी जनसंख्याका $\frac{1}{6}$ भाग उद्योग-धन्धोंमें लगा हुआ है। जापानियोंकी ५० प्रतिशत जन-संख्या कृषि-व्यवसायमें लगी हुई है।

जापान एशियामें अपना प्रभुत्व उसी प्रकार जमाना चाहता है, जैसे कि जर्मनीका शासक हिटलर यूरोपमें। परन्तु उसके मार्गमें सोवियट रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन बाधक हैं। चीनमें वह पहले अपना प्रभुत्व जमाना एशियाई विजयके लिए आवश्यक समझता है। इसलिए सन् १९३१ से वह चीनसे सङ्घर्ष कर रहा है। बीचमें सन् १९३३-३४ में जापानने चियाङ्ग-काई-शेकके साथ सन्धि कर ली, क्योंकि चीनका वह पुनर्सङ्गठन चाहता था। इसलिए शेकने भी सन्धि करना ठीक समझा। परन्तु ७ जुलाई १९३७ को फिर जापानने चीनपर आक्रमण करना शुरू कर दिया। तबसे आज-पर्यन्त जापान-चीनमें युद्ध हो रहा है। चीन बड़ी वीरताके साथ जापानका मुकाबिला कर रहा है। जापान यह चाहता है कि चीनके आर्थिक साधनों तथा दक्षिणी प्रदेशोंपर वह अपना अधिकार जमा ले। इस युद्धमें जापानने प्रथम वर्षमें बड़े जोरोंके साथ युद्ध किया और चीनके नानकिंग नगरमें एक कठपुतली सरकार स्थापित कर दी। वांग-चियाङ्ग-वाईके हाथमें वहांका शासन-भार सौंप दिया है। पहले यह चीनकी राजधानी थी। परन्तु इसपर जापानका अधिकार हो जानेसे चीनने दक्षिणी-पश्चिमी चीनके चुङ्गकिङ्ग नगरमें राजधानी बना ली है। चुङ्गकिङ्गकी सरकार वीर चियाङ्ग-काई-शेकके नेतृत्वमें बड़ी दृढ़ता और बहादुरीके साथ जापानका मुकाबिला कर रही है।

चीन-जापान-युद्धमें अब तक ६००,००० जापानी तथा १,७००,००० चीनी घायल हो चुके तथा मर चुके हैं।

जापानकी आर्थिक व्यवस्था सङ्कटमें !

१० सालकी लड़ाईके फलस्वरूप जापानकी आर्थिक व्यवस्था आज सङ्कटमें है। जापानने चीनमें जो सैनिक विजय की है, उससे उसकी आन्तरिक आर्थिक व्यवस्था तथा उसकी सुख-समृद्धिमें कोई सुधार या वृद्धि नहीं हुई। इसके विपरीत जापानकी जनता आज अत्यन्त भीषण सङ्कटमें है। अमेरिकन पत्रकार जेम्स रसल यङ्ग १३ वर्ष तक जापानकी राजधानी टोकियोमें पत्र-संवाददाता रहे हैं। उन्होंने चीन और जापानमें काफी भ्रमण करके स्थितिका निरीक्षण किया है। जब चीनमें भ्रमण करके वह फिर २१ जनवरी १९४० को टोकियो वापस पहुंचे, तो जापानी पुलिसने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और ६१ दिन तक जेलमें कैद रखा गया। इसके बाद वह अमेरिका चले गये। उन्होंने अपने एक लेखमें जापानकी स्थितिका आंखों देखा बड़ा मर्मस्पर्शी और कारुणिक चित्र अङ्कित किया है। श्री जेम्स रसल यङ्ग लिखते हैं :—

"जापानियोंको……७२ घण्टेके सप्ताहमें काम करना मञ्जूर है; परन्तु वे इसपर आपत्ति करते हैं कि उन्हें एक पौण्डका अल्पांश शक्कर प्रति मास मिले, शुद्ध मक्खन बिलकुल न मिले और दूध कुछ खास इलाकोंमें ही मिले, प्रतिदिन ४ दियासलाइयां मिलें और सूती तथा ऊनी किसी भी तरहका कोई कपड़ा न मिले।…

"जापानमें दो प्रकारकी पुलिसका आतङ्क है—आर्थिक पुलिस और विचार-पुलिस। दो सालमें ६६८,००० जापानी व्यापारियोंको आर्थिक पुलिसने गिरफ्तार किया। विचार-पुलिस उन लोगोंको गिरफ्तार कर लेती है, जो सरकारकी नीतिके विरुद्ध विचार रखते हैं।…इस पुलिसने कालेजों तथा विश्वविद्यालयोंके १,२०० प्रोफेसरोंको गिरफ्तार कर लिया है।…

"रोगोंके प्रकोपकी आशङ्का है। टोकियोमें जलकी बड़ी कमी है। टोकियो, नागोया तथा ओसाकाके निकट अस्त्र-शस्त्रोंका निर्माण-कार्य हो रहा है, जिसमें लाखोंकी संख्यामें लोग काम कर रहे हैं। इनके लिए जो जल भेजा जाता है, उसके कारण टोकियोके नागरिकोंको जल पर्याप्त नहीं मिलता।

"सेना जलाभावका दोष जल-वर्षाकी कमीको देती है। जनता इस बातमें विश्वास नहीं करती। यदि कोई नागरिक जोरके साथ शिकायत करे, तो उसे विचार-पुलिस द्वारा पकड़वाकर बुलाया जाता है। यदि वह नियत मात्रासे अधिक जल या बिजली इस्तेमाल करता है, तो उसे आर्थिक पुलिस द्वारा बुरी तरह तङ्ग किया जाता है।…जापानका मुख्य अन्न चावल है। परन्तु इसकी भी जापानमें बड़ी कमी है।…खेतोंपर मजदूरोंका अभाव है…अधिक वेतनकी आशामें मजदूर औद्योगिक क्षेत्रोंमें काम कर रहे हैं। जापानको ब्रह्मा और थाईलैण्डसे चावल मंगानेके लिए बाध्य होना पड़ा है। यदि इस ऋतुमें कोई सुधार नहीं हुआ, तो इस शीतकालमें कोरिया तथा जापानमें चावलका अकाल पड़ जायगा।

"टोकियोमें ६,६०९,००० लोगोंके लिए २००० गैलन दूध प्रतिदिन मिलता है। पहले ६ सदस्योंके परिवारको ३ बोतल दूध मिलता था, तो अब आधी बोतल दूध मिलता है।…

"दो साल पहले ही सूती मालकी बिक्री बन्द कर दी गयी। अस्पताल पट्टी बांधनेके लिए सूती कपड़ों तथा रुईका अभाव अनुभव कर रहे हैं। कुनेन, अस्परीन और आयोडीनकी कमीने स्थितिको और भयानक बना दिया है।…"

—'अटलाण्टिक मन्थली' फरवरी १९४१।

जब जापानकी आर्थिक अवस्था इतनी खराब है, तब क्या यह सम्भव है कि जापानी सरकार अपनी जनताके नैतिक धरातलको कायम रख सकेगी। यह स्थिति इतनी भयानक है कि जापानमें भयानक अकाल और अन्न-वस्त्रका अभाव ही नहीं हो जायगा, प्रत्युत इससे एक भयङ्कर आर्थिक सङ्कट पैदा हो जायगा, जिसके हल करनेका इस समय जापानके पास कोई साधन नहीं है।

सैनिक दृष्टिसे भी जापान शक्तिशाली नहीं है।

जापानकी सेना ५,०००,००० है और वह संसारमें सर्वश्रेष्ठ सेनाओंमें गिनी जाती है। इसमेंसे २,०००,००० सैनिक चीनके युद्धमें रण-भूमिपर हैं। जापानकी नौसेना संसारमें तृतीय है। इनके बावजूद भी जापान आज सैनिक दृष्टिसे कमजोर है। उसमें आज चीनका सर्वनाश करनेकी शक्ति नहीं है। ४ सालकी निरन्तर लड़ाईके बाद भी चीन जापानका मुकाबिला करनेके लिए आज भी

तैयार है। परन्तु जापानी सरकारकी ओरसे इस बीचमें कई बार शान्तिकी चर्चा की जा चुकी है।

इसके अतिरिक्त जापानकी आर्थिक स्थिति भी सन्तोष-जनक नहीं है। इस वर्ष जापानकी सरकारका बजट ९ अरबका है। यह सबसे बड़ा बजट है, जो आज तक इस सरकारने स्वीकार किया है। यह उसकी राष्ट्रीय आयका ५० प्रति-शत है। इसका मतलब यह है कि जापानकी जनतासे ५० प्रतिशत कर लिया जाता है। इससे अधिक कर लगानेकी गुञ्जाइश नहीं। जापानके पास जो अधिकृत चीनी प्रदेश हैं, उनमें यद्यपि प्रायः २० करोड़ जनता है; परन्तु उनसे उसे कोई आमदनी नहीं है। औद्योगिक दृष्टिसे भी जापान यूरोपीय राष्ट्रोंसे कमजोर है।

जर्मनी-जापान-मैत्रीका रहस्य

जापानकी यूरोपमें कोई आकांक्षा नहीं है और न वह यूरोपके किसी देशपर अधिकार जमाना चाहता है। तब जर्मनीसे जापानकी इस घनिष्ट मैत्रीका क्या सम्बन्ध है। जापानकी इस मैत्रीका कारण है जर्मनी और जापानके मध्यमें सोवियट राज्य। जापान रूसका पुराना शत्रु है और आज भी वह रूसका शत्रु है। यही कारण है कि २९ नवम्बर १९३६ को जापान और जर्मनीमें साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय-सङ्घ-विरोधी समझौता हो गया। इसका उद्देश्य सोवियट रूसके विरुद्ध मोर्चा तैयार करना था।

इसके बाद २७ सितम्बर १९४० को जर्मनी, इटली तथा जापानने त्रिराष्ट्र-सन्धि-पत्रपर हस्ताक्षर कर गुट्टबन्दीको और भी दृढ़ बना लिया। इस सन्धिकी धाराओंसे यह स्पष्ट है कि इसका उद्देश्य यूरोपमें नाजीवादका आतङ्क और एशियामें जापानी साम्राज्यवादका आतङ्क कायम करना है।

यह समझौता १० वर्षोंके लिए किया गया है और इसकी अवधि परस्पर समझौतेसे बढ़ायी भी जा सकेगी।

जर्मनी एशियामें जापानको अपना समर्थक बनाना चाहता था; क्योंकि इस ओरसे उसे दो बड़ी शक्तियोंसे भय था। एक ब्रिटेन तथा दूसरी सोवियट रूस। उसकी नीति यह है कि जापानको इन दोनोंसे पूर्वमें मोर्चा लेनेके लिए खड़ा रखा जाय।

इस समय जर्मनी खासकर ब्रिटेनसे युद्ध कर रहा है। ऐसी स्थितिमें उसे निकट-पूर्वमें इन दोनों सत्ताओंको उलझनमें डालनेकी आवश्यकता है। क्योंकि ऐसा हो जानेसे जर्मनी यूरोपमें बड़ी आसानीसे अपनी मनोकामना पूरी करनेकी आशा करता है।

२२ जून १९४१ से जर्मनी और रूसमें युद्ध हो रहा है। त्रिराष्ट्र-सन्धिके अनुसार जापान जर्मनीको आर्थिक, सैनिक तथा राजनीतिक सहायता देनेके लिए बाध्य है। परन्तु अभी तक जापान शान्त है। समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित संवादोंसे यह ज्ञात हुआ है कि जापान मञ्चूकोमें सोवियट रूसकी सीमापर सैन्य-सञ्चालन कर रहा है। इस समय जापान जर्मनी-रूस-युद्धकी प्रगतिको बड़ी सतर्कताके साथ देख रहा है। वह रूसको कमजोर पाकर ही उसपर आक्रमण करेगा।

सोवियट रूस-जापान-सन्धि

विगत अप्रैल १९४१ में सोवियट रूस और जापानके मध्य तटस्थता-सन्धि हो चुकी है। इसके अनुसार दोनोंने यह समझौता किया है कि यदि किसी तीसरी सत्ताने उनमेंसे किसीपर भी आक्रमण किया, तो एक-दूसरा तटस्थ रहेगा। इसका मतलब यह है कि यदि जापानपर ब्रिटेनने आक्रमण किया, तो रूस न जापानको सहायता देगा और न ब्रिटेनको ही।

परन्तु इस पैक्टका त्रिराष्ट्र-सन्धिसे विरोध है। यदि जापान इस तटस्थता-सन्धिका सद्भावनासे पालन करता है, तो त्रिराष्ट्र-सन्धिका अन्त हो जाता है। परन्तु जापान त्रिराष्ट्र-सन्धिका अन्त नहीं करना चाहता। वह अभी जर्मनीसे मैत्री बनाये रखनेमें ही अपनी कुशलता सोचता है। क्योंकि एशियाई राष्ट्रोंमें उसका कोई भी राष्ट्र मित्र नहीं है।

परन्तु इस तटस्थता-सन्धिमें एक शर्त यह रखी गयी है कि सोवियट रूस चीनकी मदद जारी रखेगा।

इस समझौतेसे जापानको कोई भी लाभ नहीं है। इसके विपरीत यदि जापान इस समझौतेका सचाईसे पालन करे, तो रूस पूर्वमें उलझनसे बचा रह सकता है।

जापानकी यह सन्धि यह सिद्ध नहीं करती कि जापान-रूसके सम्बन्ध मित्रतापूर्ण हैं। सोवियट रूस चीनके स्वाधी-नता-युद्धमें आरम्भसे मदद करता रहा है और आज भी वह मदद कर रहा है। पूर्वमें साम्यवादका प्रसार भी रूसका

एक उद्देश्य है। ये दोनों ही कार्य जापानके हितोंपर आघात करनेवाले हैं।

निकट पूर्वमें ब्रिटेन और अमेरिकाके हित

भारत और बर्मा ब्रिटिश आधिपत्यमें हैं। बर्मा तथा भारतका चीनसे व्यापारिक सम्बन्ध है और दोनोंमें एक सीमा तक सांस्कृतिक एकता भी है। भारत, बर्मा और ब्रिटेन इन तीनोंके चीनमें हित हैं।

चीन एक महान् देश है। वह औद्योगिक दृष्टिसे अत्यन्त पिछड़ा देश है। इसलिए साम्राज्यवादी देशोंके लिए वह एक बड़ा मूल्यवान बाजार है। यही कारण है कि ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका अपनी पूंजी तथा बाजारकी सुरक्षाके लिए चीनकी चीन–जापान-सङ्घर्षमें आरम्भसे मदद करते रहे हैं। चीनसे ये देश कच्चा माल खरीदते हैं और तैयार माल उसके बाजारोंमें बेचते हैं। चीनमें ४२०,०००,००० पौण्डकी अंगरेजी पूंजी उद्योगों तथा व्यवसायोंमें लगी हुई है। संयुक्त राज्य अमेरिकाकी ४००,०००,००० डालरकी पूंजी चीनमें लगी हुई है।

बर्माके पूर्वमें थाईलैण्ड स्वतन्त्र राज्य है और उसके पास ही इण्डों-चीन फ्रान्सका उपनिवेश है। ये दोनों छोटे तथा कमजोर राष्ट्र हैं। परन्तु इण्डो-चीन बड़ा सम्पन्न और धनी देश है। यह फ्रान्सका सबसे बहुमूल्य उपनिवेश है। इस देशमें चावल और रबड़ सबसे अधिक पैदा होते हैं। जस्ते तथा तांबेकी खानें भी हैं। प्रशान्त महासागरके द्वीप-पुञ्ज, जिनमें फारमोसा, फिलीपाइन द्वीप, न्यू गिनी, बोर्नियो, सुमात्रा और जावा हैं; ब्रिटेन तथा अमेरिकाके बड़े बाजार हैं। यहांसे ये दोनों देश कच्चा माल प्राप्त करते हैं। सैनिक दृष्टिसे भी इन द्वीपोंका बड़ा महत्त्व है।

जापान यह चाहता है कि चीनमें उसके व्यापारका एकाधिकार हो जाय और अमेरिका तथा ब्रिटेनको उसमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार न रहे। उसकी दृष्टि फिलीपाइन द्वीपपर भी है। क्योंकि उससे उसे आर्थिक दृष्टिसे बड़ा लाभ होगा और संयुक्त राज्यसे भी वह एक सीमा तक सुरक्षित हो जायगा।

इण्डो-चीन तथा थाईलैण्ड तो उसकी आकांक्षाकी पूर्तिके मार्गमें किसी प्रकारकी बाधा डालनेमें अशक्त हैं। फ्रान्सके पराजित हो जानेसे इण्डो-चीनकी रक्षा करना विची-सरकारके लिए टेढ़ी खीर है। आज फ्रान्समें जर्मनीका आतङ्क है और उसका शासक पेतां हिटलरके आदेशानुसार कार्य कर रहा है। इसलिए यह आशा दुराशा-मात्र है कि वह अपने पूर्वी उपनिवेशकी रक्षा कर सकेगा।

जापानकी 'नयी व्यवस्था'

जापानकी 'नयी व्यवस्था' क्या है ? आज जापान वृहत्तर एशियामें नयी व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए क्यों इतना चिन्तित है ? क्या वह वास्तवमें एशियाई राष्ट्रोंकी स्वाधीनताका समर्थक है ? क्या उसकी नीति एशियासे अमेरिकन तथा ब्रिटिश प्रभावको नष्ट करके एशियाई राष्ट्रोंको स्वाधीन बना देनेकी है ? ये प्रश्न हैं, जो आज जापानकी नयी व्यवस्थाके सम्बन्धमें विचार करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके मस्तिष्कमें चक्कर काटते हैं। परन्तु इनका समुचित समाधान हमें 'नयी व्यवस्था' में नहीं मिलता।

नयी व्यवस्थाका क्या मतलब है, इसे भली भांति समझनेके लिए हम यहां जापानके प्रधान मन्त्री प्रिन्स कोनोयके २२ दिसम्बर १९३८ के वक्तव्यसे महत्त्वपूर्ण अवतरण प्रस्तुत करते हैं:—

"जापानी सरकारने यह निश्चय कर लिया है कि······ जापान-विरोधी कोमिण्टाङ्ग सरकार (चीनी राष्ट्रीय सरकार) का आमूल नाश कर देनेके लिए सैनिक काररवाई जारी रखी जाय। और साथ ही साथ उन दूरदर्शी चीनियोंके सहयोगसे, जो हमारे आदर्शों और आकांक्षाओंसे सहमत हैं, पूर्वी एशियामें नयी व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए काम शुरू कर दिया जाय।

"अब पुनर्जीवनकी भावना चीन-देशके समस्त प्रदेशोंमें परिव्याप्त है और पुनर्निर्माणके लिए उत्साह अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। जापानकी सरकार जापान और चीनके सम्बन्धोंको ठीक-ठीक बनानेके सम्बन्धमें अपनी आधारभूत नीतिको सार्वजनिक रूपसे प्रकट कर देना चाहती है, जिससे उसके आशयको स्वदेश तथा विदेशोंमें भले प्रकार समझा जा सके।

"पूर्वी एशियामें नयी व्यवस्थाकी स्थापना करनेके सामान्य लक्ष्यकी पूर्तिमें जापान, चीन और मन्चूको सम्मिलित होंगे। इनमें परस्पर मैत्री और एकता, साम्यवादके खिलाफ संयुक्त रक्षा और आर्थिक सहकारिताकी स्थापना

की जायगी। इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि चीन अपने संकुचित तथा पुराने विरोधी विचारोंका परित्याग कर दे और मञ्चूकोके सम्बन्धमें अपने रोष तथा जापान-विरोधी मूर्खताका अन्त कर दे। दूसरे शब्दोंमें जापान यह चाहता है कि चीन अपनी इच्छासे मञ्चूकोके साथ वैदेशिक सम्बन्ध स्थापित करे।

"पूर्वी एशियामें साम्यवादी प्रभावके अस्तित्वको बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। इसलिए जापान यह सोचता है कि जापान-चीन-सम्बन्धोंके निर्धारणसे पूर्व इस शर्तको स्वीकार किया जाय कि जर्मनी, जापान तथा इटलीके साम्यवादी-सङ्घ-विरोधी समझौतेके अनुकूल ही दोनों देशोंके बीच साम्यवाद-विरोधी समझौता हो जाय। और अपने उद्देश्यकी पूर्तिके निमित्त जापानकी यह मांग है कि चीनमें इस समय जैसी परिस्थिति है, उसे देखते हुए, बतौर साम्यवाद-विरोधी तरीकेके, इस समझौतेकी अवधिमें, चीनमें जापानी सेनायें निर्धारित स्थानोंपर रखी जायं और भीतरी मङ्गोलिया प्रदेश एक विशेष साम्यवाद-विरोधी क्षेत्र मान लिया जाय।

"दोनों देशोंके आर्थिक सम्बन्धोंके विषयमें जापान चीनमें आर्थिक एकाधिकारकी स्थापनाका विचार नहीं करता, जिससे उन अन्य राष्ट्रोंके हितोंपर आघात पड़े, जो नये पूर्वी एशियाके मतलबको समझते हैं और उसके अनुसार कार्य करनेके लिए तत्पर हैं। जापान तो सिर्फ यह चाहता है कि दोनों देशोंमें प्रभावकारी सहकारिता और सहयोग प्रतिष्ठित हो जाय। इसका आशय यह है कि जापान यह चाहता है कि चीन, दोनों देशोंमें समानताके सिद्धान्तानुसार, जापानी प्रजाको अपने आन्तरिक प्रदेशोंमें प्रवास तथा व्यापारकी स्वाधीनता दे दे। इससे दोनों देशोंके आर्थिक हितोंकी सिद्धि होगी। दोनों राष्ट्रोंके आर्थिक तथा ऐतिहासिक सम्बन्धोंके प्रकाशमें, चीनको चाहिए कि वह जापानको चीनके प्राकृतिक साधनोंके विकासके लिए विशेषतः उत्तरी चीन तथा भीतरी मङ्गोलियामें सुविधायें और रिआयतें दे।

"यह चीनसे जापानकी मांगोंकी सामान्य रूप-रेखा है।

"यदि इस महान् सैनिक आक्रमण तथा सैन्य-सञ्चालनके सच्चे उद्देश्यको पूर्णरूपसे समझ लिया जाय, तो यह स्पष्ट हो जायगा कि जापान न कोई प्रदेश चाहता है और न सैनिक आक्रमणोंके व्ययकी क्षति-पूर्ति। जापान तो यह चाहता है कि चीन नवीन व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए भाग लेनेके हेतु कमसे कम गारण्टी दे।

"जापान चीनकी प्रभुताका आदर ही नहीं करता, प्रत्युत वह इस बातपर भी विचार करनेके लिए तैयार है कि...चीन पूर्णतया अपनी स्वाधीनता प्राप्त कर ले।"

चीन 'नयी व्यवस्था' क्यों नहीं चाहता ?

जापानने अपनी साम्राज्यवादी नीतिको कितने सुन्दर, शान्तिवादी तथा रहस्य-पूर्ण ढङ्गसे व्यक्त किया है। परन्तु कोई भी राजनीतिज्ञ ऐसी पाखण्ड-पूर्ण तथा शान्ति और सहकारिताके सुन्दर आवरणमें ढकी नग्न नीतिको आसानीसे समझ सकता है। यदि वास्तवमें प्रिन्स कोनोयकी इस नयी व्यवस्थाके पीछे सच्चाई और शान्तिके लिए सद्भावना होती, तो १० वर्ष तक लगातार अपनी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए बलिदान करनेवाला स्वाभिमानी तथा गौरवशाली चीन राष्ट्र इसे स्वीकार न कर लेता ? परन्तु सत्य तो यह है कि जापानकी यह नयी व्यवस्था न केवल चीनके लिए, प्रत्युत समूचे एशिया महाद्वीपके लिए अत्यन्त अवाञ्छनीय और खतरनाक है।

चीनके जनरल चियाङ्ग-काई-शेकने अपने २६ दिसम्बर १९३८ के ऐतिहासिक वक्तव्यमें जापानकी इस नयी व्यवस्थाका बड़ा ही आलोचनात्मक विश्लेषण कर यह सिद्ध किया है कि जापान न केवल चीन, प्रत्युत समस्त एशियापर अपना अधिकार जमाना चाहता है। जनरल चियाङ्ग-काई-शेकका कथन इस प्रकार है:—

"हमें यह समझ लेना चाहिए कि चीनके पुनर्जन्मका जापानकी दृष्टिमें मतलब है चीनकी स्वाधीनताका अन्त और दास चीनका जन्म। तथाकथित नयी व्यवस्था चीनको दास राष्ट्र बना देनेपर ही स्थापित की जायगी और उसका जापान द्वारा बनाये गये मञ्चूकोसे सम्बन्ध कायम कर दिया जायगा। जापानका लक्ष्य है—चीनका सैनिक नियन्त्रण और इसके लिए उसने आड़ ली है साम्यवाद-विरोधकी। पूर्वी संस्कृतिकी रक्षाके नामपर वह चीनी संस्कृतिका विनाश करना चाहता है। और आर्थिक प्रतिबन्धोंकी दीवालको तोड़ देनेकी आड़में वह निकट-पूर्वसे ब्रिटेन तथा अमेरिकाके प्रभावको नष्ट कर देना चाहता है।

'आर्थिक दल' का निर्माण उसके हाथमें चीनके आर्थिक जीवनके नियन्त्रणका एक बड़ा साधन होगा। दूसरे शब्दोंमें एशियामें नयी व्यवस्थाके मानी हैं निकट-पूर्वमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाका सर्वनाश, चीनकी गुलामी, प्रशान्त महासागर और समस्त संसारपर आधिपत्य।"

चीन, जापान तथा मञ्चूकोमें आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करनेके सम्बन्धमें प्रिन्स कोनोयने अपने वक्तव्यमें जो कुछ कहा है, उसका स्पष्ट तथा व्यावहारिक मतलब यह होगा कि इन तीनोंका एक 'पूर्वी एशिया ब्लौक' (गुट्ट) बन जायगा, जिसमें जापान शासक रहेगा और चीन तथा मञ्चूकोपर वह शासन करेगा।

'आर्थिक सहयोग' के नामपर जापान चीनके आर्थिक जीवनपर पूरा नियन्त्रण चाहता है। इस कार्यको पूरा करनेके लिए 'उत्तरी और केन्द्रीय चीनी विकास कम्पनियां' स्थापित हो चुकी हैं और जापानी राष्ट्र-निर्माण-बोर्डने जापान, चीन तथा मञ्चूकोके औद्योगिक विकासके लिए एक सर्वाङ्गपूर्ण योजना तैयार की है।

चीनी मामलोंके प्रबन्धके लिए जापानकी सरकारने 'चीनके मामलोंकी संस्था' स्थापित की थी। परन्तु अब इसका नाम बदलकर 'एशिया डेवलपमेण्ट बोर्ड' रखा है। इस बोर्डका एकमात्र उद्देश्य चीनकी विजयके लिए हर प्रकारकी योजनायें तैयार कर उन्हें कार्य-रूपमें परिणत करना है।

साम्यवाद-विरोधी सहकारिताका स्पष्ट अर्थ यह है कि चीनके अन्दर जापानको अपनी सेनायें रखनेकी स्वाधीनता मिल जाय।

इस सम्बन्धमें चीनके महान् शासक चियाङ्ग-काई-शेकने बड़े ओजस्वी शब्दोंमें यह कहा है कि "यदि साम्यवाद-विरोधी सहकारिताके लिए प्रस्ताव हमें स्वीकार्य होता, तो हमने उसे बहुत पहले ही स्वीकार कर लिया होता। वास्तवमें प्रस्तावित साम्यवाद-विरोधी सहकारिताका लक्ष्य न तो कामिण्टर्न (साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ) का विरोध है और न सोवियट राज्यका ही, प्रत्युत वह तो चीनके विरुद्ध है।"

यही कारण है कि रण-कुशल तथा स्वाधीनताका पुजारी जनरल शेक जापानके साथ सन्धि करना नहीं चाहता और न उसके किसी शान्ति-प्रस्तावमें विश्वास करता है। वह चीनपर जापानी आक्रमण तथा सैनिक हमलोंको घोर हिंसा-काण्ड मानता है और इसमें उसे जापानके नैतिक पतनके लक्षण दीख पड़ते हैं। परन्तु वह इस सङ्घर्षको चीनके लिए अन्तर्राष्ट्रीय कामके लिए किया गया पवित्र यज्ञ मानता है।

यह चीन-जापान-सङ्घर्षकी कुञ्जी है। इसीमें इस सङ्घर्षका रहस्य निहित है। अभी हालमें संयुक्त राज्य अमेरिकाके चीनमें स्थित राजदूत जानसनके द्वारा जनरल शेकने अमेरिकाको यह आश्वासन दिया है कि यदि अमेरिका अस्त्र-शस्त्रों तथा आर्थिक सहायतासे हमारी मदद करता रहा, तो चीनकी विजय निश्चित है। अमेरिकाको जापानसे मोर्चा लेनेके लिए चीनकी रण-भूमिपर सैनिक भेजनेकी आवश्यकता नहीं है।

इण्डो-चीन तथा थाईलैण्डपर जापानी आधिपत्य

फ्रान्सके उपनिवेश इण्डो-चीनके केमरान तथा सेगोनमें जापानने अपने दो नौ-सेनाके अड्डे तथा दक्षिणी इण्डो-चीनमें आठ हवाई अड्डे बना लिये हैं। विची-सरकारने समझौता कर लिया है और जापानकी उपर्युक्त मांगको स्वीकार कर लिया है। अब वह थाईलैण्डमें भी हवाई तथा नाविक अड्डे बनानेके लिए प्रयत्नशील है। इसमें उसे सफलता मिलेगी अथवा नहीं, यह अमेरिका तथा ब्रिटेनके इसके प्रति रुखपर निर्भर है।

इण्डो-चीनमें जापानी आधिपत्यका अमेरिका तथा ब्रिटेनकी सरकारने विरोध किया है। अमेरिकाके वैदेशिक मन्त्रीने विची-सरकारको नोटिस दिया है कि उसकी इस विषयमें जापानके साथ समझौतेकी नीति निन्दनीय है। फ्रान्सको अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अपने उपनिवेशोंका स्वतन्त्रतासे नियन्त्रण करना चाहिए और हिटलरके आदेशसे काम न करना चाहिए।

संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, भारत, बर्मा, ब्रिटिश उपनिवेशों तथा अन्य ब्रिटिश प्रदेशोंमें जो जापानी पूंजी थी, वह जब्त कर ली गयी है। अब जापानके साथ कोई रुपये-पैसे सम्बन्धी लेन-देन न होगा। इस प्रकार इन समस्त देशोंका जापानके साथ व्यापार भी बन्द हो गया है।

इस प्रकार आज प्रशान्त महासागरकी स्थिति भी बड़ी भयङ्कर है और यह सम्भव है कि जापान जर्मनीकी सहायतासे पूर्वमें भी युद्ध शुरू कर दे। परन्तु अभी तो संसारकी आंखें सोवियट रूसपर हैं। रूसकी विजयका एशियाकी स्थितिपर भी प्रभाव पड़ेगा।

पशु-पक्षियोंकी भाषा जाननेवाला मनुष्य

श्री सन्तराम, बी० ए०

गत वर्षकी बात है। अगस्त या सितम्बरका महीना था। गरमीके कारण मैं लाहौर छोड़कर अपने जन्म-स्थान, होशियारपुरके निकट पुरानी बसी नामक गांवमें चला गया था। एक दिन मैं बैठकमें बैठा कुछ लिख रहा था कि मेरे भतीजे श्री संसारचन्दने आकर कहा—"चाचाजी, मेरे मित्र खां साहब आये हैं, आपको विभिन्न पशु-पक्षियोंकी बोलियां और मोटर तथा टाइप राइटर आदि यन्त्रोंके शब्दोंकी नकल करके दिखायेंगे। आपको ये बोलियां सुननेके लिए कब अवकाश होगा?" मैंने उत्तर दिया—"बड़ी अच्छी बात है, मुझे कोई विशेष काम नहीं, मैं सुननेके लिए अभी तैयार हूं।" इसपर मेरा भतीजा एक नवयुवकको बुला लाया और उसका परिचय देते हुए बोला—"आप मेरे मित्र प्रोफेसर इलताफ अहमद नियाजी हैं। आप हमारे निकटवर्ती गांव मोचपुरके रहनेवाले हैं। आप भेड़-बकरी, कुत्ता, बिल्ली, गाय-भैंस, गधा, सिंह, गीदड़, मक्खी-मच्छर, कोयल-कौआ, बतख-मुर्गी आदिकी बोलियोंकी पूरी-पूरी नकल कर सकते हैं। मोटर, टाइप राइटर, चरखा और देशी रहटकी आवाज भी हुबहू निकाल सकते हैं। ये बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद और दिल्ली प्रभृति भारतके सभी बड़े-बड़े नगरोंमें घूमकर बड़े-बड़े आदमियों, सरकारी अफसरों, पत्र-सम्पादकों और गवर्नरों तकको अपना कमाल दिखाकर चकित कर चुके हैं। इनके पास बहुत-से प्रमाणपत्र हैं। अब आप जिस पशु-पक्षीकी बोली कहें, ये बोलकर दिखायेंगे।"



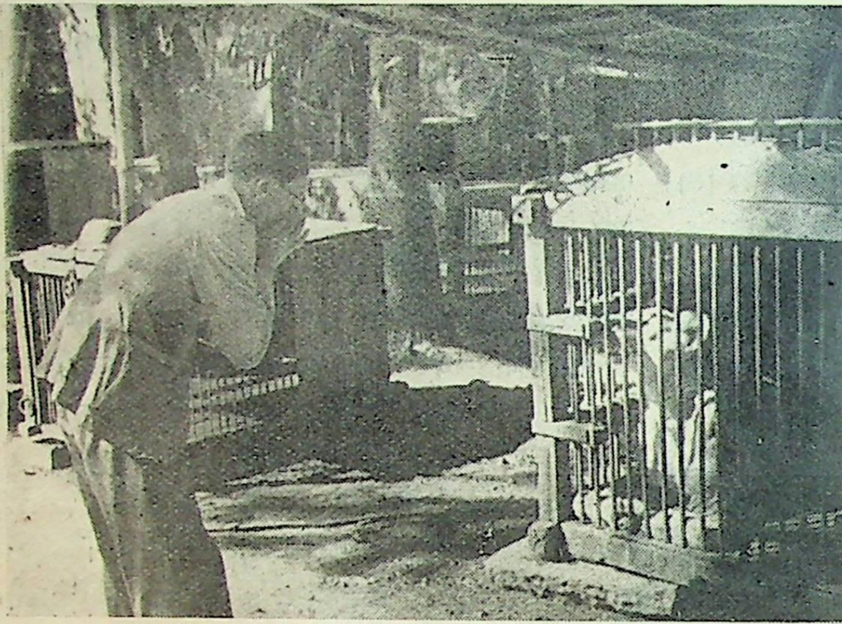
प्रो० इलताफ अहमद नियाजी।

प्रो० नियाजीका वयस कोई चौबीस-पच्चीस वर्षका होगा। हृष्ट-पुष्ट शरीर, रङ्ग गोरा, ऊंचाई कोई साढ़े पांच फुट, दाढ़ी-मूंछ मुंड़ी हुई। आप अभी अविवाहित हैं। उन्होंने मुझे बम्बई और लखनऊ आदिमें लिये हुए चित्र दिखलाये। बम्बईमें आप "टाइम्स आफ इण्डिया" के कार्यालयमें गये, तो वहांके एक कर्मचारी, श्री र० प० वेडकके कानके पीछे चुपकेसे जाकर मच्छरका-सा शब्द करने लगे। श्री वेडक धोखा खा गये। वे बिना पीछे देखे मच्छरको हाथसे हटाने लगे। परन्तु वहां तो मच्छरके बजाय प्रो० नियाजी मच्छरका गीत गा रहे थे।

फिर इन्होंने अपना एक और फोटो दिखाया। बम्बईके चिड़िया-घरमें सिंहके पिंजरेके पास पहुंचकर आप सिंहका ऐसा शब्द करने लगे। उस शब्दको सुनकर पिंजरेमें बन्द सिंह उत्तेजित हो उठा और लोहेकी सलाखोंको तोड़नेके यत्नमें दहाड़ने लगा। उस फोटोमें वही दृश्य चित्रित था।

उनका तीसरा फोटो न्यू दिल्लीमें वायसरायकी कोठीपर लिया गया था। वहां आपने उद्यानकी चारदीवारीपर खड़े होकर कौओंकी भांति बोलना आरम्भ किया, तो इर्द-गिर्दके सभी कौए कावं-कावं करते हुए वहां इकट्ठे हो गये। उनको धोखा हुआ कि कोई दूसरा कौआ ही हमें बुला रहा है। यह खेल उन्होंने कई अंगरेज अफसरोंके सामने करके दिखाया था।

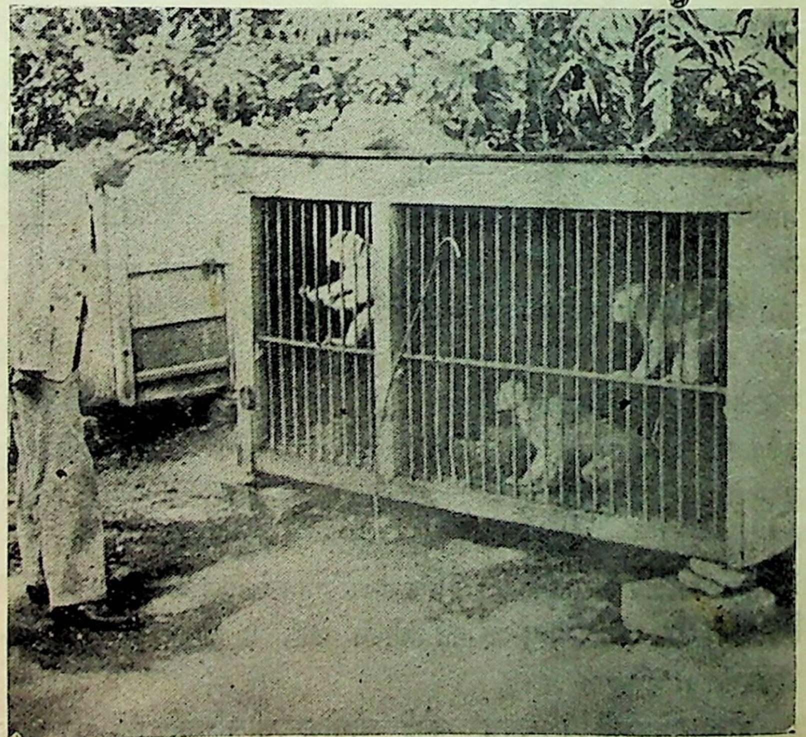
इसके बाद उन्होंने एक एक और चित्र दिखाया। उसमें आप एक भैंसके निकट ओटमें खड़े होकर भैंसके शब्दकी नकल उतार रहे हैं और भैंस धोखेमें आकर उसे दूसरी भैंसका शब्द समझ रही है। भैंस आश्चर्यसे मुंह उठाकर देख रही है कि वह दूसरी भैंस है कहां।



प्रो० नियाजी शेरकी भाषामें एक शेरसे बातें कर रहे हैं। उनकी बोली सुनकर शेर पिंजड़ेकी छड़ोंको तोड़नेकी चेष्टा कर रहा है।

प्रोफेसर नियाजीके पास और भी कई ऐसे ही फोटो थे। परन्तु मैंने कहा कि मैं दूसरोंकी गवाहियां नहीं सुनना चाहता, आप मेरे सामने किसी पशु-पक्षीकी बोली बोलकर दिखायें। वे बोले—बहुत अच्छा, कहिए किसकी बोली सुनाऊं। मैंने कहा, जिसकी आपकी इच्छा हो। इस समय गांवके और भी बहुत-से लोग वहां एकत्र हो गये थे। नियाजी महाशयने पहले मुर्गीकी भिन्न-भिन्न आवाजें सुनायीं। उन्होंने बताया कि जब मुर्गीको अण्डा देना होता है, तो वह इस प्रकारका शब्द करती है; जब अण्डा दे चुकती है, तो फिर दूसरे प्रकारका, मानो कहती है कि अण्डेको उठाकर किसी सुरक्षित स्थानमें रख लो। जब बच्चोंको बुलाना होता है, तो वह और ढङ्गसे बोलती है, और जब कोई चील या बिल्ली आदि शत्रु देख पड़े, तो उसका स्वर और प्रकारका हो जाता है। मैंने पूछा, क्या आप समझ सकते हैं कि मुर्गी अब क्या कह रही है? उन्होंने कहा कि यदि मैं समझ न सकूं, तो उसके विभिन्न अवसरोंपर निकाले हुए शब्दोंमें भेद कैसे कर सकूं। जो लोग मुर्गियां पालते हैं, उनमेंसे प्रायः बहुतोंको पता रहता है कि मुर्गी इस प्रकारका शब्द करे, तो उसका आशय यह होता है और दूसरे प्रकारके शब्द-का आशय वह होता है।

मुर्गीके उपरान्त उन्होंने बिल्लीकी विभिन्न आवाजें सुनायीं, और उनका अन्तर समझाते हुए बताया कि जब मादा बिल्ली ऋतुमती होती है, तो एक प्रकारका शब्द करती है; जब नरसे उसका समागम हो चुकता है, तो फिर यदि कोई दूसरा नर उसके निकट आये, तो वह उसके साथ लड़ते समय दूसरे प्रकारका शब्द करती है। अज्ञानी लोग दोनों शब्दोंमें अन्तर नहीं समझते। फिर उन्होंने बिल्लीके छोटे बच्चे और तरुण बिल्लीकी आवाजोंका अन्तर बोलकर समझाया।



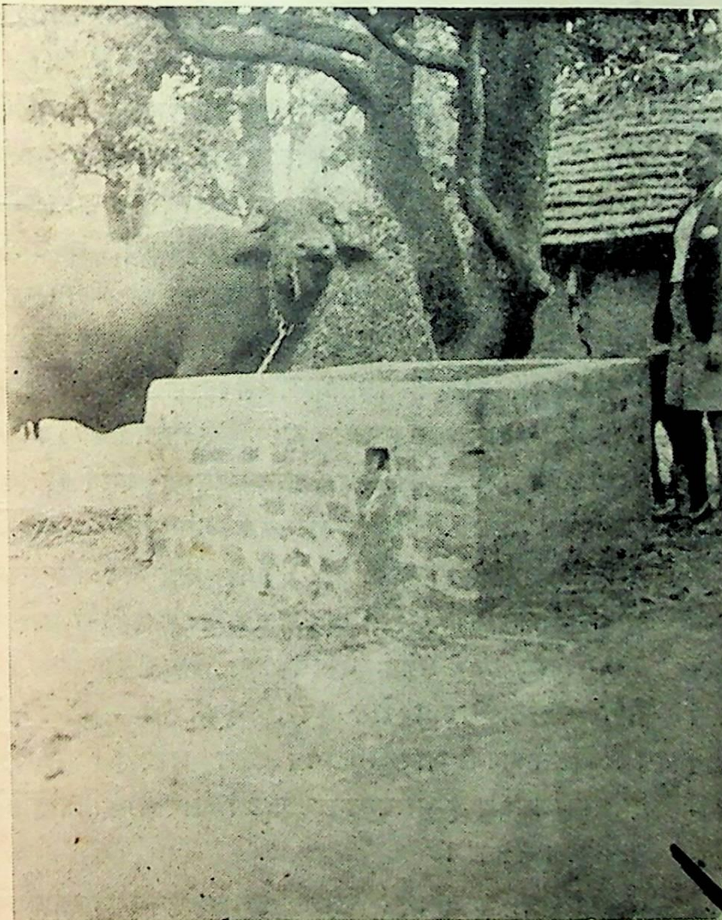
प्रो० नियाजी बन्दरोंसे बातें कर रहे हैं।

एक जगह कुछ गधे आ रहे थे। प्रो० नियाजी एक ओटमें खड़े होकर उनके सदृश रेंकने लगे। इसपर सब गधोंने कान खड़े कर लिये और उनमेंसे एक-दो रेंकने भी लगे।

इसके उपरान्त उन्होंने कोयल, पपीहा, फाखता, मच्छर आदिकी आवाजें निकालकर सुनायीं। भेड़ोंके रेवड़, रेलके चलने, मोटरके नीचे कुचले जाकर कुत्तेके मरने, नवजात शिशुके रोने, रोगी बच्चेके चिल्लाने, देशी रहट और टाइप राइटरकी आवाजोंकी उनकी नकल इतनी पूरी और इतनी ठीक-ठीक थी कि सुनकर सभीको अचम्भा हुआ। विवाहके उपरान्त पितृ-गृहसे विदा होते



मि० आर० पी० वेडक सोच रहे हैं कि कोई मच्छर उनके कानके पास भनभनाकर उनके काममें बाधा डाल रहा है, इसलिए वह उसे अपने हाथसे उड़ानेकी चेष्टा कर रहे हैं। पर वास्तवमें प्रो० नियाजी उनके पीछे खड़े हो, मच्छरकी भनभनाहटकी नकल कर रहे हैं।



प्रोफेसर साहब भैंसकी बोली बोलकर उसे आश्चर्यचकित कर रहे हैं।

समय लड़की अपने माता-पिता, बहन, भौजाई और सखी-सहेलियोंसे मिलकर कैसे रोती है, इसकी भी उन्होंने पूरी-पूरी नकल उतारकर दिखायी। इसे सुनकर सभी हंसने लगे। प्रो० नियाजी ये सब शब्द बिना किसी यन्त्रकी सहायताके उत्पन्न करते हैं।

मैंने नियाजी महाशयसे पूछा, आपने यह कला कहांसे सीखी? उन्होंने उत्तर दिया, मुझे बचपनसे ही पशु-पक्षियोंके शब्दोंको ध्यानपूर्वक सुनने और उनकी चाल-ढालका अध्ययन करनेमें रुचि है। मैंने धीरे-धीरे अपने अभ्यास और ज्ञानको बढ़ाया है।

नियाजी महाशयके इस कमालकी अब कद्र भी होने लगी है। इसीके प्रतापसे वे सारे भारतमें घूमते हैं। अखिल भारतीय रेडियोपर भी कई बार अपनी आवाजोंका ब्राडकास्ट कर चुके हैं।

वृद्धा स्त्रियोंके मुखसे कहानियां सुना करते थे कि अमुक व्यक्तिको लोमड़ीकी या कौएकी भाषा आती थी। उसने कौएको बोलते सुनकर झट मालूम कर लिया कि अमुक वृक्षकी जड़में सात साम्राज्योंकी धन सम्पदा गड़ी पड़ी है, फिर वहां जाकर उसने वह सारा धन निकाल लिया। इस प्रकारकी बातें पहले केवल कल्पनाकी उड़ानें प्रतीत हुआ करती थीं। परन्तु प्रो० नियाजीकी कलाको देखकर तो यह विश्वास होने लगता है कि पशु-पक्षियोंकी भी अपनी-अपनी भाषा है और वह अभ्याससे समझी भी जा सकती है।

————

समाजमें नारीत्वकी मर्यादा

श्री रामरीझन रसूलपुरी, हिन्दी-भूषण

मानव-जीवनमें मनोरञ्जन तथा मानसिक विश्रामका बहुत ऊंचा स्थान है और इसके लिए मानव-मस्तिष्कने देशकालानुकूल विविध साधन भी ढूंढ़ निकाले हैं। इसी उद्देश्यसे बार बधुओंका अस्तित्व प्राक् ऐतिहासिक कालसे ही समाजमें एक मनोरञ्जक अङ्ग-विशेषके रूपमें कायम रहा है। फिर भी इनके सामाजिक स्थानपर दृष्टि-पात करनेसे ऐसा जान पड़ता है कि सभ्य-समाजने इनकी कला और यौवन-सौन्दर्यका सतत उपयोग करके भी समाजमें इन्हें चिर उपेक्षित, दलित एवं शोषित बनाये रखनेमें ही अपनी शान समझ रखी है।

आज यहां इसी सम्बन्धमें विचार करना है कि सभ्य-समाजकी मनोवृत्ति इन बार बधुओंकी ओरसे आखिर उपेक्षापूर्ण क्यों हुई? तथा समाजके सभ्य अपनी अर्थ-शक्तिके बलपर चिरकालसे इनके यौवन-सौन्दर्यको पैरों-तले रौंदते हुए क्यों इनके स्त्रीत्वका शोषण करते रहे? मनुष्यका पूर्ण विकास प्रकृतिने स्त्री-पुरुषके रूपमें किया है। इस कारण मानव-समाजमें आविर्भूत कोई भी स्त्री सर्वप्रथम 'स्त्री' है, तब पत्नी, वेश्या या और कुछ। समाजने पत्नीत्वके रूपमें स्त्रीत्वकी मर्यादाको सीमित करनेकी चेष्टा की और सती-धर्मका आविष्कार कर इस दीवारको और भी मजबूत बना दिया। किन्तु समाज-विज्ञानके उन आचार्योंको इस कृत्रिम योजनामें कितनी व्यावहारिक सफलता मिली, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं। हां, इतना अवश्य हुआ कि पराधीन, परमुखापेक्षी जीवन प्राप्त करनेके कारण किन्हीं अंशोंमें स्त्रीत्वके विकासमें रुकावट अवश्य पैदा हुई। यह एक स्वयं-सिद्ध बात है कि किसी जीवित प्रवाहको जब बांधनेकी व्यर्थ चेष्टा की जाती है, तब कितनी ही धाराओंमें बंटकर वह उच्छृङ्खल रूपसे इधर-उधर फूट निकलता है। सती-धर्मने स्त्रीत्वकी विकास-धारामें ज्यों-ज्यों अवरोध लगाना प्रारम्भ किया, समाजके दूसरे पहलूमें इसकी विभिन्न प्रतिक्रियायें भी उत्पन्न होने लगीं।

मानव-सभ्यताका इतिहास इसका साक्षी है कि किसी भी देशकालमें स्त्रीत्वकी सम्पूर्ण मर्यादा दाम्पत्य जीवनके अन्दर केन्द्रीभूत नहीं पायी गयी और सामूहिक रूपसे पति-पत्नीके रूपमें स्त्री-पुरुष न तो कभी परितृप्त हुए, न उनकी स्वभाव-सिद्ध मानवीय वासना ही शान्त हो सकी। कोई भी प्राणी किसी सीमा-विशेषका बन्धन नहीं पसन्द करता। मनुष्य तो चेतना एवं प्रज्ञाको विशेषताके कारण और भी स्वतन्त्रता-प्रिय होता है तथा इसकी स्वतन्त्रताका उन्मुक्त विकास तो स्वच्छन्दता और उच्छृङ्खलताके रूपमें ही देखा जाता है। समाजने विवाह-बन्धनमें पति-पत्नीको बांधकर दाम्पत्य जीवनकी सृष्टि की। उधर पति-पत्नीने दाम्पत्य जीवनकी परिधिकी ओटसे पड़ोसीके आंगनमें झांकना प्रारम्भ किया। मनुष्य स्वभावतः नवीनताका अनुयायी होता है। नया स्थान, नवीन वेश-भूषा, नूतन जन-सम्पर्क उसे चिरकालसे अपनी ओर आकर्षित करते आये हैं। सभ्यता एवं समाजका कोई भी बन्धन उसे उस ओर आकर्षित होनेसे नहीं रोक सकता।

पारिवारिक जीवनमें स्त्रीका पत्नीके रूपमें असफल उपयोग ही समाजमें बारबधुओंके अवतरणका मुख्य कारण

बना। पत्नीत्वकी परिधिसे भिन्न बारबधुओंका अस्तित्व स्वीकार कर समाजने यह समझा कि अब उसने अपने सभ्योंकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके प्रवाह-मार्गको केन्द्रीभूत करनेके लिए एक सुलभ मार्गका पता पा लिया है, जहांपर उन्हें स्वच्छन्दतापूर्वक खुल खेलनेका अनवरोध अवसर प्राप्त है।

हमने ऊपर बतलाया है कि स्त्री सर्वप्रथम 'स्त्री' है, तब पत्नी या वेश्या। वास्तवमें मानवके प्राकृतिक विकासको देखते हुए 'स्त्रीत्व' की रूप-रेखा पत्नी और वेश्या दोनोंसे भिन्न जंचती है। मानव-सभ्यताके विकासके साथ ही 'स्त्रीत्व' पत्नी और वेश्याके रूपमें विशेषित होता आ रहा है। फिर भी सामाजिक दृष्टिकोणसे दाम्पत्य जीवनके सीमित दायरेमें वेश्याओंकी घोरतर उपेक्षा और पत्नियों-के जिस सम्मानका दिग्दर्शन कराया गया है, उसके अन्दर भी पुरुषोंकी वासनामयी स्वार्थी प्रवृत्ति काम करती नजर आती है।

समाजके नियामकोंने स्त्रियोंके आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकार स्वीकार नहीं किये हैं। साथ ही उनकी आजीविकाका सम्पूर्ण भार पुरुषवर्गने अपने कन्धोंपर लेकर उन्हें जीवनमें एक मनोरञ्जनके साधन-विशेषके रूपमें ही स्थान प्रदान किया है। स्त्रियोंने भी इसे जीवनके लिए समाजका सर्वसुलभ देन समझा और इस संसार सागरमें अपने यौवन-सौन्दर्य और विलास-वासनाके साथ वे जीवन-नावकी पतवार भी पुरुषवर्गके हाथोंमें सौंपकर निश्चिन्त हो गयीं। इस तरह स्त्रियां ज्यों-ज्यों कठोर जीवन-संग्रामसे दूर हटती गयीं, उनका व्यवसाय ही पुरुषोंका कामुक मनोरञ्जन करना बनता गया।

आखिर स्त्रियां विवाह करके पत्नी बनती हैं क्यों? इसीलिए न कि यदि पत्नी नहीं बनेंगी, तो वृत्तिके लिए उनके सामने वार-वनिता बननेके सिवा और कोई मार्ग ही नहीं है। साथ ही पत्नीत्वका दायरा सीमित होनेके कारण वे तज्जन्य पराधीनताको भी स्वीकार कर लेती हैं। उधर पुरुषका भी केवल रोटी-कपड़ेके बदले भामिनीके रूपमें एक कामिनीपर आजीवन आधिपत्य हो जाता है, जिससे सुलभ और सस्ता विलासमय कामवासनाकी तृप्तिके साधन-का व्यावहारिक उपयोग शायद अब तक नहीं हो सका है। साथ ही पत्नीत्वका सम्बन्ध व्यक्ति-विशेषसे होनेके कारण इससे जो सबसे बड़ा मुनाफा होता है, वह है वंशवृद्धि या सन्तानकी प्राप्ति तथा पारिवारिक जीवनका सूत्रपात।

यदि समाजमें 'स्त्रीत्व' के व्यावहारिक उपयोगपर गम्भीरता-पूर्वक विचार किया जाय, तो स्त्रियोंके लिए विवाह काम-वासनाकी तृप्तिका एक वैध और सीमित साधन ही जान पड़ता है, फिर भी समाजमें—जहां सब देश-कालोंमें पुरुषवर्गकी ही प्रधानता रही है—पत्नीत्वका उपयोग पतियों-की कामवासनाकी तृप्तिके लिए रात-दिन होते रहनेपर भी उन्हें सती-साध्वी, गृह-स्वामिनी आदि शब्दजाल द्वारा सम्मानित कर उनकी कोमल भावनाओंका अधिकसे अधिक अनुचित लाभ उठानेकी चेष्टा की गयी है।

वेश्याओंका अस्तित्व चिरकालसे समाजमें रक्षित रहने-पर भी सभ्य-समाजके दृष्टिकोणमें सर्वदासे ये उपेक्षित ही रही हैं। यद्यपि सभ्य-समाजने अपने स्थानपर इनकी उप-योगिताको स्वीकार किया है, फिर भी सङ्गीत आदि विविध कलाओंसे सम्बन्धित रहनेके कारण इनका व्यवसायिक उप-योग-विशेष, समाजकी श्रेष्ठकोटिकी जनतामें ही होता रहा है और सर्वसाधारण तथा श्रमिक-कृषक जनताको इनके सम्पर्कसे अलग रखनेकी चेष्टा की गयी है। सौन्दर्यकी अग्र-दूतिका होनेके कारण केवल इनका दर्शन-मात्र ही सर्व-साधारणके लिए मङ्गलप्रद घोषित किया गया है।

स्त्री-पुरुषोंका स्वाभाविक कामाचारके लिए एक दूसरेके प्रति आकर्षित होना एक स्वभाव-सिद्ध कार्य है, जिसपर नियन्त्रण रखना मनुष्य-समुदायके वशकी बात नहीं। किन्तु जहां इसका व्यावहारिक उपयोग स्वार्थ, आजीविका या व्यव-सायके रूपमें होने लगता है, वहां वनिक-वृत्तिका प्रादुर्भाव हो जाना भी सर्वथा स्वाभाविक ही है। पैसेके बलपर जो चीज खरीदी जाती है, उसमें सब देश-कालोंमें क्रेताकी यह भावना रहती है कि जितना धन व्यय किया जाता है, उसके बदलेमें अधिकसे अधिक वस्तु प्राप्त की जाय। साथ ही विक्रेता अपने ग्राहकोंसे अधिकसे अधिक मुनाफा वसूल करना व्यापार-शास्त्रका सर्वश्रेष्ठ नियम समझता है। पत्नीके रूपमें पुरुषवर्ग कमसे कम खर्चमें 'स्त्री' का उपयोग अधिकसे अधिक मात्रामें चिरकालसे करता चला आ रहा है। वेश्याओंकी दुनिया पत्नियोंकी भांति सीमित नहीं होती। या यों कहा जाय कि उनकी एक व्यावहारिक

दुनिया ही अलग होती है—जहां दीपककी भांति स्वयं जलकर वे दूसरोंको प्रकाश दिया करती हैं—तो कुछ भी अत्युक्ति नहीं होगी। उनके सौन्दर्यके तीव्र और मादक प्रकाशमें अगर समाजके गांठके पूरे लक्ष्मीके वाहनोंकी आंखें चौंधिया जाती हैं और उनके प्रकाशका आनन्द उठानेके बदले अपनी बेवकूफीसे वे दीप-शिखाकी ओर ही झपट पड़ते हैं, तब तो उनको जलना ही चाहिए।

वेश्याओंका जीवन आर्थिक दृष्टिकोणसे स्वतन्त्र होता है। उस स्वतन्त्रतामें स्वच्छन्दता और उच्छृङ्खलताकी मात्रा अधिक रहती है। ये प्रेम या स्वाभाविक कामवासनाकी तृप्तिके लिए अपनेको रूपके बाजारमें नहीं रखतीं। वहां इनका उद्देश्य होता है अपने यौवन-सौन्दर्यके प्रतिदानमें अर्थकी प्राप्ति। इनके कलापूर्ण मनोरञ्जनका सीधा-सा अर्थ है भरा हुआ मनीबेग। पत्नीत्वके सस्ते और सुलभ मनोरञ्जनके अभ्यासी पुरुषोंका जब इन रूपकी रानी प्रगल्भा बार-बनिताओंसे पाला पड़ा और पारिवारिक क्षेत्रकी भांति जब वे अपने हथकण्डोंमें सफल नहीं हो सके, तब नैतिकताकी दुहाई देकर इन्हें बदनाम करना प्रारम्भ किया। एक ओर कुछ आंखके अन्धे, गांठके पूरे मनुष्योंने इनके आकर्षक सौन्दर्य-की अग्निशिखामें कूदकर अपनेको भस्मसात् करना प्रारम्भ किया, दूसरी ओर असफलमनोरथ समाजके सभ्योंको अपनी झूठी नैतिकताकी दुहाईका बिना खोजे ही प्रमाण उपस्थित हो गया। धीरे-धीरे यह भावना समाजमें घर कर गयी और गौण रूपसे समाजके सभी वर्गोंका इन बार-वधुओंसे सम्पर्क रहते हुए भी प्रकट रूपमें समाज इन्हें पतिता, कुलटा, पुंश्चली आदि अपमानजनक नामोंसे सम्बोधित करता रहा।

रात-दिन समाजमें घोर अपमान, तिरस्कार और उपेक्षाका सामना करते हुए भी सतत जलनेवाली क्षुधा-ज्वालाके लिए मुट्ठी-भर समिधा प्राप्त करनेमें स्वर्गीय देन यौवन-सौन्दर्यको जिस बेबसीके साथ इन्हें लुटाना पड़ता है और समाजके सभ्य नैतिकताका जामा पहनकर इनकी उस बेबसीसे लाभ उठाते हुए—जिस क्रूरता, निर्ममता और प्रचण्ड स्वार्थपरताके साथ चांदीके चार टुकड़ोंके बलपर लूट-लूटकर सतीत्वकी इन सप्राण प्रतिमाओंका चिरशोषण करते आये हैं, वह स्वयं ही अपना सानी है।

युगदूतके नित्य नये सन्देशोंके कारण संसारका 'स्त्रीत्व' जागृत हो रहा है। भावी समाज-निर्माणमें 'स्त्रीत्व' की परिभाषा पत्नी और वेश्या दोनोंसे भिन्न होगी। वहां वेश्याओंको न तो पत्नी बनाकर नैतिकताका पाठ पढ़ानेकी जरूरत होगी, न पत्नियोंको ही पारिवारिक जीवनके सीमित दायरेसे तङ्ग आकर रूपके बाजारमें बैठनेका अवसर मिलेगा। 'स्त्रीत्व' की इस भावी रूप-रेखाके सम्बन्धमें फिर कभी विचार किया जायेगा। यहां केवल इस प्रकट सत्यको दुहरा देना आवश्यक है कि जब तक समाजमें पत्नीत्वका अस्तित्व रहेगा, वेश्याओंकी हस्तीको कोई मिटा नहीं सकता और समाजमें अपने स्थानपर उनकी उपयोगिता भी है। फिर कोई कारण नहीं कि समाजमें प्रवञ्चनापूर्ण नैतिकताकी दुहाई देकर पत्नियोंको सती और वेश्याओंको पतिता समझा जाय।

———

यह कैसी युगकी कारा है ?

आंखोंमें अब तक झूम रहा
वह मादक रूप तुम्हारा है

लज्जासे नत आनन, लोचन,
थे कैसे छलक रहे रस कन ?
मेरे प्राणोंके मौन मुकुलमें
भरी मधुर रसधारा है,

अधरोंकी रजत हंसी भीतर,
था कैसा छिपा हृदय कातर ?
कुछ कह न सके, तुम नीरव थे,
यह कैसी युगकी कारा है ?

—सोहनलाल द्विवेदी।

बाइसिकलपर मेरी तुर्की-यात्रा

श्री रामनाथ विश्वास

इसके पहले मासिक 'विश्वमित्र'के गत अङ्कोंमें मेरा अन्यान्य देशोंका भ्रमण-वृत्तान्त प्रकाशित हो चुका है। इस बार मैं पाठकोंको अपनी तुर्की-यात्राका मनोरञ्जक विवरण सुनाऊंगा। भारतकी सीमा पार करनेके साथ ही पर्यटनकारीके सामने पासपोर्ट और विसा संग्रह करनेकी विकट समस्या उपस्थित होती है। विसा पासपोर्टके ही समान होता है। उसमें यात्रीके भ्रमणका उद्देश्य, धर्म आदि व्यक्त करना होता है। विसा प्राप्त करनेमें झञ्झट तो होता ही है, कभी-कभी उसका मिलना भी कठिन हो जाता है। इसलिए बगदादसे ही मैंने निश्चय कर लिया था कि ईरानकी राजधानी तेहरानसे ही तुर्कीके लिए विसा प्राप्त करनेकी चेष्टा करूंगा। किन्तु तेहरान जाकर जो कुछ सुना, उससे तो मैं पस्तहिम्मत-सा हो गया। मालूम हुआ कि तुर्की जानेके लिए विसा मिलना कठिन है। इसके अतिरिक्त तुर्कीका कान्सुल भारतवासियोंको विसा देना नहीं चाहता। बहुत सोच-विचार करनेके बाद तय किया कि कुछ और आगे जाकर अलेप्पोमें तुर्कीके लिए विसा प्राप्त करूंगा।

तेहरान छोड़नेके पहले, मैं एक दिन बिना किसी उद्देश्यके, साइकिलपर घूम रहा था। अकस्मात् एक अपरिचित आरमेनियन तरुणने आकर नमस्कार किया और अंगरेजीमें पूछा कि समाचार-पत्रोंमें साइकिलपर विश्व-पर्यटन-प्रयासी जिस हिन्दूका नाम प्रकाशित हुआ है, क्या आप वही सज्जन हैं?

साइकिलपरसे ही मैंने जवाब दिया—हां।

युवकने बड़े आग्रहसे कहा—यदि आपको कोई आपत्ति न हो, तो पासके काफेमें चलिये, वहीं मैं आपसे कुछ बातें करना चाहता हूं।

उसकी बात सुनकर मेरे मनमें कुछ सन्देह हुआ। सोचा, कोई गुप्तचर तो नहीं है? पूछा, क्या आप बतला सकते हैं कि आप किस विषयमें मुझसे बातें करना चाहते हैं?

युवकने कहा—बहुत दिनोंसे इसी प्रकार विश्व-भ्रमण-की मेरी भी इच्छा है, इसीलिए आपका भ्रमण-वृत्तान्त सुननेके लिए मैं बहुत उत्सुक हूं।

मेरा सन्देह दूर न हुआ। फिर भी उसके साथ काफेमें गया। युवकने हम दोनोंके लिए चाय लानेका आदेश दिया। उसके बाद मुझे एक सिगरेट दे और दूसरा अपने लिए जलाते हुए उसने मुझसे मेरी भ्रमण-कहानी सुननेका आग्रह प्रकट किया। युवक बड़े ध्यानसे मेरी कहानी सुनता रहा। उसी सिलसिलेमें तुर्कीके लिए विसा प्राप्त करनेकी भी बात चल पड़ी।

विसाकी बात सुनकर युवकने चिन्तित भावसे कहा—हां, आजकल तुर्कीमें प्रवेश करना बहुत मुश्किल है, खासकर आप-जैसे मुसलमानोंके लिए। नव तुर्की इसे बिलकुल नहीं पसन्द करता।

युवककी बात सुनकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। उसका प्रतिवाद करते हुए मैंने कहा—मैं तो मुसलमान नहीं हूं, मैं हिन्दू हूं।

मेरी बात सुनकर युवक और भी विस्मित हुआ। उसने कहा—अच्छा, अगर आप हिन्दू हैं, तो मुसलमान कैसे नहीं हैं?

बड़ी मुश्किलमें पड़ा। सोच रहा था, किस तरह इसे समझाऊं। अन्तमें उंगलीसे टेबुलपर लिखते-लिखते मैंने स्पष्ट रूपसे उसे समझानेकी चेष्टा की कि इसलाम नहीं, मेरा धर्म हिन्दू है।

—यह कौन-सा धर्म है महाशय, इसका नाम तो मैंने कभी सुना नहीं।

मैंने पूछा—आपको मालूम है, हिन्दुस्तानमें कितने धर्म हैं?

युवकने उंगलीपर गिनकर बतलाया—बौद्ध, इसलाम और ईसाई। आप इनमें किस धर्मके माननेवाले हैं?

मैंने अब बातको और न बढ़ा, कहा—मैं बौद्ध हूं। युवक खुशीसे उछल पड़ा। टेबुलपर हाथ पटकते हुए बोला—तो यों कहिये न, आप बुद्धिष्ट हिन्दू हैं।

मैंने देखा कि इस अनभिज्ञ व्यक्तिसे इस सम्बन्धमें वाद-विवाद करना व्यर्थ है। इसलिए मैंने और कुछ तर्क न कर कहा—हां, कुछ ऐसा ही हूं, मगर बिलकुल वही नहीं हूं।

युवकने कहा—खैर, आपका धर्म चाहे जो हो, आप इसलाम हिन्दू नहीं हैं।

—हां, भाई।

युवकने प्रसन्न होकर कहा—तब आपको विसा मिलनेमें क्या कठिनाई है ? अभी मेरे साथ चलिये, मैं आपको कान्सलका आफिस दिखा देता हूं।

मैं युवकके साथ तुर्कीके कान्सलके यहां चला। रास्तेमें बहुत तरहकी बातें होती रहीं। गन्तव्य स्थान तक मुझे पहुंचाकर युवक चला गया। उसके बाद मैंने साहस कर अकेले ही कान्सलके आफिसमें प्रवेश किया। जाकर देखा, दो आदमी, चाहे पियन हों या दरवान, दो ओर बैठे थे। उनमेंसे एक आगे बढ़कर फ्रेञ्च भाषामें मुझसे कुछ पूछने लगा। मैंने हिन्दीमें कहा—यह मेरा पासपोर्ट है, मैं तुर्कीके लिए विसा लेने आया हूं। इसे ले जाओ। पासपोर्टको हाथमें लेकर कुछ देर देखनेके बाद उसने उसे मुझे वापस कर दिया। सोचा, शायद यह आदमी मेरी बात समझ नहीं सका। इसके बाद एक कागजपर, अपने आनेका उद्देश्य अंगरेजीमें लिखकर, फिर उसे दिया। वह उसे ऊपर ले गया। थोड़ी देर बाद नीचे आकर उसने मुझे इशारेसे बतलाया कि वह मेरा कागज कान्सलको दे आया है।

मैं वहीं कुछ देर तक बैठा रहा। ऊपरसे कोई संवाद नहीं आया। थकावटके मारे नींद आ रही थी। अकस्मात् जूतेकी खट-खट आवाज आयी। मैंने चौंककर उस ओर देखा। दो भद्र पुरुषोंने अंगरेजीमें बातें करते हुए कमरेमें प्रवेश किया। मैंने उन्हें अपने आनेका कारण बतलाते हुए कहा—मुझे कब तक यहां बैठना होगा। यदि आप मेरी कुछ सहायता कर सकें, तो बड़ी कृपा होगी।

"हां, हां, हम लोग आपके लिए यथाशक्ति कोशिश कर रहे हैं।" यह कहकर दोनों ऊपर चले गये।

कुछ ही देर बाद मेरी बुलाहट हुई। अन्दर गया। कान्सलको हिन्दुस्तानी तरीकेसे नमस्कार किया। कान्सलने मेरे पासपोर्टको हाथमें लेकर अच्छी तरह देखा और फिर न जाने क्या कहा, मैं समझ न सका। उसके बाद दूसरे सज्जनने मुझसे अंगरेजीमें कहा—सिलहट कहां है ?

मैंने कहा—पूर्व बङ्गालमें।

—तो क्या आप बङ्गाली हैं ?

—हां।

—तो क्या आपके देशवाले सभी बौद्ध हैं ?

मैंने कहा—न, मुसलमान भी हैं।

भद्र पुरुषने कहा—तो शायद आप मुसलमान नहीं हैं ?

—हां, मैं मुसलमान नहीं हूं।

—इसका सबूत ?

मैंने कहा—मैं इसका सबूत क्या दूं ? बस, समझ लीजिये, मैं मुसलमान नहीं हूं।

मेरी बात सुनकर वह सज्जन हंसने लगे। इसके बाद उन्होंने मेरी सब बातें कान्सलको बतलायीं।

कान्सलने ड्रावरसे स्टाम्प निकालकर मेरे पासपोर्टपर विसाकी सील लगा दी। दुभाषिये महाशयने पासपोर्टको मेरे हाथमें देते हुए कहा—आपको विसा दे दिया गया। रास्तेमें अलेप्पोमें एक और कान्सल रहते हैं। उनसे मिलकर जाइयेगा। यदि विसाकी मियाद पूरी हो जायगी, तो वह नया जारी कर देंगे। और भी कहा—तुर्की जानेपर आपको बहुत-सी नयी बातें देखनेको मिलेंगी। भारत लौटनेपर आप अपने देशवासियोंको तुर्कीकी नयी बातें अवश्य बतलाइयेगा।

उस भद्र पुरुष और कान्सलको धन्यवाद दे मैंने उनसे बिदा ली।

आलेकजेन्द्राता सीरियाकी अन्तिम सीमा है। वहांसे बीस किलोमीटर जानेपर तुर्की राज्य शुरू होता है। उस छोटे शहरमें १२ फ्राङ्कमें एक बिस्तरा भाड़ेपर ले पहली रात काटी। दूसरे दिन ब्रिटिश कान्सलसे मिलने गया। उन्होंने कहा—विसा तो ठीक ही है। फिर भी, शायद आपने पूना-लन्दन-यात्रियोंकी तो खबर सुनी ही होगी। मैं आपकी यथाशक्ति सहायता करूंगा। बोलिये, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूं ?

मैंने कहा, विसा तो ठीक ही है, इसके सिवा अलेप्पोसे तुर्की कान्सलके नाम एक पत्र भी ले लिया है।

कान्सलने कहा—आपके पास बाइसिकलका ट्रिप टिकट है कि नहीं ? मैंने कहा, मैं तो ट्रिप टिकटके बारेमें कुछ जानता नहीं था; जानता होता, तो जरूर लेता आता।

कान्छलने कहा, यदि आप तुर्की सीमान्तसे वापस आ जायें, तो मुझसे मुलाकात कीजियेगा। मैं यथासाध्य आपके तुर्की जानेके लिए चेष्टा करूंगा।

दूसरे दिन सवेरे सात बजे लाजिङ्गसे रवाना हो, शहरकी अन्तिम सीमापर आठ बजे पहुंचा। वहां कस्टम हाउसके कर्मचारियोंने मेरे सामानकी परीक्षा किये बिना ही मुझे जानेकी इजाजत दे दी। प्रायः तीन मील जानेपर रास्ता बिलकुल खराब मिला। लाचार, साइकिलसे उतर-कर पैदल चलने लगा। करीब दस मील जानेपर एक गांव दिखाई दिया। वह गांव उजाड़-सा था। जरा भी रौनक न थी। मकान बेमरम्मत, टूटे-फूटे पड़े थे। आदमियोंमें जैसे जान ही न हो। मुर्गियोंको भी शायद मुश्किलसे चारा मिलता था। उसके बाद पहाड़ी रास्ता मिला। कहीं ढलुआं, कहीं ऊंचा। रास्तेके दोनों ओर जङ्गल। चारों ओर निस्तब्धता-सी छायी थी। बीच-बीचमें पुराने पुल मिलते थे, जिनकी लकड़ियां सड़ गयी थीं। इसीसे मैंने अनुमान किया कि उस रास्तेसे लोगोंका आना-जाना बहुत कम होता है। मैं उस रास्तेसे बहुत दूर तक चला गया, पर एक भी आदमी नहीं मिला। प्यासके मारे गला सूख रहा था। सतृष्ण नेत्रोंसे आदमियोंकी बस्ती तलाश करने लगा। थोड़ी दूरपर एक पुराने किलेके सामने एक आधुनिक ढङ्गका मकान दिखाई दिया। उसके ऊपरी तल्लेके बरामदेमें कुछ कपड़े लटक रहे थे; किन्तु कोई आदमी नहीं दिखाई दिया। प्यास बड़े जोरकी लगी थी। मैं पानीकी तलाशमें आगे बढ़ा। मकानके पास जाते ही, दो आदमी हाथ उठाकर कुछ कहने लगे। मैंने उनकी बात अनसुनी कर दी, जैसे उन्हें देखा ही न हो। वे दोनों सङ्गीनधारी सिपाही थे। वे जब आगे बढ़कर मेरे सामने आये, तब मैं साइकिलसे उतर गया। वे अपनी भाषामें न जाने किचमिच क्या बोल रहे थे। मैं उनकी बात कुछ नहीं समझ सका। उन्होंने धक्का दे मुझे आगे जानेसे रोक दिया। और कोई उपाय न देख, मैं वहीं बैठ गया। इसके बाद उन्होंने पासपोर्टकी बात चलायी। मैंने एक सिपाहीको अपना पासपोर्ट दे दिया। वह दौड़कर मकानके अन्दर चला गया। इस बीचमें मैंने दूसरे सिपाही-को, मुझे जल पिलानेका इशारा किया। उसने बैरेकसे जल लाकर मुझे पीनेको दिया। मैं पानी पी रहा था, तब तक उसने एक सिगरेट जलाया। मुझे भी एक सिगरेट दिया। इसके बाद दूसरा सिपाही आकर मेरी साइकिलपर सवार हो चलने लगा। उसकी यह हरकत देखकर मैं भड़क उठा। सोचा, अगर तुर्कीकी सीमाके अन्दर दाखिल होते ही, जुआचोरों और बदमाशोंसे पाला पड़ेगा, तो मैं बड़ी आफतमें फसूंगा। इसलिए मैं साइकिलके हैण्डलको कसकर पकड़े रहा। दोनों सिपाही मेरी बेबसीकी हालत देखकर जोर-जोरसे हंसने लगे। तब मैंने समझा कि वे मुझसे मजाक कर रहे हैं। सिपाहियोंके सहज सरल व्यवहारसे मैं मुग्ध हो गया। मैंने गठरी उतारकर साइकिल सिपाहीको दे दी। सिपाही कुछ दूर उसपर सवार होकर इधर-उधर घूम आया और मुझे साथ चलनेको इशारा किया। गठरीको साइकिलसे बांध हम दोनों पैदल ही चले। करीब एक मील जानेके बाद एक रेलवे स्टेशनपर पहुंच मैं सिपाहीके पीछे-पीछे कमरेमें घुसा। वहां दो सज्जन बैठे थे। मैंने हाथ जोड़कर भारतीय ढङ्गसे दोनोंको नमस्कार किया, जिसके उत्तरमें एकने पूछा—पारले फ्रान्से मशिये?

साथ ही साथ मैंने कहा—पारले इंग्ले एण्ड हिन्दी मशिये?

थोड़ी देर बाद एक और महाशय उनकी बातमें शामिल हुए। उनके बीच जो बातचीत हो रही थी, उसे मैं बिलकुल नहीं समझ सका, पर ट्रिप टिकटकी बात दो-तीन बार उनके मुंहसे निकली। देखा, उनमें एक जाकर एक दूसरे आदमीको बुला लाया। आगन्तुकके आते ही मुझे गुडमार्निङ्ग कहकर नमस्कार करनेसे मैं समझ गया कि यह निश्चय ही दुभाषिया होगा। इसलिए उसके नमस्कारका उत्तर देते हुए मैंने कहा—मेरा ख्याल है, आप जरूर अंगरेजी जानते हैं।

उसने कहा—हां, कुछ-कुछ जानता हूं।

इसके बाद उसने मुझसे ट्रिप टिकटके सम्बन्धमें पूछा। जब मैंने कहा कि साइकिलके लिए ट्रिप टिकट नहीं लिया है, तब इसके लिए मुझे साढ़े सात लिवा जमा करना पड़ा, हालांकि मुझे यह आश्वासन दिया गया कि तुर्कीसे वापस होते समय यह रकम मुझे लौटा दी जायगी। इसके बाद मेरी जामा-तलाशी ली गयी और मेरे पास जो-जो चीजें थीं, उनकी एक सूची बनायी गयी। उसकी एक नकल देते हुए

मुझे यह चेतावनी दी गयी कि मैं तुर्की छोड़ते समय, अपने साथ इससे अधिक और कोई चीज न ले जाऊं।

कस्टम आफिसके झञ्झटसे छुट्टी पा कुछ आराम मिला। सीमान्तके पास ही एक छोटे-से गंवई बाजारमें दस कुशेनका दही खरीदकर एक रोटी खायी। उसके बाद एक पैकेट सिगरेट खरीद एक पेड़के नीचे बैठ सिगरेट पीने लगा। उस वक्त भी दिन नहीं ढला था। अकस्मात् एक पञ्जाबीसे मुलाकात हो गयी। वह बहुत दिनोंसे तुर्कीमें रहते हैं। उन्होंने अनुरोध किया कि मैं उस रात उन्हींके यहां रहूं। पर मैं जानेको तैयार नहीं हुआ, इसीलिए और कुछ दूर जाकर दोर्तिवालमें रात बितानेकी गरजसे मैं वहांसे चल पड़ा।

दोर्तिवाल पहुंचनेपर मैं रात गुजारनेके लिए एक होटलकी तलाश कर रहा था कि एक जेन्दआर्म (सिपाही) वहां आया और मुझ थाने ले गया। पासपोर्ट आदिकी जांच कर लेनेके बाद वहांसे मुझे छुट्टी मिल गयी।

सिपाहीकी सहायतासे मैंने एक होटलमें डेरा डाला। रास्तेमें बहुत-से कौतूहली आदमी मेरे पीछे-पीछे चले आ रहे थे। मैं बहुत थक गया था, इसलिए उन्हें बिदा कर पड़ रहा। थोड़ी देर बाद भोजन करनेके लिए फिर बाहर निकला। कुछ दूर जाते ही युवकोंने मुझे फिर घेर लिया और लगे मुझसे तरह-तरहके प्रश्न करने। उनमें बहुतेरे कुछ-कुछ अंगरेजी जानते थे। उन्होंने थानेसे सुन रखा था कि उनके शहरमें एक हिन्दू पर्यटनकारी आया है। एक तो थका-मांदा था, दूसरे भूख बड़े जोरकी लगी थी, इसलिए उन युवकों-के सवालका जवाब देनेकी इच्छा नहीं हो रही थी। इतनेमें भीड़को चीरते हुए एक पञ्जाबी मुसलमान भाई आये और मेरा हाथ पकड़कर हिन्दीमें बोले—चलिये, यहांसे तीन मील दूर मेरा घर है, वहां आपको देशी खाना मिलेगा।

मगर मैं राजी नहीं हुआ, कहा, बहुत थका हूं भाई, आजकी रात जिस तरह हो, यहीं काटूंगा। फिर मैं एक रेस्टोरांमें गया, पञ्जाबी भाई भी साथ थे। बातचीतके सिलसिलेमें उन्होंने कहा, किस बुरी सायतमें तुर्कीने कुतल-अमारा किलेपर फिर दखल कर लिया। उसके बाद कितनी मुसीबतमें पड़ा। मेरी सब आरजू-मिन्नतें फिजूल गयीं। देश वापस जानेका कोई उपाय नहीं। देश जानेके लिए मेरे प्राण सदा छटपटाते रहते हैं।

भाई साहबके प्रति मैंने समवेदना प्रकट की और कहा—यहां तो आप बड़े मजेमें हैं। शादी कर ली है, बाल-बच्चे भी हैं। तकलीफ किस बातकी है। ये तो आपको हिन्दू ही समझते हैं ?

मेरे साथी अकथ्य भाषामें तुर्कीको गाली देने लगे—देख ली है रूमके बादशाहकी सखावत ! देश वापस जानेपर सबसे कहना भाई, कि हम सबसे पहले हिन्दी हैं—

मैं बीचमें ही बोल उठा—हिन्दी क्यों ? हिन्दू कहनेमें शायद सङ्कोच होता है !

यहां बतला देना ठीक होगा कि पूर्व-परम्पराके अनुसार भारतके अनेक मुसलमान आज भी तुर्कीके बादशाहको रूमका बादशाह कहते हैं और तुर्क तुर्कीमें रहनेवाले भारतीय मुसलमानोंको 'हिन्दू' कहते हैं।

मेरी बात सुनकर मेरे साथी महोदय कुछ सङ्कोचमें पड़ गये, इसलिए मैंने उस अप्रिय प्रसङ्गको दबाकर कहा—अच्छा, अब चला जाय। कल सबेरे आपका मेहमान हूंगा !

मेरे हिन्दुस्तानी भाईने अपने परिचित एक अंगरेजी जाननेवाले युवक तुर्कसे मेरा परिचय करा दिया और मुझे राह-घाटके बारेमें समझा-बुझाकर, विदा ली।

घूम-फिरकर जब हम वापस आ रहे थे, तो उसी युवकके अनुरोधसे हम लोग एक काफेमें घुसे। वहां बहुत-सी तुर्की महिलाओंको काफी पीते देख मुझे आश्चर्य हुआ। युवतियां न जाने आपसमें क्या बातें करने लगीं ! मैं समझ गया कि मुझे ही देखकर इन्हें कौतूहल हुआ है। पर समझकर भी मैंने उनकी ओर देखा नहीं, ऐसे ही पोजमें दो-तीन घूंटमें काफीका प्याला खत्म कर दिया।

होटलके पाससे ही अजानकी आवाज सुनकर मैंने अपने साथीसे कहा कि अगर हम मसजिदमें जाकर नमाज पढ़ना देखें, तो कोई आपत्ति करेगा ?

युवकने पूछा—आप इसलाम धर्म मानते हैं या नहीं।

—भई, इससे क्या मतलब ? मैं तो सिर्फ यह देखना चाहता हूं कि इतनी आलीशान इमारतमें जमा होकर लोग क्या करते हैं।

मेरी बात सुनकर युवकको प्रसन्नता हुई। उसने हा— वहां आपको मेरी उम्रका एक भी आदमी नहीं मिलेगा आप वहां कुछ पुराने ख्यालके अरब-परस्त लोगोंको ही देखेंगे।

धीरे-धीरे हम लोगोंने मसजिदमें प्रवेश किया। एक टिमटिमाती रोशनीके सामने पन्द्रह-सोलह आदमी घुटने टेककर ध्यान-मग्न थे। नमाज प्रायः खत्म हो चली थी। थोड़ी ही देर बाद सब उठ-उठकर जाने लगे। उनमेंसे एकने एक अपरिचित व्यक्तिको देखकर आगे बढ़कर मुझसे पूछा—अरब चा? अर्थात् क्या आप अरब हैं?

मैंने कहा—हिन्दू चा। मैं हिन्दू हूं।

मेरे युवक मित्रने मेरे दुभाषियेका काम किया।

यहां यह बता देनेकी आवश्यकता है कि उधरके देशोंमें हिन्दूसे अभिप्राय हिन्दू धर्मावलम्बी व्यक्ति नहीं, बल्कि वह व्यक्ति है, जिसका जन्म हिन्दुस्तानमें हुआ है और जिसकी भाषा हिन्दुस्तानी है।

बातचीत हो ही रही थी कि एक युवकने पूछा—क्या मुस्तफा कमाल पाशाका नाम आपके देशवाले जानते हैं?

मैंने कहा—केवल जानते ही नहीं, उनकी श्रद्धा भी करते हैं।

इसके बाद सबको अभिवादन कर मैं होटलमें वापस आ गया।

दूसरे दिन सबेरे, उसी युवक सङ्गीके साथ अपने हिन्दुस्तानी भाईके घरकी ओर चला। जाकर देखा, भोजन तैयार है। बहुत दिनोंके बाद तृप्तिके साथ भोजन करनेको मिला। गृह-स्वामीके आदर-सत्कारसे मैं बहुत मुग्ध हुआ। पन्द्रह-बीस मिनट आराम करनेके बाद मेरे देशी भाईने घूम-घूमकर अपना मकान दिखाया। मकान छोटा ही था। दक्खिनकी ओर सब्जीका बाग था। सब्जीकी ही आमदनीसे उनकी गृहस्थी चलती है। इसीमेंसे कुछ बचाकर वे अपने एक लड़केको स्कूलमें पढ़ा रहे हैं। लड़का तुर्की और फारसी पढ़ता है और पासकी मसजिदमें कुछ-कुछ अरबी भी सीखता है। मेरे साथीने बड़े दुःखके साथ बतलाया कि आधुनिक तुर्क दिन-पर-दिन अरबी-विरोधी होते जा रहे हैं। अब स्कूलोंसे अरबीकी पढ़ाई उठा दी गयी है। जो अरबी पढ़ना चाहते हैं, वे मसजिदमें पढ़ते हैं, सो भी जोर-जोरसे नहीं, चोरकी तरह चुपके-चुपके।

जो हो, अपने देशी भाईके प्रति सहानुभूति प्रकट कर मैंने उनसे विदा ली। दूर देशमें अपने एक देशवासीके इस क्षणिक मिलनसे ही आत्मीयता हो गयी। मैंने देखा, जब तक मैं उनकी आंखोंसे ओझल नहीं हो गया, तब तक मेरे देशी बन्धु अपने परिवारके साथ मेरी ओर देख-देखकर रूमाल उड़ा रहे थे।

दोर्तिवालसे मैं दूसरे दिन अदाना पहुंचा, जो वहांसे तीस मील दूर है। अदाना शहरके करीब ही रेलवेके स्टेशन है। स्टेशनपर पहुंचते ही मैंने किसी ऐसे आदमीकी तलाश की, जो मेरी बोली समझ सके और जिसके यहां मैं ठहर सकूं। मगर वहां किसीने भी मेरी अंगरेजी, बंगला या हिन्दी नहीं समझी। अन्तमें मैं एक सरायमें गया। वहां एक आदमीने "आइये, बैठिये" कहकर मेरी अभ्यर्थना की। यह देखकर प्रसन्नता हुई कि सरायमें हिन्दुस्तानीमें बातचीत कर बहुत देरके मौनको भङ्ग करूंगा। बहुत देर तक किसीसे बातें न करनेसे जी घबरा रहा था।

सरायमें एक कमरा ठीककर आरामसे बैठा था कि एक तुर्क आकर मुझसे नाना प्रकारके प्रश्न करने लगा। पर मैं कुछ भी नहीं समझ सका कि वह कौन था और क्या कह रहा था। सरायवालेसे पूछा, मगर उसने भी कुछ नहीं बतलाया। वह आदमी रातके नौ बजे तक वहीं बैठा गोया मेरा पहरा दे रहा था। उसके बाद जो दूसरा आदमी आया, वह भी उसीके इशारेसे, मुझसे कुछ बात न कर, चुपचाप बैठा मेरी ओर देखता रहा। अपनेको चिड़िया-खानेके जीव-विशेषकी अवस्थामें देखकर मैं मन ही मन कुढ़ रहा था, पर कोई उपाय नहीं था। ये शायद खुफिया पुलिस होंगे, इसलिए मैं रात-भर जागना व्यर्थ समझकर बाजारसे रोटी, उबाले आलू और थोड़ा दही ले आया और खाकर सो रहा। मच्छरोंके काटनेके मारे नींद नहीं आयी।

दूसरे दिन सबेरे पुलिस-स्टेशनका पता लगाया। राहमें जो भी मिलता, उससे थानेका पता पूछता, मगर कोई मेरी बात नहीं समझता था। बहुत देर हैरान होनेके बाद आखिर पुलिसका हेड क्वार्टर मिला। अन्दर गया। दरवाजा खटखटाया। एक आदमीने बाहर आकर तुर्की भाषामें क्या कहा, मैं समझ नहीं सका। मैंने किसी तरह टूटी-फूटी फ्रेञ्च भाषामें कहा—न पार्लें फ्रान्से, पार्लें इंगलिश।

वह मुझे सामने रखी एक कुर्सीपर बैठनेका इशारा कर चला गया।

कुछ देर बाद एक आदमी आकर मुझसे हिन्दीमें बातें करने लगा। मैंने उसे वहां आनेका उद्देश्य और पिछली रातकी सब बातें बतलायीं। अपने एक हिन्दुस्तानी भाईको देखकर बड़ी खुशी हुई।

उसने कहा—भाई, प्रतिहिंसा, प्रतिहिंसा।

मैंने कहा—भाई, इसके पहले मेरे खानदानका और कोई यहां नहीं आया। मैं ही पहले-पहल यहां आया हूं और मैंने इनका कुछ बिगाड़ा भी नहीं है, फिर ये मुझसे क्यों प्रतिहिंसा ले रहे हैं।

मेरी बातका ठीक उत्तर देकर उन्होंने कहा—अब आपको किसी बातकी असुविधा न होगी, चलिये, मैं आपको और कई हिन्दुस्तानी भाइयोंसे मिला दूं।

परिचय पूछनेपर मालूम हुआ कि वह बङ्गाली मुसलमान हैं। उन्हें अपना जिला बतलानेमें सङ्कोच हो रहा था, इसलिए मैंने इसपर विशेष जोर नहीं दिया। उन्हींके साथ जा मैंने पुलिसके बड़े अफसरसे मुलाकात की।

उन्होंने मुझे किसी सराय या होटलमें ठहरनेके पहले पुलिससे मिल लेनेकी सलाह दी। वहांसे मैं उनके साथ उनके निवास-स्थानपर गया। वहां और भी चार हिन्दुस्तानी भाई थे। बहुत देर तक अपने देशी भाइयोंसे बात करनेका मौका नहीं मिला था। अब मैं प्रसन्न हो रहा था, अपने देश-वासियोंसे जी-भर बातें करनेका सुअवसर मिलेगा। उन्होंने तुर्कीके सम्बन्धमें मुझसे दिल खोलकर बातें कीं। उनकी बातचीतका सारांश यह था—

"विगत यूरोपीय महायुद्धमें ईराक-स्थित तुर्कीके कुतल-अमारा किलेपर जब ब्रिटिश सेनाने दखल कर लिया, तब अंगरेज-पक्षीय भारतीय मुसलमान सैनिकोंमें जिन्होंने तुर्कीके प्रति सहानुभूति दिखलाकर तुर्कोंका पक्ष लिया और अंगरेजोंके विरुद्ध युद्ध किया, वे उसी समयसे तुर्कीके विभिन्न स्थानोंमें बस गये हैं। महायुद्धके अन्तमें जब अंगरेजोंने अदाना शहरपर कब्जा कर लिया था, तब तुर्कोंका कहना है कि हिन्दुस्तानी सेनाने उसपर बड़ा जुल्म किया था। इसीलिए वे भारतवासियोंको अच्छी नजरसे नहीं देखते। सन्धिके फलस्वरूप अदाना तुर्कीको वापस मिल गया। अब तुर्कीमें धर्म-प्रेमके स्थानमें देश-प्रेम जाग्रत् हुआ है। स्कूलोंमें तुर्की, फारसी, जर्मन और कहीं-कहीं अमेरिकनकी भी पढ़ाई होती है; किन्तु अरबीकी नहीं। तुर्क आजकल अरबीके प्रबल विरोधी हो गये हैं। एक नीग्रोके साथ तुर्क नारीका विवाह होना सम्भव है, पर अरबके साथ नहीं।

तुर्की-स्थित इन भारतीय मुसलमानोंकी बड़ी विचित्र दशा है। ये न तो आधुनिक तुर्कीकी राष्ट्रीय प्रगतिके साथ चल सकते हैं और न अपनेको प्राचीन अरब-भक्तिसे ही मुक्त कर सकते हैं। इस देशमें विवाह कर गृहस्थी कायम कर लेनेपर भी उन्हें बड़ी असुविधा और मानसिक व्यथा अनुभव करनी पड़ती है, इस बातको उनके साथ बातचीत कर, मैं स्पष्ट समझ गया। ये अक्सर शराब पीकर भारतकी याद भुलानेकी चेष्टा करते हैं। एक आदमीके कानमें एक बड़ा छेद देखकर मैंने पूछा, तो मालूम हुआ कि उसने पीर बनकर तुर्कीसे भागनेकी चेष्टा की थी, पर अपने उद्देश्यमें सफल नहीं हो सका। कहनेका आशय यह है कि अंगरेज और तुर्क—दोनोंमें किसीका भी पासपोर्ट उन्हें नहीं मिलता। इनपर दोनोंकी कड़ी नजर है।

उन्होंने मेरा खूब आदर-सत्कार किया और कई तरहके भारतीय भोजन खिलाये।

मैं अदानामें सिर्फ तीन दिन रहा। अन्तिम दिन मैं एक आधुनिक स्कूल देखने गया। स्कूलके प्रधानाध्यापक अच्छी अंगरेजी जानते थे। मुझे विश्वयात्री जानकर स्कूलके लड़कोंने मुझे चारों ओरसे घेर लिया और लगे तरह-तरहके सवाल करने। अध्यापकोंमें किसी-किसीने भारतके सम्बन्धमें भी पूछा; किन्तु मैंने तरुण छात्रोंमें जापानके सम्बन्धमें जाननेका विशेष कौतूहल देखा।

थोड़ी देर बाद स्कूलकी छुट्टी हो गयी। युवक छात्र बहुत देर तक मेरे साथ घूमते रहे। स्वाधीनताके आनन्दमें विभोर इन युवकोंके साथ बात करने और घूमनेमें मुझे भी बड़ा आनन्द मिल रहा था। मेरे जीवनमें वह दिन सदा याद रहेगा।

अटलाण्टिक-घोषणा : भारतीय नजरोंमें

श्री राजेन्द्र शङ्कर भट्ट

अमेरिकन राष्ट्रपति श्री रूजवेल्ट और ब्रिटिश प्रधान मन्त्री श्री चर्चिलकी ऐतिहासिक मुलाकातके बाद जो आठ धाराओंकी घोषणा की गयी है, उसे विभिन्न राष्ट्रोंने विभिन्न नजरोंसे देखा है। भारतमें इसपर जो चर्चा हुई है, उसमें अमेरिकन राष्ट्र-मन्त्री श्री कार्डेल हल और ब्रिटेनके उप-प्रधान मन्त्री श्री अटले द्वारा की गयी टीकाओंपर काफी जोर दिया गया है। इन टीकाकारोंके इस कथनको कि यह घोषणा विश्व-व्यापी है तथा एशिया और अफ्रीकाके राष्ट्रोंपर भी लागू होगी, इस तरह कहीं-कहीं समझाया जा रहा है कि भारतकी स्वतन्त्रताकी समस्याको भी यह घोषणा-पत्र सुलझा देता है। पर घोषणा-पत्रको यदि थोड़ी भी पैनी नजरसे देखा जाय, तो यह गलतफहमी दूर हो सकती है।

यदि उपर्युक्त टीका नहीं की गयी होती, तो भारतको इस घोषणा-पत्रकी जानकारी-भर स्वीकार करके छुट्टी मिल सकती थी। अपने मूल रूपमें यह भारतीय समस्याको नहीं छूता। और युद्धपर इसका जो प्रभाव पड़ेगा, वह सामरिक भेद होनेके कारण जानकारीके बाहर है, अतएव इसको नजरोंमें रखकर आगामी घटनाओंका इन्तजार-भर किया जा सकता था। लेकिन इन टीकाओंने यह आवश्यक कर दिया है कि घोषणा-पत्रको थोड़ी गहराईसे देखा जाय।

अपने मूल रूपमें घोषणा-पत्र भारतको तथा ऐसे दूसरे देशोंको नहीं प्रभावित करता, इसीलिए श्री हल और श्री अटले सरीखे ऊंचे अधिकारियोंको इतनी जल्दी और इतनी साफ टीका करनेकी आवश्यकता पड़ी। लेकिन इन टीकाकारोंके कथनका राजनीतिक और वैधानिक मूल्य कुछ भी नहीं है। नहीं तो जो बात इनको सूझी, वही बात घोषणा-पत्रके निर्माता स्वयं उसमें जोड़कर टीकाको आसानीसे अनावश्यक कर सकते थे। उन लोगोंने अपने द्वारा नहीं, अपने अधीन अधिकारियोंसे इस बातको कहलाकर कि घोषणा विश्व-व्यापी है, उसके विश्वव्यापी होनेमें सहज-शङ्काके लिए गुञ्जायश कर दी है।

लेकिन बात इतनी ही नहीं है। यदि अब एक नयी घोषणा द्वारा इसे अधिकृत रूपसे विश्व-व्यापी घोषित कर दिया जाय, तब भी अपने वर्तमान रूपमें, यह भारतपर लागू नहीं होता मालूम पड़ता। घोषणा-पत्रकी तीसरी धारा एकदम अस्पष्ट है और पहली-दूसरी धारायें साफ ही भविष्यकी ओर इशारा करती हैं। अतएव यदि मौकेपर इस घोषणाको वर्तमान युद्धकी प्रतिक्रिया बताकर यह कह दिया जाय कि इस युद्धमें जिन देशोंकी प्रभुता और स्वशासनका अपहरण हुआ है, उन्हींपर यह लागू होती है, तो सम्बन्धित धाराकी अस्पष्टताके कारण कुछ भी कहा न जा सकेगा। अतएव इस घोषणाको विश्व-व्यापी घोषित कर देने-भरसे हम इसे अपनेपर लागू नहीं मान सकेंगे। इसके लिए तो स्पष्टतः भारतवर्षका नाम जोड़ना जरूरी है।

भारतपर इसे लागू करनेकी यदि सचमुच मंशा होती, तो यह बात मूल घोषणा-पत्रमें शामिल कर दी जाती, या श्री अटले घोषणाको ब्राडकास्ट करनेके साथ ही इस बातको भी साफ कर देते, या भारत-मन्त्री ही एक छोटा-सा वक्तव्य देकर हमें उजाला दिखाते और या वायसराय महोदयको ही एक घोषणा करनेका अधिकार दे दिया जाता। जो सरकार सारे विश्वके लिए घोषणा कर सकती है, उसके लिए यह कठिन नहीं था। भारतके सामने तो अब भी मनहूस 'अगस्त-आफर' का टुकड़ा पड़ा है। मालूम नहीं, यह घोषणा उसको पीछे फेंकती है या वह इस घोषणाके भारत तक पहुंचनेके मार्गमें रोड़ेके रूपमें अड़ा है। इस तरह इस गोलमोल घोषणा-पत्रने भारतकी उलझी समस्याको सुलझाया नहीं है।

आजका राष्ट्रीय भारत भारतवर्षके लिए स्वतन्त्रता चाहनेके साथ ही विश्वमें भी समान-स्वतन्त्रता, आपसी भाईचारा—सद्कामना—विश्वास और मङ्गलकारी शान्ति स्थापित होते देखना चाहता है; क्योंकि बिना ऐसा हुए और कलङ्कित वातावरणमें हम या कोई भी राष्ट्र अकेला स्थायी स्वतन्त्रता, वाञ्छित सुरक्षा और सुशान्तिका उपभोग नहीं कर सकता। अतएव हमें इस घोषणाको विश्व-नागरिककी नजरोंसे भी देखना पड़ता है।

दुःख है कि हमें इस तरफ भी उतनी ही निराशा होती है। इस घोषणामें कहीं भी उन राष्ट्रोंकी चर्चा नहीं की गयी है, जो इस युद्धके पहलेसे अमेरिकन और ब्रिटिश साम्राज्यवादके चंगुलमें फंसे हैं। भविष्यके बारेमें यह कहना कि हम अपनी सीमायें नहीं बढ़ायेंगे, कमसे कम ब्रिटेनके लिए तो बहुत आसान है। उसके सामने और देश जीतनेका नहीं, जीती हुई जमीनपर कब्जा कायम रखनेका सवाल है। अतएव ब्रिटिश और अमेरिकन उपनिवेशोंको इस घोषणाके आधारपर राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी उम्मीद नहीं हो सकती।

आर्थिक स्वतन्त्रता तथा व्यावसायिक, व्यापारिक और कच्चे माल सम्बन्धी सहूलियतोंके बारेमें तो यह घोषणा-पत्र और भी थोथा दीख पड़ता है। इन बातोंके लिए सब राष्ट्रोंका समान अधिकार ब्रिटेन और अमेरिका अपने 'वर्तमान उत्तरदायित्वों' का ध्यान रखकर ही स्वीकार करेंगे। 'वर्तमान उत्तरदायित्व' शब्दकी व्याख्या नहीं की गयी है, अतएव यह शङ्का होती है कि यदि अमेरिका और ब्रिटेनके पूंजीवादी राष्ट्र संसारके भारी भू-भागपर अपना आर्थिक पञ्जा ऊपरका ऊपर सुरक्षित रखे रहें, तो घोषणाकी शाब्दिक परिभाषा इस प्रयत्नमें समर्थक भी हो सकती है। यह भी डर लगता है कि व्यावसायिक समानाधिकारका मतलब गोरे राष्ट्रों द्वारा बराबरीका शोषण न लगा लिया जाय। यदि अफ्रीकाके बिक्रीके तथा भारतके खरीदके बाजारोंपर एक राष्ट्रकी जगह एक राष्ट्र-समूहका कब्जा हो जाता है, तो अफ्रीका और भारतके लिए तथा इसी तरह दूसरे ऐसे राष्ट्रोंके लिए परेशानी बढ़ ही जाती है। आवश्यकता इस बातकी है कि प्रत्येक राष्ट्रको बिना किसी भेद और रोकथामके अपने बिक्री और खरीदके बाजारोंपर तथा अपने कच्चे मालके बेचने, न बेचनेके प्रश्नपर पूरी स्वतन्त्रता मिले। इस घोषणामें 'अपने उत्तरदायित्वों' का अड़पेच लगाकर पूरी योजनाको लंगड़ा कर दिया गया है। आजके समयमें आर्थिक स्वतन्त्रता राजनीतिक स्वतन्त्रतासे कम महत्त्वकी नहीं है, और घोषणामें दोनोंके बारेमें स्पष्टता नहीं बरती गयी है।

अब रह जाती है तीसरी बात—स्थायी विश्व-शान्ति और टिकाऊ सुरक्षा। इस दिशामें तो घोषणा एकदम निरर्थक मालूम होती है। सार्वदेशिक निःशस्त्रीकरणको सिद्धान्ततः स्वीकार करनेके बाद यह नहीं कहा गया है कि सब राष्ट्र युद्धके तुरन्त बाद अपने हथियार बेकाम कर देंगे। उल्टे यह आशङ्का प्रकट रूपसे लिख दी गयी है कि इस तरहका सार्वदेशिक आयोजन पूरा होते तो समय लगेगा, इतना कि इस बीच कामचलाऊ प्रबन्ध करना होगा, जो होगा आक्रमणकारी राष्ट्रोंका जबरदस्ती निःशस्त्रीकरण। इस बीचकी अवधिकी सीमा भी कोई नहीं बांधी गयी है। अतएव इस खतरेको कैसे दरगुजर किया जा सकता है कि सार्वदेशिक निःशस्त्रीकरण हो ही नहीं या उसमें इतनी देर लग जाय कि पुनः युद्धका खतरा आ जाय। अर्थात् गत महायुद्धके बादके इतिहासके फिरसे दुहराये जानेकी रोक-थाम इस घोषणासे नहीं होती; क्योंकि इस बारेमें यह वर्सलीजके सन्धि-पत्रके समान है। जरूरत इस बातकी थी कि विश्वव्यापी सद्कामना और भाईचारेकी कल्पना युद्ध-विजयके बाद की जाती, पर घोषणा-पत्र तो सोचता है आक्रमणकारी और आक्रमणग्रस्त राष्ट्रोंकी परिभाषामें। घोषण-पत्र इस तरह अपूर्ण ही नहीं, दोषपूर्ण भी है।

लेकिन यह ऐतिहासिक दस्तावेज राजनीतिक शब्दावलिमें गढ़ा होनेके कारण दूसरी तरहका भी अर्थ दे सकता है और ऊपर बताये निराशावादको छोड़कर एक आशावाद भी इससे उपजाया जा सकता है। राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता तथा स्थायी शान्तिकी स्थापनामें आशङ्कायें ध्यानमें रखकर और इनसे बचते हुए यदि अमेरिका और ब्रिटेन चाहें, तो इसी घोषणा-पत्रके आधारपर संसारको पीड़न, शोषण और आपत्तिसे मुक्त होकर आदर्श शान्ति और स्वतन्त्रता कायम करने दें। इस तरह सारा प्रश्न चाहका है। यदि इन पूंजीवादी राष्ट्रोंका हृदय अनुभवोंके बाद परिवर्तित हो गया है, तभी इसकी आशा की जा सकती है। नहीं तो संसार आजसे कई युग बाद भी त्राण नहीं पा सकता, अगर इन राष्ट्रोंका बस चलता रहा। आज तो यही बताया जाता है कि यही दो राष्ट्र संसारके उद्धारका ठेका लिये हुए हैं, और इस तरह यह उद्धार इनकी चाह या नीयतसे जा बंधा है।

———



नये बमबाज वायुयान

प्रो० भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०

आवश्यकता ही आविष्कारोंकी जननी है। शान्तिके दिनोंमें जहां गवर्नमेण्ट वैज्ञानिक अनुसन्धानोंके लिए दो-चार हजार रुपये खर्च करनेमें भी बेहद सङ्कोच करती है, वहां युद्ध-कालमें करोड़ों रुपये वैज्ञानिक अनुसन्धानमें इस उद्देश्यसे खर्च किये जाते हैं कि वैज्ञानिकगण युद्ध-जनित समस्याओं तथा गुत्थियोंको सुलझायें। रुपये पानीकी भांति बहाये जाते हैं, ताकि वैज्ञानिक ऐसे अमोघ अस्त्र-शस्त्रोंका निर्माण कर सकें, जिनका शत्रुके पास प्रतिकार मौजूद न हो।

गत यूरोपीय महायुद्धमें जर्मनी तथा इंगलैण्ड आदि देशोंने वायुयान सम्बन्धी अनुसन्धानपर काफी धन व्यय किया था। फलस्वरूप युद्ध समाप्त होनेकी घड़ी तक वायुयानोंके निर्माणमें बेहद उन्नति हो चुकी थी। उस युद्धमें वायुयानोंकी युद्ध-सम्बन्धी उपयोगिता भली भांति साबित हो चुकी थी। अतः युद्ध बन्द हो जानेपर भी शस्त्रीकरणकी प्रतियोगितामें वायुयान-सेनाको एक प्रमुख स्थान मिला। बमबाज वायुयान, लड़ाकू हवाई जहाज, गोताखोर हवाई जहाज-बीसियों ढङ्गके वायुयानोंके निर्माणमें यूरोपके विभिन्न देशोंमें जैसे एक होड़-सी लग गयी।

इतनेमें वर्तमान युद्धकी ज्वाला फूटी—जल, थल, पाताल और आकाश, हर जगह युद्धके वाहन शत्रुकी तलाशमें पहुंचे। इनमें बमबाज वायुयान निस्सन्देह सबसे ज्यादा घातक सिद्ध हुए हैं। अतएव इनकी शक्ति बढ़ानेका उद्योग भी जोरोंके साथ आरम्भ किया गया है।

सफल बमबाज वायुयानोंमें इन गुणोंका मौजूद रहना आवश्यक है—इनकी रफ्तार खूब तेज होनी चाहिए, इनमें इतनी शक्ति होनी चाहिए कि ये दूर-दूर तक धावा बोल सकें और फिर बिना दुबारा पेट्रोल भरे हुए अपने देशमें वापस भी पहुंच सकें, और तीसरी बात यह कि आकाशमें यथासम्भव आठ-दस मीलकी ऊंचाईपर ये उड़ सकें, ताकि शत्रुकी ऐण्टी एयर क्रैफ्ट तोपोंको इनका सुराग भी न लगने पाये। बस, अचानक ऊंचे आकाशसे गोता लगाकर ये नीचे उतरेंगे और बमकी वर्षा करके पुनः हुङ्कार मारकर, जब तक शत्रुकी ऐण्टी एयर क्रैफ्ट तोपें निशाना साधें-साधें, ऊर्ध्वाकाशमें पहुंच जायंगे।

सात-आठ मीलकी ऊंचाईपर उड़ते हुए वायुयानको ऐण्टी एयर क्रैफ्ट तोपोंके गोलेसे डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। डेढ़ इञ्च व्यासका गोला यदि एकदम लम्बवत् ऊपरको भेजा जाय, तो तीन ऊंचाईपर पहुंचनेमें इसे पूरे १९ सेकण्ड लगेंगे—और इतनी देरमें द्रुतगामी वायुयान डेढ़ मील आगे बढ़ गया होगा, अतः ऐसी हालतमें अचूक निशाना लगाना ऐण्टी एयर क्रैफ्ट तोपोंके लिए सहल नहीं है। आठ-नौ मीलकी ऊंचाई तक पहुंच सकनेके लिए लोगोंका भारी कम भी होना जारी है, अन्यथा वायुकी अवरोधक



ऊर्ध्वाकाशके अभियानके पथ-प्रदर्शक प्रो० पिकार्ड । प्रथम अभियानमें गण्डोलेमें बैठकर जानेके पूर्व आपने सिरपर रबरके थैलेके बाद टोकरी रखी थी, ताकि दुर्घटना होनेपर सिरको धक्का न पहुंचे ।

शक्तिके कारण ये रास्तेमें ही रुक जायंगे । आठ-नौ मीलकी ऊंचाईपर फेंकनेके लिए कमसे कम ४ या ६ इञ्च व्यासके गोले इस्तेमाल किये जाने चाहिए । किन्तु भारी होनेके कारण इतनी ऊंचाईपर पहुंचनेमें इन्हें काफी देर लग जाती है और बमबाजपर ठीक निशाना लगाना ऐण्टी एयर क्रैफ्ट तोपोंके लिए और भी दूभर हो जाता है ।

अवश्य ही ऊर्ध्वाकाशमें उड़नेवाले वायुयानोंके निर्माणके लिए पाश्चात्य देशोंके वैज्ञानिक अरसेसे प्रयत्नशील रहे हैं; किन्तु ऊर्ध्वाकाशमें साधारण ढङ्गपर तैयार किये गये वायुयान क्षणमात्रके लिए भी टिक नहीं सकते । हम जानते हैं कि ज्यों-ज्यों हम ऊपर आकाशमें बढ़ें, वायुका तापक्रम गिरता जाता है, यहां तक कि सात-आठ मीलकी ऊंचाईपर बर्फ पिघलनेके तापक्रमसे भी ५० डिग्री नीचे वायुका तापक्रम पहुंच जाता है। इस हद दर्जेकी ठण्डमें पायलट (वायुयान-सञ्चालक) तथा वायुयानमें बैठे हुए अन्य व्यक्तियोंकी रक्षाके लिए विशेष आयोजन करना पड़ेगा । फिर ऊंचाईके बढ़नेके साथ-साथ हवा भी हलकी पड़ती जाती है। धरतीके निकटकी वायु ऊपरकी वायुके भारके कारण दबी हुई होती है, अतः वह अपेक्षाकृत घनी होती है । २० हजार फीटकी ऊंचाईपर हवाका दबाव धरतीकी सतहकी वायुके दबावका केवल आधा होता है, ३५००० फीटकी ऊंचाईपर $\frac{1}{4}$ और ५० हजार फीटकी ऊंचाईपर हवाका दबाव $\frac{1}{8}$ रह जाता है ।

ऊर्ध्वाकाशकी विरल वायुमें उड़नेवाले वायुयानोंको वायु द्वारा उत्पन्न हुई अवरोधक शक्तिका अधिक मुकाबला नहीं करना पड़ता । तीव्रगतिसे हरकत करनेवाली प्रत्येक वस्तुकी गतिमें सबसे बड़ी बाधा वायुकी अवरोधक शक्ति द्वारा ही पहुंचती है । इसी कारण दौड़-प्रतियोगिताओंमें भाग लेनेवाली मोटरकारकी बाडीकी शक्ल सामनेकी ओरसे पीछेको ढालुआं बनाते हैं, ताकि तीव्रगतिसे भागती हुई मोटरकार हवाको चीरती हुई जब आगे बढ़े, तो वह वायुको क्षुब्ध न कर सके । वायुकी अवरोधक शक्ति कम करनेके लिए वाहनोंके बाह्यरूपमें कहीं कोना या आड़ी सतह नहीं रहती । इस क्रियाको स्ट्रीम लाइनिङ्ग कहते हैं । तीव्रगामी वायुयान भी स्ट्रीम लाइन शक्लके बनाये जाते हैं । किन्तु साधारण वायुके निम्नस्तरमें उड़नेवाले स्ट्रीम लाइन वायुयान भी ४०० मील प्रति घण्टेसे अधिककी रफ्तार पकड़ नहीं पाते, क्योंकि बावजूद स्ट्रीम लाइनिङ्गके भी, वायुमण्डलके जर्रे वायुयानकी बाडीसे इतने जोरोंके साथ टकराते हैं कि उनकी रगड़से वायुयानके पङ्ख तप्त होकर जल उठते हैं । इसलिए वायुयानकी रफ्तारको ४०० मीलसे अधिक बढ़ानेके लिए यह आवश्यक समझा गया कि वायुयान आकाशके ऊर्ध्व भागमें उड़े, जहां वायुके जर्रे बहुत ही कम संख्यामें मौजूद हों । वहांपर वायुजनक अवरोधक शक्ति नितान्त कम हो जायगी । रफ्तारकी तेजी और वायुजनक अवरोधक शक्तिमें अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। दस-बीस मील प्रति घण्टेकी रफ्तारसे हरकत करनेवाली वस्तुओंके खिलाफ वायुकी अवरोधक शक्ति नगण्य-सी ही होती है। किन्तु रफ्तार बढ़नेपर हवाकी रुकावट भी बहुत बढ़ जाती है। ४० मीलकी रफ्तारसे दौड़नेवाली रेलवे ट्रेनके इञ्जिनकी

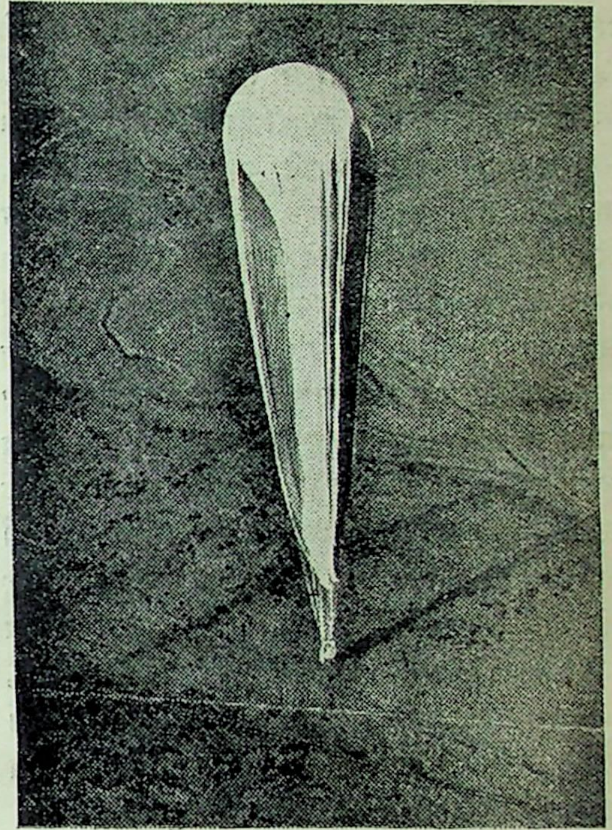
आधी शक्ति वायुकी अवरोधक शक्तिपर विजय प्राप्त करनेमें नष्ट होती है। जिस समय ट्रेन ८० मील फी घण्टेकी रफ्तार-से भागती है, उसके इञ्जिनकी शक्तिका तीन चौथाई भाग हवाकी अवरोधक शक्तिपर फतह हासिल करनेमें जाया हो जाती है।

आकाशके ऊर्ध्व भागको 'स्ट्रेटोस्फियर' कहते हैं। उष्ण कटिबन्धमें स्ट्रेटोस्फियर लगभग १० मीलकी ऊंचाई-पर आरम्भ हो जाता है, किन्तु ध्रुव-प्रान्तोंमें ६॥ मीलकी ऊंचाईपर ही स्ट्रेटोस्फियरका प्रदेश आरम्भ होता है। ऋतु-सम्बन्धी जानकारी हासिल करनेके लिए भी स्ट्रेटोस्फि-यरके रहस्योद्‌घाटनकी आवश्यकता पड़ती है। पिछले बीस वर्षोंसे साहसिक वैज्ञानिकगण स्ट्रेटोस्फियरके सम्बन्धमें निरन्तर अनुसन्धान कर रहे हैं। उनमेंसे अनेकोंने तो अपनी जान हथेलीपर रखकर ऊर्ध्वाकाशके अभियानमें भाग भी लिया है।

साधारण वायुयान द्वारा ऊर्ध्वाकाशमें दूर तक प्रवेश करना असम्भव है। क्योंकि यदि आपने विशेष आयोजन द्वारा अपने शरीरकी रक्षा वहांकी कड़ाकेकी सर्दीके खिलाफ कर ली तथा कृत्रिम ढङ्गसे उत्पन्न की गयी आक्सीजनमें सांस लेकर अपनेको जिन्दा भी रखा, तो आपका वायुयान ऊर्ध्वा-काशकी विरल वायुमें टिक न सकेगा। वायुयानको हवामें टिके रहनेके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वायुयान-के प्रोपेलर हवाको बलपूर्वक काटें। मनुष्य पानीमें तैर सकता है, किन्तु हवामें नहीं। क्योंकि हवा पानीकी अपेक्षा बहुत ही ज्यादा हलकी है।

ऊर्ध्वाकाशके अभियानके लिए हाइड्रोजन भरे हुए गुब्बारे सबसे अधिक उपयुक्त साबित हुए हैं। इटलीके सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० पिकार्ड इस कलामें सिद्धहस्त समझे जाते हैं। आप ही सर्वप्रथम वैज्ञानिक हैं, जिन्होंने गुब्बारेके साथ लटकते हुए पीपेके अन्दर बैठकर जमीनसे दस मील ऊंचे आकाशकी सैर की। अनुसन्धानके इस नये क्षेत्रमें फिर तो अमेरिका और रूसके वैज्ञानिकोंने भी कदम बढ़ाये।

इसके बाद ११नवम्बर, १९३५को संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके जलसेना-विभागके कैप्टेन स्टीवेन्सन और वायुसेनाके कैप्टेन एण्डर्सन दोनोंने अमेरिकाकी नेशनल ज्योग्राफिकल सोसा-यटीके अन्तर्गत एक विशालकाय बैलूनकी सहायतासे ऊर्ध्वा-



कैप्टेन स्टीवेन्सन और एण्डर्सनका गण्डोला मय बैलूनके, अभियान समाप्त होनेपर उतर रहा है।

काशमें अभियान किया। इस अभियानमें ये लोग जमीनकी सतहसे ७२,३९५ फीटकी ऊंचाईपर पहुंचे थे—लगभग १४ मील! मानव कहलानेवाला कोई भी प्राणी इसके पहले कभी इतनी ऊंचाई तक नहीं पहुंचा था। एण्डर्सनके बैलूनका साइज इतना विशाल था कि इसमें ३७ लाख घनफीट हीलियम गैस भरी गयी थी। इस बैलूनके सहारे एक गण्डोला (गोल पीपा) मजबूत रेशमकी डोरियोंसे बंधा हुआ लटक रहा था। यह गण्डोला ९ फीट ऊंचा था। भांति-भांति-के यन्त्रोंसे यह गण्डोला सुसज्जित था। इसी गण्डोलेके अन्दर दोनों अभियानकारी सवार होकर ऊर्ध्वाकाशका रेकार्ड मात करनेके लिए आसमानमें ऊंचे चढ़े थे। गण्डोले-की दीवालकी बाहरी सतहपर सीसेके छर्रे भरे हुए अनेक बोरे लदे हुए थे। आवश्यकतानुसार गण्डोलेका बोझ हलका करनेके लिए विद्युत्-बटन दबाकर इन बोरोंको जमीनपर गिरा सकते थे।

स्टीवेन्सन और एण्डर्सनके इस साहसिकतापूर्ण अभियानके उपलक्षमें उन्हें अमेरिकाके प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने विशेष रूपसे सम्मानित किया था। इस अभियानने स्ट्रेटोस्फियरके बारेमें निस्सन्देह हमारी जानकारी बहुत बढ़ायी। किन्तु १४ मीलसे भी ऊपरकी वायुके टेम्परेचर, दबाव, आर्द्रता आदिके बारेमें विस्तृत जानकारी हासिल करना जरूरी था। मनुष्यका इन ऊंचे वायुस्तरों तक पहुंचना अभी सम्भव नहीं, अतः अनुसन्धानकारियोंने स्वयं क्रिय बैलूनोंमें हाइड्रोजन गैस भरकर ऊपरको उड़ाया। इन बैलूनोंके साथ थर्मामीटर, बैरोग्राफ तथा आर्द्रता-मापक यन्त्र बांध दिये जाते हैं। एक नियत ऊंचाईपर पहुंचकर बैलूनके भीतरकी गैस इतनी अधिक फैल जाती है कि बैलून फट जाता है, ठीक उसी क्षण एक नन्हा-सा पैराशूट अपने-आप खुल जाता है। इस पैराशूटके सहारे धीरे-धीरे ये यन्त्र पृथ्वीकी सतहपर उतर आते हैं। इन यन्त्रोंका निरीक्षण करनेपर यह मालूम हो जाता है कि अमुक ऊंचाईपर वायुका तापक्रम इतना था, उसके दबाव और उसकी आर्द्रताका भी पता लग जाता है। इनमेंसे कुछ स्वयं क्रिय बैलूनोंके साथ रेडियो यन्त्र भी लगे रहते हैं। ये बैलून २६ मीलकी ऊंचाई तक पहुंच पाये हैं।

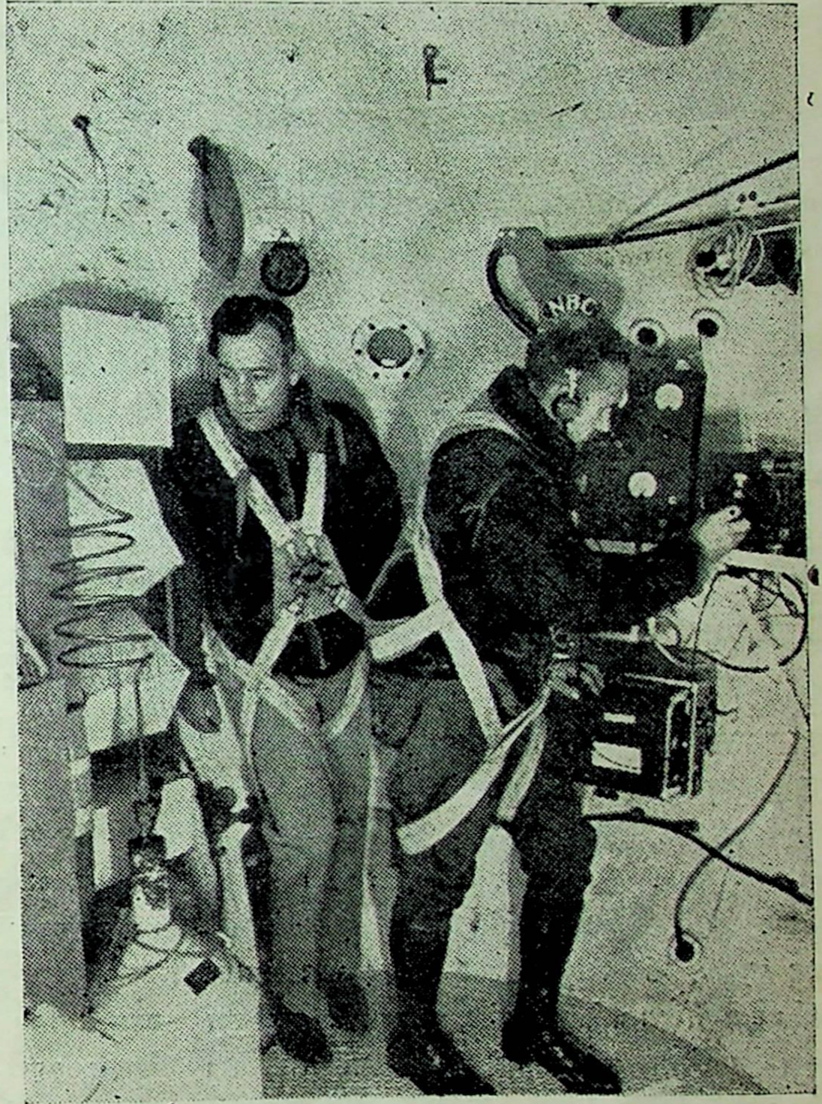
इन अनुसन्धानोंसे यह मालूम हुआ है कि आठ-दस मीलकी ऊंचाईपर आकाशमें गर्द-गुबार, तूफान या घने बादल कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ते। वहांपर पूर्ण निस्तब्धताका साम्राज्य बना रहता है। जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, इन ऊर्ध्वाकाशमें हवा नितान्त विरल होती है। वायुयानके प्रोपेलर कितनी ही तेजीसे क्यों न घूमें, हवामें वे कतई पकड़ उत्पन्न न कर सकेंगे—फलस्वरूप वायुयान भी इस विरल हवामें उड़ न सकेंगे। ऊर्ध्वाकाशमें उड़नेवाले वायुयानोंके सामने ये सब कठिनाइयां आती हैं:— पहली कठिनाई है विरल वायुमें प्रोपेलरका झूठा पड़ जाना, दूसरी है पायलटके लिए सांस लेनेके लिए घनी वायु जुटाना, तीसरी है पायलटको सर्दीसे बचाना, चौथी है वायुयानके इञ्जिनमें एक खास मात्रामें हवाको नियमित रूपसे प्रवेश कराना और पांचवीं—इञ्जिनको ठण्डा रखनेके लिए पर्याप्त मात्रामें हवाके झोंकेका इञ्जिनसे स्पर्श कराना।

विरल वायुमें प्रोपेलरकी पकड़ पूर्ववत् कायम रखनेके लिए जरूरी हो जाता है कि किसी-न-किसी उपायसे प्रोपेलरके ब्लेडोंकी संख्या बढ़ा दें या ब्लेडका क्षेत्रफल बढ़ा लें। ऐसा करनेसे वायुको काटनेमें प्रोपेलरका एक बड़ा क्षेत्रफल काम देगा। ऊर्ध्वाकाशमें पहुंचकर एकाएक ब्लेडोंकी संख्या बढ़ा सकना सम्भव नहीं है। अवश्य ही दूसरा उपाय आसानीसे काममें लाया जा सकता है। ऊर्ध्वाकाशमें पहुंचते ही पायलट एक खटका दबा देता है—बस, तुरन्त ही ब्लेडोंकी लम्बाई बढ़ जाती है, ठीक उसी भांति, जैसे दूरबीनकी लम्बाई घटायी-बढ़ायी जा सकती है। कुछ वायुयानोंमें प्रोपेलरके ब्लेडको इच्छानुसार कम या अधिक घुमा भी सकते हैं। विरल हवामें पहुंचनेपर ब्लेडका झुकाव अधिक कर देते हैं, फलस्वरूप हवामें घूमते हुए ब्लेडकी पकड़ भी बढ़ जाती है।

पेट्रोल-इञ्जिनके अन्दर विरल हवा नहीं प्रविष्ट होने पाती। वायुयानके एक्जस्ट गैसोंसे परिचालित होनेवाले एक पम्पकी मददसे ऊर्ध्वाकाशकी विरल हवाको कसकर पहले घनी बना लेते हैं। इस सुपरचार्ज्ड हवाको तब इञ्जिनमें प्रवेश कराते हैं। मानो पेट्रोल-इञ्जिनको सांस लेनेके लिए उतनी ही गाढ़ी हवा मिलती है, जितनी पृथ्वीकी सतहपर। इञ्जिनके बाह्य धरातलका क्षेत्रफल बढ़ा देनेसे विरल हवामें भी इञ्जिन अत्यधिक गर्म नहीं होने पाता।

पायलटकी रक्षाके लिए कई तरकीबें काममें लायी जा सकती हैं। 'काकपिट' को एयर टाइट बना सकते हैं—इसके अन्दर हवाका दबाव उतना ही बनाये रख सकते हैं, जितना कि पृथ्वीकी सतहपर है। विरल हवामें सांस लेनेमें हम हांफने लगते हैं, क्योंकि अपनी आवश्यकता पूरी करनेके लिए एक बारमें हम आक्सीजनकी पूरी खुराक नहीं खींच पाते। इसके अतिरिक्त बाह्य हवाका दबाव कम पड़ते ही हमारे शरीरके अन्दरसे रक्तका प्रवाह आंख, कान तथा नाकके रास्ते फूटकर बाहर निकलने लगता है। इस मुसीबतसे बचनेके लिए या तो पायलटको एयर टाइट ककपिटमें बैठना पड़ेगा, या फिर उसे रबर-मिश्रित कपड़ेका बना हुआ विशेष लबादा पहनना पड़ेगा, जिसके अन्दर अतिरिक्त हवा पम्प करके वायुका दबाव पृथ्वी-तलके दबावके बराबर कायम रखा जायगा। लबादा पहननेपर सांस लेनेके लिए रबरकी नली द्वारा इस्पातकी एक बोतलमें बन्द आक्सीजनको ही नाकमें खींचना पड़ेगा। इस सम्बन्धमें एक दुर्घटनाका जिक्र

कर देना अनुपयुक्त न होगा। "एफ १००१" स्ट्रेटोस्फियर वायुयानमें काकपिट एयर टाइट बनाया गया था—प्रयोगात्मक उड़ानमें लगभग ६ मीलकी ऊंचाईपर पहुंचते-पहुंचते इसका काकपिट फट गया! इसी कारण एयर टाइट काकपिटके बजाय रबरके प्रेशर-लबादे और आक्सीजन-बोतलके प्रयोगको इन दिनों ज्यादा प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इनके प्रयोगमें खतरेकी सम्भावना कम रहती है।



गण्डोलेके भीतर दोनों उड़ाके।

पायलट तथा यात्री, दोनोंके लिए आक्सीजनकी समुचित सप्लाई जारी रखना आवश्यक है। इस सम्बन्धमें डाक्टरोंने दिलचस्प प्रयोग किये हैं। आक्सीजनका विशेष आयोजन किये बगैर यदि पायलट आकाशमें खूब ऊंचे उड़े, तो वह ज्यों-ज्यों विरल वायुमें पहुंचता है, आक्सीजनकी कमीके कारण, जैसे अनजानेमें ही, पहले तो उसे कुछ झपकी-सी आने लगती है, फिर कुछ ही क्षणोंके उपरान्त वह चेतना-विहीन हो जाता है। वायुयानकी गति यदि एकाएक बढ़ा दी जाय, जैसा कि कलाबाजियां खेलते हुए वायुयानोंमें प्रायः होता है, तो सेण्ट्रीफूगल शक्तिके उत्पन्न होनेसे पायलटके मस्तिष्कसे समूचा रुधिर खिंचकर उसके पेडूमें पहुंच जाता है। रुधिरकी कमी होते ही मस्तिष्क फेल करने लगता है—दूसरे ही क्षण पायलट बेहोश हो जाता है। डाक्टरोंका कहना है कि वायुयानकी रफ्तार यदि धीरे-धीरे बढ़ायी जाय, तो पायलट इस मुसीबतसे आसानीसे बच सकता है।

कुछ डाक्टरोंने इस बेहोशीसे बचनेकी एक और तरकीब बतायी है। ये परामर्श देते हैं कि ऊर्ध्वाकाशमें तीव्रगति-जन्य बेहोशीको अपने ऊपर हावी होते देखते ही पायलटको चाहिए कि वह बलपूर्वक चिल्लाये। ऐसा करनेसे उसके मस्तिष्क-प्रदेशसे अधिक मात्रामें रुधिर कटि-प्रदेशमें उतरने न पायेगा। एक चौड़ी पेटीको कमरमें कसकर बांधनेसे भी रुधिरके प्रवाहमें कुछ हद तक रुकावट डाली जा सकती है—मस्तिष्क-प्रदेशसे अधिक रुधिर नीचेको उतर न पायेगा। एक तीसरे सर्जन डाक्टर वायुयान निर्माण करनेवाले इञ्जीनियरोंको परामर्श देते हैं कि यदि वायुयानकी रफ्तारको बेहद बढ़ाना ही है, तो काकपिटकी बनावटमें कमसे कम इतना सुधार अवश्य हो जाना चाहिए कि पायलट लेटे-लेटे ही विभिन्न यन्त्रोंका सञ्चालन कर सके। लेटे रहनेपर सेण्ट्रीफूगल फोर्सके कारण मस्तिष्कका रुधिर अधिक न खिंच पायेगा। किन्तु निकट भविष्यमें इस



हाकर हरिकेन।

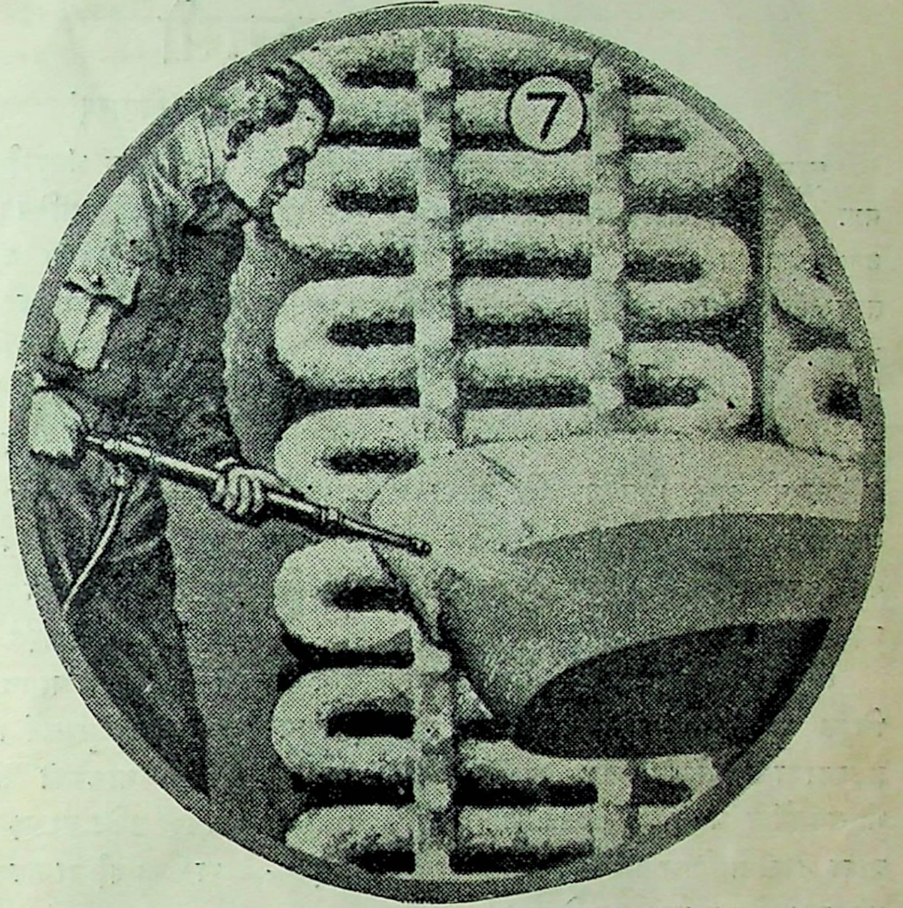
ढङ्गके काकपिटके बननेकी सम्भावना दिखलाई नहीं पड़ती।

ऊर्ध्वाकाशसे तीव्र वेगके साथ बम-वर्षक वायुयान, बम गिरानेके लिए गोता मारकर जब नीचे उतरते हैं, तो वायुके दबावके अचानक बढ़ जानेके कारण अक्सर पायलटके कानके पर्दे फट जाते हैं। ऐसी हालतमें भी डाक्टर सलाह देते हैं कि गोता लगाते समय पायलटको पूरी शक्ति लगाकर चिल्लाना चाहिए—चिल्लानेसे कानके पर्देपर भीतरकी ओरसे भी जोर पड़ेगा, अतः वे बाह्य दबावके बढ़नेसे फट न सकेंगे।

औसत ऊंचाईपर उड़नेवाले वायुयानोंको एक और आफतका सामना करना पड़ता है। सर्दीके मौसममें दो-ढाई मीलकी ऊंचाईपर भी इतनी अधिक ठण्ड पड़ती है कि वहांकी हवामें मौजूद भाप जमकर बर्फ बन जाती है। प्रोपेलरके ब्लेड, वायुयानके पङ्ख तथा अन्य भागोंपर बर्फकी मोटी तह जम जाती है। निस्सन्देह पायलटके लिए बर्फका वायुयानपर जमना एक अत्यन्त ही भयप्रद बात है। बर्फ जमनेकी क्रिया अचानक आरम्भ होती है। बर्फकी मुसीबतसे बचनेके लिए प्रायः दो तरकीबें काममें लाते हैं—विद्युत्-शक्तिसे गर्मी पहुंचाकर या तो बर्फको पिघला देते हैं या फिर प्रोपेलरके ब्लेड वगैरहपर रबरके थैलेकी एक खोल पहलेसे चढ़ा रखते हैं। बर्फ ज्योंही जमनी शुरू हुई, पायलट रबरकी खोलमें हवा भरता है और फिर उसे खाली कर देता है। शीघ्रताके साथ इस क्रियाको दुहरानेसे बर्फकी तह अपने-आप टूट जाती है।

ऊर्ध्वाकाशमें वायुयानोंकी रफ्तार लगभग ४४०-४५ मील प्रति घण्टा पहुंच चुकी है। अब प्रश्न उठता है, क्या इञ्जिनकी शक्ति बढ़ाकर, वायुयानकी बाडीकी स्ट्रीम लाइनिंग करके तथा ऊंचाईका रेकार्ड बढ़ाकर इन वायुयानोंकी रफ्तारको और ज्यादा बढ़ा नहीं सकते? क्या कोई सीमा इस सिलसिलेमें निर्धारित है, जिसे वायुयानोंकी रफ्तार लांघ नहीं सकती? भौतिक विज्ञान बतलाता है कि वायुमें ध्वनिकी रफ्तार लगभग ७०० मील प्रतिघण्टे हैं—और ध्वनि वायुके अवयवोंकी हरकतसे उत्पन्न होती है। वायुके अवयव ७०० मील प्रति घण्टेसे अधिक तेजीके साथ हरकत नहीं कर सकते। वायुके अवयवोंकी हरकतके बलपर वायुयान आसमानमें उड़नेमें समर्थ होता है। अतः हवामें वायुयानकी महत्तम रफ्तार ७०० मील प्रतिघण्टा हो सकती है। इससे अधिक नहीं। वास्तवमें वायुकी अवरोधक शक्ति आदिके कारण यह रफ्तार ६५० मील प्रति घण्टेसे आगे नहीं बढ़ सकती। एक और बात है—यदि हवा ठण्डी हुई, तो ध्वनिकी रफ्तार भी प्रति डिग्री सेण्टीग्रेड पीछे एक प्रतिशत कम हो जाती है। इस हिसाबसे स्ट्रेटोस्फियरमें, जहां वायुका तापक्रम शून्यसे भी ५० डिग्री नीचे रहता है, ध्वनिकी रफ्तार ६०० मील प्रति-घण्टा उतरती है। इसका अर्थ यह हुआ कि इस प्रदेशमें वायुयान अधिकसे अधिक ५५० मील प्रति घण्टेकी रफ्तार हासिल कर सकता है।

वायुयान-इञ्जीनियर मेजर मेयोने स्ट्रेटोस्फियर-उड़ानके लिए एक नयी तरकीब ईजाद की है। आपकी योजना दुहरे वायुयान बनानेकी है। एक चौड़े डैनेवाले वायुयानकी पीठपर स्ट्रेटोस्फियर-वायुयान रखा रहता है। इस वायुयानके प्रोपेलरके ब्लेड खूब तिरछे होते हैं, ताकि स्ट्रेटोस्फियरकी विरल हवामें इनकी पकड़ मजबूत बैठ सके। चौड़े डैनेवाला वायुयान अपनी पीठपर इस स्ट्रेटोस्फियर-वायुयानको लेकर खूब ऊंचे उड़ जाता है, फिर ऊर्ध्वाकाशमें स्ट्रेटोस्फियरवाला वायुयान उड़ना आरम्भ करता है और शीघ्र ही दूसरे वायुयानकी पीठसे उठकर मीलों ऊंचे चढ़ जाता है। मेजर मेयोकी यह योजना यदि कामयाब हो गयी, तो फिर हमारे सबसे तीव्रगामी वायुयानोंको अपनी उड़ानके लिए पुराने ढङ्गके हवाई जहाजोंपर आश्रित रहना होगा। स्वयं अपने बल-बूतेपर ये न तो आसमानमें चढ़ सकेंगे और न एयरोड्रोमपर उतर ही सकेंगे।



वायुयानपर जमी हुई बर्फको रासायनिक पदार्थकी सहायतासे पिघलाया जा सकता है।

७०० मीलवाली सीमाको भी यदि लांघना चाहें, तो हमें ऐसे वाहन तैयार करने होंगे, जिन्हें आकाशमें उड़नेके लिए हवाके बलकी जरूरत न होगी। खिलौनों और माडलके रूपमें इस तरहके वाहन बनाये जा चुके हैं। इन्हें राकेट कहते हैं। अमेरिकाके प्रो० गोडार्ड इस दिशामें विशेष रूपसे प्रयत्नशील हैं। राकेटकी पूंछमें बारूद भरी रहती है। बारूदके दगते ही धक्का खाकर राकेट तेज रफ्तारके साथ आगे बढ़ता है। जब हम बन्दूक दागते हैं, तो कारतूसके दगते ही बन्दूकको पीछेकी ओर एक जबर्दस्त धक्का पहुंचता है। आतिशबाजीमें 'बान' भी इसी सिद्धान्तपर दागा जाता है। पूरे दस सालके अनवरत परिश्रमके उपरान्त प्रो० गोडार्डने एक ऐसा राकेट बनाया है, जिसकी रफ्तार लगभग ९ हजार मील प्रति घण्टा है। राकेटके सम्बन्धमें सबसे भारी मुश्किल यह है कि उसकी पूंछमें भरा हुआ विस्फोटक पदार्थ इतना काफी होना चाहिए कि राकेट दो-चार सौ मीलका लम्बा सफर एक ही उड़ानमें तय कर सके। फिर राकेटको इच्छानुसार इधर-उधर घुमा नहीं सकते और न स्टियरिङ्ग ह्वील घुमाकर राकेटको उलटा वापस ही ला सकते हैं। जब तक राकेटपर पूर्ण नियन्त्रण हासिल नहीं हो जाता, तब तक इसकी गिनती वाहनोंमें हम नहीं कर सकते।

जर्मनीके एक वैज्ञानिकने तो यहां तक कहा है कि यदि ६० लाख पौण्ड उसे मिलें, तो वह एक ऐसा राकेट तैयार कर सकता है, जो दो यात्रियोंको डेढ़ दिनके अन्दर शून्यको भेदता हुआ चन्द्रलोक तक पहुंचा देगा। इस राकेटका वजन ३० टन होगा, जिसमें लगभग २५ टन अलकोहल और ५ टन द्रवरूपमें हाइड्रोजन गैस भी होगी। इन्हीं दोनों विस्फोटक वस्तुओंसे राकेटको चालक शक्ति प्राप्त होगी।

स्ट्रेटोस्फियर बमवर्षक वायुयानके विकासके साथ-साथ शत्रुकी ऐण्टी एयर क्रैफ्ट तोपों तथा अन्य साधनोंमें निरन्तर उन्नति हो रही है। अमेरिकाके सेना-विभागने एक ऐसे यन्त्रका आविष्कार किया है, जो ७५ मीलकी दूरीपर उड़ते हुए बमवर्षककी टोह भी आसानीसे लगा लेता है तथा सौ-दो-सौ फीटके अन्दर-अन्दर उसकी ठीक-ठीक स्थिति भी बता देता है। इस यन्त्रकी ईजादके पूर्व ध्वनि-तरङ्गोंपर अवलम्बित यन्त्र ही बम-वर्षककी टोह लगानेके लिए इस्तेमाल होते थे। अधिकसे अधिक आठ मीलकी दूरीपर उड़ते हुए बमवर्षककी आवाजसे ध्वनि-यन्त्र प्रभावित हो सकता है।

———

कुसुमी

श्री भैरवप्रसाद गुप्त 'विशारद'

चुचुहियोंने एक साथ मिल अपनी कर्ण-भेदी सीटी बजायी, मानो ऊषा-आगमनकी सूचना दे रही हों। उनकी वह तेज आवाज जङ्गलकी निस्तब्धताको तीरकी तरह चीरती एक छोरसे दूसरे छोरको निकल गयी। जङ्गलके पशु-पक्षी, जो अभी तक निद्राकी गोदमें बेखबर पड़े थे, सैनिकोंकी तरह इस बिगुलकी आवाज सुनकर उठ बैठे और लगे अपनी-अपनी लय मिलाकर ऊषारानीका अभिनन्दन करने। सुषुप्त और शान्त प्रकृति सजीव और कोलाहलमय हो उठी। एक अजीब व गरीब समां-सा बंध गया, जैसे भिन्न-भिन्न आवाजोंकी एक विचित्र प्रदर्शनी बस गयी हो।

घोड़ा, जो बस्तीमें ऐसे कोलाहलका अभ्यस्त न था, चिहुक गया और कनौतियां खड़ी कर लगा इधर-उधर हकबकाया-सा अपनी चौकन्नी आंखोंसे देखने। जब कुछ भी समझमें न आया, तो उसने भी रागमें राग मिला चाहा अपनी जातिका परिचय देना कि ऊपरसे डांट पड़ी—अबे, क्या शोर मचाना शुरू किया?

जानवर होते हुए भी वह अपने मालिककी मन्शा समझ गया। सिर नीचा कर शर्मिन्दा-सा हो पैरोंसे पृथ्वी कुरेदने लगा, मानो चिन्तामग्न हो सोचने लगा—अब क्या करूं? इधर हिनहिनानेकी प्रबल इच्छा, उधर साहबके बिगड़ जानेका अन्देशा, दोनोंके बीच वह कुछ निश्चय न कर सका।

अहमदने देखा कि अब सोनेकी कोशिश करना बेकार है। इन जङ्गलके जानवरोंको क्या मालूम कि बस्तीमें भी एक जानवर होता है, जिसे मीठी नींद रातके पिछले पहर ही आती है। वह कुछ झुंझलाया-सा उठा। सचमुच यदि इस समय इन जानवरोंपर उसका वश होता, तो वह उन सबको गोलीसे मारकर उड़ा देता।

अनमना-सा, ऊपरकी एक डालीका सहारा ले, सावधानीसे उठ बैठा। सारा बदन चूर-चूर हो गया था। हड्डी-हड्डी अकड़ गयी थी, गांठ-गांठमें दर्द-सा हो रहा था। एक जोरकी अंगड़ाई ली, सारी हड्डियां पनाह मांगती 'चट-चट' बोल उठीं। तबियतमें कुछ हल्कापन महसूस किया। डालपरसे लबादा उठा, डालको जरा गौरसे देखा; फिर रातकी बातें यादकर हंस पड़ा अपने ही ऊपर।

लबादा जमीनपर फेंक धीरे-धीरे नीचे उतरा। घोड़ेने सिर हिलाया, जैसे पूछ रहा हो—कहिये जनाब, रात कैसे कटी? जवाबमें अहमदने उसके पुट्ठोंको थपथपा दिया।

चारजामा कस, हाथसे लगाम पकड़े, सुसकारी भरते आगे बढ़ा कि छू गया प्रातःका समीर अपने कोमल सुरभित करोंसे। उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। सारी थकान मानो स्फूर्तिमें बदल गयी, हरा हो गया उसका चेहरा। इतने ही में पागल कोइलिया कुहुक उठी किसी दूरके पल्लवोंके झुरमुटमें। मन्त्र-मुग्ध-सा वह ठिठक गया—एक अबोध बालककी तरह, और लगा इधर-उधर देखने कि उसकी दृष्टि जा पड़ी सुनील आकाशपर। और वह ऊषारानीका रुई-सा हलका-हलका सिन्दूरी उत्तरीय! वह विभोर हो उठा। उसकी उनींदी आंखोंकी ललाईमें मादकता भर गयी और वे मादक आंखें रह गयीं अटकी-सी उस उत्तरीयके एक छोरमें। वह अल्हड़-सा बैठ गया वहीं एक शिलापर, कुछ ठगा-ठगा-सा। और घोड़ा उसका मुंह देखता रह गया-अवाक् हो... कि 'कल-कल,छल-छल' सरिताके उच्छ्वास-भरे गीतोंने उसे अपनी ओर खींच लिया। वह झुंझला उठा प्रकृतिके वैचित्र्य और उसकी दुरङ्गी चालपर। लेकिन वे स्वर्ण-फूल—जो झर रहे हैं हीरों-सी चमचम चमकीली लहरोंपर! और कदाचित्, जो बन जाते हैं नीले-नीले कमल-पुष्प इन लहरोंको छूकर! लेकिन वह?-क्यों, वह भी तो एक कमल-पुष्प ही है, तनिक बड़ा-बड़ा-सा, कुछ अधिक खिला-खिला-सा, जिसपर भ्रमरोंकी भरमार-सी है। पर ... वह अदृश्य क्यों हो गया? कदाचित् लहरोंके थपेड़ोंसे। लेकिन वे छोटे-छोटे फूल? वे तो अब भी झूल रहे हैं लहरोंपर—लहरोंपर; उत्सुकताने दुहराया कि झटकेसे वह पुष्प ऊपर उठ आया, और उसके ऊपरसे दो लाल-लाल हाथ, भ्रमरोंको उड़ाते-से।

उसका हृदय धक्से रह गया। किन्तु उसकी चमकती दृष्टि? टंकी-सी रह गयी वह—कमल-पुष्पपर जल-कण-सी। आंखें चार हुई कि वह पुष्प पुनः लहरोंमें अन्तर्द्धान हो गया। अहमदके मुंहपर लज्जाकी रेखायें खिंच गयीं। उसने मुंह फेर लिया।

बारहा उसने कोशिश की कि एक दृष्टि-भर उस ओर फिर देखे। लेकिन शीलने उसका सिर न घूमने दिया। गुमसुम-सा कुछ क्षण लगाये रहा, फिर लगामकी डोरको झटका दे उठ खड़ा हुआ। घोड़ेने झटका पा मुंह ऊपर कर आंखें चमका दीं, मानो पूछ रहा हो— क्यों साहब, मैंने क्या किया? और अहमदने जैसे जवाब देते कहा—चलो मियां घोड़े, रातको नींद नहीं आयी, फिर ख्वाब कहांसे आते? इसीलिए तो इस बेदारीमें ऐसा अजीब ख्वाब नमूदार हुआ और साथ-ही-साथ ताबीर भी मिली। और इतना कहकर लगामसे घोड़ेको खींचते हुए जोरसे दौड़ पड़ा। फिर न जाने कितनी बार वह झाड़ियोंसे उलझा, गिरते-गिरते संभला, और न जाने कितनी लताओंको उसने अपने उस चाबुकसे छेड़कर अस्त-व्यस्त कर दिया।

(२)

सरिता अपनी उसी मस्तानी चालसे बलखाती, किनारे लगी नौकाओंको अपनी उद्दाम लहरोंसे उछालती बहती जा रही थी। पास ही भिखारिनकी भाग्य-रेखा-सी, अपनेको अपने ही में समेटे, जर्जरा अवस्थामें एक झोंपड़ी बालुका भूमिपर खड़ी थी। उसके फूसके छप्परको छेदता धुआं आकाशगामी हो रहा था, मानो गरीबी आह ले रही हो। और उधर कुछ दूरसे "आछो-आछो" के शब्द उस निस्तब्धताको चीरते दूर तक निकल जाते।

पसीनेकी बूंदोंको रूमालसे पोंछते हुए अहमदने एक बार उधर देखा। फिर सोचा—पूछूं, शायद कोई कुछ बता दे।

'अरे, कोई है झोंपड़ीमें?' उसी ओर बढ़ते हुए उसने आवाज दी।

'कौन है?' कहती एक अधेड़ स्त्री झोंपड़ीसे बाहर निकल आयी। उसकी नजर अहमद और उसके घोड़ेपर पड़ी कि वह सहम-सी गयी। कुछ अस्वस्थ शब्दोंमें उसने पूछा—क्या है बाबू?

'सीतारामपुरका रास्ता किधरसे है?'

'यही सीतारामपुर घाट है।'

'यही है!' कुछ आश्चर्यसे उसने पूछा, जैसे अपनी अज्ञानता और भूलपर ही उसे आश्चर्य हो आया।

'अच्छा, कहां है मल्लाह? बुला, मैं अभी पार उतरूंगा।' उसके शब्दोंमें कुछ शासनकी गन्ध थी।

वह स्त्री कुछ सहम गयी—बोली—वह अभी बस्ती गये हैं। थोड़ी देरमें आ जायेंगे।

अहमद कुछ सोचमें पड़ गया। कुछ कहने ही वाला था कि अचानक 'चाची-चाची' की भोली आवाज आयी। सारी स्थली जैसे मधुमय हो उठी।

अहमदकी दृष्टि शब्द-दिशाकी ओर उड़ पड़ी। देखा, एक लड़की माथेपर भींगी साड़ी रखे, उसे एक हाथसे थामे, दूसरे हाथमें कुछ कमल-पुष्प लिये दौड़ी आ रही है। उसे लगा, जैसे कोई वनदेवी यौवन और सुन्दरतासे अठखेलियां करती बनसे निकली आ रही हो। पास आ जानेपर सहसा उसे सुधि आयी—शायद यह वही......! और उसकी आंखें चकित-सी रह गयीं, मानो कोई बहुत बड़ी रहस्य-भरी घटना उसके सामने घट रही हो।

'चल, चल, बैठ, आती हूं।' मुड़ते हुए अधेड़ स्त्रीने कहा। लेकिन वह पास आ चुकी थी। उससे लौटते न बन पड़ा। अहमदपर एक चञ्चल दृष्टि फेंकती हुई बोल उठी—क्या है चाची?

स्त्रीने कहा—यह बाबू पार जाना चाहते हैं और तुम्हारे चाचा बस्ती गये हैं। नाव कौन ले जाये?

लड़कीने कहा—तो चाचा नहीं हैं तो क्या हुआ, मैं पार उतारे देती हूं।

उसके एक-एक शब्दसे चञ्चलता और भोलापन झर रहा था। वह दौड़ पड़ी जबरदस्ती चाचीके हाथमें साड़ी-फूल थमाती।

अहमदकी समझपर मानो पाला पड़ गया। वह उसकी चाचीकी ओर देखता रह गया, जैसे उससे जानना चाहता हो—अब मैं क्या करूं।

'आइये-आइये।' इतने ही में हाथसे लग्गी उठाते पुकार उठी वह।

और अहमद बड़े असमञ्जसमें पड़ गया। ऐसी परिस्थिति उसके जीवनमें यह पहली ही बार आयी थी। वह कुछ

सोच ही रहा था कि विवशताके शब्दोंमें चाचीने कहा—जाइये-जाइये, डरनेकी कोई बात नहीं। यह बहुत अच्छा खेती है।

और वह मुड़ा, तो उसके पैर जैसे जमीनसे सट गये थे। किसी तरह डग-डग किनारे पहुंचा। वह नावसे कूद पड़ी और अहमदके हाथसे घोड़ेकी लगाम लेते हुए उसने कहा—चलिये आप बैठिये, मैं घोड़ेको बढ़ा लेती हूं।

अब नाव नदीकी नन्हीं-नन्हीं लहरोंपर थिरकने लगी।

लग्गीके सहारे अहमदकी दृष्टि उसकी कोमल, किन्तु पुष्ट उंगलियों और वहांसे अनायास ही उसकी गोल-गोल मांसल भुजाओंपर जा लगी। लग्गी उठाने और फिर उसे पानीमें डाल, जोर लगा, नावको आगे बढ़ानेमें जब उसकी भुजाओंकी पुष्ट मांस-पेशियोंमें एक थिरकन होती, तो उसे देख अहमदकी आंखोंकी पुतलियां भी मानो अनियन्त्रित-सी हो थिरक उठतीं। और फिर एक सरसरी दृष्टिसे उसके अनजाने ही वह उसे ऊपरसे नीचे तक एक क्षणमें देख गया।

थोड़ी देर बाद घाट आ गया।

लग्गीको एक ओर रख वह नीचे कूद पड़ी। नावको पकड़ किनारे लगा दिया। अहमद धीरेसे उतर गया।

लड़की घोड़ेको उतार, लगाम अहमदके हाथमें देने लगी, लेकिन उसके हाथ मनीबेग खोलनेमें लगे थे। दो रुपये निकाल बायें हाथसे लगाम पकड़ दाहिनेसे उसे देना चाहा कि लड़की हंस पड़ी—उन रुपयोंको देखकर।

'हम मल्लाह थोड़े हैं कि खेवा लें।'

'तो!' आश्चर्यसे पूछा अहमदने।

'मैं तो गृहस्थकी लड़की हूं। मेरे बाप खेती करते हैं।'

'लेकिन तुमने मेहनत तो की है।'

'यह जानती तो नाव ले भी न आती।' रूठी-सी वह बोली।

'खैर, जाने दो, अच्छा यह गांव किस थानेमें है?'

'सीतारामपुरमें।'

'और तुम्हारा नाम?'

'कुसुमी, मेरा नाम जानकर क्या कीजियेगा?' उत्तर देनेपर भी इस बेतुके प्रश्नको वह समझ न सकी।

'यह तो नाम बतानेके पहले ही पूछना चाहिए था।'

'अच्छा, अब देर होती है।'

इधर कुसुमीने लग्गी उठायी, उधर अहमदने घोड़ेकी लगाम संभाली। और दोनोंकी दृष्टियां कुछ देर तक एक ही पथपर दौड़कर रह गयीं।

(३)

धनका सबसे बड़ा अभिशाप भोग-विलास है और समयकी बेकारीका सबसे बड़ा दुष्परिणाम हृदयमें कुत्सित भावनाओंका जाग्रत होना। और इन दोनोंका सम्मिलन नैतिकताका अन्त, पशु-प्रवृत्तियोंके अविरोध नग्न नृत्यका चिन्ताजनक स्थल है। सीतारामपुरके जमीन्दार कुंवर इन्द्रजीत सिंह इसके जीवन्त उदाहरण हैं।

तीन साल तक लगातार हाई स्कूल परीक्षामें अनुत्तीर्ण होनेपर विद्यार्थी-जीवनसे इन्हें एक प्रकारका विराग-सा हो गया। पहले तो मुख्तार आम सब्ज बाग दिखा-दिखाकर इन्हें रियासतसे अलग ही रखता रहा, पर जब उसे ज्ञात हो गया कि 'जैसे बालम घर रहे, वैसे रहे विदेश,' तो उसने भी कोई विशेष आपत्ति नहीं की। कुंवर साहब अब गांवके बंगले ही में रहने लगे।

कहने-सुननेको तो इनके सम्बन्धी अनेकों थे, परन्तु सच तो यह है कि कुंवर-कुटुम्बमें इस समय केवल एक ही कुल-दीपक था। और जब पतङ्गोंने उसे एकाकी प्रकाशमान देखा, तो अपना-अपना प्रेम जताने उसकी ओर वे लपके। लेकिन ये पतङ्गे दीप-शिखाके सौन्दर्यपर मुग्ध हो उसपर प्राण न्यौछावर करनेवाले शलभ न थे, बल्कि दीपकका तेल चाटनेवाले कीड़े थे। इन्हीं पतङ्गोंके स्वार्थान्ध, कृत्रिम प्यार और 'वाह-वाही' के घेरेमें वह दीप प्रज्वलित हो उठा।

अब तक वे पूर्णतः संसारके संसर्गमें नहीं आये थे। नवयौवनके विकासने उन्हें इस पापी संसारसे परिचित कराना प्रारम्भ किया। चाटुकारों और मनचले नौजवानोंकी मीठी-मीठी, मन-भाती चाटूक्तियों और झूठी-झूठी प्रशंसाओंने मानो ज्वालापर घृतका काम किया। उनके मुंहसे 'कुंवरजी,-कुंवरजी' सुनकर वे निहाल हो जाते। सोचते, कितने अच्छे हैं ये और कितना प्यार करते हैं मुझे! इनपर सारी रियासत भी कुरबान कर दी जाय, तो थोड़ी है।

और कुरबानी शुरू भी हो गयी। कुंवरजीका बैठका बैठकबाजोंका बैठका बन गया। इस गुड़के ढेलेके रहते चींटे और कहां जाते। बीड़ी और पानसे प्रारम्भ होकर सिगरेट और

शराब तककी नौबत आयी। रातकी रात, दिनके दिन जशन, आराम व ऐशमें गुजरने लगे। मुख्तार आमने सन्तोषकी एक ठण्डी सांस ली, मानो उसे मुंह-मांगा वरदान मिल गया। उसने हाथ और भी ढीला कर दिया। यौवनकी उन्मत्त धारा प्रवाहके लिए रास्ता ढूंढ़ने लगी।

बकौल लुकमानके मदिरा, मांस और वेश्यामें बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। ये तीनों एक-दूसरेके पूरक हैं, और इसीलिए एकके सेवकको दूसरेकी गुलामी करनी ही पड़ती है। गांवोंमें प्रथम दो वस्तुओंका मुहय्या करना कुछ विशेष कठिन नहीं है। शराबकी बोतलें बड़ी आसानीसे कोटकी जेबमें या कपड़ेसे ढककर ला सकते हैं। लेकिन वेश्या नामकी चीज कुछ इतनी बड़ी होती है कि उसे इस प्रकार छिपा-छिपाकर हमेशा लाना जरा कठिन है। परन्तु बिना इसके वह स्वर्ग स्वर्ग कैसे हो सकता है? स्वर्गकी कल्पना बिना परीजादोंके एक नीरस-सी कल्पना ही तो होगी!

हां, तो गांवोंमें भी इस नीरस कल्पनाको सम्पूर्ण और सरस बनानेके लिए लोग प्रयत्न करते हैं। गांवकी गरीबी, समाजकी उच्छृङ्खलतायें, यौवनका उन्माद और गांववालोंका सुलभ भोलापन उन लोगोंकी पग-पगपर सहायता करते हैं। और इसीलिए उनको सफलता बड़ी सरलतासे मिल जाती है। कुंवर इन्द्रजीत सिंहको भला उनके जां-निसारोंके रहते इसमें कौन-सी कठिनाई दरपेश आती? टट्टीकी आड़में शिकार होने लगा। रोज नयी-नयी बुलबुलें फंसायी जाने लगीं। उच्छृङ्खल यौवन-धारा अट्टहास करती हुई बिना किसी अवरोधके मनमानी, अदम्य रूपसे प्रवाहित होने लगी। ग्राम्य नैतिकताके कूल थर्रा उठे।

(४)

'कुछ सुनूं भी तो!' कुंवरजीने झुंझलाते हुए कहा।

'अरे कुंवरजी, क्या कहूं? हमें कुछ कहा होता, तो हम सह लेते, लेकिन आपकी शानमें वह ऐसा कहे! सरकारका हुकुम होता, तो सिर कटा देता, लेकिन सालेकी जीभ खींचे बिना न छोड़ता। लेकिन...।'

'फिर वही, अरे कुछ कह भी तो! हुआ क्या?' बात काटते कुंवरजीने कुछ स्नेहसे कहा।

'हुआ क्या, जबसे सरकारका हुकुम हुआ, मैं उसके पीछे पड़ गया। रोज एक-दो बार उसके घरका चक्कर लगाने लगा कि मौका पाकर उसे राहपर लाऊं। आज शामको यह जानकर कि रमदिनवा कांटेपर ऊख बेचने गया है—शायद मौका मिल जाय, मैं उधरसे निकला। लेकिन वहां कोई दिखाई न पड़ा। सोचा, आजका दिन भी बेकार ही गया। हाथ मलता, किस्मतको रोता वापस लौटा। अभी थोड़ी ही दूर आ पाया हूंगा कि पास ही से 'झनझन' की आवाज आयी। जरा गौरसे देखा, तो मालूम हुआ कि कोई घास छील रही है। सोचा, इतने वक्त यहां घास छीलने कौन आयी है? शायद वही तो नहीं है! जरा आगे बढ़कर देखा, तो सचमुच वही थी। अब मुझे अपनी कामयाबीमें जरा भी शुबहा न रहा। मैं ऐसा मौका भला हाथसे कैसे जाने देता? थोड़ा और उसके पास जाकर मैंने कहा—'कुसमी, इतने वक्त तू घास छील रही है। क्यों, घरमें भूसा नहीं है क्या? चल-चल, हम तुझे एक खांच भूसा कुंवरजीके यहांसे उठवा दें।'

'हां-हां, तुमने बिलकुल ठीक कहा। फिर उसने क्या जवाब दिया?' कुंवरजीकी आंखोंमें उत्सुकता झलक पड़ी।

'अभी मेरी बात पूरी भी न हो पायी थी कि वह झमककर उठ खड़ी हुई और पास ही मुझे खड़ा देखकर कुछ डरी कि मैंने मुस्कराकर कहा—कुसमी डरती है क्यों?'

'वाह, भाई वाह! खूब कहा तुमने। फिर?' भोले कुंवरजी ख्याल ही में खिल पड़े।

'फिर तो मानो वह सिरपर सवार हो गयी। चनचनाकर कहा—जायं तोर मां-बहिनियां कुंवरजीके यहां भूसा लेवे। हम काहेके जाईं। आप तो जानते ही हैं, मेरी इतनी उम्र इनका नाज-नखरा देखने ही में बीती है। मैं समझ गया। जरा प्रेमसे बोला—कुसमी, तुम्हारी गाली भी कितनी मीठी मालूम होती है। भला कह न! ये नाजुक हाथ घास छीलनेके लिए हैं? धन्य है तुम्हारा भाग्य कि कुंवरजीकी नजर तुमपर पड़ी है। अब तुमको किस बातकी कमी है? जब जो चाहो, मुझसे कहो, मैं फौरन् इन्तजाम कर दूंगा।'

'हां, तो वह मान गयी न!' कुंवरजीको तो अपनी ही सूझ रही थी!

'हां सरकार, वह मान तो जाती ही, लेकिन इतनेमें रमदिनवा खब्बीस न जाने कहांसे 'कुसमी-कुसमी' चिल्लाने लगा। मैं तो बिलकुल नहीं डरा, लेकिन वह उसकी आवाज

सुनकर थरथराने लगी। मैंने चाहा कि उससे कहीं छिप जानेके लिए कहूं और खुद भी कहीं छिप जाऊं; और उसके लौट जानेपर सब निश्चित कर लूं, कि इतनेमें उसने मुझे देख लिया। अब क्या करता? मुझे भला आपके रहते क्यों किसीका डर हो? सोचा, जो आयेगा, देख लेंगे।'

'शाबाश, शाबाश! तो फिर—?' कुंवरजीने मानो अपने ही हाथों अपनी पीठ ठोंक ली।

'फिर वह पास आ गया।' उसने फिर कहना शुरू किया—'कुसमी उसे देखकर रोने लगी। भला वह रोती क्यों नहीं? शरम तो सबको होती है न हुजूर! अब क्या था, रमदिनवा गरम हो गया मुझपर। और सरकार, बिना कुछ पूछे-आछे लगा मुझे लगा-लगाकर आपको गाली देने। मुझसे जब नहीं सहा गया, तो मैंने कहा—अबे, कुंवरजीको गाली देता है? साले कुंवरजीको जानता नहीं। उन्होंने तुम्हारा क्या किया है? बस हुजूर, वह और भी बिगड़ गया, फिर उसने जो-जो आपके पूर्वजोंका बखान किया, हुजूरको क्या बताऊं। मेरा सिर खुद गड़ गया।' सचमुच उसका सिर झुक गया।

'ऐं, रमदिनवाकी इतनी हिम्मत!'

'क्या कहूं सरकार!' सिर लटकाये ही उसने कहा, जैसे सारा अपमान उसीका हुआ हो।

'अच्छा तो उस सालेको जेल भेजवाकर छोड़ूंगा। तब जानेगा कि कुंवरजीके अपमानके क्या माने होते हैं। बद-माश! जरा मुख्तार-आमको बुलाओ तो!' कुंवरजीके होंठ फरफराकर रह गये।

'नहीं हुजूर, ऐसे छोटे कामके लिए उन्हें तकलीफ देनेकी क्या जरूरत है? इसका उपाय तो हमने सोच लिया है। भला हमारे रहते आपके लिए किसीको कोई कष्ट क्यों उठाना पड़े? आपकी मरजी हो तो कहूं। आपका नमक जो खाया है सरकार।' उसने समझ लिया, लोहा गरम है, इस-पर अब हथौड़ेका प्रभाव पड़ सकता है।

'कहो-कहो, भला तुम्हारी बात मैं नहीं मानूंगा।' कुंवरजी फूलकर कुप्पा हो गये।

'मैंने सेवका अहीरसे कह दिया है कि आज ही रातको मौका पाकर सरकारका एक बैल खोलकर रमदिनवाके खूंटे-पर बांध आवे।'

'तो इससे क्या होगा?' कुंवरजी पूछ बैठे।

कुंवरजीकी बुद्धिपर उसे दया आ गयी। बोला—'आप सुबह होते ही बैल चोरी जानेकी रपट थानेमें लिखवा दें। बैल इधर रमदिनवाके यहां बरामद हो जायेगा। फिर उसे आप जेल ही में समझिये।'

कुंवरजी उछल पड़े, मानो उन्हें कोई बड़ी चीज मिल गयी। उन्होंने समझ भी लिया कि अब रमदिनवा जेलमें है और इसीलिए पूछा—'फिर कुसमी?'

'तब क्या हुजूर, बापके चले जानेके बाद बीमार मां और वह रह जायेगी घरमें। जब चाहें तब…।'

'शाबाश-शाबाश!' कहते-कहते कुंवरजी उससे लिपट गये।

'और हां, इसकी खबर मुख्तारआमको भी कर दें, ताकि वे सेवकाको बैल खोलते न रोकें।' सलाम कर धीरेसे वह बाहर निकल गया।

और जब बंगलेसे जरा दूर निकल आया, तो अपनेको और अधिक न रोक सकनेके कारण वह ठहाका मारकर हंस पड़ा और लगा भुनभुनाने—वाह, यह कुंवर भी क्या अजीब आदमी है? सीधे अगर कहता कि कुसमी मेरे बसकी नहीं, तो उबल पड़ता मुझीपर और शायद मारकर निकाल भी देता। और जब उल्टा-सीधा कुछ सुझा दिया, तो क्या खुश हो गया? ह-हा, क्या बेवकूफ बना। ह-हा! और उसकी हंसी क्षणमें ही बिजलीकी तरह चमककर अन्धकारमें विलीन हो गयी।

(९)

रातके ग्यारह बज चुके थे। कालिमाकी सम्राज्ञी रजनी बादलोंके कारण और भी काली हो गयी थी, मानो दुनियाके पापियोंसे कह रही हो—कलङ्कियो, डरो नहीं, जो चाहो कर लो, तुम्हारा कुछ न होगा, आज मुझमें तुम्हारी सारी कालिमा बटोर अपनेमें जज्ब कर लेनेकी शक्ति है। पापियोंने उसके वरदानके शब्दोंका स्वागत किया।

कुंवर इन्द्रजीत सिंहके बंगलेके सामने एक अस्थिर काली-काली छाया डोल उठी। धीरे-धीरे वह सशङ्कित छाया इधर-उधर ताकती, दबे पांवों आगे बढ़ी। फिर पगडण्डीसे होकर किनारेकी झाड़ियोंकी छायामें कुछ देरके लिए मिल गयी।

बादल गरज उठे। बिजली कड़क उठी। और वह वर्षाके पहलेकी सर्द हवा छू गयी कुसुमीकी मांके ज्वरसे उत्तप्त शरीरको। वह सिहर उठी—'कुसुमी, रे कुसुमी, पानी पड़ रहा है, बैलोंको भीतर बांध दे।'

कुसुमी मांके पांव दबाते-दबाते उसीके झिलंगे खटोलेके पास जरा झपक गयी थी। वह मांकी बात सुन चिहुककर उठ बैठी,—क्या है मां? सहमी-सी उसने पूछा।

पानी पड़ रहा है, बैलोंको भीतर बांध दे।

कुसुमी कुण्डी खोल बाहर निकल आयी। दरवाजेपर खड़ी हो हाथ बढ़ा उसने देखा, अभी बूंदें ही पड़ रही थीं। कपड़ा ऊपर चढ़ा वह बैलोंकी ओर बढ़ी कि 'छर्र-छर्र' बादल जमीनपर आ रहे। उसने एक बैल खोलकर छोड़ दिया और दूसरेको खोलने…

कि उस छायाने, जो झाड़ियोंमें विलीन हो गयी थी, हवाके एक झोंकेके साथ उसके घरमें प्रवेश किया। बुढ़िया टकुर-टुकुर दरवाजेकी ओर देख रही थी। 'कु…' वह बोलना ही चाहती थी कि वह छाया उसकी छातीपर चढ़ बैठी, और कदाचित् उसे ही कुसुमी समझ…कि मां चिल्ला उठी—भाग, भाग रे कुसुमी। और उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसीने उसका मुंह बन्द कर दिया।

लेकिन कुसुमी भागी—जान छोड़कर भागी, सशङ्कित पीछे देखती भागी, झाड़ियोंसे उलझती भागी, भागी और भागी, मानो सारा वायुमण्डल ही गला फाड़कर उससे कह रहा था—भाग-भाग रे कुसुमी। नहीं तो…।

और इसीलिए वह हृदयकी धड़कन संभाले, बिना कुछ सोचे-समझे भागती रही। और इतनी दूर तक भागती रही कि उसके पैर शिथिल हो गये और सांस उखड़ गयी। लेकिन फिर भी वह भागती रही। वह रुकना नहीं चाहती थी, शायद वह सोच रही थी कि रुकनेपर तरह-तरहके विचार मस्तिष्कमें आयेंगे, मानो उन विचारोंसे वह डर रही थी और इसीलिए वह भागी जा रही—भागी जा रही थी कि अचानक प्रकाशका एक गोला उसके मुंहपर आ पड़ा। उसके पैरोंको मानो भूमिने पकड़ लिया, वह रुक गयी। देखा—आगे थोड़ी दूरपर दो छायायें उसीकी ओर बढ़ रही हैं। उसने सकपकाकर शीघ्रतासे पास ही की झाड़ीमें घुसकर छिपना चाहा कि फिर वही प्रकाशका गोला उसके मुंहपर आ पड़ा। उसकी समझमें न आ सका कि वह क्या करे? झाड़ीमें घुसी और अपनेको समेट अपने ही में छिपानेकी-सी चेष्टा करने लगी कि वे छायायें पास आ गयीं, और फिर वही प्रकाशका गोला उसके शरीरपर। सामने देखा, लाल-लाल पगड़ी! वह और अधिक अपनेको न संभाल सकी।

(६)

'मुंशीजी, यह सिसकनेकी आवाज कहांसे आ रही है?'

'आपको मालूम नहीं, यही न वह लड़की है, जो कल रात सीतारामपुर घाटकी झाड़ियोंमें भागती पकड़ी गयी।'

'सीतारामपुर घाट!' मानो अहमदको कोई भूली बात याद आ गयी। कलमके सिरेको दांतोंसे दबाते हुए उसने कहा—जरा इसकी रिपोर्ट तो लाइये।

'रिपोर्ट, अरे साहब, यह तो एक अजीब लड़की है। पूछनेपर न तो कुछ बताती है, न कुछ कहती है। पूछते-पूछते परेशान हो गया, डांटा-डपटा भी; लेकिन कोई नतीजा न निकला, जैसे उसके मुंहपर ताला लग गया है। फिर रिपोर्ट क्या लिखता, सोचा, आप आ जायं, तो कुछ कार-रवाई की जाय।' मुंशीजी अहमदकी ओर देखते रहे।

'अच्छा, उसे यहां बुलवाइये।' अहमदने कहा।

मुंशीजी जानेको हुए, तो न जाने क्यों अहमद बोल पड़ा—'रुकिये, रुकिये, मैं ही चलता हूं।' और वह उनके साथ हो लिया।

हवालातमें पहुंचा। देखा, एक कोनेमें पीछेकी ओर मुंह किये करुणाके ढेरकी तरह एक लड़की गुटमुटाकर बैठी है। सिसक रही है और हर हिचकीपर उसका सारा शरीर कांप-सा जाता है।

अहमदने दर्द-भरी नजरसे उसकी ओर देखते हुए मुंशीजीसे कहा—जरा इससे इधर घूमनेके लिए कहिये तो।

लड़कीने मानो उनकी बात सुन ली। वह और आगे खिसकनेकी चेष्टा करने लगी, लेकिन आगे नहीं बढ़ सकी, दोनों ओरकी दीवारोंने उसे जकड़ दिया था। मुंशीजीने शासनके शब्दोंमें कहा—ए, इधर घूम, देख, दरोगाजी आये हैं।

डरके मारे उसकी हिचकी भी बन्द होने लगी, लेकिन टससे मस न हुई। दो-एक बार मुंशीजीने और रोब-दाब दिखलाया, लेकिन बेसूद। अब वे झुंझला-से गये। उसका

हाथ पकड़ अपनी ओर घुमाना चाहा कि अहमदने रोकते हुए कहा—नहीं, नहीं, ऐसा न कीजिये। रुकिये, मैं पूछता हूं।

और वह उसके पास जाकर जरा झुककर नरम शब्दोंमें बोला—'बहन, बताओ क्या बात है। डरो नहीं, बोलो!' उसके शब्दोंसे सहानुभूति टपक पड़ी, निस्सीम पीड़ा, जो इसके अभावमें अभी तक अवरुद्ध हो रही थी, फूट पड़ी। उसकी हिचकियोंका वेग बढ़ गया, मानो वेदनाको प्रवाहका रास्ता मिल गया। न चाहते हुए भी उसका हृदय उस 'बहन' कह सम्बोधित करनेवाले भाईकी ओर अनायास ही आकर्षित हो गया। वह अहमदकी ओर घूम गयी और मुंहपरसे घूंघट पीछेसे ऊपर खिसकाते, एक गहरी सांस लेते हुए चाहा कि सिर ऊपर उठाये, पर वह उठा न सकी।

'बहन, तुम कौन हो?'

और उसका सिर धीरेसे ऊपर उठा। आंखें चार हुईं। दोनोंकी आंखें चमक उठीं, जैसे कोई पुरानी सुखद स्मृति आ उनके हृदयोंको आलोकित कर गयी।

आश्चर्य-चकित हो वह कुछ कहना ही चाहता था कि मुंशीजीकी उपस्थितिने उसे ऐसा न करने दिया। हृदयके भावोंको छिपाते हुए उसने मुंशीजीसे जरा बाहर जानेके लिए कहा। वे चले गये।

'कुसमी!' अहमदने अबकी धीरेसे सम्बोधित किया।

कुसमी भी अहमदको पहचान चुकी थी। बहुत देर तक लगातार रोते-रोते उसके आंसू सूख गये थे। वे पुनः न-जाने कहांसे फफक पड़े। उसके पास अपना दुःख-मिश्रित हर्ष प्रकट करनेका दूसरा साधन ही क्या था? फिर भी वह बोल न सकी। अहमद उसके पास बैठ गया।

फिर उनमें बहुत देर तक बातें होती रहीं।

(७)

अहमद अभी हाल ही का कालेजसे निकला नवयुवक था। दुनियादारीसे बिलकुल अनभिज्ञ अहमदको अपने पिताकी कोशिशसे, जो स्वयं एक बड़े चलते दारोगा थे, पुलिस विभागमें नौकरी मिल गयी और ट्रेनिंगके बाद पहले-पहले वह सीतारामपुरके हलकेका दारोगा नियत हुआ। वह भोला-और भावुक था, पर उसे अपने कर्तव्यका ज्ञान था। बड़ी ईमानदारी और जिम्मेदारीसे वह अपना काम करता था। साथ ही घोड़ेकी सवारी और शिकारके बहाने प्रकृति-निरीक्षणकी ओर भी उसकी रुझान थी।

आजका दिन अहमदके लिए कठिन परीक्षाका था। शाम होनेको है, लेकिन अहमद अभी तक कुछ निश्चय नहीं कर पाया है। कुसमीके मुंह जबसे उसने उसकी कहानी सुनी है, संसारके जिस वीभत्स रूपसे आज उसका साक्षात्कार हुआ है, उसके ध्यान-मात्रसे ही वह एक बार कांप उठा है। वह सोच नहीं पाता कि मनुष्य मनुष्यके साथ इतना अत्याचार कर सकता है, निर्दयताके साथ किसी कोमल कलीको पैरोंसे रौंद सकता है। भावनाओं और कल्पनाओंके आईनेमें जो संसार इतना सुन्दर और आकर्षक प्रतीत होता है, वह इतना दूषित और घृणित भी हो सकता है। यदि सचमुच यह संसार ऐसा ही है, तो ये शाश्वत सौन्दर्यके चित्रकार, ये सात्विक प्रेमके पुजारी, ये सुन्दरतम जीवनके सन्देश-वाहक, ये अलौकिक आनन्दके सृजनकार, ये आत्मिक शान्तिके अन्वेषक और ये सत्यं, शिवं, सुन्दरम्के कलाकार निस्सन्देह दूसरे लोकके वासी होंगे। यह घृणित संसार उनका नहीं हो सकता—नहीं हो सकता!

और उसकी भोली भावनाओंको यह सोचकर मानो एक जबरदस्त ठेस लग गयी। वह मर्माहत-सा निराशाकी दृष्टिसे डूबते सूर्यकी मुड़ती किरणोंको पेड़ोंकी आड़से देखने लगा, और यह सोचकर कि कहीं उसका भी भावनाओंका सुनहला संसार इन्हीं किरणोंकी तरह अन्धकारमें विलीन न हो जाय, वह थर्रा उठा।

एक ओर ट्रेनिङ्ग जाते समयकी पिताकी प्रभावशालिनी बातें और पदकी सुनहली कड़ियोंकी झनकार उसके मस्तिष्कमें गूंज रही थीं और दूसरी ओर उस कोमल प्राणकी रक्षाकी अन्तर-प्रेरणा और भावुक हृदयका सुनहला स्वप्न उसके नेत्रोंके सामने नाच रहा था। सोचते-सोचते उसे ऐसा लगा, मानो कुसमी स्वयं देवीका रूप धारण कर उसे इस धर्म-सङ्कटसे मुक्ति दिलाने आयी है। हृदयने कहा—यह पहली परीक्षा है। यदि इसमें अनुत्तीर्ण रहे, तो फिर आत्मिक दुर्बलता ही हाथ रह जायगी। जीवनकी साधना खोकर जीना न जीना दोनों बराबर है। भावुक युवक भावुकताका मूल्य चुकानेके लिए तैयार हो गया।

(८)

दस बजे दिनका समय था। न्यायालयके सामने भीड़ लगी थी। बगलमें बस्ता दबाये लोग इधर-उधर तेजीसे आ-जा रहे थे।

न्यायालयके सामने आमके एक घने वृक्षके नीचे सीतारामपुर थानेके मुंशी और दो सिपाही बैठे थे। वे कुछ विकल-से मालूम पड़ते थे। थोड़ी-थोड़ी देरमें उनमेंसे एक-न-एक उठकर सीतारामपुरसे आनेवाली सड़ककी ओर दूर तक देखता और मुंह लटकाकर बैठ जाता। यह क्रम अभी चल ही रहा था कि न्यायालयसे पुकार हुई।

मुंशीजी बस्ता संभालते उठे कि एक सिपाहीने कहा—दारोगा साहब तो आये ही नहीं, उनके बिना हम क्या करेंगे?

'पुकार हो गयी, पहले तुम्हीं लोगोंकी तो गवाही होगी। इतनेमें वे आ जायेंगे। चलो-चलो।'

तीनों न्यायालयमें दाखिल हुए।

रामदीनके मुकदमेकी पेशी हुई। दोनों सिपाहियोंकी, जिन्होंने उसके यहां कुंवरजीका बैल बरामद किया था, गवाही हुई। मुकदमेका सारा दारोमदार अब अहमदपर ही रह गया था। मजिस्ट्रेटने दारोगाको तलब किया।

मुंशीजी सिर धुनते बाहर निकले। देखा, तो एक तांगे-पर अहमद आ रहा था। तांगेकी पिछली सीटपर परदा लगा हुआ था। उनकी समझमें कुछ न आया। सोचनेका समय भी नहीं था। दौड़कर अन्दर गये और मजिस्ट्रेटको इत्तिला दी—हुजूर, थानेदार साहब आ रहे हैं।

अहमद जल्दीसे अन्दर घुसा। मजिस्ट्रेटने घूरते हुए कहा—क्यों जनाब, आपके लिए कोर्ट बैठी रहेगी? कहां थे अब तक? जल्दी बयान दीजिये।

और अहमदने बयान देना शुरू किया। अभी पहला ही वाक्य कह पाया था कि मजिस्ट्रेटकी तीव्र दृष्टि उसपर पड़ी। मुंशी और सिपाही उसका मुंह देखने लगे।

'मालूम है, आप किसके सामने बोल रहे हैं?' भौंहें ताने मजिस्ट्रेटने अहमदसे पूछा।

'जी हां!' अहमदने दृढ़तासे कहा।

'आपपर झूठ बोलनेका मुकदमा चलाया जा सकता है।'

'हो सकता है।' अहमदने उसी स्वरमें कहा।

'फिर आपने ऐसा इस्तगासा क्यों दाखिल किया?'

'उस वक्त मुझे मालूम नहीं था। पीछे मालूम हुआ कि रामदीन बेकसूर है और सिर्फ उसे फंसानेके लिए ही लोगों-ने यह जाल रचा है।' अहमद एक ही सांसमें कह गया, मानो यह कहनेके लिए उसका दिल बेताब था। कठघरेमेंसे रामदीन अहमदकी ओर देख रहा था, जैसे कोई पुजारी अपने इष्टदेवको देखता है।

'लेकिन आप जिम्मेदार सरकारी मुलाजिम हैं। आपसे कोर्ट ऐसी उम्मीद नहीं रखती। आपने पूरी तहकीकात किये बगैर इस्तगासा क्यों दाखिल किया?' मजिस्ट्रेटने डांटते हुए पूछा।

'इसके लिए मैं बेहद शर्मिन्दा हूं।' सिर झुकाते हुए अहमदने कहा।

'शर्मिन्दा होने ही से कोर्टका काम नहीं चल सकता। आपकी बातोंसे साफ जाहिर है कि आपने एक तो झूठा इस्तगासा दाखिल किया और दूसरे अपने फर्जका गलत अंजाम दिया। इसलिए कोर्ट आपके खिलाफ झूठ बोलने और अपने फर्जको सचाईसे अंजाम न देनेके गुनाहमें वाजिब काररवाई करेगी। और रामदीन छोड़ा जाता है, क्योंकि उसपर अब कोई मुकदमा नहीं।' मजिस्ट्रेट साहब गुस्सेसे कांपते उठ खड़े हुए।

रामदीन यह सुनकर धकसे रह गया। मुंशी और सिपाहियोंको अहमदकी नादानीपर बेहद गुस्सा आ रहा था।

रामदीन कठघरेसे निकलते ही दौड़कर अहमदके पैरों-पर गिर पड़ा, जैसे कृतज्ञताके भारसे अपनेको संभाल न सका हो। अहमदने उसे उठाते हुए कहा—बाहर तांगेपर कुसुमी है। उसकी मां अस्पतालमें है। और तुम्हारे बैल उसकी चाचीके यहां मैंने भिजवा दिये हैं। और हां, अगर हो सके, तो कुसुमीको लेकर कहीं दूर चले जाना।' अहमद बिना रुके ही कह गया, मानो उसे इतना ही कहना था।

तांगा जा रहा था। कुसुमीकी आंखोंसे आंसू झड़ रहे थे। कौन जाने, वे आंसू दुःखके थे अथवा सुखके।

———

भारतीय युद्ध-कलामें मारक गैसोंका प्रयोग

श्री गणेशदत्त "इन्द्र"

ईसाकी बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें मारक गैसोंका नाम हम लोगोंके कानोंमें पड़ा था। हमने बड़े आश्चर्यसे इस समाचारको सुना और आविष्कारककी बुद्धिको जी खोलकर सराहा। अभी तक इस महायुद्धमें यद्यपि गैसोंका प्रयोग नहीं किया गया है, तथापि गत जर्मन युद्धमें इसको यदाकदा काममें लाया गया था। युद्ध-समाप्तिके बाद इन पचीस वर्षोंमें वैज्ञानिकोंने मारक गैसोंके आविष्कारमें कुछ भी उठा न रखा। वर्तमान युद्धका यह सबसे बड़ा और भयानक, किन्तु अन्तिम हथियार माना जा रहा है। सारा यूरोप क्या, एशिया, अमेरिका आदि सभी देश गैसोंके आतङ्कसे भयभीत हैं। राष्ट्र-सङ्घने गैसों द्वारा शत्रु-सेनाके नाशको अनुचित युद्ध-क्रिया माना है, किन्तु उसकी सुनता कौन है? राष्ट्र-सङ्घ एक मुर्दा संस्था माना जा चुका है, जिसका अब तो शरीर भी सड़-गल चुका है। आज संसारके सामने गैसें मृत्यु-दूतके रूपमें दिखाई पड़ रही हैं। यद्यपि धार्मिक दृष्टिसे गैसोंका प्रयोग गुरुतर पाप हो सकता है और शास्त्रोंमें इसके प्रयोगकर्ताको घोर नरकका विधान भी दिया जा सकता है, तथापि आत्म-रक्षामें केवल धर्मकी दुहाईसे काम चलना असम्भव है। आज धर्म मानव-जातिका एक खिलवाड़-मात्र है, जो तमाशेके रूपमें यथा समय काममें लाया जा सकता है।

आजका युग विज्ञानके सङ्घर्षका युग है। आजकी लड़ाईमें बल-पौरुष उतना अपेक्षित नहीं है, जितना कि मस्तिष्क-बल। विज्ञानने आज मृत्युकारक उपादानोंमें वृद्धि कर दी है, उनमें गैसोंका स्थान प्रमुख है। आज गोली और तलवारोंसे बचनेके लिए लोग उतने चिन्तित नहीं हैं, जितने गैसोंसे बचनेके लिए। गैसोंके मारक परिणामोंसे बचनेके लिए 'गैस-मास्क' का आविष्कार हुआ है। भारतमें नहीं, तो अन्य देशोंके छोटे-छोटे बच्चों तकको 'गैस-मास्क' (गैस प्रतिरोधक नकाब) पहनने और अपने प्राण बचानेकी शिक्षा दी जा चुकी है। ये नकाबें समय पड़नेपर कैसी सिद्ध होती हैं, यह तो भविष्यके गर्भमें है। क्योंकि किस राष्ट्रने कैसी गैस बनायी है, अभी तक एक-दूसरेको यह पता नहीं है। पता चल जाये, तो उसका महत्त्व ही नष्ट हो जाता है और वह आगे चलकर बेकार सिद्ध हो सकती है। भला ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो अपने आविष्कार और तद्विषयक गुप्त बातों-को प्रकट करके उसको निकम्मा बनने दे। गैसोंके बारेमें जब तक वे काममें नहीं लायी जातीं, केवल आनुमानिक बातें कही जा सकती हैं। जिनेवाकी अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास सोसायटी गैसोंके प्राणघातक परिणामोंसे लोगोंको बचानेके लिए अत्यन्त प्रयत्नशील है। परन्तु वह भी अभी तक अन्धकारमें है, क्योंकि उसे यह भलीभांति मालूम नहीं कि कौन देश किस प्रकारकी गैसोंका किस तरह प्रयोग करेगा?

पता चलता है कि ऐसे नृशंस आविष्कारमें जर्मनी सबसे आगे है। उसने विविध गैसें तैयार की हैं। उसका दावा है कि अभी वह अपने भयानक हथियारको काममें नहीं लाया है। यह हथियार गैसोंके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं मालूम होता। सुना गया है कि अभी तक उसने चार प्रकारकी गैसोंका आविष्कार किया है। (१) क्लोरो एसेटो फेनोल गैस (Chloro Aceto Phenol Gas), (२) फोसजेन गैस (Phosgene Gas), (३) क्लोराइन गैस (Chlorine Gas) और चौथी है, मस्टर्ड गैस (Mustard Gas)। इन गैसोंको क्रमशः ह्वाइट क्रास, ब्ल्यू क्रास, ग्रीन क्रास और यलो क्रास भी कहते हैं। ह्वाइटका गुण है आंखोंमें आंसू आना, दर्द होने लगना और अन्तमें अन्धे हो जाना। इसके प्रयोगसे शत्रु-पक्षके लोग अन्धे होकर निकम्मे बन जाते हैं। ब्ल्यू और ग्रीन दोनों प्रकारकी गैसें फेफड़ोंपर अपना प्रभाव करती हैं। सांस घुटने लगती है। ग्रीनके प्रयोगसे उसका चल जाता है और वजनमें भारी होनेके कारण फेफड़ोंकी गतिको रोक देता है। मनुष्य नकाब लगाकर भी इससे अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ हो जाता है। यह भारी है, अतएव सुरङ्गोंमें जाकर छिपे बैठे मनुष्योंके पास भी यह पहुंच जाती है और उनके प्राण ले लेती है। यलो गैस सबसे अधिक घातक है। यह रोम-छिद्रों द्वारा

शरीरमें प्रवेश करके मनुष्यको मार डालती है। मोटेसे मोटे और मजबूत कपड़ेकी पोशाक भी इसके प्रभावको रोकनेमें असमर्थ होती है। इनके अतिरिक्त और भी गैसोंके नाम सुने जाते हैं, जैसे 'ब्रोनो बेन्जोल क्लोराइड' (Brono Benzol Cloride) और 'लेवी साइट' (Lewi Site) प्रभृति। पहली क्षार-सरीखी तीव्र गन्धवाली गैस है और दूसरी जङ्गली पुष्प-विशेषकी गन्धवाली है।

जर्मनी आदि देशोंके विविध आविष्कारोंकी बातें सुनकर हम लोग आश्चर्यचकित होने लगते हैं, किन्तु मैं यह बताना चाहता हूं कि आजसे लगभग २२०० वर्ष पूर्व अर्थात् ईस्वी सन्‌से ३०० वर्ष पूर्व भारतको यह गैस बनानेकी विद्या भली भांति ज्ञात थी। आचार्य विष्णुगुप्त (चाणक्य) लिखते हैं :—

"चातुर्वर्ण्यरक्षार्थमौपनिषिदिकमधर्मिष्ठेषु प्रभुञ्जीत। कालकूटादि विष वर्गः......सत्राजीविनश्च रात्रिचारिणोऽग्नीविनश्चाग्नि निधानम्।"

राजाको उचित है कि प्रजाकी रक्षाके लिए विषोंका प्रयोग करे और यह काम वने जङ्गलोंमें रातको घूम-घूमकर जीविका करनेवालोंसे या आग लगानेवालोंसे करा दे।

"चित्रभेक कौण्डियन्यक कृकण पञ्चकुष्ट शतपदी चूर्णमुच्चिदिङ्गकंबलीशतकन्देध्म कृकलासचूर्ण गृहगोलिकान्धाहिक कृकण कपूतिकीट गोमारिका चूर्णं भल्लातकावल्गुकारसयुक्तं सद्यः प्राणहरमेतेषां धूमः।"

चितकबरा मेढक, कौण्डिन्यक कीड़ा, जङ्गली तीतर, कूटका पञ्चाङ्ग, कानखजूरा, इन सबका चूर्ण भिलावा और बावचीके रसमें मिलाकर शत्रु-सेनामें धुआं कर दिया जाय, तो तत्काल मृत्यु होने लगेगी। या उच्चिदिङ्ग कीड़ा, शतावरि, जमीकन्द और गिरगिटका चूर्ण भिलावा एवं बावचीके रसमें भावना देकर चूर्ण बना ले, इसकी धूनी तत्काल प्राण ले लेती है। अथवा छिपकली, दुमुंही सांप, जङ्गली तीतर, पूतिकीड़ा, गोमारिका कीड़ाके चूर्णको भिलावा और बावचीके रसकी भावना देकर उसकी धूनी देनेसे जिन-जिनके फेफड़ोंमें वह धुआं पहुंच जायगा, तत्काल मर जायेंगे।

"शतकर्मोच्चिदिङ्ग करवीर कटुतुम्बी मत्स्यधूमो मदनकोद्रवपलालेन हस्तिकर्णपलाशपलालेन, वा प्रवातानुवाते प्रणीतो यावच्चरति तावन्मारयति॥"

शतावरि, कपूर, अगर, कस्तूरी, कङ्कोलका घिसा हुआ लेप, उच्चिदिङ्ग, श्वेत कनेरकी जड़, कडुवी तूंबी और मछलीका धुआं या इनका चूर्ण धतूरा, कोदों, धनिया, तूड़ा या पलाशके पत्तोंके चूर्णके साथ हवाके रुखपर शत्रु-सेनापर उड़ाया जाय, तो जहां तक वह पहुंचेगा, वहां तकके प्राणी मर जायेंगे।

"पूतिकीटमत्स्यकटुतुम्बशितकर्दमेन्द्रगोपचूर्णं पूतिकीट क्षुद्राराला हेमविदारी चूर्णं वा वस्तश्रृङ्गक्षुरचूर्णयुक्तमन्धीकरो धूमः।"

ह्वाइट क्रासके समान अन्धा बनानेवाले योगका विधान भी देखिये—पूतिकीट (एक कांटेदार कीड़ा), मछली, कड़वी तूम्बी, शतावरि, कपूर, अगर, बीरबहूटीका चूर्ण—अथवा पूतिकीट, छोटी कटेरी, राल, धतूरा और विदारी कन्दका चूर्ण बकरेके सींग और खुरके साथ चूर्ण बनाकर धुआं देनेसे, जिनकी आंखों तक धुआं पहुंचेगा, सब अन्धे हो जायेंगे। और देखिये—

"पूतिकरञ्जपत्रक हरितालमनःशिला गुञ्जारक्त कार्पासपललान्या स्फोटकाच गोशकृद्रसपिष्टमन्धीकरो धूमः। सर्प निर्मोकं गोश्वपुरीषमन्धाहिक शिरश्चान्धी करो धूमः।"

कांटेदार करञ्जवा, पत्रक, हरताल, मेनशिल, घुंघची, लाल कपास और धान्यकाण्ड, इन सब वस्तुओंको आखकाच और गोबरके रसमें पीसकर चूर्ण बनाकर धुआं दिया जाये, तो जिनकी आंखोंमें धुआं लगेगा, अन्धे हो जायेंगे। अथवा सांपकी केंचुली, गोबर, घोड़ेकी लीद और दुमुंही सांपके सिरका चूर्ण करके धुआं दिया जाये, तो शत्रु तत्काल अन्धा हो जायेगा। और भी भयानक प्रयोग देखिये—

"कालीकुष्ठनड्शतावरीमूलं सर्पप्रचलाक कृकण पञ्चकुष्ठ चूर्णं वा धूमः पूर्वकल्पेनार्द्रशुष्कपलालेन वा प्रणीतः संग्रामादवस्कन्दन संकुलेषु कृतं तेजनोदकाक्षि प्रतीकारैः प्रणीतः सर्वप्राणिनां नेत्रघ्नः।"

चकोतरा, कूठ, नरसल और शतावरि, इन सबकी जड़का चूर्ण या सांप, मोरकी पूंछ, जङ्गली तीतर और कूठके पञ्चाङ्गका चूर्ण धतूरा, कोदों, पलाल, या धनिया पलाश पलालके साथ मिलाकर जो चूर्ण तैयार किया जाये, उसे लड़ाईमें और रात्रिके आक्रमणके समय विशेषतः धुआं दिया जाये, तो आंखें फौरन् फूट जायेंगी। परन्तु जो धूनी दे, उस मनुष्यको

बहुत संभलकर रहना चाहिए। अन्यथा उसकी आंखें भी तत्काल फूट जायेंगी। आचार्य चाणक्यने नेत्र-रक्षाका उपाय भी लिखा है—"...श्लेष्मातककपित्थदन्तिदन्तशठगोजीशिरीष पाटलीबलास्योनाक पुनर्नवाश्वेतावरणक्काथयुक्तं चन्दनसाला-वृकी लोहितयुक्तं तेजनोदकं...विष प्रतीकारः।"

लिसोड़ा, कबीट, जमालगोटा, जंबीरी, गोभी, सिरस, काला पाटल, खरेटी, सोनापाठा, पुनर्नवा, शराब और वरनावृक्षकी त्वचा लेकर काढ़ा बनावे। इसमें चन्दन और गीदड़ीका खून मिलाकर 'तेजनोदक' तैयार कर ले। इस जलसे आंखें धो डालनेसे उक्त धूनीका प्रभाव आंखोंपर नहीं हो पाता।

"पारावत प्लवक क्रव्यादानां, हस्ति नर वराहाणां च मूत्र पुरीषं कासीस हिंगु यवतुषकणतण्डुलाः कार्पास कुटज कोशातकीनां च बीजानि गोमूत्रिका भाण्डीमूलं निम्ब शिग्रु-फणिज्झकाक्षीब पीलुक भङ्गः सर्प शफरी चर्म हस्तिनख श्रृङ्ग चूर्ण मित्येप, धूमो मदनकोद्रवपलालेन हस्तिकर्ण पलाश-पलालेन वा प्रणीतः प्रत्येक शोमावच्चरति तावन्मारयति।"

कबूतर, बतख, गीध, हाथी, मनुष्य और सुअरका मल-मूत्र, कसीस, हींग, जौका छिलका, टूटे चावल, कपास, कुटज, कड़वी तोरईके बीज, गोमूत्रिका घास, मजीठकी जड़, नीम, सहजना, सफेद माखा काक्षीव वृक्ष और पीलू इन पांचों वृक्षोंकी छाल सर्प और मछलीकी चर्बी, हाथीके नाखून और दांतोंका चूर्ण, धतूरा, कोदों और धानके पलाल या धनिया, ढाक और पलालके साथ हवामें उड़ाया जाये, तो जहां तक वह पहुंचेगा, वहां तक लोगोंको मार डालेगा।

"कृकलास गृह गोलिका योगः कुष्ठकरः।"

गिरगिट और छिपकलीके चूर्णकी धूनी कोढ़ उत्पन्न करती है। और

"कृतकण्डल कृकलास गृहगोलिकान्धाहिक धूमो नेत्रवध-मुन्मादं च करोति।"

कृतकण्डल, गिरगिट, छिपकली और दुमुंही सांपके चूर्णका धुआं शत्रु-सेनामें कर देनेसे लोग पागल हो जायेंगे।

इस भांति अनेक प्रयोग आचार्य चाणक्य-प्रणीत उपलब्ध हैं। इनसे सिद्ध होता है कि युद्धके समय शत्रु-नाशक गैसोंका प्रयोग करनेका विधान हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें है। यह बात और है कि इनका प्रयोग बहुत ही कम किया जाता था। धार्मिक व्यक्ति इनका प्रयोग करते ही नहीं थे, हां, अधार्मिक (राक्षस) इनको काममें लाते थे। रावण आदि द्वारा उनके युद्धमें इन गैसोंको काममें लानेका जिक्र हमारे इतिहासोंमें मिल जाता है। सारांश यह कि गैसोंका प्रयोग भारतके लिए कोई नयी बात नहीं है। जब यूरोप अपनी शैशवावस्थामें अज्ञान था, उस समय आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य तक्षशिलाके विश्व-विद्यालयमें बैठा इन आविष्कारोंको लिपि-बद्ध कर रहा था। इन सब बातोंको देखते हुए हम सगर्व कह सकते हैं कि

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वंस्वंचरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।"

———



हिटलर-अधिकृत देश और उनके पदच्युत शासक

श्री गौरीशङ्कर ओझा

वर्तमान युद्धके मूल कारणको जब हम खोजते हैं, तो हमारी दृष्टि सहज ही वर्सैलीजकी उस सन्धिकी ओर जाती है, जिसके अनुसार जर्मनी और उसके साथी पंगु और असन्तुष्ट कर दिये गये थे। आज यूरोपके महान् चित्रकार हिटलर और मुसोलिनी यूरोपके मानचित्रको नवीन रूप देनेमें अग्रसर हैं। उन्होंने यूरोपका वर्तमान युद्ध वर्सैलीजकी ही सन्धिको नष्ट करनेके लिए प्रारम्भ किया है। इसलिए इस युद्धमें एक पक्ष है वर्सैलीज-विरोधी जर्मनी और इटलीका तथा दूसरा है उस सन्धिके पक्षपाती ब्रिटेन और फ्रान्सका। इनमेंसे फ्रान्स तो परास्त होकर उस अन्यायमूलक सन्धिका प्रायश्चित्त कर रहा है और ब्रिटेन अभी तक अमेरिकाकी सहायतासे जर्मनी, इटली तथा उनके साथी अधीन देशोंके विरुद्ध डटा हुआ है। इस युद्धमें अभी तक वर्सैलीज-विरोधी पक्ष ही प्रबल रहा है। जर्मनीकी उस शक्तिने, जो गत महायुद्धके बाद अत्यन्त क्षीण कर दी गयी थी, वर्तमान युद्धमें अपने आश्चर्यजनक चमत्कारोंसे संसारको चकित कर प्रायः समस्त यूरोपपर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया है। जब हम विगत महायुद्धकी स्थितिसे वर्तमान युद्धकी अवस्थाकी तुलना करते हैं, तो एक महान् अन्तर दिखलाई देता है। जेकोस्लोवेकिया, आस्ट्रिया, पोलैण्ड, नार्वे, डेनमार्क, बेलजियम, हालैण्ड, फ्रान्स, रूमानिया, बलगेरिया, युगोस्लाविया और ग्रीस आदि लगभग एक दर्जनसे अधिक छोटे-बड़े देश आज जर्मनीके अधिकार और नियन्त्रणमें हैं। इनके अतिरिक्त स्पेन, स्वीडन, स्विटजरलैण्ड, फिनलैण्ड, टर्की तथा बाल्टिकके छोटे देश भी जर्मनीके ही प्रभावमें हैं और इनके समस्त उत्पादन-साधन भी जर्मनीके लिए उपलब्ध हैं। इस प्रकार जर्मनीकी स्थिति इतनी अधिक सुदृढ़ और शक्तिशाली है कि इस समय रूसके भी युद्धमें उतर आनेसे उसे परास्त करनेमें वर्षों तक युद्ध चालू रहे, तो कोई आश्चर्य नहीं। इस युद्धमें अभी तक कई देशोंके शासकोंको अपना अस्तित्व नष्ट कर देना पड़ा, कई राजाओंको अपने प्राण बचाकर भाग जाना पड़ा अथवा आत्म-समर्पण कर देना पड़ा है। यूरोपके जिन देशोंमें जनताके प्रतिनिधियोंकी सहायतासे राजा शासन करते थे, वे पूर्णतया जर्मनीके नाजी शासनके अधीन अपना भविष्य अनिश्चित और अन्धकारपूर्ण देख रहे हैं। ऐसे देश नार्वे, डेनमार्क, हालैण्ड, बेलजियम, रूमानिया, बलगेरिया, ग्रीस और युगोस्लाविया हैं। इनके शासनमें किसी एक विशेष दलका प्रतिनिधित्व रहनेपर भी सत्ता राजाके नामपर ही चलती है। इन राजतन्त्रवादी तथा प्रजातन्त्रवादी देशोंकी स्थिति भी शासकोंकी मनोवृत्तियोंके कारण भिन्न-भिन्न समयोंमें परिवर्तित होती रही है; इन परिवर्तनोंका यूरोपके अधिकांश इतिहासमें महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

डेनमार्क—मध्य यूरोपमें उत्तरकी ओर डेनमार्क कृषि-प्रधान देश है। यह जैटलैण्ड, जीलैण्ड, फुनेन, लेलैण्ड, वर्नहम तथा अन्यान्य छोटे-बड़े द्वीपोंके समूहको लेकर बना है। इसके उत्तर तथा पूर्वमें बाल्टिक सागर, पश्चिममें उत्तर सागर और दक्षिणमें जर्मनी है। इसका क्षेत्रफल १६,५७५ वर्गमील और जन-संख्या ३७ लाखसे कुछ अधिक है। यहांसे दूध, मक्खन, मांस और अण्डे बाहर भेजे जाते हैं। अपनी सहकारी समितियों द्वारा खेती करनेके कारण यहांके किसान यूरोपके सबसे अधिक सम्पन्न किसान हैं। डेनमार्ककी राजधानी कोपनहेगन एक छोटे द्वीपपर अवस्थित है। डेनमार्क छोटा होनेपर भी अपने अथक परिश्रम, साहस और चतुरताके कारण यूरोपका एक अति समृद्ध देश है। पांचवीं शताब्दीमें स्कैण्डीनेवियाके 'डेन' लोग यहां आकर बस गये, इसलिए यह डेनमार्क कहलाता है। सन् १३९७ से डेनमार्क स्कैण्डीनेवियाके नार्वे तथा स्वीडन देशोंके साथ सम्मिलित हो गया और कुछ काल तक तीनोंका शासन एक ही राजा करता रहा। नार्वेके साथ तो यह सन् १८१४ तक रहा, फिर डेनमार्क एक अलग राज्य हो गया। सन् १८६४ में जर्मनीके चाणक्य प्रिन्स बिस्मार्कने डेनमार्कपर आक्रमण किया और उसके श्लेसविग तथा हालस्टीन प्रदेशोंको अपने अधिकारमें कर लिया, तबसे डेनमार्क सदा यूरोपकी राजनीतिमें तटस्थ रहता आया है। गत महायुद्धमें भी यह तटस्थ था; किन्तु

कैसरके दबावमें पड़कर पासके समुद्रमें इसे जर्मनीको कुछ सुविधायें देनी पड़ीं। उसकी इस विवशताको मित्र-राष्ट्रोंने भी स्वीकार किया और १९१८ में वर्सेलीजकी सन्धिके अनुसार उत्तरी श्लेसविगका कुछ प्रदेश, जो पहले डेनमार्कका था, उसे वापस मिल गया। डेनमार्कका यूरोपमें फैरो व आइसलैण्ड तथा पश्चिमी गोलार्धमें ग्रीनलैण्ड नामक द्वीपोंपर भी अधिकार है। इनमेंसे ग्रीनलैण्ड तथा फैरो सीधे डेन-नरेशके नियन्त्रणमें हैं और आइसलैण्डमें पृथक् पार्लमेण्ट है और उसे आन्तरिक शासनमें पूर्ण स्वतन्त्रता है।

आजकल डेनमार्कके राजा क्रिश्चियन दसवें हैं। इनका जन्म २६ सितम्बर सन् १८७० में हुआ और १४ मई १९१२ में ये अपने पिताकी मृत्यु होनेपर राजगद्दीपर बैठे। वर्तमान यूरोपीय नरेशोंमें यह ऊंचाईमें सबसे लम्बे हैं। अपनी उदार नीतिके कारण राज्यमें इनका बड़ा मान है। डेनमार्कका शासन यह अपने मन्त्रियोंसे मिलकर करते हैं। विधान बनानेका अधिकार 'रिगस' के, जो यहांकी पार्लमेण्टका नाम है, हाथमें है। यह दो भागोंमें बंटी हुई है। 'अपर' में ६६ और 'लोअर' में ११४ सदस्य हैं। शासन-कार्यकी सुविधाके लिए देश १६ जिलोंमें बंटा हुआ है।

वर्तमान युद्धमें डेनमार्कने तटस्थ रहनेकी घोषणा की थी और युद्ध प्रारम्भ होनेके पहले जर्मनीकी उससे अनाक्रमण-सन्धि भी हुई थी। किन्तु ब्रिटेन द्वारा जर्मनीके यातायातको सर्वथा रोकनेके लिए नार्वेके समुद्रमें सुरङ्गें बिछायी गयीं। इस कारण जर्मनीको उत्तरी समुद्र तथा एटलाण्टिकके व्यापार-मार्गपर अपना नियन्त्रण रखनेके लिए नार्वे और डेनमार्कपर अधिकार करना आवश्यक हो गया। इस कारण ९ अप्रैल १९४० के प्रातःकाल जर्मन बेड़े और सेनाने वायुयानोंकी सहायतासे बिना रक्तपात किये डेनमार्ककी राजधानी कोपनहेगनपर दो घण्टेमें ही अधिकार कर लिया और दो दिनमें सारे देशको हथिया लिया। अपनी छोटी सेना द्वारा जर्मनीकी विशाल सेनाका सामना करना व्यर्थ समझ राजा क्रिश्चियन और उसके मन्त्रिमण्डलने रक्तपात कराये बिना आत्म-समर्पण कर अपने देशपर जर्मनीका संरक्षण स्वीकार कर लिया। आजकल डेनमार्कका राजा और गवर्नमेण्ट पूर्णतया नाजियोंके शासनाधीन है और राजा क्रिश्चियन अपने ही देशमें केवल नाम-मात्रके वेतन-भोगी राजा हैं।

नार्वे—नार्वे और स्वीडनको एकत्र स्कैण्डिनेवियन प्रायद्वीप कहते हैं। नार्वे इस प्रायद्वीपके पश्चिममें है। यह उत्तरसे दक्षिण तक ११६० मील लम्बा है और कहीं-कहीं यह केवल २० मील ही चौड़ा है। केम्प्रोलिन पहाड़ नार्वेको स्वीडनसे पृथक् करता है। इसका क्षेत्रफल सवा लाख वर्ग-मील और जन-संख्या २८ लाख है। ओसलो राजधानी है। नार्वेमें लोहे तथा निकेलकी खानें हैं। मछली, लकड़ी, लोहा और कागज यहांसे विदेशोंको भेजे जाते हैं।

यहांका प्राचीन राज्य दसवीं शताब्दीमें स्थापित हुआ था। सन् १३९७ में यह डेनमार्क तथा स्वीडनके साथ मिल गया और सन् १८१४ से यह केवल स्वीडनके साथ रहा; किन्तु सन् १९०५ में अपने इच्छानुसार एक समझौते द्वारा दोनों राज्य फिर अलग हो गये और डेनमार्कके राजकुमार कार्लको सातवें हाकनके नामसे यहांकी राजगद्दीपर बैठाया गया। यह डेनमार्कके राजा क्रिश्चियनके चचेरे भाई हैं। इनका विवाह सप्तम एडवर्डकी पुत्री तथा स्वर्गीय सम्राट् पञ्चम जार्जकी छोटी बहन राजकुमारी माडसे सन् १९०६ में हुआ था। अतएव अपनी वैदेशिक नीतिमें स्कैण्डीनेवियाके अन्य देशों—डेनमार्क, स्वीडन तथा फिनलैण्डसे सहमत रहते हुए भी नार्वे ब्रिटेनका पक्षपाती रहा है। वैधानिक राजतन्त्रसे देशका शासन-कार्य होता है। राजा ही प्रधान सेनापति है। वह किसी 'बिल' को दो बार अस्वीकार कर सकता है; किन्तु यदि पार्लमेण्टने उसे तीसरी बार पास कर दिया, तो उसे स्वीकार करनेके लिए राजा बाध्य है।

ब्रिटेन द्वारा जर्मनीकी नाकेबन्दीको और अधिक सख्त करनेके लिए ब्रिटेनने नार्वेके तटस्थ समुद्रमें सुरङ्गें बिछा दीं, जो अन्तर्राष्ट्रीय विधानके अनुसार एक तटस्थ राष्ट्रकी तटस्थता भङ्ग करना था। जर्मनीको यह असह्य हो गया; क्योंकि नार्वे द्वारा ही स्वीडनका लोहा जर्मनी पहुंचता था। इस कारण जर्मनीकी जल, स्थल और वायु-सेनाने आश्चर्यजनक तीव्रगतिसे डेनमार्कके साथ ही नार्वेपर भी आक्रमण कर दिया और वहांके प्रमुख बन्दरगाह बर्गन, ट्राण्डहीम और नारविक आदिपर अधिकार करनेके साथ ही नार्वेकी राजधानी ओसलोको भी ले लिया। किन्तु डेनमार्क-जैसा हाल यहां नहीं हुआ, राजा हाकन तथा उसके मन्त्रिमण्डलने जर्मनीके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। ब्रिटेन

और फ्रान्सने भी अपनी सेनायें नार्वे भेजीं; किन्तु अन्तमें मित्र-सेनाओंको परास्त होकर वापस लौटना पड़ा और नार्वेपर पूर्णतया जर्मनीका अधिकार हो गया। राजा हाकनको इंगलैण्ड भाग जाना पड़ा, जो आजकल जर्मनीके विरुद्ध अपने देशको स्वतन्त्र करनेके लिए ब्रिटेनका साथ दे रहे हैं।

हालैण्ड—हालैण्ड यूरोपीय महाद्वीपके पश्चिमोत्तर किनारेपर बेलजियमके उत्तरमें स्थित है। इसका क्षेत्रफल १२,५७९ वर्गमील और जन-संख्या ८७ लाख है। देशका अधिकांश भाग समुद्रकी सतहसे नीचा है। बड़े-बड़े बांध बनाकर इस देशकी समुद्रसे रक्षा की जाती है। समुद्रसे नीचा होनेके कारण ही हालैण्डका दूसरा नाम नीदरलैण्ड है। यहांके निवासी डच कहलाते हैं। ये बड़े साहसी, मेहनती और व्यापार-वृत्तिके होते हैं। यहांकी उपजमें गेहूं, जौ, आलू और चुकन्दरकी प्रधानता है। पशु-पालन भी यहांका विशेष व्यवसाय है और कई देशोंको यहांसे मक्खन भेजा जाता है। यहांकी राजधानी हेगमें ही संसार-प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय है। डच लोग श्रेष्ठ नाविक माने जाते हैं। किसी समय हालैण्डकी समुद्री शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी।

हालैण्ड पहले बरगण्डीके ड्यूकके अधीन था; किन्तु बादमें यह हेप्सबर्ग-वंशके अधिकारमें आया। सन् १६६७ में हालैण्डके राजा चार्ल्स द्वितीयके समय हालैण्डको ब्रिटेन और फ्रान्सकी सम्मिलित जल सेना और स्थल-सेनासे पराजित हो जाना पड़ा और देशके कई भागोंपर फ्रान्सने अधिकार कर लिया। इसी समय देशमें आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। इस पराजयके कारण जनताने राजा चार्ल्सको हटाकर आरेंज वंशके विलियमको राजा बनाया। तबसे अब तक इसी राज-घरानेका यहां शासन चला आ रहा है। हालैण्डकी रानी विल्हेमिना इसी वंशकी हैं। इनकी अवस्था ६० वर्षसे ऊपर है। अपने पिता विलियम तृतीयकी मृत्यु होनेपर दस वर्षकी अवस्थामें ही विल्हेमिना महारानी बन गयी थीं। गत महायुद्धके बाद जनताने इन्हें "राष्ट्र-माता"की उपाधिसे सम्मानित किया था।

मैक्लिनबर्गके राजकुमार हेनरीसे बीस वर्षकी अवस्थामें विल्हेमिनाने विवाह किया। सन् १९०९ में इनके राजकुमारी जुलियानाका जन्म हुआ, जो इकलौती होनेके कारण राजगद्दीकी उत्तराधिकारिणी है। रानी विल्हेमिनामें शासन-योग्यता, नीति-निपुणता, विशाल अनुभव और अटल दृढ़ता प्रधान गुण हैं। गत महायुद्धमें जर्मनीके पराजित होनेपर जब जर्मनीके स्वर्गीय सम्राट् कैसर विलियम भागकर हालैण्ड पहुंचे, तब रानी विल्हेमिनाने ही उन्हें राजाश्रय दिया और मित्र-राष्ट्रों द्वारा उनपर अभियोग चलानेके लिए जब उनसे ब्रिटेनने प्रस्ताव किया, तब रानी विल्हेमिनाने उस प्रस्तावको घृणापूर्वक ठुकरा दिया। अन्तमें ब्रिटिश प्रधानमन्त्री लायड जार्जको अपनी कुचेष्टा त्याग देनी पड़ी थी।

जब राजकुमारी जुलियानाका विवाह जर्मन राजकुमार बर्नहीर्डसे हो रहा था, उस अवसरपर हिटलरने कहा कि जर्मनीका राष्ट्रीय झण्डा राजमहलपर फहराना चाहिए। महारानीके इसे अस्वीकार करनेपर हिटलर जब क्रुद्ध हो गया, तब महारानीने लिखकर भेजा—'यह मेरी पुत्रीका विवाह है, और उस व्यक्तिके साथ, जिससे वह प्रेम करती है; न कि नीदरलैण्ड्सका विवाह जर्मनीसे हो रहा है।' जुलियानाके विवाहके बाद हालैण्डके भावी उत्तराधिकारीके रूपमें पुत्र-लाभकी कामना समस्त देशने की; किन्तु उनकी दोनों सन्तानें लड़कियां ही हुईं, जिनके नाम बैटरिक्स और ईरेन हैं। रानी विल्हेमिनाकी वैयक्तिक सम्पत्ति २० करोड़ पौण्ड है। हालैण्डके वाणिज्य-व्यापारको समझनेकी उनमें बड़ी क्षमता है। हालैण्डपर जर्मनीका अधिकार होनेके पूर्व डच महाजनोंके पास ६ अरब डालरका सोना, विदेशी सम्पत्ति और विनिमयका माल था। इतना धन यूरोपके अन्य किसी भी देशके पास नहीं है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिकामें ही उनका लगभग एक अरब डालर लेन-देनमें लगा हुआ है। इतना धन ब्रिटेनको छोड़कर संसारके अन्य किसी भी देशका संयुक्त राष्ट्रमें नहीं है।

नीदरलैण्ड्स एक वैधानिक राजसत्ता है, जिसका शासन एक पार्लमेण्ट और उससे सम्बद्ध सरकार करती है। कानूनन् रानी विल्हेमिनाको यूरोपके अन्य शासकोंकी अपेक्षा कहीं अधिक अधिकार प्राप्त हैं। शासनके प्रत्येक मामलेमें उन्हींकी राय अन्तिम होती है।

१० मई, १९४० को पौ फटनेसे पहले ही जर्मनीने यह बहाना कर हालैण्डपर आक्रमण कर दिया कि उसपर शत्रु-

द्वारा अधिकार करनेकी सम्भावना है। इसलिए हालैण्डपर जर्मनीका संरक्षण होना आवश्यक हैं। आक्रमण एक साथ ही हालैण्ड, बेलजियम और लक्समबर्गपर किया गया था और जर्मन सेना विद्युत्वेगसे बाढ़की तरह तीनों देशोंमें फैल गयी। जर्मनीकी बख्तरबन्द यान्त्रिक सेनाका आक्रमण इतना अधिक प्रबल था कि पहले पांच दिनोंमें ही डच सेनाके एक लाखसे अधिक सैनिक मृत्युके मुखमें समा गये। राटर्डम समेत अनेक नगर बम-वर्षाके कारण तहस-नहस कर दिये गये। पांचवें दस्तेके लोगों और पैराशूटी सैनिकोंने सर्वत्र अव्यवस्था मचा दी। रानी विल्हेमिना अपनी पुत्रीके साथ युद्धके तीसरे दिन ही देश छोड़ लन्दन चली गयीं। इस असहाय अवस्थामें नागरिकोंकी रक्षाकी दृष्टिसे हालैण्डके प्रधान सेनापतिने आत्म-समर्पण कर दिया और हालैण्डपर नाजियोंका निरंकुश शासन स्थापित हो गया। आजकल नाम-मात्रकी डच-सरकार लन्दनमें ब्रिटेनकी सहायतासे अपने प्रधान उपनिवेश डच ईस्ट इण्डीजका शासन कर रही है और जापानसे उसकी रक्षाका प्रबन्ध करनेके लिए प्रयत्नशील है।

बेलजियम—हालैण्डके दक्षिणमें बेलजियम है, जिसके पश्चिममें उत्तर सागर, पूर्वमें जर्मनी और दक्षिणमें फ्रान्स है। इसका क्षेत्रफल ११७७५ वर्गमील और ८३ लाख जन-संख्या है। छोटे क्षेत्रफल और अधिक जन-संख्याके कारण यह संसारका बहुत घना आबाद देश है। बेलजियम उद्योग-प्रधान देश है। यहांकी उपजमें आलू प्रधान है। खानोंसे ४० लाख टन लोहा और २० लाख टन इस्पात निकाला जाता है। कोयला भी यथेष्ट मात्रामें मिलता है। इस कारण कल-कारखानोंकी दृष्टिसे ब्रिटेन और जर्मनीके बाद यूरोपमें बेलजियमका ही नम्बर है। यहांके निवासी सभ्यता और संस्कृतिमें यूरोपके किसी भी देशसे पिछड़े हुए नहीं हैं। बेलजियम एक साम्राज्यका भी स्वामी है। 'बेल्जियन कांगो' उसका अफ्रीकाका ९१८००० क्षेत्रफलका एक बहुत बड़ा उपनिवेश है, जिसकी जन-संख्या एक करोड़से कुछ अधिक है।

मध्य-युगमें इस देशकी कोई स्वतन्त्र सत्ता न थी। वह समय-समयपर हालैण्ड, स्पेन, फ्रान्स और आस्ट्रियाके अन्तर्गत रहा। अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें नेपोलियनने इस प्रदेशको आस्ट्रियासे छीना था। उस समय सभी राष्ट्र फ्रान्सके शत्रु थे। अन्तमें बेलजियमके ही वाटरलू नामक स्थानमें प्रशियन और अंगरेज सेनाओंने नेपोलियनको परास्त किया और बेलजियमको सन् १८१५ में नीदरलैण्डका एक भाग बना दिया गया। किन्तु १८३० में विद्रोहके कारण बेलजियमको स्वतन्त्र राज्य मान लिया गया और सेक्सको-बर्ग वंशके राजकुमार लियोपोल्डको वहांका राजा बनाया गया। सन् १८३९ में प्रशिया, आस्ट्रिया, इंगलैण्ड, फ्रान्स और रूसने बेलजियमकी तटस्थताकी रक्षा करनेका उसे वचन दिया। सन् १९०९ में लियोपोल्ड द्वितीयका भतीजा अलबर्ट यहांकी राजगद्दीपर बैठा। इसी वीर राजाके समय अपने यहांसे मार्ग न देनेपर सन् १९१४ में जर्मनी द्वारा बेलजियमपर आक्रमण हुआ और राजा अलबर्टकी वीर सेनाओंने जर्मन सेनाको तब तक रोक रखा, जब तक कि उसकी सहायताको ब्रिटिश और फ्रेञ्च सेनायें न आ गयीं। विगत महायुद्धमें बेलजियम-जैसी बर्बादी किसी भी देशकी नहीं हुई।

बेलजियमके वर्तमान युवक राजा लियोपोल्ड तृतीय सन् १९३४ में अपने पिता अलबर्टकी मृत्यु हो जानेपर राजगद्दीपर बैठे। यह भी अपने पिताकी ही तरह तेजस्वी, वीर और स्वदेशाभिमानी हैं। इनकी बहनका विवाह इटलीके राजघरानेमें हुआ है। सन् १९३६ में इन्होंने घोषणा की कि यूरोपीय युद्धोंमें बेलजियम सदा तटस्थ रहेगा, जिसे फ्रान्स और ब्रिटेनने भी मान लिया तथा जर्मनीने उसकी तटस्थताकी रक्षा करनेका वचन दिया।

विगत महायुद्धके २५ वर्ष बाद बेलजियमके इतिहासने अपनी पुनरावृत्ति की। इस बार १० मई सन् १९४० में जर्मन सेनाओंने एक साथ ही हालैण्ड, बेलजियम और फ्रान्सपर अत्यन्त तीव्रगतिसे भयानक आक्रमण किया। बेलजियमने इस बार भी सङ्कटके समय मित्र-राष्ट्रोंकी सहायता मांगी और बेलजियमकी ९ लाख सेनाओंमें, जर्मन सेनाका मुकाबला करनेके लिए अविलम्ब तीन लाख फ्रेञ्च और दो लाख ब्रिटिश सेना सम्मिलित हो गयी। भयङ्कर युद्धके पश्चात् मित्र-सेनाओंको लगातार पीछे हटना पड़ा और बेलजियमपर शत्रुका अधिकार होता गया। २७ मईके दिन उत्तरी फ्रान्स और बेलजियममें जर्मनोंके आक्रमणने अत्यन्त उग्र रूप धारण कर लिया और बेलजियन सेनापर विशेष रूपसे आक्रमण हुआ। इस समय, जब मित्र-सेनाओंकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय

थी, बेलजियन सेनायें बुरी तरह परास्त होकर तितर-बितर हो गयीं। अन्तमें २८ मईको लियोपोल्डने आत्म-समर्पण कर दिया और उसकी ३ लाखसे अधिक सेनाको शस्त्रास्त्र रखकर निःशस्त्र हो जाना पड़ा। यह आत्म-समर्पण मित्र-सेनाओंको बिना सूचित किये कर दिया गया था। उनकी स्थिति अत्यन्त खतरनाक हो गयी और इतनी बड़ी सेनाका साथ छूट जानेसे वे जर्मन सेनाओं द्वारा तीन ओरसे घेर ली गयीं और बड़ी कठिनाईसे उन्हें बचाकर डङ्कर्क बन्दरगाहसे ब्रिटिश नौ-सेनाकी सहायता द्वारा समुद्र-मार्गसे वापस लाना पड़ा। इस प्रकार साढ़े तीन लाख सैनिक बचाये जा सके। ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीके शब्दोंमें यह "ब्रिटिश नौ-सेना द्वारा चमत्कारपूर्ण मुक्ति" थी।

राजा लियोपोल्डके इस आत्म-समर्पणको मित्र-राष्ट्रोंने अपने साथ विश्वासघात समझा और इसके लिए फ्रान्सके प्रधान मन्त्री और चर्चिलने उन्हें जी भरकर कोसा। लियोपोल्डने इस सम्बन्धमें कोई वक्तव्य नहीं दिया और फिर वे जर्मनोंके हाथोंमें पड़ चुके थे। मित्र-राष्ट्रोंके कुछ राजनीतिक क्षेत्रोंमें यह धारणा हुई थी कि लियोपोल्डके आत्म-समर्पणमें इटलीका बहुत बड़ा हाथ था। आत्म-समर्पणके तीन दिन पहले इटलीसे लौटते हुए जनरल वर्स्ट्रीटन पेरिसमें ठहरे थे। जनरल वर्स्ट्रीटन लियोपोल्डके विशेष विश्वासपात्र थे और बेलजियमकी नीतिमें उनका बहुत बड़ा हाथ रहता था। जनरल वर्स्ट्रीटनको लियोपोल्डने इटली क्यों भेजा था, यह एक रहस्य है; किन्तु इतना ज्ञात हुआ कि जनरल वर्स्ट्रीटनके लौटनेके बाद यह आत्म-समर्पण हुआ था। उस समय लियोपोल्डकी माता और बहन भी इटलीमें ही थीं। यह अनुमान किया जाता है कि लियोपोल्डकी माता तथा बहनका राजा लियोपोल्डके आत्म-समर्पणमें हाथ था। कुछ लोग तो यहां तक अनुमान लगाते हैं कि लियोपोल्डको हालैण्डका राज्य देनेका भी लालच दिया गया था।

राजा लियोपोल्डकी भावना फ्रान्सकी ओरसे कभी भी अच्छी नहीं रही। कुछ लोगोंको तो यहां तक भी सन्देह हुआ कि लियोपोल्ड जर्मनोंसे मिला हुआ था। यद्यपि यह सन्देह निराधार ही ज्ञात होता है; किन्तु एक बात अवश्य हुई कि लियोपोल्डने अपनी सेनाको फ्रेञ्च जनरलकी अध्यक्षतामें देना अस्वीकार कर दिया था और उन्होंने अपनी सेनाकी अध्यक्षता स्वयं की। लियोपोल्डके आत्म-समर्पणका कारण कुछ भी रहा हो, किन्तु इतना निश्चित है कि इससे मित्र-राष्ट्रोंके लाखों सैनिक विनाशके गर्तमें पड़ गये थे, जो उसके देश बेलजियमकी रक्षा करने आये थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि उन्हें डङ्कर्क होकर लानेमें सफलता न मिलती, तो इतनी विशाल सेना या तो लड़ते-लड़ते नष्ट हो जाती, या उसे आत्म-समर्पण कर देना पड़ता। कहा जाता है, आजकल राजा लियोपोल्ड बेलजियमके किसी नगरमें नजरबन्द हैं और उनका तथा बेलजियमका भविष्य युद्धके परिणामपर निर्भर है।

रूमानिया—बालकनके पांच देशोंमें जन-संख्या, विस्तार और अपनी समृद्धिके कारण रूमानिया श्रेष्ठ स्थान रखता है। इसका क्षेत्रफल १,२२,२९२ वर्गमील और जन-संख्या २ करोड़ है। यहांकी राजधानी बुखारेस्ट है। यह कृषि-प्रधान देश है और यूरोपमें रूसको छोड़कर यहां सबसे अधिक अनाज होता है, जिसमें ३२ लाख टन गेहूं, १८ लाख टन जौ और ४५ लाख टन मकई उत्पन्न होती है। इनके अतिरिक्त यहां पेट्रोलियम भी ७० लाख टन निकाला जाता है, जिससे रूमानियाका महत्त्व बहुत अधिक रहा है। यहांके ८० प्रतिशत निवासी किसान हैं।

सन् १९१६ में जब जर्मनीकी शक्ति फ्रान्समें युद्ध करते-करते क्षीण हो गयी, तब रूमानियाने अवसर देख मित्र-राष्ट्रोंकी ओरसे युद्धमें प्रवेश किया; किन्तु जर्मनीकी एक सेनाने रूमानियाको शीघ्र ही परास्त कर दिया और उसे जर्मनीके साथ एक ऐसी सन्धि करनी पड़ी, जिससे उसके बहुत-से भाग कट-छंट गये। जब मित्र-राष्ट्रोंने विजय प्राप्त की, तो उन्होंने रूमानियाको आस्ट्रिया-हंगरी और बलगेरिया आदिके कई प्रदेश दे दिये। रूसी क्रान्तिके समय रूसका बेसरबिया प्रान्त भी रूमानियाने दबा लिया, जिससे वह अपना आकार पहलेसे दूना कर बैठा; पर उस दिनसे आज तक इसपर आफतोंका पहाड़-सा टूटता रहा है; क्योंकि यहां कई जातियोंके सम्मिलित कर लिये जानेके कारण अल्प-संख्यकोंकी समस्या सदा रही है। यहांके दो करोड़ निवासियोंमें २० लाख हंगेरियन, १० लाख रूसी युक्रेनियन, १० लाख यहूदी, ८ लाख जर्मन, ४ लाख बलगर और डेढ़ लाख तुर्क हैं।

सन् १८६१ में कर्नल कूजा सम्राट् अलेक्जाण्डर जोनके नामसे रूमानियाका शासनकर्त्ता हुआ। किन्तु राजनीतिक झगड़ोंके कारण सन् १८६६ में कैरोल प्रथम यहांका राजा हुआ। सन् १८७७ में रूमानियाकी जनताने टर्कीकी अधीनतासे अलग होकर स्वतन्त्र होनेकी घोषणा की। सन् १९१८ में रूसी राज-क्रान्तिके समय रूमानियाने रूसका बेसरबिया प्रान्त छीन लिया। हंगरीका ट्रान्सिलवानिया और बलगेरियाका बुकोविना प्रान्त महायुद्धके बाद मित्र-राष्ट्रोंने रूमानियाको दिलवाया। वर्तमान युद्धके पूर्व तक यहांका शासक फर्डिनेण्डका पुत्र कैरोल द्वितीय था।

कैरोल द्वितीय यूरोप-भरमें अपनी सुन्दरता और प्रेम-गाथाओंके लिए प्रसिद्ध है। कैरोलकी प्रथम स्त्री जीजी लेम्बरिनो अनिन्द्य सुन्दरी थी, किन्तु उस समय इनकी अवस्था कम थी और इनकी मांका शासनमें बड़ा हाथ था। उसने इन्हें अपनी स्त्रीको परित्याग करनेको बाध्य किया; क्योंकि वह एक साधारण वंशकी थी और कैरोल राज-सिंहासनके उत्तराधिकारी थे। फिर ग्रीसकी राजकुमारी हेलेनसे इनका विवाह हुआ। इसीसे उत्पन्न राजकुमार माइकेल है, जो कैरोलके निर्वासनके बाद आजकल राजगद्दी-पर है। एक बार कैरोलने भी ड्यूक आफ विण्डसरकी भांति प्रेमके नामपर राजगद्दी छोड़ दी थी, किन्तु तीन वर्ष उपरान्त अपनी प्रेमिकाको साथमें रखते हुए सन् १९३० में उन्होंने षड्यन्त्र रचकर फिर राज्य हस्तगत कर लिया। इनकी यह प्रेमिका मागदा लापेस्कु पन्द्रह वर्षसे इनके साथ है। आधी यहूदिन होनेके कारण रूमानियाके नाजी सदा मागदाके विरुद्ध षड्यन्त्र रचते रहे। किन्तु प्रेमी कैरोल यहूदी-विरोधी आन्दोलनोंको पूर्ण शक्तिसे दबाता रहा। आयरन गार्ड नामक एक पार्टी जर्मनीकी सहायता तथा प्रेरणासे रूमानियामें कैरोलके विरुद्ध खड़ी की गयी थी, जिसने कई बार देशमें विद्रोह फैलानेका प्रयत्न किया; किन्तु कैरोलने बार-बार इसके षड्यन्त्रोंको दुर्दण्डताके साथ दबाया और सैकड़ों आयरन गार्डवालोंको फांसीपर चढ़ा दिया गया तथा अनेकोंको निर्वासित कर दिया गया, पर आयरन गार्डकी शक्ति बढ़ती ही गयी और रूमानिया जर्मनीके कुचक्रमें फंसता ही गया। उधर रूसको भी अपने प्रान्त वापस लेनेके लिए जर्मनीके युद्ध-व्यस्त रहनेके कारण अवसर मिल गया।

फ्रान्सके पतनके बाद रूस, हंगरी और बलगेरियाने अपने-अपने दावे उपस्थित किये। रूमानियामें इन दावोंका प्रतिरोध करनेकी क्षमता नहीं थी। फलतः उसे इन दावोंके सामने बाध्य हो झुक जाना पड़ा। सबसे पहले रूमानियाको रूसके लिए बेसरबिया और उत्तरी बुकोबिना प्रदेश देने पड़े और उसने ब्रिटिश गारण्टीको छोड़कर धुरी-राष्ट्रोंका सहारा पकड़ा। बलगेरियाका दक्षिणी डोब्रूजापर भी रूमानियाने अधिकार मान लिया, किन्तु हंगरीको ट्रान्सिलवानिया देनेके लिए वह तैयार नहीं हुआ। अन्तमें धुरी-राष्ट्रोंके दबावके कारण ट्रान्सिलवानिया भी उसे हंगरी-को देना स्वीकार करना पड़ा। ट्रान्सिलवानियाके अलग हो जानेके बाद रूमानियामें नया शासन प्रारम्भ हुआ। आयरन गार्डके हाथसे शासनकी बागडोर निकल गयी। जनरल एण्टीनेस्कू प्रधानमन्त्री बने और राजा कैरोल अपने पुत्र युवराज माइकेलके लिए राजगद्दी छोड़कर अपनी प्रेयसी-के साथ देश छोड़कर चले गये। रूमानियाकी राजगद्दीपर माइकेलको बैठाया गया और रूमानिया सब प्रकारसे जर्मनीके प्रभावमें आ गया। वहां तैल-क्षेत्रोंकी रक्षाके बहाने तथा रूमानियन सेनाको सैनिक-शिक्षा देनेके लिए जर्मन सेना भेज दी गयी। इससे ब्रिटेनका वहां रहा-सहा प्रभाव भी नष्ट हो गया। जर्मनीके प्रभावमें आनेसे रूमानिया हंगरीके साथ धुरी देशोंके त्रिराष्ट्र-पैक्टमें सम्मिलित हो गया और इस प्रकार बालकनमें जर्मनीका प्रभाव अपनी चरम सीमा तक पहुंच गया।

वर्तमान रूस-जर्मनी-युद्धमें रूमानियाने भी रूसके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी और जर्मन सेनाकी सहायतासे अपने छीने गये दोनों प्रदेशोंका अधिकांश भाग भी अपने अधिकार-में कर लिया। इस समय युद्ध भयङ्करतासे चल रहा है और रूमानियाका भविष्य भी अब जर्मनीके भविष्यसे पूर्णतः सम्बद्ध हो गया है।

बलगेरिया—बालकनमें बलगेरिया एक छोटा-सा देश है। इसका क्षेत्रफल ४० हजार वर्गमील और जन-संख्या ६३ लाख है। राजधानी सोफिया है। बलगेरियाके उत्तरमें रूमानिया, पश्चिममें युगोस्लाविया, दक्षिणमें ग्रीस और पूर्वमें काला समुद्र है। यहां गेहूं, जौ और तमाखूकी खेती बहुत होती है। यहांका सबसे अधिक व्यापार जर्मनीके

साथ होता है। शासनमें अधिनायकवाद चलता है। एक सभाकी पार्लमेण्ट है, जो बहुत कम बुलायी जाती है। राष्ट्र-सेवा अनिवार्य है।

सन् १३९६ में इस राज्यपर भी तुर्कोंने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। तुर्कों द्वारा यहांकी जनतापर अत्याचार होनेके कारण सन् १८११ में रूसने टर्कीको हराया और बलगेरियाका आधुनिक राज्य स्थापित किया गया तथा रूसके सम्राट् जारका एक भतीजा यहांका राजा बना दिया गया। गत महायुद्धमें बलगेरियाने जर्मनी तथा आस्ट्रियाका साथ दिया था। हार होनेपर उसके ऊपर भी हरजानेका बोझ लाद दिया गया। मैसीडोनिया प्रान्त ग्रीसको और इसका कुछ प्रदेश रूमानिया तथा युगोस्लावियाको दिलाया गया।

आजकल बलगेरियाके राजा बोरिस तृतीय हैं, जिन्हें इटलीकी राजकुमारी गियोवाना ब्याही गयी है। सन् १९१८ में यह राजगद्दीपर बैठे। यह स्वेच्छासे श्रमजीवीका जीवन बितानेके लिए कुछ काल तक बलगेरियामें रेलवे-इञ्जिनके ड्राइवर बन गये थे और राज्यसे उतना ही वेतन लेते रहे, जितना वेतन वहां ड्राइवरोंको मिलता है। इनका जीवन बहुत सादा है। कहा जाता है कि यूरोपके राजाओंमें बोरिसकी पोशाक सबसे रद्दी रहती है। इसका कारण यह है कि वे अपनी राजधानी सोफियाका ही बना हुआ कपड़ा पहनते हैं। मोटा या भद्दा होनेकी उन्हें कुछ भी परवाह नहीं रहती है। वह कभी किसीको दावत नहीं देते, उनका खर्च एक साधारण अमेरिकन नागरिकके खर्चसे भी कम बतलाया जाता है। उन्हें महा कन्जूस समझा जाता है; किन्तु उनका कहना है कि बलगेरिया-ऐसे गरीब देशके शासकको कोरी शान शोभा नहीं देती। और देश है भी वास्तवमें बड़ा दरिद्र।

गत महायुद्धके बाद मित्र-राष्ट्रों द्वारा थोपी गयी अन्यायपूर्ण शर्तोंके कारण बलगेरियाका झुकाव धुरी-राष्ट्रोंकी ओर रहा है। किन्तु वर्तमान युद्धमें वह तटस्थ रहा। जब ग्रीसपर आक्रमण करनेके लिए जर्मनीने बलगेरियापर मार्ग देनेके लिए दबाव डाला, तब बलगेरियाने जर्मनीको सहयोग देना स्वीकार कर लिया और वह भी त्रिराष्ट्र-पैक्टमें सम्मिलित हो गया। इसके बाद जर्मन सेनाने बलगेरियाको अड्डा बनाकर ग्रीस और युगोस्लावियापर आक्रमण कर दिया और साथ ही बलगेरियन सेनाने भी नाजी सेनाकी सहायतासे ग्रीस और युगोस्लावियाके उन भागोंपर अधिकार कर लिया, जो पहले उससे छीन लिये गये थे। आजकल बलगेरिया जर्मनीके पूर्ण प्रभावमें है। रूसी-जर्मन युद्धमें भी उसने जर्मनीकी ओरसे युद्ध-घोषणा की है।

ग्रीस—यूरोपमें अपनी प्राचीन संस्कृति और सभ्यताके लिए ग्रीसका स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। इसके दक्षिणमें एजियन सागर, पूर्वमें टर्की, पश्चिममें एड्रियाटिक सागर और उत्तरमें इसकी सीमा युगोस्लाविया और बलगेरियासे मिलती है। इसकी जन-संख्या ६३ लाख और राजधानी एथेन्स है। ग्रीस द्वीपोंका देश है। इसके दो प्रधान द्वीपोंमें क्रीट भूमध्यसागरमें और कार्फ्यू एड्रियाटिक सागरमें अवस्थित है। इन द्वीपोंके कारण ग्रीस एक सामुद्रिक राष्ट्र है। यहांका मुख्य उद्योग कृषि है। तम्बाकू और फल यहांकी मुख्य उपज है।

१५ वींसे १८ वीं शताब्दीके अन्त तक ग्रीसपर टर्कीका आधिपत्य रहा। सन् १८२१ में यहांके निवासियोंने अत्याचारोंसे पीड़ित होकर विद्रोह कर दिया और टर्कीके प्रबल शत्रु रूसकी सहायतासे ग्रीसने स्वतन्त्रताकी घोषणा कर दी। सन् १८३२ में बवेरियाके राजकुमार ओटो यहांके राजा बनाये गये। किन्तु इससे बवेरियाका प्रभाव बढ़ता देख सन् १८६३ में डेनमार्कके राजकुमार जार्जको यहांका राजा चुना गया। तुर्की-रूस-युद्ध तथा १९१२ के बालकन-युद्धोंमें ग्रीसने अपना अच्छा विस्तार कर लिया। महायुद्ध छिड़नेपर यहांके राजा कान्सटैण्टाइनने, जिनको कैसर विलियमकी बहन ब्याही गयी थी, जर्मनीका पक्ष लिया; किन्तु प्रधान सचिव वेनीजेलोके विरोधके कारण देशकी नीति बदल गयी और ग्रीस मित्र-राष्ट्रोंकी ओरसे लड़ा। तबसे इसकी राजनीति ब्रिटेन और फ्रान्सके पक्षमें रही है। सन् १९३५ में कान्सटैण्टाइनके लड़के जार्जको यहांकी गद्दीपर बैठाया गया। यह पहले भी कुछ समय राजा रह चुके थे और इंगलैण्डके होटलोंमें जीवन बिता रहे थे। इन्हीं राजा जार्जको कैरोलकी बहन ब्याही गयी थी, जिसे इन्होंने बादमें तलाक दे दिया।

ग्रीसकी मित्र-राष्ट्र-पक्षी नीति देखकर अक्टूबर सन् १९४० में जर्मनीकी प्रेरणासे इटलीने उसपर आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण इटली-अधिकृत अलबानियासे होकर

किया गया था, पर ग्रीसकी सेनाके प्रत्याक्रमणके कारण इटालियन सेनाको निरन्तर पीछे हटना पड़ा और अलबानियाका एक बड़ा भाग भी ग्रीसके अधिकारमें चला गया। अन्तमें इटलीको पीछे हटते देख जर्मन सेनाओंने ग्रीस और युगोस्लावियापर एक साथ आक्रमण कर दिया और ब्रिटिश सेनाके सहायता करनेपर भी ग्रीसपर जर्मनीका अधिकार हो गया और राजा जार्ज तथा उनके मन्त्रिमण्डलको क्रीट द्वीपमें शरण लेनी पड़ी; किन्तु जर्मन छतरीधारी सेनाने क्रीटपर भी वायुयानों द्वारा आक्रमण किया और एक भयङ्कर युद्धके बाद उसपर भी अधिकार कर लिया। आजकल जर्मनीकी ओरसे ग्रीसपर इटलीका संरक्षण है।

युगोस्लाविया—आधुनिक युगोस्लावियाका निर्माण विगत महायुद्धके बाद मित्र-राष्ट्रोंने सर्विया, माण्टीनिग्रो, क्रोशिया, बोसनिया, डालमाटिया आदि प्रदेशोंको मिलाकर किया था। इस कारण पिछला सर्विया और आधुनिक युगोस्लाविया वर्सैलीजकी सन्धिका मानस-पुत्र कहा जाता है। इसके उत्तरमें इटली, आस्ट्रिया, हंगरी और रूमानिया, पश्चिममें एड्रियाटिक सागर और इटालियन अलबानिया, दक्षिणमें ग्रीस और पूर्वमें बलगेरिया है। यहांका क्षेत्रफल ९९ हजार वर्गमील और मनुष्य-संख्या डेढ़ करोड़ है। गत युद्धके बाद इसमें सम्मिलित किये हुए प्रदेशोंके साथ उनके निवासियोंको भी इस देशमें रहना पड़ा, जिससे यहां बहुत बड़ी संख्यामें कई जातियों—क्रोट, हंगेरियन, जर्मन, बलगेरियन आदिके कारण गृह-कलह बना रहा। यहां गेहूं और जौ यथेष्ट होता है।

छठी शताब्दीमें काले सागरकी ओरसे सर्ब लोग यहां आकर बस गये थे। दसवीं शताब्दीमें उनका भी एक राज्य स्थापित हो गया, जो सर्विया कहलाया। सन् १४०० से लगभग ४०० वर्ष तक इसपर तुर्कोंका आधिपत्य रहा। इसके बाद आस्ट्रिया—हंगरीके साथ इसका सम्बन्ध हो गया; किन्तु जब आस्ट्रियाने इसके बोसनिया तथा हर्सगोविना प्रान्त अपने राज्यमें मिला लिये, तब उसके विरुद्ध यहां बड़ा क्षोभ उत्पन्न हो गया। इसी साल यहां आस्ट्रियाके युवराज फर्निनेण्डका बध कर डाला गया, जिससे विगत महायुद्धका सूत्रपात हुआ और सर्वियापर आस्ट्रियाने आक्रमण कर उसे परास्त कर दिया। वर्सैलीजकी सन्धिके अनुसार मित्र-राष्ट्रोंने इसमें पराजित देशोंके अनेक प्रदेश जोड़कर इसका नाम सर्वियासे बदलकर युगोस्लाविया रख दिया। सन् १९३४ में यहांके राजा अलेक्जेण्डरको, जिन्हें रूमानियाके राजा कैरोलकी दूसरी बहन ब्याही गयी थी, मैसीडोनियाके असन्तुष्ट आन्दोलनकारियोंने फ्रान्समें मार डाला। उनके बाद उनका लड़का पीटर द्वितीय राजगद्दीपर बैठा, किन्तु उसके छोटे होनेके कारण पीटरके चचेरे बड़े भाई प्रिन्स पालको युगोस्लावियाका 'रिजेण्ट' बनाया गया।

फ्रान्सके पतनके बाद जर्मनीने बालकन राष्ट्रोंपर अपना संरक्षण स्थापित करनेकी ओर ध्यान दिया। बलगेरियाको त्रिराष्ट्र-पैक्टमें सम्मिलित करनेके बाद हिटलरने युगोस्लावियापर भी उसमें सम्मिलित होनेका दबाव डाला, किन्तु उसके सम्मिलित होनेपर वहां एक रक्तहीन क्रान्ति हुई और प्रिन्स पाल तथा पुराने मन्त्रिमण्डलको देश छोड़ जाना पड़ा। राजकुमार पीटर, जो इंगलैण्डमें शिक्षा पा रहा था, राजगद्दीपर बैठाया गया और नयी धुरी-राष्ट्र-विरोधी सरकार स्थापित हुई, जिसने ब्रिटेन और अमेरिकाकी प्रेरणासे अपनेको त्रिराष्ट्र-पैक्टके अन्तर्गत माननेसे इनकार कर दिया। ६ अप्रैल सन् १९४१ के दिन नाजी सेनाने युगोस्लाविया और ग्रीसपर एक साथ आक्रमण कर दिया और दो सप्ताहोंमें ही लड़कर देशपर अधिकार कर लिया। राजा पीटर और उसकी नयी सरकारको इंगलैण्ड भाग जाना पड़ा। युगोस्लावियामेंसे माण्टीनिग्रो और क्रोशियाको अलग कर स्वतन्त्र कर दिया गया। हंगरी, रूमानिया तथा बलगेरियाको भी अपने पिछले प्रदेश जर्मनीने दे दिये। इस प्रकार वर्तमान युगोस्लाविया जर्मनी द्वारा फिर महायुद्धके पूर्वका सर्विया बना डाला गया।

जर्मन-अधिकृत उक्त आठ देशोंमेंसे उनकी स्वतन्त्र शासन-प्रणालीका अन्त तो हो ही गया, साथ ही पांच देशोंके शासक भी पदच्युत होकर आज विदेशोंमें जीवन बिता रहे हैं। अपना भाग्य वे युद्धके निर्णयके साथ सम्बद्ध भले ही समझें; किन्तु उक्त देशोंकी जनतामें इनके प्रति घृणा-भाव उत्पन्न करनेका नाजी-प्रचार और युद्ध-समाप्तिके बाद इन देशोंकी जनताकी बदली हुई भावना, क्या इन्हें फिर अपना शासक बनाना स्वीकार करेगी, इसमें सन्देह है।

———

लोक-गीतोंमें 'हरियाली तीज'

श्री ब्रजकिशोर वर्मा 'श्याम'

कितनी पुरानी होगी यह हरियाली तीज ? सीताने भी इसे मनाया होगा, दमयन्तीने भी ! कितने सावन देखे होंगे नारीके इस त्योहारने ! गांव-गांवमें हिंडोले पड़ जाते हैं, दिन-दिन-भर झूलते बीतता है । मल्हारके मादक स्वर हृदयमें बस जाते हैं । लोक-वधूकी चूनरी और इन्द्र-धनुषमें होड़ लग जाती है । और तब लोक-जीवनके सादे सरल वातावरणके पृष्ठ-पटपर जीवनके प्यार, विरह, आकर्षण, उसके मधुमय स्वप्न विल्हौरी कांचकी तरह रङ्गीन हो उठते हैं । लोक-नारी आज भी पुरातन गीतके शब्द भूली नहीं—'सावन आ गया। मुझे लाल साड़ी ले दो, और बिंदुली खरीद दो । रत्नजड़ित अंगिया ले दो, जिसपर मोर और पपीहा चितेरे हुए हों ।'

सौजा आये सालू लै दियो,
और बिंदिया लै दियो मोल !
अंगिया लै दियो रत्न-जड़ावकी,
जामे लिखे पपइया मोर ।

हरियाली तीजको लोक-गीतमें एक चिरस्थायी स्थान मिला है । इस अवसरपर गाये जानेवाले गीतोंके तरानोंमें नारी-हृदयका प्रेम अनुभूतिकी आगमें तपकर कुन्दन बन गया है और विरहकी जड़ हृदयके पातालमें इतनी दूर चली गयी है कि सूरकी राधाकी निम्न उक्ति स्मरण हो आती हैः—

मेरे नैना बिरहकी वेलि बई;
सींचत नीर नैनके सजनी !
मूल पताल गई ।

इधर हरियाली तीजका गान सावनकी मस्त फुहारमें भींग रहा है और उधर ससुरालमें बैठी एक राजस्थानी बधू नैहर जानेके लिए अपने भाईकी प्रतीक्षा कर रही है और शकुन मनाती हुई गा रही है—

हरियै हरियाले डालै काली कोयल बोलै राज,
बोलै बोलावै सैयां सबद सुणावै राज।
उड़ रे मेरा काला कागा, जे मेरो वीरो आवै राज।
आवैगो आधी रात पहरके तड़कै तेजी घोड़ पिलाण्यों राज ।
तू क्यों रात्यांका कनीराम, नींदड़लीमें सूत्यो, राज।
तेरी तो मांकी जायी सासरिये झूरै, राज।
झूरैली, सूर मरैली, काला काग उड़ावै राज ।
सूती छी लाल पलंगपर झीणा सालू ओढ्या राज।
उठै छी वीर मिलण नै टूट्यो बाई रो हारो, राज।
हारो तो फेर पोवास्यां बीरा सूं कद मिलस्यां राज।
चुग देसी म्हारी सोन चिड़कली, पो देगो विणजारो राज।

—हरी-भरी डालीपर बैठी कोयल मीठी-मीठी बोल रही है । इधर एक काला कौआ आ बैठा है । ये मेरे काले कागा, अगर मेरा भाई आवे, तो उड़ जा । मुझे विश्वास है, मेरा भैया आधी रात तक अथवा एक पहर तड़के घोड़ेपर बैठकर आ पहुंचेगा ।

—भाई कान्हीराम, तू निश्चिन्त होकर रातको गहरी नींदमें क्यों सोया है । तेरी प्यारी बहन ससुरालमें व्याकुल हो रही है । वह बिसूर-बिसूरकर मर जायगी और तेरी प्रतीक्षामें कौए उड़ाती रहेगी ।

—भाई आया । बाई गौरीके दरवाजे घोड़ेको थामा, उस समय बहन पलंगपर लेटी थी और बारीक ओढ़नी ओढ़े हुए थी । एकाएक भाईको देखकर उससे मिलनेको दौड़ी । जल्दीमें गलेका हार टूट गया ।

क्या हुआ, जो गलेका हार टूट गया ? वह तो फिर पिरोया जा सकता है, पर सगे भाईका मिलना कब होता है ? हारके बिखरे हुए मोतियोंको सोन चिरैया चुन देगी और बनजारा उसे पिरो देगा ।

× × ×

एक दूसरे गीतमें नैहर जानेका स्वप्न देखती हुई राजस्थानी कन्या मोरसे कहती है कि सावन लहराने लगा है, अब उसका कन्हैया भैया उसे लिवा ले जानेके लिए आयेगा ।

सावन तो लहर्‌यो भादवो रे, बरसे च्यारूं कूट;
म्हारा मोरला, सावन लहर्‌यो रे ।
सावण बाई गवरां सास रे, कन्हैयो वीरो लेणिहार
म्हारा मोरला, सावन लहर्‌यो रे !

सावणियो सुरंग लो रे लाल,
आसी बीरो कन्हैया लाल पावणो,
लासी बाई गवरां बैलड़ली जुपाय;
म्हारा मोरला सावण लहऱ्यो रे !

—सावन तो लहराने लगा और भादों भी। ओ मेरे मोर! सावन लहराने लगा।

—सावन (आ पहुंचा), गोरी बहन ससुरालमें है, मुझे लिवा ले जानेवाला है कन्हैया भैया।

—ओ मेरे मोर, सावन लहराने लगा।

—कितना सुरङ्गा है यह सावन, ओ लाल!

—कन्हैया भैया पाहुना (बनकर) आयेगा।

—बैलगाड़ी जुतवाकर वह गोरी बहनको ले जायगा।

—ओ मेरे मोर, सावन लहराने लगा।

× × ×

हरियाली तीज आनेपर हरियानाकी एक नव वधू अपनी साससे नैहर जानेके लिए कहती है, लेकिन सास कहती है कि तुझे लिवानेके लिए न तो कोई ब्राह्मण आया है और न तेरा भाई ही, इसलिए इस बार तू ससुरालमें ही हरियाली तीज मान।

सामण आयो रंगलो कोई आयी रे हरियाली तीज।
सास म्हारी प्यारी, गजबकी मारी,
मोकै तौ खण्डा दै पीहरको म्हारी
लाड साङ्गला, प्यारी!
नईं आया थारा बामण, ना मां-जाया बीर,
राजाकी रानी जहारकी रानी,
तोकै आड़े ई घड़ा देऊं पालणों
म्हाणी लाड बहुरिया प्यारी!
बिगर बुलायी धन जायगी, घट जायगो आदर-भाव,
राजाकी रानी, जहारकी रानी
तू आड़ै ई सामण मान, मेरी लाड बहुरिया प्यारी।
ऊंचै तै चढ़कै देख रइ, तोकै दिवर कहूं कै जेठ,
सुघड़ खाती कै, बगड़ खाती कै,
चन्नणको घड़लिया पालनो, जामे झूलै सरिहल रानी।
अजी खुराड़ा नौ जना, कोई दग-दग जायं बनको
राजाकी रानी जहानकी रानी
ऊंची पाल तलायोकी, जिते खड़रिया चन्नणको पेड़।
खाती आता देखकें कोई रोया छाती
पाड़ बिरछाको पौदा, चन्नणको पौदा,
डाल डाल म्हारी काट लै, रै मन काटै जड़से पेड़।
पहलो खुराड़ो मारियो, कोई निकसी दूधकी धार,
राजाकी रानी, जहारकी रानी
एकासे दूजो दियो, जासे निकसी खूना धार।
हरी-हरी चुरियां, गोरी-गोरी बहियां
कुन पै कियो सिंगार?
राजाकी रानी, जहारकी रानी
थारो राजधन मर गयो, रे धरती मों गयो समाय।

—रङ्ग-भरा सावन आ गया है, हरियाली तीज आ रही है।

—सासजी, मुझे नैहर भेज दो।

—न कोई ब्राह्मण तुझे लिवाने आया है, न खुद तेरा मां-जाया भाई।

—कुल बधू, यों बिना बुलाये जानेसे तेरा आदर घट जायगा। तू यहां ही सावन मना इस बार।

—मैं ऊंची अटापर चढ़कर देख रही हूं, कोई आ रहा है। उसे मैं देवर-भावमें देखूं या जेठके रूपमें?

—अजी ओ बढ़ईके बेटे, चन्दनका पालना गढ़ ला।

—नौ आदमी हैं, उनके पास आठ कुल्हाड़े हैं।

—वेगसे वे बनकी ओर बढ़ रहे हैं।

—तालाबकी ऊंची पालपर चन्दनका पेड़ खड़ा है।

—बढ़ईको आता देख चन्दनका पेड़ छाती फाड़कर रो पड़ा।

—'मेरी एक एक डाल काट लो,' वह बोला, 'पर मुझे जड़से न काटना।'

—पहला कुल्हाड़ा मारनेपर चन्दनसे दूधकी धार बह निकली।

—गोरी कलाइयोंपर हरी चूड़ियां पहन रखी हैं।

—अजी ओ जुहारकी रानी, तुम्हारा हृदयेश तो मारा गया है।

वृक्षने सोचा होगा, बढ़ईने मेरा प्रस्ताव मान लिया है, वह मेरी जड़ न काटेगा। इसीसे आनन्दित होकर उसका हृदय दूध बनकर प्रकट हुआ। पर वृक्षको भ्रान्ति हुई थी। ठीक दूसरा ही वार उसकी जड़पर किया गया। वृक्षकी मृत्यु

नजदीक आ गयी थी। उसका हृदय लहूलुहान होकर बाहर आ गया। मरता-मरता वृक्ष शायद एक अभिशाप देता गया, उसीके फलस्वरूप सरिहलकी हरी चूड़ियां टूट गयीं। वृक्षकी भांति ही उसका पति भी बिन आयी मौत मर गया। और इस तरह सरिहल-रानीका नैहर जानेका सुख-स्वप्न सहसा एक लम्हे दुःखान्त काव्यमें परिणत हो गया!

× × ×

हरियाली तीज निकट है, भाई क्यों नहीं आये, मांको नींद कैसे आती है, ससुरालमें बैठी बहन यही सब सोच रही थी कि उसका भाई पहुंच ही गया। लेकिन जैसा दस्तूर है, वह बहनके ससुरालवालोंके लिए मिठाई आदि कुछ नहीं ले जाता। इससे बहनकी सास, ननद और जेठानी रूठ जाती हैं और उसके भाईको उलटी-सीधी सुनाने लगती हैं। नौजवान भाई है, उसे जोश आता है। वह बहनको लिये बिना ही वापस लौट जाता है। और उधर मां बेटीकी प्रतीक्षामें है! जब डोली खाली देखी, तब उसका हृदय उमड़ आया। उसे अपने पतिकी याद आयी—हाय! वे होते, तो कन्याको अवश्य लाते।

सावन मां कुस-कास जामे, भादव दुबिया हरेरि रे,
माया निठूरिन नींद कैसे आवे, बीरनको न पठाइया रे।
बीरन आये कुछऊ न लाये, सासु ननंद घर रूठि रे,
जेठानिन बैरिन बोल बोलै, बीरन चले घर आपने।
उंचवा चढ़ि-चढ़ि माया निहारैं, मोरी धिया धौं केती दूरि रे,
रूठे पुतवा भूखे हैं घोड़वा छूछे हैं चारिउ कहार रे।
आवउ न पूता मोरे बइठौ अंगन मां कहहु बहिनका हाल रे।
का कही अपनी मायन आगे कहत सुनत दुख लाग रे।
पूत हो तुम भयउ कपूते रोवत बहिन आये छोड़ि रे।
जौ मोरी धेरियाके दादुलि होते, हंसत-खेलत लइ अवतें रे।

—सावनमें कुश-कास जम आये। भादोंमें दूब हरी-हरी हो आयी। निर्दयी मांको नींद कैसे आती है, जो उसने भाईको नहीं भेजा?

—भाई आये तो, पर लाये कुछ नहीं। सास और ननद घरमें रूठ गयीं। बैरिन जेठानी व्यङ्ग बोली, जिससे मेरा भाई नाराज होकर घर लौट गया।

—ऊंचे स्थानपर खड़ी हो-होकर मां देखती है—मेरी बेटी अब कितनी दूरपर है? पर पुत्र तो रूठा है, घोड़ा भूखा है, चारों कहार खाली हैं।

—बेटा, आओ, आंगनमें बैठो और अपनी बहनका हाल बताओ न? बेटा कहता है—मां, अपनी मांके आगे क्या कहूं? बहनका हाल कहते-सुनते दुःख होता है।

—ऐ पुत्र, तुम कपूत हो, जो रोती हुई बहनको छोड़ आये। जो मेरी बेटीके पिता होते, तो उसे हंसते खेलते घर लाते।

× × ×

कन्याका विवाह हो गया है, लेकिन अभी वह अपने पीहर ही में है। अगले साल वह ससुराल जायगी। वह अपने भाईसे रेशमका झूला डालनेका आग्रह करती है। भाई कहता है, इस वर्ष रेशम बड़ा महंगा है, अगले साल पांच डोरियोंका झूला डाल दूंगा। लेकिन बहन उदास होकर कहती है—अगले साल तो मैं ससुराल चली जाऊंगी—फिर वह मेरे किस कामका?

बिरना कासे-कुसे कै पटवा अंग छिलिया छीली जाय
बलैया लेउं बीरन।
बिरना पैयां तोरे लागों बिरन भैया, पटवा कै थलुआ
डरावो, बलैया लेउं बीरन।
एसों कै पटवा महंग भये बहिनी, अगवां डरैबै पंचडोर
बलैया लेउं बीरन।
हम तौ जाबै सजन घर भैया, झुलिहै धनियां तुहार
बलैया लेउं बीरन।
धनिया भेजबै नैहर क बहिनी, तुहका आन हम जाब
बलैया लेउं बीरन।

—हे भैया, कास-कुशकी रस्सी हिंडोलेमें लगी है, जिससे अङ्ग छिल जाया करता है।

—हे भैया, मैं तुम्हारे पैर छूती हूं, रेशमका झूला डलवा दो।

—हे बहन, इस साल तो रेशम बड़ा महंगा है, अगले साल पांच डोरीका झूला डलवा दूंगा।

—हे भैया, अगले साल तो मैं अपने पतिके घर चली जाऊंगी, तब तुम्हारी स्त्री झूलेगी।

—हे बहन, मैं अपनी स्त्रीको नैहर भेज दूंगा और तुमको बिदा कराने आऊंगा।

भाई-बहनका स्नेह इस लोक-गीतमें कितना सजीव हो उठा है!

और सुनिये। परदेशी भाई सावनमें घर आया है। भाई परदेशसे क्या लाया है, यह जाननेकी सबके मनमें लगी है। प्यारी बहन भी भाईकी कमाईमेंसे एक चुंदरीकी आशा रखती है। लेकिन अफ़सोस, भाई घर चलते समय बहनके लिए चुंदरी लेना भूल गया। बहनकी आशाओंपर पानी फिर गया, तो लगी नाम रखने। निराश बहन और करती ही क्या ?

बागमें पपीहा बोलै मैं जानूं कोई आवे है।
आवे है मेरा...सा वीरा, क्या-क्या सौदा लावे है।
आप कूं घोड़ा बाप कूं घोड़ा, मां कूं तीहर लावे है।
बहनको चुंदरी भूल आये तो सौ-सौ नाम धरावे है।

बेचारे भाईको बहुत-से सामान खरीदने थे, इसीलिए शायद उसे बहनकी चुंदरीका ख्याल नहीं आया। बहनकी अवस्था शायद छोटी थी, नहीं तो वह जानती कि परदेशसे घर लौटनेमें कितने आंधी-तूफान साथ ले आने पड़ते हैं। आगे चलकर जब वह इस योग्य होगी, तो शायद अपनी इस खिसियाई हुई शिकायतको स्वयं ही वापस ले लेगी !

× × ×

पासवाले उस कुञ्जमें आइये, जहां कुछ युवती रमणियां झोंके ले-लेकर सावनकी बहारका आनन्द लूट रही हैं और जिनके गानसे हर्षके इस समुद्रमें ज्वार-भाटा-सा आया हुआ जान पड़ता है। सावनकी रिमझिममें चम्पाकलीकी चूंदरी भींग रही है और नन्हे बीरनका छई पाग।

अरी मैना उठी है घटा घनघोर बिजुरी तो चमके जोरसे।
अम्बर लरजे घन गरजे, अरी मैना मोर मचावत शोर
बिजुरी तो चमके०।
कौनकी भीजै छई चूंदरी, अरी मैना, कौनकी भीजै
छई पाग। बिजुरी तो चमके०।
चम्पाकलीकी भीजै चूंदरी, अरी मैना, नन्हा बीरनकी
छई पाग। बिजुरी तो चमके०।
नन्हीं-नन्हीं बूंदें मेहा बरसत, अरी मैना, शीतल पवन
झकोर। बिजुरी तो चमके०।

—अरी ओ मैना, घनघोर घटा उमड़ आयी है और जोरसे बिजली चमक रही है। आसमान लरज रहा है, बादल गरज रहा है।

—अरी ओ मैना, मोर शोर मचा रहे हैं, बिजली चमक रही है।

—किसकी छई चूंदरी भीग रही है और किसका छई पाग ! अरी ओ मैना, बिजली चमक रही है।

—चम्पाकलीकी चूंदरी भीग रही है और नन्हे भाईका छई पाग। बिजली चमक रही है।

—नन्हीं-नन्हीं बूंदें पड़ रही हैं। अरी ओ मैना, शीतल हवाके झोंके चल रहे हैं। बिजली चमक रही है।

यह चम्पाकली और नन्हा बीरन कौन है ? शायद हरियाली तीजपर बहन चम्पाकलीको नन्हा भाई विदा कराने गया हो। अक्सर छोटा भाई ही बहनको विदा करानेमें अधिक सफल होता है। क्या हर्ज, जो चम्पाकली-की चूंदरी भीग रही है, हरियाली तीज नैहरमें तो होगी। और क्या हर्ज, जो नन्हे वीरनका पाग भीग रहा है, वह अपनी बहनको विदा करानेमें सफल तो हो गया है !

× × × ×

हरियाली तीजपर गाये जानेवाले गीतोंमें बहिनोंका भाइयोंके प्रति प्रेम तथा अपने पितृ-गृहका स्नेह तो है ही, साथ ही वियोगाकुल रमणियोंका तड़पता हुआ हृदय भी अन्तर्हित है। इनमें परदेशी प्रियतमकी प्रतीक्षामें विरहि-णियोंकी अकुलाहटकी जो तस्वीरें उतारी गयी हैं, उनमें लफ्फाजीका रङ्ग बिलकुल नहीं है। वह तो दिन-रातकी चक्कीमें पिसनेवाले एक टूटे हुए हृदयकी धड़कन है। कल्पनाके छींटे देकर अविश्रान्त परिश्रमसे लिखी गयी कोई भी कविता उनकी बिरादरीमें नहीं बैठ सकती।

उधर सावनका मेघ गरज रहा है, रिमझिम पानी बरस रहा है और इधर वियोगिनी ग्राम्य-रमणी अपने परदेशी प्रियतमकी यादमें बेचैनीसे गा रही है—

सावन घन गरजै।
किधरकी घटा ओनई, किधर बरसै गंभीर।
हमर ललन परदेसिया, भींजत होइहैं कवन देस
सावन घन गरजै।
जेहि घर हिंगिया न महकै, जिरवाका कवन धोंगार
जेहि घर साइ दसनियां, बहुआ क कवन सिंगार
सावन घन गरजै।
खस कै बंगला छवौतिउ, चौमुख रखतिउं दुआर

हरि लैके सोउतिउं अटरिया, झोंकवन आवति बयार
सावन घन गरजै।
अतलस लहंगा पहिरतिउ, चुनरी बरनि न जाय
झमकिकै चढ़तिउं अटरिया, चौमुख दियना बराय
सावन घन गरजै।

—सावनका बादल गरज रहा है। एक तरफ घटा छा रही है। एकतरफ गहरी बरसात हो रही है। हाय, मेरे प्यारे परदेशी किसी देशमें भींगते होंगे।

—जिस घरमें हींग न हो, उस घरमें जीरेकी छौंकसे क्या होगा? जिस घरमें कर्कशा सास है, उस घरमें बहू क्या शृङ्गार करे?

—हाय! मेरे प्रियतम घर होते, तो मैं खसका बंगला छवाती, जिसमें चारों ओर द्वार रखती। हवाकी लहरें आती रहतीं। मैं अपने प्राणनाथके सङ्ग अटारीपर सोती।

—अतलसका लहंगा पहिनती। चूनरी ऐसी पहिनती, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। चारों ओर दीपक जलाकर मैं झमककर अटापर चढ़ती।

इससे बढ़कर कौन-सा सुख होता, लेकिन जब निष्ठुर परदेशी इसका अनुभव करें?

× × ×

एक युवती है। जवानीकी देहलीपर खड़ी अपने परदेशी प्रियतमकी याद कर रही है। विरहिणी पतिप्राणा, यक्षिणी-की तरह उसकी दुनिया उजड़ी हुई है और उसकी जिन्दगी समाप्त न होनेवाली अंधेरी रात बनी हुई है। परदेशी प्रिय-तमकी यादमें उसके आंसू नहीं थम रहे हैं—सावनकी नदी-की भांति उमड़ते आ रहे हैं—

सुधिया न कीन्हें राजा हमरे सुरतिकी।
अपुआ त जाइके बिदेसवामें छाये,
पतिया न लिखे राजा हमरे मनकी।
जो सुधि आवे राजा तुम्हरे सुरतिकी
अंसुआ बहै जैसे नदिया सवनकी।

—हे राजा, तुमने मेरी सुधि नहीं ली। तुम स्वयं तो जाकर विदेशमें डेरा डालेहुए हो। मेरे मनका हाल जाननेके लिए तुमने पत्र भी नहीं भेजा।

—हे राजा, तुम्हारी याद आते ही मेरी आंखोंसे आंसू-की ऐसी धारा बहती है, जैसे सावनकी नदी।

छकड़ा चला जा रहा है। कोई कह उठा—पुरवाईके बादल उमड़ आये हैं, बैलोंको तेज करो। देखते ही देखते ग्राम्य-वधूकी आंखें भी बरस पड़ीं, उसके गाल भींग गये—

गाड़ीवारे मसक दै बैल,
अबै पुरवैयाके बादर ऊन आये।
कौन बदरिया उनई रसिया?
कौन बरस गये मेघ?
अबै पुरवैयाके बादर ऊन आये!
अगम बदरिया उनई रसिया,
पच्छम बरस गये मेघ!
अबै पुरवैयाके बादर ऊन आये।
घुंघट बदरिया उनई रसिया,
गलुअन बरसि गे मेघ!
अबै पुरवैयाके बादर ऊन आये!

—अजी ओ गाड़ीवान, बैलोंको हांक दो जरा, पुरवाईके बादल उमड़ आये हैं रे!

—कौन-सी बदरिया उमड़ी है, अजी ओ रसिया?

—कौन-सा मेघ बरस पड़ा?

—पुरवाईके बादल उमड़ आये हैं रे!

—आगेकी बदरिया उमड़ आयी है, अजी ओ रसिया!

—पीछेका मेघ बरस पड़ा।

—पुरवाईके बादल उमड़ आये हैं रे।

—घूंघट बदरिया उमड़ आयी है, अजी ओ रसिया!

—गालोंपर मेघ बरस पड़ा।

—पुरवाईके बादल उमड़ आये हैं रे!

आंसुओंका नाम नहीं लिया गया, उनकी ओर सङ्केत-भर किया गया है। वियोग ही के आंसू हैं ये शायद। पर वियोगके ही क्यों? गरीबीके क्यों नहीं?

× × ×

पति परदेशमें है। इधर दुलहिनका दिल उदास है। सखियां झूला झूल रही हैं और वह उजड़े चमनकी दुखिया बुलबुलकी तरह मीठी बारीक आवाजमें गा रही है—

करूं कौन जतन अरी एरी सखी,
मोरे नयनोंसे बरसे बादरिया।
उठी काली घटा बादल गरजै
चली ठण्ढी पवन मेरा जिया लरजै।

थी पिया-मिलनकी आस सखी,
परदेश गये, मोरे सांवरिया।
सब सखियां हिंडोले झूल रहीं—
खड़ी भीजूं पिया तोरे आंगनमें।
भर दे रे रंगीले मनमोहन!
मेरी खाली पड़ी है गागरिया।

—हे सखी, मैं क्या उपाय करूं? मेरी आंखोंसे घटा बरस रही है।

—काली घटा उठ रही है। बादल गरज रहे हैं। ठण्ढी हवा चल रही है, मेरा हृदय कांप रहा है।

—प्यारेसे मिलनेकी आशा थी। पर हाय, वे तो परदेश गये।

—सब सखियां हिंडोले झूल रही हैं। पर हे प्रियतम, मैं तुम्हारे आंगनमें खड़ी भीग रही हूं।

—हे रंगीले मनमोहन! मेरे घड़े खाली पड़े हैं। इन्हें भर दे!

निम्नलिखित गीतमें फिर इस वियोगिनने अपने मनकी बात कहनेकी चेष्टा की है—

चहुं दिसि घेरे घन करिया हे हाली!
झहरि झहरि बूंद खसए पलंगपर,
भीजत कुसुम रंग सड़िया।
चुवत भवन सौं लागै कठिन सन,
पिय बिनु सूनि अटरिया।
पथ भेले पिच्छिल पिया भेल चञ्चल,
चाहिय कुसुम चुंदरिया।

—हे सखी, चारों ओर सघन काली घटा उमड़ आयी है और मेरी सुन्दर कुसुम रङ्गकी साड़ी भींग रही है।

—मेरी यह झोंपड़ी चू रही है, जो बड़ी दुःखदायी मालूम होती है। प्रियतमके बिना आज मेरा संसार सूना है।

—कीचड़से राह-बाट पिच्छिल हो गये और मेरे प्रियतम प्रवासी हैं! हे सखी, मुझे कुसुम रङ्गकी चुंदरी चाहिए!

इन गीतोंको ग्रामीण स्त्रियां जिस समय कोरसमें गाती हैं, उस समय हृदयमें सिहरन होने लगती है।

———

कब मानव सुखसे सोया है

युग-युगसे वह लड़ता आया,
युग-युगसे वह बढ़ता आया,
किन्तु अधूरे सपनोंके,
बोझोंको ही उसने ढोया है।
कब मानव सुखसे सोया है।

श्वांस-श्वांसमें आश जगा दी,
किसने मनमें आग लगा दी,
अपनी निष्फलतापर मानव,
कितनी बार बिलख रोया है।
कब मानव सुखसे सोया है।

कितने आये, कितने जाते,
सभी निराला राग सुनाते,
जगके बीहड़-बनमें आ,
कितनोंने प्रियका पथ खोया है।
कब मानव सुखसे सोया है।

—परमानन्द शर्मा।

पैटमैनकी बीवी

श्री कमल जोशी

तिवारीजीकी नौकरानी 'डिसमिस' कर दी गयी। यह कोई नयी बात नहीं है, ऐसा हमेशा ही होता है।

तब शाम हो चुकी थी। तिवारीजीकी नौकरानी, गङ्गा, उस वक्त धूप दे रही थी। ऐसे ही वक्त, तिवारीजीकी पत्नी—विलायती बीबीने जोरसे पुकारा—ऐ गङ्गा, इधर चल।

डरती-डरती गङ्गा आकर खड़ी हो गयी। इतने आदमियोंके सामने सिर उठाकर खड़े होनेका, उसका साहस न हुआ। दीवारसे चिपककर, अपराधीकी तरह, सिर नीचा कर वह चुप खड़ी रही।

तिवारीजीने कुछ व्यङ्गके स्वरमें कहा—"उसी वक्त कहा था कि छोटी जातकी औरतें अच्छी नहीं होतीं। सूरत देखते ही चरित्र मालूम हो जाता है। खैर, अब बात बढ़ानेसे कोई फायदा नहीं, आज ही इसे यहांसे निकाल दो।"

"मुझे क्या मालूम था कि इस हरामजादीके पेटमें इतनी शैतानी भरी है।" विलायती बीबीने तम्बाकूसे हुए काले दांतोंको किटकिटाकर कहा—"बड़ी तकलीफमें थी, दया आ गयी, इसीलिए अपने यहां रख लिया।"

"ऐसी औरतोंको भला कभी रखना चाहिए, इन लोगोंका तो यही पेशा है।"

गङ्गा बहुत देरसे खामोश थी। सारी टीका-टिप्पणी वह चुपचाप सहन कर रही थी। सिर झुकाये ही उसने कहा, मैं—

तिवारीजीने जोरसे धमकाते हुए कहा, रहने दे—चुप। अब सफाई देनेकी जरूरत नहीं। एक तो चोरी और ऊपरसे सीनाजोरी। सुनो, बात करनेकी जरूरत नहीं—दोनोंको ही निकाल बाहर करो।

विलायती बीबी बोलीं, भीमाका क्या कसूर। वह तो बहुत पुराना नौकर है। बचपनसे ही हमारे यहां है। सारी बुराइयोंकी जड़ तो यह कलमुंही ही है।

भीमाके बारेमें फिर सोचूंगा। पर घरमें इसे मत रखो। हम बाल-बच्चेवाले आदमी ठहरे, इसे फौरन् निकाल दो। हुक्केको नीचे रखकर तिवारीजी पूजा करने चल दिये।

अपनी तनख्वाहके रुपयोंके लिए गङ्गा थोड़ी देर खड़ी हुई प्रतीक्षा करती रही। रुपये लानेको ही विलायती बीबी बगलवाले कमरेमें घुसी थीं। पर लौटकर आनेके कोई लक्षण दिखाई नहीं दिये।

विलायती बीबीने जब तनख्वाहके रुपयोंके लिए कहा, तो पूजाका मन्त्र-उच्चारण स्थगित कर तिवारीजीने जो कुछ कहा, वह गङ्गाको सुनानेके लिए नहीं कहा था! पर गङ्गाने साफ-साफ ही सुना।

तिवारीजीने कहा, रुपये किस बातके! झाड़ू मारकर बाहर निकाल दो। रुपयोंका क्या यहां पेड़ लगा हुआ है। खड़ी रहने दो, अपने-आप ही चली जायगी।

गङ्गा अब खड़ी न रही। कलङ्क, अपमान और दुःखसे उसकी आंखें भर आयीं। आंसुओंके उमड़ते हुए वेगको दमन करती हुई, दौड़कर बाहर निकल आयी और पथके अन्धकारमें अपनेको मिलाकर निःशब्द रो उठी।

गङ्गा चली गयी और फिर लौटकर नहीं आयी। महीना लेनेके लिए भी एक बार नहीं आयी। और शायद अब कभी आयेगी भी नहीं।

गङ्गा डरपोक है, कमजोर है। इसीलिए अपने रुपये लेनेके लिए आनेका साहस भी उसमें नहीं है। और कोई होती, तो फिर आती। जब नौकरी ही नहीं रही, तो विलायती बीबीको खरी-खोटी सुनानेके लिए आती, झगड़ा करती और हिसाब करके अपने पूरे रुपये ले ही जाती। गङ्गा डरके मारे फिर उस मुहल्लेमें ही नहीं आयी।

गङ्गाका पति रामलाल रेलवेका पैटमैन है। रेलवेसे जो रुपये मिलते हैं, उनसे इन दोनोंका खर्च नहीं चलता। सिर्फ दो ही प्राणी हैं—पति-पत्नी। लोगोंकी समझमें यह नहीं आता कि इन दो प्राणियोंका खर्च क्यों नहीं चलता। लोगोंका ख्याल है कि वे रुपये जमा करते हैं और काफी जमा भी कर लिया है।

गङ्गा और रामलाल कम रुपये नहीं कमाते। गङ्गा काम करती है और रुपये लाती है, और दोनों वक्तका खाना भी

साथ ही ले आती है। कभी-कभी सिर्फ पांच-छः रोटियां बनानी पड़ती हैं।

रामलाल कुष्ठरोग-ग्रस्त है। अब तक यह बात दबी हुई थी, हाल ही में लोगोंको मालूम हो गयी है।

गङ्गाका पति पहले कहारका काम करता था। कोढ़के रोगकी बात जाहिर होते ही, लोगोंने उससे काम करवाना बन्द कर दिया है। उसे देखते ही लोग दूर हट जाते हैं, कोई काम नहीं देता।

गङ्गाका पति एक टाट बिछाकर, दिन-भर अपनी कोठरीके सामने बैठा हुआ हुक्का पीता रहता है।

गङ्गाके कामोंका अन्त नहीं। थोड़े दिनों पहले नौकरी चली गयी है, इससे उसका काम बढ़ ही गया है, कम नहीं हुआ। दिन-भर वह एक-न-एक काममें व्यस्त ही रहती है। प्रायः यह देखा जाता है कि उसके क्लान्त और दुखी मुंह-पर पसीनेकी बूंदें जम गयी हैं। तब गङ्गा भी दीवारका सहारा लेकर मृदु स्वरमें हुक्केके दम लगाती है।

अचानक ट्रेन आनेका सिगनल होता है, या ट्रेन निकलनेका वक्त हो जाता है। गङ्गा जल्दीसे उठ बैठती है। दरवाजा बन्द कर देती है। रास्तेके दोनों ओर बहुत-सी बैलगाड़ियां, इक्के और तांगे खड़े रहते हैं—दरवाजा खुलनेकी प्रतीक्षामें।

कभी-कभी कोई गाड़ीवान गेट खोलनेका अनुरोध करता हैं। गङ्गा धीमी आवाजमें कहती है, नहीं भाई, नहीं। यह देखो, ट्रेन आ रही है—अभी नहीं खोल सकती।

: अभी ट्रेनके आनेमें बहुत देरी है। ज़रा खोल दो न, फौरन् निकल जाऊंगा। मुझे बहुत दूर जाना है।

: नहीं, नहीं। मैं गैरकानूनी काम नहीं कर सकती। अगर कॉलिशन हो गया, तो तुम भी मरोगे और हमारी नौकरी भी जायेगी—जेल होगी।

: डरो नहीं, अभी ट्रेन आनेमें बहुत देर है। ठीक निकल जाऊंगा।

: चाहे देर ही क्यों न हो, पर मैं नहीं खोल सकती। इतने आदमियोंकी जिन्दगीके साथ खेल नहीं किया जा सकता।

गङ्गा गम्भीर चेहरा बनाकर सीधी खड़ी हो जाती है। हरी झण्डी और हरी रोशनी हिलाती है।

चलती हुई ट्रेनकी रोशनी गङ्गाके चेहरेपर पड़ती है। एकाएक चौंककर यात्री पीछे फिरकर देखते हैं। ट्रेन बहुत दूर चली जाती है—फिर दिखाई नहीं देती।

गङ्गाकी नौकरी छूट जानेसे रामलाल जरा भी दुखी नहीं हुआ है। कहता है कि अच्छा ही हुआ। हम दो तो प्राणी हैं—क्या जरूरत कि दूसरोंकी डांट-फटकार सुनें।

गङ्गा कोई जवाब नहीं देती। वह सोचती है कि खर्च कैसे चलेगा। खाने-पहननेका कोई ज्यादा खर्च नहीं है, पर रामलालकी दवा-दारूमें उसे काफीसे ज्यादा रुपये खर्च करने पड़ते हैं। चिकित्सामें वह कितने रुपये खर्च करती है, यह रामलाल नहीं जानता। और अगर जान भी जाय, तो विश्वास नहीं करेगा।

रामलाल कुछ सङ्कोचके साथ प्रश्न करता है—अच्छा, तुम्हारी नौकरी क्यों छूटी, यह नहीं बताया? झगड़ा हुआ था?

गङ्गा हर रोज ही इस अप्रिय प्रसङ्गको टाल देती है, इस बार भी उसने टालनेकी कोशिश की।

गङ्गाके दुखी चेहरेकी तरफ देखकर रामलालके मनमें न जाने क्यों, एक प्रकारका सन्देह जाग्रत होता है। कहता है, नहीं बताओगी न। भला मैंने तुमपर कभी सन्देह किया है—लोगोंकी बातें मैंने कभी सुनी हैं—कहो, तुम ही कहो!

गङ्गा फिर भी चुप रहती है।

रामलाल गङ्गाका हाथ दबाकर कहता है, मुझे भी नहीं बताओगी!

रामलालकी कातरतासे गङ्गाका दिल जाने कैसा-कैसा हो जाता है। अस्फुट स्वरमें कहती, तिवारीजीकी बीबीने निकाल दिया।

: निकाल दिया—क्यों? क्यों निकाल दिया?

तिवारीजीके नौकर भीमाने मुझे आलिङ्गन-पाशमें बांधना चाहा था।

शर्मसे मानो गङ्गाका सिर मिट्टीमें मिल जाना चाहता है।

रामलालके हाथसे गङ्गाका हाथ छूट जाता है। रामलालकी देह मानो कड़ी हो जाती है। पंगु शरीरमें आसुरी शक्ति जाग जाती है। दोनों छोटी-छोटी आंखें सांपकी

आंखों-जैसी मानो धक्-धक् जलने लगती हैं।

गङ्गाको और किसी दूसरी जगह नौकरी न मिलनेके कारण रामलालको बहुत खुशी है। सोचता है, यह अच्छा ही है। हर वक्त गङ्गा उसकी सेवा-शुश्रूषामें लगी रहती है, उसके आरोग्यके लिए पूजा-पाठ भी करती रहती है। ट्रेन आनेके वक्त सब कामकाज छोड़कर कैसी तत्परतासे वह गेट बन्द कर देती है। हरी झण्डी और हरी रोशनी दिखाती है!

रामलाल वास्तवमें बहुत खुश है। कोई काम नहीं है। अब गङ्गाको कामके नामपर रातमें बाहर नहीं जाना पड़ता। हमेशा उसकी नजरोंके सामने रहती है। आरामकी सांस छोड़कर सोचता है: यही तो ठीक है!

गङ्गाको भी बुरा नहीं लगता। बहुत स्वाधीन है। किसीकी भी खुशामद नहीं करनी पड़ती। कोई डांट-फटकार करनेवाला भी नहीं। कोई कुछ कहने-सुननेवाला भी नहीं है। शान्ति और सुख है—बेकारीके दिनों-जैसी ही सुदीर्घ शान्ति और सुख है।

उसका वक्त बहुत अच्छी तरह कट जाता है। ट्रेनके बाद ट्रेन आती है और चली जाती है। उसे दौड़ती हुई ट्रेन देखनेमें बड़ा मजा आता है। उन दौड़ती हुई ट्रेनोंमें मानो विचित्र मानव जाति सन्निहित है। कोई शायद अपने प्रियजनोंको छोड़कर जानेकी वजहसे उदास नयनोंसे ताकता रहता है, दोनों आंखें मानो गोपन अश्रुओंमें डूबी रहती हैं। और कोई अपने प्रियजनोंसे मिलने जा रहा है। अज्ञातमें ही उसका चेहरा खुशीसे चमक रहा है। दोनों आंखें आनन्दसे, कौतूहलसे बार-बार रोमाञ्चित हो उठती हैं।……चलती हुई ट्रेनके यात्रियोंकी तरफ देखते-देखते उसका मन न जाने कैसा-कैसा हो जाता है।

रातके ग्यारह बजेके बाद कोई ट्रेन नहीं आती। कभी-कभी एक-दो मालगाड़ियां जाती हैं। मोटर और दूसरी सवारियोंका भी आना-जाना बन्द हो जाता है। पथमें लोग भी नहीं आते-जाते—एकदम सब निस्तब्ध हो जाते हैं। चारों ओर खामोशी छा जाती है।

निस्तब्ध रात्रिमें गङ्गाको पूरा आराम मिलता है। गेट बन्द नहीं करना पड़ता, चूल्हा-चौकेका झञ्झट भी नहीं रहता, रामलालके बदनमें तेलकी मालिश भी नहीं करनी पड़ती, पथमें एक भी व्यक्ति नहीं होता है। सब कुछ मानो अचल, जड़, पंगु और निस्तब्ध हो जाता है।

बगलमें ही रामलाल सोता रहता है। मुर्देकी तरह पड़ा रहता है। बीच-बीचमें कभी सारा बदन खुजाता है। सूखा चमड़ा खुजानेसे छिल जाता है, कभी-कभी विषाक्त रक्त और पीप बाहर निकलती है। निस्तब्ध रात्रिमें अकेली गङ्गाको डर लगता है, वह थोड़ी दूर हट जाती है।

उसे नींद नहीं आती। वह रोज सो नहीं पाती—हर रोज उसके लिए सोना क्या सम्भव है?

तन्द्रातुर गङ्गाकी सचेतन अनुभूतियां कभी-कभी रोमाञ्चित हो उठती हैं। शायद उसे स्वप्न ही दिखाई देते हैं। अचेतन मनमें यह लगता है कि ऐसे स्वप्न वह मानो प्रत्येक दिन देखती है।

रामलालका हाथ वह हटाती नहीं—अचेतन गङ्गा नींदमें मानो अपनेको पति देवताके आलिङ्गनमें छोड़ देती है।

एकाएक अस्फुट स्वरमें गङ्गा आर्तनाद कर उठती है। उसके खूनके साथ कोढ़के रोगीका खून मिल गया है। वह विषाक्त रक्त उससे सारे अङ्गमें फैल गया है। उसका सारा शरीर मानो धीरे-धीरे फूल रहा है, अङ्ग गलकर गिर रहे हैं, नाक, कान गल गये हैं! गङ्गाको मानो अपना चेहरा स्पष्ट दिखाई देता है। ऐं—यह चेहरा तो उसका नहीं है—यह तो वह गङ्गा नहीं है। गङ्गाके नाक थी, कान थे, और थीं अंगुलियां—रूप भी था—यह कौन है? यह भयङ्कर वीभत्स नारी कौन है? और उसकी गोदमें ही यह कुष्ठरोग-ग्रस्त विकलाङ्ग शिशु किसका है?—उसका शिशु...गङ्गा आर्तनाद कर उठती है।

रामलाल डरसे उठ बैठता है। ऐसा उसने कौन-सा अपराध किया—स्वप्न? शायद स्वप्न ही। गङ्गाके सिरपर रामलाल पानीके छींटे देता है, हवा करता है। गङ्गा बेहोशीकी हालतमें ही कांपती रहती है।

बहुत दिन हुए, रामलालकी नौकरी छूट गयी है। रामलाल जिन्दा है या मर गया, यह कोई नहीं जानता। पांच-सात वर्षोंमें अनेक परिवर्तन हो गये हैं। सरकारी नौकरोंकी दूसरी-दूसरी जगह बदली हो गयी है और उनकी जगह नये-नये आदमी आ गये हैं। इस जगहके बहुत-से आदमी दूसरे-दूसरे मुहल्लोंमें चले गये हैं और दूसरी जगहके आदमी

यहां आकर बस गये हैं। जो उस वक्त छोटे थे, वे अब बड़े हो गये हैं—उनका नया दृष्टिकोण है, नयी विचार-धारा है। कोई नौकरीकी तलाशमें और कोई नौकरी मिल जानेके कारण, सब चारों ओर बिखर गये हैं। कितनी ही औरतें विवाहके बाद सुदूर देशोंमें चली गयी हैं। इसके अलावा कितनों ही की मृत्यु हो चुकी है।...जहां इतना बड़ा परिवर्तन हो गया हो, वहां गङ्गाको खोते कितनी देर लगती है।

गङ्गासे जिनकी घनिष्टता थी, वे कहते थे कि रामलालकी नौकरी छूटते ही गङ्गा भाग गयी। जूट मिलके मजदूरोंकी बस्तीमें रहती है। फिर विवाह किया है या नहीं, इसका तो पता नहीं। पर किसी मजदूरके साथ ही रहती है। कुष्ठरोगीकी पत्नी—मजदूरके अलावा और कौन ग्रहण करेगा!

काफी लम्बे अरसेके बाद स्वास्थ्य-प्रदर्शनीका आयोजन हुआ है। प्रदर्शनीमें बहुत भीड़ है।

रास्तेके दोनों तरफ बहुत-से भिखारी इकट्ठे हैं। उनका वचनविन्यास विचित्र है और उनकी टेकनिक भी अजीब है। उनके दुःख और दुर्दशासे करुणा आती है, पर उनके जुल्मसे आत्मरक्षाकी कोशिश ही बढ़ जाती है।

प्रदर्शनी देखने बहुत आदमी आये हैं। तिवारीजी भी सपरिवार आये हैं। तिवारीजीके साथ पूरी एक सेना है। छोटे-बड़े, सब मिलाकर चौदह होंगे।

विलायतो बीबीने रास्तेके एक तरफ खड़े होकर कहा, हम सब यहां खड़े हैं, तुम चौदह टिकट खरीद लाओ। ओफ, कैसी भीड़ है। विलायतो बीबीने आंचलसे एक रुपया निकालकर देते हुए कहा, यह लो, पर दो आने लौटा लाना।

दो आने लौटकर आयेंगे, इतना हिसाब तिवारीजी भी जानते हैं। पर बिना अनुमतिके ही कहीं तिवारीजी दो आने चाट वगैरहमें खर्च न कर दें, इसीलिए पहलेसे ही यह चेतावनी दी गयी थी।

तिवारीजी कच्चे-बच्चोंकी सेनाको विलायतो बीबीके जिम्मे रखकर टिकट लेनेके लिए अग्रसर हुए। पाकेटमारोंका बार-बार उल्लेख कर, रुपयेको हाथमें ही रखनेकी हिदायत देना विलायतो बीबी नहीं भूलीं।

तिवारीजी यहां कोई पुण्य-कर्म करने नहीं आये थे। पीछे पड़े हुए भिखारियोंसे जब किसी तरह पिण्ड न छुड़ा सके, तो एकके जोरसे चपत जमायी। अब सब पीछे हट गये।

पास ही एक भिखारिन खड़ी थी। उसने भिक्षा मांगनेके लिए उसी वक्त अपना हाथ फैलाया था। पर फौरन् ही डरसे पीछे खींच लिया।

लेकिन तिवारीजी चौंक पड़े। गङ्गा कहारिन भीख मांगती है? यह कैसा चेहरा है? रूप नहीं, यौवन नहीं—कैसा वीभत्स चेहरा है, मानो सारे विश्वका विद्रूप कर रहा हो।

और वह है रामलाल। एक काठके बक्समें अर्द्धगलित मांस-पिण्डकी तरह पड़ा हुआ है, सारा शरीर गल रहा है, एक अंगुली भी बाकी नहीं बची है, दोनों आंखोंसे दिखाई नहीं देता, नाक भी बिलकुल बैठ गयी है—वीभत्स और विकट दृश्य।

तिवारीजी कितनी देर तक देखते रहे, यह उन्हें याद नहीं। एकाएक वे सिहर उठे। रुपया अब भी उनकी दृढ़ मुट्ठीमें था, कहीं खोया नहीं।

गङ्गा पीछे हटकर खड़ी हो गयी। शायद तिवारीजीको पहचान नहीं सकी, दूसरे शिकारके अन्वेषणमें पीछे हट गयी थी।

तिवारीजीने रुपया गङ्गाकी हथेलीपर रख दिया। गङ्गा आंखें फाड़कर देखती ही रह गयी।

तिवारीजीने अपने जीवनमें आज तक इतना बड़ा दान कभी नहीं किया था।

———



विश्व-शान्तिकी समस्या और उसका समाधान

श्री चन्द्रिकाप्रसाद मिश्र "चन्द्र"

सन् १९१८ से, जबसे यूरोपीय महायुद्ध समाप्त हुआ था, संसारके विद्वान् विचारकोंके सामने यह प्रश्न उपस्थित है कि इन सर्वनाशक युद्धोंसे किस प्रकार बचा जाय ? राजनीतिज्ञों, दार्शनिकों, अर्थ-शास्त्रियों और शासन-विशेषज्ञोंने इस समस्यापर विचार किया। अन्तमें एक अन्तर्राष्ट्रीय पञ्चायत द्वारा सारे संसारकी समस्याओंको निबटाते रहनेकी बात सबको पसन्द आयी। पञ्चायत बनी और उसने अपने सामने कुछ सिद्धान्त भी रखे, जिनमें स्वभाग्य-निर्णय, न्याय, समानता और विश्व-बन्धुताकी डींग मारी गयी। यह भी निर्णय हुआ कि दुर्बल राष्ट्रोंके शोषणकी रोक की जाय और कोई राष्ट्र आवश्यकतासे अधिक सेना न रख सके। इस पञ्चायतको सारे भू-मण्डलकी शासिका सभा बनानेके लिए सदस्योंने एड़ीका पसीना चोटी तक पहुंचाया; परन्तु परिणाम बिलकुल विपरीत होते गये। देखते-देखते इस पञ्चायतका प्रभाव क्षीण हो गया। जापान चीनपर टूट पड़ा, इटलीने अबीसीनियापर हमला बोल दिया और अन्तमें जर्मनीने समग्र यूरोपको अपने पैरोंसे रौंद डाला। अन्तर्राष्ट्रीय पञ्चायतके पुजारीगण खिसियायी बिल्लीकी भांति झुंझलाकर कहने लगे—हम क्या करें, दुष्ट स्वभावके लोग हमारी भली योजनाओंके अनुसार नहीं चलते। नियमों और लोकोपयोगी सिद्धान्तोंसे नहीं, इन्हें तो डण्डेके जोरसे ही सीधा किया जा सकता है। बस, पञ्चायतने अपने सारे उद्देश्यों और सिद्धान्तोंको बालाये ताक रख दिया। अब चारों ओर केवल एक ही गूंज सुनाई देती है—शस्त्र, शस्त्र, शस्त्र। युद्ध, युद्ध, युद्ध !

सुख और शान्तिके मीठे सपने देखनेवाली भोली-भाली जनता अपनेको सहसा तुमुल द्वन्द्व और भयङ्कर सर्वनाशके बीच पाकर हतबुद्धि और भौचक्की-सी रह गयी है। भाग्यवादी काल, कर्म और ईश्वरको दोष दे रहे हैं; निराशावादी मन मारकर सर्वं वै पूर्णं ॐ का उच्चार कर रहे हैं; आशावादी किसी अज्ञात महाशक्तिके भूमण्डलपर अवतरित होकर संसारकी नवीन रचना करनेकी मधुर कल्पनामें अपने कष्टमय वर्तमानको भुलानेकी चेष्टा कर रहे हैं। संसारकी समस्याओंको चुटकी बजाते हल कर सकनेका दम्भ रखनेवाले राजनीतिज्ञ और विचारक अपनी विफलताओंपर झीखते हुए, अब यह कहते भी नहीं शरमाते कि संसारके सर्वनाशका कारण विज्ञान है। इधर पिछले दो वर्षोंमें यह विचारधारा कुछ जोर पकड़ती-सी दिखाई दी है। लोग अपने मनमें सोचने लगे हैं कि यदि विज्ञानने इन आततायी राष्ट्रोंके हाथमें संहारके इतने साधन न दे दिये होते, तो आज संसारपर इतना बड़ा सङ्कट कदापि न आता। बेचारे वैज्ञानिक अपनी खोपड़ी खुजाकर कह रहे हैं—"भगवान् जानता है कि हमने इन आविष्कारोंको संसारके समक्ष रखते समय कभी स्वप्नमें भी यह कल्पना न की थी कि उनका इतना भयङ्कर उपयोग किया जायगा।"

यथार्थ ही वैज्ञानिक इस आक्षेपसे अत्यन्त दुःखी हुए हैं और आज वे इस प्रश्नपर विचार कर रहे हैं कि उन्हें अपने भावी आविष्कारोंको संसारके समक्ष रखना चाहिए या नहीं और यदि रखना चाहिए, तो किस रूपमें। सच तो यह है कि इन अभागे वैज्ञानिकोंपर संसारके सर्वनाशके कारण बननेका दोष लगाना एक बड़ा अन्याय है। इसके विपरीत बहुत-से लोगोंका यह विचार है कि यदि संसारकी समस्याओंका सच्चा हल कभी कोई समुदाय निकाल सकेगा, तो वह वैज्ञानिकोंका ही समुदाय होगा। केवल अर्थ-शास्त्री और राजनीतिज्ञ इन समस्याओंको कभी सफलतापूर्वक न सुलझा सकेंगे।

आखिर ये युद्ध होते क्यों हैं? एक राष्ट्रको मिटाकर दूसरा अपनी सत्ताकी प्रतिष्ठा करनेको पागल क्यों हो जाता है ? राजनीतिज्ञ कहता है, संसारमें "जिसकी लाठी उसकी भैंस" का सिद्धान्त सदासे काम करता रहा है। जिसके हाथमें एक बार सत्ता आ जाती है, वह उसे छोड़नेको तैयार नहीं होता। सत्ताके द्वारा बलवान राष्ट्र अपने लिए अनेक प्रकारके सुभीते प्राप्त कर लेते हैं। दुर्बलों और असमर्थोंको संसारमें सदा ही असुविधाओंका सामना करना पड़ा है। शनैःशनैः दुर्बल

राष्ट्र शक्ति संग्रह करनेका प्रयत्न करते हैं। बलवान राष्ट्र उनके इस काममें बाधक होते हैं; क्योंकि वे जानते हैं कि शक्ति प्राप्त करके वे उन्हें उन सुविधाओंसे वञ्चित कर देंगे, जिनका उपभोग वे अभी तक करते आये हैं; परन्तु अनेक बाधाओंके होते हुए भी दुर्बल राष्ट्र कभी-न-कभी सबलोंको ललकारने योग्य हो ही जाते हैं। बस, संसारके युद्धोंका यही मूल कारण है। संसार सबलोंके लिए ही है। दुर्बलोंको इसमें स्थान न कभी मिला है, न मिल सकता है। जब संसारमें समान शक्तिवाले राष्ट्र होंगे और शक्तियोंका सङ्गठित सन्तुलन भी समान होगा, तभी युद्धोंसे हमारा पीछा छूट सकेगा।

अर्थ-शास्त्री कहता है, संसारकी सम्पत्तिका आवश्यकतानुसार समान विभाजन हो जानेसे फिर युद्ध न होंगे। परन्तु इस प्रकारके विभाजनमें सबसे बड़ी बाधा राजनीतिक शक्ति है। यह शक्ति जिस देश या राष्ट्रके पास अधिक होती है, वही डाकू बन जाता है। एक ही देशमें किसी विशेष समुदायके हाथमें जब यह शक्ति आ जाती है, तो वह इतना प्रबल हो जाता है कि अपने ही देश-भाइयों तकको दबाकर चूसने लग जाता है। इस प्रकार संसारमें सुविधा-प्राप्त राजनीतिक शक्ति-सम्पन्न, शोषक और सुविधाओंसे वञ्चित, शक्तिहीन शोषित—ऐसे दो पृथक्-पृथक् वर्ग बन गये हैं। जब तक राजनीतिका आधार समानता न होगी, तब तक सङ्घर्ष बराबर जारी रहेगा। कुछ राजनीतिज्ञोंको अर्थ-शास्त्रियोंकी इन बातोंमें तथ्य दिखाई दिया और उन्होंने उनके इस सिद्धान्तको स्वीकार करके साम्य-सिद्धान्तपर अपने राजनीतिक भवनकी पुनर्रचना की।

साम्यवादके जन्मकी यही कहानी है। परन्तु संसारकी राजनीति कभी भी किसी एक निश्चित सिद्धान्तको आधार बनाकर स्थिर नहीं हो सकती। देश-काल, परिस्थिति, स्वार्थ और मानव-भावनायें संसारको राजनीतिको सदा प्रभावित करती रही हैं और आगे भी करती रहेंगी। संसारमें जिनके हाथमें राजनीतिक शक्ति थी, उन्होंने इन बातोंकी सहायता इस नवीन विचार-धाराको रोकनेके लिए ली। आज जर्मनी, रूस, इंगलैण्ड, इटली, जापान, अमेरिका आदि सबल राष्ट्रोंकी जो टोलियां बनती--बिगड़ती दिखाई देती हैं, वे किसी विशिष्ट सिद्धान्तके आधारपर नहीं—परिस्थिति और स्वार्थकी प्रेरणा उन्हें ऐसा करनेको बाध्य कर रही है। आप प्रश्न करेंगे, "तो क्या इन युद्धोंका क्रम इसी प्रकार जारी रहेगा?"

अर्थ-शास्त्रियों और राजनीतिज्ञोंका तो विश्वास है कि युद्धोंका क्रम जारी रहेगा; पर इस सम्बन्धमें एक प्रसिद्ध वैज्ञानिककी सम्मति सुनिये। वह कहता है:—

"निराश होनेका कारण नहीं है। मानव-सभ्यता विनाश नहीं, विकासकी ओर अग्रसर हो रही है। संसारमें युद्ध स्वार्थके लिए होता है। मनुष्यमें दो प्रबल प्रवृत्तियां सदा विद्यमान रहती हैं—एक अपनेको अधिक सुखी बनानेकी इच्छा, दूसरी स्वार्थ। यही प्रवृत्तियां बाधा पानेपर उग्र रूप धारण कर लेती हैं और मनुष्य अपनी तमाम शक्तियोंका उपयोग करके उन बाधाओंको दूर करनेका प्रयत्न करता है। युद्धोंका मूल कारण स्वार्थोंका सङ्घर्ष है। परन्तु वह दिन दूर नहीं, जब मनुष्य अपने स्वार्थोंकी सिद्धिके दूसरे सरलतर उपाय पाकर युद्धोंका सहारा लेना छोड़ देगा, क्योंकि इन युद्धोंमें दोनों पक्षोंकी हानि होती है। हम नहीं समझते कि संसारमें कोई भी देश या जाति इतनी मूर्ख हो सकती है जो उन वस्तुओंके लिए हानि उठाकर दूसरोंसे लड़ने जाय, जिन्हें वह एक वैज्ञानिककी लेबोरेटरीसे सहज ही प्राप्त कर सकती है।"

आज संसारमें युद्ध मुख्यतः खाद्य पदार्थों और कच्चे मालके लिए होते हैं। दुर्भाग्यवश संसारके प्रत्येक भागमें ये वस्तुयें सुलभ नहीं हैं। जिन राष्ट्रोंको इनके प्राप्त करनेमें कठिनता होती है, वे उन राष्ट्रोंको ईर्ष्याकी दृष्टिसे देखते हैं जिन्हें वे आवश्यकतासे अधिक हथियाये हुए पाते हैं। जापान चीनको इसीलिए हस्तगत करना चाहता है और जर्मनी इसी उद्देश्यसे अंगरेजोंके विशाल साम्राज्यका कुछ भाग अपने अधिकारमें लानेको उतावला हो रहा है। स्वयं अंगरेज भी इसीलिए अपने साम्राज्यको मुट्ठीमें कसकर रखना चाहते हैं और भारतकी स्वतन्त्रताको तब तक टालना चाहते हैं, जब तक उसे टाल सकें। परन्तु वैज्ञानिकोंके प्रयत्नोंसे संसारकी यह समस्या भविष्यमें बहुत कुछ हल हो जायगी।

खाद्य पदार्थोंकी आवश्यकता संसारकी प्रमुख आवश्यकता है। उनके बिना मनुष्यका जीना ही सम्भव नहीं है। अधिकांश खाद्य पदार्थ कृषि द्वारा ही प्राप्त होते हैं।

परन्तु अभी तक संसारकी समस्त भूमिका केवल १२ प्रतिशत भाग ही ऐसा है, जिसमें खेती होती है। शेष भागमें खेती करना कठिन होनेसे उसे छोड़ दिया गया है। वैज्ञानिकोंकी सहायतासे ये कठिनाइयां शीघ्र ही दूर हो जायंगी और बड़े-बड़े मरुस्थल उपजाऊ खेत बन जायंगे; सहाराके विशाल मरुस्थलको समुद्र-जलसे सींचकर एक अंश तक उपजाऊ भू-भाग तैयार किया जा सकेगा। वैज्ञानिक उपायोंसे जल-वृष्टि भी की जा सकेगी। इस प्रकार भविष्यमें इतनी अधिक भोजन-सामग्री तैयार हो सकेगी कि उसके द्वारा आजसे दुगुनी मनुष्य-संख्याको पर्याप्त भोजन प्राप्त हो सकेगा।

खाद्य पदार्थोंकी समस्याको वैज्ञानिक एक दूसरे प्रकारसे भी हल करना चाहते हैं। मानव-शरीरके पोषणके लिए विटामिन और कुछ खनिज पदार्थोंकी परमावश्यकता वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। इनमेंसे कुछ तो वे अपनी लेबोरेटरीमें प्रस्तुत कर सकेंगे और शेषको वैज्ञानिक खाद देकर फलों और शाक-भाजियोंमें सुलभ बना दिया जायेगा। कोल्चीसाइन (Colchi cine) नामक एक ऐसे पदार्थका पता भी वैज्ञानिकोंने लगाया है, जिसके द्वारा एक ही पेड़ या पौधेसे बहुत बड़े-बड़े फल प्राप्त किये जा सकेंगे। इसके उपयोगके द्वारा कुछ फलोंका आकार १००० गुना तक बढ़ाया जा सकेगा। हमें तो आशा है कि अगले कुछ वर्षोंमें बड़े-बड़े सुन्दर, स्वादिष्ट और पोषक फलोंकी इतनी अधिकता हो जायगी कि हम उन्हें खा न सकेंगे।

खाद्य पदार्थोंके अतिरिक्त हमें अपने शरीरके लिए वस्त्र और दैनिक व्यवहारके लिए अन्य वस्तुयें भी चाहिए। ऊन, कपास और रेशमके अतिरिक्त आज अनेक प्रकारके कृत्रिम तन्तुओंको वैज्ञानिकोंने खोज निकाला है। अब वस्त्रोंकी समस्या कोई ऐसी समस्या नहीं रह गयी है, जिसके लिए युद्ध करनेकी आवश्यकता हो। कपासकी उपज भी काफी बढ़ गयी है। मोटरों और वायुयानोंके लिए तथा अन्य अनेक यन्त्रोंके लिए हमें खनिज तैलकी आवश्यकता होती है। दुर्भाग्यसे संसारमें यह इतना सुलभ नहीं है और इसके लिए राष्ट्रोंमें कलह और द्वन्द्व प्रायः होता ही रहता है। अमेरिकाके पास जितनी तैल-राशि है, यदि उसका इसी प्रकार उपयोग होता रहा, तो वह तीस वर्षमें समाप्त हो जायगी। परन्तु वैज्ञानिकोंने आशा नहीं छोड़ी है, उन्होंने पता लगा लिया है कि शलकी चट्टानोंमें इतनी अधिक तैल-राशि है कि वह ३००० वर्ष तक समाप्त नहीं हो सकती। अभी इस तैलको प्राप्त करनेमें व्यय अधिक होता है; परन्तु शीघ्र ही इसे कम खर्चमें निकालनेका प्रबन्ध हो जायगा। इसके अतिरिक्त तैलकी जगह व्यवहार हो सकने योग्य अन्य पदार्थोंके आविष्कार करनेकी ओर भी वैज्ञानिकोंका ध्यान लगा हुआ है। आस्ट्रियाके एक वैज्ञानिकने शीरेसे (जो शकर बनानेके बाद बचता है) एक श्रेष्ठ प्रकारकी मोटर-स्पिरिट तैयार की थी। उनकी सम्मतिमें नाज, लकड़ी, समुद्री घास और पत्तियोंसे भी यह पदार्थ तैयार किया जा सकता है। इससे यह सिद्ध है कि भविष्यमें अपने यानोंको चलानेके लिए मनुष्य खनिज तैलका मोहताज न रहेगा। खनिज तैलकी उपयोग-विधिको बदलकर थोड़े तैलसे ही अधिक काम लेना भी सम्भव हो सकेगा।

कुछ धातुयें तो ऐसी अवश्य हैं जिन्हें वैज्ञानिक अभी तक प्रयोगशालामें तैयार नहीं कर सके हैं; परन्तु उन्होंने तमाम उपयोगी वस्तुओंको अन्य उपायोंसे तैयार करनेकी एक आश्चर्यजनक योजना अवश्य प्रस्तुत कर ली है। थोड़े दिनोंमें हम देखेंगे कि पृथ्वीके गर्भको फाड़कर इतने परिश्रमसे निकाले गये इन दुर्लभ पदार्थोंकी हमें आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

रोगोंपर विजय प्राप्त करनेके लिए भी वैज्ञानिक निरन्तर उद्योग कर रहे हैं। सल्फा पाइरी डाइन (Sulfa pyridine), सल्फा थाया जोल (Sulfa thie Zole) नामक ऐसी औषधियोंका पता लगाया जा चुका है, जो अनेक रोगोंका नाश अकेले ही कर सकती हैं। हमारे भोजनमें कुछ ऐसे विशिष्ट पदार्थोंका समावेश भी वैज्ञानिक करना चाहते हैं, जो हमें रोगग्रस्त ही न होने दें।

यन्त्रों आदिके चालनके लिए हमें शक्तिकी आवश्यकता होती है। यह शक्ति आजकल बहुत महँगी पड़ती है; परन्तु वैज्ञानिक उसे सस्ती और सुलभ बनानेके उपाय ढूंढ़ रहे हैं। अणु (Atom) से अपरिमित शक्ति प्राप्त करनेकी ओर आज अनेक वैज्ञानिकोंकी प्रवृत्ति लगी हुई है। यूरेनियम (Uranium) नामक एक भारी धातुके अणुओंसे यह शक्ति प्राप्त हो सकती है। परन्तु यह धातु संसारमें बहुत ही थोड़ी मिलती है। इस प्रयोगके सर्वथा सफल होनेमें युग

भी लग सकते हैं। परन्तु यह आशा भी छोड़ी नहीं जा सकती कि थोड़े दिनोंमें ही यह प्रयोग सर्वथा सफल हो जायगा और संसारके लोगोंको शक्ति सुलभ हो जायगी। यदि ऐसा हुआ, तो किसीको किसीका मोहताज न रहना पड़ेगा।

ईश्वर करे, वह दिन शीघ्र ही आवे, जब किसीको अपनेको सुखी बनानेके लिए दूसरेको दुःखी करनेकी आवश्यकता प्रतीत न हो और प्रत्येक मनुष्य यह कह सके—

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः।"

बीनपर सो जाऊंगा मौन

आज मैं गाता सुखके गान
और कल हो जाऊंगा मौन!

(१)

बनायी मैंने अपनी कुटी,
संजोये जीनेके सामान!
जहां सुन पड़े प्यारके बोल
और गूंजे कुछ गुन-गुन गान!
दिखाया सबको मैंने घूम
'हुए पूरे मेरे अरमान!'
कभी आयेगी ऐसी घड़ी,
रहेगी बस मेरी पहचान!
छोड़कर मुझे देखती कुटी
दूर वनको जाऊंगा मौन!

(२)

मिला उंगलीका मधुर दुलार,
हुई मुखरित जीवनकी बीन!
श्रवण कर अपने स्वरकी गूंज
हुआ मैं मधुर लगनमें लीन!
और छन-छनपर चलते रहे
रागपर राग, गीतपर गीत!
कभी छायेगा ऐसा मौन,
बन्द हो जायेगा सङ्गीत!
लगेगी ऐसी गहरी नींद,
बीनपर सो जाऊंगा मौन!

(३)

जन्म है प्रथम जान-पहचान,
मरण जाना-पहचाना हुआ!
बीचका है जीवन, कुछ देर
ठहर बैसे रुक जाना हुआ!
किसीने हो पर्देकी ओट,
पुकारा एक-एकका नाम!
प्यालियां लुढ़कीं, भगदड़ मची,
मचा सूने घरमें कुहराम!
लगेगी वहां घाटपर भीड़,
भीड़में खो जाऊंगा मौन!

(४)

चमनके एक फूलको चूम
किया मैंने भी दो क्षण प्यार!
बिठाकर घरमें प्रतिमा एक
बसाया मैंने भी संसार!
सही फिर कठिन वज्रकी चोट,
प्रेम-फूलोंकी मीठी मार!
रुंधेगा कभी सुरीला कण्ठ,
कण्ठका टूटेगा गलहार!
पाप सम्पूर्ण, अधूरा प्यार
अश्रुसे धो जाऊंगा मौन!

(५)

मिलेगी एक जन्मको अवधि, मरणको चिर-वाञ्छित त्यौहार
और जीवनको पूर्ण विराम, जगतको करुण विदाका भार!
रुकेगी बहती सरिता एक, कटेगी एक पेड़की डाल!
चलेगा कभी पवन झकझोर, उड़ेगा पिंजड़ेसे खग-बाल!
मिलेगी मुझे चितापर आग, लिपटकर सो जाऊंगा मौन!

—गोपालसिंह नेपाली।

स्टर्लिङ्ग ऋणका पुनरावर्तन

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालङ्कार

भारतीय मुद्राके इतिहासमें ९००००००० पौण्ड (९ करोड़ पौ०) अर्थात् लगभग १२० करोड़ रु०, स्टर्लिङ्ग ऋणका पुनरावर्तन है। ७ फरवरी १९४१ को भारत-सरकारने घोषणा की कि निम्न स्टर्लिङ्ग ऋणोंका निम्न मूल्यपर पुनरावर्तन किया जायगा:—

		१०० पौ० की प्रति सिक्युरिटीका मूल्य नामिनल रु० आ०पा०
३ प्रतिशत	१९४९-५२ इण्डियन लोन—	१३३०—१९—०
३॥ ,,	१९५४-५९ इण्डियन लोन—	१३७०—१४—०
४ ,,	१९४८-५३ इण्डियन लोन—	१४२१— १—०
४॥ ,,	१९५०-५५ इण्डियन लोन—	१४६७—१४—०
४॥ ,,	१९५८-६८ इण्डियन लोन—	१५०४—११—०
५ ,,	१९४२-४७ इण्डियन लोन—	१३९७—११—०

भारत-सरकारके इस ऐतिहासिक निर्णयका देशके एक वर्गने जहां स्वागत किया है, वहां एक वर्ग ऐसा भी है, जो सरकारके इस कार्यको दूरदर्शितापूर्ण नहीं मानता। उसका ख्याल है कि लन्दनमें जमा हो रही स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीजका उपयोग इससे अधिक लाभप्रद काममें हो सकता था, और ब्रिटिश कर्ज उतारकर जो थोड़ा-सा सूदका बोझा हल्का किया गया है, वह पर्याप्त नहीं है और इससे वह आर्थिक स्वतन्त्रता भारतको प्राप्त नहीं होगी, जो कि इस जमा सिक्युरिटीजका अन्य प्रकारसे उपयोग करनेसे प्राप्त होती। शिव-जीके ताण्डव-नृत्यको जिस प्रकार हरएकने अपनी दृष्टिसे देखा था, उसी प्रकार भारत-सरकारके इस निर्णयको भी हरएकने अपनी दृष्टिसे देखा है। अतः प्रत्येकके दृष्टिकोणको देखनेसे पहले इसकी पार्श्व-भूमिका जानना अधिक उचित होगा।

पार्श्व-भूमि

युद्ध छिड़नेपर भारतका यूरोपसे आयात-व्यापार लगभग बन्द हो गया। मगर भारतका निर्यात-व्यापार जारी रहा, बल्कि कुछ मात्रामें तो बढ़ा ही। कई ऐसी चीजें थीं और हैं जिनकी, लड़ाई हो या न हो, जरूरत बनी रहती है। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सरकारने भी भारतीय सेनाका कुछ खर्च देना स्वीकार किया। इस प्रकार एक बड़ी राशि वहां भारतके नाम जमा हो गयी। इस सञ्चित राशिके बलपर रिजर्व बैङ्क स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीज खरीदता रहा। एक ही सालमें रिजर्व बैङ्कके 'इश्यु डिपार्टमेण्ट' में ७२ करोड़ रु० की स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीज जमा हो गयी थीं, और बैङ्कके बैङ्किङ्ग डिपार्टमेण्टने युद्धके बाद एक सालमें स्टर्लिङ्ग रोकड़ बाकी २० करोड़ रु० बढ़ा लिया था। यही नहीं, ३०जून १९४० तक २४० लाखका स्टर्लिङ्ग कर्ज चुकाया जा चुका था। भारतकी आर्थिक स्थितिकी एक बड़ी कमजोरी यह है कि उसको विदेशोंका बड़ी मात्रामें देना है। इसका एक बड़ा भाग स्टर्लिङ्ग ऋणमें और इसपर दिये जानेवाले सूदके रूपमें है।

मगर रुपयेका सम्बन्ध युद्ध-कालमें भी स्टर्लिङ्गसे जोड़ रखा गया। फलतः रुपया-स्टर्लिङ्गका लेन-देन और भुगतान निश्चित सरकारी रेट ४.०२ स्टर्लिङ्गसे होता है, और भारतको न्यूयार्कमें उन्मुक्त बाजारका लाभ न मिला। न्यूयार्कमें स्टर्लिङ्गका भाव ३.७५ डालर, ३.८० डालर और कभी-कभी ३.१९ डालर तक चला गया है। यदि सरकारी रेटसे लेन-देन न होकर बाजारकी रेटसे होता, तो भारतको लाभ रहता। इसके अतिरिक्त भारत-सरकारने ब्रिटिश सरकारकी प्रेरणासे भारत-रक्षा-कानूनके अन्दर सम्पूर्ण डालर-स्रोतोंपर अधिकार कर लिया। भारतीय विनिमय-नियन्त्रणके अनुसार भारतके सब निर्यात-व्यापारियोंको अपने सब डालर-स्रोत सरकारी डालर-स्टर्लिङ्ग रेटपर रिजर्व बैङ्कको दे देना पड़ता है। यह सब रिजर्व बैङ्क ब्रिटिश गवर्नमेण्टको दे देता है, जिससे वह अमेरिकामें युद्ध-सामग्री खरीद सके। भारत अप्रत्यक्ष रूपसे इस प्रकार ब्रिटिश सरकारकी जो आर्थिक सहायता कर रहा है, इसका कोई लेखा नहीं रखा जा रहा है। फलतः इस स्वर्ण अवसरपर भारतके लिए डालर-रिजर्व प्राप्त करने या डालर-स्रोतोंसे सोना खरीदनेकी न्यूयार्कके बाजारमें कोशिश नहीं की गयी और इस तरह भारतीय मुद्राके स्वर्ण-भण्डारको बढ़ानेका स्वर्ण अवसर खो दिया गया।

यदि सम्पूर्ण डालर-स्रोतोंको ब्रिटिश गवर्नमेण्टके हाथ न वेच दिया जाता, तो यह सम्भव था। मगर भारत-सरकार कमजोर निकली और वह डालर-स्रोतके एक अंशकी भी रक्षा न कर सकी।

स्वर्ण-भण्डार बढ़ानेकी जरूरत कागजी मुद्राके बढ़नेसे स्वतः सिद्ध है। १ सितम्बर १९३९ को २१७.१८ करोड़के नोट प्रचलित थे और ३० अगस्त १९४० को यह बढ़कर २६०.१७ करोड़के हो गये। इस प्रकार एक सालमें नोटोंका प्रचलन ४७.८९ से ६७.६२ तक वस्तुतः बढ़ गया, मगर इसकी पुष्टिके लिए रखी जानेवाली धात्वीय पूंजीमें इसी अनुपातसे वृद्धि नहीं हुई। मसलन् रुपी सिक्युरिटीज ३७.३८ करोड़ रु० से ४९.६१ करोड़ रु० तक बढ़ गयी। स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीजकी वृद्धि इससे भी अधिक उल्लेखनीय है। स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीज ५९.५० करोड़ रुपयेसे १३१.५० करोड़ रु० तक बढ़ गयी—अर्थात् ७२ करोड़ रुपयेकी वृद्धि हुई। इसका अर्थ है कि लड़ाईके पहले जहां स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीज कुल नोटोंका २७ प्रतिशत थी, वहां एक साल बाद कुल जारी किये गये नोटोंका आधेसे अधिक हो गयी। इस अर्सेमें रिजर्व बैङ्कके स्वर्ण-भण्डारमें जरा भी वृद्धि नहीं हुई। सन्तोषकी बात इतनी ही हुई कि भारतका लन्दनमें जो स्वर्ण-भण्डार था, वह सब अब भारत आ गया है।

१९३९-४० के पहले दस मासोंमें ट्रेजर (आमदनीका नियन्त्रण करनेवाला राज्यका महकमा या खजाना) में भारतका २७ करोड़ रु० से अधिकका अनुकूल रोकड़ बाकी था। यह होते हुए भी जनवरी १९४० में सोनेका निर्यात १९३४ के बादसे सबसे अधिक हुआ। रिजर्व बैङ्कने अपने लिए एक औन्स भी सोना नहीं खरीदा, मगर वह विदेशोंके लिए खरीदता रहा और उनके लिए उसने ८.२८ करोड़ रु० का सोना खरीदा। इस अवस्थासे दुःखी होकर पिछले साल भारत-सरकारके भावी शिक्षा-सदस्य श्री नलिनीरञ्जन सरकारने यह राय दी थी :—१—प्रचलित रेटपर रिजर्व बैङ्कको अपने स्वर्ण-भण्डारकी गणना करनेकी इजाजत दी जाय। २—स्वर्णका निर्यात सर्वथा बन्द कर दिया जाय और रिजर्व बैङ्क जितना सोना खरीद सके, खरीदे। ३—प्राप्त डालर-स्रोतसे अमेरिकामें सोना खरीदा जाय। ४—रिजर्व बैङ्क विदेशोंके वास्ते सोना न खरीदे। ५—कागजी स्टर्लिङ्ग पूंजीको और न जमा किया जाय। कहना न होगा कि श्री नलिनीरञ्जन सरकारकी दृष्टि केवल भारतीय मुद्राके पोषक स्वर्ण-भण्डारको बढ़ाने तक ही सीमित थी।

निर्णयके समयकी स्थिति

स्टर्लिङ्ग ऋणके पुनरावर्तनके समय रिजर्व बैङ्ककी स्थिति ७ फरवरी १९४१ को इस प्रकार थी। बैङ्कके 'इश्यु डिपार्टमेण्ट' में १८४ करोड़ रु० था (४४ करोड़ रु० का सोना और १४० करोड़ रु० की स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीज)। इश्यु डिपार्टमेण्टकी कुल पूंजी २६९ करोड़ रु० थी। साथ दिये गये मानचित्रसे तुलनात्मक स्थितिपर अच्छा प्रकाश पड़ता है :—

प्रचलित नोटोंके बदले रखा

(करोड़ रुपयोंमें)

तारीख	स्वर्ण मुद्रा व स्वर्ण शलाका	स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीज	रुपया सिक्का	रुपी सिक्युरिटीज	योग नोट
मार्च	४४·४२	५९·५०	६६·००	३७·३०	२०७·२२
१९३९	२१ प्रतिशत	२९ प्रतिशत	३२ प्रतिशत	१८ प्रतिशत	
मार्च	४४·४२	११३·५०	५५·९४	३८·३५	२५२·२१
१९४०	१८ प्रतिशत	४५ प्रतिशत	२२ प्रतिशत	१५ प्रतिशत	
७ फरवरी	४४·४२	१४०·५०	३०·९२	४९·६०	२६५·००
१९४१	१६॥ प्रतिशत	५३ प्रतिशत	११॥ प्रतिशत	१९ प्रतिशत	

७ फरवरीसे पहले रिजर्व बैङ्क अपनी कुल पूंजी या ५० करोड़ रु० का—इन दोनोंमेंसे जो ज्यादा हो;—$\frac{3}{4}$ से अधिक रुपी सिक्युरिटीज नहीं रख सकता था। यह प्रतिबन्ध उसपरसे अब हटा दिया गया है और अब कुल पूंजीका $\frac{2}{5}$ तक ही वह बाहरी पूंजीमें, अर्थात् स्वर्ण-मुद्रा और स्वर्ण-शलाका या स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीजमें रखनेको बाध्य है। स्वर्णका मूल्य ४० करोड़ रु० से कम न होना चाहिए। इसलिए नये संशोधनके अनुसार २६५ करोड़ रु० का $\frac{2}{5}$ अर्थात् ११० करोड़ रु० की कीमत तकका ही स्वर्ण और स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीज रखनेको रिजर्व बैङ्क बाध्य था और वह स्वतः लगभग ७४ करोड़ रु० की और रुपी सिक्युरिटीज ले सकता था।

कर्ज चुकाया नहीं, पुनरावर्तन किया

सरकारी निर्णयसे यह नहीं समझना चाहिए कि ९ करोड़ पौ० का विदेशी ऋण चुका दिया गया। यह तो केवल स्टर्लिङ्ग ऋणके एक भागका पुनरावर्तन किया गया है। क्योंकि सरकारी घोषणामें स्पष्ट कहा गया था कि स्टर्लिङ्ग लोन रखनेवाले चाहें, तो वे उसी कीमतके रुपी लोनमें उसको परिवर्तितकर या बदल सकते हैं। कुछ लोगोंने समझा कि इसके पीछे गया-कांग्रेसके निर्णयसे उत्पन्न भय काम कर रहा है। श्री राजगोपालाचारीके प्रस्तावपर गया-कांग्रेसने यह निश्चित किया था कि इसके बादसे सरकार जो कर्ज लेगी, उसके लिए भारत अपनेको जिम्मेदार नहीं समझता और पुराने कर्जोंमेंसे उसीको वह चुकायेगा, जो कि भारतके हितके लिए लिया गया होगा। कांग्रेसने श्री के० टी० शाह, श्री कुमारप्पा और श्री भूलाभाई देसाईकी एक उपसमिति भी पुराने सरकारी कर्जोंकी जांचके लिए बिठायी थी, और उसकी रिपोर्ट इस समय सार्वजनिक सम्पत्ति है। इसके बादसे अंगरेजोंके मनमें यह भय उत्पन्न हो गया है कि केन्द्रमें राष्ट्रीय सरकार स्थापित होते ही वह बोल्शेविक गवर्नमेण्टके समान सबसे पहले विदेशी कर्जको देनेसे इनकार करनेकी घोषणा करेगी। गोलमेज कान्फरेन्समें भी यह भय उनके मनमें काम कर रहा था। इसलिए यह सोचना अकारण नहीं है कि स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीजको रुपी सिक्युरिटीजमें बदलनेका कारण यह भय है। यदि भारतका सारा कर्ज रुपयेमें हो और वह भारतीय पूंजी लगानेवालोंके हाथमें हो, तो यदि राष्ट्रीय सरकार कर्ज देनेसे इनकार भी कर दे, तो भी इस उपायसे अंगरेज पूंजी लगानेवालोंको कोई नुकसान न होगा। यह सन्देह अकारण नहीं कहा जा सकता। क्योंकि स्टर्लिङ्ग ऋणके पुनरावर्तनके उद्देश्यसे स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीजकी कीमतके बराबरकी रुपी सिक्युरिटीज उत्पन्न की गयी। भारतीय व अभारतीय स्टर्लिङ्ग लोन रखनेवालोंको उनके इच्छानुसार उसके बराबरकी रुपी सिक्युरिटीज दी गयी। शेषका भुगतान सरकारके स्टर्लिङ्ग रोकड़ बाकी और रिजर्व बैङ्कके स्टर्लिङ्ग-स्रोतसे किया गया। लिये गये स्टर्लिङ्गके बदले गवर्नमेण्ट और रिजर्व बैङ्कने उसके बराबर मूल्यकी इसी उद्देश्यसे उत्पन्न की गयी रुपी सिक्युरिटीज ले ली। इस प्रकार स्टर्लिङ्ग ऋणका रुपी लोनमें पुनरावर्तन हो गया। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि सरकारका ऋण-भार कम हो गया है। हां, अब विदेशको पहलेसे कम मात्रामें सूदके रूपमें उसको देना होगा।

ब्रिटेनको लाभ

स्टर्लिङ्ग ऋणके पुनरावर्तनसे ब्रिटिश सरकारको भारतसे कम लाभ नहीं हुआ है। सम्भवतः ब्रिटिश सरकारका लाभ देखकर ही यह पुनरावर्तन किया गया है। ब्रिटेनको लड़ाई लड़नेके लिए रुपयेकी जरूरत थी, इस विधिसे उसको रुपया मिला। सरकारी पुनरावर्तनकी घोषणापर लिखते हुए 'टाइम्स आफ इण्डिया' ने स्वीकार किया था—९ करोड़ पौण्ड समयसे पहले देकर भारत ब्रिटेनकी उसी मात्रामें आर्थिक सहायता कर रहा है, जिस प्रकार कि वह इससे पहले सप्लाई (रसद) देकर और रणभूमिमें सेना भेजकर करता रहा है। बात यह है कि जिन अंगरेजोंका रुपया भारत-सरकारके स्टर्लिङ्ग लोनमें फंसा हुआ था, वह इस पुनरावर्तन-विधिसे मुक्त हो गया और वे अब ब्रिटिश सरकारके वार-फण्डमें उसको लगा सकते हैं।

भारतमें स्वागत

भारतमें सरकारके इस निर्णयका स्वागत होनेका कारण एक कटु अनुभव था। विगत महायुद्धमें भी व्यापारिक सन्तुलनके भारतके अनुकूल होनेके कारण लन्दनमें भारतके नाम एक अच्छी राशि जमा हो गयी थी। मगर भारत-सरकारके तात्कालिक अर्थ-सदस्य लार्ड हेलीने इस सञ्चित

पूंजीके बदले सोना न खरीद करके चांदी खरीदी और यह सब व्यर्थ चला गया। उसीके बादसे युद्ध-कालके बादकी विनिमय-दरकी समस्या विकट रूपमें उत्पन्न हो गयी। सरकारने सरकारी सदस्योंके बहुमतके जोरपर १ शि० ६ पे० विनिमय-दर निश्चित कर दी। निस्सन्देह इस सञ्चित धनके विनाशकी कुछ जिम्मेदारी हमपर भी है, जो कि आन्तरिक लेन-देनमें कागजी मुद्राकी अपेक्षा धात्वीय मुद्राको अधिक पसन्द करते हैं। इस निर्बलताका लाभ उठाकर सरकारने चांदी खरीदी, जिसका परिणाम हम आज भी भोग रहे हैं। भारतीय जनताको भय था कि कहीं फिर इसी प्रकारका न हो जाय।

दूसरी बात यह है कि सरकार अब तक सदा भारतीय कर-दाताओंके हितकी बलि देकर ब्रिटिश पूंजी लगानेवालोंके लाभका ध्यान रखकर लन्दनके बाजारमें कर्ज लेती रही है। १९३३ में भारतमें ३½ प्रतिशतपर १९४७-५० का कर्ज सफलतापूर्वक लेनेके बाद भी १९४८-५३ का कर्ज ४ प्रतिशतपर भारत-मन्त्रीने लन्दनमें लिया। ½ प्रतिशतका ब्रिटिश पूंजी लगानेवालोंको मुफ्तमें यह लाभ दिया गया या नहीं?

तीसरी बात यह है कि ब्रिटेन सोनाके बदले सोना देनेकी क्षमता इस समय नहीं रखता। उसका सारा सोना अमेरिकामें युद्ध-मालकी खरीदके लिए लग चुका है। वह भारतपर जागृत लोकमतको देखते हुए दुबारा चांदी लादनेकी हिम्मत नहीं कर सकता था।

चौथी बात यह है कि सरकारकी सूदकी दर कम रखनेकी नीतिसे व्यावसायिक जगतमें आशा हुई कि युद्धके बाद नवीन उद्योग-धन्धे चालू होंगे और इस समय विद्यमान धन्धोंका विस्तार होगा। पिछली लड़ाईके बाद ९ प्रतिशत सूद तक ऊंची दरपर जूट सदृश—जिसपर कि भारतका एकाधिकार है—उद्योग-धन्धे चलानेके लिए रुपया मिला। इसके साथ यह भी आशा हुई कि युद्ध-कालके बाद औद्योगिक पुनर्रचना विदेशी पूंजीसे न होकर देशी पूंजीसे होगी और इस बार पिछले युद्धकी समाप्तिके बादकी नाईं ऊंचे ब्याजकी दरपर विदेशी पूंजी लेनेको बाध्य न होना पड़ेगा।

इतना ही नहीं, स्वागत करनेवालोंने ख्याल किया कि व्यापारका सन्तुलन भारतके प्रतिकूल होनेसे मनमें जो डर बना रहता था कि यदि विदेशी सूद न दिया गया तो भारतकी विदेशी बाजारोंमें साख गिर जायगी, अब यह भय भविष्यमें न सतायेगा। रुपयेकी विनिमय दरकी सनकका अब इसी मात्रामें भारतीय बजटपर कम असर होगा। यह ऐतिहासिक सचाई है कि रुपी-स्टर्लिङ्गकी विनिमय-दरके बराबर बदलते रहनेका भारतीय बजटपर बुरा असर पड़ता था और इसको रोकनेके लिए विनिमय-दर निश्चित की गयी थी। सबसे बड़ी बात यह है कि सूद बाहरी विदेशियोंको न देना पड़ेगा। भारतीय करदाताओंका रुपया सूदके रूपमें अब भारतीयोंकी जेबमें जायगा और वह रुपया अब भारतमें ही खर्च होगा, इससे नवीन उद्योग-धन्धोंका जन्म होगा।

यह भय भी स्वागत करनेका कारण है। भारत विदेशी बाजार बराबर खोता जाता है। इसलिए इसको आत्म-निर्भर होनेका पहला कदम समझा गया। भारतपर लगभग २७ करोड़ पौ० का स्टर्लिङ्ग ऋण था। इसमेंसे अब तक—इस पुनरावर्तनको मिलाकर—१३ करोड़ २० लाख पौण्डका स्टर्लिङ्ग ऋण चुका दिया गया है। इसमें भारतीय रेलों, खानों, सार्वजनिक मङ्गलके कार्यों और विविध व्यवसायोंमें अंगरेजोंका लगा रुपया शामिल नहीं है। वह लगभग २० करोड़ पौण्ड है। पुनरावर्तनसे भारतका लगभग एक तिहाई विदेशी कर्ज उतर गया है, और निस्सन्देह इस सीमा तक विदेशी बाजारमें भारतकी साख बढ़ गयी है। इससे कुछ लोगोंके मनमें इस आशाका उदय हुआ है कि जिस प्रकार विगत महायुद्धके बाद अमेरिका कर्जदार राष्ट्रसे महाजन हो गया, उसी प्रकार भारत भी देनदारसे महाजन हो जायगा।

वैयक्तिक दृष्टिकोण

मगर जिन लोगोंने युद्ध शुरू होनेसे कुछ साल पहले ऊंचे दामोंपर स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीजको खरीदा था, उन्होंने सरकारके इस निर्णयका स्वागत किया होगा, यह विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता। १९४० के प्रारम्भमें भारत-सरकारने स्टर्लिङ्ग ऋणको उसी मूल्यके रुपी लोनमें बदलनेकी एक योजना बनायी थी। इस योजनाकी पूर्तिके लिए रिजर्व बैङ्कने २५०००००० पौण्ड मूल्यकी सिक्युरिटीज

लन्दनके बाजारसे खरीदीं। स्टर्लिङ्ग लोन रखनेवाले कुछ भारतीयोंने इसका लाभ भी उठाया। मगर अनुभवने बताया कि जब तक स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीजका दाम ऊंचा न रखा जायगा, तब तक खुले बाजारमें इनको खरीदनेमें रिजर्व बैङ्कको सफलता नहीं मिलेगी। भारतीय जनताकी ओरसे भी सरकारी योजनाको सोत्साह समर्थन नहीं मिला। और स्टर्लिङ्ग लोन रखनेवालोंको मौजूदा असाधारण तौरपर गिरी कीमतपर स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीज देनेके लिए बाध्य होना पड़ा। उनके सामने इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं रहा कि वे अत्यधिक ऊंची कीमतपर हरी सिक्युरिटीजको लें और इसकी कम आमदनीसे ही सन्तोष करें।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण

अर्थ-सदस्यका दावा है कि स्टर्लिङ्ग ऋणके पुनरावर्तनसे देशको ठोस लाभ पहुंचा है। सरसरी नजरसे देखनेसे यह बात सही मालूम होती है। वह इस प्रकार कि रिजर्व बैङ्कके पास स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीज आवश्यकतासे अधिक मात्रामें थीं, और उसको उनपर नाममात्रका ब्याज मिल रहा था। गवर्नमेण्टकी नयी योजनासे उसको अब ज्यादा सूद मिलेगा।

सरकारकी इस बातमें कोई सार नहीं है कि आकर्षक सूदकी दरके अत्यधिक कीमती बाण्डोंको छोड़नेके लिए ब्रिटिश पूंजी लगानेवालोंको बाध्य किया गया है। सचाई यह है, जैसा कि इकानमिस्टने स्वीकार किया है, कि भारतके फण्डने उसकी कीमतको चढ़ा रखा था। भारतीय लोकमतके सतत विरोधकी उपेक्षा करके रिजर्व बैङ्क द्वारा निरन्तर स्टर्लिङ्गकी खरीदसे उनका दाम चढ़ा रहा। एक और बात उल्लेख योग्य है। जब लन्दनमें साम्राज्यके डालर-रिजर्वको जमा करनेके विरोधमें कहा गया था कि भारतको इससे हानि होगी, तब जवाब दिया गया था कि यदि ब्रिटेनने डालर लिया है, तो इसके साथ ही उसने साम्राज्य-डालर-भण्डारसे इसके देनेवालोंकी आवश्यकताओंको पूरा करनेका भी जिम्मा लिया है। ब्रिटेनका दायित्व स्टर्लिङ्गके परिवर्तन तक सीमित है, इसलिए जिस अंश तक भारत स्टर्लिङ्गका परित्याग करता है, उस अंश तक वह ब्रिटेनसे अपनी मुद्राके लिए डालर लेनेका अधिकार खो देता है।

रिजर्व बैङ्कने जो स्टर्लिङ्ग रिजर्व किया था, उससे स्टर्लिङ्ग लोनवालोंको भुगतान किया गया है। मगर प्रश्न तो यह है, यह रिजर्व क्या है? यह बैङ्कके पास एक फण्ड है, जो उसने कागजी मुद्रा रखनेवालोंके प्रति अपने आर्थिक दायित्वको पूरा करनेके लिए जमा कर रखा है। कागजी मुद्रा एक निश्चित मूल्यको सूचित करती है, जो कि मूलतः सोना, चांदी और सुविधाके खयालसे विदेशी विनिमयमें होता है। हरएक मुद्रा-कमीशनने इसकी पवित्रता और सुरक्षापर जोर दिया है। नोटोंका आन्तरिक मूल्य कायम रखनेके लिए, यही केवल पर्याप्त नहीं समझा गया कि सरकार उनके बदले उस मूल्यका सिक्का देनेका वचन देती है, बल्कि इसके लिए उनकी पीठपर एक निश्चित मात्रामें सोना-चांदी रखना आवश्यक समझा गया। सरकारने अपने आर्डिनेन्समें कहा है—इससे मालूम होता है कि हरी सिक्युरिटीजके चढ़नेकी चरम सीमा कहां तक है। इसका अर्थ है कि सरकार जनतासे कह रही है कि हरी सिक्युरिटीजके बदले अन्य सिक्युरिटियां अधिक बेहतर हैं और उनको तरजीह देनी चाहिए। इसलिए स्वभावतः प्रश्न उठता है कि नोट रखनेवाला क्या पानेका हकदार है? यद्यपि नोटके बदले रुपया मांगनेका अधिकार स्वीकार किया गया है, मगर भारत-रक्षा-कानूनमें मजिस्ट्रेट द्वारा जो 'उचित उद्देश्य' समझा जाय, उससे अधिक मात्रामें सिक्कोंका अपने पास रखना अपराध है। वस्तुतः नोटोंके पीछे बल, नोटोंके सिवाय और किसीका नहीं है। इसलिए बैङ्कको एक किस्मके नोटोंकी जगह दूसरी किस्मके नोटोंका तबादला करनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। यदि पुनरावर्तन कर्ज लेकर किया जाता, तो इसका प्रभाव अन्य होता। अब जिस विधिसे किया गया है, उसका नोटोंके प्रचलनपर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

कागजी मुद्रापर असर

स्टर्लिङ्ग लोनके वर्तमान विधिसे पुनरावर्तनका प्रभाव यह पड़ा है कि नोटोंकी मात्रा बहुत बढ़ गयी है। युद्धसे पहले १८० करोड़ रुपयेके नोट चलनमें थे; आज लगभग २८६ करोड़ रु० के हैं। नोटोंके चलनको बढ़ानेमें अन्य कारण—विनिमय, भाड़ा, आयात आदि—भी हैं, मगर मुख्य कारण पुनरावर्तनकी नीति है। यह स्थिति आर्थिक क्रिया-कलापके

लिए अवाञ्छनीय और बेमेलकी है। किसी ओरसे दृष्टि डालिये, क्रिया-कलापकी जगह मन्दी और निरुत्साह नजर आयेगा। ज्वायण्ट स्टाक कम्पनियोंकी १९४०-४१ के पहले सात मासकी रिपोर्टसे मालूम होता है कि सारे भारतमें नये उद्योग-धन्धोंमें केवल ३.८६ लाख रु० नया आया है। कीमतोंकी इण्डेक्स देखनेसे भी मालूम होता है कि नोटोंकी मात्रा बढ़नेका उसपर असर पड़ा है।

सरकार नोटोंका चलन कम करके नकली रूपसे बढ़ी कीमतोंको घटानेके लिए प्रयत्नशील है। मगर उसका यह प्रयत्न उसकी पुनरावर्तनकी नीतिके कारण सफल नहीं हो रहा है। उसके सामने एक नयी समस्या आ खड़ी हुई है। इकानमिस्टने रुपी-स्टर्लिङ्गमें अप्रैल १९४१ में अकस्मात् आयी कमजोरीकी ओर ध्यान खींचते हुए लिखा था कि रिजर्व बैङ्कने जानबूझकर रेट कम कर दिया। इसका कारण बताते हुए उसने लिखा था :—स्टर्लिङ्ग रेटमें रिजर्व बैङ्कको इस प्रकार मेल बैठानेके लिए सम्भवतः इसलिए विवश होना पड़ा, क्योंकि भारत-सरकारकी कुछ स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीजपर 'वेस्टिङ्ग आर्डर' द्वारा अमल होनेपर भारतीय पूंजी लगानेवालोंकी ओरसे स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीजकी अचानक मांग बेहद बढ़ गयी। आर्डरके फलस्वरूप भारतके कुछ पूंजी लगानेवालोंको—जिनके पास पहले स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीज थीं—रुपीज सिक्युरिटी मिलीं। चूंकि पहले खरीदी स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीज उनको फायदेमन्द सिद्ध हुई थीं, इसलिए वे तुरन्त अपने रुपयेको स्टर्लिङ्गमें बदलने लगे, जिससे कि उनको वे फिर लन्दनके बाजारमें लगा सकें। स्टर्लिङ्गकी इस अव्यावसायिक मांगकी समस्या सामने आनेपर रिजर्व बैङ्कने अपनी रेट कम कर दी। इकानमिस्टने रिजर्व बैङ्कके इस व्यवहारको कुछ कड़ा भी बताया था।

रो रहे क्यों गान मेरे ?

रंग गया कोमल करोंसे
आज हंसता प्रात आकर,
तितलियोंके रङ्गमय पर
और उपवनका कलेवर,
हंस पड़ा जग किन्तु रोते ही रहे क्यों गान मेरे।

अङ्कमें कोमल कुसुमके
तितलियां पदध्वनि छिपाकर
बैठ जाती हैं, रजनिके
अङ्कमें छिपता दिवाकर,
देख मधुमय हो गया जग रो पड़े पर प्राण मेरे।

विश्वके तलपर मिलेंगे
भाग्यके सुन्दर सरोवर,
हाय वे भी मिल सकेंगे
काटते जो दिवस रोकर,
है वही अभिशाप जिससे रो रहे हैं गान मेरे।

आज पश्चिमके गगनपर
उड़ रहे अङ्गारके घन,
कौन-सा परिवार है, अङ्गार-
मय जिसका नहीं तन,
आज उनकी वेदनाओंसे ढंके हैं गान मेरे।

दीन कृषकोंके मलिन मन
पुतलियोंमें आज बसकर,
चित्र अपनी दीनताका
खींचते मानस-पटलपर,
मैं मनुज हूं, बस इसीसे रो रहे हैं गान मेरे।

—रामचन्द्र सक्सेना, बी० ए० एल-एल० बी०।

कैरम बोर्ड

श्री रामसरन शर्मा

आज भी याद है वह दिन। चटखती हुई धूप बाहर छतपर। कमरेमें सरसराती हुई पङ्खेकी हवा।

गोरा और पतला उसका मुंह। कटोरा-सी बड़ी-बड़ी आंखें और पलकें, आह! कितनी लम्बी और रेशमी।

हम दोनोंके बीचमें था कैरम बोर्ड।

अपनी बड़ी-बड़ी आंखें मुझपर जमाकर उसने कहा :—

"देखिये, मैं क्वीन पौट करती हूं।"

धीरेसे उंगली हिली और सरसर करती हुई खटसे क्वीन पौकेटमें चली गयी।

"आप ध्यानसे नहीं खेल रहे हैं।" उसने कहा।

मैं सकपका गया। वास्तवमें उसके सामने बैठकर कौन काफिर कैरमकी तरफ ध्यान रख सकता था।

हम दोनों इत्तफाकसे मिल गये थे। वह मेरी बहनकी सखी थी और मिलने आयी थी।

नाम था—सरोज।

सरोज होगी कोई पन्द्रह सालकी। कितनी सुन्दर, कितनी मोहक हंसी थी उसकी।

हां, तो दोपहरको हम लोग कैरम खेलने बैठ गये थे।

"आप क्वीनको पौट कीजिये," उसने बतलाया।

मैं न कर सका।

"वाह" सरोज बोली, "आपसे क्वीन तो कभी पौट होती ही नहीं। मैं करती हूं।"

वास्तवमें क्या मुझसे कभी क्वीन पौट होगी ही नहीं, मैं सोचने लगा।

"क्वीनको क्वीन ही···" मैंने हल्केसे कहा।

सरोजने एक बार मेरी ओर देखा। उसके दोनों गाल एकबारगी सुर्ख हो गये। आंखें बोर्डपर झुक गयीं।

क्यों?

हम दोनों चुपचाप खेलने लगे। मगर खेल न हो सका। शायद दोनों कुछ सोच रहे थे।

सरोज और मैं अलग हो गये। महीनों बीत गये। उसकी याद कभी-कभी आ जाती थी। वह शर्माता हुआ सुर्ख मुंह······वह आंखें······

दफ्तरका काम पीसे डालता था। फिर भी छुट्टीके दिन, बहनके साथ कैरम खेलना भारी मालूम पड़ता था।

मैं कैरमसे जान चुराया करता था। क्यों? कह नहीं सकता। सरोजका सुर्ख मुंह······

अक्सर सोचता था—वह मेरी कौन थी? क्यों उसीकी याद आकर चित्तको अनमना कर देती है।

अजीब पहेली थी।

एक दिन दफ्तरसे आकर कपड़े उतार ही रहा था कि बहनने हंसते-हंसते आकर कहा:—

"भाई, सरोजकी शादी ठहर गयी।"

मानो एक चोट-सी लगी। कुछ न कुछ कहना ही चाहिए, इसीलिए केवल "हूं" कहकर जल्दीसे मोजे, जूते खोलने लगा।

बहन कहती ही गयी:—

"लड़का सेठका बेटा है। नाम परमानन्द है···।"

मैंने कुछ सुना कि नहीं, इसमें सन्देहकी गुञ्जाइश ही नहीं।

मैं डर रहा था कि कहीं बहन शकलसे समझ न जाय। क्या समझ जायगी, सो समझनेकी मुझमें ही बुद्धि न थी।

जैसे-तैसे कपड़े उतारकर आराम-कुर्सीपर पड़ गया, आंखें मूंदकर।

तब जैसे बहनको ख्याल आया।

"कैसा जी है, भैया?"

"सिरमें दर्द है," मैंने जान छुड़ानेको कहा और तुरन्त ही कह डाला, "थोड़ा आराम करनेसे ठीक हो जायगा।"

आंखें मूंदकर मैं आकाश-पातालकी सोचने लगा।

सरोजकी शादी होगी। किससे? वह देखनेमें कैसा होगा? बहुत सोचनेपर भी कोई अच्छी सूरत ध्यानमें न बना सका।

सरोज मेरी होती ही कौन थी? यदि इतना ही ख्याल

था, तो पहले ही चेतना था। अब क्या ?

वह सेठकी लड़की, सेठको ब्याही जायगी। मैं गरीब दफ्तरका क्लर्क……उंह। जाने भी दो इस पचड़ेको…… लेकिन उसकी आंखें……वह सुन्दर मुख……

मैं जीवनमें शायद क्वीन पौट न कर सकूंगा।

मैं प्राणपणसे सरोजको भुलानेकी चेष्टा करने लगा।

किन्तु थोड़े ही दिन बाद फिर सुना—सुनकर धक्से रह गया।

"भाई, सुनते हो," बहनने कहा, "सरोजका विवाह टूट गया।"

"क्यों ?" मैंने उत्सुकतासे पूछा।

"उसे टिक हो गयी है।"

हृदय अगर पत्थरका होता, तो शायद टूट सकता था। वैसे तो केवल धड़धड़ाकर रह गया।

अब तो रोज ही उसके समाचार मिलने लगे। हालत दिनपर दिन खराब ही होती जा रही थी।

सरोजको देखनेको मन करने लगा। बड़ी कठिन समस्या थी। बहन क्या समझेगी। और सरोज ही क्या सोचेगी ?

हठात् एक दिन बहनने कहा :—

"भाई, जरा सरोजके यहां चलो मेरे साथ। उसने बुलाया है।"

अन्धेको क्या चाहिए—दो आंखें। धड़कता हुआ हृदय लेकर चल पड़ा।

रास्ता कैसे कटा, मालूम नहीं।

सरोज चारपाईपर पड़ी थी। उसकी मां भी बैठी थी। हमें देखकर वह उठने लगी।

दुबली, पीली, गड़हेमें पड़ी हुई आंखें देखकर मैं तो दहल उठा।

यही वह सुन्दर सरोज थी।

विधाताकी कैसी विडम्बना है। ऐसी सुन्दरको ऐसी बीमारी।

बातें होने लगीं।

सरोजने मेरे मुंहपर नेत्र जमाकर कहा :—

"आपने तो बहुत दिन बाद दर्शन दिये।"

मैं चुप रह गया। क्या जवाब देता ?

एक मिनट बाद वह बोली।

"अच्छा हुआ, मिल लिये। अब तो हमारी चला-चली है।" अपनी मांकी ओर देखकर हंसी और बोली, "हां मां, अब न रहूंगी तुम्हें तङ्ग करनेको।"

मानो अथाह समुद्र मुझे लील लेनेको उमड़ा चला आ रहा है।

"आइये," अचानक सरोज बोली, "एक बाजी कैरम हो जाये।"

मैं घबरा गया। फिर कैरम !

"आइये भी," उसने जोर दिया।

मैं और वह खेलने लगे। बहन बैठी देखने लगी। उसकी मां अन्दर चली गयी।

"देखें," वह बोली, "आप क्वीन पौट कर सकते हैं या नहीं ?"

मैंने देखा, उसकी आंखें मानो चमक रही थीं।

मैंने यों ही स्ट्राइकरमें उंगली मार दी। अजीब तरहसे रिबाउण्ड लगकर क्वीन पौट हो गयी।

सरोज खिल उठी। उसका हल्दी-सा मुंह फिर लाल हो उठा।

"देखिये," वह बोली, "आपने तो क्वीन पा ली, लेकिन ……लेकिन………

"लेकिन क्या ?" मैंने पूछा।

"यदि मैं किङ्ग पौट कर सकती।" वह बिस्तरपर गिर गयी।

झपटकर मैं उसपर झुका।

"सरोज।"

वह मुस्करा दी। उसकी हंसीमें बीमारीका पीलापन न था। उसमें थी जीवन और प्रेमकी चमक।

"बहन," मेरी बहन कह उठी, "पहले मुझसे क्यों नहीं कहा था ?"

उसने मुस्कराते हुए मेरी आंखोंमें आंखें गड़ाकर कहा :—

"अब तो मैंने किङ्ग पौट कर लिया।"

× × ×

कहना न होगा, सरोज अब मेरे यहां है। हम अब भी कैरम खेलते हैं।

वह क्वीन पौट कभी नहीं करती है।

———



दक्षिण-पूर्वी एशियामें भारतीय साम्राज्य

हाल ही में जापानने इण्डो-चीनको अपने प्रभावमें लाकर सुदूर पूर्वके राजनीतिक क्षेत्रमें एक विकट स्थिति उत्पन्न कर दी है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय जगत्‌में इस फ्रेंच उपनिवेशका महत्त्व आज बहुत बढ़ गया है, और समाचार-पत्रोंमें बराबर इसकी चर्चा रहती है। जापान इण्डो-चीनमें अपना सैनिक केन्द्र स्थापित कर थाईलैण्ड, बर्मा और समस्त चीनपर अधिकार कर लेनेकी फिक्रमें है और कौन जानता है, वह भारतपर भी आक्रमण करनेका इरादा न रखता हो? पर एक जमाना था, जबकि इण्डो-चीन भारतवर्षका उपनिवेश था, और वह भारतीय शासकके अधीन था।

ईसाके बहुत पहलेसे मलाया, श्याम, मलाका और जावाके साथ ही इण्डो-चीनमें भारतीय उपनिवेश कायम हो गया था। सम्राट् अशोकके राजत्वकालमें और उसके बाद भारतीय विचार-धारामें महान् परिवर्तन हो गया था। बुद्धदेवके विशुद्ध वैज्ञानिक और लोक-कल्याणकारी उपदेशोंने भारतीयोंमें नव जागरण और नव उत्साहकी प्रेरणा कर दी थी। हजारोंकी संख्यामें बौद्ध भिक्षु केवल इस देशमें ही नहीं, बाहरके देशोंमें भी घूम-घूमकर उनका सन्देश सुना रहे थे। इण्डो-चीनमें भी बौद्ध भिक्षु बुद्धके मतवादका प्रचार करने गये। वहां उन्होंने भारतीय विचार-धारा, सभ्यता और संस्कृतिका प्रसार किया। बादको वे वहीं बस गये। वहांके निवासियोंसे मिल-जुलकर रहने लगे। समस्त दक्षिण-पूर्वी एशियामें मन्दिरों और नगरोंका निर्माण किया और बादको वहां अपना साम्राज्य स्थापित किया।

चीनी इतिहासकारोंके मतानुसार ईसाके बाद पहली शताब्दीमें इण्डो-चीनमें फूनान प्रथम भारतीय उपनिवेश था। तीसरी शताब्दीके आरम्भमें यह उपनिवेश एक बहुत बड़ा भारतीय साम्राज्य बन गया, जिसमें इण्डो-चीन, श्याम और मलाया प्रायद्वीप थे। चीनी इतिहासकारोंका कहना है कि कौडिण्य नामक एक भारतीय ब्राह्मणने यह आकाशवाणी सुनी कि तुम फूनान जाकर वहांका शासन करो। यह सुनकर कौडिण्यका हृदय हर्षसे उल्लसित हो उठा। वह ईश्वरका आदेश पालन करनेके लिए पानपन पहुंचा, जो दक्षिणकी ओर है। जब फूनान-वासियोंने यह बात सुनी, तो वे बड़ी प्रसन्नतासे कौडिण्यके पास आये और उन्हें अपना राजा चुना। कौडिण्यके शासनमें साम्राज्यकी बड़ी उन्नति हुई। ४७९ ई० में फूनान उन्नतिके सर्वोच्च शिखर-पर था। चीनी इतिहासकारोंने लिखा है कि फूनान एक सुव्यवस्थित भारतीय राज्य था, जिसे वहांके ब्राह्मणों और क्षत्रियोंने सुसभ्य और सुसंस्कृत बनाया था। सन ५५० ई० में, चेतला नामक एक अधीनस्थ दूसरे भारतीय राज्यने फूनानके विरुद्ध विद्रोह किया और सम्राट्‌को सिंहासन-च्युत कर दिया। साम्राज्यका इस प्रकार पतन देखकर, एक दूसरे अधीनस्थ राज्य द्वारावतीने भी अपनेको स्वतन्त्र घोषित कर दिया।

उस वर्षके आरम्भमें भारतीयोंके कई दल बर्मा पहुंचे। वे वहांसे आगे बढ़ते हुए श्यामकी खाड़ीके उत्तर-पूर्वी किनारेपर पहुंचे। वहां उन्होंने फूनान साम्राज्यके अधीन अपना राज्य कायम किया। पर जब उन्होंने फूनानके

पतनका समाचार सुना, तो उन्होंने भी अपनी स्वाधीनताकी घोषणा कर दी। इसके बाद उन्होंने द्वारावतीमें अपना स्वतन्त्र साम्राज्य स्थापित किया। छठी शताब्दीमें यह साम्राज्य क्रमशः बड़ा शक्तिशाली हो गया और श्यामकी खाड़ीके आसपासके सभी प्रान्त उसके अधीन हो गये। उसने ७ वीं सदीमें अपने कई दूत चीन भेजे। ८ वीं सदीमें द्वारावती साम्राज्यकी शक्ति क्षीण होने लगी, पर १००० ई० तक उसने किसी तरह अपना अस्तित्व कायम रखा, जिसके बाद उसका भी पतन हो गया।

नाकोन पेथोममें, जो कभी बन्दरगाह था, द्वारावती साम्राज्यकी राजधानी थी। यह बेङ्काकसे ३० मील दूर है। वहांके भव्य पैगोडा और मन्दिर आज भी यात्रियोंके लिए दर्शनीय हैं। यह श्याममें ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। अभी वहां खुदाईका कार्य आरम्भ नहीं हुआ है, पर मन्दिरोंकी मरम्मत करते समय गुप्त-कालकी बहुत-सी चीजें मिली और मिलती हैं। इनमें छठी या सातवीं शताब्दीकी बुद्ध भगवान्की एक मूर्ति है। उसमें बुद्धदेव धर्मचक्रका प्रवर्तन कर रहे हैं।

राजा, सुखी या दुखी ?

हममेंसे अनेककी इच्छा होती है कि हम धनी हों, हम बड़े बनें। इस महत्त्वाकांक्षाकी बड़ी तीव्र ज्वाला होती है। जो इस जीवनमें अपने दुर्भाग्यसे राजा नहीं बने हैं, उनमें अनेक, सम्भव है, राजसिंहासनपर आसीन होनेकी कल्पनामें आनन्द-विभोर होते होंगे। पर उन्हें मालूम नहीं कि राजा बनकर सुखसे तो रहा जा सकता है, किन्तु साथ ही राजाको कम यन्त्रणायें भी भोगनी नहीं पड़तीं। इतिहासके पृष्ठोंमें राजाओंके दुर्भाग्यकी जो कहानियां लिखी हैं, उन्हें पढ़कर स्वभावतः करुणासे हृदय भर जाता है। विश्वके इतिहासमें ऐसे राजा बहुत ही कम पाये जाते हैं, जो शान्ति और सुखके साथ राजत्व चलाकर अमर हो गये हैं। जिस राजाका राज्य बड़ा होता है, उसे उसी प्रकार अधिक कष्ट भी होता है, बाहर-भीतर उसके अनेक शत्रु भी होते हैं। दोनों ओर-से युद्ध छिड़ गया है। अपनी जान रहते हुए कोई भी दूसरे-की अधीनता स्वीकार करनेको तैयार नहीं। शत्रुके प्रबल पराक्रमसे राजा शासनके अधिकारसे वञ्चित हो गया है। राजपरिवार पहाड़की गुफामें जाकर छिप गया है। घने जङ्गलके निर्जन प्रदेशमें राजा गुप्त रूपसे अपने राज्यका उद्धार करनेकी चेष्टा कर रहा है। राजवेश राजाके शरीरसे उतर गया है। मामूली वस्त्रसे वह अपनी लज्जा निवारण कर रहा है। विजयी शत्रु राजकोषको लूट-पाटकर खाने-पीने और आनन्द मनानेमें मस्त है। इधर पराजित राजाके पास खानेको अन्न नहीं, उसके बाल-बच्चोंके कोमल शरीर धूपसे झुलस रहे हैं, घासके बीजकी रोटीसे वे अपने उदरकी ज्वाला शान्त कर रहे हैं। पर वह घासकी रोटी भी उन्हें नसीब नहीं। मौका मिलते ही जङ्गली बिल्ली और अन्य पशु बच्चोंके हाथसे रोटी छीनकर भाग जाते हैं। राजा बेचारा असहाय हो पत्थरकी नाईं बैठा है। उसकी प्रतिज्ञा दृढ़ है, वह किसी प्रकार भी विजेताके सामने अपना सिर नहीं झुकायेगा। आत्म-सम्मानके सामने राजत्व, स्त्री, पुत्र, परिवार, अपना जीवन, सब तुच्छ है। पूर्वजोंकी प्रतिष्ठाके सामने हीरे-जवाहरातकी चकाचौंध करनेवाली चमक फीकी है। उसकी आंखोंके सामने देश और देशवासियोंका चित्र सदा बना रहता है। स्वाधीनताकी रक्षाके लिए उन्होंने अपने रक्तसे रणक्षेत्रको रञ्जित कर दिया है। सेना प्रायः खतम हो चली है। तोपोंके गोलों और तलवारकी तीक्ष्ण धारसे स्वाधीनताकामी सैनिक कट-कटकर जमीनपर पड़े हैं, फिर भी उन्होंने अपनी स्वाधीनता दूसरे-के हाथमें नहीं दी। सन्धि-पत्रने राजाको बार-बार अपनी प्रतिज्ञासे विचलित होनेका प्रलोभन दिया है। शत्रुके प्रचण्ड आक्रमणने सेनाको तितिर-बितिर कर दिया है। फिर भी राजाने देशवासियोंकी स्वाधीनताको अपहरण नहीं होने दिया। बाध्य हो राजप्रासादके सुख-स्वाच्छन्द्य-को त्याग कर उसने दीन वेशमें जङ्गलमें आश्रय लिया है। आज संसारके एक छोरसे दूसरे छोर तक युद्धाग्निकी लपटें फैल रही हैं। अपने राज्य, सम्मान, सुख और शान्तिको तिलाञ्जलि दे, कितने ही मुकुटधारियोंको गृहहीन होना पड़ा है। दैवका यह निष्ठुर परिहास मनुष्यके भाग्यमें बड़ा ही मर्मान्तक होता है। जनसेवारत, सम्मानित और प्रतिष्ठित व्यक्तियोंके जीवनमें जो प्रचण्ड आघात लगता है, उसे सहन करना साधारण व्यक्तियोंके वशकी बात नहीं है। हम इतिहासमें, कथा-कहानियोंमें ऐसे बीर, साहसी और सहिष्णु महापुरुषोंकी जीवनी पढ़कर मुग्ध होते हैं।

युवा रहनेके उपाय

युवावस्थामें ही मनुष्य जीवनके वास्तविक आनन्दका उपभोग कर सकता है। इसलिए वह चाहता है कि सदा युवा बना रहे; पर अभी तक वैज्ञानिकोंने कोई ऐसा आविष्कार नहीं किया है, जिससे मनुष्य कभी बूढ़ा न हो, सदा युवा बना रहे। मगर जो लोग युवावस्थाके आनन्द लेना चाहते हैं, उन्हें बुढ़ापेसे नहीं डरना चाहिए और न अपनी जवानीके चले जानेकी चिन्ता ही करनी चाहिए; क्योंकि उनके लिए अमेरिकाके सुप्रसिद्ध लेखक मारिसमेटर लिङ्कने अपने जीवनके अनुभवसे ऐसा उपाय ढूंढ़ निकाला है, जिससे कोई भी व्यक्ति वृद्धावस्थामें भी अपनेको युवा रख सकता है। 'दि वीक मेगजीन' नामके पत्रमें उन्होंने अपना अनुभव इस प्रकार लिखा है :—

६० वर्षकी उम्रमें मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि मैं मृत्युके निकट पहुंच रहा हूं। उस समय मेरे मनकी स्मृति जाती रही, नये भावों और विचारोंके प्रति कोई दिलचस्पी न रहने लगी, न काम करनेकी शक्ति ही रह गयी। मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि शरीर थककर बिलकुल शिथिल होता जा रहा है, वह अब ज्यादा दिन तक ठहर नहीं सकता। ऐसा मालूम होता था, जैसे किसीने मेरी आंखों और दुनियाकी रङ्गीनियों और खूबसूरतियोंके बीच एक पर्दा लटका दिया है।

इस समय मैं ७८ सालका हूं। इस समय मैं अपने शरीर और मनमें जो सामञ्जस्य अनुभव कर रहा हूं, उसे मैं अपनी ६० वर्षकी अवस्थामें एक अनहोनी बात समझता था। पर अब मैं समझता हूं, ऐसी कोई बात नहीं है। सीधे-सादे शब्दोंमें वह यह है कि, जब मन युवा है, तब शरीर भी युवा है। इस तथ्यको मैंने स्वयं नहीं सीखा, किसी दूसरेने मुझको सिखाया है। आज इस अवस्थामें भी जो मैं अपनी जवानी कायम रखे हुए हूं, उसका श्रेय उन्हीं मेरे शिक्षक महोदयको है।

एक रोज मैं देहातमें पगडण्डी पकड़े टहल रहा था। खेतके उस पार मैंने एक किसानका घर देखा। वह बड़ा सुन्दर था, उस ओर जानेवाला कोई भी व्यक्ति बरबस उसकी ओर आकृष्ट हो जाता था। जब मैं उस मकानकी ओर जाने लगा, तो एक दस बर्षका लड़का उसमेंसे निकल मेरी ओर दौड़ा आया। थोड़ी देर बाद हम दोनों एक पेड़के नीचे रखी बेञ्चपर बैठकर बातें करने लगे। इतनेमें झोंपड़ीमेंसे एक स्त्रीकी आवाज आयी। सुनकर मैंने लड़केकी ओर देखा। उसने मुस्कराते हुए कहा—वह मेरी मां है, दादासे तर्क कर रही है।

"क्यों" मैंने पूछा।

"इसलिए कि वह नया इञ्जन देखनेके लिए शहर जाना चाहते हैं, मगर वह उनसे कहती है कि वह राह भूल जायंगे या किसी गाड़ी-छकड़ेके नीचे आ जायंगे। उनके लिऐ शहर जाना ठीक नहीं।" लड़केने कुछ उत्तेजित स्वरमें कहा—"और मैं भी शहर जाना चाहता हूं, दादा मुझे अपने साथ ले जायंगे। आप देखियेगा।"

उस समय बड़े दादा कुछ बड़बड़ाते हुए झोंपड़ीके बाहर निकले। वह बहुत बूढ़े थे, पर उनकी आंखोंमें तेज था। शरीरमें स्फूर्ति थी। उन्होंने मुझे देखकर प्रसन्न वदनसे सिर हिलाया। मैंने कहा, मैं यहां थोड़ी देरके लिए विश्राम करने बैठ गया हूं, शायद आपको कोई आपत्ति न होगी।

उन्होंने कहा—जब तक आपकी इच्छा हो, आप यहां विश्राम कीजिये। यह बैठनेके लिए बड़ी अच्छी जगह है। यहांका दृश्य बड़ा मनोहर है, आपका क्या ख्याल है? मेरी तो यह इच्छा है कि मैं आपको यहांकी दर्शनीय वस्तुओंको घूम-घूमकर दिखाऊं; पर मैं और यह लड़का दोनों शहर जा रहे हैं। अगर हम लोग जल्दी नहीं करेंगे, तो बसको नहीं पकड़ सकेंगे।

मैंने कहा—क्या मैं आपके साथ उस कोने तक चल सकता हूं।

"हां, जरूर।"

हम सब एक साथ चल पड़े।

मैंने पीछे मुड़कर देखा, लड़केकी मां, झोंपड़ीके दरवाजे-पर खड़ी थी। उसके चेहरेपर उदासीका भाव स्पष्ट दिखाई दे रहा था। मुझे ऐसा मालूम हुआ, जैसे कि मैंने उस उदास चेहरेको कहीं देखा था। फिर झट मुझे याद आ गया कि आईनेमें मैंने अपनी ही शक्ल देखी थी।

वृद्ध महाशय चलते हुए कह रहे थे—बेचारी नासमझ औरत चाहती थी, कि मैं उसके कहनेसे हाथ-पैर तोड़कर

बूढ़े गधेकी तरह घरमें पड़ा रहूं, कहीं घूमने-फिरने भी न जाऊं। अगर मैं उसकी बात मानकर चलूं, तो एक ही वर्षमें मेरी मौत हो जाय।

जब हम लोग विदा हुए, तो उन्होंने फिर एक बार आनेका मुझे निमन्त्रण दिया। मैंने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और कई बार उनके यहां गया, क्योंकि मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मुझे न केवल एक मित्र, बल्कि एक सलाहकार—एक चिकित्सक भी मिल गया है। वह हमेशा उसी कुटियामें रहते थे और कभी-कभी जिस शहरमें जाया करते थे, वह गांवसे बहुत बड़ा नहीं था। पर उनके लिए यह छोटा-सा क्षेत्र विश्वके समान विस्तृत था, क्योंकि वह उसे अच्छी तरह जानते थे। वह वहांके लोगोंसे मिलते थे, उनका कुशल-समाचार पूछते थे, उनके काम-काजके बारेमें पूछते थे। उन्होंने अपने जीवनको उन ग्राम-वासियोंके साथ मिला दिया था। जब वह देखते थे कि किसी दूकानदारने अपनी दूकानकी नयी सजावट की है, तो वह उसके यहां जाकर उसकी प्रशंसा कर आते। जब वह कोई ऐसी बात सोचते, जिससे किसीके कारबारको लाभ पहुंचता अथवा कोई अपनी फुलवाड़ीको और भी सुन्दर बना सकता, तो वह बड़े हर्षसे स्वयं जा-जाकर उसे लोगोंको बतलाते।

इसलिए उन्हें बूढ़ा समझना कठिन था। उन्होंने अपने बुढ़ापेको कभी भी अपनेपर प्रभाव डालनेका मौका नहीं दिया। इसलिए उनके शरीरमें किसी तरहकी शिथिलता नहीं आने पायी थी।

उनके जीवनका यह रहस्य था कि वह जीवनमें सदा दिलचस्पी रखते थे, वह उससे कभी उदास नहीं होते थे। जब कभी वह शहरमें जाते या देहातमें घूमने निकलते, तो उस छोटे लड़केको अपने साथ ले लेते। वह बचपनके सम्पर्कसे अलग नहीं होना चाहते थे। अपने उस वृद्ध युवा मित्रसे मिलनेके बाद, उनकी जीवन-चर्याका गम्भीरतासे अध्ययन कर मैं इस नतीजेपर पहुंचा कि मुझे अपने सिरपरसे वृद्धावस्थाकी आदतोंके बोझको हटाना होगा। जीवनके बारेमें जो उदासी रहती है और मृत्युका भय जो सदा बना रहता है, उससे मुक्त होना होगा। इसके पहले, मैंने बुढ़ापेकी वजहसे, भ्रमण करनेका इरादा छोड़ ही दिया था। डरता था, शरीर कमजोर है, रास्तेमें खाने-पीनेकी बड़ी तकलीफ होगी। पर अब अपने इस वृद्ध, पर युवा मित्रके संसर्गसे मुझमें नवस्फूर्ति और नवजीवन आ गया है, मैं समझने लग गया हूं कि मनमें बराबर युवावस्थाकी भावना बनाये रहनेसे मनुष्य सदा युवा बना रह सकता है।

रहस्यमय काल-चक्र

प्रायः सब शहरोंमें कुछ ऐसे मकान होते हैं, जो बड़े अशुभ समझे जाते हैं और कोई उनमें रहनेका साहस नहीं करता। वहां लखपति भी जाकर दरिद्र हो जाते हैं, लोगोंकी ऐसी धारणा होती है। कलकत्तेमें भी ऐसे कई मकान हैं, जो वर्षोंसे खाली पड़े हैं और कोई किरायेदार उनकी ओर झांकने भी नहीं जाता। कुछ मकान तो ऐसे होते हैं, जिन्हें महल्लेके दुष्ट लोग, मकान-मालिकसे द्वेष कर, बदनाम कर देते हैं और उनके लिए किरायेदार पाना मुश्किल हो जाता है और बेचने जानेपर भी उचित मूल्यपर लेनेवाला कोई खरीदार नहीं मिलता। यह बात नहीं है कि ऐसे मकानोंमें रहनेसे केवल गंवार अथवा अपढ़ ही डरते हैं, पढ़े-लिखे और सुसंस्कृत व्यक्ति भी वहां रहनेमें सङ्कोच करते हैं। ऐसा क्यों होता है? क्या सचमुच ऐसे मकानोंमें कोई शैतान या भूत रहता है, जो उनमें रहनेवालोंका अनिष्ट करता है या अकस्मात् कभी कोई घटना हो जानेसे ही उन मकानोंकी बदनामी हो जाती है?

दुनियामें ऐसी बहुत-सी आकस्मिक घटनायें हुई हैं और अब भी होती ही रहती हैं। जो लोग समय रहते स्थान छोड़ हट जाते हैं, वे ही ऐसी आकस्मिक घटनाओंसे त्राण पाते हैं। क्रमशः दो-तीन या अधिक दुर्घटनाओंके हो जानेसे, फिर कोई उस मकानकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखता। बृहद अट्टालिका मनुष्योंके उपयोगमें न आनेसे वास्तवमें भूतोंका डेरा बन जाती है। दिनमें भी किसीको उसमें पैर रखनेका साहस नहीं होता। ऐसा मालूम होता है, मानो उसकी दीवारोंके चूने-गारेमें भूत छिपे बैठे हैं, दालानमें, जहां पहले आमोद-प्रमोद होता था, मकड़ियोंने जाले तान रखे हैं, मानो भूतोंने आदमियोंका शिकार करनेके लिए फन्दा लगाया है। महल्लेके बच्चे डरके मारे, जिस गलीमें वह मकान होता है उसमें, भूलकर भी नहीं जाते। पर वास्तवमें

उस मकानमें कोई भूत या शैतान नहीं होता, मनकी दुर्बलतासे मनुष्य उसमें भूत होनेकी कल्पना कर लेता है।

१९४० में मि० रूजवेल्ट अमेरिकाके पुनः राष्ट्रपति निर्वाचित हुए हैं। वहांके लोगोंमें जो मानसिक दुर्बलताके शिकार है, उन्हें यह आशङ्का है कि प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टपर भी कहीं शैतान अपनी हिंस्रवृत्ति न चरितार्थ करे। इस आशङ्काका कारण यह बतलाया जाता है कि १८४०, ६०, ८०, १९०० और १९२० में जो प्रेसिडेण्ट चुने गये हैं, उनकी मृत्यु दुर्घटनाओंसे हुई है। ये आकस्मिक घटनाएं प्रति बीस वर्षके अन्तरपर, वहांके प्रेसिडेण्टोंके जीवन-दीपको बड़े निर्मम भावसे बुझाती आ रही हैं। इन रहस्यमयी दुर्घटनाओंका शिकार होना पड़ा था हेनरी हैरिसन, अब्राहम लिङ्कन, जेम्स ए० गारफील्ड, विलियम मेकिनले और जे० हार्डिङ्गको। १८४० ई० से ठीक बीस वर्षके अन्तरपर इन दुर्घटनाओंने अमेरिकनोंके मनमें भयका सञ्चार कर दिया है। १९४० में इस रहस्यमय कालचक्रका छठा अध्याय था। बीस वर्षके अन्तरपर इस कालचक्रसे जो प्रेसिडेण्ट कालकवलित हुए थे, उनमें तीनकी मृत्यु गुप्त हत्यासे हुई थी और शेषकी मृत्यु प्रेसिडेण्ट-पदपर आसीन होनेके बाद ही हुई।

पहले १८४० में इस रहस्यमय मृत्युके कालचक्रका परिक्रमण आरम्भ हुआ। उस वर्ष हेनरी हैरिसन प्रेसिडेण्ट निर्वाचित हुए थे और उसके एक ही महीने बाद अकस्मात् वे न्यूमोनियासे पीड़ित हो मर गये। १८६० में अब्राहम लिङ्कन प्रेसिडेण्ट चुने गये, १८६५ में पुनः निर्वाचित होनेपर उन्हें एक गुप्त घातककी बन्दूककी गोलीका निशाना होना पड़ा। वाशिङ्गटनके फोर्ड थियेटरमें प्रेसिडेण्ट लिङ्कन नाटक देखने गये थे। शुक्रवारकी रातका समय था। प्रेसिडेण्टने थियेटरके बक्समें प्रवेश किया। चारों ओरसे दर्शकोंने तालियोंकी गड़गड़ाहटसे उनका स्वागत किया। आरचेष्ट्रा आरम्भ हुआ। प्रधान अतिथिका अभिनन्दन किया गया। रङ्गमञ्चपर अभिनय भी आरम्भ हो गया और साथ ही इस रहस्यमय कालचक्रके अतीत इतिहासका पुनराभिनय भी आरम्भ हो गया। किसीकी पिस्तौलकी गोलीने दर्शकोंको चकित कर प्रेसिडेण्टको अपना लक्ष्य बनाया। प्रेसिडेण्टके अङ्ग-रक्षक उन्हें अचेतन अवस्थामें उठाकर रङ्गमञ्चके बाहर ले गये। दूसरे दिन सबेरे उसी अवस्थामें उनकी मृत्यु हो गयी। १८८० में प्रेसिडेण्ट गारफील्डकी मृत्यु एक पागलकी गोलीसे हुई।

मेकिनले बहुत अधिक वोटसे १९०० में प्रेसिडेण्ट निर्वाचित हुए थे, पर उसी साल विप्लवियोंके कुचक्रसे उनके जीवनका अन्त हुआ। १९२० में हार्डिङ्ग प्रेसिडेण्ट निर्वाचित हुए। १९२३ में एक ऐसे विचित्र रोगसे उनकी मृत्यु हुई, जिसका निर्णय करनेका भी मौका चिकित्सकोंको नहीं मिला।

प्रेसिडेण्ट-पदकी अवधि जब आधी व्यतीत हो गयी, उसी समयसे उनके व्यक्तिगत जीवनकी घटनाओंको लेकर तरह-तरहकी अफवाहें उड़ायी जाने लगी थीं। उनकी जनप्रियताको नष्ट करनेके लिए सर्वत्र षड्यन्त्र रचा गया था। इससे प्रेसिडेण्टको बहुत चिन्ता हुई। उनका स्वास्थ्य गिरने लगा, इसलिए यह सोचकर कि स्वास्थ्यमें सुधार होगा और विपक्षी दलवाले भी शान्त हो जायंगे, उन्होंने कुछ दिन एलासकामें रहनेका निश्चय किया। उनके साथ उनकी पत्नी भी गयीं, किन्तु वाशिङ्गटन लौट आनेके कुछ समय पहले उन्हें एक गोपनीय संवाद मिला। वह संवाद क्या था, आज तक भी किसीको मालूम नहीं हो सका। पर वही संवाद उन्हें घसीटकर मृत्युके दरवाजेपर ले गया। वह संवाद पाते ही, वह अकस्मात् बीमार पड़ गये और उसी बीमारीसे उनकी मृत्यु हुई।

१९४० का वर्ष भी उसी कालचक्रका लक्ष्य स्थान था। सन् १८४० से बीस वर्षके अन्तरपर जो कालचक्र अमेरिकाके प्रेसिडेण्टोंका जीवन शेष करता आ रहा था, उसकी गति आज विपरीत दिशाकी ओर घूम गयी है। मालूम होता है, ह्वाइट हाउसके भूतने अपना डेरा बदल दिया है। प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट अभी तक सुरक्षित हैं।

रतशास्त्र

भारतके बाहर बसनेवाली जातियां अभी अर्थ और अर्थ-शास्त्रसे परिचित भी नहीं हो पायी थीं कि भारतमें तब अर्थका महत्त्व बहुत ऊपर चढ़ चुका था और अर्थ-शास्त्र तक बन गये थे। ये सब बातें निर्विवाद प्रमाणित हो चुकी हैं कि भारत समस्त विद्याओंमें अगुआ रहा है। तब भला अर्थशास्त्रमें ही पीछे क्यों रहता? भारतीय विद्वानोंने यथावसर

अर्थ-शास्त्र-सम्बन्धी बातोंकी खोज की और उन्हें लिपिबद्ध कर दिया है।

बहुत पुरानी पुस्तकोंमें, वेदोंमें, रामायण और महाभारत-कालमें बहुत-सी कथायें मिलती हैं कि राजा-महाराजा लोग बहुमूल्य मणियोंको धारण करते थे, कोषमें सञ्चित रखते थे और उनको दान भी करते थे। भारतीय लोगोंका विश्वास है कि मणियोंको धारण करनेसे कल्याण होता है और अमङ्गल दूर भागता है। यही कारण है कि सोनेके आभूषण जितने भारतमें धारण किये जाते हैं, उतने अन्यत्र नहीं। यह तो विश्वास है; प्रत्यक्षतः शरीरपर धारण किये गये भूषण और रत्न शोभादायक हैं और यथावसर सुलभ अर्थ-सहायक हैं।

अर्थ-शास्त्री अब तक कौटिल्यकृत अर्थ-शास्त्र ही प्राप्त कर पाये हैं। एक-आध पुस्तक—जैसे चण्डकृत अर्थ-शास्त्र—और भी गवेषणा करनेपर मिली है। हमारा अर्थ-शास्त्र-सम्बन्धी साहित्य, यहीं स्थगित नहीं हो जाता। भारतीय ग्रन्थोंमें यत्र-तत्र अर्थ-सम्बन्धी बातोंके उल्लेख मिलते हैं। उनको सञ्चित व प्रकाशित करना ही श्रेयस्कर है तथा अर्थ-शास्त्रकी श्रीवृद्धिकर है।

आजसे पांच हजार वर्ष पूर्व महर्षि व्यासजीने अठारह पुराणोंका सृजन किया था, जिनमें अग्नि-पुराणका स्थान विशेष महत्त्व रखता है। उस पुराणमें उल्लिखित रत्नोंकी संख्या और परीक्षा हम यहां लिखते हैं। इससे अर्थ-शास्त्रियों-को कुछ लाभ हो सकेगा और पाठकोंका मनोविनोद होगा।

रत्न चौंतीस हैं। यथा :—१ वज्र, २ मरकत, ३ रत्न, ४ पद्मराग, ५ मौक्तिक, ६ इन्द्रनील, ७ महानील, ८ वैदूर्य, ९ चन्द्रकान्त, १० सूर्यकान्त, ११ स्फटिक, १२ पुलक, १३ गन्धशस्यक, १४ कर्केतन, १५ पुष्पराग, १६ ज्योतिरस, १७ राजपट्ट, १८ राजमय, १९ सौगन्धिक, २० गञ्ज, २१ शङ्खमय, २२ गोमेद, २३ रुधिराक्ष, २४ भल्लातक, २५ धूली, २६ प्रवाल, २७ पीलु, २८ गिरिवज्र, २९ भुजङ्गमणि, ३० वज्रमणि, ३१ टिट्टिभ, ३२ पिण्ड, ३३ भ्रामर और ३४ उत्पलमणि।

रत्न धारण योग्य कैसे होते हैं, यथा—जो अन्दरसे प्रकाश दे रहे हों, विमल हों, सुडौल हों, उन्हें धारण करना चाहिए। निष्प्रभ, मलिन, खण्ड, शर्करा-युक्त रत्न धारण योग्य नहीं होते।

वज्र परीक्षा—

जो वज्र पानीमें तिरे, टूट न सके, शुद्ध, छःकोना, इन्द्रधनुषवत् अनेक वर्णवान तथा सूर्यके समान चमकीला हो, वह वज्र प्रशस्त होता है।

मरकत परीक्षा—

तोतेके पङ्खोंके समान, चमकीला, चिकना, विमल, स्वर्णचूर्णके समान सूक्ष्म बिन्दु-युक्त मरकत प्रशंसनीय होता है।

पद्मराग परीक्षा—

पद्मराग एक प्रकारका स्फटिक होता है। ये रक्तवर्ण, बहुत चमकीले और स्वर्ण समान वर्णवाले होते हैं।

मौक्तिक परीक्षा—

मौक्तिक सीपसे पैदा होते हैं। कषाय रस होता है। ये अत्यन्त चमकीले होते हैं। शङ्खभव मुक्ताफल अत्यन्त श्रेष्ठ माने गये हैं। ये मोती नागदन्तोंसे पैदा होते हैं, हाथी-मस्तकसे भी पैदा होते हैं। शूकर और मत्स्य, वेणु और नागादियोंसे भी पैदा होते हैं। परन्तु मेघ-बिन्दुसे सीपमें उत्पन्न मौक्तिक शुभ माना जाता है। गोल, स्वच्छ, शुक्लता और भारीपन मोतीके उत्कर्षदायक गुण हैं।

इन्द्रनील परीक्षा—

इन्द्रनील दूधमें रखनेसे भला लगता है और चमकता है। जो इन्द्रनीलमणि अपने प्रभावसे उस दूधको रंग-सा दे, वह नीलमणि अति प्रशस्त और अमूल्य होता है।

वैदूर्य परीक्षा—

रक्तवर्ण और नीलवर्ण-युक्त वैदूर्य श्रेष्ठ होता है।

शेष रत्नोंको उतना महत्त्व प्राप्त नहीं, जितना उपर्युक्त रत्नोंको प्राप्त है। अतः उनकी परीक्षा और लक्षणादिका उल्लेख कर दिया है। शेष स्वयं जानने चाहिए।

अग्नि-पुराण। अध्याय २४६। श्लोक ७०१३ से ७०२८ तक। पुस्तक आनन्दाश्रम प्रेस पूनासे प्रकाशित है और पृष्ठसंख्या ३०३—३०४ है।

अग्नि-पुराणके इस लघुतम अर्थ-शास्त्रका उल्लेख केवल-मात्र यही प्रमाणित करनेके लिए है कि आजसे पांच हजार वर्ष पूर्व हमारे आचार्योंकी अर्थ-शास्त्रमें प्रगति थी।

आधुनिक अर्थ-शास्त्री इस अल्पकलेवर निबन्धसे लाभ उठा सकें, तो और हमें चाहिए क्या ? आशा है, विद्वान् इसे अपनायेंगे ।

—चन्द्रकान्त बाली, शास्त्री, प्रभाकर,

प्रकृतिकी सङ्गीतशाला

मैसूरसे चालीस मील दूर शस्यश्यामला पर्वतमालाओंके बीचमें प्राचीन तपोवनकी झांकी लिये हुए आर्य संस्कृतिका एक छोटा-सा दीप टिमटिमा रहा है। यह गुरुकुल कांगड़ी-जितना विशाल तो नहीं, परन्तु उसका जेबी संस्करण अवश्य है । इसका नाम है गुरुकुल चुञ्चन कट्टे ।

इसके समीप ही तटवर्ती प्रदेशोंको अपने मनोरम सङ्गीतसे गुंजाती हुई, लताओं, पुष्पों और पल्लवोंको अमृतोपम जलका अर्घ्यदान करती हुई कावेरी नदी बह रही है।

कावेरीके तीरपर गगनचुम्बी नारियलके वृक्ष अपनी अनुपम छटा दिखा रहे और कावेरीको मानो आशीर्वाद दे रहे हैं—"जाओ पुत्री ! लोकोपकार कर अपने जीवनको कृतार्थ करो, अपनी अमृतधारासे मुरझाये हुए फूलों और पेड़ोंमें नवजीवन डाल दो, वसुन्धराको शस्यश्यामला बनाओ। जाओ, जल्दी जाओ—तटवर्ती कृषक बाल अपने हाथोंमें बांसरी लिये हुए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

नदीका किनारा है, हरा मखमलका बिछौना बिछा है। चारों तरफ हरियाली ही हरियाली नजर आती है, स्थान-स्थानपर पुष्प खिले हैं। ऐसा मालूम होता है, मानो हरी काश्मीरी चादरपर बेल-बूटे कढ़े हुए हों । खेतोंमें कदली-कुञ्ज अपनी निराली शानके साथ खड़े हैं, सुन्दर समीरके बहनेके साथ हिल उठते हैं और अपनी तरफ आनेका सङ्केत-सा करते हैं।

ऐसा सुनते आते हैं कि दीपक राग गानेसे दीपक जल उठते हैं—पता नहीं, यह ठीक है या नहीं । परन्तु इस सङ्गीतमय आध्यात्मिक वातावरणमें बुझा हुआ मानस-दीप अवश्य जल उठता है ।

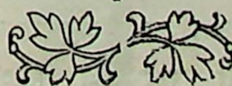
ऐसा सुनते आते हैं कि मल्हार राग गानेसे मेघ बरस पड़ते हैं—पता नहीं, यह ठीक है या नहीं । परन्तु इस सङ्गीतमय आध्यात्मिक वातावरणमें भगवान्‌की लीलाओंको देखकर नेत्रोंसे अनायास प्रेम-वर्षा होने लगती है ।

शहरोंका जीवन संग्राम है। परन्तु इस प्रेममय, शान्त वातावरणमें आकर अनुभव होता है, जीवन सङ्गीत है, कविता है ।

शहरोंका जीवन वीर रससे ओत-प्रोत है ; परन्तु यहां शान्त रसकी अमृतमयी दिव्यधारा बहती है।

शहरोंका जीवन जड़ है, यहांके जीवनमें गति है । शहरोंमें आत्माका फूल कुम्हला जाता है, परन्तु इस दिव्य वातावरणमें आत्माका फूल खिल उठता है ।

--वेदराज वेदालङ्कार





स्वर्गीया सीतादेवी

गत ९ जुलाईको 'महिला'-सम्पादिका श्रीमती सीता-देवीका स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्युसे महिला-समाजकी सेविकाओंमें जो स्थान रिक्त हो गया है, उसकी पूर्ति निकट-भविष्यमें सम्भव नहीं। सीतादेवीका जन्म एक आर्यसमाजिस्ट परिवारमें हुआ था। इनके पिता कानपुर-निवासी थे। सीताकी शिक्षा-दीक्षा सुयोग्य पिताके संरक्षणमें घरपर ही हुई थी। अभी शिक्षा चल ही रही थी कि राष्ट्रीय संग्रामका न्यौता सीताको भी मिला। उस समय उनकी अवस्था केवल तेरह वर्षकी थी। १९२० का जमाना था। जनताके नायक बन्दीगृहके सीखचोंके पीछे बन्द किये जा रहे थे। सीताने महसूस किया—उनकी आवश्यकता है देशको। और वह कूद पड़ीं राष्ट्रीयताके समराङ्गणमें, एक नारीकी भांति, एक वीर महिलाकी भांति, एक कुशल नेतृकी भांति। वह चल पड़ीं कानपुरकी गलियोंमें राष्ट्रीयताके तराने अलापती। इस महिलाके तत्कालीन कार्य अब भी कानपुरकी जनताके हृदय-पटपर अङ्कित हैं। उन्हें कौन मिटा सकता है?

आन्दोलन शान्त हुआ। सीताने अनुभव किया कि उनका अपना समाज बहुत पिछड़ा है। उन्होंने राजनीतिक कार्योंसे अपना हाथ खींच लिया और अपने नाजुक कन्धोंपर महिला-समाजकी सेवाका महान् व्रत उठाया। उन्होंने महसूस किया कि जब तक भारत-जैसे पराधीन देशकी महिलायें जाग्रत नहीं होतीं, समाजमें उन्हें पुरुषोंके समान ही अधिकार नहीं मिलते, वे नाना प्रकारकी सामाजिक रूढ़ियोंसे मुक्त नहीं हो जातीं, तब तक केवल पुरुषों द्वारा चलाया राजनीतिक आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। वह था १९२४। नारीत्वकी ठोस सेवाके निमित्त उन्होंने कानपुरसे 'महिला-सुधार' नामक पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ किया और पत्र चल निकला। थोड़े ही अर्सेमें सीताकी कलमने उसका स्थान हिन्दीके प्रमुख पत्रोंमें बना दिया। स्त्री-समाजकी मूक वाणी 'महिला-सुधार' के कालमोंमें झंकृत हो उठी। एक नवीन जागृति, एक नया जीवन, एक नूतन स्फुरण मिला महिला-समाजको। इसी बीच उन्हें अहमदा-बाद जाना पड़ा, जहांपर उनकी प्रथम भेंट श्री जे० एल० कडीकरसे हुई। विचारोंके आदान-प्रदानने उनके जीवनमें सामञ्जस्य ला दिया और ला दिया एक आकर्षण एक दूसरेके प्रति और १९२५ में सीता विवाह-बन्धनमें बंध गयीं। विवाहमें रूढ़िवादी समाजकी कुरीतियोंका सर्वथा बहिष्कार हुआ। इस युवकने सीताके हृदयकी विद्रोही भावनायें निकाल दीं। सीताका कहना था—पुरुष मजलूम औरतोंपर एक जमानेसे जफाके पहाड़ ढाते आ रहे हैं। औरतोंको विद्रोही होना ही होगा। अपने अधिकारोंके लिए लड़ना ही होगा। इस विषयमें 'महिला'के प्रथमाङ्कमें प्रकाशित हम सीताके ही शब्द देना चाहते हैं। वे इस प्रकार हैं—'जिस गौरव, ज्ञान और स्वाधीनताकी हम भी जन्मसिद्ध अधि-कारिणी हैं, उसपर पुरुषोंने एकाकी अधिकार जमा रखा है। क्या घर, क्या समाज, क्या राजनीति, क्या अर्थ, कहीं भी हमारी सत्ता नहीं है। पुरुष प्रभु हमें अपनी इच्छाके अनुसार चलाते हैं और हम इनके इङ्गितपर चलनेमें ही अपना अहोभाग्य समझती हैं। कुचली हुई आत्माओंके

खण्डित स्वरोंके अतिरिक्त हमारे पास है ही क्या ? किन्तु खण्डित स्वरों, टूटे अरमानों, रुद्ध आकांक्षाओं तथा सुषुप्त नारीत्वका भी मूल्य है ।' 'महिला-सुधार' के जमानेमें और 'महिला' युगमें एक अन्तर है—एक विशाल अन्तर। 'महिला-सुधार' के कालमोंमें सीता एक मर्दोंसे बगावत करनेवाली औरतके रूपमें दीख पड़ीं और 'महिला'में उन्होंने सिखाया—पापसे घृणा करो, पापीसे नहीं । यह सब परिवर्तन क्यों ? इस परिवर्तनका सारा श्रेय श्री कडीकरको है, जो विवाहके बाद सीताको अपने अनुसार बना सके ।

इस समय १९३० का सत्याग्रह आन्दोलन चला । देशके एक कोनेसे लेकर दूसरे कोने तक जोशकी लहर दौड़ गयी, स्वाधीनता-संग्रामके वीर सिपाही दमनको वीरतापूर्वक सह रहे थे, संग्रामकी प्रगति भीषण होती जा रही थी। सीता भी उस समय कानपुरमें ही थीं । राष्ट्रके शब्द उनके कानोंमें गूंज उठे, मांकी पुकार स्पष्ट हो चली और चल पड़ीं वह मातृभूमिकी महावह्निमें हंसते-हंसते अपनी आहुति देने। स्वाधीनताकी पुजारिन सीता, गांवोंमें घूम-घूमकर व्याख्यान दे लोगोंमें जोश और उत्साह भरने लगीं। बादको गिरफ्तार कर जेल भेज दी गयीं। सीताके साथ ही स्वर्गीया श्रीमती कमला नेहरू और शिवरानी प्रेमचन्दको भी जेलका दण्ड मिला था। सीताके जीवनकी यह घटना कानपुरके प्रत्येक व्यक्तिकी स्मृतिमें अब भी अचिर होकर विराजमान है। और आज जब वह इस संसारमें नहीं हैं, कानपुर उनके मातमपर आंसू बहा रहा है। महिला-कार्यालयमें प्रतिदिन न मालूम कितने पत्र समवेदना प्रकट करनेके लिए आ रहे हैं । सीताने यू० पी० से निर्वाचित होकर अहमदाबाद कांग्रेसमें भी भाग लिया था । वह राष्ट्रीयता-संग्रामकी एक वीर सैनिक थीं—एक योद्धा ।

बन्दी-गृहसे मुक्त होनेके पश्चात् उनके समक्ष फिर अपने समाजका प्रश्न आया । सीताने सोचा, एक पत्र प्रकाशित किया जाय । अपने पति श्री कडीकरके साथ वह बम्बई चली गयीं और वहांसे गुजरातीमें एक पत्र प्रकाशित करनेका विचार किया, लेकिन उनके कुछ हितैषियोंने परामर्श दिया कि यदि कोई हिन्दी पत्र प्रकाशित करें, तो स्त्री-समाजकी सेवामें उन्हें अधिक सफलता मिल सकती है । फलतः वह अपने पतिके साथ १९३९ में कलकत्ता चली आयीं । 'महिला' के प्रकाशनका निश्चय हुआ और थोड़े ही काल पश्चात् 'महिला' का जन्म हुआ । सीताने अपने जीवन-भर 'महिला' को अपने शोणितसे सींचकर बड़ा बनाया और पाला । आज 'महिला' की जन्मदातृ सीता कहां ? आज तो 'महिला' अनाथ है—सर्वथा अनाथ । —हरिशङ्कर द्विवेदी 'विशारद'



स्वर्गीया सीतादेवी ।

ग्रामोंमें महिला शिक्षा

यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि भारतमें अशिक्षाका घोर अन्धकार अभी तक छा रहा है। भारतीय इस अविद्या-रूपी अन्धकारको दूर करनेमें यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु उन्हें अभी मनोभिलषित सफलता नहीं मिल रही है ।

अब संसारके सभी उन्नत देशोंमें यह बात स्वतः सिद्ध मान ली गयी है कि पुरुषोंकी शिक्षाकी अपेक्षा स्त्री-शिक्षा कहीं अधिक उपयोगी होती है । हर्षकी बात है, भारतीयोंने भी इस बातको स्वीकार कर लिया है और स्त्री-शिक्षाके लिए यहां भी काफी उद्योग किया जा रहा है । पर देशकी पराधीनता और दरिद्रताके कारण इस ओर यथेष्ट प्रगति नहीं दिखाई दे रही है । हम मानते हैं कि भारत सरीखे देशमें

स्त्री-शिक्षा धीरे-धीरे ही हो सकती है; परन्तु यह सोचकर हमें चुप नहीं बैठ रहना चाहिए, वरन् जो भी साधन हमें उपलब्ध हैं, उन्हें उपयोगमें ला हमें कार्यशील ही रहना चाहिए। आखिर कभी तो हमारे परिश्रमका फल मिलेगा ही। स्त्री-शिक्षाकी प्रगतिके मार्गमें ऊपर जो रुकावटें बतलायी गयी हैं, वे हमारे वशकी नहीं हैं। वे तो समय आनेपर दूर हो सकती हैं, मगर हमारी जो कमजोरियां हैं, उन्हें तो अवश्य दूर करना चाहिए।

प्रत्येक वर्ष भारतमें भी सैकड़ों नये स्कूल खोले जाते हैं। ये अधिक संख्यामें लड़कोंके लिए होते हैं। इन स्कूलोंमें लड़कियोंके स्कूलोंकी संख्या तो केवल ५ प्रतिशत ही होती होगी। ये लड़कियोंके स्कूल भी केवल शहरोंमें ही खोले जाते हैं। भारतमें कोई बिरला ही ग्राम होगा, जहां कोई प्राइमरी स्कूल लड़कियोंकी शिक्षाके लिए हो।

भारतमें शहरोंकी अपेक्षा गांवोंकी संख्या बहुत अधिक है। इसलिए भारतको अविद्याके अन्धकारसे निकालनेके लिए ग्राम-शिक्षाकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। ग्रामीण पुरुषोंकी शिक्षाके लिए रोज नयी स्कीमें बनती हैं, परन्तु ग्रामीण महिलाओंकी शिक्षाकी ओर बहुत कम लोगोंका ध्यान गया है। पुरुषोंकी दिमागी दुनिया बदल गयी है, परन्तु ग्रामीण स्त्रियोंके दिमागमें अब भी वे ही बातें हैं, जो सौ वर्ष पहले थीं। जब जमाना इतनी शीघ्रतासे बदल रहा है, तो हमारी ग्रामीण माताओंपर इसका प्रभाव क्यों नहीं पड़ता? इसका मूल कारण उनकी अविद्या ही है, जो उन्हें वर्तमान संसारसे अलग रखे हुए है। जब हमारी मातायें अशिक्षित हैं, तो भारत कदापि शिक्षित नहीं कहला सकता। अतः महिला-शिक्षा-प्रेमियोंको लाखोंकी संख्यामें बसनेवाली ग्रामीण महिलाओंमें शिक्षा-प्रचार करनेका प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें कोई ऐसा सरल उपाय सोच निकालना चाहिए, जिससे गांवोंमें रहनेवाली स्त्रियां अल्प समय और व्ययमें व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर सकें। उन्हें इस उन्नतिके युगमें अब ज्यादा दिन तक अविद्याके गर्तमें पड़े रहने देना ठीक नहीं है। यदि वे ग्रामीण बहनों और माताओंको इस घोरतम अन्धकारसे न निकालेंगे, तो भारतको अविद्याके अन्धकारसे किस प्रकार मुक्त कर सकेंगे?

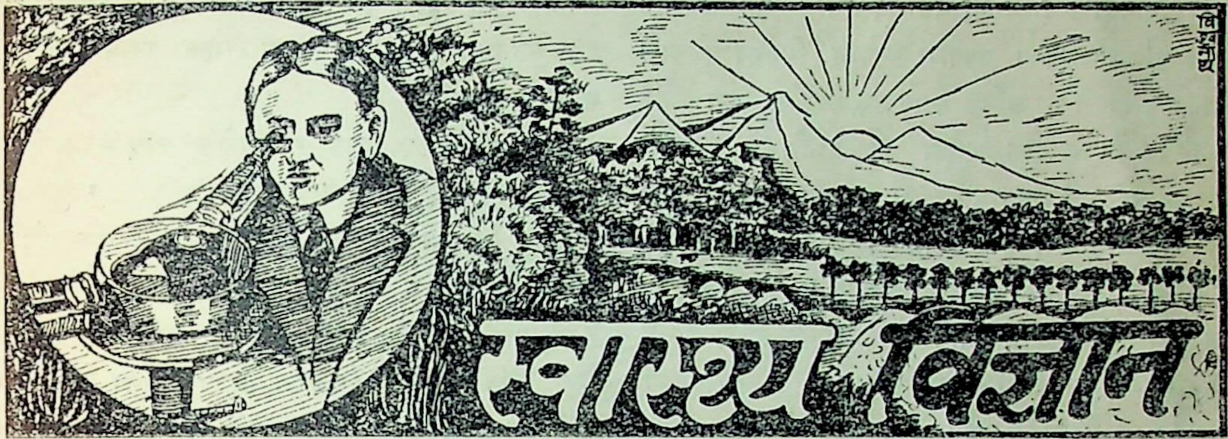
भारतीय ग्रामीण स्त्रियां दिन-रात कोल्हूके बैलकी नाईं घरके काम-काजमें लगी रहती हैं। उनके पढ़नेके लिए कौन-सा समय निश्चित किया जाय, यह सचमुच एक समस्या है। पुरुषोंकी तरह स्त्रियां नाइट स्कूलमें तो जा नहीं सकतीं, उनके लिए तो दिनमें ही कोई समय ठीक रहेगा। गांवोंकी स्त्रियां सवेरेसे १२ बजे तक तो रोटी-पानीके काममें लगी रहती हैं। फिर शामको ४ बजेसे घरके भोजन आदि बनानेमें जुट जाती हैं। इस तरह उन्हें दिनमें केवल तीन-चार घण्टे बचते हैं। इस समयमें वे अक्सर चर्खा लेकर बैठ जाती हैं, या और कोई काम करती हैं। इसी फुरसतके समयमेंसे थोड़ा समय निकालकर उनकी शिक्षामें लगाना चाहिए।

ग्रामकी स्त्रियोंको किसी नियत स्थानपर प्रतिदिन दोपहरको दो घण्टेके लिए इकट्ठा होना चाहिए। उनकी अध्यापिका या तो कोई भद्र सुशिक्षित ग्रामीण बहिन ही हो, जिसको ग्रामीण महिलायें अपनी अध्यापिका चुन लें या कोई अध्यापिका वेतनपर रख लेनी चाहिए। जब ग्रामीण स्त्रियोंमें स्वयं शिक्षा प्राप्त करनेकी रुचि होगी, तो गांवोंके उदार विचारके पुरुषोंमें उनकी शिक्षाके लिए बहुत-से व्यक्ति स्कीम बनानेको तैयार हो जायंगे, और उनकी बनायी स्कीम इस स्कीमसे अधिक उपयोगी होगी। फिर गांवोंके स्त्री-पुरुष उस स्कीमको व्यवहारमें लानेकी यथासाध्य कोशिश भी करेंगे।

महिलाओंकी शिक्षाका कोर्स बहुत थोड़े समयका होना चाहिए। इस समयमें माताओंको वर्ण-ज्ञान हो जाना चाहिए। शेष विषय उन्हें पुस्तकों द्वारा न पढ़ाकर भाषण द्वारा ही पढ़ाना चाहिए। उनको धर्मके विषयमें साधारण ज्ञान प्राप्त होना जरूरी है, क्योंकि अब तक हमारी ग्रामीण मातायें अपना धर्म केवल अन्धविश्वास ही समझे बैठी हैं। उन्हें स्त्री-सम्बन्धी अनेक प्रकारकी व्यावहारिक शिक्षायें मिलनी चाहिए।

ग्रामीण महिलायें बड़ी सुशील और तीव्र बुद्धिवाली होती हैं। यदि वे एक बार भी इन शिक्षाओंको कान लगाकर सुन लेंगी, तो वे उनका ख्याल अवश्य करेंगी। शिक्षित बहिनों और भाइयोंको चाहिए कि वे अपनी भोली ग्रामीण बहिनोंको उन्नति-मार्ग दिखा दें।

—कुमारी सरस्वती शर्मा।



उपवास द्वारा रोगोंका इलाज

"टाइम्स आफ इण्डिया" में डा० लन् लिखते हैं :—

मैं आपका बड़ा अनुगृहीत हूंगा, यदि आप मुझे रायल सोसाइटी आफ मेडिसिनके फेलो तथा डबलिन विश्व-विद्यालयके ४७ साल पुराने एक रजिस्टर्ड डाक्टर आफ मेडिसिन और बैचलर आफ सरजरीकी हैसियतसे मुझे इस बातकी अनुमति देंगे कि मैं अपने पेशेके अन्य सदस्योंसे यह अपील करूं कि वे उन संस्थाओंमें किये गये प्रयोगोंके उन महत्त्वपूर्ण परिणामोंके प्रति विचार करें, जहांपर विशेषतः उपवास कराकर विषाक्त रोग दूर किये जाते हैं। मैं यह पत्र, जिसमें विशेष चिकित्सा-प्रणालीका उल्लेख है, कई सालके अध्ययन तथा हालही में १० दिन तक केवल पानी, ३ दिन तक शाक-भाजीका रस मिलाया हुआ जल पीकर तथा सात दिन केवल दूधपर रहकर व्यक्तिगत अनुभव कर लेनेके बाद लिख रहा हूं।

आजसे नौ साल पहले स्विस सरकारसे निमन्त्रण पाकर एक स्विस संस्थाकी यात्रा करनेपर इस चिकित्सा-प्रणालीके कई योग्य डाक्टरोंसे मिला था। इस तरहके डाक्टरोंमें रायल कालेज आफ फिजीसियनके अध्यक्ष तथा अन्य कई डाक्टर भी थे, जिनके नाम इस देशके घर-घरमें लिये जाते हैं। इस यात्राके समय मैंने अपने साथियोंको निजी अनुभव बताये कि किस प्रकार निराहार-चिकित्सा-प्रणालीके द्वारा मैं उस भयानक बीमारीसे मुक्त हुआ, जो यूरिकऐसिडकी खराबीसे उत्पन्न हुई थी और जिससे मैं ४० सालसे पीड़ित था। मेरे मित्रोंमेंसे सबने कहा, "आपको यह बेजोड़ अनुभव प्राप्त हुआ है। आप 'लैंटिन' के लिए इस सम्बन्धमें लिखें।" उस मित्रके कथनानुसार मैंने उन वर्षोंके रेकार्डोंको एक लेखके रूपमें दिया, जो उस पत्रमें प्रकाशित हुआ।

पिछले कुछ वर्षोंके बीच मैंने व्यस्तताका जीवन व्यतीत किया, जिसके दरम्यान मैंने संसारमें भ्रमण करनेके उद्देश्यसे यात्रा की। ४ महीने तक अमेरिकाके विश्वविद्यालयोंका दौरा करके भाषण किया और गत मईके महीनेमें राजनीतिक आन्दोलनमें अपने मित्रोंके आम चुनावके सम्बन्धमें परिश्रम किया तथा इसके अलावा मुझे साधारण जीवनका जो श्रम उठाना पड़ा, उनके कारण मैंने उपवास करनेका निश्चय किया, जिसका उल्लेख मैं अभी कर चुका हूं।

मेरा विचार है कि निराहार-चिकित्सा-प्रणाली सम्बन्धी संस्थाओंमें रोगोंकी आश्चर्यजनक सफलताके सम्बन्धमें रेकार्ड दर्ज किये जाने चाहिए, जिनपर मेडिकल पेशेके प्रधान लोग सावधानीके साथ विचार करें।

उक्त संस्थासे जिन सज्जनने परिचय कराया, वे स्वयं इस चिकित्सा-प्रणालीके अच्छे अनुभवी हैं। वे एक बैरिस्टर हैं। १० साल तक अपने पेशेमें लगे रहनेसे उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था। जिस समय मैं स्वीजरलैंड पहुंचा था, उस समय उन्होंने भी उस संस्थाका दौरा किया था। उन्होंने अपनी बीमारीका जो किस्सा बताया, वह इस प्रकार है। क्रानिक पैनक्रियेटीटिस (उदर सम्बन्धी एक भयानक बीमारी), बरवट (गैलस्टोन) तथा अन्य प्रकारकी पेटकी खराबियोंके कारण पिछले कुछ वर्षोंसे उनका स्वास्थ्य

बिलकुल नष्ट हो गया था। जिन डाक्टरोंसे वे मिले, उन्होंने रोग दूर होनेकी कोई आशा नहीं दिलायी। इस सम्बन्धमें उन्होंने अधिक समयका उपवास करनेका निश्चय किया। उन्होंने ५० दिनसे भी अधिक समय तक उपवास किया और इस बीचमें केवल जल अथवा वह पानी, जिसमें सब्जी उबाल ली गयी थी अथवा फलोंका रस पीकर ही वे रहे। इसके साथ उन्होंने उसी संस्थामें रहकर मालिश करायी तथा एनिमा भी लेते रहे। इसका परिणाम बड़ा ही आश्चर्य-जनक हुआ। और आज यद्यपि वे अधेड़ व्यक्ति हैं, किन्तु उनके शरीरमें नवयुवकोंकी-सी स्फूर्ति आ गयी है और उनका स्वास्थ्य आज किसी भी अपने दैनिक जीवनमें व्यस्त बने रहनेवाले व्यक्तिके लिए स्पर्धाकी वस्तु हो सकता है।

कोई दो साल हुए, मैंने दो या तीन घण्टे तक उक्त संस्थाका निरीक्षण किया था। वहांपर मैंने एक आदमीको देखा, जो भयानक हार्निया रोगसे पीड़ित था—उसका रोग काफी अधिक बढ़ गया था और उसे स्ट्रेचरपर लादकर वहां तक लाया गया था। डाक्टरोंने भी उसे असाध्य रोग बताकर जवाब दे दिया था। चारों तरफसे निराश हो जानेपर ही वह आखिरी उपचारके लिए वहांपर आया था। लेकिन कुछ ही सप्ताहके बाद उसकी हालत सुधर गयी और उसने फिर खोयी हुई शक्ति और स्वास्थ्यको प्राप्त कर लिया।

ये दो उदाहरण इस किस्मकी बीमारीके सम्बन्धमें विशेष उल्लेखनीय हैं।

वहांपर ठहरनेके समय मैं एक दिन:(जो वहांपर मेरा आखिरी रविवार था) एक व्यक्तिसे मिला, जो वहां पासमें ही रहता था और जिसे स्नायु-दौर्बल्यकी बीमारी हो गयी थी, लेकिन जो अब बिलकुल स्वस्थ हो गया था। उसकी लड़कीको एक खास तरहकी बीमारी थी। उसे जोरोंका बादी बुखार (रयूमेटिक फीवर) हो जाता था। उस संस्थामें उसे केवल मालिश (मैसेज), एनिमा और आराम दिया गया। इसके साथ ही उसने १७ दिन तक उपवास किया। उसे बुखार बड़े भयानक रूपसे होता था और इसलिए यह विश्वास किया जाता था कि इसका उसके हृदयपर आघात पहुंच सकता है, लेकिन इस उपचारकी प्रणालीसे वह बिलकुल स्वस्थ हो गयी और आज उसका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक है। उस भयानक रोगका उसमें कोई भी लक्षण नहीं रह गया है।

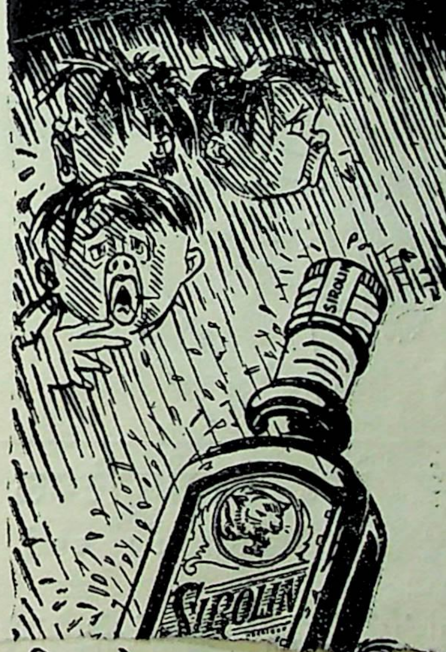
वहांपर रहकर उपवास करनेके बाद मैं नवीन शक्ति और स्फूर्ति प्राप्त करके वापस लौटा।

मुझे यह अनुभव हो गया था कि इस चिकित्सा-प्रणालीके आचार्य जो दावा करते हैं, वह सत्य है। वे कहते हैं कि इस प्रणालीके द्वारा मनुष्यके शरीरमें वर्षोंसे उत्पन्न खराबियोंको बाहर निकाल दिया जाता है। भोजनमें व्यतिक्रम होनेसे अथवा आहारके सम्बन्धमें कोई पाबन्दी न रखनेके कारण हमारे शरीरकी क्रियाओंमें अनिवार्य रूपसे खराबियां उत्पन्न हो जाती हैं। इन खराबियोंको उपवासके द्वारा दूर कर दिया जाता है। शरीरकी शिरायें स्वच्छ हो जाती हैं और शरीरके स्नायुओंमें फिर सुचारु रूपसे रक्त-सञ्चार होने लगता है। इस तरहसे शरीरकी पूरे तौरसे अन्दरूनी सफाई कर दिये जानेका परिणाम सुन्दर होना अनिवार्य है। ब्लडप्रेशर (रक्त) का दबाव बढ़ जाने, बराबर कब्ज रहने तथा गठियाके कारण उत्पन्न होनेवाली अनेक किस्मकी बीमारियोंके सम्बन्धमें इससे उल्लेखनीय सफलता मिलती है।

इस इलाजके सम्बन्धमें मेरा ज्ञान सीमित है। अतएव मैं रोगोंके सम्बन्धमें अधिक विस्तृत रूपसे विचार करना नहीं चाहता। लेकिन मैं आशा करता हूं कि इस पत्रमें पर्याप्तरूपसे कहा जा चुका है, ताकि मेडिकल पेशेके लोग इस प्रश्नकी ओर निर्दिष्ट रूपसे अपना ध्यान आकर्षित करें कि यह चिकित्सा-प्रणाली व्यापक रूपसे ग्रहण किये जानेके योग्य है अथवा नहीं।

विविध रूपोंमें प्रकट होनेवाली गठियाकी बीमारीसे देशको भारी नुकसान पहुंचता है। हर साल इससे लाखों लोग पीड़ित हो रहे हैं। इसलिए इस रोगके दूर करनेके उद्देश्यसे इस चिकित्सा-प्रणालीपर सावधानीके साथ वैज्ञानिक अध्ययनकी आवश्यकता है।





…निपर अपनी प्रगल्भता छोड़ चुकी है।
…ताको मृत्युकी गम्भीर मधुरतामें परिणत
…ौन्दर्य और मङ्गलका मिलन है। यदि
…र उठे, तो श्रृङ्गी निर्घोषको इन पृथ्वी
…ामसे ही जीवनके अन्तमें एक बहुत
…या गया है।

है, पल-पलमें डगभर बढ़ता हुआ। आदि-कालसे जगका मानव सत्यम्‌की आराधना करता आया है। मेघदूत अब जलशून्य होनेसे रजत, शङ्ख और मृणालकी भांति उज्ज्वल और हलके हो गये हैं—आधे छंटे खेतके हल द्वारा विदीर्ण गड्ढोंमें शरत् सो रहा है। और वह महान् यात्री अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर है। जीवन उसका सम्बल है।

कलामें यही अपूर्णतासे पूर्णताकी ओर जानेका आदर्श है। और चेतनाकी दीप्ति तथा करुणाकी मधुरता एवं गम्भीरता भी है। यही कलाका सिञ्चन है। सङ्गीत-कलामें ताल सुरको भोजन देता है, सम उसकी चिरमौन समाधि

× × × ×

कला वास्तवकी प्रतिच्छवि है, कला अन्तरकी सम्पूर्णताके आदर्शका प्रकाश है—इसी यथार्थवाद और आदर्शवादके कलात्मक पार्श्वमें तपोवन अपनी साधनामें रत है। उसकी साधनासे मेघदूत, क्लान्त सन्ध्याका दिग-दिगन्त मार्मिक निःश्वास छोड़, कलासे अलक्ष्यकी ओर उठ रहा है।

और इस मूर्तिको देखकर कहें कि कौन था जिसने इस जीवनको इस प्रकार बना डाला कि कहीं उंचाई, निचाई और कहीं स्पष्ट एवं अस्पष्ट छोटी-बड़ी रेखायें पड़ी हैं—

बिलकुल नष्ट हो गया था। जिन डाक्टरोंसे वे मिले, उन्होंने

...ाया हुई शक्ति और स्वास्थ्यको प्रा...
ये दो उदाहरण इस किस्मकी बीमा...
उल्लेखनीय हैं।

वहांपर ठहरनेके समय में एक दि...
आखिरी रविवार था) एक व्यक्तिसे मि...
ही रहता था और जिसे स्नायु-दौर्बल्य...
थी, लेकिन जो अब बिलकुल स्वस्थ हो ... उसका लड़कीको एक खास तरहकी बीमारी थी। उसे जोरोंका बादी बुखार (रयूमेटिक फीवर) हो जाता था। उस संस्थामें उसे केवल मालिश (मैसेज), एनिमा और आराम दिया गया। इसके साथ ही उसने १७ दिन तक उपवास किया। उसे बुखार बड़े भयानक रूपसे होता था और इसलिए यह विश्वास किया जाता था कि इसका उसके हृदयपर

आघात पहुंच सकता है, लेकिन इस उपचारकी प्रणालीसे

... कर कि यह चिकित्सा-प्रणाली व्यापक रूपसे प्रयोग किये जानेके योग्य है अथवा नहीं।

विविध रूपोंमें प्रकट होनेवाली गठियाकी बीमारीसे देशको भारी नुकसान पहुंचता है। हर साल इससे लाखों लोग पीड़ित हो रहे हैं। इसलिए इस रोगके दूर करनेके उद्देश्यसे इस चिकित्सा-प्रणालीपर सावधानीके साथ वैज्ञानिक अध्ययनकी आवश्यकता है।





कला और साधना

युग-युगसे कलाकी साधनामें रत वह तपोवनका मानव अपने रक्तस्नात हाथों और रक्त-रञ्जित अधरोंमें भी कितना दीन प्रतीत होता है ? निर्मित कलाके बाहर और अभिनीत नाट्यके नेपथ्यमें उसकी उम्र बढ़ गयी है ।

× × × ×

कला हमारी सत्यं, शिवं, सुन्दरम्‌की उपासना और साधनाकी परिचायिका है । प्रकृतिने अपना अनुपम सौन्दर्य-भण्डार विश्व-मानवके सामने बिखेर दिया है—कलाकार आयें और उसी सौन्दर्यको श्रेणीभुक्त कर फिरसे मानवके सामने उस प्रदर्शन-अभिव्यक्तिमें अपनी अनुभूतिका सम्पुट दे, उपस्थित करें ! आषाढ़के काले मेघखण्डोंको किसने नहीं देखा; किन्तु उसे विरही यक्षका सन्देशवाहक कालिदास ही बना सके ।

संसार स्वयं एक विराट् सत्यकी साधनाका महान् यात्री है, पल-पलमें डगभर बढ़ता हुआ । आदि-कालसे जगका मानव सत्यम्‌की आराधना करता आया है । मेघदूत अभ्र जलशून्य होनेसे रजत, शङ्ख और मृणालकी भांति उज्ज्वल और हलके हो गये हैं—आधे छंटे खेतके हल द्वारा विदीर्ण गड्ढोंमें शरत् सो रहा है । और वह महान् यात्री अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर है । जीवन उसका सम्बल है ।

कलामें यही अपूर्णतासे पूर्णताकी ओर जानेका आदर्श है । और चेतनाकी दीप्ति तथा करुणाकी मधुरता एवं गम्भीरता भी है । यही कलाका लिब्चन है । सङ्गीत-कलामें ताल सुरको भोजन देता है, सम उसकी चिरमौन समाधि है । इन्हींके अस्तित्व-कालमें कला जीवनमें विकसित हो सकती है । जब ये चले जाते हैं—वह जीवन खोखला, घृणास्पद हो जाता है और कह देते हैं कि उसकी मृत्यु हो गयी—उसमें कला नहीं है । परन्तु अपूर्णतासे पूर्णता ही अन्त है, पूर्णता ही मृत्यु है । अतः उसमें जीवन-कालसे साधित कला, अपनी चरमावस्थापर पहुंची कला है । जीवनमें श्वास, कलाको इधर-उधर खींचता रहता है, उसमें कृत्रिमता है । कला अपनी साधनामें, सङ्घर्षमें विजयी होकर मृत्युमें उतरी है । जीवन सुन्दर था, मृत्यु कलामय है । कला पूर्ण विकसित होनेपर अपनी प्रगल्भता छोड़ चुकी है । जीवन अपनी सार्थकताको मृत्युकी गम्भीर मधुरतामें परिणत कर चुका है । यहीं सौन्दर्य और मङ्गलका मिलन है । यदि यही ताण्डव नृत्य कर उठे, तो शृङ्गी निर्घोषको सुन पृथ्वी कांप उठे । कलाके नामसे ही जीवनके अन्तमें एक बहुत बड़ा स्थान छोड़ दिया गया है ।

× × × ×

कला वास्तवकी प्रतिच्छवि है, कला अन्तरकी सम्पूर्णताके आदर्शका प्रकाश है—इसी यथार्थवाद और आदर्शवादके कलात्मक पार्श्वमें तपोवन अपनी साधनामें रत है । उसकी साधनासे मेघदूत, क्लान्त सन्ध्याका दिग-दिगन्त मार्मिक निःश्वास छोड़, कलासे अलक्ष्यकी ओर उठ रहा है ।

और हम मूर्तिको देखकर कहें कि कौन था जिसने इस जीवनको इस प्रकार बना डाला कि कहीं उंचाई, निचाई और कहीं स्पष्ट एवं अस्पष्ट छोटी-बड़ी रेखायें पड़ी हैं—

अस्तव्यस्त-सी, जिनमें कोई तारतम्य नहीं, सामञ्जस्य नहीं है। और तोपवनमें हम देखें—वह मानव—कलाकार अपनी कलाको सींच रहा है। क्या वे रेखायें अब घावके रूपमें उस जीवनको अधिक कलामय बनायेंगी ? और इस समय क्या हमने उस कलाकारको ही प्रेमकी दृष्टिसे देखा ? उस समय नीरवतासे, कौतुकसे, मधुरतासे किसने उसे 'सम्पूर्ण' बना रखा था ? पीड़ा और वेदना ही तो कलाकारका जीवन है। इसके बिना वह कलाकार स्पष्टतः असहाय, अपूर्ण और अनावृत्त भावसे दीखता है कि उसे देखनेमें भी सङ्कोच होता है। वेदनामें ही कला-सौन्दर्यकी सृष्टि है। उसीमें आत्माके अभिनव स्वप्न साकार हो उठते हैं। साहित्यमें प्रकृतिवादके प्रवर्तक फ्रेञ्च एमिल जोला, यह अनुभव करनेके लिए कि दबते हुएके दिलमें कैसी बेकली होती है, चलती गाड़ियोंके आगे सड़कपर कूद पड़ते थे। इसमें जितनी कला निहित थी, उसपर अधिकार बेकली ही का था और उसीकी प्रेरणासे वह कला आविष्कृत हुई थी।

× × × ×

वहीं—ठीक वहीं—मातृमूर्तिकी एक प्रतिनिधि खड़ी है। उसके गर्म हाथ नन्हें-से शिशुके शरीरपर फिर रहे हैं। और वह मानव उसके आगे अवनत मस्तक खड़ा है। 'श्रेष्ठ भिक्षा' में एक भिक्षु भगवान् बुद्धके लिए श्रेष्ठ भिक्षाको निकला। नगरके लोग वस्त्र-आभूषण ले पहुंचे, पर भिक्षुको सन्तोष न हुआ। नगरके बाहर उस भिखारिनने एक पेड़की आड़में होकर अपना फटा चिथड़ा उतारकर आराध्य बुद्धके लिए भिक्षुको दे दिया। भिक्षु निहाल हो गया।

और मैं हग मींचे सोचता हूं कि कला भी क्या है जो इन तपोवनके, सभ्य जगत्के हेय समझे जानेवाले लोगोंको, जगत्के सर्वश्रेष्ठ पदपर आसीन करती है। जिनके तपोवनमें पीड़ा, करुणा और कङ्गालीका ही साम्राज्य है, वे भी सौन्दर्यमय जगतीके शासनका दावा कर सकते हैं। उनकी करुणा, उनका त्याग, मानवताकी सीमाको अतिक्रम कर उनको और भी ऊपर उठा ले गया है।

और कोई मुझे झकझोरकर कह रहा है—"उसे देखो, बार-बार देखो, तुम्हें वह अङ्ग दिखाई देगा जो सर्वथा नवीन है, तुम्हें एक निर्दोष, विशेष मूर्ति दिखाई देगी।" और मैं पल-पलके उठते पृष्ठोंकी भांति देखता हूं—देखता ही रहा—सन्ध्याकी नीरवतामें, रात्रिकी अज्ञेयतामें, उषाकी अरुणिमामें—उस आन्तरिक मूर्ति—कलामय मूर्तिको मैंने और उसने साथ ही वन्दन किया और कलावाणीमें कह उठा—"देखो, उसे बार-बार देखो, जो सुन्दर है उसे देखो, जो महान् है उसे देखो।"

× × × ×

मनुष्य साक्षात्‌को वास्तविक सत्ताको देखे बिना प्रत्येक वस्तुको श्रेणीभुक्त कर देखता है और सन्तोषकी सांस लेता है। इस मनकी अनुशीलनतापर व्यक्तिका व्यक्तित्व छिपा फिरता है। नदी अपने दोनों किनारोंको छोड़कर—उस बन्धन और सीमाको तोड़कर अपनी गति एवं धाराको प्रवाहित नहीं रख सकती, उसे दोनों तटोंके बीच ही में गतिको विजड़ित कर चलना होता है। जीवन भी उतार-चढ़ावके मूल्यमें बिकता, घिसता-सा चलता है—तपता-सा। अपने ही को जला-जलाकर जीनेवाला जीवन अधिक कलामय हो युग-युग तक जलता ही रहता है दीप-सा। क्षुधा जीवनकी काम्य वस्तु नहीं—ताड़ना है, इसारी विवशता उसमें है। रश्मिपुञ्ज सूर्यकी एक किरण वृन्तके बन्धन और पल्लवोंके अन्तरालपर पड़ती है—दूसरी एक फूसकी झोंपड़ीपर। बेचारी फूस ही की ठहरी और जलने लगी धांय-धांय। एक दूसरी कलामें कितना सादृश्य है। और कलाकी साध पूरी हो जाती है।

तपोवनके इन कलायुक्त मानवोंके मुखमण्डलपर जीवनकी जो भांति-भांतिकी अभिज्ञताओंकी छवि दीपित है, वह विश्वके किस रङ्गमञ्चपर अभिनीत हुई है? इनके गीतकी स्वर-लहरी, पत्तोंके मर्मर सङ्गीत, स्रोतस्विनीकी कल-कल ध्वनि, भ्रमरके गुञ्जन और शत-शत मानवोंके कण्ठोंमें भी विलुण्ठित नहीं हुई है। जीवन दुःख, वेदना और अश्रु ही का सम्मिलन है। जीवन सुन्दर है, मृत्यु सुन्दर, पीड़ा, वेदना सुन्दर और अश्रु भी सुन्दर एवं सत्य हैं। जीवनके लिए दुर्बलता भी सत्य है, छाया भी सत्य है; क्योंकि आलोक है। मृत्युकी किसीको चाह नहीं होती; परन्तु जीवनकी कलाके विकसित रूपमें वह उसे भेंटता है। तपोवनका वह कलाकार अपनी टूटी पर्णकुटियामें बैठा अश्रु-भरे हगोंसे जब कला सृजन करता है, तब किसे मालूम होता है कि कला जीवनके विभिन्न

स्तरोंको घेरे है, उसके लिए जीवन न मालूम कितनी कठिन साधना और कठोर संयम तथा अश्रुओंके कितने रक्तदानका वरदान है। कलाविदोंने बुद्धकी असंख्य मूर्तियां निर्माण की हैं। अनवरत अनशनसे उनकी हड्डियां उभर आयी हैं—जीर्ण कङ्काल सार मूर्ति और तपोवनका कलाविद उसकी--"जागो हे जागो बोधिसत्व"— में आरती करता है, स्वयं ही वह शक्ति पा रहा है।

× × × ×

कलाका सौन्दर्य है आभ्यन्तरीण सत्यकी अभिव्यक्ति। कला जीवन और प्रकृतिमें अतीन्द्रिय भावको खोज रही है। सौन्दर्यमें ही अपूर्णतासे सम्पूर्णता है। कलापी आज कला पीकर स्वयं सौन्दर्यका रेखाङ्कन बन गया है। उसमें एक पुलक कम्पन विद्यमान है। वह कला है, जो जीवनको सुन्दर बना सके। आंख किसीको इसलिए देख लेती है कि वह उससे दूर है; पर वह आंख अपनी पलकोंको देख ही नहीं पाती। कला, कला है, इसमें प्रयोजन, अप्रयोजनकी कसौटी-की क्या आवश्यकता है? मैं उनसे पूछता हूं कि ऐसी कलाका अर्थ क्या है और एक ही उत्तर पाता हूं—'इसका अर्थ यह स्वयं ही है।" जीवन और कला इस उपलब्धिके प्रमाण स्तम्भ हैं कि हमने तुम्हें पाया है। यही कला है—सत्यं, शिवं, सुन्दरम्‌का सफल सन्धान!

अतीतका मानव भी कलाका प्रिय विषय है। दुर्भाग्यने उसको एक जन-मानव-हीन द्वीपमें पहुंचा दिया। पक्षी उसके पास आकर विस्मयसे मौन हो जाते, पशु हिंसा भूल जाते; किन्तु उन्हें वह जीवन कितना निर्जीव, कितना नीरस सूझा और वह वृद्ध, महीपतिकी भूमि-याचनापर अपने फटे चिथड़े लेकर चल पड़ा सबको वन्दन कर। आगे वह कलाकार कुछ न कह सका—रो पड़ा। साहित्यिक कला-कारने कहा—"यहां तो केवल सङ्घर्ष है—वेदना है, यह मिट जाना चाहिए।"

और मैं उसे—उस कङ्कालीकी प्रतिमूर्तिको—वन्दन कर कहूंगा—"हे कलाविद्! अपनी कलाका हमें भी अध्ययन कराओ कि हम इस भागको भी तपोवन बना सकें।" और वाणी और शब्द एक साथ रो पड़े।

साधनामें रत वह कलाकार स्वतः पूर्ण है। भाषा-विहीन अज्ञेय गीत गा-गाकर आकाश उसे सुदूरकी ओर बुला रहा है। लम्बे वैराग्यने उनके रेखाङ्कनकी कठोरता सोख ली है। शिल्पीकी हृत्तन्त्री झनझना उठी है—यही सङ्गीत है। तब उसे एक आवेग, एक स्पन्दनका अनुभव होता है। जीवन-की विभिन्न घटनायें और प्रकृतिकी सुन्दरतायें; मानव-हृदयमें थपेड़े दे-देकर उसे भाव-प्रवण बनाती हैं। उस सौन्दर्य-समन्वित रूपमें कलाकारकी आत्मीयता जब सन्निहित हो जाती है—वह कलाकार गा उठता है, चित्र बनाता है और वहीं उसका एक स्मृति-चिह्न रख देता है।—और एक कृषक अपने क्षेत्रमें रेखायें खींच रहा है।

× × × ×

तपोवनके, कठोर परिस्थितियोंके भूखे कलाकारकी साधना कलाकी रंगी हुई पंक्ति-परम्पराका सम्पुट खोलती है। पीड़ासे जलाये जीवन-दीप, कलामें सत्य बनकर उतरे हैं। मेघमालाकी भांति अन्तरेक घनीभूत भावोंकी गतिने उसके कलहासपर अश्रुगम्भीर छाया डाल दी है। अपने असंख्य भग्नावशेषोंको वक्षस्थलमें समेटे, युग-धर्मकी साधसे भरे कलाकारका वही छिन्न-भिन्न विश्व आज युग-युगसे साधित कलाके साध्य रूपमें चला जा रहा है!!—अम्बेश

× × × ×

साम्राज्य और उनका पतन। लेखक—श्री भगवान-दास केला; प्रकाशक, व्यवस्थापक—भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन; साइज—डबल क्राउन सोलहपेजी; पृष्ठ-संख्या २२८; मूल्य १।)।

प्रस्तुत पुस्तकके लेखक श्री भगवानदास केला काफी अर्सेसे, राजनीति एवं अर्थ-शास्त्र-सम्बन्धी पुस्तकोंसे हिन्दी-साहित्यके भाण्डारको भर रहे हैं। उनकी लिखी पुस्तकोंका हिन्दी-जगत्‌में यथेष्ट आदर हुआ है। 'साम्राज्य और उनका पतन' में श्री केलाजीने बड़ी सरल और सुबोध भाषामें बत-लाया है कि साम्राज्योंका निर्माण कैसे होता है, किस प्रकार वे अपनी स्थितिको कायम रखते हैं और किस प्रकार उनका पतन होता है। आपने उदाहरणार्थ ग्यारह साम्राज्योंका संक्षिप्त विवरण दिया है। निस्सन्देह केलाजीने इसे लिखकर हिन्दी-राजनीतिक साहित्यके एक और अभावकी पूर्ति की है। यह पुस्तक आपके वर्षोंके परिश्रम और चिन्तनका फल है। इसकी सामग्रियोंको जुटानेमें आपने परिश्रम, सचाई और निष्पक्षतासे काम लिया है। प्रस्तुत

पुस्तक किसी विशेष विचारका प्रतिपादन करने अथवा किसी राजनीतिक मतवादका प्रचार करनेके उद्देश्यसे नहीं लिखी गयी है, लेखकने इसे राजनीति-शास्त्रके विद्यार्थियोंको साम्राज्य संस्थाके सम्बन्धमें आवश्यक जानकारी प्राप्त करनेके लिए विशुद्ध वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक दृष्टिसे लिखा है, और इसमें सन्देह नहीं, उन्हें अपने उद्देश्यमें पूरी सफलता मिली है। हमें आशा है, हिन्दी-संसारमें केलाजीकी अन्य पुस्तकोंकी भांति इसका भी यथेष्ट आदर होगा।

अर्थ-शास्त्र शब्दावली। लेखक—सर्वश्री दयाशङ्कर दुबे, गदाधर प्रसाद अम्बष्ट और भगवानदास केला; प्रकाशक, व्यवस्थापक—भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन; साइज—डबल क्राउन सोलहपेजी; पृष्ठ-संख्या १९६; मूल्य १)।

हिन्दीमें अर्थ-शास्त्र-सम्बन्धी साहित्यकी बहुत कमी है। इस सम्बन्धकी पुस्तकें भी यथेष्ट मात्रामें प्रकाशित नहीं हुई हैं और सामयिक पत्रोंमें भी इस विषयमें बहुत कम लेख प्रकाशित होते हैं। पर अर्थ-शास्त्र राजनीतिका एक प्रमुख अङ्ग है। बिना अर्थ-शास्त्र जाने कोई भी राजनीतिका पूर्ण ज्ञाता नहीं बन सकता। इसलिए देशमें राजनीतिक प्रभावके साथ-साथ अर्थ-शास्त्र-सम्बन्धी ज्ञानका प्रचार करनेकी भी आवश्यकता है। हर्षकी बात है कि कतिपय लेखकोंका ध्यान इस ओर गया है और वे अपनी कृतियोंसे इस अभावकी पूर्तिमें लगे हुए हैं।

विद्वान् लेखकोंने प्रस्तुत पुस्तक लिखकर इस विषयकी एक बड़ी कठिनाईको दूर कर दिया है। इसमें उन्होंने अर्थ-शास्त्र सम्बन्धी पारिभाषिक एवं साधारणतया व्यवहारमें आनेवाले अंगरेजी शब्दोंका यथासुलभ तद्रूप हिन्दी पर्यायवाची शब्द दिये हैं। इससे हिन्दीमें अर्थ-शास्त्रका अध्ययन करनेवालों तथा इस विषयके निबन्ध और पुस्तक लिखनेवाले लेखकोंको बड़ी सहूलियत होगी। पुस्तकका दूसरा संस्करण हमारे सामने है, इससे इसकी लोकप्रियता स्पष्ट प्रकट होती है।

विशूचिका उपचार। लेखक—श्री भागीरथलाल चौऋपिया; प्रकाशक—रामनारायणलाल चौऋपिया, उज्जैन; साइज—डबलक्राउन सोलहपेजी; पृष्ठ-संख्या ८०; छपाई और कागज साधारण; मूल्य ।=)।

विशूचिका या हैजा एक महा भयङ्कर रोग है। भारतमें इससे प्रतिवर्ष हजारोंकी संख्यामें लोग मरते हैं। इस मारात्मक रोगका आक्रमण कभी-कभी इतना तीव्र होता है कि उपचारकी व्यवस्था करते-करते रोगीकी मृत्यु हो जाती है। शहरमें तो म्युनिसिपैलिटियों द्वारा टीका तथा अन्यान्य उपायोंसे इस रोगके आक्रमणको रोकने तथा आक्रान्त रोगियोंकी चिकित्सा करनेकी व्यवस्था रहती है, पर देहातके जिन गांवोंमें हैजा फैलता है, वहांके निवासियोंकी बड़ी दयनीय दशा होती है, योग्य डाक्टरों और वैद्योंके अभावमें सैकड़ों रोगी मृत्युके मुखमें चले जाते हैं। जहां वैद्य और डाक्टर हैं भी, वहांके अधिकांश लोग अपनी गरीबीके कारण उनसे समुचित लाभ उठा नहीं सकते।

ऐसे ही ग्रामवासियोंके लिए प्रस्तुत पुस्तक लिखकर लेखकने निस्सन्देह उनका बड़ा उपकार किया है। इसमें उन्होंने बतलाया है कि हैजा फैलनेपर किस प्रकार उसके आक्रमणसे बचा जा सकता है। उसके बाद हैजेका निदान, लक्षण और चिकित्साकी पद्धति भी बतलायी गयी है। इस रोगसे मुक्त होनेके लिए आयुर्वेदिक तथा यूनानी ग्रन्थोंसे अनेक अनुभूत योग भी संगृहीत किये गये हैं, जिनसे बहुत कम खर्चमें लाभ उठाया जा सकता है। पुस्तक ग्रामसेवाकार्य करनेवालों तथा गांवोंमें रहनेवाले वैद्योंके बड़े कामकी है।

छत्तीसगढ़ी लोकगीतोंका परिचय। लेखक—श्री श्यामाचरण दुबे; प्रकाशक—ज्ञान-मन्दिर, छत्तीसगढ़; साइज—डबलक्राउन सोलहपेजी; पृष्ठ-संख्या ७४; मूल्य ।=)।

किसी भी देशके साहित्यमें वहांके लोकगीतोंका एक प्रमुख स्थान रहता है। किसी प्रान्त या प्रदेशके लोकगीतोंमें ही वस्तुतः वहांके निवासियोंकी आत्मा निवास करती है। लोक-गीतोंमें ही हम प्रकृतिकी गोदमें क्रीड़ा करनेवाले जनसाधारणके हृदयसे सहज निकले प्रेम, विरह, करुणा और भक्तिके उच्छ्वासोंका रसास्वादन कर सकते हैं। प्रसन्नताकी बात है कि साहित्यानुरागियोंका ध्यान, साहित्यके इस आवश्यक अङ्गकी ओर गया है, लोक-गीतोंके संग्रह करनेमें दिलचस्पी दिखलायी जा रही है।

प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने छत्तीसगढ़के ग्राम-गीतोंका

सङ्कलन किया है और उनकी आलोचनात्मक व्याख्या कर बड़े विशद रूपसे उनका परिचय कराया है। यों तो लोक-गीतोंमें रुचि रखनेवाले इस पुस्तकसे आनन्द ले सकते हैं, पर तुलनात्मक भाषा-विज्ञानके विद्यार्थी अपने ज्ञान-वर्द्धनके लिए इससे विशेष रूपसे लाभ उठा सकते हैं।

सत्याग्रह। लेखक—श्री सूर्यदेव उपाध्याय 'अनुरागी'; प्रकाशक—श्री विनोद विहारी सिनहा 'पद्मेश', शकुन्तला प्रकाशन मन्दिर, गङ्गाभवन, आरा; साइज—डबलक्राउन सोलहपेजी; पृष्ठ-संख्या ६६; मूल्य ।।।), जो बहुत अधिक है।

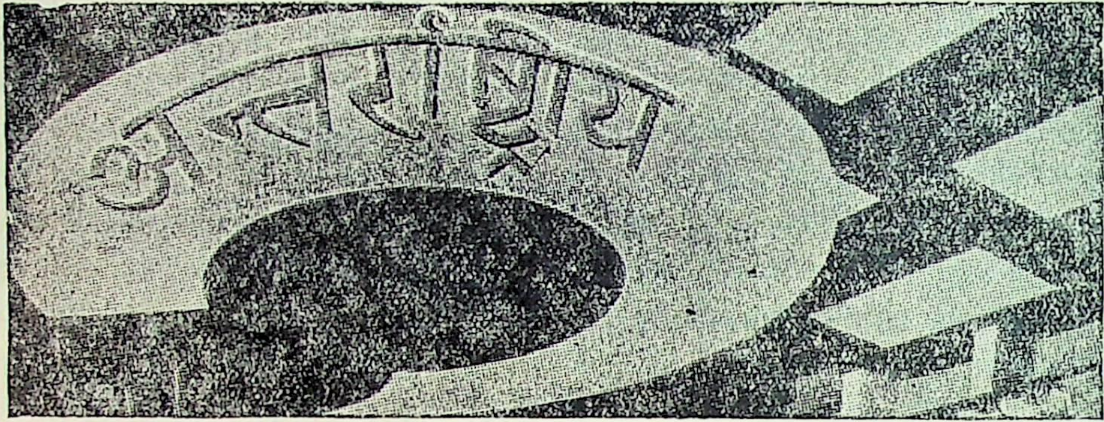
सत्याग्रहमें लेखककी लिखी कहानियां संगृहीत है। प्रायः कहानियां बालोपयोगी हैं। पात्रोंका चरित्र-चित्रण स्वाभाविक हुआ है। भाषा सरल और सुबोध है। —'आनन्द'

सरल धर्म-शिक्षा। लेखक—पं० कृष्णगोपाल तिवारी; प्रकाशक—धर्म शिक्षा समिति, सनातनधर्म हाई स्कूल, इटावा; पृष्ठ-संख्या ४२; मूल्य ≡)

सनातनधर्म शिक्षा। लेखक—पं० कृष्णगोपाल तिवारी; प्रकाशक—धर्म शिक्षा समिति, सनातनधर्म हाई स्कूल, इटावा; पृष्ठ-संख्या १०२; मूल्य ।=)

दोनों पुस्तकें छात्रोंको सनातनधर्म हाई स्कूलमें शिक्षा देनेके लिए लिखी गयी हैं और यह उद्देश्य उनसे पूरा हो जाता है। पुस्तकोंमें सभी आवश्यक विषयोंका विवेचन संक्षेपमें किया गया है। अन्य सनातनधर्म स्कूल भी इन पुस्तकोंको अपने यहां पढ़ाये जानेके लिए रख सकते हैं।

——



रूस-जर्मनी युद्ध

गत मास रूस-जर्मनी-युद्धमें कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। जर्मनोंको मास्कोपर अधिकार करनेमें सफलता नहीं मिली, इसलिए उन्होंने पूर्वकी बजाय दक्षिणकी ओर बढ़ना शुरू कर दिया। जर्मन हाई कमाण्डका दावा है कि उसे दक्षिणी यूक्रेनमें बहुत अधिक सफलता मिली है। यद्यपि इस कथनकी अन्य साधनों द्वारा अभी पुष्टि नहीं हुई है, फिर भी इसमें सन्देह करनेकी गुञ्जाइश नहीं कि जर्मनीको यूक्रेनमें कुछ सफलता मिली है और उसके एक बड़े भागपर जर्मनोंका अधिकार हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब जर्मनोंको अन्य युद्ध-क्षेत्रोंमें सफलता नहीं मिली, तब जर्मन हाई कमाण्डने अपने आक्रमणकी गतिको पूर्णतया बदल दिया है। ऐसा मालूम होता है कि दो हजार मील लम्बे युद्ध-क्षेत्रको संभालना उसके लिए कठिन हो गया। इसीलिए जर्मनोंकी अग्रगति रुक-सी गयी थी, और इस बीच रूसने अपने मोर्चेमें अपनी सेनाओंको एकत्र कर लिया है। ऐसी हालतमें जर्मनीके लिए दो ही मार्ग थे, या तो वह अपनी सारी शक्ति लगाकर जल्दीसे जल्दी रूसपर विजय प्राप्त करे, अथवा रूसके कड़ाकेके जाड़ेमें अपनी सेनाको नष्ट कर दे। जिस वीरतासे रूसियोंने जर्मन आक्रमणका मुकाबला किया है, उससे जर्मनीको इस बातका पता चल गया कि रूसपर शीघ्र विजय पाना सहज नहीं है। इसलिए नाजियोंको अपना पुराना तरीका फिर अख्तियार करना पड़ा, अर्थात् उन्होंने एक समय, एक ही स्थानमें अपनी सारी शक्तिको केन्द्रित करनेमें ही अपना कल्याण समझा। इससे जर्मनोंको कुछ सफलता मिली है। यूक्रेन और लेनिनग्राडकी ओर जर्मनीका आक्रमण सोवियटके लिए विशेष उद्वेगजनक था। कियेके दक्षिण-पूर्वमें, अर्थात् कृष्णसागरके तीरस्थ दक्षिणी यूक्रेनमें जर्मनीकी सेना बहुत आगे बढ़ गयी है। वहांसे रूसी सेनाको क्रमशः पीछे हटनेको बाध्य होना पड़ा। जर्मनोंने बूग नदीके मुहानेपर कृष्णसागरके बन्दरगाह निकोलाइमेव तथा कुछ और ऊपरकी ओर क्रिमोडरगपर दखल कर लिया है। इससे रूसी बन्दर ओडेसाकी अवस्था सङ्कटापन्न हो गयी है। इस समय ओडेसाकी हालत ठीक लीबियाके तोब्रुकके समान हो गयी है। कृष्णसागरसे होकर ओडेसाका सम्बन्ध रूससे बना हुआ है, इससे वह अभी सुरक्षित रह सकता है। जर्मनोंने अभी प्रत्यक्ष रूपसे ओडेसापर आक्रमण नहीं किया है। निकोलाइमेवपर जर्मनोंका अधिकार होनेसे पहले ही, रूसियोंने वहांके डकोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। कहा जाता है, इस बन्दरगाहपर दखल करनेमें बीस हजार जर्मन सैनिक हताहत हुए हैं। जर्मनोंने यह दावा किया है कि वे क्रिमोडरगसे पूर्वकी ओर आगे बढ़कर नीपर नदीके किनारे तक पहुंच गये हैं, और इस समय नीपर नदीके पश्चिमी किनारे तक समस्त यूक्रेनपर उनका अधिकार हो गया है। इस समय जर्मनोंकी नजर यूक्रेनके औद्योगिक शहर निपोप्रेटवस्कपर है। जर्मनोंने कहा था कि वे रूसी सेनाको आगे नहीं बढ़ने देंगे, पर रूसी विज्ञप्तिसे मालूम हुआ है कि मार्शल बूदेनी अपनी सेनाको नदी पार ले जानेमें समर्थ हुए हैं। वहां उन्होंने अपना प्रधान अड्डा बनाया है। वह स्थान आत्म-रक्षाके लिए सुविधाजनक है।

पसकोवकी ओरसे जर्मनोंने लेनिनग्राड पहुंचनेकी चेष्टा की थी, पर सफलता न मिलनेपर उन्होंने एस्टोनियाकी ओरसे आक्रमण किया। वे पेपास झीलके दोनों ओरसे अग्रसर हो नामरीमें जा मिले हैं। वहां जर्मनोंने किङ्गिसेप शहरपर दखल कर लिया है। यह शहर लेनिनग्राडसे ७० मील दक्षिण-पश्चिम अवस्थित है। फिर भी उत्तरकी ओरसे वे आगे बढ़नेकी चेष्टा कर रहे हैं। उन्होंने लाडोगा झीलके उत्तर सोरामालापर दखल कर लिया है।

तीन सप्ताह अविराम युद्ध करनेके बाद, मार्शल टिमोशङ्कोकी सेनाको स्मोलेन्स्क छोड़ना पड़ा है। पर शहर बिलकुल उजाड़ हो गया है। इस शहरपर दखल करनेमें जर्मनोंको बहुत क्षति उठानी पड़ी है। रूसके साथ युद्ध करनेमें जर्मनीकी विपुल सेना और युद्ध-सामग्री क्षय हो रही है। सोवियट विज्ञप्तिमें जर्मन डिवीजन, रेजिमेण्ट और बटालियन नष्ट होनेकी विस्तृत तालिका दी गयी है। यह जर्मनीके लिए आशङ्काकी बात है, क्योंकि इस युद्धमें उसे एक जबर्दस्त शत्रुसे मुकाबला पड़ा है। इसलिए उसे जो अब तक छोटे-छोटे राष्ट्रोंके जीतनेमें सफलता मिली है, उसकी यहां सम्भावना नहीं है।

फ्रान्समें अशान्ति

हाल ही में विशी-सरकारमें जो परिवर्तन हुआ है, उससे मालूम होता है कि अब बिशी-सरकारकी नीतिका सञ्चालन नाजियोंके आदेशसे होगा। इस समय नाजियोंके समर्थक एडमिरल डार्लां वाइस प्रीमियर, परराष्ट्र-सचिव और नौ-सेना विभागके मन्त्री हैं। राष्ट्र-रक्षा-विभागके मन्त्रीकी हैसियतसे समस्त सैनिक अधिकार भी एडमिरल डार्लांके हाथमें आ गये हैं। अब मार्शल पेतांकी हालत विचित्र हो गयी है। उनका कोई महत्त्व नहीं रह गया। उन्हें अब अपनी रायके अनुसार कार्य करनेका अधिकार नहीं रहेगा। वह नाजियोंके इशारेपर कठपुतलीकी तरह नाचा करेंगे। उन्होंने राष्ट्रके नाम ब्राडकास्ट करते हुए बतलाया है कि देशके सामने क्या-क्या समस्यायें उपस्थित हुई हैं और उन्हींका समाधान करनेके लिए मन्त्रिमण्डलमें परिवर्तन किया गया है। फ्रान्समें नयी व्यवस्था कायम करनेके लिए उन्होंने बारह विषयोंका एक राजनीतिक कार्यक्रम भी तैयार किया है। यह 'नयी व्यवस्था' और कुछ नहीं, नाजियोंकी छत्रछायामें दूसरी फैसिस्ट व्यवस्था होगी। इसके लक्षण अभीसे दिखाई देने लगे हैं। वहांकी सभी राजनीतिक पार्टियोंको तोड़ देनेका हुक्म पहलेसे ही जारी कर दिया गया है और सरकारके विरोधियोंका दमन करनेके लिए कई तरहके कानून बन गये हैं, जिनके अनुसार काररवाई होने लग गयी है। इस नयी व्यवस्थाका अर्थ यह है कि फ्रान्सके पांव अब और भी कड़ी बेड़ियोंमें जकड़ जायंगे। इस बातकी अफवाह है कि अधिकारके प्रश्नको लेकर पेतां और डार्लांमें सङ्घर्ष होनेकी सम्भावना है, पर यह अनुमान-मात्र है। क्योंकि यद्यपि दोनोंमें सरकारकी नीतिके सम्बन्धमें जरूर कुछ मतभेद है, पर सङ्घर्ष होनेकी कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती, क्योंकि जब तक फ्रान्स नाजियोंके चंगुलमें है, सरकारका विरोध करनेवाले सिर ऊपर नहीं उठा सकते।

इस समय पता नहीं, फ्रान्सके कम्यूनिस्ट क्या कर रहे हैं। वे चुप बैठनेवाले नहीं हैं। यूरोपमें जितनी भी कम्यूनिस्ट पार्टियां थीं, उनमें फ्रेञ्च कम्यूनिस्ट पार्टी सबसे अधिक प्रभावशाली थी। पर पेरिसके पतनके बाद इधर उनके सम्बन्धमें कुछ मालूम नहीं हुआ है। यह अनुमान किया जा सकता है कि नाजी विजेताओंने उनका पूरा दमन कर दिया होगा, पर फिर भी यह सम्भव नहीं है कि वे नाजियोंकी अधीनता स्वीकार कर चुप बैठे रहे होंगे। बहुत सम्भव है कि फ्रान्सके क्रान्तिकारियोंकी गति-विधिका पूर्णतः दमन करनेके लिए ही डार्लांके हाथमें समस्त सैनिक अधिकार देनेकी आवश्यकता समझी गयी हो। अब डार्लां पूर्ण अधिकार पाकर फ्रान्समें सैनिक शासन चलायेंगे, जिसमें फैसिस्ट-विरोधी आन्दोलनको किसी भी हालतमें चलने नहीं दिया जायगा। कुछ दिन पहले स्विस रेडियोसे पेरिसकी सड़कोंपर दङ्गे होनेका समाचार मिला था। इससे प्रकट होता है कि वहां कम्यूनिस्टोंका जोर कम नहीं हुआ है। इधर समाचार मिला है कि नाजियोंके प्रबल समर्थक मोशिये लावलको गोली मार दी गयी है और उनकी हालत सङ्गीन बतलायी जाती है। इससे भी प्रकट हो रहा है कि विशी-सरकारको फ्रेञ्च कम्यूनिस्ट शान्तिसे नहीं रहने दे रहे हैं।

विश्व-शान्तिके लिए अटलाण्टिक-घोषणा

संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके राष्ट्रपति और ब्रिटिश साम्राज्यके प्रतिनिधि-स्वरूप प्राइम मिनिस्टर मि० चर्चिल समुद्रपर

मिले। इस अवसरपर इन लोगोंके साथ दोनों सरकारोंके अन्य उच्च अधिकारी, सेना, जल, स्थल और आकाश तीनों विभागोंके उच्च-पदस्थ अफसर भी उपस्थित थे। संयुक्त राष्ट्रकी चतुरङ्गिणी सेना एवं आततायीपनका प्रतिरोध करनेमें क्रियात्मक रूपसे संलग्न राष्ट्रोंको उधार-पट्टा कानूनके अनुसार युद्ध-सामग्रियोंकी सप्लाईकी समस्यापर सम्यक् रूपसे विचार-विमर्श हुआ। ब्रिटिश सरकारके सप्लाई मिनिस्टर लार्ड बीवरब्रुक भी इस अवसरपर वहां पहुंच गये थे और इस सम्मेलनमें उन्होंने भी पूरा भाग लिया।

प्रेसिडेण्ट और प्राइम मिनिस्टर कई बार मिले और विचार-विनिमय हुआ। संसारपर सैनिक बल द्वारा प्रभुत्व और सत्ता स्थापित करनेके लिए जर्मनीकी हिटलरशाही सरकार एवं उससे सम्बद्ध अन्य सरकारों द्वारा सञ्चालित नीतिसे विश्व-सभ्यताको जो खतरा उपस्थित है, उसपर इन दोनों नेताओंने अच्छी तरहसे विचार किया और यह बात बिलकुल स्पष्ट कर दी कि दोनों देशोंकी सरकारें अपनी रक्षाके लिए इन खतरोंका मुकाबला करनेको क्या-क्या कर रही हैं।

निम्नलिखित घोषणा पत्र दोनोंकी स्वीकृतिसे लिखा गया :—

संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके प्रेसिडेण्ट और ब्रिटिश साम्राज्यके प्रतिनिधि-स्वरूप प्राइम मिनिस्टर मि० चर्चिल एक-दूसरेसे मिलनेके बाद यह आवश्यक और सही समझते हैं कि उन सिद्धान्तोंसे संसारको परिचित कर दें, जिनके आधार-पर दोनों देश अपन-अपनी राष्ट्रीय नीति निर्धारित करते हैं और जिनपर संसारके सुन्दर भविष्यकी उनकी आशायें अवलम्बित हैं।

प्रथम, हम सीमा-विस्तार अथवा अन्य किसी प्रकारकी महत्त्वाकांक्षा नहीं रखते।

द्वितीय, बिना किसी राष्ट्रकी स्वीकृतिके उसकी भौगोलिक सीमामें किसी तरहके परिवर्तनको पसन्द नहीं करते।

तृतीय, हम इस बातके समर्थक हैं कि प्रत्येक राष्ट्रको अधिकार है कि वह जैसी चाहे, अपने देशमें वैसी शासन-प्रणाली कायम करे। हम यह भी देखना चाहते हैं कि जो राष्ट्र स्वातन्त्र्य और स्वायत्त शासनसे बलपूर्वक वञ्चित किये गये हैं, वहां फिरसे स्वतन्त्रता और स्वराज्य स्थापित हो।

चतुर्थ, हम लोग अपने वर्तमान समझौतोंका उचित सम्मान करते हुए इस बातका प्रयत्न करेंगे कि प्रत्येक देशको, बड़ा हो या छोटा, विजित हो या विजेता, समान रूपसे व्यापारिक सुविधायें और आर्थिक समृद्धिके लिए आवश्यक कच्चा माल मिले।

पञ्चम, प्रत्येक राष्ट्रके श्रमिकोंकी स्थितिको सुधारने, आर्थिक उन्नति करने एवं समाजको समुन्नत तथा सुरक्षित करनेके लिए हम चाहते हैं कि संसारके तमाम राष्ट्र आर्थिक क्षेत्रमें एक दूसरेके साथ पूर्ण सहयोग और सहकारिताका भाव रखें।

षष्ठ, नाजी अत्याचार और बर्बरताका सम्पूर्ण विनाश होनेके बाद ही वह शान्ति देखनेकी आशा है, जिसकी छत्र-छायामें सम्पूर्ण राष्ट्र निरापद रह सकेंगे और सबको इस बातका भरोसा होगा कि सब लोग बिना किसी भय अथवा अभावके अपना जीवन-यापन कर सकते हैं।

सप्तम, वह शान्ति ऐसी होगी कि सब लोग बिना किसी विघ्न-बाधाके सागरों और महासागरोंमें विचरण कर सकेंगे।

अष्टम, हम समझते हैं कि वास्तविकता एवं आध्यात्मिकताका ध्यान रखकर संसारके तमाम राष्ट्रोंको बल-प्रयोगको त्यागना ही पड़ेगा। क्योंकि राष्ट्र अपनी सीमाको पार करके दूसरेकी सीमाके भीतर जबर्दस्ती घुसकर दखल कर लेनेकी धमकी जब तक देते रहेंगे और उसे कार्यान्वित करनेके लिए जब तक जल, स्थल और आकाशसे अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग होता रहेगा, तब तक भविष्यमें स्थापित शान्तिको कायम नहीं रखा जा सकता। इसलिए हम समझते हैं कि सार्वजनीन रक्षाके लिए जब तक कोई व्यापक प्रणाली प्रवर्तित न हो, तब तक ऐसे राष्ट्रोंका निरस्त्रीकरण आवश्यक है। इससे अन्य तमाम व्यावहारिक बातोंको सहायता एवं प्रोत्साहन मिलनेके साथ-साथ शान्ति-प्रेमी राष्ट्रोंकी जनता शस्त्री-करणके विनाशकारी चापसे मुक्ति पायेगी।

ईरानमें सैनिक काररवाई

जर्मनीने जब बालकन प्रदेशोंपर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया, तब बहुतोंको आशङ्का थी, सम्भव है कि युद्ध एशियाकी भूमिमें शीघ्र ही अपना कदम रखे। इधर हालमें

यूरोपीय युद्धकी गति-विधिमें जो परिवर्तन हुए हैं, उनसे यह आशङ्का बहुत कुछ अंशोंमें सत्य प्रतीत होती है। गत मासमें युद्धके खतरेको और आगे न बढ़ने देनेके उद्देश्यसे ब्रिटेन और सोवियटने मिलकर ईरानमें सैनिक काररवाई करना शुरू कर दिया। लक्षणोंसे पहलेसे ही कुछ-कुछ आभास मिल रहा था कि ब्रिटेन और रूसकी ओरसे इस प्रकारकी कोई काररवाई शीघ्र ही की जायगी। इसके पहले ब्रिटिश और रूसी सरकारको इस बातका पता लग गया था कि ईरानमें बहुत-से जर्मन हैं। कितने ही तो ईरानकी सरकारके उच्च पदोंपर हैं। दोनों सरकारोंने ईरानमें जर्मनोंकी उपस्थितिके खिलाफ ईरान-सरकारसे आपत्ति की और यह चेतावनी दी कि ईरानसे जर्मन निकाल दिये जायें। पर ईरानकी सरकार इसके लिए तैयार न हुई। साधारण अवस्थामें सम्भव था कि ब्रिटेन और रूस कुछ दिन और अपेक्षा करते और ईरानको अपने निश्चयपर फिर एक बार विचार करनेका मौका देते। पर इस समय जर्मन सेना यूक्रेनमें बहुत आगे बढ़ आयी है। इससे सामरिक दृष्टिसे ईरानका महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है। सोवियट सरकारके मनमें यह आशङ्का उठी थी कि जर्मनी उत्तर-पश्चिममें यूक्रेनकी ओरसे काकेशसके तेल-क्षेत्रोंको सङ्कटापन्न करनेके साथ ही ईरानपर कब्जा कर पीछेकी ओरसे बाकूपर भी आक्रमण कर सकता है। इसके अतिरिक्त ईरानमें भी तेलकी खानें हैं। यदि वे भी जर्मनीके हाथमें पड़ जायंगी, तो रूस और ब्रिटेनके सामने बड़ी विकट समस्या उपस्थित होगी। फिर, भौगोलिक दृष्टिसे ईरानका स्थान भी कम महत्त्वका नहीं है। यह ब्रिटिश साम्राज्यके प्रधान केन्द्र भारतवर्षसे सटा हुआ है। हिन्द महासागरसे भी इसका सम्बन्ध है। इसलिए ब्रिटेन और रूसने तनिक भी समय न गंवा ईरानको अपने प्रभावमें लानेका निश्चय किया। क्योंकि ऐसा करनेसे उत्तरी महासागरसे लेकर भूमध्य सागर और हिन्द महासागर तक पूर्वकी ओर जर्मनीकी अग्रगतिको रोकनेके लिए एक लाइनकी रचना की जा सकेगी और समुद्र द्वारा ब्रिटेन, अमेरिका और रूसमें आसानीसे सहयोग स्थापित हो सकेगा। युद्ध-सामग्री भेजनेके लिए यह मार्ग अत्यन्त सुविधाजनक है। युद्ध आरम्भ होनेके पहले ही ईरान और रूसके बीच इसी आशयकी एक सन्धि हुई है, जिसकी एक धारा यह है कि यदि ईरानमें किसी तीसरे पक्षके आक्रमणके कारण सोवियट हितोंपर धक्का लगनेकी सम्भावना होगी, तो सोवियट सेना ईरानके सैनिक केन्द्रोंको अपने अधिकारमें कर लेगी। इसी सन्धिके अनुसार रूसी सेनाने ईरानमें प्रवेश किया। ब्रिटिश सेना दक्षिणकी ओरसे और लाल सेना उत्तरकी ओरसे आगे बढ़ रही है। इस बीच ब्रिटिश सेनाने ईरानके कुछ शहरों और तेल-क्षेत्रोंपर कब्जा कर लिया है और सोवियट सेना तोब्रुकके आगे २५ मील तक बढ़ी है।

पहले तो ईरानी सेनाओंने ब्रिटिश और रूसी सेनाओंका मुकाबला किया, पर बादको व्यर्थकी खून-खराबीसे देशको बचानेके लिए ईरानके प्रधान मन्त्रीने हथियार रखनेका हुक्म दिया। अब ईरानी सेनाओंका ब्रिटिश और रूसी सेनाओंके साथ सहयोग हो गया है।

सुदूर पूर्व

सुदूर पूर्वकी स्थितिमें इधर कोई विशेष महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है। कुछ दिन पूर्व यह समाचार मिला था कि जापानने सोवियट रूसके सामने अपनी कुछ मांग पेश की है, अब जापानके प्रचार-विभागके प्रधान मि० इशीने इस समाचारका खण्डन किया है। रूस और जापान, दोनोंकी सरकारोंने इस बातकी पुनः पुष्टि की है कि दोनों देशोंमें इस समय सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध बना हुआ है। पर अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिमें क्षण-क्षणमें जो परिवर्तन हो रहा है, उसे देखते हुए यह कहना कठिन है कि कब तक यह सम्बन्ध ऐसा ही बना रहेगा। कुछ दिन पहले जापानने मञ्चूरियाकी ओर अपनी सेना भेजी थी, इससे उसकी नीयतके सम्बन्धमें सन्देह होना स्वाभाविक है। फिर भी यह अनुमान किया जा सकता है कि जापानने अभी तक रूसके विरुद्ध कुछ करनेके बारेमें अपना कोई निश्चय नहीं किया है। यदि रूस पश्चिममें जर्मनोंके आक्रमणका अधिक दिनों तक मुकाबला करनेमें समर्थ नहीं होगा, तो जापान चुपचाप बैठे तमाशा न देखता रहेगा। तब तक वह गम्भीरतापूर्वक पश्चिमके युद्धकी स्थितिका अध्ययन कर रहा है। क्योंकि यदि पश्चिममें सोवियटकी पराजय हो जायगी, तो उसकी बड़ी जबर्दस्त प्रतिक्रिया पूर्वमें होगी। यदि काकेशसका पतन हो जाय और उसपर जर्मनीका अधिकार

हो जाय, तो पूर्वमें भारत और ब्रिटिश साम्राज्यके लिए बहुत बड़ा खतरा उपस्थित हो जायगा। उस अवस्थामें जापान मौका देखकर दक्षिण प्रशान्त महासागरके द्वीपोंपर अधिकार कर लेगा, जो उसके लिए साइबेरियाकी अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। किन्तु फिलहाल इस बातकी कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती। जापान इस समय इण्डो-चीनमें अपना प्रभाव स्थापित कर परिस्थितिका अवलोकन कर रहा है।

युद्धके बाद यूरोपकी स्थिति

टाइम्स पत्रने अपने एक लेखमें बतलाया है कि युद्धके बाद अन्तिम समझौता जोर देनेवाली शक्तिपर निर्भर है। इसने पूर्वी यूरोपमें अधिनायक-तन्त्रकी आवश्यकतापर जोर दिया है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके अत्यधिक सक्रिय कार्यों तथा हिटलरवादके विरुद्ध युद्धमें रूसके प्रवेश करनेका प्रभाव युद्धके बादके यूरोपपर अवश्य पड़ेगा। जिस शान्ति-समझौतेकी जड़ शक्तिकी वास्तविकतामें प्रविष्ट नहीं होगी, वह अधिक काल तक कायम नहीं रह सकता। शान्तिके लिए सर्वप्रथम ऐसी सैनिक व्यवस्थायें करनेकी आवश्यकता है, जिनसे जर्मनीके दुष्कार्योंकी पुनरावृत्ति रोकी जा सके। यूरोपके अन्तिम समझौतेके निमित्त नीति निर्धारित करनेके लिए संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा ब्रिटेनका जो कर्तव्य है, उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। यूरोपीय समझौते तथा युद्ध-समाप्तिके लिए समय आनेपर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा ब्रिटेनके राजनीतिज्ञों एवं अधिवासियोंको आपसमें पूछना चाहिए कि वे जिस समाधानकी वकालत करते हैं, उसकी रक्षाके लिए किस व्यवस्थाकी आवश्यकता होगी। यह घोषित करनेके बाद कि छोटे-छोटे राष्ट्रोंकी रक्षाके लिए पूर्वी यूरोपमें अधिनायक-तन्त्रकी आवश्यकता है, टाइम्स लिखता है कि वह अधिनायक-तन्त्र जर्मनी तथा रूसके जिम्मे होना चाहिए। क्योंकि ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका पूर्वी यूरोपमें शासन करनेके लिए इच्छुक नहीं हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा रूसकी मांग है कि पूर्वी यूरोपमें रूसका प्रभाव जर्मनी द्वारा नष्ट न होने पाये। युद्ध तथा भावी शान्तिकी प्रमुख समस्या है यूरोपमें जर्मनीके स्थानका निश्चित करना। जर्मन शक्ति पराजय द्वारा अस्थायी तौर-पर नष्ट हो सकती है। किन्तु इसका मूलोच्छेदन नहीं किया जा सकता है।



ग्रहसे कोई लाभ नहीं।
नीतिक जागरण नहीं होता,
सत्याग्रह आन्दोलन चलानेकी
चारके लोग निस्सन्देह कांग्रेसजन
ग्रेसके पिछले आन्दोलनोंमें भाग भी
स और देशकी वर्तमान स्थितिको अच्छी
फिर भी, ऐसा प्रतीत होता है कि वे हमें यह
ना चाहते हैं कि इस समय देश सामूहिक
आन्दोलनके लिए बिलकुल तैयार है, केवल महात्मा
जानबूझकर आगे नहीं बढ़ रहे हैं—वही आन्दो-
को मन्द कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त, कितनी ही
झूठ, कल्पित-अकल्पित बातें उड़ाकर देशमें
उत्पन्न करनेकी चेष्टा की जा रही है,
कांग्रेसकी वर्तमान नीतिसे सन्तुष्ट
र्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति
ष्टिमें रखते हुए
हले

हो जाय, तो पूर्वमें भारत और ब्रिटिश साम्राज्यके लिए बहुत बड़ा खतरा उपस्थित हो जायगा। उस अवस्थामें जापान मौका देखकर दक्षि... अधिकार कर लेगा, जो उ... अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। किन्... सम्भावना नहीं दिखाई देती... चीनमें अपना प्रभाव स्थापित क... कर रहा है।

युद्धके बाद यूरो...

टाइम्स पत्रने अपने एक ले... बाद अन्तिम समझौता जोर दे... इसने पूर्वी यूरोपमें अधिनायक-तन्त्र... दिया है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके अ... तथा हिटलरवादके विरुद्ध युद्धमें रूस... प्रभाव युद्धके बादके यूरोपपर अवश्य पड़ेगा।... समझौतेकी जड़ शक्तिकी वास्तविकतामें प्रविष्ट... वह अधिक काल तक कायम नहीं रह सकता... लिए सर्वप्रथम ऐसी सैनिक व्यवस्थायें करनेकी आ... है, जिनसे जर्मनीके दुष्कार्योंकी पुनरावृत्ति रोकी जा... यूरोपके अन्तिम समझौतेके निमित्त नीति नि... करनेके लिए संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा ब्रिटेन... कर्तव्य है, उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। यूरोप... झौते तथा युद्ध-समाप्तिके लिए समय आनेपर... अमेरिका तथा ब्रिटेनके राजनीतिज्ञों ए... आपसमें पूछना चाहिए कि वे जिस... करते हैं, उसकी रक्षाके ... होगी। यह ...

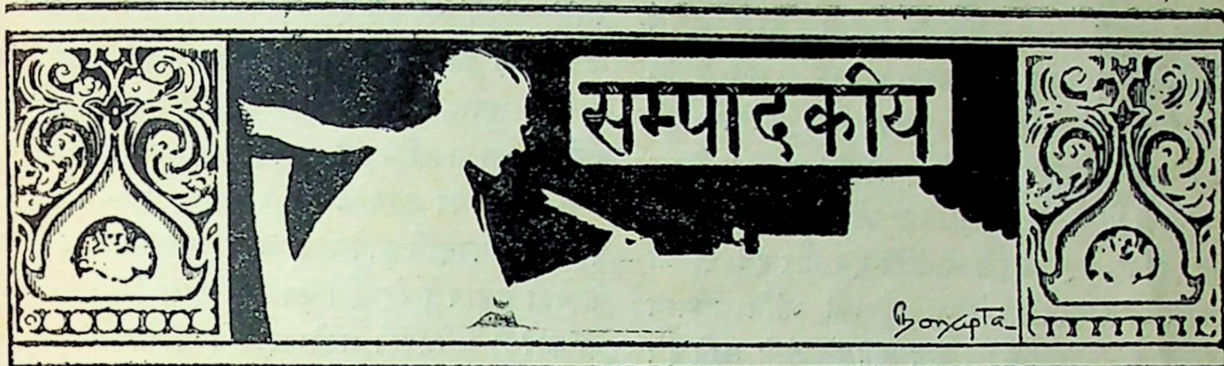
ईस्ट इण्डियन रेलवे





जुयेल अफ़ इण्डिया

कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई, मद्रास, रंगून, सिंगापुर।



विश्व-कविका निधन

गत ७ अगस्त, श्रावणी पूर्णिमाके दिन विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरका ८० वर्षकी अवस्थामें स्वर्गवास हो गया। विश्व-कविके निधनसे भारतका एक महान् कवि, साहित्यकार, विचारक, दार्शनिक और तत्त्वज्ञानी उठ गया। उनके स्वर्गस्थ होनेसे भारतीय सभ्यता और संस्कृतिकी जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति होना निकट-भविष्यमें सम्भव नहीं है। उन्होंने अपनी दिव्यवाणीसे आजीवन मानवताकी जो सेवा की है, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। उनकी मृत्युसे न केवल भारतको ही महान् क्षति पहुंची है, बल्कि उन्हें खोकर आज समस्त संसार दुखी है। पर हमें सन्तोष है कि यद्यपि वह हमारे बीच नहीं रहे, फिर भी उनकी रचनाओंसे आगे आनेवाली पीढ़ियोंको सदा अनुप्रेरणा मिलती रहेगी। हम दिवंगत आत्माके प्रति सादर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

कांग्रेस और वर्तमान राजनीतिक स्थिति

इस समय देशकी राजनीतिक स्थितिमें जो कुछ शिथिलता दिखलाई दे रही है, इधर कुछ दिनोंसे कुछ गैर-कांग्रेसी और कांग्रेस-विरोधी महानुभाव उसकी सारी जिम्मेवारी कांग्रेसपर लादनेकी कृपा दिखा रहे हैं। वे कांग्रेसकी आलोचना करते हुए उसे उचित मार्ग अवलम्बन करनेका अयाचित उपदेश भी देते हैं। वे सोचते हैं कि यदि कांग्रेस या महात्मा गांधी उनका उपदेश मानकर सत्याग्रह-आन्दोलनको स्थगित कर दें और कांग्रेसजन फिर पद-ग्रहण स्वीकार करें, तो देशमें फिर कुछ राजनीतिक प्रगति दिखाई दे। कुछ लोग इस विचारके हैं, जो सत्याग्रहके वर्तमान रूपसे सन्तुष्ट नहीं हैं। उनका कहना है, व्यक्तिगत सत्याग्रहसे कोई लाभ नहीं। इससे देशके जन-साधारणमें राजनीतिक जागरण नहीं होता, इसलिए इस समय सामूहिक सत्याग्रह आन्दोलन चलानेकी आवश्यकता है। इस विचारके लोग निस्सन्देह कांग्रेसजन हैं, और उन्होंने कांग्रेसके पिछले आन्दोलनोंमें भाग भी लिया है। वे कांग्रेस और देशकी वर्तमान स्थितिको अच्छी तरह जानते हैं, फिर भी, ऐसा प्रतीत होता है कि वे हमें यह विश्वास कराना चाहते हैं कि इस समय देश सामूहिक सत्याग्रह-आन्दोलनके लिए बिलकुल तैयार है, केवल महात्मा गांधी ही जानबूझकर आगे नहीं बढ़ रहे हैं—वही आन्दोलनकी गतिको मन्द कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त, कितनी ही तरहकी सच-झूठ, कल्पित-अकल्पित बातें उड़ाकर देशमें इस तरहकी भावना उत्पन्न करनेकी चेष्टा की जा रही है, कि अधिकांश कांग्रेसजन कांग्रेसकी वर्तमान नीतिसे सन्तुष्ट नहीं हैं और चाहते हैं कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति तथा देशकी राजनीतिक स्थितिको दृष्टिमें रखते हुए कांग्रेसकी नीति पुनः निर्धारित की जाय। कुछ दिन पहले यह बात उड़ायी गयी थी कि नैनी जेलके करीब चालीस राजबन्दियोंने, जिनमें राष्ट्रपति मौलाना अबुलकलाम आजाद और डा० काटजू भी हैं, गांधीजीके पास पत्र लिखकर सत्याग्रह-आन्दोलनको स्थगित करने और कांग्रेसकी नीतिपर फिरसे विचार करनेपर जोर दिया है। पर कांग्रेसके जनरल सेक्रेटरी आचार्य कृपलानीने तत्काल ही इस समाचारका खण्डन कर, इसे निराधार बतलाया। अभी हाल ही में सरदार शार्दूल सिंह कवीश्वरने, जो आजकल सुभाष बाबूकी अनुपस्थितिमें फारवर्ड ब्लाकके सभापति हैं, कांग्रेसके प्रधान

मन्त्रीको यह सलाह देनेकी कृपा की थी कि वह कांग्रेसकी स्थितिपर फिरसे विचार करनेके लिए आल इण्डिया कांग्रेस कमेटीकी बैठक बुलायें। श्री जयकरका यह ख्याल है कि यदि गांधीजी कांग्रेस-जनोंको फिरसे पद-ग्रहण करनेको कहें या उन्हें व्यवस्थापिका सभाओंसे इस्तीफा देकर बाहर निकल आनेको कहें, तो वर्तमान गतिरोधका शीघ्र अन्त हो सकता है। मि० रायके नेतृत्वमें कुछ लोगोंका एक और दल है, जो अपनेको रेडिकल कहते हैं। वे भी औरोंकी भांति वर्तमान राजनीतिक गतिरोधका सारा दोष कांग्रेसके मत्थे मढ़ते हैं। कांग्रेसके इन रेडिकल आलोचकोंका कहना है कि कांग्रेसको बिना किसी शर्त अथवा किसी भी शर्तपर पुनः पद-ग्रहण कर लेना चाहिए। गांधीजीके नेतृत्वमें कांग्रेस एक फैसिस्ट संस्था हो गयी है। वह भारतके जनसाधारणके मतका प्रतिनिधित्व नहीं करती, जो इस समय ब्रिटेनको युद्ध-प्रयासमें हर तरहकी सम्भव सहायता देनेके पक्षमें हैं। यह तो उन लोगोंकी रायें हैं, जो कांग्रेसके विरोधी हैं या जो उसकी नीतिसे असन्तुष्ट हैं। पर आश्चर्य है कि श्री सत्यमूर्ति-जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण कांग्रेस-नेता भी यह राय प्रकट करने लगे हैं कि कांग्रेसको फिर पदग्रहण कर लेना चाहिए। श्री सत्यमूर्ति हाल ही में जेलसे छूटे हैं। एक सभामें भाषण करते हुए आपने कहा कि सरकारको चाहिए कि वह महात्माजीको अहिंसाके सिद्धान्तको ठीक सिद्ध करनेके लिए स्वतन्त्रता दिये रहे। महात्माजीको तो उनके सीमित ढङ्गसे आन्दोलन चलानेकी स्वतन्त्रता हो और कांग्रेसजनोंको फिरसे अधिकार ग्रहण करना चाहिए।

जो कांग्रेसके विरोधी हैं या जो उससे असन्तुष्ट हैं, उनकी आलोचनाओंको कोई महत्त्व नहीं दिया जा सकता, क्योंकि उन्हें तो और कुछ करना नहीं है, वे तो सिर्फ कांग्रेसको गाली देने और उसकी कटु आलोचना करनेमें ही अपनी राजनीतिकी कलाका प्रदर्शन करते हैं। उनके न कोई अपने राजनीतिक विचार हैं और न वे देशके सामने कोई कार्यक्रम रखनेका ही साहस करते हैं। इसलिए वे जो कांग्रेसपर व्यर्थ अभियोग लगाते और उसे सीधे रास्तेपर लानेका उपदेश देते हैं, उसका कोई मूल्य नहीं। ये आलोचक या तो देशकी एकमात्र प्रतिनिधि-सत्तात्मक राजनीतिक संस्था कांग्रेसके महत्त्वको समझते नहीं, या समझकर भी अपनी ओछी मनोवृत्तिका परिचय देनेके लिए उसकी उपेक्षा करते हैं। पर श्री सत्यमूर्ति कांग्रेसके ऐसे आलोचकोंमें नहीं हैं। वह कांग्रेसके एक बड़े नेता और पुराने देशभक्त हैं। इसलिए कांग्रेसकी नीतिके सम्बन्धमें उन्होंने जो मत प्रकट किया है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। श्री सत्यमूर्तिका कहना है कि कांग्रेस-जनोंको पुनः पद ग्रहण करना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि श्री सत्यमूर्ति कांग्रेसको अपने पूना-निर्णयमें परिवर्तन करनेका सुझाव दे रहे हैं। क्योंकि पूना-निर्णयके अनुसार ही कांग्रेसी मन्त्रियोंने अपने पदोंसे इस्तीफा दिया था और अब वे जेलोंमें हैं। पर हमारी समझमें नहीं आता कि उस समयसे अब तक कौन-सा ऐसा परिवर्तन हो गया है, जिससे कांग्रेस अपना निर्णय बदले। देशकी स्थिति अभी भी वैसी ही है। भारतकी राष्ट्रीय मांगके प्रति ब्रिटिश सरकारका रुख आज भी वही है, जो कांग्रेसके सत्याग्रह-आन्दोलन छेड़नेके पहले था। ब्रिटिश राजनेता अपने निश्चयसे किञ्चिन्मात्र भी आगे बढ़नेको तैयार नहीं हैं। वे अब भी हमें अपना 'अगस्त आफर' बार-बार दिखा रहे हैं। ऐसी दशामें कांग्रेसको, किस आशासे, अपना निर्णय बदलनेकी सलाह दी जा रही है? जो लोग ऐसा विश्वास करते हैं कि भारतके भाग्यका निपटारा ब्रिटिश साम्राज्यवादके हाथमें है, उन्हें भले ही वर्तमान गतिरोधसे मायूसी हो सकती है, पर कांग्रेसको तो अपनी शक्ति और सामर्थ्यपर भरोसा है, वह कभी निराश नहीं हो सकती। इसीलिए वह अपने निर्णयपर अटल है और तब तक उससे विचलित नहीं हो सकती, जब तक कि उसकी मांग स्वीकार नहीं की जाती। वह स्वाधीनता-संग्रामके झण्डेको सदा उठाये रखेगी, कभी उसे झुकने न देगी। वह अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए सदा जागरूक है। महात्मा गांधी हमारे नेता हैं। हमने उन्हें अपना जनरल बनाया है। वह चुपचाप बैठे नहीं हैं, बल्कि सारी स्थितिका गम्भीरतापूर्वक अध्ययन कर रहे हैं और हमारा विश्वास है कि उनके नेतृत्वमें ही हम अपने लक्ष्य तक पहुंच सकते हैं।

विश्व-शान्तिके लिए

अभी हाल ही में ब्रिटेनके प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल और अमेरिकाके राष्ट्रपति मि० रूजवेल्ट अटलाण्टिक महा-

सागरमें किसी स्थानपर मिले थे। आपसमें परामर्श करनेके बाद दोनोंने विश्वमें स्थायी शान्ति कायम करनेके उद्देश्यसे एक संयुक्त घोषणा निकाली है। उस घोषणामें बहुत बड़ी-बड़ी बातें कही गयी हैं, जिनके अनुसार यदि सचमुच संसारमें कोई व्यवस्था कायम की जाय, तो कोई देश किसीका शत्रु न रहे, न कोई किसीकी स्वाधीनताका ही अपहरण कर सके। घोषणामें मुख्य रूपमें आठ सिद्धान्तोंकी चर्चा की गयी है। संसारसे नाजीवादका मूलोच्छेद कर देनेके बाद इन्हीं आठों सिद्धान्तोंके आधारपर विश्वमें स्थायी शान्ति कायम करनेके लिए योजना तैयार की जायगी। इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है। पर, हम भारत-वासी पराधीन हैं, हमारी कोई आवाज नहीं, विश्वमें शान्ति कायम हो या अशान्ति, हमारे भाग्यमें तो परा-धीनता ही लिखी है। इसलिए हम विश्व-शान्तिके पचड़ेमें क्यों पड़ने जायें। हमें न तो अवसर है और न सुविधा ही प्राप्त है कि हम विश्व-शान्तिकी योजनामें इन उदारचेता राष्ट्रोंके साथ भाग लें। हमें तो यह विचार करना है कि स्थायी विश्व-शान्ति स्थापित करनेकी इस विराट् योजनामें हमारा क्या स्थान है। घोषणाकी दूसरी और तीसरी धाराओंमें पराधीन देशोंकी स्वाधीनता और देशवासियोंके अपने देशके शासन-विधान निर्धारित करनेके अधिकारको स्वीकार किया गया है। दूसरी धारामें कहा गया है कि किसी देशके अधिवासियोंकी स्वतन्त्र भावसे प्रकट की गयी इच्छाके विरुद्ध उस देशकी भौगोलिक स्थितिके सम्बन्धमें कोई परि-वर्तन नहीं किया जायगा। तीसरी धारामें कहा गया है कि किसी देशके शासन-विधानकी रूप-रेखा निश्चित करनेका अधिकार उस देशके निवासियोंको होगा। जिन देशोंकी स्वाधीनता और सार्वभौम अधिकारको बलपूर्वक विनष्ट कर दिया गया है, उन देशोंको पुनः स्वाधीन कर स्वायत्त शासनका अधिकार दिया जायगा। इन दोनों धाराओंकी व्यवस्थाओंके अन्दर भारतवर्षको लिया जा सकता है या नहीं और मि० चर्चिल तथा मि० रूजवेल्ट अपने कथनकी मर्यादा अक्षुण्ण रखनेके लिए भारतवासियोंको भी कुछ राज-नीतिक अधिकार देनेको तैयार हैं या नहीं, इस सम्बन्धमें कुछ क्षेत्रोंमें विचार किया जा रहा है। हमारी तो अपनी राय है कि इस सम्बन्धमें कुछ विचार करना बिलकुल व्यर्थ है। क्योंकि हम जानते हैं कि भारतवर्ष विश्वके अन्तर्गत नहीं है। मि० चर्चिल तथा उनके सहकारियोंकी भाषामें विश्वका अर्थ है श्वेताङ्गोंका यूरोप। इस सम्बन्धमें ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डलकी जो राय है, उसे भारत-सचिव मि० एमरीने स्पष्ट भाषामें बतला दिया है। उन्होंने कहा है कि वे तो भारत-को स्वायत्त शासन देनेको तैयार ही हैं, केवल भारतीयोंकी अयोग्यताके कारण, विशेषतः उनके आपसी मतभेदके कारण, उन्हें स्वशासनका अधिकार देनेमें बिलम्ब हो रहा है। नाजीवादका विनाश हो जानेसे ही यह मतभेद दूर हो जायगा, ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता।

श्री सावरकरकी जिज्ञासा

इस महत्त्वपूर्ण अटलाण्टिक-घोषणामें भारतका क्या स्थान है, उसकी धारायें भारतपर लागू होंगी या नहीं, इस सम्बन्धमें हमें या किसी भी विचारशील व्यक्तिको किसी तरहका सन्देह नहीं है। हम जानते हैं कि विश्वमें शान्ति स्थापित होनेपर भी हमारी वही स्थिति रहेगी, जो आज है। फिर भी हिन्दू महासभाके अध्यक्ष श्री सावरकरने संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके राष्ट्रपति मि० रूजवेल्टसे तार देकर पूछा है कि युद्धके उद्देश्य-सम्बन्धी ब्रिटेन और अमेरिकाकी घोषणाकी धारायें भारतवर्षपर लागू हो सकती हैं या नहीं। अभी तक हमें पता नहीं कि मि० रूजवेल्टने श्री सावरकरके तारका क्या उत्तर दिया है, या देंगे। आश्चर्य नहीं कि वह उत्तर देना आवश्यक भी न समझें। सम्भवतः श्री सावरकरको यह आशा है कि घोषणा-पत्रमें जिन सिद्धान्तोंका उल्लेख किया गया है, उन्हें भारतवर्षके सम्बन्धमें भी लागू किया जायगा। हमें आश्चर्य है कि श्री सावरकर-जैसे व्यक्तिको ऐसी आशा क्यों होने लगी, जिसके सम्बन्धमें स्पष्टीकरणके लिए अमेरिका तक केबुल दौड़ानेकी आवश्यकता पड़ी। हम जानते हैं कि उस घोषणा-पत्रके एक रचयिता ब्रिटेनके प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल हैं, जिन्होंने कुछ वर्ष पहले कहा था कि ब्रिटिश जाति अपने साम्राज्यके मुकुटमणि भारतको किसी भी हालतमें छोड़नेको तैयार न होगी। मि० चर्चिल आज भी वही हैं, उनमें इस बीच कोई ऐसा परिवर्तन नहीं हो गया है, जिससे हम आशा करें कि वह भारतको स्वतन्त्र कर देनेकी उदारता दिखलायेंगे। श्री सावरकर सम्भवतः यह सोचते हैं कि अमेरिका भारतको

स्वतन्त्रता दिलानेमें सहायक होगा। पर मि० रूजवेल्ट तो स्वयं एक साम्राज्यवादी राष्ट्रके प्रतिनिधि हैं, वह कब भारतको स्वाधीनता दिलानेको तैयार होंगे। सच बात तो यह है कि स्वतन्त्रता किसीके देने-दिलानेसे प्राप्त नहीं की जाती, उसे तो पराधीन देशवासियोंको स्वयं प्रयत्न कर प्राप्त करना होता है।

अहिंसाके प्रशंसक

मि० चर्चिल और राष्ट्रपति रूजवेल्टने अपनी संयुक्त घोषणामें विश्व-शान्तिकी स्थापनाकी योजना उपस्थित करते हुए अहिंसाकी भी प्रशंसा की है। आप लोगोंने कहा है कि संसारके राष्ट्र आध्यात्मिक दृष्टिसे न सही, वास्तविक स्थितिको ध्यानमें रखकर ही बलप्रयोगकी नीतिका परित्याग करनेके लिए बाध्य होंगे, ऐसा हमारा विश्वास है। संसारके दो महान् राष्ट्रोंके इन दोनों वीर नेताओंके इस नर-संहारकारी युद्धके समय अहिंसाके प्रति इस प्रेमको देखकर यह कौतूहल होना स्वाभाविक है कि आखिर इन्होंने महात्मा गांधीके अहिंसा और विश्व-प्रेमके सिद्धान्त-को स्वीकार कर उनका शिष्यत्व तो नहीं स्वीकार कर लिया! इसलिए उक्त घोषणा-पत्रके प्रकाशित होनेके बाद एक प्रेस-प्रतिनिधिने महात्माजीसे मुलाकात कर इस सम्बन्धमें उनकी राय जानना चाहा। महात्मा गांधीने कहा कि यदि ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका निरस्त्रीकरणकी नीतिका अवलम्बन करें और अहिंसाके प्रभावको स्वीकार कर लें, तो मैं इन दोनों राष्ट्रोंको हृदयसे धन्यवाद दूंगा। यदि वास्तवमें संसारके हिंसारत राष्ट्र अपनी हिंसावृत्ति त्याग कर आपसमें भाई-भाईकी तरह रहने लगें, कोई किसीकी स्वाधीनताका अपहरण न करे और न कोई किसीके शोषण और लूट-खसोटसे अपना उदर भरे, तो संसारमें इस पारस्परिक प्रेम-भावनाको देखकर महात्मा गांधीसे अधिक और कोई न प्रसन्न होगा और वह अपने जीवनके उद्देश्यको पूरा हुआ समझेंगे; पर पता नहीं, वह मङ्गलमय दिन कब आयेगा, जब महात्मा गांधी मि० चर्चिल और राष्ट्रपति रूजवेल्टको अहिंसा-नीतिका अवलम्बन करनेपर धन्यवादका तार भेजेंगे। निरस्त्रीकरण एवं बलप्रयोग करनेकी नीतिका परित्याग करनेकी योजना नयी नहीं है। गत महायुद्धके समय भी १४ शर्तोंके साथ अमेरिकाके तत्कालीन राष्ट्रपति विलसनने एक योजना पेश की थी। पर उस योजनाकी परिणति क्या हुई, किस रूपमें उसके अनुसार कार्य किया गया, यह हम सबको विदित है। उसका बिलकुल विपरीत परिणाम हुआ है। निरस्त्रीकरणके बदले राष्ट्रोंने अपनेको नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित कर लिया है और आज एक-दूसरेकी जान लेनेपर उतारू हैं। ऐसी दशामें कोई कारण नहीं दिखाई देता, जिससे विश्वास किया जाय कि मि० चर्चिल और मि० रूजवेल्टको अपनी योजनाको कार्यान्वित करनेमें सफलता मिलेगी और वे कभी संसारके राष्ट्रोंको अपने-अपने हथियार समुद्रमें फेंक एक-दूसरेको प्रेमसे गले लगाते देख सकेंगे।

बर्मा-भारत समझौता

बर्मा-भारत-समझौतेके सम्बन्धमें आलोचना करते हुए हमने गत किसी अङ्कमें लिखा था कि यह समझौता बर्मा-वासियों तथा भारतीयों, दोनोंके लिए अहितकर है। इसका प्रत्यक्ष फल मिलने लग गया है। हजारोंकी संख्यामें जो भारतीय आज वर्षोंसे बर्मामें अपना जीवन-यापन करते रहे हैं, अब इस समझौतेके अनुसार बर्मा नहीं जा सकते। महात्मा गांधीने बड़ी ही तीव्र भाषामें इस अहितकर समझौतेका प्रतिवाद किया है। उन्होंने लिखा है कि बर्मा और भारतमें जो आत्मीयताका सम्बन्ध था, उसे इस समझौते द्वारा छिन्न-भिन्न करनेकी चेष्टा की गयी है। यह समझौता केवल भारतवर्षके लिए ही अपमानजनक नहीं है, बल्कि यह दोनों ही देशोंके लिए लज्जाकर है। इससे यह परिचय नहीं मिलता है कि बर्मावासियोंको अपने तथा अपने देशके हितके सम्बन्धमें कुछ करनेकी स्वाधीनता प्राप्त है, बल्कि यह हमें दोनों देशोंकी पराधीनताकी बात स्मरण कराता है। महात्मा गांधी किसी सम्बन्धमें अपना मत प्रकट करते समय असंयत भाषाका प्रयोग नहीं करते। विदेशोंमें प्रवासी भारतीयोंकी क्या अवस्था है, उन्हें कैसी-कैसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, इसका व्यक्तिगत अनुभव महात्मा गांधीको है। उन्होंने अपने इसी अनुभवके बलपर इस सत्यको घोषित किया है कि इस समझौतेके द्वारा, बर्मा और भारत-के बीच, मैत्री-सम्बन्धको विच्छेद कर दिया गया है, जिससे दोनोंमें स्थायी रूपसे वैमनस्य बना रहे। साम्राज्यवादी राजनीति-विशारदोंका इस प्रकारका जघन्य प्रयत्न करना,

विषय-सूची



विशाल मित्र
AMRUTANJAN.
BOMBAY
अमृतांजन
रामबाण मलहम
AMRUTANJAN
५० वर्षों से प्रसिद्ध
पाकेट डाक्टर
सबजगह मिलता है लाखों बिक गये



सम्पादक—
बाबूराम मिश्र, विशारद

अक्टूबर, १९४१ वर्ष १० संख्या १ आश्विन, १९९८

गीत

बन गये हैं अमर सुन्दर, सखी, अब ये प्राण मेरे !

जल गया था शलभ उस दिन,
दीपको ही चूम क्षणमें,
वही झुलसे पङ्ख, सजनी, बन गये अरमान मेरे !

इन्हीं गीतोंमें लिखी
मेरी निराली-सी कहानी,
झिलमिलाते हैं गगनमें दूर वे वरदान मेरे !

मृदुल पंखुरियां कुसुमकी,
झर गयीं जब मुक्त होकर,
आंसुओंमें बह गये तव हृदयके प्रिय गान मेरे !

भग्न उरमें दीप बाले
आज मैं किसको बुलाती ?
किसी दुखियाके नयनसे झांकते आह्वान मेरे !

बन गये हैं अमर सुन्दर सखी, अब ये प्राण मेरे !

—तारा पाण्डे।

तुर्की : भूत और वर्तमानपर एक दृष्टि

श्री गोपाल दामोदर आपटे, एम० ए०

आजसे ८८ वर्ष पहलेकी घटना है—९ जनवरी १८५३ को रूसके जार निकोलसने ब्रिटिश राजदूत सर हेमिल्टन सिमूरसे एक नृत्य-समारोहमें तुर्कीके बंटवारेके लिए सङ्केत करते हुए कहा—"हमारे हाथोंमें एक मरीज है। मैं साफ-साफ कहता हूँ, यह बड़े दुर्भाग्यकी बात होगी, यदि किसी दिन वह हमारे चंगुलसे निकल जाय—विशेषतः हमारे आवश्यक तैयारियां करनेसे पहले।" ब्रिटिश राजदूतने इसपर कहा कि "शक्तिशाली और उदार व्यक्तियोंका कर्तव्य यह है कि वे कमजोरों और रोगियोंकी सहायता करें।" इस घटनाके एक साल बाद १८५४ में जब रूसने तुर्कीपर हमला किया, ब्रिटेन और फ्रान्सने मिलकर तुर्कीका साथ दिया। इसी तरह १८७७ में भी तुर्कीकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेके लिए ब्रिटेन और रूसमें लड़ाई होते-होते रह गयी। रूस जारशाहीका अन्त कर चुका है और आज सोवियट रूस और तुर्की, दोनों मैत्री-सम्बन्धमें बंधे हुए हैं।

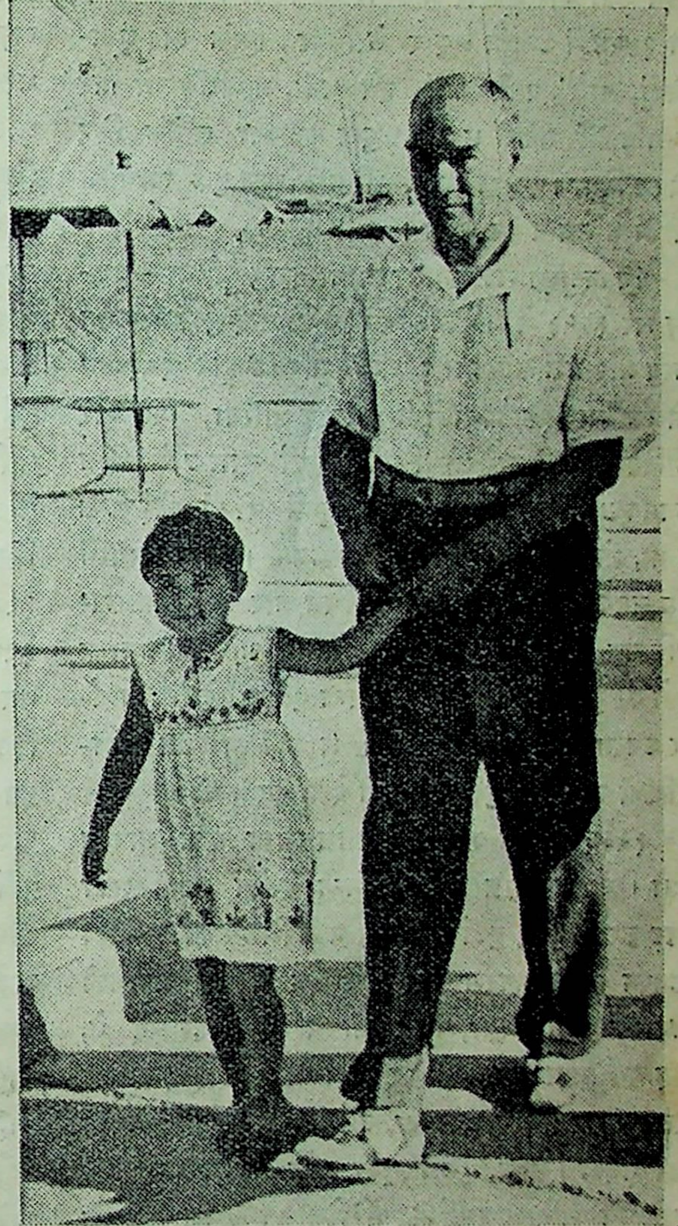
तुर्कीके सम्बन्धमें जारकी तरहके जर्मन इरादेका इतिहास भी नया नहीं है। सुल्तान अब्दुल हमीद (१८७८-१९०८) के शासन-कालमें जर्मनोंने तुर्कीमें अपना प्रभाव बढ़ानेके लिए सारी शक्ति लगाकर प्रयत्न किया और युवक तुर्कोंकी जागृति भी इस बढ़ते हुए प्रभावको रोकनेमें सफल नहीं हुई। जर्मन कैसरने सुल्तानसे मिलनेके लिए स्वयं तुर्की-यात्रा की और इस तरह अपने प्रभावको सुदृढ़ बनाया। जर्मनीको उसी समय यह पता था कि एशिया, यूरोप और अफ्रीकाके तिराहेपर इस छोटे-से, किन्तु इतिहास-प्रसिद्ध देशका क्या महत्त्व है। कैसरकी तुर्की-यात्राका परिणाम यह हुआ कि जर्मनोंके लिए रास्ता खुल गया। जर्मन अफसरोंने तुर्की सेनाको नये सिरेसे सङ्गठित किया, जर्मन व्यापारियों और विशेषज्ञोंने तुर्की जाकर सब बातोंका अध्ययन किया और तुर्की साधनोंसे लाभ उठानेका प्रयत्न किया। जर्मन इञ्जीनियरोंने बगदादवाली रेल बनानेका काम आरम्भ कर दिया, जिससे एशियाके इस हिस्सेके साथ जर्मनोंका सम्बन्ध स्थापित हो जाय और तुर्कीपर जर्मनीका सिक्का अच्छी तरह जम जाय। इस सम्बन्धमें एक इतिहासकारने लिखा है—"जर्मन साम्राज्यवादियोंका ध्येय था जर्मन मालके लिए तुर्कीके बाजारोंको सुरक्षित कर लेना और जर्मन उद्योग-धन्धोंके लिए अनातोलियामें कच्चा माल पैदा करना। जर्मनोंकी अतिरिक्त जनसंख्याको अनातोलियामें बसानेके लिए बगदाद रेलवेको निमित्त बनाया गया था। जब तक तुर्की जर्मनीका उपनिवेश न बन जाय, जर्मनी उसे अपना अधीन-राज्य बनाकर रखना चाहता था।"

युवक तुर्कोंको यह बर्दाश्त नहीं था और सुल्तान अब्दुल हमीद (द्वितीय) के निरंकुश शासनसे भी वे ऊब रहे थे, इसीलिए वर्तमान शताब्दीके आरम्भसे ही गुप्त समितियों द्वारा षड्यन्त्र होने लगे और १९०८ में क्रान्ति हो गयी। इस क्रान्तिके फलसे युवकोंको अधिकार छीन लेनेमें तो कुछ सफलता हुई, परन्तु वे जर्मनोंका प्रभाव नहीं दूर कर सके और यही तुर्कीके गत महासमरमें पड़नेका कारण हुआ। यद्यपि तुर्कीने गत महासमरमें जर्मनीका साथ दिया था, तथापि जर्मनों और तुर्कोंमें यथेष्ट सद्भाव और सहयोग नहीं था, शासन करने जैसा जर्मनोंका तरीका तुर्कोंको सह्य नहीं था। गत महासमरके उस्मानिया इतिहासमें यह उल्लेख हुआ है कि जर्मनोंने सहयोग नहीं किया। अस्तु,

तुर्कीका इतिहास एक वीर जातिके उत्थान, पतन और नवजीवनका इतिहास है। तुर्क सैनिकोंने पतनके घोर अन्धकारपूर्ण दिनोंमें भी वीरताको कभी कम नहीं होने दिया है, लड़नेकी क्षमताको ज्योंका त्यों बनाये रखा है और गत ७०-७५ वर्षसे लगातार उनमें राष्ट्रीय भावनाओंसे परिपूर्ण जिस नवजीवनका सञ्चार हुआ है, उसीका यह फल था कि गत महासमरमें जिन राष्ट्रोंकी पराजय हुई, उनमेंसे केवल तुर्की ही है जिसने अपनी चिता-भस्मसे उठकर विजेताओंको चुनौती दी, जबर्दस्ती लादी हुई शर्तोंको घृणाके साथ फाड़ फेंका और विजेताओंको अपनी शर्तें स्वीकार कर लेनेके लिए विवश किया। इसी समय १९१९ के आरम्भमें यूनानके तत्कालीन प्रधान मन्त्री

मोशिये वेनिजिलोसके कहनेसे तत्कालीन ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मि० लायड जार्जने स्मरना और उसके आसपासके इलाकेपर अधिकार कर लेनेके लिए यूनानियोंको अपनी स्वीकृति देकर हलवाईकी दूकान-पर सङ्कल्प छोड़नेकी कहावत चरितार्थ की, परन्तु जागृत तुर्कीने तत्काल इसका उत्तर देकर बता दिया कि अब तुर्की खालाका घर नहीं रह गया है। कहने-की आवश्यकता नहीं है कि यूनानियोंको अपनी करनीका फल हाथोंहाथ बुरी तरह भोगना पड़ा और कोई भी उनकी सहायताके लिए कुछ भी नहीं कर सका। मि० लायड जार्जने अपने संस्मरणोंमें इस अनुचित व्यवस्थाकी सफाई देते हुए लिखा है कि "स्मरनामें सेना उतारनेके लिए यूनानियों और इटा-लियनोंमें होड़-सी थी। क्लिमेंशू, विल्सन और मैंने इस सिलसिलेमें तत्काल कार्यवाही की और जब तक इटालियन सोच-विचारमें रहें, वेनिजिलोसको यूनानी सेना स्मरनामें उतारनेके लिए कह दिया।" मि० लायड जार्जकी यह सफाई वास्तवमें कोई सफाई नहीं है। उसी साल अक्टूबरमें मित्रराष्ट्रोंके एक कमीशनने यह घोषित किया था कि यूनानी सेनाका स्मरनामें उतरना न्यायप्र नहीं था, अस्थायी सन्धिके विपरीत था।

तुर्कीका इतिहास बड़ा ही गौरवपूर्ण है। चीनी इतिहासकारोंने छठी शताब्दीमें मध्य एशियामें तुर्क (तुकीयु) राज्य होनेका उल्लेख किया है। रोमके सम्राट् इस तुर्क राज्यमें अपना राजदूत रखते थे। सातवीं शताब्दीमें मुस्लिम अरबोंने तुर्किस्तानपर आक्रमण किया और इन आक्रमणोंका अन्तिम परि-णाम यह हुआ कि नवीं शताब्दी तक तुर्क लोग मुसलमान हो गये। तुर्कीपर अरबोंकी संस्कृतिका बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने उसे बिलकुल अपना लिया और इस्लामको दूर-दूर तक फैलाया। सेलजुक फिरकेके तुर्कोंने रोमन साम्राज्यसे अनातोलिया (एशियामाइनर) को जीत लिया और ग्यारहवीं शताब्दीसे लगाकर १४ वीं शताब्दी तक कोनयामें राजधानी रखकर शासन किया। सेलजुक तुर्कोंके शासनकालमें ही दूर-दूरके प्रदेशोंसे आकर तुर्क लोग



तुर्की प्रजातन्त्रके संस्थापक—कमाल अता तुर्क।

अनातोलियामें बस गये और इस तरह यह प्रदेश तुर्कोंका राष्ट्रीय क्षेत्र बन गया। तेरहवीं शताब्दीके अन्त और चौदहवीं शताब्दीके आरम्भमें सेलजुक राज्यका पतन हुआ और वह कई राज्योंमें बंट गया। पश्चिमी अनातोलियामें इसी तरहके एक राज्यका शासक उस्मान था, उसीके नामपर उस्मा-निया शासकोंका युग आरम्भ हुआ जो सन् १९२२ तक रहा। इसी युगमें १३५२ ईस्वीमें तुर्कोंने पहली बार यूरोपमें

कदम रखा और थ्रेसपर अधिकार कर लिया। इसके साथ ही १३९४ में उन्होंने अङ्कारा ले लिया। इसके बाद यूनानियों, सर्बों, बलगेरियनों, हंगेरियनों, अलबानियनों और रूमानियनों, सबको अपना प्रभुत्व स्वीकार करनेके लिए विवश किया। उन्होंने अनातोलियाके अन्य तुर्क राज्योंको भी अपने अधीन कर लिया।

विजनटाइन राज्यकी राजधानी कुस्तुन्तुनिया—इस्तम्बूलपर १४५३ में अधिकार कर लेनेके बाद तुर्कोंका ध्यान अरब और अफ्रीकाकी ओर गया और उन्होंने १५१७ में मिश्रके मामलुक शासकोंको हराकर सीरिया, मिश्र और लीबियापर अधिकार कर लिया। तुर्की साम्राज्यमें मिश्र लगभग ४०० वर्ष तक रहा। इस युगमें यूरोपमें कोई शक्ति न थी, जो तुर्कोंका मुकाबिला कर सकती। भूमध्यसागरमें उस समय तुर्कोंकी धाक थी। मिश्र और दरेंदानियालपर अधिकार होनेके कारण कालासागर और लालसागर तुर्कोंकी मुट्ठीमें थे और यूरोपसे अन्य एशियाई देशोंके मार्गपर उनका पूरा नियन्त्रण था। आजकी यूरोपीय महाशक्तियां उस समय तुर्कीकी त्योरी देखा करती थीं।

१५६६ ईस्वीके बाद तुर्क साम्राज्यका पतन आरम्भ हुआ। यद्यपि साम्राज्यके विभिन्न देशोंमें अपनी सत्ता सुदृढ़ करनेके लिए तुर्कीको अवसर नहीं मिल सका, तथापि पतनका मुख्य कारण यह हुआ कि उन्होंने जमानेकी रफ्तारको नहीं समझा; यूरोपमें जो परिवर्तन हो रहे थे, विज्ञान जिस तरह उन्नति कर रहा था और युद्ध-कलापर उसका जो प्रभाव पड़ रहा था, उसकी ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। रूस, आस्ट्रिया और प्रशा, यूरोपकी तत्कालीन शक्तियां तुर्कीकी परिस्थितिसे लाभ उठानेके लिए व्यग्र हो उठीं। उस समय तक इंगलैण्ड और फ्रान्स तुर्कीसे व्यापारिक और राजनीतिक सुविधाओंसे अधिक कुछ नहीं चाहते थे; परन्तु १९ वीं शताब्दीमें यह अवस्था नहीं रही, ब्रिटेन और फ्रान्स तुर्कीकी ओर ज्यादा ध्यान देने लगे और रूस और आस्ट्रियाका उद्देश्य सफल नहीं हुआ। फिर भी, तुर्क साम्राज्य छिन्न-भिन्न होनेसे नहीं बच सका, क्योंकि साम्राज्यके देशोंमें पराधीनताके विरुद्ध राष्ट्रीयता उत्पन्न हो गयी थी। इन देशोंके निवासी अपनी स्वतन्त्रताके लिए व्यग्र हो उठे थे। इसी-लिए जब अवसर आया, अपने उद्योग और किसी-न-किसी राष्ट्रकी न्यूनाधिक सहायतासे उन्होंने तुर्क साम्राज्यसे अपना पल्ला छुड़ा लिया और क्रमशः सर्व, जेक, रूमानियन और बलगेरियन, सब स्वतन्त्र हो गये। मिश्र नाम-मात्रके लिए तुर्क साम्राज्यमें रहकर बड़ी शीघ्रतासे स्वतन्त्रताकी ओर अग्रसर होता रहा और अन्तमें गत महासमरमें स्वतन्त्र हो गया।

अप्रासङ्गिक न होगा, यदि गत महासमरसे पहलेकी दो-एक घटनाओंका यहां उल्लेख किया जाय। १९०८ में तुर्क युवकोंके विद्रोहके बाद ही १९११ में इटलीने अचानक लीबियाके तुर्क साम्राज्यपर हमला कर दिया। इस स्थितिसे लाभ उठानेके लिए यूनान, सर्विया और बलगेरिया मिल गये और तुर्कीके बचे-खुचे यूरोपीय प्रदेशपर ९ अक्टूबर १९१२ को हमला कर दिया। विवश होकर १८ अक्टूबर १९१२ को तुर्कीने इटलीके साथ सन्धि कर ली। उस समय इटलीने लीबियामें कुछ बड़ी वीरताका परिचय नहीं दिया था, परन्तु परिस्थिति इटलीके अनुकूल थी। तुर्कीको इस पराजयके फलस्वरूप लीबिया और डोडेकनीज टापुओंसे हाथ धोना पड़ा। डोडेकनीज टापू भूमध्यसागरके पूर्वमें तुर्कीकी सीमाके बिलकुल पास ही है और वर्तमान महायुद्धमें सैनिक दृष्टिसे इस टापूका बड़ा महत्त्व है। १९१२ वाले बालकन युद्धमें भी तुर्कीकी हार हुई और मई १९१३ में लन्दनमें सन्धि हो गयी, परन्तु विजयी देश लूटका माल आपसमें नहीं बांट सके और लड़ पड़े। इस अवसरसे तुर्कीने लाभ उठाया और अपने कुछ यूरोपीय प्रदेश फिर जीत लिये जो बादमें सितम्बर १९१३ में बलगेरियाके साथ सन्धि हो जानेपर भी तुर्कीके ही पास रह गये। इस सन्धिको एक साल भी नहीं हुआ था कि गत महासमर आरम्भ हो गया और इसमें तुर्कीने जर्मनोंका साथ दिया, इसका परिणाम सबके सामने है। मुस्तफा कमाल पाशाने १९२७ में तुर्कीकी राष्ट्रीय कांग्रेसके समक्ष कहा था—"जिन्होंने देशको लड़ाईमें घसीटा था, वे अपने शरीरपर आंच न आने देनेके लिए भाग गये। जो सुल्तान और खलीफा था वह अधम था, जिसने अनुचित साधनोंसे काम लेकर केवल यह प्रयत्न किया कि उसका शरीर और उसकी गद्दी बची रहे। मन्त्रिमण्डलमें अयोग्य, कायर और प्रतिष्ठाहीन लोग थे। वे सुल्तानके इच्छादास

थे और केवल अपना शरीर बचाना चाहते थे। वे किसी भी परिस्थितिके लिए तैयार थे।"

तुर्क युवकोंकी १९०८ वाली क्रान्ति एक चिनगारी थी, जिसके प्रकाशमें कोई भी यह देख सकता था कि समयका प्रवाह किधर है, तुर्कीका भविष्य जिन युवकोंके हाथोंमें है, वे क्या सोच रहे हैं और किधर जा रहे हैं। १९१८ में उन्हें केवल एक नेताकी जरूरत थी और इस अभावको मुस्तफा कमाल पाशाने दूर कर दिया।

मुस्तफा कमाल पाशाका जन्म १८८० में सलोनिकामें हुआ था। उस समय सलोनिका तुर्कीके अधीन था। पढ़ने-लिखनेके बाद वे सेनामें भर्ती हो गये। १९०४ में उन्हें कप्तान बना दिया गया। छात्रावस्थासे ही राष्ट्रीय राजनीतिसे उन्हें अनुराग था। फ्रान्सके क्रान्तिकारी लेखकोंका वर्जित साहित्य उन्होंने सलोनिकामें ही पढ़ लिया था। सेनामें होनेपर भी उनका सम्बन्ध तुर्कीकी गुप्त राजनीतिक संस्थाओं-से था और वे सुल्तानकी निरंकुशता और विदेशियों-की आर्थिक गुलामीसे तुर्कीका उद्धार करनेपर हमेशा ही जोर देते थे। अपने इन भावोंके कारण वे बड़ी जल्दी विद्रोही युवकोंके नेता हो गये और इसी सिलसिलेमें उन्हें जेलकी हवा भी खानी पड़ी। छूटनेपर उन्हें दमिश्कमें एक रेजिमेण्टमें जगह दी गयी। यह व्यवहारतः था तो निर्वासन ही, परन्तु वहां भी उन्होंने क्रान्तिकारियोंको सङ्गठित करनेका काम जारी रखा। बदल दिये जानेपर सलोनिकामें भी उन्होंने यही किया और युवक नेताओंके सम्पर्क में आ गये। १९०८ की क्रान्तिके बाद वे राजनीतिसे हट गये। १९११ में इटलीके विरुद्ध लीबियामें, १९१२-१३ में बालकन युद्धमें और उसके बाद गत महासमर (१९१४-१८) में वे तुर्कीकी ओरसे लड़े थे। १९१९ में जब यूनानी सेनायें स्मरनामें उतरीं, कमाल पाशाको सेनाका इन्सपेक्टर जनरल बनाकर अनातोलिया भेजा गया। वहां उन्हें युवक तुर्कोंकी सेना खड़ी करने, तुर्कीकी महत्त्वाकांक्षाओंके लिए शक्ति-सञ्चय करनेका अवसर मिल गया।

सीवरेस सन्धि (१० अगस्त १९२०) द्वारा मित्र-राष्ट्रोंने तुर्कीको खण्ड-खण्ड कर डालनेका निश्चय किया था; परन्तु कमाल पाशाके नेतृत्वमें तुर्क युवकोंने उसे व्यर्थ कर दिया। १९१९ से लगाकर १९२३ तक, चार वर्षका तुर्कीका इतिहास बड़ा ही उत्साहजनक है। इसी सीवरेस सन्धिके अनुसार तुर्कीके अरब प्रदेशोंका शासनादेश ब्रिटेन और फ्रान्सको मिला हुआ है। उसीके अनुसार अरमीनिया और कुर्दिस्तानको अलग स्वराज्य दिया जानेवाला था, सारा दक्षिणी भाग इटली और फ्रान्सको मिलता। तुर्कीका यूरोप वाला हिस्सा यूनानको दिया जाता; स्मरनामें सुल्तानकी प्रभुता और यूनानका शासन होता, दरेदानियालका क्षेत्र असैनिक व्यवस्थामें मित्र-राष्ट्रोंके नियन्त्रणमें दिखलाई पड़ता और सुल्तानका शासन बचे-खुचे हिस्सेमें रहता। इसका सीधा मतलब था तुर्कीको हाथ-पैर काटकर केवल नामके लिए रहने देना। यह स्थिति भला दम रहते तुर्कीको कैसे स्वीकार होती। यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है कि जो तुर्की मित्रराष्ट्रोंके आगे घुटने टेक चुका था, उसीने उनके द्वारा लादी हुई सन्धिको निकम्मा कर देनेका



तुर्की प्रजातन्त्रके वर्तमान प्रेसिडण्ट इस्मत इन्यूनू।

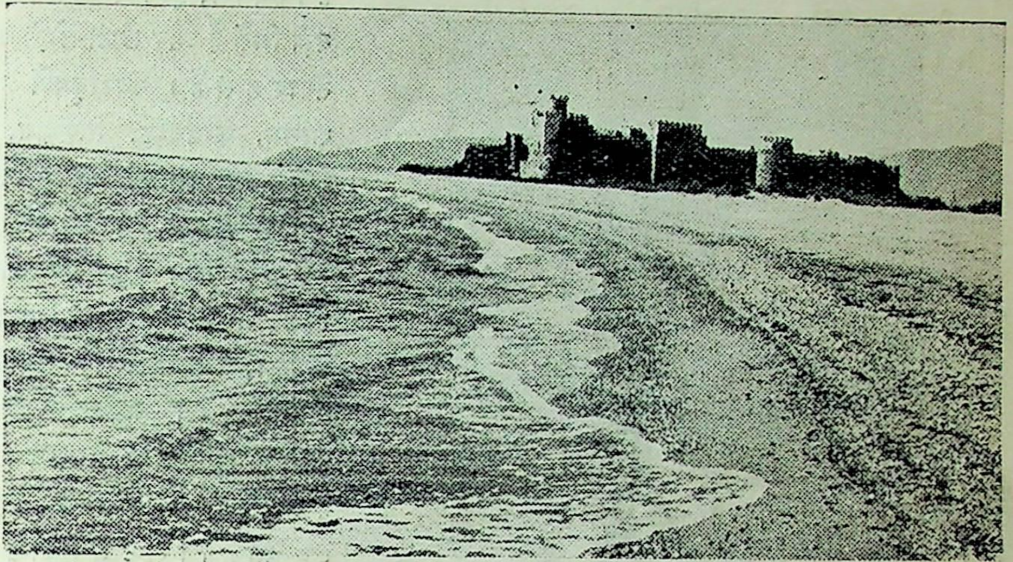
निश्चय किया और अपने इस प्रयत्नमें वह सफल भी हुआ।

तुर्कीकी पहली राष्ट्रीय कांग्रेस २३ जुलाई १९१९ को अर्जरूममें गुप्त रूपसे हुई थी। उसमें राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाया गया। उसी साल सितम्बरमें जब दूसरी कांग्रेस सिवासमें हुई, देशके विभिन्न भागोंसे आये हुए प्रतिनिधियोंने मुस्तफा कमाल पाशाकी अध्यक्षतामें एक कार्य-समिति बनायी और राष्ट्रीय नीतिकी घोषणा कर दी। समितिकी बैठकें अक्सर अङ्गोरामें ही होती थीं, जो उस समय मामूली-सा कस्बा था। यहीं तुर्कीकी अखण्डता और स्वाधीनताकी मांग तैयार की गयी। उस समय तक कुस्तुन्तुनियामें सुल्तानका मन्त्रिमण्डल बदल गया था। अतएव तुर्कीकी तत्कालीन वैध पार्लियामेण्टने भी उस राष्ट्रीय मांगका समर्थन (२८ जनवरी १९२०) किया। इससे मित्र-राष्ट्रोंका रङ्ग उड़ गया। ब्रिटिश सेनाओंने १६ मार्च १९२० को इस्तम्बूलमें घुसकर राष्ट्रीय नेताओंको गिरफ्तार कर लिया और उनमेंसे बहुतोंको निर्वासित कर दिया। सुल्तानको फिर अवसर मिल गया और देश-भक्तोंका दमन करनेके लिए वह भी पैंतरे बदलने लगा, देश-भक्तोंके धर्म-द्रोही होनेका फतवा निकलवा दिया; परन्तु तुर्कीके देश-भक्त नौजवान इससे विचलित नहीं हुए और नवनिर्वाचित राष्ट्रीय असेम्बलीके ३५० मेम्बरोंने २३ अप्रैल १९२० को अङ्गोरामें फिर उस मांगको स्वीकार किया। इसी समय राष्ट्रीय सरकारका सङ्गठन कर दिया गया। इसके प्रेसिडेण्ट मुस्तफा कमाल पाशा हुए। तुर्कीकी इस राष्ट्रीय सरकारने सुल्तान और उसकी सरकारको पदच्युत कर दिया। परन्तु यह काम केवल प्रस्ताव पास कर देनेसे ही होनेवाला नहीं था और देशभक्त तुर्कोंको शस्त्र लेकर मैदानमें उतरना और यूरोपके गिद्धोंसे लड़ना पड़ा। फ्रान्सीसियोंने हारकर तुर्कीकी सीमासे निकल जानेका निश्चय कर लिया। इटालियनोंने अपना क्षेत्र यों ही खाली कर दिया। यूनानी अवश्य १९२२ तक पैर रगड़ते रहे; परन्तु अन्तमें उन्हें भी भागना ही पड़ा। अब दरेदानियालका प्रश्न देशभक्त तुर्कोंके सामने था। वहांसे फ्रान्स और इटलीकी सेनायें तो पहले ही चली गयी थीं, ब्रिटेनने भी तुर्कीकी मांगको स्वीकार कर ही लिया। यूरोपमें पूर्वीय थ्रेस अब तुर्कीका था। १७ नवम्बर १९२२ का सुल्तान तुर्की छोड़कर बाहर चले गये। इसके बाद ही तुर्कीके साथ यूरोपीय शक्तियोंने समझौतेकी बातचीत आरम्भ कर दी, जिसके फलस्वरूप २४ जुलाई १९२३ को लासेन सन्धि हुई। इसमें यूरोपीय शक्तियोंने तुर्कीके प्रजातन्त्रको स्वीकार कर लिया। तुर्कीने मुस्तफा कमाल पाशाको अपना प्रेसिडेण्ट बनाकर २९ अक्टूबर १९२३ को प्रजातन्त्रकी घोषणा कर दी। लासेनकी सन्धिमें जो कमी रह गयी थी, जून १९३६ में उसकी पूर्ति हो गयी, तुर्कीको दरेदानियाल-की किलबन्दी करनेके लिए स्वीकृति दे दी गयी और वर्तमान महासमर आरम्भ होनेसे पहले जूनमें फ्रान्सने अलेक्जेण्ड्रेटा भी लौटा दिया।

नवीन तुर्कीने अपनी प्रगतिसे आज अपनी ओर सारे संसारका ध्यान आकर्षित कर रखा है। इसका कारण केवल यही नहीं है कि तुर्की अपनी नष्टप्राय सत्ताको पुनः स्थापित करनेमें समर्थ हुआ है और उसने विदेशी प्रभुत्वका कोई चिह्न नहीं रहने दिया है बल्कि उसका एक बड़ा कारण यह है कि उसने बहुत ही थोड़े समयमें एक राष्ट्रका सदियों-का संस्कार ही बदल दिया है। सुल्तानका पद उठा देनेके बाद तुर्कीकी राष्ट्रीय असेम्बलीने अब्दुल मजीदको खलीफा बना दिया था। मार्च १९२४ में खलीफाका पद भी उठा कर खलीफाको निर्वासित कर दिया। अगले महीने जो नया विधान तैयार हुआ, उसके अनुसार मकतब बन्द कर दिये गये। साम्प्रदायिक अदालतों और अन्य सांस्कृतिक संस्थाओंको भी तोड़ दिया गया। धार्मिक उपाधियां, दर-वेशोंके मठ, मुसलमानी तिथियां, दिन और महीने, फैज टोपी, सबको उठाकर यूरोपियन टोप और कलेण्डर जारी किया गया है। तुर्कीमें रविवारको छुट्टी रहती है।

तुर्की प्रजातन्त्रने सच्चे अर्थमें महिलाओंमें तो काया-पलट ही कर दिया है। वे आज पर्दा नहीं करतीं और लड़कियां लड़कोंके साथ स्कूलों और कालेजोंमें पढ़ने जाती, व्यापार और नौकरी करती और सार्वजनिक क्षेत्रमें दिखलाई पड़ती हैं। दीवानी, फौजदारी और व्यापारिक कानूनोंकी रचना यूरोपके आधारपर १९२६ में की गयी। इससे एक ओर जहां पुरुषोंके बहुविवाह करनेका रिवाज उठ गया, दूसरी ओर कानूनकी दृष्टिमें स्त्रियां पुरुषोंके समकक्ष हो गयीं। १९२८ तक तुर्कीमें अरबी लिपिका चलन था; परन्तु उसी

साल अरबी लिपिको उठाकर रोमन लिपिको जारी कर दिया गया। इस कार्यकी कठिनताका अनुमान किया जा सकता है, परन्तु ये सारी कठिनाइयां दूर हो गयीं, जब तुर्की प्रजातन्त्रके प्रेसिडेण्ट और प्रधान मन्त्रीने लोगोंको नयी लिपि सिखलानेके लिए गांवों तकका दौरा किया। १९३५ में जब उपनाम लिखनेका रिवाज चालू किया गया, लोगोंको रास्ता दिखलानेके लिए कमाल पाशाने अपना नाम कमाल अता तुर्क और इस्मत पाशाने इस्मत इनूनू रख लिया। तुर्की भाषामें अताका अर्थ पिता होता है और इस्मत पाशाने स्वतन्त्रताकी लड़ाईमें इनूनू गांवके पास यूनानियोंको बुरी तरह हराया था। नवम्बर १९३८ में कमाल अता तुर्ककी मृत्यु हो जानेके बादसे प्रेसिडेण्ट-पदपर यही इस्मत इनूनू आसीन हैं। कमाल अता तुर्कके समयमें ये प्रधान मन्त्री थे।



अनातोलियामें समुद्र-तटपर एक किला।

तुर्की प्रजातन्त्रने शिक्षा-सम्बन्धी सुधारोंकी ओर भी बड़ी तेजीसे कदम बढ़ाया है। अङ्कारा और इस्तम्बूलमें दो विश्वविद्यालय हैं और तुर्क युवकों और युवतियोंके लिए सब तरहकी शिक्षाका प्रबन्ध किया गया है। नये-नये स्थानोंमें सैकड़ों स्कूल खुलनेसे निरक्षरता बहुत कम हो गयी है। अखबारोंका प्रचार कई गुना हो गया है। १९३२ से तुर्कीमें ग्राम-सुधार जैसी एक संस्था काम कर रही है, जिसके २०९ केन्द्र हैं। टैक्सोंके लिए नयी प्रणाली स्वीकार की गयी है। कृषि, उद्योग-धन्धे, व्यापार, बैङ्किङ्ग और यातायात, सभी क्षेत्रोंमें सुधार और उन्नति की गयी है और कानूनोंकी रचनामें श्रमजीवियोंकी सुविधाओंका पूरा ध्यान रखा गया है।

प्रारम्भिक कालमें तुर्की प्रजातन्त्रने अपना धर्म इस्लाम घोषित किया था, परन्तु ९ अप्रैल १९२८ को विधानसे यह धारा निकाल दी गयी और अब यह कहा जा सकता है कि तुर्कीमें विशुद्ध प्रजातन्त्र प्रणालीका शासन है। तुर्कीमें अल्पसंख्यकोंका प्रश्न नहीं है। सभी नागरिकोंको समान अधिकार हैं। निर्वाचित राष्ट्रीय असेम्बली अपना प्रेसिडेण्ट चुनती है और प्रेसीडेण्ट अपना मन्त्रिमण्डल बनाता है। फौजी अफसर राष्ट्रीय असेम्बलीके मेम्बर नहीं हो सकते। राष्ट्रीय असेम्बलीमें प्रतिपक्षी दल जोरदार नहीं हैं और प्रेसिडेण्ट अपने अधिकारोंका उपयोग भी सजीवताके साथ करते हुए देखे जाते हैं। इससे तुर्कीमें भी डिक्टेटरशाही होनेका भ्रम हो सकता है, परन्तु असलियत यह नहीं है। तुर्की असेम्बलीमें कानून बनानेकी सत्ता सन्निहित है और सरकारके कामोंपर उसका पूरा नियन्त्रण है। असेम्बली किसी भी समय सरकारको अधिकारच्युत कर सकती है और वह केवल अपने ही निश्चयसे भङ्ग हो सकती है।

तुर्कीकी जनसंख्या लगभग १ करोड़ ७० लाख है। एजियन समुद्रसे लगाकर काकेशस तक और काले सागरसे सीरिया और इराक तक सारे प्रदेशका क्षेत्रफल फ्रान्ससे कुछ ही कम है। जलवायु समशीतोष्ण है और खूब खेती होती है। जङ्गल और चरागाह भी हैं। अनातोलियाका पहाड़ी भाग खनिज द्रव्योंसे पूर्ण है। इस्तम्बूल (७४१०००), स्मरना (१७१०००), अङ्कारा (१२३०००), अदाना, बूरसा, कोनया और इनताप प्रसिद्ध नगर हैं। ७०-८० सैकड़े



छात्रायें एक ही तरहकी पोशाक पहनकर स्कूल जाती हैं।

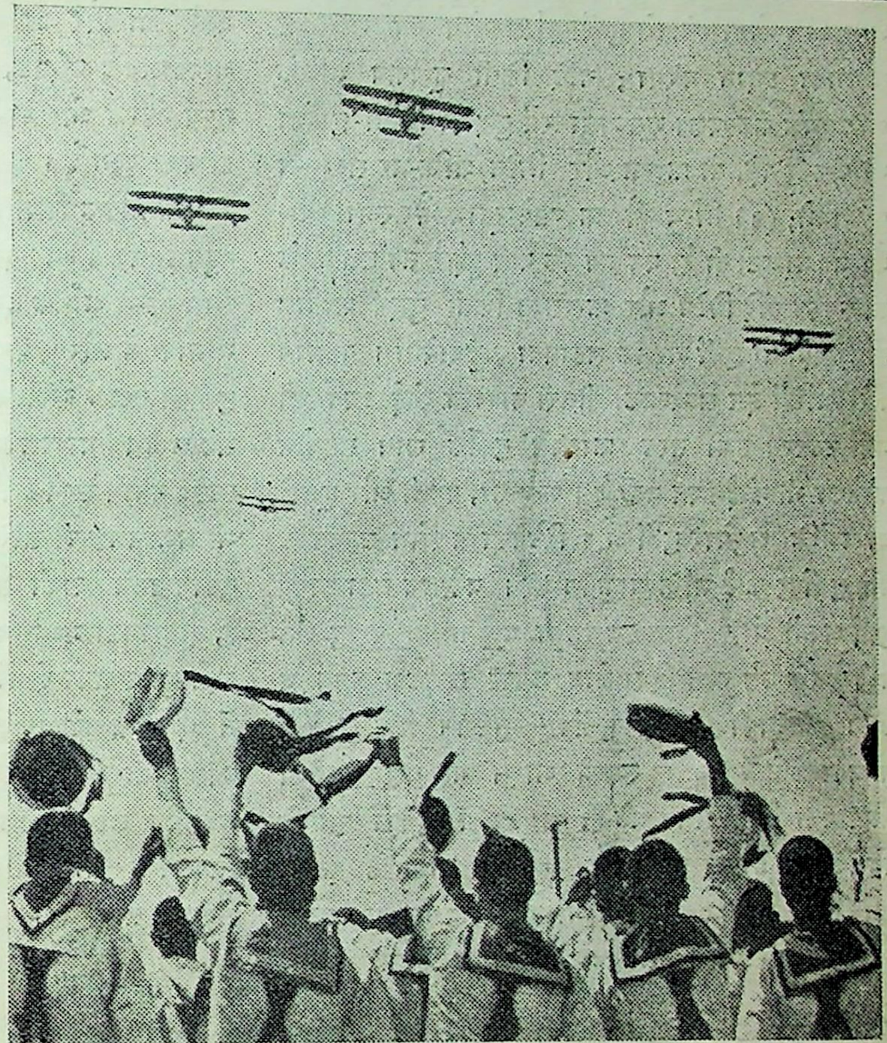
निवासी खेतीपर निर्वाह करते हैं और सच तो यह है कि वास्तविक तुर्की गांवोंमें है। अनातोलियामें अन्न खूब होता है। तुर्की गेहूंके लिए स्वावलम्बी है। सारे संसारका २.५ प्रतिशत गेहूं तुर्कीमें होता है। फल भी खूब होते हैं। स्मरना क्षेत्रमें अञ्जीरोंके जङ्गल ही जङ्गल हैं। प्रजातन्त्रके १४ वर्षोंमें चीनीका उत्पादन १४ गुना (७० हजार टन) हो गया। तुर्की कपासके लिए भी स्वावलम्बी है और संसारकी १.७ प्रतिशत ऊन तुर्कीमें होती है। सारे संसारकी १९ से लगाकर २९ प्रतिशत तक क्रोमियम नामक धातु तुर्कीमें निकलती है। १९३७ में २४ खानोंमें यह १९३००० टन निकाली गयी थी और १९३७ में निर्यात क्रोमियमका तिहाई भाग जर्मनी गया था। जर्मनी इस धातुके लिए अन्य देशोंपर ही निर्भर है। तांबा, लोहा, कोयला, शीशा, जस्ता और गन्धक भी तुर्कीमें निकाला जाता है।

उद्योग-धन्धोंकी दृष्टिसे तुर्कीने गत १७ वर्षमें असाधारण उन्नति की है। रेलकी कई नयी लाइनें तैयार की गयी हैं। चीनीका धन्धा सङ्गठित किया गया और तम्बाकू, दिया-सलाई और शराबपर एकाधिकार स्थापित किया गया। कयसेरीमें हवाई जहाजोंका कारखाना है, जिसमें लगभग १ हजार आदमी काम करते हैं '१९३९ में ६ करोड़ ४० लाख तुर्की पौण्डोंकी पञ्चवर्षीय औद्यागिक योजना पूरी की जा चुकी है। कयसेरी, इरेगली और नाजिल्लीमें सूत और कपड़ेकी तीन बड़ी मिलें हैं और छोटी-छोटी अन्यत्र भी हैं। ऊनी कपड़े भी तैयार होते हैं। काराबूकमें लोहेका बड़ा कारखाना है। कागज, कार्डबोर्ड, सेलूलीज, नकली रेशमकी मिलें भी खुल गयी हैं और बिजली, मोटर-गाड़ियों और शस्त्रास्त्रोंके कार-खानेकी योजना तुर्की-सरकारके सामने है। प्रजातन्त्रके १९ वर्षोंमें रेलवे लाइनकी लम्बाई २९३७ मीलसे बढ़कर ४३४६ मील हो चुकी है। हैदरपाशा, कोनया, एस्किशहर, अङ्कारा, अर्जरूम, अफ्यू- कराहिसार, स्मरना, सभी रेलके बड़े स्टेशन हैं। अर्जरूममें यह रेलवे लाइन रूसकी काके-शियन रेलवेसे मिल जाती है। हवाई जहाजोंका एक क्लब है और अङ्कारा, स्मरना और इस्तम्बूलमें हवाई जहाजोंके अड्डे भी हैं। १९३८ में तुर्कोंके पास २॥ लाख टनके जहाज थे। अलेक्जेण्ड्रेटा और स्मरना अच्छे बन्दरगाह हैं और सामसुन, इरेगली और मरसिनकी भी तरक्की हो रही है। युद्धसे पहले तुर्कीमें ४७ प्रतिशत माल जर्मनीसे आता था और ४२.९ प्रतिशत निर्यात जर्मनी जाता था। जहां तक जर्मनी और तुर्कीके व्यापारका सम्बन्ध है, ब्रिटिश घेरेका कोई असर नहीं पड़ सकता।

प्रजातन्त्र तुर्कीने अपने अस्तित्वके १७ वर्षोंमें अन्त-र्राष्ट्रीय दृष्टिसे कई महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किये हैं। ८ जुलाई १९३७ को ईरानकी राजधानी तेहरानमें राजप्रासाद (सआद-आवाद) में तुर्कीने ईरान, इराक और अफ-गानिस्तानके परराष्ट्र-मन्त्रियोंके साथ एक सन्धि-पत्रपर हस्ताक्षर किये। आधुनिक युगमें यह सन्धि पहली थी, जिसमें पश्चिम एशियाके सभी स्वतन्त्र देश शामिल हुए। यही नहीं, इस सन्धिपर हस्ताक्षर करनेवाले देशोंके साथ मिश्रका भी निकट सम्पर्क है। सन्धिपर हस्ताक्षर करने-वाले देशोंने एक दूसरेकी सीमाओंकी अखण्डताको स्वीकार किया है और साथ ही एक दूसरेके घरेलू मामलोंमें हस्तक्षेप न करने और आपसी झगड़ोंको शान्तिपूर्ण ढङ्गसे निपटानेका निश्चय किया है। यह व्यवस्था भी है कि अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओंके समय ये राष्ट्र एक दूसरेसे परामर्श करेंगे और इनमेंसे कोई किसीपर अकेले या अन्य शक्तिके साथ मिलकर आक्रमण नहीं करेगा।

पश्चिम एशियाके स्वतन्त्र देशोंको एक दूसरेके सम्पर्कमें

लानेसे भी पहले तुर्कीने बालकन देशोंको एक सूत्रमें बांधनेका प्रयत्न किया और इसमें वह सफल भी हुआ। ९ फरवरी १९३४को यूनानकी राजधानी एथेन्समें यूनान, यूगोस्लाविया, रूमानिया और तुर्कीमें एक सन्धि हुई, जिसे हम बालकन गुट कह सकते हैं। इस सन्धिमें पारस्परिक सीमाओंको स्वीकार किया गया था और यह व्यवस्था भी की गयी थी कि सबके संयुक्त स्वार्थोंके लिए यदि खतरा दिखलायी पड़े, तो परामर्श किया जाय। अलबानिया इस गुटमें इटलीके आतङ्कके कारण शामिल नहीं हुआ और बलगेरिया भी अपनी सीमा सम्बन्धी कुछ शिकायतोंके कारण इस गुटमें यद्यपि कभी शामिल नहीं हुआ, तथापि जुलाई १९३८ में सलोनिकामें उसने बालकन गुटके चारों देशोंके साथ अनाक्रमण-सन्धि की। बालकन गुटकी मंशा केवल यही नहीं थी कि उनमें आपसमें सद्भाव रहे, बल्कि यह भी थी कि कोई अन्य शक्ति इन राज्योंकी स्वतन्त्रतामें हस्तक्षेप न कर सके। कमाल अतातुर्कने जनरल मिटाक्ससके लिए अपने सन्देशमें कहा था—"बालकन गुटके राज्योंकी सम्मिलित सीमा एक ही है और जो इस सीमाकी ओर आंख उठायेगा, उसपर प्रहार किया जायेगा।" यह होनेपर भी जर्मन राजनीतिने इस गुटको बेकाम कर दिया और आज तुर्कीको छोड़कर इस गुटके सभी देश जर्मनीके अधिकारमें हैं। बालकन गुटके रूमानियाके कुछ प्रदेशोंपर जर्मनीके मित्र हंगरी और रूसने दावा किया और इस सिलसिलेमें रूमानियापर जब जर्मन दबाव पड़ा, वह टिका न रह सका। किसीने उसकी सहायता भी न की और रूमानिया व्यवहारतः जर्मनीके अधिकारमें चला गया। इस गुटके यूनान और यूगोस्लावियाने अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेके लिए इटली और जर्मनीसे बड़ी वीरताके साथ लोहा लिया था।



१९३६ में माण्टरू कानफरेन्समें यूरोपीय शक्तियोंने तुर्कीको दरेदानियालकी किलेबन्दी करनेका अधिकार दे दिया था। इसपर तुर्कीमें बड़ा हर्ष मनाया गया था।

सोवियट रूसके साथ तुर्कीकी मैत्री-सन्धि है, जो पेरिसमें १७ दिसम्बर १९२९ को हुई थी। फ्रान्स और ब्रिटेनके साथ तुर्कीकी सन्धि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह १९ अक्टूबर १९३९ को हुई थी। इस सन्धिके अनुसार (१) यदि तुर्कीपर कोई यूरोपीय शक्ति आक्रमण करे, तो फ्रान्स और ब्रिटेन तुर्कीके साथ सहयोग करेंगे और शक्ति-भर सहायता पहुंचायेंगे ; (२) यदि तुर्कीपर कोई ऐसा आक्रमण हो कि भूमध्यसागर युद्धक्षेत्र बन जाय और फ्रान्स एवं ब्रिटेनको

भी युद्धरत होना पड़े, तो तुर्की पूर्ण सहयोग कर शक्ति-भर सहायता प्रदान करेगा; यदि किसी यूरोपीय शक्तिके आक्रमणके फलस्वरूप भूमध्यसागरमें युद्ध हो जिसमें तुर्कीको भी फंसना पड़े, तो फ्रान्स और ब्रिटेन शक्ति-भर सहायता पहुंचायेंगे; (३) ब्रिटेन और फ्रान्सने यूनान और रूमानिया-को जो गारण्टी दी है, वह जब तक बनी हुई है तब तक उसके फलस्वरूप यदि ब्रिटेन और फ्रान्सको किसी युद्धमें शामिल होना पड़े, तो तुर्की भरसक सहायता पहुंचायेगा। वर्तमान परिस्थितिमें इस सम्बन्धकी तीसरी धाराका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसी तरह फ्रान्सके तुर्कीके साथ सहयोग करनेका भी कोई प्रश्न नहीं है। अलबत्ता, पहली और दूसरी धाराओंके अनुसार तुर्की और ब्रिटेनका सहयोग सम्भव है, यदि तुर्कीपर कोई शक्ति आक्रमण करे। वर्तमान महासमरमें तुर्की अपनी ओरसे तो तटस्थ रहना चाहता है, परन्तु शर्त यही है कि उसे रहने दिया जाय, उसपर कोई आक्रमण न करे। ब्रिटेनकी ओरसे तुर्कीपर आक्रमण किये जानेकी सम्भावना नहीं है और रूसकी ओरसे भी वैसा होनेकी सम्भावना किसी समय भले ही रही हो, परन्तु इस समय तो वह बिलकुल ही दूर हो गयी है। अब रह जाता है इटली, जर्मनीका कठपुतला बलगेरिया और स्वयं जर्मनी। इनमें इटली और तुर्कीका सम्बन्ध अर्सेसे अच्छा नहीं रहा है और यद्यपि बलगेरिया और जर्मनीने तुर्कीकी सीमाओंकी अखण्डताका आश्वासन दे रखा है, तथापि हिटलरके आश्वासनका कोई मूल्य नहीं है और बलगेरिया तो उसके हाथका कठपुतला ही बना हुआ है।

भौगोलिक स्थितिके कारण तुर्कीका अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व बहुत अधिक है और इस समय तो वह जर्मन प्रगतिके कारण खास तौरसे अधिक हो गया है। जर्मन सेनायें तुर्कीकी सीमापर हैं और एशियाकी ओर जर्मन प्रगतिकी दृष्टिसे तुर्कीकी तटस्थ स्थितिकी गम्भीरताको सहज ही समझा जा सकता है। हमारा विश्वास है कि तुर्की अपनी स्थितिको तटस्थ बनाये रखनेके लिए शक्ति-भर प्रयत्न करेगा और किसी भी आक्रमणकारी शक्तिकी धमकियोंके आगे नहीं झुकेगा। तुर्कीने बलगेरियाकी सीमापर मजबूत किलेबन्दी कर रखी है, दर्रेदानियाल और बास्फोरसकी सङ्कीर्ण जल-प्रणालियोंकी रक्षा-व्यवस्थाको दोनों ओरसे सुदृढ़ बनाया है। तुर्की सेना-में कई सौ हवाई जहाज, एक जङ्गी जहाज, दो क्रूजर, कई ध्वंसक, टारपीडो बोट और पनडुब्बियां हैं। इनके अलावा लगभग २ लाख सैनिक हैं, जिन्हें बिलकुल आधुनिक ढङ्गसे सिखलाया गया है और जो अपने शत्रुसे मोर्चा लेनेके लिए बिलकुल तैयार हैं।

फ्रान्स छटपटा रहा है

'राजनीतिका एक छात्र'

एक महीने पहले गत २७ अगस्तकी बात है। उस दिन फ्रान्सके एक नगर मार्सलीजमें एक महोत्सव हो रहा था। जून सन् १९४० में जर्मनोंकी जबर्दस्त दाब और मारके समय फ्रान्सका शासनसूत्र ऐसे व्यक्तियोंके हाथमें चला गया, जिन्होंने शासनारूढ़ होते ही शत्रुके आगे घुटने टिका दिये और ऐतिहासिक राजधानी पेरिस समेत लगभग आधा फ्रान्स जर्मनीको सौंपकर क्षणिक सन्धि कर ली और बाकी आधा फ्रान्स भी जर्मनोंकी कृपाका भिखारी बन गया। यह फ्रान्सकी जनता और सैनिकोंके पतनका द्योतक नहीं था। अन्तिम समय तक जनता सर्वस्व देकर और देशमें पूर्ण शान्ति बनाये रखकर तत्कालीन फ्रान्सीसी सरकार और युद्धके मोर्चेपर लड़नेवाले सैनिकोंकी सहायता कर रही थी और ये सैनिक भी—भले ही वे सैनिक-व्यवस्थाके अधीन पीछे हट रहे हों—मोर्चेपर बड़ी वीरता दिखला रहे थे। यों कहा जा सकता है कि फ्रान्सके वर्तमान नेताओंने 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः' की नीतिके अनु-सार बुद्धिमानीका ही परिचय दिया है; परन्तु यह बुद्धिमानी फ्रान्सके गौरवके अनुरूप तो है ही नहीं, इसमें भी सन्देह है कि सचमुच बुद्धिसे काम लेकर ही वैसा किया गया है। जिसे आज स्वतन्त्र फ्रान्सके रूपमें ग्रहण किया जाता है, उसे जर्मनीकी तालपर नृत्य करनेके लिए विवश होना पड़ रहा है। फ्रान्सकी वर्तमान परिस्थितिको हम बुद्धिमानीका

कार्य नहीं कह रहे हैं और इसलिए नहीं कह रहे हैं कि हम देखते हैं कि उसके नेताओंमें इस समय हिटलरका कृपापात्र होनेके लिए होड़-सी लगी हुई है। कोई देश अपनेसे प्रबल शत्रुसे परिस्थितिवश हार सकता है, यह समझमें आता है; परन्तु हार जानेका अर्थ कमसे कम आत्म-समर्पण, राष्ट्रकी अन्तरात्माका समर्पण नहीं होना चाहिए। फ्रान्सके वर्तमान नेताओंकी प्रगतिसे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने जर्मनोंके आगे अपनी सैनिक पराजयको ही स्वीकार नहीं कर लिया है, आत्म-समर्पण भी कर दिया है—और यह आत्म-समर्पण नैतिक रूपमें उन्होंने न्यूनाधिक जर्मनीके आगे घुटने टेकनेसे वर्षों पहले कर दिया था। जून १९४० में जो कुछ हुआ, वह तो उस नैतिक आत्म-समपणकी प्रतिक्रिया-मात्र थी। फ्रान्सके वर्तमान मन्त्री बूढ़े मार्शल पेतां आज फासिस्ट ढङ्गसे सलाम करनेमें अपना गौरव अनुभव कर रहे हैं और इसका कारण मार्शल पेतांके ही शब्दोंमें सुनिये। वर्तमान महासमरसे बहुत पहले १९३६ में उन्होंने लिखा था—"जर्मनीकी अपेक्षा फ्रान्स कम दुःखी है, इटलीकी अपेक्षा भी फ्रान्स कम कष्टमें है। अन्य देशोंकी अपेक्षा फ्रान्समें रोटीकी समस्या उतनी आवश्यक नहीं है। यह होते हुए भी न जर्मनीको सन्देह है और न इटलीको। हम संशयमें पड़े हुए हैं। अपने भविष्यमें हमारा विश्वास नहीं रह गया है। हमें राष्ट्रमें इसी विश्वासको फिर लाना चाहिए।"

फ्रान्स अपने नेताओंकी इसी मानसिक अवस्थाका कड़आ फल भोग रहा है। राजनीतिमें विवेकपूर्ण मतभेद और तर्कको प्रमुख स्थान और संसारको प्रजातन्त्रका सन्देशदेने और यूरोपीय सभ्यताका नेतृत्व करनेवाले फ्रान्सकी यही अधोगति होनी थी। जिस राष्ट्रके नेताओंमें आत्म-विश्वास न हो, उसकी जो भी दुर्गति न हो, वही कम है। स्वतन्त्रता-प्रेमी फ्रान्सीसी जनताका हृदय आज इस व्यथासे व्याकुल हो रहा है, उसकी अन्तरात्मा आज छटपटा रही है।

फ्रान्सकी आत्मा छटपटा रही है, इसका पता उस महोत्सवमें चला, जिसका उल्लेख आरम्भमें हुआ है। मार्शल पेतांके फ्रान्सने फ्रान्सीसी वालण्टियरोंको भर्ती किया है, जिन्हें रूसके विरुद्ध लड़नेके लिए भेजा जायगा। उस दिन वालण्टियरोंका पहला दल रवाना हो रहा था। उन्हें



मार्शल पेतां फासिस्ट तरीकेसे सलाम कर रहे हैं।

विदाई देनेके लिए सुन्दर महोत्सवका आयोजन किया गया था। बड़ी धूमधाम की। मोशिये लावेल वहीं गये हुए थे। बेण्ड बाजे बजाते हुए वालण्टियरोंके दलके दल निकल रहे थे। इसी समय एक फ्रान्सीसी नौजवानने दनादन कई फायर किये और मोशिये लावेल और एक अन्य व्यक्तिको घायल कर दिया। इस नौजवानकी आत्मा फ्रान्सकी वर्तमान अधोगतिको देखकर व्याकुल हो रही थी। वह सैनिक था और स्वदेशके लिए अपने प्राण हथेली-पर रखकर रणक्षेत्रमें देशके दुश्मनोंसे लोहा लेने गया था। फ्रान्सीसी सैनिक जब जर्मनोंकी दाबसे पीछे हट रहे थे, उसे भी हटना पड़ा था, हटकर इंगलैण्ड जाना पड़ा था। इंगलैण्डसे वह फ्रान्स लौट आया और अपनी आंखों देखा कि मार्शल पेतां और उनके साथियोंने फ्रान्सको किस दुर्दिनके हवाले कर दिया है। उसने यह भी देखा कि मार्शल पेतां जहां नहीं झुकना चाहते, वहां भी उनके साथी उन्हें झुकनेके लिए मजबूर कर देते हैं, वह परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं कि जर्मनोंके दबावके आगे उन्हें झुकना ही पड़ता है, इस तरहके षड्यन्त्रोंमें उनके जो साथी भाग लेते हैं,

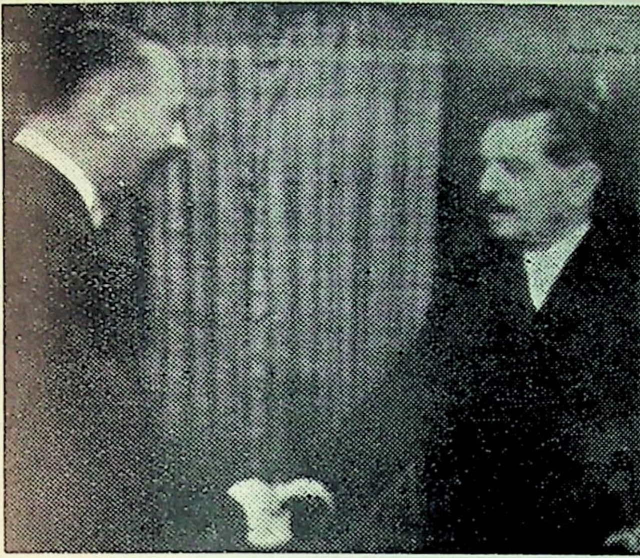
उनमें मोशिये लावेलका स्थान पहला है।

फ्रान्सकी पराजयके साथ ही मोशिये लावेलका अवकाश पूरा हो गया, जिसे वे पिछले ४ वर्षसे मना रहे थे। पेतां-मन्त्रिमण्डलमें उन्हें वायस प्रीमियरका पद मिला और उन्हें मार्शल पेतांका उत्तराधिकारी भी घोषित कर दिया गया। उन्होंने एकके बाद एक कई महत्त्वपूर्ण स्थानोंको हथिया लिया; परन्तु इसके बाद गत १४ दिसम्बर १९४०को अचानक मार्शल पेतांने रेडियोपर अपने भाषणमें बतलाया कि उन्होंने मोशिये लावेलको मन्त्रिमण्डलसे बर्खास्त कर दिया। इसके बाद कई महीने तक मोशिये लावेलके सम्बन्धमें कुछ सुन न पड़ा; परन्तु बादमें वे फिर मन्त्रिमण्डलमें पहुंच गये। मोशिये लावेलको क्यों मन्त्रिमण्डलसे अलग किया गया था और किस तरह वे फिर उसमें पहुंच गये—यह एक रहस्य है, जिसके जल्दी ही प्रकट होनेकी सम्भावना नहीं है; परन्तु प्रतीत यह होता है कि बर्खास्त किये जानेसे पहले मोशिये लावेल लगातार हिटलरके विश्वासपात्र एजेण्टका पार्ट खेल रहे थे और फ्रान्सीसी मन्त्रिमण्डलमें उनके फिर लिये जानेमें हिटलरका हाथ होनेका सन्देह किया जाता है। नौजवान फ्रान्सीसी सैनिकको यह कैसे बर्दाश्त होता? मार्सलीजके महोत्सवमें मोशिये लावेलको सामने पाकर उसके हृदयमें दबी हुई आग धधक उठी। यह मानसिक पीड़ा सहन करनेमें जब वह असमर्थ हो गया, अवसर पाते ही उसने अपनी बुद्धिके अनुसार जो ठीक समझा, किया। परन्तु उसका इरादा पूरा नहीं हुआ और मोशिये लावेल कई दिन तक अस्पतालमें रहनेके बाद अपना पार्ट फिर खेलने लग गये। आज संसारमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जिससे फ्रान्सीसी मोशिये लावेलसे ज्यादा घृणा करते हों।

फ्रान्सका भूतपूर्व प्रधान मन्त्री यह मोशिये लावेल कौन है? पीरे लावेलका जन्म १८८३ में फ्रान्सके चाटेलडन गांवमें हुआ था। आज भी इस गांवमें ७०० से अधिक आदमी नहीं हैं। लावेलके पिता मोदीकी दूकान करते थे और इस सिलसिलेमें लावेलको अक्सर पासके बड़े कस्बेसे घोड़ागाड़ी-पर मांस लाने जाना पड़ता था। स्कूलकी शिक्षा समाप्त करनेके बाद लावेलने विशेष योग्यताके साथ कालेजकी परीक्षा पास की और कानूनमें डाक्टर हो गये। प्रारम्भमें इन्हें एक स्कूलमें काम मिल गया, परन्तु गत महासमरसे पहले वे उसे छोड़कर पेरिस चले आये और वकालत करने लगे। वादी और प्रतिवादीमें अदालतसे बाहर समझौता करा देनेके लिए ये मशहूर थे। उस समय इनका काम जैसे-तैसे बड़ी मुश्किलसे चलता था। रोज पीसने और रोज खाने-जैसी स्थिति थी।

१९१४ में जब लड़ाई आरम्भ हुई, लावेल फ्रान्सीसी चेम्बरमें प्रतिपक्षी दलके सोशलिस्ट मेम्बर थे। उस समय फ्रान्सीसी पार्लमेण्टके मेम्बरोंको इस बातकी स्वतन्त्रता थी कि वे चाहें तो सेनामें शामिल हों या न हों। लावेलने इस व्यवस्थासे पूरा लाभ उठाया और अपना समय सोशलिस्ट कार्योंमें लगाया। उस समय लावेल अपनी युद्ध-विरोधी बातोंके कारण सबकी निगाहमें आ गये। उस समय ३ हजार व्यक्तियोंकी एक सूची तैयार की गयी थी। यदि परिस्थिति खराब होती, तो इस सूचीके आदमियोंको तत्काल गिरफ्तार कर लिया जाता। लावेलका नाम भी इस सूचीमें था; परन्तु इनकी गिरफ्तारीकी नौबत नहीं आयी, क्योंकि १९१५ में इन्होंने अपना रङ्ग बदल दिया और युद्धके पक्षमें होकर यह प्रयत्न करने लगे कि इटलीको भी साथी बना लिया जाय। इसी मतलबसे लावेल इटलीके सोशलिस्टोंके सम्पर्कमें आना चाहते थे और इधर सोशलिस्ट मुसोलिनी भी चाहते थे कि इटली युद्धमें पड़ जाय। प्रारम्भमें मोशिये लावेल और मुसोलिनी इसी आधार पर एक-दूसरेके निकट आये थे। १९१७ में ये स्टाकहोममें अन्तर्राष्ट्रीय सोशलिस्ट कांग्रेसमें शामिल हुए थे, परन्तु वहांसे पेरिस लौटनेमें इन्होंने बहुत देरी की। अपनी हरकतोंके कारण उन्हें मोशिये क्लिमेंशूका बड़ा भय था—यद्यपि लावेल १९१५ से ही युद्धका समर्थन करते आ रहे थे। २ अक्टूबर १९१९ को फ्रान्सीसी चेम्बरने वर्सेलीजकी सन्धिको बहुमतसे स्वीकार किया था। इस सन्धिके पक्षमें ३७२ और विरोधमें ५३ वोट आये थे। इन ५३ वोटोंमें एक मोशिये लावेलका भी था।

१९१९ के निर्वाचनमें जब सफलता नहीं मिली, लावेल फिर वकालत करने लगे। १९२४ के निर्वाचनमें फिर सफल हुए और इस बार १९२५ में उन्हें फ्रान्सीसी मन्त्रि-मण्डलमें परराष्ट्र-विभाग और प्रधान मन्त्रीके अण्डर सेक्रेटरीका पद मिल गया। १९२६ में वे श्रम विभागके-



हिटलर और लावेल।

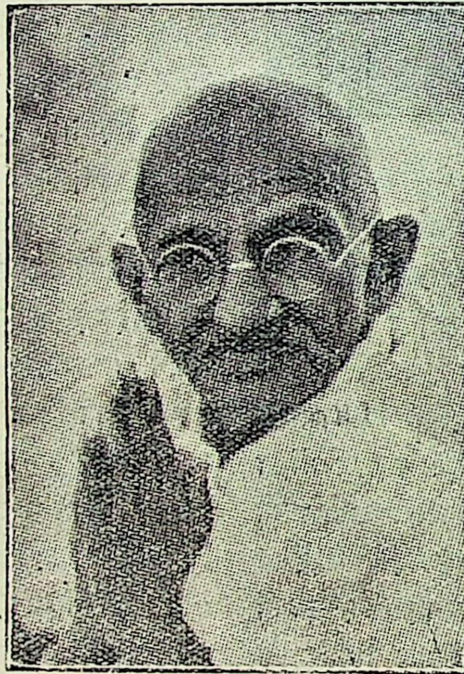
मन्त्री हो गये और उछलकर सिनेटमें पहुंच गये। १९३१-३२ में उन्होंने अपने दो मन्त्रिमण्डल बनाये। १९३२ में जब वे प्रधान मन्त्री थे, परराष्ट्र मन्त्रीका कार्य भी उन्होंने स्वयं ही वहन किया। यह जर्मनों द्वारा क्षतिपूर्ति किये जाने, मित्र-शक्तियों द्वारा अमेरिकाको कर्ज चुकाये जाने और निरस्त्रीकरणकी समस्याओंका जमाना था। वाशिङ्गटन तक दौड़ लगानेपर भी लावेल इन समस्याओंको हल नहीं कर सके। इसके बाद ही उन्हें दो बरस तक फिर मन्त्रिमण्डलसे अलग रहना पड़ा। १९३४ में वे पहले औपनिवेशिक विभागके और बादमें परराष्ट्र विभागके मन्त्री हो गये और १९३५ में अपना मन्त्रिमण्डल भी बनाया। यह १९३४-३५ का जमाना था, जिसमें जर्मनी और इटलीने अपने मतलबकी दृष्टिसे लावेलको पहचाना, उनकी कमजोरियोंको, जो आज नग्न रूपमें सामने आ रही हैं, समझ लिया। मोशिये लावेल पहले भूतपूर्व प्रधान मन्त्री थे, जिन्होंने १९३४ के दिसम्बरमें जर्मनी जाकर व्यापारिक सन्धिपर हस्ताक्षर किये। अगले महीनेमें वे इटली जाकर मुसोलिनीसे मिले और एक समझौतेपर हस्ताक्षर किये। इस समझौतेसे इटलीको व्यवहारतः कुछ भी तो नहीं मिला था, फिर भी इटलीने उसे क्यों किया? कहते हैं, लावेलने इस समझौते द्वारा अबीसीनियामें मनमानी करनेके लिए मुसोलिनीको छुट्टी दे दी थी। लावेलके घनिष्टतम परामर्शदाता जैके बोरडोने एक पत्रकारके पूछनेपर जो कुछ कहा था, उससे भी इस धारणाकी पुष्टि हुई थी। जो हो, अबीसीनियन युद्धके समय अबीसीनियाको सहायता दिये जानेके प्रश्नके सम्बन्धमें फ्रान्सका रुख बहुत ही शोचनीय था और निश्चय ही उससे इटलीको पूरी सहायता मिली थी। इस रुखकी दृष्टिसे हमें आश्चर्य नहीं होगा, यदि लावेलने मुसोलिनीको वैसा कोई आश्वासन दे दिया हो। यह तो सभी जानते हैं कि दिसम्बर १९३५ में ब्रिटिश परराष्ट्र मन्त्री सर सामुएल होरके साथ फ्रान्सीसी प्रधान मन्त्री मोशिये लावेलने अबीसीनियाके सम्बन्धमें जो दुरभि सन्धि की थी, उसके फलसे परराष्ट्र मन्त्री सर सामुएल होरको तो इस्तीफा ही दे देना पड़ा और अगले महीने लावेलको भी पदच्युत होना पड़ा। जनवरी १९३५ में जब लावेलने प्रधान मन्त्रीकी हैसियतसे फ्रान्समें फासिस्ट लीगको भङ्ग कर देनेका दायित्व स्वीकार नहीं किया, सिनेटने उनके विरुद्ध प्रस्ताव पास कर दिया। इस घटनाके बाद लावेल तब दिखलाई पड़े, जब फ्रान्सकी पराजय हो गयी और मार्शल पेतांने फ्रान्सकी भंवरमें पड़ी हुई नौकाको किनारे लगानेका दायित्व लिया। लावेलको अपनी इस क्षमतामें बड़ा विश्वास है कि वे मुसोलिनीको—और हिटलरको भी—बड़ी आसानीसे शान्त कर सकते हैं, यदि अवसर दिया जाय। इस सम्बन्धमें एक बार उन्होंने एक पत्रकारसे कहा था—"किसीको भी मैं दो-चार घण्टे पास बैठकर रजामन्द कर सकता हूं।"

लावेलने अपनी इस क्षमताका उपयोग जिस तरह किया है, उससे फ्रान्सकी जनताका स्वाभिमानी हृदय तिलमिलाने लगा है, उसमें अशान्तिकी आग सुलगने लगी है। अभी तो दङ्गों, दुर्घटनाओं और षड्यन्त्रोंके रूपमें कभी-कभी इसका धुआं ही प्रकट हो जाता है। फ्रान्स अपनी पराजयका दुःख और अपमान अब अधिकाधिक अनुभव कर रहा है और उसके वर्तमान अधिकारी जर्मनोंको खुश रखनेके लिए जिस नीतिसे काम ले रहे हैं, उससे वे जनताके इस हरे घावमें नमक ही छिड़क रहे हैं। इस मानसिक कष्ट और पीड़ासे फ्रान्स व्याकुल हो रहा है, छटपटा रहा है।

राष्ट्रके दो कर्णधार—गांधी और जवाहर

श्री गोवर्द्धनलाल गुप्त

स्वदेशकी स्वतन्त्रताके आन्दोलनकी बागडोर इन दो राष्ट्रनायकोंके हाथमें है, जो ब्रिटिश सरकारसे सत्याग्रहकी लड़ाई लड़ रहे हैं। इन दो राष्ट्रनायकोंने भारतको वर्तमान युद्धमें सम्मिलित करनेका घोर विरोध किया है, किन्तु फिर भी वे ब्रिटिश सरकारको इस सङ्कट कालमें विशेष तङ्ग करना उचित नहीं समझते। गत महायुद्धमें गांधीजीने ब्रिटिश सरकारका साथ दिया था। गांधीजी अहिंसावादी हैं और उन्होंने अपने इस सिद्धान्त-का भारत ही नहीं, सारे संसारमें प्रचार किया है। गांधीजी कहते हैं—"अहिंसा सत्यकी बुनियाद है। मेरा विश्वास है कि जो सिद्धान्त सत्य और अहिंसाकी भित्तिपर कायम नहीं है, उस सिद्धान्तका चलना असम्भव है। दुष्ट प्रणालीपर हमें आक्रमण करना चाहिए, उससे टक्कर लेनी चाहिए। पर प्रणालीके प्रणेता-से बैर करना आत्म-बैर सरीखा है। हम सबके सब एक ही प्रभुकी सन्तान हैं और सबके भीतर एक ही ईश्वर व्याप्त है—धर्मात्माके भीतर और पापात्माके भीतर भी, फिर एक जीवको कष्ट पहुंचाना मानों ईश्वरका अपमान करने और सारी सृष्टिको कष्ट पहुंचाने जैसी बात है।" गांधीजी अभी तक अपने इस सिद्धान्तका अटल वेदान्तवादीकी तरह प्रचार कर रहे हैं और ऐसी अवस्था और कालमें, जब कि आज दुनियाकी अजीब हालत है। जिन देशों और जातियोंको हम सभ्य और उन्नतिशील समझकर उनका मुंह ताकते थे, आज उन्हींके सिरपर बर्बरताका भूत सवार है। इंगलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, रूस, जापान—ये सभी देश बन्य पशुओंकी भांति एक दूसरेके खूनके प्यासे हो उठे हैं। इंगलैण्ड जर्मनी-को और जर्मनी इंगलैण्डको दोषी बताता है। एक निर्बल और असहाय जातियोंको नाजियोंके अत्याचारसे बचाना चाहता है और दूसरा दुनियाको ब्रिटिश साम्राज्यवादके आतङ्कसे। दोनों एक दूसरेको दोषी बताते हैं और हजारों बेकसूर बूढ़ों, बच्चों और स्त्रियोंका, जिन्हें लड़ाईमें जरा भी दिलचस्पी नहीं है, हर रोज खून हो रहा है। दुनिया हैरान है। क्या यही सभ्यता है, यही उन्नति है? विज्ञानसे हमें बड़ी-बड़ी आशायें थीं। उससे मनुष्यकी जानकारी बढ़ेगी, वह प्राकृतिक शक्तियोंका नियन्त्रण कर सकेगा, सभी जरूरत और आरामकी चीजें थोड़े श्रमसे, कम समय और अधिक मात्रामें पैदा होने लगेंगी, भूखा और नङ्गा मनुष्य देखनेको न मिलेगा, अभावकी क्षुद्रतासे ऊंचे उठकर मनुष्य एक दूसरेको पहचानेंगे, और पृथ्वीपर मानव-भ्रातृत्वका उदय होगा। आज ये सभी आशायें धूलमें मिल गयी हैं। मनुष्य उसका सदुपयोग न कर पाया। यही देखकर आज हिन्दु-स्तानसे बाहर भी तोपोंकी धमकके बीच लोगोंका ध्यान गांधीजीकी धीमी आवाजकी ओर जा रहा है। गांधीजीके नेतृत्वमें हिन्दुस्तानने जिस अस्त्रको अपनाया है, उसका प्रयोग यदि सफल हुआ, तो दुनियाको ठीक रास्ता मिल जायगा। हिन्दुस्तान अहिंसात्मक तरीकेसे यदि अपने प्रयत्नमें सफल हुआ, तो इससे न सिर्फ स्वदेश स्वतन्त्र होगा, बल्कि इसका दुनियापर भारी नैतिक प्रभाव पड़ेगा और हिंसाके अटूट चक्रसे निकलनेका एक नया रास्ता निकल आयेगा। गांधीजी पैंतीस कोटि निरीह प्राणियोंके प्राण हैं। जब समूचे राष्ट्रकी धमनियोंमें नपुंसकताकी



महात्मा गांधी

लहरें अबाध गतिसे बह रही थीं, जन-जनकी रग-रगमें गुलामीका खून दौड़ रहा था, चारों ओर दुर्बल आहोंने हाहाकार मचा दिया था, सहृदयता और मानवता जीवन और मरणके बीच उलझकर आत्महत्या करनेके लिए छटपटा रही थी, तब विश्वके विकट सूत्रधार गांधीजी अपने डेढ़ पसलीवाले दुर्बल कन्धोंपर सब कुछ उठा लेनेके लिए भारतीय स्वराज्य आन्दोलनमें कूद पड़े। आज १९४१ की राजनीतिक घटनाओंका विद्यार्थी उस आकस्मिक परिवर्तनकी कल्पना नहीं कर सकता, जो १९१९ और १९२० में अपने असाधारण रूपमें एक आश्चर्य और दैवी शक्तिकी भांति हमारे जीवनमें आया। जैसे खुले मैदानमें आकाशके नीचे घोर निद्रामें पड़ा आदमी एका एक वर्षा एवं जोरकी आंधी और तूफान आ जानेके कारण घबड़ाकर उठ खड़ा होता है और अपनी स्थितिके अनुसार अपनेको व्यवस्थित कर लेनेमें बुद्धि और विचारकी अपेक्षा प्रेरणासे ही अधिक शासित होता है, कुछ ऐसी ही दशा हमारे मनकी भी थी। एक अननुभूत प्रेरणा यन्त्रकी भांति हमारा सञ्चालन कर रही थी और हम किञ्चित् गौरव किञ्चित् कौतूहल, किञ्चित् आश्चर्य और किञ्चित् सम्भ्रमके साथ एक महान् आलोड़नको स्वयं चक्राकार घूमते हुए देख रहे थे। यह कहना कुछ अधिक न होगा कि इन इक्कीस-बाईस वर्षोंमें गांधीजीने सार्वजनिक जीवनका रङ्ग ही बदल दिया है। इस युगने अपनी छाप प्रत्येकपर डाल दी है। इसने हमें एक नैतिक रीढ़ प्रदान की और हमारी झुकी कमर और सबके आगे विवशतापूर्वक झुक जानेवाले सिरको ऊपर उठाया। स्वतन्त्रता-प्राप्तिका दृढ़ निश्चय कर लेनेके बाद उसने राष्ट्रको मार्ग बताया और अहिंसात्मक सत्याग्रहका अस्त्र प्रदान किया। इस अस्त्रकी असीम सम्भावनाओंका प्रयोग भी उसने दो-तीन बार व्यापक रूपसे करके दिखाया। उसने हमें आत्म-समर्पणकारिणी सेवाकी मर्यादा बतायी और राष्ट्रको हजारों-लाखों सेवक प्रदान किये। उसने राजनीतिक क्षेत्रमें ही गहरे परिवर्तन नहीं किये, वरन् जीवनकी एक व्यापक धारणाके कारण सामाजिक, औद्योगिक, आर्थिक, सभी क्षेत्रोंमें क्रान्ति की। उसने स्त्रियोंको जगाया। सामाजिक कुरीतियोंके विनाशकी गतिको तेज कर दिया। उसने अछूतों एवं उत्पीड़ितोंको आश्वासन दिया। उसने किसानोंकी ओर निजत्व-भावसे देखा। उसने खादी, चमड़े, हाथके कागज इत्यादि गृह-उद्योगोंका उद्धार किया तथा जो अनेक देशी कलायें नष्ट होती जा रही थीं, उनको पुनर्जीवित किया। गांधीजीका जन्म २ अक्टूबर सन् १८६९ ई० में हुआ था। आज इनकी अवस्था ७२ वर्षकी है। गांधीजीने एक कट्टर जैन मतावलम्बी परिवारमें जन्म लिया था, जिसका मूल सिद्धान्त जीवमात्रके प्रति अहिंसा है। जैनधर्मकी सारी विरासत उन्होंने पायी है। वे अंगरेजीके छवक्ताओंमें हैं। पर भाषणके इस विदेशी रूपके नीचे उनके उत्साहका शक्ति-केन्द्र हिन्दीका है। इस फौवारेको कभी-कभी हम पश्चिमी ढङ्गपर सजे या पश्चिमके प्रभावसे पूर्ण बगीचेमें छिड़काव करते देखते हैं। इनकी माताजी कट्टर धर्मावलम्बिनी थीं। अपने युवाकालके प्रारम्भमें गांधीजी विलायत जानेके बारेमें मां-बापकी अनुमतियोंको किसी तरह टाल न सके, तो उनकी माता इस शर्तपर गांधीजीको विलायत जानेकी अनुमति देनेको राजी हुईं कि इंगलैण्डमें गांधीजी आमिष भोजन और मद्यपान नहीं करेंगे और शारीरिक संयमका पालन पूर्णरूपसे करेंगे। गांधीजीके पितामह एवं पिताजीदेशी रजवाड़ों-



पण्डित जवाहरलाल नेहरू

के दीवान थे। दक्षिणी अफ्रीकामें गांधीजीने बैरिस्टरी की है।

एक लम्बा, छरहरे बदनका गोरा नौजवान। ऊपरसे नीचे तक निर्मल स्वच्छ-श्वेत खादीसे लिपटा हुआ। चौड़ा ललाट, ममता उत्पन्न करनेवाली आंखें, पतला और अभिव्यक्तिशील मुंह—यह जवाहरलाल हैं। यह प्रौढ़ युवक, जिसका सौन्दर्य और जिसकी स्थिति एक राजकुमारकी-सी थी, आज राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रताका अलख जगाता हुआ जेलके अन्दर बन्द पड़ा है।

श्री नेहरूजीकी अवस्था ५२ वर्षकी है। १४ नवम्बर १८८९ को प्रयागके मीरगञ्ज मुहल्लेमें श्रीमती स्वरूप रानीकी कोखसे जवाहरलालका जन्म हुआ। यह बच्चा माता-पिताका जीवन-सर्वस्व था। जवाहरलाल आनन्द भवनके वैभव-विलासके बीच पले थे। बचपनसे ही दुःखकी हृदयानुभूति उन्हें थी। अपने यौवनकालमें वह प्रस्फुटित हो उठा। उसकी आंखोंके सामने गरीबोंकी झोंपड़ियां नाच उठीं। सारे वैभवपर ठोकर मार दी। राजसी आराम-आसाइशको अन्तिम नमस्कार किया। बादशाहतकी गोद छोड़कर फकीरीका आलिङ्गन किया। ६ वर्षसे १२ वर्ष तक घरपर ही शिक्षा हुई। पढ़नेके साथ खेल-कूदका इनको बड़ा शौक था। अश्वारोहण, फुटबाल, टेनिस और तैरना इनके नित्यके विनोद थे। १२ वर्षकी अवस्थामें प्रसिद्ध थियोसोफिस्ट श्री एफ० टी० ब्रुक्स एवं गवर्नमेण्ट हाई स्कूल प्रयागके तत्कालीन प्रधानाध्यापक श्री गार्डन इनके शिक्षक नियत हुए। १९०४ ई० में मोतीलालजी सपरिवार इंगलैण्ड गये और वहांके प्रसिद्ध हैरोमें जवाहरलालका नाम लिखाया गया। इंगलैण्डके अनेक राजनीति-विशारदों एवं विचारकोंने यहां शिक्षा पायी है। यहांका जीवन अत्यन्त व्ययसाध्य है। मोतीलालजीने पानीकी तरह रुपये खर्च करके पुत्रको पढ़ाया। स्कूलकी शिक्षा समाप्त कर जवाहरलाल केम्ब्रिज विश्वविद्यालयके सुप्रसिद्ध ट्रिनिटी कालेजमें भर्ती हुए और जूलोजी (जन्तु-विज्ञान), बाटेनी (वनस्पति विज्ञान) एवं केमिस्ट्री (रसायन-शास्त्र) में सम्मान सहित बी० ए० की परीक्षा पास की। इनकी असाधारण योग्यतासे कालेजके अध्यापकों एवं सञ्चालकोंने सन्तुष्ट होकर बिना परीक्षा लिये इन्हें एम० ए० आनर्सका सर्टिफिकेट दे दिया। कालेजकी शिक्षा समाप्त कर वे लन्दनके इनर टेम्पुलमें भरती हुए और १९१२ में बैरिस्टरीकी उपाधि प्राप्त कर ली। इसके बाद १९२० ई० तक पिताके साथ बैरिस्टरी करते रहे। फरवरी १९१६ में दिल्लीके पण्डित जवाहरलाल कौलकी पुत्री कुमारी कमला (अब स्वर्गीय) से बड़ी धूमधामके साथ इनका विवाह हुआ। १९१७ में पुत्री इन्दिराका जन्म हुआ। १९२४ में एक पुत्र भी हुआ था। पर जन्मके तीसरे दिन जाता रहा।

पण्डित जवाहरलालजी त्याग, दृढ़ता, धीरज और साहसकी प्रतिमूर्ति हैं। 'खतरेके प्रति' जवाहरलालका सबसे बड़ा गुण है। जिधर कठिनाइयां ज्यादा होंगी, रास्ता कंटीला होगा, बलिदान और उत्सर्गका तकाजा होगा, उधर खिंचनेके लिए वह स्वभावसे मजबूर हैं। इसलिए युवक उन्हें चाहते हैं। शीघ्र निर्णय करनेकी शक्ति उनका अद्भुत गुण है। ज्यादा तर्क-वितर्क और विवाद करना उन्हें अच्छा नहीं लगता। लम्बी-चौड़ी बहस करना उन्हें बहुत खटकता है। थोड़ेमें ही बहुत समझ लेना उनका विशेष गुण है। अनुशासनके मामलेमें वे इतने बेरहम हैं कि उनके मित्र भी उनसे कांपते हैं। उनके साथ काम किया जा सकता है, दिल्लगी या खिलवाड़ नहीं किया जा सकता। कुछ ऐसा काम लेनेवाले और स्वयं भी करनेवाले हैं कि लोग घबड़ा जाते हैं।

दुनियामें कुछ ऐसे आदमी होते हैं, जो युद्ध और सङ्घर्षमें अपनी सम्पूर्ण महानतासे दिखाई पड़ते हैं। जवाहरलालजी कुछ इसी प्रकारके आदमी हैं। उन्होंने स्वयं ही एक बार कहा था कि जब तक युद्ध चलता है, मेरी नाड़ियोंमें जोरसे खून दौड़ने लगता है, मैं अपनेको जीवित समझता हूं और समझौतेके वक्त, जब लड़ाई खतम हो, मैं अपने तईं बेजान महसूस करता हूं।

नेहरूजी प्रकाण्ड राजनीतिज्ञ होनेके साथ ही बेजोड़ ग्रन्थकार भी हैं। उनकी अमर लौह-लेखनीसे आज अंगरेजी साहित्य अलंकृत है। उनकी अंगरेजी भाषाकी जानकारी और सुन्दर लेखन-शैलीकी दाद उनके दुश्मन तक भी देनेको लाचार हैं। वे राजनीतिक विचारक हैं और व्यावहारिकता उनके विचारोंका बहुत बड़ा गुण है। लक्ष्यसे इधर-उधर न होना और इसके लिए सब तरहकी कठिनाइयोंको झेलना उनका स्वभाव बन गया है। उनकी विचारपद्धति भारतीय संस्कृतिकी अपेक्षा यूरोपीय विचारधाराके ही अधिक अनुकूल पड़ती है।

———

कृतज्ञ

श्री महावीर त्यागी

पत्रमें लिखा था—हरीश, तुम पत्र देखते ही तुरन्त आ जाओ। जल्दी ही रमेशकी वर्षगांठ है। अभी कुछ भी प्रबन्ध नहीं हो सका है। तुम्हारी उपस्थितिकी अत्यन्त आवश्यकता है। शेष सब कुशल है।

रमेश नमस्ते कहता है।

तुम्हारा—
रमाकान्त।

किन्तु उसका जी न चाहा—कौन जाये उस लेने-देनेकी विभीषिकामें! जाकर फंस रहे, तो ईश्वर जाने, कब लौटना हो, कितना समय नष्ट हो।

उपेक्षित होकर वह पत्र कहीं रद्दीमें फंस रहा। उसने पत्रका उत्तर भी न दिया। कैसे देता? वर्षगांठके अवसरपर उत्सवमें सम्मिलित न होनेकी असमर्थता क्या भैया और भाभीको प्रसन्न करती?

कई दिन प्रतीक्षा करनेके उपरान्त रमाकान्त बाबूने अरुणासे कहा—देखा, पत्रका उत्तर भी रस-प्रवाहमें विलीन हो गया। यों कैसे आयेंगे, कवि महाशय हैं। उनका समय नष्ट होगा। हां, यदि उनके रसास्वादनके हेतु कुछ साधन उपस्थित किये जाते, तो कुछ आशा की भी जा सकती थी।

'अच्छा, अच्छा तो बस ठीक है, मैं सब ठीक कर लूंगी। आप निश्चिन्त रहिये।' अरुणाने कहा।

वर्षाके पश्चात् पर्वत-शोभा भी क्या मनोहर हो जाती है! ऊपर, दूर दृष्टि उठाकर देखो, तो धवल-फेनिल-रजत-अट्टालिकायें आकाशको स्पर्श करती दीखती हैं। दुग्ध-प्रक्षालित पाषाण हीरक-ज्योति-से जगमग-जगमग करते हैं और कन्दरामुखोंपर हरे-हरे वृक्ष ऐसे लगते हैं, मानो पर्वत-कोषपर नूतन वर्दी पहने प्रहरी खड़े हों।

हरीशने एक बार दृष्टि उठायी और देखी प्रकृति रानीकी भव्य भावना। फिर उसने निर्झरिणीके सुखद कूलपर अपनी मृगछाला बिछा दी। आज इस वन-वाटिकाकी छटा अनुपम प्रतीत हो रही थी। यज्ञोपवीतकी भांति निर्धारित जलधारायें उपत्यकामें आकर निर्झरिणी-स्वरूप बन गयी थीं और झर-झर गान आंगनमें मुखरित होकर विश्वकी अनुरागमय रागिनीको मात कर रहा था। अलिवृन्द गुञ्जार कर अनन्तको एक मधुर वेदनासे परिव्याप्त कर रहे थे। कहीं चमेलीके कुञ्ज स्वच्छ ओढ़नी ओढ़े खिलखिला रहे हैं, तो कहीं शिरीष वृक्ष कानोंमें चम्पक वर्ण कर्णफूल पहने मतवाले हो रहे हैं। कहीं हारशृङ्गार अङ्गारा होकर अग्नि-स्फुलिङ्ग-वर्षा कर रहे हैं, तो कहीं शाल्मली वृक्षोंकी छायामें पलाश अपनी प्रभा विकर्षण कर रहे हैं। दूर, सबसे ऊपर उचक-उचककर सालके वृक्ष प्रकृति रानीके शृङ्गारको निरख रहे हैं।

प्रकृतिमें आज एक नूतन छटाका आविष्कार हो रहा था। हरीशको आज एक नवीन जीवनका अनुभव हुआ। वह कुछ लिखना चाहता था। दृष्टि-भाव विनम्र होकर सामनेके एक भंवरमें अटक रहा। देखा, तो गुलाब-पुष्पमें लिपटा एक भौंरा भंवरमें फूलके साथ-साथ डूब-उछल रहा है। हरीशने आगे बढ़कर फूलको बाहर निकाल लिया। बाहर आकर वह अलिन्द उड़ चला और यत्र-तत्र अन्यान्य सुमनोंपर जाकर पराग पान करने लगा। हरीशकी दृष्टि भी उसके साथ थी। उसने सोचा, इसकी तृप्ति एक फूलसे नहीं होती! अथवा प्रत्येक पुष्प-परागमें क्या निराला स्वाद है, सौरभमें क्या विलक्षण मादकता है; वह न लिख सका और फिर तितली इत्यादि रस-लोलुप जीवोंके व्यापारको देखने लगा। आज वह घर लौटा, तो उसका मन कुछ उद्वेलित-सा था। इस अलिन्दमें क्या ज्ञानाज्ञान और तथ्यातथ्य निर्णय करनेकी बुद्धि है? इससे तो आत्माके पीछे वह निदर्शक शक्ति ही सब कुछ कराती है अथवा प्रकृतिके प्रभावसे वह कर्ममें प्रवृत्त होता है। एक ही फूलसे एक ही अवस्थामें वह सन्तुष्ट क्यों नहीं होता। क्या प्रकृति अथवा वह निर्देशक शक्ति उससे यह आशा रखती है कि वह संसारके समस्त फूलोंपर जाकर पराग पान करता फिरे और जीवन-भर इसी व्यापारमें लीन रहे। मानापमान, विपत्ति और सुख; सहिष्णुता और तितिक्षा-भावसे सहन

करे, राग-प्रीति एवं आसक्त्यातीत होकर भी इन्हीं फूलोंमें अपनेको भूल जाये। क्या इसीमें इसके जीवनकी पूर्णता है। मैं क्या इस एकान्तका एकाकी प्रवासी बनकर समस्त आधिभौतिकताकी कुञ्जी हस्तगत कर सकूंगा ?

आज इस भंवरने उसके हृदयमें अतीतकी धूलिसात् व्यथायें और आयासपूर्ण समस्यायें पुनर्जीवित कर दीं। उसका मन निर्भ्रान्त न रह सका। वह विचार-विभोर हो गया।

नौकरने आवाज दी—आपका यह पत्र है।

हरीशने चौंककर हाथ आगेको बढ़ा दिया। उसने एकदम पत्र फाड़ डाला। लिखा था—

प्रिय हरीश,

तुम इतने निर्मोही हो! अच्छा तो यह है कि तुम्हें भुला ही दिया जाय; किन्तु कोई वस्तु चिरकाल तक अन्तर्मुखी होकर जिस हृदयसे खेलती रही हो, उसे वह भुला भी तो नहीं सकता।

यहां इतना कार्याधिक्य है कि मुझे तो क्षणमात्रको भी अवकाश नहीं मिल पाता। किन्तु एक तुम हो, जो शायद कभी याद भी नहीं करते। वह तो यह अच्छा है कि सरला, प्रेमलता और चन्द्रा इत्यादि सहायता करती रहती हैं, बेचारी रात-दिन कार्यमें अनुरत रहती हैं, अन्यथा मैं तो कुछ भी न जुटा सकती।

हां हरीश, तुम्हें तुम्हारे पहले साथी भूले नहीं हैं। एक दिन चन्द्रा कहने लगी—"भाभी, हरीश बाबू अब इधर कम आते हैं, क्या कारण है।" मैंने कह दिया—"जबसे इधर तुमने खरबूजे खिलाने बन्द कर दिये हैं, उन्होंने भी आना बन्द कर दिया है।" तो बहुत शर्मायी। अधिक क्या लिखूं। यहां घर-भर तुम्हारी प्रतीक्षामें हैं।

रमेश नमस्ते कहता है।

तुम्हारी

भाभी।

भाभीके अस्पष्ट शब्दोंमें स्नेह और वात्सल्यकी निधि दृष्टिगत होती थी। उसके नेत्रोंके समक्ष उसकी बाल-क्रीड़ायें आ-आकर मुसकरा रही थीं। वह समय उसे अभी भूला न था, जब चन्द्राने रानी बननेके चावसे उसे खरबूजे खिलाये थे और उसने स्वार्थवश उसकी साध पूरी कर दी थी। उस पत्रमें कितनी लोलुपता, कितना रस अन्तर्हित था। वह प्रयाणके लिए प्रस्तुत हो गया।

उस साल जब उसकी माताजीका देहान्त हुआ था, तो रमाकान्त बाबूके पिता उसे अपने घर ले आये थे। वह उस घरमें बेटेकी भांति पला। उस समयसे वह उसी घरमें रहा। उस घरकी प्रत्येक वस्तु उसकी अपनी थी। आज चार वर्ष हुए, जब रमाकान्त बाबूके पिता गृहस्थीका भार उनके कन्धोंपर सौंपकर परलोक सिधार गये थे; तभीसे रमाकान्त-बाबू सुचारु रूपसे गृहस्थी-सञ्चालन कर रहे थे। उसे स्नेह, वात्सल्य, भ्रातृस्नेह और प्रेम, सब इसी घरमें मिले। आज वह पुनः इस घरको देखनेको लालायित हो उठा।

वह गाड़ीमें बैठा जा रहा था। यद्यपि दोनों ओर जङ्गल था, तथापि उसे प्राकृतिक उपवन कहना अप्रासङ्गिक न होगा। दोनों ओर सायेदार वृक्ष लगे हुए हैं। उन वृक्षोंके पीछे फूलोंसे लदे खिलखिलाते हुए कुञ्ज सौरभ प्रदान कर रहे हैं। कहीं फूले, बौराये सहकार भीनी-भीनी सुगन्धि निकालकर शुक-सारिकाओंका आवाहन कर रहे हैं। कहीं वृक्षोंके विशाल बाहुओंपर मयूर पङ्ख फैलाकर नृत्य कर रहे हैं, तो कहीं मीठी तानसे कोई खग निकटस्थ कुञ्जमें चिहुक उठता है। किसी शाखापर चक्रवाक-दम्पति बैठे स्नेह-चञ्चुसे एक दूसरेकी ग्रीवा सहला रहे हैं, तो अचानक विचित्र खग-मृग कभी सामनेसे निकल जाते हैं। वनके तमाम स्थावर-जङ्गम आनन्दकी सरितामें डूबे हुए थे। उसे इतना आनन्द आ रहा था कि समाता न था। वह आनन्द वितरण करना चाहता था। उसे ख्याल आया, "आज पांच वर्ष बाद सरला, प्रेम और चन्द्रा, कोई मुझे न पहचान सकेंगी।"

फिर वह ध्यानावस्थित होकर एक-एककी आकृति स्मृति-पटलपर चित्रित करने लगा और अनुसन्धानात्मक दृष्टिसे उनमें परिवर्तनोंका भी निरूपण करने लगा। उस नवीन संसारको देखनेका एक अजीब चाव उसके हृदयमें प्रादुर्भूत होता जाता था। उसका मन खिल रहा था। कोई देखता, तो अवश्य कह देता—इस बैलगाड़ीमें बैठकर यह आदमी क्या स्वर्गको जा रहा है, जो इतना प्रसन्न हो रहा है ?

आज जब पहले-पहल भाभी, भैया और अम्मांने उसे देखा, तो कुछ चौंक-से गये। अम्मांने जब उसका शिर सूंघा,

तो अजीब विरति-मुद्रासे ! मानो वह अपने हरिका शिर नहीं सूंघ रही हैं। चरणोंसे हरीश उठा, तो उसे देखती ही रह गयीं। भाभीने जब एकान्त पाया, तो पूछ डाला—हरि-बाबू, तुम तो निरे अपरिचित-से नजर आते हो, तुमने अपनी चञ्चलता और हंसोड़पन किसीके हाथों कालेजमें बेच तो नहीं दिया ?

वह केवल हंसकर रह गया।

वर्षगांठका उत्सव बड़े समारोहसे मनाया गया। फिर दावत हुई। सरला, प्रेम और चन्द्रा इत्यादि सब अपने-अपने कार्यको व्यवस्थित रूपसे चला रही थीं। भाभीने उसे सब कार्यका निरीक्षक नियुक्त किया था। जब कभी वह काम करते हुए उनके पास चला जाता, तो सकुचाकर वे एक ओरको सिमट रहतीं। उसकी पीठ फिरते ही दबी-दबी आंखोंसे देखतीं। उनकी आंखोंसे एक भाव टपक रहा था—शायद इन्हें कहीं देखा है; किन्तु एक दूसरेसे अपने भाव व्यक्त न कर पातीं। चन्द्राने एक बार पूछा भी—भाभी, हरीश बाबू अबकी बार उत्सवमें भी नहीं आये। क्या आपने पत्र नहीं लिखा था ?

'लिखा था; किन्तु अब वे क्यों आने लगे।' भाभीने और एक हल्का-सा आवरण उनकी सन्दिग्ध बुद्धिपर डाल दिया।

भाभी कहतीं—'हरीश, अभी इस समस्याको रहस्य ही रखो—एक दिन सबको बुलाकर उल्लू बनाऊंगी।'

किन्तु उनकी यह आशा फलीभूत न हो सकी। अम्मांने एक दिन सबके सामने उसका नाम ले लिया। सबकी निगाहें दबी-दबी, अचरज-भरी-सी उसके ऊपर पड़ीं—वे हरीश बाबू हैं ?

अवसर पाकर सबने भाभीकी उच्छृङ्खलताके लिए उन्हें कुछ-न-कुछ प्रसाद दे दिया, किन्तु उससे कोई न बोल सकी।

यदि ऐसा भी कोई व्यक्ति हो सकता है, जिसे कवि अथवा लेखक न बनकर उनकी भावना अथवा उनके प्रस्तुत विषयोंका नायक बनना अधिक रुचिकर हो, तो वह रमाकान्त बाबू थे। उनका रोमाञ्चकारी जीवन विचित्र घटनाओंसे आकीर्ण था। उनकी अवस्था लगभग छब्बीस वर्षकी थी। दुहरे और छरहरे जिस्मके नौजवान और सुरीले कण्ठवाले सङ्गीत-विशेषज्ञ भी थे। उनके ऐन्द्रजालिक होनेमें कोई कमी न थी। उनकी सचेष्ट अथवा कुचेष्ट किसी भी प्रकारकी मनोवृत्तिको तृप्त करनेके लिए अनायास ही साधन उपलब्ध हो जाते थे। हरीश उनके सहवासमें विचित्र सुखानुभव करता था और रमाकान्त बाबू तो शायद अपने अनुजको भी इतना प्रेम न कर पाते।

यों ही उसने एक दिन जानेकी अनुमति मांगी, तो इतने अप्रसन्न हो गये कि फिर न बोले और वह फिर आग्रह न कर सका।

हरीश अपने कपड़े बदलकर आ रहा था। भाभीके कमरेके पाससे गुजरा, तो उन्होंने पुकारा—हरीश !

'क्या आज्ञा है, भाभी !' वह पीछे फिरा।

'कहांकी तैयारियां कर दीं ?'

'भैयाके साथ बाहर जा रहा हूं।'

'आखिर बाहर कोई स्थान भी है ?'

'शिकारमें जा रहे हैं, शायद।'

'ओहो जी, तुम कैसे कवि हो, तुम्हें जीव-हत्या करनेमें दर्द नहीं होता ?'

'किन्तु उनका अनुरोध भी तो नहीं टाला जा सकता।'

'नहीं, आज नहीं जा सकते, यहीं बैठो।'

उसे बैठना पड़ा। कुछ देर इधर-उधरकी बातें करनेके पश्चात् भाभी अपनी स्वाभाविक प्रकृतिमें आ गयी। कहने लगी—'हरीश, खरबूजोंवालीकी तो अब शादी हो गयी। अब तुम्हें यहां रहना अच्छा लगेगा ?'

'वही पुरानी टेक, भाभी, देखिये मैं उठ जाऊंगा।'

'हां, भई, अब आप संसारसे क्यों सम्बन्ध रखने लगे, अब तो प्रकृति रानीकी चञ्चल चितवनोंसे घायल होकर विचरण करते हैं।'

रमाकान्त बाबू आये, कहने लगे—"अच्छा, आपने बन्दी बना रखा है, हमें नहीं मालूम था।"

"आप दूसरेके ऊपर भी अपने पाप मढ़ना चाहते हैं, अपनी हिंसक वृत्ति अपनेमें ही सीमित रहने दीजिये न।"

रमाकान्त बाबू मुसकरा दिये, कुछ न बोले। फिर वे भी बाहर न गये, कपड़े उतारकर वहीं आ बैठे। उनकी आज्ञासे नौकर वायलिन उठा लाया। यों तो हरीश भी गा लेते हैं, अरुणा भी अच्छा गा लेती है, किन्तु रमाकान्त बाबू

विशेषज्ञ हैं। और सङ्गीतकी यह विशेषता भी है कि श्रुति दूसरेके गायनमें अधिक रसास्वादन करती है।

सुन्दर गृह था। झाड़-फानूस आदिसे कमरा सुसज्जित था। नीचे फर्शपर मखमलके गद्दे बिछे थे। भवनके एक तरफ एक अनुपम वाटिका अपने स्वामीके ऐश्वर्यपर मदमाती, हंस रही थी। कर्ण विश्वकी अमर तानकी स्पर्धा करनेवाले गायनसे परिप्लावित थे। वह ऐश्वर्यके सातवें फलकपर था।

रमाकान्त बाबूने अपना गायन समाप्त करके, भाभीकी ओर वायलिन कर दिया। कुछ आनाकानीके उपरान्त भाभी मीराका एक भजन सुनाने लगीं। उनके कण्ठसे ध्वनि निःसृत होकर एक मूक, खोयी हुई वेदनाको जाग्रत कर रही थी। वह तान निशाके नीरव गानसे मधुरतर थी। वह एक रश्मि थी, जो तारुण्य-अङ्कमें सुप्त, नवजात झङ्कृतिकी अलसित पलकोंको शनैः शनैः उठाती अवगत होती थी। उसमें एक मादकताका सञ्चार हो रहा था। भाभीके पांच साल पहलेके सौन्दर्यमें कुछ विषमता उद्भासित हुई—सम्भवतः अब वह ऐसा विकसित सुमन था, जो निरन्तर सराहना पाकर अहम्मन्य हो गया हो। उनके लावण्यमें एक आकर्षण विशेष था, जो युवतियोंमें नहीं पाया जाता।

नीलाकाशमें मेघोंसे छिपा हुआ चन्द्रमा निकल पड़ता है। चकोर उसकी प्रतीक्षा करता है। भ्रमर फूलोंका रस लेता है। पतङ्ग दीपकका आलिङ्गन करता है। उसी प्रकार मानवकी तरुणावस्थामें प्रेमतन्त्री बज उठती है। उसकी झङ्कृति हृदयको गुदगुदाकर, उन्मादित करके उसमें मादकताका सञ्चार कर देती है, उसमें मनुष्य सौन्दर्य और विलासका इच्छुक बन जाता है।

उसके हृदयमें आज एक गुदगुदी पैदा हो गयी थी। सन्ध्याने अनन्तके आंगनमें अस्ताचलकी शय्या बिछा ली थी और फूली-फूली अरुणिम मुखमण्डलमें हार्दिक उच्छ्वास अन्तर्हित किये प्रियतमकी प्रतीक्षा कर रही थी। त्वरित गतिसे देवने अन्दर पदार्पण किया। उसने कपाट बन्द कर लिये। हृदयगत उछाह अब भी कपाटोंपर छा रहा था। हरीश भाभीके पास बैठा था। खिड़कीसे बाहरका सब कुछ वह वहांसे देख सकता था।

भाभीने पूछा—"हरीश, तुम्हारा जङ्गलमें कैसे मन लग जाता है।"

"मन क्या भाभी, आप चलें, तो देखें, कितना मनोहर स्थान है! उसे तो छोड़नेको भी मन नहीं चाहता।"

"तुम्हारे भाई वहां कितने दिनसे हैं?"

"अभी कुछ दिन हुए, तभी तो वहां पहुंचे हैं।"

"बनका महकमा वैसे तो खतरनाक है, हरीश।"

'नहीं भाभी, सब अभ्यास पड़ जाता है।"

"अबके वसन्तमें तुम्हारे यहां चलेंगे। वहां क्या झरने इत्यादि भी हैं?"

"हां भाभी, सब कुछ है। बड़ा रमणीय स्थान है। आप चलेंगी, तो देखेंगी।"

वे यों ही बातें कर रहे थे कि सहसा नीचे सामनेके द्वारपर कांचकी लालटेन चमकी। हरीश उधर देखने लगा। आवाज आयी—"तुम भी कितनी शरारतिन हो, यों ही हाथमें हाथ मार दिया। कितनी कीमती अंगूठी है, अम्मां क्या कहेंगी।" टार्चकी रोशनीमें फिर एक युवती कुछ ढूंढ़नेका उपक्रम करने लगी। फिर आंगन सहसा आलोकित हो उठा। वह उत्सुकतावश उठकर खिड़कीमें खड़ा हो गया। उधरसे आवाज आयी और साथ ही टार्चकी किरणें भी—"क्या आप हमारी सहायता करेंगे?"

भाभीने कहा—"क्या है, हरीश?"

"कुछ तो नहीं, नीचे किसीकी कोई वस्तु खो गयी है। शायद मुझसे कुछ सहायता चाहती हैं।"

"इधर नीचे कुछ कांटे भी हैं हरीश। कहीं ऐसा न हो कि मधुर सङ्गीतके स्थानपर कविके हृदयसे आहें निकलने लगें।"

क्या भाभीने कुछ समझकर यह कहा है—उसे विश्वास न हुआ। भाभी उठ गयीं, हरीश उधर चला गया।

उसने जाकर कहा—"क्या आप मुझसे कुछ सेवा चाहती हैं?"

उस युवतीने एक दूसरीकी ओर सङ्केत करके कहा—"मैंने नहीं, आपने बुलाया था।" जीनेकी कुछ सीढ़ियां चढ़कर दूसरी युवती सामने आयी। ये प्रेमा थीं। उन्होंने हरीशको हाथ जोड़कर नमस्ते किया। नमस्ते स्वीकार करते हुए हरीशने कहा—"क्या आपकी कोई वस्तु खो गयी है?"
"जी, खो तो गयी थी। अभी आपके आते-आते मिल गयी। क्षमा करें कष्टके लिए।" प्रेमाने कहा।

"आप तो कभी इधर आते भी नहीं, आइये न?" तीसरी युवतीने कहा।

"आप क्या मुझे जानती हैं?" हरीशने प्रेमाकी ओर मुंह करके कहा।

"जी, जानती तो हूं, आप मधुवन-बिहारी कृष्ण हैं, वंशी बजानेवाले।" प्रेमाने मुसकराते हुए कह डाला और अन्य सबके मुखसे हंसीका फव्वारा छूट पड़ा।

वह मन्त्रमुग्ध-सा खड़ा था। क्या बोलता।

× × ×

आकाश अभी निरभ्र था। पूर्व दिशामें कुछ लाली छा रही थी। रसीले मलय पवनके आलिङ्गनसे जूहीकी कलियां चिटख रही थीं। भीनी-भीनी सुगन्धिसे उपवन परिप्लावित हो चुका था। वह गवाक्षमें बैठा दिनकरके लीला-प्रसारको निरख रहा था। उसके मनमें वही प्रश्न द्वन्द्व मचा रहे थे। "प्रेमाके यहां क्यों न हो आऊं। देखना तो चाहिए, एक युवतीके हृदयमें क्या होता है। इसे अनन्त उदधिके पार लगानेवाली सुरक्षित तरणी कहा है और विपत्ति-निशीथकी सानन्द विचरणीय अमरावती। कितनी परिवर्तित हो गयी है प्रेमा भी। बचपनमें कितनी भोली, लजीली थी और अब·········मधुवन-बिहारी कृष्ण, वंशी बजानेवाले······?"

एक डालसे तितली ऊपरको उड़ी, उसके साथ उसकी दृष्टि भी ऊपर घूमी। देखा तो अंशुमाली सन्ध्या मालिनसे अभिसार करनेको त्वरित गतिसे कदम बढ़ा रहे हैं। सर्वत्र वही लीला-प्रसार है। स्वर्गमें देवताओंके लिए पारिजात पुष्प है, कल्पतरु है और पानार्थ पर्याप्त सुधा भी है; किन्तु फिर भी वे वहांकी रमणियोंके अधरासव-पानके लिए लालायित रहते हैं। क्या स्त्री कोई······। उसकी बुद्धि विक्षेपाभिभूत हो उठी।

सन्ध्याको मैं प्रेमाके यहां जाऊंगा—उसने ऐसा निश्चय कर लिया। मनने चाटुकीके शब्दोंमें बुद्धिपर विजय पा ली—केवल जाऊंगा ही तो, मन तो मेरा ही है।

वह सन्ध्याको प्रेमाके यहां गया। उसका बड़ा आदर-सम्मान हुआ। प्रेमाके पिता तो उसे देखकर बड़े प्रसन्न हुए। कहने लगे—"तुम कितनी जल्दी जवान हो गये हरीश, कितना परिवर्तन हुआ है। बी० ए० कर लिया न।"

"जी, पिछले साल ही किया है।"

"तुम्हें यहां आये कितने दिन हुए। मुझे तो प्रेमासे पता चला कि तुम यहां आये हुए हो। कहती थी—"पिताजी, अब तो उनमें बहुत अकड़ आ गयी, जरा कम बोलते हैं।" और हरीशकी ओर ताकते हुए हंस पड़े।

"जी, मैं तो स्वयं उपस्थित होनेकी सोच रहा था; किन्तु उत्सवके काममें व्यस्त रहनेके कारण न आ सका।"

"रमाकान्त बाबू तो ठीक हैं?"

"जी, ठीक हैं।"

फिर कुछ देर तक बैठे रहनेके पश्चात् उन्होंने कहा—"मुझे तो आज एक आवश्यक कार्यसे बाहर जाना है। तुम्हें अन्दर याद कर रही थीं, जाओ उनसे मिल लो। अशिष्टताके लिए क्षमा करना।"

"नहीं, यह आप कैसा ख्याल कर रहे हैं। यह तो मेरा घर है।" हरीशने कहा। प्रेमा आयी और उसके साथ हरीश अन्दर चला गया। माताजीसे देर तक बातचीत करता रहा। उस दिन प्रेमा अधिक दिखाई न दी। जब वह चलने लगा, तो प्रेमाने कहा—"कल आप अपनी कविताओंका एक संग्रह लेते आइयेगा।"

अब वह कल आनेके लिए बाध्य हो गया और इसी प्रकार वह वहां नित्य आने-जाने लगा। इस कार्यक्रमके साथ एक लालसा और उत्सुकता भी उसके हृदयमें घनीभूत होती गयी। अब उसे वहां जानेका व्यसन पड़ गया था।

एक दिन प्रेमाके माता-पिता पड़ोसकी किसी दावतमें शरीक होनेको गये। किन्तु प्रेमा न गयी। उसने कह दिया—"अम्मां, मुझे तो पढ़ना है, मैं नहीं जाऊंगी।"

उन्होंने उसका जाना आवश्यक न समझकर उसे घरपर ही छोड़ दिया।

हरीश आया। आज प्रेमा उसे आंगनमें ही मिली। नमस्ते करनेके पश्चात् वह हरीशके बैठनेके पहले ही आगे-आगे हो ली। आइये—उसने कहा।

हरीशने कमरेमें बैठते हुए कहा—"आज कोई दिखाई नहीं देता।"

"पड़ोसमें उत्सव है।"

"और तुम नहीं गयीं।"

"मैं चली जाती, तो आप······?"

"कब तक लौटेंगे ?" हरीशने पूछा ।

"शायद देरसे लौटना हो ।" और वह बाहर चली गयी । चमकती हुई तश्तरीमें उसने हरीशको ताम्बूल भेंट किया ।

"यह ताम्बूल आपको अच्छा लगेगा ।"

"क्यों नहीं, इसे तो लगना ही चाहिए ।"

प्रेमाके मुखपर हलकी-सी लालिमा दौड़ गयी ।

फिर कविता-संग्रह लेकर वह उसकी कोचपर जा बैठी—इसमेंसे कुछ मेरी समझमें नहीं आया था । आप बतला दीजिये ।

हरीश उसको समझाने लगा । लेखकने भूले-भटके प्रेम-पथिकोंका अकस्मात् मिलन दिखाया था । हरीशके बोलते ही प्रेमाने पुस्तक बन्द कर दी—"अच्छा-अच्छा, मैं समझ गयी। दो भूले-भटके प्रेम-पथिक मिल तो गये। कितने हर्षका विषय है ?"

सम्भवतः इतना तो वह पहले भी समझती होगी। भाषा कोई अधिक क्लिष्ट न थी और भाव भी अधिक गम्भीर न थे ।

फिर प्रेमाने कहा—"आप तो हरीश बाबू, इतने निर्मोही निकले कि पीछे फिरकर भी न देखा । अगर दुनिया भी आपको भूल जाती ?"

"तो मुझे दुनियाको याद दिलानी पड़ती कि मैं वही तुम्हारा पुराना हरि हूं ।"

"क्यों, दुनियाको क्या गरज पड़ी थी पूछनेकी ।"

"तो आपका मुझे बहुत कृतज्ञ होना चाहिए, क्यों ?"

प्रेमाने अपनी बड़ी-बड़ी आंखोंको उसके नेत्रोंमें उलझाते हुए एक अजीब लज्जाका परिचय दिया ।

"आपको शैशवकी बाल-क्रीड़ायें कभी याद आती हैं ?"

"हां-हां, वे तो हर समय मेरे नेत्रोंके सामने इस प्रकार नाचती रहती हैं, जैसे भयातुरके सामने भूत !" हरीशने हंसकर कहा ।

"नहीं-नहीं, कहो भूल गया मैं, मुझे कुछ याद नहीं ।"

समय, परिस्थिति और मनोगतिका अपूर्व समागम था । त्याग और विलासिताका कितना उन्मादी आलिङ्गन । शायद उस आलिङ्गनसे वह उसके अन्तस्तलमें समा जाना चाहती थी ! और वह न रोक सका ।

तृषितको जलका एक घूंट भी मिल जाये, तो वह फिर पात्रका पात्र ही अन्दर उड़ेलना चाहता है । हरीशके हृदयमें एक प्यास और गुदगुदी उठ चुकी थी और उसे बुझानेके लिए लबालब, छलकता पात्र भी मिल गया था ।

अब वह अपनी पुरानी खोयी वस्तु चञ्चलता और हंसोड़ापन पुनः पा गया था । उसका वह कार्य-क्रम भाभीकी तीखी दृष्टिसे न बच सका । एक दिन उन्होंने उसे चेतावनी दी—"कहीं ऐसा न हो कि प्रकाशके लिए भी अगले प्रातः-कालकी प्रतीक्षा करनी पड़े, कवि महाशय ?"

"नहीं भाभी, मैं तो सूर्यास्तसे पहले ही उड़ जाऊंगा। उसके बाहुपाशमें कसनेके पहले ही ।"

किन्तु उसके हृदयने चीत्कार की—"झूठा कहींका । अब तो तू फंस गया । इस वसन्त-किसलयकी नवजात और कोमल पङ्खड़ियोंमेंसे अब तू नहीं निकल सकता । ये कोमल पङ्खड़ियां अभेद्य हैं ।"

वह नित्य कहां जाता; किन्तु रमाकान्त बाबू कभी न पूछते कि कहां जाते हो । उनका संशय मिटानेके लिए वह अधिकसे अधिक उनके सहवासमें रहता । रमाकान्त बाबू आजकल उससे गम्भीर विषयोंपर बातचीत किया करते थे। सिद्धान्तोंपर शास्त्रार्थ करनेमें वह भी उनसे पीछे न था। रमाकान्त बाबू स्वयं हारकर भी अपनी विजयकी प्रतीक्षा कर रहे थे ।

आज हरीश प्रेमाके यहां गया, तो देखा, सरला भी वहीं बैठी है । उसके पहुंचते ही वह कहने लगी—"अच्छा बहिन, अब मैं चली । कल आऊंगी, नमस्ते ।"

प्रेमाने रोका । वह क्यों रुकती ? कई दिन तक यह व्यापार चलता रहा । हरीश केवल एक बार ही उसका मुख देख पाता और सुन पाता केवल वही एक नमस्ते ।

सरला आयुमें प्रेमलतासे कुछ छोटी थी । भोला सौन्दर्य था, बहुत भोला एवं आकर्षक । एकहरा जिस्म था, यौवनसे भीगा हुआ ।

केवल एक बार देखना और नमस्ते स्वीकार करना उससे सहन न हुआ । उसके चले जानेपर वह खिन्न हो उठता और लाख प्रयत्न करनेपर भी वह खिन्नता उसके छिपाये न छिपती, और फिर वह शीघ्र ही अन्दर चला आता । अब वह प्रेमाकी ओर उपेक्षा करने लगा था। किन्तु फिर भी वह उस सुन्दर मुखको एक बार देखने और उस कर्ण-प्रिय नमस्ते-

को सुनने जाया करता था। उसके जले जानेपर उसे ऐसा भासित होता कि वह कुछ वस्तु उसके हृदयमेंसे अपहरण करके अपने साथ लेती गयी है। एकाकी उसके मनमें आया, वह अवश्य कुछ पहले आती होंगी। क्यों न मैं भी कुछ देर पहले ही चलूं। वह चला गया। संयोगसे प्रेमा कमरेमें न थी। वह वहीं बैठ गया।

थोड़ी ही देरमें सरला भी आयी। नैमित्तिक रूपसे वह अन्दर आ रही थी; किन्तु हरीशको अकेले कमरेमें पाकर बहुत कुछ सकपका-सी गयी। मुंह आरक्त हो गया और मस्तक प्रस्वेदित हो गया। उसे न लौटते बनता था, न बैठते। पूछा—"प्रेम बहिन कहां हैं?" "अभी आती हैं, आप बैठिये।" उसने कहा।

किन्तु बैठनेपर भी उसकी अवस्था कुछ अस्त-व्यस्त-सी थी। उसकी एक-एक भाव-व्यञ्जनासे आकुलता टपक रही थी। वह व्याकुलता हरीशकी हृत्तन्त्रीको बार-बार झंकृत कर देती थी। उसका मन कह उठा—"तू चला जा यहांसे। तेरे यहां रहनेसे ही इनकी यह अवस्था हो रही है।" और वह उठकर सीधा अपने घर चला आया। वह सोच रहा था—"क्या यह मुझसे घृणा करती हैं। यदि ऐसा है, तो यह यहां आती ही क्यों हैं।" उसका जी अविश्वास करनेको न चाहता—"किन्तु मैं उनके योग्य हूं नहीं। नहीं हरीश, तू तो अब अधःपतित हो चुका। तुझे अब किसीसे भी प्रेम करनेका अधिकार नहीं और तेरा विश्वास ही क्या?" किन्तु इन आश्वासनों, इन तर्कोंसे उसके हृदयको सान्त्वना न मिल पाती, प्रत्युत एक प्रबल वेदना घनीभूत होती जाती। अब उसने प्रेमाके यहां जाना बन्द कर दिया। दिन-भर बैठा रमेशके साथ खेलता और अपनी गुत्थियां सुलझाया करता। किसी भी कीमतपर वह सरलाके हृदयको क्रय करना चाहता था। बस, उसके हृदयकी थाह पा जाये, फिर वह उसके प्रेमको पूज भी सकता है।

रमेश उसके सीनेपर दोनों टांगें फैलाये बैठा था और चाचाके मुंहमें नून दे रहा था। चाचा हंस रहे थे; किन्तु वह हंसी रमेशकी हंसी थी, स्वयं उनकी नहीं। उसका हृदय सरलाके उन लजीले नेत्रोंमें रमा था।

सहसा एक नौकरने कहा—"आपको राधाचरण बाबूके यहां बुलाया है।"

वह मन ही मन ईश्वरको धन्यवाद देने लगा। उसकी बाछें खिल गयीं। पूछा—"क्यों भई, क्या काम है, क्या तुम्हें कुछ मालूम है?" "नहीं जी, मुझे तो कुछ मालूम नहीं।"

वह उठकर उसके साथ चल दिया। जाकर देखा, तो राधाचरणजी, भाभी और सरला सब एकत्र बैठे हैं और एक पुस्तक उनके सामने खुली रखी है। उसने हाथ जोड़कर नमस्ते किया।

राधाचरणजीने कहा—"हरीश, तुम्हें गर्मीमें आनेमें कष्ट तो अवश्य हुआ होगा, क्षमा करना; किन्तु यहां सरला और हमारा झगड़ा हो गया। सरलाने कहा कि तुमको बुलवाया जाय और मामला साफ कर लिया जाय।

सरलाकी अवस्था ये शब्द सुनकर ऐसी हो गयी, जैसे मुसीबतमें फंसा सर्प बिल ढूंढ़ता है अथवा किसीने कोई कार्य धोखेसे कर लिया हो।

उनका शास्त्रार्थ एक दोहेपर था; दोनोंने अपना-अपना अर्थ बतलाया। हरीशने ध्यानपूर्वक सुना। फिर अन्तमें उसने अपना निर्णय दिया। अर्थ सरलाका ही ठीक था।

राधाचरण बड़े हंसमुख व्यक्ति हैं। उन्होंने हंसते हुए अपनी पराजय स्वीकार कर ली और सरलाने लज्जावश अपना विजयोल्लास हृदयमें ही छिपा लिया। राधाचरणजीने उससे नित्य आनेका आग्रह प्रकट किया और हरीशने स्वीकृति भी दे दी। उस दिन वह शीघ्र ही लौट आया।

भाभीने देखा, कितना सुन्दर जवान है, कितनी रसीली आंखें, कितनी मादकता लिये हुए। मुंहपर घुंघराले काले बाल कहीं-कहीं लटक पड़े हैं। ऊंचा कद, भरे हुए कन्धे, ईश्वरने अवकाशमें बैठकर बनाया है! और न जाने क्या-क्या विचार उसके हृदयमें तरङ्गित होने लगे।

राधाचरणजीकी अवस्था इस समय ५५ वर्षके निकट होगी। उन्होंने यह दूसरा विवाह किया था। विवाहको अभी छठा वर्ष हुआ था। उनकी स्त्रीकी अवस्था लगभग तेईस वर्ष थी। सरलाकी अवस्था सोलह वर्षके लगभग होगी। किन्तु शारीरिक समानुपातमें वह छोटी-बड़ी न थी। सरला राधाचरणजीकी पहली स्त्रीकी सन्तान थी।

जब हरीश भाभीके पास बैठा, तो उन्होंने कहा—"जब मैंने पहले दिन सुना था कि तुम यहां आये हुए हो, तभीसे

तुम्हें बुलानेका प्रयत्न करती रही; किन्तु न बुला सकी। जब छोटे थे, तब तो यहां खूब आते थे, अब जवान हो गये न, शर्म आती है आते हुए, क्यों ?"

वह मन ही मन शर्मा रहा था। सोच रहा था, पहले भी मेरा इनसे अधिक परिचय न था। इन्होंने मुझे अब तक स्मरण रखा। बड़ी सहृदय हैं। उसे अचम्भा-सा हो रहा था। उसने कहा—"जब आपने बुलाया नहीं, तो स्वयं कैसे आता। मेरा आना आपको अच्छा लगता या नहीं, मैं निश्चय न कर पाया था।"

नहीं हरीश बाबू, आप ये कैसी परायोंवाली बातें करते हैं।"

अब वह नित्य उनके यहां जाने लगा। भाभी उसकी बहुत खातिर करतीं। अब भाभीमें कितना परिवर्तन हो गया था। जो पहले नौकरोंसे सीधे मुंह बात भी न करती थीं, अब उनसे बड़ी प्यार-भरी बातें करतीं। उनका मुंह हर समय खिला रहता।

हरीशको तो उन्होंने राधाचरणजीसे ऊंचे आसनपर बैठा रखा था। उनके कोई सन्तान न थी। वह समझता था कि वह अपने शान्त वात्सल्यका रसास्वादन मुझीको कराना चाहती हैं। किन्तु सरलाकी विचित्र अवस्था थी। केवल किसी कार्य-विशेषसे हरीशसे बोलती। उससे अधिक लज्जा-सीमाका व्यतिक्रमण न हो पाता। सदैव खिची-खिंची रहती। हरीश इसे उदासीनता समझता। वह उससे बोलना चाहता और उसके निकट-सम्पर्कमें रहनेका प्रयत्न करता; किन्तु वह ऐसे दूर-दूर भागती, जैसे वधिकसे मृगी। कई दिन तक वह वहां न गया। आखिर क्या लाभ—जब वह बोलती तक नहीं। किन्तु उसके नेत्रोंको केवल उसी मुखमें सुन्दरताका आभास होता था। उसका हृदय केवल उसीके हृदयसे खेलना चाहता था। वह उसे बिना देखे न रह सका और उसे फिर उनके घर जाना पड़ा।

यह नहीं कि सरलाको कुछ अनुभव ही न हुआ हो। वह हरीशसे भी अधिक व्याकुल रही। सरला उसे अपना बनाना चाहती थी और अपना तन, मन उसपर समर्पण कर देना चाहती थी। उसने अपने हृदयमें न जाने क्या-क्या कल्पनायें की थीं—"अब आयेंगे तो कहूँगी, हरीश बाबू, यह भी कोई खेल है। दूसरेका हृदय चुराकर कहीं यों बेखबर हो जाते हैं! इस तरह बैठकर उनके सामने उपन्यास पढ़ने लगूंगी। थोड़ी-सी रूठी-रूठी बातें करूंगी और कहूँगी—बाबू, आप दूसरेके हृदयको परखते नहीं। आपके बिना एक-एक क्षण कल्पसे भी अधिक लम्बा लगता है।"

ज्यों ही हरीश आया, सरला इन बातोंको छोड़ केवल यह कह पायी—"आप आ जाते हैं, तो कुछ पढ़नेमें मन लग भी जाता है और आप नहीं आते, तो पुस्तकोंमें रूखापन-सा छा जाता है, किससे कुछ पूछूं।"

यह सङ्केत उस मूक हृदयका उसे नित्य दर्शन देनेकी ओर था। सुनकर हरीशको निर्जन और प्रशस्त मरुस्थलमें कुछ हरियाली दृष्टिगोचर हुई। खैर, मेरी आवश्यकता तो महसूस हुई।

इससे आगे सरला कुछ न कह पायी और अपनी सुधि-बुधि बिसार सङ्कोच-सरितामें डूब गयी। इस प्रकार नित्य ऐसा होता। दोनों ओर आकुलताका साम्राज्य छा जाता, दोनों छटपटाते रह जाते; किन्तु सङ्कोचकी सीमा तो पहले सरलाकी ही ओरसे टूटती। हरीशकी वेदना दिन-प्रतिदिन घनीभूत होती जाती थी।

उधर हरीशका सङ्कोच और अस्पष्टता भाभीको प्रोत्साहन दे रहे थे। वह उसे हर समय ऐसे घेरे रहती, जैसे पावसके बादल सूर्यको।

वह सोचता, यदि राधाचरणजी सन्देह करने लगें, तो वह वहां न आ सकेगा; किन्तु राधाचरणजी तो नखदन्तरहित वयोवृद्ध शार्दूलकी भांति आर्त दशामें बैठे-बैठे उसकी ओर ताकते रहते। उसे कभी-कभी राधाचरणजीपर ही क्रोध आता। जब वह अपनी स्त्रीको सन्तुष्ट नहीं कर सकते, तो क्यों शादी की। किन्तु राधाचरणजीने तो दूसरोंपर अपने पौरुषका सिक्का जमानेके लिए यह धूमधाम की थी। उनका पोपला मुंह और स्थूल शरीर और किसी तरह दूसरोंपर सिक्का जमाता भी?

उसे भाभीपर क्रोध आता, तो मनमें कह बैठता कि इनसे कह दूं, जब आप अपने पतिसे सन्तुष्ट नहीं, तो व्यर्थ ही शादीके बन्धनमें फंसीं। किन्तु उनके विपरीत थोड़ी-सी क्रिया भी अपने पैरोंमें कुल्हाड़ी मारनेसे कम न थी। वह खूनका घूंट पीकर रह जाता।

इसी प्रकार दिन बीतते चले गये। वसन्तकी बहार और

सुरभित समीरका स्थान अब गर्म-गर्म जला देनेवाली लूओंने ले लिया था। सहसा एक दिन हरीशके घरसे पत्र आया। उसमें हरीशको जल्दसे जल्द आनेको लिखा था।

हरीश पत्र पाकर घबड़ा-सा गया। "बस, अब मैं चला जाऊंगा और सरला अपने सारल्य-सागरमें डूबी रहेगी। मैं यह धधकता हृदय लेकर वनके उन सुन्दर फूलोंसे खेल सकूंगा। वह तो उसकी ज्वालामें फंसकर जल-भुन जायेंगे। किन्तु उस निष्ठुरासे अपने जीकी बात कैसे कहूं--कैसे कहूं, सरला, अब मैं जा रहा हूं। तुम मुझे क्या उत्तर देती हो। हां, उत्तर देगी। शायद दर्शन भी दुर्लभ हो जायें, तो मैं यों ही चला जाऊं। संकुचित ही! तो क्यों न दो-एक घूंट पी लूं। इस पापी सङ्कोचकी जड़ हिला देने-भरको पर्याप्त होगी। हां, मुश्किलसे वहां गया, तो एक बार दर्शन होंगे। यदि उस अवसरपर भी चूक गये, तो बस रह गये। आखिर क्या हानि है, केवल दो ही घूंट तो पीऊंगा।"

आज उसने जानेसे पहले पी ली। संयोगवश सरला आज अकेली ही मिल गयी। उसने हृदयमें आज निश्चयके कदम गड़ा रखे थे। उसने कहा—

"आज मुझे देखकर भाग क्यों न गयीं, सरला!"

सरला मुरझा-सी गयी।

"सरला, अब तो युवती हो गयीं, तुम अपनी शादी क्यों नहीं करातीं।" उसने कहा।

सरलाने दृष्टि उठाकर उसके मुंहकी ओर देखा। उसके नेत्र प्रज्वलित थे और चेहरा तमतमाता हुआ था। सरलाको सिहरन-सी लग गयी। उसने उन्मत्त-सी अवस्थामें पुनः कहा—"सरले, मेरी लालसा अवगुण्ठनमें रहना नहीं जानती, मैं तुम्हें हृदयसे प्रेम करता हूं। यदि तुमने मेरे प्रेमका तिरस्कार किया, तो मैं आत्महत्या......"

उसने उसके मुंहपर हाथ रखकर कहा—"यह आज आप कैसी बातें कर रहे हैं। मैंने कब कहा कि मैं आपके प्रेमको स्वीकार नहीं करती।"

हरीशको अब उन्माद-सा हो गया। वह उसे बांहोंमें भरनेको उठा। आज सरलाके मनकी संकुचित कली भी चिटख गयी थी। किन्तु ज्यों ही हरीशने उसे बाहुपाशमें जकड़ना चाहा, वह तड़प उठी और बिजलीकी तरह उसके बाहुपाशसे दूर हो रही।

"आप......मैं आपको इतना गया-बीता न समझती थी। मुझे क्षमा कीजिये।" और वह कमरेमें जाकर मुंह ढककर फफककर रोने लगी।

हरीशके मुंहपर मानो चपत पड़ी हो। वह टससे मस न हो सका। उसका नशा उतर-सा गया। अब वह पुनः वास्तविक हरीश हो गया था। उसने अपने मनसे कहा—अब क्या करोगे हरीश? अब तो तुम हार गये। तुम निरे मूर्ख तो नहीं निकले!

पराजित-सा वह लौट आया। उसका हृदय व्यथित था। उसे अपने ऊपर क्रोध आ रहा था—"अपने सदाचारको भी साथ-साथ खो बैठे मूर्ख। अब तुम्हें अपनेको मनुष्य कहनेका अधिकार ही क्या है? पा गये सरलाको? खूब पाया...।" वह हंस पड़ा।

सरला सोचती—क्या हरीश भी शराब पीते हैं। शराब पीकर मनुष्य क्या नहीं कर सकता। कामुकताके वशीभूत होकर वासना-मधुमासकी कौन-सी रंगरेलियां वह नहीं उड़ा सकता। ऐसा सोच-सोचकर उसके नेत्रोंसे आंसुओंकी झड़ी-सी लग जाती—यह मेरे पूर्व जन्मके कर्मोंका फल है!

सरलाको क्या पता न था कि अम्मां हरीशको कैसी दृष्टिसे देखती हैं। यही कारण था कि वह हरीशसे भी दूर-दूर रहा करती थी। यदि पता चल जायगा कि वह हरीशको प्रेम करती है, तो ईश्वर जाने, फिर क्या बला सिरपर आये। एक मद्यपी क्या नहीं कर सकता। उसे उन्मादमें क्या नहीं सूझता है। तो क्या हरीशको शराब पीनेका व्यसन है। उन्होंने शराब क्यों पी। उसे यह सोचकर अधिक मानसिक पीड़ा हो रही थी।

उस दिन रात्रि-भर हरीशको नींद नहीं आयी। वह पश्चात्तापकी अग्निमें घुल रहा था। वह सोचता—सुबह होते ही सरलाके यहां जाऊंगा और उसके पैरोंपर गिरकर क्षमा मांगूगा कि मैंने तुम्हें पानेके लिए ही यह कुकर्म किया है, मैं शराबी नहीं हूं, मैं बहुत भोला आदमी हूं, सरला मुझपर दया करो।

वह वहां गया, किन्तु सरला कहीं दिखाई न दी। कहीं एकान्तमें पड़ी रो रही होगी। हताश होकर वह योंही भाभीसे कहने लगा—घरसे पत्र आया है भाभी! शायद कल-परसों मैं चला जाऊं।

सरलाने कमरेसे उसके ये शब्द सुन लिये। उसे छटपटाहट-सी होने लगी, वह अब चले जायेंगे और फिर ईश्वर जाने, क्या हो। वह सारी ग्लानि भूल गयी, टूटे आईनेमेंसे वह हरीशके सुन्दर मुखको :निहारने लगी—तूने भी क्या मूर्खता की। जब लाख बुराई होनेपर भी हरीशको तू नहीं भुला सकती, तो क्यों डाट बैठी। कितना पश्चात्ताप तो उनके मुखसे टपक रहा है। भूल तो सबसे होती है। सम्भव है, यह मेरे अतिशय सङ्कोचका ही कारण हो कि उन्हें शराबकी शरण लेनी पड़ी हो। किन्तु कौन-सा मुंह लेकर बाहर जाऊं।

भाभीने कहा—आज शामका खाना यहीं होगा, हरीश! तुम्हें खाना पड़ेगा, फिर न जाने कब दर्शन हों। अब तो चले ही जाओगे।

हरीशने स्वीकार कर लिया। शायद तभी अवसर मिल जाय।

भाभीको बड़ी चिन्ता हुई। क्या उसकी साधना निष्फल जायगी। कल हरीश चला जायगा। किन्तु यह कैसे हो सकता है, मैं यथाशक्ति प्रयत्न करूंगी, आखिर देखूं तो मुझमें भी कुछ शक्ति है कि नहीं।

सन्ध्या हुई, हरीश दावतमें आया। किन्तु सरला न दिखाई दी। केवल भाभीकी हंसी-खुशीका साथ हरीशको देना पड़ा।

खाना खानेके बाद भाभीने हरीशका हाथ पकड़कर कहा—"कल तुम चले जाओगे, हरीश! मैं भी तो तुम्हारे साथ चलूंगी।"

"आप मेरे साथ कैसे चल सकती हैं, रहने भी दीजिये।"

"हरीश, मैं सारी दुनियाको छोड़कर तुम्हारे साथ चलूंगी। तुम मेरे हृदयमें रम चुके हो।"

"भाभी, आप कैसी बातें कर रही हैं। यों ही बड़े भैया सुन लें।"

"उनकी तो मैंने अनुमति ले ली है। और मुझे उनकी कुछ परवाह भी नहीं, मैं केवल तुमसे 'हां' चाहती हूं।"

हरीशने कहा—"मैं आपको माता समझता हूं भाभी, यह पाप मुझसे न होगा। यह विश्वासघात है।"

हरीश जाने लगा। वह न रोक सकी।

भाभीने सोचा—कल यह सबसे कह देगा। उस निन्दित जीवनकी यन्त्रणा तो मृत्युसे भी भयावह है। एक क्षण सोचनेके पश्चात् वह दौड़कर उसके पैरोंमें लिपट गयी। कहने लगी—हरीश, मुझे क्षमा कर दो, मैं सच्चे हृदयसे अब पश्चात्ताप करती हूं।

हरीशको रुकना पड़ा। उसके शब्द बड़े मार्मिक थे।

"बैठो हरीश, तुम देवता हो। मैं तुम्हारी पूजा करूंगी।"

हरीश बैठ गया। उसने एक पापिनीकी आंखें खोली थीं।

भाभीने कहा—थोड़ा दूध तो पी लो। और सरलाको पुकारा कि दूध ले आओ।

उसका हृदय जोरसे धक्-धक् करने लगा। उसके हृदयमें एक अज्ञात सन्देह उथल-पुथल मचाये हुए था।

हरीशने दो-तीन घूंट पिये होंगे कि सरला बेहोश होकर धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसका सारा शरीर पसीनेसे नहा रहा था। हरीशने दूध रखकर सरलाको संभाला। एक क्षीण ध्वनि उसके मुखसे निकल रही थी—इसे...न पीजिये। इसे न पीजिये। उसके नेत्र मुकुलित थे।

सरला जब चैतन्य हुई, तो हरीश जाने लगा। उसने सरलासे पूछा—क्यों, तुम बेहोश क्यों हो गयी थीं?

मैं यों ही बेहोश हो जाया करती हूं, आप कल घर न जायें।

जब हरीश चला गया, तो सरला सोचने लगी—भगवान्, उनके दूध पीनेपर मैं क्यों बेहोश हो गयी। अम्मांने कुछ और तो न समझा होगा। वह चिन्तित हो गयी।

कुत्ता दूधमें मुंह डाल गया था। भाभीने उसे फेंक दिया। वह झुंझलाने लगी—"इस रांड़को भी अभी बेहोश होनेको बाकी था। चार घूंट भी न पी पाया। अपनी अहम्मन्यता और मेरे हृदयको ठुकरानेका मजा मिल जाता—'भाभी, यह तो पाप है, मैं न कर सकूंगा?' और मैं यह पूछती हूं कि इस दुनियामें यह पाप-पुण्यका झगड़ा क्या है। क्या पाप है, क्या पुण्य। यदि वह पापसे डरते हैं, तो अपने समाजके उन 'उदार' नियमोंको आंकें, जो हमें विश्वासघात करनेको बाध्य करते हैं। ईंटका उत्तर तो पत्थरसे मिलना ही चाहिए।" वह पड़ी-पड़ी अपने कमरेमें बड़बड़ा रही थी। उसकी सूरत पागलोंकी-सी थी।

हरीशने भाभी और भैयासे जानेके लिए आज्ञा मांगी,

किन्तु वे राजी न हुए। भाभीने रमेशसे कहा—"रमेश, अब चाचा चले जायंगे, अब किसकी पीठपर कूदोगे?"

रमेश मचलने लगा—"नहीं चाचाजी, मैं तो नहीं जाने दूंगा।"

"तुम भी हमारे साथ चलना रमेश। तुम्हारे लिए भालूके बच्चे पकड़कर लायेंगे, तोता-मैना हमारे यहां पले हुए हैं।" हरीशने कहा। रमेश तैयार हो गया। किन्तु वे न माने। हरीशने जब पत्र दिखलाया, तो वे भी सहमत हो गये।

हरीश पलंगपर बैठा सोच रहा था। सरला आजसे पहले तो कभी बेहोश न हुई। वह मेरे चले जानेके दुःखसे तो विह्वल नहीं हो गयी थी। उसके मुंहसे क्या निकल रहा था। किन्तु मैं तो अब चला ही जाऊंगा। मैं उसके विषयमें क्या सोचूं। सहसा हरीशके पेटमें जलन-सी हुई। वह उठकर अन्दर गया और पानी पिया। किन्तु ज्वाला शान्त न हुई, प्रत्युत और जोरसे धड़कने लगी। एकाएक उसका कण्ठ सूखने लगा। आंखें बाहरको उबलने लगीं और गश-सा आने लगा। उसने घबराकर पुकारा—भैया! भैया!

रमाकान्त बाबू भी सोये न थे, हरीशकी घबरायी-सी आवाज सुनकर वह बाहर आये। तब तक वह संज्ञाहीन हो चुका था और उसे वमन आने लगे थे। वमनका रङ्ग देखकर रमाकान्त बाबूने अरुणासे कहा—हरीशको जहर दिया गया है।

अरुणा पहलेसे ही घबरा रही थी। ऐसा सुनकर उसकी आंखें फैल गयीं; कलेजा बैठ गया—"हरीशने किसीका क्या बिगाड़ा था।" "मुझे सब मालूम है अरुणा, किन्तु अब खतरेवाली बात नहीं है। वमन हो गये हैं।"

तीन-चार दिन तक हरीशकी अवस्था बड़ी खराब रही। यह खबर बड़े शीघ्र सब जगह फैल गयी। हरीशको जब यह पता चला कि उसे जहर दिया गया है, तो उसे स्त्री-जातिसे हार्दिक घृणा हो गयी। ये तो कामान्ध होकर दूसरेके जीवनका भी कुछ मूल्य नहीं समझतीं। उसके नेत्रोंके सामने प्रेमाकी वह उन्मादिनी आकृति, भाभीकी वह पैशाचिक चेष्टायें घूमने लगीं। उसे सरलासे भी घृणा थी—"इन्हीं सबने तो मुझे चक्करमें फांसा, अन्यथा मेरा जीवन कितने सुचारु रूपसे चल रहा था। कितनी क्रूर और पिशाचिनी होती है यह जाति। इनके त्रिया-चरित्रोंको कोई भी नहीं समझ सकता।"

हरीशने रमाकान्त बाबूसे कहा—"अगर मेरे भाग्यसे सरला बेहोश न हो जाती, तो उस कुलटाको मेरा जीवन लेनेमें कोई दर्द नहीं लगता, भैया।"

"कैसे लगता, किन्तु कुलटा या पिशाचिनी वे नहीं, हम ही धूर्त हैं। किन्तु हमने कभी ऐसा सोचा नहीं।"

एक दिन सरला भी हरीशके पास आयी। उसकी पलकें सूजी हुई थीं। मुंह कुम्हलाया हुआ था। हरीशके पैरोंपर सिर रखकर उसने क्षमा-याचना की।

"तुम्हारी तो कोई भूल ही नहीं सरला। भूल तो आदिसे अन्त तक मेरी ही थी। मैंने उसका फल भी पा लिया।"

"मैंने उस दिन भूलसे जो आपको अपशब्द कह डाले...!"

"उन्हें तो तुम भूल जाओ सरला, मुझे उन शब्दोंसे कुछ मतलब नहीं। तुम्हें पश्चात्ताप करनेकी आवश्यकता नहीं।"

"किन्तु मैं तो अपनेको आपके चरणोंमें...।"

"किन्तु मुझे अब स्त्री-मात्रसे हार्दिक घृणा है।"

सरला खूब रोयी। सम्भवतः हरीशके पैर भी भीग गये होंगे, किन्तु हरीशका हृदय न पसीजा। हताश वह लौट गयी।

रमाकान्त बाबूने सरला और हरीशकी बातें भी सुनी थीं और उसकी दयनीय दशाको भी देखा था।

"यह तुमने क्या कर डाला, हरीश?"

"मुझे इस जातिसे अब हार्दिक घृणा है, भैया।"

"किन्तु याद रहे, तुम सरलाके कृतज्ञ हो। तुम्हारे जीवनपर अब वास्तवमें उसका अधिकार है। उसकी करुणाजनक अवस्था देखकर भी तुम्हारा हृदय न पसीजा। यह तुम्हारी भ्रान्ति है। हरीश, नारी-सा कोमल हृदय भगवान्ने किसीको नहीं दिया। किन्तु हम और हमारा समाज उन्हें यह सब करनेको बाध्य करते हैं। तुम्हीं सोचो, जिस प्याससे तड़पते हृदयने जीवनमें एक बार भी पानीके दर्शन न किये हों, वह उसे पानेके लिए क्या नहीं करेगा। तुमने कभी अपने विषयमें भी सोचा है। मैं तुम्हारे रङ्ग-ढङ्ग आरम्भसे देख रहा था। किन्तु मैं समझता था कि तुम कवि हो। तुम्हें समाजकी ये ठोकरें लगनी चाहिए, तभी तुम समाजका उद्धार कर सकोगे।"

"किन्तु इस बन्धनमें फंसकर मैं यह कार्य कर सकूंगा?"

"सरलाके लिए तुम्हें यह भी करना पड़ेगा। उसका जीवन बचानेके लिए तुम्हें अपना जीवन भी उसके हाथों सौंपना पड़ेगा। तुम उसके कृतज्ञ हो हरीश !"

अगले दिन अरुणा भाभीने सरलाको बुलाया और सत्यकी साक्षीमें हरीशके हाथोंमें उसका हाथ सौंप दिया। पक्षियोंने मङ्गल-गान किया और सन्ध्याने अपने हाथों उसकी मांगमें सिन्दूर भर दिया।

सरलाकी आंखोंसे टप-टप आंसू चू रहे थे, किन्तु उसका हृदय सुखी था।

———

औद्योगिक शिक्षाकी समस्या

श्री जी० एस० पथिक

भारतवर्ष शिक्षाके क्षेत्रमें नये-नये सिद्धान्त और प्रयोगोंको अपनानेमें असफल रहा। जिन नये सुधारोंने यूरोप और अमेरिकामें शिक्षाकी काया पलट दी, इस देशका उनकी ओर ध्यान तक न गया। भारतीय शिक्षा-पद्धति एक ही ढरेंपर बनी रही। उसमें कभी महत्त्वपूर्ण संस्कार और परिवर्तन नहीं हुए। वह तो एक निर्जीव ढांचेकी तरह बनी हुई है, जिससे निकलनेवाले युवकोंमें युग-निर्माणकी कोई भावना नहीं होती। हम देखते हैं कि जर्मनी और जापानकी शिक्षा-पद्धतिने, अभी पिछले दिनोंमें, अत्यन्त दृढ़निश्चयी और नयी परिस्थितियोंके अनुकूल कार्य करनेवाले युवकोंको तैयार किया। भारतकी शिक्षा-पद्धतिमें इस प्रकारके आमूल परिवर्तन आज तक नहीं हुए। जो शिक्षा अंगरेजीमें दी जाती हैं, उससे इस चालीस करोड़ जनसंख्यावाले देशमें बहुत थोड़े लोग लाभ उठाते हैं। अंगरेजी शिक्षा प्राप्त किये हुए लोगोंकी संख्या अब भी अंगुलियोंपर गिनने लायक है। देशी भाषामें जो शिक्षा दी जाती है, उसका साहित्य इतना उच्च नहीं होता। शिक्षाका एक लक्ष्य है कि हम अपने देश और विदेशोंका ज्ञान प्राप्त करें। जो शिक्षा और विचार विदेशोंके ज्ञानसे वञ्चित करें, वे हमें पददलित बना देते हैं। विदेशोंमें भ्रमण न करने और उनका पूरा ज्ञान न होनेके कारण ही, आर्योंको ग्यारहवीं शताब्दीसे बारहवीं शताब्दी तक निरन्तर हारना पड़ा।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्यक् ज्ञान न रखनेसे देशकी पूर्ण अधोगति होती है। आज हमारी अवनत अवस्थाका कारण इस शिक्षाकी कमी है। देशी भाषामें हमारी शिक्षा सामयिक नहीं है, वह समयका अनुसरण नहीं करती और न वह सबके लिए सुलभ है। इस प्रकार आज जो शिक्षा दी जाती है, वह अधूरी और निष्प्राण है। एक ओर यह अवस्था है, तो दूसरी ओर आज भी कोटि-कोटि भारतवासी निरक्षर बने हुए हैं। उन्हें अपनी मातृभाषा तकका ज्ञान नहीं है। एक ओर करोड़ों निरक्षरोंका समुदाय है, तो दूसरी ओर वे लाखों शिक्षित हैं, जिनके लिए शिक्षा ही अभिशाप बनी हुई है। वर्तमान शिक्षा-पद्धति बढ़ती हुई बेकारीका प्रधान कारण है। यही कारण है कि आज इस देशमें शिक्षितोंकी पूर्ण भर्त्सना होती है। इस शिक्षासे राष्ट्रकी शक्ति नष्ट होती है। आज शिक्षाके आचार्य ही शिक्षितोंकी योग्यताका काम करते हैं। वे देखते हैं कि एक युवकके मातापिताने उसकी शिक्षाके लिए किस-किस उपायसे कितना धन व्यय किया और उसके उपरान्त क्या परिणाम निकला? शिक्षा प्राप्त करनेके बाद उसकी सारी आशायें मिट्टीमें मिल जाती हैं। वह देशके लिए भार-स्वरूप बन जाता है। उसकी शारीरिक अवस्था इतनी निर्बल बन जाती है कि वह किसी परिश्रमके कामके योग्य नहीं रहता। ऐसे समयमें राजनीतिक परवशता आंखोंके सामने नाचती है। उन्हें काम नहीं मिलता और काम न मिलनेपर राज्यसे भी पोषण नहीं मिलता। देशकी विवशता इस बदनसीबीको दुगुना कर देती है। आज किसी भी सभ्य देशमें शिक्षित युवक बेकार नहीं रहते। उन देशोंमें काम न मिलनेपर उनके रक्षण-पोषणका भार राज्यपर होता है। इतना ही नहीं, उन देशोंमें वृद्ध, विधवायें और अवसरप्राप्त लोग भिन्न-भिन्न फण्डोंसे सहायता पाते हैं। बेकारीके बीमा फण्ड और राज्यके बीसों प्रकारके फण्ड हैं। समुन्नत

इंगलैण्ड ही प्रतिवर्ष इन फण्डों द्वारा लाखों पौण्ड व्यय करता है। ग्रेट ब्रिटेनके लार्ड हाई चान्सलर भी अवसर प्राप्त करनेपर अपने शेष जीवनके लिए पेन्शन-फण्डसे सहायता पाते हैं। यह तो स्वाधीन देशकी रूप-रेखा है। वहां कोई क्यों अशिक्षित रहेगा और क्यों बेकार रहेगा। आदर्श राज्यमें ऐसी दोनों ही बातें नहीं होतीं। किसी स्वाधीन देशमें ऐसी निकम्मी शिक्षा कभी नहीं दी जाती कि जिससे युवक बेकार रहें। आज उन्नत देशोंमें शिक्षा-पद्धतिमें नित्य नये परिवर्तन होते हैं। उनका हर समय ध्यान शिक्षाकी ओर ही रहता है। वहां हर समय तत्कालीन परिस्थितियोंके अनुसार परिवर्तन होनेमें देर नहीं की जाती।

पर इस देशमें शिक्षाकी समस्या बड़ी जटिल है। उसे हल करते समय अनेक रोड़े और विघ्न-बाधायें उपस्थित होती हैं। जिस जहरने हमारे राजनीतिक क्षेत्रको नहीं छोड़ा, उससे यह क्षेत्र कब बच सकता था। यह कैसा दुर्भाग्य है कि लोग चाहते हैं कि शिक्षापर भी इस देशके गौरव और संस्कारोंका प्रभाव न पड़े। शायद ही किसी देशमें ऐसी विपन्न परिस्थिति होगी। क्या रूस, चीन और अमेरिकाके अल्पमतवाले लोग उस देशके संस्कार और भावोंको नहीं अपनाते? पर इस देशमें अल्पमतवाले चाहते हैं कि इस देशके संस्कार मिट जायं। जब संस्कार मिट गये और गौरव चला गया, तब हम कहां रहे और हमारा देश कहां रहा। पर आज यही हो रहा है। बङ्गालमें शिक्षाकी नयी व्यवस्था इसी भावनासे हो रही है। हैदराबाद, पञ्जाब और सिन्धमें हर कदमपर यही हो रहा हैं। विद्या-मन्दिर-योजना और वर्धाकी शिक्षा-पद्धतिका विरोध होता है, पर हैदराबाद और बङ्गालकी शिक्षा-पद्धति स्वीकार करनेके लिए मजबूर किया जाता है। अल्पमत और बहुमत संसारके सभी देशोंमें हैं। पर वहां धर्म और जाति विभिन्न होनेपर भी शिक्षाका एक आदर्श है और एक व्यवस्था है। इस देशमें पैदा होनेवाली सन्तान काशी और प्रयागको न समझें और राम और सीताको न जानें? यदि भारतवासी भारतवर्षके इतिवृत्त और गौरवका स्मरण न करें, तो उसे क्या दूसरे देशवाले करने आयेंगे? ईसाई हों या मुसलमान, उन्हें इस देशमें रहनेपर इस देशका स्मरण करना ही पड़ेगा। एक भारतीय कट्टर मुसलमानको भी श्रीमद्भगवतगीताका ज्ञान प्राप्त करना बेजा न होगा। जब वह विदेशोंमें जायेगा, तो इस देशमें रहनेके कारण लोग उससे पूछेंगे कि वह भगवद्गीता जानता है। उसका यह उत्तर कितना गौरवहीन और देशप्रेमसे रहित होगा कि वह मुसलमान होनेके कारण गीता नहीं जानता। कालिदास और राम तो भारतवर्ष हैं और भारतवर्ष कालिदास और राम हैं। यह देश अबूबकरकी जन्म-भूमि नहीं है। उसका स्मरण तो हम एक अध्ययनके लिए सभी कोई कर सकते हैं। इसलिए भारतवर्षकी आत्माको निकालकर जो शिक्षा दी जायेगी, वह हमें मृतप्राय बना देगी। एक बार देश कुछ और समयके लिए गुलाम रह सकता है, पर हम अपनी शिक्षाका ध्येय त्याग नहीं सकते। यदि हमारी शिक्षा हमारे संस्कारोंसे युक्त बनी रही, तो हमारी स्वतन्त्रताको संसारकी कोई भी शक्ति नहीं छीन सकती। हम अपने ही जनपदोंके गौरव और संस्कारयुक्त शिक्षा प्राप्त करनेपर स्वाधीन होकर ही रहेंगे। अतएव शिक्षा और भाषाकी समस्या हल करते समय हम अपने जीवनके लिए और अपने देशके अस्तित्वके लिए महान् लक्ष्यसे कदापि विचलित न होंगे।

हमें अपनी शिक्षा-पद्धतिको उपयोगी भी बनाना है। प्लेटोसे स्पेन्सर तक सभी विद्वानोंने शिक्षाके सम्बन्धमें इस महत्त्वपूर्ण बात पर जोर दिया है। बालकों और युवकोंको ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे वे उपयोगी काम कर सकें। उन्हें किसी-न-किसी उपयोगी कामकी अवश्य शिक्षा दी जाय। किसी-न-किसी हुनरका ज्ञान होना प्रत्येक व्यक्तिके लिए अनिवार्य होना चाहिए। यही सिद्धान्त है, जिसपर आज संसारके उन्नत देश चल रहे हैं। सभी प्रगतिशील देशोंके स्कूल और कालेजोंका सम्बन्ध भिन्न-भिन्न उद्योग-धन्धोंसे होता है। उन देशोंमें जितना ही विद्यार्थी शिक्षामें आगे बढ़ता है, उसे उतना ही धन्धेसे जकड़ा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह विद्यार्थी अपनी शिक्षा समाप्त करनेपर केवल सैद्धान्तिक ज्ञानमें ही निपुण नहीं होता; अपितु धन्धेका व्यावहारिक ज्ञान भी भलीभांति प्राप्त करता है। वह अपनी शिक्षासे निकलते ही धन्धेमें सफलतापूर्वक काम करने लगता है। इस अवस्थामें उसे दर-दर काम पानेके लिए नहीं भटकना पड़ता। उन देशोंके स्कूल और कालेज उतने ही लड़कोंको भर्ती करते हैं, जितनोंको वे काम दिला सकते हैं। शिक्षा

प्राप्त करनेके कालमें ही विद्यार्थीगण निश्चयरूपसे जान जाते हैं कि उन्हें कौन-सा काम मिलेगा और बहुत अंशोंमें उनका काम पहलेसे ही लग जाता है। आवश्यकता है कि हमारे शिक्षा-क्रममें आरम्भसे ही ऐसी व्यवस्था हो। प्रारम्भिक नहीं, तो माध्यमिक शिक्षासे ही छात्रोंको औद्योगिक शिक्षा दी जाय। छात्रोंकी यह शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए।

भारतवर्ष आज ६० वर्षसे औद्योगिक शिक्षाकी समस्यापर चिन्तन कर रहा है। सन् १८८२ में भारतीय शिक्षण-समितिका निर्माण हुआ था। उसमें देशके विज्ञ पुरुषोंकी गवाहियां ली गयी थीं। उन सबका मत यह था कि आज स्कूलोंमें जो माध्यमिक शिक्षा दी जाती है, उसमें छात्रोंका ध्यान यूनीवर्सिटीकी ओर आकर्षित किया जाता है। नतीजा यह होता है कि वे औद्योगिक शिक्षासे वञ्चित रह जाते हैं। यही कारण है कि आज वर्तमान यूरोपमें जो नयी-नयी व्यवस्थायें हो रही हैं, उन्हें यह देश नहीं अपना पाता। यह बात महसूस की गयी कि भारतवर्षके लिए यह वास्तविक आवश्यकता है कि वह शिक्षित छात्रोंको व्यापार और उद्योग-धन्धोंके लिए योग्य बनाये। जब वे मैट्रिक पास करें, तब वे किसी-न-किसी व्यापार या उद्योग-धन्धेमें व्यावहारिक दृष्टिसे काम करनेमें कुशल हों। उन्हें व्यापार-धन्धेमें कोई नयी बात न सीखनी पड़े। छात्रोंको प्रमाणपत्र देते समय उनके कामका खयाल रखा जाय। यूनीवर्सिटी और कालेजोंमें ऐसे फण्ड हों कि जब तक छात्रोंको काम न मिले, तब तक उन्हें सहायता दी जाय। जितनी शिक्षा दी जाय, उतना ही काम पैदा किया जाय। निरक्षर और अशिक्षित रहना भी पाप है। निरक्षर तो कोई न रहने पाये। शिक्षा मनुष्यको मनुष्य बनाती है; अन्यथा पशु और मनुष्यमें क्या भेद है। राज्यका सर्वप्रथम कर्तव्य है कि वह किसीको अशिक्षित न रहने दे। भारतवर्षमें सबके लिए समान रूपसे शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। इसके बाद उसका कर्तव्य होता है कि जो माध्यमिक और उच्च शिक्षा प्राप्त करें, वे कभी बेकार न रहने पाय। इसके लिए देशको क्रान्तिकारी कार्यक्रमकी आवश्यकता है। ऐसी नयी व्यवस्था हो कि माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करनेके उपरान्त छात्रोंको काम मिले। अतएव, प्रत्येक शिक्षण संस्थाके साथ व्यापारिक फर्मों और कारखानोंका सम्बन्ध हो। जितने भी छात्र शिक्षा प्राप्त करें, वे सब व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करनेके लिए भेजे जायं।

भारतवर्ष औद्योगी-करणमें अग्रसर हो रहा है। यदि शिक्षा संस्थाओंपर प्रतिबन्ध लगा दिया जाय कि उनके छात्रोंको कोई-न-कोई काम सीखना पड़ेगा, तो वे किसी भी लाइनमें जा सकते हैं। कृषिका ही बहुत विस्तृत क्षेत्र है। नये ढङ्गसे काम होनेपर इस क्षेत्रमें शिक्षितोंके लिए काफी काम है। इसके सिवा मेकेनिकल, इञ्जीनियरिंग, उद्योग-धन्धे, व्यापार, सेना, नेव्ही, हवाई सेना, व्यापारिक जहाजी धन्धा और अन्य छोटे-छोटे धन्धे हैं, जहां लोगोंके लिए काफी क्षेत्र पड़ा है। इन धन्धोंमें इस देशके सभी पुत्रोंको योग्यताके आधारपर काम मिल सकता है। हमारे कामका मापदण्ड प्रान्तीयता और जातीयताके स्थानपर योग्यता होना चाहिए।

शिक्षाके साथ ऐसे उद्योग-धन्धे सिखाये जायं, जिनसे छात्र वास्तविक लाभ उठायें। औद्योगिक शिक्षा भी केवल सैद्धान्तिक न हो। व्यावहारिक शिक्षा दी जाय और उसके अनुसार छात्रोंका शारीरिक गठन भी हो। व्यापारिक और औद्योगिक शिक्षा प्राप्त करनेवाले छात्रोंमें व्यावहारिक योग्यता अवश्य होनी चाहिए। ग्रामोंके स्कूलोंमें ग्रामीण धन्धे सिखाये जायं। छोटे-छोटे शहरोंके स्कूलोंमें नये-नये धन्धे सिखाये जायं। इन स्कूलोंमें छात्रोंको चमड़ेका काम, कागज बनाना, कलम और पेन्सिल बनाना, फल सुखाना, छाता बनाना, बर्तन तैयार करना, खिलौने बनाना और साबुन, क्लिप-पिन, बटन आदि बनानेके सैकड़ों धन्धे हैं, जिन्हें सीखा जा सकता है और वहीं ये धन्धे खोले जा सकते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि छात्रोंकी बुद्धि किसी-न-किसी उपयोगी धन्धेकी ओर लगायी जाय। इस देशके छात्र कार्य-क्षेत्रमें आते ही औद्योगिक और आर्थिक, दोनों ही दृष्टियोंसे सफल हों।

औद्योगिक कारखानोंमें डाइरेक्टर और व्यवस्था करनेवालोंका दल है। इसमें सेक्रेटरी, जेनरल मैनेजर और विभागके मैनेजर आदि शामिल हैं। कार्य-सञ्चालनके अन्य व्यक्ति भी इसी दलमें आते हैं। इञ्जीनियर, केमिस्ट और एक्सपर्ट आदि भिन्न-भिन्न धन्धोंके अनुसार काम पाते हैं। इसके बाद निरीक्षण दल है, जिसमें फोरमैन और चार्ज

हेड आदि भी शामिल हैं। आपरेटर—और मजदूरोंमें होशियार—सीखे हुए मजदूर, बिना सीखे हुए मजदूर और आधे सीखे हुए मजदूर आदि हैं। इन सबकी भिन्न-भिन्न प्रकारसे शिक्षाकी व्यवस्था होनी चाहिए। जुदे-जुदे स्कूल हों, जहां इन विषयोंकी शिक्षा दी जाय। फिर ये विद्यालय फैक्टरियोंसे सम्बन्ध रखें। इन स्कूलोंके छात्र कारखानोंमें भी काम सीखने जायं। कारखानोंमें इन्हें काम पूरी दिलचस्पीसे सिखाया जाय। इस प्रकार इन धन्धोंके लिए स्कूल, टेक्नीकल कालेज और पोस्ट ग्रेजुएट इन्स्टीट्यूशन हों। आठवें क्लाससे ही साधारण औद्योगिक शिक्षा आरम्भ की जाय। भारत-सरकारका कर्तव्य है कि वह इस सम्बन्धकी विस्तृत नीति निर्धारित करे। फिर प्रान्तीय सरकारोंका कार्य होगा कि वे पूर्ण रूपसे योजनायें तैयार करें। प्रत्येक प्रान्तकी भिन्न-भिन्न आवश्यकतायें हैं, और वे ही इस सम्बन्धमें वास्तविक निश्चय कर सकती हैं।

औद्योगिक स्कूलोंमें बिलकुल नयेसे नये औजार और कलें होनी चाहिए। इसके सिवा प्रत्येक धन्धेमें हर समय जो परिवर्तन होते हैं, नयी-नयी खोज होती हैं, उन सबकी जानकारी स्कूलोंको होनी चाहिए। नये-नये परिवर्तन उत्पादनके सम्बन्धमें हों, उन्हींके अनुसार शिक्षा-क्रममें भी परिवर्तन हों। इसके सिवा जो नयी-नयी चीजें बनें, उनकी ओर भी ध्यान रखा जाय। फिर इन स्कूलों और कालेजोंको आर्थिक दृष्टिकोणपर भी नजर रखना चाहिए। प्रत्येक धन्धेकी आर्थिक स्थितिका ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए प्रत्येक प्रान्तमें एक परामर्शदात्री समिति हो, उसका कर्तव्य होगा कि इन औद्योगिक संस्थाओंका सम्पर्क व्यापारिक क्षेत्रोंसे रखे। देशकी व्यापारी संस्थायें, व्यापारिक फर्म और औद्योगिक संस्थायें आदि सबका स्कूल और कालेजोंसे सम्पर्क हो। इससे पर्यवेक्षण भी समय-समयपर होगा कि किस धन्धेकी कैसी अवस्था है और उसमें कितने आदमियोंकी जरूरत है। सन् १९३७ में औद्योगिक शिक्षाके लिए जो समिति बैठी थी, उसने यह प्रकट किया था कि ऐसी सम्पूर्ण व्यवस्था होना चाहिए, जिससे देशके उद्योग-धन्धे और व्यापारका शिक्षासे सम्बन्ध कायम रहे। इसकी पूर्ति प्रत्येक प्रान्तमें सरकारी एडवाइज़री कौन्सिलों द्वारा हो सकती है। इन कौन्सिलोंमें शिक्षा-विभागके डाइरेक्टर, उद्योग-धन्धोंके डाइरेक्टर, दो या तीन औद्योगिक विद्यालयोंके प्रिन्सिपल और व्यापारिक क्षेत्रकी ओरसे सरकार कुछ आदमियोंको चुनकर रखे। व्यापारियोंका चुनाव व्यापारी समाजके प्रतिनिधित्वकी दृष्टिसे न हो, बल्कि उस क्षेत्रके ऐसे व्यक्ति लिये जायं, जिन्हें भिन्न-भिन्न धन्धोंके सम्बन्धमें अच्छा ज्ञान और अनुभव हो। इस प्रकार व्यापारी वर्गके पुरुष व्यापार और उद्योग-धन्धोंकी दृष्टिसे शिक्षामें आवश्यकतायें प्रकट करेंगे, शिक्षा-क्षेत्रके विशेषज्ञ शिक्षण-पद्धतिपर अपने मत प्रकट करेंगे और राजकीय अधिकारी शासन और आर्थिक दृष्टिसे अपना परामर्श देंगे। इसके साथ ही छात्रोंके व्यापारिक फर्मों और कारखानोंमें एप्रिण्टिसके रूपमें काम करनेपर उनकी सब दिक्कतें दूर हो जायंगी। ज्यों-ज्यों नवयुवकोंको उद्योग-धन्धोंमें काम मिलता जायेगा, त्यों-त्यों वे उसका महत्त्व अनुभव करेंगे और सरकारी नौकरियोंपर ध्यान न देंगे।

अतएव औद्योगिक शिक्षा जितनी आवश्यक है, औद्योगिक परामर्शकी भी उतनी ही आवश्यकता है। इस परामर्शसे छात्रगण अपने लिए उपयुक्त धन्धा चुन सकेंगे। इस औद्योगिक परामर्शपर जिनेवाके अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभागके डाइरेक्टर श्री हैरोल्ड बटलरने प्रकट किया कि यदि किसी उद्योगके सीखनेपर किसी युवककी आशाओंपर तुषार पड़ गया, और उसे उपार्जन करनेका अवसर न मिला, तो उसका सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है। इसलिए उपयुक्त धन्धोंका चुनाव होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके सिवा प्रत्येक व्यक्तिकी स्थिति भिन्न है। प्रत्येक व्यक्तिकी योग्यता, धारणा-शक्ति, झुकाव, प्रकृति और योग्यता तथा शारीरिक शक्तिके अनुसार कामका चुनाव वाञ्छनीय है। किसी एक धन्धेमें जितनी योग्यताकी आवश्यकता है, उसे सीखनेवाले छात्रमें भी उतनी ही होनी चाहिए। यदि उसमें कम योग्यता होगी, तो वह उसके अयोग्य होगा, और यदि अधिक होगी, तो उसकी अवशेष शक्ति बेकार जायगी। मेकनिकल, वैज्ञानिक और तैयार करने तथा बोलनेकी योग्यतापर भी ध्यान देना चाहिए। बातचीतकी योग्यता भी अत्यन्त आवश्यक है। औद्योगिक धन्धोंके लिए मेकनिकल योग्यता अत्यन्त आवश्यक है। एक व्यक्ति किसी धन्धेके लिए सर्वथा योग्य है, किन्तु उसकी

प्रवृत्ति उस ओर नहीं है, तो वह उसमें सफलता नहीं प्राप्त करेगा। यदि इन सब धन्धोंके लिए युवकोंको आरम्भसे परामर्श मिले, तो वे अपने काममें बड़ा आनन्द पायेंगे और उद्योग-धन्धोंकी भी प्रगति होगी। इस अभिवृद्धिसे राष्ट्र भी निश्चय लाभ उठायेगा। विदेशोंमें इस सम्बन्धके विद्यालय हैं, जो छात्रोंकी योग्यताके आधारपर निश्चय करते हैं। इण्डस्ट्रियल सायकोलाजीके नेशनल इन्स्टीट्यूटने चुनावके सम्बन्धमें छात्रोंकी बौद्धिक योग्यता, प्रकृति और चरित्रपर विशेष ध्यान दिया है। अमेरिकामें छात्रोंकी प्रवृत्तिपर अधिक ध्यान देते हैं। इसकी उपयोगितापर विचार कर इंगलैण्डमें उच्च शिक्षाके लिए इस प्रवृत्तिकी जानकारीके लिए पृथक् व्यवस्था की गयी है। वहां छात्रोंकी जितनी ही प्रवृत्तियां हैं, उतनी ही पृथक्-पृथक् व्यवस्थायें की जाती हैं। इञ्जिनोंके टुकड़े, मोटरोंके हिस्से, रेडियो सेट, छपाईका काम और छोटे-छोटे धन्धोंकी चीजें, सब संग्रह की जाती हैं। छात्रगण इन वस्तुओंके कमरेमें जाते हैं और इन्हें देखते हैं। उनके साथ उनके अध्यापक भी होते हैं और वे उसी समय छात्रोंकी प्रवृत्तिकी जानकारी प्राप्त करते हैं।

इसके सिवा साधारण शिक्षा प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों और ग्रामीणोंके लिए औद्योगिक शिक्षाकी बड़ी आवश्यकता है। न्यूयार्कमें कालेजोंसे नीची शिक्षा प्राप्त करनेवाले छात्रोंके लिए औद्योगिक विद्यालय हैं। इन विद्यालयोंमें दो लाखसे अधिक छात्र प्रतिवर्ष शिक्षा प्राप्त करते हैं। इस प्रकारकी व्यवस्था समस्त यूनाइटेड स्टेट्समें है। इंगलैण्ड, जर्मनी, इटली और रूसने अपनी-अपनी आवश्यकताओंके अनुसार औद्योगिक शिक्षाकी व्यवस्था की हैं। उन देशोंमें प्राथमिक इण्डस्ट्रियल स्कूल, ट्रेड स्कूल, टेक्नीकल स्कूल, वोकेशनल व्यापारिक स्कूल, कोआपरेटिव स्कूल, एप्रिण्टिस ट्रेनिङ्ग स्कूल, कलाकौशलके स्कूल और बीसियों प्रकारके स्कूल हैं। पर दुर्भाग्य है कि इस देशमें इन सब बातोंका अभाव है। भारतवर्षमें खेतीका धन्धा बहुत बड़ा है। इस धन्धेमें गोपालन, विशुद्ध दूध, घी, मक्खनके निर्माण, अनेक प्रकारके फलोंके और कृषिजन्य पदार्थोंके उत्पादन, संग्रह और व्यापारके विषयमें बहुत अधिक शिक्षणकी आवश्यकता है। इस धन्धेके छात्र काम सीखनेके बाद उनका सफलतापूर्वक सञ्चालन कर सकें, इसकी भी जरूरत है। कृषि, कोआपरेटिव और मार्केटिङ्ग आदिके छोटे-छोटे बैङ्कोंकी बड़ी आवश्यकता है। माल संग्रह करने और बेचनेवाले सङ्गठनोंकी भी आवश्यकता है। इस देशमें इन सब बातोंका होना अनिवार्य है। जो व्यापारिक शिक्षा सम्प्रति व्यापारिक कालेजोंमें दी जाती है, वह पर्याप्त नहीं है। व्यापारिक शिक्षा प्राप्त करनेवाले छात्रोंके लिए व्यावहारिक शिक्षाकी व्यवस्था होनी चाहिए। बैङ्किङ्ग सीखनेवाले बैङ्कोंमें छोटेसे बड़ा सब काम सीखें और उसी प्रकार कम्पनी प्रेक्टिसका अध्ययन करनेवाले छात्रोंको कम्पनियोंमें काम सीखनेके लिए भेजा जाय। माल खरीदने और बेचनेके स्थानोंमें भी उन्हें भेजा जाय। इससे केवल वे नौकरियोंकी ओर ही न दौड़ेंगे, अपितु वे अपने स्वतन्त्र धन्धे भी चला सकेंगे।

कुछ लोग कहते हैं कि देशमें उद्योग-धन्धोंके अभावमें औद्योगिक शिक्षा भी बेकारी बढ़ानेका साधन बनेगी। पर हमें ऐसा क्यों करना चाहिए। हमें ऐसी भी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे कि इस देशके युवक थोड़ी पूंजीसे स्वतन्त्र धन्धा चला सकें। इस देशकी परिस्थिति यूरोप और अमेरिकासे जुदा है। हमें जापानके समान छोटे-छोटे कारखानोंपर अधिक ध्यान देना होगा। इससे भारतकी जनसंख्याका वास्तविक उपयोग हो सकेगा। इसके सिवा भारतवर्षमें नये-नये धन्धे खुलते जा रहे हैं और नये आर्थिक सङ्गठनके काम सफलतापूर्वक करनेपर अन्य अनेक छोटे-बड़े धन्धोंको जन्म मिलेगा। अभी इस देशमें साधन सर्वत्र बिखरे पड़े हैं और उनका कोई उपयोग नहीं हो रहा है। देशके लिए यह चेतनेका समय है। देशके नौनिहाल युवक उठ खड़े हों और वे यह सोचें कि ईश्वरने उन्हें यह अनुपम अवसर प्रदान किया है। युवकोंको अपनी शक्ति और बुद्धिका सदुपयोग करना चाहिए। वे पूरी गम्भीरतासे निश्चय करें और कार्य-क्षेत्रमें जुट पड़ें। अब देरीका समय नहीं है। वे अपने लिए धन्धे चुनें, उनमें योग्यता प्राप्त करें और काममें जुट पड़ें। फिर उन्हें क्यों असफलता होगी? भारतवर्षके सामने काफी क्षेत्र पड़ा है।



अनीता

श्री लेखराम

शामका समय है। हल्का अंधेरा चारों तरफ छा रहा है। दूर-दूर आसमानमें थोड़ी-बहुत लाली इधर-उधर बिखरी-सी दिखाई देती है। पश्चिममें मकानोंकी ओटमें सूर्य छिप गया है और उसकी सुनहरी रोशनी एकाध ऊंचे मकानकी चोटीपर उसे, चमकाती हुई, पड़ रही है। दफ्तरसे आ अभी भोजन कर गोपाल बाहर बैठा है और अब इस प्रतीक्षामें है कि अनीता आये और उससे दो-चार बातें करे और अपने हाथसे पान लगाकर उसे खिला जाये।

लेकिन अनीताके आनेमें अभी देर है। वह पहले भोजन करेगी। इसके बाद बर्तन मांजेगी और फिर चौका आदि धो कपड़े बदलेगी। लगभग आध घण्टा इस सबमें लग जायेगा। तब वह पान लगा, तश्तरीमें सजा, मुस्कुराती हुई, हां, मुस्कुराती हुई, आयेगी।

यह सब वक्त गोपालको अकेले अपने-आप काटना होता है। प्रतिदिन इस समयको काटनेके लिए और अपना जी लगाये रखनेके लिए वह एकाध कविता या कहानीकी पुस्तक अपने साथ ले आता है और बिजली खोल उसे पढ़ने लगता है। अथवा पढ़नेकी रुचि न होनेपर वह बरामदेमें बैठे-बैठे सूर्यके छिपनेको देखा करता है। प्रारम्भसे ही इस दृश्यको देखनेमें उसकी बड़ी रुचि है। शामके समय तांबे-से लाल हो रहे बादल उसे देखनेमें बहुत भले मालूम पड़ते हैं और फिर कहीं ये सूर्यके प्रकाशसे चमक इधर-उधर, बीच-बीचमें सुनहरे हो रहे हों, तब इनकी शोभाका क्या कहना। इन्हें देखते-देखते वह थकता नहीं।

अपनी इस नित्यकी आदतके अनुसार वह आज भी पुस्तक ले आया है, लेकिन उसे आज इसमें दिलचस्पी नहीं महसूस हो रही है और इसे उसने पास ही जमीनपर पटक दिया है। सन्ध्याकालीन शोभाकी तरफ भी आज उसका ध्यान न जाने क्यों आकर्षित नहीं हो रहा है और अब लाचार हो उसने अपनी आंखें मूंद ली हैं और सिरपर हाथ धरे वह सोचमें डूबा हुआ कुर्सीपर बैठा है। उसके थके दिमागमें, जो शायद आज बहुत ही अधिक थक गया है और स्फूर्ति, चञ्चलता और कल्लोलका भूखा है, अनीताकी तसवीर अचानक ही गहरी हो छप गयी है।

स्त्रियां सदैवसे उसके लिए उपेक्षाकी वस्तु रही हैं। इन्हें व्यावहारिक लाभकी चीजके अतिरिक्त उसने कभी कुछ नहीं समझा। रोटी पकाकर खिला देना, घर-गृहस्थीकी देख-भाल तथा रातमें पास सो रहनेके अतिरिक्त स्त्रीका उसके लिए कुछ भी मूल्य नहीं। इसलिए इन तीन वर्षोंके विवाहित जीवनमें अनीताके बारेमें एक बार भी इससे पूर्व उसने विचार करनेका कष्ट नहीं किया। उसे ऐसी आवश्यकता ही नहीं महसूस हुई। लेकिन आज सहसा उसमें एक नयी चाह-सी पैदा हो गयी है और अनीता उसके दिलमें उथल-पुथल मचाती हुई स्पष्ट वहां चित्रित हो गयी है।

क्रमशः अनीताके अनेकों चित्र आ-आकर उसकी आंखोंके आगे घूमते जा रहे हैं। आकर्षणसे भरे ये चित्र उसे बरबस अपनी ओर खींच रहे हैं और धीरे-धीरे अनीताके बारेमें अधिकसे अधिक सोचनेको मजबूर-से करते प्रतीत होते हैं। वह इन चित्रोंमें डूबा जा रहा है और इन्हें अपने दिमागसे निकालनेमें अपने आपको असमर्थ महसूस कर अब एक व्यवस्था, क्रमसे सजा इन्हें देख-सा रहा प्रतीत होता है। बाइसकोपके चल-चित्रोंकी नाईं ये बोलते-चालते, हिलते-डुलते चित्र धीरे-धीरे उसके हृदय-पटलपर उमड़ते चले आ रहे हैं।

तीन साल, आजसे लगभग तीन साल पूर्वकी अनीताकी तसवीर गोपालके हृदय-पटलपर बिलकुल स्पष्ट हो चित्रित हो गयी है। इस चित्रका यदि वह नामकरण करे, तो 'सिकुड़ी-अनीता' रखना पसन्द करेगा। यह उस समयका चित्र है, जब वह नयी-नयी गोपालके घरमें आयी है। गोपालको देख वह डरी-डरी, सहमी हुई, दीखती है और भयसे व्याकुल हो वह सिकुड़ी-सिकुड़ी जाती है। गोपाल देखता है कि उसमें लज्जा है, एक डरावना भय है और सङ्कोच भी है। लेकिन इस सबके बावजूद भी है वह अल्हड़ ही। इधर-उधर घरमें छलांगें भरते हुए उसकी पगध्वनि

रह-रहकर गोपालके कानोंमें पड़ जाती है। 'कैसी फूहड़ लड़की है?' गोपाल कह उठता है। लेकिन तभी उसके कानोंमें अनीताकी खुली हुई, स्वच्छ, सुराहीके पानीकी तरह रिसती हुई, खिलखिलाहटकी ध्वनि बज उठती है और वह खामोश, चुपचाप, ठगा-सा बैठा रह जाता है। उसके दिलमें होता है कि वह नाम लेकर उसको पुकारे, अपने पास बुलाकर बैठाये, कुछ देर उससे बातें करे, फिर उसको बुरी तरह गुदगुदाये और जब वह पहलेके समान मीठी-मीठी, तूफानी हंसी हंसे, तब वह भी उसका साथ दे—उसके साथ खिलकर खिलखिलाये, खेले, हंसे, नाचे, कूदे और ऊधम मचाये।

लेकिन गोपाल देखता है कि तभी उसका सङ्कोच बीचमें आ जाता है। इच्छा होते हुए भी वह अनीताको पुकार नहीं सकता। न जाने कैसी एक व्यावहारिकताका उसके दिलमें समावेश हो उठता है। उसके शब्द उसके होठोंपर आकर रुक जाते हैं और सङ्कोचमें भरा वह बैठा रह जाता है और चुपचाप उस दूरसे आती मीठी हंसीको अपने कानों-से पिया करता है। तब उसकी इच्छा होती है कि अनीता बराबर हंसती चली जाये, बिना रुके। और उसकी वह खिलखिलाहट विस्तृत होती हुई कभी भी समाप्त न हो। इस सुखमें डूब वह अपनी आंख मींच लेता है और सब कुछ भूल जाता है। अपने आपमें मस्त हो वह अनीता और उसकी खिलखिलाहटको भी भूल-सा जाता प्रतीत होता है।

कुछ क्षण कुर्सीपर आंख मींचकर बैठे यों ही बीत जाते हैं। हठात् अनीताकी एक दूसरी तसवीर धीरे-धीरे आ गोपालके मस्तिष्कमें चित्रित हो जाती है। यह तसवीर पहली तसवीरके छः मास बादकी है। गोपाल देखता है कि अनीताकी सिकुड़न अब पहलेसे हलकी पड़ गयी है। उसका भय और सङ्कोच भी उसे कुछ कम हो गया प्रतीत होता है। एक हल्की शरारत उसके चेहरेपर नाचती स्पष्ट दीख पड़ती है। वह देखता है कि घरके किसी काममें लगी अनीता उसके सामनेसे गुजर रही है। वह पाता है कि उसकी झुकी हुई नीची नजर कनखियोंसे उसीकी तरफ ताक रही है। इन आंखोंमें थोड़ा भय, कुछ सङ्कोच और अधिक हिस्सा शरारत, चञ्चलता और शोखीका है। उसकी आंखें तरल हो, नशेसे झुकी हुई, मधुर हंसती हुई उसे दिखाई देती हैं, और उसके चेहरेपर चिकनाहट, स्निग्धता और एक आकर्षण-सा वह बिलकुल स्पष्ट महसूस करता है। वह जान-बूझकर पांवोंको मस्तीसे पटक, धीरे-धीरे चल, अपनी पायलोंसे आवाज करती दीख पड़ती है, ताकि इस आवाजसे खिंचकर गोपाल उसकी तरफ देखे और उसकी उससे आंखें चार हों।

सचमुच ही, इस आवाजसे खिंच गोपाल उधर ही देखता रह जाता है। दोनोंकी आंखें एक-दूसरेके साथ बंधी-सी दीखती हैं। बहुत देर तक और काफी दूर तक वे साथ-साथ चलती चली जाती हैं। इस बीच धोतीका पल्ला ठीक करने या पांव खुजलानेके बहानेसे एकाध क्षण ठिठककर अनीता खड़ी भी हो जाती है और गोपालको उसकी आंखोंकी मादकता, शरारत और चञ्चलता प्रतिक्षण बढ़ती-सी जाती प्रतीत होती है। यह उसे अपनी तरफ अधिकाधिक आकृष्ट कर लेती है। उसकी इच्छा होती है कि वह उठ खड़ा हो और अनीताका पीछा करे। पीछेसे जा उसकी उन आंखोंको अपने हाथोंसे कसकर मूंद ले, उनको पोरोंसे धीरे-धीरे छुए और उनपर एक प्रगाढ़ चुम्बन अङ्कित कर दे।

लेकिन वह बैठा रह जाता है। यह सब करनेकी अपनेमें न जाने क्यों गोपाल शक्ति नहीं पाता। उसे लगता है, जैसे यह आवश्यक भी नहीं और न इसके लिए वह अपने पास अवकाश ही पाता है। बैठे-बैठे वह अनीताकी ओर देखता चला जाता है। कुछ ही क्षणमें, काममें फंसी होनेके कारण, वह उसकी आंखोंसे ओझल हो जाती है। उसकी आंखें वहांसे लौट उसके भीतर जा पहुंचती हैं और वह अपने-आपको एक तृष्णा, भूख और चाहसे भरा पाता है। उसके होंठ सूख रहे होते हैं और रस-प्राप्तिके लिए एक-दूसरेसे सट जाते हैं। वह उन्हें चूसने लगता है और परेशान दीख पड़ता है।

तभी अनीता एक नये रूपमें उसके सामने आ खड़ी होती है। उसे प्रतीत होता है, यह बदली-सी, परिवर्तित अनीता है। लज्जा और सङ्कोच वह अब भी उसमें पाता है, लेकिन अब पहलेके समान गोपालसे वह डरी-डरी नहीं प्रतीत होती। उसमें भयका रञ्चमात्र भी अवशेष नहीं रह गया है। इसके विपरीत अब वह गोपालकी शक्तिमें, बुद्धिमें और दृढ़तामें विश्वास-सा करती प्रतीत होती है और उसको ही अपना आश्रय, अवलम्ब, मान बिलकुल निर्भय और निश्चिन्त हो गयी है। गोपाल उसके लिए खौफनाक

जीव न बन एक सहारा बन गया है। किसी प्रकारकी भी कठिनाई उपस्थित होनेपर वह पाता है कि अनीताके नेत्र व्याकुलता, बेचैनी और जिज्ञासासे भरे उसकी तरफ उठ जाते हैं और उन पिघली हुई, उमड़ रही आंखोंमें कुछ मूक याचना रहती है। वह देखता है कि बेलके समान उसका सहारा पा, अनीता, धीरे-धीरे उसके चारों ओर लिपटी जा रही है और उसे जकड़ती चली जा रही है और वह वृक्षकी नाईं स्थिर, गम्भीर और दृढ़ खड़ा हुआ है।

कष्टदायक प्रतीत होनेके स्थानपर गोपालको अनीताका इस प्रकार लिपटना भला ही लगता प्रतीत हुआ। इस प्रकार दृढ़ खड़े रहकर तथा अनीताका अवलम्ब बन, उसके मनके भीतर ही भीतर एक सुखकी, सन्तोषकी, लहर दौड़ गयी। यह उसमें बल, साहस और आत्माभिमानकी सृष्टि करती उसे दीख पड़ने लगी। उसे महसूस होने लगा कि उसके भीतर कुछ जाग खड़ा हुआ है, उसका पुरुषत्व इससे फुफकारता नाच उठा है। शरणागत नारीको देख-देख यह पौरुष और भी अधिक लहरियां मारने लगा है।

तभी वह यह भी महसूस करने लगा कि उसका आश्रय पा न सिर्फ अनीताने अपने भयसे मुक्ति पायी है, बल्कि वह भी उसकी छत्रछायामें रह अपने सम्बन्धमें ज्यादा निश्चिन्त हो गया है। घरकी किसी बातकी अब उसे चिन्ता नहीं करनी पड़ती। उसके कपड़े बदलवानेसे लेकर उसकी दवादारू तकका सारा भार अनीताने अपने कन्धोंपर ले लिया है और वह बड़ी खूबीसे सारा काम पूरा करती दिखाई पड़ती है। उसके इन कामोंमें उसे कहीं त्रुटि दिखाई नहीं देती। अनीताकी मेहरबानीसे वह अब पहलेसे कहीं अधिक साफ रहता है, उसका भोजन उसकी रुचिके ज्यादा अनुकूल होता है और उसके कपड़े फटे नहीं रहते। साग-सब्जी, नौकर-चाकर, सबसे उसका पीछा छूट गया है। किसी फालतू बातकी अब उसे घरमें चिन्ता नहीं करनी पड़ती। दफ्तरसे काम और स्वाध्यायके अतिरिक्त उसे किसी बातसे सरोकार नहीं रह गया है। अब वह पूर्णतया मुक्त है, आजाद है और हर प्रकारकी परेशानियोंसे उसको छुटकारा मिल गया है।

सन्तोषकी एक गहरी सांस गोपालके हृदयसे उठकर धीरे-धीरे निकल जाती है। इन फालतू झञ्झटोंसे पीछा छुड़ा देनेके लिए उसका मन अनीताकी प्रशंसा-सी करता दीखने लगता है। उसके होंठ कांपने लगते हैं। उसकी इच्छा होती है कि इस सबके लिए वह अनीताको पुकारे और उसके पास आ जानेपर धन्यवादमें दो शब्द कहे। लेकिन न जाने किस अज्ञात कारणवश उसकी बात मनकी मनमें ही रह जाती है और वह मन मार वहीं कुर्सीपर बैठा रह जाता है।

तभी चित्रोंमें फिर उलझ गोपाल देखता है कि गूंगी-सी, मौन भाषणमें ही दिलचस्पी लेनेवाली, अनीताकी जुबान अब धीरे-धीरे खुलती जा रही है। उनकी बोल-चाल बढ़ रही है। अब किसी कार्यवश अनीता उसके सामनेसे गुजरती है और कोई देख नहीं रहा होता, तब एकाध बात उससे करनेको वह जरूर ठिठककर खड़ी हो जाती है। और कुछ बात न रहनेपर वह अपने मधुर स्वरमें, जो उसे चौंका देता है, बड़े धीमेसे पूछ लेती है—'क्यों, क्या कर रहे हो?' और इसके अनन्तर न जाने कैसे उसे देखती है कि वह समझ नहीं पाता, लेकिन फिर भी उसकी आंखें उसकी तरफ खिंच जाती हैं, उसके होंठ फड़फड़ाने लगते हैं और उसका जी चाहता है कि वह कह दे—'अनीता, तुम अनुपम सुन्दरी हो। तुम्हारी आवाजमें कितना मिठास है। तुम्हें देखते-देखते जी नहीं भरता।' और इसके अनन्तर खिलखिलाकर हंस दे और अनीताको भी हंसा दे, और दोनोंकी हंसी मिलकर सारे घरको गुंजा दे।

लेकिन बात उसके होठोंपर ही अटक जाती है, वह यह सब कहता नहीं। इसके स्थानपर वह रूखा-सूखा-सा हो कह उठता है—'कुछ भी तो नहीं कर रहा हूं। जरा-सा दफ्तर-का काम पड़ा था, उसे निबटा रहा हूं।' या 'खाली वक्त काटनेके लिए अखबार पढ़कर जी बहला रहा हूं।' और इस रूखे उत्तरको भी सुन शायद या तो इन शब्दोंके पीछे छिपे हुए भावको ताड़ या महज गोपालको ललचानेके लिए वह मन्द-मन्द मुस्कुराकर उसकी तरफ कटाक्ष-सा करती हुई, हथिनीके समान मदमाती चालसे चलती हुई आगे बढ़ जाती है और गोपाल उसीकी तरफ ताकता-सा बैठा रह जाता है। अनीताकी पतली कमर, भरी हुई जङ्घाओं और गोरे पांवोंपर उसकी नजर जाती है और उसे ये बहुत अच्छे मालूम पड़ते हैं। वह बैठा-बैठा, जब तक वह आंखोंसे ओझल

नहीं हो जाती, उसे देखता रहता है। नाना प्रकारके भाव उसके दिलमें उठा करते हैं और उनसे खेलता-खेलता या तो वह मुस्कुरा देता है या बेचैनी-सी महसूस करता हुआ खिन्न हो उठता है। उस हल्के अंधेरेमें उसकी आंखें खुलकर फैलती हुई अनीताको व्यर्थ ढूंढ़नेकी कोशिशमें लग जाती हैं।

अनीताको न पा, वे आंखें फिर उन चित्रोंको उलटने-पलटनेमें लग जाती हैं और गोपाल देखता है कि वह और अनीता एक-दूसरेके बिलकुल निकट आ गये हैं। उनकी लज्जा और सङ्कोच मिटकर बिलकुल फीके पड़ गये हैं और धुंधले-धुंधले दीख पड़ते हैं। उनकी दूरी कम होकर इतनी समीपता आ गयी है कि उनके दिल परस्पर सटे-से दीख पड़ते हैं। बात करते हुए अब वे हिचकिचाते नहीं। एक-दूसरेसे दिल खोलकर बातें करते हैं। न सिर्फ काम ही की बातें होती हैं, अपितु प्रायः बातें करनेके लिए ही बातोंका सिलसिला जारी रहता है। कभी-कभी सारीकी सारी रात इसी प्रकार बातोंमें गुजर जाती है। गोपाल महसूस करता है कि अनीतासे बात करनेमें उसे बड़ा रस मिलता है। उसकी कण्ठध्वनि उसके कानोंमें शीतल फुहार-सी छोड़ा करती है और उसके सामने बैठ, उसकी आंखोंमें आंखें गड़ा अथवा अपनी उंगलियोंसे उसके बालोंसे खेलते हुए, वह इस रसका आनन्द लेता रहता है। वह बोलती चली जाती है, सैकड़ों अर्थहीन बातें उसके मुंहसे धीरे-धीरे निकलती चली जाती हैं; लेकिन गोपालको वे अर्थहीन न लग रसमें डूबी प्रतीत होती हैं। पूरी तन्मयतासे वह इन्हें सुनता चला जाता है। इस रसमें डूब, इसका आनन्द लेता हुआ, वह अनीताकी तरफ देखने लगता है। अनीताके कांपते हुए होठोंपर उसकी दृष्टि जाती है और उसकी नासिकासे आती गरम सांस उसके गालोंको सेंकती हुई, उन्हें गुदगुदाती-सी प्रतीत होती है। तब न जाने क्यों, उसकी इच्छा होती है कि वह अनीताके मुलायम हाथोंको अपने हाथोंमें कैद कर ले, उसकी पतली कोमल उंगलियोंको धीरे-धीरे छुए, उसके शरीरसे अपना शरीर सटा दे, उन सुर्ख हो रहे शीतल गालोंको अपने अंगारे-से जलते गालोंसे छुआकर थोड़ा गरमा दे और अपनी आंखोंको फैलाकर शून्यकी तरफ बराबर देखता चला जाये। उसके होंठ कांप उठें और उनसे अनीताकी प्रशंसामें कुछ मीठे वाक्य, जो अनीताको उल्लसित कर उसे कम्पित कर दें और उसके शरीरसे सटे होनेके कारण उसे भी साथ ही साथ कंपा दें, बिना रुके बढ़ते चले जायें।

गोपालका हाथ बढ़ जाता है। अनीताकी उंगलियोंसे उसकी उंगलियां भी छू जाती हैं, लेकिन न जाने क्यों, तभी उसका उत्साह टूटता-सा प्रतीत होने लगता है। वह उन उंगलियोंके खेलमें फंस उनसे खेलता हुआ वैसा ही बैठा रह जाता है। उसके होंठ चिपक जाते हैं और मानो सिले हुए हों, इसलिए उनसे एक शब्द भी नहीं निकल पाता। बैठा-बैठा वह अनीताको, उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गको, पागलके समान देखता रहता है और अपनी आंखोंसे निगलते चला जाता है और रात बीतती चली जाती है। अनीता, पता नहीं, यह सब देखती या समझती है अथवा नहीं, लेकिन इतना स्पष्ट है कि वह बराबर बोलती चली जाती है और उसका प्रत्येक शब्द गोपालको पहलेसे भी अधिक रससे सना प्रतीत होता है और धीरे-धीरे इसके रसमें अधिकाधिक डूब वह आत्म-विस्मृतिकी ओर खिंचा चला जाता है। मुग्ध बन वह सोचमें डूबा-सा बैठा रहता है और सब कुछ भूलने लगता है। अनीता उसके सामनेसे लुप्त हो जाती है और वह अकेला कुर्सीपर बैठा उसे दीख पड़ता है।

तभी अनीता, मानो फिर नयी और ताजी हो आयी हो, इस प्रकार उसके सामने खिली-सी खड़ी हो जाती है। वह उसे प्रेमकी देवी-सी लगती है। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे गोपालको एक मीठा रस टपकता नजर आता है। घने, काले, घुंघराले बालोंकी वेणी गर्दनपर हो उसके वक्षपर सर्पके समान लहराती उसे दीख पड़ती है। उसकी आंखोंमें मादकता उसे साफ घुली हुई नजर आती है और उसके होंठ कांपते और नथुने फड़कते दृष्टिगोचर होते हैं। उसकी उंगलियोंकी कोमलता और उनका अत्यन्त उज्ज्वल रङ्ग उसको आकर्षित कर लेता है और आंखोंकी मादकतामें वह कुछ कशिश महसूस करने लगता है। उसकी भौंहें ढीली हो कुछ मीठा-मीठा हंसती-सी उसे दिखाई देती हैं और उसकी खिंची हुई, चिकनी, लम्बी, स्वच्छ गर्दन, जिसपर कोई दाग दिखाई नहीं देता, उसे बहुत भली प्रतीत होती है। वह एकटक उसकी तरफ देखता जाता है। अनीताका वह आकर्षण और सौन्दर्य उसे निरन्तर बढ़ता-सा प्रतीत होता है।

वह देखता है कि उन आंखोंकी मादकता प्रतिक्षण अधिक गहरी होती चली जा रही है और उनका गुलाबीपन बढ़ रहा है। उसके होंठ और नथुने और भी अधिक उसे कांपते प्रतीत होते हैं और चिकनी, स्वच्छ गर्दन और भी अधिक स्वच्छ हो चमकती नजर आती है। यह सब उसे अपनी ओर खींच लेते हैं। उसकी इच्छा होती है कि हृदयसे लगा वह उसके हृदयकी तड़पनको दूर कर दे तथा होठोंको हल्के-से उन होठोंसे छू वह उनकी कंपकंपीको समाप्त कर दे। चिकनी, स्वच्छ, मक्खन-सी गर्दनपर हाथ फेर उसकी चाहना इसे मैलो कर देनेकी होती है और आंखोंकी बढ़ती हुई मादकताको वह अपनी आंखोंसे अपने भीतर उड़ेलनेकी कामना करने लगता है।

लेकिन ये विचार उसके मस्तिष्कको कुछ क्षण आड़ोलित करने, उसमें तूफान उठा जानेके अतिरिक्त कुछ नहीं करते। वह बैसा ही बैठा रह जाता है। न जाने क्यों, इन सम्पूर्ण विचारोंपर कार्य करनेकी हिम्मत और साहस वह अपनेमें नहीं पाता। शक्ति होते हुए भी न जाने कौन-सा अवरोध, रुकावट उसके अन्दर आ खड़ी होती है और उसे न समझता हुआ वह चुपचाप बैठे-बैठे अनीताको देखते चला जाता है और अनीता प्रतिक्षण बदलती चली जाती है।

और इस बदलती चली जा रही अनीताको देखते-देखते न जाने कैसे उसके दिलमें यह विचार उठ खड़ा होता है कि अनीता उससे प्रेम करती है। उसे लगता है कि अनीताके कांप रहे होठोंसे यही आवाज निरन्तर आ रही है। उसकी आंखें यही अपने मूक शब्दोंमें चिल्ला-चिल्लाकर कह रही हैं। अनीताके कोमल और दृढ़ वक्षके नीचे जो चीज धक्-धक्कर उसे हिला रही है, वह भी इसी प्रकारसे परिपूर्ण है। उसकी गर्दनकी स्वच्छता उंगलियोंकी एक खास किस्मकी हलचल और नथुनोंका फड़कना भी यही सन्देश उसे सुनाते दीख पड़ते हैं। उसे लगता है कि अनीताका रोम-रोम, उसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग इसी भावनासे परिपूर्ण है और वे अपनी-अपनी अज्ञात और अस्पष्ट भाषामें पूरी तेजी, तीव्रता और चीत्कारसे भरे यही चिल्ला रहे हैं और वह उनकी पुकार सुन रहा है, उनकी भाषा समझ रहा है और उनकी भावनाको पूरी तरह जान रहा है।

एक गहरी वेदना, उथल-पुथलसे, गोपाल बेचैन हो उठता है। उसकी छाती उभर आती है और उससे एक गहरी सांस निकल जाती है। वह स्पष्ट ही महसूस करने लगता है कि अनीताकी प्रेम-पुकारको वह अस्वीकार नहीं कर सकता, ठुकरा नहीं सकता। उसे लगता है कि वह चिरकालसे अनीताको प्रेम करता चला आ रहा है और चिरकाल तक वह इसी प्रकार उसे प्रेम करता चला जायेगा। इस प्रेमकी स्वीकृतिमें उसे किसी प्रकारका संशय, झिझक और सङ्कोच नहीं होना चाहिए।

उसके दिलमें एक प्रबल कामना चिल्ला-चिल्लाकर इस प्रेम-स्वीकृतिको अनीता तक पहुंचानेकी उठ खड़ी होती है। उसका रोम-रोम और कण्ठ यही ध्वनि प्रतिध्वनित करने तथा इस चिल्लाहटको चारों दिशाओंसे परिपूर्ण कर देनेको विकल हो जाता है, ताकि अनीता उसके प्रेमको समझ जाये और उनके बीच कोई अन्तर न रह जाये।

एक तूफान, बवण्डर, अन्धड़-सा उसके दिलमें उठ खड़ा होता है। अपने साथ अनेक विचारों, भावनाओं, शब्दों और वाक्योंको ले यह तेजीसे उसके गले तक आ पहुंचता है और फिर वहांसे आगे बढ़ वह उसके मुंह तक आ जाता है और उसकी तेजीसे होंठ फट पड़ते हैं। लेकिन तभी वह पाता है कि होंठ खुल जानेसे यह तूफान खुले हुए मुंह द्वारा सीधा विस्तृत आसमानमें फैल गया है। इसके भारसे दब उसकी जीभ वहींकी वहीं जकड़ी रह गयी है और उसके मुंहसे एक शब्द भी नहीं निकल सका है। और इस तूफानकी समाप्तिपर उसके होंठ फिर परस्पर जा चिपके हैं। अपनी इस निस्सहाय अवस्थापर मलीन-सा, दुःखसे भरा वह बैठा रह जाता है और उसकी आंखोंके सामने अनीताके स्थानपर काला, गहरा अन्धेरा चित्रित हो जाता है, जो बीतते हुए प्रतिक्षणमें और भी गहरा हो रहा है।

हठात् इस अन्धेरेमेंसे अनीताकी मूर्ति गोपालको फिर उगती-सी दिखाई देने लगती है। वह देखता है कि अनीता बेचैन, अशान्त और दुखी है। उसकी उद्विग्नताकी जड़में गोपाल अपने आपको कारण समझता है। वह महसूस करने लगता है कि उसके द्वारा प्रेमके इस प्रकार ठुकरा दिये जानेसे अनीता दुखी और बेचैन है। लेकिन वह देखता है कि इससे अनीताका प्रेम हल्का न पड़ और भी गहरा हो

गया है और वह उसे और भी अधिक प्यार करने लगी है। वह देखता है कि देवताकी नाईं वह गोपालकी प्रस्तर-प्रतिमाकी पूजा कर रही है। अपना आनन्द, सुख, चञ्चलता सब उसने खो दी है और एक ही बात शेष है और वह है गोपालकी निरन्तर सेवा। इसमें वह बिना थके चौबीसों घण्टे लगी रहती है। अपने देवताको सन्तुष्ट रखनेके लिए अपनी शक्ति-भर वह कोई बात उठाकर नहीं रखती। हर समय वह उसके सुख और आरामकी चिन्तामें लगी रहती है। अब अगर वह कभी हंसती भी है, तो इसीलिए कि यह हंसी गोपालको अच्छी लगती है, इससे उसे सुख मिलता है और यह हंसना उसकी थकावटको दूर करता प्रतीत होता है। अन्यथा अपने लिए हंसनेकी उसे आवश्यकता और अवकाश ही नहीं रह गया है। पहलेके समान उसकी पानीके सदृश रिसती हुई स्वच्छ हंसीकी आवाज गोपालको सुने मुद्दत गुजर गयी है। अब वह पहलेके समान गोपालकी तरफ न जाने कैसी-कैसी आंखोंसे देखती नहीं। इसके स्थानपर उसकी आंखोंमें एक भोलापन उमड़ आया है और एक चिन्ता, फिक्र-सी उनमें स्पष्ट दीख पड़ती है। तभी घबरा, अधीर और बेचैन हो गोपाल यह पाता है कि अनीताकी चालकी मस्ती, उसके होठोंकी फड़फड़ाहट, उसके नथुनोंका फूलना सब एकदम शान्त हो गये हैं। अनीता उसे पिटी-सी, हारी-सी और थकी-सी दीख पड़ती है।

गोपालका रोम-रोम तड़प उठता है। अनीताके इस स्वार्थत्यागपर, उसकी इस दीन अवस्थापर तथा उसके इस परिवर्तनपर वह मन ही मन रो-रो उठता है। उसके हृदयमें आंसू उमड़ आते हैं और एकाध उसकी आंखोंके कोनेको भी छू लेता है। अनीताका आत्म-त्याग उसके और अनीताके बीच खड़े उस हलके, पर दृढ़ सङ्कोचके बातावरणको एक ही झटकेमें उखाड़ फेंकता है। उसे थकी-हारी देख वह भीतर ही भीतर क्षुब्ध हो उठता है। अनीताका समस्त परिवर्तन उसके हृदयमें कांटे-सा चुभने लगता है। वह इससे बेचैन हो उठता है। उसकी आत्मा स्वयं अपनेसे विद्रोह करने लगती है और वह अपने आपको धिक्कारता दीख पड़ता है। अनीता उसे देवीके समान दीख पड़ती है। कृतज्ञता और विनीतताके भाव उसके चेहरेपर उमड़ आते हैं। उसका सिर और उसकी आंखें इसके भारसे झुक जाती हैं। मानो पूजा पानेका अनीता-का अधिकार हो, इसलिए घुटने टेक उसके आगे आत्म-समर्पणकी भावना उसके हृदयमें उठ खड़ी होती है। गोपाल-के मनमें होता है कि जो कुछ भी उसके पास, उसके हृदयमें है, इस पूजाके भेंट-स्वरूप सब वह उसपर न्यौछावर कर दे। एक-एक विचार, एक-एक बात, उसके सम्मुख बिखेर दे और अपने आपको पूरा खोल उसके सामने निःसङ्कोच हो रख दे। उसके दिलमें कोई बात शेष न रहे, जो अनीताके दिलमें चुभ उसे ठेस पहुंचानेका कारण हो।

आत्म-समर्पणके लिए इस प्रकार तैयार हो गोपाल आंख उठाकर अनीताकी तरफ देखता है, लेकिन घने हो रहे काले अन्धेरेके अतिरिक्त उसे वहां कुछ नहीं दिखाई देता। उसके दिलमें उठ रहे बवण्डरको शान्त करनेके स्थानपर अनीताका यह अभाव उसमें और भी आग लगा देता है। उसकी बेचैनी, तड़पन और भी बढ़ जाती है। उसके होंठ खुल पड़ते हैं और मन ही मन तड़पता हुआ वह पुकार उठता है—'अनीता!' और उसकी आवाजमें बेचैनी और घबराहट स्पष्ट प्रतीत होती है।

तभी, प्रतिदिनकी आदतके अनुसार, हाथमें पानकी तश्तरी लिये मुस्कुराती हुई अनीता कमरेसे बाहर बरामदेमें आती है। बिजलीका बटन दाब वह वहां रोशनी कर देती है। इसके अनन्तर उसी प्रकार मुस्कुराते रहकर अपने मधुर और धीमे स्वरमें वह पूछती है—'क्यों? क्या है?'

गोपालके हृदयमें उठी हुई आंधी मानो वर्षाकी छींटोंसे दबकर जमीनपर आ बैठ गयी हो, इस प्रकार शान्त हो जाती है। अनीताके प्रश्नका वह बहुत देर तक कुछ उत्तर नहीं दे पाता। काफी देर चुप रहने तथा अनीताकी तरफ ताकते रहनेके अनन्तर न जाने किस शून्यको देखते हुए उसके मुंहसे ये शब्द निकल पड़ते हैं—"मैं तुम्हें प्यार करता हूं, अनीता!"

विस्मय-भरी आंखोंसे, मानो वह इन शब्दोंका मतलब ठीक-ठीक न समझी हो, इस प्रकार कुछ क्षण तक बिलकुल स्तब्ध, चुपचाप खड़ी रहती है। अचानक उसके हाथसे पानकी तश्तरी छूटकर गिर पड़ती है और वह अपने बदनको बिलकुल ढीला छोड़ देती है। अगले ही क्षण गोपाल पाता है कि अनीता उसके फैले हुए हाथोंमें जकड़ी हुई है। उसके गाल उसके बहुत समीप आ गये हैं और उसकी नासिकासे

आती गरम सांस उसके गालोंपर पड़ उसे सेंक पहुंचा रही है। अनीताके सिरसे एक सुगन्ध-सी उठ उसके प्राणोंको बेचैन-सी बनाती प्रतीत होती है और इस बेचैनीसे भर वह एक नये सुखमें डूबता चला जाता है।

गोपालका दिल हल्का हो आया होता है। अब इसमें कोई विचार नहीं उठ रहा होता और वह एकदम शान्त हो जाता है।

———

बावरी और उनके हथकण्डे

श्री सिराजुद्दीन सिद्दीकी, विशारद

बावरी जातिके लोग अपने हथकण्डोंके लिए काफी प्रसिद्ध हैं। इस जातिका पेशा ही अपराध करना है। ये लोग पहले गुजरातके निवासी थे और अब तो सारे हिन्दुस्तानमें पाये जाते हैं। जहां-जहां जाकर ये लोग बसे, वहांके लोगोंने इन्हें अपना एक नया नाम दे दिया। इस प्रकार इनके नामोंमें महान् अन्तर होनेपर भी, इनकी मूल उत्पत्ति एक ही जातिसे है, और एक ही भाषा (गुजरातीका अशुद्ध रूप) बोलते हैं। इनमें आपसमें अन्तर्जातीय विवाह होते हैं। कभी-कभी तो मौका पड़नेपर, अपराध करनेके लिए एक-दूसरे दलके लोग मिल भी जाते हैं। ये लोग स्वयं भी अपनेको बावरी ही मानते हैं।

भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें रहनेके कारण ये जिन-जिन नामोंसे प्रसिद्ध हैं, उनकी सूची इस प्रकार है :—

बावरी—जिला मुजफ्फरनगर, गोरखपुर (संयुक्तप्रान्त) भावलपुर स्टेट, सिन्ध तथा पञ्जाबमें।

बौरिया—मेवाड़ (उदयपुर) में।

बदक—उत्तरी भारतके कई प्रान्तों, मध्यभारतकी कई रियासतों तथा अवधमें।

मोघिया—राजपूतानाके कुछ भागों तथा मध्यभारतमें।

बगरी—मालवा तथा राजपूतानेके कुछ भागमें।

बगोरा—मध्यभारतकी रियासतोंमें।

मारवाड़ी—उत्तर-पश्चिमी अवधकी तराई, मारवाड़, जोधपुर, बीकानेर तथा बड़ौदामें।

मालपुरा—अजमेरमें।

देहलीवाल—उत्तरी द्वाब तथा देहलीके पासके जिलोंमें।

टकनकार—बरार, खानदेश, दक्खिन तथा हैदराबाद।

परधी—जिनमें फास परधी, गोन परधी, लगोटी परधी, चीता परधी, बैल परधी, मालवी परधी तथा बन्दूकवाला परधी भी शामिल हैं—बरार, खानदेश, दक्खिन, हैदराबाद, ग्वालियर, इन्दौर तथा देवासकी रियासतोंमें।

हबूरा या करवाल—मालवा, मुरादाबाद, मथुरा, अलीगढ़, मैनपुरी, एटा तथा उन्नावमें।

सियार खोवा—पूर्वी अवधकी तराईमें।

करोलिया—मङ्गोली (ग्वालियर), रायसेन (भूपाल) तथा मध्य भारतकी रियासतोंमें।

मकवारी, बरियारी, खोहिली — देहलीके पश्चिम मारवाड़में।

मदाना—अलवर स्टेटमें।

किचाक—उत्तरी बङ्गालमें।

मोरगिया—जोधपुर स्टेटमें।

थोरी—बंसवारा (राजपूताना) में।

मेवाड़ा, खेरारा, गोडवारा—मध्यभारतकी रियासतोंमें।

जन्म होते ही इनके बच्चोंको गर्म लोहेसे पेटमें तीन जगह दाग दिया जाता है, किन्तु नाभीके पास नहीं। ये चिह्न काफी बड़े होते हैं और सरलतासे पहचाने जा सकते हैं। इस जातिके पुरुष दो लड़ोंकी तुलसी या मूंगेकी माला गलेमें पहनते हैं। ये लोग वास्कट पहनते हैं। किन्तु जब भेष बदलते हैं, तब इसे एक दूसरे कपड़ेसे ढक लेते हैं, जो सारे शरीरको ढक लेता है, किन्तु भौंहें सदैव खुली रहती हैं। ये लोग प्रायः लाल या पीले रङ्गका साफा बांधते हैं, जिसका थोड़ा-सा हिस्सा पीछे लटकता रहता है।

बावरी स्त्रियां अपने बालोंको पहले छः लटोंमें बांधती हैं, फिर उन छहों लटोंको एक साथ पीछे जूड़ेके रूपमें बांध

लेती हैं। ये अपने दोनों नेत्रोंकी बाहरी कोरों, बायीं आंख-की भीतरी कोरों, बायां गाल, ठुड्डी, कलाई, उंगलियोंके जोड़, भुजा तथा छातियोंके बीच गोदना गुदाये रहती हैं। स्त्रियां भी पुरुषोंकी भांति मूंगेकी माला पहनती हैं, जिसमें बीच-बीचमें तुलसीकी गुरियां पिरोयी होती हैं। इनकी पोशाक मारवाड़ी स्त्रियोंकी तरह होती है, जो प्रायः छपी हुई होती है। क्वांरी स्त्रियां और लड़कियां कोई भी रङ्ग प्रयोगमें ला सकती हैं; किन्तु विवाहित स्त्रियां लाल कपड़े नहीं पहन सकतीं; इनका रङ्ग प्रायः काला या पीला होता है। इनमें चांदीके गहने पहननेका भी रिवाज है।

यों तो इनकी भाषा गुजरातीका अशुद्ध रूप है, किन्तु ये सबके सामने हिन्दुस्तानी बोलते हैं, जिनका उच्चारण नाकके सहारे अधिक होता है। साधारण जनताके रूपमें ये लोग साधूके वेशमें भिक्षा मांगते हुए और सालम मिश्री, शिलाजीत, मुश्क, मदनमस्त आदि पुष्टई भी बेचते पाये गये हैं। जाल बनाने तथा चिड़िया या हिरन फंसानेका भी काम इन लोगोंने कई अवसरोंपर किया है। अवसर पड़नेपर ये लोग अपनी जाति तक बदल देते हैं। प्रायः ये लोग (१) वैरागी (२) गोसाईं (३) संन्यासी (४) उदासी (५) ब्राह्मण (काशी-यात्राके लिए जाते हुए) (६) सूत्रा (७) दवा बेचनेवाले (८) मिठाई बेचनेवाले (९) फूल बेचनेवाले माली और (१०) गल्ला तोलनेवाले बयाके भेषमें भी पाये जाते हैं।

अपराधोंमें ये लोग ज्यादातर (१) डाकाजनी, (२) राहजनी, (३) सेंध, (४) सोती हुई स्त्रियों और बच्चोंके शरीरसे गहने उतारना, (५) बंगलों, गाड़ियों, तम्बू इत्यादिसे चोरी करना और(६) भेड़ आदि चुराना ही पसन्द करते हैं। इनके गिरोहमें केवल पुरुष ही होते हैं, तो इनकी संख्या पांचसे दस तक होती है; किन्तु जब स्त्रियां भी साथ होती हैं, तब इनकी संख्या बढ़कर दससे चालीस तक हो जाती है। टट्टू इनका सामान ले जानेवाला खास जानवर होता है।

इनके निवास-स्थान पञ्जाब, संयुक्तप्रान्तके गोरखपुर तथा मुजफ्फरनगर, सिन्ध, सेण्ट्रल इण्डिया एजेन्सी और जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, जयपुर, कृष्णगढ़, मेवार, प्रतापगढ़, कोटा, टोंक, बंसवारा, शाहपुर, अलवर, ग्वालियर, भूपाल, बड़ौदा तथा हैदराबाद रियासतोंमें हैं।

मध्यप्रदेशमें विशेषतया मुजफ्फरनगरके बावरी लोगोंका हमला होता है, यद्यपि ये लोग सारे ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों तकमें अपराध करते पाये गये हैं। कभी-कभी तो दक्षिणमें ये लोग मद्रास अहाते तक चले गये हैं; किन्तु समुद्र-पार लङ्का तक नहीं गये।

चोरी करनेके लिए, जिसे ये लोग अपनी भाषामें 'रामेश' कहते हैं, जुलाई या अगस्तके महीनेमें खेतीका काम समाप्त करके ये घरसे चलते हैं। बिना टिकट रेलपर यात्रा करते हुए, छोटे-छोटे स्टेशनोंपर ठहरते हुए ये यात्रामें आगे बढ़ते हैं। इनकी यात्रा ज्यादातर मथुरा-नागदा रेलवेसे होती है और फिर अपने निश्चित स्थान तक ये पैदल जाते हैं। ये लोग सदैव पहाड़ी स्थानोंको पसन्द करते हैं और बड़े-बड़े शहरोंमें कभी नहीं ठहरते। इष्ट स्थानपर पहुंचकर ये धर्मशालाओं या मठोंमें, जो गांवके किनारे होते हैं, ठहरते हैं। ये लोग साल-भर अपना काम जारी रखते हैं और फिर वर्षा आरम्भ होते ही लौट पड़ते हैं। कुछ लोग--जो घरके कामके कारण दलके साथ नहीं जा सकते—बरसात बिताकर जाड़ेके प्रारम्भमें दलमें जा मिलते हैं। मुजफ्फरनगरके बावरी अपराध करनेके लिए अपनेको दलोंमें विभाजित कर लेते हैं, जिन्हें 'डेरा' कहते हैं। प्रत्येक 'डेरा' का एक सरदार होता है, जिसे 'कमाओ' कहते हैं। जब ये अपना काम प्रारम्भ करने लगते हैं, तब साधू बन जाते हैं, जिनकी सूची इस प्रकार है:—

वैरागी भेषमें ये लोग जनेऊ पहनते हैं, मूछें तथा दाढ़ी साफ रखते हैं, बड़े-बड़े बाल भी रखते हैं, सफेद कपड़ेका एक तहमत (गाती) या लुङ्गी पहनते हैं। फिर भी, इनके कानोंमें तुलसीके दाने नहीं होते। इनके पास 'संस्कृत गीता' नहीं, बल्कि 'शास्त्री गीता' होती है तथा लुङ्गीकी गांठ दायें कन्धेपर लगाते हैं।

गोसाईंके भेषमें इनकी गाती (लुङ्गी) लाल कपड़ेकी होती है। ये बाल, दाढ़ी, मूछें नहीं कटवाते और विवाहित फकीर बने रहते हैं। किन्तु संन्यासी भेषमें सब बाल कटवा डालते हैं और अपनेको अविवाहित फकीर कहते हैं। दायें हाथमें कमण्डल लिये रहते हैं, किन्तु कभी-कभी संन्यासी भेषमें एक लंगोटा-भर पहनते हैं।

'उदासी भेष' में गाती पीली होती है और चमड़ेके जूते

पहनते हैं। किन्तु वास्तविक 'उदासी' यह कभी नहीं पहनता, बल्कि वह लकड़ीके खड़ाऊं या कपड़ेके चप्पल पहनता है। वास्तविक 'उदासी' हमेशा एक 'फूलमाला', जो काले ऊनकी गांठदार होती है, गलेमें पहने रहता है।

ब्राह्मण भेषमें ये जनेऊ, सफेद धोती और साफा पहनते हैं तथा गुरियोंकी एक माला पहनते हैं, जिसे 'रुद्रा' कहते हैं। वास्तविक ब्राह्मण धोतीके नीचे लंगोटा कभी नहीं पहनते; किन्तु बावरी सदैव पहनता है, जिसका एक सिरा लटकता रहता है। ये जूते भी पहनते हैं।

'सूत्रा' के भेषमें इन्हें अच्छी तरह पहचाना जा सकता है, क्योंकि ये डण्डा चलाना नहीं जानते, इनकी मालामें सफेद गुरिया नहीं होती, इनके गलेमें 'साली' (काले ऊनका पवित्र डोरा, जो गलेमें पांच बार लपेटा जाता है) नहीं होता। यह शुद्ध-शुद्ध 'बानी' (धार्मिक कीर्तन) भी नहीं जानता।

'बावरी' मस्तकपर ऊपर बताये साधुओंकी भांति तिलक लगाते हैं, पर इनके तिलक वास्तविक साधुओंके तिलकसे भिन्न होते हैं।

बैरागी भेषमें रहते हुए भी इन्हें आसानीसे पहचाना जा सकता है, क्योंकि (१) बैरागी मूंगेकी गुरियोंमें दूसरी गुरियां मिलाकर नहीं पहनते। वे यों तो कोई माला ही नहीं पहनते और यदि पहनते भी हैं, तो एक-दोसे अधिक नहीं। (२) बैरागियोंकी पोशाक साधारण होती है, उन्हें इसकी विशेष चिन्ता भी नहीं होती, किन्तु 'बावरी' इसका विशेष ध्यान रखते हैं। (३) बैरागी स्वयं बनाकर अलग खाते हैं तथा मांस और शराबको छूते तक नहीं—किन्तु बावरी इसका परहेज तनिक भी नहीं करते। (४) बैरागी दलमें भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके व्यक्ति होते हैं, किन्तु बावरी दलमें ज्यादातर एक ही वंशके और एक ही शक्लके व्यक्ति मिलते हैं। (५) बावरी बास्कट पहनते हैं और यदि ये उसे उतार भी दें, तो इनके डेरेमें मिल सकती है। (६) बैरागी केवल धार्मिक तीर्थ-स्थानोंपर बाल बनवाता है। (७) 'बावरी' के पास घीमें भिगोया गेहूं प्रायः पाया जाता है। यह गेहूं टीन या पीतलके डिब्बेमें रहता है। कभी-कभी ये इन्हींको दवा कहा करते हैं। (८) बैरागी तीर्थ-यात्रा करते हुए कहीं बीचमें बहुत समय तक नहीं ठहरते और न कभी गांवके बाहर ही डेरा डालते हैं। (९) बैरागी कुत्ता छूते तक नहीं, किन्तु बावरी पालते हैं। (१०) बैरागी गांवके बीचमें ठहरता है और बावरी गांवके बाहर, ताकि चोरी करनेका मौका मिल सके।

दवा बेचनेवालोंके भेषमें ये केवल इसी बातसे पकड़े जा सकते हैं कि इनके पास सामान बहुत कम या केवल नाममात्र होता है और इनका ध्येय भी बेचना नहीं होता।

ये लोग पीतलके एक छोटे-से सन्दूकमें गेहूं तथा भिन्न-भिन्न पौधोंके दाने रखे रहते हैं। फिर इस सन्दूक, मोरके पङ्ख तथा एक छोटी-सी घण्टीको ये लोग एक लाल तथा सफेद कपड़ेमें इस प्रकार लपेटते हैं कि वह तकियेके आकारका हो जाता है। इसे ये लोग अपने कुटुम्बका देवता बतलाते हैं, किन्तु इसका प्रयोग ये तकियाके स्थानमें ही करते हैं।

अपने कैम्पके निकट ये लोग चोरी कभी नहीं करते। ऐसा देखा गया है कि चोरी करनेके बाद इन्होंने ३० मील दूर जाकर डेरा डाला है। जब ये लोग चोरी करने निकलते हैं, तब एक-दो आदमियोंको डेरेमें छोड़ जाते हैं और जो लोग गैरहाजिर होते हैं, उनके स्थानपर पत्थर रखकर धोती ढक देते हैं, ताकि कोई यह समझे कि वे सो रहे हैं। यदि इसी बीचमें कोई पहुंच जाय, तो जो बाकी हाजिर रहते हैं, तुरन्त उठकर कहने लगते हैं कि बाकी लोग बहुत थके हैं, इसलिए सो रहे हैं। कभी-कभी जाते समय या लौटते समय ये लोग रास्तेमें गधे या भैंसका कान काट लेते हैं। घटनास्थलपर भी ये लोग बड़ा ऊधम मचाया करते हैं। सफलतापूर्वक लौटनेपर ये लोग दावतें उड़ाते हैं, जिनमें छराका विशेष समावेश होता है।

दिनमें इनसे कोई भय नहीं रहता—यदि इन्हें गिरफ्तार किया जाय, तो ये स्वयं ही अपनेको सौंप देते हैं; किन्तु मौका पाकर ऐसा भागते हैं कि फिर पता तक नहीं चलता। इस प्रकार भागनेका प्रयत्न ये लोग तभी करते हैं, जब इनका गिरफ्तार गिरोह सफरमें होता है। तब ये लोग फैल जाते हैं और पीछा करनेपर पत्थरका प्रयोग करते हैं।

जब कैम्पसे चलने लगते हैं, ये रास्तेमें चिह्न लगाते जाते हैं, ताकि इनके साथी उसी मार्गका अनुसरण कर सकें। स्त्रियां रास्तेमें लकड़ीसे एक निशान बनाती जाती हैं और सांपके जैसा एक टेढ़ा चिह्न बनाती हैं। पुरुष

अपना रास्ता बतलानेके लिए हरी-हरी पत्तियां पत्थरोंपर दबाकर रास्तेके किनारे-किनारे रखते जाते हैं।

बावरी अपने दलके तथा दूसरे दलके लोगोंको यह बतलानेके लिए कि वे किस रास्तेसे गये हैं, अपने ठहरनेके स्थानोंपर, घरोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके बड़े-बड़े चिह्न बना देते हैं, जिनका आशय दूसरा नहीं समझ सकता, मगर उनके साथी भली भांति समझ जाते हैं।

ये चिह्न मीलके पत्थर, पेड़ या सड़कोंके केन्द्रोंपर भी मिल सकते हैं। कभी-कभी ये अपने निश्चित सङ्केतोंमें हेरफेर भी कर देते हैं।

बावरी सेंध मारनेके हथियारको 'ज्ञान' या 'करछा' कहते हैं। किन्तु यदि किसी अन्य व्यक्तिके सम्मुख बात करना होगा, तो वे 'दास' शब्द भी जोड़ देते हैं। इस प्रकार उसे 'ज्ञानदास' कहने लगते हैं, जैसे कि वह भी उनका साथी हो। यह औजार प्रायः इस्पातका ११ या १२ इञ्च लम्बा होता है। इसका एक किनारा लगभग तीन इञ्च लम्बा तथा नुकीला होता है, बाकी भाग चम्मचकी तरह गोल होता है, जिससे ये लोग मिट्टी इत्यादि निकालते हैं।

ये लोग 'ज्ञानदास'को गिरोहके साथ लेकर नहीं चलते, बल्कि जो इसे लिये रहता है, वह या तो दलसे आध मील आगे या पीछे चलता है। यह व्यक्ति इसे कपड़ेमें लपेटकर कन्धेपर रखे रहता है, ताकि खतरेके समय उसे फेंक सके और फिर बादमें उठा ले। जब ये टट्टूका प्रयोग करते हैं, तब 'ज्ञानदास'को जीनके नीचे डाल देते हैं। जब डेरा डालते हैं, तब इनका सबसे पहला काम होता है 'ज्ञानदास'को डेरेसे काफी दूरपर गाड़ देना।

कोई भी अपराध करनेसे पहले ये खूब सोच-विचार लेते हैं। प्रायः ये सारा शुक्लपक्ष इसीमें व्यतीत कर देते हैं। इनके दलका प्रत्येक व्यक्ति भिक्षाके बहाने निश्चित घरका चक्कर लगाता है। कई दिन चक्कर लगानेके उपरान्त ये लोग पड़ोसियोंसे निर्दोष प्रश्न करके उसके सम्बन्धकी गुप्त बात मालूम कर लेते हैं। इनके भिक्षा मांगनेका ढङ्ग भी साधारण भिक्षुसे भिन्न होता है। ये लोग घरके उतने भीतर चले जाते हैं, जितना जा सकते हैं। काफी देर तक रुककर देखते रहते हैं। इनकी स्त्रियां भी यही काम करती हैं। वे दवा बेचनेके बहाने अन्दर जाकर बैठती हैं। कभी-कभी तो भेद जाननेके लिए ये धनिकोंके यहां नौकरी भी कर लेती हैं। इस प्रकार निश्चय करनेके उपरान्त जब इन्हें और सहायताकी आवश्यकता होती है, तब ये अपने परिचितोंको यह लिखकर पत्र भेज देते हैं कि "हम बीमार हैं, आकर देख जाओ।"

स्थानीय अपराधियोंको ये कभी सम्मिलित नहीं करते। प्रायः बस्तीके किनारेके घरोंपर ही छापे मारते हैं और वह भी महीनेकी चार या पांच अंधेरी रातोंमें।

इनका पहला ध्येय 'नकबजनी' होता है। ये डाका डालते और राहजनी भी करते हैं, किन्तु कभी-कभी। नकबजनीमें यदि घरवाले जाग गये, तो ये फिर उन्हें खूब मारते भी हैं। पत्थरका प्रयोग अधिक करते हैं। बगली लगाना इन्हें बहुत पसन्द होता है। हाथ जाने-भरके लिए काफी बड़ा सुराख बनाया जाता है, जो प्रायः दीवालपर कुण्डीके बराबरमें होता है। तब ये हाथ डालकर सांकल खोल लेते हैं। यदि जानी हुई कीमती चीजोंके स्थान तक ये बगलीसे नहीं पहुंच सकते, तब दीवालमें 'खान' लगाते हैं। कभी-कभी चौखटके नीचे सुराख करके 'रुमाली' भी लगाते हैं।

खान (कान) लगाते समय इनका मुखिया, जिसे 'पूटवारा' कहते हैं, खतरेकी सूचना देनेके लिए कुछ दूरपर रहता है। यही मुखिया अन्दरकी लूटका माल भी लेता जाता है। फिर पास ही रहनेवाले साथियोंको देता जाता है। ये लोग डण्डे लिये रहते हैं। कभी-कभी ये लोग घरोंके ऊपरकी मञ्जिलमें भी छापा मारते हैं और खिड़कियोंकी छड़ें काटकर भीतर जाते हैं। नये ढङ्गसे बने घरोंमें ये लोग प्रायः शीशे काटकर या बोल्ट काट या हटाकर भीतर जाते हैं। ऐसे अवसरोंपर इनके पास पांच या छः फीट लम्बी एक रस्सी, एक मजबूत डण्डा तथा एक कुल्हाड़ा सदैव रहता है। इनका प्रयोग ये पहले खिड़कियोंकी छड़ोंको झुकानेमें करते हैं। इसके लिए ये पहले बड़ी कुशलतासे रस्सीको बटकर छड़के चारों तरफ लपेट और डण्डेमें बांधकर उसके सिरोंको झुका देते हैं और इस तरह घुसने-भरके लिए काफी स्थान बना लेते हैं। यदि पुराने ढङ्गके अनुसार छड़ें लकड़ीकी हुई, तो वे उन्हें काट देते हैं।

ये लोग सोती हुई स्त्रियोंके शरीरसे गहने उतारनेमें बड़े कुशल होते हैं और यदि इस बीचमें इन्हें रोका गया, तो

गहरी चोट पहुंचाते हैं। इनका यह ढङ्ग कुजाठो कहलाता है। ये लोग अपने पास मोमबत्ती, बिजलीकी बत्तियां तथा तेलके दिये रखते हैं, जिनका प्रयोग अन्धकारमें चीजें तलाश करनेमें होता है।

किसी घरमें चोरी करनेके लिए चलनेसे पहले ये अपने साधूके भेषको बदल डालते हैं और तब इनके शरीरमें एक लंगोटीके अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता। इनके दलका नेता (कमाओ) सदैव सेंधसे सिरकी तरफसे अन्दर जाता है और पैरकी तरफसे निकलता है। यह इस समय अपनी रक्षाके लिए एक तेज चाकू दांतोंसे दबाये रखता है। यह कोई कार्य करनेके उपरान्त बड़ी देर तक ठहरकर सुनता है कि घरवाले गहरी नींद ले रहे हैं या नहीं। किसी कमरेमें प्रवेश करनेपर यह अपने पासकी बत्तीको जलाता है या तिल या सरसोंके दाने अथवा बजरीके दाने फेंककर आहट लेता है। इस प्रकार ये बंगलोंमें चोरी करते हैं, तम्बुओंमें घुसते हैं और बैलगाड़ियोंसे अनाज इत्यादि चुराते हैं।

ये लोग अपनी तुरन्तकी खानेकी आवश्यकता पूरी करनेके लिए भेड़ों तथा बकरोंकी भी चोरी करते हैं। इस प्रकारकी चोरी या तो बाड़ोंमेंसे अंधेरी रातमें करते हैं या चरागाहोंसे दिनमें। चोरीकी वस्तुको ये उस स्थानसे बहुत दूर ले जाते हैं। फिर यदि सन्दूक आदि भारी वस्तुयें हुईं, तो उन्हें फेंक देते हैं और कीमती वस्तुयें ले जाते हैं।

इस प्रकारकी यात्रामें जब इनका केवल पुरुष दल-भर निकलता है, तब ये लोग नकद रुपये और हीरे-जवाहरातके अलावा कुछ नहीं लेते हैं। कभी-कभी ये लोग कीमती शाल-दुशाले भी ले लेते हैं, जिन्हें ये बादको अपने जमींदारको नजर कर देते हैं। किन्तु जब इनकी स्त्रियां भी इनके साथ होती हैं, तब ये कोई चीज नहीं छोड़ते। चोरीके मालको ये अपनी पूर्व निश्चित जगहमें, जो इनके कैम्पके पास ही होती है, गाड़ देते हैं और कई दिन तक खबर नहीं करते। फिर जब इनका दल चलता है तब दलके एक-दो व्यक्ति दलसे अलग लेकर चले जाते हैं और रातमें जब ये कहीं ठहरते हैं, तब ठहरनेके स्थानसे दूर गाड़ देते हैं। सोनेका सामान तुरन्त ही गला दिया जाता है और जब काफी सामान इकट्ठा हो जाता है, तब दलका एक आदमी रेलसे ले जाकर घर पहुंचा आता है। कभी-कभी ये माल खाना पकानेके स्थानमें या टट्टीमें गाड़ते हैं।

तलाशी लेते समय ये लोग तो चुप रहते हैं, किन्तु इनकी स्त्रियां बड़ी बाधक होती हैं। उदाहरण-स्वरूप वे नाचने लगती हैं और बहाना करती हैं कि उन्हें देवता चढ़े हैं और इस प्रकार मौका पाकर ये सामानको हटा देते हैं।

यदि किसी स्थानपर ये कई दिन ठहर गये, तो अपने चोरीके मालका खरीदार किसी-न-किसीको अवश्य बना लेते हैं। यह चोरीका माल प्रायः स्त्रियां खरीदारोंके घर तक पहुंचाती हैं। कमाओ (नेता) ही लूटके विभाजनका मालिक होता है। प्रत्येक बच्चेको भी इससे हिस्सा दिया जाता है।

बांसुरी

बांसुरी हूं मैं तुम्हारी!

कौन जाने, किन युगोंसे घोर वर्षा-घाम सहकर
वेदनाकी विषम ज्वालासे हृदयको दग्ध-क्षत कर
मैं बनी हूं आज सुन्दर और इतनी प्रिय तुम्हारी!

पवनका निःश्वास, तरु-तृण-पल्लवोंका विकल मर्मर,
वज्रका निर्घोष, सागरकी तरङ्गोंका रुदन, भर
यह अकिञ्चन देह मेरी स्नेहसे तुमने संवारी!

अधरपर धर फूंकते अब कौन-से स्वर तुम निरन्तर?
झर रही है रन्ध्रमय उरकी व्यथा बन गीति-निर्झर—
क्या डुबा दोगे व्यथाके सिन्धुमें यह सृष्टि सारी?

—तेजनारायण काक, एम० ए०

कवि-प्रिया

श्री हंसकुमार तिवारी

पाठक सोच रहे होंगे कि हम महाकवि केशवदास-कृत 'कवि-प्रिया' के मुताल्लिक कुछ कहने चले हैं। लेकिन नहीं, हम तो इस बातपर प्रकाश डालनेका प्रयास करेंगे कि संसारके प्रमुख कवियोंके जीवनमें नारियोंका कैसा प्रभाव रहा और उनकी काव्यधारामें उन्होंने क्या लहरें उठायीं। इस बातसे शायद ही किसीको इनकार हो कि कलाकारोंकी श्रेष्ठ कृतियोंपर उनके व्यक्तिगत जीवनकी घटनाओं और भावनाओंकी स्पष्ट और गहरी छाप है, फिर उनके उत्सका हमें चाहे पता न हो। और इस तरह जब हम यह देखनेकी कोशिश करते हैं कि उनके जीवनमें घटनेवाली भीषण और अनोखी घटनायें कौन-सी थीं, तो हमें दो बातोंका लेखा मिलता है। पहली आर्थिक दुरवस्था और दूसरी प्रेम-कहानी। इन दोनों बातोंकी तहमें अर्थ और नारी हैं। विश्व-साहित्यके अमर कलाकारोंमें चाहे जिनका जिक्र उठायें, उनकी चरित्र-सृष्टिकी मार्मिकतामें यही रहस्य काम करता मिलेगा। टाल्सटाय, गोर्की, डोस्टावेस्की, विक्टर ह्यू गो, आस्कर वाइल्ड, दांते, मिल्टन, रवीन्द्र, शरत, प्रेमचन्द आदिने मानवी मनोवृत्तिको स्याहीके सहारे कागजपर इसी कारण उतार देनेमें सफलता पायी है। खैर, अभावोंकी कहानी कहना यहां अभीष्ट नहीं, इसलिए हम कवि-प्रियाकी ही चर्चा करेंगे, गो कि न्यायकी कसौटीपर हमारी यह चेष्टा भी जायज नहीं ठहरेगी। क्योंकि कलाकारोंकी व्यक्तिगत बातोंकी चर्चा अनधिकार चेष्टा है। फूलके कांटे हम क्यों देखें, क्या उसकी खुशबू हमारे लिए काफी नहीं? कलाकार अगर अपनी सृष्टिसे दुनियाको मुग्ध कर सकता है, तो यह दुनियाका काम नहीं कि वह उसके चरित्रका विचार करे। निरालाने एक बार लिखा था—'कालिदास, श्रीहर्ष, शेक्सपियर, बायरन, उमर खय्याम, रवीन्द्रनाथ आदि कवि काव्यमें बड़े चरित्रवान हैं या असच्चरित्र? इनकी कथाओंसे हमें क्या मिलता है? × × पाप अगर नीचेकी तरफ जाता है, तो नीचे क्या है, अधः ब्रह्म नहीं?'

'प्रसाद' ने भी कलाकारकी कसौटी उसकी कलाको माना है, उसके व्यक्तित्वको नहीं। और यही क्यों, सभी सम स्वरसे इस बातकी सत्यताको स्वीकार करेंगे। सच तो यह है—"चन्द्र कहे विश्वे आलो दियेछि छड़ाये,
कलङ्क जा आछे ताहा आछे मोर गाये।"

—रवीन्द्रनाथ

अर्थात् "चन्द्रमा कहता है कि मैं समस्त विश्वमें अपना प्रकाश छिटका दूंगा, कलङ्क जो है वह तो मेरे शरीरमें है।"

वास्तवमें कलाकारकी कला ही सबकी चीज है, व्यक्तिगत दोष उसके अपने हैं। अपनी कमजोरियां वह हमें नहीं देता। फिर भी कई दृष्टियोंसे उसकी अपनी बातोंकी चर्चाको हम आवश्यक समझते हैं, जायज भी। यह बात अब बताना कठिन है कि नारी कवि-जीवनमें आकर खुद धन्य और अमर बनी या कवि-वाणीको अमर कर गयी। जो भी हो, नारीकी महत्ता है, यह हमें मानना ही पड़ेगा। और फिर उसे न जानना या स्वीकार करना अपनी अकृतज्ञता ही नहीं, उसके प्रति अन्याय भी है। क्योंकि कविकी वाणी जिससे अमरता पा सकी है, उसके हम ऋणी हैं और इसलिए हम दूसरे पहलूसे ही इसकी चर्चा करें। प्रतिध्वनि ध्वनिकी चाहे जितनी भी खिल्लियां उड़ाये, ध्वनिसे उसकी पैदाइश है, इस बातको वह अस्वीकार नहीं कर सकती। हम भी नारीको इस विषयमें चाहे जिस दृष्टिसे देखें, मगर उसकी महत्ताके आगे हमारे प्राण झुके भी होंगे।

विभिन्न कार्योंके हिसाबसे ईश्वरके तीन रूप हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश। एक जन्मदाता, दूसरा पालनकर्ता, तीसरा संहारकर्ता। कवि-जीवनमें प्रभाव डालनेवाली नारियोंको भी हम तीन श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं। कुछ ऐसी हैं, जिन्होंने कविको महिमा-मण्डित किया और उनके भाव-उत्सको गति दी। कुछ इस श्रेणीकी नारियां हैं, जिन्होंने कविके सुख-दुःखमें बराबर साथ दिया, उनके जलते दिलको सान्त्वनाके वारिसे सींचा और प्रेमकी स्निग्ध छाया उनकी जीवन-दोपहरीमें बिछाये रही और कुछ ऐसे भी नमूने मिल जाते हैं, जिन्होंने सुखके आंगनमें कांटे बोये और भाग्य-घटमें विष ही विष भर दिया।

क्या संसार कभी इस ऋणके बोझसे हलका हो सकेगा कि रत्नावलीने अपने भाग्यके आकाशको अन्धकाराच्छन्न करके संसारको तुलसीदास—जैसे सन्त कविकी भेंट दी! उसकी भर्त्सनासे जो तीखा विष तुलसीदासकी नस-नसमें पैठ गया था, उसीने संसारमें अमृतकी ऐसी वर्षा की कि चिरकाल तक मानव-मन-सरोवर सूखा नहीं पड़ेगा। रत्नावलीके बलिदानमें ही एक अमर निर्माणका पावन बीज रखा था, जो अंकुरित हुआ, बढ़ा और आज उसकी घनी शाखाओंकी शीतल छायामें सन्तप्त जगकी आत्मा शान्ति पाती है।

एक समय चण्डीदासने कृष्ण-प्रेमके पावन स्रोतसे भारत-भूमिको प्लावित कर दिया था—पाठकोंको मालूम होगा कि उस महाकवि चण्डीदासकी प्रेरणा थी एक मामूली धोबिन—नाम था रामी। रामी उसी घाटपर कपड़े फींचती थी, जिसके ठीक सामने चण्डीदास अपनी बंसी डाले मछली मारा करता था। और वहींकी दृष्टिसे उन दोनोंमें प्रेमकी एक ऐसी आग भड़की, जिससे सारी वासनायें जलकर स्वाहा हो गयीं और वे आध्यात्मिक भाव-स्वर्गकी छवि दिखाकर संसारको मुग्ध कर गये। रामीके विषयमें चण्डीदासके बहुत-से पद हैं। स्वीकारोक्तिके लिए—

'शुन रजकिनी रामी
ओ दुटी चरण शीतल जानिया शरण लइनू आमि।'

शृङ्गारके अन्यतम कवि विद्यापतिको काव्यकी प्रेरणा लछिमाकी रूप-राशिसे मिलती थी। लछिमा राजा शिवसिंहकी पत्नी थी और विद्यापति उनके दरबारी कवि। लेकिन हलकोरोंके बीच रहते हुए भी कवि कमलकी तरह निर्लिप्त था। लछिमासे उसका कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं था कि संसार उसकी ओर अंगुली उठाये।

'डिविना कामेडिया' विश्व-साहित्यकी अमूल्य निधि है। इसके रचयिता थे महाकवि दांते। इस ग्रन्थमें फ्लोरेन्सकी एक लड़की बिएत्रिसकी निर्मल रूप-साधनाका अनिन्द्य सुन्दर फूल खिला है, जिसमें कविके सारे जीवनकी तपस्या और साधना सन्निहित है। उस सामान्य लड़कीके आकर्षणने दांतेकी लेखनीमें वह बल दिया कि उसकी वाणी अमर हो गयी और उसकी वाणीमें अमर होकर रही वह लड़की बिएत्रिस। अपनी पुस्तक 'विटा नोवा' में उस लड़कीकी बाबत कविने लिखा है—"उसपर नजर पड़ते ही मुझे लगता कि जहानमें मेरा कोई दुश्मन ही नहीं। करुणाकी धारासे मन-प्राण आप्लावित हो उठता। उस समय अपने दिलको चोट पहुंचानेवालोंको भी क्षमा करनेके लिए चित्त व्याकुल हो उठता।"

सबसे बड़े ताज्जुबकी बात यह है कि जिस बालिकाके आकर्षणकी डोरमें कविका मन आजीवन बंधा रहा और उसकी सारी क्रियाशीलता उसीको रूप देनेमें तमाम जिन्दगी केन्द्रित रही, उस बालिकाको मुश्किलसे जीवनमें कई बार कविने सिर्फ देखा ही था। कविकी पहली बार उसपर नजर पड़ी थी सन् १२७४ में, जब कवि सिर्फ नौ सालका था। और बिएत्रिस भी नन्हीं बच्ची थी। एक बार फिर फ्लोरेन्सकी सड़कपर कविने उसे देखा। अब वह युवती थी। दोनोंमें कोई बातचीत नहीं हुई, केवल कुछ कबूतर इस नीरव मिलनपर पुलक बताकर सिरपरसे उड़ गये। इसके बाद फिर दो-एक बार कविसे उसकी भेंट हुई—मगर वैसे ही चुप-चुप। बस, इस प्रेमका इतना ही इतिहास है। उन दोनोंने किसीके अधरोंका स्वाद न जाना, सांस महसूस न की, हृदयके कम्पनका अनुभव नहीं किया, मगर उनका प्रेम शाहजहांके ताजमहलकी तरह कालकी आंखोंमें युग-युगसे धूल झोंकता हुआ आज भी जीवित है!

बिएत्रिसकी शादी दूसरेसे हुई। यह खबर जब दांतेको मिली, तो वह धक्का न संभाल सका। उसने खाटकी शरण ली। बिएत्रिस मर गयी, तब भी दांते बीमार था। यहां तक कि कवि मौतके मुंहमें जाते-जाते बचा। उसके बाद उसकी पकी हुई वेदना लेखनीकी नोकपर उतर आयी। बिएत्रिसकी मृत्युके दो ही साल बाद कविने विवाह किया था और उससे उसके सात बच्चे भी हुए। परन्तु 'डिविना कामेडिया'में कविकी वह मानस-प्रतिमा ही प्रस्फुटित हुई, जो कामना बनकर कविके अन्तर्प्रदेशमें छा रही थी। कवि-पत्नीका भूलसे भी सारी पुस्तकमें कहीं जिक्र नहीं आया है।

कवि पेट्रार्कने भी अपने छन्दोंमें बिएत्रिसकी तरह एक बालिकाका रूप-मन पिरो रखा है। यह बालिका है 'लोरा।' लोरासे कविका कोई सम्बन्ध नहीं था, वह फकत भावका रूप-भर थी, परन्तु उसकी स्मृतिकी सुरभिसे आज भी साहित्योद्यान महमहा रहा है। यह बतानेमें इतिहासकी जुबान

बन्द है कि लोरा कौन थी। लेकिन इतना तो अवश्य ही जाना जा सका है कि वह गैरकी पत्नी थी। कविसे उसकी भेंट कम ही थी। सन् १३४७ के प्लेगमें लोरा चल बसी और वह वेदना कविकी वाणीमें जाग उठी। लोराकी स्मृतिने कविसे अनेक मार्मिक कवितायें लिखायीं। कवि रातकी नीरवतामें अक्सर देखा करता कि लोरा उसके पास खड़ी है और कभी-कभी उसे आकाशके छायापथ या नक्षत्र-लोककी ओर निर्देश करती है।

अक्सर कविके पीछे प्रेमका एक ऐसा ही इतिहास है और उनमें ऐसे उदाहरण भी कम नहीं, जहां नारीसे ही उन्हें पावन-प्रेरणा मिली, ऐसी प्रेरणा, जो कलुषकी सीमासे सर्वथा परे है। कविवर 'प्रसाद' की भी ऐसी ही एक प्रेयसी थी। उस विषयमें पं० विनोदशङ्कर व्यासने 'प्रसाद और उनका साहित्य' में लिखा है—"प्रसादजीकी अल्हड़ जवानीमें भी एक घटना ऐसी ही घटी थी। यह मुझे बादमें पता लगा, जब १३ फरवरी, १९३६ ई० को मैंने उनसे पूछा—'आपकी रचनाओंमें प्रेमका एक उज्ज्वल रहस्य छिपा हुआ है, लेकिन मुझे इतने दिनोंमें भी आपने यह नहीं बताया कि आपकी वह अज्ञात प्रेयसी कौन थी?' इसका उन्होंने जो कुछ उत्तर दिया, उसके पश्चात् फिर इस सम्बन्धमें मैंने उनसे कुछ नहीं पूछा।"

पं० सुमित्रानन्दन पन्तके 'पल्लव' की पंक्ति-पंक्तिमें जो एक पावन छवि बोलती है, वह क्या है, इस राजपर अभी तक रोशनी नहीं डाली जा सकी है। मगर भविष्य उस ओर निर्देश करेगा ही। शरच्चन्द्रने स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार किया है, नारीको मैं कभी गिरी हुई दृष्टिसे नहीं देखता। वास्तवमें नारी-चित्रणमें उन्हें कमालकी सफलता मिलनेका खास कारण उनके अपने जीवनकी घटना है, जो खुलकर भी पूरी तरह नहीं खुल पायी। 'श्रीकान्त' के प्रथम भागके अन्तमें उन्होंने एक बड़ी ही मार्मिक बात बतायी है कि 'महत् प्रेम केवल पास ही नहीं खींचता, दूर भी ठेल देता है।' क्या पता, उनकी साधना भी किसी महीयसीके विछोह-में ही थी, जो सुन्दर थी, अमलिन थी, पूत थी।

साधारणतया यह बात सिद्धान्त-सी बन गयी है कि कवियोंका दाम्पत्य-जीवन सुखी नहीं होता। इसी बातको मद्दे नजर रखते हुए किसीने कवि-पत्नीके भाग्यपर कहा है—

'कहा जाता है कि कवि अपनी कवितामें जो उपदेश देता है, उसे वह अपनी वेदनासे सीखता है; पर ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें कितनों ही ने यह आवश्यक समझा कि उनकी पत्नियां भी कष्ट सहें।'

मगर यही सत्य सोलहो आना नहीं, गो कि इसमें भी बहुत हद तक सत्यता है। कवि ब्राउनिङ्गके बारेमें ऐसा कहा जाता है कि कोई भी इतना अधिक दाम्पत्य-सुख नहीं भोग सका। जब उसने कुमारी मैरेटसे शादी की थी, तो वह पैंतीस वर्षकी थी और सदा बीमारियोंसे लाचार रहती थी। लोगोंका यह विश्वास था कि इस विवाहमें कविने अपने जीवनके सारे सुखोंकी आहुति दी। मगर कविका संसार स्वर्गमें बदल गया। इसीलिए कविने उस गिरजेकी तमाम सीढ़ियोंको घुटने टेककर चूमा था।

साहित्यिक जीवनमें एना ग्रेवोनासे डोस्टावेस्कीको जैसा सहयोग प्राप्त हुआ था, वैसा संसारके कम ही लोगोंको नसीब होता है। एनासे उसने सन् १८६७ में विवाह किया था, जब वह २१ सालकी थी। इसके पहले तीन प्रेमिकायें उसे दगा दे गयी थीं। पहली थी मेरिया डोमेट्रियान, जो एक कप्तानकी पत्नी थी। ३३ सालकी उम्रमें डोस्टावेस्कीने पहली बार जीवनमें प्यार किया था। उस समय वह साइ-बेरियामें निर्वासित था। इसके बाद 'पोलिन' नामकी पढ़ी-लिखी लड़की उसे चाहने लगी। वह उससे ब्याह करनेको तैयार भी हुआ, पर वह धोखा दे गयी। फिर 'एना क्रोनको-वेस्की' नामकी शिक्षित महिलाने उसपर जादू डाला। वह भी दूसरेके साथ भाग निकली। अब एना ग्रेवोना आयी। इसका डोस्टावेस्कीके जीवनमें बड़े विचित्र ढङ्गसे प्रवेश हुआ। उन दिनों उसकी आर्थिक दशाकी मिट्टी पलीद हो गयी थी और वह बड़े कष्टोंमें था। इसलिए एक प्रकाशकको उसने बौण्ड लिख दिया कि एक मासके अन्दर अगर एक उपन्यास लिखकर न दूं, तो हर्जाना दूंगा। मगर काम आसान न था। इसलिए उसने एक शीघ्र-लिपि स्कूलमें एक लेखकके लिए लिख भेजा। लेखक-रूपमें जो आयी, वह थी एना ग्रेवोना। उसके चलते वह अपना प्रसिद्ध उपन्यास 'जुआड़ी' सिर्फ २६ दिनोंमें पूरा कर सका। एनाने उसकी उन्नति और सुखमें पूर्ण सहयोग दिया। एक बार टाल्सटायने उससे पूछा था कि डोस्टावेस्की किस तरहका पुरुष था? तो वह

बोली–'अपने जीवनमें मैंने इसके जैसा सहृदय, दयालु और उदार आदमी दूसरा नहीं देखा।'

सुखी दम्पतिके उदाहरणके लिए अंगरेज कवि रासेटीका नाम गर्वके साथ लिया जा सकता है। कवि अपनी प्रियतमाको प्राणोंसे भी अधिक प्यार करता था। जब उसने अन्तिम सांस ली, तो कवि शोकसे व्याकुल हो उठा। जब कवि-पत्नीकी लाश कब्रमें सुलायी गयी, तो वहां बैठकर कविने अपनी सारी कवितायें एक-एककर सुनायीं, जैसे वह जाग रही हो। फिर लाशके साथ अपनी पाण्डुलिपि भी दफना दी। सात वर्षों तक लोग पाण्डुलिपिको कब्रसे निकालनेकी अनुमति मांगते रहे, अन्तमें कविने अनुमति दी। कवितायें मज़ारके अंधेरेसे प्रकाशमें आयीं और आज भी साहित्यका गौरव बढ़ा रही हैं।

जर्मन कवि हेनका विवाहित जीवन भी बड़ा आनन्दमय था। उसकी पत्नी माथिल्दा पढ़ी-लिखी तो न थी, किन्तु थी अनन्य सुन्दरी। वह चित्र-सी सदा प्रसन्न रहती और अपनी सेवासे स्वामीकी सारी चिन्ता, शोक, थकावट दूर कर देती। फिर भी हेन उसे पीटा करता और यह पीटनेका दिन था प्रत्येक सोमवार। एक दिन हेनका मित्र वेल आया, तो कवि बोला, माथिल्दाको फिर पीटना होगा—अच्छा, तुम बैठो। और वह पर्दा उठाकर अन्दर चला गया। अपने दुर्बल हाथोंसे उसने पत्नीपर प्रहार किया—हौले-हौले और जोरसे बोला—खूब हुआ, इस गुस्ताखीकी यही सजा है। यों माथिल्दा हेनसे कई गुनी बलवान थी, फिर भी रोती हुई वह पतिके चरणोंमें लोट गयी और उसके एक पांवको अपनी छातीपर रख लिया। मित्र महोदयने पर्देसे झांककर देखा, तो माथिल्दा हंस रही थी!

रोग-शय्यापर पीड़ित हेनके कठिन दिनोंको माथिल्दा ही थी कि आनन्दमय कर सकी थी। एक दिन पत्नीको पास बुलाकर बड़े प्यारसे हेनने कहा—माथिल्दा, मेरे मरनेके बाद तुम फिरसे अपना ब्याह कर लेना। माथिल्दाको चोट तो लगी, पर उसने पूछा–क्यों? 'इसलिए कि एक ऐसा आदमी भी होगा, जिसके दिलमें मेरे लिए सहानुभूति होगी।' निर्विकारकी नाईं माथिल्दाने उत्तर दिया था—"जो चाहो सो कह लो, मगर मैं जानती हूं, मेरे बिना तुम्हारा काम नहीं चलनेका!"

वसीयतमें अपनी सारी जायदाद माथिल्दाके नाम लिखते हुए उसने लिखा था—'मेरी सारी सम्पत्तिकी अधिकारिणी मेरी पत्नी माथिल्दा है, जिसने सुन्दरो एवं पतिपरायणा होनेके साथ मेरे जीवनको आनन्दमय बनाया।'

कवि वर्ड्सवर्थका दाम्पत्य-जीवन ईर्ष्याकी वस्तु था। मेरी हचिनसनको ही उन्होंने पत्नी-रूपमें पाया था, जो उनकी मानस-प्रतिमा थी। जीवनकी अन्तिम घड़ी तक उसके प्रति वर्ड्सवर्थका प्यार वैसा ही बना था।

उसके पत्नी-प्रेमका प्रमाण इस वाकयासे मिलता है कि एक बार उसका मित्र उसके विषयमें लिखे गये किसी आलोचकके कुछ निबन्ध उसे सुनाने गया। कवि उन निबन्धोंको सुननेसे इनकार कर गया। लाख सिर मारा, वह राजी न हुआ। लाचार होकर मित्र बोला—खैर, न सही, मगर जरा इस स्थलको तो सुनो, लिखा है, वर्ड्सवर्थकी स्त्री आदर्श पत्नी है। बूढ़े कविकी आंखोंमें नूर चमक आया। बोला—सत्य है, बिलकुल सत्य। फिर निबन्धोंको पढ़ने देनेमें भी उसे कोई आपत्ति नहीं हुई।

और एक बारका जिक्र है, कोई लेक इलकेकी यात्रासे लौटा। लोगोंने पूछा—वहां क्या देखा तुमने? वह बोला—एक वृद्ध दम्पति। बूढ़ेकी आंखोंकी रोशनी बुझ गयी है, बूढ़ीकी भी कमर झुक चली है। लेकिन लगता ऐसा है कि अभी उनकी अभिसार-रात्रिका अन्त नहीं हुआ है!

हां, अंगरेज महाकवि चासर और मिल्टनका विवाहित जीवन सुखमय नहीं रहा। मिल्टनने तीन शादियां कीं। पहली की थी पैंतीस सालकी उम्रमें पावेलसे। चूंकि कविकी दिन-चर्या इतनी कठोर और घड़ीकी सुई-सी अनिवार्य थी कि एक मास तक किसी तरह उसका साथ निबाहकर वह भाग खड़ी हुई। वह फिर खुद पतिके कदमोंपर आ गिरी, जब उसने सुना कि मिल्टनकी दूसरी शादी होनेवाली है। चार बच्चोंको जन्म देकर मेरी पावेल चल बसी। कविने फिर दूसरी स्त्रीका पाणिग्रहण किया, जो कुछ ही दिनोंके बाद प्रसव-वेदनासे मर गयी। इसके बाद एलिजाबेथ मिनशुलेसे उसने शादी कर ली। इसने तो कविके रहे-सहे सुखको भी मिट्टीमें मिला दिया। अन्ध कविके आगे किसीने उसकी तीसरी पत्नीकी तारीफमें कहा कि वह गुलाब है। इसपर मिल्टनने कहा—

'मेरे आंखें नहीं, रङ्गकी बहार तो मैं क्या देखूं, मगर काँटे खूब चुभते हैं, गुलाब हो तो ताज्जुब नहीं !'

प्रेमके लिए महाकवि चासर ऐसा दुखी नहीं होता, अगर पत्नीके अतिरिक्त उसके दूसरी प्रेमिका न रही होती। दो नावोंपर पांव होनेकी वजहसे वह सदा दुखी ही रहा और विवाहके सम्बन्धमें उसकी धारणा कभी अच्छी नहीं बन सकी।

जर्मन महाकवि गेटेका स्वभाव इससे उस फूलपर मंड़रानेवाले भौंरेकी तरह था। मरते दम तक वह नयी-नयी प्रेम-कहानियां जोड़ता रहा। उसने बहुतेरी नारियोंसे प्रेमका नाता जोड़ा था। अट्ठावन सालकी उम्रमें उसने बलपियससे, फिर चौहत्तर वर्षकी अवस्थामें फ्रालिन वान ल्यूजोसे शादी की और बादमें मैडम जिमानोस्कासे भी प्रेम करना शुरू किया।

उसने उसी बातको चरितार्थ किया, जिसे उसने अपनी आत्म-कथामें लिखा है। अपनी आत्म-कथामें उसने लिखा है कि बचपनमें मैं कबूतरके पङ्खों और फूलोंकी एक-एक पत्ती नोचकर, यह देखता था कि वे जुड़ी किस तरह हैं। और व्यावहारिकतामें भी उसने अपने बचपनकी उसी सनकका परिचय दिया। इसीलिए मानसिक अशान्ति और प्रेमकी अतृप्त प्यास उसे जीवन-भर जलाती रही।

फ्रान्सीसी कवि और कथाकार विक्टर ह्यूगोको भी इस दिशामें कभी शान्ति न मिली। पहले उसने एडिलीसे शादी की। वह दुश्चरित्रा थी। उसके विक्टरसे चार सन्तानें हुईं, फिर भी उसने दगा की। फिर उसने जुलिएट नामकी एक अभिनेत्रीको अपनाया। जुलिएटने विक्टरको बड़ी मदद पहुंचायी; परन्तु अविश्वासके मारे वह निशदिन जलता रहा। इसपर जुलिएटने एक दिन उससे कहा—"तुम्हें मुहब्बतके साहित्यमें अभी बहुत कुछ सीखना रह गया है। अब शुबहाकी जगह प्रेम, गुस्सेकी जगह प्रेम, शिकायतकी जगह प्रेम और द्वेषकी जगह भी प्रेमका सबक लो।"

उम्र ढलनेपर जुलिएटकी ओरसे उदासीन होकर विक्टर एक पेटण्ट वियर्डकी पत्नीसे प्रेम करने लगा था। मगर जुलिएटने उसे अन्त तक निबाहा। उसने साहित्यिक कार्यमें ही उसे मदद न दी, बल्कि पहली पत्नी एडिलीको भी सौख्यके सूत्रमें बांधा था।

———

आरती

दीपशिखा पै मैं वारी
कञ्चन कोप्र सब हारी !
लै आरती उज्यारी
बाके ढिग गयी
ता दिनासे जारी।
घीको दियो जराये वाये उजारन गयी हती,
बारि-बारि बारि गयी
जारि-जारि फूल भयी
जारि गयी जे बाती,
बाके ढिग गयी ता दिनासे जारी !
अजहूं फूलन बिच सोहत हैं,
सारे फूलनमें मैं हारी
जाकी ज्योत्सना कारी-कारी !
बाके ढिग गयी ता दिनासे जारी।

—अलखमुरारी हजेला, एम० ए०

शिक्षाका सच्चा स्वरूप

श्री काशिनाथ त्रिवेदी

हमारे देशमें इधर करीब डेढ़ सौ वर्षोंसे जो शिक्षा-प्रणाली प्रचलित है, वह देशके लिए वरदान-स्वरूप सिद्ध होनेके बदले अभिशाप-रूप ही सिद्ध हुई है। ब्रिटिश सरकारने जिस उद्देश्यको लेकर हमारे देशमें यह शिक्षा-प्रणाली शुरू की थी, वह उद्देश्य सोलहो आने सफल हुआ है, इसमें सन्देह नहीं। इस प्रणालीके फल-स्वरूप देशके करोड़ों स्त्री-पुरुष और बालक आज भी शिक्षासे वञ्चित हैं और जब तक यह रहेगी, वे वञ्चित ही रहेंगे। डेढ़ सौ वर्षोंके सतत प्रयत्नोंके बाद भी—यदि प्रयत्न सचमुच सच्चे दिलसे, सही दिशामें किये गये हों—आज इस देशमें सौमें दससे ज्यादा स्त्री-पुरुष पढ़े-लिखे नहीं हैं। इन दसमें भी सच्ची शिक्षा-प्राप्त तो बहुत ही कम हैं—दालमें नमकके बराबर! यह इस शिक्षा-प्रणालीका बड़ेसे बड़ा दोष है। दूसरा दोष, जो भीषण रूपमें आज देशके सामने मौजूद है, यह है कि इस प्रणालीके अनुसार लिख-पढ़कर तैयार होनेवाले स्त्री-पुरुष आज लाखोंकी संख्यामें घोरतम बेकारी और बेबसीका अनुभव कर रहे हैं—नौकरी छोड़कर दूसरा कोई स्वतन्त्र काम करनेकी शक्ति या इच्छा उनमें पायी ही नहीं जाती। स्वावलम्बन, स्वाभिमान, स्वदेश-प्रेम, स्वातन्त्र्य और सेवापरायण जीवनका कोई माद्दा ही उनमें पैदा नहीं हो पाता। यही वजह है कि पढ़-लिखकर तैयार होनेके बाद भी इस अभागे देशके अधिकांश नवयुवक और नवयुवतियां देश-सेवा या समाज-सेवाके काममें अपने समय और अपनी शक्तियोंका सदुपयोग करनेकी अपेक्षा अधिकतर अपना सारा समय और सारी शक्ति व्यर्थके कामोंमें बिताती नजर आती हैं। इस दुःखद और लज्जा-स्पद स्थितिका एक कारण यह भी है कि आजकलके स्कूलोंमें जिस प्रकारकी शिक्षा दी जाती है, उसमें देशके जीते-जागते प्रश्नोंका कोई स्थान नहीं होता। छात्रोंको सारी शिक्षा, शुरूसे आखिर तक, नीरस और निर्जीव पुस्तकों द्वारा स्कूलकी चहारदीवारीके अन्दर ही दी जाती है। स्कूलसे बाहरकी विशाल दुनियाके साथ विद्यार्थियोंका कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। इससे विद्यार्थी अक्सर ही एकाङ्गी जीवन बितानेके आदी हो जाते हैं, जीवनमें उनके एक तरहकी नकली नवाबी आ जाती है। फलतः समाजके सुख-दुःखमें शामिल होकर सुखी-दुःखी होनेका बहुत ही थोड़ा अवसर उन्हें अपने विद्यार्थी-जीवनमें मिलता है। क्या स्कूलोंमें और क्या कालेजोंमें, प्रायः सर्वत्र केवल किताबी शिक्षा ही दी जाती है। छात्रोंको अपने जीवनके पन्द्रह-बीस वर्ष लगातार किताबोंके ही बीचमें—अच्छी-बुरी किताबोंके बीचमें—बिताने पड़ते हैं। इस दरमियान उन्हें हाथ-पैरसे काम करनेके बहुत ही थोड़े अवसर मिलते हैं। खेल-कूद, कवायद और सैर-सपाटेके कुछ मौकोंको छोड़कर बाकी ऐसे मौके उनके जीवनमें बहुत ही कम आते हैं, जब उन्हें शरीरसे काफी मेहनत-मशक्कत करनी पड़ती हो। इस प्रकार वर्षों तक बुद्धि-प्रधान वातावरणमें जीने और बुद्धि द्वारा दुनियाकी बातोंका अधिकसे अधिक आकलन करनेके बाद जब वे वास्तविक जीवनके क्षेत्रमें प्रवेश करते हैं, तो उनके सामने कठिनाइयोंका एक पहाड़-सा आ खड़ा होता है। अक्सर उनकी हिम्मत टूट जाती है; आशा निराशामें बदल जाती है; सुख-स्वप्न भङ्ग हो जाते हैं। भीषण सङ्घर्ष मुंह बाये सामने खड़ा नजर आता है। इस नितान्त नये जीवनमें जिन विकट परिस्थितियोंका सामना उन्हें करना पड़ता है, उनके लिए वे कभी अपनेको तैयार नहीं पाते। ऐसी दशामें जीवनके विषम सङ्घर्षपर विजय पानेके लिए उन्हें अपनी जिन्दगीके दो-चार साल और खर्च करने पड़ते हैं। यह सब एक तरहसे राष्ट्रके धन और उसकी शक्तिका अक्षम्य अपव्यय ही है। इसके सिवा, इस प्रचलित शिक्षा-प्रणालीके कारण हमारे छात्रोंमें और जो अनेक खराबियां और कमजोरियां पैदा हो जाती हैं, वे भी कम हानिकारक नहीं होतीं।

असलमें शिक्षा पाकर विद्यार्थीको इस योग्य बन जाना चाहिए कि वह दुनियाके किसी भी कोनेमें जाकर, कैसी भी परिस्थितिमें, अपने पुरुषार्थ और कौशलके बल अपना जीवन स्वाभिमानपूर्वक, सुखसे बिता सके और अपने अवकाशके समयका उपयोग राष्ट्र-निर्माणकारी कार्योंमें कर सके। जब

तक देशमें इस तरहकी शिक्षाका व्यापक प्रबन्ध नहीं होता, देशके नवयुवकों और नवयुवतियोंसे राष्ट्र-निर्माणके काममें मददकी बहुत आशा नहीं रखी जा सकती। प्रश्न केवल एक प्रणालीको बदलकर दूसरी प्रणाली चलानेका नहीं है, बल्कि एक दृष्टिके स्थानपर दूसरी दृष्टिको और जीवनकी एक धाराके बदले दूसरी धाराको चलानेका है। जो दृष्टि और जो धारा आज चल रही है, उसके प्रवाहमें निर्मलता और विशुद्धता नहीं है। उसमें वेग और सामर्थ्यका भी अभाव है। वह अत्यन्त शिथिल और क्षीण है। उसका स्रोत दूषित है। उसके कूल-किनारे अतिशय संकुचित हैं। और, उसकी उपज बहुत ही निराशाजनक है। इस सारी परिस्थितिको बदलनेकी और इसके स्थानपर एक नितान्त नयी एवं क्रान्तिकारी परिस्थितिका निर्माण करनेकी बड़ी आवश्यकता है।

यह तो एक मानी हुई बात है कि यह कार्य आजकी स्थितिमें किसी विदेशी या विमुख सरकार द्वारा सम्पन्न नहीं कराया जा सकता। आजकलकी हमारी सरकारें इस विषयमें इतनी गैर-जिम्मेदार हैं कि उनसे किसी प्रकारके क्रान्तिकारी अथवा लोकहितकारी परिवर्तनकी आशा रखना व्यर्थ ही है। अतएव शिक्षामें क्रान्तिके लिए समाजको ही कटिबद्ध होना पड़ेगा। अगर समाज इस विषयमें अपनी जिम्मेदारीको समझकर तत्परताके साथ, सङ्गठित रूपसे, आगे बढ़नेका यत्न करे, तो बहुतेरा काम आसानीसे हो सकता है। इस दिशामें समाजको सङ्गठित और तत्पर देखकर सम्भव है कि विमुख सरकारोंको भी अभिमुख होना पड़े—विवश होकर समाजके साथ सहयोग करना पड़े। सरकारोंको इसके लिए विवश करनेकी ताकत भी समाजके पास ही है। जो समाज जाग्रत है, कर्तव्यपरायण है, सङ्गठित और दृढ़निश्चयी है, उस समाजका प्रभाव राज्यपर भी पड़ता ही है। राज्य उसकी उपेक्षा करके अधिक समय तक जी नहीं सकता।

पुराने समयमें तो राजा और प्रजाके स्वार्थ प्रायः एक-ही-से होते थे। इसलिए राजा अपनी प्रजाको सम्पूर्णतया सुशिक्षित बनानेकी भरपूर चेष्टा करता था। उसके राजधर्मका यह एक महत्त्वपूर्ण काम होता था। जिस राजाके राज्यमें लोग निरक्षर या अनपढ़ और अज्ञान पाये जाते थे, उस राजाका राज्य टीका-पात्र माना जाता था, भले आदमी उसमें बसना पसन्द नहीं करते थे और राजा स्वयं भी इसमें हीनताका अनुभव करता था। यही कारण था कि पुराने जमानेमें हमारे देशकी संस्कृतिने इतना सुन्दर और सुव्यवस्थित विकास किया था और सारे संसारमें सर्वश्रेष्ठ होनेका गौरव प्राप्त किया था।

दुर्भाग्यसे आज हमारी यह स्थिति नहीं रही है। राजा और प्रजाके स्वार्थ अत्यन्त भिन्न हो गये हैं। दोनोंके बीच आत्मीयताके स्थानपर परायेपनकी कठोर और कलुषित दीवारें खड़ी हो गयी हैं, जिनके कारण राजा प्रजाको और प्रजा राजाको तुच्छ एवं तिरस्करणीय समझने लगी है। राजा अपने राजधर्मसे भ्रष्ट हो गया है। प्रजा अपने धर्मसे गिर गयी है। यथा राजा तथा प्रजा! राजाको अपने भोग-विलासों और क्षुद्र स्वार्थोंसे ही फुरसत नहीं मिलती। उसका निजी और सार्वजनिक जीवन कई कारणोंसे अत्यन्त जकड़-बन्द और दयनीय हो उठा है। वह इच्छा रहते हुए भी अपनी प्रजाके लिए कुछ कर नहीं सकता। उसकी नकेल उसके हाथमें नहीं है। वह विवश है और परवश है। प्रजामें भी इस तरहकी लाचारी और बेबसी बढ़ गयी है। उसमें वह पुरुषार्थ और तेज नहीं रह गया है, जिसके बल वह अपने राजा और राज्यको, बन्धनमुक्त कर सके और स्वयं भी दासत्वके बन्धनोंसे मुक्त हो सके।

इस भीषण परिस्थितिमें आशाका कोई चिह्न कहीं नजर आता है, तो वह यही है कि देशके कुछ पढ़े-लिखे और जाग्रत सज्जनोंने इस परिस्थितिसे ऊबकर बिलकुल नये रास्तेपर चलनेका और नयी परिस्थिति निर्माण करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया है। आशा करनी चाहिए कि धीरे-धीरे इन मुट्ठी-भर लोगोंका दल और बल बढ़ेगा और इनकी शुद्ध, सात्विक तपश्चर्याके परिणाम-स्वरूप देशके अन्यान्य क्षेत्रोंकी भांति शिक्षाके क्षेत्रमें भी जल्दी ही अभूतपूर्व क्रान्ति होगी। इस क्रान्तिके फलस्वरूप नयी पीढ़ीके बालकों और बालिकाओंको जो शिक्षा घरों और स्कूल-कालेजोंमें मिलेगी, वह आजकलकी शिक्षासे नितान्त भिन्न, उन्नत और परिष्कृत स्वरूपकी होगी। दूसरे शब्दोंमें, उनके लिए जिस शिक्षाका प्रबन्ध किया जायगा, जिसे वे स्वतन्त्र वातावरणमें स्वयं स्फूर्तिके साथ ग्रहण करेंगे, वह उनके रात-दिनके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली, उन्हें हर तरहसे स्वावलम्बी और स्वाभिमानी बनानेवाली, और उनके तन, मन एवं आत्माकी सभी शुद्ध

शक्तियोंका विधिवत् विकास करनेवाली होगी। इस नयी शिक्षाको पानेवाले विद्यार्थी किताबोंके कीड़े न रह जायंगे। उनका भौगोलिक और सामाजिक ज्ञान स्कूल और घरकी चहारदीवारी तक ही सीमित नहीं रहेगा। वे जीवनमें कामसे जी चुरानेवाले न होकर काममें जीवनका सच्चा रसानुभव करनेवाले बनेंगे। स्वदेश और स्वजातिकी रक्षा तथा उन्नतिके लिए अपना सब कुछ स्वाहा करनेकी तैयारी उनके जीवनकी विशेषता होगी। वे परावलम्बन और पराधीनताके कट्टर दुश्मन होंगे। पाखण्ड और परपीड़नको उनके जीवनमें रञ्च-मात्र भी स्थान न मिलेगा। समता, बन्धुता और स्वतन्त्रता ही उनके जीवनका ध्यान-मन्त्र होगा। देशहित, समाजहित या परिवारके हितके लिए सभी प्रकारकी आवश्यक मेहनत-मजदूरी करनेमें वे सात्विक गौरवका अनुभव करेंगे। सेवा और त्याग उनके जीवनके दो महान् व्रत होंगे।

शिक्षाका यह सच्चा स्वरूप देशके सामने तभी प्रकट हो सकेगा, जब देशके अधिकांश विचारशील स्त्री-पुरुष इस सम्बन्धकी सभी बातोंका गम्भीरतापूर्वक ऊहापोह करके सङ्गठित रूपसे, दृढ़ निश्चयके साथ, शिक्षाके नव-निर्माणमें अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे काम करनेका शुभ सङ्कल्प कर लेंगे। शिक्षा मानव-जीवनकी सबसे बड़ी बिभूति है। धन, वैभव, पद, अधिकार आदि सभी इसके सामने नगण्य हैं। लेकिन दुर्भाग्यसे आज शिक्षाका और शिक्षितोंका स्थान समाजमें बहुत गिर गया है। इसके कारणोंकी खोज करके उन्हें मिटानेका काम भी हम शिक्षितोंको ही करना होगा। जब तक हम अपने इस कर्तव्यको निर्विकार भावसे अङ्गीकार नहीं करते, हमें समाजमें प्रतिष्ठा और गौरवका स्थान भी प्राप्त नहीं हो सकता।

प्रतिष्ठा और गौरव मांगे नहीं मिलते—ये उन्हींको प्राप्त होते हैं, जो चुपचाप, श्रद्धापूर्वक अपने धर्मका सचाईके साथ पालन करते हैं। यह तो मानना ही होगा कि हमारे देशके अधिकांश शिक्षितोंने अपने इस धर्मका यथोचित पालन नहीं किया है—न आज ही कोई करना चाहता है। न्याय तो कहता है कि वे अपने सिर लगे हुए अकर्मण्यताके इस कलङ्कको जल्दी ही धो डालें और स्वयं सच्चे शिक्षित बनकर अपने देशवासियोंको भी सच्ची शिक्षाका अमृत पान करायें।

स्पष्ट ही यह काम आसान नहीं है। जब तक इसके पीछे पड़नेवाले लोग अपने आपको साधक नहीं बना लेते हैं, तब तक अधकचरे दिलसे किया हुआ उनका काम उन्हें कभी भी सिद्धिकी ओर नहीं ले जा सकेगा। नव-निर्माणका प्रत्येक काम जीवनमें साधनाकी अपेक्षा रखता है। बिना तपःपूत साधनाके जीवनमें छोटी-मोटी सिद्धि भी प्राप्त नहीं होती! महान् सिद्धिकी तो बात ही क्या? जीवनमें नवचेतन उत्पन्न करनेके लिए, उसे नयी ज्योतिसे ज्योतित करनेके लिए, जिस भगीरथ साधनाकी आवश्यकता है, उसका खयाल हरएक साधकको हमेशा अपने सामने जाग्रत रखना पड़ता है। शिक्षाके क्षेत्रमें आज जो घोर अन्धकार फैला हुआ है, उसको मिटानेके लिए देशको ऐसे लाखों साधकोंकी आवश्यकता है। ये साधक किसी सरकार या सङ्गठनके फरमानसे पैदा नहीं हो सकते। कोई समाज जोर-जबर्दस्तीसे अपने अन्दर ऐसे साधक उत्पन्न नहीं कर सकता। साधना स्वेच्छा और स्वयं-स्फूर्तिकी सन्तान होनी चाहिए। जो आदमी बाहरी दबावसे किसी कामको हाथमें लेता है, वह कभी उसे उज्ज्वलतापूर्वक सम्पन्न नहीं कर सकता। शिक्षाका सम्बन्ध मनुष्यके समूचे जीवनसे है। मनुष्यका जीवन महान्, अनन्त और विविध है। साधकोंको इसी महान्, अनन्त और विविध मानव-जीवनमें दिव्य क्रान्ति लानेकी चेष्टा करनी है। उनका यह काम तभी सिद्ध हो सकता है, जब वे इसके पीछे फकीर बनकर सम्पूर्ण श्रद्धासे इसकी सिद्धिमें लग जायें। ईश्वर करे, देशमें ऐसे साधकोंकी संख्या दिनों-दिन बढ़े और उनके तप एवं तेजके प्रभावसे शिक्षा-जगत्‌का घोर अन्धकार जल्दी ही निर्मल और प्राणप्रद प्रकाशमें परिणत हो जाय! सच्ची शिक्षाका यही लक्ष्य है—यही उसका सच्चा ध्यान-मन्त्र है!



महापुरुष कैसे बनते हैं

श्री सन्तराम, बी० ए०

महान् व्यक्ति दो प्रकारके होते हैं। कुछ स्त्री-पुरुष अपने सहज गुणकी केवल दीप्तिसे ही विशेष गुणी या प्रतिभाशाली बन जाते हैं, जैसा कि वेङ्कटरमण गणितमें या जगदीशचन्द्र बसु विज्ञानमें। हममेंसे अधिकांश लोगोंमें उस प्रकारकी महत्ता नहीं है। परन्तु प्रबल व्यक्तित्व प्राप्त करनेके लिए एक ऐसा मार्ग भी है, जो हम सबके लिए खुला है। हम अपनेसे बड़ी किसी बातमें दिलचस्पी रखनेवाले बन सकते हैं। हम अपनेको उससे अभिन्न बनाकर उसके प्रतिनिधि हो सकते हैं। मनुष्य जितना अधिक स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा गांधी, राष्ट्रपति वाशिङ्गटन तथा लिङ्कन-जैसे पुरुषों और अहिल्याबाई, लक्ष्मीबाई, फ्लारेन्स नाइटिङ्गेल तथा डार्थी डिक्स-जैसी देवियोंके जीवन-चरित्रोंका अध्ययन करता है, उतना ही अधिक वह अनुभव करता है कि जन्मसिद्ध प्रतिभाकी दृष्टिसे वे साधारण लोगोंसे कुछ भी भिन्न न थे। उनकी प्रतिष्ठाका कारण हम लोग यह समझते हैं कि वे विदेह हो गये थे; उन्होंने स्वार्थको छोड़कर दूसरोंके कल्याणमें अपनेको लगा दिया था। किसी परोपकारके कार्यमें वे इतने लीन हो गये थे कि उस कार्यका विचार आते ही उन महान् व्यक्तियोंका विचार अपने आप हो आता है। गुरुकुल-शिक्षा-प्रणालीके साथ स्वामी श्रद्धानन्दका नाम, अछूतोद्धारके साथ महात्मा गांधीका नाम, वेद-प्रचारके साथ स्वामी दयानन्दका नाम अटूट रीतिसे सम्बद्ध है। एकका ख्याल आते ही झट दूसरेका ख्याल आ जाता है।

मनुष्य एक शून्यके समान है। इसका तब तक कुछ भी मूल्य नहीं, जब तक इसके आगे कोई अङ्क न रखा जाय। और वह अङ्क सदा कोई ऐसी चीज होती है, जिसका वह प्रतिनिधि होता है। महात्मा गांधीसे उस कामको अलग कर लीजिये जिसके वे प्रतिनिधि हैं, बाकी कुछ नहीं रह जायेगा। न उनमें शारीरिक सौन्दर्य है जिससे लोग आकर्षित हो सकें, न कोई विलक्षण प्रतिभा है जिसका लोग सम्मान करें। उनकी सत्य-निष्ठा और परदुःखकातरता ही उनकी महत्ताका मुख्य कारण है। जिस प्रकार एक साधारण-सा तार बिजलीकी धारासे चमक उठता है, उसी प्रकार यह मुट्ठी-भर हड्डियोंका पञ्जर अपनी देश-सेवाके प्रतापसे चमक रहा है।

ऐसे विशाल व्यक्तित्वोंमें इस सिद्धान्तकी क्रियाको देखना कठिन नहीं। परन्तु हममेंसे अधिकांशके लिए इससे भी अधिक महत्त्वकी बात यह देखना है कि हममें बहुत ही छोटे मनुष्य भी बड़ी-बड़ी बातोंके प्रतिनिधि हो सकते हैं। जल एक आवश्यक पदार्थ है; समूचे संसारकी उर्वरता इसीपर आश्रित है; परन्तु इसके प्रतिनिधियोंके परिमाण एक दूसरेसे बहुत ही भिन्न हैं। न केवल महासागर, न केवल बड़े-बड़े सरोवर और महानद, प्रत्युत प्रत्येक छोटा नाला, प्रत्येक पहाड़ी खड्ड, प्रत्येक झरना और प्रत्येक वर्षा-बिन्दु इस आवश्यक पदार्थका आवश्यक रूपसे प्रतिनिधि है। इसी प्रकार हममें छोटेसे छोटा व्यक्ति भी बड़ीसे बड़ी बातोंका प्रतिनिधि हो सकता है।

व्यक्तित्वका निर्माण कोई स्वार्थपरताकी बात नहीं, इसलिए इसकी प्राप्तिके लिए अहंभावमय विधियोंका विफल होना अवश्यम्भावी है। कुछ लोग जीवनको एक व्यवसाय समझते हैं और कुछ इसे एक कला। पहले प्रकारके मनुष्य जितना कुछ हो सके, जीवनमेंसे निचोड़कर निकाल लेना चाहते हैं और दूसरे, जितना कुछ हो सके, उसमें लगा देना चाहते हैं। पहले प्रकारके लोग दिनपर दिन छोटे और सङ्कीर्ण होते जाते हैं, दूसरे प्रकारके लोग फैलते और बढ़ते जाते हैं।

जीवनमें सबसे गहरा आनन्द निर्मायक होनेमें है। किसी अविकसित स्थितिको ढूंढ़ना, सम्भावनाओंको देखना, किसी ऐसी चीजके साथ, जो करने योग्य हो, अपनेको मिला देना, अपनेको उसमें डाल देना, और उसका प्रतिनिधि बन जाना—यह एक ऐसी सन्तुष्टि है, जिसकी तुलनामें बाह्य सुख तुच्छ हैं।

यह बात उस दशामें भी सत्य ही रहती है, जब निर्मा-

यकलाको वायुपर विजय पाने-जैसी भौतिक बातोंकी ओर फेर दिया जाता है। कुछ समय हुआ, एक अमेरिकन उड़ाकू पेनिसिलवेनियाके पर्वतोंमें गिरकर मर गया। उसकी देहपर एक पत्र मिला। वह "प्यारे वायुयान चलानेवालों और सहवासियोंके नाम" था। उसपर चिह्न किया हुआ था कि "मेरी मृत्युके बाद ही खोला जाय।" सुनिये उसमें उसने क्या कहा था—"मैं पश्चिम जा रहा हूं, परन्तु मेरा हृदय आनन्द-पूर्ण है। मैं आशा करता हूं कि जो भी थोड़ा-सा आत्मोत्सर्ग मैंने किया है, वह इस कामके लिए उपयोगी सिद्ध होगा। जब हम उड़ते हैं, तो लोग कहते हैं, ये मूर्ख हैं—परन्तु वायुयान द्वारा इस आश्चर्यजनक उड़ानसे प्रत्येक मनुष्य जगत्‌का उससे कहीं अधिक उपकार करता है, जितना कि जनता उसका उपकार मान सकती है। हम अपने प्राणोंको जोखिममें डालते हैं, हम अपने जीवन देते हैं, हम उड़नेकी कलाको मनुष्य-मात्रके लाभार्थ पूर्ण बनाते हैं—परन्तु मित्रो, इसको छोड़ना मत। मैं अभी तक भी तुम्हारे साथ हूं। तुम सबसे एक बार फिर मिलूंगा।"

आपके हृदयमें क्या उस साहसी युवकके लिए करुणाका भाव उत्पन्न होता है? मेरे हृदयमें तो बिलकुल नहीं। उसके छोटे-से जीवनमें उन सब ऊबे हुए आनन्दके खोजियोंसे कहीं अधिक रसिकता थी, जो अपनी आत्माओंको छिछले फेनसे तृप्त करनेका यत्न करते हैं। उसे अपनेसे बाहर किसी बातमें दिलचस्पी हो गयी, उसके लिए उसने साहस किया, और उसके लिए उसने आत्म-त्याग किया।

इस लेखके कई पाठक ऐसे होंगे, जिन्हें इस लेखको पढ़कर अपने आपसे लज्जा होने लगेगी। इन लोगोंका मस्तिष्क ठिकाने नहीं होता और इनके चित्तविकारोंमें गड़बड़ हो जाती है। बहुधा ये लोग गरीब और तङ्ग हाल नहीं होते; वरन् खाते-पीते, सुख-समृद्धिशाली, स्वार्थी, अपने तक ही सीमित रहनेवाले, परान्नजीवी होते हैं। इनको अपनेसे परे कभी भी कोई बात ऐसी नहीं मिलती, जो उनके विचारोंको उनके अपने आपसे बाहर ले जाये। मनुष्य उतना बड़ा होता है, जितने बड़े कामोंके लिए वह अपने जीवनको अर्पण करता है।

जिनको अपने सिवा और किसी बातमें दिलचस्पी नहीं, ऐसे जीवनसे तङ्ग आये और बहके हुए आधुनिक स्वार्थी लोगोंके विपरीत और उनसे उच्चतर एक और प्रकार है। इंगलेण्डके सुप्रसिद्ध राजमन्त्री विलियम ईवार्ट ग्लेडस्टोनकी मृत्यु नब्बे वर्षकी आयुमें हुई थी। वह कहा करता था कि यदि मैं सत्तर वर्षकी आयुमें मर जाता, तो मेरे जीवन-कार्यका उत्तम अर्द्ध-भाग बिना किया ही रह जाता। बुढ़ापेमें उसका-जैसा उत्साह होना एक बड़ी शानकी बात है। जब सन् १८६६ में रिफार्म बिलपर विवाद होनेको था, तो हाउस आफ कामन्समें खड़े होकर उसने एक बहुत ओजस्वी भाषण दिया। उसने कहा—"आप भविष्यके विरुद्ध युद्ध नहीं कर सकते। समय हमारे पक्षमें है। इस लड़ाईमें तो पताका हम उठाये हुए हैं; सम्भव है, शायद कुछ क्षणके लिए वह, हमारे मर जानेपर झुक जाये; परन्तु उसे निश्चित ही और शीघ्र ही विजय प्राप्त होगी।" उसने अपने व्यक्तित्वको फैलाकर उन कार्योंसे अभिन्न बना दिया था, जिनमें उसका विश्वास था और जो उसे प्रिय थे।

हे क्षुद्रहृदय, तर्काभासके शिकार, पेटपूजक, भ्रमयुक्त, आधुनिक स्वार्थपरायण लोगो, यदि तुम्हें इस लेखको पढ़नेका अवसर मिले, तो उपर्युक्तके समान अपना चरित्र बनाओ, तभी हम समझेंगे कि अन्तको तुमने जीवनका रहस्य मालूम कर लिया है।

एक सानन्द और भाग्यवान व्यक्तित्वका प्राप्त करना जितना ये अपनेमें ही बन्द रहनेवाले स्वार्थपरायण लोग समझते हैं, उससे कहीं अधिक कठिन है। वे अपनेको अपने सामाजिक बन्धनोंसे छुड़ा लेनेका यत्न करते हैं। वे यहां तक कहते हैं कि स्त्री-पुरुष-सम्बन्धमें कोई सामाजिक उत्तरदायित्व नहीं, वरन् यह सब कहीं, किसी भी समय और किसीके भी साथ एक बिलकुल व्यक्तिगत बात है। वे अपनेको हमारी पारस्परिक कर्तव्यताओंकी कल्पनासे मुक्त करके अपने व्यक्तिगत इन्द्रियानुभवोंमें ही आनन्द लेते हैं। वे भूल जाते हैं कि मूलतः आनन्द वैयक्तिक इन्द्रियानुभवकी बात नहीं। अपने इन्द्रियानुभवोंके ढेर लगा लो। जितने भी रोमाञ्च तुमसे हो सकते हैं, प्राप्त कर लो। अपने स्नायु-जालको जो भी अनुभव आये, उसके सामने उपस्थित करते जाओ। जब तुम इस क्रियाको सम्पूर्ण कर चुकोगे, तो तुम्हें पता लगेगा कि तुम्हें वही चीज मिल गयी है जो तुम मांग रहे

थे—अर्थात् तुम्हें स्नायुओंकी उकसाहट प्राप्त हुई है, न कि आनन्द। आनन्द कोई दूसरी ही वस्तु है। यह इस बातकी परम प्रसन्नता है कि तुम जीवित हो; यह वह स्वाद है, जो जीनेमें आता है और बरसों बना रहता है; यह अपने व्यक्तित्व-को फैलाकर परोपकारके उपयोगी कार्योंमें मिला देना है।

हम स्त्रियां और पुरुष बहुत कुछ पताकाके बांसके समान हैं। कई बांस बहुत ऊंचे होते हैं और कई छोटे। परन्तु झण्डेकी बल्लीकी महत्ता उसकी छुटाई या ऊंचाईपर नहीं, वरन् उसपर लगी हुई पताकापर है। ठीक पताकावाला छोटा-सा बांस गलत पताकावाले बहुत ऊंचे बांससे कहीं अधिक मूल्यवान होता है। जब मनुष्य अपना जीवन प्रायः समाप्त कर चुके, तो मैं समझता हूं, उसके लिए सबसे अधिक सन्तोषजनक बात यह है कि वह यह कह सके कि मुझे लज्जा है कि मैं अधिक उत्तम, अधिक ऊंचा और अधिक सीधा बांस नहीं था, परन्तु मुझपर जो पताका लहराती थी, उसके लिए मैं लज्जित नहीं।

———

क्षण-भरका मूल्य

श्री ब्रजकिशोर वर्मा 'श्याम'

"मैंने समयको नष्ट किया और अब समय मुझे नष्ट कर रहा है।"—शेक्सपियर।

बड़ी देर तक बेञ्जमिन फ्रेङ्कलिनकी दूकानके सामने घूमनेवाले एक व्यक्तिने अन्तमें पूछा—"इस किताबकी क्या कीमत है?"

क्लर्कने उत्तर दिया—'एक डालर।'

"एक डालर! इससे कम नहीं?"

'नहीं।"

खरीदनेवालेने थोड़ी देर इधर-उधर देखनेके बाद उससे पूछा—"क्या मि० फ्रेङ्कलिन भीतर हैं?"

"हां, अभी काममें लगे हुए हैं।"

"मैं जरा उनसे मिलना चाहता हूं।"

फ्रेङ्कलिन बुलाये गये और खरीदारने पूछा—"मि० फ्रेङ्कलिन, आप इस पुस्तककी कमसे कम क्या कीमत लेंगे?"

"सवा डालर।"

"सवा डालर! अभी तो आपका क्लर्क एक डालर कहता था।"

"ठीक है। लेकिन अपना काम छोड़कर आनेमें मेरा समय भी तो खर्च हुआ है न?"

खरीदार आश्चर्यमें पड़ गया और अपनी बातचीतको खत्म करनेके बिचारसे उसने फिर पूछा—"अच्छा, अब इसकी कमसे कम कीमत क्या लेंगे, बता दीजिये तो मैं ले लूं।"

"डेढ़ डालर!"

"डेढ़ डालर! वाह, अभी तो आप सवा डालर ही कह रहे थे।"

"हां, मैंने वह कीमत उस समय कही थी, पर अब तो डेढ़ डालर होगी और ज्यों-ज्यों आप देर करते जायंगे, किताबकी कीमत बढ़ती जायगी।"

ग्राहकने जेबसे पैसे निकालकर दे दिये और किताब लेकर घरका रास्ता लिया। उसे आज समयको धन अथवा विद्वत्तामें परिवर्तित कर देनेवाले स्वामीसे एक उत्तम शिक्षा मिल गयी।

एल० हूबरिट कहता है—"यह सब बातें जो मैंने करके दिखला दी हैं अथवा जिन्हें कर दिखानेका मैं अभिलाषी हूं, वे सब धीरे-धीरे, धैर्यसे, सतत कार्य-दृढ़ताके द्वारा पूरी की गयी हैं अथवा पूरी की जायेंगी। मैं एक घटनाके बाद दूसरी घटना, एक विचारके बाद दूसरे विचारके बलपर आगे बढ़ा हूं और यदि मैं कभी भी महत्त्वाकांक्षासे प्रेरित हो उठता हूं, तो इसी आशासे कि अपने देशके नवयुवकोंके सामने एक ऐसे उदाहरणको उपस्थित करूं, जिसके द्वारा वे समयके टुकड़ोंको—जिन्हें क्षण कहते हैं—काममें लाना सीखें।"

"अरे! अब भोजन करनेमें दस-पांच मिनट शेष हैं, भाई कोई काम नहीं हो सकता।"—यह बात घर-घरमें सुनी जाती

है। लोग यह कभी नहीं सोचते कि इन्हीं क्षणोंके द्वारा, इन्हीं पलोंके द्वारा भाग्यहीन कहलानेवाले बालकोंने दुनियामें बड़े-बड़े काम किये हैं। जब साधारण मनुष्य सोते थे, तब एल० हूबरिट काम करते थे; जब दूसरे ऐश-आराममें मग्न थे, तब वे सिर झुकाये अपने काममें लगे रहते थे। पार्लमेण्टमें बर्कका चकित कर देनेवाला भाषण सुनकर उसके भाईने कहा था—बड़े आश्चर्यकी बात है कि 'नेड' ने कुटुम्बकी सारी प्रतिभापर अपना ही अधिकार जमा लिया है। परन्तु मुझे याद आता है, जब लोग खेला करते थे, तब वह अपना काम करता था।

हेरेट बीयर स्टोबने अपनी सर्वोत्तम रचना "टाम काका-की कुटिया" को गृहस्थीकी अनेक उलझनोंके बीचमें ही लिखा था। भोजनका इन्तज़ार करनेमें जो समय बीत जाता था, उसी समयमें बीयरने 'फ्राउड' की रचना 'इंगलैण्ड' को पढ़ा था। जितने समय तक काफी उबलती थी, उतने समयका प्रतिदिन उपयोग करके लाङ्ग फेलोने 'इनफरनो' नामक ग्रन्थ-का अनुवाद कर डाला था। कवि बर्न्सने खेतोंपर काम करते समय अपनी अमर कीर्तिसे साहित्यको अलंकृत किया था। 'पेरेडाइज लास्ट' का लेखक महाकवि मिल्टन अंगरेजी 'कामनवेल्थ' और 'प्रोटेक्टरेट' का मन्त्री था। उसने अपने काम-काजके समयके क्षणोंका उपयोग करके इस अमर महा-काव्यकी रचना की। जान स्टुअर्ट मिलने अपना सर्वोत्तम ग्रन्थ ईस्ट इण्डिया हाउसके क्लर्कके जीवनमें लिखा था। गेलीलियो डाक्टरी करता था, परन्तु उसके बचे हुए क्षणोंके उपयोगके आविष्कारोंसे दुनियाने कितना लाभ उठाया? ग्लेडस्टन-सरीखा प्रतिभाशाली व्यक्ति अपनी जेबमें एक छोटी-सी पुस्तक हमेशा लेकर निकलता था। उसे चिन्ता रहती थी कि कहीं कोई घड़ी व्यर्थ न चली जाय।

माइकिल फरेडे किताबोंकी जिल्द बांधा करता था, साथ ही अपने बचतके समयको वैज्ञानिक प्रयोग करनेमें लगाया करता था। एक समय उसने अपने एक मित्रको लिखा—"मुझे समयकी आवश्यकता है। क्या ही अच्छा होता, यदि मैं किसी सस्ते भावपर वर्तमान महाशयोंके बचतके घण्टे—नहीं, दिनोंको खरीद सकता।"

दिन मित्रोंके वेशमें हमारे सामने आते हैं और कुदरतकी अमूल्य भेंट लाते हैं। अगर हम उनका उपयोग नहीं करेंगे, तो वे चुपचाप चले जायंगे। प्रत्येक सुन्दर प्रभात सुन्दर चीजें लेकर उपस्थित होता है। पर यदि हमने कलके तथा परसोंके प्रभातकी कृपासे लाभ नहीं उठाया, तो आजके प्रभातसे लाभ उठानेकी शक्ति क्षीण होती चली जायगी। यदि यही रफ्तार जारी रही, तो फिर हम इस शक्तिको बिलकुल ही खो बैठेंगे। खोयी हुई सम्पत्ति कमखर्ची और परिश्रमसे प्राप्त की जा सकती है, भूला हुआ ज्ञान अध्ययनसे प्राप्त हो सकता है, परन्तु नष्ट किया हुआ समय चला जाता है—हमेशाके लिए चला जाता है।

कुछ लोग समयके इधर-उधरके टुकड़ोंको बचाकर अच्छी शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं, दूसरे उन्हें खोकर हाथ मींजा करते हैं। ऐसा कौन नवयुवक है, जो आत्म-सुधारके लिए प्रति-दिन एक घण्टा भी निकाल नहीं सकता? चार्ल्स फ्रास्ट नामक चमार एक घण्टा रोज अध्ययन करके संयुक्त राष्ट्रका सबसे प्रधान गणितका आचार्य हो गया। जान हण्टर और नेपो-लियन केवल चार घण्टे सोते थे। थामस एडीसन केवल तीन घण्टे सोता था।

जान एडम्सका समय जब कोई नष्ट करता था, तो उसे बड़ा बुरा लगता था। इटलीके एक विद्वान्ने अपने कमरेके द्वारपर लिखा था—"जो व्यक्ति यहां रुकना चाहता है, वह मेरे काममें मदद दे।"

महान् पुरुष हमेशा ही समयके कन्जूस होते हैं। सिसेरी कहता था—"जिस समयको अन्य व्यक्ति जनताके दिखावे तथा मानसिक और शारीरिक आरामके लिए खर्च कर देते हैं, उसे ही मैं तत्त्वज्ञान और पठन-पाठनमें लगाता हूं।" चान्सलरका काम करनेके बादके समयका उपयोग करके लार्ड बेकनने महान् यश प्राप्त किया। एक बड़े राजनीतिज्ञसे भेंट करते समय महाकवि गेटेको सहसा एक विचार सूझा। उन्होंने थोड़ी देरकी क्षमा मांगी और बगलके कमरेमें जाकर उसे लिख डाला। सर हेम्फ्री डेवीने अपने समयको काममें लाकर बड़े-बड़े आविष्कार कर दिखाये। पोप हमेशा रात्रिको उठता था और अपने उन विचारोंको लिख लेता था, जो उसके कामकाजमें लगे हुए दिवसके जीवनमें नहीं आ पाते थे। ग्रोटेने अपनी 'ग्रीसका इतिहास' नामक अद्वितीय रचना अपने बचे हुए समयमें लिखी थी।

जार्ज स्टीफनसन अपने एक-एक क्षणको सुवर्ण समझता

था। उसे वह व्यर्थ नहीं जाने देता था। मार्गाट प्रत्येक मिनटमें कुछ न कुछ आत्म-सुधार अवश्य करता था। वह इतनी देर तक काम करता रहता था कि सोना भी भूल जाता था। कभी अपने कार्यको समाप्त करनेके लिए दो-दो दिन और रात लिखता रहता था। उसने अपनी मृत्यु-शय्यापर अपनी प्रसिद्ध रचना 'रेक्यूयम' को लिखा था।

सीजर कहा करता था—"भयङ्कर शत्रुओंके बीचमें भी मुझे अपने तम्बूके नीचे अन्य कई बातोंको सोचनेका अवसर मिल जाता था।" एक बार उसका जहाज डूब गया। वह अपने साथ एक पुस्तककी हस्तलिखित प्रति ले गया था। जब जहाज डूब रहा था, तब वह अपना ग्रन्थ देखनेमें लगा हुआ था।

डाक्टर मारसन गुड लन्दनमें एक रोगीको देखने आ रहे थे। रास्तेमें उन्होंने लुक्रेशियसका अनुवाद कर डाला। डाक्टर डरबनने अपनी बहुत-सी रचनाओंको कागजके छोटे-छोटे टुकड़ोंपर लिखा था। वह अपने विचारोंको उसी समय लिख लेता था। हेनरी किरक ह्वाइटने ग्रीक भाषाको दफ्तरसे आने-जानेके समयमें पढ़ा था। डाक्टर बरनेने इटालियन और फ्रेञ्च भाषाओंको घोड़ेकी पीठपर सीखा था।

एक-एक क्षण सञ्चित करनेवाले इन महापुरुषोंका जीवन हम हजारों नवयुवकों और नवयुवतियोंके जीवनका कितना उपहास कर रहा है? बड़े-बड़े पुरुष समयके छोटे-छोटे टुकड़ोंको बचाकर महान् हो जाते हैं और अपनी असफलतापर आश्चर्य करनेवाले उन्हें यों ही उड़ जाने देते हैं। उन्हें जीवन-भरमें कभी भी समयका मूल्य मालूम नहीं होता।

प्रतिदिन एक घण्टा काम सीखनेसे अज्ञान व्यक्ति होशियार हो सकता है। एक घण्टा प्रतिदिन पैसा कमानेसे मनुष्य एक दर्जन पुस्तकोंके खरीदने लायक धन पैदा कर सकता है। एक घण्टेमें प्रतिदिन २० पेज पढ़नेवाला लड़का एक वर्षमें कई हजार पृष्ठ तथा लगभग १८ ग्रन्थोंको पढ़ सकता है। एक घण्टा रोजके उपयोगसे साधारण आदमी महान् हो सकते हैं। इस प्रकार दिनका एक घण्टा एक अप्रसिद्ध व्यक्तिको प्रसिद्ध और एक निरुपयोगी पुरुषको अपने देश और जातिका परमोपयोगी आदमी बना डालता है।

समय ही द्रव्य है। द्रव्यका खो देना समय खोनेकी बराबरी नहीं कर सकता। समयके नष्ट करनेका अर्थ है शक्तिका नाश, सामर्थ्यका नाश और अपने आचरणका पतन; इसका मतलब है अवसरोंको सदाके लिए खो देना। किसीने कहा है—"ईश्वर एक बार एक ही क्षणको देता है और दूसरे क्षणको देनेके पहले, पहलेवाले क्षणको छीन लेता है।"

× × × ×

प्रत्येकके जीवनमें कुछ ऐसी घड़ियां आती हैं, जिनपर भाग्यका बनना और बिगड़ना निर्भर करता है। रस्किनका कहना है कि जवानीका सारा जीवन एक प्रकारकी रचना, एक प्रकारके सुधार और शिक्षणका है। एक भी घण्टा ऐसा नहीं है, जो भाग्यके विधानके लिए उपयोगी न हो। ऐसी एक भी घड़ी नहीं जाती, जिसका निश्चित किया हुआ कार्य फिरसे किया जा सकता हो। सीजरने राजसभामें जाकर एक खबर पढ़नेमें देरी की और अपनी जान खो बैठा। कर्नल राइल ताश खेल रहा था। एक नौकरने वाशिङ्गटनकी सेनाके रवाना होनेका सूचना-पत्र उसे लाकर दिया। बिना पढ़े ही उसने उसे जेबमें रख लिया और ताश खेलनेमें लगा रहा। खेल समाप्त होनेपर उसने अपने आदमियोंको सामना करनेके लिए तैयार किया। लेकिन वे कैद होकर लिये गये और तलवारके घाट उतार दिये गये। केवल कुछ मिनटोंकी देरीसे वह अपनी इज्जत, स्वतन्त्रता और जीवन खो बैठा। नेपोलियन अनुकूल समयपर बड़ा ध्यान देता था। उसे अपने हाथसे न जाने देकर बड़ी-बड़ी शत्रु-सेनाओंपर विजय प्राप्त कर लेता था। उसका कहना है कि पांच मिनटका मूल्य न समझनेके कारण आस्ट्रियन हार गये। इसी तरह उसके पतन और वाटरलूकी हारका प्रधान कारण कुछ घड़ियोंकी देरी ही थी। ग्राउच समयपर नहीं आया और उसके लिए नेपोलियनको ठहरना पड़ा। बस, इतनी-सी घटना नेपोलियनको सेण्ट हेलेनाके टापूपर भेजनेके लिए काफी थी, उसे कैदी बनानेके लिए शक्तिमान थी।

काबेट लिखता है कि मेरी विजय मेरी स्वाभाविक योग्यताकी अपेक्षा हमेशा तत्पर रहनेके कारण हुई है। इसी गुणके कारण सेनामें मेरी उन्नति हुई। यदि मुझे दस बजे जाना होता था, तो नौ बजेसे ही तैयार रहता था। किसी

आदमीको कभी भी मेरे लिए ठहरना नहीं पड़ता था।

जो काम कभी भी हो सकता है, वह कभी भी नहीं हो सकता। जो काम अभी होगा, वही होगा। जो शक्ति आजके कामको कलके लिए टालनेमें खर्च हो जाती है, उसी शक्तिके द्वारा आजका कार्य आज ही किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जो काम कलपर टाल दिया जाता है, उसे कल करनेमें भी कितनी कठिनाई पड़ती है ? मन कितनी गड़बड़ी मचाता है, तबीयत कैसी घबड़ाती है कि वह कार्य भार-स्वरूप मालूम पड़ने लगता है। मेरिया एजवर्थका कहना है कि वर्तमानके समान कोई घड़ी नहीं है, कोई ताकत और कोई शक्ति नहीं है। कोई व्यक्ति तुरन्तके निश्चयोंको पूरा नहीं करता है, तो बादमें उनके पूरे होनेकी कोई आशा नहीं है।

सर वाल्टर रेलेसे एक व्यक्तिने पूछा—"आप इतना काम इतने कम समयमें कैसे कर डालते हैं ?"

उत्तर मिला—"मुझे जो कुछ करना होता है, उसे मैं उसी समय जाकर कर डालता हूं।"

कई लोग आजके कामको कलपर डालकर संसारमें पीछे ही पड़े रहे। केवल पांच मिनट पीछे रहनेके कारण वे प्रतिद्वन्द्वितामें हरा दिये गये। उनके सम्बन्धियोंने, उनके मित्रोंने तथा उनके साथियोंने उन स्थानोंपर अपना अधिकार जमा लिया, जो कि पांच मिनटकी देरी न करनेसे उनके होते। समय निकल जानेपर मिलता क्या है—निराशा, शोक और पतन !

'कल' शैतानका दूत है। इतिहासके पृष्ठोंपर इस कलकी धारपर कितने ही प्रतिभावानोंका गला कट गया ! कितनोंकी स्कीमें अपूर्ण रह गयीं ! कितनोंके निश्चय मौखिक ही रह गये !

एक व्यक्ति मेनके साहस और कौशलकी प्रशंसा हेनरीके सामने कर रहा था। थोड़ी देरमें हेनरीने शान्त भावसे कहा—"तुम्हारा कहना ठीक है, वह एक अच्छा सेनानायक है, परन्तु मैं हमेशा ही उससे पांच घण्टे आगे रहता हूं।" अर्थात् हेनरी चार बजे उठता था और मेन करीब दस बजे। यही उन दोनोंका अन्तर था। इसी अन्तरमें सारी प्रतिष्ठा और सम्मान छिपा हुआ था।

प्रातःकाल जल्दी उठनेकी तो सभी उपदेशकोंने तारीफ की है। संसारके महान् पुरुष प्रायः प्रातःकाल ही उठा करते थे। रूसका महान् बादशाह 'पीटर दि ग्रेट' प्रकाश होनेके पूर्व उठता था। 'अल्फ्रेड दि ग्रेट' सवेरे उठते थे। प्रातःकालके घण्टोंमें ही कोलम्बसने अमेरिकाकी यात्राकी स्कीम तैयार की थी। नेपोलियनकी बड़ी-बड़ी विजयोंकी तैयारी प्रातः-काल ही हुई थी। अमेरिकाका धुरन्धर विद्वान् वेब्स्टर कलेवा करनेके पहले २० से ३० पत्रोंका उत्तर लिख डालता था।

इंगलैण्डका महान् उपन्यासकार सर वाल्टर स्काट बड़ा ही नियमानुकूल कार्य करनेवाला था। यही उसके विशाल कार्योंकी कुञ्जी थी। वह पांच बजे उठता था। कलेवा करनेके पूर्व ही उसके दिनके कार्यका अधिकांश भाग समाप्त हो जाता था। एक युवकको सलाह देते हुए उसने लिखा था—"जो कुछ करना हो, शीघ्र ही कर डालो और काम कर लेनेके बाद आराम करो, आराम पानेकी कोशिश मत करो।"

जान क्विंसे एडम्स समयके बड़े पाबन्द थे। एक सभामें कुछ मेम्बरोंने समय हो जानेपर कार्यारम्भ करनेकी बातपर जोर दिया, तब एक सदस्यने कहा—"नहीं, अभी मि० एडम्स नहीं आये हैं।" थोड़ी देरमें मि० एडम्स आ गये। पता लगानेपर मालूम हुआ कि उस स्थानकी घड़ी तीन मिनट तेज थी। एडम्स महोदय समयपर उपस्थित हुए थे।

होरेस ग्रीलेका कहना है कि यदि किसी व्यक्तिको दूसरेके समयकी परवाह नहीं है, तो उसे उनके द्रव्यकी क्यों परवाह होगी ? एक व्यक्तिके एक घण्टेको छीन लेनेमें और उसके पांच डालर छीन लेनेमें क्या अन्तर है ? संसारमें ऐसे अनेक व्यक्ति पड़े हुए हैं, जिनके एक घण्टेका मूल्य इससे भी अधिक होता है।

राष्ट्रपति वाशिङ्गटन चार बजे भोजन करते थे। एक बार उन्होंने कांग्रेसके नवीन सदस्योंको एक भोजमें सम्मिलित होनेका निमन्त्रण दिया। वे थोड़ी देरमें पहुंचे, तो उन्होंने राष्ट्रपतिको भोजन करते पाया। उन्हें बड़ा खेद हुआ। यह देख वाशिङ्गटन महोदयने कहा—"मेरा रसोइया मुझसे कभी नहीं पूछता कि मेहमान आये या नहीं; वह केवल यही पूछता है कि भोजनका समय हुआ या नहीं ?"

एक बार उनके सेक्रेटरीने देर होनेकी क्षमा मांगी और अपनी देरीके लिए घड़ीकी सुस्तीका कारण उपस्थित किया।

इसपर वाशिङ्गटनने कहा—"जनाब, या तो आप दूसरी घड़ी लीजिये या मुझे दूसरा सेक्रेटरी बुलाना पड़ेगा।"

जो व्यक्ति काम न करके माफी मांगनेके लिए आगे बढ़ता है, वह किसी कामका नहीं। वह आगमें कूदकर जीवित बचनेकी कोशिश करता है। एक बार नेपोलियनने अपने सेनानायकको भोजन करनेके लिए बुलाया। नियत समयमें आनेमें उन्हें कुछ देर हो गयी। नेपोलियन भोजन करने लगा। वह भोजन समाप्त करके उठ ही रहा था कि वह आ गये। उन्हें देखकर नेपोलियनने कहा—"भोजनका समय हो चुका, आइये अब अपना काम शुरू करें।"

नियमपूर्वक तथा समयपर कार्य करनेसे हृदयको बड़ा सन्तोष मिलता है। किसी प्रकारकी व्यग्रता नहीं रहती। एक समयका काम उसी समय करनेसे वह अच्छी तरह हो जाता है। कामकाजी और व्यापारी आदमी तो थोड़े दिनोंमें, नियमिततापर ध्यान न देनेसे, मिट्टीमें मिल जाता है। जरा-सी देर होनेसे दिवाला निकल जाता है। लाखों रुपयोंका नुकसान हो जाता है। एक रेल चलानेवालेकी घड़ी जरा सुस्त हो जाती है और दो गाड़ियां लड़ जाती हैं। बहुत-से अमूल्य जीवन नष्ट हो जाते हैं। एक एजेण्ट समयपर रुपये भेजनेमें देरी करता है और एक व्यापारीका दिवाला निकल जाता है। एक दूत पत्र समयपर पहुंचानेमें देरी कर देता है और एक निरपराध व्यक्ति सूलीपर चढ़ा दिया जाता है।

कुछ मिनटोंकी देरीने कितनी आशा-लतायें नहीं सुखा दीं? कुछ मिनटोंकी देरीने कितने हंसतोंको रुला नहीं दिया? कुछ मिनटोंकी देरीने कितनोंके जीवनको दुखी नहीं बना दिया? कुछ मिनटोंकी देरीने कितने राष्ट्रोंको गुलामीमें नहीं डाल दिया? फिर भी क्या कुछ मिनटों—क्षणोंके मूल्यको तुम नहीं समझते?

———

डा० मोण्टीसोरी और उनकी शिक्षापद्धति

श्री दुर्गादत्त जोशी

यूरोपीय शिक्षाका इतिहास देखिये या समर्थ शिक्षाकारोंकी नामावलीपर दृष्टि डालिये, तो मालूम होगा कि उनमें कहीं किसी स्त्रीका नाम नहीं है। सर्वप्रथम एक स्त्री शिक्षाकारको उत्पन्न करनेका सम्मान इटलीको मिला। डा० मोण्टीसोरीमें मानव-वंश-शास्त्री, शरीर-शास्त्री, मानस-शास्त्री, तत्ववेत्ता तथा शिक्षा-शास्त्री आदिका एक साथ दर्शन होता है। वह बालक और बाल-मस्तिष्ककी विशेषज्ञ हैं। स्वयं अविवाहित होनेपर भी वह माताओंकी माता तथा बालकोंकी महान् सरस्वती हैं। बाल-स्वातन्त्र्यका नया युग लानेवाली तथा जड़वाद और पराधीनताकी बेड़ियोंसे मनुष्य-जातिके उद्धारका आरम्भिक प्रयत्न करनेवाली डा० मोण्टीसोरी हैं।

डा० मोण्टीसोरी मध्यम स्थितिके, पर सुघरे हुए माता-पिताकी एकमात्र पुत्री हैं। उनका जन्म इटलीके स्वातन्त्र्य-युद्धके अन्तिम दिनोंमें ई० स० १८७० में हुआ। उस समयका इटालियन समाज बहुत संकुचित था तथा उनके कुटुम्बके धन्धेसे या परम्परासे शिक्षाके साथ कोई सम्बन्ध न था। उन दिनों स्त्रियां भाग्यसे ही पढ़ती थीं। अतएव प्रतिभाशाली विद्यार्थिनी कुमारी मोण्टीसोरीको सामाजिक बन्धनोंका सामना करना पड़ा तथा एक समाज-सुधारकके रूपमें आगे आना पड़ा। आगे चलकर उन्होंने जो स्वतन्त्रता मनुष्य-समाजके समस्त बालकोंको एक अमूल्य भेंटके रूपमें दी, उस स्वतन्त्रताकी उन्होंने बचपनसे ही उपासना की थी। लोकमतको तोड़नेके लिए मनुष्यमें जिस आत्म-बल और आत्म-श्रद्धाकी आवश्यकता है, वह बल और श्रद्धा डा० मोण्टीसोरीमें पहलेसे ही थे। इसी कारण वह अनेक विरोधी तत्वोंके सामने टिकी रहकर अन्तमें सम्पूर्ण जगत्के सामने एक आशीर्वादके रूपमें उपस्थित हुईं।

११ वर्षकी छोटी उम्रमें उनके मनमें कोई काम करनेकी इच्छा जगी। इटलीमें स्त्रीका दर्जा नीचा समझा जाता था। अधिकांश स्त्रियां केवल अध्यापिकाके कामके योग्य समझी जाती तथा वही काम करती थीं।

उस समयका समाज स्त्रियोंका दूसरे कामोंमें पड़ना सहन नहीं कर सकता था। मेरिया मोण्टीसोरीने भी प्रथम अध्यापिकाका काम करनेका विचार किया, पर उस समयकी प्रचलित शिक्षा-पद्धति उन्हें पसन्द न हुई। अतएव उन्होंने इञ्जीनियरिङ्ग पढ़ना शुरू किया। उस विद्यालयमें वह एक ही विद्यार्थिनी थीं, इसलिए उन्हें विद्यार्थियोंके साथ रहकर पढ़नेमें अनेक कठिनाइयां झेलनी पड़ती थीं। सवेरे उनकी मां उन्हें विद्यालयमें छोड़ने जातीं तथा शामको उनका बाप उन्हें लाने जाता था। दर्जेमें उन्हें लड़कोंसे अलग बैठना पड़ता था। भोजन या आरामके समय उन्हें विद्यालयकी किसी कोठरीमें बन्द रहना पड़ता तथा दरवाजेके सामने पुलिसके पहरेकी व्यवस्था करनी पड़ती थी। पर वह इन कठिनाइयोंको महत्त्व न देती थीं; कारण कि उनका लक्ष्य तो गणित-शास्त्रका अभ्यास करना था। उस विद्यालयमें रहकर वह एक समर्थ गणित-शास्त्री बनीं। बादमें उनका मन डाक्टरीके धन्धेकी ओर गया। इटलीमें उस समय डाक्टरी पढ़नेवाली स्त्री मेरिया मोण्टीसोरी ही पहली थीं; लोकमत उनके विरुद्ध था। तथापि लड़कोंके विद्यालयमें अनेक कठिनाइयां होनेपर भी उन्होंने अपना अभ्यास जारी रखा तथा डाक्टरीके लम्बे और कठिन अभ्यासके बाद रोम-विद्यापीठकी एम० डी० की उपाधि प्राप्त की।

इस उपाधिको प्राप्त करनेके बाद सन् १८९७ में सिरके दर्दोंके अस्पतालमें सहकारी डाक्टरके रूपमें उनकी नियुक्ति हुई। इटली उस समय सुधरे हुए देशोंकी श्रेणीमें आनेके लिए छटपटा रहा था। सुधरे हुए देशोंकी जैसी संस्थायें वहां उस समय स्थापित हो रही थीं। इस स्थितिमें तात्कालिक व्यवस्था करनेके लिए उस अस्पतालमें बिलकुल पागल व्यक्तियोंके साथ मूढ़ और मन्द बुद्धि बालकोंको भी रखा जाता था। उत्साही युवती डा० मोण्टीसोरीने बालकोंकी व्याधियोंका विशेष रूपसे अभ्यास कर इस विषयमें सविशेष प्रवीणता प्राप्त की। उस अस्पतालमें जाते समय उनका ध्यान उन मूढ़ और मन्दबुद्धि बालकोंकी ओर गया, जिन्हें अभागे पागलोंके साथ रखा जाता था। उन्होंने ५० वर्ष पूर्व सेगुइन द्वारा आविष्कृत मूढ़ और मन्दबुद्धि बालकोंको सुधारनेकी पद्धतियोंका अभ्यास करना आरम्भ किया। सेगुइनके विचारोंके अनुसार उन्हें मालूम हुआ कि बालकोंकी बुद्धिकी मन्दताका उपाय औषधोपचार नहीं, शिक्षा है। अपने इन विचारोंको उसने सन् १८९८में टूरिनकी शिक्षा-परिषद्में प्रकट किया। उसके भाषणसे शिक्षा-क्षेत्रमें एक नवीन प्रकाश पड़ा तथा शिक्षा-जगत्में एक नवीन जागृति उत्पन्न हुई। मूढ़ बालकोंको किस प्रकार बुद्धिमान बनाया जा सकता है तथा उन्हें नयी पद्धतिसे कैसे पढ़ाया जा सकता है, इस विषयपर रोम-विद्यापीठमें भाषण देनेके लिए डा० मोण्टीसोरीको विद्यापीठके अधिकारियोंने बुलाया। उसके बाद डाक्टर मोण्टीसोरी निर्बल मनके मनुष्योंको सुधारनेवाली संस्थाकी प्रधान अध्यापिका नियुक्त हुईं। इस समय डा० मोण्टीसोरीने अपना डाक्टरीका पेशा छोड़ा तथा इस नये काममें लगीं। अब तक वह दूसरे कामोंके साथ अपना डाक्टरीका पेशा करती थीं तथा अपने घरपर भयङ्कर व्याधियोंसे पीड़ित मनुष्योंको रखती थीं। वह उन स्थानोंपर भी निर्भयतापूर्वक जाती तथा आवश्यकता होनेपर आधी रातके समय भी उठकर उमङ्गसे अपने काममें लगती थीं। वह अपना काम इस तन्मयतासे करती थीं कि उस तन्मयतासे काम करनेपर उनका धन्धा भी चौपट होनेकी सम्भावना थी। मरण-अवस्थाको प्राप्त बालकोंको कभी नहलानेकी या स्वच्छ बिछौनोंमें सुलानेकी आवश्यकता जान पड़ती, तो वह दूसरे डाक्टरोंकी भांति केवल दवा लिख देना ही काफी नहीं समझती थीं। वह यह समझती थीं कि रोमके गरीब मुहल्लोंमें रहनेवाली माताओंको केवल दवा लिख देनेसे कुछ न होगा, इसलिए उनके बालकोंके लिए आवश्यक सब चीजें अपने यहांसे मंगा देतीं। यदि किसी दुखियाको कमानेकी आवश्यकता होती और वह बेरोजगार होता, तो उसे अपने खर्चसे काममें लगा देती थीं। किसीका दुःख उनकी दृष्टिमें पड़ता, तो वह उसे तुरन्त दूर करनेके लिए आगे बढ़तीं। इस प्रकार उनका डाक्टरी-जीवन व्यतीत हुआ। आगे चलकर उनका यह परोपकारी स्वभाव उनके विद्यालयके बालकोंके लिए बहुत उपकारक सिद्ध हुआ।

वह जिस तन्मयतासे अपना डाक्टरीका पेशा करती थीं, उसी तन्मयता, एकाग्रता, दिलचस्पी और असाधारण उद्योगसे उन्होंने इस नये काममें अपना चित्त लगाया। वह सवेरे ८ बजेसे रातके ७ बजे तक मन्दबुद्धि बालकोंको पढ़ाती थीं। दिन-भर उन दयाके पात्र बालकोंके उद्धारमें

अपनी शक्ति और बुद्धिका अधिकसे अधिक उपयोग करनेके बाद रातको वैज्ञानिक ढङ्गसे अपने दिन-भरके कामोंकी समालोचना करतीं, अपने अवलोकनों और कामोंको लिखतीं, अपने अवलोकनोंके परिणामोंका वर्गी-करण करतीं तथा इस विषयमें जिन-जिनने जो पुस्तकें लिखी हैं, उन सबको बारीकीसे पढ़तीं तथा उसके प्रयोगसें वे किस प्रकार सहायक हो सकती हैं, इसका विचार करती थीं। इस कार्यप्रणालीमें उनकी सफलताका सच्चा बीज—सच्चा रहस्य छिपा हुआ था। ये दिन उनकी सम्पूर्ण शान्तिके थे। इन दिनोंमें वह अप्रसिद्ध थीं तथा संसार उन्हें पहचानता न था। इससे वह अपूर्व तल्लीनता और शान्तिसे अपने प्रयोग करती थीं। उस समय उन्होंने लन्दन और पेरिसकी यात्रा कर मूढ़ बालकोंकी पाठशालाओं और प्रचलित पद्धतियोंका अभ्यास कर अपने ज्ञानमें वृद्धि की तथा ईटार्ड और सेगुइनकी पुस्तकोंके आधारपर उन्होंने मन्दमति बालकोंको शिक्षा देनेके लिए विभिन्न प्रकारके साधनोंको खोज निकाला। वहां उन्होंने दो वर्ष (१८९८ से १९००) तक काम किया। इस काममें उन्हें अपूर्व सफलता मिली।

एक बार ऐसा हुआ कि एक मन्दबुद्धि बालक साधारण विद्यालयोंकी परीक्षामें अधिक नम्बरों, अधिक ख्याति और अधिक सरलतासे उत्तीर्ण हुआ। मूढ़ बालकोंके लिए डा० मोण्टीसोरीकी निर्धारित पद्धतिके अनुसार उस बालककी शिक्षा हुई थी। फिर तो ऐसा वारंवार होने लगा। जितने मूढ़ बालक परीक्षामें भेजे गये, वे सब साधारण बुद्धिके बालकोंकी अपेक्षा बहुत उत्तमताके साथ उत्तीर्ण हुए। ऐसे परिणामोंसे लोग आश्चर्यचकित हुए। जिन्होंने इन परिणामोंको आंखोंसे देखा, उन्होंने तो इस किस्सेको जादूका किस्सा माना। पर डा० मोण्टीसोरी तो इस विचारमें पड़ी हुई थीं कि अच्छी बुद्धिके तन्दुरुस्त और सुखी बालक, मूढ़, बीमार और कङ्गाल बालकोंसे बुद्धिमें निम्न श्रेणीके कैसे प्रमाणित हुए, और परीक्षामें उनका दर्जा कैसे नीचा रहा। उन्होंने सोचा कि जब इस पद्धतिसे मूढ़ बालकोंको इतना अधिक लाभ होता है, तो इस पद्धतिसे पढ़ानेपर अच्छी बुद्धिके बालक अवश्य बहुत आगे बढ़ जायेंगे और उनकी प्रगति तो बहुत चमत्कारी होगी। उन्होंने सोचा कि जिस पद्धतिका प्रयोग मन्दमति बालकोंके लिए किया गया था, उसमें ऐसी कोई बात न थी कि वह केवल मन्दमति बालकोंके लिए ही उपयोगी हो। वह पद्धति भी शिक्षाके सिद्धान्तोंपर ही रचित थी और वे सिद्धान्त भी प्रचलित सिद्धान्तोंसे अधिक बुद्धिगम्य थे। इन विचारोंसे उनके मनमें एक अद्भुत श्रद्धाका उदय हुआ तथा उनके हृदयमें एक नवीन दिशामें, एक नवीन कार्यमें पदार्पण करनेकी स्वयं स्फूर्ति हुई। उन्होंने तत्काल साधारण बुद्धिके बालकोंकी पाठ-शालाओं, उनकी व्यवस्थाओं तथा उनमें प्रचलित शिक्षा-पद्धतियोंका अध्ययन करनेका निश्चय किया। इसके साथ-साथ वह रोम-विद्यापीठमें तत्त्व-ज्ञानके विद्यार्थीके रूपमें प्रविष्ट हुईं तथा उन्होंने विशेष रूपसे व्यावहारिक मनोविज्ञानका विषय लिया। उन्होंने बाल-मानसशास्त्रका अभ्यास किया तथा बादमें शिक्षा और मानव-वंशशास्त्रमें स्नातककी उपाधि प्राप्त की। फिर उन्होंने पुरानी पाठशालाओंको देखने तथा उनकी सड़ी-गली पद्धतियोंका सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेका कार्य आरम्भ किया। स्वभाव, शिक्षा तथा अनुभवसे वह वैज्ञानिक थीं, अतएव उन्होंने पाठशालाओंकी पद्धतियोंका बारीकीसे निरीक्षण किया। शिक्षा-शास्त्रकी अनेकों पुस्तकें देखीं तथा उनकी अच्छाई-बुराईकी जांच की। उन्हें लोम्ब्रोसो और सर्गीकी पुस्तकें अच्छी लगीं तथा उनकी उनपर गहरी छाप पड़ी। उक्त पुस्तकें उनके विचारोंको गढ़ने और पोषण करनेमें सहायक हुईं। उन्हें प्रचलित शिक्षाके दोष और अपूर्णतायें हस्तामलकवत् दीखने लगे। उनके लिखे हुए Advanced Montessori Method vol. 1 के A Survey of Modern Education प्रकरणमें उस समयकी पाठशालाओंका साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। शिक्षाके क्षेत्रमें काम करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको उसे अवश्य पढ़ना चाहिए। इन कामोंमें उनके सात वर्ष चले गये। फिर उन्होंने ईटार्ड और सेगुइनके लेखोंका अध्ययन करना प्रारम्भ किया। उन लेखोंका सम्यग्-रूपसे अध्ययन करनेके लिए उन्होंने स्वयं फ्रेञ्च भाषामें लिखित उन लेखोंका अक्षरशः इटालियन भाषामें अनुवाद किया। उसे बार-बार पढ़ा और उसपर बार-बार विचार किया। अब वह अपने विचारोंको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए कोई सुअवसर देख रही थीं। उन्हें एक सुन्दर सुयोग मिला।

इटलीके गरीब लोगोंके रहनेका प्रश्न बहुत महत्त्वका हो उठा था। वे गरीब लोग गन्दगीमें सड़ रहे थे। वे ऐसे खराब और तङ्ग मकानोंमें रहते थे कि वहां किसी प्रकारकी मर्यादा तो रहती ही न थी, वरन् सरलतासे दुराचार हो सकता था। उन लोगोंका वैयक्तिक जीवन नष्ट हो गया था। इन गरीबोंका इस दुःखसे उद्धार करनेका विचार इटलीके एक सम्मानित, बुद्धिमान तथा देशाभिमानी रोमन साइनोर एडोएर्डो टालमोके मनमें आया। यह सज्जन रोमन-स्थापत्य-मण्डलके अधिकारी थे। उन्होंने इस प्रश्नका बारीकीसे अध्ययन किया था तथा किस प्रकारके मकान बनवानेसे ये गरीब सुखपूर्वक रह सकते हैं, उसकी योजना बनायी थी। उनकी योजना सब प्रकारसे सम्पूर्ण तथा सन्तोषप्रद थी, केवल एक कठिनाई थी। वह कठिनाई यह थी कि जब वे गरीब मां-बाप अपनी आजीविकाके लिए दिन-भर बाहर रहेंगे, तब उनके पाठशालामें न जानेवाले छोटे बच्चे बिना किसी प्रतिबन्धके अकेले रहेंगे तथा उन सुन्दर विशाल मकानोंकी दीवारों और सीढ़ियोंमें लकीरें बनाकर उन्हें बिगाड़ देंगे। छोटे-छोटे निठल्ले बच्चे नाना प्रकारके ऊधमोंसे मकानोंको खराब करते हैं, इसे सभी जानते हैं। टालमोने मनमें सोचा कि इस प्रकार मकान बिगाड़नेपर उन्हें सुधारनेके लिए किरायेदारोंसे पैसे लेनेके बदलेमें उनके खर्चसे बालकोंको दिन-भरके व्यर्थके खेल-कूद और ऊधमसे रोके—ऐसे किसी व्यक्तिकी देख-रेखमें उन्हें छोड़ दिया जाय, तो अच्छा हो। इसलिए उन्होंने प्रत्येक मुहल्लेमें बालकोंके लिए अलग एक घरकी व्यवस्था की तथा किसी योग्य निरीक्षकका अनुसन्धान करने लगे।

टालमो, डा० मोण्टीसोरीके सम्बन्धमें सुन चुके थे। उन्होंने सोचा कि उनके काममें डा० मोण्टीसोरी उपयोगी होंगी। वह डा० मोण्टीसोरीसे मिले तथा अपनी योजना उन्हें समझायी। उन्होंने डा०मोण्टीसोरीसे निवेदन किया कि वह उन बालकोंको अपनी देख-रेखमें लें तथा उन्हें उपयोगी शिक्षा प्रदान करें। डा० मोण्टीसोरी ऐसे ही अवसरकी प्रतीक्षामें थीं। अपने विचारोंके अनुसार वह जिन प्रयोगोंको करना चाहती थीं, उनके साधन यहां मिल सकते थे। उन्होंने तुरन्त टालमोकी प्रार्थना स्वीकार कर ली तथा राज्यकी नौकरी छोड़कर गरीब व्यक्तियोंके बालकोंको पढ़ानेका काम अपने ऊपर लिया। फल यह हुआ कि सन् १९०७ के जनवरी महीनेमें सर्वप्रथम बाल-गृहकी स्थापना हुई। इस समय उनकी ओर लोगोंका ध्यान बिलकुल न था। डा० मोण्टीसोरीने अपने शिक्षा-विषयक विचार उन गरीब बालकोंपर आजमाये तथा उसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली। दूसरे वर्ष दूसरा बाल-गृह खोला। इस समय लोगोंमें डा० मोण्टीसोरीकी कीर्ति फैल चुकी थी। इस दूसरे गृहके खोलनेकी क्रिया बहुत समारोहसे सम्पन्न हुई। इस अवसरपर डा० मोण्टीसोरीने एक सुन्दर तथा मननीय व्याख्यान दिया। यह व्याख्यान मोण्टीसोरी-पद्धति नामक पुस्तकमें प्रारम्भिक व्याख्यान शीर्षकसे छपा है। विद्युत्-वेगसे डा० मोण्टीसोरीकी कीर्ति संसारमें फैल गयी। अभी तो बाल-गृह स्थापित ही हुआ था, उसके काम अधूरे थे, सुविधा और व्यवस्था पूरी न हुई थी तथा अभी प्रयोग किये जा रहे थे। तथापि डा० मोण्टीसोरीके बाल-गृहोंको देखनेके लिए देश-देशान्तरसे यात्री आने लगे थे। इस अरसेमें उनकी Montissori Method नामक पुस्तकका अंगरेजी भाषामें अनुवाद हुआ तथा अंगरेजी भाषाभाषी जनताकी दिलचस्पी इसकी ओर एकाएक बढ़ गयी। अब तो इस पुस्तकके अंगरेजी, फ्रेञ्च, जर्मन, स्पेनिश, रसियन, पोलिश, रूमानियन, डेनिश तथा जापानी भाषाओंमें अनुवाद हो चुके हैं। यह पुस्तक शिक्षाके साहित्यमें अद्वितीय है, इसकी भाषा बहुत प्रभावशाली तथा प्रोत्साहक है। इसे पढ़ते समय अनेक बार आंखोंमें आनन्दाश्रु आ जाते हैं। उसमें उनके अनुभव तथा परिश्रमका प्रत्यक्ष चित्रण है। शिक्षा-विषयक ग्रन्थोंमें यह एक उच्च कोटिका ग्रन्थ है। इसमें जो नैसर्गिक प्रतिभा है, जो स्वयं-स्फुरण है, जो स्वतन्त्र विचारोंका जोश तथा जो मिठास है, वह दूसरे बहुत थोड़े ग्रन्थोंमें है। यह ग्रन्थ भावी सन्तानोंके लिए एक अद्वितीय भेंट है। शिक्षा-जगत्में यह एक अमूल्य रत्न है। इस पुस्तकमें स्थान-स्थानपर नवजीवनका आदर्श झलकता है। इस समयके देश-देशके युगाचार्य विभिन्न दृष्टियोंसे सर्वसाधारणके उद्धारके लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं, उसी प्रकारके शिक्षा-विषयक प्रयत्नका यह पुस्तक मूल है। इस पुस्तकमें जितनी उन्नत भावना है, उतनी ही गहरी विज्ञानकी दृष्टि है। पाठक उसे बार-बार पढ़नेपर भी तृप्त नहीं होता।

आज मोण्टीसोरी-पद्धति जगत्-प्रसिद्ध है। यूरोप, अमेरिका आदि बहुत सुधरे हुए देशोंमें इस पद्धतिपर संस्थापित बाल-मन्दिर उन्नति कर रहे हैं। हिन्दुस्तानमें भी इस पद्धतिके अनुसार कुछ शिक्षा-संस्थायें प्रयोग कर रही हैं।

गत कुछ वर्षोंसे प्रति वर्ष लन्दनमें डा० मोण्टीसोरी चार मासका अभ्यास-क्रम रखकर मोण्टीसोरी-पद्धतिका तात्त्विक और व्यावहारिक परिचय प्रदान करती थीं। इसके अतिरिक्त जगह-जगह जाकर उक्त पद्धतिपर व्याख्यान देती थीं, नयी पाठशालायें खोलती थीं तथा इस प्रकार इस पद्धतिका प्रचार करती थीं। गत कुछ वर्षोंसे आम्स्टर्डमसे Call of Education नामक त्रैमासिक पत्र डा० मोण्टीसोरीके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हो रहा था। बादको वह फ्रेञ्च, अंगरेजी तथा इटालियन, इन तीनों भाषाओंमें प्रकाशित होने लगा था।

खास इटलीमें मोण्टीसोरी-पद्धति सीखनेके लिए ३ वर्षका अभ्यास-क्रम रखकर एक अध्यापन-मन्दिर खोला गया है। लन्दनमें मोण्टीसोरी सोसाइटी स्थापित की गयी है, उसकी ओरसे 'मोण्टीसोरियन' पत्रिका प्रति मास प्रकाशित होती है।

जैसे डा० मोण्टीसोरीके पूजक, शिष्य तथा अनुयायी हैं, वैसे ही उनके विरोधी भी हैं। उन्होंने पुस्तकें लिखी हैं तथा विस्तृत चर्चायें की हैं। उन्हें डा० मोण्टीसोरीका एक ही उत्तर है कि वे मेरी पाठशालाओंको देखें, स्वयं अनुभव करें तथा बादमें मेरे सिद्धान्तोंमें कितना सत्य है, इसकी चर्चा करें। पर अनेक बार विरोधी भी आशीर्वाद-स्वरूप हो जाते हैं, ठीक यही डा० मोण्टीसोरीके सम्बन्धमें हुआ। आज प्रकारान्तरसे वे भी उनकी पद्धतिका अधिकाधिक प्रचार कर रहे हैं।

डा० मोण्टीसोरी एक असाधारण प्रतिभाशाली स्त्री हैं। डाक्टर, तत्त्व-वेत्ता तथा गणितज्ञ होते हुए वह एक अद्भुत शिक्षा-विशेषज्ञ हैं। यह कहना ही पड़ेगा कि उनमें स्वयं-स्फुरणा, सृजन-शक्ति तथा स्वभाव-सिद्ध शोधक बुद्धि है। उनका व्यक्तित्व दूसरोंपर गहरी छाप डालनेवाला है। उनके साथ रहनेवाले भी इससे चकित होते हैं। वह सुन्दर हैं, आकर्षक हैं, उनकी बोली मधुर है। उनकी बोलीमें स्वाभाविक सरलता है। उनकी इस असाधारण शक्तिके कारण समस्त संसारकी स्त्री-जाति अभिमान कर सकती है। संसारमें ऐसी प्रभावशाली स्त्रियां अंगुलियोंपर गिनने लायक हैं।

वह स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती हैं। वह किसी राज्यकीय शिक्षा-संस्थाकी प्रधान अध्यापिका अथवा सञ्चालिका नहीं हैं। सार्वजनिक जीवनका उन्हें चाव नहीं है, अधिकांश समय वह एकान्त-सेवन करती हैं तथा अपने काममें संलग्न रहकर स्थिरचित्तसे प्रयोग करती हैं। उद्योगकी तो वह प्रतिमा हैं। वह स्वयं अंगरेजी नहीं जानतीं, केवल इटालियन और फ्रेञ्च भाषा जानती हैं। दुभाषियाके द्वारा अंगरेजी जाननेवालोंसे भी मिलती हैं तथा अंगरेजीमें पत्र-व्यवहार भी करती हैं। उनके सहवास तथा शिक्षा द्वारा शिक्षा-शास्त्रमें प्रवीणता प्राप्त करनेके लिए कई बहनें उनके साथ रहती हैं। ये बहनें डा० मोण्टीसोरीको शिक्षाकी सरस्वतीका साक्षात् अवतार मानती हैं तथा उन्हें गुरुकी भांति पूजती हैं।

डा० मोण्टीसोरीका ज्ञान अगाध है। वह इतना है कि उसे कहनेमें ही उनका सारा जीवन व्यतीत हो सकता है। उनके साथ रहनेवालोंका कहना है कि वह बालकोंके सम्बन्धमें इतना अधिक जानती हैं कि शायद वह उसे संसारको न बतला सकेंगी। उनकी शक्ति शेष न हो जाये, इसके लिए उनकी शिष्यायें उसकी देख-रेख करती हैं, लोगोंकी हैरानीसे बचाती हैं, उनके कामोंके बोझपर नियन्त्रण रखती हैं। उनपर होनेवाली अयोग्य टीकाओंसे उन्हें बचाती हैं तथा उनकी शक्ति पूर्णरूपसे विकसित हो और उससे संसार लाभान्वित हो, इसके लिए वे उनका हृदयसे यत्न करती हैं।

बालकोंके उद्धारके लिए डा० मोण्टीसोरीके कामकी अभी बहुत वर्षों तक आवश्यकता है।*

---

* वर्तमान समयमें युद्धके कारण डा० मोण्टीसोरी भारत-सरकार द्वारा मद्रासमें नजरबन्द हैं। —लेखक



प्राचीन भारतकी सामरिक शक्ति

श्री कृष्णानन्द शास्त्री

हमारे संस्कृत साहित्यमें ऐसे अनेक प्रमाण पाये जाते हैं, जिनसे यह प्रकट होता है कि प्राचीन भारतके कई राज्यों-में विभाजित रहनेपर भी उनमें बाहरी आक्रमणोंसे देशकी रक्षा करनेके लिए सुदृढ़ सामरिक सङ्गठन था। महाभारत, हरिवंश तथा भागवत आदि इतिहास-पुराण-ग्रन्थोंमें यह स्पष्ट वर्णन मिलता है कि श्रीकृष्ण-कालीन भारतके नरेशोंने सङ्गठित हो, देशको यथेष्ट शक्ति-सम्पन्न बना रखा था। यद्यपि इसके पूर्ववर्ती युगका इस प्रकार विशद वर्णन नहीं मिलता, तथापि उस समय भी भारत सामरिक बलमें अति प्रबल था।

महाभारत-कालमें भारतकी सामरिक शिक्षा, साधन और सङ्गठन आदि उन्नतिकी चरम सीमापर पहुंचे हुए थे। उस समयकी हमारी सैनिक शक्ति और उन्नतिका जो वर्णन प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलता है, उससे हमें यह भी मालूम होता है कि भारतके नरेश किसी अज्ञात कारणसे अथवा भयसे बराबर अपनी सैनिक शक्तिकी वृद्धि करते रहते थे। उस कालके भारतीय आर्य नरेशोंने युद्ध-कला एवं सैन्य-सङ्गठनमें पूर्ण शिक्षित हो, एक भयावह एवं वृहत् सङ्घ कायम किया था। उसका नाम था राज्यचक्र, अर्थात् राजाओंकी लीग या सर्किल। इस राज्यचक्रके ५९ राज्योंके अधिपति सदस्य थे, उनमें कुछ अनार्य राजा भी थे। इससे जान पड़ता है कि उस समय आर्य और अनार्य राजाओंमें मेल और मित्रताका सम्बन्ध स्थापित हो गया था।

उस राज्यचक्रके नेता थे मगधके परम प्रतापी और बल-शाली सम्राट् जरासन्ध। राज्यचक्रके सदस्योंमें कितने ही जरासन्धके आत्मीय, सम्बन्धी, मित्र या सहयोगी थे। शेष उनके द्वारा समरमें पराजित अथवा उनके अधीन राजा थे। प्रबल प्रतापी यवनराज भी राज्यचक्रके एक सदस्य थे।

यहां यवनोंका संक्षिप्त परिचय देना अप्रासङ्गिक न होगा। हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें इनका जो इतिहास मिलता है, उससे ज्ञात होता है कि ये क्षत्रिय वंशके थे और भारतके बाहर उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया था। यवन वास्तवमें भारतके आर्य सम्राट् ययातिके द्वितीय पुत्र तुर्वसुके वंशज थे। इसका वर्णन महाभारतके आदि-पर्वमें आया है। इससे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यवन भारतीय आर्य क्षत्रियोंकी ही एक शाखा-मात्र थे। इस बात-का भी प्रमाण मिलता है कि उनमें ब्राह्मण भी थे। यवन लोग आर्य रीति-नियम तथा प्रथाका पालन करते थे।

यवनोंका इतिहास इस प्रकार है—सम्राट् ययातिने अपने चार ज्येष्ठ पुत्रोंको त्याज्य मान भारतके साम्राज्य और सिंहासनको अपने पांचवें या कनिष्ठ पुत्रको दे दिया था। सम्राट्ने यह भी आदेश दे रखा था कि उनके उक्त चारों त्याज्य पुत्रोंको अथवा उनके वंशधरोंको कभी भी भारतका राज्य और सिंहासन नहीं मिलेगा। उन्होंने उन्हें म्लेच्छोंका अधिपति बनाया। उसी समय सम्राट् ययातिने अपने कनिष्ठ पुत्र पुरुको अपने अन्य चार पुत्रोंके ऊपर सार्वभौमत्व या सर्वाधिपत्य प्रदान किया।

ययातिके चारों पुत्र म्लेच्छों या अनार्योंके ऊपर शासन करते थे। उनके वंशधरोंने भी सम्राट् ययातिके उक्त आदेशको मानकर, बहुत समय तक, भारतके राज्याधिकारी होनेका दावा नहीं किया और न उन्होंने मातृभूमिपर आक्रमण किया।

उपर्युक्त वर्णनसे ज्ञात होता है कि उस समय यवन राज्य भी भारत साम्राज्यके ही अन्तर्गत था। यवन राज्य तथा कम्बोज, वाह्लीक आदि राज्योंके भारत साम्राज्यके अन्तर्गत रहनेसे यह समझा जाता है कि राज्यचक्रके सदस्योंकी राज्य-सीमा वर्तमान भारतवर्षकी भौगोलिक सीमाके बाहर बहुत दूर तक विस्तृत थी, अर्थात् पश्चिममें गान्धार (अफगानिस्तान) और पूर्वमें प्राग्ज्योतिष (आसाम) राज्यके परे बहुत दूर तक था। उत्तरमें काश्मीर तथा उससे भी उत्तरके कई प्रदेशों-से लेकर, दक्षिणमें सुदूर कन्याकुमारी तक भारतीय साम्राज्य-का विस्तार था।

उपर्युक्त राज्यचक्रमें भारतके जो-जो राजा सदस्य थे, उनके नाम ये हैं:—करूप-देशाधिपति दन्तवक्र, शक्तिशाली

चेदिराज, शक्तिशाली कलिङ्गराज, कौशिक वंशीय सांकति, राजा भीष्मक, भीष्मक पुत्र, प्रौण्ड्र; भीष्मक पुत्र रुक्मी, पौरव वेणुदारी, श्रुतर्वा, क्राथ, अंशुमान, बलशाली अङ्गराज, बलशाली सर्ववङ्गाधिपति, कोशलराज, काशिराज, दशार्णाधिपति, सूक्ष्माधिपति, विक्रान्त, विदेहराज, बलशाली मद्रराज, त्रिगर्ताधिपति, शक्तिशाली साम्बराज, बलीप्रवर राजा दरद, यवनराज, विख्यात बली भगदत्त, प्राग् ज्योतिषराज, सौवीरराज शैव्य, राजा पाण्ड्य, गान्धारराज सुबल, बलशाली राजा वज्रजित, काश्मीरराज गोनर्द, दरद देशाधिपति, दुर्योधन और धृतराष्ट्रके अन्यान्य सभी पुत्र, चेकितान, राजा वाह्लीक, किम्पुरुषराज दम, पार्वतीय दानवगण, विदर्भ नरेश, नरपति सोमक, मालवराज सूर्याक्ष, बलशाली पाञ्चालराज, द्रुपद, अवन्तीराजद्वय, विन्द अनुविन्द, राजा छागलि, पुरु मित्र, मत्स्यराज विराट्, कौशाम्बीराज, मल्लराज, राजा शतधन्वा, राजा विदूरम, भूरिश्रवा, वाण राजा, पञ्चालाधिपति, अंशुमानके पुत्र कैतवेय उलूक, निषादराज एकलव्य, राजा वृहद् क्षत्र, राजा क्षत्र वर्मा, राजा जयद्रथ, राजा उत्तमौजा, केकयराजगण, विदिशाराज वामदेव, सिनिराज और दाक्षिणात्य राजागण।

राज्यचक्रके कतिपय सदस्योंकी सैनिक शक्ति महाभारत, हरिवंश और भागवतपुराणके अनुसार इस प्रकार थीः—सम्राट् जरासन्ध २० अक्षौहिणी (हरिवंश और विष्णुपुराणके अनुसार) २३ अक्षौहिणी, (भागवतके अनुसार) काशिराज ३, पौण्ड्रराज २, चेदिराज दन्तवक्र १, राजा रुक्मी १, राजा शल्य १, वाण राजा १२, राजा भगदत्त १, राजा दुर्योधन १, राजा द्रुपद १, विन्द अनुविन्द (अवन्तीराज भ्रातृद्वय) २, मत्स्यदेशाधिपति राजा विराट् १, भूरिश्रवा १, सिन्धुराज जयद्रथ १, केकयराज १, गान्धारराज १, कलिङ्गराज १। कुल मिलाकर इन राजाओंके पास ५१ या ५४ अक्षौहिणी सेना थी। 'अक्षौहिणी' शब्द एक सैनिक संज्ञा है। इससे सेनाके विभिन्न अङ्गों और विभागोंकी एक निर्दिष्ट संख्याका बोध होता है। एक अक्षौहिणी सेनामें २७ हजार ८ सौ ७० रथ, २१ हजार ८ सौ ७० हाथी, ६५ हजार ३ सौ १० घोड़े और १ लाख ९ हजार ३ सौ ५० पैदल सिपाही होते थे।

राज्यचक्रके ५९ सदस्योंमें केवल १७ राजाओंकी ही सैनिक शक्तिका वर्णन प्राचीन ग्रन्थोंमें पाया जाता है। शेष राजाओंकी सैनिक शक्तिका अलग-अलग वर्णन कहीं नहीं मिलता, पर इस सम्बन्धमें उपर्युक्त ग्रन्थोंमें जो कुछ उल्लेख है, उसके आधारपर अनुमान किया जाता है कि इन सब राजाओंकी सैन्य-संख्या उपर्युक्त १७ राजाओंकी सैन्य-संख्याकी आधी थी।

बहुत-से राजा, किसी कारणवश, राज्यचक्रके सदस्य नहीं थे। उन सबके नाम-धाम और सैनिक शक्तिका पूरा विवरण नहीं पाया जाता। केवल ६ राजाओंके सम्बन्धमें कुछ उल्लेख मिलता है। उनके नाम और सैनिक शक्ति इस प्रकार थी:—कम्बोजराज सुदक्षिण १ अक्षौहिणी, अयोध्याराज वृहद्वल १, सात्वतराज कतवर्मा १, सात्वत-सात्यकि १, भीमके पुत्र राक्षसराज घटोत्कच २, द्वारकाके यादवराजा १२ अक्षौहिणी।

साधारणतः कुछ लोगोंकी यह धारणा है कि महाभारतके युद्धमें अकेले श्रीकृष्ण पाण्डवोंके पक्षमें थे और उनकी सारी सेना दुर्योधनकी ओर थी। परन्तु यह भ्रान्त धारणा है। महाभारतके उद्योगपर्वमें यह लिखा है कि श्रीकृष्णके साथ पाण्डवोंके पक्षमें उनकी एक अक्षौहिणी यादव सेना भी थी। उनकी नारायणी सेना कौरवोंकी ओर थी।

श्रीकृष्णकी नारायणी सेनाका दूसरा नाम गोपसेना था। श्रीकृष्णने स्वयं इस सेनाको गठित और शिक्षित किया था। कहा जाता है कि यह सेना अजेय, साहसी और दुर्द्धर्ष थी। युद्धमें पीछे पैर हटाना नहीं जानती थी। कुरुक्षेत्रके महायुद्धमें इस सेनाने कौरवोंकी बड़ी सहायता की थी। युद्ध आरम्भ होनेके पहले, दुर्योधनने, श्रीकृष्णसे इस नारायणी सेनाको मांग लिया था।

श्रीकृष्णके समयमें सर्वप्रथम यवनोंने, भारतपर आक्रमण किया। इसके पहले वे भारतके राजाओंसे मिलकर रहते थे। हम पहले लिख आये हैं कि आर्य सम्राट् ययातिका आदेश पालन कर तुर्वसुके वंशधरों या यवनोंने कभी भी मातृभूमि भारतवर्षपर आक्रमण नहीं किया। केवल काल नामक यवन राजाने सर्वप्रथम आर्य सम्राट्के उक्त आदेशका उल्लङ्घन कर भारतवर्षपर आक्रमण किया।

यवनराज कालका यह अभियान बड़ा भयङ्कर था। सिकन्दर तथा अन्यान्य विदेशी राजाओंने भारतपर जो-जो

आक्रमण किये, वे कालके आक्रमणकी तुलनामें कुछ नहीं थे। कालने अपनी तीन कोटि सेना लेकर भारतपर चढ़ाई की थी। पर श्रीकृष्णकी सेनाने बड़ी वीरतासे यवनराज कालका मुकाबला किया। अन्तमें श्रीकृष्णने बड़े कौशलसे कालका निधन किया। इस प्रकार श्रीकृष्णने प्रबल पराक्रमी यवन सेनाके आक्रमणको व्यर्थ कर, भारतवर्षकी स्वतन्त्रताकी रक्षा की। सम्भवतः भारतवर्षको बाहरी सेनाओंके आक्रमणसे सुरक्षित रखनेके उद्देश्यसे ही श्रीकृष्णने अपनी नारायणी सेनाका गठन किया था।

प्राचीन भारतकी सैनिक शक्तिका जो संक्षिप्त विवरण ऊपर दिया गया है, उससे स्पष्ट प्रकट होता है कि भारत-भूमि निर्वीर्य न थी। वीर-प्रसविनी वीर-भूमि भारतने किसी समय १९ करोड़से भी अधिक वीरोंको जन्म दिया था। जिस देशके पास इतना सैन्यबल था, उसीके अनुसार उसका धन-बल भी रहा होगा—यह सहज ही समझा जा सकता है। यदि सैनिक शक्ति ही किसी देशकी सभ्यता और महत्ताके मापदण्डका आधार हो, तो निश्चय ही उस युगमें, जब कि अन्यान्य देशोंके इतिहासका पता तक नहीं था, भारत सभ्यता और उन्नतिके उच्च शिखरपर पहुंच चुका था। आज हम पराधीन हैं, हमारा धन-बल नष्ट हो चुका है, फिर भी हम अपने पूर्व गौरवको प्राप्त करनेके प्रयत्नमें हैं।

नृत्यकलावती इसाडोरा डनकन

प्रोफेसर जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम० ए० बी० एल०

"इसाडोरा, तुम्हारी उपस्थितिमें प्रकृतिकी निर्जनता भङ्ग नहीं होती। और सब स्त्रियां प्रकृतिकी निर्जनता एवं सौन्दर्यको नष्ट कर देती हैं। एकमात्र तुम्हीं प्रकृतिका अंश बन जाती हो।"

जिस नृत्यकलावती नारी इसाडोरा डनकनके सम्बन्धमें यह उक्ति कथित हुई है, वह इस युगकी एक श्रेष्ठ नर्तकी एवं असाधारण रूपसीके रूपमें प्रसिद्ध थी। यूरोपके अनेक शिल्पी उसके रूपके पुजारी बनकर अपनेको धन्य- समझते थे। और केवल सुन्दर नृत्य-शिल्पीके रूपमें ही उसने संसारके हृदयको नहीं जीता था। इतना रूप और इतना गुण पानेपर भी सरस्वतीकी अकृपा उसके प्रति नहीं थी। आत्म-प्रकाश करनेकी अपूर्व शैली उसकी प्रतिभाकी एक विशेषता थी। अनेक कवियों एवं साहित्यिकोंकी भावधाराके संस्पर्शमें आनेके कारण वह अपने स्वरूपको पहचान गयी थी और इसके साथ-साथ उसने आत्म-प्रकाश करनेकी सुन्दर शैलीको आयत्त कर लिया था।

वर्तमान युगमें आत्म-जीवनी लिखना फैशन-सा हो गया है। किन्तु अधिकांश आत्म-जीवनियोंमें देखा जाता है कि कहानी-भाग मुख्य बन जाता है और लेखककी आत्मा गौण। किन्तु आत्म-जीवनीकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें आत्म-परिचयकी छाप और सब बातोंपर अङ्कित हो जाती है। यही कारण है कि इसाडोराकी आत्म-जीवन-कथाने साहित्य-रसिकोंका ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित किया है।

१९ वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें संसारकी अन्यतम श्रेष्ठ नर्तकी इसाडोरा डनकनका जन्म अमेरिकामें हुआ था। बहुत छोटी अवस्थामें ही गान सुनकर वह मस्तीमें झूम जाती थी और नाच देखकर उसके हृदयका रक्त नाच उठता था। उस अवस्थामें ही, जब वह निरी बालिका थी, उसने एक नृत्य-विद्यालय खोल दिया। उसके अन्तरकी शिल्प-प्रतिभा इसी विद्यालयको केन्द्रित करके विकसित होने लगी।

ग्यारह वर्षकी बालिका इसाडोरा एक तरुण छात्रसे प्रेम करने लगी। और उस तरुण छात्रको क्या मालूम कि एक बालिका अलक्षित रूपमें, घाट-बाटमें उसका अनुसरण करती रहती है। यह भी वह किसी दिन नहीं जान सका कि वह बालिका प्रायः नित्य ही सन्ध्याके बाद रास्तेके किनारे खड़ी होकर खिड़कीकी ओटमें अपने प्राणोंमें उत्कण्ठा भरकर अतृप्त नयनोंसे उसकी ओर निहारा करती है। इसाडोराके प्राणोंमें मृत्युहीन प्रेमकी अनिर्वाण

शिखाके जल उठनेका यही आदि-इतिहास है। प्रेमको अवलम्बन करके ही इसाडोराका जीवन था और प्रेमको अवलम्बन करके ही उसका मरण। हृदयमें आत्म-प्रकाशकी असीम पिपासा, नेत्रोंमें प्रतिभाका अमित तेज और पादद्वयमें जीवन-चाञ्चल्यकी अपरूप लीला। इसाडोरा इसी रूपमें बड़ी होने लगी।

मांको साथ लेकर इसाडोरा यूरोप चली आयी। वहां उस तरुणीको कौन पहचान सकता था? मां और कन्याके दिन असीम कष्ट एवं दारिद्र्यके बीच व्यतीत होने लगे। किसी दिन भोजन मिलता था, किसी दिन वह भी नहीं। इसाडोरा कामकी तलाशमें द्वार-द्वार भटकने लगी। आज इस थियेटरमें, कल अमुक सिनेमामें और तीसरे दिन किसी धनी विलासीके प्रमोद-कुञ्जमें। इस दारिद्र्य एवं लाञ्छनाके बीच उसने जिस साहस, शक्ति, मेधा एवं विवेचनाका परिचय दिया था, वह उस जैसी प्रतिभाशालिनी नारीके लिए ही सम्भव हो सकता था। बहुत दिनों तक जीवनमें सङ्घर्ष एवं संग्राम करनेके बाद यूरोपमें उसकी प्रतिष्ठाकी धाक जमने लगी।

इसके बहुत दिनोंके बाद इसाडोराने अपनी आत्मजीवनी प्रकाशित की। उसकी इस जीवनीने यूरोपके बहुत-से मनीषियोंको चमत्कृत कर दिया। लोगोंने समझा कि इसाडोरा केवल नर्तकी ही नहीं है, बल्कि संसारके श्रेष्ठ लेखकोंमें उसकी गणना हो सकती है। उसकी भाषा एवं प्रकाशभङ्गी, उसकी प्रज्ञा एवं दूरदृष्टि, उसकी सहज एवं उदार पर्यवेक्षण-शक्ति बहुत-से लेखकोंके लिए भी दुर्लभ है। विश्वविख्यात साहित्यिक बर्नार्ड शाने इस पुस्तकको पढ़कर कहा था—"One of the most remarkable book of the year."

इसाडोरा नर्तकी थी—नर्तकीकी चरित्रालोचना शिष्ट समाजके लिए रुचि-सम्मत न होना स्वाभाविक था। किन्तु एक नर्तकी द्वारा रचित उसकी जीवनी उच्च कोटिका साहित्य हो सकती है, इसाडोराके आत्मचरितको पढ़े बिना यह धारणा नहीं हो सकती। किसी आपत्तिजनक विषय वस्तुको लेकर भी यदि कोई श्रेष्ठ साहित्यकी रचना कर सके, तो साहित्यके दरबारमें उसे अपांक्तेय क्यों समझा जाय? अपाठ्य होनेपर भी दो सालके अन्दर छः और दस सालके अन्दर ग्यारह संस्करण समाप्त हो गये। इसाडोराने जिसे सत्य समझा, उसे निर्भीक भावसे प्रकाशित किया और अविचलित दृढ़ताके साथ उसे जीवनमें ग्रहण किया। इसके लिए उसे अनेक नीति-विशारदोंके आक्षेप एवं कटाक्ष सहन करने पड़े। उत्तरमें उसने लिखा था—"मनुष्य अपनेको चरित्रवान् समझकर अहङ्कार करता है, इसका मूल कारण यही हो सकता है कि या तो वह किसी लोभनीय अवस्थामें नहीं पड़ा अथवा किसी कार्यकी उन्मादनामें वह अपनेको गभीर भावसे संलग्न करके रखता है, जिससे उसकी कामवृत्ति उच्छृङ्खल होने नहीं पाती। अन्यथा प्रत्येक व्यक्तिके अन्तरमें यह उच्छृङ्खलता छिपी रहती है और मौका ढूंढ़ती रहती है।" इस प्रकारकी दुःसाहसपूर्ण उक्तिको पढ़कर हो सकता है कि बहुत-से पाठकोंके हृदयपर आघात पहुंचे और उन्हें इस सम्बन्धमें कुछ सोचने-विचारनेके लिए प्रेरणा मिले। इसाडोराकी कहानी पढ़कर कुछ लोग उसे धिक्कार भी दे सकते हैं, किन्तु जो सत्यके खोजी हैं, उनके मनमें तो सहज ही यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या इसमें सत्यांश नहीं है?

इतना ही नहीं, बल्कि नर-नारीके यौन-सम्बन्धको लेकर इस विद्रोहिणीने और भी साहसका परिचय दिया है। उसने लिखा है—

"A man who labours all day with his brain, sometimes torn with heavy problems and anxiety—why should be not be taken in the beautiful arms and find comfort for his pain and a few hours of beauty and forget fulness. I hope that those to whom I gave it will remember it with the same pleasure as I do. अर्थात् मनुष्य सारा दिन मस्तिष्कसे कार्य लेता है, गम्भीर समस्या एवं दुश्चिन्तामें संलग्न रहता है। इस प्रकारका मनुष्य कुछ घण्टोंके लिए मेरे सुन्दर एवं सुकुमार बहुपाशमें आबद्ध होकर अपने जीवनके कटुतिक्त अनुभवोंको भूल जानेकी चेष्टा करे, तो इसमें क्या दोष है? इस प्रकारका सुख जिन्हें मैंने प्रदान किया है, वे मेरे समान ही उस आनन्दको स्मरण रखेंगे, ऐसी मुझे आशा है।" शरीर-धारण भी तो मनुष्यके लिए कम कष्टप्रद नहीं है। इसलिए जब विधाताने

शरीर दिया है, तो उसके द्वारा सुख-भोगकी क्यों उपेक्षा की जाय ?

यह हुई इसाडोराके जीवनकी एक दिशा, जिसके लिए उसे नीति-निष्ठोंकी गभीर अश्रद्धाकी पात्री बनना पड़ा था। किन्तु इसके साथ ही उसके गुप्त प्रशंसकोंकी संख्या भी कम नहीं थी। यदि यह बात नहीं होती, तो उसकी आत्म-कहानीके पाठकोंकी संख्या इतनी अधिक नहीं होती। उसके जीवनकी दूसरी दिशा थी उसका कला-प्रेम। वह इस युगकी एक श्रेष्ठ नर्तकी थी। अधिकांश शिल्पी कलाकी वेदीपर जीवनको उत्सर्ग करते देखे गये हैं। किन्तु इसाडोराके शिल्प-प्रेमके साथ उसका जीवन ओत-प्रोत भावसे जड़ित था—एकको दूसरेसे विच्छिन्न नहीं किया जा सकता।

जीवनमें अनेक बार उसने प्रेम किया था। जिस प्रेमने एक दिन उसे सम्राज्ञीकी महिमा प्रदान की थी, वही प्रेम एक दिन उसके लिए लज्जा एवं परितापका कारण बन गया था। फिर भी जीवनकी ओरसे उसने एक बारके लिए भी मुख नहीं मोड़ा, कभी वितृष्णा प्रकट नहीं की। जीवनकी परख करनेका अपूर्व मनोभाव उसमें पाया जाता था। "A woman who has known but one man is like a person, who has heard only one composer." अर्थात् "केवल एक पुरुषको जाननेवाली स्त्री उस व्यक्तिके समान है, जिसने केवल एक रचयिताका नाम सुना हो।" बहुप्रेमकी दिशामें ऐश्वर्यमयी होनेपर भी एक मनुष्यके निकट अपनी पराजयकी बात वह गभीर श्रद्धाके साथ लिपिबद्ध कर गयी है। वह जितेन्द्रिय पुरुष था रसियन थियेटरका परिचालक स्टानिलेवस्की। नारीत्वकी सीमाबद्ध शक्तिके सम्बन्धमें केवल एक बार वह सचेतन हुई थी।

एक नारी-जीवनके विचित्र एवं वृहत् घात-प्रतिघातका अकपट इतिहास और सुनिपुण मनो-विश्लेषण—इन दोनोंके मेलसे इसाडोराकी यह आत्म-जीवनी साहित्य बन गयी है। एक साधन-सम्बल-विहीन किशोरी केवल अपनी शक्ति एवं साहसपर भरोसा करके अपने भाग्यकी खोजमें यूरोपकी यात्रा करती है—यह कहानी हमारे लिए कम विस्मयजनक नहीं है। इसाडोराका समग्र जीवन ही इस प्रकारकी दुःसाहसिक यात्राओंसे परिपूर्ण है। भविष्यके सम्बन्धमें इस प्रकारकी लापरवाही, वर्तमानको लेकर इस प्रकार मत्त और अतीतके कठोर आघातोंसे सम्पूर्ण प्रभाव-मुक्त जीवन विरल ही देखा जाता है। जिन दुर्घटनाओं एवं घात-प्रतिघातोंके आवर्तमें पड़कर अन्य लड़कियां आत्महत्या कर बैठतीं अथवा पागल हो जातीं, उस प्रकारकी विपत्तियां बार-बार इसाडोराके जीवनमें उपस्थित हुई थीं, किन्तु इससे प्रति बार उसके जीवनकी दृढ़ता और भी प्रस्फुटित हो उठी। विपत्तियों एवं दुःसह कठिनाइयोंके बीच भी उसके जीवनका उद्दाम गतिवेग शिथिल नहीं हुआ।

इसाडोराके जीवनमें एक चिरस्थायी द्वन्द्व था—उसकी कलाकारको प्रकृति एवं नारी-प्रकृतिके बीच। उसके जीवनमें अनेक बार प्रेमका आविर्भाव हुआ था; ऐसा मालूम पड़ता था, मानो अमरावतीकी नर्तकी इस बार शाप-भ्रष्टा होकर मर्त्य-मानवकी गृहिणीके रूपमें अपना शेष जीवन व्यतीत करेगी। किन्तु अकस्मात् देखा गया कि उसने अपना अवगुण्ठन दूर फेंक दिया है; वह अब माता नहीं, दयिता नहीं, कन्या नहीं; केवल नर्तकी है। उसकी एकमात्र साधना है नृत्यकलामें नवादर्शका प्रवर्तन करना। आदर्शके लिए पुरुषको अनेक बार इस प्रकार लापरवाह होते देखा गया है, किन्तु कोई नारी अपने पति और सन्तानके प्रति अपने सहजात आकर्षणका उच्छेद करके एकमात्र शिल्प-साधनाके उद्देश्यसे जीवनका उत्सर्ग कर सकती है, इस प्रकारका दृष्टान्त विरल ही पाया जाता है। इसाडोराके चरित्रकी इस विशिष्टताने उसे साधारण नारी-समाजसे बहुत ऊंचा उठा दिया है।

इसाडोराकी जीवनी पढ़ते समय प्रेमके सम्बन्धमें हमारी जो सनातन धारणायें चली आती हैं, उनपर कठोर आघात पहुंचता है। एक रमणी अकपट भावसे निपुणताके साथ अपने जीवनकी बहुसंख्यक प्रेम-कहानियोंको इस प्रकार व्यक्त कर सकती है, यह सचमुच विस्मयजनक है। उपन्यासमें वर्णित प्रेम-कहानीको कोरी कल्पना समझकर हम उसे अग्राह्य कर देते हैं। किन्तु आत्म-जीवनीमें जिस नारीने अपने अकल्पित प्रेमका इतिहास लिपिबद्ध किया है, उसे किस प्रकार हम अस्वीकार कर सकते हैं ? चिरकालसे हम देखते आये हैं कि संसारकी सब नारियोंने प्रेमके प्रतिदानमें केवल प्रेम ही नहीं, बल्कि प्रतिष्ठा एवं आश्रय भी चाहा है। यहां तक

कि प्रेमके प्रतिदानमें केवल आश्रय पाकर ही अपनेको धन्य माना है। किन्तु इसाडोराके प्रेममें आश्रय प्राप्त करनेकी भावना नहीं देखी जाती। इसाडोराने प्रेम किया, माता बनी; किन्तु विवाह-प्रथाको अपने जीवनमें स्वीकार नहीं किया। विवाहके सम्बन्धमें उसकी धारणा यह थी कि लुप्त प्रेमको कृत्रिम उपायसे जीवित रखनेके प्रयासका नाम विवाह है। जिस प्रेमकी प्रकृतिमें ही ह्रास, क्षति एवं परिवर्तन है, उसे शपथ-ग्रहण द्वारा चिर-स्थायी करनेकी चेष्टा मूर्खता है। पुरुष छोड़कर चला न जाय, इस भयसे उसे बांध रखनेकी चेष्टा कदापि सम्मान-जनक नहीं हो सकती। इस प्रकारकी युक्ति हमें भले ही कुछ विलक्षण सी प्रतीत हो; किन्तु यह उस नारीकी युक्ति है, जिसने सारा जीवन इस युक्तिका अनुसरण किया, अवि-वाहिता होकर भी तीन बार सन्तानकी जननी हुई।

"जो देह नाना व्याधियों एवं विकारोंका आश्रय-स्थल है, उस देहको आश्रय करके यदि क्षण-भरके लिए सुख-भोग सम्भव हो, तो उस आनन्दसे अपनेको क्यों वञ्चित रखा जाय?" इसाडोराकी इस युक्तिको सुनकर कोई भी उसकी निन्दा किये बिना नहीं रह सकता और न कोई सभ्य समाज इस युक्तिको ग्रहण ही कर सकता है। किन्तु इसा-डोराने जिस प्रकारका असाधारण जीवन: व्यतीत किया था, उसके उस जीवनमें इस नीतिका अनुसरण उतना बुरा नहीं कहा जा सकता। संसारके अधिकांश मनुष्य चिरकालसे असंयत इन्द्रिय-भोगके लिए व्यग्र रहते आये हैं और वर्त-मान समाज-व्यवस्थामें उनकी यह आकांक्षा किसी प्रकार भी चरितार्थ नहीं हो सकती—इसाडोराने इसी रूढ़ सत्यको प्रकट कर दिया है और इसके लिए पुरुष जातिके प्रति उसके हृदयमें घृणा नहीं थी, बल्कि उसकी भोग-लालसाके प्रति उसकी सहानुभूति थी।

नृत्य-कला ही इसाडोराके जीवनकी परम साधना एवं सम्पद् थी। इस नृत्य-कलाकी साधनामें नाना रसों एवं नाना स्वप्नोंमें दर्शकोंके हृदयको अपूर्व सौन्दर्य्य-बोधसे अभिभूत करनेका उसने जीवन-व्यापी प्रयास किया और इसके लिए उसने अनेक कष्टों एवं दुर्भाग्यको वरण किया। यूरोपके सब देशोंमें भ्रमण करके कोने-कोनेमें उसने प्राचीन ग्रीक नृत्य-कलाका प्रचार किया। इसके लिए उसे विपद् एवं विडम्बना भी सहन करनी पड़ी; किन्तु अन्तमें उसकी एकाग्र तपस्या सफल हुई। वह अत्यन्त सुन्दरी थी। उसके रूपकी ख्याति सारे यूरोपमें फैल चुकी थी। इसके सिवा एक बार जब उसने यह घोषणा की कि रङ्गमञ्चके ऊपर वह नग्नावस्थामें नृत्य करेगी, तब समस्त नगरों और ग्रामोंमें तुमुल आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। नीतिविदोंकी तो बात ही नहीं, जो लोग उदार कहे जाते थे, उन्होंने भी शिल्पके नामपर इस लापरवाहीके भावको पसन्द नहीं किया। किन्तु इसाडोरा इससे अणुमात्र भी विचलित नहीं हुई। अति सूक्ष्म वस्त्रावरणके अन्तरालमें विवस्त्र होकर उसने नृत्य आरम्भ किया। विषय था, मृत्यु! मृत्यु किस प्रकार आती है, उसका क्या काम है, उसकी भङ्गी कैसी है, उसकी भाषा क्या है, उसकी भीषणता, उसके जानेका मार्ग, अन्तमें मृत्युके अन्तरमें जो अमृत, जो अपूर्व शक्ति एवं अध्यात्म-वाद है—इसाडोराने अपने हृदयके अग्नि-रसको ढालकर उस मृत्युको मञ्चके ऊपर नृत्य-कला द्वारा इस प्रकार प्रस्फुटित कर दिया कि दर्शक एकबारगी अवाक्, विमूढ़ एवं स्तब्ध रह गये—मानो उनके हृदयका स्पन्दन रुद्ध हो गया हो। केवल किसी-किसी आसनसे इसाडोराकी अस्फुट क्रन्दन-ध्वनि सुनाई पड़ी।

नृत्य-कलावती इसाडोराके पासमें ही उसकी एक और मूर्ति है मानवी इसाडोराकी। अपनी सन्तानको खोकर पागलकी तरह वह सारा दिन समुद्रके किनारे व्यतीत करती है। कभी वह महायुद्धमें घायल सैनिकोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेमें अपनेको सम्पूर्ण संलग्न कर देती है। उस समय उसे घर-द्वारकी कुछ भी चिन्ता नहीं रहती। मनुष्यकी हिंसा-प्रवृत्ति, युद्धकी निष्ठुरता, निर्मम हत्याकाण्ड आदि उसके कोमल हृदयको व्यथित एवं द्रवीभूत कर डालते हैं।

सन्तानहारा जननी इसाडोरा वात्सल्यसे वञ्चित होकर यूरोपके विभिन्न देशोंमें रो-रोकर अपने विपत्तिके दिन काटती रही। कभी दुर्गम अरण्यमें, कभी समुद्रकी निर्जन तटभूमिमें, कभी किसी एकान्त ग्रामके आस-पास जनकोलाहलसे बहुत दूर, समाज द्वारा निर्वासित एवं उपेक्षित होकर असीम वैराग्य धारण किये हुए वह भट-कती रही। अपने इस उद्देश्यहीन, अभिशप्त जीवनसे ऊबकर एक दिन आसन्न सन्ध्याके अन्धकारमें वह समुद्रके गभीर

जलमें प्रवेश करने जा रही थी, जब कि एक इटालियनने उसका हाथ पकड़ लिया। इसाडोरा आत्महत्या नहीं कर सकी। वह उस पुरुषके पांवोंपर गिरकर रोने लगी और बोली, "सन्तान दो, मुझे तुम एक सन्तान दो।"

अपनी कलाकुशलतासे केवल यूरोपको जीतकर ही उसे सन्तोष नहीं हुआ। नृत्यकलाकी शिक्षा देनेके लिए उसने एक शिक्षालय खोलनेका निश्चय किया। किन्तु उसकी यह इच्छा किस प्रकार पूर्ण हो सकती थी? यूरोपमें ऐसा कौन व्यक्ति था, जो इस आयोजनका भार अपने ऊपर लेता?

रूससे उसे निमन्त्रण मिला। इसाडोराने एक बार फिर विजयके लिए प्रस्थान किया। किन्तु कौन जानता था कि उसके लिए यह निमन्त्रण मृत्यु-निमन्त्रण सिद्ध होगा? नियतिके अलक्ष आकर्षणसे उसने रूसकी यात्रा की। इसी समय उसने अपनी आत्मजीवनीकी रचना समाप्त की। रूसकी सरकार उसके लिए सब प्रबन्ध करनेको तैयार थी कि इसी समय मृत्युका आह्वान हुआ। चिरचञ्चला इसाडोराकी मृत्यु एक अद्भुत अपघात द्वारा हुई। मोटरपर अत्यन्त द्रुतगतिसे वह जा रही है—गति-गति—उसका समग्र जीवन भी तो गति-वेगसे ही भरा हुआ था। केवल एक क्षण। बाद एक क्षणके देखा गया कि एक रङ्गीन रूमालकी फांसी इसाडोराके गलेमें लगी हुई है और उसीसे उसकी मृत्यु हुई है। वह फांसी मोटरकी एक कांटीमें रूमालके उलझ जानेसे गलेमें लगी थी। उस दिन नृत्यकलाके आकाशसे एक परम ज्योतिर्मय नक्षत्रका पतन हो गया। यही इसाडोराका जीवन-वृत्तान्त है। जो प्राणरससे भरपूर होता है, उसे कोई भी आघात विचलित नहीं कर सकता। इसाडोराको भी नहीं कर सका। उसके जीवनमें कितने ही द्वन्द्व आये और गये। कभी शिल्पकी जय, कभी प्रेमकी और कभी मातृत्वकी—किन्तु कौन उसके लिए चरम था, इसकी मीमांसा वह नहीं कर सकी। जीवनके प्रतिक्षणमें उसने प्राण-रसको छककर पान किया—कभी अपनेको मिट्टीका मनुष्य समझा और कभी कल्पनाके इन्द्रलोकमें आकाश-विहारी अप्सराके रूपमें। इसीलिए बहुरूपी आत्माकी प्रत्यक्ष मूर्तिके रूपमें इसाडोराकी जीवन-कहानी इतनी चमत्कारपूर्ण और कौतूहल-जनक है।

———

निशीथ

निखिल जग निस्तब्ध है जब, जागता हूं मैं अकेला!

कौन मेरे प्राणमें उन्माद-सा कुछ घोलता है?
सिहरते इन अश्रु-कणसे वेदनाको तोलता है!
ला रहा हलचल न जाने कौन मानसके क्षितिजमें,
कौन मेरे श्वासमें रे, मूर्त होकर बोलता है?
सोचता कुछ बैठकर मैं, हाय, यह अधरात बेला!
निखिल जग निस्तब्ध है जब, जागता हूं मैं अकेला!

आज प्राणोंमें न जाने कौन-सी सुधि आ समायी!
जग गयी सोयी पिपासा, विरहकी अनुभूति आयी!
नींद भी आती न, आंखोंमें बसी जो मूर्ति कोई!
भर रहा हूं रक्त-कणसे वेदनाकी गहन खाई!
जुड़ रहा दिलमें मधुरतम स्मृति-कणोंका आज मेला!
निखिल जग निस्तब्ध है जब, जागता हूं मैं अकेला!

जागते नक्षत्र नभमें और यह तम सघन जगका!
कौन बतलावे दुसह दुख आज रे मेरे विहगका!
एक कोटरमें युगोंकी वेदनायें, प्राण रहते,
हाय, बेचैनी लिये मैं पान्थ रे अनजान मगका!
बढ़ रहा जगका अंधेरा, और अन्तसका झमेला!
निखिल जग निस्तब्ध है जब, जागता हूं मैं अकेला!

प्रातको हिय था विकल, सन्ध्या समय थे प्राण उन्मन,
सुलगती जाती हृदयकी वह्नि चिर-सञ्चित प्रतिक्षण!
यामिनीकी आह तीखी भर गयी मेरे हृदयमें,
विकल आंखोंने बसाया गेहमें निज सजल सावन!
दो पलोंके बीच मैंने कौन-सा हा, दुख न झेला!
निखिल जग निस्तब्ध है जब, जागता हूं मैं अकेला!

—रामावतार यादव 'शक्र'

सन्देह

श्री भगवतीप्रसाद "चित्रकार"

"भाभी! भाभी!" शङ्करने आंगनमें पैर धरते हुए पुकारा।

"कौन, लाला!...कब आये?" कहती हुई भाभी कमरेसे बाहर आयीं।

"नमस्ते...अच्छी तो रहीं?"

"किसी तरह...मगर तुम तो मुझे बिलकुल ही भूल गये लाला...।"

"नहीं भाभी। भला ऐसा कभी हो सकता है। तुम्हें कौन भूल सकता है। हां, जरा पढ़ाईकी चढ़ाई थी। इसीलिए न...।"

"रहने दो। सब समझती हूं। अब तुम बड़े आदमी हो गये...बी० ए० पास, इसीलिए इस गरीब भाभीको..."

"भई, यह तो तुम्हारा भ्रम है भाभी। मैं कभी बदलनेवाला नहीं। मुझपर तो कोई दूसरा रङ्ग चढ़ ही नहीं सकता।" शङ्करने प्रतिवाद किया।

भाभी शङ्करको अपने कमरेमें लायीं। वहां खाटपर एक वर्षका बच्चा सोया था...दुबला-पतला।

"बैठो लाला...।" शङ्करको पास ही रखी एक कुर्सीपर बैठनेका इशारा किया और आप खाटपर बैठ गयीं।

"कहांसे आ रहे हो?"

"बनारससे।"

"कब तक छुट्टी है?"

"३० जून तक।"

"तब तो अभी बहुत दिन हैं।"

भाभीके पाण्डुर मुखपर एक आनन्दकी उज्ज्वलता झलमला उठी। शङ्करने देखा, जैसे उन्हें कोई रत्न मिल गया हो।

"भैया कहां हैं?"

"क्या मालूम। वे मुझसे कुछ कहकर कहीं थोड़े ही जाते हैं।"

"हूं...।"

शङ्कर समझ गया...। भैयासे कुछ खटपट हुई है। बराबर होती थी। शङ्कर कुछ पूछे, तब तक—"ठहरो लाला, मैं अभी आयी।" कहती हुई भाभी कमरेसे बाहर हो गयीं।

कमरेमें शङ्कर अकेला बैठा था। उसकी निगाहें उसके चारों ओर घूम रही थीं।

सामने गत चार वर्ष घूम गये...

उस समय, उसकी भाभी नयी-नवेली, छबीली...नववधूके रूपमें एक अपरूप सौन्दर्यकी खान लिये...सारे घरमें एक अपरिमेय आह्लादका रङ्ग छिटकाते आयी थीं।

कितनी चपलता...मादकता...मनमोहकता थी उनमें...। और सोचता शङ्कर...

उसके लिए तो मानो हीराकी निधि ही मिल गयी।

भाभीकी नूपुर-ध्वनिमें उसे एक मिठास-भरा छरीलापन मिलता।

और लाल-लाल चुनरीके घूंघटके अन्दर उसकी भाभी उठते हुए पूर्णमासीके चन्द्र-सी लगती...।

हां,...वह तो उस रूपपर मोहित हो गया था। शायद ही उसने ऐसा सौन्दर्यका सजीव चित्र देखा हो...।

...और भाभीकी मृदुल वाणीमें इतनी सरसता, इतना माधुर्य्य था कि शङ्करको जान पड़ता, जैसे वह किसी मादक वंशीका नाद ही सुन रहा हो...।

न मालूम कितनी हंसी-खुशी, चहल-पहल रहती थी इसी कमरेमें। उन दिनों यह कमरा जगमगा उठा था। कितनी मेहनतसे इस कमरेको उसने सजाया था। कितने अच्छे-अच्छे कागजके फूल...अच्छी-अच्छी तसवीरें...चैन सभी लगाये थे...।

और आज...

उनमें एक भी साबित न था...।

एक-दो तसवीरें थीं...पर वे भी उदास...धूमिल। उनपर गर्द जम गयी थी।

एक अलगनीपर कुछ मैले कपड़ोंने उसका रूप और भद्दा बना दिया था। हां...उस समय तो भाभी...बिलकुल नयी भाभी...इसी कमरेमें बैठी रहतीं...उससे अपने दिलकी बातें कहतीं और उसकी भी सुनतीं...।

ब्याहके एक मास बाद—

आया था आषाढ़ मास। काली-काली घटायें लेकर…। उसकी गर्जन-ध्वनिसे सारा नभमण्डल रह-रहकर गूंज उठता था। इसी अवसरपर उसने भाभीसे पूछा—"भाभी, ये बादल गरजते क्यों हैं?"

उन्होंने मुस्कुराकर कहा—"मोरको उन्मत्त बनानेके लिए…।"

इस उत्तरसे वह गद्गद हो उठा था—"वाह! आप तो साहित्यकी बात कहती हैं।"

"जीवनके वास्तविक अनुभवकी अभिव्यक्ति ही साहित्य है।" वह मुस्कुरा पड़ी थीं…।

और इसीपर न जाने कितनी बातें हुई थीं…। फिर श्रावणका मास भी आया—

रिमझिम-रिमझिम…मेह बरसने लगा…। नन्हीं बूंदोंकी फुहार और उस झड़ीमें लगता झूला, जिसपर झूलतीं भाभी…और वह…।

और होतीं कजलियां…। खासकर।

"कन्त नहीं घर आये…।"

गाती-गाती भाभी जैसे एक दर्द-भरी आह ले कराह उठतीं…!

फिर सोचता शङ्कर…

और उसकी भाभी, भाभी ही थीं…एकदम नेक…। सभीसे हिल-मिलकर रहतीं। सासकी आंखोंकी पुतली…; ननद-जेठानियोंकी प्राण…।

"पर भैया…!" शङ्कर कांप उठा—"ओफ! इतनी हसीन औरत—सुन्दर स्वभाव…और :मधुर बोलनेवाली पाकर भी वे कैसे न मानते थे उनको।…प्यारी भाभी प्यार-भरे सम्बोधनके लिए तरसतीं, लेकिन निष्ठुर भैया न मालूम किसे अपना हृदय दे बैठे थे। तब भला बेचारी भाभीमें कैसे लोग वही पुराना चपलता-भरा ओज पायें…। वह तो जैसे निर्जीव-सी हो रही थीं…। शरीर गलकर आधा रह गया था। सौन्दर्य फीका हो उठा था। स्फूर्ति, यौवन-सुलभ चञ्चलताने उसका पल्ला छोड़ दिया था…। उसके स्थानमें रह गयी थी प्रच्छन्न खिन्नता, एक व्यथित हृदयकी असन्तोष-भरी मार्मिक पीड़ा…कुछ कुचले अरमान…। हमारी गृहस्थीकी चक्की हमारी ललनाओंको किस तरह पीस-पीसकर चलनी बना देती है! स्त्री-जीवनका सर्वनाश-कारी ग्रह कदाचित् विवाह ही है…।

शङ्कर हुङ्कार उठा—"हां, विवाह ही है और अनमेल विवाह?…क्या आवश्यकता थी समाजको ऐसे लापरवाह व्यक्तिसे शादी करनेकी?…सिवाय ऊंचे कुलके और क्या था भैयामें, जो भाभीके पिताने फूलोंकी सेजपर लेटनेवाली, नाजोंमें पली लाड़लीको उनके गले बांध दिया।…समझमें नहीं आता, कन्या-दान हुआ था या कन्या बलिदान…!"

सहसा शङ्करकी विचार-धारा टूटी, तो देखा—भाभीका पता तक न था। वह उठकर आंगनमें आया। देखा, भाभी चूल्हेपर है। वह रसोई-घरके दरवाजेपर पहुंच गया।

भाभी पूरियां तल रही थीं। चौंककर पीछे देखा—"तुम यहां भी आ गये…?"

"तो क्या करूं। अकेला उस घरमें बैठना अच्छा नहीं लगता।"

"क्यों, क्या वहां कोई नहीं है?"

"हां…वहां हमारे बीते आनन्दपूर्ण समयकी काली छाया-भर रह गयी है, जो भूतसे भी अधिक भयावनी हो रही है।"

भाभीने एक लम्बी सांस ली…।

शङ्कर वहीं एक पीढ़ेपर बैठ गया।

भाभीने गर्मागर्म पूरियां और आलूका साग सामने रख दिया—"लो, खाओ।" वह सामान देखकर चौंका—"क्यों व्यर्थ झन्झट करने आयीं। मैं कोई मेहमान थोड़े हूं जो…"

"वाह!…सिर्फ मेहमान ही की लोग खातिर करते हैं क्या? घरवालोंको क्या पूछा नहीं जाता…। नाश्ताका वक्त हो ही गया है, कर लो।" वह मुस्कुरा पड़ीं…।

"तो तुम भी आओ।" थाली पास खींचते हुए, उसने कहा।

"अभी मैंने स्नान नहीं किया है।"

शङ्करने एक बार उनकी ओर देखा, फिर पूरियोंपर हाथ फेरने लगा…। खाते-खाते कहा—"जरा अपनी तन्दुरुस्तीपर भी ध्यान दिया करो भाभी।"

भाभीका चेहरा जर्द हो गया। संभलकर बोलीं—

ख्याल तो करती हूं...इधर कुछ तबीयत खराब रहती है... इसीलिए......"

क्या यह सफेद झूठ था ?

"मुझसे क्यों छिपाती हो भाभी !" शङ्करने भारी गलेसे कहा। भाभी सिहर-सी उठीं—"कहां...कुछ तो नहीं... ।"

"देखो भाभी, तुम्हारा म्लान चेहरा देखकर मुझे बहुत दुःख हो रहा है। कैसी थीं तुम और कैसी हो गयीं..., उन दिनों कितनी खुश रहतीं और खुश रखती थीं।...और आज मालूम होता है, सारे संसारका दुःख तुम्हारे ही ऊपर आ गिरा है...। भाभी, क्या तुम एक बार फिर वैसी नहीं हो सकतीं ?"

उसकी आंखोंमें पानी भर आया...।

भाभी चुप...!

मुश्किलसे गला साफकर भाभीने कहा—"लाला, जाने दो बीती बातोंको। संसारमें सुख क्षणिक होता ही है। हां... यह तो बतलाओ, तुम अब भी क्या बहू घरमें न लाओगे। ...सयाने हो चले...।"

शङ्कर विद्रूपकी हंसी हंसा—"भाभी, जब तक मनुष्य स्वावलम्बी न हो जाय, उसे विवाह-सूत्रमें नहीं बंधना चाहिए। क्या इस योग्य मैं हो गया हूं कि किसीके संसार-के सुखके उपादानोंको पहुंचानेमें कुछ समर्थ हो सकूं।"

"तुम भी पागल ही रह गये। अरे, बी० ए० पास हो ही गये..., नौकरी-चाकरी मिल ही जायगी। फिर चाचाजी तो अभी हैं ही। अभी तुम्हें कमी क्या है, जो फिक्र करने लगे।"

"भूल समझती हो भाभी। पिताजी चाहे जो भी करें, पर क्या उससे मेरी पत्नीको सन्तोष होगा...अथवा मेरी ही आत्माको शान्ति मिलेगी ? दूसरेका मुंह जोहते रहना—अपने आरामके लिए कहां तक अच्छा होगा।"

भाभी कुछ सोचने लगीं...

धीरे-धीरे कहने लगीं—"ठीक है लाला, जब तक पुरुष नारीके वास्तविक भारको वहन करने योग्य न हो जाय—तब तक शादी न करनी चाहिए...।"

घरके अन्दर बच्चा रो उठा।

भाभी दौड़ पड़ीं।

शङ्कर पूरियोंके टुकड़े करता रहा।...हाथ धोकर उठ जाना चाहता था। भाभी बच्चेको लिये पहुंचीं।

"यह क्या, तुम हाथ धो रहे हो ?"

"हां, अब खाया नहीं जाता।"

"वाह, यह भी कोई बात है! खाना पड़ेगा... मेरी कसम।"

शङ्करने उनकी ओर देखा...।

"मेरी कसम !"...उसकी अवहेलना क्योंकर हो।

धीरे-धीरे पूरियां साफ होने लगीं।

उसने बच्चेकी ओर एक टुकड़ा बढ़ाया, "ले बेटा।"

लड़केने डरकर मुंह फेर लिया...।

भाभी हंस पड़ीं—"डरता है...। अरे चाचा..."

"हूं।" बच्चेने कहा।

शङ्करने उठकर उसे गोदमें ले लिया। खेलाने लगा ...चुमकारा।

वह खिलखिलाकर हंसा...।

न जाने क्यों शङ्करको लगा, जैसे वह दुनियाके लोगों-पर व्यंग्य कर रहा है।

× × × ×

दो वर्ष बाद—

एक दिन सन्ध्या समय शङ्कर जैसे ही बाहर कहीं घूमने जा रहा था कि तारवालेपर नजर पड़ी।

कलेजा धक् हो गया। भावी आशङ्कासे कांप उठा...।

तारवालेने तार दिया।

कांपते हुए हाथोंसे उसने उसे खोला...।

लिखा था—

"भाभी मरणासन्न है, जल्द आओ।" —महेश

शङ्करकी आंखों-तले अन्धेरा छा गया। तार हाथसे छूट गया।

हठात् अन्दर गया। खबर कर दी...और स्टेशनको चल पड़ा।

शङ्कर बारह बजे रातमें भाभीके यहां पहुंचा...।

सीधे भाभीके कमरेमें आया...। सब लोग घेरे थे... लेकिन भैयाका पता न था।

"भाभी अब न बचेंगी भैया...।" महेशने रोते हुए कहा।

महेश शङ्करका चचेरा भाई है।

शङ्करकी आंखोंमें आंसू आ गये।

उसने भाभीके सिरके पास जाकर पुकारा—"भाभी ! भाभी !..."

भाभीने आंखें खोलीं...।

शङ्करने देखा...भाभीकी आंखोंमें आंसू भरे हुए थे और चेहरेपर निराशाकी स्पष्ट रेखा...।

शङ्कर कांप उठा।

भाभीने आंखें फिर मूंद लीं...और तीन-चार बूंद आंसुओंके मोती पाण्डुर कपोलोंपर लुढ़क पड़े...।

शङ्करने एक लम्बी सांस ली...। पूछा--"महेश, भैया ?"

"डाक्टर..." और वह रो पड़ा।

शङ्कर वहीं कुर्सीपर बैठ गया।

इतनेमें रमेश भैया डाक्टर लेकर आ गये...।

जैसे डाक्टरने चाहा, नब्ज पकड़ें कि भाभी बड़बड़ायीं—"तुम कौन होती हो...उनपर शक करनेवाली।...तुम पत्नी थीं...पत्नीकी तरह रहतीं...। माना कि पति तुम्हें प्यार ...पर तुमने...उन्हें...नीच...अधिकार ही क्या...क्यों नहीं तुमने अपना सम्पूर्ण हृदय...चरणों...पर...तुम्हारे होते दिल दूसरेको...बैठे...लेकिन तुम उनके रहते...उन्हें क्यों न अपना समझा...पापिनी... !"

भाभी और जोरसे चिल्ला पड़ीं—"ओफ !...शङ्कर ! शङ्कर !! शङ्कर !!!...बचाओ...मैं मरी...नरककी अग्नि... ओह, क्षमा नाथ !..."

फिर चेतनारहित...और निस्पन्दित... !

सभी चौंक उठे... !

डाक्टरने नब्ज देखी और साथ ही गम्भीर होकर शङ्करकी ओर दृष्टिपात किया।

"क्या है ?" शङ्करने पूछा।

"हृदय-शक्ति क्षीण होती जा रही है।"

"तब ?"

"सुई देता हूं...।"

सुई दी गयीं...एक...दो...तीन...

लेकिन भाभीके प्राण-पखेरू उड़ गये, सदाके लिए... !

घरमें कोहराम मचा।

भैया बेहोश होकर टेबुलपर गिर पड़े, जिससे सिर फट गया...खूनकी धारा बह चली...। डाक्टर उन्हें मोटरमें डाल अस्पताल ले गया...।

× × × ×

दाह-क्रियाके दो सप्ताह बाद—

शङ्कर अस्पतालमें रमेश (भैया) को देखने गया...। उन्होंने कांपते गलेसे कहा—"क्यों तुम लोग मुझे बचानेकी इतनी कोशिश कर रहे हो। तुम नहीं जानते...मैं कितना बड़ा पापी हूं...। मेरी आत्मा मुझे हजारों बार धिक्कारती है...। कहती है—तुम खूनी हो...।...हां...शङ्कर, वह देवी थी...स्त्री-रत्न थी। उसकी भुवनमोहनी सुन्दरतापर मैं जरूर लट्टू था...उसे जरूर प्यार करना चाहता था...लेकिन... ओफ !...शङ्कर, मैंने उसके साथ बड़ा विश्वासघात किया। ...मैं उसपर सन्देह करता था...। और पापकी बातें सुनोगे...शङ्कर,......उसके साथ तुम्हें भी सम्मिलित समझता था। जब तुम आते थे...वह प्रसन्न रहती...खिल-खिलाकर हंसती रहती...पर मेरे सामने गम्भीर हो जाती। मैं समझता, मेरी अवहेलना करती है...। इसी वहमने मुझे नरकका द्वार सदा झंकाया...। मैं चम्पाको प्रेम करता था। केवल उसके दिखाऊ प्रेमसे ही अपने हृदयकी भूख बुझाना चाहता था...। सोनेका पानी चढ़ा गहना, असली सोनेसे ज्यादा चमकदार होता है, यद्यपि मूल्य उसका कौड़ीका तीन होता है।...मेरा मन इसी ओर दौड़ा था... क्योंकि सोनेमें चमक न दिखलाई देती थी... वह आंखें चकाचौंध नहीं करता था...। क्या करोगे, प्रकृतिका यह नियम है...। पर...पर तुम मुझे क्षमा करो शङ्कर..., मैंने तुम्हें भाई बुरा समझा..."

और रमेशने कसकर आंखें मूंद लीं...

और शङ्करकी आंखोंमें श्रावण-भादों उमड़ पड़ा...।



राष्ट्र-भाषा बनाम हिन्दी

श्री विष्णुप्रसाद खोसला, बी० ए०

आजकल देशमें राष्ट्र-भाषाके प्रश्नको लेकर तरह-तरहके विचार प्रकट किये जा रहे हैं। कोई हिन्दीके गौरवको कायम रखनेकी गरजसे केवल 'हिन्दुस्तानी' नामसे चिढ़ते हैं, तो कोई 'हिन्दुस्तानी' नामका प्रयोग कर अपने राष्ट्र-भाषा-प्रेमका परिचय देते हैं ; गोया लोगोंने साहित्य-क्षेत्रमें लड़ाईका अखाड़ा बना लिया है।

कोई भी भाषा मनुष्यके हृदयगत भावोंको व्यक्त करनेका साधन है। इसके वर्तमान रूप और लेखन-शैलीका गठन एक-दो वर्षके प्रयाससे नहीं, बल्कि वर्षोंके परिश्रम और व्यवहारसे ही हुआ है। किसी भी भाषाके इतिहासके लिए हमें सैकड़ों वर्ष पीछेकी ओर जाना पड़ता है और अन्वेषण करते-करते हम इस निर्णयपर पहुंचते हैं कि वर्तमान शैलीसे पूर्व-शैलीमें यदि कुछ समानता है, तो विभिन्नता भी कम नहीं है। बल्कि कभी-कभी तो यह देख आश्चर्य होता है कि उसके पूर्व-रूपसे वर्तमान रूप इतना भिन्न क्यों हो गया ?

अब देखना यह है कि परिवर्तन किस प्रकार होता है। यह तो बिलकुल मान्य है कि मनुष्यकी रुचि परिवर्तनके पक्षमें है। प्रकृति भी अपने परिवर्तित रूपमें इन्हें इसके लिए प्रेरणा देती है। अपनी रुचिके अनुसार मनुष्य अपनी वेश-भूषा धारण करता और भाषा बोलता और लिखता है।

मनुष्य-जीवनका इतिहास बतलाता है कि मनुष्यका जन्म आजसे कई युग पूर्व एक दम्पतिसे एक स्थानमें हुआ था, चाहे वह दम्पति आदम और ईवकी शक्लमें रहे हों या ब्रह्मा और ब्राह्मीकी शक्लमें। इसी एक दम्पतिसे संसारके इतने मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। अतः यह बिलकुल स्वाभाविक है कि उनकी भाषा, संस्कृति एवं रहन-सहन एक तरहके हों। हां, भिन्न-भिन्न जलवायु और वासस्थानके कारण कुछ फेरफार तो करना ही पड़ा होगा, जो प्रत्यक्ष देखनेमें आता है। खाते सभी अन्न ही हैं, पीते भी पानी और दूध ही हैं, सांस लेनेके लिए हवा ही है और काम करनेके लिए हाथ-पैर और दिमाग। सृष्टि - मर्यादाकी रक्षाके लिए सभीके तरीके एक ही हैं। परन्तु स्थान-विशेषके कारण, आरम्भमें एक भाषा रहनेपर भी, भिन्न-भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न भाषाओंका प्रयोग होता है। या यों कहें कि समान भाषाओंमें ही स्थान और समयके अनुसार थोड़ा या अधिक अन्तर आ गया है। यह अन्तर अब इतना अधिक हो गया है कि लोग एक-दूसरेकी भाषाको विदेशी समझते ही नहीं, वरन् इसके मूल रूपकी एकतापर भी सन्देह करने लगे हैं, हालांकि अभी भी बहुतेरे शब्द कई भाषाओंमें समानता रखते हैं।

उपर्युक्त दृष्टिकोणको सामने रखकर हम अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानीपर विचार करें। सर्वप्रथम आर्य लोग जब उत्तरी भारतमें आकर बसे, तो उन्हें यहांके आदि निवासियोंके सम्पर्कमें रहना पड़ा था। उस समय उनकी भाषाका कोई सुष्ठु रूप नहीं था। आर्योंने यह महसूस किया कि हमारी भाषा शुद्ध और उच्च संस्कृतिके अनुकूल हो और यहांके अनार्योंके समक्ष उनके लिए ऐसा करना उपयुक्त भी था, क्योंकि वे यहां विजेताके रूपमें आये और बस गये। अब अपनी भाषाको संस्कृत या शुद्ध रूप देनेके लिए उन्होंने कुछ नियम भी बना दिये। जो लोग इस तरहकी शुद्ध भाषाका प्रयोग करते थे, वे प्रायः अधिक सभ्य और बुद्धिमान थे। पर सभी ऐसे रहे हों, यह सम्भव नहीं ; अतः यह शुद्ध रूप सबके लिए ग्राह्य नहीं था। जो भाषा नियमानुकूल शुद्ध रूपमें व्यवहार होने लगी, वह 'संस्कृत-भाषा' कहलायी। पीछे 'भाषा' शब्दको लोग किफायतशारीके कारण कहना आवश्यक न समझकर केवल 'संस्कृत' कहकर ही 'संस्कृत-भाषा'का अर्थ समझने लगे, जैसा लोग अभी भी समझते हैं।

हिन्दुओंका प्राचीन ग्रन्थ वेद है। इसकी ऋचायें उस समयकी प्रचलित भाषामें ही रची गयी थीं, भले ही उस भाषाका नाम संस्कृत, प्राकृत या अन्य कुछ रहा हो; पर हम उसे वैदिक संस्कृत भाषा कहते हैं। जो कुछ भी हो, परन्तु वेदके पाठकोंका अनुमान है कि वेदकी ऋचायें किसी खास जगह या समयमें किसी खास व्यक्ति द्वारा नहीं

बनायी गयीं, और ऐसा मान लेनेमें वेदकी महत्ता कुछ कम नहीं हो जाती, और भाषामें कहीं-कहीं भिन्नता हो, यह असम्भव भी नहीं जंचता।

संस्कृत भाषा साहित्यिक भाषा थी, इससे कोई इनकार नहीं करता; परन्तु साधारण बोलचालकी भाषा संस्कृत नहीं, बल्कि 'अपभ्रंश' थी और इसी भिन्नताको दर्शानेके लिए साहित्यिक भाषाका नाम संस्कृत या शुद्ध भाषा रखा गया हो, यह सम्भव है।

मनुष्य स्वभावतः स्वतन्त्रता-प्रेमी होता है। उसे किसी तरहका बन्धन अखरता है। अतः जब साहित्यिक लोग अपनी भाषाकी यहांके आदि निवासियोंकी भाषासे भिन्न एक व्यवस्थित भाषाके रूपमें सृष्टि करनेका प्रयत्न कर रहे थे, उस समय साधारण जनसमुदायकी बोलचालकी भाषा असंस्कृत रूपमें ही थी, और यहांके आदि निवासियोंके सम्पर्कमें आनेके कारण उन्होंने कुछ उनके शब्द भी अपनी बोलचालकी भाषामें मिला लिये, जैसा स्वाभाविक है। यह साधारण बोलचालकी भाषा आम तौरसे व्यवहार होने लगी और पीछे इसीका नाम 'अपभ्रंश', 'प्राकृत', 'पाली', 'अबहट्ट' आदि पड़ गया। जब व्याकरणके नियमोंके रहते हुए भी लोगोंने इस असंस्कृत भाषाका व्यवहार न छोड़ा, तो यह भी एक भाषा कही जाने लगी। पीछे लोगोंने इसमें भी कई ग्रन्थ रच डाले। कवितामें भी इसका प्रयोग होने लगा।

संस्कृतके अतिरिक्त 'प्राकृत' या 'अपभ्रंश' का रूप भिन्न-भिन्न जगहोंमें भिन्न-भिन्न हो गया और यही क्रमशः भिन्न-भिन्न भाषाओंका रूप धारण कर कहीं शौरसेनी, कहीं मागधी और कहीं ब्रजभाषा कहलाने लगी। कितनोंने तो इन भाषाओंको इस तरह अपनाया कि संस्कृतका ही उन्होंने तिरस्कार करना शुरू कर दिया। स्वयं बुद्ध भगवानने अपने उपदेशोंका संस्कृत भाषामें प्रचार न कर अपनी भाषा 'मागधी' में प्रचार करनेकी आज्ञा दी थी। यह उनकी संस्कृतके प्रति घृणाका द्योतक नहीं कहा जा सकता, बल्कि सर्वसाधारण तकको अपनी गूढ़ शिक्षाका मर्म समझानेकी उत्कट अभिलाषाका। मिथिलाके विद्यापति तथा महात्मा गोरखनाथ, महाकवि चन्दबरदाई और जायसी आदिकी कवितायें और लेख उनके भाषा-प्रेम एवं समयकी प्रगतिके ज्वलन्त उदाहरण हैं। इनका विचार मुख्यतः अपने भावको व्यक्त करनेका था, न कि किसी साहित्यके प्रचारका। और इस उद्देश्यकी पूर्तिमें उन्हें बहुत दूर तक सफलता भी मिली थी।

अब यदि भाषाकी शैलीका विश्लेषण किया जाय, तो हमें पता लगेगा कि उक्त महाकवियोंकी भाषा संस्कृत नहीं, बल्कि संस्कृत-मिश्रित प्राकृत या अपभ्रंश थी; और वह जिस रूपमें रखी गयी, वही आधुनिक भाषाका उद्गम कहा जा सकता है। हम उसी भाषाका परिवर्तित रूप आज हिन्दीके रूपमें पाते हैं। अन्ततः हम इस परिणामपर पहुंचते हैं कि हिन्दी भाषाकी—जो संस्कृतसे अलग 'भाषा' नामसे विख्यात हो चुकी है—जननी 'प्राकृत' है, संस्कृत नहीं; हां, संस्कृतके बहुतेरे शब्द इसमें प्रयुक्त होते हैं, इससे विरोध नहीं।

यह हिन्दी भाषा अंगरेजोंके आगमनके पश्चात् 'हिन्दुस्तानी' भाषाके नामसे प्रख्यात हुई है, ऐसा डा० ग्रियर्सन और गिलक्रीस्टके लेखके आधारपर मालूम पड़ता है। पर असल बात यह है कि उत्तर भारत और मध्य भारतमें बसनेवाले आर्य जिस भाषाको आम तौरसे इस्तेमाल करते थे, उसीको अब साहित्यिक रूप दिया जाने लगा। और चूंकि अंगरेजोंको अपनी हुकूमत चलानेके लिए इनकी भाषाका ज्ञान होना आवश्यक जंचा, इसलिए उन्होंने हिन्दीको व्यवस्थित रूपमें लानेके लिए लल्लूलालजीको 'प्रेम-सागर' जैसा ग्रन्थ लिखनेका प्रोत्साहन दिया। लल्लूलालजीने जिस भाषाका प्रयोग प्रेमसागरमें किया है या सदासुखलालजीने जिस भाषाका प्रयोग 'रानी केतकीकी कहानी' लिखनेमें किया है, वह लेखकोंकी स्थानीय भाषा थी। इन लेखकोंकी भाषा तथा इनके पहलेके अमीर खुसरोकी भाषा ही आधुनिक हिन्दी भाषाका मूल रूप समझी जा सकती है और इसी आधारपर भाषाकी उन्नति होती गयी है। इस सम्बन्धमें डा० ग्रियर्सन, मि० गिलक्रीस्ट तथा पादरी आर्थिङ्गटनका उद्योग सराहनीय है। उन्होंने हिन्दी भाषाका इतिहास, कोष और व्याकरण बनाकर इस भाषाका बड़ा उपकार किया है।

अभी जो भाषा व्यवहारमें लायी जा रही है, वह एक ऐसी भाषा है, जिसमें कितने ही परिवर्तन होते आये हैं

और आगे भी होते रहेंगे। यह परिवर्तन इस भाषा या अन्य भाषाके जीवित होनेका प्रमाण है। संस्कृत भाषा अपने व्याकरणके शिकञ्जेमें पड़कर अब मृत भाषामें दाखिल हो गयी है, इसे कौन नहीं जानता? हालां कि संस्कृत हिन्दुस्तानके लिए गौरवकी वस्तु रही है और अभी भी बहुत अंशमें उसे सर्वमान्य होनेका दावा है।

वर्तमान हिन्दी भाषामें विदेशी भाषाके शब्दोंको पचा डालनेकी क्षमता है। अभी भी इसमें अंगरेजी (पेन्सिल, स्टेशन, जनरल, टिकट, रपट आदि), फ्रेंच (कारतूस, अंगरेज, फ्रान्सीसी आदि), पोर्तुगीज (कमरा, नीलाम आदि), डच (तुरुप, बम आदि), तुर्की (कैंची, कुली, दारोगा) एवं मुसलमानी भाषा (अमीर, सरदार, खानदान, गुमाश्ता, जमीन, हक आदि) के शब्द आम तौरसे व्यवहार किये जाते हैं, जिन्हें म्लेच्छ समझकर निकाल डालना शायद हिन्दीकी शोभामें बट्टा लगाना ही होगा।

इस तरह हम देखते हैं कि विदेशी भाषाओंके समक्ष हिन्दी भाषा जीवित रहकर मोर्चा लेनेको तैयार रही है और अपनी उदारता एवं आदान-प्रदानके द्वारा अब राष्ट्र-भाषाके सिंहासनपर आरूढ़ हो चुकी है। यह शक्ति इसने भिन्न-भिन्न समयोंमें अपने रूपमें समुचित परिवर्तन लाकर ही प्राप्त की है। अब सिंहासनारूढ़ होनेपर उसे किसी खास सम्प्रदाय या वर्ग-विशेषकी ओर न झुककर सार्वदेशिक बनना है और यह इसके लिए आवश्यक भी है। ऐसी दशामें यदि हम उसे अपने पूर्व-सम्बन्ध और मत-बलकी याद दिला नीचे घसीटनेकी कोशिश करें, तो यह निन्दनीय कार्य होगा। आखिर गद्दीनशीन होनेपर उसे विशेष अधिकार देना होगा। बल्कि उसके अनुशासनमें रहकर ही हम अपने मताधिकारकी मर्यादा रख सकते हैं। ऐसा तो सभी लोकतन्त्रात्मक शासनोंमें होता है। विशेष स्थितिमें कानूनका शिकञ्जा ढीला करना ही पड़ता है। बस, हमें यही करना है।

महाकवि चन्द बरदाईसे लेकर अब तक हिन्दी भाषाके रूपमें जो परिवर्तन हुए हैं, उनकी अच्छी तरह छानबीन करनेपर कोई भी साहित्यज्ञ उसके वर्तमान रूपसे अप्रसन्न नहीं होगा; बल्कि आरम्भके पद्य एवं गद्यके अध्ययन करनेपर बहुतेरे अलज्ञ उनका मजाक भी उड़ायेंगे। उदाहरणके लिए दो चार पंक्तियां रखी जाती हैं:—

'रघुनाथ चरित हनुमन्त कृत भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पृथ्वीराज सुजस कवि चन्द कृत चन्द नन्द उद्धरिय तिमि॥
(चन्द)

'भला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कन्तु।
लज्जे जन्तु वयंसि अह जइ भग्गा घर एन्तु॥
(विद्यापति)

'(गद्य) स्वस्ती श्री श्री चीत्रकोट महाराजाधीराजतपे राजश्री श्रीरावल श्रीसमरसीजी वचनातुदा अमा आचारज ठाकुर···अणी राजमें ओषद थारी लेवेगा···ओ जनानामें थारा वंसरा हाल ओ दुजो जावेगा नहीं।'

इन पंक्तियोंका यदि हम वर्तमान भाषाके पद्य और गद्यसे मिलान करें, तो कितना बड़ा अन्तर दीख पड़ता है?

इस तरह हम देखते हैं कि परिवर्तन अवश्यम्भावी है। और यह परिवर्तन समय और रुचिके अनुकूल ही होता है। जब हम हिन्दीको राष्ट्र-भाषा बनाते हैं, तो हिन्दुस्तान जैसे बड़े देशके भिन्न-भिन्न प्रदेशों और रियासतोंकी बोली और उच्चारणको ध्यानमें रखकर इस भाषाको सुलभ बनाना होगा। पूर्व बिहार तथा बङ्गालके लोग जिस मिठाससे इस भाषाका उच्चारण कर सकते हैं, उस मिठाससे पञ्जाब या राजपूतानेके लोग नहीं। 'न' का साधारण तौरसे गुजरातके लोग 'ण' की तरह, एवं 'र' का मारवाड़ी लोग 'ड़' की तरह उच्चारण करते हैं। जैसी हिन्दी पं० जवाहरलाल नेहरू या आचार्य नरेन्द्रदेव बोलते हैं, वैसी हिन्दी बल्लभभाई पटेल नहीं बोलते। यह अन्तर स्वाभाविक है। ब्रह्म देशके एक प्रतिनिधि रामगढ़ कांग्रेसमें कांग्रेस तथा हिन्दीके प्रति प्रेम दिखलानेके लिए अपनी जबानको तोड़-मरोड़कर हिन्दीके कुछ वाक्य कह गये, तो इससे हिन्दीकी उत्कृष्टता घटी नहीं; बल्कि हमें यह अनुमान हुआ कि किसी भी नयी भाषाके लिए स्वर-भेदके कारण थोड़ी कठिनाई सबको होती है।

अब देखना यह है कि हिन्दुस्तानके लिए हिन्दी (या हिन्दुस्तानी) राष्ट्रभाषा क्यों चुनी गयी है? हिन्दुस्तानकी जितनी भाषायें हैं, उनमें हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जो बिलकुल स्वाभाविक ढङ्गसे सिरजी गयी है एवं इसके जाननेवालोंकी संख्या भी सबसे अधिक है। इसके सीखनेमें भी अधिक कठिनाई नहीं होती, जैसा कि नवलिखिये लोग भी कहा करते हैं। इसकी लिपि भी आसान है और संस्कृत

साहित्यकी लिपिसे मिलती है। साथ ही उर्दू (या खड़ी बोली) के उच्चारण और इसके उच्चारणमें नाममात्रका अन्तर है।

अब प्रश्न यह है कि राष्ट्र-भाषा हिन्दीका रूप कैसा हो। क्या हम ऐसी हिन्दी भाषाका प्रयोग करें, जिसमें हमारा अधिकांश साहित्य भरा पड़ा है, अथवा हम ऐसी भाषाका करें, जिसे सर्वसाधारण समझ सकें। हमारी तो यह राय है कि सर्वसाधारणमें प्रयोगके लिए साहित्यिक भाषाको जबरन् न घसीटा जाय। साहित्यिक भाषा और बोलचालकी भाषामें सब कहीं अन्तर देखा गया है। अभी भी तो हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तोंमें मैथिली, भोजपुरी, मगही और अवधी भाषायें सर्वसाधारणमें बोली जाती हैं।

यदि संस्कृतके दो विद्वान् संस्कृतमें ही शास्त्रार्थ करें, दो कवि आपसमें कविताओं द्वारा ही अपनी विद्वत्ता दिखायें, दो वकील अंगरेजीमें ही बहस करें, तो इसका सर्वसाधारणके ऊपर कोई असर नहीं पड़ सकता। परन्तु यदि ये लोग ठेठ दिहातकी किसी सार्वजनिक सभामें अपनी विद्वत्ता दिखलानेके लिए संस्कृत या अंगरेजीमें ही भाषण करें, तो इसका प्रभाव क्या पड़ सकता है? वहां तो अपनी विद्वत्ता और काबिलियतको किनारे कर लोगोंकी समझमें आनेवाली भाषाका ही प्रयोग कर अपने भावोंको व्यक्त करनेमें सफलता मिल सकती है। और वक्ताके भावोंको जान लेनेपर ही उसकी प्रशंसा या निन्दा की जा सकती है एवं लोगोंको सभामें एकत्र करनेका उद्देश्य भी पूरा हो सकता है। डा० राजेन्द्रप्रसादको गांधी-सेवा-सङ्घके अधिवेशनके अवसरपर वृन्दावन (मोतीहारी) में भोजपुरी भाषामें बोलते देख हमें आश्चर्य होने लगा था। किन्तु मोतीहारी जिलेके जिन लोगोंकी जमात वहां इकट्ठी थी, उसमें भोजपुरी भाषाका प्रयोग ही उत्तम था। इससे उनकी हिन्दी या अंगरेजीकी योग्यतामें कमी नहीं आयी। अब्दुल गफ्फार खां जब बिहारमें आकर हिन्दी बोलते हैं, तो कोई इन्हें सरहदी नहीं, बल्कि सब अपना आदमी समझते हैं। तब राष्ट्रभाषाके ज्ञाताके लिए यह आवश्यक है कि जिधरकी जैसी बोली हो, उधर वैसी ही भाषाका रूप दे। पश्चिमके प्रदेशोंमें कुछ उर्दू शब्दोंका व्यवहार वैसे ही उपयुक्त होगा, जैसे पूर्वीय प्रान्तोंमें संस्कृतके शब्दोंका, तथा दाक्षिणात्यमें तामिल, तेलगू और कनाडीका। एक शैली और एक ही ढङ्ग सब जगहोंके लिए ठीक नहीं हो सकता। आखिर एक शब्दके पर्य्यायवाची इतने अधिक शब्द भी तो इसी अभिप्रायसे बने हैं।

लेखन-शैलीमें भी यह देखना चाहिए कि हम जिस विषयको लिख रहे हैं, उसे किस प्रदेश और किस तरहकी जनतामें प्रचार करना है। इसके लिए हम भिन्न-भिन्न पर्य्यायवाची शब्दोंका व्यवहार करें, तो 'हिन्दी' पर कोई आघात नहीं पहुंच सकता, वरन् इसकी क्लिष्ट या खास शैलीको ही काममें लानेसे इसका मान घट सकता है। हमें यह भूलनेकी जरूरत नहीं कि किसी भी भाषाको व्यवहारमें लाना तथा साहित्यका ज्ञान होना भिन्न वस्तु है। अंगरेजीमें साधारण योग्यता रखनेवाले मुख्तार और ऊंचे दर्जेके वकील, अंगरेजीमें ही कानूनी बहस करते हैं, पर इससे अंगरेजीमें दोनोंकी योग्यता नहीं आंकी जा सकती। इसी तरह बोलचाल या व्यवहारमें आनेवाली भाषा ऐसी होनी चाहिए, जिसे सभी वर्गोंके लोग आसानीसे समझ जायें और सम्भवतः आसानीसे उसे लिख-पढ़ भी लें। हां, प्रचारक भाषाके मूल रूपको बिगड़ते देख उसे शुद्ध रूपमें लानेकी चेष्टा अवश्य करायें। अभी भी सरकारी फार्मों और नोटिसों तथा रजिस्ट्रोंके कागजके मजमूनमें सुधारकी गुञ्जायश है।

हिन्दुस्तान-ऐसे महान् देशमें, जहां भिन्न-भिन्न धर्म और संस्कृतिके हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिक्ख, बौद्ध, जैन और यहूदी रहते हों, एक ही राष्ट्रभाषाका होना सम्भव और उपयुक्त है या नहीं, इसपर विवेचन करना है।

यों कहनेके लिए तो ये जातियां भिन्न-भिन्न धर्मोंको मानते हुए एक-दूसरेसे सर्वथा पृथक् हैं, फिर भी इन सबमें ऐसा सामञ्जस्य है, जिसे वर्तमान विदेशी शासन-प्रणाली समूल नष्ट नहीं कर सकी है। भले ही पश्चिमके मुसलमान अपनी काबिलियत दिखानेके लिए अधिकसे अधिक फारसी और अरबी शब्दोंका इस्तेमाल करें, परन्तु हिन्दुस्तानके देहातमें रहनेवाले मुसलमान तो बोलचालमें स्थानीय भाषाका ही व्यवहार करते हैं। तिर्हुतमें रहनेवाले मुसलमान ब्राह्मणकी तरह 'अहां के साथ व्यवस्था कयने छलौंह,' 'अपनेक कृपा,' 'हुनक मातृक' इत्यादि बोलनेमें

तनिक भी नहीं हिचकते, हालांकि उनकी आम बोलचालकी भाषा हिन्दी या उर्दू ही है, जिसका विकृत रूप ('केका कने जइहो,' 'खाना खइहो कि ना' इत्यादि) व्यवहार किया जाता है। साधारण तौरसे उनके इस्तेमालमें आनेवाले बहुतेरे शब्द और क्रियायें हिन्दीके ही हैं। और यही कारण है कि पिछले दिनों तक शुद्ध हिन्दी या साहित्यिक हिन्दी या खड़ी बोलीको लोग उर्दू कहकर पुकारते थे। मुसलमानोंके अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियोंकी भाषा और हिन्दी भाषामें बहुत थोड़ा अन्तर पड़ता है। इसके लिए आवश्यकतानुसार सांस्कृतिक हिन्दीके पर्यायवाची उर्दू तथा फारसी या अरबी शब्दोंके पर्यायवाची हिन्दी शब्दोंको व्यवहारमें लानेसे किसी वर्ग-विशेषको समझनेमें दिक्कत नहीं हो सकती। हां, लिपि दोनोंकी दो हैं, इसे कोई अनुपयुक्त नहीं कहता। ऐसी समता हिन्दी और अंगरेजी या अन्य विदेशी भाषामें नहीं है। सभी हिन्दुस्तानी इकाईसे सौ तक एक ही प्रकार गिनते, महीने और वर्षका हिसाब भी प्रायः एक-ही-सा है। ईसाइयोंके सम्बन्धमें इतना कहना पर्याप्त होगा कि चूंकि हिन्दी वर्णमाला ऐसी सरल है, जिसे कोई भी व्यक्ति आसानीसे सीख सकता है; और हिन्दुस्तानमें रहनेवाले (एङ्गलो-इण्डियन) ईसाई अधिकांश यहांकी भाषा ही व्यवहार करते हैं। अतः उनके लिए दिक्कत कम है। सिक्ख लोगोंकी गुरुमुखी (पञ्जाबी) भाषा बहुत अंशमें हिन्दीसे मिलती-जुलती है, उनकी वर्णमाला भी थोड़े अन्तरके साथ एक ही है। गुजराती, राजस्थानी, तामिल, तेलगू, उड़िया, बंगला इत्यादि भाषाओंमें अधिकतर संस्कृत शब्दोंके रहनेके कारण ये हिन्दी भाषाकी सङ्गिनी समझी जाती हैं।

इस तरह राष्ट्रभाषा हिन्दीको वर्तमान रूपमें लानेके लिए भिन्न-भिन्न भाषाओंके शब्दोंको स्थान देकर, व्याकरणके नियमोंमें कुछ हेर-फेर करके हम उसे ऐसी भाषा बनायें, जो राष्ट्रका गौरव हो, यह कौन नहीं चाहता? व्याकरणके लिङ्ग-निर्णय तथा ह्रस्व और दीर्घकी मात्राओंकी जटिलता कुछ अखरती अवश्य है—जैसा कि बड़े विद्वानोंने अनुभव किया है। पुरानी लकीरके फकीर बने रहने तथा 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' से उद्देश्यकी पूर्ति नहीं हो सकती। यदि किसी प्रकाशित पुस्तकमें 'रानी' की जगह 'बेगम' और 'गुरु' की जगह 'मौलवी', 'पाठशाला' की जगह 'मकतब' तथा ऐसे ही तथाकथित पर्यायवाची शब्द मिलते हों, तो उस पुस्तकके लेखक और प्रकाशकको हिन्दी भाषी समाजसे बहिष्कृत न कर, उन्हें उपयुक्त शब्दोंका व्यवहार करनेके लिए बाध्य कर सकते हैं। हो सकता है कि तथाकथित पर्यायवाची शब्दोंके प्रयोग करनेमें उनका दृष्टिकोण कुछ और ही रहा हो, जो हमसे भिन्न हो, तो ऐसी दशामें उन्हें बदनाम क्यों किया जाये।

भारतवर्षके भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें हिन्दी-प्रचारके लिए जो ग्रन्थ बनाये जायें, वे तो ऐसे सुलभ और सरल हों, जिससे अधिकाधिक लोग हिन्दी भाषाको आसानीसे सीख जायें। सीख लेनेके बाद तो जो भी उत्कृष्ट ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनका अध्ययन साहित्यिक अध्ययन होगा और इसके लिए सबको पूरा अधिकार है। डा० ग्रियर्सन, मि० गिलक्रीस्ट तथा पादरी आर्थिङ्गटनने इस भाषाको सीखकर इसका कितना बड़ा उपकार किया है?

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति भाषा-प्रचारके लिए मद्रास आदि प्रान्तोंमें जो कुछ कर रही है, वह सराहनीय है। राष्ट्रीय एकताके लिए एक राष्ट्रभाषाका होना आवश्यक है। अतः बिना वर्गभेद या प्रान्तीय पक्षपातके सबको इस भाषाका अध्ययन करना आवश्यक है। (अभीकी राजभाषा) अंगरेजीसे तो हिन्दी भाषाका अध्ययन कहीं आसान और भारतीय संस्कृतिके अनुकूल है। अतएव सभा-मञ्चपर राष्ट्रभाषाकी शैलीपर बहस करनेके बजाय इस भाषाके प्रचारमें लगे रहनेसे ही हम हिन्दीके प्रेमी समझे जा सकते हैं। यों व्यर्थकी बहसके लिए विषयकी कमी नहीं है। जैसे कि संस्कृत मृतप्राय भाषा हो चुकी है, हिन्दी वैसी नहीं बनेगी, यह ध्रुवसत्य है। समयकी प्रगतिके अनुसार चलकर ही वह इस अवस्थामें पहुंची है, और अभी तक वह उसी प्रगतिपर चल रही है। हम मोहवश और विचार-सङ्कीर्णताके कारण उसके पथमें रोड़े न अंटकायें, इसीमें हमारी जाति, देश और भाषाकी भलाई है।

———

इंगलैण्डका ट्रेड-यूनियन आन्दोलन

डा० धनीराम प्रेम, बर्मिङ्घम

आज इंगलैण्डके राजनीतिक तथा सामाजिक जीवनमें ट्रेड-यूनियनों (श्रमिक-सङ्घ या उद्योगी-सङ्घ) का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। लगभग ६० लाख व्यक्ति आज इनसे सम्बन्धित हैं। इनकी ओरसे करोड़ों रुपयोंका चन्दा प्रति-वर्ष इकट्ठा होता है और करोड़ों रुपये इनके द्वारा मजदूरोंकी भलाईके लिए व्यय किये जाते हैं। उद्योग-धन्धोंमें लगे हुए मजदूरोंके हितके लिए इनके द्वारा अनेक प्रकारके कार्य किये जाते हैं। सरकारकी ओरसे इन्हें मजदूरोंके प्रतिनिधिके रूपमें स्वीकार कर लिया गया है। भारतवर्षमें हम लोग ट्रेड यूनियनके नामसे मजदूर दलका नाम अधिक सुनते हैं। परन्तु मजदूर दलका सम्बन्ध केवल राजनीतिसे है। एक साधारण मजदूर इस राजनीतिक दलके सम्पर्कमें अधिक नहीं आता। परन्तु ट्रेड यूनियनके साथ उसका सम्बन्ध घनिष्ट है, नित्यप्रतिका है।

ट्रेड यूनियनका जन्म अठारहवीं शताब्दीमें हुआ था, जब कि इंगलैण्ड कृषिको छोड़कर उद्योग-धन्धोंकी ओर अग्रसर हो रहा था। बड़े बड़े शहरोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके कारखाने खुलते जा रहे थे। ग्रामीण किसान अपने खेत छोड़-छोड़कर सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें कारखानोंमें काम करनेके लिए आ गये थे। स्त्री और पुरुष दोनोंको ही मिलोंमें १४ घण्टे रोज काम करना पड़ता था। बच्चे ज्योंही चलना सीख जाते थे, काममें जुटा दिये जाते थे। जिस प्रकार आज भी भारतमें मजदूर दिन-भर नाम-मात्रके वेतनपर काम करते हैं, उसी प्रकार इंगलैण्डमें भी उन दिनों १४ पेनी रोजपर मजदूरोंको १४-१५ घण्टे रोज गुलामोंकी तरह काम करना पड़ता था।

इस प्रकारके कठोर और अत्याचारमय जीवनको थोड़ा सरल बनानेके लिए कुछ मजदूरोंने इधर-उधर अपने क्लब खोले। इनकी बैठक शराबखानोंमें होती थी, क्योंकि वही एक स्थान ऐसा था, जहां सब मजदूर मिलते थे। इन क्लबोंके प्रयत्नसे मजदूर लोग अधिक वेतन और कम कामकी मांग करने लगे। मांग अस्वीकार होनेपर हड़तालें होने लगीं। उस समयकी सरकारको यह कैसे सहन हो सकता था। उसने १७९९ तथा १८०० में कानून बनाकर मजदूरोंके सर्व प्रकारके सङ्गठनको गैरकानूनी करार दे दिया। दमनका चक्र शुरू हो गया। मजदूरोंपर अत्याचार होने लगे। नेताओंको जेलमें बन्द कर दिया गया। परन्तु दमनसे मजदूर आन्दोलन दबा नहीं। किसी-न-किसी रूपमें मशाल जलती रही। अन्तमें सरकारने हार मानी और १८२४ में २५ वर्ष पहलेके कानून रद्द कर दिये गये।

सरकारके झुकनेसे मार्ग साफ हुआ, लेकिन अभी अन्य बाधायें ज्योंकी त्यों थीं। कारखानोंके पूंजीपति मालिकोंने मिलकर मजदूरोंके विरुद्ध आर्थिक अस्त्रका प्रयोग करना शुरू किया। इससे मजदूरोंकी दशा और भी हीन होती गयी। इसके परिणाम-स्वरूप मजदूरोंने यह निश्चय किया कि अलग-अलग उद्योग-धन्धेमें लगे हुए मजदूर अपनी ट्रेड यूनियन अलग बनायें, लेकिन ऐसी सब यूनियनोंको मिलकर एक केन्द्रीय यूनियन बनानी चाहिए। कुछ सप्ताहोंमें ही यह विचार कार्य-रूपमें परिणत हो गया और पांच लाख मजदूर उसमें सम्मिलित हुए। इस सफलताका श्रेय राबर्ट आवेनको है, जो ट्रेड यूनियन आन्दोलनका पिता समझा जाता है।

इधर आन्दोलन बढ़ता जा रहा था, उधर दमन भी भिन्न-भिन्न रूपोंमें बढ़ता जा रहा था। हजारों मजदूर जेलोंमें बन्द कर दिये गये, सैकड़ोंको देशनिकाला दिया गया और बहुतेरे तो फांसीपर भी लटका दिये गये। एक ग्राममें खेतोंपर काम करनेवाले मजदूरोंका वेतन अचानक घटाकर सात शिलिङ्ग प्रति सप्ताह कर दिया गया। मजदूरोंने मिलकर एक क्लबकी स्थापना की। क्लबकी स्थापना होते ही ६ नेता पकड़े गये और उन्हें सात वर्षके देश-निकालेका दण्ड मिला। उन्होंने वेतन कम करनेका विरोध तक न कर पाया था। इस प्रकारके दमनसे केन्द्रीय संस्थाका अन्त हो गया। परन्तु आन्दोलन फिर भी जीवित रहा और स्थानीय युनियनें अपना काम चलाती रहीं।

सन् १८९१ में मशीनोंपर काम करनेवाले भिन्न-भिन्न

उद्योग-धन्धोंमें लगे हुए मजदूरोंने एक सम्मिलित संस्थाकी स्थापना की। प्रारम्भमें इसके ११००० सदस्य थे। साप्ताहिक चन्दा एक शिलिङ्ग था। इसके बदलेमें सदस्योंको रोग-ग्रस्त होनेपर या काम छूट जानेपर सहायता दी जाती थी। हड़तालके कारण बेकार रहनेपर १९ शिलिङ्ग प्रति सप्ताह सहायता मिलती थी। इसके द्वारा मजदूरोंकी दशामें बड़ा परिवर्तन किया गया। अन्य उद्योग-धन्धेवालोंने भी इसकी नीतिका अनुसरण करके बड़ी-बड़ी संस्थाओंको जन्म दिया। मशीन-मजदूरोंकी इस संस्थाके आज लगभग ४ लाख सदस्य हैं। इसके पास लगभग ३ करोड़ रुपयोंकी पूंजी है।

अब तक जो ट्रेड यूनियनें स्थापित हुई थीं, वे सभी अपने-अपने धन्धोंमें कुशल कारीगरोंकी थीं। साधारण मजदूरी करनेवालोंका सङ्गठन अब तक न हुआ था। इस प्रकारके मजदूरोंकी दशा दयनीय थी। उदाहरणके लिए बन्दरगाहोंके कुलियोंमेंसे ८० प्रतिशत इतना कम कमाते थे कि गृहस्थी बसाकर रहना उनके लिए असम्भव था। वे इधर-उधरके पुराने मकानोंमें २-३ पेनी देकर एक रात काट लेते थे। गर्मियोंमें वे सड़कोंपर ही खुलेमें सोते थे, जो दृश्य हमारे यहां बम्बई-कलकत्तेमें अब भी देखनेको मिलता है। मजदूरी घण्टेके लिए चार पैनी मिलती थी। कामके घण्टोंका कुछ निश्चय नहीं था। कभी काम बिलकुल न मिलता था, कभी दो-एक घण्टे ही। ट्रेड यूनियनके एक प्रसिद्ध नेता बेन टिलेटने कहा है, 'मैंने अपनी पीठपर पचास टन माल केवल चार शिलिङ्गमें ढोया था!' पचास टनके लिए हिन्दुस्तानमें तो आज भी तीन रुपये नहीं मिलते, लेकिन इंगलण्डके रहन-सहनको ध्यानमें रखते हुए यह मजदूरी बहुत कम थी।

बन्दरगाहके कुली भी अन्तमें जागे। अत्याचारोंकी शृङ्खलाको तोड़नेके लिए उन्होंने 'बेन टिलेट' तथा 'टाम मान' के नेतृत्वमें हड़ताल कर दी। तीन दिनके अन्दर हड़तालियोंकी संख्या कई हजार हो गयी। जनताने भी उनका साथ दिया और देखते-देखते हड़तालियोंकी सहायताके लिए सात लाख रुपयोंका चन्दा हो गया। आस्ट्रेलिया-निवासियोंने भी चार लाख रुपया भेजा। हड़तालियोंकी अन्तमें विजय हुई। सरकारके द्वारा उनका सङ्गठन भी स्वीकार किया गया। उनके लिए भी कानून बनाये गये। अब बन्दरगाहका कुली सप्ताहमें ४४ घण्टेसे अधिक काम नहीं करता और प्रति-घण्टेके लिए उसे २-३ शिलिङ्ग (नौ गुना) मिलते हैं। इसके बाद सभी साधारण मजदूरोंने अपनी-अपनी संस्थाओंकी स्थापना की। खेतोंपर काम करनेवाले मजदूर भी सङ्गठित हो गये। साधारण मजदूरोंकी दो बड़ी संस्थायें हैं। एक तो ट्रान्सपोर्ट एण्ड जनरल वर्कर्स यूनियन, जिसके नेता मि० बेविन हैं; दूसरी नेशनल यूनियन आव म्यूनिसिपल एण्ड जनरल वर्कर्स है, जिसके नेता बहुत दिनों तक भूतपूर्व गृह-मन्त्री मि० जे० आर० क्लाइन्स थे।

स्त्रियोंने अपनी एक अलग संस्था 'नेशनल फेडरेशन आव वेमन वर्कर्स' के नामसे स्थापित की थी। परन्तु अब वह म्यूनिसिपल व जनरल वर्कर्स यूनियनमें मिल गयी है। इसकी लगभग ५०००० स्त्रियां सदस्य हैं। इस प्रकार मिल-मजदूर, रङ्गसाज, खानोंमें काम करनेवाले, रेलवे, ट्राम, आफिस, दूकानों आदिमें काम करनेवाले सभीने अपनी-अपनी संस्थायें स्थापित कर ली हैं।

इन सब यूनियनोंका सम्बन्ध एक केन्द्रीय संस्थासे है, जो ट्रेड-यूनियन कांग्रेस है। इसे कभी-कभी 'औद्योगिक पार्लमेण्ट' का नाम भी दिया गया है। १८६८ में मानचेस्टरमें इसका पहला अधिवेशन हुआ था, जिसमें ३४ प्रतिनिधियोंने भाग लिया था। आज इसके सदस्योंकी संख्या ५० लाख है। इसका अधिवेशन प्रति वर्ष होता है, जिसमें हजारों प्रतिनिधि भाग लेते हैं। इंगलैण्डके मजदूरोंकी भाग्य-विधाता आज यही संस्था है। इसने पार्लमेण्टमें मजदूरोंके विरोधी कानूनोंको रद्द कराया है और उनके हितके लिए अनेक नये कानून बनवाये हैं। यही नहीं, मजदूरोंके लिए शिक्षा-संस्थायें, अस्पताल, आराम-घर, वेलफेयर सेण्टर आदि उपयोगी संस्थायें कांग्रेसकी ओरसे चलायी जाती हैं।

कांग्रेसका कार्य-सञ्चालन ३१ सदस्योंकी कौन्सिल करती है। इसके महामन्त्री आजकल प्रसिद्ध नेता सर वाल्टर सिटरीन हैं। मजदूरोंके प्रसिद्ध पत्र 'डेली हेरल्ड' के ४९ प्रतिशत हिस्से कांग्रेसके हाथमें हैं। सरकारी सहयोग प्राप्त हो जानेसे अब ट्रेड यूनियनें अपने पत्र, पुस्तकें आदि प्रकाशित करती हैं, फिल्म बनाती हैं, प्रदर्शिनी करती हैं, सभायें करती हैं। कांग्रेसकी खुली हुई नीति तो नहीं है, किन्तु अनेक सदस्योंका यह स्वप्न है कि एक दिन इंगलैण्डके सारे उद्योग-धन्धोंका सञ्चालन ट्रेड यूनियन कांग्रेस द्वारा होगा।



जहां मनुष्य भी उड़ते हैं

मध्य अफ्रीकामें वातुसी जातिके लगभग ८० हजार नर-नारी हैं, जो ऊंची छलांग भरनेकी कलामें अपना जोड़ नहीं रखते। एक प्रत्यक्षदर्शीने इस सम्बन्धमें बड़ा ही मनोरञ्जक विवरण प्रकाशित किया है :—

"वातुसी नरेश रुदाहीवापर जब मैंने अपनी इच्छा प्रकट की, उन्होंने सङ्केत किया। दो नरकुल जमीनमें गाड़ दिये गये और तीसरा उनके सिरेपर रख दिया गया। इसके बाद एक-एककर वातुसी सरदार छलांग मारकर उस नरकुलके ऊपरसे जाने लगे। उस समय यह नरकुल जमीनसे ४-५ फीट ऊंचा रहा होगा। इतनी ऊंची कुदानका मुझपर कुछ ज्यादा असर नहीं पड़ा। इस बातको सम्भवतः वातुसी नरेशने ताड़ लिया। उन्होंने मुझसे नरकुलके पास खड़े होनेके लिए कहा। मेरी ऊंचाई ६ फीट है। टोप लगानेसे मेरी ऊंचाई ६ इञ्च अधिक हो गयी थी। जब मैं वहां जाकर खड़ा हुआ, एक कर्मचारीने उस नरकुलको ऊपर ले जाकर मुझसे भी अधिक ऊंचाईपर कर दिया। इसके बाद मैंने जो दृश्य वहां देखा उसे कभी न भूलूंगा। वातुसी सरदार बिना किसी सहारेके चिड़ियोंकी तरह मेरे ऊपरसे उड़-उड़कर जाते और मेरी आंखोंके सामने ही जमीनपर बड़ी आसानीसे उतर पड़ते। इस बीच नरकुलको लगातार ऊंचा किया जा रहा था। उस समय नरकुल जमीनसे ८ फीट ऊंचा कर दिया गया था।"

वातुसी लोगोंका पता आजसे लगभग ४० साल पहले किसीको भी नहीं था। काउण्ट वान गोइजनने सबसे पहले इस जातिका पता लगाया था। इस जातिके सभी लोग ऊंचे कूदनेकी कलामें कुशल होते हैं। पता लगनेके बाद जर्मनोंने इस प्रदेशको अपना उपनिवेश बना लिया। गत महासमरमें जब जर्मनी हार गया, राष्ट्र-सङ्घने इस प्रदेशकी व्यवस्था अपनी ओरसे बेल्जियमको सौंप दी। कहते हैं, वातुसी लोग प्राचीन मिश्रके फारोहोंकी सन्तति हैं, जो नील नदीका किनारा छोड़कर वहां जाकर बस गये।

वातुसी लोग अर्ध सभ्य अवस्थामें हैं। नृत्यका खासा प्रचलन है। उच्च श्रेणीके लोग लम्बा 'टोगा' पहनते हैं, परन्तु साधारणतः पुरुष और स्त्रियां, दोनों ही नग्नप्राय रहते हैं—केवल कटि-प्रदेशमें नाभिके नीचे हिरन या बारहसिङ्गेकी खाल लपेटकर कुछ हिस्सा ढक लेते हैं। इनमें स्त्री घरकी मालकिन होती है और पति उसकी सलाह मानता है। खाद्य पदार्थोंका भण्डार (हरगुरु) कुटुम्बके मालिकके बिस्तर (कुबूतिरी) के पास ही रहता है। एक पुरुष कितनी ही स्त्रियां रख सकता है, परन्तु एकको छोड़कर बाकी सब उससे कुछ दूर अलग-अलग झोपड़ियोंमें रहती हैं। ये पशु-पालन करते और बड़े ही खिलाड़ी होते हैं।

निराशा क्यों ?

आप इस समय जो कुछ कर रहे हैं, उसमें यदि आपको सफलता नहीं मिल रही है और आप खिन्न रहते हैं, तो यह आवश्यक नहीं है कि आप अपने वर्तमान कामसे चिपटे ही रहें और इसीलिए चिपटे रहें कि आपने उसे पहले ही पसन्द कर लिया था। निःसन्देह पहले ही सफलता न

होनेपर प्रयत्न छोड़ देना ठीक नहीं है; परन्तु किसी व्यक्तिमें जब अन्य कोई कार्य सफलताके साथ कर सकनेकी क्षमता हो, तब पहले पसन्द किये हुए किसी कार्यके पीछे पड़े रहकर विफलताओंका सामना करते रहनेमें कोई बुद्धिमानी नहीं है। कोई भी कार्य हो, उन्नति, योग्यता और प्रतिष्ठा, सबकी जननी सफलता ही तो है। फिर, इतिहास बतलाता है कि कितने ही व्यक्ति अपने पहले पसन्द किये हुए कार्यमें जब सफल नहीं हुए और लगातार विफल होनेके बाद जब उन्होंने अपने लिए कोई अन्य मार्ग पसन्द कर लिया, तब वे कालान्तरमें महापुरुष बन गये। इसके कितने ही उदाहरण हैं।

स्वर्गवासी लाला लाजपत रायसे देशवासी भलीभांति परिचित हैं। ये यदि वकालत करते रहते और सामाजिक क्षेत्र-से बाहर न आते, तो भारतको राजनीतिक मार्ग कौन दिखलाता। इसी तरह स्वामी श्रद्धानन्दजी यदि नौकरीको ही अपने भाग्यका लेख मानकर सन्तुष्ट हो जाते, तो गुरुकुल-शिक्षा-प्रणालीको व्यावहारिक रूपमें कौन सामने लाता। देशके वर्तमान नेताओंमें दो महात्मा गांधी और डा० राजेन्द्रप्रसाद अपने प्रारम्भिक जीवनमें वकील थे। मालवीयजी यदि अध्यापकी, पत्र-सम्पादन और वकालतके दलदलमें फंसे रहते, तो हिन्दू-विश्वविद्यालय नहीं बनता। प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर पी० सी० राय, डा० रमन और स्वर्गवासी जगदीशचन्द्र बोस, सबके विषयमें यही कहा जा सकता है। साहित्यिक क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है। हम जानते हैं कि रामायण जैसे महाकाव्यके रचयिता सन्त तुलसीदास, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, सुप्रसिद्ध कहानीकार प्रेमचन्द और साहित्य-महारथी आचार्य शुक्ल, किसीने भी प्रारम्भमें कवि, पत्रकार, कहानीकार और साहित्य-निर्माताका जीवन नहीं अपनाया था।

यूरोप और अमेरिकामें भी उसके उदाहरणोंकी कमी नहीं है। शेरलाक होम्सके प्रसिद्ध लेखक पहले डाक्टर थे और डाक्टरी नहीं चलनेके कारण अवकाशके समयमें कहानियां लिखा करते थे। अंगरेजी साहित्यके प्रसिद्ध कथाकारोंमें ज्यादा संख्या ऐसे आदमियोंकी है जिन्होंने आरम्भमें इस कार्यको पसन्द नहीं किया था। परन्तु यह बात केवल कहानी-साहित्य तक ही सीमित नहीं है। जीवनी-लेखक बोसवेल और प्रसिद्ध ऐतिहासिक मेकाले, दोनों ही वकालतके पेशेमें सफल नहीं हुए थे। शेक्सपियर पहले बाजारमें दलाली किया करते थे, परन्तु वे सफल हुए अमर नाटककारके रूपमें। दार्शनिक इमर्सनने अपना जीवन अध्यापकके रूपमें आरम्भ किया था, परन्तु इस कार्यसे उन्हें बड़ी नफरत थी।।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटनने अपने प्रारम्भिक जीवनमें खेतीमें हाथ लगाया था और डारविनने डाक्टर बननेकी तैयारी की थी। किसी भी प्रसिद्ध आविष्कारककी जीवनी पर दृष्टिपात कीजिये, आप देखेंगे कि पहले पसन्द किये हुए कार्यको छोड़ देनेके बाद ही वह आविष्कार करनेमें सफल हुआ। भापकी शक्तिसे चलनेवाले ईञ्जनको वाटने पूर्ण किया था, और पहले इनका पेशा था गणित-शास्त्र सम्बन्धी औजार बनाना। रेलके आविष्कारक स्टिफिन्सन पहले खानोंके इञ्जीनियर थे। इसी प्रकार टेलीग्राफके आविष्कारक मोर्स और जहाजोंमें भापके ईञ्जिनका प्रयोग सफलताके साथ करनेवाले फुल्टन पहले चित्रकार थे। ग्राहम बेल पहले अध्यापक थे जिन्होंने बादमें टेलीफोनका आविष्कार किया। एडीसनने बिजलीकी रोशनी, ग्रामोफोन और सिनेमा-सम्बन्धी जो आविष्कार किये हैं, उन्हें कौन पूरा करता, यदि वे रेलवेके तार-घरमें पड़े रहते। प्रसिद्ध जर्मन आविष्कारक काउण्ट जेपलिन पहले सेनामें थे और यदि ये सेनाकी नौकरी छोड़कर अवकाश न ग्रहण करते तो जेपलिन-की रचना कौन करता। हवाई जहाजोंको सर्वप्रथम आकाशमें उड़ानेवाले प्रसिद्ध अमेरिकन वैज्ञानिक राइट भी पहले साईकिलोंकी मरम्मत करनेका काम किया करते थे।

हिटलर और ७ का अङ्क

स्वस्तिक चिह्नके प्रति जर्मनोंमें जो आकर्षण है, उसमें नाजी पार्टीकी कोई करामात नहीं है। गत महासमरसे पहले १९११ में परलोकवासी जर्मन कैसर विलियमने इंगलैण्ड-यात्रा की थी। उनका सामान जब इंगलैण्ड पहुंचा, उसपर स्वस्तिकके पर्चे लगे हुए थे। कैसरका विश्वास था कि स्वस्तिकमें उनके शरीरकी रक्षा करनेकी अद्भुत शक्ति है। मरते समय तक उनका ख्याल था कि साम्राज्य चले जानेपर भी स्वस्तिकके प्रभावसे ही उनका जीवन बच सका। स्व-

स्तिककी अद्‌भुत शक्तिके सम्बन्धमें हिटलरका विश्वास भी कैसरसे कम नहीं है। अन्तर केवल इतना है कि कैसरने जहां उसे आर्य-चिह्नके रूपमें ग्रहण किया था, वहां हिटलरने उसे इसलिए पसन्द किया कि उसमें अंगरेजीका सातका अङ्क मिला हुआ है। हिटलरके जीवनमें सातका अङ्क हमेशा ही बड़ा शुभ रहा है। हिटलरके पास उठने-बैठनेवाले जानते हैं कि वह अपनी शक्ति और सौभाग्यका प्रतीक मानकर इसी अङ्ककी सौगन्ध खाता है।

हिटलरके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओंमें सातका यह चमत्कार खास तौरसे देखनेमें आता है :—गत महासमरमें ७ अक्टूबर १९१६ को हिटलर मृत्युके मुखमें पड़ते-पड़ते बचा। उसकी टुकड़ीके सारे सैनिक मारे गये; परन्तु एक वही घायल हुआ और बच गया। सात वर्ष बाद हिटलरने राजनीतिमें प्रवेश किया। जर्मन पार्लमेण्टके निर्वाचनमें जब नाजियोंको सफलता मिली, तब हिटलरकी आयु बयालीस (७×६) वर्षकी थी। हिटलरने आस्ट्रियाको जब जर्मनीमें मिलाया और सितम्बर १९३८ में जब म्यूनिक पैक्टपर हस्ताक्षर हुए, हिटलरकी उम्र उनचास (७×७) वर्षकी थी। शासन-सूत्र हाथमें आनेके ७ वें वर्ष, सितम्बर १९३९ में हिटलरने युद्ध आरम्भ किया और कुल अट्ठाईस (७×४) दिनमें पोलैण्डको जीत लिया। १० मई १९४० को फ्रान्सपर हमला किया गया था। इसके ठीक बयालीस (७×६) दिन बाद २१ जूनको क्षणिक सन्धिकी बातचीत आरम्भ हुई।

अङ्क-विज्ञानके विशेषज्ञोंका ख्याल है कि अपने शासनके सातवें वर्ष १९४० के सातवें महीने तक हिटलर जो नहीं कर सका, उसे वह आगे नहीं कर सकेगा।

हिटलरकी आज जो स्थिति है, वह नेपोलियनकी स्थितिसे बहुत कुछ मिलती है। एक ब्रिटिश इतिहासकारके शब्दोंमें, प्रतीत होता है, नेपोलियन यह सोचता था कि जो भी देश वह जीत लेता है, उसके निवासी जिस तरह शासनके समर्थक हो जाते हैं, उसी तरह वह देश उसकी नीतिका पोषक बन जाता है। वस्तुतः उसे इससे अप्रकट असन्तोष और भावी विद्रोहके अलावा कुछ भी मिलता न था। परन्तु नेपोलियन सोचता था या सोचने-जैसा दिखलावा करता था कि विजित लोगोंपर प्रजाजनों और सैनिकोंके रूपमें विश्वास किया जा सकता है। उसकी इस भूलसे पता चलता है कि उसका विवेक नष्ट हो गया था और यही अन्य सब कारणोंसे अधिक उसके पतनका हेतु हुआ।

साहस भङ्ग करनेकी कला

युद्ध-लग्न देश आजकल सैनिकों और साधारण जनतामें प्रायः कोई भेद नहीं मानते और हवाई जहाजों द्वारा निरीह स्त्रियों और बच्चों, वृद्धों और अस्पतालों तक पर भयङ्कर बम-वर्षा करते हैं। दलील यह दी जाती है कि इस युगमें केवल सेना ही युद्ध नहीं करती, समूचा राष्ट्र युद्ध करता है। जिनका यह कथन है, उनसे यह कहनेमें तो कोई लाभ ही नहीं है कि किसी भी युद्ध-लग्न राष्ट्रमें हजारों और लाखों व्यक्ति ऐसे भी हो सकते हैं, जो युद्ध न चाहते हों। फिर, स्त्रियों और बच्चोंपर, गांवों और नगरोंमें साधारण जनतापर जिस तरह बम-वर्षा की जाती है, उससे तो यही मालूम होता है कि मानो आज मनुष्यमें मनुष्यका हृदय नहीं रह गया है। आज इस तरहसे पागलकी तरह विवेक छोड़कर जो यह किया जाता है, स्पष्ट ही उसका उद्देश्य है जनताके नैतिक बलको नष्ट कर देना, साहस भङ्ग कर देना, सर्वसाधारणमें भय और आतङ्कको उत्पन्न कर देना। जहां तक इस उद्देश्यका सम्बन्ध है, उसमें कुछ भी नयापन नहीं है। पहले समयमें भी शत्रु-पक्षको भयभीत करनेके लिए कितने ही उपायोंसे काम लिया जाता था; परन्तु यह सच है कि इन उपायोंसे काम लेनेमें मनुष्य आजकलकी तरह हृदयहीन नहीं बन जाता था।

जुलियस सीजरने ईस्वी सन्‌से ५४ वर्ष पूर्व इंगलैण्डमें अपनी सेनाओंको उतारा था। सीजरने देखा कि ब्रिटेनके सैनिकोंने अपने चेहरोंको गहरे नीले रङ्गसे रंग रखा है। इससे ब्रिटिश सैनिकोंका चेहरा बड़ा भयङ्कर मालूम होता था, यहां तक कि स्वयं सीजरने भी यह स्वीकार किया था कि उससे भय-सञ्चार हो जाता है। इस तरह शरीर और चेहरा रंगकर आकृतिको भयङ्कर बना लेनेका रिवाज कितनी ही लड़ाकू जातियोंमें पाया जाता था। अमेरिकाके मूल निवासियोंमें भी यह रिवाज था।

शत्रुको भयभीत करनेके लिए किस ढङ्गसे काम लिया-

जाय, यह निश्चित करनेमें इस बातका भी ध्यान रखा जाता था कि उससे शत्रु-पक्षके भयभीत होनेके साथ ही अपने सैनिकोंका भय दूर हो जाय और उनमें युद्धका उत्साह पैदा हो। भारतवासियोंमें तरह-तरहके जो जयघोष करनेका रिवाज है, उससे दोनों ही काम होते हैं। जयघोषोंसे एक ओर जहां शत्रुका दिल दहल जाता है, वहां दूसरी ओर अपने पक्षके सैनिकोंमें वह जोश उमड़ता है कि शरीरमें प्राण रहते पीछे कदम नहीं पड़ता।

सोलहवीं शताब्दीमें आयरलैण्ड-वासियोंने जब अंगरेजोंपर हमला किया, उस समय उनके हल्ले-गुल्लेसे वन गूंजने लगे थे। पहले समयमें कितनी ही जातियोंमें योद्धा लोग शिरपर जो टोप लगाते थे, उसमें सामने सिंहका चेहरा बना होता था। इस चेहरेमें सिंह गुर्राता-सा होता और उसके बड़े-बड़े तेज दांत दिखाई पड़ते। इस तरहके शिरस्त्राणका अभिप्राय इसके सिवाय और कुछ नहीं हो सकता कि शत्रु उसे देखकर भयभीत हो जाय। एक जमाना ऐसा भी था, जब कितनी ही जातियोंमें सैनिकोंके शिरस्त्राणोंमें बकरों या अन्य पशुओंके सींग लगा लिया करते थे। बादमें शिरस्त्राण जिस धातुके, प्रायः पीतलके, होते, उसीके सींग भी बनने लगे।

कुछ जङ्गली जातियोंमें आज भी ऐसे शस्त्रास्त्रोंका चलन है, जिनसे काम लेनेवाले योद्धाओंको जहां अपनी सफलतामें विश्वास होता है, वहां शत्रुओंमें उनसे भय-सञ्चार भी होता है। न्यूजीलैण्डमें मावरी जातिके जङ्गली लोग बड़े लड़ाके होते हैं। ये अन्य बातोंके अलावा युद्ध-क्षेत्रमें शत्रुके सामने अपना मुंह बिचकाते हैं और वह भी कई तरहसे। मावरी बच्चोंको बचपनमें ही इसकी शिक्षा दी जाती है। उनकी नौकायें इतनी बड़ी होती हैं कि लगभग सौ मावरी सैनिक आसानीसे बैठ सकते हैं। इन नौकाओंका अगला भाग बड़े ही भयङ्कर और विचित्र चेहरेके रूपमें होता है।

तीन हजार वर्ष पहले प्रचार-विभाग

आधुनिक राजनीतिज्ञोंको प्रचार-कार्यके सिलसिलेमें यदि कुछ सीखना हो, तो उन्हें प्राचीन मिश्रपर दृष्टिपात करना चाहिए। आजसे लगभग तीन हजार वर्ष पहले मिश्रमें धुरन्धर प्रचारक थे और ऐसे तरीकोंसे काम लेते थे, जिनसे वर्तमान युगमें अभी तक नहीं लिया गया है।

ईस्वी सन्से १३०० वर्ष पहलेकी घटना है, मिश्रके राजा रमेशस (द्वितीय) ने सीरियावासी हिट्टीटोंपर आक्रमण किया था। हिट्टीट प्रबल होते जा रहे थे और मिश्र-देशवासियोंका ख्याल था कि सीरिया और फिलस्तीनको उन्हींके प्रभावमें रहना चाहिए। रमेशसने कादेश स्थानमें हिट्टीटोंका सामना किया। इस लड़ाईके सम्बन्धमें रमेशसकी ओरसे यह प्रचार किया गया था कि मिश्र देशवासियोंने हिट्टीटोंपर भारी विजय प्राप्त की है। शत्रुके २५०० रथारूढ़ योद्धाओंने घेर लिया था, परन्तु राजा रमेशसने उन सबको मारकर कूड़ेका ढेर कर दिया। हिट्टीटोंके सभी साथियोंको उन्होंने मार डाला। उन्होंने गम्भीर गर्जनाके साथ अपनी सेनासे कहा कि "सैनिको, डटे रहो, जब तक अकेले ही मैं विजय न प्राप्त कर लूं।" कादेशकी इस विजयके सम्बन्धमें इसी तरहकी बहुत बातें कही गयी थीं, परन्तु क्या सचमुच मिश्र देशवासियोंने कादेशमें हिट्टीटोंको हराया था? पुरातत्त्व शास्त्रियोंने हालमें ही जो शोध की है, उससे असलियत कुछ दूसरी ही मालूम हुई है। कादेशमें रमेशससे हिट्टीटोंकी लड़ाई हुई थी, परन्तु हिट्टीटोंने बड़े ही रणकौशलसे काम लिया। वे पीछे हटते गये और जब अवसर पाया, रमेशसको चारों ओरसे घेर लिया। रमेशस किसी तरह अपने सैनिकोंके साथ इस घेरेसे निकल भागा और बादमें स्वदेश लौट गया। शिकागो विश्व-विद्यालयके डा० जान ए० विल्सनके मतानुसार "कुछ-कुछ निश्चयके साथ हम यह कह सकते हैं कि रमेशस (द्वितीय) ने महान् विजय प्राप्त नहीं की थी, ज्यादासे ज्यादा यही कहा जा सकता है कि किसी पक्षकी हार नहीं हुई थी।" फिर भी रमेशसने जिस उद्देश्यसे चढ़ाई की थी, वह तो पूरा हुआ ही नहीं था, इस विफलताको छिपानेके लिए वैसा प्रचार किया गया और इतना जोरदार प्रचार किया गया कि उसके विरुद्ध मिश्र-देशवासियोंके सुननेमें जो भी बात आये, उसपर कोई विश्वास ही न करे। रमेशसने अपने प्रचार-कार्य द्वारा यह प्रमाणित किया था कि युद्ध-क्षेत्रमें विजय नहीं पानेपर भी अपने अनुकूल प्रचार द्वारा उसे जनताकी दृष्टिमें प्राप्त किया जा सकता है। रमेशसने अपने प्रचारसे मिश्र-देशवासियोंको अपनी विजयका

विश्वास दिला दिया था। मिश्र देशवासी उस समय पढ़ नहीं सकते थे, परन्तु चित्रोंका अभिप्राय तो वे समझ ही सकते थे। रमेशसने मन्दिरोंकी दीवालोंपर अपनी विजय बतलानेवाले विशाल चित्रोंको बनवा दिया था। इन चित्रोंसे कई एकड़ स्थान घिरा हुआ था। एक नगरमें तो इन सब चित्रोंकी लम्बाई लगभग ४५० गज थी। जो भी नया मन्दिर बनता, उसकी दीवालपर वह इस विजयका चित्र खिंचवाता था और उचित संशोधनपूर्वक खिंचवाता था। इन मन्दिरोंके पुजारी और पुरोहित उसके प्रचारका कार्य करते थे। इन प्रचारकोंका प्रचार-कार्य ही तो था, जिसने जनताकी दृष्टिमें मिश्रके फारोहोंको प्रथम श्रेणीका योद्धा बना दिया था।

फारोहों सम्बन्धी यह प्रचार ईस्वी सन्से दो हजार वर्ष पहले आरम्भ हुआ था। उसका उद्देश्य था जनताको यह बतलाना कि फारोहे कैसे वीर और दृढ़ होते हैं। इस तरहके प्रचारके दो उदाहरण ये हैं :—फारोहा राजा अमी होतप (द्वितीय) बड़ा ही खिलाड़ी था। कोई नहीं जानता कि वह वास्तवमें कितना अच्छा था; परन्तु उसके सम्बन्धमें तत्कालीन प्रचारकोंने यह प्रसिद्ध किया था—"२०० मांझियोंके साथ एक बार अमी होतप एक नाव खेने लगा। आधे मीलसे कुछ ही आगे गये होंगे कि अमी होतपको छोड़कर सारे मांझी बुरी तरह थक गये। ये सब बहुत ही कमजोर थे, उनका दम टूट रहा था, परन्तु राजा बिलकुल नहीं थका। वह अपने ११ गज लम्बे डांडसे आगे तीन मील तक नाव खेता ही चला गया।"

"एक बार अमी होतप एक विशाल धनुष-बाण लेकर इतनी देर तक अभ्यास करते रहे कि कोई साधारण मनुष्य थके बिना नहीं रहता।"

"अमी होतप रथपर चढ़कर बड़ी तेजीसे जा रहे थे। उन्होंने एक बाण इतनी तेजीसे चलाया कि वह चार तख्तोंके आर-पार हो गया।"

रासायनिक खाद्य-पदार्थ

साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि युद्ध-कालमें जब कितने ही आवश्यक पदार्थोंकी कमी पड़ जाती है, तब बनावटी पदार्थोंसे काम चलाया जाता है। परन्तु यह विश्वास सर्वथा ठीक नहीं है। शान्ति-कालमें भी इस युगमें उद्योग-धन्धोंमें बनावटी पदार्थोंकी काफी खपत रहती है। अन्तर केवल यही है कि युद्ध-कालमें जहां विवश होकर वैसा करना पड़ता है क्योंकि आवश्यक पदार्थोंको यथेष्ट परिमाणमें प्राप्त नहीं किया जा सकता, वहां शान्ति-कालमें सस्तीसे सस्ती और अच्छी वस्तुयें प्रस्तुत करनेके उद्देश्यसे इस प्रवृत्तिको प्रोत्साहन मिलता है।

गत महासमरमें जर्मनीके विरुद्ध जबर्दस्त घेरा डाला गया था। परिणाम यह हुआ कि जर्मनीमें बाहरसे माल नहीं पहुंच सका। इस परिस्थितिसे विवश होकर जर्मनीने नकली पदार्थ तैयार करनेकी ओर खास तौरसे ध्यान दिया और इस दृष्टिसे वह अग्रणी हो गया। वर्तमान युद्धमें भी जर्मनीके सामने कतिपय पदार्थोंके सम्बन्धमें यही समस्या है। इन पदार्थोंमें एक है रबड़। जर्मनीके पास रबड़ प्राप्त करनेके साधन नहीं हैं। इस अभावको दूर करनेके लिए जर्मनोंने नकली रबड़ तैयार की है, जिसे वे 'बुना' कहते हैं। यह सब तरहसे बिलकुल रबड़ ही है। अलबत्ता, उसकी लागत दूनी बैठ जाती है।

सभ्यताका विकास होनेके साथ ही बनावटी पदार्थोंका व्यवहार भी अधिकाधिक होता जा रहा है। प्रकृतिने जितने पदार्थ स्वयं उत्पन्न किये हैं, मनुष्य उन्हींको पाकर सन्तुष्ट नहीं रहा और अपनी बुद्धिसे कितने ही अन्य पदार्थ तैयार किये। कहना न होगा कि अनेक पदार्थ तैयार करनेमें उसने अपनी बुद्धिका सर्वोत्तम उपयोग किया है। काच प्रकृतिदत्त नहीं है। मनुष्य अपने बर्तन बनानेके लिए जिस मिट्टीका उपयोग करता था, उसका स्थान ग्रहण करनेके लिए उसने काचका आविष्कार किया और यह पदार्थ प्रकृतिदत्त मिट्टीसे भी कहीं अधिक सुन्दर और उपयोगी साबित हुआ। आज स्थिति यह है कि यदि काच उठ जाय, तो मानव-समाजका काम नहीं चल सकता। काचकी ही तरह दूसरा पदार्थ है कङ्करीट, जो पत्थरका स्थान ग्रहण करता जा रहा है। आज कितनी ही धातुओंको हम काममें ला रहे हैं, जिन्हें मनुष्यने अपने बुद्धि-बलसे प्रस्तुत किया है। तांबे और टिनसे सन्तुष्ट न होकर इतिहास-कालसे पहले ही मनुष्यने पीतल तैयार की। यह तांबे और टिन, दोनोंसे ही अधिक उपयोगी प्रमाणित हुई। आज हमारे जीवनमें

फौलादका जो महत्त्वपूर्ण स्थान है, वह किससे छिपा हुआ है। यह लोहे और कोयलेका मिश्रण है। वैज्ञानिकोंने लोहे और कोयलेसे लगभग दस हजार मिश्रण तैयार किये हैं। निकेल और क्रोमियम मिलाकर लोहेसे ऐसी फौलाद तैयार की जाती है, जिसमें कभी मोर्चा नहीं लगता। इसी तरह कोबाल्ट, आलमोनियम, जस्त, बेरील, फास्फर, नाइट्रोजन आदिके मिश्रणसे आवश्यकतानुरूप नयी-नयी धातुयें तैयार की गयी हैं, जिनमें कुछ मजबूत होनेके साथ ही बहुत हलकी रहती हैं और कुछपर अत्यन्त अधिक गर्मीका भी ज्यादा असर नहीं होता।

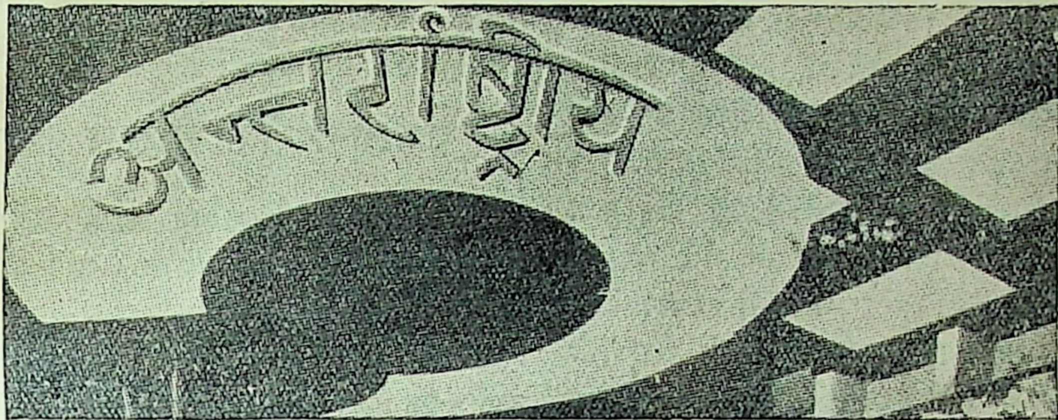
संसारके वैज्ञानिक अर्सेसे एक ऐसा पदार्थ प्रस्तुत करनेका प्रयत्न कर रहे थे, जो धातुओंके इन मिश्रणोंका स्थान ले सके, जिसे पिघलानेके लिए अत्यन्त अधिक गर्मीकी जरूरत न पड़े, जो शीघ्र ही ठण्डा हो जाय, साधारण गर्मी, सर्दी और पानीका जिसपर कोई असर न पड़े और जो साथ ही सस्ता और आकर्षक भी हो। बेकेलाइटके रूपमें वैज्ञानिकोंका यह प्रयत्न सफल हुआ। १८७२ में जर्मन वैज्ञानिक बोबरने कारबन द्वाम्लजिदको फारमलडिहाइडके साथ मिलाकर रबड़-जैसा एक पदार्थ तैयार किया इसे इच्छानुसार रूप दिया और कड़ा किया जा सकता था। ३७ वर्ष बाद १९०९ में बोबरके प्रयत्नको पूरा किया अमेरिकन वैज्ञानिक बेकेलेण्डने। उन्हींके नामपर आज उसे बेकेलाइट कहा जाता है। फाउण्टेन पेन, साबुन रखनेकी डिब्बियां, तश्तरियां, हवाई जहाजोंके हिस्से और अन्य कितनी ही वस्तुयें बेकेलाइटसे तैयार की जाती हैं। बेकेलाइट लगभग १२०० किस्मका होता है। मिपालम नामक बेकेलाइटपर किसी तेजाबका कोई असर नहीं होता। 'सिलेरन' का महत्त्व उसके कड़ेपनके लिए है। कड़े और हलके होनेके कारण हवाई जहाजोंके धन्धेमें ये पदार्थ बड़े ही मूल्यवान साबित हो रहे हैं।

नकली काच पारदर्शक तो काचकी तरह है ही, उसमें यह खूबी भी है कि गिर जानेपर भी नहीं टूटता। अलबत्ता, यह केमरों, अणुवीक्षक यन्त्रों और दूरबीनोंमें काम नहीं आ सकता।

कपड़ोंमें बनावटी रेशमका स्थान पहला है। रेशमका कीड़ा शहतूतके पत्ते खाता और एक ऐसा रस तैयार करता है, जो उसके मुंहसे निकलते ही कड़ा हो जाता है। यही रेशम है। वैज्ञानिक रेशम तैयार करनेके इस तरीकेकी नकल करनेमें अभी तक समर्थ नहीं हुए हैं। नमक, कोयले और हवासे ऊनी और दूधसे सूती चीजें तैयार की जाती हैं।

जर्मन वैज्ञानिकोंने अक्सर बनावटी खाद्य पदार्थ तैयार करनेका दावा किया है। यह माना जाता है कि जर्मनीमें रासायनिक खाद्य पदार्थोंको गोलियोंके रूपमें एकत्र कर रखा गया है। कहते हैं, जब खाद्य पदार्थोंका अभाव हो जायगा, इन गोलियोंका उपयोग किया जायगा। प्रायः सभी देशोंमें वैज्ञानिक इस क्षेत्रमें अपने-अपने प्रयत्नमें लगे हुए हैं और उस दिनकी कल्पना की जा सकती है, जब तीन-चार बार भोजन करनेके बजाय ३-४ गोलियां खा लेनेसे ही काम चल जाया करेगा।





दूरके ढोल सुहावने

अमेरिकाके प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने हालमें एक बार कहा था—"ऐसी कोई जाति नहीं हुई है और न कभी होगी जो अन्य जातियोंपर उनकी स्वामिनी बनकर सेवा करनेके योग्य हो।" इस कथनकी दृष्टिसे जब हम संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके १ करोड़ २० लाख नीग्रो लोगोंकी हालतपर विचार करते हैं तब यह कहनेको जी चाहता है कि दूरके ढोल सुहावने होते हैं।

अमेरिकामें आज भी नीग्रो होनेका क्या अर्थ है? केवल जीवन और मृत्यु सम्बन्धी अवस्था ही कुछ ऐसी है कि समस्याके अत्यन्त गम्भीर होनेमें सन्देह नहीं रह जाता। औरोंकी अपेक्षा नीग्रो लोगोंमें बीमारियां बहुत फैलती है और औरोंकी अपेक्षा उनकी मृत्यु संख्याका औसत भी तिगुना है। नीग्रो लोगोंमें यक्ष्मा बड़े भयङ्कर रूपमें विद्यमान है और इस रोगसे जितने गोरे नौजवान मरते हैं उनकी तुलनामें नीग्रो नौजवानोंकी मृत्युसंख्या सात गुनी है। इतनी अधिक मृत्यु संख्या होनेपर भी नीग्रो लोगोंकी संख्या कम न होकर बढ़ रही है। सौ वर्ष पहले उनकी संख्या केवल २४ लाख थी।

स्वास्थ्य बहुत कुछ घरेलू वातावरणपर निर्भर है। अमेरिकन नगरों और कस्बोंमें नीग्रो बस्ती हमेशा ही उप-भागमें होती है! न रोशनीका समुचित प्रबन्ध होता है और न सफाईका। अन्य नागरिक सुविधायें भी उनके क्षेत्रमें बड़ी ही शोचनीय अवस्थामें होती हैं। म्युनिसि-पैलिटियोंको इन क्षेत्रोंकी उतनी परवा नहीं होती। रास्ते गन्दे और मकान मैले-कुचैले होते हैं और उनका किराया नीग्रो लोगोंकी स्थितिकी दृष्टिसे ज्यादा होता है। गोरोंमें नीग्रो लोगोंके विरुद्ध जो पक्षपात पाया जाता है, उसीके कारण नीग्रो बस्तियां अवाञ्छनीय क्षेत्र बनी हुई हैं।

गोरोंकी अपेक्षा नीग्रो लोगोंमें निरक्षरता बहुत अधिक है—६ गुनी। नीग्रो जातिमें ६ मेंसे एक व्यक्ति बिलकुल निरक्षर है। प्रोफेसर रीडके मतानुसार गोरोंमें नीग्रो लोगों-के विरुद्ध जो पक्षपात है, उसीका परिणाम यह है कि नीग्रो बालकोंके लिए स्कूल नहीं है। दक्षिणके १० राज्योंमें नीग्रो लोगोंकी जितनी जनसंख्या है, उसके हिसाबसे उनपर सरकारको जितना खर्च करना चाहिए उसका कुल ३७ प्रति-शत खर्च किया जाता है। नीग्रो अध्यापकोंका वेतन गोरे अध्यापकोंसे ४७ प्रतिशत कम है।

नीग्रो समाजके सामने अत्यन्त विकट समस्या है जीविका। समय बीतनेके साथ ही उसे काम मिलनेके अवसर कम होते जा रहे हैं। औद्योगिक क्रान्तिसे पहले कुछ काम ऐसे थे जिन्हें नीग्रो ही किया करते थे। रोटी पकाना, हजामत बनाना, खानसामागरी, राजगरी, बढ़ईका काम और रङ्गसाजी, ये सब काम नीग्रो ही अक्सर किया करते थे। औद्योगिक क्रान्तिने जीविकाके सम्बन्धमें दृष्टि-कोण ही बदल दिया। सूत और कपड़ेकी मिलोंमें गोरे औप-निवेशिक भर गये। गाड़ियोंका स्थान पेट्रोल पम्पोंने ले लिया। जब व्यापारकी मन्दी और मशीनोंने गोरे औप-निवेशिकोंको भी बेकार किया, स्पर्धा और ट्रेडयूनियनोंने नीग्रो श्रमजीवियोंको बिलकुल ही उखाड़ दिया। जब अच्छा समय होता है, काम काफी रहता है और नीग्रों

लोगोंको भी अवसर मिल जाता है। परन्तु उन्हें वेतन बहुत ही कम दिया जाता है। १६ से लेकर २० वर्ष तककी उम्रके लाखों गोरे जवान जब काम खोज रहे हों, बेचारे नीग्रो लोगोंको कौन पूछता है। आज जो नीग्रो युवक श्रम-क्षेत्रमें प्रवेश करना चाहता है, वह वर्तमान औद्योगिक प्रयत्नोंको बड़ो निराशासे देखता है। इस स्थितिमें उसे यदि कभी कहीं कोई काम मिल जाता है तो उसे गोरे मजदूरके मुकाबिलेमें वैसा ही काम करनेपर भी लगभग आधा वेतन दिया जाता है। असलियत यह है कि नीग्रो मजदूरोंको स्थान और वेतन दोनों ही कम मिलते हैं। पहले दक्षिणमें खेतीमें लगभग एक तिहाई नीग्रो लोगोंको काम मिल जाता था परन्तु अब इधर भी उनके लिए कोई स्थान नहीं रह गया है।

लगभग आधे अमेरिकन नीग्रो युवक जब बेकार फिर रहे हों, उन्हें आलसी, चोर और उठाईगीरा बनकर अपराधोंकी संख्या बढ़ानेवाला तो होना ही चाहिए। अपराध किसी भी समाजकी आर्थिक और नैतिक दुर्दशा प्रकट करते हैं। इस दृष्टिसे गोरोंकी अपेक्षा नीग्रो लोगोंका स्थान पहला है। हत्या और मारपीट करनेके लिए नीग्रो लोगोंपर गोरोंकी अपेक्षा ज्यादा मामले चलते हैं और इनमें उन्हें सजा भी होती है परन्तु इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि उन बेचारोंके पास इतना धन नहीं होता कि अपनी पैरवी कर सकें। फिर, कभी कभी अमेरिकन अदालतोंमें उन्हें न्याय भी तो नहीं मिलता।

कानूनकी दृष्टिमें सभी नागरिक बराबर हैं, इस बातको माननेवाले अमेरिकनोंकी समझमें यह नहीं आता कि गणतन्त्रमूलक यह सुविधा नीग्रो लोगोंको न हो। उनकी समझमें यह भी नहीं आता कि कानूनके शब्दों, अभिप्राय और व्याख्याओंसे नीग्रो लोगोंको कहां तक असुविधा होती है, फिर भी १० राज्योंमें नीग्रो लोगोंको व्यावहारिक अर्थमें वोट देनेका अधिकार नहीं है, १९ राज्योंमें सार्वजनिक सवारियोंमें अलग घटिया दर्जेमें बैठनेके लिए उन्हें मजबूर किया जाता है और सार्वजनिक स्थानोंमें भी वह गोरोंके साथ नहीं उठ बैठ सकता। १८ राज्योंमें नीग्रो लड़के गोरे बच्चोंके साथ बैठकर नहीं पढ़ सकते और उन्हें अन्य स्कूलोंमें जाना होता है। इन नीग्रो स्कूलोंके अध्यापक और सामान गोरोंके स्कूलों जैसा अच्छा नहीं होता और दक्षिणके राज्योंमें नीग्रो लोगोंसे टैक्स तो लिया जाता है, परन्तु उन्हें अपने प्रतिनिधि चुननेका कोई अधिकार नहीं है।

उद्योग-धन्धोंकी गुरिल्ला प्रणाली

चीनमें यदि आप किसी चर्म सहयोग समितिसे कोई सूटकेस लें, एक त्रिभुजकार लाल लेबलमें आप पढ़ेंगे—"शत्रुसे मोर्चा लो और नवीन चीनका निर्माण करो।" इसी भावनाके साथ आज चीनमें सर्वत्र "गुंग-हो।" का जयघोष सुन पड़ता है। 'गुंग-हो' का अर्थ है, "मिलकर काम करो।" यह आज चीनियोंका युद्धका नारा हो गया है। जापानियोंकी तोपोंकी गड़गड़ाहट और पहियोंकी घरघराहटके मध्य उसे सुना जा सकता है। गूंजते हुए अहातों, तहखानों, उजाड़ मन्दिरों, गुप्तवाटियों और ध्वस्त गांवोंमें फूकीनसे उत्तर-पश्चिम घने जङ्गलोंसे ढके हुए पहाड़ोंसे लगाकर दक्षिण-पूर्वमें काण्टुङ्ग प्रान्त तक, सर्वत्र यही आवाज आ रही हैं। एक ओर कानमें जहां करघोंकी खटाखट आवाज सुन पड़ती है वहां दूसरी ओर यह ध्वनि भी कानमें पड़ती है—"मिलकर काम करो।" गत २-२॥ सालमें इस जयघोषने चीनका कायापलट कर दिया है।

'गुंग-हो' जापानियोंकी चुनौतीका उत्तर है। जापानियोंने जब चीनकी छातीपर ताण्डव नृत्य आरम्भ किया, अपनी सेनासे उसे रौंदना और तोपोंसे चीनकी जनताको भूनना आरम्भ किया, कुछ दिनों तक चीनमें बड़ी नाजुक अवस्था उत्पन्न हो गयी। शत्रु बड़े वेगसे बढ़ रहा था और चीनी प्रजाजन अपनासर्वस्व छोड़कर भाग रहे थे। जिस क्षेत्रपर वह अधिकार कर रहा था, चीनके औद्योगिक जीवनकी दृष्टिसे उसका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जापानियोंने आक्रमण करनेके लगभग १ सालके अन्दर चीनके ९० सैकड़ा उद्योग-धन्धोंके केन्द्रोंपर अधिकार कर लिया और लगभग ६ करोड़ चीनियोंने इस क्षेत्रसे भागकर पश्चिममें शरण ली जहां उद्योग-धन्धोंका नाम भी न था। इधर उद्योग-धन्धोंके केन्द्र हाथसे निकल गये और चीनी कारीगर बेकार हो गये और उधर जापानियोंने घेरा डालकर चीनके आयात और निर्यात व्यापारको बन्द कर दिया। चीनके सामने बड़ी कठिन समस्या थी। चीनी नेताओंने

इसपर गम्भीरताके साथ विचार किया। वे जानते थे कि जापानियोंके साथ जब अनन्त काल तक लोहा लेना है तब इसके लिए गुरिल्ला प्रणाली ही उपयुक्त हो सकती है। इस दशामें गुरिल्ला प्रणालीसे ही उद्योग-धन्धोंको भी क्यों न चलाया जाय। उद्योग-धन्धोंके लिए यह आवश्यक था कि उन्हें शत्रुकी आंखोंसे बचाया जा सके और साथ ही जब जरूरत हो, उन्हें आसानीसे स्थानान्तरित किया जा सकें। इस आवश्यकताको दृष्टिमें रखकर गुरिल्ला प्रणाली-पर उद्योग-धन्धोंका सङ्गठन करनेका निश्चय किया गया। मैडमचियांग कैईशेक और डा० कुङ्गने इस प्रयत्नको आर्थिक सहायता दी और रेवीएली नामक व्यक्तिने इसका नेतृत्व ग्रहण किया। इस सङ्गठनके नेताओंने सबसे पहले यह अपील प्रकाशित की—"युद्ध-क्षेत्रकी परिधिमें मारे-मारे फिरनेवाले कारीगरो, आओ। आ! वेकार भाइयो और अपाहिज सैनिको, आओ, तुम भी आओ। जिनमें शक्ति तो है परन्तु जिनके पास पूंजी नहीं है, जो लोग कारीगर तो हैं परन्तु जिन्हें काम देनेवाला कोई नहीं है, वे भी आयें। हम सब स्वदेशकी मिट्टी खोदकर धन निकालें, सोना, लोहा और कोयला निकालें और इस लड़ाईको जीतने और नवीन जीवन निर्माण करनेके लिए उसका उपयोग करें।"

सबसे पहले नौ लुहार सामने आये। होनानसे रेलकी सड़कके किनारे-किनारे ये १५० मील चलकर पहुंचे थे और भूख, प्यास और थकानसे जर्जर हो रहे थे। औजारोंको छोड़कर उनके पास कुछ भी न रह गया था। दूकान जमानेके लिए उनके पास कुछ भी सामान नहीं था। इस गुरिल्ला सङ्गठनके कर्मचारीने उन्हें बतलाया कि किस प्रकार वे अपनी सहयोग समिति बना सकते हैं। इन नौ लुहारोंकी यह पहली सहयोग समिति थी जो २॥ वर्ष पहले बनायी गयी थी।

प्रेसका काम जाननेवाले एक सज्जन कियांगसूसे सैकड़ों मील चलकर पहुंचे। उनके साथ सात सहकारी और उनके बाल-बच्चे थे। जब वे एक गांवमें ठहरे हुए थे, उन्हें गुरिल्लोंकी औद्योगिक सहयोग सम्बन्धी हलचलका पता चला और उन्होंने अपनी सहयोग समिति कायम कर ली। यह दूसरी समिति थी। इसने प्रेसका काम कितने ही नये आदमियों-को सिखलाया और इस आन्दोलनका प्रचार किया।

इन सहयोग समितियोंने कपाससे बिनौला अलग करनेकी छोटी-छोटी मशीनें और हाथसे चलानेके करघे लगा दिये। पहले जिस तरह खानोंसे धातुएं निकाली जाती थी, उसी तरह उन्हें निकालनेकी व्यवस्था की। नदियोंके किनारे पहियोंकी घर-घराहट सुन पड़ने और बिजली उत्पन्न की जाने लगी। इस सङ्गठनकी प्रथम पंक्ति इतनी प्रगतिशील है कि जापानियों द्वारा अधिकृत क्षेत्रमें भी अपना कार्य करती है। इस तरहके क्षेत्रोंमें एक प्रान्त है हूपेह। इसमें स्त्रियोंने एक सहयोग समितिका सङ्गठन किया है। तहखानोंमें छिपी हुई ये महिलायें छोटी-छोटी मशीनोंपर मोजे बुनती है और जापानियोंकी तोपोंकी छायामें जूते और कोट बनाती हैं। जब जापानी सैनिकोंके पास पहुंचनेका समाचार मिलता है, स्त्रियां अपनी-अपनी मशीनोंको पीठपर कस लेती हैं और तत्काल नौ-दो ग्यारह हो जाती हैं। दूसरे गांवमें पहुंचकर अपना कार्य फिर आरम्भ करते इन्हें देर नहीं लगती।

इस प्रथम पंक्तिके पीछे जुलाहोंकी सहयोग समितियां हैं जो कम्बल और कपड़ा तैयार करती हैं। अन्य लोग जूते, साबुन और मोमबत्तियां बनाते हैं। गांवमें यदि कोई बम गिरे, तत्काल ये कारीगर अपना काम छोड़कर आग बुझाने और सामान निकालनेके लिए दौड़ पड़ते हैं। उन्हें अपने करघों और इसी तरहकी दूसरी चीजोंकी भी मरम्मत करते देरी नहीं लगती। इनके पीछे अधिकृत क्षेत्रसे बाहर बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों सम्बन्धी मशीने लगी हुई हैं। मशीनोंकी मरम्मत करनेके कारखाने और खानें हैं। दक्षिणमें कियांगसू प्रान्तमें कभी कोई उद्योग-धन्धा देखनेमें नहीं आया था। परन्तु अब वहां बिलकुल नयी अवस्था हो गयी है। यातायातका मुख्य साधन इस क्षेत्रमें कान नदी है। इसके किनारे कितनी ही दूकानें नौका बनानेका कार्य कर रही हैं। जिससे सहयोग समितियों द्वारा तैयार की हुई चीजोंको बाजारमें पहुंचाया जा सके। नदीके किनारे ही एक अन्य बड़ी दूकान है जो अन्य उद्योग-धन्धोंमें काम आनेके लिए सामान तैयार करती है। इस दूकानके नीचे नदीमें तीन नौकायें हमेशा ही तैयार खड़ी रहती हैं। कोई स्काउट पहुंचकर यदि सूचना दे कि जापानी पहुंच रहे हैं, कुछ ही समयमें सारा कारखाना इन नौकाओं द्वारा बड़ी आसानीसे अन्यत्र पहुंचा दिया जाता है।

उत्तर-पश्चिम चीनमें पहाड़ोंमें दर्रे और घाटियां हैं। इनमें सैकड़ों गुफायें हैं और प्रत्येक गुफा किसी-न-किसी उद्योग-धन्धेका केन्द्र बनी हुई है। ये गुफायें जापानी हवाई जहाजोंके हमलेसे सर्वथा सुरक्षित हैं। जहां जैसा मार्ग होता है, खच्चरोंकी गाड़ियों, ऊंटों और गधोंपर ऊन और अन्य पदार्थ पहुंचा दिये जाते हैं। प्रस्तुत वस्तुओंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुंचानेके लिए भी इन्हीं साधनोंसे काम लिया जाता है।

एक बारकी बात है, मेडम चियांगकाईशेकने सेनाके लिए दक्षिणपूर्वकी समितियोंको दस हजार रूईदार ओवर-कोटों और दस हजार कमीजोंका आर्डर दिया। १५ दिनमें यह आर्डर पूरा हो गया। एक बार १५ हजार तौलियों और इतने ही मोजोंका आर्डर पांच दिनमें पूरा हो गया। सहयोग समितियोंका सङ्गठन होनेसे पहले हालत यह थी कि सभी कम्बल, यदि वे शांघाईमें बने हुए न होते, विदेशी होते थे। अब सहयोग समितियोंके करघोंपर चीनमें अपने ही रंगोंसे रंगी हुई अपनी ऊनसे १० लाख कम्बल तैयार किये जाते हैं। चीनके पुराने धन्धोंको नया जीवन मिल रहा है।

गुरिल्ले उद्योग-धन्धोंका आधार बड़ा ही सुदृढ़ है। सारा चीन पांच भागोंमें बांट दिया गया है। प्रत्येक भागमें स्वतन्त्र सङ्गठनकर्त्ता और शिल्पी होते हैं। स्कूल भी हैं जो साधारणसे साधारण मेम्बरोंको भी हिसाब-किताब रखना सिखला देते हैं। शरणार्थी-कैम्पों और अस्पतालोंमेंसे नये मेम्बरोंको भर्ती किया जाता है। इनकी शिक्षाके लिए भी स्कूल हैं। शिल्पियोंका काम है विभिन्न क्षेत्रोंकी आवश्यकताओंको देखते रहना और मशीनोंको ठीक रखना। शक्करकी आवश्यकता अनुभव होते ही शिल्पियोंने इधर कोल्हुओं और शक्कर बनानेवाली मशीनोंको तैयार किये जानेकी व्यवस्था की और उधर किसानोंसे गन्ना पैदा करनेके लिए कहा। एक क्षेत्रमें अण्डी बहुत होती थी। वहां शिल्पियोंने पहुंचकर अण्डीका तेल और साबुन तैयार करनेका धन्धा आरम्भ कर दिया। इस तरहके गुरिल्ला-धन्धे आरम्भ करनेमें २०-२५ से ज्यादा रुपयोंकी आवश्यकता नहीं होती। इस योजनाकी उपयोगिता चीनी बेङ्करों और सरकारको मालूम हो चुकी है अतः कारीगरोंको रुपया मिलनेमें कोई कठिनाई नहीं होती।

जापान चूक गया

जापान, इटली और जर्मनीमें पारस्परिक सहायताके लिए जो सन्धि हुई थी, वह यद्यपि कभी प्रकाशित नहीं की गयी, तथापि धीरे धीरे संसारको पता चल रहा है कि उस सन्धि पत्रपर हस्ताक्षर करनेके समय इन देशोंका इरादा क्या था। उस समय एक जापानी अधिकारीसे जब प्रश्न किया गया, उसने योंही उत्तर दिया कि सन्धि एक ऐसे चौखटेके रूपमें है, जिसमें कोई भी चित्र जड़ा जा सकता है। इससे ज्यादा सन्धिके सम्बन्धमें कभी कुछ नहीं कहा गया। अब पता चलता है कि इस जापानी अधिकारीकी दृष्टि संसारके मान चित्रपर थी, उस मान चित्रपर थी, जिसमें विभिन्न देशोंकी सीमा नये सिरेसे बनायी गयी हो और जिसमें कितनी ही स्वतन्त्र जातियोंके लिए कोई स्थान ही न हो। जापान, इटली और जर्मनीको जो परिवर्तन अभीष्ट है, उसका विवरण अभी तक रहस्य ही है। परन्तु शनैः शनैः उसकी जो बातें प्रकट हो गयी हैं, उनसे प्रधान रूप रेखाका पता चल जाता है। इन सब बातोंपर एक साथ विचार करने और गत तीन वर्षकी घटनाओंकी दृष्टिसे उनका अर्थ लगानेसे सन्धिकी परिधिका अनुमान किया जा सकता है। कितने ही विशेषज्ञोंके मतानुसार इस सन्धिका उद्देश्य था गणतन्त्र प्रणाली-को नष्ट कर देना, संसारके विभिन्न देशोंको जीतना और लूटका माल आपसमें बांट लेना। इस बंटवारेमें जर्मनीको यूरोप, इटलीको भूमध्य सागर और जापानको एशिया दिया गया था। जापानका काम था चीनको जीत लेना। इसके लिए जापानी एक पीढ़ीसे कार्यक्रम बना रहे हैं और मञ्चूरियामें योजना जितनी आसानीसे सफल हो गयी है, उससे जापानियोंमें आत्मविश्वास उत्पन्न हो गया है। जापानियोंने बड़े गर्वके साथ कहा था कि यह केवल तीन महीनेका काम है।

जापानियोंका यह ध्येय पूरा होनेसे गणतन्त्र प्रणाली-वाले देशोंपर सबसे पहले आघात लगेगा। चीनके साथ उनका व्यापार और प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी। चीनपर जापानका अधिकार हो जानेसे बर्मा और रंगूनके लिए खतरा हो जायगा और जापानको आगे

फैलनेके लिए भी आसानीसे अवसर मिल जायगा, परन्तु तीन महीनेके बजाय चार सालसे भी अधिक हो चुके हैं किन्तु अभी तक जापानी इधर बर्माकी सीमासे सैकड़ों मील दूर हैं और यद्यपि इण्डोचीनको दबा कर जापानने कितने ही स्थानोंमें सैनिक सुविधा प्राप्त कर ली है तथापि यह तो साफ ही है कि जापानका कार्यक्रम समयपर पूरा नहीं हो रहा है।

जब चीनपर आक्रमण किया ही था, जापानके अधिकारी अक्सर 'अटल निश्चय' की बात कहा करते थे, परन्तु इधर तो उन्होंने इस अटल निश्चयको दुहराना बन्द-सा कर रखा है, उनका पहलेका उत्साह नहीं रह गया है और वे यह आशा छोड़ बैठे हैं कि चीनमें वे जो प्रयास कर रहे हैं, वह जल्दी पूरा हो जायगा। इसमें सबसे बड़ी बाधा जहां जापानकी अपनी कठिनाइयां हैं, वहां चीनका दृढ़ निश्चय भी है। मार्शल चियाङ्ग कैई शेकके नेतृत्वमें स्वतन्त्र चीनने यह निश्चय किया है कि जब तक चीनके उत्तरी पूर्वी प्रान्त लौटा न लिये जायंगे, तब तक लड़ाई जारी रखी जायगी। मार्शल चियाङ्ग कैई शेककी सेना अभी तक अजेय बनी हुई है। यह सच है कि चीनको रूस, अमेरिका और ब्रिटेनसे जो सहायता मिल रही है, उसीसे वह लड़ रहा है, परन्तु यह विश्वास किया जा सकता है कि रूस, अमेरिका और ब्रिटेन भरसक चीनको सहायता देना बन्द नहीं करेंगे और चीन जापानको परेशान करता ही रहेगा।

पिछले दिनों इण्डोचीनके सैनिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण कुछ स्थानोंपर जब जापानियोंने अधिकार किया और साथ ही उन्होंने जब अमेरिका द्वारा रूसके लिए ब्लाडी वोस्टक पेट्रोल भेजे जानेपर त्योरी बदली तब ऐसा मालूम होने लगा था कि प्रशान्त महासागरमें भी रणचण्डीका ताण्डव होना ही चाहता है; परन्तु यह घड़ी भी टल गयी। जापानका इरादा बड़ा लम्बा चौड़ा है। उसकी निगाह चीनके अलावा इण्डोचीन, थाईलैण्ड, डच ईस्ट इण्डीज और प्रशान्त महासागरके इस क्षेत्रके प्रायः सभी टापुओंपर है। अपना यह इरादा सीमित रूपमें उसने छिपाकर भी नहीं रखा है। उधर रूसकी सीमापर यद्यपि अभीसे कोई दुर्घटना नहीं घटित हुई है और रूसके साथ जापानकी अनाक्रमण सन्धि भी है, तथापि मञ्चूकोकी सीमापर जिस तरह जापानी सेना जमा हो रही है और रूसके सम्बन्धमें जापानका जो दृष्टिकोण हमेशा ही रहा है, उसकी दृष्टिसे यह कहना अधिक नहीं है कि जापान अवसर देख रहा है! यह सम्भव है कि जापान यूरोपमें रूसके कमजोर पड़नेकी प्रतीक्षा कर रहा हो और इसीलिए उसने ब्लाडी वोस्टकमें रूसके लिए पेट्रोल उतरनेपर भी अपनी पहलेकी त्योरीके अनुरूप कुछ करना उचित न समझा हो और यह भी हो सकता है कि जापानके रुखकी इस नरमीका कारण वह बातचीत हो, जो इस समय अमेरिका और जापानमें समझौतेके लिए हो रही है, परन्तु एक बात निश्चित है—यदि जापानने यह सोचा होगा कि इस समझौते द्वारा वह अमेरिकाको रूस, चीन या ब्रिटेनकी सहायतासे विरत करनेमें सफल हो जायगा, तो उसे अन्तमें निराशा ही होगी। और किसी भी समय यदि जापानने रूसपर हमला करनेका इरादा किया, तो उसे चीन ही नहीं रूस, ब्रिटेन, अमेरिका और डच ईस्ट इण्डीज, सबसे लड़ना पड़ेगा। थाईलैण्ड अपनी स्वतन्त्रता और डच ईस्ट इण्डीज अपनी वर्तमान स्थितिको प्रत्येक अवस्थामें बनाये ही रखना चाहते हैं, और सच तो यह है कि इस क्षेत्रकी दृष्टिसे जापानके सामने आजसे पहले किसी समय कोई अवसर भले ही रहा हो, परन्तु ब्रिटेन और उसके मित्रोंकी जैसी तैयारी इधर हो गयी है, उसके विचारसे अब निर्विवाद रूपसे यही कहा जा सकता है कि जापान अवसर खो चुका है। यह विश्वास किया जा सकता है कि जब तक यूरोपमें रूस और जर्मनीके युद्धका वारा न्यारा जर्मनीके अनुकूल होनेके लक्षण बिलकुल स्पष्ट न हों, संसारके इस हिस्सेमें तीन महाशक्तियोंको एक साथ ही रण निमन्त्रण देनेका दुःसाहस जापान नहीं कर सकेगा।

———





विश्व-सङ्घर्ष और महिलायें

१९३९-४० के शीतकालमें जब रूसने फिनलैण्डपर आक्रमण किया, ब्रिटिश मजदूरदलके कुछ सदस्य वहांकी स्थिति को अध्ययन करनेके लिए गये। ये जिस समय वहां एक फीन श्रमजीवी परिवारकी अवस्था देखने गये, घरकी वृद्धा मालकिन अपने २-३ महीनेके पौत्रको खिला रही थी। घरमें कई अन्य बच्चे भी थे। बातचीत होनेपर उस महिलाने बतलाया कि शिशुका पिता युद्ध-क्षेत्रमें देशके शत्रुओंसे लोहा लेने गया हुआ है और परिवारका प्रत्येक बालक फिनलैण्डका सैनिक बनेगा।

देशके लिए यदि आवश्यकता हो तो प्रत्येक बालककी आहुति दे डालनेके लिए वृद्धाका सङ्कल्प किसी भी देशकी नाड़ियोंमें बिजली पैदा कर देनेके लिए पर्याप्त है। कोई आश्चर्य नहीं है यदि फिनलैण्डकी जनताने उस युद्धमें हारनेके १॥ वर्ष पूरे होते न होते अपना खोया हुआ प्रदेश रूससे फिर छीन लिया।

हमारे सामने जापानकी एक देशभक्त महिलाकी कहानी भी है। डा० चियोइनोयीको जापान सरकारने डाक्टरोंके कैम्पके साथ मञ्चूरिया जानेकी आज्ञा दी। मिसेज चियो इनोयीको जब यह मालूम हुआ, उन्होंने एक दिन पहले ही विवाहके समयका अपना 'किमोनो' निकाला और उसे पहनकर अपने हाथसे अपना शिर उतार लिया। उन्होंने अपने पतिके लिए एक चिट्ठी लिखकर वहां रख दी थी:—

"प्रियतमके चरणोंमें—मेरा हृदय आनन्दसे भर रहा है। आपको बधाई देनेके लिए मुझे शब्द नहीं मिलते। कल आप मोर्चेपर जायेंगे, इससे पहले ही मैं आज इस संसारसे बिदा हो रही हूं। कृपया घरकी चिन्ता मत कीजिये क्योंकि अब आपकी चिन्ता बढ़ानेके लिए यहांपर कुछ भी नहीं रह गया है। मैं अबला हूं और अपनी अल्प शक्तिसे नाम मात्र जो थोड़ा कुछ कर सकती हूं, उसे करती हूं जिससे आप और आपके साथी हृदयसे सारी शक्ति लगाकर देशके लिए लड़ सकें। मैं केवल यही चाहती हूं और कुछ नहीं, ईश्वरसे प्रार्थना है कि वह आपको सफलता प्रदान करें।

—आपकी पत्नी।"

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि जापानके इस डाक्टरने अपना कार्य बड़ी ही वीरताके साथ पूरा किया। जिस देशकी स्त्रियां इस तरह आत्म-बलिदान कर अपने पति और पुत्रोंको शक्ति प्रदान कर सकती हैं, देशके काम आनेके लिए निश्चिन्त कर सकती हैं, उसके लिए संसारमें कोई भी कार्य दुष्कर नहीं हो सकता। एक बारकी बात है, शांघाईमें तीन जापानी सैनिकोंने डाइनामाइटकी टिकियोंको अपनी पीठपर बांध लिया और चीनकी ओरसे लगाये हुए कांटेदार तारोंमें पहुंचकर अपने आपको उड़ा दिया। उन्होंने अपने देशके लिए जिस असाधारण साहसका परिचय दिया, उसके प्रति अपना सम्मान प्रकट करनेके लिए जापान सरकारने टोकियोंके सैनिक म्यूजियममें उनका स्मारक बनाया और उन देश-भक्तोंकी माताओंको एक स्पेशल ट्रेनमें बैठाकर सारे देशमें घुमाया और लाखों ही नहीं, करोड़ों जापानी स्त्रियों, पुरुषों, बच्चों और बूढ़ोंने उनके दर्शनोंसे अपनेको कृतकृत्य किया। वीर प्रसविनी

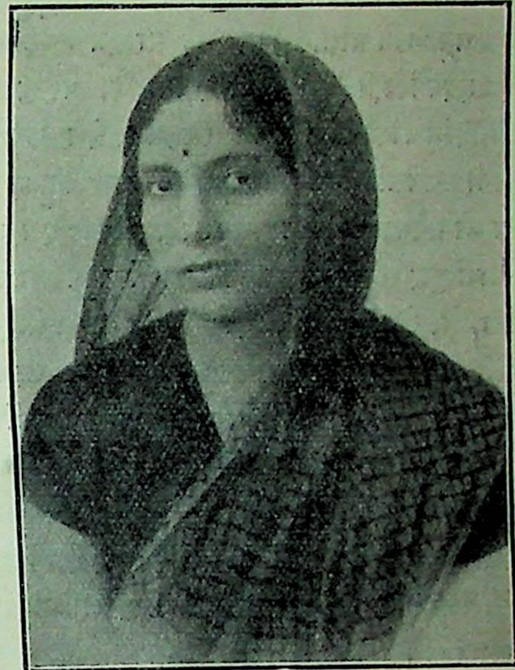
मातायें सभी देशोंमें हमेशा ही वन्दनीया रही हैं और आगे भी सभी स्वतन्त्रता प्रेमियोंका मस्तक श्रद्धासे उनके आगे झुकता रहेगा।

चीनकी मातायें और बहिने तो जापानी महिलाओंसे भी एक कदम आगे बढ़ी हुई हैं और हाथमें बन्दूक लेकर जापानियोंसे लड़ रही हैं और ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने स्त्री होनेकी बातको बिलकुल ही भुला दिया है। चीनमें जो बहनें बन्दूक लेकर खाइयोंमें नहीं डट सकती, वे दूसरे कितने ही कार्यों द्वारा देशकी महत्त्वपूर्ण सेवा कर रही है। चीनमें जिन गुरिल्लोंने आज जापानियोंको परेशान कर रखा है, उनकी जननी एक चीनी वृद्धा ही हैं। शान्ति-कालमें साधारणतः पुरुष जो कार्य किया करते हैं, प्रायः वह सब आज चीनी स्त्रियां कर रही हैं।

गत २ जुलाईको चीन जापान युद्धके ४ वर्ष पूरे होनेसे ९ दिन पहले मार्शल चियाङ्ग कैई शेकने चीनके नवजीवन केन्द्रकी महिलाओंको सम्बोधन कर कहा था—"चीनकी महिलाओंने जो कुछ किया है, उससे मोर्चेपर डटे हुए हमारे सैनिकोंको बड़ा प्रोत्साहन मिला है। आपके त्यागने उनमें केवल विजय-निष्ठाको ही पहलेसे भी अधिक सुदृढ़ नहीं किया है, युद्ध-क्षेत्रमें अधिक वीरता दिखलानेके लिए भी उन्हें शक्ति प्रदान की है।"

यह स्थिति केवल चीनकी ही नहीं है। ब्रिटेन, जर्मनी और रूस, यूरोपके सभी युद्धलग्न देशोंमें महिलाओंने पुरुषोंके अधिकांश शान्ति-कालीन कार्योंका दायित्व उठा लिया है और अपने-अपने पतियों और पुत्रोंको सैनिक सेवाके लिए राष्ट्रके अर्पण कर दिया है। इन देशोंमें बहिनें अपने भाइयों और मातायें अपने पुत्रोंको युद्ध-क्षेत्रमें भेज कर उनका कार्य सम्भाल रही हैं। महिलायें युद्ध, सेना, रक्षा और परिचर्या सम्बन्धी दूसरे कितने ही कार्योंको भी, जिन्हें साधारण अवस्थामें पुरुष ही करते, कर रही हैं। स्वदेश सेवाके सङ्कल्पने उनमें अदम्य साहस, अटूट धैर्य और आश्चर्यजनक सहिष्णुता उत्पन्न कर दी है।

रूसकी एक माताने ओसलोसे युद्ध-क्षेत्रमें गये हुए अपने पांच पुत्रोंको लिखा था—"प्रिय पुत्रो, अपनी सारी शक्ति लगाकर लड़ो। तुम्हारा कोई गोला खाली न जाये। मोर्चे-पर गये हुए सैनिकोंकी सहायताके लिए जो कुछ किया



श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित—सत्याग्रहमें दीक्षित होनेके कारण आपने लखनऊ विश्वविद्यालयके वायसचान्सलरका पद स्वीकार करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की है।

जा सकता है, उसे हम यहां करेंगी। स्टैलिनके आह्वानपर इस नगरके सभी निवासी युद्ध-क्षेत्रकी आवश्यकताओंको पहला स्थान दे रहे हैं।"

एक अन्य रूसी महिलाका वृत्तान्त बड़ा ही उत्साह-जनक है। रूसमें जो महिलायें उद्योग-धन्धों सम्बन्धी कोई कार्य जानती हैं, वे कारखानेमें काम करती हैं। इनमहिलाओं-ने इन कारखानोंका उत्पादन दूना कर दिया है। ये हवाई जहाजोंके हमलेकी चेतावनी मिलनेपर भी अपना काम नहीं छोड़तीं। एक दिन रातको जब हवाई जहाजोंके हमले हो रहे थे, जीवेटेजिना नामक एक महिलाने रातभर लगे रहकर २॥ गुना काम किया और दूसरे दिन जब उसके साहस और अध्यवसायकी प्रशंसा करते हुए किसीने कहा कि तुम बड़ी वीर महिला हो, उसने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—"बिलकुल नहीं। अन्य स्त्रियोंकी तरह मैं केवल अपना कर्तव्य कर रही थी और यह मुझे अपनी सारी शक्ति लगा-कर करना ही चाहिये।"

सोवियट राजदूत मि० मेस्कीकी पत्नीके शब्दोंमें "रूसकी

महिलायें संसारकी अन्य स्त्रियोंकी भांति युद्धसे घृणा करती हैं। युद्ध क्षेत्रमें अपने पति, पिता, भाई या पुत्रके कष्ट सोच-कर उनके हृदयमें बड़ी ही व्यथा होती है, परन्तु अन्य देशोंकी महिलाओंकी तरह वे भी स्वदेशसे प्रेम करती हैं और अपनी स्वतन्त्रता और अपने अधिकारोंपर शत्रुका पाद-प्रहार न होने देनेका उन्होंने संकल्प कर लिया है। उनकी दृष्टिमें आज युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओंका पहला स्थान है, कारखानों, खेतों, स्कूलों, दफ्तरों और दूकानोंमें काम करनेवाली महिलाओंसे लगाकर इञ्जीनियरों, छात्राओं, एक्ट्रेसों, नर्सों और गृहस्थीका भार उठानेवाली देवियों तक, सभी अस्पतालों और सेवा केन्द्रोंमें पहुंच कर घायलोंके प्राण बचानेके लिए रक्त दान कर रही हैं। नर्स, डाक्टर सैनिक या किसी अन्य रूपमें सेवा करनेके लिए युद्ध क्षेत्रमें जाना चाहती हैं, जिससे वे मातृभूमिको अधिकसे अधिक शक्ति प्रदान कर सकें।

खानों, कारखानों और खेतोंमें पुरुषोंका स्थान लेने और उन्हें युद्ध-क्षेत्रमें भेजनेके लिए लाखों स्त्रियां पहुंच रही हैं। काकेशसमें सामूहिक खेतीके एक सङ्घकी महिला सेक्रे-टरी वीप्रोस्कुविना मोटरवाला हल चलाना जानती थीं। रूसपर जब जर्मनीने हमला किया, उन्होंने सेक्रेटरीका पद छोड़ दिया। उनका कथन है—"पुरुष जब युद्ध-क्षेत्रमें जा रहे हैं, मैं दफ्तरमें न बैठकर हल चलाऊंगी।"

हवाई जहाजोंके हमलेके समय रक्षा होनेके लिए जो व्यवस्था की जा रही है, उसमें सभी युद्ध लग्न देशोंकी महि-लायें खास तौरसे योग दे रही हैं। आग बुझाने और अन्य प्रबन्ध करनेकी शिक्षा भी वे प्राप्त कर रही हैं। स्वदेश रक्षाके लिए उन्होंने अपना अलग सङ्गठन किया है। वे इस बातकी ताक रखती हैं कि कहीं आग न लगने पाये और लग जानेपर उसे तत्काल बुझा दिया जाय। रूसमें महिलायें यह प्रयत्न कर रही हैं कि कोई व्यक्ति उनके क्षेत्रमें ऐसा न रहने पाये, जिसे गैसका नकाब काममें लाना न आता हो। लेनिनग्राड और मास्कोमें ऐसी स्त्रियां अधिक नहीं होंगी, जिन्होंने पुरुषोंके समान ही अपने हिस्सेका कार्य बतलानेके लिए अधिकारियोंसे न कहा हो।

संसारके विभिन्न भागोंमें हमारी ये बहनें और मातायें जब स्वदेश सेवा करनेके लिए इतने त्याग, साहस और सामर्थ्यका परिचय दे रही हैं, तब हमारी भारतीय बहनें और मातायें अपने देश और समाजकी सेवा करनेके लिए क्या नहीं कर सकतीं, पहले वे क्या नहीं किया करती थी और आज भी वे क्या नहीं कर रही हैं—स्वदेशकी आव-श्यकताओंकी दृष्टिसे वह पर्याप्त न हो, यह दूसरा प्रश्न है।—अन्नपूर्णा मिश्र

हमारा सेवा क्षेत्र और मार्गकी बाधायें

एक बहनने अपने सार्वजनिक जीवनके अनुभव बतलाते हुए लिखा है—"वास्तविक स्थितिपर कोई कितने दिन तक पर्दा डाल सकता है। उसे छिपाया नहीं जा सकता और न उसके छिपानेमें लाभ ही है। जिन बहनोंने आंख खोलकर इस दुनियाको देखा है, जिन्हें ईश्वरने विद्या बुद्धि और योग्यता दी है, जिनके पास आगे बढ़नेके लिए साधन और अवकाश है और इन सबसे अधिक जिनमें अपनी बहनोंकी सेवा करनेके लिए कुछ इच्छा और साहस है, वे अक्सर आगे न बढ़नेके लिए परिस्थितिका बहाना किया करती हैं, मिथ्या सङ्कोच और सोच विचारमें पड़ी रहती हैं। यह भी सम्भव है कि किसीकी परिस्थिति सचमुच अग्रसर होनेमें बाधक हो, परन्तु इसके साथ ही यह भी तो देखा जाता है कि जिनकी स्थिति अपने समाजकी कुछ सेवा करनेके लिए अनुकूल है, उनमें प्रायः साहस नहीं होता और उनके पास अन्य आवश्यक साधनोंकी भी कमी होती है। यह सचाई स्वीकार करनेमें सङ्कोच नहीं होना चाहिए कि अभी तक महिलायें अपने कार्योंके लिए पुरुषोंकी कृपापर निर्भर हैं। जिन कामोंको उन्हें स्वयं करना चाहिए, उनके लिए भी वे पुरुषोंका मुंह ताकती हैं। पुरुषोंका सहयोग प्राप्त होना कोई बुरी बात नहीं है, सार्वजनिक जीवनका पुरुषोंको जो अनुभव है, उससे लाभ उठानेमें भी कोई बुराई नहीं है, परन्तु अपाहिज होने जैसी स्थिति तो किसीको भी पसन्द नहीं हो सकती। दुर्भाग्यवश महिला समाज अभी तक इसी स्थितिमें है! हम मर्दोंका सहारा लेकर उनके आगे या पीछे चलनेका साहस कर सकती है, परन्तु उनके भरोसे न रह कर अकेले ही अपना काम करनेका साहस नहीं दिख-लाती।"

महिला समाज सम्बन्धी यह अवस्था किसी एक स्थान-का प्रश्न नहीं है। प्रायः सभी स्थानोंमें, जहां समाजमें

थोड़ी भी जागृति है, सेवा कार्यमें लगी हुई बहनोंको इसी अवस्थाका सामना करना पड़ता है। समाजमें अभी तक शिक्षाका प्रचार इतना अधिक नहीं हुआ है कि मध्यम और गरीब श्रेणीकी बहनें अपनी स्थितिमें कुछ सुधार करनेके लिए अग्रसर हो सकें। वे अपनी पीड़ा अनुभव करती है, जिन सामाजिक कठिनाइयोंने उनका मार्ग अवरुद्ध कर रखा है, उनके प्रति इनके हृदयमें बड़ा विद्रोह होता है, अपने बन्धनोंके कारण उन्हें बड़ी व्यथा होती है, परन्तु सच तो यह है कि उन्हें इस अवस्थासे निकलनेका कोई मार्ग नहीं सूझता, यदि उन्हें सुझाया भी जाय तो उनके सामने भारी कठिनाइयां हैं। ये कठिनाइयां कई तरहकी हैं। कुछ कठिनाइयोंको तो सचमुच ही परिस्थिति सम्बन्धी कठिनाई कहा जा सकता है क्योंकि जहां तक हमारे घरेलू जीवनका प्रश्न है, स्त्री अकेली नहीं है और उसके लिए अन्य स्वजनों और सम्बन्धियोंकी इच्छाओं-का आदर करना आवश्यक है, उसे उनकी अवज्ञा करना न तो पसन्द ही होगा और न साधारण अवस्थामें वह इतना साहस ही कर सकेगी कि घरकी दीवालोंको गिराकर बाहर आ जाय। उसकी वास्तवमें कोई आवश्यकता भी नहीं है। घरकी दीवालोंको बनाये रखकर भी जब हम बाहर निकल सकते हैं और निकलते हैं, तब दीवालोंको गिरानेका प्रयत्न वाञ्छनीय नहीं है। अलबत्ता, हमारे सामाजिक जीवनमें परिस्थिति सम्बन्धी कठिनाइयोंसे भी अधिक बाधक तो हमारी बहनोंका अपनाही संस्कार बना हुआ है और यह कम लज्जाकी बात नहीं है कि पुरुष समाजपर इस अवस्थाका कम दायित्व नहीं है। ऐसी माताओं और बहनोंका अभाव नहीं है, उनकी संख्या काफी हैं, जो अपनी अपाहिज होने जैसी स्थितिको ही अपनी मर्यादा और अपनी प्रतिष्ठा समझती हैं। इस धारणाके मूलमें कुछ तो महिला समाजमें—और साथ ही पुरुष समाजमें भी—फैला हुआ अज्ञान है और कुछ पुरुष समाजकी निन्द्य स्वार्थ-वृत्ति है और इन दोनोंसे भी अधिक देशकी राजनीतिक परिस्थिति है, जिसने हमारे जीवनकी श्रेष्ठ भावनाओंको कुण्ठित कर दिया है, परन्तु अब इस बातको लेकर बैठे रहने और व्यर्थ समय खोनेसे क्या होगा ? जो परिस्थिति है, वह है, अच्छी बुरी धारणायें और संस्कार जो भी हैं, वे हैं। महिलाओंको अपनी इसी अवस्थासे ऊपर उठकर आत्मोद्धार करना होगा और भाइयोंको भी अपनी बहनोंके इस प्रयत्नमें, जहां आवश्यकता होगी, सहायता देनी ही होगी।

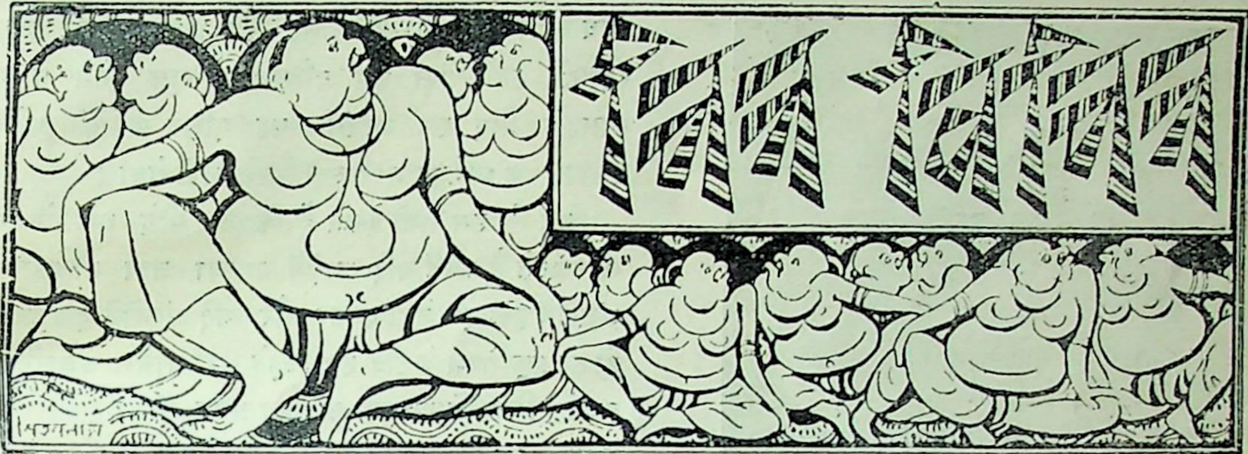
यह सब होगा, मध्यम और गरीब श्रेणीकी बहनों-को मर्यादा और प्रतिष्ठा सम्बन्धी मिथ्या धारणाओं और जर्जर संस्कारोंको छोड़ना ही होगा, परन्तु इस सम्बन्धमें अपनी इन बहनोंके प्रति कुछ कर्तव्य उन देवियोंका भी है, जो साधन सम्पन्न हैं, योग्य हैं और जो अपनी विद्या और अनुभवसे अपनी अन्य बहनोंकी कुछ सेवा कर सकती हैं, जो अपनी पिछड़ी हुई बहनोंके पास पहुंचकर उन्हें बतला सकती है कि संसारकी प्रगति किस ओर है। आगे बढ़नेके मार्गमें परिस्थिति तो हमेशा ही आड़े आती रहेगी, यदि उसपर विजय पानेका प्रयत्न न किया जाय। अच्छेसे अच्छे आदर्शों-का, श्रेष्ठसे श्रेष्ठ भावनाओंका जीवनमें कोई मूल्य नहीं है, यदि उनके लिए प्रयत्न न किया जाय, उन्हें मूर्त रूप न दिया जाय। केवल चाहनेसे ही कुछ न होगा। जो बहनें महिला समाजकी वर्तमान अवस्थाको आंखोंसे देखती है और उसकी विवशताको अनुभव करती हैं, उन्हें अपना कर्तव्य पूरा कर-नेके लिए कृत सङ्कल्प होकर उद्योग करना होगा। सङ्कल्पमें आश्चर्यजनक शक्ति है ! बहुत सारी कठिनाइयां तो सङ्कल्प करनेके साथ ही हवा हो जाती है। निश्चय और साहसके साथ जो अग्रसर होता है, परिस्थिति उसके मार्गमें बाधक न रहकर सहायक हो जाती है, उसके लिए सारे साधन किसी अदृश्य चुम्बकीय शक्तिके आकर्षणसे अपने आप जुट जाते हैं। हमारी बहनोंमें अपनी मानसिक कमजोरियोंपर विजय पानेकी प्रवृत्ति होनी चाहिए, परिस्थितिकी आड़में उन्हें छिपानेकी नहीं।

हमारी जो बहनें पढ़ी-लिखी नहीं हैं, उनके लिए भी निराश होनेका कोई कारण नहीं है, यदि सचमुच उनमें अपनी अन्य बहनोंका सेवा करनेकी कुछ इच्छा हो। पढ़ने लिखनेका महत्व है, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु अनुभवका मूल्य उससे किसी तरह भी कम नहीं है। देखते हैं कि हमारी कितनी ही बहनें पढ़ी-लिखी नहीं है, परन्तु उन्होंने अनुकूल वातावरणमें रहनेके कारण समयकी प्रगतिको समझ लिया है और वे यह अनुभव करती है कि भारतीय महिला समाजको इस उथल पुथलके युगमें अपने हिस्सेका काम पूरा करनेके लिए किस तरह अग्रसर होना चाहिए। हमारी इन

बहनोंको पढे लिखे न होनेके कारण बैठ न रहना चाहिए। पढ़ना-लिखना सेवा करनेके मार्गमें सहायक हो सकता है, उससे सेवक या सेविकाको अपना क्षेत्र विस्तृत करनेमें सुविधा हो सकती है, परन्तु उसका अभाव किसी बहन या भाईको सेवा करनेसे वञ्चित नहीं रख सकता। जरुरत यह है कि हम अपना क्षेत्र अपनी शक्ति और परिस्थितिके अनुरूप पसन्द करें। यह क्या आवश्यक है कि यदि किसी विस्तृत क्षेत्रमें काम करनेकी सुविधा न हो तो छोटे किन्तु मर्यादित क्षेत्रमें भी सेवा न की जाय। सेवाका क्षेत्र छोटा-हो या बड़ा, उसका मूल्य कम नहीं है। उसका महत्व छोटा बड़ा क्षेत्र होनेसे घटता-बढ़ता नहीं है और छोटेसे छोटे क्षेत्रमें भी अपनी सामर्थ्य और परिस्थितिके अनुसार सेवा कार्य करनेवाली बहनें विस्तृतक्षेत्रमें काम करनेवाली बहनोंसे किसी तरह भी कम आदरणीया नहीं है। सेवाका पहला क्षेत्र तो वही है, जहां हम रहते हैं, जिनके निकट सम्पर्कमें हम रात दिन आते हैं। चिराग तले अन्धेरा होनेकी कहावत चरितार्थ करना कोई अच्छी बात नहीं है।

अन्य देशोंकी महिलायें आज अपने कार्योंसे सारे संसार को चकित कर रही हैं, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्यायें हल करनेके लिए वे पुरुषोंके समान ही कार्य कर रही हैं। कोई कारण नहीं है कि इस देशकी महिलायें अपनो इन बहनोंसे पिछड़ी रहें। अतीत कालमें अपने महान् कार्योंके कारण ही इस देशकी महिलाओंने शक्तिका रूप ग्रहण किया था और आज भी वे अपने इसी रूपमें प्रकट होकर समाज और राष्ट्रका बड़ा काम कर सकती है।

———



वृक्षों और पौदोंपर नियन्त्रण

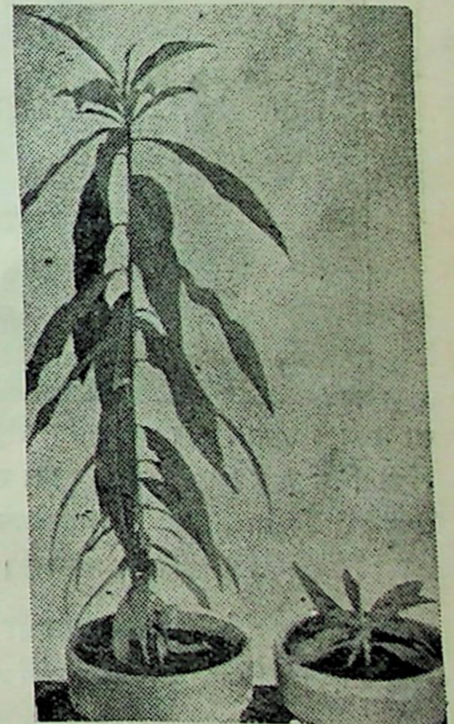
हथेलीपर सरसों उगानेकी कहावतमें कोई सचाई हो या न हो, परन्तु अमेरिकाके कुछ वैज्ञानिकोंने इधर रसायन विज्ञानके कितने ही चमत्कारोंको प्रत्यक्ष कर दिया है। कुछ रासायनिक द्रवोंकी बदौलत उन्हें पौदों और वृक्षोंकी क्रिया-शक्तिपर अधिकार हो गया है। पौदोंपर रासायनिक द्रव छिड़ककर या उन्हें उससे सींच कर वे यदि चाहें तो किसी वाटिकाका फलना फूलना ही बन्द कर दें, आलुओंमें अंकुर न फूटने दें, फलोंको वृक्षकी डालसे यथासमय न गिरने दें, भिन्न जातीय पुष्प-परागकी संयोग-क्रिया हुए बिना ही फल लगा दें और बीजों एवं गुठलियोंकी अंकुर-शक्ति चाहें तो अनन्त काल तक बनाये रखें और चाहें तो उनमेंसे अंकुर निकाल दें।



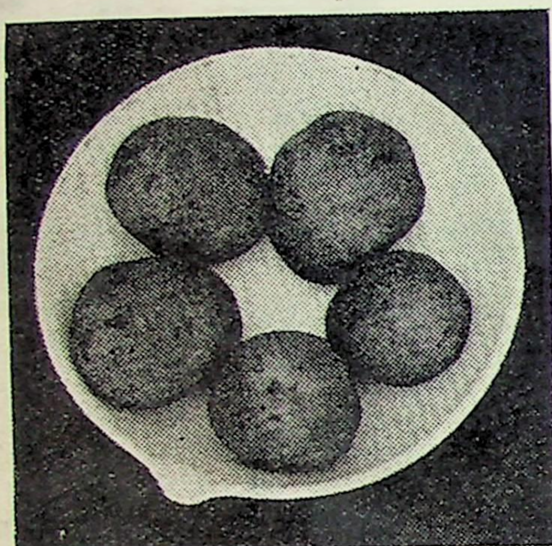
इन्जेक्शन लगी हुई डालमें पत्ते लहलहा रहे हैं परन्तु बाकी डालोंमें अभी उनका कोई चिह्न नहीं दिखलायी पड़ता।

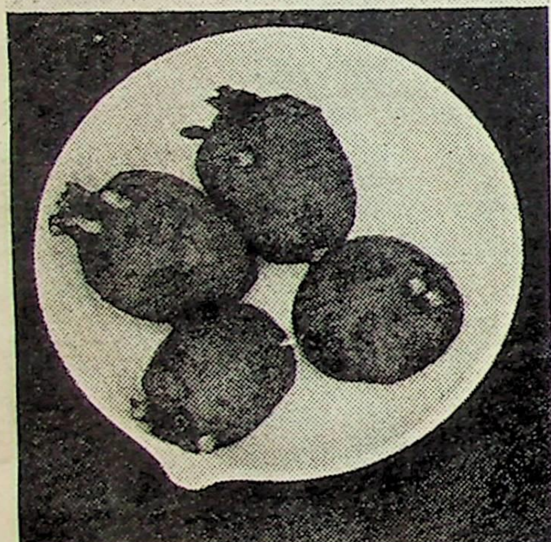
इस तरहके वैज्ञानिक चमत्कारोंके लिए दो रासायनिक मिश्रणोंका उपयोग अक्सर किया जाता है। मिथिल एस्टर आफ नेप्थलेनियासेटिक एसिड और इथीलीन क्लोरीड्रिन। ये दोनों द्रव पत्तों, कलियों, बीजों और वृक्षोंकी क्रियापर प्रभाव डालकर उसे कम और ज्यादा कर देते हैं। इसके कई प्रयोग सफलताके साथ किये गये हैं।

मिथिल एस्टर आव नेप्थलेनिया सेटिक एसिडका एक भाग सौ भाग अलकोहल-में मिलाकर उसे कागजमें सुखा दीजिये। एक पिण्ट अलकोहल और ४ ग्राम एस्टर करीब १ मन आलुओंके लिए काफी है। आलुओंको किसी पीपेमें भरकर उस कागजको पीपेके मुंहपर रख दीजिये और उसे किसी अखबारसे ढक दीजिये। इसके बाद कुछ करनेकी जरूरत नहीं। आलुओंमें न अंकुर निकलेंगे और न वे बरस दो बरस खराब होंगे। यदि



इन दो पौदोंके बीज एक साथ ही बोये गये थे। वैज्ञानिक संस्कार हीन बीजका पौदा जितने समयमें अच्छी तरह उचक भी नहीं सका है, संस्कारयुक्त बीजका पौदा उतनेमें ही कितना ऊंचा हो गया है।

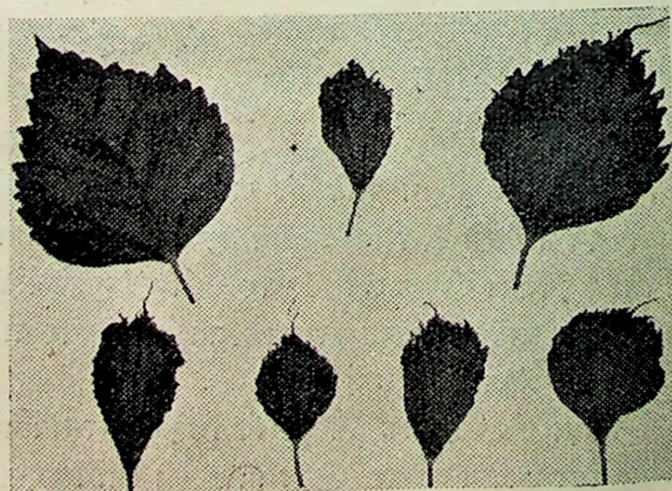




साधारण अवस्थामें जब आलुओंमें अंकुर फूट जाते हैं, रासायनिक द्रवके प्रयोगसे अंकुर फूटना रुक जाता है और आलू बरस-दो बरस तक बिना सड़ेगले बिलकुल अच्छी हालतमें रह सकते हैं।

इन आलुओंको बोनेकी आवश्यकता हो तो २४ घण्टे तक इथीलीन क्लोरी ड्रिनकी भाप देकर उनमें अंकुर भी निकाले जा सकते हैं। डा० जान डी० गुथरीने भी इथीलीन क्लोरीड्रिनके सम्बन्धमें यही पाया है कि उसका प्रभाव वृक्षोंकी टहनियोंपर प्रायः वैसा ही होता है, जैसा ग्लूथाथियोने नामक रासायनिक द्रवका। इस द्रवका इञ्जेक्शन यदि नासपाती और अन्य फल-वृक्षोंको दिया जाय तो उनमें जाड़ेमें ही नये पत्ते निकलने लगेंगे और फल भी अधिक लगेंगे। फलोंकी फसलपर नियन्त्रण करना हो तो उसके लिए मिथिल एस्टर आव नेप्थलेनिया सेटिक एसिड है। जब कलियां निकल रही हों, टहनियोंपर इस एसिडको छिड़क देनेसे वे कई सप्ताहके लिए रुक जायंगी। यह एसिड फलोंको वृक्षोंकी डालपर पक जानेपर भी जल्दी गिरने नहीं देता।

यह तो हम सभी देखते हैं कि जो पौदे गरमीमें उगते और बढ़ते हैं, उन्हें यदि जाड़ेमें उगाया जाय तो पहले तो अंकुरोंमें कुछ दम नहीं होता और यदि अंकुरोंमें कुछ दम भी हो तो प्रकृतिवश वे ठीक रूपमें बढ़ने नहीं पाते। वैज्ञानिकोंने इस प्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेका प्रयत्न किया है और इसमें वे सफल हुए हैं। अनुभवसे यह साबित हुआ है कि बीजोंको यदि तीन महीने तक ४० अंश फार्नहीटकी गर्मीमें रखा जाय, तो उसके बाद उनमेंसे जोरदार अंकुर निकलता है और उस अंकुरकी वृद्धि भी असाधारण रूपसे बहुत जल्दी होती है। यों तो वैज्ञानिकोंको लगभग ५० ऐसे द्रवोंका पता है, जो पौदोंकी वृद्धि आश्चर्यजनक रूपमें करते हैं। परन्तु डा० जिमरमेन और हिचकाकने एक पदार्थ तैयार किया है। यह है बिटा नेफ्थोजी एसेटिक एसिड। ४५० घन सेण्टीमीटर पानीमें ५० ग्राम बिटा नेफ्थाल और २४ ग्राम पोटासियम हाइड्राक्जाइडका घोल तैयार किया जाय और उसे २॥ सौ घन सेण्टीमीटर पानी, ३ ग्राम क्लोरोसेटिक एसिड और २४ ग्राम पोटासियम हाइड्रोक्जाइडके घोलमें मिला दिया जाय। एक घण्टे तक गरम करनेके बाद इस मिश्रणसे पोटासियम नेफ्थोजी एसिटेट नामक क्षार निकाल लिया जाय। यह क्षार चार ग्राम लेकर ५० घन सेण्टीमीटर इथिल अलकोहलमें



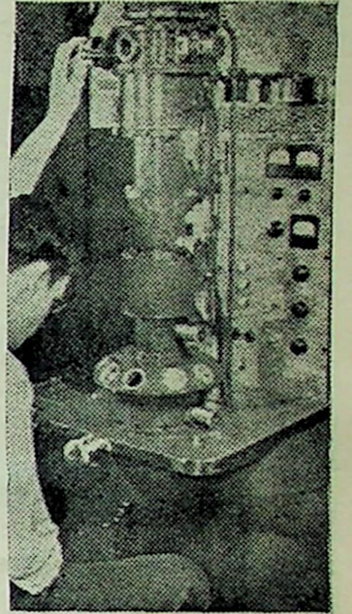
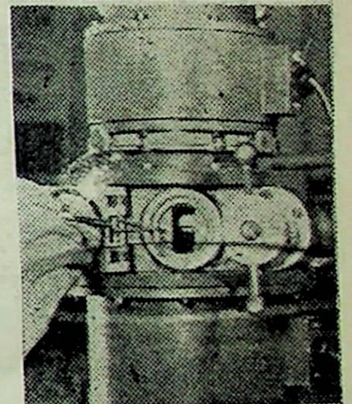
रासायनिक द्रवके प्रभावसे पत्तियोंका आकार ही बदल गया।

मिलाकर ऊपरसे ४० घन सेण्टीमीटर गन्धकका तेजाब (५ प्रतिशत) मिला दीजिये। इसमें २५० घन सेण्टीमीटर पानी मिलानेसे अभीष्ट पदार्थ तलीमें बैठ जायगा। बैज्ञानिक जगतका चमत्कार आज यही पदार्थ है। इस पदार्थका जब प्रयोग किया जाता है, कलमोंमें बड़ी जल्दी जड़ें निकल आती हैं, पत्तोंका आकार बदल जाता है, पौदे असाधारण रूपसे बढ़ते हैं और असाधारण स्थितिमें भी खूब फल लगते हैं।

पेड़के तने-जैसा बाल

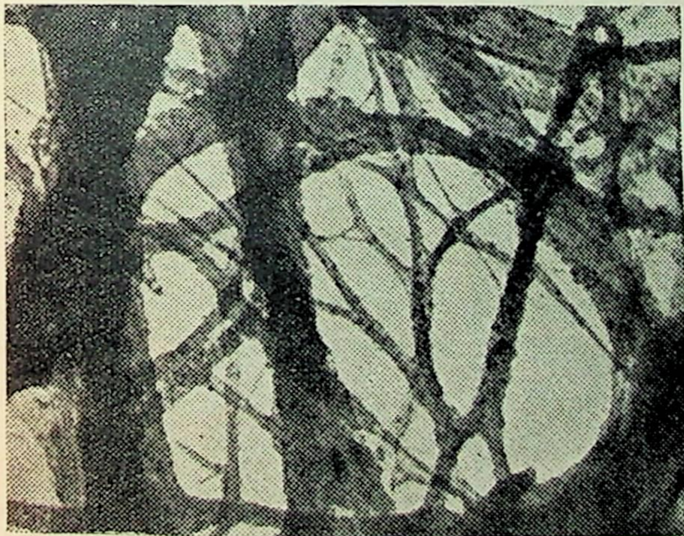
अणुवीक्षण यन्त्रोंकी सहायतासे वैज्ञानिकोंने सृष्टिके कितने ही रहस्योंको प्रकट करनेमें सफलता प्राप्त की है। जो चीज हम आंखसे नहीं देख सकते, उसे अणुवीक्षण यन्त्रकी सहायतासे सहज ही देख लेते हैं। विभिन्न रोगोंके कीटाणुओंका पता इसी यन्त्रकी सहायतासे लग सका है।

आजकल जो बढ़ियासे बढ़ियासे अणुवीक्षण यन्त्र पाया जाता है वह किसी भी वस्तुको २ हजार गुना बड़ा कर दिखलाता है परन्तु वैज्ञानिकोंको भला इतनेसे ही सन्तोष क्यों होने लगा? हालमें ही अमेरिकाके रेडियो कारपोरेशनको एक ऐसा अणुवीक्षण यन्त्र बनानेमें सफलता हुई है, जो किसी भी वस्तुको १ लाख गुना या इससे भी अधिक बड़ा कर दिखलाता है और एक खास तरहके प्लेटपर उसका चित्र भी ले लेता है। यह यन्त्र आजकलके अणुवीक्षण यन्त्रोंसे कुछ भिन्न प्रकारका है। इसमें प्रकाशके बजाय अणु-परमाणुओंकी आश्चर्यजनक विद्युत शक्तिका उपयोग किया जाता है और इस शक्तिको लेन्सोंके बजाय चुम्बकीय चक्रोंसे केन्द्रित कर दिया जाता है। इस यन्त्रकी सहायतासे यदि किसी मनुष्यका बाल देखा जाय तो वह किसी विशाल वृक्षके मोटे तने-जैसा मालूम पड़ेगा। इस आविष्कारसे मानव शरीर और स्वास्थ्यके सम्बन्धमें कितने ही नये रहस्योंका पता लगने और उससे मनुष्य समाजका असीम हित होनेकी आशा है। वनस्पतियों और वस्तुओं सम्बन्धी कितनी ही बातें इससे मालूम होंगी। अमेरिकामें युद्ध-सामग्री सम्बन्धी प्रयोगशालाओंमें भी इस आविष्कारसे लाभ उठाया जायगा।



ऊपरसे नीचेको (१) नया अणुवीक्षण यन्त्र, जो किसी भी वस्तुको १ लाख या इससे अधिक गुना बड़ा कर दिखलाता है। (२) निरीक्षणके लिए छिद्रमें होकर वस्तु रखी जा रही है। (३) चित्र लेनेके लिए प्लेट लगाया जा रहा है। (४) यह देखनेके बाद कि वस्तु अभीष्ट रूपमें दिखलायी पड़ने लगी, प्लेटपर चित्र आनेके लिए बटन दबाया जा रहा है।



अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखनेपर १ लाख गुने बड़े आकारमें साबुन कैसा लगता है।



जीवन-साहित्य

साहित्य और जीवन, दोनोंका एक दूसरेसे अविभाज्य सम्बन्ध है। विद्वानोंमें इस विषयमें मतभेद हो सकता है कि साहित्य किसी देश या समाजके जीवनका अनुसरण करता है या जीवन साहित्यका; परन्तु इस बातसे किसीका विरोध नहीं हो सकता कि दोनों वस्तुतः एक दूसरेके पूरक हैं, एकसे दूसरेको बल मिलता है और दोनोंकी उन्नतिका मार्ग प्रशस्त होता है। यह नियम किसी एक देशके लिये नहीं, सभी देशोंके लिए हैं।

आज जब किसी देश या समाजकी किसी समयकी समाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अवस्था जाननेकी आवश्यकता होती है, हम सब उस कालके साहित्यकी ओर दौड़ते हैं क्योंकि साहित्य अपने समयकी अवस्थाका प्रतिबिम्ब होता है। रामायण और महाभारतसे हमें उस कालकी कितनी ही व्यवस्थाओंका पता चलता है। आधुनिक साहित्य ग्रन्थोंके सम्बन्धमें भी यही कहा जा सकता है। कुछ शब्दोंमें हम साहित्यको किसी भी देश या समाजके अतीतका चित्र कह सकते हैं और इसका अर्थ यह है कि साहित्यको अपने समयका अनुसरण करना हो चाहिये। साहित्य यदि अपने समयका अनुसरण न करे तो आवश्यकता पड़नेपर उससे तत्कालीन अवस्थापर प्रकाश नहीं पड़ सकता और उसका ज्यादा मूल्य नहीं हो सकता। समयका अनुसरण करनेवाला साहित्य ही अपने समयकी वास्तविक अवस्थाको बतलाता है, परन्तु उसका काम यहीं समाप्त नहीं हो जाता। साहित्यका इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य दूसरा है और वह है समयका अनुसरण करनेके साथ ही समयकी आवश्यकताओंको पूरा करना। साहित्य तभी वास्तवमें साहित्य हो सकता है, तभी वह अपनी परिभाषा सार्थक बना सकता है जब वह समयकी आवश्यकताओंको पूरा करे, इस दृष्टिसे जनसाधारणका अधिकसे अधिक हित साधन करे। 'हित' शब्दका अर्थ बहुतही व्यापक है और यहां उसे इसी व्यापक अर्थमें लिखा गया है। साहित्यकी व्यापकता भी इसीसे प्रतिपादित है। साहित्यको जीवनकी प्रत्येक दिशामें समाज और राष्ट्रका हित साधन करना चाहिए और उससे जनताको प्रेरणा मिलनी चाहिए। जिस साहित्यसे जनताको प्रेरणा नहीं मिलती, वह सच्चे अर्थमें अपना काम नहीं कर सकता, समयकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करने सम्बन्धी अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर सकता और साथ ही उसमें जीवन भी नहीं हो सकता। स्फूर्ति और चेतना ही जीवन है। प्रेरणा और स्फूर्ति रहित साहित्य और चाहे जो कुछ करे परन्तु वह किसी देश या समाजका मार्ग प्रकाशित नहीं कर सकता। हम यह मानते हैं कि साहित्यको केवल अतीतपर ही प्रकाश नहीं डालना चाहिए, उससे हमारे भविष्यपर भी प्रकाश पड़ना चाहिए और उसके लिए यथेष्ट प्रेरणा और स्फूर्ति मिलनी चाहिए।

जीवन-साहित्य सम्बन्धी यह दृष्टिकोण स्थापित हो जानेपर किसीको भी इस प्रश्नका उत्तर देनेमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती कि किस तरहके सजीव साहित्यकी आवश्यकता है, हिन्दी साहित्यको किस ओर कदम उठाना

चाहिए। हिन्दी इस देशकी राष्ट्रभाषा है और राष्ट्रभाषाके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है, अनिवार्य रूपसे यह आवश्यक है कि उसका दृष्टिकोण समस्त राष्ट्रके अनुरूप व्यापक हो, जिससे उसे अपना देशव्यापी कार्य करनेमें कठिनाई न हो। देशके सामने जिस तरहकी परिस्थिति है और समस्त राष्ट्र इस परिस्थितिके सम्बन्धमें जो कुछ सोचता है, उसकी झांकी तो हिन्दी साहित्यमें होनी ही चाहिए, साथ ही जनसाधारणको भारतीय महत्वाकांक्षाओंके सम्बन्धमें प्रेरणा भी मिलनी चाहिए। कवि और साहित्यकारका स्थान समाजमें बहुत ऊंचा है। इनकी अन्तर्दृष्टि वह देख सकनेमें समर्थ होती है, जिसे साधारण आंखोंसे हम सब नहीं देख सकते। वर्तमान आवश्यकताओंको तो हम सब देखते ही हैं और कोई भी उन्हें अनुभव भी कर सकता है, परन्तु कवि और साहित्यकार केवल वर्तमान युगकी ही नहीं, एक सीमा तक भविष्यकी भी आवश्यकताओंको अनुभव करते और उनके लिए देश और समाजको तैयार करते हैं। जीवन-साहित्यकी रचनामें कवियों और साहित्यकारोंका यही प्रयास होता है। यह काम कितना महत्वपूर्ण है, इसे सहज ही समझा जा सकता है। निश्चय ही वे कवि और साहित्यकार धन्य हैं जो अपने इस तरहके श्रेष्ठ प्रयाससे देश और समाजमें जीवन ज्योति जगा रहे हैं, देशके युवकोंको प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान कर यह सोचनेकी क्षमता प्रदान कर रहे हैं कि उन्हें राष्ट्रकी सामयिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेके लिए किस मार्गका अनुसरण करना चाहिए। कोई कवि और साहित्यकार आज जो लिखता है, उसे कल तो दूर है, आज ही पढ़ा जाता है। कवियों और साहित्यकारोंको कलम उठानेसे पहले इसपर अच्छी तरह विचार करना चाहिए कि वे देशकी आशाओंके सामने क्या रखें कि वे जीवनकी गुत्थियां सुलझाने और विश्वके साथ चलनेमें समर्थ हो सकें।

काव्य और सङ्गीत

काव्य रचना जिस प्रकार मानव-हृदयकी सहज, स्वाभाविक प्रेरणाका परिणाम है, उसी प्रकार सङ्गीत भी। अपने इतिहासके आरम्भमें सङ्गीत और कविताका पारस्परिक सम्बन्ध शरीर और आत्माके सम्बन्धके समान ही घनिष्ट था; सङ्गीतके बिना कविता निराकार ब्रह्मके समान केवल बुद्धिसे ग्रहण करने और कल्पनाके द्वारा अनुभव किये जानेकी वस्तु रह जाती हैं। उसी प्रकार काव्यके बिना सङ्गीत आत्माके बिना कायाके समान निर्जीव और निरर्थक वस्तु बन जाती है। दोनोंका सम्बन्ध निकटतम है; और दोनों ही अपने-अपने इतिहासके आदि कालमें एक दूसरेके अत्यन्त निकट थे। धीरे-धीरे मानव-बुद्धिका विकास होता गया और जीवनके सभी अङ्गोंमें जिसे हम उन्नति, सभ्यता या संस्कृतिके नामसे पुकारते हैं, उसके लक्षण स्पष्टतर होते गये। विज्ञानकी उन्नति हुई; विद्याका प्रचार हुआ; जीवनका प्रत्येक साधन पहलेसे अधिक परिष्कृत और सुलभ बनने लगा। इस प्रकार सभ्यता अपने मार्गपर अग्रसर होती गयी। इसके साथ ही साथ यह भी हुआ कि धीरे-धीरे मनुष्यकी बुद्धि उसकी आन्तरिक और सहज-स्वाभाविक भाव-प्रेरणाओंपर अधिकार करती गयी। इनका परिणाम यह हुआ कि मनुष्यकी भाषापर उसके सङ्गीतपर और उसकी कवितापर बुद्धि, विवेक और विमर्शकी छाप लगती गयी। अनुभूति प्रकृतिकी दी हुई वस्तु है, पर उसके प्रकट करनेके उपायोंमें निरन्तर नये-नये परिवर्तन करना मनुष्यको उसकी बढ़ती हुई मानव-शक्तिने सिखाया। सङ्गीत और काव्यमें धीरे-धीरे अन्तर बढ़ता गया, क्योंकि दोनों ही इतने परिष्कृत अथवा जटिल बनते गये कि उनके स्वाभाविक आत्मीय सम्बन्धका लोप होता गया। भावावेशमें, आन्तरिक प्रेरणासे विवश हो, काव्यरचना करनेके स्थानमें कवि छन्दशास्त्रके नियमों, भाषाकी उत्तमता और अलङ्कारोंके प्रदर्शनका ध्यान रखने लगा। उसी प्रकार सङ्गीतकार भी स्वाभाविक और अनायास रूपमें गानेके स्थानमें सङ्गीत शास्त्रके नियमों, स्वर-ताल आदिका और नये-नये आडम्बरोंका ध्यान रखकर सङ्गीतका सृजन करने लगा। कविता और सङ्गीत दोनों ही आचार्यों और शास्त्रोंके अधिकारमें आते गये। आज इसका परिणाम हम कविताकी पुस्तकों और सङ्गीत सम्मेलनोंमें स्पष्ट देखते हैं। कविता गायी नहीं जाती, और सङ्गीतके आचार्य आधुनिक कविताओंको निम्नश्रेणीकी और अवांछनीय वस्तु समझते हैं। उसी प्रकार साहित्य-प्रेमी गायकोंके गलेकी और उनके

गानेकी शैलीकी प्रशंसा करते हुए भी उन गीतोंके प्रति जो ये कुशल गायक गाते हैं, उदासीनता अथवा कभी-कभी अवहेलनाका भाव रखते हैं। किसी भी सङ्गीतोत्सवमें और वहां गाये जानेवाले गीतोंको सुनिये। अधिकांश गाने ऐसे मिलेंगे, जो या तो सूर और मीराके सुपरिचित पद होंगे या निरर्थक शब्दोंके ढेर। इसी प्रकार कवि-सम्मेलनोंमें हम शब्दोंकी ओर ध्यान देते हुए भी कविता-पाठके समय पढ़नेकी शैलीको अप्रधान समझते हैं। कुछ कवियोंकी कविता पढ़नेकी शैली अत्यन्त आकर्षक होती है, पर इससे उनकी कविताओं में वास्तविक सङ्गीतका केवल थोड़ा-सा आभासमात्र ही मिल पाता है। सङ्गीतको कविकी अपेक्षा है और काव्यको सङ्गीतकारकी। वास्तवमें सङ्गीत-मय कविता और काव्यात्मक सङ्गीत ही पूर्ण रूपमें कविता या सङ्गीत कहे जानेके अधिकारी हैं।

—बालकृष्णराव, आई० सी० एस०।
अध्यक्ष हिन्दी साहित्य सङ्घ।

भारतीय न्याय-दर्शन

हिन्दूदर्शन पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा (वेदान्त), सांख्य, न्याय, वैशेषिक और पातञ्जलयोग, छः प्रकारके हैं। इनमें मीमांसा, वेदान्त और न्याय तीन प्रधान माने गये हैं। न्याय शब्दके अनेक अर्थ होते हैं परन्तु वात्सायन ऋषिके मतसे "साध्य विषयकी सिद्धिके लिए प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, पांच अवयवोंसे युक्त वाक्य समूह "न्याय" है।

वार्तिककारकी दृष्टिसे प्रमाणों द्वारा किसी निष्कर्षकी प्राप्ति ही न्याय है। न्याय शास्त्रका प्रधान लक्ष्य यही है—प्रमाण द्वारा सत्यासत्य विचार कर वस्तु स्थितिकी सिद्धि करना। कुसुमाञ्जलिकार म० म० उदयनाचार्य्यने इसीसे ईश्वरकी स्थापनाका प्रयास किया है। न्यायको गौतमीय शास्त्र भी कहते हैं। न्याय दर्शनका केन्द्र सदासे मिथिला ही रहा है।

अनुसन्धान करनेसे अब तक न्याय शास्त्रकी जिन पुस्तकोंका पता लगा है उनके नाम ये हैं :—

न्यायसूत्र (१) प्राचीन न्यायका प्रथम ग्रन्थ है, जो महर्षि गौतमका लिखा हुआ है। इस ग्रन्थकी टीकायें हैं—वात्सायन ऋषिकृत न्यायसूत्रभाष्य; उद्योतकराचार्यकृत न्यायवार्तिक; नवीनवाचस्पतिकृत न्यायसूत्रोद्धार (अप्राप्य); पं० विश्वनाथ न्यायपञ्चाननकृत न्यायसूत्रवृत्ति; म० म० डा० गङ्गानाथ झा प्रणीत 'खद्योत' से भूषित न्यायदर्शन; पं० रामभद्र कृत न्यायसूत्र टीका; वेदान्तव्यास म० म० केशव मिश्रकृत न्याय गौतमसूत्र प्रकाशिका; सुदर्शनाचार्यकृत प्रसन्नप्रदा न्यायसूत्रटीका; उदयनारायण वर्माकृत न्यायसूत्रकी भाषाटीका।

उद्योतकराचार्य कृत जिस न्यायवार्तिकका उल्लेख ऊपर किया गया है, उसकी टीका भी षड्दर्शनाचार्य वाचस्पतिने 'न्याय वार्तिक तात्पर्य' नामसे की है और इसकी टीका भी "न्याय वार्तिक तात्पर्य परिशुद्धि" नामसे म० म० उदयनकी लिखी हुई है। वेदान्त व्यास म० म० केशव मिश्र कृत न्यायगौतम सूत्र प्रकाशिका टीकाका काल १५४६ ईस्वीसे १५५३ ईस्वी तकका है।

म० म० वरदराजकृत तार्किक रक्षा (२); म० म० केशव मिश्रकृत तर्क परिभाषा।

महर्षि कणादकृत वैशेषिकसूत्र (३) तीसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसका 'प्रशस्त पादभाष्य' प्रशस्त पादाचार्यने लिखा। इस भाषाकी टीकायें ये हैं—

श्रीधराचार्यकृत न्यायकन्दली; म० म० उदयनाचार्यकृत किरणावली; पं० व्योमकेशाचार्यकृत व्योमवती; पं० श्रीवत्साचार्यकृत लीलावती; पं० जगदीश भट्टाचार्य कृत भाष्यसूक्ति; विज्ञानभिक्षुकृत भिक्षुवार्तिक।

इन टीकाओंकी भी कई व्याख्यायें की गयी हैं—किरणावलीपर म० म० वर्द्धमानकृत किरणावली प्रकाश; पं० रघुनाथ शिरोमणि कृत किरणावली टिप्पणी और पं० पद्मनाभ मिश्रकृत किरणावली भास्कर; किरणावली प्रकाशपर म० म० भगीरथ ठाकुरकृत द्रव्य प्रकाशिका; पं० रघुनाथ शिरोमणिकृत गुणदीधिति गुणप्रकाश विवृत्ति; पं० मथुरानाथकृत गुणप्रकाश विवृत्ति रहस्य (दीधितिका व्याख्यान); गुणदीधितिपर पं० रुद्र भट्टाचार्यकृत विवृत्ति भाव प्रकाशिका; पं० रामकृष्णकृत गुणप्रकाश विवृत्ति व्याख्यान और पं० जयराम भट्टाचार्यकृत विवृत्ति व्याख्यान; न्यायकन्दलीपर पं० राजशेखर सूरिकृत पञ्जिका और पं० पद्मनाभ मिश्रकृत सिद्धान्त मुक्ताहार एवं कणाद रहस्य।

पं० शिवादित्य मिश्रकृत लक्षणमाला सप्तपदार्थी (४) पर नीचे लिखी टीकायें हैं। पं० शेषानन्तकृत पदार्थचन्द्रिका; पं०

नरसिंहकृत पदार्थचन्द्रिका टीका ; पं० मध्वसरस्वतीकृत मितभाषिणी; पं० जिनवर्द्धनसूरिकृत मितभाषिणीकी टीका; पं० सिद्धचन्द्रगणिकृत मितभाषिणीकी लघु टीका ; पं० मल्लिनाथसूरिकृत निष्कण्टिका ।

म० म० उदयनकृत आत्मतत्व विवेक (५) अथवा बौद्धाधिकारकी टीकायें ये हैं—पं० रघुनाथ शिरोमणि कृत दीधिति, म० म० शङ्कर मिश्र कृत कल्पलता, पं० गदाधर भट्टाचार्य कृत गदाधरी, पं० नारायण कृत आत्मतत्व व्याख्या, पं० गदाधर भट्टाचार्य कृत दीधितिकी व्याख्या, पं० गुणानन्द कृत आत्मतत्व विवेक टीका ।

म० म० उदयन कृत न्याय कुसुमाञ्जलि (६) की टीकायें ये हैं । म० म० वर्द्धमान कृत 'वर्द्धमान' नामसे भी विख्यात न्याय कुसुमाञ्जलि प्रकाश । इसपर न्याय कुसुमाञ्जलि व्याख्या नारायण तीर्थ, म० म० त्रिलोचन, म० म० गुणानन्द और पं० हरिदास लिखित अलग अलग है। कुसुमाञ्जल्यामोद म० म० शङ्कर मिश्र, कुसुमाञ्जलि मकरन्द प्रकाश व्याख्या म० म० रुचिदत्त, कुसुमाञ्जलि जलद म० म० भगीरथ ठाकुर, कुसुमाञ्जलि कारिका विवरण प० जयराम लिखित है ।

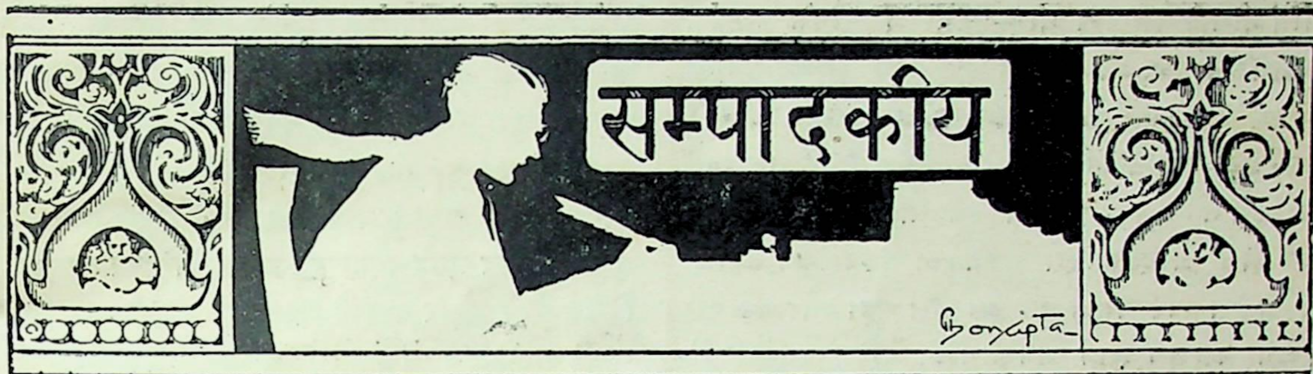
म० म० उदयन कृत न्याय परिशिष्ट (७) और म० म० पं० बल्लभाचार्य कृत न्याय लीलावती (८) प्रसिद्ध है । अन्तिम ग्रन्थ न्याय लीलावतीपर छः टीकायें हैं—म० म० वर्द्धमान कृत न्याय लीलावती प्रकाश, म० म० शङ्कर मिश्र कृत न्याय लीलावती कण्ठाभरण, पं० रघुनाथ शिरोमणि कृत न्याय लीलावती दीधिति, म० म० मथुरानाथ तर्कवागीश कृत वर्द्धमान रचित प्रकाश टीकापर न्याय लीलावती प्रकाश विवेक, म० म० मथुरानाथ कृत न्याय लीलावती शिरोमणि माथुरी टीका, म० म० भगीरथ ठाकुर कृत प्रकाशकी व्याख्या न्याय लीलावती प्रकाश टीका ।

—जीवानन्द ठाकुर शास्त्री, व्याकरणाचार्य ।

× × ×

भूली हुई कहानियां । लेखक—श्री सरयू पण्डा गौड़; प्रकाशक—ग्रन्थमाला कार्यालय, बांकीपुर; पृष्ठ-संख्या २७५; मूल्य १॥)

प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने समय समयपर उठे अपने भावोंका संग्रह कहानीके रूपमें श्रृङ्खलाबद्ध किया है । इनमेंसे कुछ तो पहले भी पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुकी हैं । इसमें समाज, पूंजी तथा प्रेमके जीवनके विविध पहलुओंका हृदयग्राही चित्र रखा गया है ।



महात्माजी चिरायु हों

विश्वविभूति महात्मा गांधीके जीवनके ७२ वर्ष पूरे हो गये और इसी २ अक्टूबरसे उन्होंने ७३ वं वर्षमें प्रवेश किया है। महात्माजी स्वदेशकी आशाओं और आकांक्षाओंके प्रतीक हैं और उन्होंने देशको आश्चर्यजनक शक्ति और प्रगति प्रदान की है। महात्माजीके इस देशकी राजनीतिमें आनेसे पहले देशका राजनीतिक मार्ग अवरुद्ध-सा हो रहा था, महात्मा गांधीने यह अवरुद्ध मार्ग खोल दिया और देश-वासियोंमें आत्म-विश्वास उत्पन्न कर दिया। आज जनतामें यह समझ और सूझ है कि यदि ब्रिटिश अधिकारी देशकी मांग स्वीकार नहीं करेंगे, देशकी महत्त्वाकांक्षाओंका तिरस्कार करेंगे, तो वह क्या करेगी। आज जनता निःसहाय स्थितिमें नहीं है और यह राजनीतिक जीवनका सर्वाधिक आशापूर्ण लक्षण है। आज देशकी जनता राजनीतिक समस्याओंपर विचार करती और नेताओंकी अपेक्षा न रख-कर निर्णय करती है और आवश्यकता होनेपर नेताओंके निर्णयोंको भी कसौटीपर कसती है। देशको यह स्फूर्ति महात्मा गांधीने दी है और सामाजिक एवं आर्थिक जीवन-का तो दृष्टिकोण ही बदल दिया है। यह महात्माजीका प्रयत्न है कि आज राजनीति कुछ थोड़े-से पढ़े-लिखे लोगोंके, चाहे वे वकील हों या डाक्टर, दिलबहलावकी चीज नहीं रही, आज वह जनताका विषय बन रही है और देहातमें खेतकी मेड़ और बागकी खाईपर या खलिहानमें बैठकर लोग राज-नीतिक प्रश्नोंकी चर्चा करते हैं। राजनीतिमें अहिंसाको स्थान देकर महात्माजीने संसारके सामने एक नया प्रयोग रखा है। संसारमें जब मानवताका संहार सर्वत्र बड़ी भयङ्करतासे हो रहा है और यूरोपीय बर्बरतासे सभ्यता त्राहि-त्राहि चिल्ला रही है, महात्माजीकी अहिंसा सारे संसारके लिए एक नये युगका सन्देश है। मानव-समाजका अस्तित्व यदि मानव-समाजके ही रूपमें रहना हो, तो निश्चय ही संसारको महात्माजीके अहिंसा-सम्बन्धी सिद्धान्तोंको मानना होगा। महात्माजीका जीवन त्याग, तप, सेवा और सहिष्णुताका प्रतीक है। अपने जीवनमें उन्होंने हमेशा ही उपदेशकी अपेक्षा आचरणको प्रथम स्थान दिया है और सेवाग्राममें रहकर वे मूक भाषामें देशके राजनीतिज्ञोंको बतला रहे हैं कि सेवाका वास्तविक क्षेत्र और राजनीतिक जीवन एवं शक्तिका स्रोत कहां है। जो लोग यह समझ रहे हैं कि देशके राजनीतिक जीवनमें महात्माजीका काम पूरा हो गया, वे भूल कर रहे हैं। महात्माजी आज भी देशकी शक्ति और आशाओंके केन्द्र हैं और उनके व्यक्तित्वमें कुछ ऐसा चुम्बकीय आकर्षण है कि देशके सभी प्रगतिशील परमाणु, जिनमें देशके लिए कुछ त्याग करने और कुछ कष्ट सहनेकी भावना है, उनके पास अपने-आप खिंच जाते हैं और महा-त्माजी अपने स्पर्श मात्रसे उनमें बिजली पैदा कर देते हैं। महात्माजीके इसी स्पर्शके चमत्कारसे आज प्रत्येक क्षेत्रमें जबर्दस्त क्रान्ति हो रही है और देश करवट बदल रहा है।

नये जन्म-दिवसपर उन्हें हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए हम ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि वे चिरायु हों और हमारा मार्ग-प्रदर्शन करते रहें।

स्वदेश और रूजवेल्ट-चर्चिल-घोषणा

चर्चिल-रूजवेल्टकी मुलाकातके फलस्वरूप जो घोषणा की गयी थी, उसकी आठ बातोंकी ओर संसारका ध्यान

खास तौरसे आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। उस घोषणामें तीसरी बात यह थी—"हम इस बातके समर्थक हैं कि प्रत्येक राष्ट्रको अपने यहां चाहे जैसी शासन-प्रणाली कायम करनेका अधिकार है। हम यह भी देखना चाहते हैं कि जो राष्ट्र स्वातन्त्र्य और स्वायत्त-शासनसे बलपूर्वक वञ्चित किये गये हैं, वहां फिरसे स्वतन्त्रता और स्वराज्य स्थापित हो।" पददलित देशोंने, जिनकी संख्या कम नहीं है, घोषणाकी इस व्यवस्थाको बड़ी आशासे पढ़ा और कई बार पढ़ा। अभी तक इस देशमें जिन लोगोंको ब्रिटिश राजनीतिज्ञों-के स्वभावकी जानकारी नहीं है, उन्हें इसमें नये युगकी एक झलक दिखलाई पड़ी और आशा और विश्वासके साथ यह प्रश्न किया जाने लगा कि शासन-प्रणाली और स्वतन्त्रता सम्बन्धी यह सिद्धान्त क्या हिन्दुस्तानपर भी घटित किया जायगा—क्या हिन्दुस्तानका भी यह अधिकार माना जायगा कि वह अपने लिए जैसी चाहे,शासन-प्रणाली निश्चित करे और फिरसे स्वतन्त्रता और स्वराज्यका उपभोग करे? ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मि० चर्चिलने अपने गत ९ सितम्बरवाले भाषणमें इस सम्बन्धमें सारी स्थितिको बिलकुल स्पष्ट कर दिया है। उनका कथन है—"हिन्दुस्तान, बर्मा या ब्रिटिश साम्राज्यके अन्य भागोंमें वैधानिक सरकारका विकास किये जानेके सम्बन्धमें समय-समयपर जो नीति प्रकट की गयी है, उसपर इस संयुक्त घोषणाका कोई असर नहीं पड़ेगा। अगस्त, १९४० की घोषणा द्वारा हमने हिन्दुस्तानको ब्रिटिश राज्य-सङ्घमें स्वतन्त्र एवं समान साझेदारी प्राप्त करनेमें सहायता देनेका वचन दिया है, अलबत्ता, इसमें इतने अर्से तक सम्बन्ध रहनेके कारण हमारा जो कर्तव्य है और हिन्दुस्तानके विविध सम्प्र-दायों, जातियों और स्वार्थोंके प्रति हमारी जो जिम्मेदारी है, उसे पूरा करनेकी शर्त है।" इसका सीधा मतलब यह है कि जहां तक स्वदेशकी महत्त्वाकांक्षाओंका प्रश्न है, रूजवेल्ट-चर्चिल-घोषणाका कोई अर्थ नहीं है, हमारे लिए वह बिलकुल निकम्मी है।

और अगस्त १९४० वाली जिस घोषणाका मि० चर्चिल-ने उल्लेख किया है, आखिर उसमें भी क्या है—उसमें पहले तो वायसरायने ब्रिटिश सरकारकी ओरसे यह स्पष्ट किया है कि उसका ध्येय है हिन्दुस्तानको औपनिवेशिक पद प्रदान करना। फिर, ब्रिटिश सरकारके वायसरायकी शासन-सभाका विस्तार करने और एक परामर्श समिति सङ्गठित करने सम्बन्धी निश्चयको दुहरानेके बाद यह कहा गया है कि ब्रिटिश सरकार युद्ध समाप्त हो जानेपर कमसे कम समय बीतनेके बाद हिन्दुस्तानके नये विधानका ढांचा तैयार करनेके लिए एक कमेटी बना देनेके प्रस्तावको तत्काल स्वीकार कर लेगी। इस कमेटीमें हिन्दुस्तानके राष्ट्रीय जीवनके मुख्य-मुख्य परमाणुओंका प्रतिनिधित्व होगा और ब्रिटिश सरकार हर तरहकी मदद देगी। इसी तरह कुछ अन्य थोथी बातें भी उसमें हैं और उसका कोई महत्त्व नहीं है। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ जो ऊंचेसे ऊंचा पद भारतको देनेके लिए कहते हैं, उसके साथ इतनी शर्तें रखते हैं कि व्यवहारतः उसका कोई अर्थ नहीं रह जाता। यदि उसका कोई अर्थ भी हो, तो उसकी कोई अवधि नहीं होती और सच तो यह है कि यह ऊंचेसे ऊंचा काल्पनिक पद भी भारतीय महत्त्वाकां-क्षाओंके सामने बहुत नीचा है।

अबोहरमें साहित्य-सम्मेलन

निजाम सरकारने जब हैदराबादमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका अधिवेशन होनेकी आज्ञा नहीं दी, उसकी व्यवस्था अबोहरमें की गयी है। अबोहर पञ्जाबका प्रसिद्ध नगर है और वहांका साहित्य-सदन पञ्जाबमें सराहनीय सेवा कर रहा है। स्वागत समिति बन चुकी है, जिसके प्रधान मन्त्री लाला मुकुन्दलालजी सेठिया हैं। स्वागत समितिने पञ्जाबमें हिन्दीकी स्थिति जाननेके लिए प्रयत्न आरम्भ कर दिया है। यद्यपि अभी तक अधिवेशनका समय निश्चित नहीं हुआ है, तथापि यह समझा जाता है कि वह बड़े दिनकी छुट्टियोंमें होगा। अबोहरको इस अधिवेशनकी तैयारी करनेके लिए बहुत कम समय मिला है, परन्तु हम जानते हैं कि पञ्जाबी भाई-बहनोंमें हिन्दीके लिए यथेष्ट उत्साह है और वे समय-की कमीकी पूर्ति अपने उत्साहसे कर दिखलायेंगे। हिन्दी-जगत्को भी स्वागत समितिसे सहयोग करना चाहिए।

अधिवेशनपर प्रतिबन्ध

भागलपुरमें हिन्दू महासभाका वार्षिक अधिवेशन होने-वाला था; परन्तु बिहार-सरकारने एक विज्ञप्ति प्रकाशित कर बतलाया है कि आगामी १ दिसम्बरसे लगाकर १०

जनवरी तक महासभाका अधिवेशन केवल भागलपुर नगर और जिला ही नहीं, मुंगेर, पटना, गया, शाहाबाद, मुजफ्फरपुर और दरभङ्गा जिलोंमें भी नहीं हो सकेगा। विज्ञप्तिमें इसका कारण भी बतलाया गया है, परन्तु वास्तवमें वह कोई कारण नहीं है। कहा गया है कि "लगातार साम्प्रदायिक दङ्गे होते रहनेके कारण सरकारने विवश होकर भागलपुर और उसके आस-पासके इलाकेको अशान्त क्षेत्र घोषित किया है और १ मार्चसे २०० अतिरिक्त कान्स्टेबल इस क्षेत्रमें रख दिये गये हैं, जिनका व्यय-भार अशान्त क्षेत्रके निवासियोंको ही उठाना पड़ता है।" जो दलील भागलपुरके सम्बन्धमें दी गयी है, वही न्यूनाधिक अन्य क्षेत्रोंके सम्बन्धमें भी है। सारांश यह है कि बिहारके इन जिलोंमें सरकारकी दृष्टिमें साम्प्रदायिक अशान्ति इतनी अधिक है कि हिन्दू महासभाका अधिवेशन होने नहीं दिया जा सकता—विशेषतः जब अधिवेशनके कुछ ही दिनों बाद बकरीद पड़ती है। बकरीद और साम्प्रदायिक अशान्तिके साथ हिन्दू महासभाके अधिवेशनका क्या सम्बन्ध है, यह समझना हमारे लिए कठिन है। हिन्दू महासभाका ध्येय स्पष्ट है और अधिकारी यह नहीं कह सकते कि हिन्दू महासभाके किसी अधिवेशनके असरसे कहीं दङ्गा हुआ। फिर, इसपर तो कोई विश्वास ही नहीं कर सकता कि हिन्दू महासभाके अधिवेशनकी प्रतिक्रिया यदि उसी रूपमें होती, तो सरकार उपद्रवियोंको काबूमें नहीं ला सकती थी। हमारा विश्वास है कि उपद्रवियोंको रास्तेपर रखनेके लिए सरकारमें कम सामर्थ्य नहीं है, शर्त यही है कि वह उससे काम लेना चाहे। हिन्दू महासभाके इस अधिवेशनके सिलसिलेमें सरकारने जिस दृष्टिकोणका परिचय दिया है, उससे तो उपद्रवियोंको प्रोत्साहन ही मिलेगा। बिहार-सरकारने अपने प्रान्तके सात जिलोंमें जिस तरहकी स्थिति बतलायी है, वह स्वयं किसी भी सभ्य सरकारके लिए लज्जाजनक हो हो सकती है; परन्तु बिहार-सरकारकी विज्ञप्ति पढ़नेसे कुछ ऐसा प्रतीत होता है, मानो इस अवस्थाका सारा दायित्व जनतापर है, उस प्रबन्ध और नीतिपर नहीं, जिसे साम्प्रदायिक उत्तेजनाके समय कहीं किया और जिससे काम लिया जाता है। हमारी दृष्टिमें बिहार-सरकारका यह निर्णय अनुचित है।

आग सुलग रही है

समाचारोंसे प्रतीत होता है कि जर्मनीने यूरोपके जिन देशोंको दबोच डाला है, उनमें अवस्था ठीक नहीं है और वह दिन नजदीक आता दिखलाई पड़ रहा है, जब जर्मन अत्याचारोंसे तङ्ग आकर इन देशोंकी जनता शिर उठाकर खड़ी हो जायगी। जेकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड, फ्रान्स, बेल्जियम, हालैण्ड, यूगोस्लाविया, नारवे, सर्वत्र अशान्तिकी आग सुलग रही है। जर्मन अधिकारी इस आगको दबानेके लिए नृशंस उपायोंसे काम ले रहे हैं; परन्तु लक्षण उनके अनुकूल नहीं मालूम होते। अभी उस दिन जेकोस्लोवाकियामें फौजी अदालतकी आज्ञासे ५९ जेकोंको मृत्युदण्ड दिया गया। इन व्यक्तियोंमें जेक प्रीमियर जनरल इलियास, विश्वविद्यालयके प्रोफेसर डा० ब्लाडो मीरग्रोह और कितने ही अन्य नागरिक हैं। कई दिन पहले स्कोडाकी मशहूर शस्त्रास्त्र फैक्टरीमें भयङ्कर धड़ाका हुआ था, जिससे नाजियोंकी बड़ी क्षति हुई थी। विजित रूसी क्षेत्रमें गुरिल्ले जर्मनोंको परेशान ही नहीं कर रहे हैं, क्षति भी पहुंचा रहे हैं और सर्व इलाकेमें गुरिल्लोंकी प्रगति बढ़ रही है। यूगोस्लावियामें कुछ ही दिनों पहले जर्मनोंको भारी अशान्तिका सामना करना पड़ा था और पेरिसमें फ्रान्सीसी नागरिकोंके साथ जर्मनोंकी मुठभेड़का समाचार अभी नया ही है। फ्रान्सकी इस समय जो स्थिति है, उसमें कम्यूनिस्टोंको बड़ा बल मिल रहा है और इसका पता न केवल हजारों कम्यूनिस्टोंकी गिरफ्तारीसे, उस असाधारण कानूनसे भी चल जाता है, जो पिछले दिनों वहां कम्यूनिस्टोंका दमन करनेके लिए जारी किया गया है। नारवेमें मज़दूर नेताओंको गोलीसे उड़ाया जा चुका है। इस तरहकी चिनगारियोंका दमन करनेमें नाजी कितनी हृदयहीनता दिखलाते हैं, इसका एक उदाहरण यह है—टूरनाईमें गत ७ सितम्बरको दो जर्मन पुलिस कर्मचारी मार डाले गये थे, इसलिए २५ बेल्जियनोंको बतौर जमानत गिरफ्तार कर लिया गया। दस दिनमें जर्मनोंकी हत्या करनेवालोंका पता नहीं चलनेपर इन २५ व्यक्तियोंको गोलीसे उड़ा दिया जानेवाला था। ये समाचार हवाका रुख बतलाते हैं। जर्मन अधिकारियोंको अपनी सैनिक शक्तिपर विश्वास है; परन्तु संसारके सब देशोंमें जनसाधारणकी अशान्तिका एक ऐसा

समय आता है, जब सारी सैनिक शक्ति बेकार हो जाती है। जर्मन सैनिक शक्ति इसका अपवाद नहीं है।

नयी व्यवस्था और देशी रियासतें

महात्मा गांधीने देशी रियासतोंके प्रजाजनोंको जहां यह सलाह दी है कि "वे धैर्य धारण करें और उस उत्तरदायित्वको वहन करनेके लिए तैयार रहें, जो चाहे इच्छा हो या न हो, उन्हें चुपचाप रचनात्मक कार्य करते जानेसे उठाना ही पड़ेगा," वहां नरेशोंको उन्होंने भविष्यका सङ्केत भी यह कहकर किया है कि "युद्धके बाद नयी व्यवस्था अवश्य स्थापित होगी और उसमें नरेशोंको जनताके वास्तविक सेवककी हैसियतसे ही स्थान मिल सकेगा।" महात्माजीकी यह सलाह बहुत ही सामयिक है। सारे संसारमें जब उथल-पुथल मची हुई है, पुरानी व्यवस्थाओंके स्थानपर नयी व्यवस्थायें कायम की जा रही हैं, तब यह हो नहीं सकता कि स्वदेशपर जमानेकी हवाका कोई असर न पड़े। हमारा तो यह विश्वास है कि कोशिश करनेपर भी संसारकी प्रगतिसे कोई अलग नहीं रह सकता और सचमुच ही अगर कोई इतना मूर्ख हो कि वह उससे अलग रहना चाहे, तो उसका परिणाम विनाश ही हो सकता है। परिवर्तन प्रकृतिका धर्म है और जो संसारकी प्रगतिके साथ रहता है, वही अपना अस्तित्व रखनेमें समर्थ हो सकता है। देशी रियासतोंके लिए दूसरा नियम नहीं है। आज देशी रियासतोंमें जिस पद्धतिसे प्रजाजनोंपर शासन होता है, वह इतनी पुरानी है और इतनी जर्जर हो चुकी है कि देशी नरेशोंको अपने ही लाभके लिए उसके स्थानपर प्रजाजनोंकी महत्त्वाकांक्षाओंके उपयुक्त आधुनिक शासन-प्रणालीको आश्रय देना चाहिए। यह समयका तकाजा है, जिसकी उपेक्षा कोई अनन्त काल तक नहीं कर सकता। ज्यों-ज्यों भीजै कामरी, त्यों-त्यों भारी होय। अभी समय है।

क्या अमेरिका तटस्थ ही रहेगा ?

अमेरिका तटस्थ है। दो वर्ष पहले भी वह तटस्थ था और आज भी तटस्थ है; परन्तु अमेरिकाकी दो वर्ष पहले और आजकी स्थितिमें बड़ा अन्तर है, आकाश-पाताल-जैसा अन्तर है। आज उसकी तटस्थता जिस रूपमें है, वह कुछ विचित्र-सी है—वह अपने सैनिक भेजकर केवल लड़ ही नहीं रहा है, वैसे अमेरिकन कारखानोंमें असाधारण परिमाणमें युद्ध-सामग्री तैयार हो रही है और वह अटलाण्टिक महासागरकी तरङ्गोंको चीरती हुई ब्रिटेन पहुंच रही है। अमेरिकन कारखाने वस्तुतः ब्रिटिश कारखाने बन रहे हैं और परिस्थितिके तकाजेके अनुसार अमेरिकाका तटस्थता-सम्बन्धी दृष्टिकोण भी बदल रहा है। एक समय था, जब यह अमेरिकन युद्ध-सामग्री ब्रिटिश तटपर पहुंचनेका प्रबन्ध स्वयं ब्रिटिश अधिकारी करते थे, परन्तु अब अमेरिका स्वयं इस युद्ध-सामग्रीको सुरक्षित अवस्थामें ब्रिटेन पहुंचानेका प्रबन्ध कर रहा है। इसके फलस्वरूप दुर्घटनायें होनेकी पूरी सम्भावना है। अमेरिकन जहाज 'ग्रीयर'के डुबाये जानेकी घटना अभी हालमें ही हुई है, जिससे अमेरिकन जनता क्षुब्ध हो उठी थी। 'ग्रीयर' के बाद 'सेसा' नामक एक दूसरा जहाज डुबाया जा चुका है। ग्रीयर आइसलैण्डके लिए डाक ले जा रहा था और 'सेसा' युद्ध-सामग्री। 'सेसा'-काण्डके बाद प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने अपने भाषणमें बिलकुल स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि "अमेरिकाके जहाज अमेरिकाके सामुद्रिक रक्षा-क्षेत्रमें अब इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करेंगे कि पहले धुरी शक्तियोंकी ओरसे आक्रमण हो।" इसका सीधा अर्थ यह है कि अटलाण्टिकमें यदि कोई नाजी जहाज या पनडुब्बा सामने पड़ गया तो अमेरिकन जहाज प्रतीक्षा नहीं करेंगे। इस घोषणाके बाद अमेरिका युद्धके बहुत ही समीप आ गया है और इधर तो समाचारोंसे यह प्रतीत होता है कि वहां तटस्थताकी ओर अंगुली उठायी जाने लगी है। यह समझा जाने लगा है कि तटस्थ रहने सम्बन्धी वर्तमान व्यवस्था अमेरिकाके लिए हितकर नहीं है। इस सिलसिलेमें सिनेटर मेककेलरने सिनेटमें एक प्रस्ताव उपस्थित किया है; परन्तु लक्षणोंसे अभी ऐसा नहीं मालूम होता कि इस कानूनको बिलकुल ही रद्द कर दिया जायगा। उस दिन स्टेट सेक्रेटरी कारडेल हलने परिवर्तित परिस्थितिके अनुसार तटस्थता कानूनमें केवल संशोधन होनेकी ही आवश्यकता प्रकट की थी और यह कहा जाता है कि प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट भी इस समय इतना ही चाहते हैं कि अमेरिकाके व्यापारिक जहाजोंको शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित किया जा सके और ये जहाज युद्ध-सामग्री लेकर कनाडाके बन्दरगाहोंमें जा सकें।

जो हो, हम देख रहे हैं कि अमेरिका अपनी दृष्टिसे परिस्थितिका तकाजा पूरा करनेके प्रयत्नमें आज युद्धके बहुत समीप पहुंच रहा है और भले ही आज तटस्थता कानून रद्द करनेकी आवश्यकता उसे न अनुभव हो और वह उसमें संशोधन करके ही सन्तुष्ट हो जाय; परन्तु जब परिस्थितिका ही प्रश्न है, तब असम्भव क्या है। आज जो सम्भव नहीं है, परिस्थिति उसे कल सम्भव बना सकती है।

ईरानमें परिवर्तन

ईरानपर ब्रिटिश और सोवियट सेनाओंका अधिकार हो जानेके बाद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण घटना यह हुई है कि बादशाह रजाशाह पहलवीने सिंहासन छोड़ दिया और उनके स्थानपर उनके बड़े लड़केने राज्य-सूत्र ग्रहण कर लिया है। रजाशाहने अपने समयमें ईरानको नया जीवन देना चाहा था और यद्यपि कमाल पाशाकी तरह वे बहुत अग्रसर नहीं हुए, तथापि इसमें सन्देह नहीं है कि उन्होंने ईरानमें कितने ही सामाजिक सुधार किये। रजाशाह अब वृद्ध हो चले थे, परन्तु उनके राज्य-सूत्र छोड़नेका प्रकट रूपमें कोई कारण नहीं था। कारण कुछ बतलाया भी नहीं गया है और केवल यही कहा गया है कि उन्होंने स्वास्थ्य ठीक नहीं होनेके कारण गद्दी छोड़ दी और मोटर द्वारा इस्पहां चले गये। ईरानमें शाहकी जो व्यक्तिगत सम्पत्ति थी, उन्होंने उसपरसे भी अपना अधिकार छोड़ दिया और अन्तिम समाचार यह था कि वे अर्जेण्टाइनके लिए रवाना हो रहे हैं। समाचार तो यह भी था कि ईरानकी पार्लामेण्टने उनपर मामला चलाये जानेकी मांग की; परन्तु बादमें इस विषयमें कुछ पता नहीं चला। जो हो, रजाशाहके गद्दी छोड़नेके बादके समाचारोंसे यह सन्देह होना स्वाभाविक ही है कि उनके गद्दी छोड़नेके कारणोंमें स्वास्थ्य ठीक न होनेके अलावा भी कोई बात है। समाचारोंसे मालूम हुआ है कि रजाशाहके विरुद्ध जनतामें बड़ा असन्तोष था और रजाशाहको विश्वास था कि वे ईरानकी सेनाओंसे प्रजाजनोंकी अशान्तिको दबा सकेंगे। उन्हें यह विश्वास भी था कि रूस और ब्रिटेनकी सेनायें उनके इस प्रयत्नमें हस्तक्षेप नहीं करेगी। इसीलिए जब मन्त्रियोंने उनके सामने गद्दी छोड़नेका प्रस्ताव रखा, उन्होंने पहले तो साफ इनकार कर दिया; परन्तु बादमें उन्होंने परिस्थिति समझ ली और गद्दी छोड़कर अलग हो गये। इससे अवस्थापर कुछ प्रकाश पड़ता है। पार्लामेण्टने गत १९ वर्षकी नीतिके लिए केवल रजाशाहको दायी ठहराया है, क्योंकि वे निरंकुश शासक थे; किन्तु प्रधान मन्त्री मि० फारूकीके कथनानुसार ईरानके विधानके अनुसार मन्त्री पार्लामेण्टके समक्ष उत्तरदायी होंगे। ईरानमें इधर कई तरहके सुधार होनेकी घोषणा २२ वर्षके नवयुवक शाहने की है; परन्तु प्रधान मन्त्रीकी ईरानी मन्त्रियोंके पार्लामेण्टके समक्ष दायी होनेकी बातका मेल पार्लामेण्टके उस मतसे नहीं है, जिसमें गत १९ वर्षकी नीतिके लिए शाहको दायी बतलाया गया है। मालूम यह होता है कि ईरानके अधिकारियोंको जर्मन प्रभाव नष्ट करनेमें बड़ी कठिनाइयां पड़ रही थीं और साथ ही यह जर्मन प्रभाव क्षमता-सम्पन्न वैध सरकारकी स्थापना रोकनेके लिए भी यत्न कर रहा था। इसी परिस्थितिमें रजाशाहको सिंहासन छोड़ने और ब्रिटिश एवं रूसकी सेनाओंको ईरानकी राजधानीमें पहुंच जानेके लिए विवश होना पड़ा। ईरानके नये शाह मुहम्मद रिजा पहलवीकी पत्नी मिश्रके बादशाहकी बहिन हैं और यह आशा की जाती है कि भविष्यमें ईरान भी मिश्रकी ही तरह ब्रिटेनका मित्र होकर रहना पसन्द करेगा।

उचित निश्चय

ट्रावङ्कोरके महाराजने कई साल पहले राजकीय मन्दिरोंका द्वार हरिजन भाइयोंके लिए खोलकर बड़ा ही सुन्दर आदर्श उपस्थित किया था। आशा की जाती थी कि राज्यके अन्य देव-मन्दिरोंके व्यवस्थापकोंपर इसका प्रभाव पड़ेगा और वे अपने-अपने मन्दिरोंका द्वार सर्वसाधारणके लिए भेद-भाव छोड़कर खोल देंगे; परन्तु यह नहीं हुआ और बहुत थोड़े देव-मन्दिरोंके व्यवस्थापकोंने अनुकरण किया। ट्रावङ्कोर-सरकारने इसपर आर्डर निकालकर उन सभी व्यक्तिगत मन्दिरोंकी सहायताकी रकमको अस्थायी रूपसे स्थगित कर दिया, जिनके दरवाजे हिन्दू-मात्रके लिए उन्मुक्त नहीं कर दिये गये थे। इस आज्ञाके बाद कितने ही मन्दिरोंके व्यवस्थापकोंने मन्दिर-प्रवेशके मूल भूतसिद्धान्तको स्वीकार कर लिया और उन्हें सहायताकी रकम फिर

मिलने लगी, परन्तु अभी तक कितने ही देव-मन्दिरोंके व्यवस्थापक अपनी जिदपर अड़े हुए हैं और हिन्दू सङ्गठनकी जड़पर कुठाराघात कर रहे हैं। ट्रावङ्कोर सरकारने चेतावनी देनेके लिए यह आज्ञा जारी की थी कि यदि १७ सितम्बर तक देव-मन्दिरोंके द्वार प्रत्येक हिन्दूके लिए नहीं खोल दिये जायेंगे, तो सहायताकी स्थगित रकम स्थायी रूपसे बन्द कर दी जायगी। हमारा विश्वास है कि ट्रावङ्कोर-में अब इस तरहके देव-मन्दिरोंकी सहायताकी रकम बन्द हो चुकी है और यह ठीक ही हुआ है। राज्यकोषपर सभी प्रजाजनोंका अधिकार है और उससे उन्हीं देव-मन्दिरोंको सहायता दिया जाना उचित है, जो सभी हिन्दुओंके लिए खुले हों।

माननीय मि० हकको बधाई

मुस्लिम लीगके प्रेसिडेण्ट मि० जिन्नाकी स्वेच्छा-चारिताके प्रतिवादमें आखिर बङ्गालके प्रधान मन्त्री माननीय मि० फजलुल हकने लीगको अखिल भारतीय कमेटी और कौन्सिलसे इस्तीफा दे दिया और साथ ही राष्ट्र-रक्षा-समितिकी सदस्यतासे भी, जिसके कारण मि० जिन्नाने तूफान खड़ा कर दिया था। अपने त्यागपत्रमें माननीय मि० फजलुल हकने कहा है कि "हालकी घटनाओंसे मुझे विश्वास हो गया है कि अखिल भारतीय मुस्लिम लीगमें केवल एक व्यक्तिकी निरङ्कुश इच्छाओंके अधीन गणतन्त्र और स्वतन्त्रताके सिद्धान्तोंको रखा जाता है और यह सर्व-शक्ति-सम्पन्न सत्ताकी तरह शासन करना चाहता है।" राष्ट्र-रक्षासमितिसे त्यागपत्र देनेके कारणोंका उल्लेख करते हुए माननीय मि० हकने कहा है कि "अन्य प्रधान मन्त्रियोंने अपना स्थान खाली कर दिया है, इसीलिए यह अनुभव होता है कि समितिका मेम्बर बने रहनेसे कोई लाभ नहीं होगा।" हम माननीय मि० हकको मुस्लिम लीगसे इस्तीफा देकर अलग हो जानेके साहसपूर्ण निश्चयके लिए बधाई देते हैं। राष्ट्र-रक्षा-समितिके सम्बन्धमें मि० जिन्नाने जिस दृष्टि-कोणसे विचार किया और पञ्जाब और आसामके प्रधान मन्त्रियोंने जिस तरह दबकर अपनी सफाई दी, उससे लीगकी स्थिति सचमुच बड़ी ही उपहासास्पद हो गयी है। मुस्लिम लीग युद्ध प्रयासमें सरकारको सहायता पहुंचानेके पक्षमें नहीं है, फिर भी उसे सर सिकन्दर हयातखांकी इस बातसे कोई आपत्ति नहीं है कि वे युद्ध-प्रयासमें शक्ति-भर सहायता पहुंचायें। अलबत्ता, मुस्लिम लीग युद्ध-प्रयासमें सहायता पहुंचानेके लिए सर सिकन्दर हयातखांको राष्ट्रीय-रक्षा-समितिमें बैठनेकी अनुमति नहीं दे सकती! यह गुड़ खाने और गुलगुलोंसे परहेज करने जैसी बात हुई। असलियत यह है कि मि० जिन्ना जो यह ढिंढोरा पीट रहे हैं कि वे सारे भारतके मुसलमानोंके एकमात्र नेता हैं, यह दावा सारहीन है, दिखलावा-मात्र है और यह बिलकुल स्पष्ट है कि मुस्लिम लीगके कुछ प्रस्तावोंकी दुर्गति लीगके हिमायतियोंके हाथों ही बुरी तरह हो रही है। बेगम शाह नवाजने राष्ट्रीय-रक्षा-समितिकी सदस्यतासे इस्तीफा देनेसे इनकार करते हुए मि० जिन्नाकी खासी खबर ली है और कहा है कि "अखिल भारतीय मुस्लिम लीगका प्रेसिडेण्ट आगे आकर राष्ट्रीय रक्षा-समितिकी एकमात्र महिला मेम्बरसे इस्तीफा देनेके लिए तो कहता है, परन्तु शरियतके अनुसार मुस्लिम महिलाओं-को जो अधिकार होने चाहिए, उन्हें देनेके निमित्त मुसल-मानोंको तैयार करनेके लिए उसने कुछ भी नहीं किया।" इस स्पष्ट कथनके लिए बेगम शाहनवाजको भी हम बधाई देते हैं। उन्होंने लीगकी अनुशासन सम्बन्धी कार्यवाहीकी धमकीसे न डरकर अच्छे साहसका परिचय दिया है।

———



'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट कलकत्तासे पं० मातासेवक पाठक द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

